श्रीरायचन्द्र–जिनागमसंग्रहे

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीतं

श्रीमद्भगवतीसूत्रम्

(व्याख्याप्रज्ञप्तिः)

पञ्चमाङ्गे प्रथमखण्डम् ।

श्रीमद्–अभयदेवसूरिविरचितविवरणसहितम् ।

श्रीयुत पुंजाभाइ हीराचन्दद्वारा संस्थापितायाः

श्रीजिनागमप्रकाशकसभाया मानदकार्यभारि-

मनसुखलाल रवजीभाई मेहता–प्रेरितेन

न्याय–व्याकरणतीर्थेन

श्रीजीवराजतनुज–पण्डित–बेचरदासेन

अनुवादितम्, संशोधितं च ।

मुम्बय्यां निर्णयसागराख्यमुद्रणालये मुद्रितम् ।

वि० सं० १९७४

समस्तभगवतीसूत्रमूल्यम्—४५–०–०

श्रीरायचन्द्र-जिनागमसंग्रहे

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीत

श्रीमद्भगवतीसूत्र

(व्याख्याप्रज्ञप्ति.)

पञ्चम अंग-प्रथम खण्ड

श्रीमद्-अभयदेवसूरिविरचितविवरणसहित.

श्रीयुत पुंजाभाई हीराचन्दद्वारा संस्थापित

श्रीजिनागमप्रकाशकसभाना मानदकार्यभारी

मनसुखलाल रवजीभाई मेहताए

न्याय-व्याकरणतीर्थ

पण्डित बेचरदास जीवराज पासे

अनुवदाव्युं अने संशोधाव्युं.

मुम्बई: निर्णयसागराख्यमुद्रणालयमां मुद्रित थयुं.

वि० सं० १९७४.

समस्तभगवतीसूत्रमूल्य-४५-०-०

ता० १–८–१९१३ ने रोज श्रीजिनागम प्रकट करवा माटे नीचे प्रमाणे योजना बहार पडी हती:—

४५ जिनागम प्रकट करवा माटेनी एक योजना.

हर्षनो विषय छे के, हमणां हमणांमां, धर्मविषयक ग्रंथोना प्रकाशनना संबंधमां बीजा धर्मोनी पेठे, जैनधर्ममां पण बहु उत्साह जागृत थयो छे. जूदी जूदी अनेक संस्थाओ, लेखको अने पुस्तकप्रकटकर्त्ताओ तरफथी जूदी जूदी दिशाओमां यत्नो थवा मांड्या छे. कोइ मागधी—प्राकृत आकारे, कोई संस्कृत आकारे, कोई हींदि के गुजराती अनुवाद स्वरूपे सारा सारा ग्रंथोनो प्रकाश करी रह्या छे.

ज्यारे आ प्रकारे प्रयत्नो थई रह्या छे त्यारे ए महत्त्वनी दिशामां प्रयत्न करवा जेवी स्थिति जणाई. समर्थमां समर्थ श्वेताम्बर आचार्यो के जेओए पोताना ज्ञानसामर्थ्यथी विद्वानोनी सृष्टिने विषे अत्यारे पण विस्मयता उत्पन्न करी छे तेओए पण सौथी श्रेष्ठ पदवी जेने आपेली अने जेनुं तेओए अंतिम अवलंबन लीधेलुं एवा एक महत्त्वना कार्य माटे परिश्रम करवानो हवे समय आवेलो जणाय छे.

सर्वे जैन भाइओना जाणवामां छे के श्री श्वेताम्बर संप्रदायने मान्य एवां श्री जिनागम के जेनी संख्या ४५ नी गणवामां आवे छे तेमां अद्भुत तत्त्वज्ञान समायेलुं जोई युरोपना प्रोफेसर मेक्समूलर, प्रोफेसर हर्मन जेकोबी आदि बळवान् विद्वानो तेनां अंग्रेजीमां अनुवादो—भाषान्तरो करी रह्या छे.

हाल सुधीमां जिनागमना केटलाक अंग–उपांगो बहार पडी चूक्या छे. आ दिशामां सर्वथी पहेल करनार मुर्शिदाबादवाळा राय धनपतिसिंह बहादूर हता; जेओए सांभळवा प्रमाणे ई. स. १८८० नी लगभग १००,००० रुपिया शुभ मार्गे खर्चवा माटे आपी ते बहार पडाव्या हता. त्यार बाद जूदा जूदा स्थळोएथी केटलांक अंग–ऊपांगो, क्वचित् मूळ रूपे–क्वचित् मूळ अने संस्कृत टीका साथे, अने क्वचित् मूळना गुजराती अनुवाद साथे बहार पडी चूक्यां छे, राय धनपतिसिंहजी बहादूर तरफथी प्रकट थयेल अंग–उपांगो मूळ मागधी गाथाओ, संस्कृत टीकाओ अने जूना गुजराती टब्बाओ साथे बहार पडेल छे.

रायबहादुरनो ऊपकार सर्वथी श्रेष्ठ छे. आम छतां पण ते जे आकारे प्रकट थयां छे ते आकार अत्यारना समयने माटे सरळ नथी. एक तो ते बंगाळी मरोडमां छपायां छे, जे अत्यारनी आंखने सरळतापूर्वक प्रिय थवां मुश्केल. बीजु टब्बाओ गुजराती भाषामां छे. पण ते घणीज जूनी गुजरातीमां छे एटले अत्यारे ते सहेलाइथी वांचवा विचारवानुं मुश्केल थई पडे छे.

आम छतां, तेओनो परोपकार आपणे भूली जइए तो आपणी ते संपूर्ण कृतघ्नताज छे, केमके तेओए जे समये आपणा माटे ते कार्य करेलुं ते समये ते घणुंज महत्त्वनुं गणाय.

आवा प्रकारे जूदी जूदी रीते प्रयत्नो थयां छतां, तेमां एक सर्वथी अगत्यनो विषय रहेलो छे ते ए छे के, जिनागमना जूदा जूदा अंग–ऊपांगो ऊपर आचार्य भगवान् श्री हरिभद्रसूरि जेवा अनेक समर्थ महानुभावोए करेली संस्कृत टीकाओनो लाभ संस्कृत भाषाथी अज्ञात एवा वर्गने मळी शकतो नथी.

आ कारणथी देश भाषा जाणनारने सुलभ थई पडे तेटला माटे मूळ मागधी–प्राकृत–अने संस्कृत टीकाओ ते बन्नेना संपूर्ण भाषान्तर समेत सुंदर अने शुद्ध प्रकाश थाय तेवी कोई एक योजनानी जरूर छे.

आ विचारनी उत्पत्तिना मूळ कारणभूत पुरुष स्वर्गीय श्रीमान् रायचंद्र छे. तेओनो संवत् १९५७ मां देहोत्सर्ग थयो ते पहेलां तेओए आवा प्रकारनी दिशामां प्रयत्न करवा उपदेशेलुं.

आ योजना संपूर्णपणे अमलमां मूकतां, तेनी पाछळ थतां खर्चनो हिसाब करतां लगभग बे लाख (२००,०००) रु. नो अडसट्टो आवे छे.

आटली मोटी रकम एकी वखते उत्पन्न करी शकाय एवा नजीकमां संजोगो देखाता नथी. आ उपरथी कोइ वहेवारु पद्धतिए काम करवानो विचार थयो; एटले के, जो कोई सारी रकम कामना आरंभ माटे मळी आवे, तो पछी ते द्वाराए आगमो, उपर कही ते योजनापूर्वक बहार पाडी क्रयविक्रयना नियमानुसार काम लइ तेमांथी ने तेमांथी अनुक्रमे आगमोनुं प्रकाशन थतुं जाय.

सारी रकम प्रथम केवी होवी जोइए तेनो ख्याल करीए. दृष्टांत तरिके श्री भगवती सूत्र, मूळ गाथा तेनुं भाषान्तर, संस्कृत टीका अने तेनुं भाषान्तर करावी. छेल्लामां छेल्ली पद्धतिओ प्रमाणे छपावी बहार पाडीए, तो लगभग रु. २५,००० नो खर्च थवा जाय छे. एक वखत आ सूत्रजी बहार पाड्या पछी विक्रय थाय तो ते नाणां पाछां वसुल थइ बीजुं सूत्र छपाय, अने एम अनुक्रमे ४५ आगमो बहार पडी शके.

आवी सुंदर रकम पण आरंभने माटे होवी जोइए. पछी जेम एक कुशळ व्यापार खेडनारना हाथमां पचीश हजारनी मूडी मूक-

वामां आवे अने ते पोतानी व्यापारी कळाथी एक लाख रुपियानो व्यापार करी शके छे, तेम आ कामने माटे पण थई शके; परंतु तेवी रकम तो प्रारंभने माटे जोइए.

जणावतां आनंद थाय छे के, स्व. श्रीमद् रायचंद्रना एक प्रशंसक अमदावादनिवासी भाइ पुंजाभाई हीराचंदे एवी इच्छा जणावी छे के, जो आ काम पार पडी शके तेवी व्यापारी पद्धति उपर व्यवहारु योजना तेओने बतावबामां आवशे तो तेओ तरफथी कार्य आरंभ माटे एक सारी रकम धीरवामां आवशे.

आ उपरथी नीचे प्रमाणे गोठवण करवानुं धारवामां आव्युं:

(१) संभावित गृहस्थोनी देखरेख तळे जिनागमप्रकाशकसभा (जिनागम प्रसिद्ध करनारी संस्था) नामक एक खातुं उभुं करवुं.

(२) आ सभाए पीस्ताळीसे जिनागम मूळ टीका अने ते बन्नेना भाषान्तर सहित अनुक्रमे बहार पाडवां, अने तेने "श्री रायचंद्र-जिनागमसंग्रह" एवुं नाम आपवुं.

(३) सूत्रोनुं संशोधन कार्य तथा अनुवादनुं कार्य संस्कृत अने गुजराती भाषाना विद्वानो पासे कराववुं; अने ते विद्वानोना कार्यने जोवा माटे एक प्रतिष्ठित विद्वानने मुख्य अधिपति तरिके योजवा. जेवी रीते मर्हुम प्रोफेसर मेक्समूलरना नामथी *Sacred Books of the East* नी श्रेणी बहार पडी तेमां मुख्य अधिपति तरीके प्रोफेसर मेक्समूलर हता; अने अकेक ग्रंथोनुं कार्य करवा माटे भिन्न भिन्न विद्वान् व्यक्तिओ हती. युनिवर्सिटीना पदवीधर विद्वानो तेमज प्रतिष्ठित पंडितो आ संशोधन अने अनुवादनुं कार्य करशे. अने तेना उपर युनिवर्सिटीना प्रथम पंक्तिना एक विद्वान् पुरुषनुं मुख्य आधिपत्य रहेशे.

(४) जो जैनमुनि महाशयो रसपूर्वक आ कार्य पार पाडवा तेओनी पवित्र फरज समजशे तो ते तेओनी सहायता पण घणा उत्साहपूर्वक स्वीकारवामां आवशे.

(५) प्रत्येक सूत्र, विलायतमां छपाता पुस्तकोनी पेठे सुंदरमां सुंदर रीते छपाववां, अने तेना बाईन्डींग (पुंठानी बंधामणी) पण एवी सरस करवी के एक 'सेट' तरीके पुस्तकालयमां शोभा आपे.

(६) आखा हींदने अनुकूळ पडे तेटला माटे उत्तममां उत्तम मरोडना बालबोध टाईप वापरवा.

(७) अकेक सूत्रनी एवा प्रकारनी कींमत राखवी के जेथी वांचकवर्गने लेतां हर्ष थाय, अने मूळ मुडीने हानि न पहोंचे. आवी रीते विक्रय थतां जे नाणां वसुल थाय ते पाछां बीजां सूत्र छपाववा पाछळ रोकवा, अने ए प्रमाणे एक पछी एक बहार पडे जाय.

किम्मत केवा प्रकारनी राखनी ते आ उपरथी जोइ शकाशेः दृष्टांत तरिके "श्री भगवतीजी सूत्र" नुं अनुवाद करी बहार पडतां हिसाबनी गणत्री अनुसार लगभग ६०० फॉर्म्स पृष्ठ पांच हजार थवा जाय छे. तेना पांच भाग करीए तो अकेक हजार पृष्ठना एक भागनी रु. ६ नी कींमत सामान्य गणाबी जोइए. अत्रे जणाववुं आवश्यक थइ पडशे के, राय बहादूर धनपतिसिंहजीना संग्रहमां आ सूत्रनी किम्मत रु. १००) राखवामां आवी हती. जो के तेमां टीकानुं भाषान्तर नहोतु. आ योजनाद्वाराए श्री भगवतीजीनी एकंदर कींमत मात्र रु. ३०-०-० नी थाय. उपरांतमां कागळ, छपाई, पुटां, भाषांतर अने शुद्धि अनेकगणां कीमती थशे.

अमे आ योजनां हाथ धरवा अगाउ, समाज तेनो केवो सत्कार करशे ते जाणावा इच्छीए छीए, अने तेथीज श्री भगवतीजीना अगाउथी केटला ग्राहको थशे, अथवा अकेक भागना केटला ग्राहको थशे ते जाणवाना हेतुथी आ जोडे ग्राहक थनार माटे यादी-फॉर्म मोकलीए छीए.

जो अमने जणाशे के आ काम आरंभवाने माटे उत्साह आपनारी ग्राहक संख्या थशे, तो योजनाने अमलमां मूकवा माटे आरंभ थशे.

अंतमां जणाववानु के, भाइ पुंजाभाई हीराचंदे, जे समये आ योजना सत्कार पामे तो तेने अंगे उपर बताव्या प्रमाणेनी उदारता बतावबा इच्छ्युं छे ते समय जैनसाहित्यप्रकाशनना इतिहासमां सर्वथी विशेष अगत्यनो गणावा योग्य छे. अत्यारसुधी जिनागमनुं शुद्ध प्रकाशन बे कारणोथी यथायोग्य प्रगति पाम्युं नहोतुं. एक तो आपणामां विद्याविषयक खीलवणी बहु ओछी हती, अने बीजुं-आपणामां रुढिबद्ध एवा संस्कारो उतरी आव्या हता के, आगमप्रकाशन थाय नहीं. विद्याविषयक खीलवणीना कारणे आ रुढिबद्ध संस्कारो आपणामांथी घणा ओछा थया छे, परंतु सर्वथा ते गया नथी. जे गतिपूर्वक विद्याविषयक खीलवणी देशमां थती चाली छे ते गतिपूर्वक चालु रहे, तो ओछामां ओछा पचीश वर्ष आ रुढिबद्ध संस्कारो सर्वथा जवाने जोइए. आ प्रकारे २५ वर्ष सुधी राह जोतां, आवा कार्यनी सामे एक मोटो भय आवी उभो रहे तेम छे. धर्मचुस्त वर्गनी एक एवी फर्याद चालु थइ छे के; पश्चिम भणीनी केळवणीथी तरुण जमानो निवृत्ति मार्ग करतां प्रवृत्ति मार्गे विशेष वध्यो जाय छे. जे गतिए ते वध्यो जतो मानवामां आवे छे ते गतिनी गणत्री ध्यानमां लेतां, पचीश वर्ष पछी हमणां करतां बहुपणे प्रवृत्ति मार्गे शुं चढी न जाय? अने चढी जाय तो रुढिबद्ध संस्कारो सर्वथा जाय, त्यां आ

नवो भय आ महान् कामनी सामे आवीने उभो रहेवा शुं संभव नथी ! आ दृष्टि लेतां, अत्यारनो समयज आ कार्यने अंगे सर्वथी सारो छे, कारण के पश्चिम भणीनी केळवणी पामेलो वर्ग हजु निवृत्ति अने प्रवृत्ति मार्गना संस्कारोनी मध्य स्थितिमां छे.

आ उपरथी आशा राखवी स्थाने छे के, धर्मचुस्त मुनि अने गृहस्थ वर्ग, उपर दर्शावेलो जोखम २५ वर्ष पछी आवी उभो न रहे तेटला माटे, आगमप्रसिद्धिना कार्यने तरतज गति आपवाने पोताथी बनतुं सघळुं करी भाइ पुंजाभाईना उल्लासनो लाभ समाजने अपाववानी पोतानी पूर्ण फरज समजशे.

आ योजना अमलमां मूकी शकावा योग्य छे के नहीं तेनो निर्धार तरतमां थवो जोइए, केमके तेवो निर्धार थया पछीज योजनाने माटे सघळा प्रकारनां साधनो एकत्र थइ शके. आ पर्यूषणपर्व सुधीमां तेवो निर्धार थइ जवा माटे अमे जाहेर करवा रजा लइए छीए के संवत् १९६९ ना भादरवा शुद १५ सुधीमां श्रीभगवतीजी सूत्रना उपर जणावेली कींमते केटला ग्राहको थाय छे ते उपर आधार राखी योजना अमलमां मूकवी के नहीं तेनो छेवटनो निर्णय करवामां आवशे. जो आशाजनक संख्या ग्राहकोनी थशे, तो तरतमां योजना, अमलमां मूकवामां आवशे. जो ग्राहक संख्या एवी थशे के, आ भगीरथ कार्य एक साहसरूपे पण करवा जेवुं जणाशे, तो भादरवा शुद १५ पछी थनार पासेथी आ सूत्रनी किम्मत रु. ४५–०–० लेवामां आवशे.

आ योजनाने समाज तरफथी सत्कार मळतां तदनुसार 'भगवतीजी' नो आ प्रथम खंड बहार पडे छे.

श्रीजिनागमप्रकाशक सभा.
माणेकचोक अमदावाद.
तथा
१०७ धनजी स्ट्रीट मुंबई.

मनसुखलाल रवजीभाई मेहता.
जिनागमप्रकाशक सभाना
मानद कार्यभारी.

"यस्मिन् कस्मिन् पुरुषे यावतांऽशेन वीतरागता संभवति, तावतांऽशेन तस्य पुरुषस्य वाक्यं माननीयं स्यात्."

"सर्वेभ्यो वीतरागवचनं संपूर्णतया प्रतीतिपात्रं कथयितुं समुचितम्, यतो यत्र रागादिदोषाणां संपूर्णः क्षयः स्यात् तत्र"

"संपूर्णज्ञानस्वभावप्रकटनोचितनियमो घटते—श्रीजिने या वीतरागता सा सर्वेभ्योऽतिरिच्यते, तेषां वचनं प्रत्यक्षं प्रमाणं ततः."

धर्मोत्पत्तिमूलकारणम् ।

शारीरिकाद्यनन्तप्रकारैर्दुःखैर्व्याप्ता अत एव विह्वला जीवास्तानि त्यक्तुमिच्छवोऽपि न त्यक्तुं शक्नुवन्ति. किमस्य कारणम्? एतादृशं प्रश्नं नैके पुरुषाः समुत्पादयन्ति, परन्तु तं समाधातुं तु कश्चिद् विरल एव शक्नोति. यावच्च यथार्थतया दुःखमूलमेव न ज्ञातम्, तावत् कृतेऽपि तत्क्षयोपाये न तद् विनश्यति, किन्तु दुःखं प्रति आकण्ठं चाप्रियतायाम्, अभावुकतायां सत्यामपि तद् अनुभवनीयमेव. विपरीतोपायैर्दुःखं नाशयितुं प्रयतमाने जने, तन्नाशार्थं च असह्यपरिश्रमपूर्वकं कृतेऽपि प्रयत्ने यदि न तद् नश्येत् तदा मुमुक्षुरत्यन्तं व्यामुह्यति, अथवा स मुमुक्षुः पुनः पुनरेवं चिन्तयति—यत् किमेतत्? कथं नेदं दुःखं टलति? केनाऽपि प्रकारेण न तद् ममेष्टम्, स्वप्नेऽपि न तत् प्रति वृत्तिलवः, तथापि तत् प्राप्यते, अहं च यान् प्रयत्नान् तन्नाशाय करोमि, ते सर्वेऽपि केवलं विफला भवन्ति इति न, किन्तु अहं दुःखमेव अनुभवामि; किमेतत्? किमस्य कारणम्? किं न नाशार्हं दुःखम्? किं दुःखानुभूतिरेव जीवस्वभावः? किमस्ति कश्चिद् जगतः कर्ता? किं तेनैवमेव कर्तुमुचितं गणितम्? किं वैषा वृत्तिः भवितव्याधीना? किमथवा केषांचिद् मत्कृतापराधानामेवेदं फलम्? इत्येवंप्रकारान् अनेकान् विकल्पान् ते प्राणिनः कुर्वन्ति, ये सन्ति देह—मनोधारिणः. ये तु देहिनोऽपि मनोरहितास्ते प्राणिनः अव्यक्तं दुःखम् अनुभवन्ति, इच्छन्ति च अव्यक्ततया यदेतद् अस्मदीयं दुःखं केनाऽपि प्रकारेण प्रणश्येत्. अस्मिन् जगति सर्वे शरीरिणः व्यक्तं वाऽव्यक्तं तदेव समाकाङ्क्षन्ति यत् केनाऽपि प्रकारेण दुःखं संनश्येत्, कयाऽपि रीत्या नाहं दुःखमनुभवेयम्, सर्वथा सुखभागेव स्याम्, तेषां प्रयत्नोऽपि तदर्थमेव, एवं सत्यपि कथं न नश्यति तद् दुःखम्? एतादृशः प्रश्नो बहूनां विचारवतां मनसि पूर्वकाले समभूत्, वर्तमानेऽपि भवति, भविष्यत्यपि तादृशविचारवन्तो भविष्यन्ति. तेषु अनन्ताऽनन्तविचारवत्सु अनन्ता विचारवन्तः पूर्वोक्तप्रश्नसमाधानं प्राप्तवन्तः, मुक्ताश्च दुःखेभ्यः, वर्तमानेऽपि ये ये विचारवन्तस्तथ्यं समाधानं प्राप्तवन्तस्तेऽपि तथारूपं फलं प्राप्नुवन्ति, भविष्यति चापि ये ये विचारवन्तो यथार्थं समाधानं संप्राप्स्यन्ति ते ते तथारूपं फलं प्राप्स्यन्ति, नात्र संशयावकाशः.

केवलमौषधेनैव यदि शरीरदुःखं नश्येत्, धनादिप्राप्त्या मनोदुःखनाशो भवेत्, वा बाह्यसंसर्गजं दुःखं मनसि न किमपि प्रभावं विदध्यात् तदा दुःखनाशाय ये ये प्रयत्नाः क्रियन्ते, तेषां जीवानां ते ते सफलाः स्युः. किन्तु नैतादृग् भवत् कैरपि दृष्टम्, तदैव विचारवतां मनसि प्रश्नः समुत्पन्नः यद् दुःखनाशाय अन्य एव उपायः स्यात्, योऽयं तदर्थं क्रियते प्रयत्नः स तु अयथार्थ एव, एवमेव प्रवृत्तौ तु सर्वः श्रमो व्यर्थ एव, अतो यदि दुःखस्य मूलकारणं यथार्थतया ज्ञायेत, तदनुसारेण च उपायविधिर्भवेत् तदा दुःखं विनश्येत्, नान्यथा. यथार्थतया दुःखमूलकारणजिज्ञासोत्कण्ठिता अपि केचिदेव विचारशीलाः तद्विषयं सत्यं समाधानं प्राप्ताः, केचित् तु यथार्थं समाधानम् अप्राप्नुवन्तो मतिव्यामोहादिना आत्मानं यथार्थसमाधानप्रापकं मन्यमानास्तदनुसारेण उपदेष्टुं प्रवृत्ताः, लोका अपि बहव तदुपदेशानुसारेण प्रवृत्तिं विधातुं लग्नाः. जगति यदेतानि धर्मविषये भिन्नभिन्नमतान्तराणि दृश्यन्ते, तेषां सर्वेषामिदमेव मुख्यमूलम्. "धर्माद् दुःखं विनश्येत्" एतादृशः सिद्धान्तो बहूनां विचारवतां संजातः, परन्तु तेषां धर्मस्वरूपसंज्ञाने परस्परमधिको भेदः समजनि, केचित् तु स्वीयाद् मूलविषयाद् भ्रंशं प्राप्ताः, पुनश्च केऽपि तद्विषये मतिमोहाद् विविधतया नास्तिकादिपरिणामं गताः.

वीतरागवचनाऽभिप्रायः ।

किमस्ति दुःखम्? कानि च दुःखमूलकारणानि? तानि च कथं नश्येयुः? तत्संबन्धे जिनैर्वीतरागैर्यद् मतं दर्शितम् तत्,— श्रीमतो वर्धमानजिनस्य—वर्तमानकाले अन्तिमतीर्थंकरदेवस्य—शिक्षयाऽधुना मोक्षमार्गोऽस्तित्वं धरिवर्ति, एतच्चात्र संक्षेपेणोच्यते:—

"सर्वे जीवाः सुखं समिच्छन्ति, दुःखं तु सर्वेषामप्रियम्, दुःखाद् मुक्ता भवितुं सर्वे जीवा वाञ्छन्ति, तत्स्वरूपस्य यथार्थतयाऽ-

ज्ञानात् तद् दुःखं न नश्यति. तद्दुःखात्यन्तिकाभावं मोक्षमाचक्ष्महे. अत्यन्तवीतरागतामसंप्राप्य न भवेद् आत्यन्तिको मोक्षः, सम्यग्ज्ञान मन्तरा वीतरागता प्राप्तुमशक्या, सम्यग्दर्शनं विना ज्ञानमपि असम्यगुच्यते, येन स्वभावेन वस्तुनः स्वरूपम्, तेनैव स्वभावेन वस्तु ज्ञानं सम्यग्ज्ञानमुच्यते. सम्यग्दर्शनेन, सम्यग्ज्ञानेन च प्रतीतमात्मभावमनुसृत्य यद् वर्तनं तच्चारित्र्यमुच्यते. एषां त्रयाणाम् [सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन–सम्यक्चारित्राणाम्] एकतया जायते मोक्षमार्गः. जीवः स्वाभाविकः, जीवाश्चानन्ताः, परमाणवोऽप्यनन्ताः, जीव–पुद्गलयोरना दिकः संयोगः, [परमाणूनां समूहः पुद्गलः] यावच्च जीवः पुद्गलेन संबद्धस्तावत् स सकर्मोच्यते, जीवो भावकर्मणां विधाता, भावकर्मण मपरं नाम विभावः, भावकर्मप्रभावेण जीवः पुद्गलराशिं संचिनोति, तत एव तैजसादिशरीरसंबन्धः, औदारिकादिशरीरसंबन्धश्च संजायते. यदि जीवो भावकर्मतो विमुखो जायेत तदा निजभावपरिणामी भवेत्. विना सम्यग्दर्शनं वास्तवेन भावकर्मतो जीवो विमुखीभवितुं न शक्नोति जिनवचनाद् या तत्त्वार्थे प्रतीतिः, सैव सम्यग्दर्शने मुख्यं साधनम्.

समुपदर्शिता इमे उपायाः—सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्रादयः, अथवा एषां त्रयाणां यदेकं नाम सम्यग्मोक्षः. सम्यग्दर्शना दिषु 'सम्यग्दर्शनमेव मुख्यम्' एवं रीत्या नैकस्थलेषु श्रीवीतरागैः प्ररूपितम्. यद्यपि सम्यग्ज्ञानादेव सम्यग्दर्शनमपि अवलक्ष्यते, तथापि स म्यग्दर्शनप्राप्तिरहितं ज्ञानं संसारस्य–दुःखस्य–कारणमिति मत्वा मुख्यतया सम्यग्दर्शनमेव गृहीतम्. यथा यथा सम्यग्दर्शनं शुद्धं संजायते तथा तथा सम्यक्चारित्रं प्रति वीर्यं समुल्लसति. एवं क्रमेण सम्यक्चारित्रावाप्तिसमयो नैकट्यमेव प्राप्नोति, तत एव चात्मनि स्थिरः स्वभाव सिध्यति, क्रमाच्च पूर्णतया स्थिरता प्राकट्यं प्राप्नोति, तत आत्मा निजपदे लीनो भूत्वा सर्वकर्मकलङ्करहितः शुद्धात्मस्वभावैकरूपे मोक्षे परमाऽव्याबाधसुखानुभवसमुद्रे च स्थितो भवति. यथा सम्यग्दर्शनप्राप्त्या ज्ञानं सम्यक्त्वभावं प्राप्नोति, एषः सम्यग्दर्शनस्य परमोपकारः तथा सम्यग्दर्शनं क्रमेण शुद्धं सत् पूर्णत्वेन यत् स्थिरतारूपं चारित्र्यं प्राप्नोति, तदर्थं तत् सम्यग्ज्ञानसामर्थ्यं समपेक्षते.

वीतरागशास्त्राणि।

सम्यग्ज्ञानप्राप्तावुपायभूतं वीतरागश्रुतम्, तत्तत्त्वोपदेष्टा महात्मा च. वीतरागश्रुतपरमरहस्यज्ञाता, असङ्गः, परमकरुणाशीलो महात्मा अत्यन्तं दुर्लभः, महाभाग्येनैव तद्योगः प्राप्यते तदसंशयम्. ईदृशमहात्मनां योगो दुर्लभतमः, यदा सुषमे देशे, कालेऽपि एतादृशम-हात्मनो योगो दुर्लभः, तदा दुःषमे काले स दुर्लभः स्यादेव, तत्र किं केन वक्तव्यम्. यद्यपि तादृशमहात्मनां योगः कश्चिदेव-लभ्यते, तथाऽपि यदि शुद्धवृत्तियुतो मुमुक्षुः स्यात् तदैव स तादृशपुरुषस्य मौहूर्तिकेऽपि समागमे अप्राप्तपूर्वं गुणं प्राप्नोति. येषां महात्मनां वचन-प्रभावाद् मुहूर्तमात्रेऽपि काले चक्रवर्तिनोऽपि राजानः स्वीयं राज्य–विभवादिकं परित्यज्य भयंकरे वने तपश्चर्यामाचरितुं संचरिताः, तेषां महा-त्मनां योगेन कथं नाऽपूर्वा गुणप्राप्तिर्भवेत्? सुषमे देशे, कालेऽपि कश्चिदेव तादृशां महात्मनां योगो जायेत, यतस्ते अप्रतिबद्धविहारिणो भवन्ति. कश्चिद् मुमुक्षुरेवमभिलषेद् यद् एवंप्रकाराणां महात्मनां निरन्तरः समागमः कथं स्यात्? यतो मुमुक्षवो मानवा दुःखक्षयेऽनन्यकारणभूतान् तान् पूर्णत्वेन समुपासीरन्. तद्विषयो मार्गः श्रीजिनेन भगवता एवमवलोकितः—नित्यं तत्समागमे आज्ञाधीनत्वेन वर्तनीयम्, तदर्थं च बाह्यान्तरपरिग्रहादिः त्याज्यः, ये तु तं [परिग्रहादिकम्] सर्वथा परित्यक्तुं न शक्तास्तैर्देशतस्तत्त्यागपूर्वकमेवं वर्तनीयम्. तेषां महात्मनां गुणातिशयत्वेन, सम्यगाचरणात्, परमज्ञानात्, परमशान्तेः, परमनिवृत्तेश्च मुमुक्षुजीवस्य अशुभवृत्तयः परावृत्ताः सत्यः शुभस्वभावं प्राप्य स्वरूपं प्रति वलन्ति. तेषां पुरुषाणां वचनानि आगमस्वरूपाणि, तदपि पुनः पुनः स्ववचनयोगाऽप्रवृत्तेः, निरन्तरं समागमयोगाभावात्, तद्वचनयथास्थितस्मरणविरहात्, केषांचिद् भावानां स्वरूपज्ञाने परावर्तनज्ञानापेक्षणात्, अनुप्रेक्षाबलवृद्ध्यर्थं च वीतरागश्रुतम्—वीतरा-गशास्त्रम्–बलवदेकम् उपकारकारकं साधनम्. यद्यपि तादृशमहापुरुषयोगेनैव प्रथमं तद्रहस्यं ज्ञानीयम्, पश्चाद् दृष्टौ विशुद्धायां सत्यां महात्मसमागमविरहेऽपि तत् श्रुतं बलवदुपकारकारकम्. अथवा यत्र केवलं तादृशां महात्मनां योगो भवितुमशक्यः, तत्रापि विशुद्धदृष्टिमतां वीतरागश्रुतं परमोपकारं करोति. तदर्थं चैव महापुरुषैरेकश्लोकाद् आरभ्य आद्वादशाङ्गं श्रुतप्रणयनमकारि. तद्द्वादशाङ्गस्य मूलतः उप-देष्टा श्रीसर्वज्ञो वीतरागः, यस्य स्वरूपं महात्मानो निरन्तरं ध्यायन्ति, स्वप्रतीत्या च तत्पदप्राप्तिमेव सर्वस्वप्राप्तिम् अनुभवन्ति. सर्वज्ञवचनानि संप्रधार्य महाचार्यैः तद् द्वादशाङ्गं न्यबन्धि, तदाऽऽश्रितैरपरैराज्ञाङ्कितैर्महात्मभिः इतराण्यनेकशास्त्राणि संरचितानि. द्वादशाङ्गनामानि चैवम्:—आचार–अङ्गम्, सूत्रकृत–अङ्गम्, स्थान–अङ्गम्, समवाय–अङ्गम्, व्याख्याप्रज्ञप्ति–भगवती–अङ्गम्, ज्ञाताधर्मकथा–अङ्गम्, उपासकद-शा–अङ्गम्, अन्तकृद्दशा–अङ्गम्, अनुत्तरौपपातिकदशा–अङ्गम्, प्रश्नव्याकरण–अङ्गम्, विपाक–अङ्गम्, दृष्टिवाद–अङ्गम्.

वीतरागशास्त्रं प्रति श्वेताम्बर-दिगम्बरौ।

तेभ्यः श्रीआचारादिशास्त्रेभ्यः कालदोषादनेकानि स्थलानि विसर्जनतां प्राप्तानि, अवशिष्टानि चाल्पानि स्थलानि; यानि चाल्पस्थलानि अवशि-ष्टानि तानि 'एकादशाङ्ग' इति संज्ञया श्वेताम्बरेषु प्रतीतानि. तन्मतं दिगम्बरैर्नानुमतम्. जिनदर्शने मुख्यतया श्वेताम्बर-दिग-म्बरनाम्ना भेदद्वयं प्रसिद्धम्. विसंवादापेक्षया, मताग्रहदृष्ट्या च तद् भेदद्वयं केवलं भिन्नभिन्नमार्गद्वयमिव दृश्यते. मतदृष्ट्या तु तदवलोकने तयोर्भेदयोर्महदन्तरम्. तत्त्वदृष्ट्या जिनदर्शने मुख्यतया तादृशो विशेषभेदः परोक्षः, दीर्घदृष्ट्या तत्संप्रे-क्षणे तयोर्द्वयोः भिन्नान्येव कारणानि दृश्यन्ते, विवादसंबन्धीनि बहूनि स्थलानि तु अप्रयोजनायमानान्येव तयोः, तान्यपि च परोक्षाणि. यानि च प्रत्यक्षकार्यभिन्नानि, न तेषु तादृशो भेदः, ततः संप्रदायद्वये उत्पद्यमाना गुणवन्तो जनाः सम्यग्दृष्ट्या पश्यन्ति, तथा च प्रवर्तन्ते यथा तत्त्वप्रतीतावन्तरायाऽल्पता भवेत्. यत् किञ्चिदस्तु, परन्तु तद्भेदद्वयमत्यन्तं सांनिध्यमागच्छति. "मोक्षमार्गप्रकाश" नामके दैगम्बरे ग्रन्थे वर्तमा-

नजिनागमाः, ये श्वेताम्बरसंप्रदायसंमान्याः, ते निषिद्धाः, किन्तु न तन्निषेधः समुचितः, इतरदर्शनग्रन्थेष्विव वर्तमानागमेषु अमुकानि स्थलानि अधिकतया संदिग्धानीवावभासन्ते, तथाऽपि सत्पुरुषदृष्ट्या संप्रेक्षणे समस्ति तन्निर्णयः. ततः उपशमदृष्ट्या तदागमावलोकने न कार्यः संशयः.

वीतरागश्रुतक-जिनागमस्य-माहात्म्यम् ।

श्रीजिनागमा उपशमस्वरूपाः, उपशमस्वरूपैरेव पुरुषैरुपशमार्थमेते प्ररूपिताः—उपदिष्टाः, स समुपशम आत्मार्थम्, नान्यप्रयोजनाय, सूत्राणि (जिनागमाः), तदनुसारेण च प्राचीनाचार्यैः रचितानि अन्यान्यपि बहूनि शास्त्राणि सन्ति विद्यमानानि, सुविहितपुरुषैस्तु तानि हितावहमत्यैव विरचितानि, कैश्चिदपि मतवादिभिः, हठाग्रहिभिः, शैथिल्यपोषकैश्च पुरुषैः संकलितानि कानिचित् पुस्तकानि सूत्रेभ्यः, जिनाचारेभ्यो वा भिन्नानि, प्रयोजनमर्यादाबाह्यानि च ज्ञायेरन्, तेषां पुस्तकानामुदाहरणात् प्राचीनसुविहिताचार्यवचनोत्थापनप्रयत्नो न भवभीरुभिर्महात्मभिर्विधीयते. परन्तु ततो भवति उपकार इति ज्ञात्वा तद्रक्षमाणं कुर्वद्भिर्यथोचितं तानि सदुपयोगतया गृह्यन्ते.

येन मतभेदेनाऽयं जीवो गृहीतः, स एव मतभेदः तत्स्वरूपमावृणोति—वीतरागपुरुषस्य समागममन्तरा, तदुपासनां विना चास्मिन् जीवे कथं समुत्पद्येत मुमुक्षुता ? कुतः स्यात् सम्यग्ज्ञानम् ? कथं भवेत् सम्यग्दर्शनम् ? केन प्रकारेण चाऽऽविःस्यात् सम्यक्चारित्रम् ? तानि त्रीणि वस्तूनि नान्यत्र संभवन्ति.

वर्तमाने वीतराग-मार्गदशा ।

वीतरागपुरुषाभावप्रायो वर्तमानः समयः, [जिनमार्गे] आश्चर्यकरा भेदाः, [स मार्गः] खण्डितः, [तम्] संपूरयितुं दुर्गमं साधनं दृश्यते, [तस्य] प्रभावे महानन्तरायः समस्ति, [तदर्थम्] च देश–कालादयः बहुप्रतिकूलाः वर्तन्ते, वीतरागमतं लोकप्रतिकूलं गंजालम्, ये लोका वीतरागमतानुयायिनः, तेऽपि न तत्प्रत्ययं स्वलक्ष्ये लक्षयन्ति, अथवा—अन्यमतमेव वीतरागमतं मत्वा ते सन्ति धर्मकरणे धावमानाः, यथार्थतया वीतरागमतज्ञानयोग्यता न तेषु लोकेषु लोक्यते, दृष्टिरागस्य प्रबलं साम्राज्यं समस्ति, वेषादिव्यवहारे विटम्बनां कृत्वा मोक्षमार्गे अन्तरायं विदधाना. समुपविष्टाः संसन्ति. तुच्छा, दीनाः, विराधकवृत्तियुक्ताश्च पुरुषा अग्रेसरा वर्तन्ते, यदि किमपि तथ्यं सत्यं बहिराविःस्यात् तदा ते प्राणघातजमिव दुःखं समनुभवन्ति इति विलोक्यते.

श्रुतज्ञानम्–जिनागमरूपसाधन-शक्तिः ।

वीतरागपदं पुनः पुनः संविचारणीयम्, समुपासनीयम्, ध्येयं च. कालदोषाद् अपारश्रुतसागरस्य बहुलो भागो विसृष्टः, अवशिष्टं च वर्तमाने बिन्दुमात्रम्, अल्पमात्रं वा; बहुस्थलेषु च स्थूलनिरूपणापारिशेष्यादेव न लभते इदानीन्तनो जनो निर्ग्रन्थभगवदुक्तश्रुतस्य पूर्णं लाभमस्मिन् क्षेत्रे, स एव हेतुर्मतमतान्तरोत्पत्तौ, तत एव च निर्मलात्मतत्त्वाभ्यासिनां महात्मनां संजाता अल्पता, अल्पतां प्राप्ते श्रुतज्ञाने बहुषु उत्पन्नेषु मतमतान्तरेषु, समाधानसाधनेषु परोक्षेष्वपि च 'सम्यग्दर्शनम्–श्रुतरहस्यम्' ईदृशो ह्यात्मानुभवहेतुर्मोक्षमार्गः—सम्यक्चारित्रम्, विशुद्धध्यानं चाद्यापि विद्यते, तत् किल परमहर्षकारणम्.

श्रीजिनपरिभाषा ।

श्रीजिनेन कथिता भावा अध्यात्मपरिभाषाभूषिताः समवभासन्ते, अत एव ते दुःसंज्ञानाः, (तद्वेदनार्थम्) परमपुरुषस्य योगः संप्राप्यः–जिनपरिभाषाविषयको विचारो यथावकाशं विशेषतो निदिध्यासितव्यः, भगवता जिनेन कथितो लोकसंस्थानादिर्भावो, ऽध्यात्मपरिभाषया साधयितुं शक्यः, चक्रवर्त्यादिस्वरूपमपि तथाविधम्, मनुष्योच्चताप्रमाणाद्यपि तथाप्रकारम्, कालप्रमाणादिष्वपि तथाविधतैव घटामटति, निगोदादिस्वरूपमपि न तथाप्रकारतामतिक्रामति, सिद्धस्वरूपमपि तेनैव प्रकारेण निदिध्यासनीयम्–संप्रापणीयम्, 'लोक'–शब्दार्थः, 'अनेकान्त'–शब्दार्थश्च आध्यात्मिकः. 'सर्वज्ञ'–शब्दसंज्ञानं बहुगूढम्, धर्मकथारूपाणि चरित्राणि आध्यात्मिकपरिभाषया परिभूषितानि, जम्बुद्वीपादिवर्णनमपि तथाप्रकारमेव.

भगवतीवर्णनानि ।

भगवतीप्रभृतिसिद्धान्तेषु यत् किमपि जीवानां भवान्तरवर्णनमकारि, न तत्र किमपि संशयनीयम्, तीर्थंकरास्तु पूर्णात्मस्वरूपाः, परन्तु ये पुरुषाः केवलं योग–ध्यानादिसमभ्यासबलात् स्थिताः, तेष्वपि कियन्तः पुरुषा. तानि भवान्तराणि ज्ञातुं शक्नुवन्ति एवं च यद् भवति न तत्र काऽपि कल्पितप्रकारता, यस्य पुरुषस्य आत्मनो निश्चयात्मकं ज्ञानम्, स भवान्तरज्ञानी भवितुमर्हति, कश्चिच्च ज्ञानतारतम्येन क्षयोपशमभेदाद् न तथा भवितुमर्हति, किन्तु यो जनः आत्मानं पूर्णतया, शुद्धतया च अनुभवति स तु तद् ज्ञानं (भवान्तरज्ञानम्) जानातीति सुनिर्णीतम्.

'आत्मा नित्यः, अनुभवरूपः, वस्तुरूपश्च' इत्यादि संस्कारदृढीकरणार्थं शास्त्रेषु ते ते प्रसङ्गाः समुपवर्णिताः, यदि कोऽपि स्पष्टतया न स्याद् भवान्तरज्ञानी तदा तु कोऽपि आत्मज्ञान्यपि न भवेदिति वक्तव्यं स्यात्. किन्तु तथा तु नास्ति, यतः—आत्मज्ञानं जायते स्पष्टतया, तत एव च भवान्तरज्ञानमपि स्पष्टतयैवावभासते यस्य कस्याऽपि ज्ञानिनः. स्वीयपरकीयभावसंज्ञानज्ञानं नैव केनाऽपि प्रकारेण विसंवादं प्राप्नोति.

—श्रीमद्राजचन्द्रः.

श्रीमद्राजचन्द्रात् श्रीजिनागमविषयकमिदं शिक्षणमस्माभिर्लब्धम्, अहम्मदावादनिवासिने श्रीमते हीराभाइ–सूनुश्रीपुंजाभाइनाम्ने स्वस्नेहिने श्रीमद्राजचन्द्रः। तेषामियमाज्ञाऽऽसीद् यद् द्रव्यव्ययो ज्ञानोद्धाराय कार्यः, तदाज्ञानुसारेण श्रीपुंजाभाइनाम्ना ज्ञानरसिकेन धनिना अकाले कालेन कवलितस्य स्वैकतरुणपुत्रश्रीकचराभाइनाम्नः संस्मरणार्थं श्रीजिनागमप्रकटनयोजना कारिता, यत्र सर्वतः प्रथमं श्रीमत्सुधर्मस्वामिसंकलितं श्रीभगवतीसूत्रमिदं प्रथमखण्डरूपेण संमुद्र्य प्रकाश्यते. एतच्च भगवतीसूत्रप्रथमखण्डं न्यायतीर्थ–व्याकरण–तीर्थेतिपदवीद्वयधारिणा पण्डितवर्येण श्रीजीवराजतनुजन्मना बेचरदासेन अनुवादितम्, स्थले स्थले मूल–टीकागतप्राकृतच्छाया–टिप्पणादिभिश्च संटिप्पितम्, संशोधितं च. आसीदिच्छा यद् एका आलोचनायुक्ता ऐतिहासिकी, शास्त्रसंमता च प्रस्तावनाऽनेन खण्डेन सहैव प्राकट्यं प्राप्नुयात्; परम् अत्रार्थेऽधिककालाऽपेक्षा इति अतः परं प्रकटयितुं चिकीर्षितम्. अत्राऽस्माभिरस्माकं सर्वाः शक्तयः असंकुचितं नियोज्य इदं पुस्तकं यथोत्तमं स्यात् तथा सर्वे प्रयत्नाः कृताः. तदिदं पुस्तकं प्रजाजनप्रेमपात्रीभवतु इति प्रबलत्वेन समाकाङ्क्षन्—

मनसुखलाल रवजीभाइ मेहता.

"जे कोइ पुरुषने जेटले अंशे वीतरागता संभवे छे तेटले अंशे ते पुरुषनुं वाक्य मान्यता योग्य छे."

"सर्व करतां वीतरागना वचनने संपूर्ण प्रतीतिनुं स्थान कहेवुं घटे छे, केमके ज्यां रागादिदोषनो संपूर्ण क्षय होय त्यां संपूर्ण ज्ञान स्वभाव प्रगटवा"
"योग्य नियम घटे छे--श्रीजिनने सर्व करतां उत्कृष्ट वीतरागता संभवे छे. तेमना वचननुं प्रत्यक्ष प्रमाण छे माटे."

धर्मोत्पत्तिनुं मूळकारण--

शारीरिक, मानसिक अनंत प्रकारनां दुःखोए आकुल व्याकुल जीवोने ते दुःखोथी छूटवानी बहु बहु प्रकारे इच्छा छतां तेमांथी मुक्त थइ शकता नथी तेनुं शुं कारण? एवो प्रश्न अनेक जीवोने उत्पन्न थया करे, पण तेनुं यथार्थ समाधान कोइ एक विरल जीवने ज प्राप्त थाय छे. ज्यां सुधी दुःखनुं मूल कारण यथार्थपणे जाणवामां न आव्युं होय त्यां सुधी ते टाळवाने माटे गमे तेवुं प्रयत्न करवामां आवे तोपण दुःखनो क्षय थइ शके नहीं, अने गमे तेटली अप्रियता अने अभाव ते दुःख प्रत्ये होय छतां तेने अनुभव्या ज करवुं पडे. अवास्तविक उपायथी ते दुःख मटाडवानुं प्रयत्न करवामां आवे अने ते प्रयत्न न सहन थइ शके एटला परिश्रमपूर्वक कर्युं होय छतां ते दुःख न मटवाथी दुःख मटाडवा इच्छता मुमुक्षुने अत्यंत व्यामोह थइ आवे छे अथवा थया करे छे के आनुं शुं कारण? आ दुःख केम टळतुं नथी? कोइ पण प्रकारे मारे ते दुःखनी प्राप्ति इच्छित नहीं छतां, स्वप्ने य पण तेना प्रत्ये कांइ पण वृत्ति नहीं छतां तेनी प्राप्ति थया करे छे अने हुं जे प्रयत्न करुं छुं ते ते बधां निष्फळ जइ दुःख अनुभव्या ज करुं छुं एनुं शुं कारण? शुं ए दुःख मटतुं ज नहीं होय? दुःखी थवुं ए ज जीवनो स्वभाव हशे? शुं कोइ एक जगत्कर्ता ईश्वर हशे? तेणे आम ज करवुं योग्य गण्युं हशे? शुं भवितव्यने आधीन ए वात हशे? अथवा कोइ एक मारा करेला अपराधोनुं फल हशे? ए वगेरे अनेक प्रकारना विकल्पो जे जीवो मनसहित देहधारी छे ते कर्या करे छे, अने जे जीवो मनरहित छे ते अव्यक्तपणे दुःखनो अनुभव करे छे, अने अव्यक्तपणे ते दुःख मटे एवी इच्छा राख्या करे छे. आ जगत्ने विषे प्राणी मात्रनी व्यक्त अथवा अव्यक्त इच्छा पण ए ज छे के, कोइ पण प्रकारे मने दुःख न हो अने सर्वथा सुख हो; प्रयत्न पण ए ज अर्थे छे; छतां ते दुःख शामाटे मटतुं नथी? एवो प्रश्न घणा घणा विचारवानोने पण भूत काळे उत्पन्न थयो हतो; वर्तमान काळे पण थाय छे अने भविष्यकाळे पण थशे. ते अनंत अनंत विचारवानोमांथी अनंत विचारवानो तेना यथार्थ समाधानने पाम्या अने ते दुःखथी मुक्त थया. वर्तमानकाळे पण जे जे विचारवानो यथार्थ समाधान पाम्या छे ते पण तथारूप फळने पामे छे अने भविष्यकाळे पण जे जे विचारवानो यथार्थ समाधान पामशे ते ते तथारूप फळने पामशे एमां संशय नथी.

शरीरनुं दुःख मात्र औषध करवाथी मटी जतुं होत, मननुं दुःख धनादि मळवाथी जतुं होत अने बाह्य संसर्गसंबंधनुं दुःख मनने कंइ असर उपजावी शकतुं न होत तो दुःख मटवा माटे जे जे प्रयत्न करवामां आवे छे ते ते सर्व जीवोनुं सफळ थात. पण ज्यारे तेम बनतुं जोवामां न आव्युं त्यारे ज विचारवानोने प्रश्न उत्पन्न थयुं के, दुःख मटवामाटे बीजो ज उपाय होवो जोइए; आ जे करवामां आवे छे ते उपाय अयथार्थ छे अने बधो श्रम वृथा छे माटे ते दुःखनुं मूलकारण जो यथार्थ जाणवामां आवे अने ते ज प्रमाणे उपाय करवामां आवे तो दुःख मटे; नहीं तो नहीं ज मटे. दुःखनां यथार्थ--मूळकारण--ना विचारना उत्कंठित छतां विचारवानोमांथी कोइक ज तेनुं यथार्थ समाधान पाम्या अने घणा यथार्थ समाधान नहीं पामतां छतां मतिव्यामोहादि कारणथी यथार्थ समाधान पाम्या छीए एम मानवा लाग्या अने ते प्रमाणे उपदेश करवा लाग्या अने घणा लोको तेने अनुसरवा पण लाग्या. जगत्मां जूदा जूदा धर्ममत जोवामां आवे छे तेनी उत्पत्तिनुं मुख्य कारण पण ए छे. "धर्मथी दुःख मटे" एम घणा खरा विचारवानोनी मान्यता थइ पण धर्मनुं स्वरूप समजवामां एकबीजामां घणो तफावत पड्यो. घणा तो पोतानो मूळ विषय चूकी गया, अने घणा तो ते विषयमां मति थाकवाथी अनेक प्रकारे नास्तिकादि परिणामोने पाम्या.

दुःख शुं छे, तेनां मूळकारणो शुं छे, अने ते शाथी मटी शके ? ते संबंधी जिनो एटले वीतरागोए जे मत दर्शाव्यो छे–श्रीमान् वर्धमान जिन–वर्तमान काळना चरम तीर्थंकर देवके जेओनी शिक्षाथी हाल मोक्षमार्गनुं अस्तित्व वर्ते छे–ते अहीं संक्षेपमां कहीए छीए:—

श्रीवीतराग धर्म-नो अभिप्राय

"सर्व जीव सुखने इच्छे छे; दुःख सर्वेने अप्रिय छे; दुःखथी मुक्त थवा सर्व जीव इच्छे छे. वास्तविक तेनुं स्वरूप न "समजवाथी ते दुःख मटतुं नथी. ते दुःखना आत्यन्तिक अभावनुं नाम 'मोक्ष' कहीए छीए. अत्यंत वीतराग थया विना आत्यंतिक मोक्ष "होय नहीं. सम्यग्ज्ञान विना वीतराग थइ शकाय नहीं. सम्यग्दर्शन विना ज्ञान असम्यक् कहेवाय छे. वस्तुनी जे स्वभावे स्थिति छे ते "स्वभावे ते वस्तुनी स्थिति समजवी तेने सम्यग्ज्ञान कहीए छीए. सम्यग्ज्ञान–दर्शनथी प्रतीत थयेला आत्मभावे वर्तवुं ते चारित्र छे. "ए त्रणे–(सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र) नी एकताथी मोक्ष थाय. जीव स्वाभाविक छे, जीव अनंत छे. परमाणु अनंत छे. "जीव अने पुद्गल- (परमाणुओनो एक प्रकारनो समूह–गुच्छ)–नो संयोग अनादि छे. ज्यां सुधी जीवने पुद्गल संबंध छे त्यां सुधी "सकर्म जीव कहेवाय. भावकर्मनो कर्ता जीव छे. भावकर्मनुं बीजुं नाम विभाव कहेवाय छे. भावकर्मना हेतुथी जीव पुद्गल ग्रहे छे; "तेथी तैजसादि शरीर अने औदारिकादि शरीरनो योग थाय छे. भावकर्मथी विमुख थाय तो निजभावपरिणामी थाय. सम्यग्दर्शन विना "वास्तविकपणे जीव भावकर्मथी विमुख न थइ शके. सम्यग्दर्शन थवानो मुख्य हेतु जिनवचनथी तत्त्वार्थे प्रतीति थइ ते छे."

जे उपायो दर्शाव्या ते सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्र अथवा ते त्रणेनुं एक नाम "सम्यग्मोक्ष" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्रमां सम्यग्दर्शननी मुख्यता घणे स्थळे ते वीतरागोए कही छे. जो के सम्यग्ज्ञानथी ज सम्यग्दर्शननुं पण ओळखाण थाय छे तो पण सम्यग्दर्शननी प्राप्ति वगरनुं ज्ञान संसार एटले दुःखना हेतुरूपे होवाथी सम्यग्दर्शननु मुख्यपणुं ग्रहण कर्युं छे. जेम जेम सम्यग्दर्शन शुद्ध थतुं जाय छे तेम तेम सम्यक्चारित्र प्रत्ये वीर्य उल्लसतुं जाय छे अने क्रमे करीने सम्यक्चारित्रनी प्राप्ति थवानो वखत आवे छे,– जेथी आत्मामां स्थिर स्वभाव सिद्ध थतो जाय छे अने क्रमे करीने पूर्ण स्थिर स्वभाव प्रगटे छे अने आत्मा निजपदमां लीन थइ सर्वकर्मकलंकथी रहित थवाथी एक शुद्ध आत्मस्वभावरूप मोक्षमां परम अव्याबाध सुखना अनुभवसमुद्रमां स्थित थाय छे. सम्यग्दर्शननी प्राप्तिथी जेम ज्ञान सम्यक्स्वभावने पामे छे–ए सम्यग्दर्शननो परम उपकार छे–तेम सम्यग्दर्शन क्रमे करी शुद्ध थतुं जइ पूर्ण स्थिरस्वभाव चारित्रने प्राप्त थाय तेने अर्थे सम्यग्ज्ञानना बळनी तेने खरेखरी आवश्यकता छे.

ते सम्यग्ज्ञान प्राप्तिनो उपाय वीतरागश्रुत अने ते श्रुततत्त्वोपदेष्टा महात्मा छे. वीतरागश्रुतना परम रहस्यने प्राप्त थयेला असंग अने परम करुणाशील महात्मानो योग प्राप्त थवो अतिशय कठण छे. महद्भाग्योदयना योगथी ज ते योग प्राप्त थाय छे एमां संशय नथी. एवा महात्मा पुरुषनो योग बहु दुर्लभ छे. सारा देश काळमां पण एवा महात्माओनो योग दुर्लभ छे तो आवा दुःषमकाळमां तेम होय एमां कांइ कहेवुं रहेतुं नथी यद्यपि तेवा महात्मा पुरुषनो क्वचित् योग बने छे; तो पण जो शुद्ध वृत्तिमान् मुमुक्षु होय तो ते अपूर्व गुणने तेवा मुहूर्तमात्रना समागममां प्राप्त करी शके छे. जे महात्मा पुरुषनां वचन-प्रतापथी मुहूर्तमात्रमा चक्रवर्तिओ पोतानुं राजपाट छोडी भयकर वनमां तपश्चर्या करवाने चाली नीकळ्या हता ते महात्मा पुरुषना योगथी अपूर्व गुण केम न थाय ? सारा देश काळमां पण क्वचित् तेवा महात्मानो योग बनी आवे छे; केमके तेओ अप्रतिबद्धविहारी होय छे त्यारे एवा पुरुषोनो नित्य संग रही शके तेम शीरीने बनी शके के जेथी मुमुक्षु जीव सर्व दुःखक्षय करवानां अनन्य कारणोने पूर्णपणे उपासी शके. तेनो मार्ग आ प्रमाणे भगवान् जिने अवलोकयो छे. "नित्य तेमना समागममां आज्ञाधीनपणे वर्तवुं जोइए अने ते माटे बाह्य, अभ्यन्तर परिग्रहादि त्याग ज योग्य छे–जेओ सर्वथा त्याग करवाने समर्थ नथी तेमणे देशत्यागपूर्वक आ प्रमाणे करवुं जोइए." ते महात्मा पुरुषना गुणातिशयपणाथी, सम्यग्आचरणथी, परमज्ञानथी, परमशान्तिथी, परमनिवृत्तिथी मुमुक्षुजीवनी अशुभवृत्ति-ओनुं परावर्तन थइ शुभ स्वभावने पामी स्वरूप प्रत्ये वळती जाय छे. ते पुरुषोनां वचनो आगमस्वरूप छे; तो पण वारंवार पोताथी वचनयोगनी प्रवृत्ति न थाय तेथी, तथा निरंतर समागमनो योग न बने तेथी, तथा ते वचननुं श्रवण तादृश्य स्मरणमां न रहे तेथी तेम ज केटलाक भावोनुं स्वरूप जाणवामां परावर्तननी जरुर होय छे तेथी, अने अनुप्रेक्षानुं बळ वृद्धि पामवाने अर्थे वीतरागश्रुत–वीतराग-शास्त्र–एक बळवान् उपकारी साधन छे; जो के तेवा महात्मापुरुषद्वारा ज प्रथम तेनुं रहस्य जाणवुं जोइए पछी विशुद्धदृष्टि थये महा-त्माना समागमना अंतरायमां पण ते श्रुत बळवान् उपकार करे छे. अथवा ज्यां केवल तेवा महात्माओनो योग बनी शकतो नथी त्यां पण विशुद्ध दृष्टिवानने वीतरागश्रुत परमोपकारी छे अने ते ज अर्थ थइने महत् पुरुषोए एक श्लोकथी मांडी द्वादशांग सुधीनी रचना करी छे.

वीतरागशास्त्र.

ते द्वादशांगना मूळ उपदेष्टा सर्वज्ञ वीतराग छे; के जेना स्वरूपनुं महात्मा पुरुषो ध्यान करे छे अने ते पदनी प्राप्तिमां ज सर्वस्व समायेलुं एम प्रतीतिथी अनुभवे छे. सर्वज्ञ वचनो धारण करीने महत् आचार्योए द्वादशांगीनी रचना करी हती अने तदाश्रित आज्ञांकित महात्माओए बीजां अनेक शास्त्रोनी रचना करी छे. आ प्रमाणे द्वादशांगना नामो छेः—आचारांग, सूत्र-

कृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग, ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरौपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग; विपाकश्रुतांग, दृष्टिवादांग.

वीतरागमार्ग परत्वे श्वेतांबर–दिगंबर.

काळदोषथी घणां स्थळो तेमांथी विसर्जन थइ गयां. अने मात्र अल्प स्थळो रह्यां. जे अल्प स्थळो रह्यां तेने 'एकादशांग' ने नामे श्वेतांबराचार्यो कहे छे. दिगंबरो तेमां अनुमत नथी, दिगम्बर अने श्वेतांबर एवा बे भेदो जिनदर्शनमां मुख्य छे विसंवाद के मताग्रहनी दृष्टिए तेमां बन्ने–श्वेतांबर तथा दिगंबर–केवळ भिन्न भिन्न मार्गनी पेठे जोवामां आवे छे. मतदृष्टिथी तेमां मोटो अंतर जोवामां आवे छे. तत्त्वदृष्टिथी तेवो विशेषभेद जिनदर्शनमां मुख्यपणे परोक्ष छे. दीर्घदृष्टिए जोतां तेनां जूदां ज कारणो जोवामां आवे छे. विवादनां घणां स्थळो तो अप्रयोजन जेवां छे, अने ते पण परोक्ष छे. जे प्रत्यक्ष कार्यभूत थइ शके तेवा छे तेमां तेवो भेद नथी. माटे बन्ने संप्रदायमां उत्पन्न थता गुणवान् पुरुषो सम्यग्दृष्टिथी जुए छे अने जेम तत्त्वप्रतीतिनो अंतराय ओछो थाय तेम प्रवर्ते छे. गमे तेम हो पण बन्ने बहु नजीकमां आवी जाय छे. 'मोक्षमार्गप्रकाश'[1]मां वर्तमान जिनागम के जे श्वेतांबर संप्रदायने मान्य छे तेनो निषेध कर्यो छे ते निषेध कर्तव्य नथी. वर्तमान आगममां अमुक स्थळो वधारे संदेहनां स्थान छे, पण सत्पुरुषनी दृष्टिए जोतां तेनुं निराकरण थाय छे, माटे उपशमदृष्टिए ते आगमो अवलोकन करवामां संशय कर्तव्य नथी—

वीतरागश्रुत - जिनागमनुं महत्त्व.

जिनागम छे ते उपशमस्वरूप छे. उपशमस्वरूप एवा पुरुषोए उपशमने अर्थे ते प्ररूप्यां छे–उपदेश्यां छे. ते उपशम आत्मार्थे छे. अन्य कोइ प्रयोजन अर्थे नथी–सूत्र (जिनागम) अने बीजां प्राचीन आचार्योए तत् अनुसार रचेलां घणां शास्त्रो विद्यमान छे. सुविहित पुरुषोए तो हितकारी मतिथी ज रच्यां छे. कोइ मतवादी, हठाग्रही अने शिथिलताना पोषक पुरुषोए रचेलां कोइ पुस्तको सूत्रथी अथवा जिनाचार्यथी मळतां न आवतां होय अने प्रयोजननी मर्यादाथी बाह्य होय ते पुस्तकोना उदाहरणथी प्राचीन सुविहित आचार्यनां वचनोने उत्थापवानुं प्रयत्न भवभीरु महात्माओ करता नथी; पण तेथी उपकार थाय छे एम जाणी तेनुं बहुमान करतां छतां यथायोग्य सदुपयोग करे छे.

जे मतभेदे आ जीव ग्रहायो छे ते ज मतभेद ज तेना स्वरूपने मुख्य आवरण छे. वीतरागपुरुषना समागम विना, उपासना विना आ जीवने मुमुक्षुता केम उत्पन्न थाय? सम्यग्ज्ञान क्यांथी थाय? सम्यग्दर्शन क्यांथी थाय? सम्यक्चारित्र क्यांथी थाय? केमके ए त्रणे वस्तु अन्य स्थानके होती नथी.

वर्तमानमां वीतरागमार्गनी दशा.

वीतराग पुरुषना अभाव जेवो वर्तमान काळ प्रवर्ते छे: (जिनमार्गमां) आश्चर्यकारक भेदो पडी गया छे; (ते मार्ग) खंडित छे; (तेने) संपूर्ण करवानु साधन सुगम्य देखाय छे. (तेना) प्रभावने विषे महद् अंतराय छे. (तेने माटे) देश काळादि घणा प्रतिकूळ छे–वीतरागोनो मत लोक प्रतिकूळ थइ पड्यो छे. रूढिथी जे लोको तेने माने छे तेना लक्षमां पण ते प्रतीत जणातो नथी; अथवा अन्य मतने वीतरागोनो मत समजी प्रवर्त्ये जाय छे. यथार्थ वीतरागनो मत समजवानी तेमनामां योग्यतानी घणी खामी छे. दृष्टिरागनुं प्रबळ राज्य वर्ते छे. वेषादि व्यवहारमां मोटी विटंबना करी मोक्षमार्गनो अंतराय करी बेठा छे. तुच्छ पामर पुरुषो विराधक वृत्तिना घणी अग्रभागे वर्ते छे; किंचित् सत्य बहार आवतां पण तेमने प्राणघात तुल्य दुःख लागतुं होय एम देखाय छे.

श्रुतज्ञान–जिनागमरूप साधनशक्ति.

वीतराग पद वारंवार विचार करवा योग्य छे; उपासना करवा योग्य छे; ध्यान करवा योग्य छे. काळना दोषथी अपार श्रुतसागरनो घणो भाग विसर्जन थतो गयो अने बिंदुमात्र अथवा अल्पमात्र वर्तमानमां विद्यमान छे. घणा स्थळोमां स्थूलत्व निरूपण रह्युं होवाथी निर्ग्रंथ भगवानना ते श्रुतनो पूर्ण लाभ वर्तमान मनुष्योने आ क्षेत्रे प्राप्त थतो नथी; घणा मतमतांतरो उत्पन्न थवानो हेतु पण ए ज छे. अने तेथी ज निर्मळ आत्मतत्वना अभ्यासी महात्माओनी अल्पता थइ. श्रुत अल्प रह्या छतां सम्यग्दर्शन, मतमतांतर घणां छतां, समाधानना केटलांक साधनो परोक्ष छतां सम्यग्दर्शन–श्रुतनु रहस्य एवो परम पदनो पंथ आत्मानुभवना हेतु सम्यक्चारित्र अने विशुद्ध आत्म–ध्यान आजे विद्यमान छे ए परम हर्षनुं कारण छे.

जिनपरिभाषा.

श्रीजिने कहेला भावो अध्यात्मपरिभाषामय होवाथी समजवा कठण छे. परमपुरुषनो योग संप्राप्त थवो जोइए. जिनपरिभाषा-विचार यथावकाशानुसार विशेष निदिध्यास करवा योग्य छे. भगवान् जिने कहेला लोकसंस्थानादि भाव आध्यात्मिक दृष्टिथी सिद्ध थवा योग्य छे. चक्रवर्त्यादिनुं स्वरूप पण आध्यात्मिकदृष्टिथी समजाय एवुं छे. मनुष्य–उत्सेध प्रमाणादिमां पण तेनो संभव छे. काळ प्रमाणादि पण ते ज रीते घटमान छे. निगोदादि पण ते ज रीते घटमान थवा योग्य छे. सिद्धस्वरूप पण ए ज भावथी निदिध्यास थवा योग्य छे–संप्राप्त थवायोग्य जणाय छे. 'लोक' शब्दनो अर्थ, 'अनेकान्त' शब्दनो अर्थ

---

१ आ ग्रंथनी दिगंबर पंडितराज टोडरमलजीए रचना करी छे. श्रीमद् राजचंद्र आ ग्रंथमां मतान्तरविषयक चर्चाने सहानुभूति आ रीते, आपता नथी. पण एकंदरे ए ग्रंथना संबंधमां कहे छे के "मोक्षमार्गप्रकाश" नामे ग्रंथ मुमुक्षु जीवे विचारवा योग्य छे. ते अवलोकन करतां कोइ कोइ विचारमां मतमतांतर जेवुं लागे तो नहीं मुंझातां ते स्थळे वधारे मनन करवुं अथवा सत्समागमने योगे ते स्थळ समजवुं योग्य छे.

आध्यात्मिक छे. 'सर्वज्ञ' शब्द समजवो बहु गूढ छे. धर्मकथारूप चरित्रो आध्यात्मिक परिभाषाथी अलंकृत लागे छे. जंबुद्वीपादिनुं वर्णन पण अध्यात्मपरिभाषाथी निरूपित कर्युं लागे छे.

भगवतीनां वर्णनो.

'भगवती' वगेरे सिद्धांतोने विषे जे कोइ जीवोना भवांतरनुं वर्णन कर्युं छे तेमां कांइ संशयात्मक थवा जेवुं नथी. तीर्थंकर तो पूर्ण आत्मस्वरूप छे. परंतु जे पुरुषो मात्र योगध्यानादिकना अभ्यास बळवडे स्थित होय, तेमांनां घणा पुरुषो पण ते भवांतर जाणी शके छे; अने एम बनवुं ए कांइ कल्पित प्रकार नथी. जे पुरुषने आत्मानुं निश्चयात्मक ज्ञान छे तेने भवांतरनु ज्ञान घटे छे–होय छे. क्वचित् ज्ञानना तारतम्य–क्षयोपशम भेदे तेम नथी पण होतु; तथापि जेने आत्मानुं पूर्ण शुद्धपणुं वर्ते छे ते पुरुष तो निश्चय ते ज्ञानने जाणे छे.–भवांतरने जाणे छे–'आत्मा नित्य छे.' 'अनुभवरूप छे.' वस्तु छे ए ए प्रकारे अत्यंत दृढ थवा अर्थे शास्त्रने विषे ते प्रसंगो कहेवामां आव्या छे. भवांतरनु जो स्पष्ट ज्ञान कोइने थतुं न होय, तो आत्मानुं ज्ञान पण कोइने थतु नथी एम कहेवा योग्य छे; तथापि एम तो नथी. आत्मानु स्पष्ट ज्ञान थाय छे, अने भवांतर पण स्पष्ट भासे छे. पोताना तेम ज परना भव जाणवानुं ज्ञान कोइ प्रकारे विसंवादपणुं पामतु नथी.

श्रीमद् रायचंद्र.

श्रीजिनागम परत्वेनां श्रीमद् रायचद्रनां आ शिक्षणनी अमोने प्राप्ति थयेली. तेओनी अमदावादनिवासी भाइ **पुंजाभाइ हीराचंदने** एक एवी आज्ञा हती के, द्रव्य व्यय ज्ञानोद्धार अर्थे करवो. ए आज्ञानुसार, भाइ **पुंजाभाइए** पोताना एक तरुण पुत्र भाइ **कचराभाइना** अकालिक मृत्यु निमित्ते श्रीजिनागम प्रकट करवानी एक योजना तैयार करावी. जेमां सर्वथी प्रथम आ श्रीमान् सुधर्मास्वामी प्रणीत 'भगवती सूत्र' प्रथम खंडरूपे मुद्रित थइने प्रकाशित थाय छे. न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ पंडितवर्य **बेचरदास जीवराजे** भगवतीना आ विभागने संशोध्यो छे; अनुवाद्यो छे अने स्थले स्थले छाया तथा उपयोगी टिप्पणोथी बनी शके तेटलो सरल कर्यो छे. इच्छा हती के एक मोटी आलोचनावाळी, ऐतिहासिक अने शास्त्रसंमत प्रस्तावना आ भाग साथे प्रकट थइ जाय. पण तेमां अधिक समयनी अपेक्षा होवाथी हवे पछी तेने प्रकट करवाने इच्छयु छे. अमारी सर्व शक्तिओनो असंकुचित उपयोग करी तेने उत्तमोत्तम करवा अर्थे सर्व प्रयत्नो कर्या छे. प्रजाजनने ते प्रेमरूप हो ए अमारी महत्त्वाकांक्षा छे.

मनसुखलाल रवजीभाई मेहता.

शतक १.—परिचय.

शतक १.—प्रश्नोत्थान.

शतक १.—उद्देशक १.

शतक १.—उद्देशक २.

शतक १.—उद्देशक ३.

शतक १.—उद्देशक ४.

शतक १.—उद्देशक ५.

शतक १.—उद्देशक ६.

शतक १.—उद्देशक ७.

शतक १.—उद्देशक ८.

शतक १.—उद्देशक ९.

शतक १.—उद्देशक १०.

शतक २.—उद्देशक १.

शतक २.—उद्देशक २.

शतक २.—उद्देशक ३.

शतक २.—उद्देशक ४.

शतक २.—उद्देशक ५.

शतक २.—उद्देशक ६.

शतक २.—उद्देशक ७.

शतक २.—उद्देशक ८.

शतक २.—उद्देशक ९.

शतक २.—उद्देशक १०.

अस्तिकाय केटला छे?—पांच.—धर्मास्तिकायमां केटला वर्ण वगेरे छे?—ते वर्णादिथी रहित अने अवस्थित छे.—धर्मास्तिकायना पांच भेद.—द्रव्यथी, क्षेत्रथी, काळथी, भावथी अने गुणथी.—ए प्रमाणे बधा अस्तिकायो.—जीवमां केटला वर्ण वगेरे छे?—तेमां वर्णादि नथी.—गतिगुण धर्मास्तिकाय.—स्थितिगुण अधर्मास्तिकाय.—अवगाहनागुण आकाशास्तिकाय.—उपयोगगुण जीवास्तिकाय.—ग्रहणगुण पुद्गलास्तिकाय.—पुद्गलास्तिकायमां केटला वर्ण वगेरे?—पांच वर्ण, पांच रस, बे गंध अने आठ स्पर्श.—धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश के अनेक प्रदेश धर्मास्तिकाय कहेवाय?—नहीं.—ज्यां सुधी एक पण प्रदेश ऊणो होय त्यां सुधी धर्मास्तिकाय न कहेवाय.—लाडवो आखो होय तो ज लाडवो कहेवाय, पण अडधो होय तो लाडवानो कटको कहेवाय.—ए प्रमाणे बधा अस्तिकायो.—आकाश, जीव अने पुद्गलना अनंत प्रदेशो छे.—जीव.—उत्थानादिक सहित जीवनो जीवभाव.—उपयोगलक्षण जीव.—आकाश.—आकाशना केटला प्रकार?—बे.—लोकाकाश अने अलोकाकाश.—लोकाकाश जीवरूप, जीवदेशरूप, जीवप्रदेशरूप, अजीवरूप, अजीवदेशरूप अने अजीवप्रदेशरूप छे.—रूपी अजीवना चार प्रकार.—स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश अने परमाणुपुद्गल.—अरूपी अजीवना पांच प्रकार.—अलोकाकाश.—ते अजीवद्रव्यदेश छे.—अगुरुलघु छे.—लोकाकाशमां केटला वर्ण वगेरे छे?—तेमां वर्णादिक नथी.—धर्मास्तिकाय वगेरेनुं प्रमाण तथा स्पर्शना.—धर्मास्तिकाय केवडो मोटो?—लोक जेवडो.—ए प्रमाणे लोकाकाश अने बधा अस्तिकाय.—धर्मास्तिकायना केटला भागने अधोलोक अडके?—अडध झाझेरा भागने.—तिरछो लोक केटला भागने अडके?—असंख्येय भागने.—ऊर्ध्वलोक केटला भागने अडके?—अडध माठेरा भागने.—धर्मास्तिकाय साथे रत्नप्रभानी, घनोदधिनी अने अवकाशांतरनी स्पर्शना.—ए प्रमाणे साते पृथ्वी.—जंबूद्वीपादिक द्वीप समुद्रो.—सौधर्म कल्प अने यावत्—ईषत्प्राग्भारा पृथिवी.—तेम ज अधर्मास्तिकाय अने लोकाकाश.—गाथा.— ३०५—३१४

शुद्धिपत्रकम्.

पृष्ठे–	पङ्क्ती–	अशुद्धम्–	शुद्धम्–
२	१४	प्रज्ञापि,	प्रज्ञासि,
६	४	सुखाव	सुखाव–
१०	४०	पूर्वोक्तविषयः–पद	पूर्वोक्तविषय–पद
११	आ पानामां जे १६ मा नंबरवाळुं संस्कृत छे तेनो 'इति भणआत्' सुधीनो भाग १५ मा नंबरवाळा भाषांतरमां जाणवानो छे–तेनुं भाषांतर त्यां आवी गयुं छे माटे.		
११	२१	हुजारा	हुजार
११	२३	मातापित	मातापिता
११	२५	ज्ञातामे	ज्ञाताधर्मे
१२	९	समोवसरणो	समवसरणो
१२	आ पानामां जे १७ मा नंबरनुं संस्कृत छे 'तेनो अभिधेयत्वात्' सुधीनो भाग ११ मा पृष्ठमां आवेल १६ नंबरवाळा भाषांतरमां जाणवानो छे–तेनुं भाषांतर त्यां आव्युं छे माटे.		
१४	३४	मूतूणं	मुतूणं
१४	३५	बमुक्खजणो	ब मुक्खजणो
१४	३८	सव्वसु–	सव्वसू–
१४	४३	अरथं	अरथं न
१५	१६	बात्तरिं	बावत्तरिं
१५	४४	चक्रवर्तीनो	चक्रवर्तीनी
१५	५३	समाचोरस	समचोरस
२२	२२	शत्रुतुं	शत्रुतुं
२२	२५	प्रधानो	प्रधाने
२५	१७	महावीरं	महावीरं
,,	१९	नागपत्तिणो	नागपतिणो
,,	२४	पलबं	पलंब
,,	३५	दाडिमन	दाडिमना
,,	४८	उज्वल	उज्ज्वल
२८	४२	आउहइ	आरुहइ
२८	४२	आउहित्ता	आरुहित्ता
२८	४४	आणए	आणाए
२८	५१	जावा	जाव
३०	६	गोत्रन	गोत्रना
३०	२९	माडंलिको	माडंबिको
३२	८	दांत	दान्त
३२	४९	वर्षधर	वर्षधर
३४	१९	पावधुं	पाव्युं
४६	३०	समयोम	समयोमां
४७	३३	आवीचिक	आवीचिकं
५६	२४	काळा	काळे
५७	१९	प्रतिपादनार्थम्	प्रतिपादनार्थम्
५९	४४	यानिभगवन् !	यानि भगवन् !
६१	२९	आहारिज्यमाणाः	आहरिज्यमाणाः
६२	३९	समुच्चयार्थक	समुच्चयार्थक
६४	१७	—भूयमान	भूयमान
६५	१४	सत्काइत्यर्थः.	सत्का इत्यर्थः.
६५	२७	भिर्ब्भंति	भिज्जंति
६६	२५	[illegible]	[illegible]
६९	११	प्रकारणोमां	प्रकरणोमां
[illegible]	२	कोकणी	काकणी
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
७४	३९	स्थितिर्मणित्वा	स्थितीर्मणिता
७८	३	नैरइया	नेरइया
७८	१९	सिद्धि–	सिद्ध–
८२	३५	करे, छे.	करे छे.
९१	३४	पुव्वावेवभगा	पुव्वोववन्नगा
९१	४३	बहुतरान्,	बहुतरान्
९२	४३	गौतम,	गौतम !
९२	४४	आरम्भिकी !	आरम्भिकी,
९२	४५	मिथ्यादर्शन	मिथ्यादर्शन
९४	२१	अथातर	अर्थांतर
९६	२८	छे.	छे
१००	८	तत्,	तत्
१००	१६	छे.	छे
१०३	२१	प्रमत्ता–ऽप्रमता,	प्रमत्ता–ऽप्रमत्ता–
१०५	३५	विशेषधिक	विशेषाधिक
१०६	१६	वट्टमाणे हि	वट्टमाणेहि
१०६	२०	संसारसंस्थान	संसारसंस्थान
१०६	३७	मूलछाया	मूलच्छाया
१०६	४१	वर्तमानैर्हि	वर्तमानैः
१०७	३६	[गुणे'त्ति]	गुणे'त्ति]
१०७	४०	क्षप्यन्तेः	क्षप्यन्ते
११३	२६	जीवैः	जीवाः
११३	२७	कृतम्	अकार्षुः
११३	,,	,,	,,
११३	,,	,,	,,
११६	२१	प्रथमा	प्रथम
११६	२४	त्या	त्यां
११८	४	नत्थित्त	नत्थित्ते
१२२	२०	बध	बंध
१२७	२	प्राहिकत्वेन	प्राहकत्वेन
१३२	३६	रोचते	नो रोचते
१३३	५	तिर्यञ्च	तिर्यंच
१४२	३९	शतसहस्राणि	शतसहस्राणि षट्त्रिंशत्
१५३	३६	मायोपयुक्ताश्च	मायोपयुक्ताश्च
१५५	,,	एवम्	एवं
१५९	१६	कहेवा	कहेवा
१६६	२७	प्राणाति पातक्रिया	प्राणातिपातक्रिया
१६७	१०	संबंधो–	संबन्धः–
१६८	६	उवासंतरे ?	उवासंतरे
१६८	७	पुच्छा.	पुच्छा ?
,,	३६	? पुच्छा.	पुच्छा ?
,,	४२	एवम्–अपि	एतद् अपि
१७१	२६	इत्यादि.	इत्यादि]
१७२	३४	जीवपइट्ठिआ'	जीवपइट्ठिआ''
१७७	४२	श्रीभगवतीचूर्णि.	श्रीभगवतीचूर्णिः.
१८०	८	अर्थ	अर्थ
१८१	३५	तत्प्रथमतया	तत् प्रथमतया
१८५	२६	कोसागार ओर्णि	कोसागारओर्णि
१८६	११	अमे बाडी	अमे केळ, बाडी

पृष्ठे–	पङ्क्तौ–	अशुद्धम्–	शुद्धम्–
१८६	१२	वळी काळी	वळी केस, काळी
१९१	४०	वनविवुण	वनविवुर्ण
२०५	११	अमउंत्थिया	अमउत्थिया
२०७	३०	गामकटगा	गामकंटगा
,,	,,	परिसहेवसग्गा	परीसहोवसग्गा
२११	४	संवुडेणं	संवुडे णं
२१४	४०	दुक्खा	दुःक्खा
२१५	१५	भासिआ अमासा	भासिआ मासा अभासा
२१५	३६	पुद्गलः	पुद्गलाः
२१५	३७	स्कन्धा	स्कन्धो
२१५	४०	अभाषाणा	अभाषा
२१५	४०	भाष्यमाणी	भाष्यमाणा
२१८	२३	हो	होइ
२२३	२०	स्कंदकन	स्कंदकना
२२४	२१	श्वासमा	श्वाममां
२२४	२२	निःश्वासमा	निःश्वासमां
२२८	१५	आदारिक	औदारिक
२३४	४५	श्रमणोः	श्रमणः
२३७	३८	अनन्तै,	अनन्तै–
२४५	१३	प्रकारन	प्रकारना
२५९	३७	पेठ	पेठे
२६१	१८	समुग्घाया	रामुग्घाया
२६६	१६	क्या	कर्या
२७०	१५	तेन	तेने
२७१	१९	दो वेदं	दोवेदं
२७६	८	कायाभवस्थ	कायभवस्थ
२७६	२४	नागरमां	नगरमां
२७८	१२	विहरति	विहरंति
२७९	३८	तेस्थविरा	ते स्थविरा
२८०	४४	स्वाध्यायं	स्वाध्यायं
२८१	३	पडिकेहिता	पडिकेहिता
२८२	२	भगवन्	भगवान्
२८२	२३	अप्पम्	अप्पयं
२८२	३४	श्रमणोपासकै	श्रमणोपासकैः
२८४	३२	असनोथी	आसनोथी
२८६	१५	फलकारं	फलकारं
२८६	३४	प्रश्नत्तरो	प्रश्नोत्तरो
२८६	३६	पदो	पेढा
२८६	३६	आपवाम	आपवामां
२८७	३५	सामामां	समामां
२८७	४१	आरागस्य	अरागस्य
२९०	१९	विरूद्ध	विरुद्ध
२९५	१८	जोयणसहस्से	जोयणसयसहस्से
२९५	१९	प्रात्याभिमुखं	प्रात्यभिमुखम्
२९५	३१	योजनसहस्राणि	योजनशतसहस्राणि
२९६	५	केइयं	केवइयं
२९६	७	उच्चतमेव	उच्चत्तमेव
२९६	१७	एंशी लाख योजन	एक लाख एंशी हजार योजन
२९६	१७	अठ्योतेर	एक लाख अठ्योतेर
२९७	१४	भूक्के	भूक्के
२९८	२७	मुलच्छाया	मूलच्छाया
२९९	७	सचेश्वर	स चेश्वर
३०१	२३	अलंकारश्वसभा	अलंकारश्व सभा
३०१	२४	पूर्वं	पूर्वं०
३०८	३१	एगग्गहग	एगग्गहण
३०८	३२	अणता	अणंता
३१०	१९	अलोगगासे #	अलोगागासे
३११	२६	परमाणुं	परमाणु
३११	३३	जोवप्रदेशाश्च	जीवप्रदेशाश्च

अन्यान्यपि यानि दूषणानि मतिमान्द्यात्, दृष्टिदोषात्, सीसकाक्षरयोजकप्रमादाच सहृदयानां मनो–नयनविषयमवतरेयुः, तानि तैर्महाशयैः संशोध्य.नि, संसूचनीयानि चेति प्रार्थयते—

अनुवादकः ।

संकेतसूचना—

अनु०—अनुवादक.

उमा० तत्त्वा० अ० सू०—उमास्वातिनूं तत्त्वार्थ, अध्याय, सूत्र.

क० आ०—कलकत्ता आवृत्तिवाळुं.

क० आ० भ० श० उ०—कलकत्ता आवृत्तिवाळुं भगवती, शतक, उद्देशक.

क० प्र० गा० टी०—कर्मग्रन्थ प्रथम गाथा टीका.

गा०—गाथा.

चिमनलाल डा०—रा०चिमनलाल डाह्याभाइ मुद्रित.

जी० क० आ०—जीवाभिगम कलकत्ता आवृत्तिवाळुं.

प्र० छा०—प्रमाणभूत गाथाच्छाया.

भ० टी०—भगवती टीका.

भा० भावनगर मुद्रित.

भा० पृ०—भावनगरमुद्रित पृष्ठ.

य० ग्रं० / यशो० ग्रं० }—यशोविजय जैनग्रंथमाळा.

वि० गा०—विशेषावश्यक गाथा.

विशेषा०—विशेषावश्यक.

शं०—शंका.

श्रीअभय०—श्रीअभयदेवसूरिजी.

समा०—समाधान.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीत भगवतीसूत्र.

श्रीअभयदेवसूरिविरचितवृत्तिसहित.

शतक १.–परिचय.

मंगल.—शास्त्रप्रस्तावना.—ग्रंथनामव्याख्या.—मङ्गलविचार.—अर्हन्.—सिद्ध.—आचार्य.—उपाध्याय.—साधु.—नमस्कारचर्चा.—अर्हदादिने पृथग् नमस्कार शामाटे? ऋषभादिने पृथक् पृथक् शामाटे नमस्कार नथी कर्यो?.—अर्हदादिने भिन्न नमस्कारनो हेतु.—नामोच्चारणपूर्वक नमस्कारनुं अशक्यत्व.—प्रथम सिद्धोने नमस्कार शामाटे नहीं?.—सिद्धपूर्व अर्हतने नमस्कारनो हेतु.—प्रथम आचार्योने नमस्कार शामाटे नहीं?.—अर्हदधीनआचार्यसामर्थ्य.—द्रव्यश्रुतप्राधान्य.—ब्राह्मी लिपि.—शास्त्र ज मंगलस्वरूप छतां पुनः मंगल शामाटे?—शास्त्राभिधेय.—शास्त्रफल.—शास्त्रसंबंध.—भगवतीपरिमाण.—उद्देशकार्थ.—उद्देशकविषय.—श्रुतनमस्कार.

१. सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्य सार्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्,
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतं श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि.

२. नत्वा श्रीवर्धमानाय श्रीमते च सुधर्मणे. सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो वाण्यै सर्वविदस्तथा;
एतट्टीका–चूर्णी जीवाभिगमादिवृत्तिलेशांश्च, संयोज्य पञ्चमाङ्गं विवृणोमि विशेषतः किञ्चित्.

मङ्गल:

१. सर्वज्ञ, ईश्वर, अनंत, असंग, अग्र्य, सर्वहितावह, अस्मर, अनीश, अनीह, तेजस्वी, सिद्ध, शिव, शिवकर, करण–इन्द्रियो अने शरीर-रहित, जितरिपु श्रीमान् जिनने प्रयत्नपूर्वक प्रणमुं छुं.

प्रारंभ.

२. श्रीवर्धमानस्वामिने, श्रीसुधर्मगणधरने, सर्वानुयोगवृद्धोने अने सर्वज्ञनी वाणीने नमी, आ सूत्रनी टीका, चूर्णि अने जीवाभिगमादिवृत्तिना लेशो–अंशो–ने संयोजी कांइक विशेषथी पंचम अंग–भगवतीसूत्र–ने विवरुं छुं.

३. व्याख्यातं 'समवाया'ख्यं चतुर्थमङ्गम्. अथावसरायातस्य *'विआहपण्णत्ति'* तिसञ्ज्ञितस्य पञ्चमाङ्गस्य समुन्नतजयकुञ्जरस्येव, ललितपदपद्धतिप्रबुद्धजनमनोरञ्जकस्य, उपसर्गनिपाताऽव्ययसरूपस्य, घनोदारशब्दस्य, लिङ्गविभक्तियुक्तस्य, सदाख्यातस्य, सल्लक्षणस्य, देवताधिष्ठितस्य, सुवर्णमण्डितोद्देशकस्य, नानाविधाद्भुतप्रवरचरितस्य, षट्त्रिंशत्प्रश्नसहस्रप्रमाणसूत्रदेहस्य, चतुरनुयोगचरणस्य, ज्ञान-चरणनयनयुगलस्य, द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकनयद्वितयदन्तमुसलस्य, निश्चय-व्यवहारनयसमुन्नतकुम्भद्वयस्य, योग-क्षेमकर्णयुगलस्य, प्रस्तावनावचनरचनाप्रकाण्डशुण्डादण्डस्य, निगमनवचनातुच्छपुच्छस्य, कालाद्यष्टप्रकारप्रवचनोपचारचारुपरिकरस्य, उत्सर्गा-ऽपवादवादसमुच्छलदतुच्छघण्टायुगलघोषस्य, यशःपटहपटुप्रतिरवाऽऽपूर्णदिक्चक्रवालस्य, स्याद्वादविशदाङ्कुशवशीकृतस्य, विविधहेतुहेतिसमूहसमन्वितस्य, मिथ्यात्वा-ऽज्ञाना-ऽविरमणलक्षणरिपुबलदलनाय श्रीमन्महावीरमहाराजेन नियुक्तस्य, बलनियुक्तकल्पगणनायकमतिप्रकल्पितस्य मुनियोधैरनाबाध-

---

१. काले विणए बहुमाणे उवहाणे तह अनिण्हवणे, वंजण अत्थ तदुभये अट्ठविहो नाणमायारो.—पंचप्रतिक्रमणसूत्र. अथवा, कालात्मरूपसंबन्धाः संसर्गोपकृती तथा, गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः.—रत्नाकरावतारिका, चतुर्थपरिच्छेद.–अनु०.

मधिगमाय पूर्वमुनिशिल्पिकल्पितयोर्बहुप्रवरगुणत्वेऽपि ह्रस्वतया महतामेव वाञ्छितवस्तुसाधनसमर्थयोर्वृत्ति-चूर्णिनाडिकयोः, तदन्येषां च जीवाभिगमादिविविधविवरणदवरकलेशानां संघट्टनेन बृहत्तरा अत एवाऽमहतामप्युपकारिणी हस्तिनायकादेशादिव गुरुजनवचनात् पूर्वमुनिशिल्पिकुलोत्पन्नैरस्माभिर्नाडिकेवेयं वृत्तिरारभ्यते. इति शास्त्रप्रस्तावना.

शास्त्रप्रस्तावना:

३. 'समवाय' नामना चतुर्थ अंगनुं व्याख्यान करवामां आव्युं. हवे अवसरप्राप्त 'विआहपण्णत्ति' नामक पंचम अंगनुं विवरण करीश. आ पंचम अंग ते एक प्रौढ जयकुंजर (मानीता हाथी) नी पेठे छे, के जे ललितपदनी पद्धतिथी प्रबुद्ध मनुष्योना मनने रंजन करनार छे, जे [1]उपसर्ग–निपाताव्ययस्वरूप छे, जेना शब्दो घन अने उदार छे, जे लिंग अने विभक्तिथी युक्त छे, जे सदाख्यात छे, जे सल्लक्षणयुक्त छे, जे देवाधिष्ठित छे, [2]जेनो उद्देशक सुवर्णमंडित छे, जेनुं चरित विविध प्रकारनुं, अद्भुत अने श्रेष्ठ छे, जे छत्रीश हजार प्रश्नात्मक सूत्रदेहसहित छे, जेने चार अनुयोगरूप चार चरण छे, जेने ज्ञान अने चारित्ररूप नयनयुगल छे, जेने द्रव्यास्तिक अने पर्यायास्तिक नामना बे नयरूप बे दन्तूशल छे, जेने निश्चय अने व्यवहारनयरूप बे समुन्नत कुंभस्थल छे, जेने योग अने क्षेमरूप बे कर्ण छे, जेने प्रस्तावनानी वचनरचनारूप प्रचंड शुंढ छे, जेने निगमन–उपसंहार–वचनरूप अतुच्छ पुच्छ छे, जेने [3]कालादि अष्टप्रकारना प्रवचनोपचाररूप मनोहर तंग छे, जे उत्सर्गवादरूप अने अपवादवादरूप उछळता बे अतुच्छ घंटना घोषयुक्त छे, जेणे यशरूप पटह–ढोल–जन्य स्फुट प्रतिध्वनिथी दिक्चक्रवाल–दिग्मंडल–पूरी दीधुं छे–गजावी मूक्युं छे, जे स्याद्वादरूप विशद अंकुशथी वशीकृत छे, जे विविध हेतुरूप शस्त्रसमूहथी युक्त छे, जेने श्रीमन्महावीरमहाराजे मिथ्यात्व, अज्ञान अने अविरमणस्वरूप शत्रुसैन्यने नाश करवाने नियोज्यो छे, अने जे सैन्यनियुक्तकल्पगणनायकनी मतिथी प्रकल्पित छे तेना स्वरूपने मुनिरूप योधाओ सुगमताथी जाणी शके ए माटे पूर्वना मुनिरूप शिल्पीओए वृत्तिरूप अने चूर्णिकारूप नाडिका रचेली छे; ते जो के बहुश्रेष्ठगुणयुक्त छे, तथापि संक्षिप्त छे अने तेथी ते महान् पुरुषोना ज वांछित अर्थने साधी आपवामां समर्थ छे, माटे वृत्ति अने चूर्णिकारूप नाडिकाना तथा तदन्य 'जीवाभिगम' आदि विविध विवरणसूत्रांशोना संघट्टनथी बृहत्तर माटे ज अल्पज्ञोने पण उपकार करनारी नाडिका जेवी आ वृत्ति, पूर्वमुनिरूपशिल्पिना कुळमां जन्मेला अमो हस्तिनायकना आदेशतुल्य गुरुजनना वचनथी आरभीए छीए. ए प्रमाणे शास्त्रप्रस्तावना थई.

४. अथ *'विआहपण्णत्ति'* त्ति कः शब्दार्थ ? उच्यते:–'वि'इति विविधा जीवाऽजीवादिप्रचुरतरपदार्थविषयाः, 'आ' अभिविधिना कथञ्चिन्निखिलज्ञेयव्याप्त्या, मर्यादया वा परस्पराऽसंकीर्णलक्षणाभिधानरूपया 'ख्याः' ख्यानानि भगवतो महावीरस्य गौतमादिविनेयान् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्याः, ताः प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते भगवता सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम्. अथवा 'वि'विविधतया, विशेषेण वा आख्यायन्त इति व्याख्या अभिलाप्यपदार्थवृत्तयः, ता प्रज्ञाप्यन्ते यस्याम्. अथवा व्याख्यानामर्थप्रतिपादनानाम्, प्रकृष्टा ज्ञप्तयो ज्ञानानि यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्तिः. अथवा व्याख्याया अर्थकथनस्य, प्रज्ञायाश्च तद्धेतुभूतबोधस्य; व्याख्यासु वा प्रज्ञाया आप्तिः प्राप्तिः, आत्तिर्वाऽऽदानं यस्याः सकाशादसौ व्याख्याप्रज्ञाऽऽप्तिः, व्याख्याप्रज्ञाऽऽत्तिर्वा; व्याख्याप्रज्ञाद् वा भगवतः सकाशादाप्तिरात्तिर्वा गणधरस्य यस्याः सा तथा, अथवा विवाहा विविधाः, विशिष्टा वा अर्थप्रवाहाः, नयप्रवाहा वा, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, प्रबोध्यन्ते वा यस्याम्; विवाहा वा विशिष्टसन्तानाः, विबाधा वा प्रमाणाऽबाधिताः प्रज्ञा आप्यन्ते यस्याः; विवाहा चासौ, विबाधा चासौ वा प्रज्ञप्तिश्चार्थप्ररूपणा विवाहप्रज्ञप्तिः, विवाहप्रज्ञाप्तिः, विबाधप्रज्ञप्तिः, विबाधप्रज्ञात्तिर्वा. इयं च 'भगवती' इत्यपि पूज्यत्वेनाभिधीयत इति.

ग्रन्थनामव्याख्या:

व्याख्याप्रज्ञप्ति.

४. हवे 'विआहपण्णत्ति'नो शब्दार्थ शो ? ते कहीए छीए.–विआहपण्णत्ति–व्याख्याप्रज्ञप्ति=वि=विविध+आ=अवधि+ख्या=कथन+प्रज्ञप्ति=प्ररूपणा. जेमां कोइ रीते अभिविधिवडे–सर्व ज्ञेयपदार्थोनी व्याप्तिपूर्वक–अथवा मर्यादावडे–परस्पर असंकीर्ण–विशाळ–लक्षणकथनपूर्वक विविध जीवाजीवादि घणा पदार्थोनां विषयवाळां श्रीमहावीरभगवाने गौतमादिशिष्योप्रत्ये तेमना पूछेला पदार्थोनां प्रतिपादनो करेलां छे ते व्याख्याओ अने ए व्याख्याओनुं प्ररूपण श्रीमान सुधर्मास्वामीए जम्बूस्वामीप्रत्ये जेमां करेलु छे ते 'व्याख्याप्रज्ञप्ति'. अथवा विविध प्रकारे, विशेषप्रकारे जे कहेवायेलुं छे ते व्याख्या–एटले के कहेवायोग्य पदार्थोनी वृत्तिओ अने तेनुं जेमां प्रज्ञापन ते व्याख्याप्रज्ञप्ति. अथवा व्याख्याओनां एटले अर्थप्रतिपादनाओनां जेमां प्रकृष्ट ज्ञानो आपेलां छे ते 'व्याख्याप्रज्ञप्ति'. अथवा व्याख्या एटले अर्थकथन, अने प्रज्ञा एटले ते अर्थकथनना हेतुरूप बोध; ए उभयनी जेथी आप्ति–प्राप्ति–थाय ते व्याख्याप्रज्ञाप्ति'. अथवा व्याख्याओमां प्रज्ञानी आप्ति जे परथी मळी आवे ते 'व्याख्याप्रज्ञाप्ति'. अथवा 'आप्ति' ने बदले 'आत्ति' एटले ग्रहण जेथी थई शके ते 'व्याख्याप्रज्ञात्ति,' अथवा व्याख्याप्रज्ञ (व्याख्यान करवामां कुशळ) भगवान् पासेथी गणधरोने जेनुं प्रापण अथवा ग्रहण थयेलुं ते 'व्याख्याप्रज्ञाप्ति', 'व्याख्याप्रज्ञात्ति.' अथवा 'विवाह'–एटले विविध के विशिष्ट अर्थप्रवाह अथवा नयप्रवाह तेनुं प्ररूपण वा प्रबोधन जेमां छे ते; अथवा 'विवाह' एटले विशिष्ट विस्तारवाळी अथवा प्रमाणथी अबाधित प्रज्ञाओ–ज्ञान–जेमांथी मळी आवे छे ते 'विवाहप्रज्ञाप्ति,' 'विबाधप्रज्ञाप्ति. अथवा 'विवाह' के 'विबाध' एवी जे प्रज्ञप्ति अर्थप्ररूपण ते 'विवाहप्रज्ञप्ति,' 'विबाधप्रज्ञप्ति.' आने एना पूज्यपणाने लीधे 'भगवती' ए प्रमाणे पण कहेवाय छे.

व्या० प्रज्ञाप्ति,
प्रज्ञात्ति.
विवाह०" प्रज्ञप्ति.
विबाध०" प्रज्ञप्ति.
भगवती.

---

१. जेम 'भगवतीसूत्र,' द्वादशांगी अन्तर्गत होवाथी अने द्वादशांगी शाश्वती होवाथी उपसर्गोनो—विघ्नोनो [दुष्षम, दुष्षमदुष्षमादिसमयादिनो] निपात थये छते पण अव्यय–अनश्वरस्वरूप छे, तेम हस्ती पण उपसर्गोनो—विघ्नोनो [दुःखद अंकुशादिनो] निपात थये छते अव्यय–अनश्वर छे. आ विशेषण 'भगवतीसूत्र'ना पक्षमां बीजा प्रकारे पण घटावी शकाय छे.–'भगवतीसूत्र'मां उपसर्गो, (प्र, परा वगेरे) निपातो अने अव्ययो आवता होवाथी ते 'भगवतीसूत्र' उपसर्गनिपातअव्ययस्वरूप कहेवाय. २. जेम 'श्रीभगवतीसूत्र'ना उद्देशको सुवर्ण–सारा वर्णो-थी मंडित छे तेम हस्तीनो उद्देशक—शिरोभाग—सुवर्ण—सोना-थी मंडित छे—३. काल, विनय, बहुमान, उपधान, अनिह्नवन (अपलाप न करवो ते) व्यंजन, अर्थ अने तदुभय (व्यंजन अने अर्थ ए उभय) ए आठ प्रकारनो ज्ञानाचार छे.–पंचप्रतिक्रमणसूत्र. अथवा काल, आत्मरूप, संबंध, संसर्ग, उपकार, गुणिदेश, शब्द अने अर्थ ए आठ कालादि कह्या छे.–रत्नाकरावतारिका, चतुर्थ परिच्छेद.—अनु०.

५. इह व्याख्यातारः शास्त्रव्याख्यानारम्भे फल-योग-मङ्गल-समुदायार्थादीनि द्वाराणि वर्णयन्ति, तानि चेह व्याख्यायां 'विशेषावश्यका-' दिभ्योऽवसेयानि. शास्त्रकारास्तु विघ्नविनायकोपशमननिमित्तम्, विनेयजनप्रवर्त्तनाय च, शिष्टजनसमयसमाचरणाय वा मङ्गला-ऽभिधेय-प्रयोजन-सम्बन्धानुदाहरन्ति. तत्र च सकलकल्याणकारणतया अधिकृतशास्त्रस्य श्रेयोभूतत्वेन विघ्नाः सम्भवन्तीति तदुपशमनाय मङ्गला-न्तरव्यपोहेन भावमङ्गलमुपादेयम्, मङ्गलान्तरस्यानैकान्तिकत्वात्, अनात्यन्तिकत्वाच्च. भावमङ्गलस्य तु तद्विपरीततया अभिलषितार्थसाधन-समर्थत्वेन पूज्यत्वात्, आह च—"[3]किं पुण तमणेगंतिअमच्चंतं च ण जओऽभिहाणाई, तव्विवरीयं भावे तेण विसेसेण तं पुज्जं." भावमङ्गलस्य च तपःप्रभृतिभेदभिन्नत्वेन अनेकविधत्वेऽपि परमेष्ठिपञ्चकनमस्काररूपं विशेषेणोपादेयम्. परमेष्ठिनां मङ्गलत्वं लोकोत्तमत्व-शरण्य-त्वाभिधानात्. आह च—"चत्तारि मंगलं" इत्यादि. तन्नमस्कारस्य च सर्वपापप्रणाशकत्वेन सर्वविघ्नोपशमहेतुत्वात्. आह च—"एष पञ्चनमस्कारः सर्वपापप्रणाशनः, मङ्गलानां च सर्वेषां प्रथमं भवति मङ्गलम्." अत एवायं समस्तश्रुतस्कन्धानामादावुपादीयते, अत एव चायं तेषामभ्यन्तरतयाऽभिधीयते. यदाह—"सो सव्वसुअक्खंधब्भंतरभूओ"त्ति अतः शास्त्रस्यादावेव परमेष्ठिपञ्चकनमस्कारमुपदर्शयन्नाह—'णमो अरहन्ताणं' इत्यादि.

५. व्याख्यानकर्ताओ शास्त्रना व्याख्यानना आरंभे फल, योग, मंगल, समुदायार्थ वगेरे द्वारोनुं वर्णन करे छे. ते सर्व अहींनी व्याख्यामां 'विशेषावश्यक' वगेरे सूत्रमांथी निर्णीत करी लेवां. शास्त्रकारो तो विघ्नविनायकना उपशमन माटे, तेम ज शिष्यजनोना प्रवर्तनमाटे अथवा शिष्टज-नोना सिद्धांतना पालन माटे मंगल, अभिधेय, प्रयोजन अने संबंध कहे छे, अने तेमां प्रस्तुत (ग्रंथ) शास्त्र तो सकल कल्याणनुं कारण होवाथी श्रेयःस्वरूप छे अने तेथी तेमां विघ्नोनो संभव छे; माटे ते विघ्नोना उपशमार्थे बीजां मंगलोने न लेतां भावमंगलनुं ग्रहण करवुं जोइए; कारण के, बीजा मंगलो अनैकान्तिक अने अनात्यन्तिक छे; अने भावमङ्गल तो तेना करतां विपरीत—उलटुं- इष्टवस्तु साधवामां समर्थ होवाथी पूज्य छे. ([illegible]व्यमंगलो करतां भावमंगलमां विशेषता दर्शाववा कह्युं छे) के:—"वळी शुं विशेष छे? तो कहे छे:—जेथी; अभिधानादि—(नाममंगल, स्थापनामंगल अने द्रव्यमंगलो) अनैकान्तिक अने अनात्यन्तिक छे अने एनाथी भावमङ्गल विपरीत (इष्टसाधनमां समर्थ) होवाथी आदिमां विशेष पूज्य छे." वळी, ए भावमङ्गल तप वगेरे भेदोथी अनेक प्रकारनुं छे, पण तेमां परमेष्ठिपञ्चकनमस्काररूप भावमङ्गल विशेषे करीने ग्रहण करवु जोइए. परमेष्ठिमां मङ्गलत्व रहेलुं होवामां प्रमाणरूपे तेमनुं लोकोत्तमत्व अने शरण्यत्व वर्णवेलां छे. कह्युं छे के:—"मंगल चार छे" इत्यादि. ने परमेष्ठि नमस्कार सर्व पापनो नाशक होवाथी विघ्नशांतिमां कारण छे. कह्युं छे. के:-"ए पंचनमस्कार सर्व पापनो नाशक छे अने सर्व मंग-लोमां ते प्रथम मंगल छे." ए कारणथी सर्व श्रुतस्कन्धनी आदिमां तेनुं ग्रहण थाय छे अने तेथी ज ते सर्वश्रुतस्कन्धाभ्यंतर कहेवाय छे. कह्युं छे के:—"ते सर्व श्रुतस्कन्धनो अभ्यन्तरभूत छे" अने तेथी शास्त्रारंभमां ज परमेष्ठिपञ्चकना नमस्कारने ग्रहण करी दर्शावे छे:—

मगलविचारः

द्रव्यमगलव्यपोह.

भावमंगलकार्यता.

णमो अरहन्ताणं. णमो सिद्धाणं. णमो आयरियाणं. णमो उवज्झायाणं. णमो सव्वसाहूणं. * * * * णमो बंभीए लिवीए. * * * * * * णमो सुअस्स.

अर्हतोने नमस्कार हो. सिद्धोने नमस्कार हो. आचार्योने नमस्कार हो. उपाध्यायोने नमस्कार हो. सर्व साधुओने नमस्कार हो. ब्राह्मी लिपिने नमस्कार हो. * * * * * श्रुतने नमस्कार हो.

६. तत्र 'नमः' इति नैपातिकं पदं द्रव्य-भावसंकोचार्थम्. आह च—"नेवाइयं पयं दव्व-भावसंकोयण पयत्थो" नमः—कर-चरण-मस्तकसुप्रणिधानरूपो नमस्कारो भवत्वित्यर्थः. केभ्यः ?, इत्याह—अर्हद्भ्यः—अमरवरविनिर्मिताशोकादिमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः. यदाह—"अरिहंति वंदण—नमंसणाणि, अरिहंति पूय—सक्कारं, सिद्धिगमणं च अरहा अरहंता तेण वुच्चंति." अन-न्तेभ्यः.इह च चतुर्थ्यर्थे षष्ठी प्राकृतशैलीवशात्, अविद्यमान वा रह एकान्तरूपो देशः, अन्तश्च मध्यं गिरिगुहादीनाम्, सर्ववेदितया समस्त-वस्तुस्तोमगतप्रच्छन्नत्वस्याऽभावेन येषां ते अरहोऽन्तरः, अतस्तेभ्योऽरहोन्तर्भ्यः. अथवा अविद्यमानो रथः स्यन्दनः सकलपरिग्रहोपलक्षणभूतः, अन्तश्च विनाशो जराद्युपलक्षणभूतो येषां ते अरथान्ताः, अतस्तेभ्यः. अथवा 'अरहंताणं' ति क्वचिदप्यासक्तिमगच्छद्भ्यः क्षीणरागत्वात्. अथवा अरहयद्भ्यः—प्रकृष्टरागादिहेतुभूतमनोज्ञेतरविषयसम्पर्केऽपि वीतरागत्वादिकं स्वं स्वभावमत्यजद्भ्य इत्यर्थः. 'अरिहन्ताणं' इति

१. तस्स फल-मंगल-समुदायत्था तहेव दाराइं. इत्यादिविशेषावश्यकग्रन्थात्. २. द्रव्यमङ्गलव्यपोहेन. ३. विशेषावश्यकगाथा ५९. ४. प्र०छायाः—किं पुनस्तदनैकान्तिकमत्यन्तं च न यतोऽभिधानादि, तद्विपरीतं भावे तेन विशेषेण तत् पूज्यम्. ५. प्र०छायाः-चत्वारि मङ्गलम्. ६. एतत् संस्तारक-पौरुष्याम्. ७. एतत्समानपाठोऽयम्—एसो पञ्चनमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं.—नमस्कारमन्त्र. ८. प्र०छायाः-स सर्वश्रुतस्कन्धाभ्यन्तरभूत इति. ९. विशेषावश्यकगाथा ९. १०. मूलच्छाया.—नमोऽर्हद्भ्यः, नमः सिद्धेभ्यः, नम आचार्येभ्यः, नम उपाध्यायेभ्यः, नमः सर्वसाधुभ्यः. नमो ब्राह्म्यै लिप्यै. नमः श्रुताय. ११. प्र०छायाः—नैपातिकं पदं द्रव्य-भावसंकोचनं पदार्थः. तद्व्याख्यानमेवम्—अथ पदद्वारमुच्यते, पद्यते गम्यतेऽर्थोऽनेनेति पदम्. तच्च पञ्चधाः-नामिकम्, नैपातिकम्, औपसर्गिकम्, आख्यातिकम्, मिश्रं चेति. तत्र 'अश्वः' इति नामिकम्, 'खलु' इति नैपातिकम्, 'परि' इत्यौपसर्गिकम्, 'धावति' इत्याख्यातिकम्, 'संयतः' इति मिश्रम्. एवं नामादिपञ्चप्रकारपदसंभवे सत्याह—'नेवाइय पयं'ति निपतत्यर्हदादिपदानामादि पर्यन्तयोरिति निपातः, निपातादागतम्, तेन वा निर्वृत्तम्, स एव वा स्वार्थिकप्रत्ययविधानाद् नैपातिकं 'नमः' इति पदम्, इति पदद्वारम्. अथ पदार्थद्वारमुच्यते—'दव्व—भावसंकोयण पयत्थो'त्ति इह 'नमोऽर्हद्भ्यः' इत्यादिषु यद् 'नमः' इति पदं तस्य 'नमः' इति पदस्यार्थः पदार्थः, स पूजालक्षणः. सा च का ? इत्याह:—'दव्व-भावसंकोयण'त्ति द्रव्यसंकोचनम्, भावसंकोचनं च. तत्र द्रव्यसंकोचनं कर—शिरः—पादादिसंकोचः. भावसंकोचनं तु विशुद्धस्य मनसोऽर्हदादिगुणेषु निवेशः. विशेषावश्यकगाथा २८४०. १२. प्र०छायाः—अर्हन्ति वन्दन—नमस्यनानि अर्हन्ति पूजा— सत्कारम्, सिद्धिगमनं चार्हा अर्हन्तस्तेनोच्यन्ते.—आवश्यकनिर्युक्तौ नमस्कारनिर्युक्तिः.—अनु०

१. आ वात 'विशेषावश्यक'मां २ जी गाथाथी शरू थाय छे. २. बीजां मंगलो एटले द्रव्यमंगलो दहिं, अक्षत वगेरे. ३. आ अर्थ 'विशेषावश्य-क'मां ५९ मी गाथामां छे. ४. आ पाठ संथारापोरसीमां छे. ५. आ पाठनो समानार्थ प्राकृत पाठ 'नमस्कारमन्त्र' मां छे. ६. आ अर्थ 'विशेषावश्यक'मां ९ मी गाथामां छे. ७. अहीं 'नमो अरहन्ताणं' ए पदमां चतुर्थीना अर्थमां षष्ठी वापरेली छे ते प्राकृतशैलीना धोरणे छे.—श्री अभयदेव.

पाठान्तरम्. तत्र कर्मारिहन्तृभ्यः. आह च—"अट्ठविहं पि य कम्मं अरिभूअं होइ सयलजीवाणं, तं कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति." 'अरुहन्ताणं' इत्यपि पाठान्तरम्. तत्रारोहद्भ्योऽनुपजायमानेभ्यः, क्षीणकर्मबीजत्वात्. आह च-"दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः, कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः." नमस्करणीयता चैषां भीमभवगहनभ्रमणभीतभूतानामनुपमानन्दरूपपरमपदपुरपथप्रदर्शकत्वेन परमोपकारित्वादिति.

अर्हत्: नमः

६. 'णमो अरहंताणं' इत्यादि. अहीं 'नमः' ए नैपातिक (निपातरूप अव्यय) पद द्रव्यनुं अने भावनुं संकोचार्थक छे. कह्युं छे के:—"नमः ए पद द्रव्यनुं अने भावनुं संकोचार्थक छे." 'नमः' एटले हाथ, पग अने मस्तक वडे सुप्रणिधानरूप नमस्कार. कोने नमस्कार हो ? तो कहे छे के अर्हतोने. इन्द्रे निर्मेली अशोकादि महाप्रातिहार्यरूप पूजाने जे योग्य छे ते अर्हत्. कह्युं छे के:—"वंदन, नमस्कारने जे योग्य छे, पूजा, सत्कारने जे योग्य छे, अने सिद्धिगमनने जे योग्य छे तेथी ते अर्हत् कहेवाय छे. अथवा 'अरहोऽन्तरेभ्यः'-जेने सर्वज्ञताने लीधे सर्व वस्तुसमूहगत प्रच्छन्नतानो अभाव होई रह (एकान्तरूप प्रदेश) नथी, तेम ज गिरिगुहादिनो अन्तर(मध्यभाग) नथी अर्थात् जे सर्वज्ञपणाथी एकान्त प्रदेश अने मध्य प्रदेशने पण जोइ शके छे तेमने (नमस्कार हो.) अथवा 'अरथान्तेभ्यः'—एटले जेने सकल परिग्रहोपलक्षणभूत रथ नथी अने वृद्धावस्थादि उपलक्षणवाळो अन्त (विनाश) नथी ते 'अरथान्त' तेमने (नमस्कार हो.) अथवा 'अरहन्ताणं' एटले क्षीणरागताने लीधे जे कशामां पण आसक्ति राखता नथी ते 'अरहन्त' तेमने (नमस्कार हो.) अथवा 'अरहयद्भ्यः' एटले प्रकृष्ट रागना कारणभूत मनोहर अने अन्य विषयनो संबंध थवा छतां पण जे पोताना वीतरागतारूप स्वभावने त्यागता नथी तेमने (नमस्कार हो.) 'अरिहंताणं' एम पाठान्तर छे तेथी कर्मरूपशत्रुने हणनार तेमने (नमस्कार हो.) एम अर्थ करवो, कह्युं छे के:—"आठे प्रकारनुं कर्म सर्व जीवोना शत्रुरूप छे; ते कर्मशत्रुने जे हणे ते 'अरिहंत' कहेवाय छे." 'अरुहंताणं' एवो पण पाठ छे, 'अरोहद्भ्यः' एटले कर्मबीज क्षीण थवाथी जेने फरी उत्पत्ति नथी अर्थात् जेने फरी जन्मवुं नथी ते 'अरुहंत' तेमने (नमस्कार हो.) कह्युं छे के: "बीज बळी गया पछी जेम अत्यंत नवो अंकुर फूटतो नथी, तेम कर्मबीज बळी जतां भवांकुर (जन्मान्तर) उगतो नथी". भयंकर भवारण्यनां भ्रमणथी भयभीत थयेला प्राणीओने अनुपम आनन्दस्वरूप परमपदनगरना मार्ग दर्शाववारूप तेओना परम उपकारिपणाने लीधे तेओनी नमस्करणीयता (नमस्कारनी योग्यता) छे.

अर्हत्-अरहोन्तर. अरथांत. अरहयत्. अरिहंत. अरोहत्. अर्हदुपकार. अर्हन्नमस्करणीयता.

७. 'णमो सिद्धाणं'ति 'सितं बद्धम्'—अष्टप्रकारं कर्मेन्धनम्, ध्मातं दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते निरुक्तविधिना सिद्धाः. अथवा 'षिधु गतौ' इति वचनात् सेधन्ति स्म अपुनरावृत्त्या निर्वृतिपुरीमगच्छन्. अथवा 'षिधु संराद्धौ' इति वचनात् सिद्ध्यन्ति स्म निष्ठितार्था भवन्ति स्म. अथवा 'षिधूञ् शास्त्रे माङ्गल्ये च' इति वचनात् सेधन्ति स्म शासितारोऽभूवन्, माङ्गल्यरूपतां चानुभवन्ति स्मेति सिद्धाः अथवा सिद्धा नित्या अपर्यवसानस्थितिकत्वात्, प्रख्याता वा भव्यैरुपलब्धगुणसन्दोहत्वात्. आह च—"ध्मातं सितं येन पुराणकर्म यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि, ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे." अतस्तेभ्यो नमः. नमस्करणीयता चैषामविप्रणाशिज्ञान-दर्शन सुख वीर्यादिगुणयुक्ततया स्वविषयप्रमोदप्रकर्षोत्पादनेन भव्यानामतीवोपकारहेतुत्वादिति.

सिद्धः सिद्धशब्दार्थ.

७. 'णमो सिद्धाणं'ति आठे प्रकारना कर्मरूप इन्धनने शुक्ल ध्यानाग्निथी जेणे बाळी नांख्या छे ते (निरुक्तविधि प्रमाणे) 'सिद्ध,' (तेमने नमस्कार हो.) अथवा गत्यर्थक 'षिध' धातु उपरथी सिद्ध एटले अपुनरावृत्तिथी जेओ निर्वृतिपुरीमां पहोंच्या गया ते 'सिद्ध,' (तेमने नमस्कार हो.) अथवा निष्पत्त्यर्थक 'षिधु' धातु उपरथी सिद्ध एटले जेमना अर्थ निष्पन्न थया छे जेओ कृतकृत्य थया छे ते सिद्ध, (तेमने नमस्कार हो.) अथवा शास्त्रार्थक अने माङ्गल्यार्थक 'षिधूञ्' धातु उपरथी 'सिद्ध'एटले जेओ शासनकर्ता थया अथवा तो जेओ मंगलत्वना स्वरूपने अनुभवे छे-जेओ मंगलरूप छे ते 'सिद्ध,' (तेमने नमस्कार हो.) अथवा सिद्ध एटले नित्य कारण के तेमनी स्थिति अविनाशी छे तेमने, अथवा भव्य जीवोने जेमनो गुणसमूह उपलब्ध होवाथी जे प्रसिद्ध छे ते 'सिद्ध,' (तेमने नमस्कार हो.) कह्युं छे के.—"जेणे बांधेलुं प्राचीन कर्म दग्ध कर्युं छे, जे निर्वृतिरूप महेलना शिखरे पहोंची गया छे, जे ख्यात छे, अनुशासन करनार छे अने कृतार्थ छे ते सिद्ध प्रभु मारामाटे कृतमंगल थाओ" आम होवाथी ते सिद्धोने नमस्कार करेलो छे. तेओ अविनाशी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादिगुणयुक्त होवाथी स्वविषय आनन्दोत्कर्षना उत्पादक होई भव्य जीवोना उपर अप्रतिम उपकारिपणाने लीधे नमस्कार करवायोग्य छे,-ते तेमनी नमस्करणीयता छे.

सिद्धोपकारः सिद्धनमस्करणीयता.

---

१. प्र०छायाः—अष्टविधमपि च कर्मारिभूतं भवति सकलजीवानाम्, तं कर्मारिं हन्तारोऽरिहन्तारस्तेनोच्यन्ते—आवश्यकनिर्युक्तौ नमस्कारनिर्युक्तिः. २. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रे दशमाध्याये सभाष्यसूत्रभाष्येऽष्टमः श्लोकः. ३. एतत्समानप्राकृतम्—बीआण पुणरवि अगिदड्ढाणं अंकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाणं कम्मबीए दड्ढे पुनरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ.—औपपातिक सूत्रे (क० आ०) पृ—१४८. ४. इदं 'सिद्धशब्दविवेचनं प्रज्ञापनोपाङ्गे प्रथमपदे, पृ–२. (क० आ०)

१. आ अर्थ 'विशेषावश्यक'नी २८४० मी गाथामां छे तेनी व्याख्या आ प्रमाणे छे:—हवे पदद्वार कहीए छीए. पद एटले जेथी अर्थनुं ज्ञान थाय ते. ते पद पांच प्रकारनुं छे. नामिक, नैपातिक, औपसर्गिक, आख्यातिक, अने मिश्र. तेमां 'अश्व' ए नामिक, 'खलु' ए नैपातिक, 'परि' ए औपसर्गिक, 'धावति' ए आख्यातिक अने 'संयत' ए मिश्र पद छे. ए प्रमाणे पांच प्रकारना नामादि संभवे छे; तो कहे छे के- 'नेवाइयं पयं'ति. अर्हत् वगेरे पदोनी शरुआतमां अने छेडे जे निपते ते निपात. तेथी आवेलुं, तेथी बनेलुं अथवा ते ज, स्वार्थिकप्रत्यय थवाथी 'नैपातिक' कहेवाय. अने 'नमः' ए नैपातिक पद छे. ए प्रमाणे पदद्वार कह्युं. हवे पदार्थद्वार कहे छे के, दव्व-भावसंकोयण पयत्थो'त्ति, अहीं 'नमोऽर्हद्भ्यः' इत्यादिमां जे 'नमः' ए पद छे, तेनो पूजारूप अर्थ ते पदार्थ छे, ते पूजा कइ? तो कहे छे के-'दव्व-भावसंकोयण'त्ति द्रव्यसंकोचन अने भावसंकोचन, द्रव्यसंकोचन एटले हाथ, माथुं अने पग वगेरेनुं संकोचवुं अने भावसंकोचन एटले विशुद्धमननुं अर्हत् वगेरेना गुणोमां निवेशन करवुं. २. आ गाथा आवश्यक निर्युक्तिमां, नमस्कारनिर्युक्तिमां छे. ३. आ अर्थ तत्त्वार्थाधिगममां १० मा अध्यायमां ७ मा सूत्रना भाष्यना ८ मा श्लोकमां छे. ४. आ पाठने मळतो प्राकृत पाठ औपपातिक सूत्र (क० आ०) मां १४८ में पाने छे. ५. आ 'सिद्ध' शब्दनुं विवेचन प्रज्ञापना उपांग (क० आ०)मां २ जे पाने छे.—अनु०

८. *'णमो आयरियाणं'ति* आ—मर्यादया तद्विषयविनयरूपया, चर्यन्ते सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकाङ्क्षिभिरित्याचार्याः. उक्तं च:—*"सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य, गणततिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आयरिओ"* त्ति. अथवा आचारो ज्ञानाचारादिः पञ्चधा, आ—मर्यादया वा चारो विहार आचारः, तत्र साधवः स्वयंकरणात्, प्रभाषणात्, प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः. आह च:—*"पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पभासंता, आयारं दंसंता आयरिआ तेण वुच्चंति."* अथवा आ—ईषद् अपरिपूर्णा इत्यर्थः, चारा हेरिका ये ते आचाराश्चारकल्पा इत्यर्थः—युक्तायुक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेयाः, अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतयेत्याचार्याः, अतस्तेभ्यः. नमस्यता चैषामाचारोपदेशकतयोपकारित्वात्.

८. 'णमो आयरियाणं'ति- आचार्योने नमस्कार हो. आ=मर्यादापूर्वक+चार्य=सेवाय जे मर्यादापूर्वक सेवाय ते. अर्थात् जिनशासनना अर्थना उपदेशक होवाथी तेनी (जिनशासननी) आकांक्षा राखनाराओवडे जेओ तद्विषय (आचार्यविषय) विनयरूप मर्यादापूर्वक सेवाय तेओ 'आचार्य. कह्युं छे केः- "सूत्रार्थने जाणनार, लक्षणयुक्त, गच्छना नायक, गणना तापथी विमुक्त एवा आचार्य अर्थना वाचक छे: अर्थात् (ते आचार्य कहेवाय.)" अथवा ज्ञानाचारादि पांच प्रकारना आचार. वा आ=मर्यादापूर्वक+चार एटले विहार ते 'आचार,' तेने विषे स्वयं आचरवाथी, कहेवाथी, अने दर्शाववाथी जे श्रेष्ठ ते 'आचार्य.' कह्युं छे केः "पांचे प्रकारना आचारने जे आचरता, प्रभाषता कहेता अने दर्शावता ते 'आचार्यो' कहेवाय." अथवा आ=कंइक अपरिपूर्ण+चार+दूत ते 'आचार' एटले चारजेवा, युक्तायुक्त विभागनुं निरूपण करवामां जे चतुर शिष्यो. ते शिष्योमां यथार्थ शास्त्रार्थनो उपदेश करवाथी जेओ साधु (निपुण) तेओ 'आचार्य.' माटे ते आचार्योने नमस्कार हो. तेओ आचारना उपदेशक होवाथी ते उपकारिपणाने लीधे नमस्कारने योग्य छे.

आचार्यः

आचार्यशब्दार्थ.

आचार्योपकार.

९. *'णमो उवज्झायाणं'ति* उप समीपमागत्य, अधीयते—'इङ् अध्ययने' इति वचनात् पठ्यते; 'इण् गतौ' इति वचनाद् वा अधि—आधिक्येन गम्यते; 'इक् स्मरणे' इति वचनाद् वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचन येभ्यस्ते उपाध्यायाः. यदाहः *"बारसंगो जिणक्खाओ सज्झाओ कहिओ बुहे, तं उवइसंति जम्हा उवज्झाया तेण वुच्चंति."* अथवा उपाधानम् उपाधिः—संनिधिस्तेनोपाधिना. उपाधौ वा आयो लाभः श्रुतस्य येषाम्, उपाधीनां वा विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो लाभो येभ्यः, अथवा उपाधिरेव सन्निधिरेव, आयम् इष्टफलं दैवजनितत्वेन, आयानामिष्टफलानां समूहस्तदेकहेतुत्वाद् येषाम्; अथवा आधीनां मनःपीडानामायो लाभ आध्यायः, अधियां वा नञः कुत्सार्थत्वात् कुबुद्धीनामायोऽध्यायः. 'ध्यै चिन्तायाम्' इत्यस्य धातोः प्रयोगाद् नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वा अध्यायः, उपहतः आध्यायः, अध्यायो वा यैस्ते उपाध्यायाः, अतस्तेभ्यः. नमस्यता चैषां सुसंप्रदायायातजिनवचनाध्यापनतो विनयनेन भव्यानामुपकारित्वादिति.

९. 'णमो उवज्झायाणं'ति उपाध्यायोने नमस्कार हो. उप जेओनी समीप आवीने (अध्ययनार्थ 'इङ्' धातुपरथी) सूत्रात्मकजिनशास्त्रनुं अध्ययन कराय (जेमनी पासे जइने भणाय) तेओ उपाध्याय कहेवाय, अथवा (गत्यर्थक 'इण्' धातुपरथी) अधि-अधिकताथी जिनप्रवचन जेमनाथी जणाय ते उपाध्याय, अथवा (स्मरणार्थक 'इक्' धातुपरथी) अधिकपणे जेमनाथी सूत्रथी जिनशास्त्र स्मराय ते 'उपाध्याय' कहेवाय. कह्युं छे केः "जिनेश्वर कथित द्वादशांगरूप स्वाध्याय पंडितोए, गणधरोए कहेलो छे ते स्वाध्यायनो जेओ उपदेश करे तेओ 'उपाध्याय' कहेवाय". अथवा उपाधान एटले उपाधि, उपाधि एटले समीपता—जेनी समीपताथी के समीपतामां श्रुतज्ञाननो लाभ थाय ते 'उपाध्याय.' अथवा उपाधिनो एटले सारां सारां विशेषणोनो लाभ जेमनी पासेथी मळे ते 'उपाध्याय'. अथवा उपाधि एटले सामीप्य, जेमनुं सामीप्य ज दैवजनितनाए इष्टफलरूप होवाथी लाभरूप छे अथवा जेओनुं सामीप्य आय- इष्ट फल- ना समूहनो मुख्य हेतु छे ते 'उपाध्याय.' अथवा 'आधि'नो एटले मननी पीडानो लाभ ते 'आध्याय,' अथवा 'अधी' शब्दमां नकारवाचक 'अ' कुत्सित अर्थमां वपरायेलो छे तेथी 'अधी' एटले 'कुबुद्धि' तेनो लाभ ते 'अध्यायः' 'ध्यै' धातुनो अर्थ चिंतन करवुं एवो थाय छे अने नकारवाचक 'अ' कुत्सितार्थमां वपरायेलो छे एथी 'अध्याय' एटले 'दुर्ध्यान,' जेनाथी आध्याय अथवा अध्याय नाश पाम्यो छे ते 'उपाध्याय' कहेवाय. ते उपाध्यायने नमस्कार हो. सुसंप्रदायथी आवेला जिनवचनोनुं अध्यापन करावी भव्य जीवोने विनयमां प्रवर्तावे छे ते उपकारिपणाने लीधे तेओ नमस्कार करवा योग्य छे.

उपाध्यायः

उपाध्यायशब्दार्थ.

उपाध्यायोपकार.

१०. *'णमो सव्वसाहूणं' इति* साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति साधवः, समतां वा सर्वभूतेषु ध्यायन्तीति निरुक्तिन्यायात् साधवः, यदाहः—*"निव्वाणसाहए जोए जम्हा साहेंति साहुणो, समा य सव्वभूएसु तम्हा ते भावसाहुणो".* साहायकं वा संयमकारिणां धारयन्तीति साधवः, निरुक्तेरेव; सर्वे च ते सामायिकादिविशेषणाः प्रमत्तादयः, पुलाकादयो जिनकल्पिक- प्रतिमाकल्पिक- यथालन्दकल्पिक -परिहारविशुद्धिकल्पिक-स्थविरकल्पिक स्थितकल्पिक-स्थितास्थितकल्पिक-कल्पातीतभेदाः, प्रत्येकबुद्ध स्वयंबुद्ध-बुद्धबोधितभेदाः, भारतादिभेदाः, सुषमदुष्षमादिविशेषिता वा साधवः सर्वसाधवः, सर्वग्रहणं च सर्वेषां गुणवतामविशेषनमनीयताप्रतिपादनार्थम्, इदं चार्हदादिपदेष्वपि बोद्धव्यम्, न्यायस्य समानत्वादिति. अथवा सर्वेभ्यो जीवेभ्यो हिताः सार्वास्ते च ते साधवश्च, सार्वस्य वाऽर्हतो न तु बुद्धादेः, साधवः सार्वसाधवः, सर्वान् वा शुभयोगान् साधयन्ति कुर्वन्ति, सार्वान् वाऽर्हतः साधयन्ति तदाज्ञाकरणादाराधयन्ति, प्रतिष्ठापयन्ति वा दुर्नयनिराकरणादिति

---

१. प्र०छायाः—सूत्रार्थविल् लक्षणयुक्तो गच्छस्य मेधिभूतश्च, गणतप्तिविप्रमुक्तोऽर्थं वाचयत्याचार्यः. इयं च—आवश्यकनिर्युक्तौ नमस्कारनिर्युक्तौ.
२. प्र०छायाः—पञ्चविधमाचारमाचरमाणास्तथा प्रभाषमाणाः, आचारं दर्शयन्त आचार्यास्तेनोच्यन्ते. इयं च—विशेषावश्यकसूत्रे गाथा ३१९०.
३. प्र०छायाः—द्वादशाङ्गो जिनाख्यातः स्वाध्यायः कथितो बुधैः, तमुपदिशन्ति यस्माद् उपाध्यायास्तेनोच्यन्ते. इयं च—विशेषावश्यकसूत्र गाथा ३१९७.
४. प्र०छायाः—निर्वाणसाधकान् योगान् यस्मात् साधयन्ति साधवः, समाश्च सर्वभूतेषु तस्मात् ते भावसाधवः. इयं च—आवश्यकनिर्युक्तौ नमस्कारनिर्युक्तौ.

१. आ गाथा आवश्यकनिर्युक्तिमां नमस्कारनिर्युक्तिमां छे. २. आ गाथा 'विशेषावश्यक'मां ३१९० मी छे. ३. आ गाथा 'विशेषावश्यक' सूत्रमां ३१९७ मी छे.

सर्वसाधवः, सार्वसाधवो वा; अथवा श्रव्येषु श्रवणार्हेषु वाक्येषु, अथवा सव्यानि दक्षिणान्यनुकूलानि यानि कार्याणि तेषु साधवो निपुणाः श्रव्यसाधवः, सव्यसाधवो वा; अतस्तेभ्यः. *'णमो लोए सव्वसाहूणं'इति* क्वचित्पाठः, तत्र सर्वशब्दस्य देशसर्वतायामपि दर्शनादपरिशेष— सर्वतोपदर्शनार्थमुच्यते—लोके मनुष्यलोके, न तु गच्छादौ, ये सर्वसाधवस्तेभ्यो नम इति. एषां च नमनीयता मोक्षमार्गसाहायककरणेनो- पकारित्वात्. आह च -*"असहाए सहायत्तं करेंति मे संजमं करेंतस्स, एएण कारणेणं णमामि हं सव्वसाहूणं"*ति.

साधु.

१०. 'णमो सव्वसाहूणं'ति सर्व साधुओने नमस्कार हो. ज्ञानादिशक्तिवडे मोक्षने साधनार अथवा (निरुक्ति प्रमाणे) सर्व प्राणीमां समत्व धारनार ते साधु कहेवाय. कह्यु छे के. "निर्वाणसाधक (ज्ञानादिक) योगने जेओ साधे अने सर्व प्राणीओने विषे जेओ सम होय ते 'भावसाधु' कहेवाय छे." अथवा संयम करनारने सहाय आपे ते (निरुक्ति प्रमाणे) 'साधु' कहेवाय छे. सामायिकादि विशेषणयुक्त प्रमत्तादिक, पुलाकादिक, जिनकल्पिक, प्रतिमाकल्पिक, यथालंदकल्पिक, परिहारविशुद्धिकल्पिक, स्थविरकल्पिक, स्थितकल्पिक, स्थितास्थितकल्पिक, तथा कल्पातीत भेदवाळा; प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध, बुद्धबोधित वगेरे भेदवाळा; भरतादिक्षेत्रभेदवाळा, अथवा सुषम, दुष्षमादि काळभेदवाळा ते सर्व साधु. अही ('सव्वसाहूणं' एमां) 'सर्व' पद लीधुं छे ते सर्व गुणवानोनी अविशेषे नमनीयता प्रतिपादनार्थ छे अने एप्रमाणे ते 'सर्व' पद अर्हदादि पदमां पण जाणी लेवु; कारणके, न्याय समान छे. अथवा सर्व जीवोना हित-

साधुशब्दार्थ.

सर्वसाधु.

कर ते 'सार्व' अने तेवा जे सार्व साधुओ तेमने नमस्कार हो. अथवा सार्व एटले बुद्धादिना नहीं पण अर्हतना ज जे साधु ते 'सार्वसाधु,' तेमने नमस्कार हो. अथवा सर्व शुभयोगने साधे ते 'सर्वसाधु;' अथवा सार्व अर्हतो ने तेमनी (अर्हतोनी) आज्ञा प्रमाणे वर्तीने आराधे, अथवा दुर्नयनो नाश करी अर्हतोने प्रतिष्ठापे ते 'सार्वसाधु' कहेवाय. तेमने नमस्कार हो. अथवा श्रव्य एटले श्रवण करवायोग्य वाक्य तेमां, अथवा सव्य एटले अनुकूल एवा जे कार्य तेमां निपुण ते 'श्रव्यसाधु' अथवा 'सव्यसाधु' कहेवाय. माटे तेवा साधुओने नमस्कार हो. 'णमो लोए सव्वसाहूणं' एवो पण केटलेक ठेकाणे पाठ छे. 'सर्व' शब्द देशसर्वतानो पण वाचक होवाथी अपरिशेष सर्वता बतावबाने त्यां 'लोके' ए शब्द लीधो छे. 'लोके' एटले मनुष्यलोकमां, नहीं के गच्छादिमां, मां॰ ते सर्व साधुओने नमस्कार हो. मोक्षमार्गमां सहायकारी होवाथी ते उपकारिपणाने लीधे तेओनी नमनीयता छे. कह्युं छे केः "संयमनु पालन करनार मने असहायने (साधुओ) सहाय करता होवाथी सर्व साधुओने नमस्कार करु छुं."

सार्वसाधु.

श्रव्यसाधु.

सव्यसाधु.

साधूपकार.

११. ननु यद्ययं संक्षेपेण नमस्कारस्तदा सिद्ध साधूनामेव युक्त , तद्ग्रहणेऽन्येषामप्यर्हदादीना ग्रहणात् , यतोऽर्हदादयो न साधुत्वं व्यभि चरन्ति. अथ विस्तरेण, तदा ऋषभादिव्यक्तिगमुच्चारणतोऽसौ वाच्य स्यादिति. नैवम्, यतो न साधुमात्रनमस्कारेऽर्हदादिनमस्का रफलमवाप्यते, मनुष्यमात्रनमस्कारे राजादिनमस्कारफलवदिति कर्तव्यो विशेषतोऽसौ, प्रतिव्यक्ति तु नासौ वाच्योऽशक्यत्वादेवेति. ननु यथाप्रधानन्यायमङ्गीकृत्य सिद्धादिरानुपूर्वी युक्ता, अत्र सिद्धाना सर्वथा कृतकृत्यत्वेन सर्वप्रधानत्वात्. नैवम् , अर्हदुपदेशेन सिद्धानां ज्ञायमा नत्वात्, अर्हतामेव च तीर्थप्रवर्त्तनेनात्यन्तोपकारित्वादित्यर्हदादिरेव सा. नन्वेवमाचार्यादे सा प्राप्नोति', क्वचित् काले आचार्येभ्य सका शादर्हदादीना ज्ञायमानत्वाद् . अत एव च तेषामेव अत्यन्तोपकारित्वात्. नैवम् , आचार्याणामुपदेशदानसामर्थ्यमर्हदुपदेशात एव, नहि स्वतन्त्रा आचार्यादय उपदेशतोऽर्थज्ञापकत्व प्रतिपद्यन्ते, अतोऽर्हन्त एव परमार्थेन सर्वार्थज्ञापका , तथाऽर्हत्परिषद्रूपा एवाऽऽचार्यादयः अतस्तान्नमस्कृत्यार्हन्नमस्करणमयुक्तम. उक्त च —*"नै वि कोइ परिसाए पणमित्ता पणमए रण्णो"*त्ति.

एवं तावत् परमेष्ठिनो नमस्कृत्याऽधुनातनजनाना श्रुतज्ञानस्यात्यन्तोपकारित्वात् तस्य च द्रव्य- भावश्रुतरूपत्वाद् भावश्रुतस्य च द्रव्यश्रुतहेतुक त्वात् संज्ञाऽक्षररूप द्रव्यश्रुत नमस्कुर्वन्नाह - *'णमो बंभीए लिवीए'त्ति लिपिः* पुस्तकादावक्षरविन्यास', सा चाष्टादशप्रकाराऽपि श्रीमन्नाभेयजिनेन स्वसुताया ब्राह्मीनामिकाया दर्शिता, ततो ब्राह्मीत्यभिधीयते. आह च —*"लेह लिवीविहाणं जिणेणे बंभीए दाहिणकरेण"* इति. अतो 'ब्राह्मी'ति स्वरूपविशेषणं लिपेरिति. ननु अधिकृतशास्त्रस्यैव मङ्गलत्वात् किं मङ्गलेन ' अनवस्थादिदोषप्राप्तं . सत्यम . किन्तु शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थं मङ्गलोपादान शिष्टसमयपरिपालनाय चेयुक्तमेवेति.

---

१. आवश्यकनिर्युक्तौ नमस्कारनिर्युक्तौ २ प्र०छाया —असहाये सहायत्व कुर्वन्ति मम संयमं कुर्वत , एतेन कारणेन नमाम्यहं सर्वसाधूनाम्. ३. एतत्समानार्थोऽय प्राकृतपाठ —अरहंतुवएसेणं सिद्धा नज्जन्ति तेण अरहाई,—विशेषावश्यकसूत्रे गाथा ३२१३. ४. प्र०छाया.—नाऽपि कश्चित् परिषदे प्रणम्य प्रणमति राज्ञे. इति—विशेषावश्यकसूत्रे गाथा ३२१२. ५ अष्टादश लिपय —हंसलिवी भूअलिवी, जक्खी तह रक्खसी य बोधव्वा, उड्डी जवणि तुरुक्की, कीरी दविडी य सिंधवीया. मालविणी नडि नागरी, लाडलिवी पारसी य बोधव्वा तह अनिमित्ती य लिवी, चाणक्की मूलदेवी य—विशेषावश्यकसूत्रे, गाथाटीका ४६४. ६ प्र०छाया —लेखं लिपीविधानं जिनेन ब्राह्म्या दक्षिणकरेण. ७. इयं गाथा— आवश्यकनिर्युक्तौ उपोद्घातनिर्युक्तौ ८ एतत्समानार्थोऽयम् —लिखितं हंसलिप्याद्यष्टादशलिपिविधानम्, तच्च भगवता दक्षिणकरेण ब्राह्म्या उपदिष्टम्— कल्पसूत्रे श्रीऋषभदेवचरित्रे. ९. अत्र विशेषचर्चा त्वियम्.—मंगलकरणा सत्थं न मंगलं, अह च मंगलस्सावि, मंगलमओऽणवत्था, न मंगल- ममंगलत्ता वा —विशेषावश्यकमूल, गाथा ११ प्रेरक प्राह—भो आचार्य! त्वदीयं शास्त्रं न मङ्गलं प्राप्नोति. कुत.? इत्याह —मङ्गलकरणात्, अमङ्गले हि मङ्गलमुपादीयते. यत्तु स्वयमेव मङ्गलं तत्र किं मङ्गलविधानेन?, न हि शुक्लं शुक्लीक्रियते, नाऽपि स्निग्धं स्नेह्यते; तस्माद् तन्मङ्गलोपादानान्यथानुपपत्तेः शास्त्रं न मङ्गलम्. अथ मङ्गलं शास्त्रम्, मङ्गलस्याऽपि सतस्तस्याऽन्यद् मङ्गलं क्रियत इत्यभ्युपगम्यते; अत एवं सति तर्हि अनवस्था—मङ्गलानामवस्थान न क्वचित् प्राप्नोति. तथाहि—यथा मङ्गलस्याऽपि सतः शास्त्रस्य अन्यद् मङ्गलमुपादीयते, तथा मङ्गलस्याऽपि तद्रूपस्य सतोऽन्यद मङ्गलमुपादेयम्, तस्याऽप्यन्यद् अपरस्याप्यन्यत्, इत्येवमनवस्था आपतन्ती केन वार्यते? अथ शास्त्रे समुपात्तं मङ्गलं तस्यान्यमङ्गलकरणाभावाद् इय नेष्यते; तत्र दूषणमाह.—'न मङ्गल' इति. शास्त्रमङ्गलीकरणार्थमुपात्तमङ्गलस्यानवस्थाभयेनान्यमङ्गलाकरणेन तद् मङ्गलं न स्यात, अन्यमङ्गलाभावात्, शास्त्रवत्, इत्यर्थ.. इदमुक्तं भवति—यदि मङ्गलस्य अपरमङ्गलविधानाभावेनानवस्था नेष्यते, तर्हि यथा मङ्गलमपि शास्त्रमन्यमङ्गलेऽकृते मङ्गलं न भवति, तथा मङ्गलमप्यन्यमङ्गलेऽविहिते मङ्गलं न भवेत्, न्यायस्य समानत्वात् तथा च किमनिष्टं स्यात्? इत्याह:—

१. आ गाथा 'आवश्यकनिर्युक्ति'मां आवेली नमस्कार निर्युक्तिमां छे.

११. शंका:--जो आ नमस्कार संक्षेपथी करवो होय तो सिद्धने अने साधुओने नमस्कार करवो युक्त छे; कारण के, सिद्धोनुं अने साधुओनुं ग्रहण कर्युं तो अर्हत् वगेरेने विषे पण साधुपणानो व्यभिचार नहीं होवाथी तेओलुं ग्रहण पण सहेलाइथी थई जशे अने जो विस्तारपूर्वक नमस्कार करवो होय तो ऋषभस्वामि वगेरे अर्हतोने भिन्नभिन्न--नामोच्चारणपूर्वक--नमस्कार करवो जोइए. समा०--एम नहीं. जेम अविशेष (सामान्यरीते) मनुष्योने नमस्कार कर्ये छते राजादिक मोटा पुरुषोना नमस्कारनुं फळ नमस्कर्ताने मळतुं नथी तेम अविशेष साधुमात्रने नमस्कार कर्ये छते अर्हत् विगेरेना नमस्कारनुं फळ मळतुं नथी. तेथी विशेषथी--भिन्न भिन्न प्रकारे--ग्रहण करी अर्हतादिने पण नमस्कार करवो जोइए. परंतु भिन्नभिन्न अर्हत व्यक्तिओनो नामोच्चारणपूर्वक नमस्कार करवो अशक्य ज होवाथी ते प्रतिव्यक्ति नमस्कार अहीं कथनीय नथी, अने एटला माटे ज सुशक्य साधारण अर्हतनमस्कार अहीं कर्यो छे; तेमां सर्व अर्हत व्यक्तिओनो समावेश थयेलो छे. शंका:--यथाप्रधानन्यायने अंगीकरीने जे प्रधान होय तेमने प्रथम नमस्कार करवो उचित छे. अर्थात् आ पंचनमस्कारमां प्रथम सिद्ध, पछी अर्हत, आचार्य, उपाध्याय अने साधु, ए प्रकारे आनुपूर्वी (अनुक्रम) राखवी युक्त छे, कारणके, सर्वप्रकारे कृतकृत्य होवाथी सर्वथी प्रधान जे सिद्धो तेमने प्रथम नमस्कार करवो जोइए. समा०--एम नहीं. कारण के, अर्हतना उपदेशथी ज सिद्धो ओळखाय छे; तथा तीर्थना प्रवर्तक होवाथी अर्हतो ज अत्यंत उपकारक छे माटे ते आनुपूर्वी (क्रम) अर्हतथी शरु थती--अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधु, एप्रमाणे ज युक्त छे. शंका:- जो एम होय--उपकारकने ज प्रथम नमस्कार करवो उचित होय- तो ते क्रम आचार्यथी शरु थतो प्रथम आचार्य पछी अर्हतादि, एप्रमाणे--राखवो जोइए; अर्थात् आचार्योने प्रथम नमस्कार करवो जोइए. कारण के, कोइ वखते अर्हतो पण आचार्योथी ज्ञायमान ओळखाय छे, अने तेथी ज तेओ पण अत्यन्त उपकारक होवाथी प्रथम नमस्करणीय छे. समा० एम नहीं. अर्हतना उपदेशथी ज आचार्योनुं उपदेश देवानुं सामर्थ्य छे. आचार्यो स्वतंत्रपणे उपदेशद्वारा अर्थनी ज्ञापकतावाळा नथी--अर्थने जणावता नथी, तेथी तत्त्वतः अर्हतो ज सकल अर्थोना ज्ञापक जणाववावाळा--छे. वळी अर्हतनी सभारूप आचार्यो छे अर्थात् आचार्यो अर्हतनी सभाना सभ्यो--समासदो--छे तेथी तेमने--आचार्योने--नमस्कार करी अर्हतोने नमस्कार करवो युक्त छे. कह्युं छे के:--"कोई पण माणस परिषदने कचेरीने--नमस्कार करी पछी राजाने नमस्कार न करे, परंतु पहेलां ज राजाने ज नमस्कार करे".

नमस्कारचर्चा:

अर्हदादिने पृथक् नमस्कार.

ऋषभादिने पृथक् नमस्कार घटे ?

अर्हदादिने भिन्न नमस्कारनो हेतु.

प्रथम सिद्धोने नमस्कार शामाटे नहीं ?

सिद्धपूर्व अर्हतने नमस्कारनो हेतु.

प्रथम आचार्योने नमस्कार घटे ?

अर्हदधीन आचार्य-सामर्थ्य.

ए प्रमाणे पंचपरमेष्ठिने प्रथम नमस्कार करी हालना मनुष्योने श्रुतज्ञान अत्यन्त उपकारक होवाथी अने तेना (श्रुतना) द्रव्यश्रुत अने भावश्रुत एवा बे भेदने विषे द्रव्यश्रुत, भावश्रुतनुं कारण होवाथी संज्ञाअक्षररूप द्रव्यश्रुतने नमस्कार करता शास्त्रकार कहे छे:--[णमो बंभीए लिवीए'त्ति--] ब्राह्मी लिपिने नमस्कार हो. पुस्तक वगेरेने विषे अक्षरनी जे रचना ते लिपि. ते अढारे प्रकारनी लिपि श्रीऋषभदेव-प्रभुए पोतानी ब्राह्मी नामनी पुत्रीने बतावी जेथी ते 'ब्राह्मी' कहेवाय छे. कह्युं छे के:--"श्रीजिनेश्वरे (आदीश्वरप्रभुए) जमणे हाथे लेखरूप लिपिनुं विधान ब्राह्मीने शिखव्युं." तेथी 'ब्राह्मी' ए प्रमाणे, लिपिनुं स्वरूपविशेषण छे. शंका:--आ शास्त्र ज मंगलरूप छे, छतां शामाटे शास्त्रकारे जुदा मंगलनो उल्लेख कर्यो ? तेम करवाथी--मंगलरूप शास्त्रमां पण जुदुं मंगल करवाथी--'अनवस्था' वगेरे दोषोनी प्राप्ति थशे. समा०-- सत्य छे. परंतु

द्रव्यश्रुतप्राधान्य:

ब्राह्मीलिपि:

शास्त्र ज मंगलस्वरूप छतां पुनः मंगल ?:

मूलटीका--मङ्गलाभाव:--शास्त्रे यद् मङ्गलमुपात्तं ...न्यमङ्गलत्वात् न मङ्गलम्, तस्य च मङ्गलत्वाभावे शास्त्रमपि न मङ्गलम्, इति व्यक्त एव मङ्गलाभाव इति भाव:. 'वा' शब्द: प... ...सूचक:--अनवस्था, मङ्गलाभावो वेत्यर्थ:--विशेषावश्यकगाथाटीका १५. ११. एतत्समानार्थोऽयम्:--शिष्यमङ्गलपरिग्गहत्थमेतं तद... ...ण.--विशेषावश्यकसूत्रगाथा, २०. किन्तु शिष्यमतिमङ्गलपरिग्रहार्थम्, शिष्यो हि तस्मिन्नभिहिते 'मङ्गलमेत-च्छास्त्रम्, इत्येवं स्मृतौ त... ...ङ्गलतापरिग्रहं करोतीति भाव:--विशेषावश्यकगाथाटीका, २०.

१. अर्थात् ...थव इच्छनार शास्त्रकारे बे नमस्कार ज करवा जोइए:--एक नमस्कार सिद्धोने करवो जोइए, जेथी सिद्धोमां सर्वमुक्तात्माओनो अने अतीत तीर्थंकरोनो अन्तर्भाव थाय छे; अने बीजो नमस्कार साधुओने करवो जोइए, जेथी साधुओमां, विहरता अर्हतोनो, आचार्योनो अने उपाध्यायोनो अन्तर्भाव थइ शके छे, कारण के ते--अर्हतो, आचार्यो अने उपाध्यायो--पण साधुओ ज होय छे. २. आ अर्थवाळो प्राकृत पाठ 'विशेषावश्यक' सूत्रमां ३२१३ मी गाथामां छे. ३. आ कथन 'विशेषावश्यक' सूत्रमां ३२१३ मी गाथामां आवेलुं छे. ४. अढार लिपिओ कही छे ते आ प्रमाणे:--१ हंसलिपि, २ भूतलिपि, ३ जक्षीलिपि, ४ राक्षसीलिपि, ५ उड्डीलिपि, ६ यवनीलिपि, ७ तुरक्कीलिपि, ८ कीरीलिपि, ९ द्रविडीलिपि, १० सिंधवीयलिपि, ११ मालवीनीलिपि, १२ नटीलिपि, १३ नागरीलिपि, १४ लाटलिपि, १५ पारसीलिपि, १६ अनिमित्तीलिपि, १७ चाणाक्यलिपि, १८ मूलदेवीलिपि--विशेषावश्यकसूत्र, गाथाटीका ४६४. ५. आ गाथा आवश्यकनिर्युक्तिमां उपोद्घात निर्युक्तिमां छे अने आ अर्थने दर्शावनारो संस्कृत पाठ श्रीकल्पसूत्रमां आदीश्वरचरित्रमां छे. ६. विशेषणो बे प्रकारनां छे.--एक व्यावर्तक विशेषण अने बीजुं स्वरूप विशेषण. व्यावर्तक विशेषण ते ज कहेवाय के जे, विशेष्य पदार्थने बीजा बधा पदार्थोथी व्यावृत्त-जुदो-करे, अने स्वरूप विशेषण ते ज कहेवाय के जे, मात्र स्वतो व्यावृत्त विशेष्य पदार्थना स्वरूपने दर्शावे. ७. 'अनवस्था' आदिशब्दथी बीजा दोषो पण आवेछे एम समजवुं आ वात विशेष प्रकारे आ प्रमाणे स्पष्ट करेली छे: प्रेरक-प्रतिवादी-कहे छे के:--हे आचार्य! तमे आ शास्त्रमां मंगल कर्युं छे माटे तमारुं शास्त्र मंगलपणाने प्राप्त करतुं नथी. जे अमंगल--मंगलरूप न होय तेमां ज मंगलनुं ग्रहण थाय छे; जे पोताना स्वभावे ज मंगलरूप छे: तेमां (बीजुं) मंगल करवाथी शुं? लोक-संसार-मां पण 'धोळाने धोळुं करवुं, चिकणाने चिकणुं करवु' एम बनतुं नथी माटे मंगलरूप शास्त्रने पण मंगल करवानी जरूर नथी. छतां शास्त्रमां ग्रहण करेल मंगलनी अन्यथा--बीजे प्रकारे--उपपत्ति--सफलता--न थती होवाथी एम स्वीकारवुं ज जोइए के शास्त्र मंगलरूप नथी; कदाच मंगलरूपने पण मंगल करनार एम स्वीकारे के मंगलरूप शास्त्रनुं पण बीजुं मंगल कराय छे; तो तेम स्वीकारवामां 'अनवस्था' दूषण आवशे एटले कोइ पण स्थळे मंगलनुं अवस्थान थशे नहीं. अनवस्थानुं स्वरूप दर्शावेछे:--मंगलरूपशास्त्र छे तो पण तेनुं बीजुं मंगल कराय छे. तेमज मंगलरूप मंगलनुं पण बीजुं मंगल करवुं जोइए, तेम ज तेनुं पण बीजुं मंगल अने तेनुं पण इतर मंगल करवुं जोइए. ए प्रमाणे आवतुं 'अनवस्था' दूषण कोण अटकावी शके ? अर्थात् मंगलरूप शास्त्रनुं पण मंगल करवाथी 'अनवस्था' आवशे. हवे कदाच मंगलने पण मंगल करनार वादी एम माने के शास्त्रमां करेल मंगलने मंगल करवा जुदुं मंगल न कर्युं होवाथी आवतुं अनवस्था' दूषण पण इच्छता नथी. तो पण मंगलने मंगल करवाथी तो (बीजुं पण) दूषण आवेछे. दूषण दर्शावे छे के:--शास्त्रने मंगल करवा शास्त्रमां जे मंगल करेल छे तेने--शास्त्रोक्त मंगलने--पण मंगल करवा अनवस्था दूषणना भयथी जो बीजुं मंगल न मूकाय तो जेम मंगलरूप शास्त्र--पण बीजा मंगलनी गेरहाजरीथी अमंगल गणाय छे तेम ज बीजा मंगलनी अविद्यमानताथी मंगलरूप मंगल पण मंगल नहीं गणाय. तात्पर्य एवुं छे के:--जो मंगलने मंगल करवा बीजुं मंगल नहीं करवाथी 'अनवस्था' दूषण नथी इच्छता तो भले, पण जेम 'मंगलरूप शास्त्र पण बीजा मंगल सिवाय मंगल थतुं नथी' एम स्वीकाराय छे तेम शास्त्र अने मंगलमाटे व्याप्तनी सरखाइ होवाथी मंगलरूप मंगल पण बीजा

शिष्योनी मतिमां मंगलना परिग्रहने माटे अर्थात् 'आ शास्त्र मंगल छे' ए प्रमाणे शिष्यो पोतानी मतिमां शास्त्रना मंगलपणानो स्वीकार करे माटे, तथा शिष्टपुरुषोना आचारना परिपालनमाटे मंगल कर्युं छे.[1] आ वात आगळ पण कहेवाई गई छे.

१२. अभिधेयादयः पुनरस्य सामान्येन 'व्याख्याप्रज्ञप्ति'रिति नाम्नैवोक्ता इति ते पुनर्नोच्यन्ते. तत एव श्रोतृप्रवृत्त्यादीष्टफलसिद्धेः, तथाहिः— इह भगवताऽर्थव्याख्या अभिधेयतयोक्ताः, तासां च प्रज्ञापना, बोधो वाऽनन्तरफलम्, परंपराफलं तु मोक्षः, स चास्य आप्तवचनत्वादेव फलतया सिद्धः; नहि आप्तः साक्षात्, पारंपर्येण वा यन्न मोक्षाङ्गं तत् प्रतिपादयितुमुत्सहते, अनाप्तत्वप्रसङ्गात्. तथाऽयमेव संबन्धः— 'यदुतास्य शास्त्रस्य इदं प्रयोजनम्' इति. तदेवमस्य शास्त्रस्यैकश्रुतस्कन्धरूपस्य, सातिरेकाध्ययनशतस्वभावस्य, उद्देशकदशसहस्रीप्रमाणस्य, षट्त्रिंशत्प्रश्नसहस्रप्रमाणस्याष्टाशीतिसहस्राधिकलक्षद्वयप्रमाणपदराशेर्मङ्गलादीनि दर्शितानि. अथ प्रथमे शते ग्रन्थान्तरपरिभाषयाऽध्ययने दशोद्देशका भवन्ति, उद्देशकाश्चाऽध्ययनार्थदेशाभिधायिनोऽध्ययनविभागाः—उद्दिश्यन्ते उपधानविधिना शिष्यस्याचार्येण 'यथैतावन्तमध्ययनभागमधीष्व' इत्येवमुद्देशाः, त एव उद्देशकाः, तांश्च सुखधरण-स्मरणादिनिमित्तमाद्याभिधेयाभिधानद्वारेण संग्रहीतुमिमां गाथामाहः—'*रायगिह*' इत्यादि.

१२. वळी 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' ए प्रमाणे शास्त्रना नाममात्रथी ज शास्त्रना अभिधेय वगेरे सामान्यरीते कहेवाइ गया छे. जेथी तेने फरीथी अहिं कहेता नथी. कारण के, ते नामथी ज (अभिधेय वगेरेने जाणी) श्रोताओनी शास्त्र तरफ प्रवृत्ति वगेरे इष्टफलनी सिद्धि थई जशे. तथाहि अभिधेयादि दर्शावे छेः आ शास्त्रमां भगवाने अर्थव्याख्याओ अभिधेयपणे कही छे. अने ते व्याख्याओनुं प्रज्ञापन अथवा बोध ते साक्षात् फल छे. परंपरा फल तो मोक्ष छे. आ शास्त्र आप्तवचनरूप होवाथी ज ए मोक्षरूप फल सिद्ध छे. कारण के, साक्षात् अथवा परंपराए जे मोक्षनुं अंग न होय तेने कहेवामाटे आप्तपुरुषो उत्साह करता नथी; अर्थात् मोक्षना अंगभूत कार्यमां ज आप्तपुरुषो प्रवृत्ति करे छे. अन्यथा जो तेम न करे तो आप्तपणानी हानि थवानो प्रसंग आवे. तथा आ ज 'आ शास्त्रनुं आ प्रयोजन छे' ए प्रमाणे शास्त्रनो (प्रयोज्य प्रयोजकभाव) संबंध छे. आ प्रमाणे एक श्रुतस्कंधस्वरूप, सो अध्ययनोथी अधिक अध्ययनवाळा, दसहजार उद्देशकोना प्रमाणवाळा, छत्रीशहजार प्रश्नोना प्रमाणवाळा अने बेलाख अठाशीहजार—२,८८,००० पदोना समूहवाळा आ शास्त्रनां मंगलादिक देखाड्यां. हवे प्रथम शतक, जे अन्यग्रंथोनी परिभाषा–संकेत प्रमाणे अध्ययन कहेवाय छे, तेने विषे दस उद्देशको होय छे. उद्देशको एटले के अध्ययन शतकना अर्थदेशने कहेनारा अध्ययनना विभागो 'अध्ययनना आटला विभागने तुं भण,' एप्रमाणे उपधानविधिपूर्वक आचार्य वडे जे उद्देशाय ते उद्देशक कहेवाय. ते उद्देशकोनुं सुखपूर्वक धारण तथा स्मरण रहेवाने माटे तेमां (दश उद्देशामां) आवतां आद्य प्रथम नामोना कथनद्वारे ते दशे उद्देशाने संग्रहवा आ 'रायगिह' इत्यादि गाथाने कहे छेः—

शास्त्राभिधेयः
शास्त्रफलः
शास्त्रसंबंधः
भगवतीपरिमाणः
उद्देशकार्थः

रायगिह १ चलण, २ दुक्खे, ३ कंखपओसे, य ४ पगइ, ५ पुढवीओ, ६ जावंते, ७ नेरइए, ८ वाले, ९ गुरुए य १० चलणाओ.

राजगृह नगरमां १ चलन, २ दुःख, ३ कांक्षाप्रदोष, ४ प्रकृति ५ पृथ्वीओ, ६ जावत् केटला, ७ नैरयिक, ८ बाल, ९ गुरुक अने १० चलनादि.

१३. अधिकृतगाथार्थो यद्यपि वक्ष्यमाणोद्देशकदशकाऽभिगमे स्वयमेवावगम्यते, तथाऽपि बालानां सुखावबोधाय किंचिदभिधीयते:—तत्र '*रायगिह*' त्ति लुप्तसप्तम्येकवचनत्वाद् राजगृहे नगरे वक्ष्यमाणोद्देशकदशकस्यार्थो भगवता श्रीमहावीरेण दर्शित इति व्याख्येयम्. 'चलना'-दीनि प्रथमाविभक्त्यन्तताऽवसेया. '*चलण*' त्ति चलनविषय. प्रथमोद्देशकः '*चलमाणे चलिए*' इत्याद्यर्थनिर्णयार्थ इत्यर्थः. '*दुक्खे*' त्ति दुःखविषयो द्वितीयः 'जीवो भदन्त! स्वयंकृतं दुःखं वेदयति'? इत्यादिप्रश्ननिर्णयार्थ इत्यर्थः. '*कंखपओसे*' त्ति काङ्क्षा मिथ्यात्वमोहनीयोदयसमुत्थोऽन्यान्यदर्शनग्रहणरूपो जीवपरिणामः. स एव प्रकृष्टो दोषो जीवदूषणं काङ्क्षाप्रदोषस्तद्विषयस्तृतीयः 'जीवेन भदन्त! काङ्क्षामोहनीयं कर्म कृतम्?' इत्याद्यर्थनिर्णयार्थ इत्यर्थः. चकारः समुच्चये. '*पगई*' त्ति प्रकृतयः कर्मभेदाश्चतुर्थोद्देशकस्यार्थः 'कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः'? इत्यादिश्चास्मिं. '*पुढवीओ*'त्ति रत्नप्रभादिपृथिव्यः पञ्चमे वाच्याः, 'कति भदन्त! पृथिव्यः'? इत्यादि च सूत्रमस्य. '*जावंते*'त्ति यावच्छब्दोपलक्षितः षष्ठः, 'यावतो भदन्त! अवकाशान्तरात् सूर्यः' इत्यादिसूत्रश्चास्मिं. 'नेरइए'त्ति नैरयिकशब्दोपलक्षितः सप्तमः, 'नैरयिको भदन्त! निरये उत्पद्यमानः' इत्यादि च तत्सूत्रम्. '*बाले*'त्ति बालशब्दोपलक्षितोऽष्टमः 'एकान्तबालो भदन्त! मनुष्यः' इत्यादिसूत्रश्चास्मिं. '*गुरुए*'त्ति

मंगल विना मंगल थाय नहीं एम स्वीकारवुं जोइए. हवे वादी कहे छे के, कदाच अमे शास्त्र अने मंगल माटे उपर कहेवायेलुं एक सरखी रीते स्वीकारीए तो अमारुं शुं अनिष्ट थाय?. अनिष्टता दर्शावे छे केः–मंगलाभावरूप दूषण आवे. अर्थात् तमारा स्वीकारप्रमाणे शास्त्रमां मूकेलुं मंगल बीजा मंगलविना मंगलरूप न थाय अने ज्यारे शास्त्रोक्त मंगल बीजा मंगल सिवाय मंगल न थाय तो पछी शास्त्र पण मंगल नथी. ए 'मंगलाभाव'रूप दूषण स्पष्टरीते आवे छे. आ गाथामां मुकेलो 'वा' शब्द 'अनवस्था अथवा मंगलाभाव' ए बेमांथी कोइ दूषण आवशे ए प्रमाणे पक्षांतरनो सूचक छे.–विशेषावश्यक सूत्र, गाथाटीका १५.

१. मूलच्छायाः–राजगृहे १ चलनम्, २ दुःखम्, ३ काङ्क्षाप्रदोषश्च, ४ प्रकृतिः, ५ पृथिव्यः, ६ यावन्तः, ७ नैरयिकः, ८ बालः ९ गुरुकश्च १० चलनानि.

१. आ वात 'विशेषावश्यकसूत्र'मां पण छे. ते आ प्रमाणे —शास्त्र मंगलरूप छे, तो पण शिष्यमतिमां मंगलपरिग्रह थाय ते माटे शास्त्रमां बीजुं मंगल कर्युं छे, अर्थात् 'आ शास्त्र मंगल छे' ए प्रमाणे शिष्य पोतानी बुद्धिमां शास्त्रनी मंगलता स्वीकारे–समजे–ए माटे बीजुं मंगल कर्युं छे. ए तात्पर्य छे.–विशेषावश्यक सूत्र, गाथा टीका २०. २. आ भगवती सूत्रमां सो शतको छे अने 'शतक' तथा 'अध्ययन' ए बन्ने शब्दो सांकेतिक होई एक ज अर्थने कहेनारा छे; माटे ज श्रीवृत्तिकारे शतकने बदले अध्ययन शब्द प्रयोज्यो छे. ३. 'उद्देश' शब्दथी स्वार्थमां 'क' प्रत्यय आवी 'उद्देशक' शब्द बने छे.–श्री अभयदेव. ४. ते ते उद्देशकना सूचन माटे आ गाथामां मात्र दश उद्देशामां आवता शरुआतना ज एक एक शब्दनो उल्लेख कर्यो छे.–अनु०

गुरुकविषयो नवमः, 'कथं भदन्त! जीवा गुरुकत्वमागच्छन्ति'? इत्यादि च सूत्रमस्य. चः समुच्चयार्थः, 'चलणाओ' त्ति बहुवचननिर्देशाच्च-लनाद्या दशमोद्देशकस्यार्थाः, तत्सूत्रं चैवम्:—'अन्ययूथिका भदन्त! एवमाख्यान्तिः—चलद् अचलितम्' इत्यादि. इति प्रथमशतोद्देशकसंग्रह-णीगाथार्थः.

१३. ओ के उपर्युक्त चालु गाथानो अर्थ वक्ष्यमाण-ते ते दश उद्देशकनुं ज्ञान थया पछी स्वयमेव जणाय तेम छे, तोपण बालजीवोना सुखाव बोध माटे ते अर्थ कहीए छीए. तेमां ['रायगिह 'त्ति] भगवान् श्रीमहावीरे राजगृह नगरमां वक्ष्यमाण दशे उद्देशकनो अर्थ दर्शाव्यो छे. एप्रमाणे व्याख्या-करवी. एप्रमाणे बीजे (लुप्तविभक्तिवाळुं पद होय त्यां) पण (ते पदने माटे) इष्ट विभक्त्यन्तपणुं जाणी लेवुं. ['चलण 'त्ति] चलनविषयक पहेलो उद्देशक 'चालतुं ए चाल्युं' इत्यादि अर्थना निर्णय माटे छे. ['दुक्खे' त्ति] दुःखविषयक बीजो उद्देशक 'हे भगवन्! पोते करेल दुःखने जीव वेदे छे?' इत्यादि प्रश्नना निर्णय माटे छे. ['कंखपओसे' ये त्ति] मिथ्यात्वमोहनीयना उदयथी उत्पन्न थयेलो अने अन्य अन्य दर्शनना ग्रहण करवारूप जीवनो जे परिणाम ते कांक्षा; ते ज मोटुं जीवनुं दूषण ते कांक्षाप्रदोष; तेना विषयवाळो त्रीजो उद्देशो 'हे भगवन्! जीवे कांक्षामोहनीय कर्म कर्युं छे?' इत्यादि अर्थना निर्णय माटे छे. ['पगइ' त्ति] प्रकृति एटले कर्मना भेदो, ए चोथा उद्देशकनो विषय छे. 'हे भगवन! कर्मनी प्रकृतिओ केटली छे?' इत्यादि अर्थवाळो आ चोथो उद्देशो छे. ['पुढवीओ' त्ति] रत्नप्रभा वगेरे पृथ्वीओ पांचमां उद्देशकमां कहेवानी छे; 'हे भगवन! केटली पृथ्वीओ छे? इत्यादि एवुं सूत्र छे. ['जावंते' त्ति] 'यावत्' शब्दथी उपलक्षित छट्ठो उद्देशो छे अने 'हे भगवन्! जेटला अवकाशांतरथी सूर्य' इत्यादि एवुं सूत्र' छे. ['नेरइए' त्ति] नैरयिक शब्दना चिन्हवाळो सातमो उद्देशो छे अने 'हे भगवन्! नैरयिक निरयमां उत्पन्न थतो' इत्यादि तेनुं सूत्र छे. ['बाले' त्ति] बाल' शब्दनी निशानीवाळो ए आठमो उद्देशो 'हे भगवन्! एकान्त बाल मनुष्य' इत्यादि सूत्रवाळो छे. ['गुरुए' ये त्ति] नवमो उद्देशो 'गुरुक' विषयवाळो छे अने 'हे भगवन्!जीवो भारेपणुं केवी रीते पामे छे?' इत्यादि एवुं सूत्र छे. ['चलणाओ' त्ति] अहिं बहुवचन मूकवाथी 'चलन' वगेरे दशमा उद्देशाना अर्थो छे अने तेनुं सूत्र आ प्रमाणे छेः 'हे भगवन! अन्य मतवाळा आ प्रमाणे कहे छे के' चालतुं ए चाल्यु नथी' इत्यादि. ए प्रमाणे प्रथम शतकनी उद्देशोनी संग्रहणी गाथानो अर्थ छे.

उद्देशकविषयः

१४. तदेवं शास्त्रोद्देशे कृतमङ्गलादिकृत्योऽपि प्रथमशतस्यादौ विशेषतो मङ्गलमाहः—'णमो सुअस्स' त्ति नमस्कारोऽस्तु श्रुताय द्वादशा-ङ्गीरूपाऽर्हत्प्रवचनाय.

१४. ए प्रमाणे शास्त्रना उद्देशमां मंगल वगेरे कार्यो कर्या छे तो पण प्रथम शतकनी शरूआतमां विशेषप्रकारे मंगल कहे छे. -['णमो सुअस्स' त्ति] श्रुतने नमस्कार हो. श्रुतने द्वादशांगीरूप अर्हत्प्रवचनने-नमस्कार थाओ.

श्रुतनमस्कारः

---

१. 'रायगिह' एप्रमाणे लुप्त सप्तम्यन्त होवाथी 'राजगृहनगरने विषे' एप्रमाणे अर्थ कर्यो छे.-श्री अभयदेव. २. 'च' शब्द समुच्चय अर्थमां छेः—श्री अभयदेव.

१. समवायाङ्गसूत्रगतो द्वादशाङ्ग्याः परिचयः संक्षिप्यात्र उद्धृत, स चैवम्.—

आचारांगः—आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइअ-ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोग-जुंजण-भासा-समिति-गुत्ति-सेज्जो-वहि-भत्त-पाण-उग्गम-उप्पाय-एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-णियम-तवो-वहाणसुपसत्थमाहिज्जइ × × × × × × पढमे अंगे दो सुअक्खंधा, पणवीस अज्झयणा, पंचासी उद्देसणकाला, पचासी समुद्देसणकाला, अट्ठारस पयसहस्साइं.

सूत्रकृतः—सूअगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, स-परसमया सूइज्जंति, जीवा सूइज्जंति, अजीवा सूइज्जंति, जीवाजीवा सूइज्जंति, लोगे सूइज्जंति, अलोगे सूइज्जंति, लोगालोगे सूइज्जंति. सूअगडे णं जीवाजीवे पुण्णपावासवसंवरनिज्जरणबंधमुक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति. × × × × × × × असीइअस्स किरिआवाइअमयस्स, चउरासीए अकिरियवाईणं, सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं, बत्तीसाए वेणइअवाईणं-तिण्हं तेसट्ठाणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जंति. × × × × दोच्चे अंगे दो सुअक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तेत्तीसं उद्देसणकाला, तेत्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पदसहस्साइं.

स्थानांगः—ठाणे णं ससमया ठाविज्जंति. परसमया ठाविज्जंति, ससमयपरसमया ठाविज्जंति, जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोगा, अलोगा, लोगालोगा वा ठाविज्जंति. × × × × × तइए अंगे एग सुअक्खंधे दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला, एक्कवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरिं पदसहस्साइं

समवायांगः—समवाए णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमय-परसमया सूइज्जंति, समवाए णं एकाइयाणं एगठाणं एगुत्तरियं परिवुड्ढीए दुवालसंग-स्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ. × × × × × × चउत्थे अंगे एगे अज्झयणे, एगे सुअक्खंधे, एगे उद्देसणकाले एगे समुद्देसणकाले, एगे चउयाले पदसहस्से.

व्याख्याप्रज्ञप्तिः—(भगवती)—विआहे णं ससमया विआहिज्जंति, परसमया विआहिज्जंति, ससमय-परसमया विआहिज्जंति, जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति; लोगे विआहिज्जइ, अलोगे विआहिज्जइ, लोगालोगे विआहिज्जइ, विआहे णं णाणाविहसुरनरिंदरायरिसि विविहसंसइअपुच्छिआणं जिणेणं वित्थरेण भासिआणं दव्व-गुण-खित्त-काल-पज्जव-पदेस-परिणाम-जहत्थिअभावअणुगम-निक्खेव-णय-प्पमाणसुनिउणोवक्कमविविहप्पकारपगडपयासिआणं लोगालोगपयासिआणं, संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं, सुरवइसंपूजिआणं भविअ-जणपयहिअयाभिनंदिआणं, तमरयविद्धंसणाणं, सुदिट्ठदीवभूअईहामतिबुद्धिवद्धमाणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ, सुअत्थबहुविहप्पगारा सीसहिअत्था गुणहत्था. × × × × × पंचमे अंगे एगे सुअक्खंधे, एगे साइरगे अज्झयणसये, दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं, छत्तीसं वागरणसहस्साइं, चउरासीइं पयसहस्साइं.

ज्ञाताधर्मकथाः—णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणसंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोइय-परलोइअइड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं परियागा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं,

१५. नन्विष्टदेवनानमस्कारो मङ्गलार्थो भवति, न च श्रुतमिष्टदेवतेति कथमयं मङ्गलार्थः ? इति. अत्रोच्यते.—श्रुतमिष्टदेवतैव.

श्रुत इष्टदेव छे ?

१५. शंकाः इष्टदेवताने करेलो नमस्कार मंगलमाटे होइ शके छे अने द्वादशांगीरूप श्रुत तो इष्ट देवता नथी, तो ते श्रुतने करेलो आ नमस्कार मंगलमाटे केम होइ शके ?. समा० अत्र कहीए छीएः—श्रुत सिद्धनी पेठे, अर्हंतोने नमस्करणीय होवाथी इष्टदेवता ज छे.

पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चाया, पुण बोहिलाभो, अंतकिरियाओ अ आघविज्जंति. × × × × × छट्ठे अंगे दो सुअक्खंधा, एगूणतीसं अज्झयणा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा, चरित्ता य कप्पिआ अ; दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइआसयाइं, एगमेगाइ अक्खाइआए पंच पंच उवक्खाइआसयाइं, एगमेगाए उवक्खाइआए पंच पंच अक्खाइअउवक्खाइअसयाइं, एवामेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाए अक्खाइअकोडीओ भवंतीतिमक्खायाओ, एगूणतीसं उद्देसणकाला, एगूणतीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं.

उपासकदशाः—उवासगदसासु णं उवासयाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिआ धम्मकहाओ, इहलोइअ–परलोइअइड्ढिविसेसाः उवासयाणं सीलव्वय–वेरमण–गुणपच्चक्खाण–पोसहोववासपडिवज्जिआओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणा, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं. सुकुलपच्चाया पुणो बोहिलाभो अंतकिरियाओ आघविज्जंति. × × × × × × सत्तमे अंगे एगे सुअक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं

अन्तकृद्दशाः—(अंतगडदसा) अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं, उज्जाण–चेइअ–वणखंड–राया–अम्मापिय–समोसरण–धम्मायरिअ–धम्मकहा, इहलोइअ–परलोइअइड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पवज्जाओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ बहुविहाओ, खमा, अज्जवं, मद्दवं, सोअं च सच्चसहिअं, सत्तरसविहो संजमो, उत्तमं च बंभं, आकिंचणया, तवो, किरियाओ, समिइगुत्तीओ चेव, तह अप्पमायजोगो, सज्झायज्झाणेण य उत्तमाणं दोण्हं पि लक्खणाइं, पत्ताण य संजमं, जिअपरीसहाणं, चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो, परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणीहिं, पावोवगओ य जहिं, जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुणिवरो, तमरयोघविमुक्को, मुक्खसुहमणंतरं च पत्ता एए, अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण परूवेइ. × × × × × × अट्ठमे अंगे एगे, सुअक्खंधे, दस अज्झयणा, सत्तवग्गा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं.

अनुत्तरोपपातिकदशा.—अणुत्तरोववाइअदसासु णं अणुत्तरोववाइआणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोग-परलोअइड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चागा, पवज्जाओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, परियागो, पडिमाओ संलेहणाओ, भत्त–पाणपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाओ, सुकुलपच्चाया, पुणो बोहिलाहो अंतकिरियाओ आघविज्जंति × × × × × नवमे अंगे एगे सुअक्खंधे, दस अज्झयणा, तिण्णि वग्गा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं.

प्रश्नव्याकरण·—पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, विज्जाइसया, नाग–सुवण्णेहिं सद्धि दिव्वा संवाया आघविज्जंति विम्हयकराणं, अइसयमइअकालदससमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं, दुरहिगमदुरवगाहस्स सव्वसव्वण्णुसम्मअस्स, अबुहजणबोहकरस्स, पच्चक्खपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीआ आघविज्जंति. × × × × × दसमे अंगे एगे सुअक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीस समुद्देसणकाला, संखेज्जाणि पयसहस्साणि.

विपाकश्रुत.—विवागसुए णं सुक्कड–दुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जंति, से समासओ दुविहे पण्णत्ते, तं जहा; दुहविवागे सुहविवागे चेव. तत्थ णं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागाणिः से कि तं दुहविवागाणि ?, दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, नगरगमणाइं संसारपबंधे, दुहपरंपराओ य आघविज्जंति सेत्तं दुहविवागाणि से किं तं सुहविवागाणि ?, सुहविवागेसु णं सुहविवागाणं नगराइं, उज्जाणाइं, चेइआइं, वणखंडा, रायाणो, अम्मापियरो, समोसरणाइं, धम्मायरिआ, धम्मकहाओ, इहलोअ–परलोअइड्ढिविसेसा, भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ, सुअपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, परियागा, पडिमाओ, संलेहणाओ, भत्तपाणपच्चक्खाणाइं. पाओवगमणाइं, देवलोगगमणाइं, सुकुलपच्चाया, पुण बोहिलाहो अंतकिरियाओ आघविज्जंति. × × × × × × × एक्कारसमे अंगे वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं.

दृष्टिवादः—दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जंति. से समासओ पंचविहे पणत्ते, तं जहाः परिकम्मं, सुत्ताइं, पुव्वगयं, अणुओगो, चूलिआ. समवायांग सूत्र-(क० आ०) पृ—१६७ थी १९७. अनु०

*** पूर्वोक्तविषय·—पदपरिमाणादि कालवशतो न्यूनमिदानींतनसूत्रेषु इति वृद्धाः.

१. 'समवायांग'सूत्रगत द्वादशांगीनो परिचय संक्षेपीने अहीं आ प्रमाणे उद्धृत करेलो छेः—

आचारांगः—आचारांगमां प्ररूपेला विषयो नीचे प्रमाणे छेः—श्रमणनिर्ग्रंथोनो सुप्रशस्त आचार, गोचर (भिक्षा लेवानो विधि) विनय, वैनयिक, कायोत्सर्गादि स्थान, विहारभूम्यादिमां गमन, चंक्रमण एटले शरीरनो श्रम दूर करवा उपाश्रयांतरमां गमन, आहारादि पदार्थोनुं माप, स्वाध्यायादिमां नियोग, भाषासमिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त, पान, उद्गमादि (उद्गम, उत्पाद अने एषणा) दोषोनी विशुद्धि, शुद्धाशुद्धग्रहण, व्रत, नियम, तप अने उपधान. प्रथम (आचारांग) अंगमां बे श्रुतस्कंध, पचीश अध्ययन, पंचाशी उद्देशनकाल, पंचाशी समुद्देशनकाल तथा अढार हजार पदो छे.

सूत्रकृतः—'सूत्रकृतांग' (सूअगडांग) मां प्ररूपेला विषयो नीचे प्रमाणे छेः—स्वसिद्धांत, परसिद्धांत, स्व अने परसिद्धांत, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक अलोक, लोकालोक, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध अने मोक्ष सुधीना पदार्थो, इतर दर्शनथी मोहित, संदिग्ध नवा दीक्षितनी बुद्धिनी शुद्धिमाटे एकसो एंशी क्रियावादिना मत, चोराशी अक्रियावादिना मत, सडसठ अज्ञानवादिना मत, बत्रीश विनयवादिना

१६. अर्हतां नमस्करणीयत्वात्, सिद्धवत्. नमस्कुर्वन्ति च श्रुतमर्हन्तः 'नमस्तीर्थाय' इति भणनात्. तीर्थं च श्रुतं संसारसागरोत्तरणाऽसाधारणकारणत्वात्,

१६. अने 'तीर्थने नमस्कार हो' एप्रमाणे कहेवाथी अर्हतो श्रुतने नमस्कार करे छे. संसारसागरने तरवामां मुख्य कारण होवाथी श्रुत ए तीर्थ छे अने तीर्थरूप श्रुतनो आधारभूत होवाथी ज संघ, तीर्थ शब्दवडे वाच्य छे.

श्रुतने अर्हतोनो नमस्कार. श्रुत पण तीर्थ.

मत ए कुलमळीने त्रणसोने त्रेसठ अन्यदृष्टिना मतनो परिक्षेप करीने स्वसमय स्थापन. सूत्रकृतांग सूत्रमां—बीजा अंगमां—बे श्रुतस्कंध छे, त्रेवीश अध्ययन छे, तेत्रीश उद्देशनकाल, तेत्रीश समुद्देशनकाल अने छत्रीश हजार पदो छे.

स्थानांगः—'स्थानांग' सूत्रमां निरूपेला विषयो आ प्रमाणे छे:—स्वसमयनुं, परसमयनुं अने स्वपरसमयनुं स्थापन, जीवनुं, अजीवनुं, जीवाजीवनुं, लोकनुं, अलोकनुं अने लोकालोकनुं स्थापन. त्रीजा (स्थानांग) अंगमां पांच श्रुतस्कंध, दश अध्ययन, एकवीश उद्देशनकाल, एकवीश समुद्देशनकाल अने बहोंतर हजार पदो छे.

समवायांगः—'समवायांग'मां कहेला विषयो नीचे प्रमाणे छे:—स्वसिद्धांत, परसिद्धांत, स्वपरसिद्धांत अने एकादिक केटला पदार्थोनुं एकोत्तरिक परिवृद्धिपूर्वक प्रतिपादन अर्थात् प्रथम एकसंख्यक पदार्थोनुं निरूपण पछी द्विसंख्यक पदार्थोनुं, एम क्रमपूर्वक प्रतिपादन अने द्वादशांग गणिपिटकना पर्यवोनुं प्रतिपादन. चतुर्थ (समवाय) अंगमां एक अध्ययन. एक श्रुतस्कंध, एक उद्देशनकाल, एक समुद्देशनकाल, अने एकलाख अने चुमालीस हजार पदो छे.

व्याख्याप्रज्ञप्तिः (भगवती)—'भगवतीसूत्र'मां निरूपेला विषयो नीचे प्रमाणे छे:—स्वसमय, परसमय, स्वपरसमय जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक, जुदा जुदा प्रकारना देव, राजा राजर्षि अने अनेक प्रकारे संदिग्ध पुरुषोए पूछेला प्रश्नोना श्रीजिने विस्तारपूर्वक कहेला उत्तरो, जे उत्तरो, द्रव्य, गुण, क्षेत्र काल, पर्यव, प्रदेश अने परिणामना अनुगम, निक्षेपण, नय, प्रमाण अने विविध तथा सुनिपुण उपक्रमपूर्वक यथास्ति भावना प्रतिपादक छे, लोक अने अलोक जेनाथी प्रकाशित छे, जेओ विशाल संसार समुद्रथी तारवामां समर्थ छे, इन्द्रपूजित छे; भव्यलोकोना हृदयना अभिनंदक छे, अंधकाररूप मेलना नाशक छे, सुदृष्ट छे, दीपभूत छे, ईहा, मति अने बुद्धिना वर्धक छे, जेनी संख्या बराबर छत्रीश हजार छे, अने जे उत्तरोना उपनिबंधनथी बहुप्रकारना श्रुतार्थो शिष्यहितार्थ गुणहस्तरूप छे. पंचम अंग (भगवतीसूत्र) मां एक श्रुतस्कंध, साधिक सो अध्ययन, दश हजार उद्देशक, दश हजार समुद्देशक, छत्रीश हजार प्रश्न अने चोराशी हजार पदो छे.

ज्ञाताधर्मकथाः—'ज्ञाताधर्मकथासूत्र'मां निरूपेला विषयो आ प्रमाणे छे:—उदाहरणभूत पुरुषोना नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापित समवसरणो, धर्माचार्यो, धर्मकथाओ, ऐहलौकिक अने पारलौकिक ऋद्धिविशेषो भोगपरित्यागो प्रव्रज्याओ, श्रुतपरिग्रहो, तपो, उपधानो, पर्यायो, संलेखना, भक्त प्रत्याख्यानो, पादपोपगमनो, देवलोकगमनो, सुकुलमां प्रत्यवतारो, बोधिलाभो अने अंतक्रियाओ. छट्ठा (ज्ञातार्मकथा) अंगमां बे श्रुतस्कंधो अने ओगणत्रीश अध्ययनो छे. ते अध्ययनो बे प्रकारना आप्रमाणे कह्यांछे:—चरित्र अने कल्पित. धर्मकथाना दश वर्गो छे: तेमां एक एक धर्मकथामां पांचसो पांचसो आख्यायिकाओ छे एक आख्यायिकामां पांचसो पांचसो उपाख्यायिकाओ छे, एक एक उपाख्यायिकामां पांचसो पांचसो आख्यायिकोपाख्यायिकाओ छे अने एप्रमाणे ज सपूर्वापर (बधां मळीने) साडात्रण क्रोड आख्यायिका थाय छे एम कह्युं छे. ओगणत्रीश उद्देशन काल छे, ओगणत्रीश समुद्देशन काल छे अने संख्याता लाख पदो छे अर्थात् पांच लाख अने छोंतर हजार पदो छे.

उपासकदशाः—'उपासकदशांग' सूत्रमां कहेला विषयो नीचे प्रमाणे छे:—उपासकोना (श्रावकोना) नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापित.ओ, समवसरणो, धर्माचार्यो, इहलोकना अने परलोकना ऋद्धिविशेषो तथा श्रावकोना शीलव्रतो, विरमणो, गुणव्रतो, प्रत्याख्यानो पौषधोपवासो, श्रुतपरिग्रहो, तपो, उपधानो, प्रतिमाओ, उपसर्गो, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यानो, पादपोपगमनो, देवलोकगमनो, सुकुलमां जन्मो, बोधिलाभ अने अंतक्रिया. सातमा (उपासकदशा) अंगमां एक श्रुतस्कंध, दश अध्ययन, दश उद्देशनकाल, दश समुद्देशनकाल अने संख्याता लाख पदो अर्थात् अग्यार लाख अने बावन हजार पदो छे.

अंतकृद्दशाः—'अंतगडदशांग' सूत्रमां निरूपेला विषयो आ प्रमाणे छे.—अंतकृत् (तीर्थकरादि) पुरुषना नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापिता, समवसरणो, धर्माचार्यो, धर्मकथाओ, आ लोकनी अने परलोकनी ऋद्धि, भोगपरित्यागो, प्रव्रज्याओ, श्रुतपरिग्रहो, तपो, उपधानो बहुविधप्रतिमाओ, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्यसहित शौच, सत्तर प्रकारनो संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, क्रियाओ, समितिओ, गुप्तिओ, अप्रमादयोग, उत्तम स्वाध्याय अने ध्याननुं स्वरूप, उत्तम संयमने प्राप्त अने जितपरीषह पुरुषोने चार प्रकारना कर्मनो क्षय थया पछी थएलो केवल ज्ञाननो लाभ, मुनिओए पाळेलो जेटलो पर्याय, पादपोपगत पवित्र मुनिवर जेटला भक्तोने (भोजनोने) वीतावीने ज्यां अंतकृत थया ते, अने बीजा मुनिओ, जेओ मुक्तिसुखने पाम्या छे. ते इत्यादि आठमा (अंतगडदशा) अंगमां एक श्रुतस्कंध, दश अध्ययनो, सात वर्गो, दश उद्देशनकाल, दश समुद्देशनकाल, अने संख्याता लाख पदो अर्थात् त्रेवीश लाख अने चार हजार पदो छे.

अनुत्तरोपपातिकः—'अनुत्तरोपपातिक' सूत्रमां नीचे प्रमाणे विषयो निरूपेला छे:—अनुत्तरोपपातिकोना नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापिताओ, समवसरणो, धर्माचार्यो, धर्मकथाओ, आ लोकना अने परलोकना ऋद्धिविशेषो, भोगपरित्यागो, प्रव्रज्याओ, श्रुतपरिग्रहो, तपो, उपधानो, पर्याय, प्रतिमा, संलेखना, भक्तपानप्रत्याख्यानो, पादपोपगमनो, सुकुलावतारो, बोधिलाभो अने अंतक्रियाओ. नवमा (अनुत्तरोपपातिक) अंगमां एक श्रुतस्कंध, दश अध्ययन, त्रण वर्ग, दश उद्देशनकाल अने दश समुद्देशनकाल तथा संख्याता लाख अर्थात् छेंताळीश लाख अने आठ हजार पदो छे.

प्रश्नव्याकरणः—'प्रश्नव्याकरण'मां दर्शावेल विषय नीचे प्रमाणे छे:—एकसो आठ प्रश्नो, एकसो आठ अप्रश्नो, एकसो आठ प्रश्नाप्रश्नो, विद्याना अतिशयो अने नागकुमारनी अने सुवर्ण कुमारनी साथे थएला दिव्य संवादो. × × × × × दशम (प्रश्नव्याकरण) अंगमां एक श्रुतस्कंध, पीस्ताळीश उद्देशनकाल, पीस्ताळीश समुद्देशनकाल. अने संख्याता लाख अर्थात् बाणुं लाख अने सोळ हजार पदो छे.

१७. तदाधारत्वेनैव च संघस्य तीर्थशब्दाभिधेयत्वात्. तथा सिद्धानपि मङ्गलार्थमर्हन्तो नमस्कुर्वन्त्येव. *"काऊण नमोक्कारं सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे"*[२] इतिवचनादिति.

सिद्धोने अर्हतनो नमस्कार.

१७. तथा मंगलने माटे अर्हतो सिद्धोने पण नमस्कार करे छे ज; कारण के "अभिग्रह तो सिद्धोने नमस्कार करीने ते–अर्हत्–ग्रहण करे"[१] एवुं वचन छे.

विपाकश्रुतः—विपाकश्रुतमां नीचे प्रमाणे विषयो वर्णवेला छेः—सुकृतकर्मोनो अने दुष्कृत कर्मोनो फलविपाक. ते फलविपाक संक्षेपथी बे प्रकारनो कह्यो छे. ते आप्रमाणेः-दुःखविपाक अने सुखविपाक, तेमां दश दुःखविपाक अने दश सुखविपाक छे. दुःखविपाकमां दुःखविपाकवाळाओना नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापिता, समोसरणो, धर्माचार्यो, धर्मकथा, नगरगमनो, संसारप्रबंध अने दुःखपरंपरा. सुखविपाकमां सुखविपाकवाळाओना नगरो, उद्यानो, चैत्यो, वनखंडो, राजाओ, मातापिताओ, समोवसरणो, धर्माचार्यो, धर्मकथा, आ लोकना अने परलोकना ऋद्धिविशेषो, भोगपरित्यागो, प्रव्रज्याओ, श्रुतपरिग्रहो, तपो, उपधानो, पर्यायो, प्रतिमाओ, संलेखनाओ, भक्तप्रत्याख्यानो, पादपोपगमनो, देवलोकगमनो, सुकुलावतारो, बोधिलाभ अने अंतक्रियाओ. अग्यारमा (विपाकश्रुत) अंगमां वीश अध्ययन, वीश उद्देशनकाल, वीश समुद्देशनकाल अने संख्याता लाख अर्थात् एक क्रोड, चोराशी लाख अने बत्रीश हजार पदो छे.

दृष्टिवादः—दृष्टिवादमां सर्व पदार्थोनी प्ररूपणा छे. ते दृष्टिवाद आ प्रमाणे पांच प्रकारनो छेः-परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, (पूर्व) अनुयोग अने चूलिका. समवायांग सूत्र (क० आ०) पृ-१६७ थी १९७.—अनु०

*** पूर्वोक्त विषय अने पदपरिमाणादि अत्यारना उपलब्धसूत्रोमां काळवशथी घटी गयानुं वृद्धो कहे छे.

१. आ अर्थ 'विशेषावश्यकसूत्र'मां ३२१० मी गाथानी टीकामां छे.

१. प्र०छायाः—कृत्वा नमस्कारं सिद्धानामभिग्रहं तु स गृह्णीयात्. २. "सिद्धाणं नमोक्कारं काऊणमभिग्गहं तु सो गिण्हे"–विशेषावश्यकसूत्रे ३२१० गाथाटीकायाम्.–अनु०

शतक १.–प्रश्नोत्थान.

गुरुपर्वक्रमसंबंध.—सुधर्माए जंबूने समग्रग्रंथ कह्यानी प्रतीति शी ?.—सुधर्मास्वामी अने जंबूस्वामी —राजगृह —राजगृहविशेष वर्णन.—चैत्य.—श्रेणिक —चिल्लणा —महावीर.—महावीरवर्णक.—समवसरणवर्णक.—सभानिर्गम —धर्मकथा —सभाविसर्जन.—गौतमस्वामी.—प्रश्नोत्थान.

१. एवं तावत् प्रथमशतोद्देशकाभिधेयार्थलेश प्राग् दर्शितः, ततश्च 'यथोद्देश निर्देश' इति न्यायमाश्रित्यादित· प्रथमोद्देशकार्थ-प्रपञ्चो वाच्यः, तस्य च गुरुपर्वक्रमलक्षणं संबन्धमुपदर्शयन् भगवान् सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामिनमाश्रित्येदमाह· –'*ते णं काले-णं, ते-णं समए-णं*' इत्यादि.

१. ए प्रमाणे प्रथम शतकना उद्देशकोनो थोडो वाच्यार्थ पहेलां दर्शाव्यो. त्यार बाद हवे 'जेवो उद्देश तेवो निर्देश –जे क्रमप्रमाणे पदार्थो उद्देशाया शरुआतमां कहेवाया होय, ते क्रमप्रमाणे तेनुं निर्देशन व्याख्यान करवुं जोइए' ए न्यायने अवलबी शरुआतथी मांथी पहेलां पहेला उद्देशकना अर्थनो विस्तार कहेवो जोइए. तेथी प्रथम उद्देशकार्थने कहेवा माटे ते पहेला उद्देशकनो गुरुपर्वक्रमलक्षणसंबंध दर्शावतां भगवान सुधर्मस्वामी जंबूस्वामी प्रत्ये आ-'ते काले, ते समये' इत्यादि कहे छे·–

गुरुपर्वक्रम-संबंध.

ते-णं[1] काले-णं, ते-णं समए-णं रायगिहे णामं णयरे होत्था. वण्णओ. तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए गुण-सिलए नामं चेइए होत्था. सेणिए राया. चिल्लणा देवी.

ते काले, ते समये राजगृह नामनु नगर हतुं. वर्णक. ते राजगृह नगरनी बहार उत्तर अने पूर्वना दिग्भागमा-ईशानकोणमां गुणसिलक-नामनु चैत्य व्यन्तरायतन-हतु. श्रेणिक राजा अने चिल्लणादेवी राणी हतां.

---

१. मूलच्छायाः—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये (तेन कालेन, तेन समयेन) राजगृह नाम नगरमभवत्. वर्णकः तस्य राजगृहस्य नगरस्य बहिरुत्तर–पौरस्त्ये दिग्भागे गुणसिलकं नाम चैत्यमभवत्. श्रेणिको राजा. चिल्लणा देवी. २. अतीताद्धायां क्षितिप्रतिष्ठितं पुरम् जितशत्रु राजा तत क्षीणवास्तुकं मत्वा वास्तुपाठकैरन्यनगरस्थानं विलोकयति स्म. चनकक्षेत्रमेकं पुष्पितं (फलितम्) दृष्ट्वा तत्र चनकपुरं स्थापितम्, कालेन तदपि क्षीणं मत्वाऽरण्येऽन्याजय्यं वृषभं दृष्ट्वा तत्र ऋषभपुरं निवेशितम्. कालेन तस्मिन्नपि क्षीणे कुशस्तम्बं दृष्ट्वा कुशाग्रपुरं कृतम् तस्मिन् पुनः पुनरग्निना ज्वलिते सति प्रसेनजिन्नृपेण राजगृहं स्थापितम्.–आवश्यकनिर्युक्त्यवचूर्णौ. ३. प्रसेनजितः पुत्रः श्रेणिको राट्. तस्मिन् मृते सुतेन कोणिकेन चम्पा राजधानी कृता. कोणिके मृते तत्पुत्रेण उदायिनृपेण पाटलातरुस्थाने पाटलीपुरं स्थापितम्. तत्र उदायिमरणेन नवभिर्नन्दै राज्यं कृतम्. नवमे नन्दे राज्यं कुर्वति कल्पकमन्त्रिवंशप्रसूत शकटालो मन्त्री, तस्य द्वौ पुत्रौ—स्थूलभद्रः, सिरीयकश्च, यक्षाद्या सप्तपुत्र्यः, पण्डितवररुचिकपटेन शकटाले विपन्ने नन्देन दीयमानाममात्यमुद्रां नेच्छति स्म स्थूलभद्र , स वैराग्यात् संभूतयतिपार्श्वे प्रव्रजित·. पूर्वं कोशागृहे द्वादशवर्षी स्थितोऽपि स भगवांस्तयाऽक्षोभ्यो जात . शिक्षां प्रति योगाः संगृहीताः स्थूलभद्रस्वामिना.—आवश्यकनिर्युक्त्यवचूर्णौ.

१. भूतकाळे क्षितिप्रतिष्ठित पुर हतुं. जितशत्रुराजाए ते पुरने क्षीणवास्तुक मानी वास्तुपाठकोनी—वास्तुशास्त्रिओनी सहायतावडे बीजुं नगर-स्थान अवलोक्युं.—बीजे स्थळे नगर स्थापवा विचार्युं. पुष्प अने फलवाळुं एक चनकक्षेत्र जोइ ते स्थळे चनकपुर स्थाप्युं. काळे करी तेने पण क्षीण मानी अरण्यमां अन्यथी अजय्य वृषभ—बळद-ने जोइ त्यां ऋषभपुर स्थाप्युं. कालक्रमे ते पण क्षीण थयुं. त्यारबाद कुश–डाभना गुल्मने जोइ कुशाग्रपुर स्थाप्युं. ते पण वारंवार अग्निथी बळी गया पछी प्रसेनजितराजाए 'राजगृह' नगर स्थाप्युं.–आवश्यकनिर्युक्त्यवचूर्णि.

२. श्रेणिक राजा प्रसेनजितनो पुत्र हतो. तेना मरण पछी कोणिक नामना पुत्रे चंपानगरीने पोतानी राजधानी करी. कोणिकनुं अवसान थयाबाद तेना पुत्र उदायिनृपे पाटलातरुने स्थाने पाटलीपुर स्थाप्युं. उदायिराजाना मरण पछी तेमां नवनंदोए राज्य कर्युं. नवमो नंद राज्य करतो हतो त्यारे कल्पकमंत्रिना वंशमां उत्पन्न थयेल शकटाल नामनो मंत्री हतो. तेने स्थूलभद्र अने सिरीयक नामना बे पुत्रो अने यक्षादि—यक्षा, यक्षदत्ता, भूता,

२. अथ कथमिदमवसीयते—यदुत सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामिनमभिसंबन्धग्रन्थमुक्तवान्? इति. उच्यते—सुधर्मस्वामिवाचनाया एवानुवृत्तत्वात्, आह च.—"*तित्थं च सुहम्माओ निरवच्चा गणहरा सेसा*" सुधर्मस्वामिनश्च जम्बूस्वाम्येव प्रधानः शिष्यः, अतस्तमाश्रित्येयं वाचना प्रवृत्तेति.

भूतदत्ता, सेणा, वेणा अने रेणा ए सात पुत्रीओ हती. पंडित वररुचिना कपटथी ज्यारे शकटालमंत्रिनुं अवसान थयुं त्यारे नंदवडे देवामां आवेली अमात्यमुद्राने स्थूलभद्रे न इच्छी; ते स्थूलभद्रे वैराग्यथी संभूतयतिपासे प्रव्रज्या लिधी. प्रव्रज्या लीधा पूर्वे ते स्थूलभद्र कोशा नामनी वेश्याने त्यां बार वरस रह्या हता तो पण तेवडे ते अक्षोभ्य थया. स्थूलभद्रस्वामिए शिक्षा प्रति योगो संग्रह्या हता.—आवश्यकनिर्युक्तिनी अवचूर्णि.

३ आ समये 'विशाला' नामनी नगरी घणी ज प्रसिद्ध हती ते नगरीनो राजा 'चेटक' पण सुप्रसिद्ध ज हतो. राजा चेटकने सात पुत्रीओ हती. ते साते उत्तमोत्तम लक्षणोथी विभूषित अने जिनेश्वर भगवाने कहेल तत्त्वोमा निपुण हती तेम ज धर्ममां पण पूर्णश्रद्धा राखती हती. ते कन्याओने दरेक प्रकारनी शिक्षा मळेली हती. आ सात कन्याओमां पहेली पांचनां नाम आ प्रमाणे हतां.– १ प्रभावती, २ शिवा, ३ मृगावती ४ ज्येष्ठा अने पद्मावती. आ सिवाय बे सौथी न्हानी कन्याओ हती. जेओनुं नाम 'सुज्येष्ठा' अने चिल्लणा हतु," इत्यादि —राणीसुलसा, प्र० ६, पा० २८.

१. "समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासवगुत्तस्स अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगुत्ते"–अष्टमक्षणे कल्पसूत्रमूले. "श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य काश्यपगोत्रस्य आर्यसुधर्मा स्थविर शिष्योऽग्निवैश्यायनगोत्र श्रीवीरपट्टे श्रीसुधर्मस्वामी पञ्चमो गणधर, तत्स्वरूपं चेदम्.—कुल्लागसन्निवेशे धम्मिलविप्रस्य भार्या भद्दिला तयो सुतश्चतुर्दशविद्यापात्रं पञ्चाशद्वर्षान्ते प्रव्रजित, त्रिंशद्वर्षाणि वीरसेवा, वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षान्ते—जन्मतो द्विनवतिवर्षान्ते च केवलम् ततोऽष्टौ वर्षाणि केवलित्वं परिपाल्य शतवर्षायुर्जम्बूस्वामिनं स्वपदे संस्थाप्य शिवं गत."–अष्टमक्षणे कल्पसूत्रटीकायाम्.

२. "थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स अज्जजंबुनामे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते."–अष्टमक्षणे कल्पसूत्रमूले "स्थविरस्य आर्यसुधर्मणोऽग्निवैश्यायनगोत्रस्य आर्यजम्बूनामा स्थविर. शिष्य काश्यपगोत्र, श्रीजम्बूस्वामिस्वरूपं चेदम्—राजगृहे ऋषभ-धारिण्यो पुत्र. पञ्चमस्वर्गाच्च्युतो जम्बूनामा श्रीसुधर्मस्वामिसमीपे धर्मश्रवणपुरस्सरं प्रतिपन्नशील-सम्यक्त्वोऽपि पित्रोर्दृढाग्रहवशादष्टौ कन्या. परिणीत, परं तासां सस्नेहाभिर्वाग्भिर्न व्यामोहित. यत—सम्यक्त्व-शीलतुम्बाभ्या भवाब्धिस्तीर्यते सुखम्, ते दधानो मुनिर्जम्बुः स्त्रीनदीषु कथं ब्रुडेत्?. ततो रात्रौ ता प्रतिबोधयंश्चौर्यार्थमागतं चतुःशतनवनवतिचौरपरिकरितं प्रभवमपि प्राबोधयत्. तत प्रात पञ्चशतचौर-प्रियाष्टक-तज्जनक-जननी-स्वजनक-जननीभि सह स्वयं पञ्चशतसप्तविंशतितमो नवनवतिकनककोटी परित्यज्य प्रव्रजित, क्रमात् केवली भूत्वा षोडश वर्षाणि गृहस्थत्वे, विंशतिश्छाद्मस्थ्ये, चतुश्चत्वारिंशत् केवलित्वे—अशीतिवर्षाणि सर्वायु परिपाल्य श्रीप्रभवं स्वपदे संस्थाप्य सिद्ध गत अत्र कवि—जम्बूसमस्तलारक्षो न भूतो न भविष्यति, शिवाध्ववाहकान् साधून् चौरानपि चकार य. प्रभवोऽपि प्रभुर्जायाचौर्येण हरता धनम्, लेभेऽनर्घ्यांश्चौर्यहरं रत्नत्रितयमद्भुतम्. तत्र, बारसवासेहि गोअमु सिद्धो वीराओ वीसहि सुहम्मो, चउसट्ठीए जंबू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा. "मण-परमोहि-पुलाए आहारग-खवग-उवसम-कप्पो, संजमतिअ-केवलि-सिज्झणा य जम्बुम्मि वुच्छिण्णा."–विशेषावश्यकसूत्र, गाथा २५७३. 'मण त्ति मन पर्यायज्ञानम् 'परमोहि'त्ति परमावधिर्यस्मिन्नुत्पन्नेऽन्तर्मुहूर्तान्तः केवलोत्पत्ति'. 'पुलाए त्ति पुलाकलब्धिर्यया चक्रवर्तिसैन्यमपि चूर्णाकर्तुं प्रभु स्यात् 'आहारग'त्ति आहारकशरीरलब्धि. 'खवग'त्ति क्षपकश्रेणि. 'उवसम'त्ति उपशमश्रेणिः. 'कप्प'त्ति जिनकल्पः. 'संजमतिअ त्ति सयमत्रिकम्-परिहारविशुद्धिक-सूक्ष्मसंपराय-यथाख्यातचारित्रलक्षणम्. अत्राऽपि कवि—लोकोत्तरं हि सौभाग्यं जम्बूस्वामिमहामुने, अद्याऽपि य पतिं प्राप्य शिवश्रीर्नान्यमिच्छति.–अष्टमक्षणे कल्पसूत्रटीकायाम्. ३ प्र०छाया—तीर्थं च सुधर्मणो निरपत्या गणधरा शेषा इय च—आवश्यकनिर्युक्तौ गणधरप्रकरणे.

१ भगवता भद्रबाहुस्वामिना निजावश्यकनिर्युक्तौ गणधरवृत्तमेवं निदिष्टम्—तं दिव्वदेवघोसं सोऊणं माहणा तहिं तुट्ठा, अहो! जण्णिएण जइं देवा किर आगया इहयं १ इक्कारस वि गणहरा सव्वे उन्नयविसालकुलवंसा, पावाए मज्झिमाइ समोसढा जन्नवाडम्मि २ पढमित्थ इन्दभूई बीए पुण होइ अग्गिभूइ त्ति, तइए य वाउभूई तओ विअत्ते सुहम्मे य ३ मंडिय मोरियपुत्ते अकंपिए चेव अयलभाया य, मेअज्जे अ पभासे गणहरा हुंति वीरस्स ४ ज कारण निक्खमणं वुच्छ एगंमि आणुपुव्वीए, तित्थं च सुहम्माओ निरवच्चा गणहरा सेसा ५ जीवे कम्मे तज्जीव भूअ तारिस य बंधमुक्खे य देवा नेरइया वा पुन्ने परलोयनिव्वाणे ६ पचण्हं पंचसया अद्धुट्ठसया य हुंति दुण्ह गणा. दुण्हं तु जुयलआणं तिसओ तिसओ हवइ गच्छो. ७ सोऊण कीरमाणि महिमं देवेहिं जिणवरिन्दस्स, अह एइ अहम्माणा अमरिसओ इन्दभूइत्ति. ८ मूणं ममं लोगो किं धावइ एस तस्स पामूले, अन्नो वि जाणइ मए ठिअम्मि कत्तुच्चियं एय? ९ वच्चिज्ज वमुक्खजणो देवा कहं णेण विम्हयं नीया?, वंदंति संथुणंति य जेणं सव्वण्णुबुद्धीए. १० अहवा जारिसओ च्चिय सो नाणी तारिसा सुरा ते वि, अणुसरिसो संजोगो गामनडाणं व मुक्खाणं. ११ काउं हयप्पयावं पुरओ देवाण दाणवाणं च, नासेइं नीसेसं खणेण सव्वन्नुवायं से १२ इअ वुत्तूणं पत्तो दट्ठुं तेल्लुक्कपरिवुडं वीरं, चउतीसाइसयनिहिं ससंकिओ चिट्ठिओ पुरओ. १३ आभट्ठो य जिणेणं जाइ-जरा-मरणविप्पमुक्केणं, नामेण य गुत्तेण य सव्वन्नु-सव्वदरिसिणा १४ हे इंदभूइ! गोयम! सागयमुत्ते जिणेण चिंतेइ, नामं पि मे वियाणइ अहवा को मं न याणेइ? १५ जइ वा हियसगयं मे संसयं मच्छिज्ज अहव छिंदिज्जा, ता हुज्ज विम्हओ मे इय चिंततो पुणो भणिओ. १६

इन्द्रभुति—किं मन्ने अत्थि जीवो उयाहु नत्थित्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. १७
अग्निभूति.—किं मन्ने अत्थि कम्मं उयाहु नत्थि त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. २५
वायुभुति—तज्जीवतस्सरीरं संसओ न वि य पुच्छसे किंचि, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ३१
व्यक्त.— किं मन्ने पंच भूया अत्थि नत्थि त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं याणासि तेसिमो अत्थो. ३५
सुधर्मा.—किं मन्ने जारिसो इह भवम्मि सो तारिसो परभवे वि, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ३९
मण्डित—किं मन्ने बंध-मोक्खा संति न संति त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ४३
मौर्यपुत्र—किं मन्ने अत्थि देवा उयाहु नत्थि त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ४७
अकम्पित—किं मन्ने नेरइया अत्थि नत्थि त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ५१
अचलभ्राताः—किं मन्ने पुण्ण-पावा अत्थि नत्थित्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ५५
मेतार्यः—किं मन्ने परलोओ अत्थि नत्थित्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ५९
प्रभासः—किं मन्ने निव्वाणं अत्थि नत्थि त्ति संसओ तुज्झं, वेयपयाण य अत्थं न याणासि तेसिमो अत्थो. ६३

तथा षष्ठाङ्गे उपोद्घात एवं दृश्यते, यथा किल सुधर्मस्वामिनं प्रति जम्बूनामा प्राहः—"*जइ णं भंते ! पंचमस्स अंगस्स विआहपण्णत्तीए समणेणं भगवया महावीरेणं अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! के अट्ठे पण्णत्ते?*" त्ति. तत एवमिहाऽपि सुधर्मैव जम्बूनामानं प्रति उपोद्घातमवश्यमभिहितवानित्यवसीयत इति. अयं च उपोद्घातग्रन्थो मूलटीकाकृता समस्तशास्त्रमाश्रित्य व्याख्यातोऽप्यस्माभिः प्रथमोद्देशक-माश्रित्य व्याख्यायते, प्रतिशतं प्रत्युद्देशकमुपोद्घातस्येह शास्त्रेऽनेकधाऽभिधानादिति. अयं च प्राग् व्याख्यातो नमस्कारादिको ग्रन्थो वृत्तिकृता न व्याख्यातः कुतोऽपि कारणादिति.

२. शंकाः—हवे, आ केवी रीते निश्चित थइ शके के श्रीसुधर्मस्वामिए जंबूस्वामि प्रति [गुरुपरंपरास्वरूप] संबन्धग्रंथ कह्यो छे ?. समा० कहिए छीएः सुधर्म- सुधर्माए ग्रंथ कह्यो ?

मगहा गुब्बरगामे जाया तिन्नेव गोयमसगुत्ता, कुल्लागसंनिवेसे जाओ वियत्तो सुहम्मो य ६६ मोरियसंनिवेसे दोभायर मंडिमोरिया जाया, अयलो य कोसलाए मिहिलाए अकंपिओ जाओ. ६७ तुंगियसंनिवेसे मेयज्जो वच्छभूमीए जाओ, भगवं पि य पभासो रायगिहे गणहरो जाओ ६८ जिट्ठा कत्तिय साई सवणो हत्थुत्तरा महाओ य, रोहिणी उत्तरसाढा मिगसिर तह अस्सिणी पुस्से. ६९ वसुभूई धणमित्तो धम्मिल धणदेव मोरिए चेव, देवे वसू य दत्ते बले य पियरो गणहराणं. ७० पुहवी य वारुणी भद्दिला य विजयदेवा, तहा जयंती य नंदा य वरुणदेवा अइभद्दा य मायरो ७१ तिन्नि य गोयमगुत्ता भारद्दा अग्गिवेस वासिट्ठा, कासव–गोयम–हारिअ कोडिन्नदुगं च गुत्ताइं. ७२ पन्ना च्छायालीसा बायाला हुंति पन्न पन्ना य, तेवन्न पंचसट्ठी अडयालीसा य छायाला. ७३ छत्तिसा सोलसगं अगारवासो भवे गणहराणं, छउमत्थ परियागं अहक्कमं कित्तइस्सामि ७४ तीसा बारस दसगं बारस बायाल चउद्दसदुगं च, नवगं बारस दस अट्ठगं च छउमत्थपरियाओ. ७५ छउमत्थपरियागं अगारवासं च वुक्कमित्ताणं, सव्वाउयस्स सेसं जिणपरियागं वियाणाहि. ७६ बारस सोलस अट्ठारसेव अट्ठारसेव अट्ठेव सोलस, सोलस तह इक्कवीस चउद्दस सोलं य सोलं य ७७ बाणउई चउहत्तरि सत्तरि तत्तो भवे असीई य, एगं च सयं तत्तो. तेसीई पंचणउई य. ७८ अट्ठत्तरिं च वासा तत्तो च बावत्तरिं च वासाइं, बावत्तरी चत्ता खलु सव्वगणहराउयं एयं. ७९ सव्वे य माहणा जच्चा सव्वे य अज्झावया विऊ, सव्वे दुवालसंगीआ सव्वे चउद्दसपुव्विणो. ८० परिनिव्वुया गणहरा जीवंते नायए नव जणा ओ, इंदभूई सुहम्मो अ रायगिहे निव्वुए वीरे. ८१ मासं पाओवगया सव्वे वि य सव्वलद्धिसपन्ना, वज्जरिसहसंघयणा समचउरंसा य संठाणे. ८२—आवश्यकनिर्युक्ति (यशो० ग्रं०) पृ० ११०—११९.—अनु०

१. अयं पाठः श्रीमता वृत्तिकृता ज्ञाताङ्गात् संक्षिप्य लिखित , तत्रैवं विस्तीर्ण पाठ —"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं, लोगणाहेणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएणं, मग्गदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरणाण–दंसणधरेणं, जिणेणं, जावएणं, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेणं मोयगेणं, तिण्णेणं, तारएणं सिवमयलमरुअम-णंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तियं सासयं ठाणमुवगएणं पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते. छट्ठस्स णं अंगस्स भंते ! णायाधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?" ज्ञाता० (क० आ०) पृ-२७ २८—अनु० २. प्र०छाया —यदि भगवन् ! पञ्चमस्याङ्गस्य, विवाहप्रज्ञप्तेः श्रमणेन भगवता महावीरेणायमर्थः प्रज्ञप्तः, षष्ठस्य भगवन् ! कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? इति

१. "काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवंत महावीरना अंतेवासी–शिष्य–अग्निवैश्यायनगोत्रीय आर्य श्री सुधर्मा स्थविर हता. ते आर्यसुधर्मस्थविरनुं स्वरूप—जीवनवृत्त आ प्रमाणे छे–कुल्लागनामना सन्निवेश–आभीरपल्लि–मां धम्मिलनामना विप्रना अने भद्दिलनामनी स्त्रीना ते (आर्यसुधर्मस्वामी) पुत्र हता. ते चौद विद्याना जाणनार हता. तेओए पचास वर्षना अंते प्रव्रज्या लीधी हती. ३० वर्ष श्रीवीरनी सेवा करी हती. श्रीवीरना निर्वाणपछी बारवर्षे एटले जन्मथी बाणुं वर्षे तेओए केवलज्ञान मेळव्युं हतुं. त्यारबाद आठ वर्ष सुधी केवलिपणुं परिपाली पोताना स्थाने श्रीजंबूस्वामिने संस्थापी सो वर्षना आयुष्यवाळा ते आर्यसुधर्मा मुक्ति प्रत्ये गया–अजरामर थया.–कल्पसूत्र आठमो क्षण. २ अग्निवैश्यायनगोत्रीय श्रीआर्यसुधर्मांना शिष्य काश्यप-गोत्रीय आर्य श्रीजंबूनामना स्थविर हता. श्रीजंबूस्वामिनुं स्वरूप आ प्रमाणे छेः—राजगृह नगरमां, ऋषभश्रेष्ठीना अने धारिणीश्रेष्ठिनीना ते आर्यजंबू पुत्र हता. तेओ पंचमस्वर्गथी च्यवीने मनुष्यदेह पाम्या हता. तेओए आर्य श्री सुधर्मास्वामिपासे धर्मश्रवणपूर्वक शील अने सम्यक्त्व स्वीकार्युं हतुं अने माता पिताना दृढ आग्रहथी तेओ आठ कन्याओने परण्या हता, तोपण कन्याओनी स्नेहयुक्तवाणीथी व्यामोहित थया न हता यत—सम्यक्त्व अने शीलरूप बे तुंबडावडे भवरूपसमुद्र सुखपूर्वक तरी शकाय छे, तो शील अने सम्यक्त्वरूप ब तुंबडाने धारण करनार जंबूमुनि स्त्रीरूप नदीओमां केम बुडे ?—न ज बुडे. विवाहित थया बाद ज परणेली आठे कन्याओने रात्रीमां प्रतिबोधता जंबूस्वामिए चोरी करवा आवेल चारसो नवाणु चोरना परिवारवाळा प्रभव (नामना चोर)ने प्रबोध्यो. त्यार बाद प्रातःकाळे पांचसो चोर, आठ कन्याओ, आठे कन्याओना माता पिता अने पोताना माता पिता साथे—कुल पांचसो छव्वीश माणसो साथे पोते पांचसो सत्तावीशमा थइ नवाणुकोटि सुवर्णनो त्याग करी श्रीसुधर्मास्वामिपासे प्रव्रज्या लीधी. पछी क्रमथी केवली थइ एंशी वर्षनुं आयुष्य परिपाली एटले १६ वर्ष गृहस्थ अवस्थामां, २० वर्ष साधुपणे छद्मस्थ अवस्थामां अने ४४ वर्ष केवलिअवस्थामां ए प्रमाणे एंशी वर्षनुं आयुष्य भोगवी पोताना स्थाने श्रीप्रभवस्वामिने संस्थापी आर्यजंबूस्वामी सिद्धि पाम्या. अत्र कवि कहेछे केः—जंबूस्वामिसमान कोइ कोटवाळ थयो नथी अने थशे नहीं, कारण के जे जंबूस्वामीए चोरोने पण शिवमार्गना वाहक साधु बनाव्या हता; चोरीथी धनने लुंटता प्रभवस्वामीए अनर्घ्य अचौर्यहर, अने अद्भुत (ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप) त्रण रत्नो मेळव्यां छे ते प्रभव प्रभु पण जय पामो. भगवान् श्रीमहावीर पछी बार वर्षे श्रीगौतम, वीश वर्षे श्रीसुधर्मा अने चोसठ वर्षे श्रीजंबूस्वामी सिद्ध थया. श्रीजंबूस्वामी सिद्ध थया पछी नीचे उल्लेखेलां दश स्थानो व्युच्छिन्न थयां छे. "१ मनःपर्यवज्ञान. २ परमावधिज्ञान, जे परमावधिज्ञाननी उत्पत्ति थया बाद अन्तर्मुहूर्ते केवलज्ञान थाय छे. ३ पुलाकलब्धि—जे पुलाकलब्धिवडे चक्रवर्तीनो सेनाना पण चूरेचूरा करवा समर्थ थइ शकाय छे. ४ आहारकशरीरलब्धि. ५ क्षपकश्रेणि. ६ उप-शमश्रेणि. ७ जिनकल्प. ८ संयमत्रिक–परिहारविशुद्धिकसंयम, सूक्ष्मसंपरायसंयम अने यथाख्यातसंयम. ९ केवलज्ञानी अने १० सिद्धिप्राप्ति" अत्र आर्यजंबू माटे कवि कहे छे केः—जंबूस्वामी महामुनिनुं सौभाग्य खरेखर लोकोत्तर छे, केमके जे आर्य जंबूने पति तरिके पामी शिवश्री–मोक्षरूपलक्ष्मी–आज सुधी पण बीजा पतिने इच्छती नथी अर्थात् आर्यजंबू पछी मुक्तिप्राप्ति व्युच्छिन्न होवाथी कोइ जीव (आ क्षेत्रथी) सिद्धिने मेळवी शक्यो नथी.—कल्पसूत्र, आठमो क्षण.—अनु०

शेष गणधरो शिष्य-रहित.

स्वामीनी वाचना ज अनुवर्तेली छे- परंपराए आवेली छे. कह्युं छे केः—“सुधर्मस्वामिथी तीर्थ प्रवर्त्युं छे, बाकीना गणधरो निरपत्य–शिष्यरहित–हता.”

---

१. आ गाथा आवश्यकनियुक्तिमां गणधरप्रकरणमां छे.

१. भगवान् भद्रबाहुए पोतानी 'आवश्यक निर्युक्ति'मां गणधरोनुं वृत्त आ प्रमाणे निर्देश्युं छेः—

“ते दिव्य देवघोषने सांभळीने ब्राह्मणो तुष्ट थया के, अहो! याज्ञिके केवुं यजन कर्युं के देवो अहिं आव्या. १ अग्यारे गणधरो उन्नत अने विशाल कुलवंशना हता अने तेओ मध्यम पावापुरीमां यज्ञवाडामां समोसर्या हता. २ प्रथम इंद्रभूति, बीजो अग्निभूति, त्रीजो वायुभूति, चोथो व्यक्त, पांचमा सुधर्मा, छट्ठो मंडित, सातमो मौर्यपुत्र, आठमो अकंपित, नवमो अचलभ्राता, दशमो मेतार्य अने अग्यारमो प्रभास, ए बधा श्रीवीरना गणधरो हता. ३–४ तेओए शा कारणथी दीक्षा लीधी? तेने हुं क्रमपूर्वक कहीश तीर्थनी प्रवृत्ति सुधर्मगणधरथी थइ छे अने बाकीना गणधरो शिष्य विनानां हता. ५ प्रथम गणधरने जीवनो, बीजाने कर्मनो, त्रीजाने जीव अने शरीरना भेदनो, चोथाने भूतनो, पांचमाने बंधनो, छट्ठाने मोक्षनो, सातमाने देवनो, आठमाने नैरयिकनो, नवमाने पुण्यनो, दशमाने परलोकनो अने अग्यारमाने निर्वाणनो संशय हतो ६ पांच गणधरना पांचसो, बेना साडात्रणसो अने बीजा बे बेना त्रणसो त्रणसो गण हता. ७ देवोद्वारा करातो जिनवरेंद्रनो महिमा सांभळीने अहंमानी, अमर्शवाळो इंद्रभूति आवे छे. ८ लोको मने मूकीने तेना (महावीरना) पादमूल तरफ शामाटे दोडे छे? हुं छुं छता बीजो जाणे छे ते केम होइ शके? ९ तेना तरफ मूर्ख लोको तो जाओ, पण तेणे देवोने शीरीते विस्मय पमाड्यो के जेथी देवो तेने सर्वज्ञ मानीने वांदे छे अने तेनी स्तुति करे छे? १० अथवा जेवो ते ज्ञानी हशे तेवा ज आ देवो हशे; गामना नटो अने मूर्ख लोकोनी पेठे ते बेनो समागम ठीक थयो छे. ११ देवोना अने दानवोनी आगळ ते पुरुषने हतप्रताप करीने एक क्षणमां तेना समस्त सर्वज्ञवादनो नाश करीश. १२ एम कहीने त्रिलोकीथी परिवृत अने चोत्रीश अतिशययुक्त वीरने जोवा माटे ते सशंक थइने आगळ वध्यो १३ जन्म, जरा अने मरणथी विप्रमुक्त सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी ते वीर जिनेश्वरे तेना नाम अने गोत्रोच्चारपूर्वक तेने बोलाव्यो.–१४ 'हे इन्द्रभूते! गौतम! तने स्वागत छे.' एम ज्यारे ते वीरे कह्युं त्यारे इन्द्रभूति विचारे छे के, आ तो मारुं नाम पण जाणे छे, अथवा मने कोण नथी जाणतुं?, १५ जो कदाच आ (वीर) मारा हृदयगत संशयने जाणे वा छेदे तो मने विस्मय थाय ज्यारे ते इंद्रभूतिए एम विचार्युं त्यारे श्री वीरे फरीथी कह्युं के.—१६.

हे इंद्रभूते! 'जीव छे के नथी?' ए प्रमाणे तने संशय छे, तुं वेदना पदोनो अर्थ जाणतो नथी, तेनो अर्थ आ (आ प्रमाणे) छे. १७.

हे अग्निभूते! तुं आ प्रमाणे विचारे छे के शुं कर्म छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे. २५.

हे वायुभूते! शुं जे वस्तु जीव छे ते ज वस्तु शरीर छे? अर्थात् जीव अने शरीर ए बे वस्तु जूदी नथी, ए तारो संशय छे अने तेने दूर करवामाटे मने कांइ पूछतो नथी, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे. ३१.

हे व्यक्त! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं भूतो छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारणके वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ३५.

हे सुधर्मन्! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं जे आ भवमां मनुष्य छे ते परभवमां पण मनुष्य थाय छे? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ३९.

हे मण्डित! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं बंध अने मोक्ष छे अथवा नथी? एप्रमाणे तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ४३.

हे मौर्यपुत्र! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं देवो छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे. ४७.

हे अकंपित! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं नैरयिक छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे. ५१

हे अचलभ्रात! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं पुण्य पाप छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ५५

हे मेतार्य! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं परलोक छे अथवा नथी? ए तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ५९.

हे प्रभास! तुं ए प्रमाणे विचारे छे के शुं निर्वाण छे अथवा नथी? तारो संशय छे, कारण के वेदना पदोनो अर्थ तुं जाणतो नथी तेथी संशय करे छे पण तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे ६३

गौतमगोत्रवाळा त्रण गणधरो मगधदेशना गोबर गाममां थया छे. व्यक्त अने सुधर्मा गणधर कोल्लाक संनिवेशमां थया छे. मौरिक संनिवेशमां मंडित अने मौर्य ए बन्ने भाइओ थया छे. अचल कोशला नगरीमा, अकंपित मिथिला नगरीमां, मेतार्य वत्सभूमिमां, तुंगिक संनिवेशमां, अने भगवान् प्रभास गणधर पण राजगृहमा थया छे. ज्येष्ठा, कृतिका, स्वाति, श्रवण, हस्तोत्तरा, मघा, रोहिणी, उत्तराषाढा, मृगशिर, अश्विनी अने पुष्य, ए गणधरोनां जन्मनक्षत्रो छे. वसुभूति, धनमित्र, धम्मिल, धनदेव, मौर्य, देव, वसु, दत्त अने बल ए गणधरोना पिताओ छे. पृथिवी, वारुणी, भद्दिला, विजया, जयंती, नंदा, वरुणदेवा अने अतिभद्रा ए गणधरोनी माताओ छे. त्रण गणधरो गौतमगोत्रना छे. एक भारद्वाजगोत्रनो, एक अग्निवैश्यायनगोत्रनो, एक वासिष्ठगोत्रनो, एक काश्यप-गोत्रनो, एक गौतमगोत्रनो, एक हारितगोत्रनो अने बे कौडिन्यगोत्रना छे. पचास वर्ष, छेताळीश वर्ष, बेताळीश वर्ष, पचास वर्ष, पचास वर्ष, त्रेपन वर्ष, पांसठ वर्ष अडताळीश वर्ष, छेताळीस वर्ष, छत्रीश वर्ष अने सोळ वर्ष, ए प्रमाणे अनुक्रमे गणधरोनो गृहवास छे. हवे यथाक्रम छद्मस्थ पर्यायने कहीशः–त्रीश वर्ष, बार वर्ष, दश वर्ष, बार वर्ष, बेताळीश वर्ष, चौद वर्ष, चौद वर्ष, नव वर्ष, बार वर्ष, दश वर्ष अने आठ वरस अनुक्रमे गणधरोनो छद्मस्थपर्याय छे. हवे छद्मस्थ-पर्यायने अने अगार (गृह) वासने मूकीने बाकी रहेलो जे आयुष्यनो भाग तेने जिनपर्याय—केवलिपर्याय—जाणो. बार वर्ष, सोळ वर्ष, अढार वर्ष, अढार वर्ष, आठ वर्ष, सोळ वर्ष, सोळ वर्ष, एकवीश वर्ष, चौद वर्ष, सोळ वर्ष अने सोळ वर्ष ए गणधरोनो यथाक्रम केवलिपर्याय छे. बाणुं वर्ष, चुमोतेर वर्ष, सित्तेर वर्ष, एंशी वर्ष, सो वर्ष, त्र्याशी वर्ष, पंचाणु वर्ष, अठ्योतेर वर्ष, बोंतेर वर्ष, बासठ वर्ष अने चाळीश वर्ष ए गणधरोनुं सर्व आयुष्य छे. ते बधा गणधरो उत्तम ब्राह्मण, विद्वान्, अध्यापक, द्वादशांगना ज्ञाता अने चौदपूर्वी हता. भगवंतनी जीवनदशामां नव गणधरो राजगृहनगरमां निर्वाण पाम्या अने इंद्रभूति तथा सुधर्मा, वीरना निर्वाण पछी राजगृहनगरमां निर्वाण पाम्या. सर्व गणधरोए मास सुधी पादपोपगमन स्वीकार्युं हतुं अने बधा सर्वलब्धिसंपन्न, वज्रऋषभनाराच संघयणवाळा अने समचोरससंस्थानवाळा हता.” ६६–८३–आवश्यकनिर्युक्ति (यशो० ग्रं०) पृ० ११०–११६अनु०

** १७ पृष्ठपर गणधरयंत्र जुओ.

अने जंबूस्वामि श्रीसुधर्मस्वामिना मुख्य शिष्य हता. माटे ज तेओने- जंबूस्वामिने- आश्री आ वाचना प्रवर्तेली छे. तथा छठ्ठा 'ज्ञाता'नामना अंगमां उपोद्घात आ प्रमाणे देखाय छेः–जेम, जंबूनामे (शिष्य) सुधर्मस्वामि प्रति कहे छे केः–" हे भगवन् ! जो विवाहप्रज्ञप्ति–भगवती–नामना पांचमा अंगनो आ अर्थ श्रमण भगवंत महावीरे कह्यो छे, (तो हवे) छठ्ठा (ज्ञाता नामना अंग) नो शो अर्थ कह्यो छे?" ते छठ्ठा अंगमां कहेल उपोद्घातथी एम निर्णीत करी शकाय छे के, ए प्रमाणे अहीं पण जंबूनामना शिष्यप्रति सुधर्मास्वामिए ज जरूर उपोद्घात कहेलो होवो जोइए. मूलनी टीका करनारे आ उपोद्घात ग्रंथनुं व्याख्यान आखा शास्त्रने उद्देशी कर्युं छे, पण अमे आ उपोद्घात ग्रन्थनुं व्याख्यान मात्र प्रथम उद्देशकपरत्वे कर्युं छे, कारण के आ शास्त्रमां दरेक शतके, दरेक उद्देशके अनेक प्रकारे उपोद्घात कह्यो छे. पहेलां विवेचेल आ नमस्कारादि ग्रंथनी वृत्तिकारे कोइपण कारणथी व्याख्या करी नथी.

ज्ञाताधर्मकथांमां सुधर्मास्वामी अने जंबूस्वामी.

गुरुः	गणधरनामः	गामः	नक्षत्रः	पिताः	माताः	ज्ञातिः	गोत्रः	गृहवासः	छद्मस्थः	केवलः	[illegible]	पूर्वः	अंगः	मोक्षगमनः	मोक्षनगरः
महावीर	इंद्रभूति	गुब्बर (गोबरगाम)	ज्येष्ठा	वसुभूति	पृथिवी	ब्राह्मण	गौतम	५० वर्ष	३० वर्ष	१२ वर्ष	९२ वर्ष	१४	१२	महावीर पछी	राजगृह†
,,	अग्निभूति	,,	कृत्तिका	,,	,,	,,	,,	४६ वर्ष	१२ वर्ष	१६ वर्ष	७४ वर्ष	,,	,,	महावीर पहेला	,,
,,	वायुभूति	,,	स्वाति	,,	,,	,,	,,	४२ वर्ष	१० वर्ष	१८ वर्ष	७० वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	व्यक्त	कोल्लाक संनिवेश	श्रवण	धनमित्र	वारुणी	,,	भारद्वाज	५० वर्ष	१२ वर्ष	१८ वर्ष	८० वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	सुधर्मा	,,	हस्तोत्तरा	धम्मिल	भद्दिला	,,	अग्निवैश्यायन	५० वर्ष	४२ वर्ष	८ वर्ष	१०० वर्ष	,,	,,	महावीर पछी	,,
,,	मंडित	मौरिक संनिवेश	मघा	धनदेव	विजया	,,	वासिष्ठ	५३ वर्ष	१४ वर्ष	१६ वर्ष	८३ वर्ष	,,	,,	महावीर पहेला	,,
,,	मौर्यपुत्र	,,	रोहिणी	मौर्य	,,	,,	काश्यप	६५ वर्ष	१४ वर्ष	१६ वर्ष	९५ वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	अकंपित	मिथिला	उत्तराषाढा	देव	जयंती	,,	गौतम	४८ वर्ष	९ वर्ष	२१ वर्ष	७८ वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	अचलभ्राता	कोशला	मृगशिर	वसु	नंदा	,,	हारित	४६ वर्ष	१२ वर्ष	१४ वर्ष	७२ वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	मेतार्य	वत्सभूमि, तुंगिक सं०	अश्विनी	दत्त	वरुणदेवा	,,	कौंडिन्य	३६ वर्ष	१० वर्ष	१६ वर्ष	६२ वर्ष	,,	,,	,,	,,
,,	प्रभास	राजगृह	पुष्य	बल	अतिभद्रा	,,	,,	१६ वर्ष	८ वर्ष	१६ वर्ष	४० वर्ष	,,	,,	,,	,,

१. आ पाठ 'ज्ञाता' सूत्रमां छे. पण तेने, ते सूत्र उपरथी टुंको करीने श्रीवृत्तिकारे अहीं लख्यो छे. तेमां लांबो पाठ आ प्रमाणे छेः–(जंबुस्वामी, सुधर्मस्वामिने कहे छे के)–हे भगवन् ! यदि आदिकर, तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, लोकनाथ, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदय, शरणदय, चक्षुना देनार, मार्गदय, धर्मना दय—देनार, धर्मदेशक, धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती–धर्ममां उत्तम चक्रवर्तिसमान, अस्खलित ज्ञान अने दर्शनना धारणकरनार, जिन, जापक–रागादिशत्रुओने जितावनार, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, भवसमुद्रने तरेल, तारक अने शिव, अचल, अरोग, अनंत, अक्षय, अव्याबाध, पुनरावृत्तिरहित शाश्वत स्थानने पामेल श्रमण भगवंत महावीरे पांचमा अंगनो अर्थ कह्यो छे तो हे भगवन् ! ज्ञाताधर्मकथा (नामना) छठ्ठा अंगनो शो अर्थ कह्यो छे ?–ज्ञाता० (क० आ० पृ० २७–२८.)

† राजगृह नगर आज पण विद्यमान छे. बिहार प्रान्तमां पटणा जिल्लामां ते आवेलुं छे. त्यांसुधी आगगाडी छे. मगध देशनी अने प्रख्यात श्रेणिक राजानी ते राजधानी हतुं. आ 'भगवतीसूत्र'मां शतक २, उद्देशक ५ मा मां उल्लेख कर्या प्रमाणे त्यां गरम पाणीना कुंडो आज पण अस्तित्व धरावे छे. विक्रमनी पांचमी शताब्दीमां हिंदना प्रवासे चीनाई प्रवासी फाहियान तथा सातमी शताब्दीमां हुएनसांग आव्या हता. तेओए राजगृह जोयानुं तथा तेमां गरम पाणीना झराओ जोयानुं वर्णन पोताना प्रवासवर्णनमां आपेलुं छे. अत्यारे पण ते एक जैनतीर्थ तरीके प्रसिद्ध छे.

राजगृहथी अर्धा गाउनी दूर पांच पहाडो छे, जेना उपर जिनदेवालयो, पाषाण अने धातुना जिनबिंबो तथा चरणपादुकाओ छे.–अनु०

§ *ते णं काले णं, ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे, आइगरे, तित्थगरे, सहसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे, पुरिससीहे, पुरिसवरपुंडरीए, पुरिसवरगंधहत्थी, लोगुत्तमे, लोगनाहे, [लोगहिए,] लोगपईवे, लोगपज्जोयगरे, अभयदए, चक्खुदए, मग्गदए, सरणदए, [बोहिदए,] धम्मदए, धम्मदेसए, [धम्मनायगे,] धम्मसारही, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी, अप्पडिहयवरणाण-दंसणधरे, वियट्टछउमे, जिणे, जाणए, बुद्धे, बोहए, मुत्ते, मोयए, सव्वण्णू, सव्वदरिसी, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तियं, सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामे जाव समोसरणं. * * * परिसा णिग्गया. * * * धम्मो कहिओ. * * * परिसा पडिगया.*

ते काले, ते समये (श्रमण भगवान् महावीर) आदिकर[1], तीर्थंकर[2], सहसंबुद्ध–स्वयं तत्त्वना ज्ञाता, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुंडरीक–पुरुषोमां उत्तम कमळसमान, पुरुषवरगंधहस्ती[3]–पुरुषोमां उत्तम गंधहस्तिसमान, लोकोत्तम, लोकनाथ, [लोकहितकर], लोकप्रदीप–लोकमां प्रदीपसमान, लोकप्रद्योतकर–लोकमां प्रद्योत करनार, अभयदय–अभय देनार, चक्षुर्दय-नेत्र[4] देनार, मार्गदय-मार्ग[5]ने देनार, शरणदय[6]–शरण देनार, [बोधिदय-सम्यक्त्वने देनार], धर्मदय-धर्मने देनार, धर्मदेशक, [धर्मनायक], धर्मसारथि–धर्मरूप रथना सारथि, धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती[7]–धर्मने विषे उत्तम चातुरंत चक्रवर्तिसमान, अप्रतिहत ज्ञानना अने दर्शनना धारण करनार, छद्म–शठता- रहित, जिन- रागद्वेषना जीतनार, सकल तत्त्वना ज्ञायक–जाणनार, बुद्ध, बोधक -तत्त्वोना जणावनार, मुक्त[8], मोचक[9]-मुकावनार, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवा श्रमण भगवान् महावीर शिव, सर्वबाधारहित, अचल, अरुज[10] रोगरहित, अनंत–अनंत पदार्थ विषयक ज्ञानस्वरूप, अक्षय, व्याबाधरहित, पुनरावृत्ति[11]रहित, 'सिद्धिगति' एवा प्रशस्तनामवाळा स्थानने संप्रापवानी इच्छावाळा[12] (विहरे छे) यावत् समवसरण–समवसरण सुधीनुं वर्णन जाणवुं. * * * सभा नीकळी. * * * धर्म कह्यो. * * * सभा प्रतिगमी–पाछी गई.

३. '*ते-णं काले-णं*' ति 'ते' इति प्राकृतशैलीवशात् तस्मिन् यत्र तद् नगरमासीत, 'णं' कारोऽन्यत्राऽपि वाक्यालंकारार्थः, यथा-'*इमा णं भंते ! पुढवी*'[1] इत्यादिषु. काले अधिकृतावसर्पिणीचतुर्थविभागलक्षणे. '*ते णं*' ति तस्मिन् यत्राऽसौ भगवान् धर्मकथामकरोत्, '*समए-णं*'ति समये कालस्यैव विशिष्टे विभागे, अथवा तृतीयैवेयम्, ततस्तेन कालेन हेतुभूतेन, तेन समयेन हेतुभूतेनैव, '*रायगिहे*' त्ति एकारः प्रथमैकवचनप्रभवः '*कयरे आगच्छइ दित्तरूवे*'[2] ? इत्यादाविव. ततश्च राजगृहं नाम नगरं '*होत्थ*' त्ति अभवत्. नन्विदानीमपि तन्नगरमस्तीत्यतः कथमुक्तमभवदिति ?. उच्यते–वर्णकग्रन्थोक्तविभूतियुक्तं तदैवाभवत्, न तु सुधर्मस्वामिनो वाचनादानकाले, अवसर्पिणीत्वात्[3] कालस्य तदीयशुभभावानां हानिभावात्. '*वण्णओ*' त्ति इह स्थाने नगरवर्णको वाच्यः, ग्रन्थगौरवभयादिह तस्याऽलिखितत्वात्. स चैवम्- "*रिद्धत्थिमियसमिद्धे*"[4] ऋद्धं पुरभवनादिभिर्वृद्धम्, स्तिमितं स्थिरं स्वचक्रादिभयवर्जितत्वात्, समृद्धं धनधान्यादिविभूतियुक्तत्वात्, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः. "*पमुइयजणजाणवए*"[5] प्रमुदिता हृष्टाः प्रमोदकारणवस्तूनां सद्भावाद् जना नगरवास्तव्यलोकाः, जानपदाश्च जनपदभवास्तत्रायाताः सन्तो यत्र तत् प्रमुदितजनजानपदम्. इत्यादिर्[6]–औपपातिकात् सव्याख्यानोऽत्र दृश्यः. '*तस्स णं*'

---

§ मूलच्छायाः–तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः, आदिकरः, तीर्थंकरः, सहसंबुद्धः, पुरुषोत्तमः, पुरुषसिंहः, पुरुषवरपुण्डरीकम्, पुरुषवरगन्धहस्ती, लोकोत्तमः, लोकनाथः, लोकहितः, लोकप्रदीपः, लोकप्रद्योतकरः, अभयदयः, चक्षुर्दयः, मार्गदयः, शरणदयः, बोधिदयः, धर्मदयः, धर्मदेशकः, धर्मनायकः, धर्मसारथिः, धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती, अप्रतिहतवरज्ञान–दर्शनधरः, व्यावृत्तछद्मा, जिनः, ज्ञायकः, बुद्धः, बोधकः, मुक्तः, मोचकः, सर्वज्ञः, सर्वदर्शी, शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्तिकं सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तुकामो यावत् समवसरणम्. पर्षद् निर्गता. धर्मः कथितः. पर्षत् प्रतिगता.

१. श्रुत (आचारांगादिग्रंथस्वरूप) ना आदिकर–प्रथमथी करनार. २. तीर्थ (प्रवचन अथवा संघ) ना करनार. ३. पुरुषोमां उत्तम गंधहस्तिसमान एटले जेम गंधहस्तिना गंधथी पण बीजा बधा हाथीओ भागी जायछे तेम ज भगवंतना विहारथी दुर्भिक्ष, मरकी वगेरे नाशी जाय छे. ४. ज्ञानरूप नेत्रने देनार. ५. मोक्षरूप मार्गना दायक. ६. शरण–बाधारहितस्थान- निर्वाण–ने देनार. ७. त्रण समुद्रो अने चतुर्थ हिमालय ए चार पृथ्वीना अंतो छे, ते चतुरंत कहेवाय, ते चतुरंतनो स्वामी चातुरंत कहेवाय, अर्थात् समस्त पृथ्वीना स्वामी उत्तम चक्रवर्तिसमान भगवान् छे. ८. बाह्याभ्यंतर परिग्रहथी मुक्त–मुकाएला. ९. कर्मथी लोकोने मुकावनार. १. आ विशेषणो मुक्तावस्थाने आश्रीने छे. १०. रोगना कारण–शरीर अने मननो मुक्तस्थितिमां अभाव होवाथी रोगरहित. ११. ज्यां गया पछी पाछुं फरीथी संसारमां न अवतरवुं पडे ते अपुनरावृत्तिक स्थान. १२. भगवंत तो मोक्षे अने संसारे उभयत्र सम ज होय छे, छतां अहीं जे भगवंतनी मोक्षेच्छा बतावी छे ते औपचारिक छे.

१. प्र०छायाः–इयं भगवन् पृथिवी. २. प्र०छायाः–कतर आगच्छति दीप्तरूपः ? ३. अवसर्पो भावानां पतत्प्रकर्षता, सोऽस्यामस्ति अवसर्पिणी इतीदृशः. ४. प्र०छायाः–ऋद्धस्तिमितसमृद्धम्. ५. प्र० छायाः–प्रमुदितजन–जानपदम्. ६. स चैवम्:–"आइण्णजणमणुस्सा, हलसयसहस्ससंकिट्ठविकिट्ठलट्ठपण्णत्तसेउसीमा, कुक्कुड–संडेयगामपउरा, उच्छु–जव–सालिकलिआ, गो–महिस–गवेलगप्पभूआ, आयारवंतचेइय–जुवइविविहसण्णिविट्ठबहुला, उक्कोडिय–गायगंठिभेय–भड–तक्कर–खंडरक्खरहिआ, खेमा, निरुवद्दवा, सुभिक्खा, वीसत्थसुहावासा, अणेगकोडिकुडुंबियाइण्णणिव्वुयसुहा, णड–णट्टग–जल्ल–मल्ल–मुट्ठिय–वेलंबय–कहग–पवग–लासग–आइक्खग–लंख–मंख–तूणइल्ल–तुंबवीणियाऽणेगतालायराणुचरिआ, आरामुज्जाण–अगड–तलाग–दीहिय–वप्पिणिगुणोववेआ, नंदणवणसंनिभप्पगासा, उव्विद्धविउलगंभीरखायफलिहा, चक्क–गय–मुसंढि–उरोह–सयग्घिजमलकवाडघण-

ति षष्ठ्याः पञ्चम्यर्थत्वात् तस्माद् राजगृहनगरात्, 'बहिय' त्ति बहिस्तात्, 'उत्तर-पुरत्थिमे' त्ति उत्तर-पौरस्त्ये, 'दिसीभाए'त्ति दिशां भागः, दिग्रूपो वा भागो गगनमण्डलस्य दिग्भागस्तत्र गुणसिलकं नाम 'चेइए'त्ति चितेर्लेप्यादिचयनस्य भावः कर्म वेति चैत्यं संज्ञाशब्दत्वाद् देवबिम्बम्, तदाश्रयत्वात् तद्गृहमपि चैत्यम्, तच्चेह व्यन्तरायतनम्, न तु भगवतामर्हतामायतनम्. 'होत्थ'त्ति बभूव. इह च यन्न व्याख्यास्यते तत् प्रायः सुगमत्वादित्यवमेयमिति.

राजगृहः. राजगृह 'हतुं'? राजगृह 'हतु' राजगृह-विशेष-वर्णन. चैत्यः

३. ['ते-णं[1] काले-णं[2]'ति] जे काले ते (राजगृह) नगर हतुं ते चालु अवसर्पिणीना चोथा विभागरूप कालने विषे ['ते-णं' ति] जे समये ए श्रमण भगवंत महावीर धर्मकथा करता हता ते ['समए णं'] चोथा विभागरूपकालना अमुक भागरूप समये अथवा, हेतुभूत ते काले ते समये ['रायगिहे'त्ति] राजगृह नामनुं नगर ['होत्थ'त्ति] हतुं. शंकाः—हमणां पण ते नगर विद्यमान छे छतां ते 'हतुं' एम केम कह्युं ? समा० कहीए छीएः—राजगृहनगरना वर्णन करनार ग्रंथमां तेनी जे विभूतिओ कही छे ते विभूतिओथी युक्त तो ते, ते समये ज हतुं; पण सुधर्मस्वामी जे समये वाचना देता हता ते समये तेवुं न हतुं. कारण के श्रीमहावीर पछीनो अवसर्पिणीकाल होवाथी ते नगरना केटलाक सारा पदार्थोनी हानि थवाथी ते राजगृह जेवुं श्रीमहावीरना काले हतुं तेवुं अत्यारे न होवाथी 'हतुं' एम कह्युं छे. ['वण्णओ'त्ति] आ स्थळे आ नगरनो वर्णक वर्णन दर्शावनार पाठ कहेवो. ग्रन्थगौरवनी बीतिथी अहीं तेने लख्यो नथी. ते आ प्रमाणे छेः ["रिद्ध त्थिमिय समिद्ध"] पुरना भवनादिवडे वृद्ध मोटुं, स्वचक्र वगेरे भयथी रहित होवाथी स्थिर अने पैसानी तथा अनाज वगेरेनी विभूतिथी युक्त होवाथी समृद्ध, ["पमुइयजण जाणवए"] ते नगरमां आनंदना साधनरूप अनेक वस्तुओ होवाथी त्यां रहेनारा लोको अने त्यां आवेला ते देशना लोको ज्यां प्रमोद पाम्या छे एवुं राजगृह नगर हतुं. इत्यादि वर्णकपाठ औपपातिक-उववाइअ सूत्रथी व्याख्यासहित अहीं जाणी लेवो. ['तस्स णं'ति] ते राजगृह नगरथी ['बहिय'त्ति] बहार ['उत्तर पुरत्थिमे'त्ति] उत्तर अने पूर्वनी वच्चेना ['दिसीभाए'त्ति] दिशाना भागमां अथवा गगनमंडलना दिग्रूप भागमां गुणसिलक नामनु ['चेइय'त्ति] चैत्य ['होत्थ'त्ति] हतुं. आ व्याख्यामां ज्यां जे शब्दनुं व्याख्यान न थाय त्यां ते सुगम होवाथी नथी कर्युं एम जाणी लेवुं.

दुप्पवेसा, धणुकुडिलवंकपागारपरिक्खित्ता, कविसीसयवट्टरइयसंठियविरायमाणा, अट्टालय-चरिय-दार-गोपुर-तोरणउण्णयसुविभत्तरायमग्गा, छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला, विवणि-वणिच्छेय-सिप्पिआइण्णणिव्वुयसुहा, सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चरपणियावणविविहवत्थुपरिमंडिआ, सुरम्मा, नरवइपविइण्णमहिवइपहा, अणेगवरतुरग-मत्त-कुंजर-रहपकर-सीय-संदमाणीयाइण्णजाणजुग्गा, विमुउलणवणलिणिसोभियजला, पंडुरवरभवणसण्णिमहिआ, उत्ताणणयणपेच्छणिज्जा, पासाइया, दरसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा."—औपपातिकसूत्रे (क० आ० पृ० २-९.)

१. ते शब्दनो 'तस्मिन्-तेमां' एवो अर्थ प्राकृत शैलीथी कर्यो छे. २. 'इमाणं भंते ! पुढवी' 'हे भगवन् ! आ पृथ्वी.' आ वाक्यनी पेठे अहीं 'णं' शब्द वाक्यालंकार माटे छे. एम अन्यत्र पण जाणवुं. ३. अथवा 'ते-णं काले-णं' इत्यादि शब्दनो 'ते कालमां, ते समयमां' एवो अर्थ न करवो. पण 'णं' ने वाक्यालंकारमाटे न गणतां 'तेन कालेन, तेन समयेन' ए प्रमाणे त्रीजि विभक्ति ज समजवी अने तेनो अर्थ 'हेतुभूत ते कालवडे, ते समयवडे' एवो करवो. ४. 'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे' दीप्तरूपवाळो कोण आवे छे ? ए वाक्यनी पेठे 'रायगिहे' ए शब्द प्रथमा विभक्तिवाळो छे'—श्री-अभयदेव. ५. जे काले पदार्थोना प्रकर्षनी पडती अवस्था होय ते अवसर्पिणी काल छे.—हैमकोश—अनु० ६. 'रिद्ध, थिमिय अने समिद्ध' ए त्रणे शब्दोनो कर्मधारयसमास करवो.—श्रीअभयदेव ७ राजगृह नगरनो वर्णक श्रीटीकाकारे 'औपपातिक' सूत्रथी जाणवानो लख्यो छे पण ते सूत्रमां चंपापुरीनो वर्णक छे. राजगृह अने चंपा बन्नेनां वर्णको तुल्य होवाथी टीकाकारे चंपानो वर्णक अत्र स्वीकार्यो छे. ते आ प्रमाणे छेः—"ते राजगृह नगर, मनुष्यजनोथी, आकीर्ण हतुं, राजगृहनगरना मार्गनी सीमा सैंकडो अने हजारो हळोद्वारा दूर दूर सुधी खेडाएली, लष्ट—सारी—अने बीज वाववाने योग्य थयेली हती. त्यां कुकडा अने सांढडाओ घणा हता. ते शेरडी, यव अने शालिथी युक्त हतुं तेमां बलद, पाडा अने गवेलक—मेंढाओ—घणा हता. त्यां सुंदर आकारवाळा चैत्यो अने सारी युवतिओना सनिवेशो—रहेठाणो—बहुलताए हतां. ते लांच खानाराओथी, केडवगेरेथी सोना वगेरेनी पोटलीने कापनाराओथी, बलात्कारे प्रवृत्ति करनारा भटोथी, चोरोथी अने फासा देनाराओथी रहित हतुं. ते क्षेम, निरुपद्रव, ज्या भिक्षुकोने सारी भिक्षा मळे तेवुं, विश्वासिओ माटे शुभावासवाळुं अने अनेक कुटुम्बपालकोथी भरेलुं, संतुष्ट अने शुभ हतुं. वळी नटो, नाचनाराओ, दोर उपर खेलनाराओ, मल्लो, मुष्टियुद्ध करनाराओ, मश्कराओ, पुराणीओ, कुदनाराओ, रासडा गानाराओ, शुभाशुभनुं आख्यान करनाराओ, मोटा वासडा उपर खेलनाराओ, चित्र बनावनारा भिक्षुओ, तूण नामनुं वाजुं वगाडनाराओ, तुंबडानी वीणा वगाडनाराओ अने अनेक ताल देनाराओ ते नगरने सेवता हता. ते आराम, उद्यान, कूप, तळाव, दीर्घिका अने पाणीना क्यारओना सौंदर्यथी युक्त हतुं, ते नंदनवन समान प्रकाशवाळुं हतुं. त्यां विशाळ गंभीर—उंडी—अने नीचे उपर सरखी खोदेली खाय हती. ते चक्र, गदा, मुसंढि—शस्त्रविशेष, उरोह—छातीने हणनार शस्त्र, शतघ्नी—सोने मारनार शस्त्र (तोप) अने साथे जोडेलां तथा निश्छिद्र कपाटोथी घणुं दुष्प्रवेश हतुं. ते वांका धनुष्य करतां पण वांका किल्लाथी व्याप्त हतुं. ते बनावेला अने जुदाजुदा आकारवाळा गोळ कांगराओथी विराजमान हतुं. अटारीओवडे, चरिय—किल्ला अने नगर वच्चेना आठ हाथ लांबा मार्ग-वडे, किल्लाना अने नगरना द्वारो वडे अने तोरणो वडे उन्नत अने जुदा जुदा राजमार्गवाळुं हतुं. ते नगरनो मजबुत परिघ अने इन्द्रकील चतुर आचार्य—शिल्पिए—बनाव्यो हतो. तेमां बजारो तथा वाणिआना स्थानो हतां अने ते शिल्पिकोथी आकीर्ण, निर्वृत अने सुखरूप हतुं. ते त्रिकोणस्थान, ज्यां त्रणशेरी भेगी थाय ते त्रिक, चोक, ज्यां अनेक शेरीओ भेगी थाय ते चत्वर अने करीयाणानी दुकानो अने विविध वस्तुओथी मंडित हतुं. ते सुरम्य हतुं. त्यां राजमार्ग राजाओथी आकीर्ण हतो. ते अनेक सारा घोडाओ, मत्त हाथीओ, रथना समूहो, शिबिकाओ अने सुखपालोथी व्याप्त हतुं. ते यानोथी अने युग्यो—बे हाथना वेदिकावाळा वाहनो—थी युक्त हतुं. त्यां निर्मल अने नवी कमलिनीओथी पाणी शोभतुं हतुं. ते धवळ सारा भवनोथी सन्निमहित हतुं अने ते उंची आंखोवडे प्रेक्षणीय, मनने प्रसन्नता देनारुं, दर्शनीय, अभिरूप अने प्रतिरूप हतुं."—औपपातिक सूत्र (क० आ० पृ० २ थी ९)—अनु० ८. 'तस्स' अहीं छठ्ठी विभक्ति पञ्चमी विभक्तिना अर्थमां छे, माटे 'तस्स'—ते नगरथी. ९. लेप्य वगेरे पदार्थना चयनने 'चिति' कहे छे, ते चितिनुं चितिपणुं अथवा ते चितिनुं कर्म ते 'चैत्य'. आ चैत्यशब्द संज्ञावाचक शब्द होवाथी तेनो व्यवहारु अर्थ देवनुं बिंब अथवा देवबिंबनुं आश्रय होवाथी देवगृह पण चैत्य कहेवाय छे. अहीं अर्हत् भगवंतोनुं चैत्य—आयतन—न लेवुं पण व्यंतरायतन लेवुं.—श्रीअभयदेव.

४. *'ते णं काले णं, ते णं समए णं समणे'*त्ति 'श्रम तपसि खेदे च' इति वचनात् श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः; अथवा सह शोभनेन मनसा वर्तत इति समनाः, शोभनत्वं च मनसो व्याख्यातं स्तवप्रस्तावात्; मनोमात्रसत्त्वस्य अस्तवत्वात् संगतं वा यथा भवत्येवमणति भाषते, समो वा सर्वभूतेषु समणति–अनेकार्थत्वाद् धातूनां प्रवर्तते इति समणो निरुक्तिवशात्. *'भगवं'* ति भगवान् ऐश्वर्यादियुक्तः पूज्य इत्यर्थः *'महावीरे'*त्ति वीरः, 'शूर वीर विक्रान्तौ' इति वचनाद् रिपुनिराकरणतो विक्रान्तः, स च चक्रवर्त्यादिरपि स्यात्, अतो विशिष्यते–महांश्चासौ दुर्जयाऽऽन्तररिपुतिरस्करणाद वीरश्चेति महावीरः, एतच्च देवैर्भगवतो गौणं नाम कृतम्. यदाहः– *"अयले भयभेरवाणं, खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं देवेहिं कए महावीरे"*त्ति. *'आइगरे'*त्ति आदौ प्रथमतः श्रुतधर्ममाचारादिग्रन्थात्मकं करोति तदर्थप्रणायकत्वेन प्रणयतीत्येवंशील आदिकरः. आदिकरत्वाचासौ किंविधः ? इत्याहः– *'तित्थगरे'*त्ति तरन्ति तेन संसारसागरमिति तीर्थं प्रवचनम्, तदव्यतिरेकाच्चेह संघस्तीर्थम्, तत्करणशीलत्वात् तीर्थकरः. तीर्थकरत्वं चास्य नान्योपदेशपूर्वकमित्यत आह – *'सहसंबुद्धे'*त्ति सह आत्मनैव सार्धमनन्योपदेशत इत्यर्थः, सम्यग् यथावत्, बुद्धो हेयो-पादेयो-पेक्षणीयवस्तुतत्त्वं विदितवानिति सहसंबुद्धः. सहसंबुद्धत्वं चास्य न प्राकृतस्य सतः, पुरुषोत्तमत्वादित्यत आहः–

समणः
भगवान्
महावीरः
आदिकरः
तीर्थंकरः
सहसंबुद्धः

४. ['ते णं काले णं, ते णं समए णं समणे' त्ति] ते काले, ते समये. श्रम अने खेद अर्थवाळा 'श्रम' धातु उपरथी जे तप करे ते 'समण.' अथवा सारा मन सहित होय ते 'समण,' स्तुतिनो प्रसंग होवाथी मननुं सारापणुं व्याख्यात समजवुं. अथवा मनोमात्र सत्त्वनुं अस्तवपणुं नहीं स्तुतिकरवा पणुं होवाथी संगत एटले जेवुं होय तेवु बोले ते 'समण' कहेवाय. वा, धातुओ अनेकार्थक होवाथी सर्व प्राणीओने विषे जे तुल्य प्रवर्ते ते निरुक्तिवशे 'समण' कहेवाय. ['भगवं'ति] भगवान ऐश्वर्यादियुक्त, पूज्य. ['महावीरे 'त्ति] महावीर पराक्रम अर्थवाळा 'शूर अने वीर' धातु उपरथी शत्रुओनुं निराकरण करवामां विक्रांत अर्थात् वीर -पराक्रमी. पराक्रमी तो चक्रवर्ती वगेरे पण होय माटे विशेषणद्वारा भगवंत महावीरना पराक्रमिपणानी विशेषता बतावे छेः दुर्जय रागद्वेषादिक आंतर शत्रुओनु निराकरण करवाथी महान् मोटो जे वीर–पराक्रमी ते महावीर कहेवाय. भगवंतनुं आ (महावीर) गौण गुणनिष्पन्न नाम देवताओए आप्युं छे. कह्युं छे के.- "भैय आकस्मिक विजळी वगेरेथी उत्पन्न थता भयोमां अने भैरव सिंह वगेरेथी थनारां भयोमां अचल होवाथी तथा परीषह अने उपसर्गोने क्षमापूर्वक सहन करनार होवाथी देवोए 'महावीर'ए प्रमाणे नाम कर्यु." ['आइगरे'त्ति] आदिकर प्रथमथी आचारादि ग्रंथस्वरूप श्रुतधर्मसंबंधी अर्थना प्रणयन शील होवाथी भगवान् आदिकर छे. अने आदिकर होवाथी भगवान् केवा प्रकारना छे ? तेने माटे कहेछेः ['तित्थगरे'त्ति] तीर्थकर–जेवडे संसार समुद्र तराय ते तीर्थ एटले प्रवचन अने प्रवचनथी अभिन्न होवाथी अहीं 'संघ' तीर्थ कहेवाय. भगवान् ए तीर्थने करवाना स्वभाववाळा होवाथी 'तीर्थकर' ए विशेषण आप्युं छे. वळी ते महावीरनुं तीर्थकरपणु अन्यना उपदेशपूर्वक नथी माटे कहे छेः ['सहसंबुद्धे'त्ति] सहसंबुद्धः अन्यना उपदेश विना आत्मानी ज साथे एटले जन्मथी ज हेय. उपादेय अने उपेक्षणीय पदार्थोने जे सारीरीते जाणे ते सहसंबुद्ध कहेवाय. भगवंतनुं सहसंबुद्धपणुं साधारण मनुष्यतरीकेनुं नथी पण पुरुषोत्तमत्वथी छेः माटे कहे छेः

५. *'पुरिसुत्तमे'*त्ति पुरुषाणां मध्ये तेन तेन रूपादिनाऽतिशयेनोद्भूतत्वादूर्ध्ववर्तित्वादुत्तमः पुरुषोत्तमः अथ पुरुषोत्तमत्वमेवास्य सिंहाद्युपमानत्रयेण समर्थयन्नाहः *'पुरिससीहे'*त्ति सिंह इव सिंहः, पुरुषश्चासौ सिंहश्चेति पुरुषसिंहः. लोकेन हि सिंहे शौर्यमतिप्रकृष्टमभ्युपगतमतः शौर्ये स उपमानं कृतः, शौर्यं तु भगवतो बाल्ये प्रत्यनीकदेवेन भाप्यमाणस्याप्यभीतत्वात्, कुलिशकठिनमुष्टिप्रहारप्रहतिप्रवर्धमानामरशरीरकुब्जताकरणाच्चेति. तथा, *'पुरिसवरपुंडरीए'*त्ति वरपुण्डरीकं प्रधानधवलसहस्रपत्रम्, पुरुष एव वरपुण्डरीकमिवेति पुरुषवरपुण्डरीकम्. धवलत्वं चास्य भगवतः सर्वाशुभमलीमसरहितत्वात् सर्वैश्च शुभानुभावैः शुद्धत्वात्; अथवा, पुरुषाणां तत्सेवकजीवानां वरपुण्डरीकमिव वरच्छत्रमिव यः संतापातपनिवारणसमर्थत्वाद् भूषाकारणत्वाच्च स पुरुषवरपुण्डरीकमिति. तथा *'पुरिसवरगंधहत्थि'*त्ति पुरुष एव वरगन्धहस्ती पुरुषवरगन्धहस्ती. यथा गन्धहस्तिनो गन्धेनाऽपि समस्तेतरहस्तिनो भज्यन्ते, तथा भगवतस्तद्देशविहरणेन ईति[3]–परचक्र–दुर्भिक्ष–डैमर–मरकादीनि दुरितानि नश्यन्तीति पुरुषवरगन्धहस्तीत्युच्यत इति. अत उपमात्रयात पुरुषोत्तमोऽसौ. न चायं पुरुषोत्तम एव किंतु लोकस्याऽप्युत्तमः, लोकनाथत्वादेव. एतदेवाहः–*'लोगणाहे'*त्ति लोकस्य संज्ञिभव्यलोकस्य, नाथः प्रभुर्लोकनाथः. नाथत्वं च योग–क्षेमकारित्वम्. "योग–क्षेमकृन्नाथः" इति वचनात्. नचास्याऽप्राप्तस्य सम्यग्दर्शनादेर्योगकरणेन, लब्धस्य च परिपालनेनेति. लोकनाथत्वं च यथावस्थितसमस्तवस्तुस्तोमप्रदीपनादेवेति; अत आह:–

पुरुषोत्तमः
पुरुषसिंहः

५. ['पुरिसुत्तमे'त्ति] पुरुषोत्तम पुरुषोने विषे ते ते रूपादिक अतिशयोथी ऊर्ध्ववर्ती–उच्च होवाथी उत्तम होय ते पुरुषोत्तम कहेवाय. हवे शास्त्रकार सिंहादि त्रण उपमाओ वडे भगवंतना पुरुषोत्तमपणानुं समर्थन करता कहे छेः ['पुरिससीहे'त्ति] पुरुषसिंह–सिंह एटले सिंहसमान, पुरुषरूप जे सिंह ते

---

१. प्र० छायाः–अचलो भयभैरवाणाम्, क्षान्तिक्षमः परीषहोपसर्गाणाम्, देवैः कृतो महावीर इति. २. एष एव पाठः श्रीकल्पसूत्रे महावीरचरिते एवम्:–"अयले भयभेरवाणं, परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे, पडिमाणं पालए, धीमं, अरइरइसहे, दविए, वीरिअसंपन्ने देवेहिं से नामं कये समणे भगवं महावीरे." ३. 'ईतिर्धान्याद्युपद्रवकारी प्रचुरो मूषकादिः प्राणिगणः'इति हैमः. ४. 'डमरो लुण्ट्यादिः' इति हैमः.–अनु०

१. आ शब्दमां कथनार्थक 'अण्' धातु छे. २. आ शब्दमां कथनार्थक 'अण्' धातुनो 'प्रवृत्ति' अर्थ करवो. ३. आकस्मिक विद्युत्पातादि भय अने भैरव–सिंहादिजन्य भय तेमां अचल, बावीश परिषहोने अने देवजन्य, मनुष्यजन्य तथा तिर्यग् जन्य वगेरे उपसर्गोने क्षमापूर्वक सहन करनार, सातादि प्रतिमाओ–अभिग्रह विशेषो–ना पालक, धीमान्, अरति अने रतिने सहन करनार, द्रव्य–गुणभाजन अथवा रागद्वेषरहित अने वीर्यसंपन्न होवाथी देवोए ते भगवाननुं नाम श्रमण भगवान् "महावीर" कर्युं; आवो पाठ कल्पसूत्रमां महावीरचरितमां छे.–अनु०

पुरुषसिंह अर्थात् पुरुषोने विषे शौर्यादि गुणोवडे जे सिंहसमान होय ते पुरुषसिंह कहेवाय. लोकोए सिंहने विषे अत्युत्कृष्ट शौर्य स्वीकार्युं छे, जेथी शौर्यने अंगे सिंहनी उपमा आपी. भगवंतने बालपणने विषे शत्रुरूपदेवे बीवराव्या छतां बीना न हता तथा देवनुं प्रवर्धमान—लांबुं थतुं—शरीर वज्र-समान कठिन मुठिना प्रहारनी प्रहतिथी कुब्ज—कुबडुं—करी दीधुं हतुं जेथी तेमनुं शूरपणुं प्रकट छे; तथा ['पुरिसवरपुंडरीए'त्ति] पुरुषवरपुंडरीक-वर एटले उत्तम, पुंडरीक एटले हजार पांखडीवाळुं सफेद कमल, आ उपरथी जे पुरुष धवलकमलसमान होय ते पुरुषवरपुंडरीक. सर्व अशुभ मल रहित होवाथी तथा सकल शुभ अनुभाववडे शुद्ध होवाथी भगवंत पण कमलनी पेठे श्वेत छे. जेथी तेनी साथे उपमा आपी; अथवा पुरुष एटले पोताना सेवकरूप जीवो, तेना संतापरूप तापने निवारण करवामां समर्थ होवाथी तथा शोभानुं कारण होवाथी वरपुंडरीक श्रेष्ठ छत्र नी समान भगवंत छे, जेथी तेमने पुरुषवरपुंडरीक कह्या. ['पुरिसवरगंधहत्थि'त्ति] पुरुषवरगन्धहस्ती—श्रेष्ठ गन्धहस्तिनी समान जे पुरुष ते पुरुष ज पुरुषवरगन्धहस्ती कहेवाय. जेम गंधहस्तिना गंधवडे बीजा बधा हाथीओ नाशी जाय छे, तेम भगवंतना पण ते देशोना विहारवडे ईति अनाज वगेरेने नुकशानकारक घणा उंदर, तीड वगेरे प्राणीनी उत्पत्ति, परचक्र बीजा राज्यनो भय, दुर्भिक्ष दुकाळ, डमर लुंटफाट वगेरे विप्लव अने मरकी वगेरे दुरितो नष्ट थाय छे; माटे भगवंत पण पुरुषवरगंधहस्ती कहेवाय. आ प्रमाणे 'पुरुषसिंह, पुरुषवरपुंडरीक अने पुरुषवरगंधहस्ती' आ त्रण उपमावडे भगवंत पुरुषोत्तम छे. भगवंत केवल पुरुषोत्तम ज नथी किंतु लोकना नाथ होवाथी लोकोने विषे पण उत्तम छे माटे कहे छे: ['लोगणाहे'त्ति] लोकनाथ संज्ञिभव्य प्राणिओना स्वामी. "योग अने क्षेम करनार ते नाथ" एवुं वचन होवाथी भगवंत पण संज्ञिभव्य प्राणिओना योग अने क्षेमकारी होवाथी नाथ छे,-(लोकने) योग—अप्राप्त जे सम्यग्दर्शनादि तेनी प्राप्ति—करवावाथी तथा क्षेम प्राप्त थयेल सम्यग्दर्शनादिना परिपालन—थी भगवंत योगक्षेमकारी छे. लोकनाथपणुं पण यथावस्थित वस्तुसमूहने प्रदीपन करवाथी ज छे; तेथी कहे छे:-

शौर्य. पुरुषवर-पुंडरीक. पुरुषवर-गधहस्ती. लोकनाथ.

६. 'लोगपईवे'त्ति लोकस्य विशिष्टतिर्यग्-नरा-ऽमररूपस्य, आन्तरतिमिरनिराकरणेन प्रकृष्टप्रकाशकारित्वात् प्रदीप इव प्रदीपः. इदं विशेषणं द्रष्टृलोकमाश्रित्योक्तम्. अथ दृश्यलोकमाश्रित्याह: - 'लोगपज्जोयगरे'त्ति लोकस्य—लोक्यत इति लोकः, अनया व्युत्पत्त्या लोकालोकस्वरूपस्य समस्तवस्तुस्तोमस्वभावस्याऽखण्डमार्तण्डमण्डलमिव निखिलभावस्वभावावभासनसमर्थकेवलालोकपूर्वकप्रवचनप्रभापटलप्रवर्तनेन प्रद्योतं प्रकाशं करोतीत्येवंशीलो लोकप्रद्योतकरः. उक्तविशेषणोपेतश्च मिहिर-हरि-हर हिरण्यगर्भादिरपि तत्तीर्थिकमतेन भवतीति 'कोऽस्य विशेष.' ? इत्याशङ्कायां तद्विशेषाभिधानायाह:—'अभयदए'त्ति न भयं दयते ददाति प्राणापहरणरसिकेऽप्युपसर्गकारिणि प्राणिनीत्यभयदयः, अभया वा सर्वप्राणिभयपरिहारवती दया अनुकम्पा यस्य सोऽभयदयः. हरि-हर-मिहिरादयस्तु नैवमिति विशेषः, न केवलमसावपकारिणाम्, तदन्येषां वाऽनर्थपरिहारमात्रं करोति; अपि त्वर्थप्राप्तिमपि करोतीति दर्शयन्नाह: 'चक्खुदये'त्ति चक्षुरिव चक्षुः श्रुतज्ञानं शुभाऽशुभार्थविभागोपदर्शकत्वात्. यदाह:—"चक्षुष्मन्तस्त एवेह ये श्रुतज्ञानचक्षुषा, सम्यक् सदैव पश्यन्ति भावान् हेयेतरान् नराः." तद् दयत इति चक्षुर्दयः. यथाहि लोके कान्तारगतानां चौरैर्विलुप्तधनानां बद्धचक्षुषां चक्षुरुद्घाटनेन चक्षुर्दत्त्वा वाञ्छितमार्गदर्शनेनोपकारी भवति, एवमयमपि संसारारण्यवर्तिनां रागादिरिपुविलुप्तधर्मधनानां कुवासनाऽऽच्छादितसज्ज्ञानलोचनानां तदपनयनेन श्रुतचक्षुर्दत्त्वा निर्वाणमार्गं यच्छन्नुपकारी; इति दर्शयन्नाह:—

६. ['लोगपईवे'त्ति] लोकप्रदीप तिर्यंच, नर अने अमररूप विशिष्ट लोकना आंतर अंधकारने दूर करी प्रकृष्ट प्रकाशना करनार होवाथी प्रदीपसमान. आ विशेषण देखनार लोकने आश्रीने कह्युं. हवे दृश्य देखाय एवा—लोकने आश्रीने विशेषण कहेछे: ['लोगपज्जोयगरे'त्ति] लोकप्रद्योतकर 'जे देखाय ते लोक.' ए प्रमाणे 'लोक' शब्दनी व्युत्पत्तिअनुसारे लोकने एटले सकलवस्तुसमूहरूप लोकालोकस्वरूपने अखंड, सूर्यमंडलनी पेठे बधा पदार्थोना स्वभावनो प्रकाश करवामां समर्थ केवलज्ञानरूप आलोकपूर्वक प्रवचनप्रभासमूहने प्रवर्तावावाथी प्रद्योतने एटले प्रकाशने करवाना स्वभाववाळा भगवंत होवाथी 'लोकप्रद्योतकर' विशेषण आप्युं. उक्त विशेषणयुक्त तो सूर्य, हरि, हर अने ब्रह्मा वगेरे पण, तेओना अनुयायिओने अनुसारे छे, तो तेओथी भगवंतनी शी विशेषता छे ? आ प्रमाणे आशंका थये छते शास्त्रकार तेओ हरिहरादि थी भगवंतनी विशेषता दर्शाववा कहे छे: ['अभयदए'त्ति] अभयदय प्राणनो नाश करवामां रसिक तथा उपसर्गोने करवावाळा प्राणिओने पण भय न आपनार होवाथी भगवंत 'अभयदय' छे; अथवा अभया एटले सर्वप्राणिओना भयनुं परिहरण करवावाळी दया अनुकंपा छे जेने एवा भगवंत छे. 'अभयदय' आ विशेषणथी युक्त हरि, हर तथा सूर्य न होवाथी तेओथी भगवंतनी विशेषता छे. भगवंत अपकारिना तथा तेथी अन्य प्राणिओना अनर्थनो परिहार मात्र ज करे छे एटलुं ज नहीं, पण तेओने पदार्थनी प्राप्ति पण करे छे अर्थात् भगवंतद्वारा ते जीवो पदार्थनी प्राप्ति पण करे छे: माटे शास्त्रकार कहेछे: ['चक्खुदये'त्ति] चक्षुर्दय. शुभाशुभपदार्थना विभागने दर्शावनारुं होवाथी श्रुतज्ञान चक्षुसमान छे; कह्युं छे के: "ते ज मनुष्यो आंखवाळा कहेवाय छे, के जेओ श्रुतज्ञानरूप नेत्रवडे हेय अने इतर—हेयथी जुदा—उपादेयादि—पदार्थोने निरंतर ज सारी रीते जुवे छे." ते श्रुतज्ञानरूप चक्षुना आपनार होवाथी भगवंत पण चक्षुर्दय कहेवाय. अटवीने विषे आवेला, चोरोवडे लुंटाइ गयेल धनवाळा अने पाटावडे जेमनी आंखो बांधी दीधी छे एवा मनुष्योने चक्षु आपी-पाटा छोडी-चक्षु उघाडी इष्टमार्ग बतावनार जेवी रीते लोकमां उपकारी गणाय छे, तेवी रीते आ भगवंत पण, संसाररूप अरण्यने विषे रहेला, रागादि शत्रुओवडे जेओनुं धर्मरूप धन लुंटाइ गयुं छे, जेओनां सद्ज्ञानरूप लोचनो दुष्टवासनाओवडे ढंकाइ गया छे, तेओने हठावी कुवासनारूप पाटा दूर करी श्रुतज्ञानरूप चक्षु आपी निर्वाणरूप इष्टमार्गने आपता—बतावता(एवा भगवंत पण) उपकारी छे; ए प्रमाणे दर्शावता शास्त्रकार कहे छे:—

लोकप्रदीप. लोकप्रद्योतकर. अभयदय. भगवंतनी विशेषता. चक्षुर्दय.

७. 'मग्गदये'त्ति मार्गं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मकं परमपदपुरपथं दयत इति मार्गदयः. यथाहि—लोके चक्षुरुद्घाटनम्, मार्गदर्शनं च कृत्वा चौरादिविलुप्तान् निरुपद्रवं स्थानं प्रापयन् परमोपकारी भवतीत्येवमयमपीति दर्शयन्नाह:—'सरणदये'त्ति शरणं त्राणम्—नानाविधोपद्रवोपद्रुतानां तद्रक्षास्थानम्, तच्च परमार्थतो निर्वाणम्; तद् दयते इति शरणदयः. शरणदायकत्वं चास्य धर्मदेशनयैव इत्यत आह:—'धम्मदेसए'त्ति धर्मं श्रुत—चारित्रात्मकं देशयतीति धर्मदेशकः. 'धम्मदए'त्ति पाठान्तरम्, तत्र च धर्मं चारित्ररूपं दयत इति धर्मदयः. धर्मदेशनामात्रेणाऽपि धर्मदेशक उच्यत इत्यत आह:—'धम्मसारहि'त्ति धर्मरथस्य प्रवर्तकत्वेन सारथिरिव धर्मसारथिः. यथा रथस्य सारथी रथम्, रथिकम्, अश्वांश्च रक्षति, एवं

भगवान् चारित्रधर्माङ्गानां संयमा-ऽऽत्म-प्रवचनाख्यानां रक्षणोपदेशाद् धर्मसारथिर्भवतीति. तीर्थान्तरीयमतेनान्येऽपि धर्मसारथयः सन्तीति विशेषयन्नाहः—'धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टि'त्ति त्रयः समुद्राः, चतुर्थश्च हिमवान्, एते चत्वारोऽन्ताः पृथिव्यन्ताः; एतेषु स्वामितया भवतीति चातुरन्तः, स चासौ चक्रवर्ती च चातुरन्तचक्रवर्ती, वरश्चासौ चातुरन्तचक्रवर्ती च वरचातुरन्तचक्रवर्ती राजातिशयः, धर्मविषये वरचातुरन्तचक्रवर्ती धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती. यथाहि-पृथिव्यां शेषराजातिशायी वरचातुरन्तचक्रवर्ती भवति, तथा भगवान् धर्मविषये शेषप्रणेतॄणां मध्ये सातिशयत्वात् तथोच्यत इति. अथवा, धर्म एव वरमितरचक्रापेक्षया, कपिलादिधर्मचक्रापेक्षया वा; चातुरन्तं दानादिभेदेन चतुर्विभागम्, चतसॄणां वा नर-नारकादिगतीनामन्तकारित्वाच्चतुरन्तम्; तदेव चातुरन्तं यच्चक्रं भावाऽरातिच्छेदात्, तेन वर्तितुं शीलं यस्य स तथा. एतच्च धर्मदेशकत्वादिविशेषणकदम्बकं प्रकृष्टज्ञानादियोगे सति भवति; इत्याहः—

मार्गदय. ७. ['मग्गदये'त्ति] मार्गदय परमपद मोक्षरूप नगरना सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मार्गने आपनार होवाथी भगवंत मार्गदय छे. जेम लोकने विषे, चक्षु उघाडी अने मार्ग बतावी चोगदिवडे लुंटायेला लोकोने उपद्रवरहित स्थाने पहोंचाडनार परमोपकारी थाय छे, तेम भगवंत पण परमोपकारी छे; एम बतावता शास्त्रकार कहे छेः ['सरणदए'त्ति] शरणदय नाना प्रकारना उपद्रवोथी दुःखी थयेल जीवने शरण-रक्षास्थान एटले परमार्थथी निर्वाणने आपे ते शरणदय कहेवाय. भगवंतनुं शरणदायकपणुं धर्मदेशनावडे ज छे; तेथी कहे छेः -['धम्मदेसए'त्ति] धर्मदेशक-श्रुत अने चारित्ररूप धर्मने देखाडनार होवाथी भगवंत धर्मदेशक छे. [धम्मदए] एवुं पाठांतर छे. तेनो अर्थ चारित्ररूप धर्मने आपनार होवाथी भगवंत धर्मदय छे. धर्मदेशक तो (धर्मप्रवर्तकपणावडे नहीं पण) मात्र धर्मनी देशनावडे कहेवाय छेः माटे कहे छेः —['धम्मसारहि'त्ति] धर्मरूप रथना प्रवर्तक होवाथी भगवन सारथिसमान छे. जेवी रीते सारथि रथनुं, रथमां बेसनारनुं अने रथने लइ जनार घोडाओनुं रक्षण करे छे, तेम भगवंत पण चारित्र धर्मना संयम, आत्मा अने प्रवचन (आगम) रूप अंगोना रक्षणनो उपदेश करनार होवाथी धर्मसारथि छे. अन्यमतावलंबिओना मते बीजा पण धर्मसारथिओ छे; माटे तेओथी भगवंतनी विशेषता दर्शावता शास्त्रकार कहे छेः ['धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टि'त्ति] धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती-त्रण समुद्रो अने चोथो हिमाचल ए चार पृथ्वीना छेडा छे; ते चार छेडाओमा जे स्वामी होय ते 'चातुरंत' कहेवाय. चातुरंतरूप जे चक्रवर्ती ते चातुरंत चक्रवर्ती. वर श्रेष्ठ-जे चातुरंत चक्रवर्ती ते वरचातुरंतचक्रवर्ती आतिशयिक राजा; भगवंत धर्मने विषे वरचातुरंतचक्रवर्तिसमान होवाथी धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती कहेवाय. जेवी रीते पृथ्वीने विषे वरचातुरंतचक्रवर्ती शेष-बीजा राजाओ करता अतिशयवंत होय छे तेम भगवंत पण बधा धर्मप्रणेताओमा अतिशयवत छे माटे ज 'धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती' कहेवाय छेः अथवा धर्मरूप वर एटले बीजा चक्र करतां. वा कपिल वगेरेना धर्मचक्र करतां श्रेष्ठ, चातुरंत दान वगेरे भेदवडे चार प्रकारनुं, अथवा नारक वगेरे चारगतिनुं अंत-नाश करनारुं, भाव-आंतर शत्रुनुं उच्छेदक होवाथी जे चक्र, ते चक्रवडे वर्तवाना स्वभाववाळा जे ते धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती. ए 'धर्मदेशक' वगेरे विशेषणोनो झुमखो प्रकृष्ट ज्ञान वगेरेनो योग होय त्यारे घटे छे; माटे कहे छेः

धर्मसारथि. धर्मवरचातुरंतचक्रवर्ती. कपिलादिकनुं चक्र. शरणदय. धर्मदेशक.

८. 'अप्पडिहयवरनाण दंसणधरे'त्ति अप्रतिहते कट कुड्यादिभिरस्खलिते, अविसंवादके वा; अत एव, क्षायिकत्वाद् वा वरे प्रधाने ज्ञान-दर्शने केवलाख्ये विशेष-सामान्यबोधात्मके धारयति य. स तथा. छद्मवानप्येवंविधसंवेदनसंपदुपेतः कैश्चिदभ्युपगम्यते, स च मिथ्योपदेशित्वाद् नोपकारी भवतीति निश्छद्मताप्रतिपादनायाऽस्याऽऽह, अथवा कथमस्याऽप्रतिहतसंवेदनत्वं संपन्नम्?, अत्रोच्यते, आवरणाभावात्, एतमेवास्याऽऽवेदयन्नाहः 'विअट्टछउमे' त्ति व्यावृत्तं निवृत्तम् अपगतम्, छद्म-शठत्वम्, आवरणं वा यस्यासौ व्यावृत्तच्छद्मा. छद्माभावश्चास्य रागादिजयाद् जात इत्यत आह.-'जिणे'त्ति जयति-निराकरोति, राग द्वेषादिरूपानरातीनिति जिनः. रागादिजयश्चास्य रागादिस्वरूप-तज्जयोपायज्ञानपूर्वक एव भवतीत्येतदस्याहः—'जाणए' त्ति जानाति छाद्मस्थिकज्ञानचतुष्टयेनेति ज्ञायकः. 'ज्ञायक' इत्यनेनास्य स्वार्थसंपत्त्युपाय उक्तः, अधुना तु स्वार्थसंपत्तिपूर्वकं परार्थसंपादकत्वं विशेषणचतुष्टयेनाहः- 'बुद्धे'त्ति बुद्धो जीवादितत्त्वं बुद्धवान्, तथा, 'बोहए'त्ति जीवादितत्त्वस्य परेषां बोधयिता. तथा, 'मुत्ते'त्ति मुक्तो बाह्याभ्यन्तरग्रन्थिबन्धनेन मुक्तत्वात्, तथा, 'मोयए'त्ति परेषां कर्मबन्धनाद् मोचयिता.

अप्रतिहतवरज्ञान-दर्शनधर. ८. ['अप्पडिहयवरनाण दंसणधरे'त्ति] अप्रतिहत कट, कुटी वगेरे वडे अस्खलित अर्थात् कट सादडी अने कुटी प्रभृति पदार्थोनुं व्यवधान होवा छतां पण तेनी पाछलना पदार्थोने जाणनार, अथवा विसंवादरहित, विसंवादरहित होवाथी अथवा क्षायिक होवाथी वर श्रेष्ठ, विशेषबोध अने सामान्यबोधरूप 'केवल' ए नामवाळां जे ज्ञान अने दर्शन ते बन्नेने धारण करवावाळा होवाथी भगवंत अप्रतिहतज्ञान दर्शनधर छे. कोइ अन्यमतिओ छद्मस्थने पण उपर्युक्त ज्ञानसंपत्तिसहित माने छे, परंतु ते (छद्मस्थ) असत्योपदेशक होवाथी उपकारी थतो नथी; माटे शास्त्रकार भगवंतना छद्मरहितपणानुं प्रतिपादन करवा कहे छे, अथवा भगवंतने अप्रतिहत ज्ञान शाथी उत्पन्न थयुं तो कहे छे के, आवरण-ज्ञानावरणीय-नो अभाव थवाथी भगवंतने अप्रतिहत ज्ञान थयु छे अने ए ज आवरणना अभावने दर्शावता शास्त्रकार कहे छेः-['विअट्टछउमे'त्ति] व्यावृत्तच्छद्मा-जेओनुं छद्म-शठपणु अथवा आवरण व्यावृत्त-गयेलुं छे एवा भगवंत होवाथी 'व्यावृत्तच्छद्मा' विशेषण आप्युं छे. रागादिनो जय करवाथी भगवंतने छद्मनो अभाव थयो छे; माटे कहे छेः ['जिणे'त्ति] राग अने द्वेषादिरूप शत्रुने जिते ते 'जिन' कहेवाय. रागवगेरेनुं स्वरूप जाणवाथी अने तेना-रागादिना जयना उपायोना ज्ञानपूर्वक ज रागादिनो जय थाय छे, माटे भगवंतने पण ए रागादिना स्वरूपनुं ज्ञान अने तेना जयना उपायोनुं ज्ञान दर्शावता कहे छे. ['जाणए'त्ति] छद्मस्थावस्थानां चार ज्ञानवडे जाणनार ते ज्ञायक. 'ज्ञायक' ए विशेषणद्वारा भगवंतनी स्वार्थसंपत्तिनो उपाय कह्यो. हवे स्वार्थ संपत्तिपूर्वक भगवंतनी परार्थ संपादकता चार विशेषणो द्वारा कहे छेः ['बुद्धे'त्ति] जीवादितत्त्वना जाणनारा तथा, ['बोहए'त्ति] बीजाओने जीवादितत्त्वनो बोध पमाडनार तथा, ['मुत्ते'त्ति] बाह्य अने आंतरिक ग्रन्थि-परिग्रह-रूप बंधनथी मूकाएला, तथा, ['मोयए'त्ति] ते परिग्रहरूप बंधनथी बीजाओने मुकावनार.

असत्योपदेशक-छद्मस्थ. व्यावृत्तछद्मा. जिन. ज्ञायक. बुद्ध. बोधक. मुक्त-मोचक.

---

१. स्वार्थमां 'अण्' प्रत्यय आववाथी 'चतुरंत' शब्द उपरथी 'चातुरंत' शब्द बने छे.—श्रीअभयदेव.

९. अथ मुक्तावस्थामाश्रित्य विशेषणान्याहः–'*सव्वण्णू, सव्वदरिसि*'त्ति सर्वस्य वस्तुस्तोमस्य विशेषरूपतया ज्ञायकत्वेन सर्वज्ञः, सामान्यरूपतया पुनः सर्वदर्शी; न तु मुक्तावस्थायां दर्शनान्तराभिमतपुरुषवद् भविष्यज्जडत्वम्, एतच्च पदद्वयं क्वचिन्न दृश्यत इति. तथा, '*सिवमयलं*' इत्यादि. तत्र शिवं सर्वाऽऽबाधारहितत्वात्, अचलं स्वाभाविक-प्रायोगिकचलनहेत्वभावात्, अरुजमविद्यमानरोगं तन्निबन्धनशरीर-मनसोरभावात्, अनन्तम्–अनन्तार्थविषयज्ञानस्वरूपत्वाद्, अक्षयमनाशं साद्यपर्यवसितस्थितिकत्वाद्, अक्षतं वा परिपूर्णत्वात् पौर्णमासीचन्द्रमण्डलवद्, अव्याबाधं परेषामपीडाकारित्वात्. '*सिद्धिगइनामधेयं*'ति सिद्ध्यन्ति निष्ठितार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धिः, सा चासौ गम्यमानत्वाद्, गतिश्च सिद्धिगतिस्तदेव नामधेयं प्रशस्तं नाम यस्य तत् तथा. '*ठाणं*'ति तिष्ठति अनवस्थाननिबन्धनकर्माभावेन सदाऽवस्थितो भवति यत्र तत् स्थानम्-क्षीणकर्मणो जीवस्य स्वरूपम्, लोकाग्रं वा; जीवस्वरूपविशेषणानि तु लोकाग्रस्य आधेयधर्माणामाधारेऽध्यारोपादवसेयानि. तदेवं–भूतं स्थानम् '*संपाविउकामे*'त्ति यातुमना न तु तत् प्राप्तः. तत्प्राप्तस्याकरणत्वेन विवक्षितार्थानां प्ररूपणाऽसंभवात्, 'प्राप्तुकाम' इति च यदुच्यते तदुपचारात्, अन्यथा हि निरभिलाषा एव भगवन्तः केवलिनो भवन्ति. "[१]मोक्षे भवे च सर्वत्र निस्पृहो मुनिसत्तमः" इति वचनादिति.

९. हवे मुक्तावस्थाने आश्रीने विशेषणो कहे छेः ['सव्वण्णू, सव्वदरिसि'त्ति] वस्तुना समुदायनुं विशेषरूपे जाणपणु होवाथी सर्वज्ञ अने ते ज समूहनुं सामान्यरूपे जाणपणुं होवाथी सर्वदर्शी अर्थात् भगवंत देहमुक्त–देहरहित थाय तो पण सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे; पण दर्शनान्तरने संमत मुक्तावस्थामां स्थित पुरुषनी पेठे भगवंत भविष्यज्जडतावाळा–जेमां जडता थनारी छे तेवा–नथी. 'सर्वज्ञ' अने 'सर्वदर्शी' आ बे पदो कोइ स्थळे देखातां नथी. तथा ['सिवमयलं' इत्यादि] तेमां सर्व प्रकारनी बाधाओथी रहित होवाथी शिव, स्वाभाविक अने प्रयोगजन्य चलनना हेतुनो अभाव होवाथी अचल, रोगनां कारण शरीर अने मननो अभाव होवाथी रोगरहित, अनंतपदार्थविषयक ज्ञानस्वरूप होवाथी अनंत, आदिवाळुं पण अंतरहित होवाथी अक्षय अथवा सुखथी परिपूर्ण होवाथी पूर्णमासीना चंद्रमंडल पेठे अक्षत, बीजाओने पीडा न करनुं होवाथी व्याबाधरहित अव्याबाध, ['सिद्धिगइनामधेयं'ति] जेमां जवाथी निष्ठितार्थ-कृतकृत्य-थवाय ते सिद्धि, ते तरफ गति थती होवाथी ते सिद्धिगति कहेवाय. सिद्धिरूप गति ते सिद्धिगति, अने ते ज-सिद्धिगतिरूप-जेनुं प्रशस्त नाम छे ते सिद्धिगतिनामधेय, ['ठाणं'ति] अनवस्थान अस्थिरपणा–नुं कारण कर्म न होवाथी त्यां हमेशां अवस्थित–स्थिर–थाय ते स्थान कहेवाय–स्थान एटले क्षीणकर्म जीवनुं स्वरूप अथवा लोकनो अग्रभाग; ते प्रकारना स्थान प्रति ['संपाविउकामे'त्ति] जवाना मनवाळा, परंतु गयेला नहीं, कारण के जो ते स्थान प्रति गयेला होय तो त्यां गया बाद शरीर अने इन्द्रियोनो अभाव थवाथी भगवंतद्वारा विवक्षित–कहेवाने इष्ट–अर्थोनुं प्ररूपण संभवतुं नथी माटे ते 'स्थान प्रति जनार' ए प्रमाणे भगवंतनुं विशेषण छे. वळी भगवंतनुं जे 'प्राप्तुकाम' 'पामवानी इच्छावाळा'–ए विशेषण छे. ते तो उपचारथी कह्युं छे, कारण के केवलि भगवंतो अभिलाषा इच्छा–विनाना ज होय छे. कह्युं छे केः "उत्तमोत्तम मुनि मोक्ष अने संसार ए बन्नेमां स्पृहा विनानो होय छे."

सर्वज्ञ. सर्वदर्शी. मुक्तिमां जडत्व ? शिव. अचल,अरोग,अनंत. अक्षय, अव्याबाध. सिद्धिगति. स्थान. पामवाना. अस्पृहा.

१०. '*जाव समोसरणं*'ति तावद् भगवद्वर्णको वाच्यो यावत् समवसरणम्– समवसरणवर्णक इति. स च भगवद्वर्णक एवम्–"[२]*भुयमोयग–भिंग-नेल कज्जल–पहट्ठभमरगणनिद्धनिकुरुंबनिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरए*" भुजमोचको रत्नविशेषः, भृङ्गः कीटविशेषः, अङ्गारविशेषो वा; नैलं नीलीविकारः, कज्जलं मषी, प्रहृष्टभ्रमरगणः प्रतीतः; एत इव स्निग्धः कृष्णच्छायः, निकुरम्बः समूहो येषां ते तथा, ते च ते निचिताश्च निबिडाः, कुञ्चिताश्च कुण्डलीभूताः, प्रदक्षिणावर्ताश्च मूर्ध्नि शिरोजा यस्य स तथा. एव[३] शिरोजवर्णकादिः "[४]*रत्तुप्पल*-

---

१. रत्नाकरावतारिकायामपि श्लोकार्धमिदं प्रमाणत्वेन गृहीतम्.–रत्नाकरावतारिका (य० ग्रन्थ० पृ–१६१.) २. प्र०छाया·-भुजमोचक–भृङ्ग–नैल–कज्जल–प्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकुरम्बनिचितकुञ्चितप्रदक्षिणावर्तमूर्धशिरोजः.

३. औपपातिकसूत्रे भगवतः शरीरवर्णक एवम्:–"दालिमपुप्फप्पगास–रत्तवणिज्जसरिसनिम्मलसुणिद्धकेसंतकेसभूमी, घणनिचियच्छत्तागारुत्तमंगदेसे, णिव्वणसमलट्ठमट्ठचंदद्धसमनिलाडे, उडुवइपडिपुण्णसोमवयणे, अल्लीणपमाणजुत्तसवणे, सुस्सवणे, पीणमंसलकवोलदेसभाए, आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणणिद्धभमुहे, अवदालियपुंडरीयनयणे, कोयासियधवलपत्तलच्छे, गरुलायतउज्जुतुंगणासे, उअचिअसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरुट्ठे, पंडुरससिसयलविमलनिम्मलसंख–गोखीर–फीण–कुन्द–दगरय–मुणालियाधवलदंतसेढी, अखंडदंते, अफुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते, एगदंतसेढी विव अणेगदंते, हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अवट्ठियसुविभत्तचित्तमंसू, मंसलसंठियपसत्थसद्दूलविउलहणुए, चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसग्गीवे, वरमहिसवराह–सीह–सद्दूल–उसभ–नागवरपडिपुण्णविउलक्खंधे, जुगसण्णिभपीणरइअपीवरपउट्ठसंठिअसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसंधिपुरवरफलिहवट्टियभुए, भुयईसरविउलभोगआयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू, रत्ततलोवइअमउयमंसलसुजायलक्खणपसत्थअच्छिद्दजालपाणी, पीवरकोमलवरंगुली, आयंबतंबतलिणसुइरुइलणिद्धणक्खे, चंदपाणीलेहे, सूरपाणीलेहे, संखपाणीलेहे, चक्कपाणीलेहे, दिसासोत्थियपाणीलेहे, चंद–सूर–संख–चक्क–दिसासोत्थियपाणीलेहे, कणगसिलातलुज्जलपसत्थसमतलउवचियविच्छिण्णपिहुलवच्छे, सिरिवच्छंकियवच्छे, अकरंडुयकणगरुययनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी, अट्ठसहस्सपडिपुण्णवरपुरिसलक्खणधरे, सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे, सुजायपासे, मियमाइयपीणरइअपासे, उज्जुयसमसहियजच्चतणुकसिणणिद्धआइज्जलडहरमणिज्जरोमराई, झस–विहग–सुजायपीणकुच्छी, झसोदरे, सुइकरणे, गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियअकोसायंतपउमगंभीरवियडनाभे, साहयसोणंद–मुसल–दप्पणणिगरियवरकणगच्छरुसरिसवरवयरवलियमज्झे, पमुइयवरतुरग–सीहवरअइरेगवट्टियकडी, वरतुरगसुजायसुगुज्झदेसे, आइण्णहओ व्व णिरुवलेवे, वरवारणतुल्लविक्कमविलसियगई, गयससणसुजायसन्निभोरू, समुग्गणिमग्गगूढजाणू, एणी–कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघे, संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फे, सुपइट्ठिअकुम्मचारुचलणे, अणुपुव्वसुसंहयंगुलीए, उण्णयतणुतंबणिद्धणक्खे"–औपपातिकसूत्रे (क० आ० पृ–४४–५४.). ४. प्र० छायाः–रक्तोत्पलपत्रमृदुकसुकुमालकोमलतलः–अनु०

१. लोकाग्रभागरूप स्थान तो आकाशरूप होवाथी तेने 'शिव, अचल, अरुज, अनंत, अक्षय, अव्याबाध' वगेरे विशेषणो घटी शकतां नथी, तो पण आधेय धर्मोनो आधारमां अध्यारोप करवाथी ते विशेषणो लोकाग्ररूप स्थानने घटाव्या छे. एक पदार्थनो धर्म, जे बीजा पदार्थमां न होय तो पण तेमां तेने मानवो तेने 'अध्यारोप' कहे छे; जेमके, पर्वत उपर घास बळतुं देखवामां आवे तो पण लोक एम कहे छे के, 'पर्वत बळे छे,' कारण के पर्वत उपर रहेलुं आधेय जे घास, तेमां रहेलो 'बळवारूप' जे धर्म, ते धर्म पर्वतमां नथी तो पण घासनो आधाररूप पर्वत होवाथी जेम तेमां ते अविद्यमान धर्म

पत्तमउयसुकुमालकोमलतले'' इति पादतलवर्णकान्तः शरीरवर्णको भागवतो वाच्यः. पादतलविशेषणस्य चायमर्थः—रक्तं लोहितम्, उत्पलपत्रवत् कमलदलवद् मृदुकमस्तब्धम्, सुकुमालानां मध्ये कोमलं च तलं पादतलं यस्य स तथा. तथा, ''*अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे, आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासगयाहिं चामराहिं, आगासफलिहामएणं सपायपीढेणं सीहासणेणं*'' आकाशस्फटिकमतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तन्मयेन 'उपलक्षितः' इति गम्यम्. ''*धम्मज्झएणं पुरओ कड्ढिज्जमाणेणं*'' 'देवैः' इति गम्यते. ''*चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे*'' 'साहस्री'शब्दः सहस्रपर्यायः, सार्धं सह, तेषां विद्यमानतयाऽपि सार्धमिति स्यात्, अत उच्यते:—संपरिवृतः परिकरित इति. ''*पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे*'' न पश्चानुपूर्व्यादिना, ''*गामाणुगामं दूइज्जमाणे*'' ग्रामश्च प्रतीतः, अनुग्रामश्च तदनन्तरग्रामो ग्रामानुग्रामम्, तद् द्रवन् गच्छन्. ''*सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे णयरे, जेणेव गुणसिलए चेइए; तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ*''त्ति समवसरणवर्णके च ''*समणस्स भगवओ अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो, अप्पेगइया उग्गपव्वइया*'' इत्यादिसाध्वादिकवर्णको

पण मनाय छे तेम 'शिव, अचल, अरुज,' वगेरे विशेषणो लोकाग्र भागमां नथी घटता, तोपण लोकाग्रभाग जीवनो आधार छे अने ते विशेषणो आधेयरूप जीवमां घटे छे माटे पूर्वोक्त प्रमाणे ते जीवरूप आधेयना विशेषणो लोकाग्रभागमां नथी तोपण तेमां तेने अध्यारोपवां—कल्पी लेवां.—श्रीअभयदेव.

२. आ श्लोकार्धने रत्नाकरावतारिकामां पण प्रमाणरूपे मूक्युं छे.—रत्नाकरावतारिका (य० ग्रन्थ० पृ—१६१.)

१. शब्दशोऽपि एतत् सर्वं भगवद्वर्णनमौपपातिकेऽपि चम्पागमनसमये. प्र०छायाः—अष्टसहस्रवरपुरुषलक्षणधरः, आकाशगतेन चक्रेण, आकाशगतेन छत्रेण, आकाशगताभ्यां चामराभ्याम्, आकाशस्फटिकमयेन सपादपीठेन सिंहासनेन. २. प्र०छायाः—धर्मध्वजेन पुरतः कृष्यमाणेन. ३. प्र०छायाः—चतुर्दशभिः श्रमणसहस्रैः, षट्त्रिंशताऽऽर्यिकासहस्रैः सार्धं संपरिवृतः. ४. प्र०छायाः—पूर्वानुपूर्वी चरन्. ५. प्र०छायाः—ग्रामानुग्रामं द्रवन्.—अनु०

६. प्र०छायाः—सुखं सुखेन विहरन् येनैव राजगृहं नगरम्, येनैव गुणशिलकं चैत्यम्; तेनैवोपागच्छति, उपागम्य यथा प्रतिरूपमवग्रहमवगृह्णाति, अवगृह्य संयमेन, तपसा आत्मानं भावयन् विहरति.—अनु० ७. प्र०छायाः—श्रमणस्य भगवतोऽन्तेवासिनो बहवः श्रमणा भगवन्तः, अप्येकका उग्रप्रव्रजिताः—अनु० ८ औपपातिकसूत्रे भगवत्साधुवर्णक एवम्:—''ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे समणा भगवंतो, अप्पेगइया उग्गपव्वइया, भोगपव्वइया, राइण्ण–णाय–कोरव्वखत्तिअपव्वइआ, भडा, जोहा, सेणावई, पसत्थारो, सेट्ठी, इब्भा; अण्णे बहवे एवमाइणो उत्तमजाति–कुल–रूव–विणय–विण्णाण–वण्ण–लावण्ण–विक्कमपहाणसोहग्गकंतिजुत्ता, बहुधण–धण्णनिचयपरियालफिडिआ, णरवइगुणाइरेआ, इच्छिअभोगा, सुहसंपललिया, किंपागफलोवमं च मुणिय विसयसोक्खं,जलबुब्बुअसमाणं कुसग्गजलबिंदु चंचलं जीविअं च णाऊण, अद्धुवमिणं रयमिव पडग्गलग्गं संविधुणित्ताणं, चइत्ता हिरण्णं जाव चेच्चा सुवण्णं, चेच्चा धणं, एवं धण्णं, बलं, वाहणं, कोसं, कोट्ठागारं, रज्जं, रट्ठं, पुरं, अंतेउरं चेच्चा, विपुलधण–कणग–रयण–मणिमोत्तिय–संख–सिलप्पवाल–रत्तरयणमाइय, संतसारं सावएज्जं विछड्डइत्ता, विगोवइत्ता. दाणं च दाइयाण परिभाएइत्ता, मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइआ; अप्पेगइआ अद्धमासपरिआया, अप्पेगइआ मासपरिआया, एवं दुमासा०, तिमासा०, जाव इक्कारसमासपरिआया; अप्पेगइआ वासपरिआया, दुवास० तिवासपरिआया, अप्पेगइआ अणेगवासपरिआया संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे णिग्गंथा भगवंतो,अप्पेगइआ आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी, अप्पेगइया मणबलिया, वयबलिया,कायबलिया, अप्पेगइआ मणेणं सावा–ऽणुग्गहसमत्था, वयेणं सावा–णुग्गहसमत्था कायेणं सावा–ऽणुग्गहसमत्था; अप्पेगइआ खेलोसहिपत्ता, एवं जल्लोसहिपत्ता, विप्पोसहिपत्ता, आमोसहिपत्ता, सव्वोसहिपत्ता; अप्पेगइआ कोट्ठबुद्धी, एवं बीअबुद्धी, पडबुद्धी; अप्पेगइआ पयाणुसारी,अप्पेगइआ संभिन्नसोआ, अप्पेगइआ खीरासवा, अप्पेगइआ महुआसवा, अप्पेगइआ सप्पिआसवा, अप्पेगइआ अक्खीणमहाणसिआ, एवं उज्जुमती, अप्पेगइआ विउलमई, विउव्वणिड्ढिपत्ता, चारणा, विज्जाहरा, आगासाइवाइणो, अप्पेगइआ कणगावलिं तवोकम्मं पडिवण्णा, एवं एगावलिं, खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा; अप्पेगइआ महालयसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा, भद्दपडिमं, महाभद्दपडिमं, सव्वओभद्दपडिमं, आयंबिलवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा; मासिअं भिक्खुपडिमं, एवं दोमासिअं, तिमासिअं पडिमं जाव सत्तमासिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, पढमं सत्तराइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा जाव तच्चं सत्तराइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, अहोराइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, इक्कराइंदिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, सत्तसत्तमिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, अट्ठट्ठमिअं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, णवणवमिअं भिक्खुपडिमं, दसदसमिअं भिक्खुपडिमं, खुड्डिअमोअपडिमं पडिवण्णा, महल्लिअमोअपडिमं पडिवण्णा, जवमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा, वज्जमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा, कुलसंपण्णा, बलसंपण्णा, रूवसंपण्णा, विणयसंपण्णा, नाणसंपण्णा, दंसणसंपण्णा, चरित्तसंपण्णा, लज्जासंपण्णा, लाघवसंपण्णा,ओअंसी, तेअंसी, वचंसी, जससी, जिअकोहा, जिअमाणा, जिअमाया, जिअलोभा, जिइंदिया, जिअणिद्दा, जिअपरीसहा, जीविआस–मरणभयविप्पमुक्का, वयप्पहाणा, गुणप्पहाणा, करणप्पहाणा, चरणप्पहाणा, णिग्गहप्पहाणा, निच्छयप्पहाणा, अज्जवप्पहाणा, मद्दवप्पहाणा, लाघवप्पहाणा, खंतिप्पहाणा, मुत्तिप्पहाणा, विज्जाप्पहाणा, मंतप्पहाणा, वेअप्पहाणा, बंभप्पहाणा, नयप्पहाणा, निगमप्पहाणा, सच्चप्पहाणा, सोअप्पहाणा, चारुवण्णा, लज्जातवस्सी, जिइंदिआ, सोही, अणियाणा, अप्पुस्सुआ, अबहिल्लेस्सा, अप्पडिलेसा, सुसामण्णरया, दंता इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरंति. तेसिं णं भगवंताणं आयवाया विदिता भवंति, परवाया विदिता भवंति, आयवादं जमइत्ता णलवणमिव मत्तमातंगा अच्छिद्दपसिणवागरणा, रयणकरंडगसमाणा, कुत्तिआवणभूआ, परवादिपमद्दणा, दुवालसंगिणो, समत्तगणिपिडगधरा, सव्वक्खरसण्णिवाइणो, सव्वभासाणुगामिणो, अजिणा, जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरेमाणा संजमेण, तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवंतो इरिआसमिआ, भासासमिआ, एसणासमिआ, आदाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिआ, उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण–जल्लपारिट्ठावणियासमिआ, मणगुत्ता, वयगुत्ता, कायगुत्ता, गुत्ता, गुत्तिंदिया, गुत्तबंभयारी, अममा, अकिंचणा, छिण्णगंथा, छिण्णसोआ, निरुवलेवा कंसपाई व मुक्कतोया, संख इव निरंगणा, जीवो विव अप्पडिहयगई, जच्चकणगं पिव जायरूवा, आदरिसफलगा विव पागडभावा, कुम्मो इव गुत्तिंदिया, पोक्खरपत्तं व निरुवलेवा, गगणमिव निरालंबणा, अणिलो इव अप्पडिबद्धा, चंदो इव सोमलेसा, सूरो इव तेअस्सी, सागरो इव गंभीरा, विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का, मंदर इव अप्पकंपा, सारयसलिलं व सुद्धहिअया, खग्गविसाणं व एगजाया, भारंडपक्खी व अप्पमत्ता, कुंजरो इव सोंडीरा, वसभो इव जायत्थामा, सीहो इव दुद्धरिसा, वसुंधरा इव सव्वफासविसहा, सुहुअहुआसणो इव तेअसा जलंता, नत्थि णं तेसिं णं भगवंताणं कत्थ य पडिबंधो.''—औपपातिकसूत्रे (क० आ० पृ—७२—९७.)—अनु०

[वर्ण्याः]. तथा असुरकुमाराः, शषभवनेपतयः, व्यन्तराः, ज्योतिष्काः, वैमानिकाः देवाश्च भगवतः समीपमागच्छन्तो वर्णयितव्याः.

समवसरण. भगवद्वर्णन.

१०. ['जाव समोसरणं'ति] ज्यांसुधी समवसरणनो वर्णक आवे त्यांसुधी भगवंतनो वर्णक कहेवो. ते भगवंतनो वर्णक आ प्रमाणे छेः–"भुजमोचक एटले एक जातनुं काळुं रत्न, भृंग एक जातनो श्याम कीडो अथवा एकप्रकारनो अंगारो, नैल गळीनो विकार, कज्जल- काजल मषी, प्रहृष्ट भ्रमरगण हर्षवाला भ्रमराओनो समूह. आ बधा पदार्थोनी पेठे जेओनो समूह स्निग्ध–चिकाशदार, काळी कांतिवाळो छे एवा अने निबिड–खीचोखीच -आवेला, कुंडलाकारे वळेला अने आगळ पाछळ वळेला एवा केश वाळ-जेओना मस्तकमां छे" एवा भगवंत छे. ए प्रमाणे केशवर्णकथी मांडी पगना तळीयां सुधीनो भगवंतनो शरीरनो वर्णक कहेवो. पगना तळीयांना विशषणनो अर्थ आ प्रमाणे छेः "लाल, कमलदलनी पेठे मृदु अने दरेक

---

१. औपपातिकसूत्रेऽसुरकुमारादिवर्णक एवम्:—ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था.–कालमहानीलसरिस–नीलगुलियगवलअयसिकुसुमप्पगासा, वियसियसयपत्तमिव पत्तलनिम्मलईसिसियरत्ततंबनयणा, गुरुलायतउन्नतुंगणासा, उवचियसिलप्पवालबिंबफलसंनिभा से अधरोट्ठा, पंडुरससिसकलविमलनिम्मलसंख-गोक्खीर-फेण-दगरय-मुणालियाधवलदंतसेढी, हुयवहणिद्धंतधोयतवतव-णिज्जरत्ततल-तालु-जीहा, अजणघणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा, वामेगकुंडलधरा, अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसिसिलिंधपुप्फप्पगासाइं, सुहुमाइं, असंकिलिट्ठाइं वत्थाइं पवरपरिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बितियं च वयं असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणे तलभंगयतुडिअपवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभूया, दसमुद्दमंडियग्गहत्था, चूडामणिचिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया, महज्जुइया, महाबला, महायसा, महासोक्खा, महाणुभावा, हारविराइअवच्छा, कडगतुडियथ-भियभुआ, अंगयकुंडलमट्ठगंडतला, कल्लाणगकयवरवत्थपरिहिया, पंडधारी, विचित्तवत्थाभरणा, विचित्तमालमउलमउडा, कल्लाणकयपवरमल्लाणुलेवणा, भासुरबोंदी, पालंबपलंबमाणवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेण, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं संघयणेणं, दिव्वेणं संठाणेणं, दिव्वाए इड्ढीए, दिव्वाए जुईए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चिए, दिव्वेणं तेएणं, दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा , पभासेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता, नच्चासण्णे, नाइदूरे, सुस्सूसमाणा, नमंसमाणा, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति. २. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिआ भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था –णागपत्तिणो, सुवण्णा, विज्जू , अग्गी य, दीवा, उदही, दिसाकुमारा य, पवण, थणिया य, भवणवासी. नागफणा–गरुल–वयर–पुण्णकलसकेतुफेस, सीह–हय–गयंक–मगरंक–वरमउडवद्धमाणणिज्जूयाचिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया; सेस तं चेव जाव पज्जुवासंति. ३. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था –पिसाय, भूया य, जक्खा, रक्खसा, किंनर, किंपुरिस, भुयगपइणो. महाकायगंधव्वणिकायगणा णिउणं गंधव्वगीअरइणो, अणपन्नी य, पणपन्नी य, इसीवाइ य, भूयवाइ य, चेव कंदी य, महाकंदी य, कुहंड, पयंग, देवा. चंचलचवलचित्तकीलदवप्पिया, गंभीरहसियभणियपीयगीयणच्चणरई, वणमालामेलमउडकुंडलसच्छंदविउव्वियाऽऽहरण-चारुविभूसणधरा, सव्वोउयसुरभिकुसुमसुरइ य, पलंबसोभंतकंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा, कामगमा, कामरूवधारिणो, णाणाविहवण्णरागवरवत्थविचित्त-चिल्लयणियंसणा, विविहदेसीणवत्थगहियवेसा, पमुइअकंदप्पकलहकीला, कोलाहलप्पिया, हास–बोलबहुला, अणेगमणिरयणविविहनिज्जुत्तचिंधगया, सुरूवा, महिड्ढिया, जाव पज्जुवासंति. ४. ते णं काले णं, ते णं समये णं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे जोइसिआ देवा अंतियं पाउब्भवित्थाः–विहस्सइ–चंद–सूर–सुक्क–सणिच्छरा, राहू, धूमकेऊ, बुहा य, अंगारका य, तत्ततवणिज्जकणगवण्णा. जे य गहा जोइसं चारं चरन्ति, केउयगइरइया, अट्ठावीसइवि-हा य णक्खत्तदेवगणा, णाणासंठाणसंठियाओ पंचवण्णाओ ताराउ, ठिअलेस्सा, चारिणो य अविस्साममंडलगई, पत्तेयणामंकपागडियचिंधमउडा, महिड्ढिया जाव पज्जुवासंति ५. ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था.–सोहम्मी–साण–सणकुमार–माहिंद–बंभ–लंतग–महासुक्क–सहस्सारा–ऽऽणय–पाणया–ऽऽरण–अच्चुअवई, पहिट्ठा देवा जिणदंसणुस्सुगागमणजणितहासा, पालक–पुप्फक–सोमणस–सिरिवच्छ–णंदियावत्त–कामगम–पीइगम–मणोगम–विमल–सव्वओभद्दणामधिज्जेहिं विमाणेहिं उइण्णा, वंदगा जिणंदं, मिग–महिस–वराह–छगल–दद्दुर–हय–गयवइ–भुअग–खग्गि–उसभंकिअविडिमपागडियचिंधमउडा, पसिढिलवरमउडतिरीडधारी, कुंडलउज्जोयवियाणणा, मउडदित्तसिरया, रत्ताभा, पउमपम्हगोरा, सेता, सुभवण्ण–गंध–फासा, उत्तमविउव्विणो, विविहवत्थ–गंध–मल्लधारी, महिड्ढिया, महज्जुइया जाव पंजलिउडा पज्जुवासंति. (क० आ० पृ० १४१–१४६)–अनु०

१. औपपातिक–उववाइ–सूत्रमां भगवंतना शरीरनो वर्णक आ प्रमाणे छेः—"भगवंतनी केशांतकेशभूमि–वाळ उगवानी मस्तकनी भूमि–दाडिमना फुल जेवी अने लाल सुवर्ण जेवी निर्मल तथा स्निग्ध छे; मस्तकप्रदेश घन, निबिड अने छत्राकार छे. ललाट व्रणवगरनुं, अर्धचंद्रसरखुं कांतिवाळुं, शुद्ध अने सम छेः मुख चंद्र समान पूर्ण अने सौम्यगुण युक्त छेः कर्णो सुंदर अने प्रमाणवाळा छे; श्रोत्रो सारा छे; कपोल प्रदेश पुष्ट अने मांसल छे; भवांओ नमेला चाप जेवा सुंदर, काळा वादळानी श्रेणि जेवा आछां, काळां अने स्निग्ध छे; नयनो विकसित पुंडरीक कमळ समान छे, अक्षो–पांपणवाळी आंखो–विकसित कमल समान श्वेत अने पातळी छे; नासिका गरुड जेवी दीर्घ, सरल अने उन्नत छे; ओष्ठो उपचित शिल प्रवाल अने बिंबफल जेवा (रक्त) छेः दांतनी श्रेणी श्वेतचंद्र, सर्व निर्मळ पाणी, शंख, गोक्षीर–गायनु दुध, चंपकनुं पुष्प, जलना बिंदुओ अने मृणालिका जेवी धोळी छे, दांतो अखंड, अस्फुटित, अविरल, सुस्निग्ध अने सुजात छे; अनेक दांतो एक दांतनी श्रेणि समान छे; तालवुं अने जिभ अग्निथी धमेल, तप्त सुवर्ण समान लाल छे, श्मश्रु-दाढी-अवस्थित अने सुविभक्त छे; हनुक- हडपची–पुष्ट, संस्थित अने प्रशस्त शार्दूल समान विपुल छे; ग्रीवा–डोक–चार अंगुल प्रमाणवाळी अने उत्तम शंख जेवी छेः खभा सारा महिष, वराह, सिंह, शार्दूल, वृषभ अने उत्तम–हस्ती समान प्रतिपूर्ण अने विशाल छे; भुजा धुंसरा जेवी पुष्ट, आनंद देनारी, पीवर, प्रकोष्ठो–पोंचा–मां संस्थित, सुश्लिष्ट, विशिष्ट अने घणी स्थिर संधिवाळी तथा सारा शहेरना गोळ परिघ–भोगळ–सरखी छे; बाहु कांइक लेवा माटे परिघनी पेठे लांबी करेल भुजगेश्वरनी फणा समान दीर्घ छे; हस्त रक्त तळी-यार्थी उपचित, मृदु, मांसल, सुजात, लक्षणोथी प्रशस्त अने निश्छिद्र छे; अंगुलिओ पुष्ट अने कोमल छे; नखो आताम्रताम्र–तांबानी पेठे थोडा लाल, पातळा, पवित्र, सुंदर अने चिकणा छे; हस्तमां चंद्रनी, सूर्यनी, शंखनी, चक्रनी अने दिक्स्वस्तिकनी रेखाओ छे, वक्षःस्थल कनकशिलातलसमान उज्ज्वल, प्रशस्त, समतलवाळुं, उपचित, विस्तीर्ण, पहोळुं अने श्रीवत्सथी अंकित छे; देह अकरंडुक–पीठना देखाता हाडकारहित, कनकसम कांतिवाळो, निर्मल, सुजात, निरुपहत अने उत्तमपुरुषना एक हजार आठ लक्षण सहित छे; पडखाओ सन्नत, संगत, सुंदर, सुजात, पुष्ट, [illegible] देनारां अने मित मर्यादावाळां छे; रोमराजि सरल, सरखी, उत्तम, आछी, काळी, स्निग्ध, दर्शनीय, लष्टकती अने रमणीय छे; कुक्षि मत्स्य अने पक्षी जेवी सुजात अने पुष्ट छे; उदर मत्स्य समान छे; इंद्रियो शुचि छे; नाभि गंगावर्तकनी पेठे प्रदक्षिणावर्त तरंगोथी भंगुर–चंचल, रविकिरणथी विकसित पद्म जेवी गंभीर अने विकट छे; शरीरनो मध्यभाग वचमां सांकडा त्रासवाळी त्रण लाकडानी घोडी जेवो, मुसल अने दर्पणना मध्य जेवो, उत्तम सुवर्ण–सोना–नी

कोमल वस्तुओ करतां जेओनुं पगनुं तळीयुं कोमल छे'' एवा भगवंत छे. वळी, ''उत्तम पुरुषना एक हजार आठ लक्षणने धारण करनार, आकाशी- गत चक्रवडे, आकाशगत छत्रवडे, आकाशगत चामरोवडे अने आकाशस्फटिकमय पादपीठसहित सिंहासनवडे'' भगवंत उपलक्षित छे. आकाश– स्फटिक एटले एक प्रकारनो अति निर्मळ स्फटिक, तन्मय तेनु बनेलुं. 'उपलक्षित छे' ए अर्थ अध्याहार्य छे. ''देवोए आगळ खेंचाता धर्मध्वज- वडे'' अहीं 'देवोए' ए अर्थ अध्याहारगम्य छे. वळी ''भगवंत चौद हजार साधुओ अने छत्रीश हजार साध्वीओ साथे परिवृत थइ विहरे छे– तेओ भगवंतनी साथे विहरे छे.'' वळी ''भगवंत पूर्वानुपूर्वीए आगळ आगळ -विहरता,'' पण पश्चानुपूर्वीए–पाछळ पाछळ- नहीं विहरता, ''एकगाम पछी बीजे गाम जता.'' 'ग्राम'नो अर्थ प्रतीत छे, अनुग्राम एटले गाम पछीनुं गाम, त्यां जता, ''सुखे सुखे विहरता जे तरफ राजगृह नगर छे, जे तरफ गुणसिलक चैत्य छे ते तरफ आवे छे, आवी यथाप्रतिरूप अवग्रहने ग्रहण करी संयम अने तपवडे आत्माने भावता वासित करता–भगवंत विहरे छे'' अने समवसरणना वर्णकमां ''श्रमण भगवंत महावीरना घणा शिष्यो हता, जेमांना केटलाक दीक्षित उग्रकुलना हता'' इत्यादि साधु वगेरेनो वर्णक

साधुओ.

मुट जेवो अने वज्रना जेवो वळेलो छे, कटिप्रदेश–नितंब प्रमुदित उत्तम अश्व तथा सिंह करतां अधिक गोळ छे. गुह्यदेश सुजात अने उत्तम घोडा समान छे. उत्तम अश्वनी समान निरुपलेप छे गति उत्तम हस्तिसमान विक्रम अने विलासवाळी छे; जंघाओ हाथीनी शुंढ जेवी सुजात छे; जानुओ डाबलाना ढाकणा जेवा गूढ छे. जंघाओ हरिणी, कुरुविंद–तृणविशेष–अने सूत्र वणवाना पदार्थ समान गोळ तथा चडता उतरता क्रमवाळी छे; घुंटिओ संस्थित, सुश्लिष्ट अने गूढ छे पगो काचबा जेवा सुंदर अने सुप्रतिष्ठित छे. पगनी अगुलीओ क्रमपूर्वक अने सुसंहत छे; अंगुलीओना नखो उन्नत, पातळा, लाल अने स्निग्ध छे.'' (उववाइसूत्र–क० आ० मां, पृ० ४४ थी ५४ सुधी)–अनु०

१. भगवत महावीर चंपानगरी पधार्या ते वखतनुं आ बधु अक्षरे अक्षर वर्णन औपपातिक–उववाइ-सूत्र (क०आ०मा पृ० ५५ तथा५७–५८–५९) मां आपेलुं छे –अनु० २ 'साहस्री' शब्द 'सहस्र' शब्दनो पर्याय–समानार्थक छे ३. 'सद्धिं संपरिवुडे' ए बे शब्दो न मूके अने एकलो 'सद्धिं–साथे' मूके तो 'साधुओनी साथे भगवंत' एवो अर्थ थाय अने एम अर्थ थवाथी जेम 'आ पुरुष सगृह–घर सहित–छे' ए वाक्यनो अर्थ एवो थाय छे के, 'आ पुरुष घरवाळो छे' पण 'आ पुरुषनी साथे घर छे' एम अर्थ थतो नथी, तेम 'साधुओनी साथे भगवंत' एटले 'भगवंत साधुओवाळा छे' एम अर्थ थाय पण विहरता भगवंतनी साथे साधुओ छे' एवो अर्थ न पण थाय माटे 'भगवंतनी साथे चौद हजार साधुओ वगेरे विहरे छे' एम निश्चित अर्थ दर्शाववा 'संपरिवृत' शब्द मूक्यो छे एटले चौद हजार साधुओ साथे परिवरेला भगवंत –श्रीअभयदेव. ४ औपपातिकसूत्रमां साध्वादिक वर्णक आ प्रमाणे छे –केटलाक भोगकुलना निर्ग्रन्थो दीक्षित छे, केटलाएक राजकुलना, ज्ञातकुलना, कौरवकुलना, क्षत्रियकुलना दीक्षित छे, केटलाएक भटो, योद्धाओ, सेनापतिओ, शिक्षकों, शेठीआओ, व्यवहारीआओ, अने बीजा घणा ए प्रकारना उत्तम जातिवाळा, कुळवाळा, रूपवाळा, विनयवाळा, विज्ञानवाळा, वर्णवाळा लावण्यवाळा अने पराक्रमवाळा दीक्षित थयेला छे. वळी केटलाएक सौभाग्य अने कांतिवाळा, बहु धन अने धान्यना त्यागीओ, नरपति करता अधिक गुणशालि, प्राप्त भोगवाळा, सुखथी परिवृत्त, विषयसुखने किंपाकफल जेवा परिणाम भयंकर जाणी, आयुष्यने जलना परपोटा जेवु अने दर्भाग्रस्थित बिंदु जेवुं जाणी. आ सर्वे प्रतिलग्न अनित्यने रजनी माफक खंखेरीने हिरण्यने, सुवर्णने छोडी (यावत्) दीक्षित थयेला छे वळी केटलाएक श्रमणो अर्धमासना पर्यायवाळा, मासना पर्यायवाळा ए ज प्रमाणे बे मास, त्रण मासना पर्यायवाळा यावत् अग्यार मासना पर्यायवाळा छे.केटलाएक श्रमणो वर्ष पर्यायवाळा, बे वर्ष, त्रण वर्षना पर्यायवाळा छे, केटलाएक घणा वर्षना पर्यायवाळा संयम अने तपवडे आत्माने वासित करता विहरे छे. ते काले, ते समये श्रमण भगवत महावीरना घणा निर्ग्रन्थो हता जेओमाना केटलाक आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानवाळा यावत केवळज्ञानवाळा हता केटलाएक मनोबली, वचनबली, कायबली हता. केटलाएक मनवडे शाप देवामां अने अनुग्रह करवामां समर्थ हता; केटलाएक वचनवडे अने केटलाएक कायवडे शाप अने अनुग्रहमा समर्थ हता. केटलाएक खेलौषधि (जेओना नासिकाजन्य मळोनुं औषधिरूप थवुं) प्राप्त हता. एवं जल्लौषधि (शरीरना मळोनुं औषधिरूप थवु), विप्रुप औषधि (मूत्रादिनुं औषधिरूप थवु), आमौषधि (हस्तादिस्पर्शोनुं औषधिरूप थवुं) अने सर्वौषधि (सर्व शारीरिक वस्तुओनुं औषधिरूप थवुं) प्राप्त हता वळी केटलाक कोष्ठबुद्धि (कोठामां पडेल अन्ननी माफक जेओनी बुद्धि अनश्वर–स्थिर–रहे छे), केटलाक बीजबुद्धि (बीज अनेक फलोनुं उत्पादक छे तेम जेओनी बुद्धि इतर ज्ञाननी उत्पादिका छे), केटलाक पटबुद्धि–वस्त्रसमान बुद्धिवाळा; केटलाक पदानुसारी (एक पदना श्रवणथी जे समस्त ग्रंथ जाणी शके) छे, केटलाक संभिन्नश्रोताश्रव–एकसाथे भिन्न भिन्न इन्द्रियजन्य ज्ञानने जाणी शके छे. केटलाक क्षीराश्रव– क्षीरनी पेठे मिष्टभाषी छे केटलाक मधुकाश्रव-मधनी पेठे मिष्टभाषी छे केटलाएक सर्पिराश्रव–घृतवत् मिष्ट– भाषी छे केटलाएक अक्षीण महानसिक–थोडाघणा पण भोज्य पदार्थथी घणा माणसोने जमाडी शके छे, ए प्रमाणे केटलाक ऋजुमति, केटलाक विपुल- मति, विकुर्वणऋद्धि (रूपान्तरादि करवुं) प्राप्त, केटलाएक चारणश्रमणो छे केटलाक श्रमणो विद्याधरो, आकाशातिपाति छे, केटलाक कनकावलि तपने प्रतिपन्न छे, ए प्रमाणे केटलाक एकावली तपने प्रतिपन्न, केटलाक क्षुद्रसिंहनिष्क्रीडित तपने–तपकर्मने–प्रतिपन्न, केटलाक महासिंहनिष्क्रीडित तपने प्रतिपन्न. केटलाक भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वतो भद्रप्रतिमा, आयंबिल वर्धमान तपकर्मने प्रतिपन्न, केटलाक मासिक भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, ए प्रमाणे केटलाक द्विमासिक प्रतिमाने, त्रिमासिक प्रतिमाने यावत सप्तमासिक भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, केटलाक प्रथम सात रात्रिदिवसनी भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, यावत् त्रीजी सात रात्रिदिवसनी भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, अहोरात्र दिननी भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, एक रात्रिदिननी भिक्षुप्रतिमाने प्रतिपन्न, सात सातमी भिक्षुप्रतिमाने, आठ आठमी भिक्षुप्रतिमाने, नव नवमी भिक्षुप्रतिमाने, दश दशमी भिक्षुप्रतिमाने, क्षुद्रकमोकप्रतिमाने प्रतिपन्न, महामोक- प्रतिमाने प्रतिपन्न, यवमध्यचंद्रप्रतिमाने, वज्रमध्यचंद्रप्रतिमाने प्रतिपन्न थया सता आत्माने संयम अने तपवडे वासित करता विहरे छे. ते काळे, ते समये श्रमण भगवंत महावीरना घणा स्थविर शिष्यभगवंतो जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, बलसंपन्न, रूपसंपन्न, विनयसंपन्न, ज्ञानसंपन्न,दर्शनसंपन्न, चारित्रसंपन्न, लज्जासंपन्न, लाघवसंपन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी–बलिष्ठ, यशस्वी हता. जेओए क्रोधने, मानने, मायाने, लोभने, इन्द्रियोने, निद्राने अने परीषहोने जीत्या छे; जेओने जीवितनी आशा अने मरणनो भय नथी, जेओ व्रतप्रधान, गुणप्रधान, करण—(करणसित्तरि) प्रधान, चरण—(चरणसित्तरि) प्रधान, इंद्रिय– निग्रहप्रधान, निश्चयप्रधान, आर्जवप्रधान, मार्दवप्रधान, लाघवप्रधान, क्षमाप्रधान, मुक्तिप्रधान, विद्याप्रधान, मंत्रप्रधान, वेद–ज्ञान–प्रधान; ब्रह्मप्रधान, नयप्रधान, नियमप्रधान, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, चारुवर्णवाळा, लज्जातपस्वी, जितेन्द्रिय, शुद्ध, अनिदान–निदान नहीं करनारा; अल्पौत्सुक्य—उतावळ नहीं करनारा, नियमप्रधान, अबहिर्लेश्या–जेओनो आत्मपरिणाम चारित्रथी बहार नथी, अप्रतिलेश्या—प्रतिकूळ लेश्यारहित, सुश्रामण्यरत–सारा साधुपणामां अनुरक्त अने दान्त,आ ज निर्ग्रन्थप्रवचनने आगळ करी विहरे छे,ते श्रमणभगवन्तोए आत्मवादो जाण्या छे,परवादो जाण्या छे,आत्मवादने गणीने जेम नळवनमां मत्तमातंगो रमे तेम आत्मवादे रमनारा, जेओना प्रश्नो अने उत्तरो निश्छिद्र छे, जेओ रत्नकरंडकसमान, कुत्रिकापण (त्रिलोकीनी

कहेवो. तथा भगवंतनी पासे आवता असुरकुमारोनुं, शेषभवनपतिओनुं, व्यंतरोनुं, ज्योतिष्कोनुं अने वैमानिकोनुं वर्णन करवुं. असुरकुमारवगेरे–सभा.

वस्तु ज्यां मळे तेवी दुकान) रूप, परवादीनुं मर्दन करनारा, द्वादशांगने जाणनारा, समस्त गणिपिटकने धारण करनारा, सर्वाक्षरसंनिपाती, सर्वभाषाने जाणनारा, जिन नहीं पण जिन समान, जिननी पेठे साचुं कहेनारा, संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे. ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरना अंतेवासि घणा अनगारभगवंतो, ईर्यासमिति (चालवामां सावधानता) वाळा छे, भाषासमिति (निर्दोष बोलवामां सावधानता) वाळा छे, एषणासमिति (शुद्ध आहार लेवामां सावधानता) वाळा छे, आदानभांडमात्रनिक्षेपणासमिति (पात्रादिनुं ग्रहण करवुं वा मूकवुं, तेमां सावधानता) वाळा, उच्चार–विष्ठा, प्रस्रवण–मूत्र, खेल–श्लेष्मा, सिंघाण–नासिकानो मल, जल्ल–शरीरनो मल तेने परिष्ठापवामां सावधानतावाळा, गुप्तमनवाळा, गुप्तवचनवाळा, गुप्तकायवाळा; गुप्त, गुप्तइन्द्रियोवाळा, गुप्तब्रह्मचर्यवाळा, ममत्वरहित, परिग्रहरहित, जेओए ग्रंथो–परिग्रहो–अने शोको छेद्या छे, जेओ मुक्ततोय कांस्यपात्रनी पेठे निरुपलेप छे; शंखनी पेठे निरंजन छे, जीव पेठे अस्खलित गतिवाळा छे; उत्तम कनक पेठे जातरूप–सुन्दर–छे, दर्पणफलक पेठे प्रकटभाववाळा छे, कूर्म–काचबा–पेठे गुप्तइन्द्रियवाळा छे; कमळपत्र पेठे निर्लेप छे; गगन पेठे निरालंबन छे, पवन पेठे अप्रतिबंध छे, चंद्र पेठे शीतलेश्यावाळा छे, सूर्य पेठे तेजस्वी छे, समुद्र पेठे गंभीर छे, पक्षीनी पेठे सर्वथी विप्रमुक्त छे, मेरु पेठे निष्प्रकंप छे, शरदऋतुना पाणि पेठे शुद्ध हृदयवाळा छे. वराहना शृङ्ग पेठे एकाकी छे, भारंड पक्षीनी पेठे अप्रमत्त छे, हाथी पेठे शौंडीर्यवाळा छे, बलदनी पेठे बलवाळा छे, सिंह पेठे दुर्धर्ष छे, पृथ्वीनी पेठे सर्वप्रकारना स्पर्शोने सहवावाळा छे, घृतादिथी सुसिक्त अग्निनी पेठे तेजथी ज्वलता–दीपता–ते निर्ग्रन्थ भगवंतोने क्याय पण प्रतिबंध नथी (एवा ए निर्ग्रन्थ भगवंतो विचरे छे.)–(औ० क० आ० पृ०७२–९७.)

१. औपपातिकसूत्र (क०आ०पृ०१४१–१५६)मा असुरादिक वर्णक आ प्रमाणे छे.–"असुरकुमारवर्णक–ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे, घणा असुरकुमार देवो प्रादुर्भूत थया. जेओ काळामहानील (मणि) समान अने नील गळी, गवल अने अतसिना पुष्प जेवा प्रकाशवाळा हता, जेओना नयनो–पासळां, निर्मळ, ईषत्सित्क अने राता तांबा जेवा हतां, नासिका गरुड जेवी दीर्घ ऋजु अने तुंग हती, तेओना ओष्ठो उपचित शिलप्रवाल अने बिंबफलसमान (लाल) हता, तेओनी दांतनी श्रेणी श्वेत चंद्र, सर्व निर्मल अने विमल शंख, गोक्षीर, फीण, जलबिंदु अने मृणालिका जेवी धोळी हती. तेओनी जिह्वा अने तालवुं अग्निथी धमेल शुद्ध तप्त सुवर्ण जेवुं लाल हतुं, तेओना केशो अंजन, घन (मेघ) समान काळा, रुचक रत्नसमान रमणीय अने स्निग्ध हता. तेओए डाबीतरफ एक कुण्डल पहेर्युं हतुं, तेओनां गात्रो आर्द्रचंदनथी अनुलिप्त हता, तेओए सिलिध्र पुष्पना ईषत् प्रकाशतुल्य अर्थात् ईषद्धवळ, सूक्ष्म, असंक्लिष्ट अने प्रवर वस्त्रो पहेर्यां हता, तेओ प्रथमवय समतिक्रमी, द्वितीय वयने नही पामी वर्तमान भद्र यौवनमां तल–आभरण विशेष, भृंगक (बाहुना आभरण) तुडिक–बहेरखां, प्रवरभूषण अने निर्मल मणिरत्नमंडित भुजवाळा हता, तेओना हस्ताग्रो दश मुद्रिकाथी मंडित हता, तेओ मुकुटचिह्न–वाळा हता. तेओ सुरूप, महर्धिक, महाद्युति, महाबल, महायश, महासौख्य, महानुभाव अने हारविराजित वक्षस्थळवाळा हता, तेओना भुजो, कटक अने तुडिकथी स्तब्ध हता, तेओनुं गंडतल अंगद अने कुंडलथी मृष्ट हतुं, तेओए कल्याणकृत प्रवर वस्त्र पहेर्या हतां, तेओए विचित्र वस्त्राभरण धार्यां हतां; विचित्रमाला मुकुल मुकुट पहेर्यां हता, कल्याणकर प्रवर माल्यनुं अनुलेपन कर्युं हतुं, तेओ भास्वर शरीरवाळा हता, तेओए प्रलंब–झुमणा अने प्रलंब–मान वनमालाओ पहेरी हती, तेओ दिव्य वर्णे, दिव्य गंधे, दिव्य रूपे, दिव्य स्पर्शे, दिव्य संघयणे, दिव्य संस्थानवडे, दिव्य ऋद्धिए, दिव्य द्युतिए, दिव्य प्रभाए, दिव्य छायाए, दिव्य अर्चिवडे, दिव्य तेजवडे दिव्य लेश्यावडे, दशे दिशाओने उद्योतता, प्रभासता श्रमण भगवंत महावीरनी पासे आवी आवीने रक्त थया सता श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा करी वांदे छे, नमे छे, अने बहुपासे नहीं अने बहुदूर नहीं एम रही शुश्रूषा करता, नमता विनयवडे अभिमुख थई अंजलिपुट जोडी पर्युपासे छे."

२. भवनवासिवर्णकः–"ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे घणा असुरेन्द्र सिवायना भवनवासी देवो प्रादुर्भूत थया. तेओ नागकु–मार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, पवनकुमार अने स्तनितकुमार हता. तेओना मुकुटमां नागफणानुं, गरुडनुं, वज्रनुं अने पूर्ण कलशनुं चिन्ह हतुं, सिंहनुं, घोडानुं, गजनुं, मगरनुं चिन्ह हतुं, उत्तम मुकुटमा नियुक्त शरावसंपुटनुं चिन्ह हतुं, अने तेओ सुरूपो, महर्धिको (बाकीना विशेषणो असुरकुमारनी पेठे जाणवा) ते प्रमाणे श्रमण भगवंत महावीरनी पर्युपासना करता हता."

३. व्यंतरवर्णकः–"ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे घणा वाणव्यंतर देवो प्रादुर्भूत थया. तेओ पिशाचो, भूतो, यक्षो, राक्षसो, किंनरो, किंपुरुषो, भुजगपतिओ, महाकाय गंधर्व निकायगणो निपुणगांधर्वगीतमां रतिवाळा हता. अणपन्नी, पणपन्नी ईसीवादी, भूतवादी, कंदी, महाकंदी, कुहंड अने पतंग देवो हता. तेओने चंचल चपल विचित्रक्रीडा अने हास्य प्रिय हता, गंभीर हसवामा, बोलवामा, प्रियगीत, अने नाट्यमा, तेओने प्रीति हती, तेओए वनमाळाना आपीड–शेखर–छोगा–वाळा मुकुटो, स्वच्छंद विकुर्वेला आभरणो अने सुंदर विभूषणो पहेर्यां हतां. तेओना वक्षस्थळो सर्वऋतुना सुरभि कुसुमोथी, अने सुरचित प्रलंबोथी शोभता, कांत, विकसता अने विचित्र वनमाळाओथी रचित हतां. तेओनुं गमन इच्छापूर्वक हतुं. तेओ कामरूप–धारी हता, नानाविध वर्णवाळां, रागवाळा, विचित्र, दीपता वस्त्रो तेओए पहेर्यां हतां, तेओए, विविध देशजन्य वस्त्रोथी पोतानो वेष रच्यो हतो, तेओ कंदर्प अने कलहक्रीडामां प्रमुदित हता. हास्य, बोल बहुल हता, अनेक प्रकारना मणिरत्नोना विविध निर्युक्त चिह्नवाळा हता अने तेओ सुरूप, महर्धिक (यावत्–अवशिष्ट पूर्ववत् समजवुं) श्रमण भगवंत महावीरने पर्युपासे छे."

४. ज्योतिष्कवर्णकः–"ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे घणा ज्योतिष्क देव प्रादुर्भूत थया. तेओ बृहस्पति, चंद्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध अने अंगारक–मंगळ हता. तेओनो वर्ण तप्त तपनीय (सुवर्ण) समान हतो. जे ग्रहो ज्योतिष्कचारे गतिए चरे छे तेओ, अठावीश प्रकारना नक्षत्र देवो अने नाना संस्थान संस्थित पंचवर्णवाळा ताराओ, एओ स्थितलेश्या—प्रकाशवाळा, चारि—चालता, अविश्राम मंडल गतिवाळा, अने प्रत्येक नामांकित प्रकटचिह्नयुत मुकुटवाळा हता ए बधा महर्धिवाळा देवो (यावत्) श्रमण भगवंत महावीरने पर्युपासे छे."

५. वैमानिकवर्णकः–"ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे घणा वैमानिक देवो प्रादुर्भूत थया. तेओ सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण अने अच्युतपतिओ हता. ते प्रहृष्ट देवोने जिनदर्शनार्थे उत्सुकता–उतावळ–थी आववा माटे हर्ष उत्पन्न थयो हतो, तेओ पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नंदावर्त, कामगम, प्रीतिगम, मनोगम, विमल अने सर्वतोभद्र ए प्रशस्त नामवाळा विमानोवडे भगवंतने वांदवा उतर्यां हता. तेओना मुकुटो मृग, महिष, वराह, बोकडो, देडको, घोडो, गजपति, सर्प, खड्ग अने वृषभनां चिह्नथी अंकित शिथिल अने प्रकट हता. तेओना उत्तम मुकुटमां पोचां शिखरो हतां. तेओनां मुखो कुंडलथी उद्योतित हतां, तेओनां मस्तको मुकुटोथी दीप्त हतां. तेओ राती कांतिवाळा, शुभ वर्ण, गंध, स्पर्शवाळा, उत्तम विकुर्वणा करनारा, विविध वस्त्र, गंध अने माल्यने धारण करनारा, मोटी ऋद्धिवाळा, मोटी द्युतिवाळा यावत्, प्रांजलिपुट जोडीने (श्रमण भगवंत महावीरने) पर्युपासे छे.–अनु०

११. 'परिसा णिग्गय'त्ति राजगृहाद् राजादिलोको भगवतो वन्दनार्थं निर्गतः. तन्निर्गमश्चैवम्:-"तए णं रायगिहे णयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइः-एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे इह गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ. तं सेयं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण वंदण-नमंसणयाए? त्ति कट्टु बहवे उग्गा, उग्गपुत्ता" इत्यादिर्वाक्यो यावद् भगवन्तं नमस्यन्ति, पर्युपासते चेति. एवं राजनिर्गमः,

---

१. प्र०छाया.-ततो राजगृहे नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथपथेषु बहुजनोऽन्योऽन्यमेवमाख्याति:-एवं खलु देवानुप्रिय! श्रमणो भगवान् महावीर इह गुणसिलके चैत्ये यथाप्रतिरूपमवग्रहमवगृह्य संयमेन, तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति. तत् श्रेयः खलु तथारूपाणामर्हतां भगवतां नामगोत्रस्याऽपि श्रवणतया, किमङ्ग पुनर्वन्दन-नमस्यनतयेति कृत्वा बहव उग्राः, उग्रपुत्राः.-अनु०

२. औपपातिकसूत्रे जननिर्गमः, तत्पर्युपासना चैवम्:-"भोगा,भोगपुत्ता, एवं दुपडोयारेणं; खत्तिया, माहणा, भडा, जोहा, पसत्थारो, मल्लई, लिच्छई लिच्छइपुत्ता; अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिइओ, अप्पेगइया वंदणवत्तिअं, अप्पेगइआ पूअणवत्तियं,एवं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं, दंसणवत्तियं, कोउहलवत्तियं, अप्पेगइआ अट्ठविणिच्छयहेउं, अस्सुआई सुणेस्सामो, सुआई निस्संकिआई करिस्सामो; अप्पेगइआ, अट्ठाई, हेऊई, कारणाई, वागरणाई पुच्छिस्सामो, अप्पेगइआ सव्वओ समंताए मुण्डे भवित्ता-आगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, पंचाणुव्वइअं, सत्तसिक्खावइअं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्पेगइआ जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइआ जीयमेयं ति कट्टु ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता, सिरसा-कंठेमालकडा, आविद्धमणिसुवण्णा, कप्पियहार-अद्धहार-तिसरय-पालंबपलंबमाणकडिसुत्तयसुकयसोहाभरणा, पवरवत्थपरिहिआ, चंदणोलित्तगायसरीरा; अप्पेगइआ हयगया, एवं गयगया, रहगया, सिविआगया, संदमाणियागया, अप्पेगइआ पायविहारचारिणो पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, महया उक्किट्ठसीहणायबोल-कलकलरवेणं पक्खुभिअमहासमुद्दरवभूअं पिव करेमाणा, चंपाए नगरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता जाणवाहणाइं ठावंति, ठावित्ता जाणवाहणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता णच्चासण्णे, णाइदूरे, सुस्सूसमाणा, णमंसमाणा, अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति." (पृ०-१६४-१७०.)

३. औपपातिकसूत्रे राजनिर्गम., तत्पर्युपासना चैवम्-"तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे, हट्ठ-तुट्ठे जाव हियए, ण्हाए जाव अप्पमहग्घा-भरणालंकिअसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपं नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, सच्चेव हेट्ठिला वत्तव्वया जाव णिसीअइ, णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउअस्स अद्धतेरससयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलित्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता,सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउअं आमंतेइ, आमंतित्ता एवं वयासि.—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-रह-पवरजोहकलिअं च चाउरंगिणिं सेणं संणाहेहि, सुभद्दापमुहाण य देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडिएक्कपाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठावेहि, चंपं नयरिं सब्भिन्तरबाहिरिअं आसित्त-सित्तसुसम्मट्ठ-रत्थन्तरावणवीहियं, मंचाइमंचकलियं, णाणाविहरागउच्छियज्झयं, पडागाइपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीससरसरत्तचंदण जाव गंधवट्टिभूयं करेह, कारवेह, करित्ता, कारवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि, णिज्जाइस्सामि समणं भगवं महावीरं अभिवंदित्तए. तए णं से बलवाउए कूणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठ जाव हिअये करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-सामि त्ति, आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ. पडिसुणित्ता हत्थियाउयं आमंतेइ, आमंतित्ता एवं वयासी:-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिसेणं संणाहेहि, संणाहित्ता, एयमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि तए णं से हत्थिवाउए बलवाउयस्स एयमट्ठं सोच्चा आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता छेयायरियउवएससमइविकप्पणाविकप्पेहिं सुणिउणेहिं उज्जलणेवत्थवत्थ-हत्थपरिवत्थियं, सुसज्जं धम्मिअसंणद्ध-बद्ध-कवइअउप्पीलियकच्छविच्छगेविज्जबद्धगलवरभूसणविरायं, अहिअतेयजुत्तं, सललियवरकण्णपूरविराइयं, पलंबउचूलमहुअरकयंधयारं, चित्तपरिच्छेयपच्छदं, पहरणावरणभरियजुद्धसज्जं, सच्छत्तं, सज्झयं, सघंटं, सपडागं, पंचामेलपरिमंडिआभिरामं, ओसारियजमलजुअलघंटं विज्जुपिणद्धं व कालमेहं, उप्पाइयपव्वयं व चंकमंतं, मत्तं, गुलगुलंतं मण-पवणजइणवेगं, भीमं, संगामिआओग्गं आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडिकप्पित्ता हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिसेणं संणाहेइ, संणाहित्ता जेणेव बलवाउए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ. तए णं से बलवाउए जाणसालियं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी:—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सुभद्दापमुहाणं देवीणं बाहिरिआए उवट्ठाणसालाए पाडिएक्कपाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि तए णं से जाणसालिए बलवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव जाणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाणाइं णीणेइ, णीणित्ता जाणाइं दूसे पवीणेइ, पवीणित्ता जाणाइं समलंकरेइ, समलंकरित्ता जाणाइं वरमंडगमंडिआइं करेइ, करित्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खेइ, पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जइ, संपमज्जित्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणित्ता वाहणाइं अप्फालेइ, अप्फालित्ता दूसे पवीणेइ, पवीणित्ता वाहणाइं समलंकरेइ, समलंकरित्ता वाहणाइं वरभंडगमंडिआइं करेइ, करित्ता वाहणाइं जाणाइं जोएइ, जोइत्ता पओदलट्ठिं पओदधरे य समं आडहइ, आडहित्ता वट्टमग्गं गाहेइ, गाहित्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलवाउअस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ. तए णं से बलवाउए णगरगुत्तियं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी.-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चंपं णगरिं सब्भिनरबाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणाहि. तए णं से णगरगुत्तिए बलवाउअस्स एयमट्ठं आणए विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता चंपं नगरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त० जाव कारवेत्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ. तए णं से बलवाउए कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पियं पासेइ, हय-गय० जाव संणाहियं पासइ, सुभद्दापमुहाणं देवीणं पाडिएक्कपाडिएक्काइं जाणाइं उवट्ठिआइं पासइ, चंपं नयरिं अब्भिंतर० जाव गंधवट्टिभूअं कयं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए पीअमणे जाव हियए जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० जाव, एवं वयासी:—कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसिक्के हत्थिरयणे, हय-गय० जाव पवरजोहकलिआ य चाउरंगिणी सेणा संणाहिआ, सुभद्दापमुहाणं य देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडिएक्कपाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठविआइं, चंपा णयरी सब्भिंतरबाहिरिया आसित्त० जाव गंधवट्टिभूआ कया, त निज्जंतु णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं अभिवंदणयाए. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउअस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, णिसम्म हट्ठ-तुट्ठ० जाव हियए, जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायामजोग्ग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्धकरणेहिं संते, तंते, परिस्संते सयपाग-सहस्सपागेहिं सुगंधतेल्लमाईएहिं पीणणिज्जेहिं, दप्पणिज्जेहिं, मयणिज्जेहिं, विंहणिज्जेहिं, सव्विंदिय-

गायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगेहिं, अब्भिंगिए समाणे तेल्लचम्मंसि पडिपुण्णपाणि-पायसुकुमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं, दक्खेहिं, पत्तट्ठेहिं, कुसलेहिं, मेहावीहिं, निउणसिप्पोवगएहिं, अब्भंगण-परिमद्दणुव्वलणकरणगुणणिम्माएहिं अट्ठिसुहाए, मंससुहाए, तयासुहाए, रोमसुहाए चउव्विहाए संवाहणाए संवाहिए समाणे, अवगयखेदपरिस्समे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता समुत्तजालाउलाभिरामे, विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले, रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि, णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि, ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे सुहोदएहिं, गंधोदएहिं, पुप्फोदएहिं, सुभोदएहिं पुणो पुणो कल्लाणपवरमज्जणविहिए मज्जिए, तत्थ कोउअसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइअलूहिअंगे, सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते अहय-सुमहग्घ-दूसरयणसुसंवुए, सुइमाला-वण्णगविलेवणे, आविद्धमणिसुवण्णे, कप्पियहार-अद्धहार-तिसरय-पालंबपलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोभे, पिणद्धगेविज्जे, अगुलेज्जगललिअगयललिअकयाभरणे, वरकडग-तुडियथंभियभुए, अहिअरूवसस्सिरीए, मुद्दिआपिंगलंगुलिए, कुंडलउज्जोवियाणणे, मउडदित्तसिरए, हारोत्थयसुकयरइअवत्थे, पालंबपलंबमाणपडसुकयउत्तरिज्जे, णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहणिउणोविचअमिसिमिसंतविरइअसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठआविद्धवीरवलए, किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए नरवई, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, चउचामरवालवीजिअंगे, मंगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूअ-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहणिग्गए इव, गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला, जेणेव आभिसिक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसंनिभं गयवइं णरवई दुरूढे. तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठ मंगलया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा.—सोवत्थिअ, सिरीवच्छ, णंदिआवत्त, वद्धमाणग, भद्दासण, कलस, मच्छ, दप्पण. तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारदिव्वा य छत्तपडागा, सचामरा, दंसणरइआ, आलोअदरिसणिज्जा, वाउद्धूअविजयवेजयंती ऊसिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ. तयाणंतरं च णं वेरुलिअभिसंतविमलदंडं, पलंबकोरंटमल्लदामोवसोहिअं, चंदमंडलनिभं, समूसिअं, विमलं आयवत्तं, पवरं सीहासणं, वरमणिरयणपादपीढं सपाउआजोअसमाउत्तं बहुकिंकर-कम्मकरपुरिस-पायत्तपरिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं. तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा, कुंतग्गाहा, चावग्गाहा, चामरग्गाहा, पासग्गाहा, पोत्थयग्गाहा, फलगग्गाहा, पीढग्गाहा, वीणग्गाहा, कूतुपग्गाहा, हडप्फग्गाहा पुरओ आणुपुव्वीए संपट्ठिआ. तयाणंतरं च णं बहवे दंडिणो, मुंडिणो, सिहंडिणो, जडिणो, पिच्छिणो, हासकरा, डमरकरा, चाटुकरा, कंदप्पिआ, दवकरा, कोकुइआ, कीडकरा, वायंता य गायंता य, हसंता य, नच्चंता य, भासंता य, सावेंता य, रक्खंता य, आलोअं च करेमाणा, जयजयसद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ. तयाणंतरं च णं जच्चाणं, तरमल्लिहायणाणं, हरिमेलामउलमल्लियच्छाणं, चंचुच्चियललिअपुलिअचलचवलचंचलगईणं, लंघण-वग्गण-धावण-धोरण तिवईजइणसिक्खिअगईणं, ललंतलामगललायवरभूसणाणं, मुहभंडग-ओचूलग-थासगहिलाणचामरदंडपरिमंडियकडीणं, किंकरवरतरुणपरिग्गहिआणं अट्ठसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं. तयाणंतरं च णं ईसिदंताणं, ईसिमत्ताणं, ईसितुंगाणं, ईसिउच्छंगविसालधवलदंताणं, कंचणकोसीपविट्ठदंताणं, कंचणमणिरयणभूसिआणं, वरपुरिसारोहगसंपउत्ताणं, अट्ठसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं. तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं, सज्झयाणं, सघंटाणं, सपडागाणं सतोरणवराणं, सणंदिघोसाणं, सखिंखिणिजालपरिक्खित्ताणं, हेमवयचित्ततिणिसकणगनिज्जुत्तदारुयाणं, कालायससुकयणेमिजंतकम्माणं, सुसिलिट्ठवत्तमंडलधुराणं, आइण्णवरतुरगसुसंपउत्ताणं, कुसलनरच्छेयसारहिसुसंपग्गहिआणं, बत्तीसतोणपरिमंडिआणं, सकंकडवडंसगाणं, सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाणं अट्ठसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं. तयाणंतरं च णं असि-सत्ति-कोंत-तोमर-सूल-लउड-भिंडिवाल-धणुपाणिसज्जं पायत्ताणीयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं. तए णं से कूणिए राया हारोत्थयसुकयरइअवत्थे, कुंडलउज्जोवियाणणे, मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई, नरिंदे, णरवसहे, मणुअरायवसभकप्पे, अहियरायतेयलच्छीए दिप्पमाणे हत्थिक्खंधवरगए, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं वेसमणो विव नरवई, अमरवइसंनिभाए इड्ढीए, पहिअकित्ती, हय-गय-रह-पवरजोहकलिआए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव पहारेत्थ गमणाए. तए णं तस्स कूणिअस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स पुरओ महं आसा, आसधरा, उभओ पासिं णागा, णागधरा पिट्ठओ रहसंगेल्लि, तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते अब्भुग्गयभिंगारे, पग्गहिअतालिअंटे, ऊसवियसेयच्छत्ते, पवीजिअबालवीअणे, सव्विड्ढीए, सव्वज्जुईए, सव्वबलेणं, सव्वसमुदएणं, सव्वायरेणं, सव्वविभूईए, सव्वविभूसाए, सव्वसंभमेणं, सव्वपुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं, सव्वतुडियसद्दसंणिणाएणं, महया इड्ढीए, महया जुईए, महया बलेणं, महया समुदएणं, महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं, संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुही-हुडुक्क-मुरअ-मुइंग-दुंदुहि-निग्घोसणाइअरवेणं, चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ. तए णं से कूणिअस्स रण्णो चंपाणयरीए मज्झं मज्झेण निगच्छमाणस्स बहवे अत्थत्थिआ, कामत्थिआ, भोगत्थिआ, लाभत्थिआ, किब्बिसिआ, कारोडीआ, करवाहिआ, संखिआ, चक्किआ, णंगलिआ, मुहमंगलिआ, वद्धमाणा, पूसमाणा, खंडिअगणा ताहिं इट्ठाहिं, कंताहिं, पियाहिं, मणुन्नाहिं, मणामाहिं, मणाभिरामाहिं, हिययगमणिज्जाहिं, वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिनंदंता य, अभिथुणंता य एवं वयासीः—जय, जय, णंदा !. जय, जय, भद्दा· भद्दं ते, अजिअं जिणाहि, जियं पालेहि, जियमज्झे वसाहि, इन्दो इव देवाणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, चंदो इव ताराणं, भरहो इव मणुआणं, बहूइं वासाइं, बहूइं वाससयाइं, बहूइं वाससहस्साइं, बहूइं वाससयसहस्साइं अणहसमग्गो हट्ठ-तुट्ठो परमाउं पालयाहि, इट्ठजणसंपरिवुडो चंपाए णयरीए, अण्णेसिं च बहूणं गामा-गर-णगर-खेड कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-आसम-संवाह-संनिवेसाणं आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं, आणाईसरसेणावच्चं करेमाणे, पालेमाणे, महयाहयनट्ट-गीय-वाइअ-तंती-तलताल-तुडिअ-घणमुइंग-पडुप्पवाइअरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २, हिअयमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे २, मणोहरमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २, कंति-दिव्वसोभग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे २, बहूणं नर-नारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे, मंजुमंजुणा घोसेणं पडिपुच्छमाणे २, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे २, चंपाए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थगराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, अवहट्टु पंच रायककुहाइं, तं जहा—खग्गं, छत्तं, उप्फेसं, उवाहणाउ, बालवीयणं. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अच्चित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, एगसाडियउत्तरासंगकरणेणं, चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं, मणसो एगत्तभावकरणेणं, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ. तं जहा—काइयाए, वाइआए, माणसिआए. काइआए-ताव संकुइअग्गहत्थपाए, सुस्सूसमाणे, णमंसमाणे, अभिमुहे विणएणं पंजलिउडो पज्जुवासइ. वाइआए-जं जं भगवं वागरेइ एवमेअं भन्ते !,

अन्त:पुरनिर्गमश्च, तत्पर्युपासना च औपपातिकवद् वाच्या.

११. ['परिसा णिग्गय'त्ति] राजगृह नगरथी भगवंतने वंदन करवा माटे राजादिलोक बहार नीकळ्या, तेना नीकळवानुं वर्णन आ प्रमाणे छे:— "त्यारे राजगृह नगरमां सिंगोडाना आकारवाळा मार्गोमां, त्रिकोणाकार मार्गोमां, चतुष्काकार मार्गोमां, चत्वरोमां, चतुर्मुखमार्गोमां अने मोटा मार्गोमां घणा माणसो परस्पर आ प्रमाणे कहे छे:-हे देवानुप्रिय ! ए प्रमाणे निश्चित छे के, अहीं गुणसिलकचैत्यमां श्रमण भगवंत महावीर पधार्या छे अने त्यां तेओ, यथाप्रतिरूप अवग्रहने ग्रहण करी संयम अने तपवडे आत्माने वासित करता विहरे छे, तथारूप अरहंत भगवंतना नामगोत्रने सांभळवाथी पण चोक्कस श्रेय छे, जो नाम सांभळवाथी पण श्रेय छे तो वळी तेओने वंदन अने नमन करवाथी तो शुं कहेवुं ? अर्थात् तेथी तो श्रेय ज छे, एम करी घणा उग्र क्षत्रियो, घणा उग्रकुलपुत्रो" इत्यादि 'भगवंतने नमे छे, पर्युपासे छे' त्यां सुधी कहेवुं. ए प्रमाणे राजनिर्गम, अंत:पुरनिर्गम अने तेनी पर्युपासना 'औपपातिक' सूत्रनी पेठे कहेवी.

नगरलोकादिनिर्गम.

तहमेअं भंते !, अवितहमेअं भन्ते !, असंदिद्धमेअं भन्ते !, इच्छिअमेअं भन्ते !, पडिच्छिअमेअं भन्ते !, इच्छिअ-पडिच्छिअमेअं भंते !, से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ माणसिआए-महया संवेगं जणइ, जणित्ता तिव्वधम्माणुरागरत्ते पज्जुवासइ. औपपातिकसूत्र(क० आ० १७०-२१८).

१. अंत:पुरनिर्गमस्तत्पर्युपासना च:-तए णं ताउ सुभद्दापमुहाउ देवीओ अंतो अंतेउरंसि ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ, सव्वालंकारविभूसिआउ बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइआहिं, वामणिआहिं, वडहिआहिं, बब्बरिआहिं, पओसिआहिं, जोणिआहिं, पल्हविआहिं, इसिगणियाहिं, वासगणियाहिं, ल्हासिआहिं, लओसिआहिं, सिंहलीहिं, दमिलीहिं, आरबीहिं, पुलंदीहिं, पक्कणीहिं, बहलीहिं, मुरुंडीहिं, सबरीहिं, पारसीहिं, णाणादेसविदेसपरिपिंडिआहिं, इंगिअ-चिंतिअ-पत्थिअविजाणिआहिं, सदेसणेवत्थगहिअवेसाहिं, चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खित्ताओ अंतेउराओ णिगच्छन्ति, अंतेउराओ णिगच्छित्ता जेणेव पाडिएक्कजाणाइं, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पाडिएक्कपाडिएक्काइं, जत्ताभिमुहाइं, जुत्ताइं, जाणाइं दुरुहंति, दुरुहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छन्ति, णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामन्ते छत्तादिए तित्थयरातिसेसे पासइ, पासित्ता पाडिएक्कपाडिएक्काइं जाणाइं ठवंति, ठवित्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहन्ति, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहा-सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, मणसो एगत्तभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, वंदंति, णमंसंति. णमंसित्ता कूणिअं रायं पुरओ काउं ठिआओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति-औपपातिकसूत्र (क० आ० २१८-२२२)-अनु०

१. श्रीटीकाकारे राजनिर्गम, अन्त:पुरनिर्गम वगेरेने औपपातिक सूत्रथी जाणवानुं लख्युं छे, औपपातिक सूत्रमां वर्णवेलो राजनिर्गम, अन्त:पुर-निर्गम वगेरे चंपानगरीने उद्देशी राजा कूणिक संबंधे उल्लेखायो छे, परंतु टीकाकारना लेखानुसार ते ज राजनिर्गम अहीं पण लागु पडी शकतो होवाथी नीचे प्रमाणे औपपातिक सूत्रथी लई तेने अहीं आप्यो छे,-हवे आ पाठमां चंपानगरीने स्थाने राजगृह नगर, पूर्णभद्रचैत्यने स्थाने गुणसिलक-चैत्य, भंभसारपुत्र कूणिक राजाने स्थाने श्रेणिकराजा अने सुभद्रा प्रमुख देवीओने स्थाने चिल्लणा प्रमुख देवीओ समजवी. जननिर्गम अने उपासना:-भोग कुळना (राजाओ), भोगकुळना पुत्रो, (ए प्रमाणे सर्वत्र द्विप्रत्युच्चार-बेवार उच्चार-वडे कहेवुं) राजन्यो, राजन्यपुत्रो, क्षत्रियो, क्षत्रियपुत्रो, ब्राह्मणो, भटो, योधाओ, धर्मशिक्षको, मल्लकीओ, लेच्छकीओ, लेच्छकिपुत्रो अने बीजा घणा राजाओ, ईश्वरो-युवराजो, तलवरो-राजस्थानीय पुरुषो, माडंलिको-मंडपाधिपो, कौटुंबिको, इभ्यो-जेने त्यां हाथी ढंकाय एटलुं द्रव्य होय ते, श्रेष्ठिओ, सेनापतिओ, सार्थवाह वगेरे (भगवंतनी पासे) जाय छे, तेओमांना केटलाक वांदवा माटे, केटलाक पूजवा माटे, ए प्रमाणे केटलाक, सत्कार करवा माटे, सन्मान करवा माटे, दर्शन करवा माटे, कुतूहल जोवा माटे जाय छे, केटलाक अर्थना विनिश्चय माटे, 'अश्रुतने-नहीं सांभळेलाने-सांभळशुं' ते माटे, सांभळेलुं शंकारहित करीशुं' ए माटे जाय छे, केटलाक 'अर्थो वडे, हेतुओ वडे, कारणोने, व्याकरणोने-प्रश्नोने-पूछीशुं' ए माटे, केटलाक 'सर्वेनी समक्ष गृह त्यजी, मुंड थइ अनगार थइशुं' ए माटे, केटलाक 'पांच अणुव्रत अने सात शिक्षाव्रत, एम बार प्रकारनो श्रावकधर्म लइ शुं' ए माटे, केटलाक भगवद्भक्तिना रागथी, केटलाक 'आपणो आचार छे' ए माटे ते बधा स्नान करी, बलिकर्म करी, मंगल अने कौतुकरूप प्रायश्चित्त करी, माथामां अने कंठमां मालाने धारी, मणि अने सुवर्णने पहेरी, लटकता हृष्ट हार, अर्धहार, त्रणसरा हार अने झुमणाने धारण करी, कटिसूत्र-कंदोरा-वडे सारां आभरणनी शोभावाळां प्रवर वस्त्रोने पहेरी, चंदनथी गात्र-शरीर-ने अवलिप्त करी, केटलाक घोडा उपर चडी, हाथी उपर चडी, रथमां बेसी, शिबिकामां बेसी, सुखपालमां बेसी अने केटलाक पुरुषसमूहथी परिक्षिप्त थइ पादचार वडे चालीने मोटा उत्कृष्ट सिंहनाद वडे जाणे क्षुब्ध महासमुद्रना शब्दसमान शब्दोथी नगरने पूर्ण करता न होय तेम चंपानगरीनी वचोवच निकळे छे, निकळी जे तरफ पूर्णभद्र चैत्य छे, ते तरफ जाय छे, ते तरफ जइ श्रमण भगवंत महावीरथी बहु छेटे नहीं,-बहु पासे नहीं-साधारण निकट रहेल-छत्रादि तीर्थंकरातिशयने जुए छे, जोइ पोतानां यान, वाहनो स्थापे छे, स्थापी-उभा राखी ते यान, वाहनोथी उतरी ज्यां श्रमण भगवंत महावीर छे, ते तरफ जइ श्रमण भगवंत महावीरने त्रण प्रदक्षिणा दइ वांदे छे, नमे छे, वांदी, नमी अत्यासन्न नहीं, अतिदूर नहीं-साधारण रीतिए रही शुश्रूषा करता, नमता, विनयवडे अभिमुख थइ प्रांजलिपुट जोडी पर्युपासे छे-औपपातिक सूत्र (क० आ० पृ-१६८-१७०)-अनु०

२. राजनिर्गम अने पर्युपासना. त्यार बाद प्रवृत्तिव्यापृत एटले प्रवृत्तिने जणाववाना व्यापारवाळो अर्थात् वधामणी देनार आ कथा (महावीरस्वामी आव्या ए वात) वडे लब्धार्थ थइ-समाचार जाणी हृष्ट तुष्ट अने आनंदित हृदयवाळो थयो सतो स्नान करी (यावत्) भार वडे हलकां अने मोटां मूल्यवाळां आभरणोथी शरीरने अलंकृत करी पोताना घरथी नीकळी चंपानगरीनी वचोवच थइ ज्यां बाह्य उपस्थान शाला (बेसवानी सभा) छे, त्यां आवी (बधी नीचेनी वात कहेवी) अहीं महावीर स्वामी पधार्या छे, ए वधामणी आपी बेसे छे, ते वारे ते प्रवृत्तिव्यापृत ने साडा बारलाख (नाणानुं) प्रीतिदान आपे छे. आपी, सत्कार करी, सन्मान आपी विसर्जित करे छे, त्यार बाद भंभसारपुत्र कूणिक राजा बलपति-सेनापति-ने आमंत्री एम बोल्या:—देवानुप्रिय ! अभिषेक हस्तिरत्नने शीघ्र सुसज्जित करो, चतुरंगिणी सेनाने घोडा, हाथी, रथ अने प्रवर योधाओथी परिकलित करो, सुभद्रा प्रमुख देवीओ माटे बहारनी उपस्थान शालामां प्रत्येक प्रत्येक, यात्राभिमुख जोडेलां यानो तैयार करावो अने चंपानगरीने बहार, अंदर आसिक्त, सिक्त, शुचित्र, अपंक-शुद्ध, शेरीओ, अने आपणवीथिकावाळी तथा मंचातिमंचकलित-मांचडा उपर मांचडा सहित, नानाविध रंगवाळा उंचा ध्वजवाळी,

पताका उपर पताका मंडित अने छाणथी लिप्त तथा सेटिकादिथी संमृष्ट, चंदरवाथी महित, गोशीर्ष अने सरस रक्त चंदनथी लिप्त (यावत्) गंधवर्तिका-भूत करो, करावो; करी, करावी आ मारी आज्ञा पाछी आपो, (त्यार बाद) हुं श्रमण भगवंत महावीरने वांदवा जईश. त्यार बाद ए प्रकारे कूणिक राजा वडे आज्ञप्त थयो सतो ते बलव्यापृत हृष्ट, तुष्ट अने आनंदित चित्तवाळो थई मस्तकमां करतल परिगृहीत शिरसावर्त अंजलि करी एम बोल्योः—हे स्वामी!, अने तेनी आज्ञानुं वचन विनयवडे प्रतिश्रव्युं; प्रतिश्रवी तेणे हस्तिव्यापृतने आमंत्री एम कह्युं —हे देवानुप्रिय! भंभसारपुत्र कूणिक राजाना अभिषेक हस्तिने तैयार करो अने घोडा, हाथी, रथ तथा प्रवर योधाओथी कलित चतुरंगिणी सेनाने करो, ए प्रमाणे तैयार करी मारी आज्ञा प्रत्यर्पो. त्यार बाद ते हस्तिव्यापृत बलव्यापृतनुं ए प्रमाणे कथन सांभळी विनयवडे आज्ञा—वचन—प्रतिश्रवे छे, प्रतिश्रवी छेकाचार्यना सुनिपुण उपदेश अने मतिविकल्पनाना विकल्पो वडे सुसज्ज, धार्मिक, संनद्ध, बद्ध, कवचित—बख्तरवाळा, उत्पीडित—दृढबद्ध, कच्छवाळा, वक्षनुं भूषण, ग्रैवेयक अने गळामां बद्ध वर भूषणोथी विराजित, अधिक तेज युक्त, सुंदर कर्णपूरथी विराजमान, उच्चूल झुमणामां आवेला मदलुब्ध भ्रमरो वडे अंधकार करनार, विचित्र परिच्छेदवाळा, प्रच्छद—उपरना वस्त्रवाळा, शस्त्रो अने आवरणो (ढालादि) थी भृत, युद्धसज्ज, सध्वज, सघंट, पताकासहित, पांच शिखरवडे परिमंडित, अभिराम, बन्ने बाजु उत्सारित (लटकता) घंटयुगलवाळा, विद्युत्पिनद्ध श्याममेघनी पेठे, उत्पात पर्वतनी पेठे चालता, मत्त, गुलगुलाट करता, मन अने पवनना वेगने जितनार भीम, संग्रामने योग्य अभिषेक हस्तिराजने प्रतिकल्पे छे, प्रतिकल्पी चतुरंगिणी सेनाने घोडा, हाथी, रथ अने प्रवर योधाओथी परिकल्पित करे छे, ए प्रमाणे तैयार करी ज्यां बलव्यापृत छे त्यां आवी तेणे आपेली आज्ञा पाछी आपे छे—जेम आपे कह्युं हतुं तेम कर्युं तेम जणावे छे त्यार बाद ते बलव्यापृते यानशालिकने बोलावी एम कह्युं —हे देवानुप्रिय! सुभद्रा प्रमुख देवीओ माटे बहारनी उपस्थान शालामां प्रत्येक प्रत्येक—एक माटे एक—एम यात्राभिमुख जोडेलां यानो तैयार करी उपस्थापित करो अने तेम करी मारी आज्ञा प्रत्यर्पो त्यार बाद ते यानशालिक बलव्यापृतना ए अर्थने आज्ञाए विनयपूर्वक प्रतिश्रवे छे, प्रतिश्रवी ज्यां यानशाला छे, त्यां आवी यानोने प्रत्युत्क्षेपे छे—नजरे जुए छे, नजरे जोइ साफ करे छे, साफ करी, सर्वने एकठा करे छे, एकठा करी यानोने बहार लावी ते उपरना दूष्यो—वस्त्रो—दूर करी यानो समलंकरी—शोभावी, वर भांडकमंडित—तदुचित भांडथी मंडित—करी ज्यां वाहनशाला छे, त्यां आवे छे, त्यां आवी वाहनोने—बळद वगेरेने नजरे जोइ, साफ करी बहार लावी, उत्तेजित करी, उपरनां वस्त्रो दूर करी जोडे छे, जोडी प्रतोत्रयष्टि (परोणो) अने प्रतोत्रयष्टि-धरने एक साथे नियोजे छे पछी तेने वाट—मार्ग—उपर लावी ज्यां बलव्यापृत छे त्यां आवी तेनी आज्ञा पाछी आपी त्यार बाद बलव्यापृत नगरगुप्तिक—कोटवाळ—ने बोलावी एम बोल्यो.—हे देवानुप्रिय! चंपानगरीने बहार अने अंदर आसिक्त यावत्—पूर्वोक्त कूणिकनी आज्ञा प्रमाणे करावो, करावी मारी आज्ञा पाछी आपो त्यार बाद ते कोटवाळ बलव्यापृतनो ए अर्थ आज्ञाए विनयपूर्वक प्रतिश्रवी चंपानगरीने बहार अने अंदर आसिक्त-(यावत्) करावी ज्यां बलव्यापृत छे त्यां आवी ते कोटवाळे तेनो आज्ञा पाछी आपी त्यार बाद ते बलव्यापृत भंभसारपुत्र कूणिक राजाना सज्ज थयेल अभिषेक हस्तिने, घोडा, हस्ती, रथ अने प्रवर योधाओथी परिकलित चतुरंगिणी सेनाने, सुभद्रा प्रमुख देवीओ माटे उपस्थित एक एक यानने, अने अंदर अने बहार गंधवर्तिकाभूत करेली चंपानगरीने जुए छे, जोइ हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्तयुक्त, प्रीतमन, अने उल्लसित चित्त थइ ज्यां भंभसारपुत्र कूणिक राजा छे, त्यां आवी अंजलि करी एम बोल्यो—हे देवानुप्रिय! आपनुं अभिषेक हस्तिरत्न तैयार छे, घोडा, हाथी, रथ अने प्रवर योधाओथी कलित चतुरंगिणी सेना सन्नद्ध छे, सुभद्रा प्रमुख देवीओ माटे एक, एक, यात्राभिमुख जोडेल यानो उपस्थापित छे अने चंपानगरी अंदर अने बहार आसिक्त (यावत्) गंधवर्तिभूत करेली छे, माटे हे देवानुप्रिय! हवे तमे श्रमण भगवंत महावीरने वांदवा माटे नीकळो. त्यार बाद ते भंभसार पुत्र कूणिक राजा बलव्यापृतनो ए अर्थ सांभळी, निशमी हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्तवाळो थई ज्यां अट्टनशाला (व्यायाम गृह) छे त्यां आवे छे, आवी अट्टनशालामां अनुप्रवेशी अनेक व्यायाम योग्य वल्गन (कूदवुं) व्यामर्दन, मल्लयुद्धोना करवा वडे श्रांत, तांत अने परिश्रांत थयो सतो प्रीणक, दर्पक, मादक, बृंहणीय—मांसवर्धक, सर्वेन्द्रिय अने गात्रने प्रल्हाद देनारा शतपाक अने सहस्रपाक सुगंध तैलादिवडे अभ्यंगित थयो, अभ्यंगित थई, जेओना हाथना अने पगनां तळीआओ तैलचर्ममां प्रतिपूर्ण सुकुमाल अने कोमल छे, एवा एक दक्ष, प्राप्तार्थ, कुशल, मेधावि. निपुण शिल्पोपगत अने अभ्यंगन, परिमर्दन, उद्वलन करणमां प्राप्तगुण पुरुषो वडे अस्थि सुख माटे, मांस सुख माटे, चामडीना सुख माटे, रोमना सुख माटे चार प्रकारनी संवाहना—मर्दन—वडे संवाहित थयो सतो, परिश्रम अने खेद रहित थई, अट्टनशालाथी नीकळ्यो, मज्जनघर तरफ आवी, मोतीना जाळीयावाळा, अभिराम, विचित्र मणिरत्नथी बद्ध कुट्टिम तळवाळा, रमणीय स्नान मंडपमां, विविध मणिरत्ननी कारीगरीथी विचित्र स्नानपीठमां सुखे बेठो बेसी वारंवार शुद्धोदक, गंधोदक, पुष्पोदक अने शुभोदक वडे कल्याणरूप प्रवर मज्जन विधि वडे स्नान कर्युं, त्यां बहु प्रकारना सेंकडो कौतुको वडे कल्याणरूप प्रवर स्नाननी समाप्ति थया पछी पातळी सुकुमाल गंधकाषायी शरीर लुंछवाना रुमाल—वडे अंगने साफ कर्युं सरस सुरभि गोशीर्ष चंदन वडे गात्रने अनुलेप्यां, अखंड, सुमहर्घ वस्त्ररत्न सुसंवर्युं—पहेर्युं, पवित्र माला, वर्णक अने विलेपन कर्यां, मणि अने सुवर्णने पहेर्यां, हार, अर्धहार, त्रणसरो हार, झुमणां अने प्रलंबमान कटिसूत्र वडे सारी शोभा करी, ग्रैवेयक-डोकनुं भूषण पहेर्युं, अंगुलीयक—वींटीओथी अने सुंदर अंगद वडे सारां आभरणो कर्यां, उत्तम कटक अने त्रुटित—बहेरखां—वडे भुजो स्तब्ध कर्या, अधिक रूप अने सश्रीक थया, मुद्रिकाओथी अंगुलीओ पीळी करी, कुंडलोथी आनन—मुख—उद्योतित कर्युं, मस्तकने मुकुटथी दीप्त कर्युं, हारोथी आच्छादित सारुं वक्ष स्थल कर्युं, प्रलंबमान प्रालंबवाळा पटनुं सारुं उत्तरीय कर्युं, नाना मणि कनक, रत्न वडे विमल, महार्ह—मोटाने योग्य, निपुण पुरुषे बनावेलुं, दीपतुं करेलुं, सुश्लिष्ट, विशिष्ट अने लष्ट वीर वलय पहेर्युं वधारे शुं? जाणे कल्पवृक्ष ज अलंकृत विभूषित न होय, तेम ते नरपति, धराता कोरंटक फूलनी माळावाळा छत्रसहित चार चामर वडे वीजित अंगवाळो, तेना दर्शनथी मंगल अने जय शब्द थये सते स्नानगृहथी नीकळे छे नीकळी अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, कोटवाळ, माडंबिक, कौटुंबिक, इभ्य, शेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत अने संधिपालो साथे संपरिवृत थयो जाणे धोळो महामेघ न नीकळ्यो होय तेम ग्रहगणथी शोभता अने अंतरिक्षस्थ तारागणनी मध्यमां स्थित चंद्रनी पेठे प्रिय-दर्शन ते नरपति ज्यां बहारनी उपस्थानशाला छे त्यां आवी अंजन गिरिना शिखर जेवा हस्ती उपर चड्यो, त्यार बाद अभिषेक हस्तिरत्न उपर चडता भंभसारपुत्र कूणिक राजानी पहेलां आगल क्रम पूर्वक आठ आठ मंगल संप्रस्थित थयां, १. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नंदावर्त, ४ वर्धमानक—शरावपुट, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७ मत्स्य, ८. दर्पण त्यार बाद पूर्ण कलश अने भृंगारथी दिव्य, छत्र पताकावाळी, चामर सहित, देखवामां आनंद देनारी, आलोक दर्शनीय, वातथी चालती, उंची, गगनतलने अनुलिखती विजय वैजयंती धजा क्रमपूर्वक संप्रस्थित थई. त्यार बाद वैडुर्य रत्नथी शोभतुं, विमल दंडवाळुं, प्रलंब कोरंट पुष्पनी माळाओथी उपशोभित, चंद्र मंडल तुल्य श्वेत, उंचुं, विमल आतपत्र—छत्र, वर मणि रत्नना पादपीठवाळुं, पादुका युगलथी समायुक्त, बहु किंकर अने कर्मकर पुरुष, तथा पदाति—प्याळा पुरुषो—थी परिक्षिप्त एवुं प्रवर सिंहासन आगळ यथानुपूर्वीए संप्रस्थित थयुं. त्यार बाद घणा यष्टिग्राहो—लाकडीने ग्रहण करनारा, कुंतग्राहो, चापग्राहो, चामरग्राहो, पाशग्राहो, पुस्तकग्राहो, फलकग्राहो, पीठग्राहो, वीणाग्राहो, कुतुपग्राहो, हडप्पग्राहो—हडफा—पानदानी—ना ग्रहण करनारा, आगळ क्रमपूर्वक संप्रस्थित थया. त्यार बाद घणा दंडवाळा, मुंडि, शिखावाळा, जटावाळा, पिच्छ-पींछा-

वाळा, हासकरो–हसावनारा, डमरकरो, चाटुकारो, कांदर्पिको, उपहास करनारा, कौकुच्यो–भांडो, क्रीडा करनारा, बगाडता, गाता, हसता, नाचता, बोलता, संभळावता, रक्षा करता, आलोक–दर्शन–करता, जय जय शब्दने प्रयोजता, आगळ क्रमपूर्वक संप्रस्थित थया. त्यार बाद जात्य–उत्तम, वेग–धारक वर्ष(उमर)वाळा–जुवान, हरिमेला–वनस्पति विशेष–ना डोडा अने मालति समान विकसित नेत्रवाळा–धोळी आंखवाळा, चंचु समान वक्रपणे पादने उंचो करनारा तथा ललित, पुलिन, चल, चपल अने चचल गतिवाळा, लंघन–उल्लंघवुं–वल्गन, धावन, धोरण–गतिचातुर्य, त्रिपदीकरण–त्रणपगे उभा रहेवुं, जयवती अने शिक्षित गतिवाळा, दोलायमान, रम्य गलस्थित वर भूषणवाळा, मुखना घरेणां, अवचूल–लटकता गुच्छा अने दर्पणाकार पदार्थोवाळा, पल्हाणथी अने चामर दंडथी परिमंडित कटीवाळा, तरुण अने उत्तम किंकरोए परिगृहीत एकसोने आठ घोडाओ यथानुपूर्व्या आगळ संप्रस्थित थया. त्यार बाद थोडा दांत–पळोटेला, ईषन्मत्त, थोडा उंचा, पाछळना भागमां थोडा विशाळ धोळा दांतवाळा, सुवर्णनी कोशी–खोळां–युक्त दांतवाळा, कांचन, मणि अने रत्नथी भूषित, चडेला उत्तम पुरुषोथी संप्रयुक्त एकसो ने आठ हाथीओ आगळ क्रमपूर्वक संप्रस्थित थया. त्यार बाद सछत्र, सध्वज, सघंट–टोकरासहित, पताकासहित, वर तोरण सहित, नंदिघोष–वाद्यघोष–सहित, घुघरीओना समूहथी परिक्षिप्त, हिमवंत पर्वतोत्पन्न विचित्र तृण अने कनक सहित निर्युक्त–जोडेलां लाकडावाळा, श्याम लोहथी सुकृत नेमि यंत्रवाळा, सुश्लिष्ट, वृत्तमंडलने धरनारा, उत्तम वर अश्वोथी संप्रयुक्त, कुशल नर अने छेक सारथिओथी संप्रगृहीत, बत्रीश तूणथी परिमंडित, कंकट अने शेखर सहित, चाप, शर, प्रहरणावरण (ढालादि) थी भृत अने युद्ध सज्ज एवा एकसोने आठ रथ आगळ यथानुपूर्वीए संप्रस्थित थया. त्यार बाद असि–तरवार, शक्ति, कुंत, तोमर, शूल, लकुट–लाकडी, भिंडिपाल–शस्त्रविशेष, अने धनुषने हाथमां धरनारुं सज्ज पदाति सैन्य आगळ क्रमपूर्वक संप्रस्थित थयुं. त्यारे ते हारथी आच्छादित सुकृत वक्षस्थळवाळो, कुंडलोथी मुखने शोभावनार, मुकुटथी मस्तकने दीपावनार कूणिक राजा, नरसिंह, नरपति, नरेंद्र, नरवृषभ, मनुजना राजाओमां वृषभकल्प–उत्तम, अधिक राजतेजलक्ष्मी वडे दीपतो, हस्तिना वर स्कंध उपर चडेलो, कोरंटक पुष्पना माळावाळा धराता छत्र सहित, उद्धूवन करता श्वेत चामरो वडे वैश्रमण–कुबेर–नी पेठे हतो. ते राजाए, इन्द्र समान ऋद्धि वडे, विस्तीर्ण कीर्ति वडे, घोडा, हाथी, रथ अने प्रवर योधाओथी कलित चतुरंगिणी सेना वडे समनुगम्यमान मार्गित थइ जे तरफ पूर्णभद्र चैत्य छे, ते तरफ जवा संकल्प कर्यो. त्यारे ते भंभसारपुत्र कूणिक राजानी आगळ मोटा घोडाओ, अश्वने बन्ने बाजुए हाथीओ: हस्तिधरो अने पाछळ रथनो समूह हतो. त्यार बाद ते अभ्युद्गतभृंगार–जेने माटे पाणीनी झारी लीधेली छे, प्रगृहीततालवृ... जे प्रत्ये पंखो धरेलो छे, उंचा करेल श्वेत छत्रवाळो, बाल व्यजनथी वीजातो, ते भंभसारपुत्र कूणिक राजा सर्व ऋद्धीए, सर्व द्युति वडे, सर्व बल वडे, सर्व समुदाय वडे, सर्वादरपूर्वक, सर्व विभूति वडे, सर्व विभूषा वडे, सर्व संभ्रम–भक्तिभाव–वडे, सर्व पुष्प, गंध, माल्य अने अलंकार वडे, सर्व वाजीत्रशब्दना संनिनाद वडे, मोटी ऋद्धीए, मोटी द्युतिए, मोटा बल वडे, मोटा समुदाय वडे, मोटा उत्तम वादित्रना यमकसमक–एकसाथ–प्रवादित वडे, शंख, पणव, पटह, भेरि, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग, दुंदुभिना निर्घोषणादिक शब्द वडे चंपानगरीनी वच्चोवच्च नीकळ्यो, त्यां निकळता तेने घणा अर्थार्थि, कामार्थि, भोगार्थि, लाभार्थि, किल्बिषको, कारोटीआओ, करथी पीडित थयेला लोको, शंखवाळा, चक्रवाळा, खेडुतो, मुखमंगलिया, वर्धमान–स्कंधे बेठेला पुरुषो, पुष्यमाण भाटो, खंडिक गण छात्रना समूहो ते ते इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोगम्य, मनोभिराम, हृदयगमनीय वाणी वडे, सैंकडो जय विजय मंगल वडे अविरत अभिनंदता, अभिस्तुवता एम बोल्या –नंद–आनंद–देनार ! जय पाम, जय पाम; हे भद्र ! जय पाम, जय पाम; तने भद्र थाओ, तुं नहीं जीताएलाने जीत, जीताएलानुं पालन कर, जीताएलानी मध्यमां रहे, जेम देवोने इन्द्र, असुरोने चमर, नागोने धरण, ताराओने चंद्र, मनुष्योने भरत. तेम बहु वर्षो, बहु शत वर्षो, बहु हजार वर्षो, बहु लक्ष वर्षो सुधी निर्दोष स्वमार्गवाळो थइ परमायु भोगव, अने इष्ट जनथी परिवृत थइ चंपानगरीनुं, तेम ज बीजा पण बहु गाम, आकर–खाण, नगर–कर विनानुं, खेटक–धूळना गढवाळुं, कर्बट–कुनगर, मडंब–जेनी पासे गाम न होय ते, द्रोणमुख–जल अने स्थळ मार्ग युक्त, पट्टन, आश्रम, संवाह–पर्वतनी नीचे दुर्ग स्थानमां रहेलुं स्थान, अने संनिवेशो–गायना वाडा वगेरे–नुं आधिपत्य, पौरपतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वरसेनापतित्व करतो, पालतो, मोटा आहत नाट्य, गीत, वादित्र, वीणा, ताल, तुडिअ, घन, मृदंग, अने पटु पटहना प्रवादित शब्द वडे विपुल भोग्य भोगोने भोगवतो विहर, एम करी तेओ जय जय शब्दने प्रयोजे छे, त्यार बाद भंभसारपुत्र कूणिक राजा हजारो नयनमाला वडे जोवातो २, हजारो हृदयमाला वडे अभिनंदातो २, हजारो सुंदरमाला वडे स्पर्शातो २, हजारो वचनमाला वडे अभिस्तवातो २, कांति, अने दिव्य सौभाग्य वडे जोवातो २, बहु हजार नर नारीओनी हजारो अंजलिमालाओने जमणा हाथे प्रतीच्छतो २, सुंदर सुंदर घोष वडे प्रतिपूछतो २, हजारो भवन श्रेणीओने उलंघतो चंपानगरीनी वच्चोवच्च नीकळी, ज्यां पूर्णभद्र चैत्य छे, त्यां आवी श्रमण भगवंत महावीरना अदूरनिकट स्थित छत्रादि तीर्थंकरातिशय जोइ अभिषेक हस्तिरत्नथी उतरी, खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानह, बालव्यजनः ए पांच राजचिह्नने दूर करी ज्यां श्रमण भगवंत महावीर स्वामी छे, त्यां आवी श्रमण भगवंत महावीरने पांच प्रकारना अभिगमे अभिगमे छे, अर्थात्–१. सचित्त द्रव्योने त्यजी, २. अचित्त द्रव्योने राखी, ३. एक शाटिक उत्तरासंग करी, ४. भगवंतने जोइने ज हाथजोडी, अने ५ मनने एकाग्र करी; श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा करी कायिक, वाचिक अने मानसिक पर्युपासना वडे पर्युपासे छे. कायिक पर्युपासना वडे पर्युपासतो–संकुचित हस्तपादासकरी शुश्रूषा करतो, नमतो, सामो अंजलिपुट करी विनय वडे पर्युपासे छे वाचिक पर्युपासना वडे पर्युपासतो–भगवंत जे जे कहे छे, ते हे भगवन् ! ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते प्रमाणे छे, हे भगवन् ! अवितथ–सत्य छे, हे भगवन् ! असंदिग्ध छे, हे भगवन् ! इच्छित छे, हे भगवन् ! प्रतीच्छित छे, हे भगवन् ! इच्छित, प्रतीच्छित छे ए प्रमाणे करी अप्रतिकूलपणे पर्युपासे छे. मानसिक पर्युपासना वडे पर्युपासतो–मोटा संवेगने उत्पन्न करी, तीव्र धर्मानुरागथी रक्त बनी पर्युपासे छे–औपपातिकसूत्र (क० आ० पृ–१७०–२१८)–अनु०

१. अंतःपुरनिर्गम अने पर्युपासना–त्यार बाद ते सुभद्रा प्रमुख देवीओ अंतःपुरमां स्नान करी यावत् मंगल अने कौतुकादि करी सर्व अलंकारथी विभूषित थई घणी कुब्ज–वांकी जांघवाळी–दासीओ वडे, चिलात देशमां उत्पन्न थएली दासीओ वडे, वामन (ठींचकी) दासीओ वडे, मोटा पेटवाळी दासीओ वडे, बर्बर देशनी, पओस देशनी, योनिक देशनी, प्रल्हविक देशनी, ऋषिगणिक देशनी, वर्षगणिक के वासगणिक देशनी, ल्हासिक देशनी, लकोस देशनी, सिंहल देशनी, द्रमिल देशनी, आरब देशनी, पुल्दि देशनी, पक्कण देशनी, बहल देशनी, मुरुंड देशनी, शबर देशनी अने पारस देशनी; ए प्रमाणे अनेक देश तथा विदेशनी भेगी थएली दासीओ वडे, वळी इंगित, चिंतित अने प्रार्थितने जाणनारी तथा पोत पोताना देशना वेषने पहेरनार अनेक दासिओना समूहथी तथा अंतःपुरमां रहेनार वर्षधर, कंचुकि अने महत्तरकना समूहथी व्याप्त थई अंतःपुरथी नीकळी ज्यां एक एक जोडेलां यात्राभिमुख यानो छे, त्यां आवी, तेमां चडी पोताना परिवारथी संपरिवृत थइ चंपानगरीनी वचोवच नीकळी, ज्यां पूर्णभद्र चैत्य छे, त्यां आवी श्रमण भगवंत महावीरनी अदूरनिकट तीर्थंकरातिशय छत्रादिने जोइ यानोने उभां रखावी, यानोथी उतरी तेओ घणी कुब्जादि दासीओ वडे परिक्षिप्त थइ ज्यां, श्रमण भगवंत महावीर छे त्यां आवी, १. सचित्त द्रव्योने त्यजी, २. अचित्त द्रव्योने राखी, ३. गात्रयष्टि–शरीर–ने विनयथी अवनत–नम्र–करी, ४. भगवंतने जोइ हाथ जोडी ५. मनने एकाग्र करी श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा दइ वांदे छे, नमे छे; नमी कूणिक राजाने आगळ करी सपरिवार ते सुभद्रादि देवीओ विनय वडे अभिमुख थइ हाथजोडी उभी उभी ज श्रमण भगवंत महावीरने पर्युपासे छे.–औपपातिक सूत्र (क० आ० पृ–२१८–२२२)–अनु०

१२. *'धम्मो कहिओ'*त्ति धर्मकथेह भगवतो वाच्या, सा चैवम्:–*"तए णं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो, चिल्लणापमुहाण य देवीणं, तीसे य महइमहालियाए परिसाए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए धम्मं परिकहेइ, तं जहा:–अत्थि लोए, अत्थि अलोए, एवं जीवा, अजीवा, बंधे, मुक्खे"* इत्यादि. तथा, *"जेह नरगा गम्मती जे णेरया जा य वेयणा णरए, सारीर-माणसाइं दुक्खाइं तिरिक्खजोणीए."* इत्यादि.

१२. ['धम्मो कहिओ'त्ति] अहीं भगवतनी धर्मकथा कहेवी. ते आ प्रमाणे छे: त्यारे श्रमण भगवंत महावीर श्रेणिक राजाने, चिल्लणा प्रमुख देवीओने अने ते मोटामांमोटी सभाने सर्वभाषानुगामिनी वाणीवडे धर्म कहे छे. ते आ प्रमाणे: लोक छे, अलोक छे, ए प्रमाणे जीवो, अजीवो, बंध, मोक्ष वगेरे. तथा "जेम नरकथी जे नैरयिको जाय छे, अने जे वेदना निरयमां छे, तथा तिर्यंचयोनिमां शारीर अने मानस दुःखो छे" वगेरे. धर्मकथा.

१३. *'पडिगया परिस'*त्ति लोक: स्वस्थानं गत:. प्रतिगमश्च तस्या एवं वाच्य: *"तए णं सा महइमहालिया महच्चपरिसा"* महातिमहती, 'आल' प्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वाद् अतिशयातिशयगुर्वी मह:पर्षत् प्रशस्तताप्रधानपर्षत्, महार्चानां वा सत्पूजानाम्. महार्चा वा पर्षद् महार्चपर्षदिति. *"समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं पकरेइ, पकरित्ता वंदइ, नमसइ; वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी:–सुयक्खाए णं भंते! निग्गंथे पावयणे, णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा, माहणे वा एरिसं धम्ममाइक्खित्तए; एवं वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ, तामेव दिसिं पडिगय"*त्ति.

१३. ['पडिगया परिस'त्ति] लोको पोताने ठेकाणे गया. ते लोकोना पाछा जवानुं वर्णन आ प्रमाणे कहेवुं "ते मोटी अर्चा (पूजा) वाळी, प्रशस्तता प्रधान मोटामांमोटी सभा" श्रमण भगवंत महावीरनी पासे धर्मनुं श्रवण करी, निशमन करी हर्षवाळी, तोषवाळी थइ श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा करे छे, प्रदक्षिणा करी वंदे छे, नमे छे; वांदीने, नमीने एम बोली हे भगवन्! तमे निर्ग्रन्थनुं प्रवचन सारुं कह्युं. आवा प्रकारना धर्मने कहेवामाटे बीजो कोइ श्रमण वा ब्राह्मण (समर्थ) नथी एम कही जे दिशा तरफथी ते सभा प्रादुर्भवेली हती, ते दिशा तरफ पाछी चाली गइ. सभाविसर्जन.

तेणं कालेणं, तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमसगुत्ते णं, सत्तुस्सेहे, समचउरंससंठाणसंठिए, वज्जरिसहनारायसंघयणे, कणयपुलयनिहसपम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, संखित्तविउलतेयलेस्से, चोद्दसपुव्वी, चउनाणोवगए, सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू, अहोसिरे, झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ.

ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरनी पासे (बहु दूर नहीं, बहु निकट नहीं) ऊर्ध्वजानु उभडक रहेला, अध शिर–नीचे नमेल मुखवाळा अने ध्यानरूप कोष्ठमां प्रविष्ट तेमना (श्रमण भगवंत महावीरना) ज्येष्ठ–मोटा–शिष्य इन्द्रभूति नामना अनगार–साधु संयमवडे अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे रहे छे. जेओ गौतमगोत्रवाळा, सात हाथ उंचा, समचोरस संस्थानवाळा, वज्रऋषभ नाराच संघयणी, सोनाना कटकाना रेखा समान अने पद्मकेसरो समान धवल वर्णवाळा, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर, घोरगुणवाळा, घोरतपवाळा, घोरब्रह्मचर्यमां रहेवाना स्वभाववाळा, शरीरना संस्कारोने त्यजनार, शरीरमां रहेनी होवाथी संक्षिप्त अने दूरगामि होवाथी विपुल एवी तेजोलेश्यावाळा, चौद पूर्वना ज्ञाता, चार ज्ञानने प्राप्त अने सर्वाक्षरसंनिपाती छे.

१४. *'तेणं'* इत्यादि. तेन कालेन, तेन समयेन श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'जेट्ठे'त्ति प्रथम:, *'अंतेवासि'*त्ति शिष्य:, अनेन पदद्वयेन तस्य सकलसंघनायकत्वमाह. 'इंदभूइ'त्ति इन्द्रभूतिरिति मातापितृकृतनामधेय:, *'नाम'*त्ति विभक्तिविपरिणामाद् नाम्नेत्यर्थ:. अन्तेवासी किल विवक्षया श्रावकोऽपि स्यादित्यत आह–*'अणगारे'*त्ति नास्याऽगारं विद्यते इत्यनगार:. अयं चावर्गीतगोत्रोऽपि

१. प्र०छाया:–तदा श्रमणो भगवान् महावीर: श्रेणिकस्य राज्ञ: चिल्लणाप्रमुखानां च देवीनाम्, तस्याश्च महातिमहत्या: पर्षद: सर्वभाषानुगामिन्या सरस्वत्या धर्मं परिकथयति, तद्यथा–अस्ति लोक:, अस्त्यलोक:, एवं जीवा:, अजीवा:, बन्ध:, मोक्ष:. २ अयं पाठ: उपासकदशाङ्गसूत्रे द्वितीयाध्ययने, प्र०छाया–यथा नारकैर्गम्यन्ते, यैर्निरयाद् या च वेदना नरके, शारीर-मानसानि दु:खानि तिर्यग्योन्याम्. ३ प्र०छाया–तदा सा महातिमहती महार्चपर्षद्. ४ प्र०छाया–श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्टतुष्टा श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं प्रकरोति, प्रकृत्य वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्थित्वा एवमवादीत्–स्वाख्यातं भगवन्! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् नास्त्यन्य: कश्चित् श्रमणो वा, ब्राह्मणो वा एतादृशं धर्ममाख्यातुम्, एवमुदित्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूता, तामेव दिशं प्रतिगतेति:–अनु०

५. मूलच्छाया:–तेन कालेन, तेन समयेन श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिर्नामाऽनगार:, गौतमसगोत्र:, सप्तोत्सेध:, समचतुरस्रसंस्थानसंस्थित:, वज्रर्षभनाराचसंहनन:, कनकपुलकनिकषपक्ष्म(पद्म)गौर:, उग्रतपा:, दीप्ततपा:, तप्ततपा:, महातपा:, उदार:, घोर:, घोरगुण:, घोरतपस्वी, घोरब्रह्मचर्यवासी, उत्क्षिप्तशरीर:, संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्य:, चतुर्दशपूर्वी, चतुर्ज्ञानोपगत:, सर्वाक्षरसन्निपाती (सर्वाक्षरसन्निवादी) श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते ऊर्ध्वजानु:, अध:शिरा:, ध्यानकोष्ठोपगत: संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति

१. आ अर्थ उपासकदशाङ्ग सूत्रमां बीजा अध्ययनमां छे:–अनु०

स्यादित्यत आहः—'*गोयमसगुत्ते णं*'ति गौतमसगोत्र इत्यर्थः. अयं च तत्कालोचितदेहमानापेक्षया न्यूनाधिकदेहोऽपि स्यादित्यत आहः- '*सत्तुस्सेहे*'त्ति सप्तहस्तोच्छ्रयः. अयं च लक्षणहीनोऽपि स्यादित्यत आहः—'*समचउरंससंठाणसंठिए*'त्ति समम्—नाभेरुपरि अधश्च सकलपुरुषलक्षणोपेतावयवतया तुल्यम्, तच्च तत् चतुरस्रं च प्रधानं समचतुरस्रम्; अथवा समाः शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाऽविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयो यस्य तत् समचतुरस्रम्, अस्रयस्त्विह चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा इति. अन्ये त्वाहुः—"समा अन्यूनाधिकाश्चतस्रोऽपि अस्रयो यत्र तत् समचतुरस्रम्, अस्रयश्च पर्यङ्कासनोपविष्टस्य जानुनोरन्तरम्, आसनस्य ललाटोपरिभागस्य चान्तरम्, दक्षिणस्कन्धस्य वामजानुनश्चान्तरम्, वामस्कन्धस्य दक्षिणजानुनश्चान्तरम्" इति. अन्ये त्वाहुः—"विस्तारोत्सेधयोः समत्वात् समचतुरस्रम्," तच्च तत् संस्थानं चाऽऽकारः समचतुरस्रसंस्थानम्; तेन संस्थितो व्यवस्थितो यः स तथा. अयं च हीनसंहननोऽपि स्यादित्यत आह—'*वज्जरिसहनारायसंघयणे*'त्ति इह संहननम् अस्थिसंचयविशेषः. वज्रादीनां लक्षणमिदम्—"*रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिअं वियाणाहि, उभओ मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि*"त्ति. तत्र वज्रं च तत् कीलिकाकीलितकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्ययुक्तत्वात्, ऋषभश्च लोहादिमयपट्टबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्यान्वितत्वाद् वज्रर्षभः, स चासौ नाराच च उभयतो मर्कटबन्धनिबद्धकाष्ठसंपुटोपमसामर्थ्योपेतत्वाद् वज्रर्षभनाराचम्, तत् संहननम्—अस्थिसंचयविशेषोऽनुत्तमसामर्थ्ययोगाद् यस्यासौ वज्रर्षभनाराचसंहननः. अन्ये तु—"कीलिकादिमत्त्वमस्थ्नामेव वर्णयन्ति. अयं च निन्द्यवर्णोऽपि स्यादित्यत आह—'*कणयपुलयनिहसपम्हगोरे*'त्ति कनकस्य सुवर्णस्य, '*पुलय*'त्ति यः पुलको लवः, तस्य यो निकषः कषपट्टके रेखालक्षणः, तथा '*पम्ह*'त्ति पद्मपक्ष्माणि केसराणि तद्वद् गौरो यः स तथा. वृद्धव्याख्या तुः—"कनकस्य न लोहादेः, यः पुलकः सारो वर्णातिशयः, तत्प्रधानो यो निकषो रेखा, तस्य यत् पक्ष्म बहलत्वम्, तद्वद् गौरो यः स तथा. अथवा कनकस्य यः पुलको द्रुतत्वे सति बिन्दुस्तस्य निकषो वर्णतः सदृशो यः स तथा, '*पम्ह*'त्ति पद्मम्, तस्य चेह प्रस्तावात् केसराणि गृह्यन्ते, ततः पद्मवद् गौरो यः स तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः. अयं च विशिष्टचरणरहितोऽपि स्यादित्यत आहः—

ज्येष्ठ-अन्तेवासी. इंद्रभूति. अणगार. गौतमसगोत्र. सप्तोत्सेध. समचतुरस्र-संस्थान.

१४. ['तेणं' इत्यादि] ते काले अने ते समये श्रमण भगवंत महावीरना ['जेट्ठे'त्ति] प्रथम ['अंतेवासि'त्ति] शिष्य (प्रथम अने शिष्य) ए बे पदवडे गौतमस्वामिनी समस्त संघनी नायकता सूचवी छे ['इंदभूइ'त्ति] के जेनुं माताए अने पिताए इंद्रभूति नाम पाड्युं हतुं अर्थात् जे ['नामं'ति] नामवडे इन्द्रभूति हता. विवक्षाथी श्रावक पण शिष्य होइ शके माटे कहे छे के. ['अणगारे'त्ति] अनगार एटले जेने घर न होय ते. कोइ अनगार निंदितगोत्रवाळा पण होय माटे कहे छे. ['गोयमसगुत्ते णं'ति] गौतमगोत्रसहित. आ प्रकारना होवा छतां ते काळने विषे उचित देहपरिमाणनी अपेक्षाए न्यूनाधिक देहपरिमाणवाळा पण होय, माटे कहे छे. ['सत्तुस्सेहे'त्ति] सात हाथनी उंचाइवाळा. आवा होवा छतां, हीन लक्षणवाळा पण होय ए शंकाना निवारणार्थ कहेछे के, ['समचउरंससंठाणसंठिए'त्ति] सम एटले नाभिनी उपर तथा नीचे पुरुषना सकळ लक्षणसहित अवयववाळुं होवाथी तुल्य, एवुं जे चतुरस्र एटले प्रधान संस्थान. तेवडे व्यवस्थित. अथवा सम (शरीरलक्षणोक्तप्रमाणाविसंवादि) अर्थात् शरीरना स्वरूपज्ञापक शास्त्रमां कहेल प्रमाण (माप) सहित चार अस्रि युक्त जे होय ते समचतुरस्र कहेवाय. अहीं अस्रि एटले चारे दिशाओना विभागोवडे उपलक्षित शरीरना अवयवो समजवा. बीजाओ तो कहे छे केः "सम एटले अन्यूनाधिक चार अस्रि युक्त होय ते समचतुरस्र कहेवाय, अस्रि एटले पर्यंकासने बेठेला पुरुषना बन्ने जानुनुं अंतर. आसननुं अने ललाटना उपरना भागनुं अंतर, जमणो खभो अने डाबा जानुनुं अंतर. तथा डाबा खभा अने जमणा जानुनुं अंतर" (आ प्रमाणे बराबर चार अस्रियुक्त संस्थानवडे जे व्यवस्थित ते समचतुरस्रसंस्थान संस्थित कहेवाय.) अन्य तो कहे छे केः "विस्तार अने उंचाइवडे सरखुं होय ते समचतुरस्र," समचतुरस्र संस्थान (आकार) वडे संस्थित एटले व्यवस्थित. आवा संस्थान युक्त होवा छतां हीनसंहननवाळा (हलका हाडकाना बांधावाळा) पण होय, ए आशंकाना परिहार माटे शास्त्रकार कहे छे के ['वज्जरिसहनारायसंघयणे'त्ति] अहीं संहनन एटले एक प्रकारनो हाडकानो समूह. वज्र, ऋषभ अने नाराचनुं लक्षण आ प्रमाणे समजवुं "पाटाने 'ऋषभ' कहे छे. खीलीने 'वज्र' समजवुं, आ बेना मर्कटबंधने 'नाराच' समजवुं."

वज्रऋषभ-नाराच-संहनन.

आ संहनन. खीलावडे बद्ध काष्टसंपुटसदृश सामर्थ्ययुक्त होवाथी वज्र, लोहादिमय पट्ट (पाटा) वडे बद्ध काष्टसंपुटसदृश सामर्थ्ययुक्त होवाथी ऋषभ, वज्ररूप जे ऋषभ ते वज्रर्षभ अने ते बन्ने तरफ मर्कटबन्धवडे बद्ध काष्टसंपुटनी तुल्य सामर्थ्ययुक्त होवाथी नाराच, ते वज्रर्षभनाराच कहेवाय. इंद्रभूति अनगार अत्युत्कृष्ट सामर्थ्य युक्त होवाने लीधे आ प्रकारना अस्थिसमूहविशेषरूप संहननवाळा छे, 'माटे वज्रर्षभनाराचसंहनन' ए विशेषण

---

१. प्र०छाः—ऋषभश्च भवति पट्टो वज्रं पुनः कीलिकां विजानीहि, उभयतो मर्कटबन्धो नाराचं तद् विजानीहि इति. एतत्समानपाठोऽयम्—"रिसहो पट्टो य कीलिआ वज्जं, उभओ मक्कडबंधो नारायं" + + + "इह प्रवचने + + ऋषभशब्देन परिवेष्टनपट्टः उच्यते, वज्रशब्देन कीलिका अभिधीयते, + + नाराचशब्देन उभयतो मर्कटबन्धो भण्यते". (कर्म० १, गा० टी० ३८ पृ–४० (भा०)–अनु०

१. आ (संस्थान) शब्द साधारण रीते संस्कृत भाषामां संस्थितिनो सूचक छे, पण जैनपरिभाषामां तो ते 'शरीरना आकाररूप अर्थमां' वपराय छे. "संस्थानानि अवयवरचनात्मकशरीराकृतिस्वरूपाणि" (प्र० क० गा० टी० ३९) "अवयव रचनारूप जे शरीरनी आकृतिओ तेने संस्थान कहे छे" (प्र० क० गा० टी० ३९). अने आ शब्द 'साधारण आकार' अर्थमां पण जैनशास्त्रमां वपराय छेः-अनु०

२ आ (संहनन) शब्द संस्कृतभाषानो छे. तेनुं प्राकृत रूप 'संघयण' छे. साधारण रीते ते शब्दनो प्रयोग शरीरना पर्याय तरीके प्रसिद्ध छे. तेनो व्युत्पत्त्यर्थ 'ज्यां समूहरूपे अंगो रहे' ए प्रमाणे छे जैनपरिभाषामां ते 'संहनन' शब्द शरीरनी अंदर रहेल हाडकांओनी रचनानो द्योतक छेः—कर्मग्रंथ "संघयणमट्ठिनिचओ" (कर्म० प्र० गा० ३७) "संहन्यन्ते दृढीक्रियन्ते (प्रथम) मां श्रीदेवेन्द्रसूरिए कह्युं छे के, "जेनाथी शरीरना पुद्गलो मजबूत शरीरपुद्गला येन तत् संहननम्, तच्च अस्थिनिचयः कीलिकादिरूपाणामस्थ्नां कराय ते संहनन अर्थात् कीलिकादिरूप हाडकांओनी एक प्रकारनी रचना" निचयो रचनाविशेषोऽस्थिनिचयः" (श्रीदेवेन्द्रसूरि, कर्म० प्र० गा० टी० ३७). (श्रीदेवेन्द्र० क० प्र० गा० ३७):—अनु०

३. आ पाठने मळतो पाठ प्रथम कर्मग्रंथमां आडत्रीशमी गाथामां अने तेनी टीकामां आ प्रमाणे छेः— ऋषभ, पट्ट–वींटवानो पाटो–वज्र–कीलिका–खीली–बन्ने बाजुथी मर्कटबंध ते नाराच, ए प्रमाणे ए त्रणे शब्दोनो जिनप्रवचनमां अर्थ छे. (मा०):—अनु०

आप्युं. केटलाक तो (उपर कह्या प्रमाणे–जेम वज्र, ऋषभ अने नाराच ए त्रणे विशेषणो संहनननां कर्यां-छे तेम नहीं परंतु) "वज्र वगेरे विशेषणो हाडकाना ज करे छे. नाराच एटले बे हाडकानो मर्कटबंध, तेना उपर ऋषभ एटले पाटो, तेना उपर वज्र एटले खीलि, आवा प्रकारना अस्थिसमूहने वज्रर्षभनाराच संहनन कहे छे." उपर्युक्त उत्कृष्ट संहननवाळा होवा छतां निंद्य-स्वराब -वर्णवाळा पण होय ए प्रकारनी शंकाना निराकरणार्थे शास्त्रकार कहे छेः ['कणयपुल-गनिहसपम्हगोरे' त्ति] कनक (सोना) नो पुलक एटले लेश, तेनी निकष एटले कसोटी उपर करेली रेखा, तथा कमलना केशरसम गौरवर्ण युक्त. वृद्धो आ प्रमाणे व्याख्या करे छेः-"कनकपुलकनिकषपक्ष्मगौर-कनक-सुवर्ण नो, परंतु लोढानो नहीं; पुलक एटले सार (अतिशयवर्ण), तत्प्रधान जे निकष एटले रेखा तेनुं जे पक्ष्म एटले बहुपणुं (सांद्रपणुं) तेना जेवा गौर, अथवा कनकपुलकनिकषपक्ष्मगौर द्रुत (पीगळीगयेल) सुवर्णनुं जे पुलक एटले बिंदु, जे तेनी समान निकष (वर्ण) थी छे ते, तथा अहीं प्रस्तावथी ['पम्ह' त्ति] पद्म एटले केशरा, तेनी सदृश गौर. आ प्रमाणे सुंदर वर्णवाळा होवा छतां विशिष्ट चारित्ररहित पण होय. ए प्रमाणे उद्भूत थती शंकाना निरास माटे शास्त्रकार कहे छे के:—

गौरवर्ण.

१५. *'उग्गतवे'* त्ति उग्रम्-अप्रधृष्यम् , तपोऽनशनादि यस्य स उग्रतपाः,—यदन्येन प्राकृतपुंसा न शक्यते चिन्तयितुमपि तद्विधेन तपसा युक्त इत्यर्थः. *'दित्ततवे'* त्ति दीप्तं जाज्वल्यमानदहन इव कर्मवनगहनदहनसमर्थतया ज्वलितम् , तपो धर्मध्यानादि यस्य स तथा. *'तत्ततवे'* त्ति तप्तं तपो येनासौ तप्ततपाः,—एवं हि तेन तत् तपस्तप्तं येन कर्माणि संताप्य तेन तपसा स्वात्माऽपि तपोरूपः संतापितः, यतोऽन्यस्याऽस्पृश्यमिव जातमिति. *'महातवे'* त्ति आशंसादोषरहितत्वात् प्रशस्ततपाः. *'ओराले'* त्ति भीमः,—उग्रादिविशेषणविशिष्टतपस्करणात् पार्श्वस्थानामल्पसत्त्वानां भयानक इत्यर्थः, अन्ये त्वाहुः—"*ओराले* त्ति उदारः प्रधानः". *'घोरे'* त्ति निर्घृणः,—परीषहेन्द्रियादिरिपुगणविनाशमाश्रित्य निर्दय इत्यर्थः. अन्ये तु "आत्मनिरपेक्षं घोरम्" आहुः. *'घोरगुणे'* त्ति घोरा अन्यैर्दुरनुचरा गुणा मूलगुणादयो यस्य स तथा. *'घोरतवस्सि'* त्ति घोरैस्तपोभिस्तपस्वी-त्यर्थः, *'घोरबंभचेरवासि'* त्ति घोरं दारुणम्,—अल्पसत्त्वैर्दुरनुचरत्वाद् यद् ब्रह्मचर्यं तत्र वस्तुं शीलं यस्य स तथा. *'उच्छूढसरीरे'* त्ति उच्छूढम्—उज्झितमिवोज्झितं शरीरं येन तत्संस्कारत्यागात् स तथा. *'संखित्तविउलतेयलेस्से'* त्ति संक्षिप्ता शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतां गता, विपुला विस्तीर्णा अनेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात् , तेजोलेश्या विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य स तथा. मूलटीकाकृता तु *'उच्छूढसरीरसंखित्तविउलतेयलस्से'* त्ति कर्मधारयं कृत्वा व्याख्यातमिति. *'चोद्दसपुव्वि'* त्ति चतुर्दश पूर्वाणि विद्यन्ते यस्य, तेनैव तेषां रचितत्वाद् असौ चतुर्दशपूर्वी, अनेन तस्य श्रुतकेवलितामाह. स चावधिज्ञानादिविकलोऽपि स्यादत आह:-*'चउनाणोवगए'* त्ति केवलज्ञानवर्जज्ञानचतुष्कसमन्वित इत्यर्थः. उक्तविशेषणद्वययुक्तोऽपि कश्चिद् न समस्तश्रुतविषयव्यापिज्ञानो भवति, चतुर्दशपूर्वविदां षट्स्थानकपतितत्वेन श्रवणादित्यत आहः—*'सव्वक्खरसंनिवाइ'* त्ति सर्वे च तेऽक्षरसंनिपाताश्च तत्संयोगाः, सर्वेषां वा अक्षराणां संनिपाताः सर्वाक्षरसंनिपाताः , ते यस्य ज्ञेयतया सन्ति स सर्वाक्षरसंनिपाती; श्रव्याणि वा श्रवणसुखकारीणि अक्षराणि, सामस्त्येन नितरां वदितुं शीलमस्येति श्रव्याक्षरसंनिवादी, स चैवगुणविशिष्टो भगवान् विनयराशिरिव साक्षादिति कृत्वा शिष्याचारत्वाच्च *'समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते'* विहरतीति योगः, तत्र दूरं च विप्रकृष्टम् , सामन्तं च संनिकृष्टम् , तन्निषेधाद् अदूरसामन्तम् , तत्र नातिदूरे, नातिनिकटे इत्यर्थः. किंविधः संस्तत्र विहरति ? इत्याहः—*'उड्ढंजाणु'* त्ति ऊर्ध्वे जानुनी यस्यासौ ऊर्ध्वजानुः शुद्धपृथिव्यासनवर्जनाद् औपग्रहिकनिषद्याया अभावाच्च उत्कुटुकासन इत्यर्थः. *'अहोसिरे'* त्ति अधोमुखः -नोर्ध्वं तिर्यग् वा विक्षिप्तदृष्टिः, किंतु नियतभूभागनियमितदृष्टिरिति भावः . *'झाणकोट्ठोवगए'* त्ति ध्यानं धर्मम् , शुक्लं वा; तदेव कोष्ठः कुशूलो ध्यानकोष्ठस्तमुपगतस्तत्र प्रविष्टो ध्यानकोष्ठोपगतः, यथाहि कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तमविप्रसृतं भवति, एवं स भगवान् ध्यानतोऽविप्रकीर्णेन्द्रियान्तःकरणवृत्तिरिति. *'संजमेणं'* ति संवरेण. *'तवसा'* त्ति अनशनादिना, 'च' शब्दः समुच्चयार्थो लुप्तोऽत्र द्रष्टव्यः. संयम-तपोग्रहणं चानयोः प्रधानमोक्षाङ्गत्वख्यापनार्थम् , प्रधानत्वं च संयमस्य नवकर्मानुपादानहेतुत्वेन, तपसश्च पुराणकर्मनिर्जरणहेतुत्वेन; भवति चाभिनवकर्मानुपादानात् पुराणकर्मक्षपणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष इति. *'अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'* त्ति आत्मानं वासयन्तिष्ठतीत्यर्थः.

१५. ['उग्गतवे' त्ति] उग्रतप–अनशन आदि उग्रतपयुक्त, अर्थात् अन्य जन जेनुं चिंतवन करवाने पण अशक्त होय तेवा तपने आचरनारा. ['दित्ततवे' त्ति] दीप्ततपा–कर्मरूपि गहन वनने भस्मसात् करवाने समर्थ होवाथी जाज्वल्यमान अग्निसम दीप्त एटले ज्वलित, धर्मध्यानादि तपयुक्त. ['तत्ततवे' त्ति] तप्ततपा- जेणे तप तप्युं छे ते तप्ततप, तेओ (गौतमस्वामी) एवुं तप तप्या के जेथी कर्मोने सतपावी तपस्वरूप आत्माने पण संतपाव्यो, तेथी अन्य

उग्रतपः दीप्ततप.

तप्ततप.

१. 'पूर्व' शब्दपरिचयस्त्वेवम्.—पूर्वाणि चतुर्दशापि पूर्वगते. १६०. उत्पादपूर्वमग्रायणीयमथ वीर्यतः प्रवादं स्यात् , अस्तेर्ज्ञानात् सत्यात् तदात्मनः कर्मणश्च परम्. १६१. प्रत्याख्यानं विद्याप्रवाद-कल्याणनामधेये च प्राणावायं च क्रियाविशालमथ लोकबिन्दुसारमिति १६२ सर्वाङ्गेभ्यः पूर्वं तीर्थंकरैरभिहितत्वात् पूर्वाणि, तानि यथा–सर्वद्रव्याणां पर्यायाणां चोत्पादप्रज्ञप्तिहेतुरुत्पादम्. १. सर्वद्रव्याणां पर्यायाणां सर्वजीवविशेषाणां च अग्रं परिमाणं वर्ण्यते यत्र तद् अग्रायणीयम्. २. जीवानामजीवानां च सकर्मेतराणां वीर्यं प्रवदति वीर्यप्रवादम्. ३. अस्तीति नास्तेरुपलक्षणम्, ततो यल्लोके यथाऽस्ति, यथा वा नास्ति; अथवा स्याद्वादाभिप्रायेण तदेवाऽस्ति नास्तीति प्रवदति अस्तिनास्तिप्रवादम्. ४. मतिज्ञानादिपञ्चकं सभेदं प्रवदतीति ज्ञानप्रवादम्. ५. सत्यं संयमः, सत्यवचनं वा; तत् सभेदं सप्रतिपक्षं च यत् प्रवदति तत् सत्यप्रवादम्. ६ नयदर्शनैरात्मानं प्रवदति आत्मप्रवादम् ७ ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभेदैरन्यैश्चोत्तरभेदैर्भिन्नं प्रवदति कर्मप्रवादम् ८.१६१. सर्वप्रत्याख्यानस्वरूपं प्रवदति प्रत्याख्यानप्रवादम् , तदेकदेशः प्रत्याख्यानम्, भीमवत्. ९. विद्यातिशयान् प्रवदति विद्याप्रवादम्. १०. कल्याणफलहेतुत्वात् कल्याणम्, अवन्ध्यमिति चोच्यते. ११. आयुः प्राणविधानं सर्वं सभेदम्, अन्ये च प्राणा वर्णिता यत्र तत् प्राणावायम्. १२. कायिक्यादयः संयमाद्याश्च क्रिया विशाला सभेदा यत्र तत् क्रियाविशालम्. १३. इह लोके श्रुतलोके वा बिन्दुरिवाऽक्षरस्य सर्वोत्तमं सर्वाक्षरसंनिपातपरिनिष्ठितत्वेन लोकबिन्दुसारम्. १४. १६२.–अभिधान० (य० ग्रं–पृ–१०५–६):–अनु०

२. वुड्ढी वा हाणी वा अणंत–असंख–संखभागेहिं, वत्थूण संख–असंख–अणंतगुणणेण य विहेया.–प्रवचनसारोद्धारे, २६० द्वारे ४३२ गाथा. षट् स्थानकानि चेमानिः—१. अनंतभाग, २. असंख्यभाग, ३. संख्यातभाग १. संख्यातगुण, २. असंख्यातगुण, ३. अनन्तगुणः–अनु०

महातपः उदार. घोर. घोरगुणःघोरतपस्वी. घोरब्रह्मचर्यवासी. उज्झितशरीर. तेजोलेश्या. चतुर्दशपूर्वी. चतुर्ज्ञानधर. सर्वाक्षरसंनिपाती.

साधारण पुरुषवडे न करी शकाय तेवुं कर्युं, ['महातवे'त्ति] महातपा–इच्छारूप दोषरहित होवाथी प्रशस्त तप करवावाळा, ['ओराले'त्ति] ओराल–भीम, उग्रादि विशेषणयुक्त तप करवाथी, अल्प सत्त्ववाळा पार्श्वस्थो (पासत्थाओ) ने भयानक, अन्य कहे छे के:–"ओराल एटले उदार प्रधान" ['घोरे'त्ति] घोर एटले निर्घृण अर्थात् परिषह तथा इंद्रियादि शत्रुसमूहना विनाशने आश्रीने निर्दय, अन्य तो कहे छे के:–"घोर एटले आत्मनिरपेक्ष" ['घोरगुणे'त्ति] घोरगुण अन्य पुरुषोवडे आचरी शकाय नहीं एवा मूलगुण वगेरे गुणयुक्त, ['घोरतवस्सि'त्ति] घोरतपस्वी–घोर तपस्याओ करवावाळा होवाथी घोरतपस्वी, ['घोरबंभचेरवासि'त्ति] घोरब्रह्मचर्यवासी–घोर एटले अल्प सत्त्ववाळा प्राणिगणवडे दुरनुचर होवाथी दारुण एवुं जे ब्रह्मचर्य तेने विषे वसवाना स्वभाववाळा अर्थात् घोर ब्रह्मचर्यना पालक, ['उच्छूढसरीरे'त्ति] उज्झितशरीर जेओए शरीरना संस्कारोनो त्याग करवाथी शरीरने त्यक्तवत् कर्युं छे ते. ['संखित्तविउलतेयलेस्से'त्ति] संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्य शरीरनी अंदर लीन होवाथी संक्षिप्त–लघुताने प्राप्त थएली, अनेक योजन प्रमाण क्षेत्रमां रहेला पदार्थोनुं दहन करवामां समर्थ होवाथी विपुल, तेजोलेश्या एटले तप विशेषथी थयेल लब्धिविशेषद्वारा उत्पन्न तेजोज्वाला, ते वडे युक्त, ['चोद्दसपुव्वि'त्ति] चतुर्दशपूर्वी -तेओए ज चौदपूर्वोनी रचना करेली होवाथी जेओने चौदपूर्वो विद्यमान छे तेवा, आ विशेषणद्वारा शास्त्रकारे गौतमस्वामिनुं श्रुतकेवलिपणुं बताव्युं. चौदपूर्वी होवा छतां पण अवधिज्ञानादिरहित होय, आ शंकाना निवारण माटे कहे छे के, ['चउनाणोवगए'त्ति] चतुर्ज्ञानोपगत केवलज्ञान शिवायना चार ज्ञानवाळा. उक्त बन्ने विशेषणोयुक्त होवा छतां पण कोइ संपूर्ण श्रुतविषय ज्ञानवाळो न होय, कारण के चौदपूर्वीओ छ स्थानक पतित अर्थात् छ स्थानकवाळा सांभळ्या छे; आवी शंका निवारवा कहे छे के, ['सव्वक्खरसन्निवाइ'त्ति] सर्वाक्षरसंनिपाती–सम्पूर्ण

---

१. 'पूर्व' शब्दनो परिचय आ रीत्या छे:–तीर्थंकरोए नीचे प्रमाणे चौद पूर्वो कहेला छे. सर्वे अंगो करतां पहेलां ते कहेल छे माटे ते 'पूर्व' कहेवाय छे. जेनां नाम अने अर्थ आ प्रमाणे छे:–१. उत्पाद, २. अग्रायणीय, ३. वीर्यप्रवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यानप्रवाद, १०. विद्याप्रवाद, ११. कल्याण, १२. प्राणावाय, १३. क्रियाविशाल, १४. लोकबिंदुसार. उत्पाद–सर्वद्रव्योना अने पर्यायोना उत्पादनुं प्रतिपादक ते 'उत्पादपूर्व.' अग्रायणीय–सर्वद्रव्योना, पर्यायोना अने सर्व जीवविशेषोना अग्र परिमाणनुं प्रतिपादक ते 'अग्रायणीयपूर्व.' सकर्मक अने अकर्मक जीवोनी अने अजीवो (जडपदार्थो)नी शक्तिनुं प्रतिपादक ते 'वीर्यप्रवादपूर्व.' अस्तिनास्तिप्रवाद—अस्तिनास्ति एटले जेम लोकमां छे अथवा नथी, अथवा स्याद्वादना अभिप्रायथी जे छे ते ज नथी ते अस्तिनास्ति, तेनुं प्रतिपादक ते 'अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व.' ज्ञानप्रवाद–भेद सहित मतिज्ञानादि पांच ज्ञाननुं प्रतिपादक ते 'ज्ञानप्रवादपूर्व.' सत्यप्रवाद–सत्य-संयम अथवा साचुं, भेद सहित संयमनुं अथवा प्रतिपक्ष सहित (असत्यसहित) सत्यनुं प्रतिपादक ते 'सत्यप्रवादपूर्व.' आत्मप्रवाद-नयदर्शनपूर्वक आत्मानुं प्रतिपादक ते 'आत्मप्रवादपूर्व.' कर्मप्रवाद-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेशादि भेदपूर्वक तथा उत्तर भेदपूर्वक ज्ञानावरणादि आठ प्रकारना कर्मनुं प्रतिपादक ते 'कर्मप्रवादपूर्व.' प्रत्याख्यानप्रवाद–सर्वप्रत्याख्यानना स्वरूपनुं प्रतिपादक ते 'प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व.' विद्याप्रवाद—विद्याना अतिशयोनुं प्रतिपादक ते 'विद्याप्रवादपूर्व.' कल्याण—कल्याणरूप फलमां कारण होवाथी 'कल्याणपूर्व.' प्राणावाय—जेमां भेद सहित प्राणविधान अने बीजा प्राणो वर्णवेला छे ते 'प्राणावायपूर्व.' क्रियाविशाल—जेमां भेदसहित कायिकी वगेरे अने संयमादि क्रियाओ कहेली छे ते 'क्रियाविशालपूर्व.' लोकबिंदुसार—जेम अक्षरने माथे बिंदु होय छे तेम लोकमां अथवा श्रुतलोकमां सर्वाक्षर संनिपातपरिनिष्ठित होवाथी जे सर्वोत्तम शिरोभूत छे ते लोकबिंदुसार.–अभिधानचिंतामणि (य० ग्रं० पृ–१०४ थी १०६):–अनु०

२. निर्ग्रन्थ (जैन) परिभाषामां 'ज्ञान' शब्द नीचे प्रमाणे सूचक छे:–जेम आ गगनमंडलमां विचरता सूर्यने आपणे साक्षात् देखीए छीए अने ज्यारे तेना आडो वादळांनो थर आवे छे त्यारे तेनो प्रकाश मंद थाय छे, ते पण आपणे अनुभवीए छीए. आपणे त्यांसुधी पण चोकस जाणी शकीए छीए के ज्यांसुधी सूर्य अस्त न थयो होय त्यां सुधी तेनी आडां गमे तेवा वादळांना थर आवे तो पण तेना प्रकाशनी झांखी तद्दन नष्ट थती नथी; ते ज प्रकारे आ जीवसंबंधे पण समजवानुं छे, अर्थात् जीव ज्ञानरूप प्रकाशवाळो होवाथी एक जळहळता सूर्य समान छे. ते जीवनी उपर ज्यारे ज्ञानावरणीय–ज्ञानरूप प्रकाशने ढांकनारा–कर्मना थरो जामेला होय छे त्यारे ते जीवनो ज्ञानरूप प्रकाश ते थरोथी आच्छादित थवाने लीधे ते ज्ञानावरणीय कर्मना थरोनी न्यूनाधिकता प्रमाणे जुदा जुदा प्रकारनो–कोइनो अल्प अने कोइनो अधिक–देखाय छे. जैनशास्त्रमां तेवा जुदा जुदा प्रकारवाळा ज्ञानरूप प्रकाशना मुख्य रीते पांच भेद कह्या छे. ते आ छे:–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान अने केवलज्ञान. जे जीवे पोता उपर लागेल अने मतिज्ञानने आच्छादित करनार कर्मना थरो खसेड्या छे अने उपशमाव्या छे ते जीव पोताना मतिज्ञानथी मन अने इंद्रियद्वारा मात्र वर्तमान पदार्थोने जाणी शके छे, पण वर्तमान पदार्थनी थएली के थवानी अनंत हालतोने (पर्यायोने) ते जाणी शकतो नथी. जे जीवे पोता उपर लागेल अने श्रुत ज्ञानने आच्छादित करनार कर्मना थरो खसेड्या छे अने उपशमाव्या छे ते जीव पोताना श्रुतज्ञानथी अने पूर्वोक्त मतिज्ञान तथा आप्तपुरुषना उपदेशनी सहायताथी त्रणे कालना पदार्थने जाणी शके छे, पण ते पदार्थोनी थएली के थवानी अनंत अवस्थाओने जाणी शकतो नथी. जे जीवे पोता उपर चोंटेल अने अवधिज्ञानने आच्छादित करनार कर्मना थरो खसेड्या छे अने उपशमाव्या छे ते जीव पोताना अवधिज्ञानथी इंद्रिय के मननी सहायता लीधा विना गमे ते कालना तथा गमे त्यां रहेल मात्र रूपवाळा ज पदार्थोने जोइ शके छे, पण ते पदार्थोनी थएली के थवानी अनंत हालतोने जोइ शकतो नथी. जे जीवे पोता उपर बाझी गएल अने मनःपर्यवज्ञानने ढांकनारा कर्मोना थरो खसेड्या छे अने उपशमाव्या छे ते जीव पोताना मनःपर्यवज्ञानथी फक्त मनवाळा प्राणीओए विचार करवा माटे ग्रहण करेल मनना अणुओने ज जाणी शके छे अने जे जीवे पोता उपर लागेल अने केवलज्ञानने ढांकनार कर्मोना थरो तद्दन खसेड्या छे–रामूळगा नष्ट कर्या छे–ते जीव मात्र पोताना केवलज्ञानथी ज दूरना के नजीकना, परोक्ष के प्रत्यक्ष, सूक्ष्म के मोटा, वर्तमानना, भूतना के भविष्यत्कालना तथा रूपवाळा के रूपरहित पदार्थोने अने ते पदार्थोनी थएली, थती अने थवानी अनंत अवस्थाओने पण जाणे छे तथा ते सर्वज्ञ कहेवाय छे.

"मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु"	"सर्व पर्याय विनाना सर्व द्रव्यो मति अने श्रुतज्ञानथी जणाय छे."
"रूपिष्ववधेः"	"मात्र रूपवाळा ज पदार्थो अवधिज्ञानथी जणाय छे."
"तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य"	"अवधिज्ञानना अनंत भागनुं मनःपर्यवज्ञानथी जणाय छे."
"सर्वद्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य"	"बधा द्रव्य अने पर्यायो केवलज्ञानथी जणाय छे."
(उमा० तत्त्वा० अ० १, सू० २७, २८, २९, ३०).	(उमा० तत्त्वा० अ० १, सू० २७, २८, २९, ३०):–अनु०

३. आ छ स्थानोने जणावनारी गाथा प्रवचनसारोद्धारना २१० द्वारमां ४१२ मी छे. ते छ स्थानकोना नाम आ प्रमाणे छे:–१. अनन्तभाग, २. असंख्यातभाग, ३. संख्यातभाग, १. संख्यातगुण, २. असंख्यातगुण, ३. अनन्तगुण.:–अनु०

अक्षरसंयोगो अथवा सकल अक्षरोनां संयोगो जेने ज्ञेय पणे होय ते, अथवा श्रव्याक्षरसन्निवादी—श्रव्य (सांभळवा योग्य शब्दो)ने संगतिपणे अहर्निश बोलवाना स्वभाववाळा. आवा अनेकगुणगण युक्त, विनयनी राशि सम तथा शिष्याचारने पालता भगवान् इंद्रभूति श्रमण भगवंत महावीरनी अदूरसामन्ते विहरे छे, ए प्रमाणे संबंध मेळववो. अदूरसामन्त—दूर एटले छेटे अने सामन्त एटले पासे, ते बन्नेनो निषेध होवाथी, बहु छेटे पण नहीं अने बहुपासे पण नहीं. केवी रीते विहार करे छे ते कहे छेः ['उड्ढंजाणु' त्ति] ऊर्ध्वजानु जेओना जानु (घुंटण) ऊर्ध्व (ऊंचा) छे, शुद्ध पृथ्वीना आसननुं वर्जन होवाथी तथा औपग्राहिकनिषद्याना अभावथी उत्कुटुक आसनवाळा (उभडक बेठेला) ['अहोसिरे'त्ति] अधःशिर नीचे मुख राखवावाळा, ऊर्ध्व तथा तिरछो द्रष्टिपात न करता नियमित मापवाळा भूभागमां दृष्टि राखवावाळा, ['झाणकोट्ठोवगए'त्ति] ध्यानकोष्ठोपगत—धर्मध्यान, अथवा शुक्ल-ध्यानरूप कोठाने प्राप्त थयेला, जेम कोठामां नाखेल अनाज प्रसरतुं (वेगतुं) नथी, तेम शुक्लध्यान तथा धर्मध्यानथी जेओनी अंतःकरणनी वृत्ति तथा इंद्रियो चलायमान थती नथी तेवा भगवान् इंद्रभूति, ['संजमेणं'ति] संवररूप संयमवडे अने ['तवस'त्ति] अनशनादि तपवडे ['अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'त्ति] आत्माने भावता विहरे छे. 'संयम अने तप ए बन्ने मोक्षनां प्रधान अंग छे' एम ख्यापन करवाने संयम अने तपनुं ग्रहण कर्युं छे. नवा कर्मोना अग्रहणमां हेतु होवाथी संयमनुं अने प्राचीन कर्मोनो निर्जरवानुं कारण होवाथी तपनुं मोक्षांगमां प्रधानपणुं छे, कारण के नवा कर्मोनुं ग्रहण न करवाथी तथा प्राचीन कर्मोना क्षय करवाथी सकल कर्मक्षयरूप मोक्ष थाय छे.

ऊर्ध्वजानु. अधःशिर. ध्यानकोष्ठोपगत. संयमः तप.

तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे, जायसंसए, जायकोऊहल्ले; उप्पण्णसड्ढे, उप्पण्णसंसए, उप्पण्णकोऊहल्ले; संजायसड्ढे, संजायसंसए, संजायकोऊहल्ले; समुप्पण्णसड्ढे, समुप्पण्णसंसए, समुप्पण्णकोऊहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, वंदइ, नमंसइ; नमंसित्ता णच्चासण्णे, णाइदूरे, सुस्सूसमाणे, नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासीः—

त्यार पछी जातश्रद्ध—प्रवर्तेली श्रद्धावाळा, जातसंशय, जातकुतूहल, उत्पन्नश्रद्ध, उत्पन्नसंशय, उत्पन्नकुतूहल, संजातश्रद्ध, संजातसंशय, संजातकुतूहल, समुत्पन्नश्रद्ध, समुत्पन्नसंशय अने समुत्पन्न कुतूहल ते भगवान् गौतम उत्थानवडे उभा थाय छे; उत्थानवडे उभा थईने जे तरफ श्रमण भगवंत महावीर छे त्यां आवे छे; आवी श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा करे छे, प्रदक्षिणा करी वांदे छे, नमे छे, नमी बहु निकट नहीं तेम बहु दूर नहीं एवी रीते भगवंतनी सामे विनयवडे ललाटे हाथजोडी भगवंतना वचनने श्रवण करवानी इच्छावाळा भगवंतने नमता अने पर्युपासना शुश्रूषा करता आ प्रमाणे बोल्याः—

---

१. मूलच्छायाः—तदा स भगवान् गौतमो जातश्रद्धः, जातसंशयः, जातकुतूहलः, उत्पन्नश्रद्धः, उत्पन्नसंशयः, उत्पन्नकुतूहलः, संजातश्रद्धः, संजातसंशयः, संजातकुतूहलः; समुत्पन्नश्रद्धः, समुत्पन्नसंशयः, समुत्पन्नकुतूहल उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थया उत्थाय येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा नात्यासन्नः, नातिदूरः, शुश्रूषमाणः, नमस्यन् अभिमुखो विनयेन कृतप्राञ्जलिः पर्युपासीन एवमवादीत्.

१. आ (औपग्राहिक) शब्द मूळ उपग्रह शब्दथी बने छेः उप=पासे+ग्रह=ग्रहण करवुं अर्थात् 'पासे राखवुं' ए उपग्रह शब्दनो व्युत्पत्त्यर्थ छे. जैनपरिभाषामां ते (औपग्राहिक) शब्द श्रमणोना—साधुओना जे उपकरणोनुं मात्र संयम माटे ज प्रयोजन ते उपकरणोनो सूचक छेः—प्रवचनसारोद्धार द्वार ६०, गा० ४९८:—अनु०

२. आ (धर्मध्यान) शब्दनो स्थूल अर्थ 'धर्मविषयक चिंतन' छे, पण ते शब्द अमुक प्रकारना चिंतनमां ज जैनपरिभाषाए स्वीकार्यो छे.

"आज्ञा—अपाय—विपाक—संस्थानविचयाय धर्ममप्रमत्तसंयतस्य" (उमास्वाति, तत्त्वार्थ० अ० ९, सू० ३७) "आज्ञाना, अपायना, विपाकना अने संस्थानना निर्णय माटे एकाग्रपणे चिंतन ते धर्मध्यान." जिनप्रवचन ते आज्ञा कहेवाय. अपाय ते रागद्वेषादिकथी उत्पन्न थता अनर्थो कहेवाय, विपाक ते कर्म—पुण्य अने पाप—नुं फल कहेवाय अने संस्थान ते द्वीप अने समुद्रादिकना आकारो कहेवाय. (उमास्वाति, तत्त्वार्थ० अ० ९, सू०३७). आ ज प्रमाणे (क० आ० भ० श० २५, पृ०—१८०३-४) मां पण 'धर्मध्यान' शब्दनुं विवेचन स्फुटपणे करेलुं छे—अनु०

३. आ (शुक्लध्यान) शब्दनो लौकिक अर्थ—शुक्ल—धोळुं, ध्यान—चिंतन अर्थात् 'पवित्र चिंतन' थाय छे, पण जैनपरिभाषाए ते शब्द अमुक अर्थमां ज वापर्यो छेः—

"पृथक्त्व—एकत्ववितर्क—सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति—व्युपरतक्रियाऽनिवृत्तीनि" (उमा० तत्त्वार्थ० अ० ९, सू० ४१) 'शुक्लध्यान' शब्दथी नीचे लखेला चार अर्थो जैनदृष्टिए प्रसिद्ध छे.—१. "पृथक्त्ववितर्क, २. एकत्ववितर्क, ३. सूक्ष्मक्रिय अप्रतिपाति—अनिवृत्त, ४. व्युपरतक्रिय अनिवृत्ति-समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति. पृथक्त्ववितर्क—पृथक्त्व संबंधी वितर्क, एकत्ववितर्क—एकत्व संबंधी वितर्क, सूक्ष्मक्रिय अप्रतिपाति प्रतिपात (पतन) रहित सूक्ष्म क्रियावाळो व्यापार. व्युपरतक्रिय अनिवृत्ति—क्रिया विनानो निवर्तन रहित व्यापार." ए चारे शब्दनो स्फुट अर्थ आ प्रमाणे छेः—एक पदार्थ संबंधी उत्पत्ति, स्थिति, नाशादिक धर्मनो भेदपूर्वक जे वितर्क ते 'पृथक्त्ववितर्क', ते विचारसहित होय छे. वळी अर्थथी व्यंजनमां तथा व्यंजनथी अर्थमां मन, वचन अने शरीर संबंधी व्यापारोनुं विचरण ते विचार कहेवाय छे. उत्पत्ति वगेरे अनंत धर्मोमांना कोइ पण एक धर्मने (पर्यायने) अवलंबी अभेदपूर्वक जे वितर्क. ते 'एकत्ववितर्क.' ते विचाररहित होय छे. मनना अने वचनना संपूर्ण निरोध अने शरीरना अर्ध निरोधने 'सूक्ष्मक्रिय' कहे छे अने ते आगळ आगळ वधवाना परिणाम सहित होवाथी निवर्तनरहित छे. शरीरनी, वचननी अने मननी क्रियाओना समूळगा नाशने 'समुच्छिन्नक्रिय' कहे छे अने ते प्रतिपातरहित छे. (उमा० तत्त्वार्थ० अ० ९, सू० ४१). आज प्रमाणे (क० आ० भ० श० २५ पृ० १८०३-४) मां 'शुक्लध्यान' शब्द परत्वे स्फुट विवेचन छेः—अनु०

४. आ (संवर) शब्द 'सं' पूर्वक 'वृ' धातुथी बने छे. तेनो अर्थ 'संवरवुं' अर्थात् 'रोकवुं' थाय छे. बहुलताए जैनपरिभाषामां ते शब्द अमुक प्रकारना 'रोकवा'मां वपराय छे.

"आस्रवनिरोधः संवरः" (उमा० तत्त्वार्थ० अ० ९, सू० १) "आस्रवनो निरोध ते संवर" अने आस्रव एटले शरीरनो, वचननो अने मननो शुभ के अशुभ व्यापार अर्थात् पुण्य के पापना रोकवाने संवर कहे छे. (उमा० तत्त्वार्थ० अ० ९, सू० १):—अनु०

१६. *'तए णं से'* त्ति ततो ध्यानकोष्ठोपगतविहरणानन्तरम्, *'णं'* इति वाक्यालंकारार्थः, *'से'* इति प्रस्तुतपरामर्शार्थः, तस्य तु सामान्येन उक्तस्य विशेषावधारणार्थमाहः—*'भगवं गोयमे'* त्ति. किम्? इत्याहः—*'जायसड्ढे'* इत्यादि—जातश्रद्धादिविशेषणः सन् उत्तिष्ठतीति योगः. तत्र जाता प्रवृत्ता श्रद्धा इच्छा वक्ष्यमाणार्थतत्त्वज्ञानं प्रति यस्यासौ जातश्रद्धः, तथा जातः संशयो यस्य स जातसंशयः, संशयश्चानवधारितार्थं ज्ञानम्, स चैवं तस्य भगवतो जातः—भगवता हि महावीरेण *'चलमाणे चलिए'* इत्यादौ सूत्रे चलन् अर्थश्चलितो निर्दिष्टः, तत्र च य एव चलन् स एव चलित इत्युक्तः, ततश्चैकार्थविषयावेतौ निर्देशौ—'चलन्' इति च वर्तमानकालविषयः, 'चलितः' इति चातीतकालविषयः, *अतोऽत्र संशयः—कथं नाम य एवार्थो वर्तमानः स एव अतीतो भवति?* इति, *विरुद्धत्वादनयोः* कालयोरिति. तथा *'जायकोऊहल्ले'* त्ति जातं कुतूहलं यस्य स जातकुतूहलो जातौत्सुक्य इत्यर्थः—कथमेतान् पदार्थान् भगवान् प्रज्ञापयिष्यति? इति. तथा *'उप्पण्णसड्ढे'* त्ति उत्पन्ना प्राग् अभूता सती भूता श्रद्धा यस्य स उत्पन्नश्रद्धः. अथ जातश्रद्ध इत्येतावदेव अस्तु, किमर्थमुत्पन्नश्रद्ध इत्यभिधीयते?, प्रवृत्तश्रद्धत्वेनैव उत्पन्नश्रद्धत्वस्य लब्धत्वाद्, न ह्यनुत्पन्ना श्रद्धा प्रवर्तत इति. अत्रोच्यतेः—हेतुत्वप्रदर्शनार्थम्, तथाहिः—कथं प्रवृत्तश्रद्ध उच्यते?, यत उत्पन्नश्रद्धः, इति हेतुत्वप्रदर्शनं चोचितमेव *वाक्यालंकारत्वात्* तस्य. यदाहुः—*"प्रवृत्तदीपामप्रवृत्तभास्करां प्रकाशचन्द्रां बुबुधे विभावरीम्"* इह यद्यपि प्रवृत्तदीपत्वादेव अप्रवृत्तभास्करत्वमवगतम्, तथापि अप्रवृत्तभास्करत्व प्रवृत्तदीपत्वादेर्हेतुतयोपन्यस्तमिति. *'उप्पण्णसंसए, उप्पण्णकोऊहल्ले'* त्ति प्रागुवत्. तथा *'संजायसड्ढे'* इत्यादिपदषट्कं प्रागवत्. नवरमिह सम्-शब्दः प्रकर्षादिवचनः, यथाः—"संजातकामो बलभिद्विभूत्यां मानात् प्रजाभिः प्रतिमाननाच्च" "ऐन्द्रैश्वर्यप्रकर्षेण जातेच्छः कार्तवीर्यः" इति.

१६. ['तए[1] णं[2] से' त्ति] त्यार पछी एटले के, ['भगवं गोयमे' त्ति] ते श्रमण भगवान गौतमे ध्यानरूपी कोष्ठने प्राप्त थइ विहरण कर्या पछी—भगवान गौतम केवा? ते कहे छे के ['जायसड्ढे' इत्यादि] उत्पन्न श्रद्धावाळा वगेरे विशेषणयुक्त उठे छे. ए प्रमाणे संबंध जोडवो. तेने विषे जात एटले प्रवृत्त, श्रद्धा एटले वक्ष्यमाण (हवे पछी कहेवामां आवनार) अर्थतत्त्वना ज्ञाननी इच्छा, जेने छे ते जातश्रद्ध. जातसंशय जात एटले प्रवृत्त अने संशय एटले अनवधारित अर्थज्ञान, ते जेने छे ते जातसंशयः ते (संशय) भगवान गौतमने आ प्रमाणे थयो के, भगवंत महावीरे 'चलमाणे चलिए' इत्यादि सूत्रमां 'चालता पदार्थने चाल्यो' ए प्रमाणे कह्युं छे अने ए कथनमां जे चालतो पदार्थ छे तेने ज 'चाल्यो' कहेलो होवाथी, चालतो अने चाल्यो ए बन्ने क्रियासूचक शब्दोनुं निर्देशन एक ज पदार्थ संबंधे छे. तो 'चालतो' ए वर्तमान काळने दर्शावनारु होवाथी अने 'चाल्यो' भूत काळनुं सूचक होवाथी, ए बे निर्देशो एक ज पदार्थ संबंधे केम होइ शके?. आ रीत्या आ स्थळे भगवान् गौतमने संशय थयो के, जे पदार्थ वर्तमानकाल विषयक छे, ते ज पदार्थ भूतकाळ विषयक केम होय? कारण के वर्तमान अने भूत बन्ने काळ (परस्पर) विरुद्ध छे. आ प्रमाणे संशय थयो. तेथी जातसंशय कह्या. तथा ['जायकोऊहल्ले' त्ति] जातकुतूहल उत्पन्न थयेली उत्सुकतावाळा. 'आ पदार्थोने भगवंत केवी रीते जणावशे'' ए प्रमाणे कुतूहलवाळा, तथा ['उप्पण्णसड्ढे' त्ति] उत्पन्नश्रद्ध अभूतपूर्व -कोइवार पूर्वे न थयेली श्रद्धावाळा. (हवे कोइ शंका करे के), 'जातश्रद्ध' ए पूर्वोक्त विशेषण ज राखो, शा माटे 'उत्पन्नश्रद्ध' ए प्रमाणे बीजुं विशेषण आपो छो? कारण के ज्यांसुधी श्रद्धा उत्पन्न थती नथी त्यांसुधी प्रवर्तती नथी तेथी, 'प्रवर्तेली श्रद्धावाळा' ए विशेषण आपवाथी ज 'उत्पन्न थएली श्रद्धावाळा' ए विशेषणार्थ स्वयं आवी जशे. अहीं (तेना समाधानमां) कहे छे के, श्रद्धानी उत्पत्तिनो अने श्रद्धानी प्रवृत्तिनो अन्योऽन्य कार्यकारणभाव (हेतुहेतुमद्भाव) संबंध दर्शाववाने आ प्रमाणे प्रयोग कर्यो छेः उत्पन्न श्रद्धावाळा छे माटे ज प्रवृत्त श्रद्धावाळा छे; अर्थात् श्रद्धानी उत्पत्तिनो अने श्रद्धानी प्रवृत्तिनो अन्योऽन्य कार्यकारणभाव संबंध छे. अने विशेषणोमां अन्योऽन्य कार्यकारणभाव (हेतुहेतुमद्भाव) जणाववो ए वाक्यनो अलंकार होवाथी तेने बताववो उचित ज छे. कह्युं छे के.—"सूर्य जेमां प्रवृत्त नथी, दीवो जेमां प्रवर्तेला छे. तेवी चंद्रना प्रकाशवाळी रात्रीने जाणी" अहीं 'प्रवर्तेला दीपवाळी' ए कहेवाथी ज सूर्य जेमां अप्रवृत्त (अस्त) थयो छे एवी रात्री जणाय छे, छतां सूर्यनुं अस्त थवुं ए दीपोनी प्रवृत्तिमां हेतु छे, एम जणाववा 'प्रवृत्तदीप' अने 'अप्रवृत्तभास्कर' एवा बे विशेषणो विभावरी (रात्री) ने आप्यां छे. ['उप्पण्णसंसए, उप्पण्णकोऊहल्ले' त्ति] उत्पन्नसंशय उत्पन्न संशयवाळा, उत्पन्नकुतूहल उत्पन्न कुतूहलवाळा, आ बे पदोनी पण प्रथमनी जेम व्याख्या करवी, अर्थात् पूर्व कथनानुसारे अन्योन्य हेतुहेतुमद्भाव (कार्यकारणपणुं) जाणी लेवो, तथा ['संजायसड्ढे' इत्यादि] संजातश्रद्ध इत्यादि छ पदनी व्याख्या पूर्ववत् करवी. विशेष ए के, अहीं (संजातश्रद्ध आदि छ पदमां) 'सम्' शब्द प्रकर्षादि अर्थवाळो छे. जेम. "संजातकामो बलभिद्विभूत्यां मानात् प्रजाभिः प्रतिमाननाच्च" "अहंकार तथा प्रजाना प्रतिमानथी इंद्रना ऐश्वर्यने विषे सम् प्रकर्षथी प्रवर्तेली इच्छावाळो कार्तवीर्य." जेम आ स्थळे 'सम्' नो 'प्रकर्ष' अर्थ थाय छे, तेम संजातश्रद्धादि छ पदमां 'सम्' नो 'प्रकर्ष' अर्थ करवो.

जातश्रद्ध. जातसंशय. जातकुतूहल. उत्पन्नश्रद्ध. उत्पन्नश्रद्ध शा-माटे?. विशेषणोनो कार्य-कारणभाव. उत्पन्नसंशय. उत्पन्नकुतूहल. संजातश्रद्ध १०

१७. अन्ये तु *'जायसड्ढे'* इत्यादिविशेषणद्वादशकमेवं व्याख्यान्तिः—जाता श्रद्धा यस्य प्रष्टुं स जातश्रद्धः, किमिति जातश्रद्धः? इत्यत आहः—यस्माद् जातसंशयः—'इदं वस्तु एवं स्याद् एवं वा' इति. अथ जातसंशयोऽपि कथम्? इत्यत आहः—यस्माद् जातकुतूहलः—'कथं नामाऽस्यार्थमवभोत्स्ये?' इत्यभिप्रायवान् इति. एतच्च विशेषणत्रयमवग्रहाऽपेक्षया द्रष्टव्यम्. एवम्—उत्पन्न- संजात—समुत्पन्नश्रद्धादय ईहाऽपाय-धारणाभेदेन वाच्याः अन्ये त्वाहुः—*जातश्रद्धत्वाद्यपेक्षया उत्पन्नश्रद्धत्वादयः समानार्थाः विवक्षितार्थस्य प्रकर्षप्रवृत्तिप्रतिपादनाय* स्तुतिमुखेन ग्रन्थकृतोक्ताः, न चैवं पुनरुक्तिदोषाय. यदाहः—"वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवंस्तथा निन्दन्, यत् पदमसकृद् ब्रूते तत् पुनरुक्तं न दोषाय." इति. 'उट्ठाए उट्ठेइ' त्ति उत्थानम्—उत्था—ऊर्ध्वं वर्तनम्, तया उत्थया उत्तिष्ठति—ऊर्ध्वो भवति. *'उट्ठेइ'* इत्युक्ते क्रियारम्भ-

---

१. 'णं' वाक्यालंकार माटे योज्यो छे. २. 'से' शब्द अधिकृत (चालु) विषयनो परामर्शक छे. ३. 'से' शब्दद्वारा बोधित सामान्य अर्थने विशेषित करवा 'भगवं गोयमे' ए वाक्य कह्युं छे.—अर्थात् 'से'नो सामान्यप्रकारे 'ते' एवो अर्थ थाय छे. ते अर्थने 'भगवं गोयमे' आ वाक्य विशिष्ट करे छे, तेथी 'ते भगवान् गौतम' एवो अर्थ थयोः—श्री अभयदेव.

मात्रमपि प्रतीयते, यथाः—वक्तुमुत्तिष्ठत इति. ततस्तद्व्यवच्छेदायोक्तमुत्थाय इति. *'उट्ठाए उट्ठित्त'*त्ति उपागच्छतीत्युत्तरक्रियापेक्षया उत्थानक्रियायाः पूर्वकालताऽभिधानाय *'उत्थयोत्थाय'* इति क्त्वाप्रत्ययेन निर्दिशति इति. *'जेणेव'* इत्यादि. इह प्राकृतप्रयोगाद्, अव्ययत्वाद् वा येन इति यस्मिन्नेव दिग्भागे, श्रमणो भगवान् महावीरो वर्तते तस्मिन्नेव दिग्भागे उपागच्छति; तत्कालाऽपेक्षया वर्तमानत्वाद् आगमनक्रियाया वर्तमानविभक्त्या निर्देशः कृतः—उपागतवान् इत्यर्थः. उपागम्य च श्रमण भगवन्तं महावीरं कर्मताऽऽपन्नम्, *'तिक्खुत्तो'*त्ति त्रीन् वारान् त्रिकृत्वः, *'आयाहिणपयाहिणं करेइ'*त्ति आदक्षिणाद् आदक्षिणहस्ताद् आरभ्य प्रदक्षिणः परितो भ्राम्यतो दक्षिण एव आदक्षिणप्रदक्षिणोऽतस्तं करोति इति. *'वंदइ'*त्ति वन्दते वाचा स्तौति, *'नमसइ'*त्ति नमस्यति कायेन प्रणमति, *'णच्चासण्णे'*त्ति न नैव, अत्यासन्नोऽतिनिकटः—अवग्रहपरिहाराद्, नात्यासन्ने वा स्थाने वर्तमान इति गम्यम्, *'णाइदूरे'*त्ति न नैव अतिदूरोऽनिविप्रकृष्टोऽनौचित्यपरिहाराद्, नातिदूरे वा स्थाने, *'सुस्सूसमाणे'*त्ति भगवद्वचनानि श्रोतुमिच्छन् *'अभिमुहे'*त्ति अभि भगवन्त लक्ष्यीकृत्य मुखमस्य इत्यभिमुखः, तथा *'विणएणं'*त्ति विनयेन हेतुना *'पंजलिउडे'*त्ति प्रकृष्ट प्रधानो ललाटतटघटितत्वेन, अञ्जलिर्हस्तन्यासविशेष, कृतो विहितो येन स, ''अग्न्याहितादि''दर्शनात् प्राञ्जलिकृतः; *'पज्जुवासमाणे'*त्ति पर्युपासीन सेवमानः, अनेन च विशेषणकदम्बकेन श्रवणविधिरुपदर्शित, आह च —''*णिद्दा–विगहा–परिवज्जिएहिं गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं, भत्तिबहुमाणपुव्व उवउत्तेहिं सुणेअव्वं*''ति. *'एवं वयासि'*त्ति एव वक्ष्यमाणप्रकारं वस्तु, अवादीद् उक्तवान्.

अन्यव्याख्या.

१७. अन्य तो 'जातश्रद्ध' इत्यादि बार विशेषणोनी व्याख्या आ प्रमाण करे छे. -जेओ पूछवाने श्रद्धावाळा थाय ते जातश्रद्ध, जातश्रद्ध शा माटे थया? तो कहे छे केः—उत्पन्न संशय छे माटे, 'आ पदार्थ आवो होय के आवो?' ए प्रमाणे संशय छे माटे. जातसंशय पण केम थया? तो कहे छे जातकुतूहल छे तेथी. ''आ अर्थने हुं केवी रीते जाणीश?'' आवा प्रकारना अभिप्रायवाळा छे तेथी, आ त्रण विशेषणो अवग्रहनी अपेक्षाए जाणवा. ए प्रमाणे उत्पन्नसंशय, उत्पन्नकुतूहल आदि त्रण विशेषणो ईहानी अपेक्षाए जाणवा. संजातश्रद्ध, संजातसंशय आदि त्रण विशेषणो अपायनी अपेक्षाए समजवा. तेम समुत्पन्नश्रद्ध, समुत्पन्नसंशय अने समुत्पन्नकुतूहल ए त्रण विशेषणो धारणानी अपेक्षाए पण समजवा. बीजाओ कहे छे के जातश्रद्धनी अपेक्षाए

१. आयप्पमाणमित्तो चोद्दिसि होइ उग्गहो गुरुणो, अणणुण्णायस्स सया न कप्पए तत्थ पविसेउं.-प्रवचनसारोद्धारेद्वार. २ गा—१२६ अनु०

१. ए अवग्रहादिक शब्दनुं जैनपरिभाषाए आ प्रमाण विवेचन छे –ज्यारे कोइ पण मनुष्य कोइ पण इंद्रिय के मनद्वारा कोइ एक चीजने जाणे छे त्यारे ते तो एम समजे छे के 'मे आंख उघाडी के पदार्थ जोयो' अर्थात् तेनी एवी कल्पना छे के, इंद्रियोनी के मननी क्रिया थता वार ज वस्तुओनु ज्ञान थाय छे, पण खरी रीते तेम थतुं नथी, वस्तुमात्रनुं ज्ञान थवामां जैनदृष्टिए बहुकाल लागे छे पण ते काल घणो सूक्ष्म होवाथी जाणनार एम ज कल्पे छे के, वस्तुना जाणवामां वार लागती ज नथी कोइ एक युवान अने बलवान पुरुष एक जीर्ण वस्त्रने ज्यारे फाडे छे त्यारे ते तो एम ज समजे छे के, ते वस्त्रने फाडतां वार ज लागी नथी, पण ते वस्त्र फाडता संख्यातीत समयो लागे छे, ते ज प्रमाणे वस्तुमात्रना ज्ञानमां घणो काळ लागे छे जैनदृष्टिए वस्तुमात्रनुं ज्ञान थवामां नीचे प्रमाणे क्रम गोठवायो छे जे कोइ वस्तुने आपणे आपणा मन के इंद्रियद्वारा प्रत्यक्ष करी शकता होइए ते वस्तु संबंधी चोक्कस निर्णय थवा पहेलां सौथी प्रथम ते वस्तुविषयक अवग्रह थाय छे, पछी ते ज वस्तु विषयक ईहा थाय छे अने पछी ते वस्तुनो निर्णय थाय छे, पछी छेवटे ते वस्तुना ज्ञाननो संस्कार जामे छे ते अवग्रहादिकना अर्थनुं विवेचन कर्या पहेला मात्र एक विशेष वात जणाववानी छे अने ते आ छे के–जैनदृष्टिए पूर्वोक्त अवग्रहना बे भेद छे एक व्यंजनावग्रह अने बीजो अर्थावग्रह नेत्रेंद्रिय अने मन शिवायनी चारे इंद्रियोने ते बन्न अवग्रहो होय छे अने नेत्रेंद्रिय तथा मनने मात्र अर्थावग्रह होय छे.

इंद्रिय.	व्यंजनावग्रह	अर्थावग्रह.	ईहा	अवायः	धारणा.
स्पर्शेंद्रिय—चामडी.	छे	छे.	छे.	छे	छे.
रसेंद्रिय—जीभ.	,,	,,	,,	,,	,,
घ्राणेंद्रिय—नाक.	,,	,,	,,	,,	,,
नेत्रेंद्रिय—आंख.	नथी.	,,	,,	,,	,,
श्रोत्रेन्द्रिय—कान.	छे.	,,	,,	,,	,,
मन.	नथी.	,,	,,	,,	,,

''[illegible] जेणऽत्थो घडो व्व दीवेण वंजणं तं च, उवगरणिंदियसद्दाइपरिणय-द्दव्वसंबंधो'' विशेषा० गा० १९४ (य० ग्रं–पृ–११७).

''जेम दीपकद्वारा घट व्यक्त थाय छे तेम जे वडे अर्थ व्यक्त थाय ते व्यंजन, तेनो जे अवग्रह ते व्यंजनावग्रह. अर्थात् स्थूल व्याख्या प्रमाणे शब्दपणे, रसपणे, गंधपणे अने स्पर्शपणे परिणाम पामेल पुद्गलोनो (जड परमाणुओनो) इंद्रियो साथे जे संबंध ते व्यंजन अने तेनो अवग्रह ते 'व्यंजना-

पुनरुक्ति नथी.
उत्थान.

उत्पन्नज्ञानादि विशेषणो अन्यार्थ (भिन्न अर्थवाळां) नथी, (अर्थात् सर्वे समान अर्थवाळां छे) तो पण विवक्षित अर्थनो प्रकर्ष प्रतिपादित करवाने ते समान अर्थवाळा विशेषणोनो स्तुतिमुख (स्तुतिपरायण) ग्रथकारे प्रयोग कर्यो छे. आ स्थले सर्व विशेषणो एक अर्थवाळा छे, तो पण पुनरुक्ति दोष आवी शकतो नथी. कह्युं छे केः "हर्ष, भय वगेरेथी आक्षिप्त (अस्वस्थ) मनवाळो वक्ता, स्तुति करतो अथवा निंदा करतो जे (समान अर्थवाळा) पदोने अनेकवार बोले, तो पण ते पुनरुक्ति दोषने पात्र नथी." आवा विशेषणोयुक्त भगवान् गौतम, ['उट्ठाए उट्ठेइ'त्ति] उत्थया उत्तिष्ठति–उंचा वर्तता (उभा थवाने अभिमुख थता) उठे छे. अहीं 'उत्थया' ए शब्द न मूकतां 'उत्तिष्ठति' एकलुं ज पद राखे, तो क्रियामात्रनो प्रारंभ पण प्रतीत थइ शके छे, अर्थात् 'बेसतां अथवा उठतां कोइ पण क्रिया शरु करवी' एवो अर्थ पण केवल 'उत्तिष्ठति' क्रियाशब्दनो थाय छे. जेम के. (वक्तुमुत्तिष्ठते) बोलवाने आरंभ करे छे, तेथी अहीं तेनो व्यवच्छेद थाय तेम न समजाय–अने स्पष्टरूपे उत्थान (उभा थवुं) ए क्रिया जणाय माटे 'उत्थया' ए 'उत्तिष्ठति' क्रियापद साथे जोड्यु छे. ['उट्ठाए उट्ठित्त'त्ति] उत्थानवडे उठीने ['जेणेवं' इत्यादि] जे दिशाना विभागमां श्रमण भगवंत महावीर छे. ['तेणेव'त्ति] ते दिग्भागमां आवे छे (ते समयनी अपेक्षाए वर्तमानकाल होवाथी शास्त्रकारे पण 'आवे छे' ए प्रमाणे वर्तमानकाळ वापर्यो छे.) जे दिग्भागमां श्रमण भगवत महावीर हता ते स्थले आव्या. आवीने श्रमण भगवंत महावीरने ['तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ'त्ति] आदक्षिण (भगवानना) जमणा हस्तथी आरंभी, 'प्रदक्षिण' प्र परित (भगवतनी चारे तरफ), भमता दक्षिण (जमणा) ज आवे ए प्रमाणे जे भ्रमण ते आदक्षिणप्रदक्षिण. तेम त्रण वार प्रदक्षिणा करे छे, प्रदक्षिणा करी ['वदइ'त्ति] वचनवडे स्तुति करे छे, तथा ['नमंसइ'त्ति] कायद्वारा नमस्कार करे छे. नमस्कार करीने, अवग्रहना परिहारथी ['णच्चासण्णे'त्ति] अति समीप नही, अथवा अति समीप स्थाने नहीं रहेला, अनुचितताना त्यागी–उचितपणाना स्वीकारक होवाथी, ['णाइदूरे'त्ति] अत्यन्त दूर नही, अथवा अत्यन्त दूर स्थले नही रहेला. (भगवतना वचनोने) ['सुस्सूसमाणे'त्ति] शुश्रूषमाण साभळवानी इच्छावाळा, भगवतनी ['अभिमुहे'त्ति] सम्मुख मुखवाळा, अने ['विणएण'त्ति] विनयवडे ['पजलिउडे'त्ति] प्राञ्जलिकृत–ललाटतटने विषे रचित होवाथी प्रकृष्ट, (प्रधान) अजली एटले हस्तद्वयनु स्थापन विशेष जेओए कर्यु छे एवा, तथा ['पज्जुवासमाणे'त्ति] पर्युपासीन सेवता. ['एव वयासि'त्ति] आ प्रमाणे कहेवा लाग्या (आ प्रमाणे विशेषणसमूहथी श्रवण करवानी विधि शास्त्रकारे बतावेली छे) कह्युं छे के. "निद्रा तथा विकथाने त्यजिने, मन, वचन अने कायने गोपवीने, ललाटतटने विषे हस्तपुट स्थापीने. मनुष्योए भक्ति, बहुमानपूर्वक उपयुक्त (दत्तचित्त) थइ श्रवण करवुं".

वन्दनः नमन.
अवग्रहपरिहार.
शुश्रूषमाणः विनय.
पर्युपासना.
श्रवणविधि.

वग्रह' एटले तद्दन अव्यक्त ज्ञान जेनो शब्दथी निर्देश न थइ शके तेवु ज्ञान वि० गा० १९४ (य० ग्रं० पृ–११७). पूर्वे कह्याप्रमाणे आंख अने मन शिवायनी इंद्रियोद्वारा कोइ पण पदार्थनो निर्णय करता पहेला सौथी पूर्व आ व्यंजनावग्रह थाय छे

त्यारबाद अर्थावग्रह थाय छे अर्थ–पदार्थनो जे अवग्रह ते 'अर्थावग्रह' जे वस्तुपरत्वे व्यंजनावग्रह थएलो हतो ते ज वस्तु परत्वे "सामण्णत्थावग्गहणमुग्गहो" वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९) "आ काइ छे एवा प्रकारनुं जे ज्ञान ते अर्थावग्रह अर्थात् कोइ पण प्रकारनी विशेषता विना जे मात्र सामान्यरूपे ज्ञान ते अर्थावग्रह." वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९) आ अर्थावग्रह सर्व इंद्रियोने अने मनने होय छे आ 'अर्थावग्रह' थया पछी 'ईहा' थाय छे. जे "नेयमग्गणमहेहा' वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ०–१०९). 'आ काइ छे' एवुं ज्ञान अर्थावग्रहथी थएलुं हतुं, ते ज वस्तुसंबंधे उत्पन्न थता भेदोना विचारने 'ईहा' कहे छे, अर्थात् 'ते वस्तु अमुक गुणोवाळी छे माटे अमुक होवी जोइए अने अमुक गुणवाळी नथी माटे ते अमुक नथी' एवा प्रकारना ज्ञानने ईहा कहे छे वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९). आ ईहा सर्व इंद्रियो अने मनने होय छे ते ईहा पछी निश्चयात्मक 'अपाय' थाय छे अर्थात् जे वस्तु सबंधे ईहा थएली हती ते ज वस्तुसबंध अपाय थाय छे. 'ईहा' मां आवेल वस्तुनो अवगम–निर्णय–ते अवाय– "तस्सावगमोऽवाओ' वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९). अपाय–छे, अर्थात् 'ते अमुक ज छे' एवा ज्ञानने 'अवाय–अपाय' कहे छे. वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९). आ अपाय सर्व इंद्रियोने अने मनने होय छे त्यारबाद जे पदार्थसबंधे अपाय थएलो हतो ते ज पदार्थ संबंधे धारणा थाय छे ते धारणा वासनारूप–स्मरणरूप–ज्ञानना जामीनरूप छे अपायद्वारा निश्चित वस्तुनी जे अविच्युति–स्मृति, तेने धारणा कहे छे. "अविचुई धारणा तस्स" वि० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९). अर्थात् ज्ञानना दृढ संस्कारने धारणा कहे छे–विशे० गा० १८० (य० ग्रं० पृ–१०९). तात्पर्य ए छे के –दरेक पदार्थोनुं सौथी प्रथम अणु संयोग जन्य अव्यक्त ज्ञान, पछी तद्दन सामान्य ज्ञान, पछी काचो पाको निर्णय, पछी तद्दन निर्णय अने पछी संस्कार थाय छे ए क्रम आंख अने मन शिवायनी इंद्रियोनो छे, पण आंख अने मननो तो बीजो क्रम छे. ते आ छे–सौथी प्रथम अणु सयोग निरपेक्ष तद्दन सामान्य ज्ञान, पछी काचो पाको निर्णय, पछी तद्दन निश्चय अने पछी संस्कार थाय छे. पूर्वे कह्या प्रमाणे आंख अने मनने 'व्यजनावग्रह' होतो नथी तेमा कारणरूपे नीचेनी वात छे –कोइ पण पदार्थना स्पर्शनुं ज्ञान करवुं होय त्यारे चामडी (स्पर्शेंद्रिय) साथे स्पर्शपणे परिणाम पामेल पुद्गलोनो संयोग जरुर अपेक्षित छे कोइ पण पदार्थना रसनुं ज्ञान करवुं होय त्यारे जीभ (रसेंद्रिय) साथे रसपणे परिणामपामेल पुद्गलोनो सयोग जरुर अपेक्षित छे कोइ पण पदार्थना गंधनुं ज्ञान करवुं होय त्यारे नाक (घ्राणेंद्रिय) साथे गंधपणे परिणाम पामेल अणुओनो सयोग जरुर अपेक्षित छे, अने कोइ पण चेतनजन्य के अचेतनजन्य शब्दनुं ज्ञान करवुं होय त्यारे कान (कर्णेंद्रिय) साथे शब्दपणे परिणाम पामेल अणुओनो सयोग जरुर अपेक्षित छे तथापि कोइ पण पदार्थना रूपनुं ज्ञान करवुं होय त्यारे आंख (नेत्रेंद्रिय) साथे रूपपणे परिणाम पामेल पुद्गलोना सयोगनी कशी पण जरुर नथी. तेम ज कोइ पण पदार्थविषयक मनन करवुं होय त्यारे मन साथे कोइ पण प्रकारना अणुओना संयोगनी कशी पण जरुर नथी. आ प्रमाणे जैनदर्शन स्वीकारे छे. माटे पूर्वोक्त स्वरूपवाळो 'व्यंजनावग्रह' आंख अने मनने होतो नथी. 'आंख अने मनने पोताना विषयनुं ज्ञान करवामा पदार्थना संयोग (स्पर्श)नी जरुर शा माटे नथी ?' ए प्रश्नना निराकरण माटे जिज्ञासुओए "रत्नाकरावतारि०. तथा "स्याद्वादरत्नाकर'ना द्वितीय प० सू० ५. मानी टीका. "विशेषावश्यक" भाग बीजामानु व्यंजनावग्रहनुं गा० २०४ थी २४९ (य० ग्रं० पृ थी १४७) सुधीनु प्रकरण मननपूर्वक धारवुं –अनु०

१. अही आगळ आवनारी 'उपागच्छति–आवे छे.' ए क्रियानी अपेक्षाए पूर्वकाल बताववाने 'उत्थाय–उठीने' ए ठेकाणे 'क्त्वा' प्रत्ययवडे निर्देश कर्यो छे. २. अही प्राकृत प्रयोगथी अथवा अव्यय होवाथी 'जेण' शब्दनो 'यस्मिन्' ए प्रमाणे सप्तमीनो अर्थ कर्यो छेः–श्रीअभयदेव.

३. चारे दिशामा आत्मप्रमाणमात्र–शरीरप्रमाण साडात्रण हाथ गुरुनो अवग्रह होय छे. ते अवग्रहमां गुरुनी आज्ञा विना हमेशा प्रवेश करवो कल्पतो नथी; अर्थात् विनेयजन गुरुथी साडात्रण हाथ दूर बेसे तेने अवग्रह कहे छे.–प्रवचनसारोद्धार, द्वार २ गाथा १२६ः–अनु०

४. 'कृतप्राञ्जलि'ने बदले 'प्राञ्जलिकृत' शब्द मूक्यो छे ते 'आहिताग्न्यादि' गणने आधारे छेः–श्रीअभय०

शतक १.—उद्देशक १.

चलमान चलित.—निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण.—एकार्थ छे?.—नानार्थ छे?.—उत्पन्नपक्ष.—विगतपक्ष.—सर्वजीवस्थित्यादिविचार.—नैरयिकस्थिति.—नैरयिकश्वासोच्छ्वास.—नैरयिकआहार.—आहारपरिणाम.—चितोपचितादि.—नैरयिकपुद्गलभेद.—चयोपचयादि.—अपवर्तनादि.—नैरयिकपुद्गलग्रहणादि.—नैरयिककर्मबंधादि.—असुरकुमारस्थिति.—असुरकुमारश्वासोच्छ्वास.—असुरकुमारआहार.—आहारपरिणाम.—चितोपचितादि.—असुरकुमारकर्मबंधादि.—नागकुमारस्थित्यादि.—सुवर्णकुमारादि.—पृथिवीकायिकजीवस्थिति.—पृथिवीकायिकजीवआहारादि.—जलजीव, अग्निजीव, वायुजीव अने वनस्पतिजीवस्थितिआहारादि —कीटपतंगविचार.—द्वींद्रियजीवस्थिति—आहारादि.—लोमाहार.—प्रक्षेपाहार.—त्रींद्रिय—चतुरिंद्रियजीवस्थित्यादि.—पंचेंद्रियतिर्यंचजीवस्थित्यादि.—मनुष्यस्थित्यादि.—वानव्यंतरस्थित्यादि.—ज्योतिष्क—सूर्यचंद्रादि—स्थित्यादि.—वैमानिकस्थित्यादि.—शुं जीव आत्मारंभ, परारंभ, तदुभयारंभ के अनारंभ छे?.—जीवभेद.—आत्मारंभत्वादिनुं कारण —नैरयिकादिवैमानिकपर्यंतजीवनो आत्मारंभादिविचार.—लेश्यावाळा जीवनो आत्मारंभादिविचार.—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप अने संयम शुं ऐहभविक, पारभविक के उभयभविक छे?.—असंवृत अनगार सिद्ध थाय?.—असंवृत मुनि शामाटे सिद्ध न थाय?.—संवृत अनगार सिद्ध थाय?.—संवृत अनगार शामाटे सिद्ध थाय?.—असंयत जीव देव थाय?.—असंयत जीव शामाटे देव थाय? अने शामाटे देव न थाय?.—वानव्यंतर देवोना रहेठाणो-देवलोको-केवा होय?—उद्देशकसमाप्ति अने गौतम विहार.—

१. प्रश्नः—[१]से णूणं भंते! चलमाणे चलिए?, उदीरिज्जमाणे उदीरिए?, वेइज्जमाणे वेइए?, पहिज्जमाणे पहीणे?, छिज्जमाणे छिन्ने?, भिज्जमाणे भिन्ने?, डज्झमाणे दड्ढे?, मिज्जमाणे मडे?, निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे?.

१. प्र०—हे भगवन्! जे चालतुं होय ते 'चाल्युं' (ए प्रमाणे कहेवाय)? तेम ज जे उदीरातुं होय ते 'उदीरायुं', वेदातुं होय ते 'वेदायुं', पडतुं होय ते 'पड्युं,' छेदातुं होय ते 'छेदायुं,' भेदातुं होय ते 'भेदायुं,' बळतुं होय ते 'बळ्युं,' मरतुं होय ते 'मर्युं', अने निर्जरातुं होय ते 'निर्जरायुं' (ए प्रमाणे कहेवाय)?.

१. उत्तरः—हंता, गोयमा! चलमाणे चलिए, जाव निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे.

१. उ०—हा, गौतम! चालतुं होय ते 'चाल्युं', यावत् निर्जरातुं 'निर्जरायुं', ए प्रमाणे कहेवाय.

---

१. मूलच्छायाः—तद् नूनं भगवन्!, चलत् चलितम्?, उदीर्यमाणम्—उदीरितम्?, वेद्यमानं वेदितम्?, प्रहीयमाणं प्रहीणम्?, छिद्यमानं छिन्नम्?, भिद्यमानं भिन्नम्?, दह्यमानं दग्धम्?, म्रियमाणं मृतम्?, निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम्?. हन्त, गौतम! चलत् चलितम्, यावद् निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम्.

१. भगवंत महावीरना समयमां जे अनेक दार्शनिको हता; तेमां जमालि नामना भगवंत महावीरना भाणेज पण एक दार्शनिक तरीके हता. तेमनुं मंतव्य तो अमारी जाणमां नथी तेम ते क्यांय उपलब्ध होय तेम जणातुं पण नथी, पण भगवंत महावीरना अने तेमना सिद्धांतमां खास भेद हतो ते जणाववाने श्रीजिनप्रवचन साक्षिभूत छे. भगवंत महावीरनो आगम अनेकांतवादपूर्ण छे, एटले ते आगम एक ज पदार्थने पण अनेक-दृष्टिओथी भिन्न भिन्न रूपे जोइ शके छे. श्रीयुत जमालिना मतनुं प्रदर्शक उदाहरण नीचे प्रमाणे छेः—एक शाळवीने आपणे सूतर आपी एक वणवानुं कह्युं. ते शाळवीए आपेल सूतरथी कपडुं वणवानुं काम पण शरु कर्युं बीजा बे चार दिवस पछी ज्यारे आपणे ते शाळवीने पूछीशुं के, 'शुं थयुं?' त्यारे ते कहेशे के, 'सूतरनुं कपडुं वणायुं छे.' खरी रीते तो पूरुं कपडुं वणायुं नथी, तो पण शाळवीनुं कहेवुं लोको साचुं माने तेम मानी तेने पैसा धीरवा वगेरेनो व्यवहार करे छे. जो ते शाळवीनुं कहेण साचुं न होय तो लोक एवो मूर्ख नथी के तेने साचुं मानी व्यवहार चलावे. आ प्रसंगमां जमालिनुं एवुं मंतव्य छे के, ते शाळवीनुं कहेण अने तेने साचुं मानी व्यवहार करनार समस्त लोक खोटो ज छे; कारण के कपडुं पूरुं वणायुं नथी छतां शाळवी अने लोक 'कपडुं वणायुं छे' एम माने छे. श्रमण भगवंत महावीरनो एवो सिद्धांत छे के, शाळवीनुं वक्तव्य अने लोकमत बन्ने साचां पण छे. तेओ कहे छे के, निश्चयनयने अवलंबी कपडानो सूक्ष्मभाग वणायो होय तो पण 'कपडुं वणायुं' एम बोलवामां असत्यता नथी अने व्यवहारनयने अवलंबी पूरुं कपडुं वणाय त्यारे ज कपडुं वणायुं कहेवाय. ए ज प्रमाणे ('वणातुं होय ते वणायुं' ए प्रमाणे) 'चालतुं होय ते चाल्युं' वगेरे उपर्युक्त पदो जाणी लेवां. तात्पर्य ए ज के, जे वात एक नजरथी अवलोकतां खोटी लागे ते वात पण बीजी नजरे साची देखाय के माटे वात खोटी छे एम न कहेतां पोतानी दृष्टि एक पक्षीय छे एम कहेवुं ए श्रेय छे. आ जमालिना मतनुं विवेचन करवा माटे

६ श० सू०

भगवान् गौतम आ प्रश्न करे छे. आ जमालिना मतनुं नाम 'बहुरतदृष्टि' पण छे. अमारा ख्याल प्रमाणे 'बहुरत' शब्दनो अर्थ आ छेः–बहु=घणुं, रत=रमेल–लीन, जमालि पोते जे कार्य बहु–तद्दन पूरुं–थयुं देखे तेने ज 'कृत' कार्य कहे छे, माटे जे मंतव्य बहु भागमां–स्थूलभागमां–रत होय ते 'बहुरत' कहेवाय अने ते मंतव्यने स्वीकारनारा लोको पण 'बहुरत' कहेवाय. तेओनी जे दृष्टि ते 'बहुरत'दृष्टि. ए शब्दनो व्यवहार जैनप्रवचनमां घणे स्थळे छे. ते मतनो अने तेना स्थापक जमालिआचार्यनो तथा ते प्रकारना मतनी उत्पत्तिनो हेवाल नीचे प्रमाणे छेः—

"चोद्दस वासाणि तया जिणेण उप्पाडिअस्स नाणस्स, तो बहुरयाण दिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना." २३०६. "चतुर्दश वर्षाणि तदा जिनेन श्रीमन्महावीरेण, उत्पादितस्य केवलज्ञानस्य, ततोऽत्रान्तरे, बहुरतनिह्नवानां दर्शनं दृष्टिः, श्रावस्त्यां नगर्यां समुत्पन्नेति." × × × × × "जिट्ठा, सुदंसण जमालि णोज्ज सावत्थी तिंदुगुज्जाणे, पंच सया य सहस्सं ढंकेण जमालि मोत्तूणं." २३०७. × × × "इहैव भरतक्षेत्रे कुण्डपुरं नाम नगरम्. तत्र भगवतः श्रीमन्महावीरस्य भागिनेयो जमालिर्नाम राजपुत्र आसीत्. तस्य च भार्या श्रीमन्महावीरस्य दुहिता तस्याश्च ज्येष्ठेति वा, सुदर्शनेति वा, अनवद्याङ्गीति वा नामेति. तत्र पञ्चशतपुरुषपरिवारो जमालिर्भगवतो महावीरस्य अन्तिके प्रव्रज्यां जग्राह. सुदर्शनाऽपि सहस्रस्त्रीपरिवारा तदनु प्रव्रजिता. ततश्च एकादशसु अङ्गेष्वधीतेषु जमालिना भगवान् विहारार्थं मुत्कलापित. ततो भगवता तूष्णीमास्थाय न किञ्चित् प्रत्युत्तरमदायि. तत एवममुत्कलितोऽपि पञ्चशतसाधुपरिवृतो निर्गतः श्रीमन्महावीरान्तिकात् ग्रामानुग्रामं च पर्यटन् गतः श्रावस्तीनगर्याम्. तत्र च तैन्दुकाभिधानोद्याने कोष्ठकनाम्नि चैत्ये स्थितः. ततश्च तत्र तस्य अन्त–प्रान्ताहारैस्तीव्रो रोगातङ्कः समुत्पन्नः, तेन च न शक्नोत्युपविश्य स्थातुम्. ततो बभाण श्रमणान्–'मन्निमित्तं शीघ्रमेव संस्तारकमास्तृणीत, येन तत्र तिष्ठामि' ततस्तैः कर्तुमारब्धोऽसौ बाढं च दाहज्वराभिभूतेन जमालिना पृष्टम्–'संस्तृतः संस्तारको नवा ?' साधुभिश्च संस्तृतप्रायत्वाद् अर्धसंस्तृतेऽपि प्रोक्तम्–'संस्तृतः' इति. ततोऽसौ वेदनाविह्वलितचेता उत्थाय तत्र निषण्णोऽर्धसंस्तृतं तद् दृष्ट्वा क्रुद्ध 'क्रियमाणं कृतम्' इत्यादि सिद्धान्तवचनं स्मृत्वा मिथ्यात्वमोहनीयोदयतो वक्ष्यमाणयुक्तिभिर्वितथमिति चिन्तयामास. ततः स्थविरैर्वक्ष्यमाणाभिरेव युक्तिभिः प्रतिबोधितो यदा कथमपि न प्रतिबुध्यते तदा गतास्तं परित्यज्य भगवत्समीपे, अन्ये तु तत्समीप एव स्थिताः, सुदर्शनाऽपि तदा तत्रैव श्रावकढङ्ककुम्भकारगृह आसीत्: जमाल्यनुरागेण च तन्मतमेव प्रपन्ना ढङ्कमपि तद् ग्राहयितुं प्रवृत्ता. ततो ढङ्केन 'मिथ्यात्वमुपगतेयम्' इति ज्ञात्वा प्रोक्तम 'नेदृशं किमपि वयं जानीमः'. अन्यदा च आपाकाभिमध्ये भृद्भाजनोद्वर्तन–परावर्तनं कुर्वता अङ्गारकमेकं प्रक्षिप्य तत्रैव प्रदेशे स्वाध्यायं कुर्वत्याः सुदर्शनायाः संघाट्येकदेशो दग्धः, ततस्तया प्रोक्तम्–'श्रावक! किं त्वया मदीयसंघाटी दग्धा ?' तेनोक्तम–'ननु दह्यमानमदग्धम्' इति भवतां सिद्धान्तः, तत क्व केन त्वदीया संघाटी दग्धा ?' इत्यादि तदुक्तं परिभाव्य संबुद्धाऽसौ 'सम्यक प्रेरितास्मि' इत्यभिधाय मिथ्या दुष्कृतं ददाति, जमालिं च गत्वा प्रज्ञापयति यदा चासौ कथमपि न प्रज्ञाप्यते तदाऽसौ सपरिवारा, शेषसाधवश्च एकाकिनं जमालिं मुक्त्वा भगवत्समीपं जग्मुः. जमालिस्तु बहुजनं व्युद्ग्राह्य अनालोचितप्रतिक्रान्तः कालं कृत्वा किल्बिषिकदेवेषु उत्पन्नः व्याख्याप्रज्ञप्त्यागमाच्च एतच्चरितं विस्तरतोऽवसेयमिति. एष संग्रहगाथाभावार्थः. अक्षरार्थस्त्वयम्– × × × ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्याङ्गीति जमालिगृहिणीनामानि. अन्ये तु व्याचक्षते–'ज्येष्ठा—महत्तरी, सुदर्शना नाम भगवतः श्रीमन्महावीरस्य भगिनी, तस्याः पुत्रो जमालिः. अनवद्याङ्गीनाम भगवतो दुहिता जमालिगृहिणी' इति. श्रावस्त्यां नगर्यां तैन्दुकोद्याने 'जमालिनिह्नवदृष्टिरुत्पन्ना, इति वाक्यशेषः. तत्र पञ्च शतानि साधूनाम्, सहस्रं च आर्यिकाणाम्, एतेषां मध्ये यः स्वयं न प्रतिबुद्धस्तं जमालिं मुक्त्वा ढङ्केन प्रतिबोधित इति. × × × × × २३०७–विशेषावश्यकसूत्रे (य० ग्रं० पृ–९३५–३६)

श्रमण भगवंत महावीर केवलज्ञानी थया पछी चौद वरसे 'श्रावस्ती' नगरीमां 'बहुरत'नामना निह्नवोनुं दर्शन (मत) पेदा थयुं. गा– २३०६. तेनुं संक्षिप्त इतिवृत्त आ छेः–आ ज भरतखंडमां 'कुंडपुर' नामनुं शहेर हतुं. त्यां भगवंत महावीरनो भाणेज जमालि नामे राजपुत्र रहेतो हतो. भगवंत महावीरनी पुत्री ते जमालिनी वहू हती. तेना नाम त्रण छेः–ज्येष्ठा, सुदर्शना अने अनवद्यांगी. कालक्रमे करी ते कुंडपुर शहेरमां पांचसो पुरुषनी साथे जमालि नामना राजपुत्रे भगवंत महावीरनी पासे दीक्षा लीधी. त्यार पछी तेनी पाछळ एक हजार स्त्रीओ साथे ते जमालिनी पत्नीए (सुदर्शनाए) पण दीक्षा लीधी. त्यार बाद जमालिनामे साधु ज्यारे अग्यार अंगोने भण्यो त्यारे तेणे भगवंतथी मोकळा थवाने भगवंतनी आज्ञा मागी पण भगवंते चूप रहीने कांइ पण प्रत्युत्तर न आप्यो. भगवंने तेने (जमालिसाधुने) छुटा थवानी आज्ञा न आपी तो पण ते पांचसे साधुओने साथे लइने भगवंत महावीरनी पासेथी बहार जवाने निकळ्यो अने गामे गाम फरतो श्रावस्ती–'सावत्थी' नामनी नगरीमां आव्यो. त्यां ते 'तैंदुक' नामना उद्यान (बगीचा) मां 'कोष्टक' नामना चैत्यमां रह्यो. त्यार बाद ते लुखा सूका आहारने लेतो होवाथी तेना शरीरमां रोगातंक उत्पन्न थयो तेथी ते बेसी रहेवाने पण असमर्थ निवड्यो, अर्थात् ते रोगथी ते बेसी शकतो पण नहीं. तेथी तेणे साथे आवेला साधुओने कह्युं के.–'मारे माटे शीघ्र संथारो (पथारी) पाथरो के जेथी हुं त्यां स्थिति करुं–शयन करुं.' त्यार बाद ते साधुओए पथारी पाथरवानी शरुआत करी दाहज्वरथी अत्यंत पीडा पामेल ते जमालिए पूछ्युं केः–'पथारी पथराइ रही के नहीं ?' ज्यारे जमालिए पूर्वप्रमाणे प्रश्न कर्यो त्यारे जो के पथारी पूरी पथराइ न हती, अडधी पथराइ हती तो पण (कोइ अपेक्षाने अवलंबी) ते साधुओए एम कह्युं केः–'पथारी पथराइ छे.' त्यार बाद पीडाथी भांभळा चित्तवाळो बनेलो ते जमालि उठीने ज्यां पथारी तैयार थती हती त्यां आव्यो अने आवीने अडधी (तैयार थएली) पथारीने जोइने क्रुद्ध थयो. पछी 'करातुं होय ते करायुं कहेवाय' इत्यादि आगम (शास्त्र) ना वचनने संभारी मिथ्यात्वमोहनीयना उदयथी ते खोटुं छे अर्थात् 'करातुं होय ते करायुं कहेवाय' इत्यादि शास्त्रना वचनो खोटा छे एम हवे पछी कहेवाशे एवी युक्तिओथी चिंतववा लाग्यो. त्यारे तेने समजाववा माटे स्थविरोए हवे पछी कहेवाशे एवी युक्तिओनो ज उपयोग कर्यो. पण ते कोइ प्रकारे समज्यो नहीं त्यारे ते स्थविर मुनिओ तेनो परित्याग करीने भगवंतनी पासे गया. बीजा (स्थविर सिवायना मुनिओ) तो ते जमालिनी पासे ज रह्या. सुदर्शना पण 'ढंक' नामना कुंभार श्रावकने घरे (ज्यां जमालि हतो) त्यां ज रही अने तेणे जमालि उपरना अनुरागथी तेनो ज मत स्वीकार्यो. ते ढंक नामना कुंभारने (भगवंत महावीरनो जे श्रावक हतो) पण तेना मतनो स्वीकार कराववा प्रवृत्त थइ. त्यारे ते ढंक श्रावके 'सुदर्शना पण मोह–असत्यमार्ग–ने पामी छे' एम जाणीने कह्युं के, 'एवुं कांइ पण अमे जाणता नथी.' बीजे कोइ वखते ज्यारे ते ढंक कुंभार निभाडामां मुकेल माटीना वासणोनो हेर फेर करतो हतो त्यारे तेणे एक अंगारो स्वाध्यायने करती ते सुदर्शनाना कपडामां मुक्यो जेथी तेनी संघाटीनो छेडो बळ्यो. त्यारे ते सुदर्शनाए कह्युं के,' हे श्रावक! मारी संघाटी कां बाळी ?' पछी ते ढंके कह्युं के, 'बळतुं होय ते बळ्युं न कहेवाय' एम तमारो सिद्धांत छे अने आ संघाटी तो हजु सुधी दग्ध नथी पण दह्यमान–बळती–छे माटे 'क्यारे अने कोणे तारी संघाटी बाळेली छे ?' इत्यादि ते ढंकनुं कहेण साभळीने ते सुदर्शना समजी गइ के जमालिनुं मंतव्य युक्ति अने शास्त्र विरुद्ध छे. पछी ते सुदर्शनाए ढंकने 'तमे ठीक प्रेरणा करी–ठीक समजावी' एम कहीने पोते मानेल खोटी वातनी माफी आपी. पछी तेणे (सुदर्शनाए) जइने जमालिने समजाव्यो, पण ज्यारे ते कोइ प्रकारे न समज्यो त्यारे तेने मूकीने ते सुदर्शना साध्वी पोतानो परिवार लइने भगवंतनी पासे गइ अने बाकी रहेल साधुओ पण भगवंतनी पासे गया. जमालि तो घणा माणसोने

१. 'से' इति तद् यदुक्तं पूज्यैः 'चलत् चलितम्' इत्यादि. 'णूणं'ति एवमर्थे, तत्र तत्राऽस्यैवंव्याख्यातत्वात्, अथवा 'से' इतिशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धोऽथशब्दाऽर्थे वर्तते, अथशब्दस्तु वाक्योपन्यासार्थः, परिप्रश्नार्थे वा; यदाहः—"अथ प्रक्रिया-प्रश्ना-ऽऽनन्तर्य-मङ्गलो-पन्यास-प्रतिवचन-समुच्चयेषु" नूनम्—इति निश्चितम्, 'भंते'त्ति[१] गुरोरामन्त्रणम्, ततश्च हे भदन्त! कल्याणरूप! सुखरूप! इति वा, 'भदि कल्याणे सुखे च' इति वचनात्, प्राकृतशैल्या वा भवस्य संसारस्य, भयस्य वा भीतेरन्तहेतुत्वाद् भवान्तो भयान्तो वा; तस्याऽऽमन्त्रणम्—हे भवान्त! हे भयान्त! वा, भान् वा ज्ञानादिभिर्दीप्यमान! 'भा दीप्तौ' इति वचनात्; भ्राजमान! वा दीप्यमान! 'भ्राजृ दीप्तौ' इति वचनात्. अयं च आदित आरभ्य 'भंते'त्ति—पर्यन्तो ग्रन्थो भगवता सुधर्मस्वामिना पञ्चमाङ्गस्य प्रथमशतस्य प्रथमोद्देशकस्य संबन्धार्थमभिहितः, अथ अनेन सम्बन्धेनाऽऽयातस्य पञ्चमाङ्गप्रथमशतप्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्:—'चलमाणे चलिए' इत्यादि. अथ केनाऽभिप्रायेण भगवता सुधर्मस्वामिना पञ्चमाङ्गप्रथमशतप्रथमोद्देशकस्याऽर्थोऽनुकथनं कुर्वता एवमर्थवाचकं सूत्रमुपन्यस्तम्, नान्यानि इति? अत्रोच्यते, इह चतुर्षु पुरुषार्थेषु मोक्षाख्यः पुरुषार्थो मुख्यः सर्वाऽतिशायित्वात्, तस्य च मोक्षस्य साध्यस्य, साधनानां च सम्यग्दर्शनादीनां साधनत्वेनाऽव्यभिचारिणामुभयनियमस्य शासनाच्छास्त्रं सद्भिरिष्यते, उभयनियमस्त्वेवम्:—सम्यग्दर्शनादीनि मोक्षस्यैव साध्यस्य साधनानि नान्यस्यार्थस्य, मोक्षश्च तेषामेव साधनानां साध्यो नान्येषामिति, स च मोक्षो विपक्षक्षयात्, तद्विपक्षश्च बन्धः—स च मुख्यः कर्मभिरात्मनः संबन्धः, तेषां तु कर्मणां प्रक्षयेऽयमनुक्रम उक्तः—'चलमाणे'त्ति चलत् स्थितिक्षयादुदयमागच्छद्—विपाकाऽभिमुखीभवद् यत् 'कर्म' इति प्रकरणगम्यम्, तच्चलितम्—उदितमिति व्यपदिश्यते; चलनकालो हि उदयावलिका, तस्य च कालस्याऽसंख्येयसमयत्वादादि—मध्या-ऽन्तयोगित्वम्, कर्मपुद्गलानामप्यनन्ताः स्कन्धा अनन्तप्रदेशास्ततश्च ते क्रमेण प्रतिसमयमेव चलन्ति, तत्र योऽसावाद्यः चलनसमयस्तस्मिंश्चलदेव तच्चलितमुच्यते. कथं पुनस्तद्वर्तमानं सदऽतीतं भवति? इति. अत्रोच्यते, यथा पट उत्पद्यमानकाले प्रथमतन्तुप्रवेशे उत्पद्यमान एवोत्पन्नो भवतीति, उत्पद्यमानत्वं च तस्य प्रथमतन्तुप्रवेशकालादारभ्य 'पट उत्पद्यते' इत्येवं व्यपदेशदर्शनात् प्रसिद्धमेव, उत्पन्नत्वं तूपपत्त्या प्रसाध्यते:—

१. ['से' इति] से एटले ते, के जे पूज्योए 'चालतो छे ते चाल्यो' इत्यादि कह्युं छे, (ए) ['णूणं'ति]नूनम्—ए प्रमाणे छे? अथवा ए निश्चित छे? (कारण के ते ते स्थले आनी 'नूनम्' शब्दनी 'ए प्रमाणे' अर्थमां व्याख्या करेली छे) अथवा, 'से' शब्द 'अथ' शब्दना अर्थमां मागधदेशी प्रसिद्ध छे, अने 'अथ' शब्द तो वाक्यना आरंभने माटे, अथवा प्रश्नने माटे समजवो. कह्युं छे के, "अथ शब्द प्रकरण, प्रश्न, अनन्तरपणुं, मंगल, प्रारंभ, उत्तर तथा समुच्चय बतावनार छे" ['भंते'त्ति][१] 'भन्ते' ए शब्द गुरुना आमन्त्रणनो सूचक छे, तेथी भंते—हे भदन्त! एटले हे कल्याणस्वरूप अथवा सुखस्वरूप!, अथवा 'भंते!'

भमावीने—पोताना मतमां घणा माणसोने मेळवीने—मरण पामी किल्बिषिक देवोमां उत्पन्न थयो. आ जमालिनुं चरित्र जो विस्तारपूर्वक जाणवुं होय तो भगवती नामना पांचमा अंगमां नवमशतकना तेत्रीशमा उद्देशकमां (क० आ० पृ०—७९९—८४९) जमालिनुं जे चरित्र कह्युं छे ते जाणवुं. ए प्रमाणे उपली संग्रह गाथानो भावार्थ छे, ते गाथानो अक्षरार्थ तो आ छे—ज्येष्ठा, सुदर्शना अने अनवद्यांगी, ए त्रणे नाम जमालिनी घरवाळीनां छे बीजाओ तो कहे छे के:—"भगवंत महावीरनी ज्येष्ठा एटले मोटी सुदर्शना नामे बहेन छे तेनो पुत्र जमालि छे अने अनवद्यांगी नामनी भगवंतनी पुत्री छे जे जमालिनी गृहिणी छे. 'श्रावस्ती—सावत्थी' नगरीमां तैंदुकनामना उद्यानमां जमालिनामना निह्नवनो मत उत्पन्न थयो. तेमां पांचसे साधुओ अने एक हजार साध्वीओ हती. तेमांथी केटलाक तो पोतानी मेळे जमालिना मतने खोटो समजी भगवंत महावीर पासे गया हता जेओ पोतानी मेळे जमालिना मतनी असत्यता न समजी शक्या हता तेने ढंकनामना श्रावके समजाव्या. मात्र एक जमालि कोइ प्रकारे समज्यो नहीं गा—२३०७—विशेषा० (य० ग्रं० पृ—९३५—३६). आ जमालिना सिद्धांतनुं समर्थन अने सत्यासत्यता श्रीविशेषावश्यकसूत्रमां सविस्तर जणावी छे. ते माटे जुओ—विशेषा० (गा० २३०६ थी २३३२. य० ग्रं० पृ०—९३५थी ९४५.)—अनु०

१. भदि कल्लाण—सुहत्थो धाऊ तस्स य भदंत—सद्दोऽयं. स भदंतो कल्लाणो सुहो य + + ३४३९. व्याख्या—'भदि कल्याणे सुखे च' इति भदि, धातुः कल्याणार्थः, सुखार्थश्च. तस्य भदि—धातोर्भदन्त इत्यौणादिकप्रत्यये भदन्तशब्दोऽयं निष्पद्यते, ततः स्थितमिदं स भदन्त—कल्याणः, सुखश्च. ३४३९. अथवा 'भन्ते' इति नेदं 'भदन्त' इत्यामन्त्रणम्, किन्तु 'भजन्त' इति. कया व्युत्पत्त्या? इत्याह—अहवा भय सेवाए' तस्स भयन्तो त्ति सेवए जम्हा, सिवगइणो सिवमग्गं सेव्वो य जओ तदत्थीण ३४४६. अथवा 'भज श्रिञ सेवायाम्' इति भजधातु, तस्य भजते सेवते इति भजन्तः तस्य संबोधनं हे भजन्त गुरो!. स चेह कस्मात्? उच्यते—यस्मात् सेवते, कान्? शिवगतीन् सिद्धिगतिप्राप्तान्, अथवा दर्शन—ज्ञान—चारित्रलक्षणं शिवमार्गं मोक्षमार्गम्, अथवा सेव्यश्च यस्मादसौ तदर्थिनां मोक्षमार्गार्थिनाम्, तस्माद् भज्यते सेव्यते इति भजन्त इत्युच्यते, ३४४६. अथवा भान्तो भ्राजन्तो वा गुरुरुच्यते, कथम्? इत्याहः—अहवा भा भाजो वा दित्तीए होइ तस्स भंतो त्ति, भाजंतो वायरिओ सो नाणतवोगुणजुईए. ३४४७. अथवा भाधातुर्भ्राजधातुर्वा 'दित्तीए'त्ति दीप्तौ पठ्यते, तस्य भान्तो भ्राजन्त इति वा भवति. स चैवंभूतः कः? इत्याह—आचार्यः, स च कथं भाति, भ्राजते वा? इत्याहः—ज्ञान—तपोगुणदीप्त्येति. ३४४७. अथवा भ्रान्तो भगवान् वाऽसाविति दर्शयन्नाह:—अहवा भंतोऽवेओ जं मिच्छत्ताइबंधहेउओ, अहवेसरियाइभगो विज्जइ से तेण भगवंतो. ३४४८. अथवा 'भ्रम अनवस्थाने' इत्यस्य धातोर्भ्रान्त इत्युच्यते, यस्मादपेतोऽसौ मिथ्यात्वादिबन्धहेतुभ्य इति. अथवा ऐश्वर्यादिकः षड्विधो भगो विद्यते 'से' तस्य, तेन भगवान् गुरुरिति. ३४४८. अथवा भवान्तो भयान्तो वाऽयमित्याऽऽदर्शयन्नाह:—नेरयाइभवस्स य अंतो जं तेण सो भवान्तो त्ति. अहवा भयस्स अंतो होइ भयंतो भयं तासो. ३४४९. अथवा यस्माद् नारकादिभवस्यान्तहेतुत्वादन्तोऽसौ तेन भवान्त इति, अथवा भयस्यान्तो भयान्तो भवति, भयं च त्रास उच्यते. ३४४९.—विशेषावश्यकः—अनु०

१. 'विशेषावश्यक' सूत्रमां 'भन्ते' शब्दनी व्याख्या आ प्रमाणे छेः—'भदन्त,' 'भजन्त,' 'भान्त,' 'भ्राजन्त,' 'भ्रान्त,' 'भगवत्,' 'भयान्त' अने 'भवान्त' शब्द परथी 'भन्ते' शब्द बने छे. तेनी व्याख्या नीचे प्रमाणे छेः—कल्याण अने सुख अर्थवाळा 'भदि' धातु परथी 'भदन्त' शब्द बने छे. तेनो अर्थ कल्याणरूप अने सुखरूप थाय छे. अथवा सेवा अर्थवाळा 'भज' धातु परथी 'भजन्त' शब्द बने छे. 'भजन्त' एटले सिद्धिगतिने प्राप्त जीवोने जे सेवे ते, अथवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप मोक्षमार्गने जे सेवे ते, अथवा मोक्षार्थी पुरुषोवडे जे सेवाय ते. अथवा दीप्ति अर्थवाळा 'भा' धातु परथी 'भान्त' शब्द बने छे. 'भान्त' एटले ज्ञान तथा तपादि गुणोनी दीप्तिथी जे युक्त होय ते. अथवा दीप्ति अर्थवाळा 'भ्राज' धातु परथी 'भ्राजन्त'

प्राकृतशैली होवाथी, भव एटले संसारना नाशकारी होवाथी भवान्त, वा भीतिना नाशकारक होवाथी भयान्त, तेना संबोधनमां हे भवान्त! अथवा हे भयान्त!. अथवा भाॅन्=ज्ञानादिवडे दीप्यमान, वा भ्राजमान=दीप्यमान हे गुरो! अर्थात् हे गुरो! आपे कहेलुं 'चालतुं ते चाल्युं' इत्यादि ए प्रमाणे छे?. आदिथी आरंभीने 'भंते!' सुधीनो आ ग्रन्थ, भगवान् सुधर्मास्वामिए पांचमा अंगना प्रथम शतकना प्रथम उद्देशकना संबंधमाटे कह्यो. हवे आ संबंधे आवेला पांचमा अंगना, प्रथम शतकना, पहेला उद्देशकनुं आ ['चलमाणे चलिए' इत्यादि] प्रथम सूत्र छे. शंकाः—पांचमां अंगना प्रथम शतकना पहेला उद्देशकना अर्थानुकथनने करता भगवान् सुधर्मास्वामिए बीजा अर्थवाळां सूत्रो न मूकतां शरुआतमां ज 'चालतुं ते चाल्युं' ए अर्थने कथन करतुं सूत्र केम राख्युं?. समाधानः—चार पुरुषार्थमां मोक्षनामनो पुरुषार्थ सर्वातिशायी होवाथी मुख्य छे, अने साध्य एवा मोक्षना सम्यग्दर्शनादि अव्यभिचारी साधनो छे. आ प्रमाणे उभयना निश्चयनुं शिक्षण आपनार शास्त्रने सज्जनो इच्छे छे. उभय नियम आ प्रमाणे छे:—साध्यस्वरूप मोक्षनां ज सम्यग्दर्शनादि साधनो छे परतु अन्यना नथी, तथा मोक्ष पण सम्यग्दर्शनादि साधनो वडे ज साध्य छे, किंतु अन्यवडे नथी. उक्त रीति वडे उभय (बन्ने) ना निश्चयने करावनार शास्त्रने सज्जन पुरुषो इच्छे छे. ते मोक्ष विपक्ष (मोक्षविरुद्ध पक्ष) ना क्षयथी थाय छे, ते विपक्ष बंध छे कर्मोनो आत्मानी साथे संबंध ते ज मुख्य बंध कहेवाय छे. ते कर्मोना प्रक्षय निमित्ते (मोक्षप्राप्ति अर्थे) आ ['चलमाणे' इत्यादि] अनुक्रम कह्यो छे, अर्थात् आ प्रारंभ सूत्र कर्मक्षयनु सूचक छे, माटे प्रथम कह्यु छे. ['चलमाणे'त्ति] तेमां (वक्ष्यमाण प्रश्नमां) चलत्=स्थितिना क्षयथी उदयमां आवतुं, विपाक फलदान रूपपरिणाममाटे अभिमुख थतुं, जे कर्म ('कर्म' ए अर्थ प्रकरणगम्य छे) ते कर्म 'चलितम्' एटले 'उदयमां आव्युं' ए प्रमाणे व्यपदेशाय छे. कर्मोनो जे चलनकाळ ते ज उदयावलिका छे. अने ते चलनकाळ असंख्य समयवाळो होवाथी आदि, मध्य अने अंतथी

'चलमाण चलित' ए सूत्र प्रथम केम?

ए सूत्र कर्मक्षयना अनुक्रमनुं सूचक छे.

समय.

शब्द बने छे 'भ्राजन्त' एटले ज्ञान तथा तपादि गुणोनी दीप्तिथी जे युक्त होय ते. अथवा भ्रमण अर्थवाळा 'भ्रम' धातु परथी 'भ्रान्त' शब्द बने छे. भ्रान्त' एटले मिथ्यात्वादि बंधनोथी जे रहित होय ते. अथवा 'भग' शब्दने 'मतु' प्रत्यय लागवाथी 'भगवत्' बने छे. 'भगवत्' एटले ऐश्वर्यादि छ प्रकारनी ऋद्धिवडे जे युक्त होय ते अथवा 'भवान्त' शब्द परथी 'भन्ते' शब्द बने छे भवात-भव-नारकादिभव, तेनो अन्त=नाश, तेने करनार अथवा 'भयान्त' शब्द परथी 'भन्ते' शब्द बने छे भयांत-भय-समारजन्य त्रास, तेनो अन्त=नाश, तेने करनार—विशेषावश्यक, गाथा ३४३९, ३४४६, ३४४७, ३४४८, ३४४९—अनु०

२. कल्याण अथवा सुख थवुं, ए अर्थवाळा 'भदि' धातु परथी 'भदन्त' शब्द बने छे—श्रीअभयदेव ३. 'भा दीपवुं' ए धातुनुं 'शतृ' प्रत्ययमां रूप समजवुं—श्रीअभयदेव ४. 'भ्राजृ दीपवु' ए धातुनुं 'आनश' प्रत्ययमा रूप समजवुं—श्रीअभयदेव

५ कोइ पण पदार्थनी स्थिति (उमर) सूचववी होय त्यारे तेना साधन तरीके मात्र काल ज उपयोगमा आवे छे अने ते माटे. व्यवहारदक्ष पुरुषोए ते स्थितिना सूचक कालना घणा विभाग कर्या छे. जैनदर्शनमा वपराता कालनुं माप समयथी शरु थाय छे अर्थात् जेम परमाणु—परम अणु—नानामा नानो गणाय तेम कालनो नानामा नानो भाग, जेनाथी बीजो भाग नानो न थइ शके एवो भाग ते जैनपरिभाषामा 'समय' शब्दथी प्रसिद्ध छे जैनशास्त्रमां कालनु कोष्टक आ प्रमाणे छे—'समय' ए तद्दन सूक्ष्मकाल छे. असंख्य समयोनी एक 'आवलिका' थाय छे संख्येय आवलिकानो एक 'आन—उच्छ्वास' थाय छे संख्येय उच्छ्वासोनो एक 'निःश्वास' थाय छे. आन अने निःश्वास ए बन्नेनो भेगो मळेलो काळ एक 'प्राण' थाय छे. सात प्राणनो एक 'स्तोक' थाय छे सात स्तोकनो एक 'लव' थाय छे. सत्योतेर लवनो एक 'मुहूर्त' थाय छे त्रीश मुहूर्तनो एक 'अहोरात्र' थाय छे. पंदर अहोरात्रनो एक 'पक्ष' थाय छे. बे पक्षनो एक 'मास—महिनो' थाय छे. बे मासनो एक 'ऋतु' थाय छे त्रण ऋतुओनुं एक 'अयन' थाय छे. बे अयननु एक 'संवत्सर' थाय छे. पांच संवत्सरनुं एक 'युग' थाय छे. वीश युगनुं 'शतवर्ष' थाय छे दश शतवर्षनुं 'वर्षसहस्र' थाय छे सो वर्षसहस्रनु 'वर्षलक्ष' थाय छे चोराशी वर्षलक्षनुं एक 'पूर्वांग' थाय छे चोराशी लाख पूर्वांगनु एक 'पूर्व' थाय छे अने एक पूर्वमा ७,०,५,६०००००००००० आटला वर्ष थाय छे अर्थात् सात शंकु, शून्य महापद्म, पांच निखर्व अने छ खर्व जेटला ते वर्ष छे चोराशी लाख पूर्वनु एक 'त्रुटितांग' छे चोराशी लाख त्रुटितांगनुं एक 'त्रुटित' थाय छे चोराशी लाख त्रुटितनुं एक 'अटटांग' थाय छे. चोराशी लाख अटटांगनु एक 'अटट' थाय छे चोराशी लाख अटटनुं एक 'अववांग' थाय छे चोराशी लाख अववांगनुं एक 'अवव' थाय छे. चोराशी लाख अववनुं एक 'हूहूकांग' थाय छे चोराशी लाख हूहूकांगनु एक 'हूहूक' थाय छे. चोराशी लाख हूहूकनु एक 'उत्पलांग' थाय छे. चोराशी लाख उत्पलांगनुं एक 'उत्पल' थाय छे चोराशी लाख उत्पलनु एक 'पद्मांग' थाय छे चोराशी लाख पद्मांगनु एक 'पद्म' थाय छे. चोराशी लाख पद्मनुं एक 'नलिनांग' थाय छे चोराशी लाख नलिनांगनुं एक 'नलिन' थाय छे चोराशी लाख नलिननुं एक 'अर्थनिपूरांग' थाय छे. चोराशी लाख अर्थनिपूरांगनुं एक 'अर्थनिपूर' थाय छे चोराशी लाख अर्थनिपूरनुं एक 'अयुतांग' थाय छे. चोराशी लाख अयुतांगनुं एक 'अयुत' थाय छे. चोराशी लाख अयुतनुं एक 'नयुतांग' थाय छे चोराशी लाख नयुतांगनुं एक 'नयुत' थाय छे चोराशी लाख नयुतनुं एक 'प्रयुतांग' थाय छे. चोराशी लाख प्रयुतांगनुं एक 'प्रयुत' थाय छे चोराशी लाख प्रयुतनुं एक 'चूलिकांग' थाय छे चोराशी लाख चूलिकांगनी एक 'चूलिका' थाय छे. चोराशी लाख चूलिकानुं एक 'शीर्षप्रहेलिकांग' थाय छे अने चोराशी लाख शीर्षप्रहेलिकांगनी एक 'शीर्षप्रहेलिका' थाय छे एक शीर्षप्रहेलिकामां '७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६००१०००' आटला आकडा थाय छे आ 'शीर्षप्रहेलिका' सुधीनो काल गणितथी जाणी शकाय छे अने संख्येय छे तथा ते पछीनो पण संख्येय काल छे परंतु ते गणितथी जाणी शकातो नथी माटे ते उपमावडे ज्ञेय छे. जेम के, पल्योपम, सागरोपम अने पुद्गलपरावर्तादि रूप काळ छे ते मात्र उपमाथी ज जाणी शकाय छे. तेनुं विवेचन ते ते शब्दो उपर टिप्पणतरीके आगळ सूचवाशे. 'समय' जे सूक्ष्मतम काळ छे तेनुं स्वरूप श्रीअनुयोगद्वारसूत्रमां आ प्रमाणे छे—

"से किं तं समये?, समयस्स णं परूवणं करिस्सामि, से जहा नामए तुन्नागदारए सिया तरुणे, बलवं, जुगवं, जुवाणे, अप्पायंके, थिरग्गहत्थे, दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणए, तलजमलजुगलपरिघनिभबाहू, चम्मेट्ठ-दुहणमुट्ठिअसमाहयनिचियगायकाए, लंघण—पवण—जवण—वायामसम-त्थे, उरस्सबलसमण्णागए, छेए, दक्खे, पट्ठे, कुसले, मेहावी, निउणे, निउणसिप्पोवगए एगं महइं पडसाडिअं वा, पट्टसाडिअं वा गहाय सयराहं

हवे 'समय' ए शुं छे? ते प्रश्नना उपशमन माटे समयना स्वरूपनी विवेचना करीश. जेम कोइ एक दरजीनो छोकरो, जे तरुण, बलवान्, युगवान्, युवान्, अल्पातंक—रोगरहित, स्थिर हस्तग्रवाळो, जेना हाथ, पग, पडखा, वांसो, आंतरडा अने उरु दृढपणे परिणत छे. ताडना युग्मनी पेठे, भुंगळानी पेठे अने भोगळनी पेठे जेना बाहु मजबूत छे. जेनां गात्रो अने काय चर्मेष्टक, दुघण अने मुष्टिकथी समाहत अने

युक्त छे. कर्मपुद्गलोना पण अनंत स्कंधो, अनन्त प्रदेशो छे, तेथी तेओ अनुक्रमे प्रतिसमये (समये समये) ज उदयमां आव्या करे छे, (चाल्या करे छे). तेने विषे जे प्रारंभनो चलन समय छे, ते समयने विषे चालतां कर्मने 'चाल्युं' ए प्रमाणे कहेवाय छे. शंकाः—आ प्रमाणे 'चालतुं' ए वर्तमान होवा छतां, तेने माटे 'चाल्युं' एवो भूतकाळ विषयक व्यवहार केम थाय ? समाधानः—पटनी उत्पत्तिना समयमां प्रथम तन्तुना प्रवेश समये उत्पद्यमान (पेदा थतो) ज पट उत्पन्न थाय छे एम व्यपदेशाय छे. हवे, युक्तिपुरस्सर उत्पद्यमान पटनी उत्पन्नता सिद्ध करवा जणावे छे के:—प्रथम तन्तुनो प्रवेश काळ शरु थयो तेटलामां अर्थात् कपडाने वणवानी क्रिया करतां ज्यारे मात्र एक ज त्राग वणाणो होय त्यारे पण 'पट (कपडुं) पेदा थाय छे' ए प्रमाणे व्यवहारमां देखवाथी पटनुं उत्पद्यमानपणुं प्रसिद्ध ज छे. हवे तेनुं ज उत्पन्नपणुं युक्तिपुरस्सर सिद्ध करीए छीएः

कर्मपुद्गल.

वर्तमान भूत केम ?

पट.

२. तथाहिः—उत्पत्तिक्रियाकाल एव प्रथमतन्तुप्रवेशेऽसावुत्पन्नः, यदि पुनर्नोत्पन्नोऽभविष्यत् तदा तस्याः क्रियायाः वैयर्थ्यमभविष्यद् निष्फलत्वाद्, उत्पाद्योत्पादनार्था हि क्रिया भवन्ति, यथा च प्रथमे क्रियाक्षणे नासावुत्पन्नस्तथा उत्तरेष्वपि क्षणेष्वनुत्पन्न एवासौ प्राप्नोति, को हि उत्तरक्षणक्रियाणामात्मनि रूपविशेषः ? येन, प्रथमया नोत्पन्नस्तदुत्तराभिस्तूत्पाद्यते, अतः सर्वदैवानुत्पत्तिप्रसङ्गः, दृष्टा चोत्पत्तिरन्त्यतन्तुप्रवेशे पटस्य दर्शनाद्, अतः प्रथमतन्तुप्रवेशकाले एव किंचिदुत्पन्नपटस्य यावन्नोत्पन्नं न तदुत्तरक्रियया उत्पाद्यते, यदि पुनरुत्पाद्येत तदा तदेकदेशोत्पादन एव क्रियाणाम्, कालानां च क्षयः स्यात्. यदि हि तदंशोत्पादननिरपेक्षा अन्या क्रिया भवति तदोत्तरांशानुक्रमणं युज्येत, नान्यथा; तदेवं यथा, पट उत्पद्यमान एव उत्पन्नस्तथैवाऽसंख्यातसमयपरिमाणत्वाद् उदयावलिकाया आदिसमयात् प्रभृति चलदेव कर्म चलितम्, कथम् ? यतो यदि हि तत् कर्म चलनाभिमुखीभूतमुदयावलिकाया आदिसमय एव न चलितं स्यात्, तदा तस्याद्यस्य चलनसमयस्य वैयर्थ्यं स्यात्, तत्राचलितत्वात्, यथा च तस्मिन् समये न चलितं तथा द्वितीयादिसमयेष्वपि न चलेत्, को हि तेषामात्मनि रूपविशेषः ? येन, प्रथमसमये न चलितमुत्तरेषु चलतीति, अतः सर्वदैवाऽचलनप्रसङ्गः, अस्ति चान्त्यसमये चलनम्—स्थितेः परिमितत्वेन कर्माऽभावाभ्युपगमात्; अत आवलिकाकालादिसमय एव किंचिच्चलितम्, यच्च तस्मिंश्चलितं तन्नोत्तरेषु समयेषु न चलति, यदि तु तेष्वपि तदेवाद्यं चलनं

हत्थमित्तं ओसारिज्जा, तत्थ चोयए पण्णवगं एवं वयासीः—जे णं काले णं तेणं तुन्नागदारएणं तीसे पडसाडिआए वा, पट्टसाडिआए वा सयराहं हत्थमित्ते ओसारिए से समए भवइ ?, नो इणट्ठे समट्ठे. कम्हा ?, जम्हा संखिज्जाणं तंतूणं समुदयसमिइसमागमेणं पडसाडिआ निप्फज्जइ, उवरिल्लयम्मि तंतुम्मि अच्छिन्ने हिट्ठिल्ले तंतू न छिज्जइ, अन्नम्मि काले उवरिल्ले तंतू छिज्जइ, अन्नम्मि काले हिट्ठिल्ले तंतू छिज्जइ, तम्हा से समए न भवइ, एवं वयंतं पन्नवगं चोयए एवं वयासीः—जे णं काले णं तुन्नागदारएणं तीसे पडसाडिआए वा, पट्टसाडिआए वा उवरिल्ले तंतू छिन्ने से समए न भवइ ?, कम्हा ?, जम्हा संखिज्जाणं पम्हाणं समुदयसमिइसमागमेणं एगे तंतू निप्फज्जइ, उवरिल्ले पम्हम्मि अच्छिन्ने हिट्ठिल्ले पम्हे न छिज्जइ, अन्नम्मि काले उवरिल्ले पम्हे छिज्जइ, अन्नम्मि काले हिट्ठिल्ले पम्हे छिज्जइ, तम्हा से समए न भवइ एवं वयंतं पन्नवगं चोयए एवं वयासीः—जे णं काले णं तेणं तुन्नागदारएणं तस्स तंतुस्स उवरिल्ले पम्हे छिन्ने से समए न भवइ ? कम्हा ?, जम्हा अणंताणं संघायाणं समुदयसमिइसमागमेणं एगे पम्हे निप्फज्जइ, उवरिल्ले संघाए अविसंघाइए हिट्ठिल्ले संघाए न विसंघाइज्जइ, अन्नम्मि काले उवरिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, अन्नम्मि काले हिट्ठिल्ले संघाए विसंघाइज्जइ, तम्हा से समए न भवइ, इत्तो वि णं सुहुमतराए समए पण्णत्ते. समणाउसो ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा 'आवलिअ'त्ति पवुच्चइ. अनुयोगद्वारसूत्र (क० आ० पृ–४२३):—अनु०

निश्चित छे. जे उलंघवामां, कूदवामां, वेगथी जवामां अने कसरत करवामां समर्थ छे. जे बलुकी छातीवाळो छे. जे छेक, दक्ष, प्रष्ठ, कुशल, मेधावी, निपुण अने निपुणशिल्पप्राप्त छे: (दरजीनो एवो कोइ एक छोकरो) पटशाटिका—कपडानी साडी के पट्टशाटिका जीणा कपडानी साडीने जेटला काळे शीघ्र एक हाथ सुधी फाडे ते काल समय कहेवाय ?, तेना उत्तरमां कहे छे के, ए वात ठीक नथी अर्थात् तेटलो काळ एक समय न कहेवाय. तेटलो काळ एक समय न कहेवाय तेनो हेतु शुं ?. तो कहे छे के, भाइ ! संख्याता तांतणा भेगा थाय त्यारे एक पटशाटिका उत्पन्न थाय छे अने ज्यां सुधी उपरनो तांतणो छेदानो (फडानो) नथी त्यां सुधी एनी पछीनो—नीचेनो—तांतणो पण छेदानो नथी, अर्थात् उपरना तांतणानो फाटवानो समय जुदो छे अने नीचेना तांतणानो फाटवानो समय जुदो छे माटे, एक हाथ सुधी फाडवाना कालने समय न कहेवाय. ए प्रमाणे जणावनार पुरुष प्रति प्रेरक पुरुषे कह्युं के, जो एक हाथ सुधी फाडवाना कालने समय न कहेवाय तो भले, पण दरजीना छोकराद्वारा ते पटशाटिकाना सौथी उपरना ज एक तांतणाने कापवामां जेटलो काल लागे छे ते शुं समय न कहेवाय ?, तेना उत्तरमां कहे छे के, ए पण समय न कहेवाय. तेमां हेतु शुं ?, तो कहे छे के, भाइ ! ज्यारे संख्याता पक्ष्म—पुंभडां—भेगां थाय छे त्यारे सूतरनो एक तांतणो बने छे अने ते बधां पुंभडाओमां पण ज्यां सुधी छेक उपरनुं पुंभडुं कपातुं नथी त्यां सुधी तेनी नीचेनुं—एनी पछीनुं—पुंभडुं पण कपातुं नथी, अर्थात् जे काले उपरनुं पुंभडुं कपाय छे ते काले नीचेनुं पुंभडुं कपातुं नथी—ते दरेक पुंभडानो कपावानो काळ जुदो छे माटे एक तांतणो कापतां जेटलो वखत जाय छे तेटलो वखत पण समय न कहेवाय. ए प्रमाणे जणावनार पुरुष प्रति प्रेरक पुरुषे कह्युं के, जो एक तांतणाना कापवाना कालने समय न कहेवाय तो भले, पण दरजीना छोकराद्वारा उपरना तांतणाना संख्याता पुंभडाओमांनुं एक ज पुंभडुं जेटला वखतमां कपाय तेटलो काळ शुं समय न कहेवाय ?. तेना उत्तरमां कहे छे के, तेटलो काळ पण समय न कहेवाय. तेमां हेतु शुं ?, तो कहे छे के, भाइ ! ज्यारे परमाणुओना अनंत संघातो मळे त्यारे एक पुंभडुं बने छे अने ज्यांसुधी उपरनो संघात न कपाय त्यांसुधी नीचेनो—एनी पछीनो—संघात पण न कपाय, अर्थात् ते दरेक संघातोने कपावानो काळ भिन्न भिन्न छे माटे एक पुंभडाने कपावानो काल पण समय न कहेवाय. परंतु ए करतां पण जे सूक्ष्मतर काळ छे ते काल ज्ञानिपुरुषोए समय तरीके उपदेश्यो छे. वळी हे आयुष्मन् श्रमण ! एवा असंख्याता समयो मळे त्यारे एक 'आवलिका' थाय छे. (इत्यादि समग्रकाळनुं माप आगळ कह्या प्रमाणे जाणवुं.) अनुयोगद्वार (क० आ० पृ–४२३):—अनु०

१. आ (कर्मपुद्गल) शब्दनो अर्थ आ प्रमाणे छेः—कर्म=पुण्य के पाप, पुद्गल=रूपादिगुणवाळो जड पदार्थ. जैनदर्शन पाप अने पुण्यने एक जड वस्तु तरीके परमाणुरूप स्वीकारे छे. जीवने उपयोगमां आवता आकाशमां (लोकाकाशमां) सर्वत्र तेना (पाप अने पुण्यना) अणुओना थरने थर भरेला छे. पाप अने पुण्यना अणुओ जैनदर्शनमां (पाप अने पुण्यनी) वर्गणा तरीके प्रसिद्ध छे. जैनशास्त्रमां 'पुद्गल' शब्द रूपादिगुणयुक्त जड पदार्थने कहे छे माटे कर्मपुद्गल शब्द पाप अने पुण्यना अणुओना अर्थने जणावे छे. कर्मने अणुरूप अने मूर्त मानवानां कारणोना जिज्ञासुए जैनकर्मशास्त्रने मननपूर्वक अवलोकवुं.—अनु०

भवेत्, तदा तस्मिन्नेव चलने सर्वेषामुदयावलिकाचलनसमयानां क्षयः स्यात्; यदि हि तत्समयचलननिरपेक्षाणि अन्यसमयचलनानि भवन्ति, तदा उत्तरचलनानुक्रमणं युज्येत, नान्यथा; तदेवं चलदपि तत् कर्म चलितं भवतीति.

वर्तमानने भूतना. व्यवहारनी सिद्धि.

२. तथाहि; प्रथम तन्तुनो प्रवेश थये छते उत्पत्तिक्रियाकालमां ज पट उत्पन्न थयो छे एम स्वीकारवुं जोइए. जो प्रथम तन्तुना प्रवेश समये पण पट उत्पन्न थतो नथी एम मानवामां आवे तो, प्रथम समयनी पटोत्पादिका क्रिया निष्फळ जाय छे. कारण के उत्पन्न थता पदार्थोने उत्पन्न करवाने माटे ज क्रियाओ होय छे अने क्रिया विद्यमान होवा छतां कार्य न थाय तो ते क्रिया नकामी गणाय छे. तथा (पूर्वपक्षना मतानुसारे) जेम पट प्रथम क्रियासमये उत्पन्न थतो नथी तेम, उत्तर समयोने विषे पण उत्पन्न न ज थवो जोइए. कारण के उत्तर समयनी क्रियाओमां शुं विशेषता छे के, जेथी प्रथम समयनी क्रियाथी पट उत्पन्न न थाय, अने उत्तर समयनी क्रियाओथी उत्पन्न थाय[१]. एथी ज (एटले के प्रथम समये प्रथम तन्तुनो प्रवेश थये छते पण पटनुं उत्पन्न पणुं नहीं मानीए तो) हम्मेशने माटे (कोइ पण काले) पटनी उत्पत्तिनो संभव नथी, अर्थात् तेनी अनुत्पत्तिनो प्रसंग आवशे. अने अन्त्य तन्तुना प्रवेशे संपूर्ण पटने देखवाथी उत्पत्ति तो देखीए छीए. तेथी मानवुं जोइए के, प्रथम तन्तुना प्रवेश समये ज पटनो कांइक अंश उत्पन्न थाय छे. प्रथम तंतुना प्रवेश समये ज जेटलो पटांश उत्पन्न थयो, तेने (उत्पन्न थयेला अंशने) उत्तर क्रिया उत्पन्न करती होय, तो, ते एक ज पटांशने उपजाववामां पट उत्पन्न करनार समग्र क्रियाओनो अने सकल कालनो क्षय थाय. वळी जो उत्पन्न थएला पटना प्रथमांशना उत्पादननी अपेक्षारहित पाश्चात्य क्रियाओ होय तो ज पटना पाछला अंशोनो अनुक्रम थाय, अन्यथा अनुक्रम थाय नहीं, अर्थात् प्रारंभना एक ज अंशनी उत्पत्तिमां उपर कह्या प्रमाणे संपूर्ण क्रियानो अने कालनो क्षय थवाथी, पाछळना अंशोनी उत्पत्ति थाय नहीं. आ प्रमाणे जेम उत्पन्न थतो पट उत्पन्न थयो कहेवाय छे तेम कर्मोनी असंख्यात समयना परिमाणवाळी उदयावलिका होवाथी, आदि समयथी प्रारंभी 'चालतुं' जे कर्म ते 'चाल्युं' ए प्रमाणे कहेवाय छे. कारण के चालवाने अभिमुख थएलुं कर्म उदयावलिकाना आदि समयमां ज चाल्युं न होय तो, ते कर्मनो आदिचलनसमय, कर्मचलनरहित होवाथी व्यर्थ थाय छे. अने जेम ते कर्म प्रथम समयमां चाल्युं नथी तेम, बीजे समये, त्रीजे समये, वगेरे असंख्यात समयोमां पण ते कर्म चालवु न जोइए, कारण के चलनरहित पहेला समय करतां द्वितीयादिसमयोमां शुं विशेषता छे के, पहेला समयमां ते कर्म न चाल्युं अने उत्तर समयोमां चाल्युं?. (अर्थात् प्रथम समय करतां उत्तर समयोमां कांइ पण विशेषता न होवाथी, जेम उत्तर समयोमां चलन क्रिया मनाय छे, तेम प्रथम समयमां पण जरूर चलन क्रिया मानवी जोइए.) आथी, सर्व समयो समान होवा छतां पण प्रथम समयमा कर्मनुं चलन न मानवुं, अने द्वितीयादि समयोमां चलननुं मानवुं, ए वात युक्तिरहित होवाथी अने समयोनी समानता होवाथी, जेम प्रथम समयमां चलन नथी थतुं. तेम द्वितीयादि समयोमां पण चलन थवुं असंभवित छे. अने तेथी सर्वदा (सर्व समये) कर्मना अचलननो प्रसंग आवशे, अर्थात् कदि पण कर्म चालशे ज नहीं (उदयमां आवशे ज नहीं). वळी कर्मोनी स्थिति परिमित होवाथी, कर्माऽभावना अभ्युपगमने लइने अन्त्य समये कर्मोनु चलन थतु अनुभवाय छे माटे, प्रथमना ज चलन समयमां तेम ज, प्रथमोत्तर सर्व चलन समयोमां कर्मना अंशो कांइ चलित (चालेला) छे एम मानवुं ज जोइए. अने जे जे कर्म उदयावलिकाना आदि समयमां चाल्युं छे, ते ते उत्तर समयमां चालतुं नथी. कारण के जो उत्तर समयमां पण ते प्रथम समयमा थएलुं चलन थाय तो ते आदिचलनमां ज उदयावलिकाना सकल चलन समयनो क्षय थाय, अर्थात् आदि चलनमां सर्वकाळ चाल्यो जाय अने कदी पण कर्मनो अंत आवी ज न शके. वळी आ समये अमुक कर्मांश चलित थयो, आ समये अमुक कर्मांश चलित थयो, ए प्रमाणे उत्तर चलनना कर्मनो चलनक्रम त्यारे ज थइ शके ज्यारे प्रथम समयना कर्मांशना चलननी अपेक्षा वगरनां (स्वतन्त्र) अन्य समयना चलनो होय. अन्यथा एटले प्रथम समयना चलनमाटे ज जो सर्व उत्तर समयोने लगाडीए तो ते पूर्वोक्त क्रम पण बनी शकतो नथी. तात्पर्य ए ज के कोइ पण काले कर्मनुं अन्त्य चलन थतुं होवाथी ते अन्त्य चलननी पहेलांना सर्व समयोमां चालता कर्मने चलित मानवु ज जोइए. तो ए प्रमाणे पूर्वोक्त तर्कोथी चालतुं कर्म पण चाल्युं कही शकाय छे एम स्पष्ट चूक्युं छे.

---

१. कदाच आपणे एम स्वीकारीए के, प्रथम क्रियासमये पट उत्पन्न थतो नथी पण, प्रथम पछीना समयोमां उत्पन्न थाय छे, तो ते मंतव्य पण साचुं नथी, कारण के जेम प्रथम क्रियासमयमा पट उत्पन्न थतो नथी तेम प्रथम पछीना सर्व क्रियासमयोमां पण ते उत्पन्न थइ शकशे नहीं, कारण के प्रथम क्रियासमयमा अने उत्तर क्रियासमयमा काइ पण विशेषता नथी:–अनु०

२. वळी उत्पन्न थवाने शरु थएल पटने आपणे कोइ पण काले–अन्त्यतन्तु प्रवेश थये छते समाप्ति काले–उत्पन्न थएलो जोइए छीए माटे, आपणे एम स्वीकारवुं जोइए के, पट, प्रथम समयथी माडीने दरेक समये उत्पन्न थया ज करे छे, अर्थात् उत्पद्यमान पट पण अंशे अंशे उत्पन्न थया ज करे छे, तथा पटनो जेटलो जे अंश प्रथम तन्तुप्रवेश समये प्रथम क्रियाकाले उत्पन्न थयो छे, ते अंशथी भिन्न भिन्न पटना अंशो द्वितीय क्रियाकाले तैयार थाय छे, अर्थात् प्रथम समये उत्पन्न पटना अंशने द्वितीय समयनी क्रियाओ फरीथी उत्पन्न करती नथी. कदाच कोइ एम स्वीकारे के, प्रथम समये उत्पन्न थएल पटना अंशनी फरी उत्पत्ति करवा उत्तर समय-द्वितीयसमयादि–नी क्रियाओ लागे छे तो, ते मंतव्य पण सत्येतर (जूठुं) छे. जो एम मानवामां आवे तो पण कोइ काले पटनी उत्पत्ति थइ शके ज नहीं. कारण के उत्तर समयनी सर्व क्रियाओ प्रथम समये उत्पन्न थएल पटना अंशने उत्पन्न कर्या ज करशे, जेथी कदापि तेनो (पटनो) अंत आवशे नहीं अने ते प्रथम समये उत्पन्न थयेल पटना अंशनी उत्पत्ति करवामां ज उत्तरनी सर्व क्रियाओनो अने समयनो क्षय थशे, वळी पटनो प्रथम अंश उत्पन्न थयो, द्वितीय अंश उत्पन्न थयो, इत्यादि क्रम त्यारे ज संभवे के ज्यारे प्रथम समयना पटांशना उत्पादननी अपेक्षावगरनी–स्वतन्त्र–बीजि उत्तर समयनी क्रियाओ होय. अन्यथा एटले एक ज प्रथम समये उत्पन्न थएल पटांशने ज उत्पन्न करवामा ज जो सर्व क्रियाओने लगाडीए तो, ते पूर्वोक्त क्रम पण बनी शके नहीं. तात्पर्य ए ज छे के, ज्यारे अन्त्यसमये आपणे पटने उत्पन्न थएलो जोइए छीए त्यारे, ते पटने अन्त्यसमयनी पहेलां आदिना दरेक समयमां अंशे अंशे उत्पन्न थतो मानवो ज जोइए, अर्थात् उत्पद्यमान पट उत्पन्न थाय छे ए मन्तव्य निर्विवाद छे. हवे जेम उत्पद्यमान पट उत्पन्न थतो सिद्ध कर्यो तेम ज, 'चालतुं कर्म चाल्युं' ए व्यवहारनी पण निर्दोषता सिद्ध करवी:–अनु०

३. कर्मोनी स्थिति मर्यादित होवाथी एक एवो पण चलननो अन्त्यसमय आवे छे जेमां, योग्य भव्यात्मा कर्मरहित थइ जाय छे. जो, कदि कर्मचलन थतुं ज न होय तो जीवोनी मुक्ति थइ शके ज नहीं माटे, चलनना अन्त्यसमयनी पूर्वना दरेक, उदयावलिकाना प्रथमादि समयोमां पण कर्म अंशे अंशे चलित थया करे छे, एम मानवुं जोइएः–अनु०

१. तथा *'उदीरिज्जमाणे उदीरिए'त्ति* उदीरणा नाम अनुदयप्राप्तम्, चिरेणाऽऽगामिना कालेन यद् वेदयितव्यं कर्मदलिकं तस्य विशिष्टाऽध्यवसायलक्षणेन करणेनाऽऽकृष्योदये प्रक्षेपणम्; सा च असंख्येयसमयवर्तिनी, तया च पुनरुदीरणया उदीरणाप्रथमसमय एव उदीर्यमाणं कर्म पूर्वोक्तपटदृष्टान्तेन उदीरितं भवतीति. तथा *'वेइज्जमाणे वेइए'त्ति* वेदनं कर्मणो भोगोऽनुभव इत्यर्थः, तच्च वेदनं स्थितिक्षयादुदयप्राप्तस्य कर्मणः, उदीरणाकरणेन च उदयमुपनीतस्य भवति. तस्य च वेदनाकालस्याऽसंख्येयसमयत्वाद् आद्यसमये वेद्यमानमेव वेदितं भवतीति. तथा *'पहिज्जमाणे पहीणे'त्ति* प्रहाणं तु जीवप्रदेशैः सह संश्लिष्टस्य कर्मणस्तेभ्यः पतनम्, एतदप्यसंख्येयसमयपरिमाणमेव, तस्य तु प्रहाणस्यादिसमये प्रहीयमाणं कर्म प्रहीणं स्याद् इति. तथा *'छिज्जमाणे छिन्ने'त्ति* छेदनं तु कर्मणो दीर्घकालानां स्थितीनां ह्रस्वताकरणम्, तच्चाऽपवर्तनाऽभिधानेन करणविशेषेण करोति, तदपि च छेदनमसंख्येयसमयमेव, तस्य तु आदिसमये स्थितितश्छिद्यमानं कर्म छिन्नमिति. तथा *'भिज्जमाणे भिन्ने'त्ति* भेदस्तु कर्मणः शुभस्याऽशुभस्य वा तीव्ररसस्याऽपवर्तनाकरणेन मन्दताकरणम्, मन्दस्य चोद्वर्तनाकरणेन तीव्रताकरणम्; सोऽपि चाऽसंख्येयसमय एव, ततश्च तदाद्यसमये रसतो भिद्यमानं कर्म भिन्नमिति. तथा *'डज्झमाणे दड्ढे'त्ति* दाहस्तु कर्मदलिकदारूणां ध्यानाग्निना तद्रूपाऽपनयनम्—अकर्मत्वजननमित्यर्थः. यथाहि—काष्ठस्याऽग्निना दग्धस्य काष्ठरूपाऽपनयनम्, भस्मात्मना च भवनं दाहस्तथा कर्मणोऽपीति. तस्याऽप्यन्तर्मुहूर्तवर्तित्वेनाऽसंख्येयसमयस्याऽऽदिसमये दह्यमानं कर्म दग्धमिति. तथा *'मिज्जमाणे मडे'त्ति* म्रियमाणमायुष्कर्म मृतमिति व्यपदिश्यते, मरणं ह्यायुष्पुद्गलानां क्षयः, तच्चाऽसंख्येयसमयवर्ति भवति, तस्य च जन्मनः प्रथमसमयादाऽऽरभ्याऽऽवीचिकमरणेनाऽनुक्षणं मरणस्य भावाद् म्रियमाणं मृतमिति. तथा *'निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे'त्ति* निर्जीर्यमाणं नितरामपुनर्भावित्वेन क्षीयमाणं कर्म निर्जीर्णं क्षीणमिति व्यपदिश्यते. निर्जरणस्याऽसंख्येयसमयभावित्वेन तत्प्रथमसमय एव पटनिष्पत्तिदृष्टान्तेन निर्जीर्णत्वस्योपपद्यमानत्वादिति. पटदृष्टान्तश्च सर्वपदेषु सभावनिको वाच्यः.

२. [‘उदीरिज्जमाणे उदीरिए’त्ति] उदीरातुं ते उदीरायुं. उदयने प्राप्त नहीं थएल एवा अने आगामी लांबा काळे वेदवाना कर्मदलिकने विशिष्ट अध्यवसायरूप करणवडे खेंचीने उदयमां लाववुं तेने ‘उदीरणा’ कहे छे. ते उदीरणा असंख्येय समयवर्ती छे. ते उदीरणावडे प्रथमसमयमां ज उदीरातां कर्मने पूर्वोक्त पटना दृष्टान्तवडे ‘उदीरायुं’ कहेवाय छे. [‘वेइज्जमाणे वेइए’त्ति] वेदातुं ते वेदायुं. कर्मने भोगववु कर्मनो अनुभव करवो तेने वेदन[1] कहे छे. स्थितिनो क्षय थवाथी उदयने प्राप्त थएल कर्मनु अथवा उदीरणा करी उदयने प्राप्त करेला कर्मनु वेदन थाय छे ते वेदननो असंख्य समय काल होवाथी, आद्य समयने विषे वेदातां कर्मने ‘वेदायुं’ ए प्रमाणेनो व्यवहार उपर प्रमाणे घटे छे. [‘पहिज्जमाणे पहीणे’त्ति] पडतुं ते पड्युं. जीवप्रदेशोनी साथे संबद्ध कर्मनुं जीवप्रदेशोथी पडवुं ते ‘प्रहाण’ कहेवायः, जीवप्रदेशोथी कर्मना पडवारूप प्रहाण (प्रहाणनो काल) पण असंख्येय समय परिमाणवाळुं छे. ते प्रहाणना आदि समयने विषे जीवप्रदेशोथी पडतु कर्म ‘पड्युं’ ए प्रमाणेनो व्यवहार पटना दृष्टान्तवडे समजवो. अर्थात् प्रहाणना आदि समयमां जे पडवा मांड्युं ते पड्युं एम कहेवाय छे. [‘छिज्जमाणे छिन्ने’त्ति] छेदातुं ते छेदायु. कर्मनी दीर्घकालनी स्थितिनी लघुता करवी अर्थात् कर्मनी दीर्घकालिक स्थितिने ह्रस्वकालिक करवी तेने छेदन कहे छे. जीव ते छेदनने अपवर्तन नामना करणविशेषथी करे छे. तेनी (अपवर्तननी) स्थिति असंख्यात समयनी छे. प्रथम समयमां स्थितिथी छेदाता कर्मने ‘छेदायुं’ ए प्रमाणेनो व्यवहार पूर्वोक्त रीत्यनुसार समजवो. [‘भिज्जमाणे भिन्ने’त्ति] भेदातुं (पूर्वस्थितिथी बदलातुं) ते भेदायुं. शुभ वा अशुभ कर्मना तीव्र रसनुं अपवर्तनाकरणवडे मंद करवुं, अने मंदरसनु उद्वर्तनाकरणवडे तीव्र करवुं तेने भेद कहे छे. आ भेद पण असंख्येय समय स्थितिवाळो छे. तेथी प्रथम समयमां तीव्र अथवा मंद रसथी भेदाता कर्मने ‘भेदायु’ ए प्रमाणेनो व्यवहार पूर्वोक्त समजवो. [‘डज्झमाणे दड्ढे’त्ति] बळतुं ते बळ्युं. कर्मदलिकरूप काष्ठोना स्वरूपनो ध्यानरूप अग्निवडे नाश करवो अर्थात् कर्मनो अभाव करवो—कर्मरहितपणुं करवु तेने अहीं दाह समजवो. जेम अग्निवडे दग्ध थएला काष्ठना रूपनो नाश थइ ते काष्ठ भस्मस्वरूप थाय छे तेम कर्मनो पण ध्यानरूप अग्निवडे दाह थाय छे. ते (दाह) पण अन्तर्मुहूर्तवर्ती होवाथी असंख्येय समय स्थितिवाळो छे. तेना आद्यसमयविषे दह्यमान (बळतां) कर्मने ‘दग्ध’ (बळ्यु) ए प्रमाणेनो व्यवहार पूर्वोक्त प्रमाणे समजवो. [‘मिज्जमाणे मडे’त्ति] मरतु ते मर्यु ‘मरता’ एवा आयु कर्मनो ‘मर्यु’ ए प्रमाणे व्यवहार थाय छे. आयुःकर्मना पुद्गलोनो क्षय ए ज मरण छे. ते असंख्येय समयवर्ती छे. जन्मना प्रथम समयथी आरंभीने आवीचिक[2]

उदीर्यमाण उदीरित. वेद्यमान वेदित. प्रहीयमाण प्रहीण. छिद्यमान छिन्न. भिद्यमान भिन्न. दह्यमान दग्ध. म्रियमाण मृत. आवीचिक.

---

१. आ (वेदन) शब्द जैनपरिभाषामां ‘कर्मजन्य फलना अनुभव’ अर्थमां पण प्रसिद्ध छे.

“वेदिताः स्वेन रसविपाकेन प्रतिसमयमनुभूयमानाः” (भगवतीटीका) “पोताना रसविपाकथी प्रतिसमये अनुभवाता कर्मपुद्गलोने वेदित (वेदाएला) कर्मपुद्गलो कहेवाय छे,” (भगवतीटीका) –अनु०

२. (आवीचिक) शब्द एक प्रकारना मरणनो सूचक छे. जैन महर्षिओए पांच प्रकारनुं मरण जणाव्यु छे. तेना नाम आ छेः–आवीचिकमरण, अवधिमरण, आत्यंतिकमरण, बालमरण अने पंडितमरण. आवीचिकमरण–आ–समस्त प्रकारे, वीचि तरंगो, तेनी पेठे मरण ते आवीचिकमरण अर्थात् जेम एक पछी एक तरंग विना विलंबे आव्या ज करे छे तेम एक पछी एक क्षणे आयुष्यनो नाश थया ज करे छे अने ते नाश ‘आवीचिकमरण’ कहेवाय छे. जेम कोइ मनुष्यनी (जे जनमवानो छे) आवरदा ५० वरसनी छे, अने ते एक स्थळ छोडी बीजे स्थळे ज्यारथी गर्भमां आव्यो त्यारथी तेनी ते पचास वरसनी आवरदामांथी घटाडो थवो शरु थइ जाय छे. अर्थात् जेम जेम काल थतो जाय छे, मनुष्य मोटो थतो जाय छे तेम तेम जेटलो काळ गयो तेटलो काल (वरस, मास, दिन, घडी, पळ, विपळ) तेना आयुष्यनो नाश थाय छे. तात्पर्य ए के, प्रतिक्षण तेना आयुष्यनो नाश थया करे छे अने आयुष्यनो नाश ए ज मरण छे माटे, ते प्रतिक्षण थता आयुष्यना नाशने ‘आवीचिकमरण’ कहेवाय छे. अवधिमरण=अवधिवाळुं मरण ते अवधिमरण. आत्यंतिकमरण=जे मरण आत्यंतिक छे ते आत्यंतिकमरण. बालमरण=बालनुं–विरतिविनाना जीवनुं–जे मरण ते बालमरण. अने पंडितमरण=पंडितनुं–सर्वविरतिवाळा जीवनुं–श्रमणनुं–जे मरण ते पंडितमरण. अहीं ‘आवीचिकमरण’

निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण.

मरणवडे प्रतिक्षण मरणनो सद्भाव होवाथी 'मरतां' ने 'मर्युं' ए प्रमाणे कहेवाय छे. ['निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे'त्ति] निर्जरातुं ते निर्जरायुं. निरन्तर अपुनर्भाव (फरीथी न थवा) वडे क्षय थतुं कर्म निर्जीर्ण–क्षीण–थयुं, ए प्रमाणे व्यवहार थाय छे. निर्जरा असंख्येय समयभावी होवाथी तेना प्रथम समयमां ज निर्जरता–क्षीण थता–कर्मने पटनी उत्पत्तिना दृष्टान्तवडे 'निर्जर्युं' (क्षीण थयुं) ए प्रमाणे युक्तियुक्त व्यवहार समजवो. आ प्रमाणे वर्तमान काळमां भूतकाळना व्यवहारवाळा दरेक स्थले पटनुं दृष्टान्त भावनासहित कहेवुं.

४. तदेवमेतान्नव प्रश्नान् गौतमेन भगवता भगवान् महावीरः पृष्टः सन्नुवाचः–*'हंता'* इत्यादि. अथ कस्माद् भगवन्तं गौतमः पृच्छति ?, विरचितद्वादशाङ्गतया विदितसकलश्रुतविषयत्वेन, निखिलसंशयाऽतीतत्वेन च सर्वज्ञकल्पत्वात् तस्य. आह चः–*"संखाइए उ भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा, ण य णं अणाइसेसी वियाणइ एस छउमत्थो"*त्ति. नैवम्, उक्तगुणत्वेऽपि छद्मस्थतयाऽनाभोगसंभवात्. यदाहः–"नहि नामाऽनाभोगः छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति, यस्माद् ज्ञानावरणं ज्ञानावरणप्रकृति कर्म" इति. अथवा जानत एव तस्य प्रश्नः संभवति, स्वकीयबोधसंवादनार्थम्, अज्ञलोकबोधनार्थम्, शिष्याणां वा स्ववचसि प्रत्ययोत्पादनार्थम्, सूत्ररचनाकल्पसंपादनार्थं च इति. तत्र *'हंता गोयमे'*त्ति 'हंत' इति कोमलाऽऽमन्त्रणार्थः, दीर्घत्वं च मागधदेशीप्रभवमुभयत्रापि. *'चलमाणे'* इत्यादिप्रत्युच्चारणं तु 'चलदेव चलितम्' इत्यादीनां स्वाऽनुमतत्वप्रदर्शनार्थम्. वृद्धाः पुनराहुः–*"हंता गोयमा"* इत्यत्र 'हन्त' इति 'एवमेतद्' इति अभ्युपगमवचनम्, यदनुमतं तत्प्रदर्शनार्थं *'चलमाणे'* इत्यादि प्रत्युच्चारितम्" इति. इह च यावत्–करणलभ्यानि पदानि सुप्रतीतान्येव. एवमेतानि नव पदानि कर्माधिकृत्य वर्तमाना–ऽतीतकालसामानाधिकरण्यजिज्ञासया पृष्टानि, निर्णीतानि च.

वर्तमान पण भूत.
गौतम शामाटे पूछे ?

४. आवी रीते नव प्रश्नो भगवान् गौतमस्वामिए भगवान् महावीरस्वामिने पूछ्या. ते प्रश्नोनो उत्तर आपतां भगवान महावीरे कह्युं के, हे गौतम ! तेम ज छे, एटले के, 'चालतुं-चालवा मांड्युं ते चाल्युं' त्यांथी आरंभी 'निर्जरातुं–निर्जरवा मांड्युं–ते निर्जर्युं' एम ज छे. शंकाः—भगवंतने गौतमस्वामी शामाटे पूछे छे, कारण के तेओ द्वादशाङ्गीना रचनार होवाथी सकल श्रुतना विषयने जाणवावाळा छे, तथा निखिल संशयातीत होवाथी तेओना सकल संशयो नष्ट थवाथी सर्वज्ञ सदृश छे. कह्युं छे केः–"परे पूछे तो छद्मस्थ सख्यातीत भवोने कहे छे, कारण के ते अनतिशेषी नथी अर्थात् अतिशय ज्ञानवान् होय छे" माटे जाणे छे. समाधानः —एम नही. कारण के उक्त गुणोवाळा होवा छतां तेओने, छद्मस्थताने लइने अनाभोगनो अपरिपूर्णतानो- संभव छे. कह्युं छे केः–"कोइ पण छद्मस्थने अनाभोग नथी एम नथी. अर्थात् अनाभोग ज छे, कारण के ज्ञानने आवरण करवाना ज स्वभाववाळु ज्ञानावरणीय कर्म छे" अथवा जाणतां छतां पोताना ज्ञानना सवादने माटे, अज्ञलोकना बोधने माटे, शिष्योनी पोताना वचनमां प्रतीति उत्पन्न करवाने माटे, सूत्ररचनाना कल्प संपादनने माटे प्रश्न करवा संभवे छे. ['हंता गोयमे'त्ति] तेने विषे "हंता गोयमा !", (हा गौतम !), "चालतुं ते चाल्युं" इत्यादि प्रश्नना प्रत्युत्तर माटे "चालतुं ते चाल्युं" इत्यादि प्रत्युच्चारण- पुनरुच्चारण पोतानी अनुमति दर्शाववा कह्युं छे. वृद्धो तो कहे छे केः–"['हंता गोयमा'] ए स्थले [हंता] ए शब्द 'ए ए प्रमाणे-हा' आवी रीते स्वीकारवचन छे अने जे अनुमत छे ते, प्रदर्शित करवाने 'चालतुं ते चाल्युं' इत्यादि प्रत्युच्चारित छे." 'यावत्' शब्दथी अध्याहृत पदो तो सुस्पष्ट ज छे. ए प्रमाणे कर्मने आश्रीने आ नव पदो वर्तमान अने भूत काळना समानाधिकरणपणाने जाणवानी इच्छा वडे पूछ्या अने तेनो निर्णय कर्यो.

छद्मस्थ छे माटे.
संवाद-अज्ञबोध-शिष्यप्रतीति-सूत्रकल्प.
भगवदनुमति.
वृद्धव्याख्या.
निर्णय.

शब्दनो प्रसंग होवाथी तेना माटे ज सविस्तर विवेचन कर्युं छे अने बीजा चार जातना मरणमाटे मात्र अहीं शब्दार्थ ज कर्यो छे पण, तेनो खास अर्थ अप्रसंगथी लख्यो नथी.

"कइविहे णं भंते ! मरणे पण्णत्ते ?. गोयमा ! पंचविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहाः–आवीचिअमरणे, ओहिमरणे, आइअंतिअमरणे, बालमरणे, पंडिअमरणे." "आ समन्ताद्, वीचय प्रतिसमयमनुभूयमानायुषोऽपरायुर्दलिकोदयात् पूर्वपूर्वायुर्दलिकविच्युतिलक्षणा अवस्था यस्मिन् तद् आवीचिकम्, अथवा अविद्यमाना वीचिर्विच्छेदो यत्र तद् अवीचिकम्, अवीचिकमेव आवीचिकम्, तच्च तद् मरणं चेत्यावीचिकमरणम्" (भ० श० १३, उ० ७, क० आ० पृ–११३८–३९):–अनु०

"हे भगवन् ! मरणना केटला प्रकार कह्या छे ?. हे गौतम ! मरणना पांच प्रकार कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—आवीचिकमरण, अवधिमरण, आत्यंतिकमरण, बालमरण अने पंडितमरण." "आ–चारे बाजुथी, वीचि–प्रतिसमये अनुभवाता आयुष्यथी पहेलां पहेलांना आयुष्यदलिकनी बीजा आयुर्दलिकना उदयथी उत्पन्न थती नाशरूप हालत, जे तेवी हालत वाळुं छे ते आवीचिक–प्रतिक्षण थतो आयुष्यनो क्षय ते आवीचिकमरण. अथवा, जे मरणमां वीचि–(जीवननो तरंग) विच्छेद–नथी ते आवीचिकमरण–प्रतिसमये थतो आयुष्यनो क्षय." (भगवती श० १३ उ० ७, क० आ० पृ–११३८–३९):- अनु०

१. प्र० छायाः–संख्यातीतांस्तु भवान् कथयति यद् वा परस्तु पृच्छेत्, न चानतिशेषी विजानात्येष छद्मस्थः. २. इयं चावश्यकनिर्युक्तौ गणधरप्रकरणे. श्रीजीवाभिगमसूत्रटीकायामपि श्रीमन्मलयगिरिणा एषा प्रमाणत्वेन गृहीता, (जी० क० आ० पृ–१६):–अनु०

१. आ गाथा आवश्यकनिर्युक्तिमां गणधरप्रकरणमां छे. अने श्रीमन्मलयगिरिसूरिए आ गाथाने श्रीजीवाभिगमनी टीकामां प्रमाणरूपे ग्रहण करेली छे. (जी० क० आ० पृ–१६):–अनु०

२. शिष्ये पूछवुं अने गुरुए कहेवुं एवो आचार छे. ३. 'हंता' अने 'गोयमा' ए बन्ने स्थळे प्राकृत होवाथी दीर्घ थाय छे. 'हंता' ए कोमलामन्त्रणार्थक छेः—श्रीअभयदेव.

प्र०—२. एए णं भंते ! नव पया किं एगट्ठा ? णाणाघोसा ? णाणावंजणा ? उदाहु णाणट्ठा ? णाणाघोसा ? णाणावंजणा ?.

प्र०—२. हे भगवन् ! आ नव पदो शुं एक अर्थवाळां, नाना घोषवाळां अने नाना व्यंजनवाळां छे ? के नाना अर्थवाळां, नाना घोषवाळां अने नाना व्यंजनवाळां छे ?.

उ०—२. गोयमा ! चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेइज्जमाणे वेइए, पहिज्जमाणे पहीणे, एए णं चत्तारि पया एगट्ठा, णाणाघोसा, णाणावंजणा उप्पण्णपक्खस्स. छिज्जमाणे छिण्णे, भिज्जमाणे भिण्णे, दड्ढमाणे दड्ढे, मिज्जमाणे मडे, निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे, एए णं पंच पया णाणट्ठा, णाणाघोसा णाणावंजणा, विगयपक्खस्स.

उ०—२. हे गौतम ! चालतुं चाल्युं, उदीरातुं उदीरायुं, वेदातुं वेदायुं, प्रक्षीण थतुं प्रक्षीण थयुं, आ चार पदो उत्पन्नपक्षनी अपेक्षाए एक अर्थवाळां, नाना घोषवाळां अने नाना व्यंजनवाळां छे. तथा छेदातुं छेदायुं, भेदातुं भेदायु, दहातुं दहायुं, मरतुं मर्युं, निर्जरातुं निर्जरायुं, आ पांच पदो विगतपक्षनी अपेक्षाए नाना अर्थवाळां, नाना घोषवाळां अने नाना व्यंजनवाळां छे.

५. अथैतान्येव चलनादीनि परस्परतः किं तुल्यार्थानि, भिन्नार्थानि ? चेति पृच्छां निर्णयं च दर्शयितुमाहः—*'एए णं भंते'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—*'एगट्ठ'त्ति* एकाऽर्थानि अनन्यविषयाणि एकप्रयोजनानि वा, *'णाणाघोस'त्ति* इह घोषा उदात्तादयः, *'णाणावंजण'त्ति* इह व्यञ्जनानि अक्षराणि, *'उदाहु'त्ति* 'उताहो' निपातो विकल्पार्थः, *'णाणट्ठ'त्ति* भिन्नाऽभिधेयानि. इह चतुर्भङ्गी पदेषु दृष्टाः—१. तत्र च कानिचिदेकार्थानि एकव्यञ्जनानि यथा; क्षीरं क्षीरमित्यादीनि. २. तथाऽन्यानि एकार्थानि नानाव्यञ्जनानि यथा; क्षीरं पय इत्यादीनि. ३. तथाऽन्यान्यनेकार्थानि एकव्यञ्जनानि यथा; अर्क-गव्य माहिषाणि क्षीराणि. ४. तथाऽन्यानि नानाऽर्थानि नानाव्यञ्जनानि यथा; घट-पट-लकुटादीनि. तदेवं चतुर्भङ्गीसंभवेऽपि द्वितीयचतुर्थभङ्गकौ प्रश्नसूत्रे गृहीतौ, परिदृश्यमाननानाव्यञ्जनतया तदन्ययोरसंभवाद्. निर्वचनसूत्रे तु चलनादीनि चत्वारि पदान्याश्रित्य द्वितीयः, छिद्यमानादीनि तु पञ्च पदान्याश्रित्य चतुर्थ इति. ननु चलनादीनामर्थानां व्यक्तभेदत्वात् कथमाद्यानि चत्वारि पदानि एकार्थानि ? इत्याशङ्क्याहः—*'उप्पण्णपक्खस्स'त्ति* उत्पन्नमुत्पादो भावे क्लीबे 'क्त'प्रत्ययविधानात्, तस्य पक्षः परिग्रहोऽङ्गीकारः 'पक्ष परिग्रहे' इति धातुपाठादिति उत्पन्नपक्षः, इह च षष्ठ्यास्तृतीयार्थत्वाद् उत्पन्नपक्षेण उत्पादाङ्गीकारेण—उत्पादाख्यं पर्यायं परिगृह्य एकार्थानि एतानि उच्यन्ते. अथवा उत्पन्नपक्षस्य उत्पादाख्यवस्तुविकल्पस्याऽभिधायकानीति शेषः, सर्वेषामेषामुत्पादमाश्रित्य एकार्थकारित्वादेकान्तर्मुहूर्तमध्यभावित्वेन तुल्यकालत्वाच्चैकार्थिकत्वमिति भावः. स पुनरुत्पादाख्यः पर्यायो विशिष्टः केवलोत्पाद एव. यतः कर्मचिन्तायां कर्मणः प्रहाणे फलद्वयम्—केवलज्ञान-मोक्षप्राप्ती, तत्रैतानि पदानि केवलोत्पादविषयत्वादेकार्थानि उक्तानि, यस्मात् केवलज्ञानपर्यायो जीवेन न कदाचिदपि प्राप्तपूर्वः, यस्माच्च प्रधानस्ततस्तदर्थ एव पुरुषप्रयासः, तस्मात् स एव केवलज्ञानोत्पत्तिपर्यायोऽभ्युपगतः. एषां च पदानामेकार्थानामपि सतामयमर्थः सामर्थ्यप्रापितक्रमः—यदुत पूर्वं तच्चलति—उदेतीत्यर्थः, उदितं च वेद्यते—अनुभूयते इत्यर्थः, तच्च द्विधा—स्थितिक्षयादुदयप्राप्तम्, उदीरणया चोदयमुपनीतम्. ततश्चाऽनुभवानन्तरं तत् प्रहीयते दत्तफलत्वाज्जीवाद्पयातीत्यर्थः. एतच्च टीकाकारमतेन व्याख्यातम्.

५. हवे ते ज चलनादि पदो परस्पर तुल्यार्थ छे के भिन्नार्थ छे? एवो प्रश्न अने निर्णय दर्शाववा माटे कहे छेः-['एए णं भंते'] इत्यादि स्पष्ट छे. विशेषता ए के, ['एगट्ठ'त्ति] एकार्थानि -अनन्य—अभिन्न—विषयवाळां, अथवा एक प्रयोजनवाळां, ['णाणाघोस'त्ति] विविध प्रकारना उदात्तादि घोषवाळां तथा ['णाणावंजण'त्ति] विविध व्यंजनवाळां छे ? के, ['णाणट्ठ'त्ति] भिन्न भिन्न अर्थवाळां, (विविध घोषवाळां तथा विविध व्यंजनवाळां) छे ? अहीं चतुर्भंगी समजवी, ते आ प्रमाणेः—

एकार्थ ? भिन्नार्थ ? चतुर्भंगी.

१. समानार्थ समानव्यंजन.
२. समानार्थ विविधव्यंजन.
३. भिन्नार्थ समानव्यंजन.
४. भिन्नार्थ भिन्नव्यंजन.

केटलांक पदो एक ज अर्थवाळां अने समान व्यंजनवाळां होय छे. (जेमः क्षीरम्, क्षीरम्, इत्यादि. १.) केटलांक (पदो) समान अर्थवाळां अने विविध व्यंजनवाळां होय छे. (जेमः क्षीरम्, पयः, इत्यादि. २.) केटलांक (पदो) अनेक अर्थवाळां अने एक ज व्यंजनवाळां होय छे.

---

१. मूलच्छायाः—एतानि भगवन् ! नव पदानि किमेकार्थानि, नानाघोषाणि, नानाव्यञ्जनानि; उताहो नानार्थानि, नानाघोषाणि, नानाव्यञ्जनानि ?. गौतम ! चलत् चलितम्, उदीर्यमाणमुदीरितम्, वेद्यमानं वेदितम्, प्रहीयमाणं प्रहीणम्, एतानि चत्वारि पदानि एकार्थानि, नानाघोषाणि, नानाव्यञ्जनानि, उत्पन्नपक्षस्य. छिद्यमानं छिन्नम्, भिद्यमानं भिन्नम्, दह्यमानं दग्धम्, म्रियमाणं मृतम्, निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम्, एतानि पञ्च पदानि नानार्थानि, नानाघोषाणि, नानाव्यञ्जनानि, विगतपक्षस्य.

१. अहीं उदात्त वगेरे उच्चारण विशेष तेने घोष समजवोः—श्रीअभयदेव. २. व्यंजन एटले अक्षरः—श्रीअभयदेव. ३. 'उताहो' विकल्पार्थने जणावनार अव्यय छे अने तेनो अर्थ 'के' थाय छेः—श्रीअभयदेव. ४. अहीं बने शब्दोनो 'दूध' अर्थ छे तेम ज बने पदोमां अक्षरोनी पण समानता छे तेथी, एकार्थक अने समान व्यंजननुं उदाहरण आप्युं. ५. अहीं 'क्षीर' अने 'पयः' बने शब्दोनो दूध अर्थ छे, परंतु अक्षरो भिन्न भिन्न होवाथी एकार्थक अने विविध व्यंजननुं उदाहरण आप्युंः—अनु०.

(जेमः आकडानुं दूध, गायनुं दूध, भेंसनुं दूध. ३.) केटलांक पदो विविध अर्थवाळां अने विविध व्यंजनवाळां होय छे. (जेमः घट, पट, लकुट वगेरे. ४.) आ प्रमाणे पदोमां चार भंगीनो संभव होवा छतां प्रश्नसूत्रमां बीजी अने चोथी भंगीनुं ग्रहण कर्युं छे, कारण के देखीती रीते बधे पदो विविध व्यंजनवाळां होवाथी पहेली अने त्रीजी भंगीनो संभव ज नथी. उत्तर सूत्रमां तो चलनादि चार पदोने आश्रीने बीजी भंगी, अने 'छिद्यमान' वगेरे पांच पदोने आश्रीने चोथी भंगी समजवी. शं०–चलनादि (पदो)मां अर्थोनो स्पष्ट रीते भेद होवाथी आदिना चार पदो एकार्थक (समान अर्थवाळां) केम कह्यां?, स०–कहे छे केः–['उप्पण्णपक्खस्स'त्ति] उत्पन्न उत्पाद नो जे पक्ष–परिग्रह–ते वडे=उत्पत्तिपक्षना अंगीकार वडे एकार्थ छे, अर्थात् उत्पादपर्यायने परिग्रहीने ए चारे पदो एकार्थक कहेवाय छे; अथवा 'उत्पन्नपक्षस्य' एटले उत्पाद नामना वस्तुविकल्पने कहेवावाळा ए चार पदो छे. तात्पर्य ए के, आ चार पदो उत्पादने आश्रीने एक ज अर्थवाळां होवाथी, तथा एक ज अन्तर्मुहूर्तमध्यभावी होवाथी तेओनो काल पण तुल्य छे. आथी, एकार्थक- तुल्य अर्थवाळां छे. ते उत्पाद नामनो पर्याय विशिष्ट केवलज्ञानोत्पादरूप ज समजवो, कारण के कर्मनी विचारणामां कर्मना नाशथी बे फल थाय छेः केवलज्ञान अने मोक्षनी प्राप्ति. तेने विषे आ चार पदो केवलज्ञानना उत्पादविषयक होवाथी एकार्थक कह्यां छे, कारण के जीवे पूर्वमां कोई वखत केवलज्ञानपर्याय प्राप्त कर्यो नथी तेथी ए प्रधान छे. वळी तेने माटे ज पुरुषनो प्रयास होवाथी ते ज केवलज्ञाननो उत्पादरूप पर्याय अहीं स्वीकार्यो छे. आ चार पदो एकार्थक होवा छतां पण तेओनो आ अर्थ–निम्नोल्लिखित अर्थ–सामर्थ्य प्रापित क्रम युक्त छे, अर्थात् प्रकरणबळथी क्रमपूर्वक थाय छे, एटले के प्रथम कर्म चाले छे, अर्थात् स्थितिना क्षयथी अथवा उदीरणाना बलथी, आ बन्ने प्रकारे कर्म उदयमां आवे छे अने उदयमां आवेलुं कर्म वेदाय- अनुभवाय–छे. उदय प्राप्त कर्म द्विविध छेः स्थितिना क्षयथी उदयमां आवेलुं, तथा उदीरणावडे उदयमां आवेलुं. ते कर्म अनुभव्या पछी जीवथी जुदुं पडे छे एटले के ते कर्मे फल आपेलुं होवाथी ते कर्मनो विपाक अनुभवी लीधेलो होवाथी–जीवथी (ते) चाल्युं जाय छे. आ व्याख्या टीकाकारना मत प्रमाणे करी.

एकार्थ केम ?

उत्पादपक्ष.

क्रमपूर्वक-अर्थ.

६. अन्ये तु व्याख्यान्तिः–''स्थितिबन्धाद्यविशेषितसामान्यकर्माश्रयत्वाद् एकार्थकान्येतानि केवलोत्पादपक्षस्य च साधकानि''इति. 'चत्वारि चलनादीनि पदानि एकार्थकानि'इत्युक्ते 'शेषाणि अनेकार्थकानि' इति सामर्थ्यादवगतमपि सुखावबोधाय साक्षात् प्रतिपादयितुमाह.–*'छिज्जमाणे'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–*'णाणट्ठ'* त्ति नानार्थानि, नानार्थत्व त्वेवम्–'छिद्यमान छिन्नम्' इत्येतत् पदं स्थितिबन्धाश्रयम्, यतः सयोगिकेवली अन्तकाले योगनिरोधं कर्तुकामो वेदनीय-नाम-गोत्राख्यानां निसृणां प्रकृतीनां दीर्घकालस्थितिकानां सर्वापवर्तनया आन्तर्मौहूर्तिकं स्थितिपरिमाणं करोति. तथा 'भिद्यमानं भिन्नम्' इत्येतत् पदमनुभागबन्धाश्रयम्, तत्र च यस्मिन् काले स्थितिघातं करोति, तस्मिन्नेव काले रसघातमपि करोति. केवलं रसघातः स्थितिखण्डकेभ्यः क्रमप्रवृत्तेभ्योऽनन्तगुणाभ्यधिकः, अतोऽनेन रसघातकरणेन पूर्वस्माद् भिन्नार्थं पदं भवति. तथा 'दह्यमानं दग्धम्' इत्येतत् पदं प्रदेशबन्धाश्रयम्, प्रदेशबन्धस्तु अनन्तानामनन्तप्रदेशानां स्कन्धानां कर्मत्वाऽऽपादनम्. तस्य च प्रदेशबन्धकर्मण· सत्कानां पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणकालपरिमाणयाऽसंख्यातसमयया गुणश्रेणीरचनया पूर्वं रचितानां शैलेश्यवस्थाभाविसमुच्छिन्नक्रियध्यानाग्निना प्रथमसमयादारभ्य यावदन्त्यसमयस्तावत् प्रतिसमयं क्रमेणासंख्येयगुणवृद्धानां कर्मपुद्गलानां दहनं दाहः, अनेन च दहनार्थेन इदं पूर्वस्मात् पदाद् भिन्नार्थं पदं भवति, दाहश्चान्यत्रान्यथा रूढोऽपि इह मोक्षचिन्ताऽधिकाराद् मोक्षसाधन उक्तलक्षणकर्मविषय एव ग्राह्य इति. तथा 'म्रियमाणं मृतम्' इत्येतत् पदमायुष्कर्मविषयम्, यत आयुष्कपुद्गलानां प्रतिसमयं क्षयो मरणम्, अनेन च मरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद् भिन्नार्थं पदं भवति. तथा 'म्रियमाणं मृतम्' इत्यनेनायुष्कर्मैव उक्तम्, यत.–''कर्मैव तिष्ठज्जीवतीत्युच्यते, कर्मैव च जीवादपगच्छद् म्रियत इत्युच्यते'' तच्च मरणं सामान्येनोक्तमपि विशिष्टमेवाभ्युपगन्तव्यम्. यत· संसारवर्तीनि मरणान्यनेकशोऽनुभूतानि दुःखरूपाणि चेति किं तैः? इह पुन. पदेऽपुनर्भवमरणमन्त्यं सर्वकर्मक्षयसहचरितमपवर्गहेतुभूतं विवक्षितमिति. तथा 'निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम्' इत्येतत् पदं सर्वकर्माऽभावविषयम्, यतः सर्वकर्मनिर्जरणं न कदाचिदप्यनुभूतपूर्वं जीवेनेति, अतोऽनेन सर्वकर्माऽभावरूपनिर्जरणार्थेन पूर्वपदेभ्यो भिन्नार्थत्वाद् भिन्नार्थं पदं भवति. अथैतानि पदानि विशेषतो नानार्थान्यपि सन्ति सामान्यतः कस्य पक्षस्याऽभिधायकतया प्रवृत्तानि? इत्यस्यामाशङ्कायामाहः–*'विगयपक्खस्स'*त्ति विगतं विगमो वस्तुनोऽवस्थान्तरापेक्षया विनाशः, स एव पक्षो वस्तुधर्मः, तस्य वा पक्षः परिग्रहो विगतपक्षः, तस्य विगतपक्षस्य वाचकानीति शेषः.

---

१. अहीं 'दूध' शब्दना अनेक अर्थो थया, परंतु दरेक स्थळे 'दूध' ए समान अक्षरवाळुं पद छे तेथी, एक व्यंजन अने अनेकार्थनुं दृष्टान्त आप्युं. २. अहीं 'घट' 'पट' अने 'लकुट' जुदा जुदा अर्थवाळां अने जुदा जुदा अक्षरवाळां छे तेथी विविधार्थक अने विविध व्यंजननुं दृष्टान्त आप्युं. ३. समान अर्थवाळां अने विविध व्यंजनवाळां, ए बीजी भंगी छे. ४. विविध अर्थवाळां अने विविध व्यंजनवाळां, ए चोथी भंगी छेः–अनु० ५. उत्पद्+त= उत्पन्नम् ए प्रमाणे भावने विषे नपुंसकमां 'क्त' प्रत्यय थयो छे –श्रीअभयदेव. ६. 'पक्ष' धातु 'परिग्रह' अर्थमां छेः–श्रीअभय० ७ तृतीयार्थक षष्ठी होवाथी तृतीयानो अर्थ कर्यो. ८. उत्पन्नवस्तुविकल्प, ध्रुववस्तुविकल्प अने विनाशवस्तुविकल्प, एनी अंदरथी अहीं उत्पन्नवस्तुविकल्पने आश्रीने चारे पदो एकार्थक कह्यां छे·–अनु०

१. विशेषावश्यकसूत्रे 'शैलेशी' शब्दस्य विवरणमेवम्·–सेलेसो किल मेरू सेलेसी जा तदचलया, होउं व असेलेसो सेलेसीहोइ थिरयाए. ३०६५. अहवा सेलु व्व इसी सेलेसी होइ सोऽतिथिरयाए, से व अलेसी होइ सेलेसीहोअलोवाओ. ३०६६. सीलं व समाहाणं निच्छयओ सव्वसंवरो सो य, तस्सेसो सीलेसो सेलेसी होइ तदवत्था. ३०६७. व्याख्या–शैलेशो मेरुस्तस्यैवाऽचलता स्थिरताऽस्यामवस्थायां सा शैलेशी. अथवा, अशैलेशः शैलेश इव स्थिरतया भवति शैलेशी, 'भवति' इत्यध्याहारः. अथवा, प्राकृतसंज्ञामाश्रित्य स्थिरतया 'सेलु व्व इसी महरिसी' तस्य संबन्धिनी स्थिरतावस्थाऽनुप्रवारतः शैलेशी. अथवा प्राकृतत्वादेव ''से भिक्खू वा भिक्खुणी वा'' इत्यादिन्यायतः 'सेत्ति सो महरिसी' अलेश्यो लेश्यारहितो भवति यस्यामवस्थायां सा शैलेशी, अकारलोपादिति. अथवा, शीलं समाधानम्, तच्च निश्चयतः प्रकर्षप्राप्तसमाधानरूपत्वात् सर्वसंवरः, ततश्चास्य सर्वसंवररूपस्य शीलस्येशः तस्येयमवस्था शैलेशीति. गा० ३०६५. ३०६६. ३०६७ः–अनु०

६. बीजाओ तो आ प्रमाणे व्याख्या करे छेः–"आ चार पदो स्थितिबंधादि विशेषरहित–सामान्य–कर्मना आश्रित होवाथी एकार्थक छे, अने केवलज्ञानना उत्पादपक्ष (उत्पत्तिपक्ष) ना साधक छे." 'चलनादि चार पदो एकार्थक छे' ए प्रमाणे कहेवाथी ज 'शेष पांच पदो अनेकार्थक छे' एम सामर्थ्यथी जणाइ गयुं; छतां सुखपूर्वक बोध थवाने साक्षात् प्रतिपादनने माटे कहे छे केः–['छिज्जमाणे'] 'छिद्यमान' इत्यादि स्पष्ट छे. विशेष नानार्थक आ प्रमाणेः–'छेदातुं ते छेदायुं' आ वाक्य स्थितिबंधसापेक्ष छे. कारण के अंतकाळमां योगना निरोधने करवानी इच्छावाळा सयोगी केवली दीर्घकाळ सुधी रहेनारी वेदनीय, नाम अने गोत्र नामनी त्रण प्रकृतिना स्थिति परिमाणने सर्वाऽपवर्तनाकरण वडे अन्तर्मुहूर्त समयपरिमाण स्थितिवाळुं करे छे. 'भेदातुं ते भेदायुं' आ पद अनुभागबंधने आश्री कह्युं छे. (ते सयोगी केवली) जे काळे स्थितिघातने करे छे ते ज काळे रसघातने पण करे छे. केवळ अनुक्रमे प्रवृत्त थएला स्थितिखंडको करतां रसघात अनन्तगुण अधिक छे. आथी आ पद रसघात करवारूप अर्थवाळुं होवाथी स्थितिघातार्थक पूर्व पद करतां भिन्न अर्थवाळुं छे. तथा 'बळतुं ते बळ्युं' ए पद प्रदेशबंधने आश्रीने छे. अनन्त प्रदेशात्मक अनन्त स्कंधोने कर्मत्वापादन करवुं तेने प्रदेशबंध कहे छे. पांच ह्रस्वाक्षरना उच्चारकाळ जेटला परिमाणवाळी अने असंख्यातसमययुक्त गुणश्रेणीनी रचनावडे पूर्वे रचित अने प्रथम समयथी आरंभी यावत् अंत समय सुधी प्रतिसमये क्रमथी असंख्यातगुणवृद्ध कर्म पुद्गलोना दहनने दाह कहे छे. ते शैलेशी अवस्थामां थनार शुक्लध्यानना चतुर्थ पाद (चोथा पाया) रूप समुच्छिन्नक्रिय नामना ध्यानाग्नि वडे थाय छे. आ प्रकारे आ पद दहनार्थक होवाथी पूर्व पदोथी भिन्नार्थक छे. अन्य स्थळे अन्यार्थवाळो दाह प्रसिद्ध होवा छतां अर्थात् दाह शब्द अन्य प्रकारे रूढ छे, छतां अहीं मोक्षविचारणाना अधिकारमां मोक्षनो साधक उक्तलक्षण कर्मविषयक दाह ग्रहण करवो. तथा 'मरतुं ते मर्युं' ए पद आयुःकर्मविषयक छे, कारण के आयुष्य संबंधी पुद्गलोनो प्रतिसमय क्षय थवो ए ज मरण छे अने आ प्रमाणे मरवारूप अर्थवडे पूर्व पदोथी आ पद भिन्न अर्थवाळुं होवाथी भिन्नार्थक छे. तेथी 'मरतुं ते मर्युं' ए पदवडे आयुःकर्म ज कहेवायुं, कारण के "(आयुः) कर्म ज रहे छे त्यां सुधी 'जीवे छे' ए प्रमाणे कहेवाय छे, अने जीवथी (आयुः) कर्म दूर थतां ज 'मरे छे' ए प्रमाणे कहेवाय छे." अहीं सामान्यथी 'मरण' कहेवा छतां ते मरण विशिष्ट ज स्वीकारवुं, कारण के संसारमां वर्तता दुःखरूपी मरणो अनेक वखत अनुभव्यां तेथी शुं? अर्थात् ते अहीं न लेवां, पण अहीं मरणपदवडे अपुनर्भवरूप छेल्लुं, सर्वकर्मना क्षयनुं सहचारी, तथा मोक्षनुं कारणभूत मरण विवक्षित छे. तथा 'निर्जरातुं ते निर्जरायुं' ए पद सकल कर्मोना अभाव विषयक छे. जीवे पूर्वे कोइ वखत संपूर्ण कर्मना निर्जरणने अनुभव्युं नथी. आ सर्व

अन्य. नानार्थ. स्थितिबंध. अनुभागबंध. प्रदेशबंध. शैलेशी. मरण. निर्जरण.

---

१. आ (स्थितिबंध) शब्द कर्मनी (अमुककाल सुधीनी) स्थितिना नियमनो सूचक छे. जेम कोइ एक भींत उपर रंग लगावेलो होय अने ते अमुक काल सुधी स्थायी होय छे तेम, आत्मा पोतानी विचारसंकलनाथी के वचन अने देहना व्यापारथी, कर्मना (पुण्य, पापना) अणुओनो जे थर पोता उपर जमावे छे ते थर पण अमुक काल सुधी रहेनारो होय छे अने जेटला काल सुधी ते कर्मनो थर आत्मा उपर रहे ते कालने 'स्थितिबंध' कहे छे.

"अध्यवसायविशेषगृहीतस्य कर्मदलिकस्य यत् स्थितिकालनियमनं स स्थितिबन्धः" (क० प्र० गा०टी० २, पृ–३. भा०)

"एक प्रकारना अध्यवसायद्वारा ग्रहण करेल कर्मदलिकना स्थिति कालना नियमने 'स्थितिबंध' कहे छे". (क० प्र० गा० टी० २, पृ–३. भा०):–अनु०

२. ४४ मां पृष्ठमां 'समय' शब्द उपरनुं पांचमुं टिप्पण गवेषो, जेमां 'मुहूर्त'नुं स्वरूप कहेवाइ गयुं छे.–अनु०

३. आ (अनुभागबंध) शब्द कर्ममां रहेल रसने जणावनारो छे. जेम कोइ केरीमां एकगुण मीठाश छे, कोइ केरीमां द्विगुण (बमणी) मीठाश छे, कोइ केरीमां त्रिगुण मीठाश छे अने ए प्रमाणे दरेक केरीमां न्यून अधिक मीठाश होय छे; तेथी ते मीठाश प्रमाणे खानाराने सुखादिकनी प्राप्ति थाय छे. तेम आत्माए संगृहीत करेल कर्मना थरमां पण रस होय छे अने ते रस कोइ थरमां एकगुण, कोइमां द्विगुण, कोइमां त्रिगुण अने ए प्रमाणे दरेक थरमां रसनी न्यूनाधिकता होय छे. तेथी ज ते थरना धणी–कर्म फळना भोगकरनार–ने विचित्ररसवाळा कर्मोना थरो भोगववा पडे छे. उदाहरण तरीके जेम, एक मनुष्ये एक लाख रूपियानुं दान कर्युं अने बीजा मनुष्ये एक पावलुं पाणी पायुं, तो पण ते बन्ने मनुष्यो केटलीक वार एवो कर्मनो थर पोता उपर जमावे छे जेनुं सुखरूप फल बेउने एक सरखुं ज मळे छे. तेम ज कोइ मनुष्ये मोटी हिंसा करी अने कोइ मनुष्ये मात्र मनद्वारा ज हननो विचार कर्यो, तो पण ते बन्ने मनुष्यो केटलीक वार एवो कर्मनो थर पोता उपर ले छे जेनुं दुःखरूप फल ते बेउने एक सरखुं ज होय छे अर्थात् कर्मना थरमां रस रेडवानुं सामर्थ्य स्थूल क्रियाओ उपर नथी पण आत्माना विचारोनी दृढता उपर छे. ते कर्मना थरमा रहेल सारा या नठारा रसने 'अनुभागबंध' कहे छे.

"कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा, घात्यघाती वा यो रसः सोऽनुभागबन्धो रसबन्ध इत्यर्थः" (कर्म० प्र० गा० टी० २, पृ–३. भा०)

"कर्मपुद्गलोना ज सारा वा नठारा, घातक वा अघातक रसने 'अनुभागबंध' के, 'रसबंध' कहे छे." (क० प्र० गा० टी० २, पृ–३. भा०):–अनु०

४. आ(प्रदेशबंध) शब्द कर्मना ग्रहणनो सूचक छे. आत्मा जे कर्मनो थर पोता उपर ले छे पण जो ते थरनी स्थितिनो एटले के, ते थर अमुक काल सुधी आत्मा उपर रहेशे तेनो निर्णय न होय अने ते थरमा कोइ प्रकारनो रस न रेडायो होय तो, ते थर 'प्रदेशबंध' कहेवाय छे.

"कर्मपुद्गलानामेव यद् ग्रहणं स्थिति–रसनिरपेक्षदलिकसंख्याप्राधान्येनैव करोति स प्रदेशबन्धः" (क० प्र० गा० टी०२, पृ–३. भा०)

"स्थिति अने रसनी अपेक्षा सिवाय मात्र संख्यानी प्रधानताए ज कर्म पुद्गलोना ग्रहणने 'प्रदेशबंध' कहेवाय छे." (क० प्र०–गा० टी० २, पृ–३. भा०):–अनु०

५. विशेषावश्यक सूत्रमां 'शैलेशी' शब्दनुं विवेचन आ प्रमाणे छेः–शैलेशी=मेरु नामना शैलेश (पर्वतस्वामी) जेवी अचलता जे स्थिरतामां होय ते शैलेशी. अथवा, स्थिरतावडे अशैलेश शैलेशनी पेठे थाय ते शैलेशी. अथवा, सेऽलेसी–प्राकृत होवाथी 'से भिक्खू वा भिक्खुणी वा' इत्यादि न्यायथी 'से' एटले ते–महर्षि–अर्थात् जे अवस्थामां महर्षि लेश्यारहित होय ते शैलेशी अवस्था (अकारना लोपथी आ शब्द बने छे.) अथवा, प्राकृत संज्ञाने आश्रीने स्थिरतावडे शैल–पर्वत–जेवो जे महर्षि तेनी जे स्थिरता ते पण उपचारथी शैलेशी कहेवाय. अथवा शील–समाधान–समाधि, ते निश्चयनयथी उत्कृष्ट समाधानरूप होवाथी सर्व संवर, तेनो जे ईश–स्वामी–ते शीलेश अने तेनी जे स्थिति–अवस्था–ते शैलेशी. (विशेषा० गा०३०६५,६६,६७):–अनु०

६. आ (समुच्छिन्नक्रिय) शब्द माटे 'शुक्लध्यान' शब्द उपरनुं विवेचन जुओ (आगळनुं पृ–३७.):–अनु०

७. आ (निर्जरण) शब्द 'निर्' पूर्वक 'जॄ' धातुथी उपजे छे. 'जॄ' धातुनो अर्थ 'जीर्ण थवुं–नाश पामवो' थाय छे. जैनपरिभाषामां 'कर्मोना नाशमां' आ निर्जरण के निर्जरा शब्द प्रसिद्ध छे.

"निर्जीर्यमाणम्–नितराम्–अपुनर्भावेन क्षीयमाणं कर्म" (भ० टी० श्रीअभयदेव.)

"फरीथी उत्पन्न न थाय तेवी रीते क्षय पामता कर्मने 'निर्जरण' प्राप्त कर्म कहे छे." (भ० टी० श्रीअभयदेव.):–अनु०

कर्मना अभावरूप निर्जरण अर्थने लीधे आ पद पूर्व पदोथी भिन्न अर्थवाळुं होवाथी भिन्नार्थक छे. आ पदो विशेषे करी नानार्थक–विभिन्नार्थक–छे, परंतु सामान्य रीते क्या पक्षना अभिधायकपणे प्रवर्तेला छे? आ प्रमाणेनी आशंकाना परिहार माटे कहे छेः–['विगयपक्खस्स' त्ति] विगत–विगम–अवस्थान्तरनी अपेक्षाए वस्तुनो विनाश, अर्थात् वस्तुनुं अवस्थान्तर थवुं ते, ते ज पक्ष एटले वस्तुधर्म, अथवा तेनो पक्ष एटले परिग्रह, ते विगतपक्ष कहेवाय. ते विगत पक्षना कहेवावाळा आ पांच पदो छे, ए प्रमाणे संबंध करी लेवो.

विगत पक्ष.

७. विगतत्वं तु इह अशेषकर्माऽभावोऽभिमतः, जीवेन तस्याप्राप्तपूर्वतयाऽत्यन्तमुपादेयत्वात् तदर्थत्वाच्च पुरुषप्रयासस्येति. एतानि चैवं विगमार्थानि भवन्ति–छिद्यमानपदे हि स्थितिखण्डनं विगम उक्तः, भिद्यमानपदे तु अनुभावभेदो विगमः, दह्यमानपदे तु अकर्मताभवनं विगमः, म्रियमाणपदे पुनरायुष्कर्माऽभावो विगमः, निर्जीर्यमाणपदे तु अशेषकर्माऽभावो विगम उक्तः, तदेवमेतानि विगतपक्षस्य प्रतिपादकानीत्युच्यन्ते. एवं च यत् पञ्चमाङ्गादिसूत्रोपन्यासे प्रेरितं 'यदुत केनाऽभिप्रायेण इदं सूत्रमुपन्यस्तमिति?' तत् केवलज्ञानोत्पाद–सर्वकर्मविगमाऽभिधानरूपसूत्राऽभिप्रायव्याख्यानेन निर्णीतमिति. एतत् सूत्रसंवादिसिद्धसेनाचार्योऽप्याहः–*'उप्पज्जमाणकालं उप्पण्णं विगयं विगच्छन्तं, दवियं पण्णवयंतो तिकालविसयं विसेसेइ.''* इति. 'उत्पद्यमानकालम्' इत्यनेन आद्यसमयादारभ्य उत्पत्त्यन्तसमयं यावदुत्पद्यमानत्वस्य इष्टत्वाद् वर्तमान-भविष्यत्कालविषयद्रव्यमुक्तम्, 'उत्पन्नम्' इत्यनेन तु अतीतकालविषयम्, एवं 'विगतं विगच्छत्' इत्यनेनापीति, ततश्च उत्पद्यमानादि प्रज्ञापयन् स भगवान् द्रव्यं विशेषयति, कथं?, त्रिकालविषयं यथा भवतीति संवादगाथार्थः.

७. अहीं विगत एटले अशेष कर्मनो अभाव इष्ट छे, कारण के जीवे पूर्वे कोइ समय तेने (अशेष कर्मना अभावने) प्राप्त कर्यो नथी. जेथी ते, सकल कर्मनो अभाव) अत्यन्त उपादेय ग्राह्य–छे; वळी तेने माटे ज पुरुषनो प्रयास छे. आ पांच पदो आवी रीते विगमार्थक (विनाशार्थक) छेः–(१) छिद्यमानपदमां स्थितिखंडरूप विगम कह्यो. (२) भिद्यमान पदमां अनुभावभेद–रसभेद–विगम कह्यो. (३) दह्यमान पदमां कर्मरहित थवा (कर्मनो दाह थवा) स्वरूप विगम कह्यो. (४) म्रियमाण पदमां फरी आयुःकर्मना अभावरूप विगम कह्यो. (५) अने निर्जीर्यमाण पदमां अशेष कर्मनो अभाव ए विगम कह्यो छे. आ कारणथी आ पांच पदो विगतपक्षना कहेवावाळा छे. आ पांचमां अंगना आदि सूत्रना उपन्यासमां जे प्रेर्युं हतु के, शा अभिप्रायथी आ सूत्र सौथी प्रथम रच्यो छो?, तेनो केवलज्ञाननी उत्पत्ति अने सर्व कर्मनो नाश कहेवारूप सूत्रना अभिप्रायनी व्याख्यावडे निर्णय कर्यो. आ सूत्रना संवादी सिद्धसेनाचार्य पण कहे छेः–''उत्पद्यमानकालिक (वर्तमानकालना) द्रव्यने उत्पन्नकालिक (भूतकालिक) प्ररूपनार, तथा विगच्छत्कालिक (वर्तमान कालना) द्रव्यने विगतकालिक (भूतकालिक) प्ररूपनार भगवान् 'द्रव्य त्रिकाल विषयक छे' एम द्रव्यने विशेषित करे छे अर्थात् आद्य समयथी आरंभी उत्पत्तिना अंत्य समय सुधी उत्पद्यमानत्व इष्ट होवाथी 'उत्पद्यमान काल' ए पद वडे वर्तमान अने भविष्यत् कालविषयक वात कही. 'उत्पन्न' ए पदथी अतीत कालविषयक द्रव्य कह्युं. 'विगच्छत्' पदथी पण ए ज प्रमाणे कह्युं छे एटले के उत्पद्यमानादिनुं प्ररूपणकर्ता भगवान् द्रव्यने विशेषित करे छे के, द्रव्य त्रिकाळविषयक छे.'' आ प्रमाणे संवाद गाथानो अर्थ छे.

विगम.

समाधान.

सिद्धसेननी अनुमति.

८. अन्ये तु 'कर्म' इति पदस्य सूत्रेऽनभिधानाच्चलनादिपदानि सामान्येन व्याख्यान्ति न कर्मापेक्षयैव, तथाहिः–*'चलमाणे चलिए'*त्ति इह चलनमस्थिरत्वपर्यायेण वस्तुन उत्पादः. *'वेइज्जमाणे वेइए'*त्ति व्येजमानं कम्पमानम्, व्येजितं कम्पितम्–'एजृ कम्पने' इति वचनात्, व्येजनमपि तद्रूपापेक्षयोत्पाद एव. *'उदीरिज्जमाणे उदीरिए'*त्ति इहोदीरण स्थिरस्य सत प्रेरणं तदपि चलनमेव. *'पहिज्जमाणे पहीणे'*त्ति प्रहीयमाणं प्रभ्रश्यत् परिपतदित्यर्थः, प्रहीणं प्रभ्रष्टं परिपतितमित्यर्थः, इहापि प्रहाणं चलनमेव. चलनादीनां चैकार्थत्वं सर्वेषां गत्यर्थत्वाद्. *'उप्पण्णपक्खस्स'*त्ति चलत्वादिना पर्यायेणोत्पन्नत्वलक्षणपक्षस्याऽभिधायकान्येतानीति. तथा छेद-भेद-दाह-मरण-निर्जरणानि अकर्मार्थान्यपि व्याख्येयानि, तद्व्याख्यानं च प्रतीतमेव. भिन्नार्थता पुनरेषामेवम्–कुठारादिना लतादिविषयश्छेदः. तोमरादिना शरीरादिविषयो भेदः. अग्निना दार्वादिपर्यादिविषयो दाहः. मरणं तु प्राणत्यागः. निर्जरा तु अतिपुराणीभवनमिति. *'विगयपक्खस्स'*त्ति भिन्नार्थान्यपि सामान्यतो विनाशाऽभिधायकान्येतानीत्यर्थः. न च वक्तव्यं किमेतैश्चलनादिभिः इह निरूपितै? अतत्त्वरूपत्वादेषाम्. अतत्त्वरूपत्वस्याऽसिद्धत्वात्, तदसिद्धिश्च निश्चयनयमतेन वस्तुस्वरूपस्य प्रज्ञापयितुमारब्धत्वात्, तथाहिः–व्यवहारनयश्चलितमेव चलितमिति मन्यते, निश्चयस्तु चलदपि चलितमिति. अत्र च बहु वक्तव्यम्, तच्च विशेषावश्यकाद्, इहैवाभिधास्यमानजमालिचरिताच्चाऽवसेयमिति.

सामान्यव्याख्या.

८. केटलाक तो, सूत्रमां 'कर्म' पद कहेलुं नथी माटे चलन वगेरे पदोनी सामान्यपणे व्याख्या करे छे, अर्थात् चलन वगेरे पदोनुं सामान्य रीते व्याख्यान करे छे. किन्तु कर्मनी ज अपेक्षाए व्याख्या करता नथी, जेम केः–''(१) ['चलमाणे चलिए'] 'चालतुं ते चाल्युं' एमां चलन एटले अस्थिरत्व पर्यायथी वस्तुनो उत्पाद (उत्पत्ति.) (२) ['वेइज्जमाणे वेइए'] 'कंपतुं ते कंप्युं' एमां व्येजमानं एटले कंपतुं. ते व्येजितं एटले कंप्युं. कंपवुं ए पण स्वस्वरूपनी अपेक्षाए उत्पाद ज छे. (३) ['उदीरिज्जमाणे उदीरिए'] 'उदीरातुं उदीरायुं' ए पदमां उदीरवुं एटले स्थिर होय तेने प्रेरवुं, अने ते प्रेरण पण चलन ज छे. (४) ['पहिज्जमाणे पहीणे'] 'प्रभ्रष्ट थतुं- प्रभ्रष्ट थवा मांड्युं ते प्रभ्रष्ट थयुं' अहीं प्रहीयमाणं–प्रभ्रष्ट थतुं एटले परिपतन पामतुं (पडतुं) प्रहीणं -प्रभ्रष्ट–भ्रष्ट थयुं अर्थात् परिपतित थयुं–पड्युं. (एम अर्थ संबंध छे.) आ स्थले प्रहाण–भ्रष्ट थवुं–ए पण चलन ज छे. ए

---

१. प्र०छायाः–उत्पद्यमानकालमुत्पन्नं विगतं विगच्छत्, द्रव्यं प्रज्ञापयंस्त्रिकालविषयं विशेषयति. इति. सम्मतितर्के तृतीयकाण्डे (मा०) गा–३७.

२. एतद् जमालिचरितमस्मिन्नेव भगवतीसूत्रे नवमे शते, त्रयस्त्रिंश (३३) उद्देशके (पृ० ७९९–८४९ क० आ०) द्रष्टव्यम्, तथा श्रीविशेषावश्यकसूत्रे गा० २३०७–२३३२, पृ–९३५–९४४ (य० ग्रं०) द्रष्टव्यम्:–अनु०

१. 'एजृ' कंपवुं ए धातुनुं 'वि' उपसर्गपूर्वक रूप छेः–श्रीअभयदेव.

चलण वगेरे चार पदो गत्यर्थक होवाथी एकार्थक—समानार्थक—छे. ['उप्पण्णपक्खस्स'त्ति] चलनादि पर्यायथी आ चार पदो उत्पादलक्षण पक्षना कहेनारां छे. तथा छेद, भेद, दाह, मरण अने निर्जरा ए पांचेने पूर्वोक्त कर्म विषयथी अन्य विषयमां पण व्याख्यात करवा, तेओनी व्याख्या प्रतीत ज छे. ए पांचनुं भिन्नार्थपणुं आ प्रमाणे छेः—(१). कुठार (कुहाडा) वगेरेथी लतादिकनुं—वेलडी वगेरेनुं—कापवुं ते छेद, (२) भाला वगेरेथी शरीरादिकनुं कापवुं ते भेद, (३) अग्नि वगेरेथी काष्ठादिनुं बाळवुं ते दाह, (४) प्राणत्याग ते मरण अने (५) अत्यन्त पुराणुं (जूनुं) थवुं ते निर्जरा. ['विगयपक्खस्स'त्ति] आ दरेक पदो भिन्नार्थक छे तो पण सामान्य रीते विनाशने कहेनारां छे. आ मामान्य प्रकारे 'चालतुं ते चाल्युं' वगेरे अतत्त्वरूप होवाथी तेना निरूपण वडे शुं अर्थात् आ शास्त्रमां ए वातनुं निरूपण शामाटे कर्युं ? कारण के ते अतत्त्वरूप छे, एवी शंका न करवी. समा०—अहीं निश्चयनयना मत प्रमाणे वस्तुस्वरूपने जणाववानो आरंभ करेलो होवाथी सामान्य रीतिए पण चलनादि पदनुं निरूपण तात्त्विक छे माटे, तेमां अतत्त्वरूपनी ज असिद्धि छे. (अर्थात् निश्चय नयना मत अनुसार 'चालतुं ते चाल्युं' ए अतत्त्व नथी पण तत्त्वरूप सत्य छे) जेमके, व्यवहारनय 'चाल्युं' तेने ज 'चाल्युं' माने छे, परंतु निश्चयनय तो 'चालता'ने पण 'चाल्युं' माने छे. आ स्थले घणुं वक्तव्य कहेवानुं छे, परंतु ते विशेषावश्यकथी, तथा आ सूत्रमां ज जमालिनुं चरित्र कहेवाशे त्यांथी जाणी लेवुं.

अतत्त्वनी व्याख्या शामाटे ?

तत्त्व छे.

निश्चयनय.

नैरयिक.

३. प्र०—णेरइयाणं भंते ! केवइयंकालं ठिई पन्नत्ता ?.

३. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोनी स्थिति केटला काळनी कही छे अर्थात् तेओनुं आयुष्य केटलुं होय छे ?.

३. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं. उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता.

३. उ०—हे गौतम ! जघन्यथी (थोडामां थोडी) दश हजार वर्षनी स्थिति कही छे, अने उत्कृष्टताथी (वधारेमां वधारे) तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति कही छे.

४. प्र०—नेरइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा? पाणमंति वा ? ऊससंति वा ? नीससंति वा ?.

४. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको केटला काळे श्वास ले छे ? अने केटले काळे श्वास मूके छे ? अर्थात् केटला काळे उच्छ्वास ले छे अने निःश्वास मूके छे ?.

४. उ०—जहा ऊसासपए.

४. उ०—हे गौतम ! उच्छ्वासपदमां कह्युं छे तेम जाणवुं.

५. प्र०—नेरइया णं भंते ! आहारट्ठी ?.

५. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको आहारार्थी (आहारना अभिलाषी) छे ?.

५. उ०—जहा पण्णवणाए पढमए आहारुद्देसए, तहा भाणियव्वं. गाथा:—

ठिई उस्सासाऽऽहारे किं वाऽऽहारेंति, सव्वओ वा वि,
कतिभागं सव्वाणि व कीस व भुज्जो परिणमंति ?.

५. उ०—हे गौतम ! जेम पन्नवणा (प्रज्ञापना) ना आहारपदना पहेला उद्देशकमां कह्युं छे, तेम जाणी लेवुं. गाथाः—
नैरयिकोनी स्थिति, उच्छ्वास तथा आहार विषयक कहेवुं, शुं तेओ आहार करे ? सर्व आत्मप्रदेशे वारंवार आहार करे ? केटलामो भाग आहार करे ? सर्व आहारक द्रव्योनो आहार करे ? अने आहारक द्रव्योने केवा रूपमां वारंवार परिणमावे ?.

६ प्र०—नेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ? आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया ? अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया ? अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया ?

६. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोए पूर्वे आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्यां ? आहरेला तथा आहराता पुद्गलो परिणामने पाम्यां ? जे पुद्गलो अनाहारित—नहीं आहरेला—छे ते तथा आहराशे ते परिणामने पाम्यां ? के जे पुद्गलो नहीं आहरेला छे ते तथा नहीं आहराशे ते परिणामने पाम्यां ?.

---

१. जमालिनुं सविस्तर चरित्र आ भगवतीसूत्रमां ज नवम शतकमां तेत्रीशमां उद्देशकमां छे त्यांथी जाणवुं (क० आ० पृ०७९९–८४९) तथा विशेषावश्यकसूत्रमां पण तेनो अधिकार छे, जे आगळ (पृ–४१–४२) ना टिप्पणमां जणाव्यो छे, ते पण जाणवो. (गाथा. २३०७–२३३२, पृ–९३५–९४४ य० ग्रं०)

१. मूलच्छायाः—नैरयिकाणां भगवन् ! कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?. गौतम ! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता. नैरयिका भगवन् ! कियत्कालाद् आनन्ति वा, प्राणन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा ?. यथोच्छ्वासपदे. नैरयिका भगवन् ! आहारार्थिनः ?. यथा प्रज्ञापनायां प्रथम आहारोद्देशकः, तथा भणितव्यम्. गाथाः—स्थितिः, उच्छ्वासा–ऽऽहारः किं वाऽऽहरन्ति सर्वतो वाऽपि, कतिभागं सर्वाणि वा किंस्वतया वा भूयः परिणमन्ति ? नैरयिकाणां भगवन् ! पूर्वाहृताः पुद्गलाः परिणताः. आहृताः, आह्रियमाणाः पुद्गलाः परिणताः. अनाहृताः, आहरिष्यमाणाः पुद्गलाः परिणताः. अनाहृताः, अनाहरिष्यमाणाः पुद्गलाः परिणताः ?:–अनु०

२. एतच्च प्रज्ञापनायां सप्तमम्. (क० आ० पृ–३२०–३२४). ३. आहारपदमपि तत्रैव अष्टाविंशतितमम्. तत्र द्वावुद्देशकौ, तयोः प्रथमः साक्षित्वेन समीपन्यस्तः, स च तत्र (क० आ० पृ–७२९–७३६) अस्ति:–अनु०

१. आ 'उच्छ्वासपद' प्रज्ञापनासूत्रमां सातमुं छे अने ते (क० आ० पृ–३२०थी३२४ सुधी) छे. २. 'आहारपद' प्रज्ञापनासूत्रमां अठ्ठावीशमुं छे, तेना बे उद्देशक छे, तेमां प्रथम उद्देशक (क० आ० पृ–७२९ थी७३६सुधी) छेः–अनु०

६. उ०—गोयमा ! नेरइयाणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया. आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया, परिणमंति य. अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला णो परिणया, परिणमिस्संति. अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला नो परिणया, णो परिणमिस्संति.

७. प्र०—नेरइयाणं भंते ! पुव्वाहारिया पोग्गला चिया ? पुच्छा.

७. उ०—जहा परिणया, तहा चिया वि, एवं उवचिया वि, उदीरिया, वेइया, निज्जिण्णा. गाहाः—

परिणय, चिया, य उवचिया, उदीरिया, वेइया, य निज्जिण्णा;
एक्केक्कम्मि पदम्मि चउव्विहा पोग्गला होंति.

८. प्र०—नेरईयाणं भंते ! कतिविहा पोग्गला भिज्जंति ?

८. उ०—गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला भिज्जंति. तं जहाः—अणू चेव, बायरा चेव.

९. प्र०—नेरईयाणं भंते ! कतिविहा पोग्गला चिज्जंति ?.

९. उ०—गोयमा ! आहारदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहा पोग्गला चिज्जंति. तं जहाः—अणू चेव, बायरा चेव. एवं उवचिज्जंति.

१०. प्र०—णेरईया णं भंते ! कतिविहा पोग्गले उदीरेंति ?

१०. उ०—गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च दुविहे पोग्गले उदीरेंति. तं जहाः—अणू चेव, बायरा चेव. सेसा वि एवं चेव भाणियव्वा—वेदेंति, णिज्जरेंति. उयट्टिंसु, उयट्टेंति, उयट्टेस्संति. संकामिंसु, संकामेंति, संकामेस्संति. णिहत्तिंसु, णिहत्तेंति, णिहत्तेस्संति. णिकायिंसु, णिकायिंति, णिकायेस्संति. सव्वेसु वि कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च. गाहाः—

भेदिय, चिया, उवचिआ, उदीरिआ, वेदिआ, य णिज्जिण्णा;
उव्वट्टण-संकामण-णिहत्तण-णिकायणे तिविहकालो.

६. उ०—हे गौतम ! नैरयिकोए पूर्वे आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्यां. आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्यां अने आहरातां पुद्गलो परिणामने पामे छे. नहीं आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्यां नथी अने जे पुद्गलो आहराशे ते परिणामने पामशे. तथा नहीं आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्यां नथी अने जे पुद्गलो नहीं आहराशे ते परिणामने पामशे नहीं.

७. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोए पूर्वे आहरेला पुद्गलो चयने पाम्यां ? (एम प्रश्न करवो.)

७. उ०—हे गौतम ! जेवी रीते परिणामने पाम्यां, तेवी रीते चयने पण पाम्यां. ए प्रमाणे उपचयने पाम्यां. उदीरणाने पाम्यां. वेदनने पाम्यां तथा निर्जराने पाम्यां. गाथाः—

परिणत, चित, उपचित, उदीरित वेदित, अने निर्जीर्ण; ए एक एक पदमां चार प्रकारना पुद्गलो (प्रश्न अने उत्तर विषयक) थाय छे.

८. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोवडे केटला प्रकारना पुद्गलो भेदाय ?

८. उ०—हे गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणाने आश्रीने बे प्रकारना पुद्गलो भेदाय छे. ते आ प्रमाणे छेः—सूक्ष्म अने बादर.

९. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको केटला प्रकारना पुद्गलोनो चय करे छे ?.

९. उ०—हे गौतम ! आहारद्रव्यवर्गणानी अपेक्षाए बे प्रकारना पुद्गलोनो चय करे छे. ते आ प्रमाणे छेः—सूक्ष्म अने बादर. ए प्रमाणे उपचयमां पण जाणवुं.

१०. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको केटला प्रकारना पुद्गलोनी उदीरणा करे छे ?

१०. उ०—हे गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणानी अपेक्षाए ते बे प्रकारना पुद्गलोनी उदीरणा करे छे. ते आ प्रमाणे छेः—सूक्ष्म अने बादर. शेष (बाकीना) पदो पण आ प्रमाणे कहेवा. वेदे छे, निर्जरे छे. अपवर्तन पाम्या, अपवर्तन पामे छे, अपवर्तन पामशे. संक्रमाव्या, संक्रमावे छे, संक्रमावशे. निधत्त थया, निधत्त थाय छे, निधत्त थशे. निकाचित थया, निकाचित थाय छे, निकाचित थशे. आ सर्व पदमां कर्मद्रव्यवर्गणानो अधिकार करीने (अणु तथा बादर पुद्गलो कहेवा.) गाथाः—

भेदाया, चय पाम्या, उपचय पाम्या, उदीराया, वेदाया अने निर्जराया. अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन अने निकाचल (पाछलना चार) पदोमां त्रण प्रकारनो काल कहेवो.

---

१. मू०छाः—गौतम ! नैरयिकाणां पूर्वाहृताः पुद्गलाः परिणताः. आहृताः, आह्रियमाणाः पुद्गलाः परिणताः, परिणमन्ति च. अनाहृताः, आहरिष्यमाणाः पुद्गला नो परिणताः, परिणंस्यन्ति. अनाहृताः, अनाहरिष्यमाणाः पुद्गला नो परिणताः, नो परिणंस्यन्ति. नैरयिकाणां भगवन् ! पूर्वाहृताः पुद्गलाश्चिताः ? पृच्छा. यथा परिणताः, तथा चिता अपि, एवमुपचिता अपि, उदीरिताः, वेदिताः, निर्जीर्णाः. गाथाः—परिणताश्चिताश्चोपचिता उदीरिता वेदिताश्च निर्जीर्णाः, एकैकस्मिन् पदे चतुर्विधाः पुद्गला भवन्ति. नैरयिकाणां भगवन् ! कतिविधाः पुद्गला भिद्यन्ते ? गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्य द्विविधाः पुद्गला भिद्यन्ते, तद्यथाः—अणवश्चैव बादराश्चैव. नैरयिकाणां भगवन् ! कतिविधाः पुद्गलाश्चीयन्ते ?. गौतम ! आहारद्रव्यवर्गणामधिकृत्य द्विविधाः पुद्गलाश्चीयन्ते. तद्यथाः—अणवश्चैव, बादराश्चैव. एवमुपचीयन्ते. नैरयिका भगवन् ! कतिविधान् पुद्गलानुदीरयन्ति ?. गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्य द्विविधान् पुद्गलानुदीरयन्ति. तद्यथाः—अणूंश्चैव, बादरांश्चैव. शेषा अप्येवं चैव भणितव्याः—वेदयन्ति. निर्जरयन्ति. अपावर्तयन्, अपवर्तयन्ति, अपवर्तयिष्यन्ति. समक्रमयन् , संक्रमयन्ति, संक्रमयिष्यन्ति. निधत्तानकार्षुः, निधत्तान् कुर्वन्ति, निधत्तान् करिष्यन्ति. निकाचितवन्तः, निकाचयन्ति, निकाचयिष्यन्ति. सर्वेष्वपि कर्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्य. गाथाः—भेदिताः, चिताः, उपचिताः, उदीरिताः, वेदिताश्च निर्जीर्णाः; अपवर्तन-संक्रमण-निधत्तन-निकाचने त्रिविधः कालः—अनु०—

११. प्र०—णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेया-कम्मत्ताए गेण्हंति, ते किं तीतकालसमए गेण्हंति ? पडुप्पण्णकालसमये गेण्हंति ? अणागतकालसमये गेण्हंति ?.

११. प्र०—हे भगवन्! नैरयिको जे पुद्गलोने तैजस-कार्मण-पणे ग्रहण करे छे, तेने (पुद्गलोने) शुं अतीत (गयेला) काळसमयमां ग्रहण करे छे ? प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) काळसमयमां ग्रहण करे छे ? के भविष्य काळसमयमां ग्रहण करे छे ?

११. उ०—गोयमा ! णो तीयकालसमये गेण्हंति, पडुप्पण्णकालसमए गेण्हंति, णो अणागयकालसमए गिण्हंति.

११. उ०—हे गौतम! अतीत काळसमयमां ग्रहण करता नथी, (पण) प्रत्युत्पन्न काळसमयमां ग्रहण करे छे. (अने) भविष्य काळसमयमां ग्रहण करता नथी.

१२. प्र०—णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेया-कम्मत्ताए गहिए उदीरेंति, ते किं तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति ? पडुप्पण्णकालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति ? गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति ?.

१२. प्र०—हे भगवन्! नैरयिको तैजस-कार्मणपणावडे ग्रहण करेला जे पुद्गलोनी उदीरणा करे ते शुं अतीतकाळसमयमां ग्रहण करायेला पुद्गलोनी उदीरणा करे छे ? के वर्तमानकाळसमयमां ग्रहण करातां पुद्गलोनी उदीरणा करे छे ? अथवा जेओनो उदय काळ आगळ आववानो छे एवा (भविष्यकालविषयक) पुद्गलोनी उदीरणा करे छे ?

१२. उ०—गोयमा ! अतीतकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति, णो पडुप्पण्णकालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति, णो गहणसमयपुरक्खडे पोग्गले उदीरेंति. एवं वेदेंति, णिज्जरेंति.

१२. उ०—हे गौतम ! अतीत काळसमयमां ग्रहण करायेला पुद्गलोनी उदीरणा करे छे. (परंतु) वर्तमानकाळसमयमां ग्रहण करातां पुद्गलोनी उदीरणा करता नथी, तथा जेओनो ग्रहण समय आगामी छे एवा पुद्गलोनी पण उदीरणा करता नथी. ए प्रमाणे-वेदे छे, निर्जरे छे.

१३. प्र०—णेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलिअं कम्मं बंधंति ? अचलियं कम्मं बंधंति ?.

१३. प्र०—हे भगवन् ! शुं नैरयिको जीवप्रदेशथी चलित कर्मने बांधे छे ? अथवा अचलित कर्मने बांधे छे ?.

१३. उ०—गोयमा ! णो चलियं कम्मं बंधंति, अचलिअं कम्मं बंधंति.

१३. उ०—हे गौतम ! (तेओ) चलित कर्मने बांधता नथी, पण अचलित कर्मने बांधे छे.

१४. प्र०—णेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चालितं कम्मं उदीरेंति ? अचलितं कम्मं उदीरेंति ?.

१४. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको शुं जीवप्रदेशथी चलित कर्मने उदीरे छे ? अथवा अचलित कर्मने उदीरे छे ?.

१४. उ०—गोयमा ! णो चलितं कम्मं उदीरेंति, अचलितं कम्मं उदीरेंति. एवं वेदेंति, उयट्टेंति, संकामेंति, निहत्तेंति, निकायेंति. सव्वेसु अचलियं, नो चलियं.

१४. उ०—हे गौतम ! चलित कर्मने उदीरता नथी पण, अचलित कर्मने उदीरे छे. ए प्रमाणे वेदन करे छे, अपवर्तन करे छे, संक्रमण करे छे, निधत्त करे छे अने निकाचित करे छे. ए सर्व पदोमां अचलित (कर्म) ने योजवुं, पण चलित (कर्म) ने योजवुं नहीं.

१५. प्र०—णेरइया णं भंते ! जीवाओ किं चलियं कम्मं णिज्जरेंति ? अचलियं कम्मं णिज्जरेंति ?.

१५. प्र०—हे भगवन् ! शुं नैरयिको जीवप्रदेशथी चलित कर्मने निर्जरे छे ? के अचलित कर्मने निर्जरे छे ?.

१५. उ०—गोयमा ! चलियं कम्मं णिज्जरेंति, णो अचलियं कम्मं णिज्जरेंति. गाहाः—

बंधो-दय-वेदो-यट्ट-संकमे तह णिहत्तण-णिकाये,
अचलिय कम्मं तु ए भवे. चलियं जीवाओ निज्जरए.

१५. उ०—हे गौतम ! चलित कर्मनी निर्जरा करे छे, पण अचलित कर्मनी निर्जरा करता नथी. गाथाः—

बन्ध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन अने निकाचनने विषे अचलित कर्म होय अने निर्जराने विषे तो जीवथी चालेलुं (कर्म) होय.

---

१. मू॰च्छाः—नैरयिका भगवन्! यान् पुद्गलान् तैजस-कार्मणतया गृह्णन्ति, तान् किमतीतकालसमये गृह्णन्ति ? प्रत्युत्पन्नकालसमये गृह्णन्ति ? अनागत कालसमये गृह्णन्ति ?. गौतम ! नाऽतीतकालसमये गृह्णन्ति, प्रत्युत्पन्नकालसमये गृह्णन्ति, नाऽनागतकालसमये गृह्णन्ति. नैरयिका भगवन् ! यान् पुद्गलान् तैजस-कार्मणतया गृहीतान् उदीरयन्ति, तान् किमतीतकालसमयगृहीतान् पुद्गलान् उदीरयन्ति ? प्रत्युत्पन्नकालसमयगृह्यमाणान् पुद्गलान् उदीरयन्ति ? ग्रहणसमयपुरस्कृतान् पुद्गलान् उदीरयन्ति ?. गौतम ! अतीतकालसमयगृहीतान् पुद्गलान् उदीरयन्ति, नो प्रत्युत्पन्नकालसमयगृह्यमाणान् पुद्गलान् उदीरयन्ति, नो ग्रहणसमयपुरस्कृतान् पुद्गलान् उदीरयन्ति. एवं वेदयन्ति, निर्जरयन्ति. नैरयिका भगवन् ! जीवात् किं चलितं कर्म बध्नन्ति ? अचलितं कर्म बध्नन्ति ?. गौतम ! नो चलितं कर्म बध्नन्ति, अचलितं कर्म बध्नन्ति. नैरयिका भगवन् ! जीवात् किं चलितं कर्म उदीरयन्ति ? अचलितं कर्म उदीरयन्ति ?. गौतम ! नो चलितं कर्म उदीरयन्ति, अचलितं कर्म उदीरयन्ति. एवं वेदयन्ति. अपवर्तयन्ति. संक्रामयन्ति. निधत्तं कुर्वन्ति. निकाचयन्ति. सर्वेष्वचलितम्, नो चलितम्. नैरयिका भगवन् ! जीवात् किं चलितं कर्म निर्जरयन्ति ? अचलितं कर्म निर्जरयन्ति ?. गौतम ! चलितं कर्म निर्जरयन्ति, नो अचलितं कर्म निर्जरयन्ति. गाथाः—बन्धो-दय-वेदाऽपवर्तन-संक्रमे तथा निधत्तन-निकाचे, अचलितं कर्म तु भवेत्, चलितं जीवात् निर्जरयेत्ः—अनु॰

९. इहाद्ये प्रश्नोत्तरसूत्रद्वये मोक्षतत्त्वं चिन्तितम्, मोक्षः पुनर्जीवस्य, जीवाश्च नारकादयश्चतुर्विंशतिविधाः. यदाहः—"१ नेरइया. १० असुराई. ५ पुढवाई. ३ बेइंदियादओ चेव, २ पंचिंदिय–तिरिय–नरा. १ विंतर. १ जोइसिअ. १ वेमाणि." तत्र नारकांस्तावत् स्थित्यादिभिर्निरूपयन्नाहः— 'नेरइयाणं' इत्यादि. निर्गतम्—अयम्—इष्टफलं कर्म येभ्यस्ते निरयाः, तेषु भवा नैरयिका नारकाः, तेषां नैरयिकाणाम्, 'भंते' त्ति हे भदन्त !, 'केवइयंकालं' ति कियांश्चासौ कालश्च इति कियत्कालः, तं कियत्कालं यावत् 'ठिइ' त्ति आयुष्कर्मवशाद् नरकेऽवस्थानम्, 'पन्नत्त' त्ति प्रज्ञप्ता प्ररूपिता भगवद्भिः, अन्यतीर्थकरैश्चेति प्रश्नः. 'गोयमा' इत्यादि निर्वचनं व्यक्तमेव. नवरम्—'दस वाससहस्साइं' ति प्रथमपृथिवीप्रथमप्रस्तटाऽपेक्षया, 'तेत्तीसं सागरोवमाइं' ति सप्तमपृथिव्यपेक्षयेति, मध्यमा तु जघन्याऽपेक्षया समयाद्यधिका सामर्थ्यगम्येति. अनन्तरं नारकाणां स्थितिरुक्ता, ते च 'उच्छ्वासादिमंतः' इत्युच्छ्वासादिनिरूपणायाहः—'नेरइया णं' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'केवइकालस्स' त्ति प्राकृतशैल्या कियत्कालात् कियता कालेनेत्यर्थः. 'आणमंति' त्ति आनन्ति, 'अन प्राणने' इति धातुपाठाद्, मकारस्याऽऽगमिकत्वात्. 'पाणमंति' त्ति प्राणन्ति, वाशब्दौ समुच्चयार्थौ. एतदेव पदद्वयं क्रमेणार्थतः स्पष्टयन्नाहः—'ऊससंति वा, नीससंति वा' इति. यदेवोक्तमानन्ति तदेवोक्तमुच्छ्वसन्तीति. तथा यदेवोक्तं प्राणन्ति तदेवोक्तं निःश्वसन्तीति. अथवा आनमन्ति, प्राणमन्तीति; 'णम प्रह्वत्वे' इत्येतस्यानेकार्थत्वेन श्वसनार्थत्वात्.

चोवीश प्रकारे. जीव.

९. अहीं प्रथम बन्ने प्रश्नोत्तरसूत्रमां मोक्षतत्त्व विचार्युं. ते मोक्ष जीवोने होय छे अने जीवोना नैरयिक वगेरे चोवीश भेद छे. कह्युं छे केः—एक नैरयिक, दस असुरकुमारादि, पांच पृथिवीकायादि, त्रण द्वीन्द्रियादि, एक पंचेन्द्रियतिर्यंच, एक मनुष्य, एक व्यंतर, एक ज्योतिषिक अने एक वैमानिक. ए बधा मळीने जीवना चोवीश भेद थाय छे. आ प्रमाणे चोवीश प्रकारना जीवोमांथी प्रथम नारकोनी स्थिति (उमर) वगेरेनो विचार करतां शास्त्रकार कहे छे

नैरयिकस्थिति.

केः ['नेरइयाणं' इत्यादि] निर्–निर्गत, अय–इष्टफलरूप कर्म, अर्थात् जेओनी पासेथी इष्टफलरूप कर्म चाल्युं गयुं छे–जेओ इष्टफलरूप कर्म विनाना छे तेओ निरय, निरयने विषे थएला तेओ नैरयिक–नारक–कहेवाय. ['भंते'त्ति] हे भगवन् ! आपे अने बीजा तीर्थंकरोए नैरयिकोनी ['केवइयंकालं'ति] कियत्काल -केटला काळ -सुधी ['ठिइ'त्ति] स्थिति ['पण्णत्त'ति'] प्ररूपी छे एटले के आयुःकर्मना वशे जीवो केटला काळ सुधी नरकावासमां रहे छे ? आ प्रमाणेनो गौतमस्वामिनो प्रश्न छे. ['गोयमा' इत्यादि] हे गौतम ! वगेरे उत्तर सूत्र स्पष्ट छे, अर्थात् उत्तरमां भगवंत महावीर कहे छे के, हे गौतम! जघन्यथी ['दस वाससहस्साइं'ति] दस हजार वर्षनी छे अने उत्कर्षथी ['तेत्तीसं सागरोवमाइं'ति] तेत्रीश सागरोपमनी छे. विशेषता ए छे के, प्रथम पृथ्वीना- पहेली नारकिना प्रथम प्रस्तट - पाथडा–नी अपेक्षाए आ दस हजार वर्षनी स्थिति जाणवी अने सातमी पृथ्वी (सातमी नारकी) नी अपेक्षाए आ तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति जाणवी. तथा मध्यम स्थिति जघन्य स्थिति करतां समयादि वडे अधिक होय छे. आ प्रमाणे अनंतर (पूर्वना) सूत्रमां नारकोनी स्थिति कही, अने तेओ (नारकिओ) उच्छ्वासादिवाळा होय छे माटे हवे उच्छ्वासादिनुं निरूपण करतां कहे

नैरयिक– श्वासोच्छ्वास.

छेः–['नेरइयाण' इत्यादि] एनो अर्थ स्पष्ट छे. विशेषता ए के ['केवइकालस्स'त्ति] केटला काळा ['आणमंति'त्ति] आनन्ति–श्वास ले छे, तथा ['पाणमंति'त्ति] प्राणन्ति–श्वास मूके छे ? आ बन्ने पदोने अर्थथी स्पष्ट करतां कहे छे, ['ऊससंति वा, नीससंति वा' इति] उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा, अर्थात् आनन्ति शब्दना अर्थनो स्पष्टपणे प्रतिपादक 'उच्छ्वसन्ति' शब्द कह्यो, तेम ज 'प्राणन्ति'नो जे अर्थ कर्यो ते ज 'निःश्वसन्ति'नो अर्थ करवो.

१०. अन्ये त्वाहुः—'आनन्ति वा, प्राणन्ति वा' इत्यनेनाध्यात्मक्रिया परिगृह्यते. 'उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा' इत्यनेन च बाह्येति. 'जहा ऊसासपए'त्ति एतस्य प्रश्नस्य निर्वचनं यथा उच्छ्वासपदे–प्रज्ञापनायाः सप्तमपदे, तथा वाच्यम्. तच्चेदम्:—"गोयमा ! सययं संतयामेव आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा" इति. तत्र सततम्—अनवरतम्, अतिदुःखिता हि ते, अतिदुःखव्याप्तस्य च निरन्तरमेवोच्छ्वासनिःश्वासौ दृश्येते, सततत्वं च प्रायोवृत्त्याऽपि स्यादित्यत आहः—"संतयामेव"त्ति सततमेव–नैकसमयेऽपि तद्विरहोऽस्तीति भावः. दीर्घत्वं चेह प्राकृतत्वाद्. 'आनमन्ति' इत्यादेः पुनरुच्चारणं शिष्यवचने आदरोपदर्शनार्थम्, गुरुभिराद्रियमाणवचना हि शिष्याः संतोषवन्तो भवन्ति, तथा च पौनःपुन्येन प्रश्नश्रवणार्थनिर्णयादिषु घटन्ते, लोके चादेयवचना भवन्ति, तथा च भव्योपकारस्तीर्थाभिवृद्धिश्चेति.

अन्य.

१०. केटलाक तो कहे छे केः—" 'आनन्ति' अने 'प्राणन्ति' ए बे पदवडे अध्यात्मक्रिया (आभ्यंतर श्वास)नो परिग्रह थाय छे अने 'उच्छ्वसन्ति' तथा 'निःश्वसन्ति' ए बे पदवडे बाह्यक्रिया (बाह्य श्वास)नो परिग्रह थाय छे" (आ प्रमाणेना प्रश्ननो उत्तर आपतां भगवंत कहे छेः–) ['जहा ऊसास-

प्रज्ञापना.

पए'त्ति] जेम उच्छ्वासपदमां कह्युं छे तेम अर्थात् आ प्रश्ननो उत्तर 'प्रज्ञापना' (पन्नवणा) ना सातमा उच्छ्वास नामना पदमां कह्यो छे ते प्रमाणे

---

१. प्र०छायाः—नैरयिकाः. असुरादयः. पृथिव्यादयो. द्वीन्द्रियादयश्चैव. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्–नराः. व्यन्तराः. ज्योतिषिकाः. वैमानिकाः–अनु०

१. असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुवर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार अने दिक्कुमार. २. पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय अने वनस्पतिकाय. ३ बे इंद्रिय–चामडी अने जीभ–वाळा करमिया, जळो, छीप अने शंख वगेरे. त्रण इंद्रिय–चामडी, जीभ अने नासिका–वाळा कीडी, कुंथुआ वगेरे. तथा चार इंद्रिय–चामडी, जीभ, नासिका अने नेत्र–वाळा भमरो, माखी, वींछी वगेरे. ४. पांच इंद्रिय–चामडी, जीभ, नाक, आंख अने कान–वाळा तथा अस्पष्ट बोलनारा माछली, सर्प, पोपट वगेरेः–अनु०

५. प्राकृत शैलीथी आ प्रमाणे प्रयोग थयो छे. संस्कृतमां 'कियत्कालात्' अथवा 'कियत्कालेन' आ प्रमाणे प्रयोग थाय. ६. 'अन श्वास लेवो' ए धातुनुं वर्तमान काळमां रूप छे. 'आणमंति वा' तथा 'पाणमंति वा' ए बन्ने स्थले मकार आगमिक छे अने 'वा' शब्द समुच्चयार्थक छे. अथवा 'णम् नमवुं' आ धातु परथी धातुओ अनेकार्थ होवाथी ए धातुनो श्वसन अर्थ करी रूपो सिद्ध करवां:–श्रीअभयदेव.

१. प्र०छायाः—गौतम ! सततं संततमेव आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वाः–अनु०

अहीं कह्यो अने ते 'पन्नवणा'मां आ प्रमाणे छेः—"हे गौतम ! सतंत सततमेव श्वास ले छे अने श्वास मूके छे एटले के उच्छ्वसे छे अने निःश्वसे छे." सतत—निरन्तर—तेओने (नारकीओने) उच्छ्वास अने निःश्वास होय. कारण के तेओ अत्यंत दुःखित छे अने अत्यंत दुःखितने निरन्तर उच्छ्वास, निःश्वास देखाय छे. सततपणुं निरन्तरपणुं प्रायोवृत्तिथी (कदाचित् पणे) पण होय माटे कहे छेः—सन्ततमेव—एक समय पण तेओने श्वासोच्छ्वासनो विरह नथी एवो भावार्थ छे. शिष्यना वचनमां आदर बतावबाने अहीं 'आणमन्ति' वगेरेनुं पुनः उच्चारण कर्युं छे. कारण के जे शिष्योना वचनोनो गुरुओ आदर करे छे ते शिष्यो संतुष्ट थाय छे अने तेथी ज तेओ पुनः पुनः प्रश्नश्रवण अने अर्थनिर्णय वगेरे कार्यमां जोडाय छे, तेथी ज तेओ लोकोने विषे ग्राह्यवचन थाय छे. तेम ज पुनः पुनः उच्चारणथी भव्योनो उपकार अने तीर्थनी वृद्धि थाय छे.

शिष्यादर.

११. अथ तेषामेव आहारं प्रश्नयन्नाहः—'*नेरइयाणं*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'*आहारट्ठि*'त्ति आहारम्—अर्थयन्ते प्रार्थयन्ते इत्येवंशीलाः, अर्थो वा प्रयोजनमेषामस्तीत्यर्थिनः, आहारेण भोजनेनार्थिनः, आहारस्य भोजनस्य वाऽर्थिन. आहारार्थिनः. '*जहा पण्णवणाए*' त्ति '*आहारट्ठि*' इत्येतत् पदप्रभृति यथा प्रज्ञापनायाश्चतुर्थोपाङ्गस्य, '*पढमए*' त्ति आद्ये, '*आहारुद्देसए*'त्ति आहारपदस्याष्टाविंशतितमस्योद्देशकः, पदशब्दलोपादाहारोद्देशकस्तत्र भणितम् '*तहा भाणियव्वं*' ति तेन प्रकारेण वाच्यमिति. तत्र च नारकाऽऽहारवक्तव्यतायां बहूनि द्वाराणि भवन्ति, तत्संग्रहार्थं पूर्वोक्तस्थित्यु-च्छ्वासलक्षणद्वारद्वयदर्शनपूर्विकां गाथामाह.—'*ठिई*, गाहा'. व्याख्या.—स्थितिर्नारकाणा वाच्या, उच्छ्वासश्च. तौ च उक्तौ एव. तथा '*आहारे*'त्ति आहारविपयो विधिर्वाच्य., स चैवम्—"*णेरईया णं भंते ! आहारट्ठी ? हंता, आहारट्ठी. णेरइयाणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ*"?. आहारार्थः—आहारप्रयोजनम्—आहारार्थित्वमित्यर्थः. "*गोयेमा ! णेरइयाणं दुविहे आहारे पन्नत्ते*" अभ्यवहारक्रियेत्यर्थः. "*तं जैहाः—आभोगनिव्वत्तिए य, अणाभोगनिव्वत्तिए य.*" तत्र आभोगोऽभिसन्धि, तेन निर्वर्तित—कृतः, आभोगनिर्वर्तितः—'आहारयामि' इतीच्छापूर्वक इत्यर्थः. अनाभोगनिर्वर्तितस्तु 'आहारयामि' इति विशिष्टेच्छामन्तरेणापि प्रावृट्काले प्रचुरतरप्रस्रवणाद्यभिव्यङ्ग्यशीतपुद्गलाद्याहारवत्. "*तत्थै णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ*" '*अणुसमय*'ति प्रतिक्षणं संतताऽतितीव्रक्षुद्वेदनीयकर्मोदयत ओजआहारादिना प्रकारेणेति. '*अविरहिए*' त्ति चुक्कस्खलितन्यायाद् अपि न विरहित., अथवा प्रदीर्घकालोपभोग्याऽऽहारस्य सकृद् ग्रहणेऽपि भोगोऽनुसमयं स्याद्, अतो ग्रहणस्यापि सातत्यप्रतिपादनार्थम्, 'अविरहितम्' इत्याह.

११. हवे ते नैरयिकोना ज आहार संबंधी प्रश्न करता कहे छे.—['नेरइयाण' इत्यादि] नैरयिको आहारना अर्थी छे' ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेषता छे ते बतावे छेः—['आहारट्ठि' त्ति] आहारनी प्रार्थना करवाना स्वभाववाळा, अथवा 'अर्थ' वाळा एटले 'प्रयोजन'वाळा होय ते अर्थी कहेवाय, आहार एटले भोजन, ते वडे या तेना जेओ अर्थी होय तेओ आहारार्थी कहेवाय. (भगवत उत्तर आपे छे के.—) ['जहा पण्णवणाए'त्ति] 'प्रज्ञापना' नामना चोथा उपांगना ['पढमए आहारुद्देसए' त्ति] अट्ठाविशमा आहारपदना पहेला उद्देशकमा जे प्रकारे ['आहारट्ठी'] ए पदथी आरंभी कह्युं छे ['तहा भाणियव्वं'] ते प्रकारे अहीं कहेवुं. त्यां 'प्रज्ञापना' सूत्रमा नारकोना आहारनी वक्तव्यतामां घणां द्वारो कह्यां छे. तेओना संग्रहने माटे पूर्वे कहेवाइ गयेल स्थिति तथा उच्छ्वासरूप बन्ने द्वारने बतावया पूर्वक आ गाथा कहे छे. ['ठिई' गाहा] नारकोनी स्थिति अने उच्छ्वास कहेवा जोइए अने तेओ (स्थिति तथा उच्छ्वास) बन्ने उपर कहेवाइ गया.['आहारे'त्ति] आहारविषयक विधि कहेवो जोइए ते आ प्रमाणे छेः—"हे भगवन् ! नैरयिको आहारार्थी छे? हे गौतम ! हा, आहारार्थी छे. हे भगवन ! नैरयिकोने केटले काळे आहारार्थ आहारप्रयोजन अर्थात् आहारनी अभिलाषा उत्पन्न थाय? गौतम ! नैरयिकोने बे प्रकारनो आहार प्ररूप्यो छे आभोगनिर्वर्तित अने अनाभोगनिर्वर्तित." आभोग=अभिप्राय, निर्वर्तित—करायेल, अभिप्रायपूर्वक करायेल आहार अर्थात् 'आहार करुं छुं' ए प्रमाणे इच्छापूर्वक जे आहार ते आभोगनिर्वर्तित आहार. अने 'आहार करुं छुं' ए प्रमाणेनी इच्छाविशेषरहित जे आहार ते अनाभोगनिर्वर्तित आहार समजवो. वर्षाकाळमां अत्यन्त प्रस्रवण मूत्र वगेरे थाय छे तेथी एम अभिव्यक्त थाय छे के, शरीरमां शीत पुद्गलो अधिक गयां होवा जोइए, अर्थात् जेम ते शीत पुद्गलोनो आहार अभिप्राय विना अनाभोगनिर्वर्तित छे तेम ज नैरयिकोने पण अनाभोगनिर्वर्तित आहार होय छे. "आ बन्ने आहारमा जे अनाभोगनिर्वर्तित आहारार्थ आहारनी इच्छा—छे ते अनुसमये अविरहित उत्पन्न थाय छे." ['अणुसमयं' ति] अनुसमय एटले निरन्तर अर्थात् अत्यन्त तीव्र क्षुधारूप वेदनीयकर्मना उदयथी ओजाहारादि प्रकारवडे प्रतिसमय ['अविरहिए' त्ति] अविरहित आहारार्थ उत्पन्न थाय छे. अविरहित एटले "चूकेलो स्खलायमान थाय" ए न्यायथी पण विरहरहित. अथवा घणा दीर्घकाले उपभोग्य आहारने एक ज वखत ग्रहण करवाथी पण अनुसमय भोग थाय छे, माटे अहीं ग्रहणनुं पण सातत्य वारंवार ग्रहण करवुं ए अर्थ प्रतिपादित करवाने 'अविरहित' कह्युं छे.

नैरयिकआहार.

द्विविध आहार—आभोगजन्य. अनाभोगजन्य.

अनाभोगजन्य—आहारनुं नैरतर्य.

---

१. मूळमां 'संतया' छे, 'संतय' शब्द मूकवाने बदले 'संतया' प्राकृत शैलीना धोरणे दीर्घान्त शब्द मूक्यो छे.—श्रीअभयदेव.

१. प्र॰छायाः—नैरयिका भगवन् ! आहारार्थिनः ? हन्त आहारार्थिन.. नैरयिकाणां भगवन् ! कियत्कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते ?. २. गौतम ! नैरयिकाणां द्विविध आहारः प्रज्ञप्तः. ३. तद्यथा.—आभोगनिर्वर्तितश्च, अनाभोगनिर्वर्तितश्च. ४. तत्र योऽसावनाभोगनिर्वर्तित., सोऽनुसमयमविरहित आहारार्थः समुत्पद्यतेः—अनु॰

१. 'आहारपदउद्देशक' एम न मूकतां 'पद' शब्दनो लोप करी 'आहारउद्देशक' एम कह्युं छेः—श्रीअभयदेव.

२. जेवी रीते चूकेलो—स्खलायमान थतो—प्राणी पोतानी कोइ पण चालती क्रियामां व्याघात करे छे तो पण, लोकमां तेनी क्रिया 'अनुसमय चालती' कहेवाय छे. तेम अहीं पण आहारनी अभिलाषानो यत्किंचित् विरह होय तो पण ते विरह अतीव अल्प होवाथी तेनी अवगणना करता लोको 'अनुसमय आहारनी अभिलाषा चालती छे' आ प्रमाणे कहे, माटे अहीं एकलो 'अनुसमय' शब्द नहीं राखता वचमां थोडो पण समय आहारविरहना अभावनो सूचक 'अविरहित' शब्द मूक्यो छेः—श्रीअभयदेव.

१२. *"तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए, से णं असंखेज्ज-समइए अंतोमुहुत्तिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ."* असंख्यातसामयिकः पल्योपमादिपरिमाणोऽपि स्यादत आहः–*'अंतोमुहुत्तिए'* त्ति इदमुक्तं भवति–'आहारयामि' इत्यभिलाष एतेषां गृहीताहार-द्रव्यपरिणामतीव्रतरदुःखजननपुरस्सरमन्तर्मुहूर्त्ताद् निर्वर्तते इति. *'किं वा आहारेंति'* त्ति किंस्वरूपं वा वस्तु नारका आहारयन्ति ! इति वाच्यम्. वा–शब्दस्समुच्चये, तत्रेदं प्रश्ननिर्वचनसूत्रम्:–*"णेरइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति? गोयमा! दव्वओ अणंतपएसियाइं"* अनन्तप्रदेशवन्ति पुद्गलद्रव्याणि इत्यर्थः, तदन्येपामयोग्यत्वात्. *"खेत्तओ असंखेज्जपएसावगाढाइं"* न्यूनतर-प्रदेशावगाढानि हि न ग्रहणप्रायोग्यानि, अनन्तप्रदेशावगाढानि तु न भवन्त्येव, सकललोकस्याप्यसंख्येयप्रदेशपरिमाणत्वात्. *"कालओ अण्णतरट्ठिइयाइं"* जघन्य–मध्यमो–त्कृष्टस्थितिकानीत्यर्थः. स्थितिश्च आहारयोग्यस्कन्धपरिणामेनावस्थानमिति. *"भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइं, फासमंताइं आहारेंति, जाइं भावओ वण्णमंताइं आहारेंति, ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति ? जाव किं पंचवण्णाइं आहारिंति ?. गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइं पि आहारिंति, जाव पंचवण्णाइं पि आहारिंति. विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइं पि आहारेंति, जाव सुक्किलाइं पि आहारेंति."* तत्र *'ठाणमग्गणं पडुच्च'* त्ति तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानं सामान्यम्, यथा–एकवर्णम्, द्विवर्णमित्यादि. *'विहाण-मग्गणं पडुच्च'* त्ति विधानं विशेषः–कालादिरिति. *"जाइं वण्णओ कालवण्णाइं आहारेंति, ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति? जाव दसगुणकालाइं आहारेंति? संखेज्जगुणकालाइं? असंखेज्जगुणकालाइं? अनंतगुणकालाइं आहारेंति?. गोयमा! एकगुणकालाइं पि आहारेंति, जाव अनंतगुणकालाइं पि आहारेंति. एवं जाव सुक्किलाइं. एवं गंधओ वि. रसओ वि."*

१२. "तेमां (आभोगनिर्वर्तित अने अनाभोगनिर्वर्तित ए बे प्रकारमां) जे आभोगनिर्वर्तित आहार छे तेनो अभिलाष असंख्येयसमयवाळा काळमां उत्पन्न थाय छे." असंख्यातसमयवाळो काळ तो पल्योपमादि परिमाणवाळो पण होय, माटे कहे छे के; ['अंतोमुहुत्तिए' त्ति] असंख्यातसमयवाळा अन्तर्मुहूर्तवाळो. अहीं आ प्रमाणे तात्पर्य छे केः–नारकोने पूर्वे ग्रहण करेला आहारद्रव्यना परिणामवडे अत्यन्त तीव्र दुःख उत्पन्न थवापूर्वक अन्तर्मुहूर्तमां 'आहार करुं' ए प्रमाणे अभिलाषा थाय छे. तथा ['किं वा आहारेंति' त्ति] नैरयिको केवा स्वरूपवाळी वस्तुनो आहार करे? ए प्रमाणे कहेवुं. तेने विषे आ प्रमाणे प्रश्नोत्तरसूत्र छेः–"हे भगवन! नैरयिको आहारने योग्य क्या पदार्थनो आहार करे छे? हे गौतम! नैरयिको द्रव्यथी अनन्तप्रदेशवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे. कारण के अनन्तप्रदेशथी न्यूनप्रदेशवाळा पुद्गलो आहारने अयोग्य छे. क्षेत्रथी असंख्येयप्रदेशो साथे अवगाढ थयेला पुद्गलोनो आहार करे छे." कारण के (असंख्येय प्रदेशो करतां) न्यून प्रदेशोनी साथे अवगाढ थयेला पुद्गलो ग्रहणने योग्य नथी. (अहीं कदाच कोइ एम आशंके के, जेम अनन्तप्रदेशवाळां पुद्गलो कह्यां तेम अनन्तप्रदेशावगाढ केम न कह्यां? तो कहे छे केः) समस्तलोक पण असंख्येयप्रदेश परिमाणवाळो होवाथी कोइ पण पुद्गलो अनन्तप्रदेशावगाढ होतां ज नथी. "काळथी जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट स्थितिमांथी कोइ पण स्थितिवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे." स्थिति एटले पुद्गलोनुं आहार योग्य स्कंधना परिणामरूपे अवस्थान अमुक काल सुधी रहेवुं. "भावथी वर्णवाळा, गंधवाळा, रसवाळा तथा स्पर्शवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे. हे भगवन्! वर्णवाळा जे पुद्गलोनो आहार करे छे ते शुं एक ज वर्णवाळा पुद्गलो (नो आहार करे) छे, के यावत् पंचवर्णवाळा पुद्गलो (नो आहार करे) छे? हे गौतम! स्थान (सामान्य) मार्गणाने अवलंबीने एकवर्णवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे, यावत् पांचवर्णवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे. विधान (विशेष) मार्गणाने अवलंबीने कृष्णवर्णवाळा, यावत् शुक्लवर्णवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे." ['ठाणमग्गणं पडुच्च' त्ति] जेने विषे (विशेषो) स्थित रहे ते स्थान-सामान्य कहेवाय, जेवी रीते एक वर्णवाळा पुद्गलो, बे वर्णवाळा पुद्गलो वगेरे. ['विहाणमग्गणं पडुच्च' त्ति] विधान एटले विशेष, जेवी रीते–काळो वगेरे. "वर्णथी काळावर्णवाळा जे पुद्गलोनो आहार करे छे ते शुं एकगुण काळा, यावत् दशगुण काळा, संख्येयगुण काळा, असंख्यगुण काळा के अनन्तगुण काळा पुद्गलो (नो आहार करे) छे?. गौतम! एकगुण काळानो पण आहार करे छे, यावत् अनन्तगुण काळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे. ए ज प्रमाणे आहारार्थ ग्रहण करेला यावत् शुक्ल पुद्गलो पण समजी लेवा. आ प्रमाणे गंधथी तथा रसथी पण" (अर्थात् जेम एकगुण गंधवाळा, यावत् अनन्तगुण गंधवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे. तेम एकगुण रसवाळा यावत् अनन्तगुण रसवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे.)

आभोगजन्यनो काळ.

नैरयिको शुं खाय?

नैरयिकोनी खाद्य वस्तुनुं स्वरूप.

स्थानमार्गणा.

विधानमार्गणा.

१३. *"जाइं भावओ फासमंताइं ताइं ठाणमग्गणं पडुच्च णो एगफासाइं आहारेंति, णो दुफासाइं आहारेंति, नो तिफासाइं आहारेंति."* एकस्पर्शानामसंभवाद्, अन्येषां चाल्पप्रदेशिकता–सूक्ष्मपरिणामाभ्यां ग्रहणाऽयोग्यत्वात् *"चउफासाइं पि आहारेंति जाव अट्ठफासाइं पि आहारेंति."* बहुप्रदेशिकता–बादरपरिणामाभ्यां ग्रहणयोग्यत्वादिति. *"विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइं पि*

---

१. प्र०छायाः–तत्र योऽसावाभोगनिर्वर्तितः, सोऽसंख्येयसामयिक. आन्तर्मौहूर्तिक आहारार्थः समुत्पद्यते. २. नैरयिका भगवन्! किमाहारमाहारयन्ति? गौतम! द्रव्यतोऽनन्तप्रदेशिकानि. ३. क्षेत्रतोऽसंख्येयप्रदेशावगाढानि. ४. प्र०छायाः–कालतोऽन्यतरस्थितिकानि. ५. भावतो वर्णवन्ति, गन्धवन्ति, रसवन्ति, स्पर्शवन्त्याहरन्ति. यानि भावतो वर्णवन्त्याहरन्ति, तानि किमेकवर्णानि आहरन्ति? यावत् किं पञ्चवर्णानि आहरन्ति? गौतम! स्थानमार्गणां प्रतीत्य एकवर्णान्यपि आहरन्ति, यावत् पञ्चवर्णान्यपि आहरन्ति. विधानमार्गणां प्रतीत्य कालवर्णान्यपि आहरन्ति यावत् शुक्लान्यपि आहरन्ति. ६. यानि वर्णतः कालवर्णान्याहरन्ति, तानि किमेकगुणकालान्याहरन्ति, यावद् दशगुणकालान्याहरन्ति, संख्येयगुणकालानि, असंख्येयगुणकालानि, अनन्तगुणका-लान्याहरन्ति? गौतम! एकगुणकालान्यपि आहरन्ति, यावद् अनन्तगुणकालान्यपि आहरन्ति, एवं यावत् शुक्लानि, एवं गन्धतोऽपि. रसतोऽपिः–अनु०

१. 'वा' शब्द समुच्चय अर्थनो बोधक छेः–श्रीअभयदेव.

१ प्र०छायाः–यानि भावतः स्पर्शवन्ति तानि स्थानमार्गणां प्रतीत्य नो एकस्पर्शानि आहरन्ति, नो द्विस्पर्शानि आहरन्ति, नो त्रिस्पर्शानि आहरन्ति. २. चतुःस्पर्शान्यपि आहरन्ति, यावदष्टस्पर्शान्यपि आहरन्ति. ३. विधानमार्गणां प्रतीत्य कर्कशान्यपि आहरन्ति, यावद् रूक्षाण्यपि आहरन्ति. यानि स्पर्शतः कर्कशान्यपि आहरन्ति तानि किमेकगुणकर्कशान्यपि आहरन्ति, यावदनन्तगुणकर्कशान्यपि आहरन्ति? गौतम! एकगुणकर्कशा-न्यपि आहरन्ति, यावदनन्तगुणकर्कशान्यपि आहरन्ति. एवमष्टावपि स्पर्शा भणितव्याः, यावदनन्तगुणरूक्षाण्यपि आहरन्ति. यानि भगवन्! अनन्तगुण-रूक्षाणि आहरन्ति तानि किं स्पृष्टानि आहरन्ति? अस्पृष्टानि आहरन्ति? गौतम! स्पृष्टानि आहरन्ति, नोऽस्पृष्टानि आहरन्तिः–अनु०

आहारेंति, जाव लुक्खाइं पि आहारेंति. जाइं फासओ कक्खडाइं पि आहारेंति, ताइं किं एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति? जाव अणंतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति?. गोयमा! एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति, जाव अणंतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति. एवं अट्ठ वि फासा भणियव्वा, जाव अणंतगुणलुक्खाइं पि आहारेंति." जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति, ताइं किं पुट्ठाइं आहारेंति? अपुट्ठाइं आहारेंति?. गोयमा! पुट्ठाइं आहारेंति, नो अपुट्ठाइं आहारेंति.' 'पुट्ठाइं'ति आत्मप्रदेशस्पर्शवन्ति, तत् पुनरात्मप्रदेश-स्पर्शनमवगाढक्षेत्राद् बहिरपि भवति, अत उच्यते:—*"जाइं भंते! पुट्ठाइं आहारेंति ताइं किं ओगाढाइं आहारेंति? अणो-गाढाइं आहारेंति? गोयमा! ओगाढाइं, नो अणोगाढाइं."* अवगाढानीति आत्मप्रदेशैः सह एकक्षेत्रावगाढानीत्यर्थः. *"जाइं भंते! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति? परंपरोगाढाइं आहारेंति? गोयमा! अणंतरोगाढाइं आहारेंति, नो परंपरो-गाढाइं आहारेंति."* अनन्तरावगाढानीति येषु प्रदेशेषु आत्मा अवगाढस्तेषु एव यान्यवगाढानि तान्यनन्तरावगाढानि, अन्तराऽभावेनावगाढत्वाद्. यानि च तदन्तरवर्तीनि तान्यवगाढसंबन्धात् परंपराऽवगाढानीति. *"जाइं भंते! अणंतरोगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणूइं आहारेंति? बायराइं आहारेंति? गोयमा! अणूइं पि आहारेंति, बायराइं पि आहारेंति."* तत्राणुत्वं बादरत्वं चापेक्षिकं तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशवृद्ध्या-वृद्धानामवसेयम्. *"जाइं भंते! अणूइं पि आहारेंति, बायराइं पि आहारेंति ताइं किं उड्ढं पि आहारेंति? एवं अहे वि? तिरियं पि?. गोयमा! उड्ढं पि आहारेंति, एवं अहे वि, तिरियं पि."*

१३. "भावथी- जेओ स्पर्शवाळा पुद्गलो छे तेओमां सामान्यमार्गणाने आश्रीने एक स्पर्शवाळा, बे स्पर्शवाळा तथा त्रण स्पर्शवाळा पुद्गलोनो आहार करता नथी. कारण के एक स्पर्शवाळा पुद्गलोनो असंभव छे अने बे स्पर्शवाळा तथा त्रण स्पर्शवाळा पुद्गलो अल्पप्रदेशवाळा तथा सूक्ष्मपरिमाणवाळा होवाथी ग्रहणने अयोग्य छे. माटे चार स्पर्शवाळा यावत् आठ स्पर्शवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे." कारण के तेओ बहुप्रदेशवाळा अने बादरपरिमाणवाळा होवाथी ग्रहणने योग्य छे. (तथा भावथी जेओ स्पर्शवाळा, पुद्गलो छे तेओमां) "विशेषमार्गणाने आश्रीने कठोर स्पर्शवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे, यावत् लुखा स्पर्शवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे. स्पर्शथी जे कर्कश स्पर्शवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे, ते एकगुण कर्कश स्पर्शवाळा पुद्गलो (नो आहार करे) छे, के यावत् अनन्तगुण कर्कश स्पर्शवाळा पुद्गलो(नो आहार करे) छे?. गौतम! एकगुण कर्कश स्पर्शवाळा पुद्गलो (नो पण आहार करे) छे, यावत् अनन्तगुण कर्कश स्पर्शवाळा पुद्गलो(नो आहार करे) छे. आ प्रमाणे आठे स्पर्शवाळा पुद्गलो कहेवा, यावत् अनन्तगुण लुखा स्पर्शवाळा पुद्गलोनो पण आहार करे छे. हे भगवन्! जे अनन्तगुण लुखा स्पर्शवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे, ते पुद्गलो स्पृष्ट समजवा के अस्पृष्ट? गौतम! स्पृष्ट पुद्गलोनो आहार करे छे, परंतु अस्पृष्ट पुद्गलोनो नहीं." ['पुट्ठाइं' ति] स्पृष्ट=आत्मप्रदेशनी साथे स्पर्शवाळा. ते आत्मप्रदेशनुं स्पर्शन अवगाहक्षेत्रथी बहार पण थाय छे, माटे प्रश्न पूछे छे के, "हे भगवन्! जे स्पृष्ट—आत्मप्रदेशनी साथे स्पर्शनवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे ते पुद्गलोने अवगाढ समजवा, के अवगाढ रहित?. गौतम! ते पुद्गलो अवगाढ छे. पण अवगाढ विनाना नथी." अवगाढ एटले आत्मप्रदेशनी साथे एक क्षेत्रमां मळेला. "हे भगवन्! जे अवगाढ पुद्गलोनो आहार करे छे ते शुं अनन्तरावगाढ—आंतरा रहित अवगाढ पुद्गलो छे के, परंपराए अवगाढ पुद्गलो छे?. गौतम! अनन्तर अवगाढ पुद्गलोनो आहार करे छे, परंतु परंपराए अवगाढ पुद्गलोनो आहार करता नथी." जे प्रदेशोमां आत्मा अवगाढ होय ते ज प्रदेशोमां जे पुद्गलो अवगाढ होय तेओ आंतरा रहित अवगाढ होवाथी अनन्तर अवगाढ समजवा. अने जे पुद्गलो तेथी (आत्मावगाढ प्रदेशोथी) आंतरावाळा होय तेओ अवगाढ पुद्गलोना संबंधथी परंपराए अवगाढ कहेवाय. "हे भगवन्! जे अनन्तर अवगाढ पुद्गलोनो आहार करे छे ते (पुद्गलो) शुं अणु—सूक्ष्म-छे, के बादर छे?. गौतम! अणु (पुद्गलो) नो पण आहार करे छे, तेम ज बादर (पुद्गलो) नो पण आहार करे छे." तेने विषे अहीं अणुपणुं अने बादरपणुं आपेक्षिक अर्थात् अमुकनी अपेक्षाए अणु अने अमुकनी अपेक्षाए बादर एम समजवुं. ते अणुपणुं अने बादरपणुं प्रदेशनी वृद्धिवडे वधेला आहार योग्य स्कंधोनुं ज समजवुं. "भगवन्! जे अणु अथवा बादर पुद्गलोनो आहार करे ते शुं ऊर्ध्व, अधः के तिरछा[1] पुद्गलो समजवा?. गौतम! ऊर्ध्व पुद्गलोनो पण आहार करे छे, एवी ज रीते अधः पुद्गलोनो, तेम ज तिरछा पुद्गलोनो पण आहार करे छे.

पुद्गलस्पर्शविचार. एकस्पर्शाभाव. स्पृष्ट. अवगाढ. अनंतरावगाढ. परंपरावगाढ. सूक्ष्म. बादर. उंचा. नीचा. तिरछा.

१४. *"जाइं भंते! उड्ढं पि आहारेंति, अहे वि, तिरियं पि आहारेंति, ताइं किं आइं आहारेंति? मज्झे आहारेंति? पज्जवसाणे आहारेंति?. गोयमा! तिविहा वि."* अयमर्थः—आभोगनिर्वर्तितस्याहारस्यान्तर्मौहूर्तिकस्याऽऽदि-मध्या-वसानेषु सर्वत्राहारयन्तीति. *"जाइं भंते! आइं, मज्झे, अवसाणे वि आहारेंति ताइं किं सविसए आहारेंति? अविसए आहारेंति?. गोयमा! सविसए आहारेंति, नो अविसए आहारेंति."* तत्र स्वः स्वकीयो विषयः स्पृष्टाऽवगाढा—ऽनन्तरावगाढाख्यः स्वविषयस्तस्मिन्नाहारयन्ति. *"जाइं भंते!*

---

१. प्र०छाया:—यानि भगवन्! स्पृष्टानि आहरन्ति तानि किमवगाढानि आहरन्ति, अनवगाढानि आहरन्ति? गौतम! अवगाढानि, न अनवगाढानि. २. यानि भगवन्! अवगाढानि आहरन्ति तानि किमनन्तरावगाढानि आहरन्ति, परंपरावगाढानि आहरन्ति? गौतम! अनन्तरावगाढानि आहरन्ति, नो परंपरावगाढानि आहरन्ति. ३. यानि भगवन्! अनन्तरावगाढानि आहरन्ति तानि किमणूनि आहरन्ति, बादराणि आहरन्ति? गौतम! अणून्यपि आहरन्ति, बादराण्यपि आहरन्ति. ४. यानि भगवन्! अणून्यपि आहरन्ति, बादराण्यपि आहरन्ति तानि किमूर्ध्वमपि आहरन्ति, एवमधोऽपि, तिर्यगपि? गौतम! ऊर्ध्वमपि आहरन्ति, एवमधोऽपि, तिर्यगपि:—अनु०

१. ऊर्ध्व (उंचा) रहेला, अधः (नीचा) रहेला के तिरछा रहेला पुद्गलो समजवा:—अनु०

१. प्र०छाया:—यानि भगवन्! ऊर्ध्वमपि आहरन्ति. अधोऽपि, तिर्यगपि आहरन्ति, तानि किमादावाहरन्ति, मध्ये आहरन्ति, पर्यवसाने आहरन्ति? गौतम! त्रिविधान्यपि. २. यानिभगवन्! आदौ, मध्ये, अवसानेऽपि आहरन्ति, तानि किं स्वविषये आहरन्ति, अविषये आहरन्ति? गौतम! स्वविषये आहरन्ति, नो अविषये आहरन्ति. ३. यानि भगवन्! स्वविषये आहरन्ति, तानि किमाऽऽनुपूर्व्याऽऽहरन्ति, अनानुपूर्व्याऽऽहरन्ति? गौतम! आनुपूर्व्याऽऽहरन्ति, नो अनानुपूर्व्याऽऽहरन्ति:—अनु०

सविसए आहारेंति, ताइं किं आणुपुव्विं आहारेंति ? अणाणुपुव्विं आहारेंति ?. गोयमा ! आणुपुव्विं आहारेंति, नो अणाणुपुव्विं आहारेंति." तत्राऽऽनुपूर्व्या यथासन्नं नातिक्रम्य. "जाइं भंते ! आणुपुव्विं आहारेंति ताइं किं तिदिसिं आहारेंति ? जाव छद्दिसिं आहारेंति ? गोयमा ! नियमा छद्दिसिं आहारेंति." इह नारकाणां लोकमध्यवर्तित्वेन षण्णामप्यूर्ध्वादिदिशामलोकेनाऽनावृतत्वात् षट्सु दिक्षु आहारग्रहणमस्ति, तत उक्तम्–नियमात् षड्दिशि. दिक्त्रयादिविकल्पास्तु लोकान्तवर्तिषु पृथिवीकायिकादिषु दिशां त्रयस्य, द्वयस्य, एकस्याश्चाऽलोकेनावरणे भवन्तीति. यद्यपि वर्णतः 'पञ्चवर्णानि' इत्याद्युक्तम्, तथापि प्राचुर्येण यद्वर्ण-गन्धादियुतानि द्रव्याण्याहारयन्ति तानि दर्शयति–"ओसन्नं कारणं पडुच्च"त्ति बाहुल्यलक्षणं कारणमाश्रित्य, तत्र च प्रकृत्यऽशुभानुभाव एव कारणमिति. "वण्णओ काल-नीलाइं, गंधओ दुब्भिगंधाइं, रसओ तित्त–कडुयरसाइं, फासओ कक्खड-गुरुय-सीय-लुक्खाइं" एतानि च प्रायो मिथ्यादृष्टय एवाऽऽहारयन्ति, नतु भविष्यत्तीर्थकरादय इति. अथ तानि यथास्वरूपाण्येव नारका आहारयन्ति, अन्यथा वा ? इत्यस्यामाशङ्कायामभिधीयते:– "तेसिं पोराणे वन्नगुणे, गंधगुणे, रसगुणे, फासगुणे विप्परिणामइत्ता, परिपीलइत्ता, परिसाडइत्ता, परिविद्धंसइत्ता." विपरिणामादयो विनाशार्थत्वेनैकार्था एव ध्वनयः. "अन्ने य अपुव्वे वन्नगुणे, रसगुणे, गंधगुणे, फासगुणे, उप्पाएत्ता आयसरीरोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारं आहारेंति". 'सव्वप्पणयाए'त्ति सर्वात्मना सर्वैरात्मप्रदेशैरित्यर्थः. ३६. व्याख्यातं सूत्रे संग्रहगाथायाः 'किं वाऽऽहारेंति'त्ति इति पदम्.

आदि. मध्य. अंत.

१४. "भगवन् ! जे ऊर्ध्व, अधः अथवा तिरछा पुद्गलोनो आहार करे छे, ते पुद्गलोनो शुं आदिमां (आदिसमयमां), मध्यमां (मध्यसमयमां) के अन्तमां (अन्तसमयमां) आहार करे छे". गौतम ! त्रणे रीते करे छे." अर्थात् अन्तर्मुहूर्त समय प्रमाणवाळा आभोगनिर्वर्तित आहारने आदिसमयमां, मध्यसमयमां अथवा अन्तसमयमांथी कोइ पण समये आहरे (खाय) छे. "हे भगवन् ! जे पुद्गलोनो आदिमां, मध्यमां अथवा अन्तमां आहार करे छे, तेओनो स्वविषयमां आहार करे छे, के अस्वविषयमां आहार करे छे ?. गौतम ! स्वविषयमां आहार करे छे, परंतु अस्वविषयमां आहार करता नथी." स्वविषय एटले स्व स्वकीय–पोतानो स्पृष्टअवगाढ अने अनन्तरअवगाढरूप विषय अर्थात् स्पृष्टअवगाढ अने अनन्तरअवगाढ पुद्गलोनो आहार करवो ते स्वविषय कहेवाय, तेमां स्वविषयमां–आहार करे छे. "भगवन् ! स्वविषयमां जे पुद्गलोनो आहार करे छे, तेओनो आनुपूर्वीपूर्वक आहार करे छे के आनुपूर्वी विना आहार करे छे ?. गौतम ! आनुपूर्वीपूर्वक आहार करे छे, परंतु आनुपूर्वीरहित करता नथी." आनुपूर्वी एटले आसन्न (पासेना पुद्गलो) नुं उलंघन न करवुं अर्थात् पासेनां पुद्गलोनो प्रथम आहार करवो. "भगवन् ! आनुपूर्वीपूर्वक जे पुद्गलोनो आहार करे छे, ते त्रण दिशामां रहेला पुद्गलोनो आहार करे छे, के यावत् छ दिशामां व्यवस्थित पुद्गलोनो आहार करे छे ?. गौतम ! नियमथी छ दिशामां व्यवस्थित पुद्गलोनो आहार करे छे." नैरयिको लोकना मध्यवर्ती होवाने लीधे (तेओनी) ऊर्ध्वादि छए दिशाओ अलोकवडे ढंकायेली नहीं होवाथी छ दिशामां आहार करे छे. माटे कह्युं केः नियमथी छ दिशामां आहार करे छे. 'त्रण दिशामां आहार करे छे' 'चार दिशामां आहार करे छे' वगेरे विकल्पो तो लोकना अन्ते वर्तवावाळा पृथ्वीकायादिकमां, ज्यां अलोकवडे त्रण दिशानुं, बे दिशानुं अने एक दिशानुं आवरण होय त्यां समजवा. जो के वर्णथी पांच वर्णोवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे एम कह्युं, तो पण बहुलताथी घणेभागे जे वर्ण, गंध वगेरे वडे युक्त द्रव्यनो आहार करे छे ते बतावे छेः–(बहुलताथी एटले के) तेओने विषे विशेषपणे अशुभानुभावरूप कारणने आश्रीने "वर्णथी काळां, लीलां; गंधथी दुर्गंधवाळां, रसथी कडवां, तीखां अने स्पर्शथी कर्कश, भारे, ठंडा तथा लुखा द्रव्यो समजवा." आवा प्रकारना द्रव्योनो प्रायः मिथ्यादृष्टि नैरयिको ज आहार करे छे, परंतु भावितीर्थंकरादि आहार करता नथी. हवे नैरयिको जेवां स्वरूपवाळा द्रव्यो होय तेवा ज स्वरूपवाळाओनो आहार करे छे, के बीजा (स्वरूपवाळाओ) नो आहार करे छे ?. आ प्रमाणेनी आशंकाना निवारणने माटे कहे छेः (जे पुद्गलो आहारने माटे ग्रहण करेला छे) तेओना प्राचीन–जूना–वर्णगुणोनो, गंधगुणोनो, रसगुणोनो अने स्पर्शगुणोनो विपरिणाम करी, परिपीडन करी, परिशाटन करी अने परिविध्वंस करी नाशकरी–ने; "अन्य अपूर्व वर्णगुणो, गंधगुणो, रसगुणो अने स्पर्शगुणोने उत्पन्न करीने आत्मशरीरावगाढ पुद्गलोनो सर्वात्मपणे (आत्माना सर्व प्रदेशोवडे) आहार करे छे." ३६. आ प्रमाणे सूत्रने विषे कहेली संग्रहगाथाना ['किं वाऽऽहारेन्ति'] "शुं आहार करे छे ?" ए पदनी व्याख्या करी.

स्वविषय. आनुपूर्वी. छ ष दिशामांथी आहार मेळवे. काळा. दुर्गंधी. कडवां. कठोर. भावितीर्थंकर. पुद्गलपरिवर्तन.

१५. अथ 'सव्वओ वा वि' इति व्याख्यायते, तत्र सर्वतः सर्वप्रदेशैर्नैरयिका आहारयन्ति इति, 'वाऽपि' इति वचनादभीक्ष्णमाहारयन्ति इत्यपि वाच्यम्, तच्चैवम्:–"नेरइया णं भंते ! सव्वओ आहारेंति, सव्वओ परिणामेंति, सव्वओ ऊससंति, सव्वओ नीससंति, अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं ऊससंति, अभिक्खणं नीससंति, आहच्च आहारेंति ? हंता गोयमा ! नेरइया सव्वओ आहारेंति." 'सव्वओ'त्ति सर्वात्मप्रदेशैः, 'अभिक्खणं'ति अनवरतं पर्याप्तत्वे सति. 'आहच्च' इति कदाचिद् न सर्वदा–अपर्याप्तकावस्था-

---

१. प्र० छायाः—यानि भगवन् ! आनुपूर्व्याऽऽहरन्ति, तानि किं त्रिदिशि आहरन्ति यावत् षड्दिशि आहरन्ति ?. गौतम ! नियमात् षड्दिशि आहरन्ति. २. अवसन्नं कारणं प्रतीत्य. ३. वर्णतः काल–नीलानि, गन्धतो दुरभिगन्धानि, रसतस्तिक्त-कटुकरसानि, स्पर्शतः कर्कश–गुरुक–शीत–रूक्षाणि. ४. तेषां पुराणान् वर्णगुणान्, गन्धगुणान्, रसगुणान्, स्पर्शगुणान् विपरिणमय्य, परिपीड्य, परिशाट्य, परिविध्वंस्य. ५. अन्यांश्चापूर्वान् वर्णगुणान्, रसगुणान्, गन्धगुणान्, स्पर्शगुणानुत्पाद्यात्मशरीरावगाढान् पुद्गलान् सर्वात्मतयाऽऽहारमाहरन्तिः–अनु०

१. चार दिशाओमां व्यवस्थित, पांच दिशाओमां व्यवस्थितः–अनु०

२. 'विप्परिणामइत्ता, परिपीलइत्ता, परिसाडइत्ता, अने परिविद्धंसइत्ता' आ चारे पदो 'नाश करीने' आ एक ज अर्थवाळां होवाथी समान–तुल्य–अर्थवाळां छेः–श्रीअभयदेव.

१. प्र० छायाः—नैरयिका भगवन् ! सर्वत आहरन्ति, सर्वतः परिणमयन्ति, सर्वत उच्छ्वसन्ति, सर्वतो निःश्वसन्ति; अभिक्षणमाहरन्ति, अभिक्षणं परिणमयन्ति, अभिक्षणमुच्छ्वसन्ति, अभिक्षणं निःश्वसन्ति; आहत्याहरन्ति ?. हन्त गौतम ! नैरयिकाः सर्वत आहरन्तिः–अनु०

वामिति. तथा *'कइभागं' ति* आहारतयोपात्तपुद्गलानां कतिथं भागमाहारयन्तीति वाच्यम्, तच्चैवम्:—*''नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति, ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं आसायंति ?. गोयमा ! असंखेज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं आसाइंति.'' 'सेयालंसि'* त्ति एष्यत्काले ग्रहणकालोत्तरकालमित्यर्थः. *'असंखेज्जइभागं आहारेंति'* इत्यत्र केचिद् व्याचक्षते:— '' गवादिप्रथमबृहद्ग्रासग्रहण इव कौश्चिद् गृहीताऽसंख्येयभागमात्रान् पुद्गलानाहारयन्ति, तदन्ये तु पतन्तीति.'' अन्ये त्वाचक्षते:— ''ऋजुसूत्रनयदर्शनात् स्वशरीरतया परिणतानामसंख्येयभागमाहारयन्ति. ऋजुसूत्रो हि गवादिप्रथमबृहद्ग्रासग्रहण इव गृहीतानां शरीरत्वेना-परिणतानामाहारतां नेच्छति, शरीरतया परिणतानामपि केषांचिदेव विशिष्टाहारकार्यकारिणां तेषाम्-अभ्युपगच्छति, शुद्धनयत्वात् तस्य'' इति. अन्ये तु पुनरित्थमभिदधति '' *'असंखेज्जइभागं आहारेंति'*त्ति शरीरतया परिणमन्ति, शेषास्तु किट्टीभूय मनुष्याभ्यवहृताऽऽहारवद् मलीभवन्ति—न शरीरत्वेन परिणमन्तीत्यर्थः'' *'अणंतभागं आसाइंति'*त्ति आहारतया गृहीतानामनन्तभागमास्वादयन्ति—तद्रसादीन् रसनादीन्द्रिय-द्वारेणोपलभन्ते इत्यर्थः.

१५. हवे [*'सव्वओ वा वि'*] ए पदनी व्याख्या करीए छीए, तेने विषे नैरयिको सर्वत. सर्व आत्म प्रदेशथी आहार करे छे? 'वाऽपि' आ प्रमाणे कहेवाथी अभीक्ष्ण—पुनः पुनः—आहार करे छे?. आ प्रमाणे कहेवुं जोइए, ते आ प्रमाणेः '' हे भगवन्! नैरयिको सर्व प्रदेशे आहार करे, सर्व प्रदेशे परिणमावे, सर्व प्रदेशे उच्छ्वास ले, सर्व प्रदेशे निःश्वास काढे?; पुनः पुनः आहार करे, पुनः पुनः परिणमावे, पुनः पुनः उच्छ्वास ले, पुनः पुनः निःश्वास मूके?; एवी ज रीते कदाचित् आहार करे, (कदाचित् परिणमावे, कदाचित् उच्छ्वास ले, कदाचित् निःश्वास मूके?.) हा. गौतम! नैरयिको सर्व आत्मप्रदेशोए आहार करे, सर्व आत्मप्रदेशे परिणमावे, सर्व आत्मप्रदेशे उच्छ्वास ले, सर्व आत्मप्रदेशे निःश्वास मूके. वळी पुनः पुन. पर्याप्तपणामां—आहार करे, पुनः पुनः आहार परिणमावे, पुनः पुन. उच्छ्वास ले, पुनः पुनः निःश्वास मूके तथा कदाचित्—कोइ दिवस पण हम्मेशा नहीं, अर्थात् अपर्याप्तअवस्थामां आहार ले, कदाचित् आहार परिणमावे, कदाचित् उच्छ्वास ले तथा कदाचित् निःश्वास मूके. तथा [*'कइभागं' ति*] आहारने माटे ग्रहण करेला पुद्गलोना केटलामा भागनो आहार करे छे? ए प्रमाणे कहेवुं. ते आ प्रमाणेः ''हे भगवन्! नैरयिको जे पुद्गलोने आहारपणे ग्रहण करे छे ते पुद्गलोना केटलामा भागनो भविष्यत्काळमां-ग्रहण पछीना काळमां—आहार करे छे तथा केटलामा भागनो आस्वाद करे छे?. गौतम! असंख्येय भागनो आहार करे छे अने अनन्त भागनो आस्वाद ले छे.'' 'असंख्येय भागनो आहार करे' ए पदनी व्याख्या करतां केटलाक कहे छे के ''गाय वगेरे पशुना प्रथमना मोटा ग्रासना ग्रहणनी जेम (आहारमाटे) ग्रहण करेला पुद्गलोमांथी असंख्येय भागमात्र ज पुद्गलोनो आहार करे छे, बाकीना बधा पुद्गलो पडी जाय छे.'' अन्य तो कहे छे केः—''ऋजुसूत्र नयानुसारे पोताना शरीरपणे परिणत पुद्गलोना असंख्येय भागनो आहार करे छे. कारण के गाय वगेरे पशुना प्रथमना मोटा ग्रासना ग्रहणनी जेम ग्रहण करेला पुद्गलो के जेओ शरीरपणे परिणम्या न होय, तेओने ऋजुसूत्रनय शुद्ध होवाथी आहारपणे इच्छतो नथी. अने शरीरपणे परिणत पुद्गलोमांथी पण केटलाक, के जेओ विशिष्ट आहार कार्यने करवावाळा होय तेओनुं ज आहारपणुं स्वीकारे छे.'' केटलाक तो आ प्रमाणे कहे छे केः ''[*'असंखेज्जइभागं आहारेंति'*] 'असंख्येय भागनो आहार करे' एटले के असंख्यातमो भाग शरीरपणे परिणमे. अने बाकीना पुद्गलोनो तो किटोडो थइने मनुष्ये खाधेला आहारनी जेम मळ थइ जाय छे अर्थात् शरीरपणे परिणमता नथी.'' तथा [*'अणंतभागं आसाइंति' त्ति*] अनन्तभागनु आस्वादन करे, अर्थात् आहारपणे ग्रहण करेला पुद्गलोना अनन्तभागनु आस्वादन करे—पुद्गलना रसादिने रसनादि इन्द्रिय द्वारा मेळवे—ए प्रमाणे अर्थ करवो.

सर्वप्रदेशेआहारादि.
पुनः पुनः आहारादि.
कतिभाग ?
असंख्येयभाग.
अनंतभाग. अन्य.
ऋजुसूत्र. अन्य.
अन्य.

१६. *'सव्वाणि व'*त्ति द्वारम्, तत्र सर्वाण्येवाहारद्रव्याण्याहारयन्ति इति वाच्यम्, वा—शब्दः समुच्चये. तच्चैवम्:—*''नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए परिणामेंति, ते किं सव्वे आहारेंति ? णो सव्वे आहारेंति ?. गोयमा ! सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति.''* इह विशिष्टग्रहणगृहीता आहारपरिणामयोग्या एव ग्राह्याः—उज्झितशेषा इत्यर्थः, अन्यथा पूर्वापरसूत्रयोर्विरोधः स्याद्, इष्टा चैवं व्याख्या. यदाहः—*''जं जह सुत्ते भणिअं तहेव जइ तं वियालणा नत्थि. किं कालियाऽणुओगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ?'' 'कीस व भुज्जो परिण-मंति'*त्ति द्वारगाथापदम्, तत्र *'कीस'*त्ति पदावयवे पदसमुदायोपचारात् *'कीसत्ताए'*त्ति दृश्यम्—किम्वतया किम्भावतया? कीदृशतया वा केन प्रकारेण किंस्वरूपतया ? इत्यर्थः. वा—शब्दः समुच्चये. *'भुज्जो'*त्ति भूयो भूयः पुनः पुनः परिणमन्ति आहारद्रव्याणि, इति प्रकृतमिति. एतदत्र वाच्यम्, तच्चैवम्:—*''नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति, ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?*

---

१ प्र० छायाः—नैरयिका भगवन्! यान्, पुद्गलानाहारतया गृह्णन्ति, ते तेषां पुद्गलानां भविष्यति काले कतिभागमाहरन्ति, कतिभागमास्वादयन्ति ?. गौतम! असंख्येयभागमाहरन्ति, अनन्तभागमास्वादयन्तिः—अनु०

२. आहारतामित्यर्थः. ३. प्र० छायाः—नैरयिका भगवन्! यान् पुद्गलानाहारतया परिणमयन्ति तान् किं सर्वान् आहरन्ति, नो सर्वान् आहरन्ति ?. गौतम! सर्वान् अपरिशेषान् आहरन्ति. ४. प्र० छायाः—यद् यथा सूत्रे भणितं तथैव यदि तद् विचारणा नास्ति. किं कालिकाऽनुयोगो दृष्टो दृष्टिप्रधानैः ?.

५. इदं च विशेषावश्यकसूत्रे १४८ गाथाटीकायाम्, तथा पञ्चाशकेऽपि एकादशपञ्चाशके ३४ गाथा, तत्र तट्टीका चैवम्—यद् एकाकिविहारादि वस्तु, यथा येन प्रकारेण—गुणाधिकसहायलाभादिना सूत्रे 'न या लभेज्जा' इत्यादि (दशवैकालिकसूत्रोक्त) रूपे, भणितम्—उक्तम्, तथैव तेन प्रकारेण, यदि चेत्, किमुक्तं भवति—विचारणा विषयविभागकल्पना, नास्ति न विधेया भवति, तदा किं केन हेतुना, कालिकानुयोगः उत्तराध्ययनादिकालिकश्रुतव्याख्यानम्, दृष्टोऽनुमतः, दृष्टिप्रधानैः सम्यग्दर्शनप्रवरैः—नयमतप्रधानैर्वा भद्रबाहुस्वामिभिरावश्यकादिग्रन्थदशकनिर्युक्तिरूपानुयोगकारकैः ? इति—(भगवतीविवृतिप्रणेता श्रीअभयदेवः):—अनु०

६. प्र० छायाः—नैरयिका भगवन्! यान् पुद्गलानाहारतया गृह्णन्ति, ते तेषां पुद्गलाः किंस्वतया (कीदृशतया) भूयो भूयः परिणमन्ति ? गौतम! श्रोत्रेन्द्रियतया, यावत् स्पर्शेन्द्रियतया, अनिष्टतया, अकान्ततया, अप्रियतया, अमनोज्ञतया, अमनोऽम्यतया, अनीप्सिततया, अभिध्येयतया (अहृद्यतया), अधस्तया, नो ऊर्ध्वतया, दुःखतया, नो सुखतया एतेषां भूयो भूयः परिणमन्तिः—अनु०

गोयमा ! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए, अणिट्ठयाए, अकंतत्ताए, अप्पियत्ताए, अमणुन्नत्ताए, अमणामत्ताए, अणिच्छियत्ताए, अहिज्झियत्ताए, अहत्ताए, णो उड्ढत्ताए, दुक्खत्ताए, नो सुहत्ताए एएसिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति." तत्राऽनिष्टतया सदैव तेषां नारकाणां सामान्येनाऽवल्लभतया, तथाऽकान्ततया सदैव तद्भावेनाऽकमनीयतया, तथाऽप्रियतया सर्वेषामेव द्वेष्यतया, तथा अमनोज्ञतया कथयाऽप्य-मनोरमतया, तथा अमनोऽम्यतया चिन्तयाऽप्यमनोगम्यतया, तथाऽनीप्सिततयाऽऽप्तुमनिष्टतया, एकार्था वैते शब्दाः. *'अहिज्झियत्ताए'*त्ति अभिध्येयतया तृप्तेरनुत्पादकत्वेन पुनरप्यभिलाषनिमित्ततया "अहद्यत्वेन" इत्यन्ये–अशुभत्वेनेत्यर्थः. *'अहत्ताए'*त्ति गुरुपरिणामतया *'नो उड्ढत्ताए'*त्ति नो लघुपरिणामतयेति संग्रहगाथार्थः. इदं च संग्रहणीगाथाविवरणसूत्रं क्वचित् सूत्रपुस्तक एव दृश्यत इति.

सर्व पुद्गलाहार.

१६. हवे ['सव्वाणि व' त्ति] ए द्वारना विवरणनी इच्छावाळा ग्रंथकार कहे छे; तेने विषे सर्व आहारद्रव्यनो आहार करे ? ए प्रमाणे कहेवुं. ('वा' शब्द समुच्चयार्थक छे.) ते आ प्रमाणेः "हे भगवन्! नैरयिको जे पुद्गलोने आहारपणे परिणमावे छे, शुं ते सर्व पुद्गलोनो आहार करे छे, के सर्व पुद्गलोनो आहार नथी करता ?. गौतम ! परिशेषरहित सर्व पुद्गलोनो आहार करे छे." अहीं (पुद्गलपदवडे) विशिष्ट ग्रहणवडे गृहीत थयेला आहार परिणामने योग्य जे पुद्गलो होय ते पुद्गलो ग्रहण करवा, अर्थात् उज्झितशेष आहारमाटे ग्रहण करेला पुद्गलोमांथी जेओ पडी गया होय ते पुद्गलोने वर्जीने, आहार योग्य ज पुद्गलो ग्रहण करवा. अन्यथा पूर्वापरसूत्रनो विरोध थाय अने उपर्युक्त प्रकारे व्याख्या इष्ट छे. कह्युं छे केः "सूत्रमां जेवी रीते जे कह्युं छे ते जो तेम ज होय अने विचारणा न होय तो ज्ञानी पुरुषो कालिक अनुयोगनो केम उपदेश करे ?" ['कीसं वं भुज्जो परिणमंति' त्ति] आ द्वारगाथानुं पद छे. तेमां 'कीस'–कीदृशतया–'केवा प्रकारे' (ए प्रमाणे अर्थ करवो.) 'भुज्जो' एटले 'पुनः पुनः' आहारद्रव्य परिणमे, आ प्रमाणे संबंध प्रकरण प्राप्त छे अने जे अहीं कहेवानुं छे ते आ प्रमाणे छेः "हे भगवन् ! नैरयिको जे पुद्गलोने आहारपणे ग्रहण करे, तेओ (पुद्गलो) पुनः पुनः केवा स्वरूपे परिणमे ?. गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियस्वरूपे, यावत् स्पर्शेन्द्रियस्वरूपे. (इन्द्रियपणे परिणमेलो आहार पण शुभरूपे नहीं, परंतु एकान्त अशुभरूपे परिणमे ए प्रमाणे बतावया विशेषणो द्वारा कहे छेः) अनिष्टपणे, अकांतपणे, अप्रियपणे, अमनोज्ञपणे, अमनोगम्यपणे, अनीप्सितपणे, अभिध्येयपणे, अधःपणे, ऊर्ध्वपणे नहीं, दुःखपणे, सुखपणे नहीं; आवा स्वरूपे नैरयिकोने पुनः पुनः पुद्गलो परिणमे." अनिष्ट एटले सामान्यपणे हम्मेशां तेओने (नैरयिकोने) अवल्लभ. अकांत=सदैव अनिष्ट होवाथी अकमनीय–सुंदर नहीं. अप्रिय=सर्वने द्वेष्य. अमनोज्ञ=जेनी कथा–वार्ता करतां पण मनोहर न लागे. अमनोगम्य=विचारवडे पण मनन रुचिकर नहीं. अनीप्सित=जेने मेळववानी इच्छा पण न थाय. अथवा उपर कहेला शब्दो समान–तुल्य अर्थवाळा समजवा. ['अहिज्झियत्ताए' त्ति] अभिध्येय=तृप्तिना उत्पादक नहीं होवाथी फरीथी अभिलाषनुं कारण. केटलाक कहे छे के:–"अभिध्येय एटले अहृद्य अशुभ." ['अहत्ताए' त्ति] अधःपणुं गुरुपरिणाम, तेवडे ['नो उड्ढत्ताए' त्ति] पण ऊर्ध्वपणे नहीं लघु परिणामपणे नहीं. आ प्रमाणे संग्रहगाथानो अर्थ कर्यो. आ संग्रहगाथानुं विवरणसूत्र कोइक सूत्रपुस्तकमां ज देखाय छे.

पंचाशक.

आहारपरिणाम.

अशुभपरिणाम.

अभ्य.

१७. अथ नैरयिकाहाराधिकारात् तद्विषयमेव प्रश्नचतुष्टयमाहः–*'नेरइयाणं'* इत्यादि. *'पुव्वाहारिय'*त्ति ये पूर्वमाहृताः–पूर्वकाले एकीकृताः–संगृहीताः इति यावद्, अभ्यवहृता वा; *'पोग्गले'*त्ति स्कन्धाः, *'परिणय'*त्ति ते परिणताः–पूर्वकाले शरीरेण सह संपृक्ताः–परिणतिं गता इत्यर्थः, इति प्रथमः प्रश्नः. इह च सर्वत्र प्रश्नत्वं काकुपाठादवगम्यते. तथा *'आहारिय'*त्ति पूर्वकाले आहृताः संगृहीताः, अभ्यवहृता वा. *'आहारिज्जमाण'*त्ति ये च वर्तमानकाले आह्रियमाणाः संगृह्यमाणाः, अभ्यवह्रियमाणा वा पुद्गलाः. *'परिणय'*त्ति ते परिणता इति द्वितीयः. तथा *'अणाहारिय'*त्ति येऽतीतकालेऽनाहृताः, *'आहारिज्जस्समाण'*त्ति ये चानागते काले आहरिष्यमाणाः पुद्गलास्ते परिणता इति तृतीयः. तथा *'अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा'* इत्यादि, अतीता–ऽनागताऽऽहरणक्रियानिषेधाच्चतुर्थः. इह च यद्यपि चत्वार एव प्रश्ना उक्तास्तथाप्येते त्रिषष्टिः संभवन्ति, यतः पूर्वाहृताः, आह्रियमाणाः, आहरिष्यमाणाः, अनाहृताः, अनाह्रियमाणाः, अनाहरिष्यमाणाश्च इति षट् पदानीह सूचितानि, तेषु चैकैकपदाश्रयणेन षट्, द्विकयोगे पञ्चदश, त्रिकयोगे विंशतिः, चतुष्कयोगे पञ्चदश, पञ्चकयोगे षट्,

१. आ गाथा विशेषावश्यक सूत्रमां ३४८ मी गाथानी टीकामां छे. तथा श्रीपंचाशकनामना ग्रंथमां अग्यारमा पंचाशकमां ३४ मी गाथा छे. त्यां तेनी टीका (आ भगवतीजीनुं विवरण करनार श्रीअभयदेवसूरिजीए करी छे. तेनुं रहस्य) आ प्रमाणे छेः–कोइ पण वात सूत्रमां जे प्रकारे कही छे, जो ते वात ते ज प्रकारे होय अने सूत्रमां कहेली वातमा विचारणा–विषयना विभागनी कल्पना–न होय तो सम्यग्दर्शनमां प्रवर अथवा नयना मतोमां प्रवर अने आवश्यकादि दशग्रंथना निर्युक्तिरूप अनुयोगने करनार श्री भद्रबाहुस्वामिए कालिकअनुयोग–(कालिक=उत्तराध्ययन वगेरे कालिकश्रुत, तेनो अनुयोग–व्याख्यान) शा हेतुथी अनुगम्यो ?:–अनु०

२. पदना अवयवमा पदसमुदायनो उपचार करवाथी 'कीस' एटले 'कीसत्ताए' अर्थात् 'कीदृशतया–केवे प्रकारे' ए प्रमाणे जाणवुं. ३. 'वा' शब्द समुच्चयार्थक छेः–श्रीअभयदेव.

१. ते चैवम्.—१. पूर्वाहृताः. २. आह्रियमाणाः. ३. आहरिष्यमाणाः. ४. अनाहृताः. ५. अनाह्रियमाणाः. ६. अनाहरिष्यमाणाः.

२. ते चेमे.—(१.) १. पूर्वाहृता. २. आह्रियमाणाः. (२.) १. पूर्वाहृताः. ३. आहरिष्यमाणाः. (३.) १. पूर्वाहृताः. ४. अनाहृताः. (४.) १. पूर्वाहृताः. ५. अनाह्रियमाणाः. (५) १. पूर्वाहृताः. ६. अनाहरिष्यमाणाः. (६.) २. आह्रियमाणाः. ३. आहरिष्यमाणाः. (७.) २. आह्रियमाणाः. ४. अनाहृताः. (८.) २. आह्रियमाणाः. ५. अनाह्रियमाणाः. (९.) २. आह्रियमाणाः. ६. अनाहरिष्यमाणाः. (१०.) ३. आहरिष्यमाणाः. ४. अनाहृताः. (११.) ३ आहरिष्यमाणाः. ५. अनाह्रियमाणाः. (१२.) ३. आहरिष्यमाणाः. ६. अनाहरिष्यमाणाः. (१३.) ४. अनाहृताः. ५. अनाह्रियमाणाः. (१४.) ४. अनाहृताः. ६. अनाहरिष्यमाणाः. (१५.) ५. अनाह्रियमाणाः. ६. अनाहरिष्यमाणाः.–अनु०

३. इमे चैवम्:—(१.) १. पूर्वाहृताः. २. आह्रियमाणाः. ३. आहरिष्यमाणाः. (२.) १. पूर्वाहृताः. २. आह्रियमाणाः. ४. अनाहृताः. (३.) १. पूर्वाहृताः. २. आह्रियमाणाः. ५. अनाह्रियमाणाः. (४.) १. पूर्वाहृताः. २. आह्रियमाणाः. ६. अनाहरिष्यमाणाः. (५.) १. पूर्वाहृताः.

पद्योगो ऽत्र इति. अत्रोत्तरमाह:—'गोयमा'! इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—ये पूर्वमाहृतास्ते पूर्वकाल एव परिणता:, ग्रहणानन्तरमेव परिणामभावाद्. ये पुनराहृता:, आह्रियमाणाश्च ते परिणता:, आहृतानां परिणामभावादेव, परिणमन्ति च आह्रियमाणानां परिणामभावस्य वर्तमानत्वादिति. वृत्तिकृता तु द्वितीय: प्रश्नोत्तरविकल्प एवंविधो दृष्ट:—"यदुत आहृता: आहरिष्यमाणा: पुद्गला: परिणता:, परिणंस्यन्ते च; यतोऽयं तेनैवं व्याख्यात:—यदुत ये पुनराहृता:, आहरिष्यन्ते पुनस्तेषां केचित् परिणताश्च ये संपृक्ता: शरीरेण सह, ये तु न तावत् संपृच्यन्ते, कालान्तरे तु संपृक्ष्यन्ते ते परिणंस्यन्ते इति." ये पुनरनाहृता:, आहरिष्यन्ते पुनस्ते नो परिणता:, अनाहृतानां संपर्काऽभावेन परिणामाऽभावाद्; यस्मात् तु आहरिष्यन्ते तत: परिणंस्यन्ते, आहृतस्यावश्यं परिणामभावाद्" इति. चतुर्थस्तु अतीत-भविष्यदाहरणक्रियाया अभावेन परिणामाभावादवसेय इति. एतदनुसारेणैव प्रागूदर्शितविकल्पानामुत्तरसूत्राणि वाच्यानीति.

आहारपरिणाम—विचार.

१७. हवे नैरयिकोना आहारनो अधिकार होवाथी तेना विषयना ज चार प्रश्नो कहे छे. ['नेरइयाणं' इत्यादि] नैरयिकोए ['पुव्वाहरिय' त्ति] पूर्वे जे संगृहीत करेला अथवा आहार करेला ['पोग्गल' त्ति] पुद्गलो स्कंधो, तेओ ['परिणय' त्ति] परिणम्या? एटले के पूर्वकाले शरीरनी साथे संपृक्त थया—परिणामने प्राप्त थया? आ प्रमाणे प्रथम प्रश्न छे. (अहीं सर्व स्थले काकुपाठथी प्रश्न जणाय छे.) तथा ['आहारिय' त्ति] पूर्व कालमां संग्रह करायेला अथवा आहार करायेला अने ['आहारिज्जमाण' त्ति] वर्तमानकाळमां संग्रह कराता अथवा आहार कराता पुद्गलो ['परिणय' त्ति] परिणम्या? आ प्रमाणे बीजो प्रश्न छे. तथा ['अणाहारिय' त्ति] जेओनो अतीतकाळमां आहार कर्यो नथी अने ['आहारिज्जस्समाण' त्ति] भविष्यकाळमां आहार करशे ते पुद्गलो परिणम्या? आ प्रमाणे तृतीय प्रश्न छे. जे पुद्गलोनो ['अणाहारिया] आहार कर्यो नथी अने जे पुद्गलोनो ['अणाहारिज्जस्समाणा'] आहार करशे पण नहीं ते पुद्गलो परिणम्या? आ प्रमाणे अतीत अने अनागत काळमां आहरण क्रियानो निषेध करवारूप चोथो प्रश्न छे. अहीं जो के चार ज प्रश्नो कह्या छे, परंतु विस्तारथी त्रेसठ प्रश्नो संभवे छे. कारण के अहीं पूर्वमां आहार करेला, (वर्तमानमां) आहार कराता, (भविष्यत्काळमां) आहार करावाना, (भूतमां) आहार नहीं करेला, (वर्तमानमां) आहार नहीं कराता, अने (भविष्यत्काळमां) आहार नहीं करवाना आ प्रमाणे छ पदो सूचव्या छे. ते छ पदमां एकेक पदनो आश्रय करतां छ प्रश्नो, बब्बे पदनो आश्रय करतां पंदर प्रश्नो, त्रण त्रण पदनो योग करतां

---

३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. (६.) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. (७.) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (८.) १. पूर्वाहृता:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. (९.) १. पूर्वाहृता:. ४. अनाहृता:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१०.) १. पूर्वाहृता: ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (११.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. (१२.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. (१३.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१४.) २. आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. (१५) २. आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता:. ६ अनाहरिष्यमाणा:. (१६) २. आह्रियमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१७.) ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा: (१८) ३ आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१९.) ३. आहरिष्यमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (२०.) ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:.

४. एते चैवम्:—(१.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता. (२.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा. ३. आहरिष्यमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. (३) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (४.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता:. ५ अनाह्रियमाणा:. (५.) १. पूर्वाहृता:. २ आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (६.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (७.) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. (८.) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (९) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ५ अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१०.) १. पूर्वाहृता:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (११) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४ अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. (१२.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१३.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ५. अनाह्रियमाणा: ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१४.) २. आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (१५.) ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:.

५. इमे चैते:—(१.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. (२.) १. पूर्वाहृता: २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (३.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (४.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (५.) १. पूर्वाहृता:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:. (६.) २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६. अनाहरिष्यमाणा:.

६. स चायम्:—(१.) १. पूर्वाहृता:. २. आह्रियमाणा:. ३. आहरिष्यमाणा:. ४. अनाहृता:. ५. अनाह्रियमाणा:. ६ अनाहरिष्यमाणा.—अनु०

१. उपर्युक्त छ पदना त्रेसठ भांगा थाय छे, अने एक भांगे एक प्रश्न उद्भवे छे, एम बधा मळीने त्रेमठ प्रश्नो उठे छे. ते क्रमपूर्वक आ प्रमाणे छे:—
१. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण.

२:—(१.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. (२.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. (३.) १. पूर्वाहृत. ४. अनाहृत. (४.) १. पूर्वाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (५.) १. पूर्वाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (६.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. (७.) २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. (८.) २. आह्रियमाण. ५. अनाह्रियमाण. (९.) २. आह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१०.) ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. (११.) ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. (१२.) ३. आहरिष्यमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१३.) ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (१४.) ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (१५.) ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण:—अनु०

त्रेसठ प्रश्न.

वीशे प्रश्नो, चार चार पदनो योग करतां पंदरे प्रश्नो, पांच पांच पदनो योग करतां छ प्रश्नो, अने छ पदनो योग करतां एक प्रश्न; आ प्रमाणे सर्व मळी त्रेसठ प्रश्नो संभवे छे. आ प्रश्नोनो उत्तर आपतां भगवान् कहे छे केः—['गोयमा' ! इत्यादि] गौतम! इत्यादि मूळमां स्पष्ट छे. विशेषता ए केः—जेओनो पूर्वमां आहार कर्यो तेओ (पुद्गलो) पूर्वकाले ज परिणम्या, कारण के ग्रहण कर्या बाद ज आहार करेला पुद्गलोना परिणामनो सद्भाव छे. (आ प्रथम प्रश्ननो उत्तर थयो.) वळी जेओनो आहार कर्यो अने जे पुद्गलोनो आहार कराय छे तेओ (अनुक्रमे) परिणम्या अने परिणमे छे. कारण के आहार करेला (पुद्गल) ना परिणामनो सद्भाव छे अने आहार कराता पुद्गलोनो परिणाम वर्तमान—चालु छे. वृत्तिकारे तो बीजा प्रश्ननो उत्तर आ प्रमाणे देख्यो कर्यो छेः-"आहार करेला अने आहार करवाना पुद्गलो, परिणम्या अने परिणमशे" तेनी तेओए आ प्रमाणे व्याख्या करी छे केः—"जे पुद्गलो आहर्या अने जे पुद्गलोनो आहार कराशे तेओमां केटलाक पुद्गलो परिणम्या, परिणम्या ते ज समजवा के जेओ शरीरनी साथे संबद्ध थया. अने जेओ हवे संबद्ध थशे तेओ परिणमशे." जे पुद्गलोनो आहार थयो नथी अने आहार थशे, तेओ (पुद्गलो) परिणम्या नथी. कारण के नहीं आहरेलाना संबंधनो ज अभाव होवाथी परिणामनो असंभव छे. ज्यारथी तेओनो आहार थशे त्यारथी परिणमशे. कारण के आहार करेलानो अवश्य परिणाम थाय छे. (चतुर्थ प्रश्नसूत्रमां) भूत अने भविष्यत्काळमां आहार क्रियानो अभाव होवाथी परिणामना अभावस्वरूप चतुर्थ उत्तर समजवो. अने ए ज प्रमाणे पूर्वमां देखाडेला (त्रेसठ) विकल्पोना उत्तरसूत्रो कहेवा.

वृत्तिकार.

१८. अथ शरीरसंपर्कलक्षणपरिणामात् पुद्गलानां चयादयो भवन्तीति, तद्दर्शनार्थं प्रश्नयन्नाहः—'*नेरइयाणं*' इत्यादि. चयादिसूत्राणि परिणामसूत्रसमानीति कृत्वाऽतिदेशतोऽधीतानीति. तथाहिः—'*जहा परिणया, तहा चिया वि*' इत्यादि. इह च पुस्तकेषु वाचनाभेदो दृश्यते, तत्र न संमोहः कार्यः, सर्वत्राभिधेयस्य तुल्यत्वात्; केवलं परिणतसूत्रानुसारेण प्रश्नसूत्राणि, व्याकरणानि च मतिमताऽध्येयानीति. तत्र चिताः शरीरे चयं गताः, उपचिताः पुनर्बहुशः प्रदेशसान्निध्येन शरीरे चिता एवेति. उदीरितास्तु स्वभावतोऽनुदितान् पुद्गलानुदयप्राप्ते कर्मदलिके करणविशेषेण प्रक्षिप्य यान् वेदयते. उदीरणालक्षणं चेदम्ः—"[1]*जं करणेणाऽऽकड्ढिय उदए दिज्जइ उदीरणा एसा*" तथा वेदिताः स्वेन रसविपाकेन प्रतिसमयमनुभूयमाना अपरिसमाप्ताऽशेषाऽनुभावा इति. तथा निर्जीर्णाः कात्स्न्येनाऽनुसमयमशेषतद्विपाकहानियुक्ता इति. '*गाह*'त्ति परिणतादिसूत्राणां संग्रहणाय गाथा भवति. सा चेयम्ः—'*परिणय*' इत्यादिर्व्याख्यातार्था. नवरम्ः—एकैकस्मिन् पदे परिणतचितोपचितादौ चतुर्विधाः आहृताः. आहृता आह्रियमाणाश्च. अनाहृता आहरिष्यमाणाश्च. अनाहृता अनाहरिष्यमाणाश्च. इत्येवं चतूरूपाः पुद्गला भवन्ति —प्रश्न—निर्वचनविषयाः स्युरिति.

१८. हवे शरीरनी साथे संबंधस्वरूप परिणाम होवाथी पुद्गलोनो चय वगेरे पण थाय, तेथी ते देखाडवाने प्रश्न करता कहे छे केः— ['नेरइयाणं' इत्यादि] परिणामसूत्रनी समान ज चयादी सूत्रो छे. माटे अतिदेशथी अहीं परिणामसूत्र पछी चयादि सूत्रोने भण्या छे. जेम केः ['जहा परिणया तहा चिया वि' इत्यादि] जेवी रीते परिणम्या तेवी ज रीते एकठा पण थया, इत्यादि. अहीं पुस्तकोने विषे

१:—(१.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण ३. आहरिष्यमाण. (२) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. (३.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ५. अनाह्रियमाण (४) १ पूर्वाहृत २ आह्रियमाण ६ अनाहरिष्यमाण. (५.) १ पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. (६.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण ५. अनाह्रियमाण (७.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (८.) १. पूर्वाहृत. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (९.) १. पूर्वाहृत ४. अनाहृत ६. अनाहरिष्यमाण. (१०.) १. पूर्वाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (११.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. (१२.) २ आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. (१३.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१४.) २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (१५.) २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (१६.) २. आह्रियमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१७.) ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (१८.) ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (१९.) ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (२०.) ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण

२:—(१) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. (२.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. (३.) १ पूर्वाहृत. २ आह्रियमाण ३. आहरिष्यमाण. ६. अनाहरिष्यमाण (४.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (५.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (६.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (७) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत ५. अनाह्रियमाण. (८.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (९.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१०.) १. पूर्वाहृत. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (११) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (१२.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण. (१३.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१४.) २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ५ अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (१५.) ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण.

३:—(१.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. (२.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ६. अनाहरिष्यमाण (३) १ पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (४.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (५.) १. पूर्वाहृत. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण. (६.) २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाण.

४:—(१.) १. पूर्वाहृत. २. आह्रियमाण. ३. आहरिष्यमाण. ४. अनाहृत. ५. अनाह्रियमाण. ६. अनाहरिष्यमाणः—अनु०

१ प्र०छायाः—यत् करणेनाऽऽकृष्य उदये दीयते उदीरणैषा.

२. एतत्संवादि चेदम्ः—उदीरणा हि उदयावलिकाबहिर्वर्तिनीभ्यः स्थितिभ्यः सकाशात् कषायसहितेन, असहितेन वा योगकरणेन दलिकमाकृष्य उदयसमयप्राप्तदलिकेन सहानुभवनम्. तथा चोक्तं कर्मप्रकृतिचूर्णौः—"उदयावलिआबहिरिल्लठिईहिंतो कसायसहिआसहिएणं जोगकरणेणं दलिअमाकड्ढिअ उदयपत्तदलिएण समं अणुभवणं उदीरणा"—चतुर्थकर्मग्रन्थे ७ गाथाटीकायाम्. (भा० पृ—१०२.):—अनु०

वाचनानो भेद देखाय छे. परंतु तेने विषे संमोह करवो नहीं. कारण के सर्व स्थले वाच्य पदार्थ तुल्य छे. फक्त बुद्धिमाने परिणतसूत्रना अनुसारे प्रश्नसूत्रो अने उत्तरो विचारी लेवा. तेने विषे चिता—चय पाम्या-एटले शरीरने विषे समूहने प्राप्त थयेला. उपचिता एटले वारंवार शरीरने विषे प्रदेशना समीपपणे एकठा थयेला. पोताना स्वभावथी उदयने नहीं प्राप्त थयेला जे कर्मपुद्गलो, उदये आवेला कर्मदलियाओने विषे करणविशेषवडे नांखीने वेदाय तेओ उदीरित कहेवाय. उदीरणानुं लक्षण आ प्रमाणे छेः—"(कर्मने) करणवडे खेंचीने उदयने विषे देवाय—लवाय—ते उदीरणा कहेवाय." तथा स्वकीय रसविपाकवडे दरेक समये अनुभवाता अने नहीं समाप्त थयेल समग्र रसवाळा कर्मपुद्गलोने वेदित कहे छे. प्रतिसमय संपूर्णपणे अशेष पोताना विपाकनी हानियुक्त कर्मपुद्गलो निर्जीर्ण कहेवाय. परिणतादि सूत्रोनो संग्रह करवा माटे ['गाह' त्ति] गाथा छे, ते आ प्रमाणेः ['परिणय'] वगेरे. व्याख्या उपर प्रमाणे समजवी. विशेषता आ छे केः-परिणत, चित, उपचित वगेरे दरेक पदमां आहार करेला, आहार करेला अने आहार कराता, आहार नहीं करेला अने आहार करावाना, तथा आहार नहीं करेला अने आहार नहीं करावाना; आ प्रमाणे चार प्रकारना पुद्गलो प्रश्न अने उत्तर विषयक छे.

उदीरणा.

वेदन. निर्जरण.

१९. पुद्गलाधिकारादेव इमामष्टादशसूत्रीमाहः—*'नेरइयाणं भंते! कतिविहा पोग्गला भिज्जंति?'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—*'भिज्जंति'*त्ति तीव्र-मन्द-मध्यतयाऽनुभागभेदेन भेदवन्तो भवन्ति, उद्वर्तनकरणा-ऽपवर्तनकरणाभ्यां मन्दरसास्तीव्ररसाः, तीव्ररसास्तु मन्दरसा भवन्तीत्यर्थः. उत्तरम्—*'कम्मदव्ववग्गणं अहिकिच्च'*त्ति समानजातीयद्रव्याणां राशिर्द्रव्यवर्गणा, सा चौदारिकादिद्रव्याणामप्यस्तीत्यत आहः—कर्मरूपा द्रव्यवर्गणा, कर्मद्रव्याणां वा वर्गणा कर्मद्रव्यवर्गणा. तामधिकृत्य तामाश्रित्य—कर्मद्रव्यवर्गणासत्का इत्यर्थः. कर्मद्रव्याणामेव च मन्देतराऽनुभावचिन्ता अस्ति, न द्रव्यान्तराणामिति कृत्वा 'कर्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्य' इत्युक्तम्. *'अणू चेव, बायरा चेव'*त्ति *'चेव'* शब्दः समुच्चयार्थः, ततश्चाणवश्च बादराश्च, सूक्ष्माश्च स्थूलाश्च इत्यर्थः, सूक्ष्मत्वम्, स्थूलत्वं चैषां कर्मद्रव्याऽपेक्षया एवावगन्तव्यम्, नान्यापेक्षया; यत औदारिकादिद्रव्याणां मध्ये कर्मद्रव्याण्येव सूक्ष्माणीति. एवं चयो-पचयो-दीरणा-वेदना-निर्जराः शब्दार्थभेदेन वाच्याः. किन्तु चयसूत्रे, उपचयसूत्रे च *'आहारदव्ववग्गणमहिकिच्च'* इति यदुक्तं तत्रायमभिप्रायः—शरीरमाश्रित्य चयोपचयौ प्राग् व्याख्यातौ, तौ चाहारद्रव्येभ्य एव भवतः नान्यतः, अत 'आहारद्रव्यवर्गणामधिकृत्य' इत्युक्तमिति. उदीरणादयस्तु कर्मद्रव्याणामेव भवन्ति, अनस्तत्सूत्रेषूक्तम्—'कर्मद्रव्यवर्गणामधिकृत्य'इति. *'उयट्टिंसु'*त्ति अपवर्तितवन्तः, इहापवर्तनम्—कर्मणां स्थित्यादेरध्यवसायविशेषेण हीनताकरणम्, अपवर्तनस्य चोपलक्षणत्वादुद्वर्तनमपीह दृश्यम्, तच्च स्थित्यादेर्वृद्धिकरणस्वरूपम्. *'संकामेंसु'*त्ति संक्रमितवन्तः, तत्र संक्रमणं मूलप्रकृत्यभिन्नानामुत्तरप्रकृतीनामध्यवसायविशेषेण परस्परं संचारणम्, तथा चाहः—"मूलप्रकृत्यभिन्नाः संक्रमयति गुणत उत्तराः प्रकृतीः, न त्वात्माऽमूर्तत्वादध्यवसायप्रयोगेण." अपरस्त्वाहः—"*मोत्तूण आउयं खलु दंसणमोहं चरित्तमोहं च, सेसाणं पगईणं उत्तरविहिसंकमो भणिओ.*" एतदेव निदर्श्यतेः—यथा कस्यचित् सद्वेद्यमनुभवतोऽशुभकर्मपरिणतिरेवंविधा जाता, येन तदेव सद्वेद्यमसद्वेद्यतया संक्रामतीति. एवमन्यत्रापि योज्यम्. *'निधत्तिंसु'*त्ति निधत्तान् कृतवन्तः, इह च विश्लिष्टानां परस्परतः पुद्गलानां निचयं कृत्वा धारणं रूढिशब्दत्वेन निधत्तमुच्यते—उद्वर्तना—ऽपवर्तनव्यतिरिक्तकरणानामविषयत्वेन कर्मणोऽवस्थानमिति. *'निकाइंसु'*त्ति निकाचितवन्तः, नितरां बद्धवन्त इत्यर्थः, निकाचनं चैषामेव पुद्गलानां परस्परविश्लिष्टानामेकीकरणम्—अन्योन्यावगाहिता—अग्निप्रतप्तप्रतिहन्यमानसूचिकलापस्येव सकलकरणानामविषयतया कर्मणो व्यवस्थापनमिति यावत्. *'भिज्जंति'* इत्यादिपदानां संग्रहणी यथा—*'भेइय'* इत्यादिगाथा गतार्था. नवरम्—अपवर्तन-संक्रम-निधत्त-निकाचनपदेषु त्रिविधः कालो निर्देष्टव्यः—अतीत-वर्तमाना-ऽनागतकालनिर्देशेन तानि वाच्यानीत्यर्थः. इह चापवर्तनादीनामिव भेदादीनामपि त्रिकालता युक्ता, न्यायस्य समानत्वाद्, केवलम-विवक्षणाद् न तन्निर्देशः सूत्रे कृत इति.

१९. पुद्गलना अधिकारथी ज आ अढार सूत्रोने कहे छे केः—['नेरइयाणं भंते! कतिविहा पोग्गला भिज्जंति?' इत्यादि] 'हे भगवन्! नैरयिकोने केटला प्रकारना पुद्गलो भेदाय?' इत्यादि स्फुटार्थ छे. विशेषता देखाडे छेः—भेदाय एटले तीव्र, मंद अने मध्यमपणे रसना भेदवडे भेदवाळा थाय अर्थात् उद्वर्तनाकरणवडे मन्द रसवाळा कर्मपुद्गलो तीव्र रसवाळा थाय, अने अपवर्तनाकरणवडे तीव्र रसवाळा कर्मपुद्गलो मंद रसवाळा थाय?. उत्तर—['कम्मदव्ववग्गणं अहिकिच्च' त्ति] कर्मद्रव्यवर्गणाने आश्रीने, तुल्य जातिवाळा द्रव्योना समूहने द्रव्यवर्गणा कहे छे. ते द्रव्यवर्गणा अन्य औदारिकादि द्रव्योनी पण होय, माटे (तेवी द्रव्यवर्गणाना निराकरणने माटे) कहे छे केः—कर्मद्रव्यवर्गणा- कर्मरूपी द्रव्यवर्गणा, अथवा कर्मद्रव्योनी वर्गणा- तेने आश्रीने अर्थात् कर्मद्रव्यवर्गणा संबंधी, ए प्रमाणे तात्पर्य छे. मंद तथा इतर रसनी विचारणा कर्मद्रव्यो संबंधे ज होइ शके छे अन्य द्रव्य संबंधे नहीं, माटे कर्मद्रव्यवर्गणाने आश्रीने ए प्रमाणे कह्युं. ['अणू चेव, बायरा चेव' त्ति] अणु एटले सूक्ष्म. अने बादर एटले स्थूल. अहीं पुद्गलोनुं स्थूलपणुं अने सूक्ष्मपणुं कर्मद्रव्योनी अपेक्षाए ज जाणवुं, अन्य द्रव्यनी अपेक्षाए नहीं; कारण के औदारिकादि द्रव्योमां कर्मद्रव्यो ज सूक्ष्म छे. आवी ज रीते चय, उपचय, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा; शब्द अने अर्थना भेदे करी कहेवा. परंतु चयसूत्रमां अने उपचयसूत्रमां ['आहारदव्ववग्गणं अहिकिच्च' इति] आहारद्रव्यवर्गणाने आश्रीने आ प्रमाणे जे कह्युं ते स्थले आ अभिप्राय छेः शरीरने आश्रीने चय अने उपचय थाय छे, तेओनी पूर्वे व्याख्या करी. तेओ बन्ने आहारद्रव्योथी ज थाय छे, अन्य द्रव्योथी थता नथी. तेथी (ते चय अने उपचय सूत्रमां) 'आहारद्रव्यव-

भेद.

वर्गणा.

---

१. आ वातने टेको आपनारो पाठ आ छेः—कषायवाळा के कषायविनाना योगरूपकरणद्वारा उदयावलिकाथी बहार रहेनारी स्थितिओमांथी कर्मदलिकने खेंचीने, उदयसमय प्राप्त दलिक साथे अनुभववुं ते उदीरणा. ए ज प्रमाणे कर्मप्रकृति (कम्मपयडी) नी चूर्णिमां पण कह्युं छे.—चतुर्थ कर्मग्रंथनी सातमी गाथानी टीकामां (भा० पृ-१०२):—अनु०

१. प्र० छायाः—मुक्त्वाऽऽयुष्कं खलु दर्शनमोहं चारित्रमोहं च, शेषाणां प्रकृतीनामुत्तरविधिसंक्रमो भणितः—अनु०

१. 'चेव' शब्द समुच्चयार्थक छेः—श्रीअभयदेव.

१ अ० पु०

गणाने आश्रीने' ए प्रमाणे कह्युं. उदीरणादि तो कर्मद्रव्योना ज थाय छे, तेथी ते ते सूत्रोमां 'कर्मद्रव्यवर्गणाने आश्रीने' ए प्रमाणे कह्युं. ['उव-ट्टिंसु' त्ति] अपवर्तित थया, अहीं अपवर्तन एटले कर्मोनी स्थित्यादिकने अध्यवसाय विशेषवडे हीन करवी. अपवर्तनना उपलक्षणथी (कर्मोनी) स्थिति वगेरेनुं वृद्धिकरवारूप उद्वर्तन पण समजवुं. ['संकामेंसु' त्ति] संक्रमित थया, तेने विषे संक्रमण एटले मूलप्रकृतिओथी अभिन्न उत्तर प्रकृतिओनो अध्यवसाय विशेषवडे परस्पर संचार-सेळभेळ करवो. कह्युं छे केः—"गुणथी मूलप्रकृतिओथी अभिन्न उत्तर प्रकृतिओने अध्यवसायना प्रयोगवडे संक्रमावे, किंतु आत्मा अमूर्त होवाथी संक्रमे नहीं." अन्य तो कहे छे केः "आयुष्य, दर्शनमोहनीय अने चारित्रमोहनीयने छोडीने, शेष प्रकृतिओनो उत्तर प्रकृतिओनी साथे जे संचार ते संक्रमण." ए ज वात उदाहरणद्वारा बतावे छेः—जेवी रीते कोइ शातावेदनीयने अनुभवतो होय तेने एवा प्रकारनी अशुभ कर्मनी परिणति थइ के, जेथी ते ज शातावेदनीय अशातावेदनीयपणे संक्रमे, आ प्रमाणे अन्य स्थले पण योजवुं. ['निघत्तिंसु' त्ति] (हे भगवन्! नैरयिकोने केटला प्रकारना पुद्गलो) निधत्त थया? अहीं 'निधत्त' ए रूढ शब्द होवाथी परस्पर भिन्न भिन्न पुद्गलोने एकठा करीने धारण करवुं ते (निधत्त कहेवाय) अर्थात् उदवर्तना तथा अपवर्तना करणथी भिन्न करणना अविषयपणे कर्मोनुं रहेवुं. ['निकाइंसु' त्ति] निकाचित थया अत्यन्त बधाया, निकाचन एटले परस्पर जूदा पुद्गलोने एकमेक करवा अर्थात् अन्योन्य (कर्म) पुद्गलोनुं एकबीजामां रहेवुं. जेम; अग्निवडे तपावी टीपेलो सोयोनो समूह एक बीजामां मळीने रहे छे तेम सकल करणना अविषयपणे कर्मोनुं स्थापवुं ए प्रमाणे तात्पर्य छे. ['भिज्जंति' इत्यादि] आ पदनो संग्रह करवावाळी गाथानो अर्थ उपर बतावी गया छीए, विशेष ए छे केः-अपवर्तन, संक्रमण, निधत्त अने निकाचन ए चारे पदमां त्रणे प्रकारनो काळ बताववो अर्थात् भूत, वर्तमान अने भविष्यत्काळनो निर्देश करी ए पदो कहेवां. न्यायनी समानता होवाथी अर्थात् एक स्थले कह्युं तो बीजे स्थले पण कहेवुं जोइए एम युक्त होवाथी, अहीं अपवर्तनादिनी जेम भेदादि पदमां पण त्रिकाळता कहेवी युक्त छे, पण मात्र विवक्षित नहीं होवाथी सूत्रने विषे भेदादि पदमां त्रिकाळनो निर्देश कर्यो नथी.

अपवर्तन. उद्वर्तन. संक्रमण. अन्य. निधत्त. निकाचन. अविवक्षा.

२०. अथ पुद्गलविकारादिदं सूत्रचतुष्टयमाहः—*'नेरइयाणं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—*'तेयाकम्मत्ताए'*त्ति तेजःशरीर—कार्मणशरीर-तया तद्रूपतयेत्यर्थः. *'अतीतकालसमये'* त्ति कालरूपः समयः, न तु समाचाररूपः. कालोऽपि समयरूपः, न तु वर्णादिस्वरूपः. इति परस्परेण विशेषणात् कालसमयः—अतीतः कालसमयः, अतीतकालस्य वा उत्सर्पिण्यादेः समयः परमनिकृष्टोंऽशोऽतीतकालसमयस्तत्र. *'पडुप्पण्ण'*त्ति प्रत्युत्पन्नो वर्तमानः. 'नोऽतीतकाले' इत्यादावतीता—ऽनागतकालविषयग्रहणप्रतिषेधो विषयातीतत्वात्, विषयातीतत्वं च तयोर्विनष्टा-ऽनुत्पन्नत्वेनाऽसत्त्वादिति. प्रत्युत्पन्नेऽप्यभिमुखान् गृह्णाति, नान्यान्. *'गहणसमयपुरक्खडे'*त्ति ग्रहणसमयः पुरस्कृतो वर्तमान-समयस्य पुरोवर्ती येषां ते ग्रहणसमयपुरस्कृता . प्राकृतत्वादेवं निर्देशः, अन्यथा पुरस्कृतग्रहणसमया इति स्यात्, ग्रहीष्यमाणा इत्यर्थः. उदीरणा च पूर्वकालगृहीतानामेव भवति, ग्रहणपूर्वकत्वादुदीरणायाः, अत उक्तम्—अतीतकालसमयगृहीतानुदीरयन्तीति. गृह्यमाणानां ग्रहीष्यमाणानां चागृहीतत्वादुदीरणाऽभावस्तत उक्तम्—*'नो पडुप्पण्ण'* इत्यादि. वेदना-निर्जरासूत्रयोरप्येषा एवोपपत्तिरिति. अथ कर्माधि-कारादेवेयमष्टसूत्रीः—*'नेरइयाणं'* इत्यादिर्व्यक्ता च. नवरम् -*'जीवाओ किं चलियं'* ति जीवप्रदेशेभ्यश्चलितं तेष्वनवस्थानशीलम्, तदि-तरत् तु अचलितम्, तदेव बध्नाति; यदाहः—"कृत्स्नैर्देशैः स्वकदेशस्थं रागादिपरिणतो योग्यम्, बध्नाति योगहेतोः कर्म स्नेहाऽक्त इव च मलम्" इति. एवमुदीरणा-वेदना-ऽपवर्तना-संक्रमण-निधत्त-निकाचनानि भाव्यानि. निर्जरा तु पुद्गलानां निरनुभावीकृतानामात्म-प्रदेशेभ्यः सातनम्, सा च नियमाच्चलितस्य कर्मणः, नाऽचलितस्येति. इह संग्रहणगाथाः—*'बन्धो—दय—'* इत्यादिर्भावितार्थां, केवलमुदय-शब्देनोदीरणा गृहीता इति. उक्ता नारकवक्तव्यता.

तैजस—कार्मण.

२०. हवे पुद्गलोनो अधिकार होवाथी आ चार सूत्रो कहे छेः ['नेरइयाणं' इत्यादि] स्पष्ट छे, विशेषता ए छे केः—['तेयाकम्मत्ताए' त्ति] तैजस, कार्मण-पणे एटले तैजसशरीरपणे अने कार्मणशरीरपणे तैजस, कार्मण शरीरस्वरूपे. ['अतीतकालसमये' त्ति] 'अतीतकालसमय' आ ठेकाणे (कालशब्द अने समयशब्दनी परस्पर विशेषणता बतावी बन्ने शब्दोनी सार्थकता सिद्ध करे छे.) समय काळरूप लेवो, पण समाचाररूप लेवो नहीं. तेम ज काळ सम-यरूप लेवो, परंतु वर्णादि (कृष्णादि) स्वरूप नहीं. आ प्रमाणे बन्ने परस्पर विशेषण थइ काळ समय शब्द बन्यो. अतीत एवो जे काळ-समय ते अतीत काळ—समय. अथवा अतीतकाळ एटले उत्सर्पिणी आदि काळ. तेनो समय एटले अत्यन्त निकृष्ट अंश. ते अतीतकाळ-समय कहेवाय. तेने विषे. ['पडुपण्ण' त्ति] प्रत्युत्पन्नकाळ वर्तमानकाळ लेवो. भूतकाळ अने भविष्यत्काळ विषयातीत विषयरहित-होवाथी, 'अतीतकाळमां नहीं' इत्यादि पदमां अतीत अने अनागतकाळ विषयक (पुद्गल) ग्रहणनो प्रतिषेध कर्यो छे. कारण के भूतकाळ विनष्ट थयेलो होवाथी अने भविष्यत्काळ उत्पन्न थयेलो नहीं होवाथी, तेओ (भूतकाळ अने भविष्यत्काळ) बन्ने असत् छे, अने तेथी ज विषयातीत छे. वळी वर्तमानकाळमां पण अभिमुख पुद्गलोने ग्रहे छे पण बीजाने नहीं. ['गहणसमयपुरक्खडे' त्ति] जेओनो ग्रहण समय वर्तमानसमयनी पुरोवर्ती छे अर्थात् जेओने ग्रहीष्यमाण—ग्रहण करवाना छे. ग्रहण करवापूर्वक उदीरणा होवाथी पूर्वकाळे ग्रहण करायेला पुद्गलोनी ज उदीरणा थाय छे, तेथी कह्युं केः—(नारकीओ)

---

१. अर्थात् 'निधत्त' कर्मोने मात्र उद्वर्तना अने अपवर्तनाकरण परिवर्तित करी शके, पण बीजा करणो ते माटे कांइ न करी शके, माटे उद्वर्तना अने अपवर्तनाकरणथी भिन्न करणोनो ते निधत्तकर्म अविषय छे. २. अर्थात् जेम सोयोने तपावीने टीपवाथी ए एवी रीतिए एक बीजामां मळी जाय छे के, ते पछी कोइ प्रकारे जूदी थइ शकती ज नथी. तेम ज एकत्रित थयेलां कर्मो आत्माना तीव्र अध्यवसायवडे एवा सज्जड थइ जाय छे के, पछी कोइ पण करणद्वारा तेमां जरा पण फेरफार थइ शकतो नथी, एवां सज्जड कर्मो निकाचित कहेवाय छेः—अनु॰

३. 'समय' शब्दने 'काल' ए विशेषण एटला माटे ज आप्युं छे के, 'समाचार' अर्थवाळो अहीं 'समय' शब्द न लेवो. अने 'काल' शब्दने 'समय' ए विशेषण एटला माटे ज आप्युं छे के, 'काळुं' अर्थवाळो अहीं 'काल' शब्द न लेवो अर्थात् अतीतकाल-समयनो अर्थ अतीत—वीतेलो—वखत. ४. प्राकृत शैलीथी आ प्रमाणे निर्देश कर्यो छे. अन्यथा 'पुरस्कृतग्रहणसमयाः' ए प्रमाणे थवुं जोइएः—श्रीअभयदेव.

अतीतकाळसमयमां ग्रहण करेला (पुद्गलोने) उदीरे छे. वळी गृह्यमाण–ग्रहण कराता–अने ग्रहीष्यमाण–ग्रहण करावाना–पुद्गलो अगृहीत–हजु ग्रहण करायां न–होवाथी, तेओनी उदीरणा थइ शकती नथी, तेथी कह्युं छे केः–['नो पडुप्पण्ण' इत्यादि] (वर्तमानकाळमां गृह्यमाण पुद्गलो उदीराता नथी वगेरे.) वेदना सूत्रनी अने निर्जरा सूत्रनी पण आवी ज रीते उपपत्ति करवी. हवे कर्मना अधिकारथी ज आ आठ सूत्रोने कहे छेः-['नेरइयाणं' इत्यादि] स्पष्ट छे. विशेष, ['जीवाओ किं चलियं' ति] जीवथी चालेलुं–जीवप्रदेशथी चालेलुं एटले के जीवप्रदेशमां नहीं रहेवाना स्वभाववाळुं कर्म चलित कर्म कहेवाय छे. ए चलित कर्मथी अन्य कर्म अचलित कहेवाय, ए अचलित कर्मने ज (नैरयिको) बांधे छे. कह्युं छे केः–"जेम चीकणा द्रव्यवडे मर्दित थयेलो प्राणी मळने संग्रहे छे -मळवाळो थाय छे, तेम रागादिमां परिणत थयेलो आत्मा समग्र प्रदेशो वडे (मन, वचन अने कायरूप) योगना हेतुथी स्वकीय देशमां ज्यां आत्मा रहे छे त्यां–रहेलुं योग्य कर्म बांधे छे." आ प्रमाणे; उदीरणा, वेदन, अपवर्तना, संक्रमण, निधत्त अने निकाचननी भावना करवी. निरनुभावीकृत–रसरहित करेलां पुद्गलोने आत्मप्रदेशथी नष्ट करवां तेने निर्जरा कहे छे. अने ते निर्जरा नियमथी चलित कर्मनी थाय छे, अचलित कर्मनी थती नथी. अहीं ['बंधो–दय–' इत्यादि] संग्रहणी गाथाना अर्थनी पूर्वमां ज भावना करी गया छीए, केवळ विशेष ए छे केः–अहीं उदय शब्दवडे उदीरणा ग्रहण करी छे. आ प्रमाणे नैरयिक संबंधी वक्तव्यता कही.

चलितकर्म. अचलितकर्म. नैरयिकसमाप्ति.

असुरकुमारादि.

१६. प्र०—असुरकुमाराणं भंते ! केवइयंकालं ठिई पण्णत्ता ?

१६. प्र०—हे भगवन्! असुरकुमारोनी केटला काळ सुधी स्थिति कही छे?

१६. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं.

१६. उ०—हे गौतम! तेओनी स्थिति जघन्ये दश हजार वर्षनी अने उत्कृष्टे सागरोपम करतां वधारे काळनी कही छे.

१७. प्र०—असुरकुमारा णं भंते ! केवइयकालस्स आणमंति वा, पाणमंति वा ?.

१७. प्र०—हे भगवन्! असुरकुमारो केटले काळे श्वास ले अने निःश्वास मूके?

१७. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा, पाणमंति वा.

१७. उ०—हे गौतम! तेओ जघन्ये सात स्तोकरूप काळवडे अने उत्कृष्टे एक पक्ष (पखवाडीया) करतां वधारे काळ (गया) पछी श्वास ले अने निःश्वास मूके.

१८. प्र०—असुरकुमारा णं भंते ! आहारट्ठी ?.

१८. प्र०—हे भगवन्! असुरकुमारो आहारना अभिलाषी छे?

१८. उ०—हंता, आहारट्ठी.

१८. उ०—हे गौतम! हा, तेओ आहारना इच्छुक छे.

१९. प्र०—असुरकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?.

१९. प्र०—हे भगवन्! असुरकुमारोने केटले काळे आहारनो अभिलाष उत्पन्न थाय छे?

१९. उ०—गोयमा ! असुरकुमाराणं दुविहे आहारे पन्नते, तं जहाः—आभोगनिव्वत्तिए, अणाभोगनिव्वत्तिए. तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, गोयमा ! तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं साइरेगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ.

१९. उ०—हे गौतम! असुरकुमारोनो आहार बे प्रकारनो कह्यो छे, ते आ प्रमाणः- आभोगनिर्वर्तित अने अनाभोगनिर्वर्तित. तेमां जे अनाभोगनिर्वर्तित–अज्ञानपूर्वक–आहार छे तेनो अभिलाष तो तेओने अविरहितपणे निरंतर थया करे छे. अने हे गौतम! तेमां जे आभोगनिर्वर्तित–ज्ञानपूर्वक–आहार छे तेनो अभिलाष तेओने ओछामां ओछो चतुर्थभक्त-एक दिवस–पछी अने वधारेमां वधारे हजार वर्ष करतां वधारे काळ (गया) पछी थाय छे.

२०. प्र०—असुरकुमारा णं भंते ! किं आहारं आहारेंति ?.

२०. प्र०—हे भगवन्! असुरकुमारो क्या पदार्थनो आहार करे?

२०. उ०—गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसिआइं दव्वाइं, खित्त-काल-भाव पन्नवणागमेणं. सेसं जहा नेरइयाणं जाव—

२०. उ०—हे गौतम! तेओ द्रव्यथी अनंतप्रदेशवाळां द्रव्योनो आहार करे, इत्यादि बधुं क्षेत्र, काल अने भावसंबंधे प्रज्ञापनाना गमवडे पूर्ववत् जाणी लेवुं. बाकी बधुं नैरयिकोनी पेठे जाणवुं. यावत्—

मूलच्छायाः—१. असुरकुमाराणां भगवन् ! कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टेन सातिरेकं सागरोपमम्. असुरकुमारा भगवन् ! कियत्कालेन आनमन्ति वा प्राणमन्ति वा ? गौतम ! जघन्येन सप्तभिः स्तोकैः, उत्कृष्टेन सातिरेकेण पक्षेण आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा. असुरकुमारा भगवन् ! आहारार्थिनः ? हन्त आहारार्थिनः. असुरकुमाराणां भगवन् ! कियत्कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते ? गौतम ! असुरकुमाराणां द्विविधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—आभोगनिर्वर्तितः, अनाभोगनिर्वर्तितः. तत्र योऽसावनाभोगनिर्वर्तितः सोऽनुसमयमविरहित आहारार्थः समुत्पद्यते. गौतम ! तत्र योऽसावाभोगनिर्वर्तितः स जघन्येन चतुर्थभक्तेन, उत्कृष्टेन सातिरेकेण वर्षसहस्रेण आहारार्थः समुत्पद्यते. असुरकुमारा भगवन् ! कमाहारमाहरन्ति ? गौतम ! द्रव्यतोऽनन्तप्रदेशकानि, क्षेत्र–काल–भावे प्रज्ञापनागमेन. शेषं यथा नैरयिकाणां यावत्ः—अनु०

२. ७ श्वासोच्छ्वासा एकः स्तोकः–अनु०

२१. प्र०—ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

२१. उ०—गोयमा ! सोइंदियत्ताए, सुरूवत्ताए, सुवण्णत्ताए, इट्ठत्ताए, इच्छियत्ताए, भिज्जियत्ताए, उड्ढत्ताए, णो अहत्ताए, सुहत्ताए, णो दुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति.

२२. प्र०—असुरकुमाराणं पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ?.

२२. उ०—असुरकुमाराभिलावेण जहा णेरइयाणं, जाव–चलियं कम्मं निज्जरांति.

२३. प्र०—नागकुमाराणं भंते ! केवइयंकालं ठिती पन्नत्ता ?

२३. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं.

२४. प्र०—नागकुमारा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा ? ४.

२४. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा. ४.

२५. प्र०—नागकुमारा णं आहारट्ठी ?.

२५. उ०—हंता, आहारट्ठी.

२६. प्र०—नागकुमाराणं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?.

२६. उ०—गोयमा ! नागकुमाराणं दुविहे आहारे पन्नत्ते, तं जहाः—आभोगनिव्वत्तिए, अणाभोगनिव्वत्तिए य, तत्थ णं जे से अणाभोगनिव्वत्तिए से अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से जहण्णेणं चउत्थभत्तस्स, उक्कोसेणं दिवसपुहुत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ; सेसं जहा असुरकुमाराणं, जाव–नो अचलियं कम्मं निज्जरांति. एवं सुवन्नकुमाराणं वि, जाव–थणियकुमाराणं ति.

२१. प्र०—हे भगवन् ! ते असुरकुमारोए खाधेला पुद्गलो केवे रूपे वारंवार परिणाम पामे ?

२१. उ०—हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियपणे, सुरूपपणे, सुवर्णपणे, इष्टपणे, इच्छितपणे, मनोहरपणे, ऊर्ध्वपणे, अध.पणे नहीं, सुखपणे पण दुःखपणे नहीं; एवे रूपे ते पुद्गलो वारंवार परिणाम पामे.

२२. प्र०—हे भगवन् ! असुरकुमारोए पूर्वे आहरेला पुद्गलो परिणामने पाम्या ?

२२. उ०—हे गौतम ! असुरकुमारना अभिलाप (उच्चार) पूर्वक ए बधुं नैरयिकोनी पेठे कहेवु, यावत्–चालेला कर्मने निर्जरे छे.

२३. प्र०—हे भगवन् ! नागकुमारोनी स्थिति केटला काळ सुधी कही छे ?

२३. उ०—हे गौतम ! तेओनी स्थिति ओछामां ओछी दश हजार वर्षनी अने वधारेमां वधारे कांइक ऊणा बे पल्योपमनी कही छे.

२४. प्र०—हे भगवन् ! नागकुमारो केटले काळे श्वास ले अने निःश्वास मूके ?

२४. उ०—हे गौतम ! तेओ जघन्ये सात स्तोके अने उत्कृष्टे मुहूर्तपृथक्त्वे—बे मुहूर्तथी नव मुहूर्तनी अंदरना कोइ पण काळे–श्वास ले अने निःश्वास मूके.

२५. प्र०—हे भगवन् ! नागकुमारो आहारना अर्थी छे ?

२५. उ०—हे गौतम ! हा, तेओ आहारना अर्थी छे.

२६ प्र०—हे भगवन् ! नागकुमारोने केटलो काळ गया पछी आहारनो अभिलाप उत्पन्न थाय छे ?

२६. उ०—हे गौतम ! तेओने बे प्रकारनो आहार कह्यो छे, ते आ प्रमाणेः—आभोगनिर्वर्तित अने अनाभोगनिर्वर्तित. तेमां जे अनाभोगनिर्वर्तित आहार छे तेनो अभिलाप निरंतर थाय छे. तथा जे आभोगनिर्वर्तित आहार छे तेनो अभिलाप जघन्ये एक दिवस पछी अने उत्कृष्टे दिवसपृथक्त्व पछी थाय छे. बाकी बधुं असुरकुमारोनी पेठे जाणवुं, यावत्–अचलित कर्मने निर्जरता नथी, अने ए प्रमाणे सुवर्णकुमारोने पण कहेवुं, तथा यावत्–स्तनितकुमारोने माटे पण जाणवुं.

२१. अथ चतुर्विंशतिदण्डकक्रमागतामसुरकुमारवक्तव्यतामाहः–*'असुरकुमाराणं'* इत्यादि. तत्राऽसुरकुमारवक्तव्यता नारकवक्तव्यतावद् नेया, यत' *'ठिई ऊसासाऽऽहारे'* इत्यादिगाथोक्तानि सूत्राणि. ४०. *'परिणय, चिया'* इत्यादिगाथागृहीतानि. ६. *'भेदिय, चिया'* इत्यादिगाथागृहीतानि. १८. 'बंधो–दय–' इत्यादिगाथागृहीतानि. ८. तदेवं द्विसप्ततिः सूत्राणि नारकप्रकरणोक्तानि त्रयोविंशतावसुरादिप्रकरणेषु

मूलछायाः—१. ते तेषां पुद्गलाः कीदृशतया भूयो भूयः परिणमन्ति ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियतया, सुरूपतया, सुवर्णतया, इष्टतया, ईप्सिततया, हृद्यतया, ऊर्ध्वतया, नो अधस्तया, सुखतया, नो दुःखतया भूयो भूयः परिणमन्ति. असुरकुमाराणां भगवन् ! पूर्वाहृताः पुद्गलाः परिणताः ? गौतम ! असुरकुमाराभिलापेन यथा नैरयिकाणाम्, यावत्–चलितं कर्म निर्जरयन्ति. नागकुमाराणां भगवन् ! कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टेन देशोने द्वे पल्योपमे. नागकुमारा भगवन् ! कियत्कालेन आनमन्ति वा ?. ४. गौतम ! जघन्येन सप्तभिः स्तोकैः, उत्कृष्टेन मुहूर्तपृथक्त्वेन आनमन्ति वा. ४. नागकुमारा आहारार्थिनः ? हन्त, आहारार्थिनः. नागकुमाराणां भगवन् ! कियत्कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते ? गौतम ! नागकुमाराणां द्विविधः आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—आभोगनिर्वर्तितः, अनाभोगनिर्वर्तितश्च, तत्र योऽसावनाभोगनिर्वर्तितः सोऽनुसमयमविरहित आहारार्थः समुत्पद्यते, तत्र योऽसावाभोगनिर्वर्तितः स जघन्येन चतुर्थभक्तेन उत्कृष्टेन दिवसपृथक्त्वेन आहारार्थः समुत्पद्यते; शेषं यथा असुरकुमाराणाम्, यावत्–नो अचलितं कर्म निर्जरयन्ति. एवं सुवर्णकुमाराणामपि, यावत्–स्तनितकुमाराणामितिः–अनु०

समाप्ति. नवरम्—विशेषोऽयम्:—'उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं' इति यदुक्तम्, तद् बलिमिन्द्रममुरकुमारराजमाश्रित्योक्तम्. यदाह:—"चमर-बलिसारमहियं"ति 'सत्तण्हं थोवाणं'ति सप्तानां स्तोकानाम्—'उपरि' इति गम्यते, स्तोकलक्षणं चैवमाचक्षते:—"हट्ठस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्ठस्स जंतुणो, एगे ऊसासनीसासे एस पाणु त्ति वुच्चइ. सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे, लवाणं सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए"त्ति. इदं जघन्यमुच्छ्वासादिमानं जघन्यस्थितिकानामाश्रित्यावगन्तव्यम्, उत्कृष्टमुत्कृष्टस्थितिकानाऽऽश्रित्येति. 'चउत्थभत्तस्स'त्ति चतुर्थभक्तमित्येकोपवासस्य संज्ञा, ततस्तस्योपरि एकत्र दिने भुक्त्वाऽहोरात्रं चाऽतिक्रम्य तृतीये भुङ्क्त इति भाव:. नागकुमारवक्तव्यतायाम्—'उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं'ति यदुक्तं तद् उत्तरश्रेणिमाश्रित्याऽवसेयम्. यदाह:—"दाहिणादिवड्ढपलियं, दो देसूणुत्तरिल्लाणं" इति 'मुहुत्तपुहुत्तस्स'त्ति मुहूर्त्त उक्तलक्षण एव. पृथक्त्वं तु द्विप्रभृतिरानवभ्य: संख्याविशेष समये प्रसिद्ध:. एवम्, 'सुवण्णकुमाराण वि'त्ति नागकुमाराणामिव सुवर्णकुमाराणामपि स्थित्यादि वाच्यम्, इदं च कियद् दूरं यावद् वाच्यमित्याह:—'जाव थणियकुमाराणं'ति 'यावत्' करणाद् विद्युत्कुमारादिपरिग्रह:, एषां चेहाऽयं क्रमोऽवसेय:—"असुरा, नाग-सुवण्णा, विज्जु अग्गी य, दीव उदही य, दिसि, वाऊ, थणिया वि य दसभेया भवणवासीणं."

२१. हवे चोवीस दंडकमां नैरयिक पछी अनुक्रमे आवता असुरकुमारोनी वक्तव्यता कहे छे:-['असुरकुमाराणं' इत्यादि] तेने विषे असुरकुमारोनी वक्तव्यता नैरयिकोनी पेठे समजवी. कारण के नैरयिकना प्रकरणमां कहेलां ७२. सूत्रो, असुरादि त्रेवीस प्रकरणोमां तुल्य छे अर्थात् ७२. सूत्रोक्त नैरयिक संबंधेनुं वक्तव्य असुरादि त्रेवीस प्रकरणोमां समान छे. विशेष आ छे के.- (असुरकुमारोनुं) ['उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं' इति] उत्कृष्ट (आयुष्य) सागरोपम करतां कांइक वधारे छे, ए प्रमाणे जे कह्युं छे ते बलि नामना असुरराजने आश्रीने जाणवुं. कह्युं छे के: "चमरेंद्रनुं आयुष्य सागरोपम छे अने बलीन्द्रनुं आयुष्य सागरोपम करतां थोडुं वधारे छे." ['सत्तण्हं थोवाणं' ति] सात स्तोक उपर अर्थात् सात स्तोक थया पछी. 'उपर' ए गम्यमान छे. स्तोकनुं लक्षण आ प्रमाणे कह्युं छे:-"हृष्ट, घडपणथी अभिभूत नहीं थयेला अने कोइ पण प्रकारना उपक्लेश रहित, प्राणीना एक उच्छ्वास तथा नि:श्वासने प्राण कहे छे. सात प्राणनो एक स्तोक थाय छे. सात स्तोकनो एक लव थाय छे अने सत्योतेर लवनो एक मुहूर्त व्याख्यात छे." अहीं जघन्य स्थितिवाळाने आश्री जघन्य उच्छ्वासादिनुं मान अने उत्कृष्ट स्थितिवाळाने आश्रीने उत्कृष्ट उच्छ्वासादिनुं मान समजवुं अर्थात् जघन्य स्थितिवाळा असुरकुमारो जघन्य काळे श्वासोच्छ्वासादि ले छे. अने उत्कृष्ट स्थितिवाळा असुरकुमारो उत्कृष्ट काळे श्वासोच्छ्वासादि ले छे. ['चउत्थभत्तस्स' त्ति] 'चतुर्थभक्त' ए एक उपवासनी संज्ञा छे. ते चतुर्थभक्त उपर अर्थात् एक दिवस आहार करीने रात्री दिवस अतिक्रमी त्रीजे दीवसे आहार करे छे. नागकुमारनी वक्तव्यतामां ['उक्कोसेणं देसूणाइ दो पलिओवमाइ' ति] देशऊणा बे पल्योपम स्थिति जे कही ते उत्तर श्रेणीने आश्रीने समजवी. कह्युं छे के:-"दक्षिण दिशा तरफ रहेला नागकुमारोनुं दोढ पल्योपम अने उत्तर तरफ रहेलानुं देशऊणुं बे पल्योपम आयुष्य छे." ['मुहुत्तपुहुत्तस्स' त्ति] मुहूर्तनुं लक्षण कह्युं छे ते मुहूर्त अहीं लेवो. पृथक्त्व=बेथी मांडी नव पर्यंत संख्याविशेष, ए समय सिद्धान्त-मां प्रसिद्ध छे. ['एवं सुवण्णकुमाराणं वि' त्ति] नागकुमारोनी जेम सुवर्णकुमारोनुं स्थिति वगेरे कहेवुं. ए प्रमाण (असुरकुमारनी तुल्य स्थित्यादिक) क्यां सुधी कहेवुं? तेने माटे कहे छे: ['जाव थणियकुमाराणं' ति] यावत् स्तनितकुमारो सुधी स्थिति वगेरेनी समानता कहेवी. 'यावत्' नो प्रयोग करवाथी विद्युत्कुमारादिनो परिग्रह समजवो. तेओनो क्रम आ प्रमाणे जाणवो:- "असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वायुकुमार अने स्तनितकुमार; आ प्रमाणे भवनवासी देवोना दस भेद छे."

असुरकुमार.

स्तोक.

चतुर्थभक्त.

नागकुमार.

सुवर्णकुमारादि.

पृथिवीकायिकादि.

२७. प्र०—पुढवीकाइयाणं भंते! केवइयंकालं ठिई पण्णत्ता?.

२७. उ०—गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं.

२८. प्र०—पुढवीकाइया णं भंते! केवइकलस्स आणमंति वा, पाणमंति वा?.

२८. उ०—गोयमा! वेमायाए आणमंति वा.

२७. प्र०—हे भगवन्! पृथिवीकायिक जीवोनी स्थिति केटला काळ सुधी कही छे?

२७. उ०—हे गौतम! तेओनी स्थिति जघन्ये अंतर्मुहूर्तनी अने उत्कृष्टे बावीश हजार वर्षनी कही छे.

२८. प्र०—हे भगवन्! पृथिवीकायिको केटले काळे श्वास ले छे?

२८. उ०—हे गौतम! तेओ विमात्राए—विविध काळे—श्वास ले छे.

---

१. प्र० छाया:—चमर—बलि—सागरमधिकम्. २. हृष्टस्य अनवक्लिष्टस्य निरुपक्लिष्टस्य जन्तो:, एक उच्छ्वासनि:श्वास: एष प्राण इति उच्यते. सप्त प्राणा: स स्तोक:. सप्त स्तोका: स लव:. लवानां सप्तसप्तत्या एष मुहूर्तो व्याख्यात:. ३. दाक्षिणात्यानां द्यर्ध(१॥)पल्यम्, द्वे देशोने उत्तरभवानाम्.४. असुरा:, नाग—सुवर्णा:, विद्युद्—अग्नयश्च, द्वीप—उदधयश्च, दिग्—वायु:, स्तनिता अपि च दशभेदा भवनवासिनाम्—अनु०

१. ते बहोंतर सूत्र आ प्रमाणे छे:—'ठिई ऊसासाऽऽहारे' ए गाथामां कहेला ४० सूत्र. 'परिणय, चिया' ए गाथामां कहेला ६ सूत्रो. 'भेदिय, चिया' ए गाथामां जणावेला १८ सूत्र अने 'बंधो—दय'—ए गाथामां दर्शावेला ८ सूत्रो. (जूओ—उत्तर—५.७.१०.१५.) ए प्रमाणे बधा मळीने नैरयिकप्रकरणमां ७२ सूत्र छे:—श्रीअभयदेव.

१. मूलच्छाया:—पृथिवीकायिकानां भगवन्! कियन्तं कालं स्थिति: प्रज्ञप्ता? गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि. पृथिवीकायिका: भगवन्! कियत्कालेन आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा? गौतम! विमात्रया आनमन्ति वा—अनु०

२९. प्र०—पुढवीकाइया आहारट्ठी ?.

२९. उ०—हंता, आहारट्ठी.

३०. प्र०—पुढवीकाइयाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?.

३०. उ०—गोयमा ! अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ.

३१. प्र०—पुढवीकाइया किं आहारं आहारेंति ?.

३१. गोयमा ! दव्वओ जहा नेरइयाणं, जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउद्दिसिं, सिय पंचदिसिं; वन्नओ काल-नील-पीत-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाणं. गंधओ सुब्भिगंधाइं. २. रसओ तित्ताइं. ५. फासओ कक्खडाइं. ८. सेसं तहेव. णाणत्तं:—

३२. प्र०—कइभागं आहारेंति, कइभागं फासादिंति ?.

३२. उ०—गोयमा ! असंखिज्जभागं आहारेंति, अणंतभागं फासाइंति. जाव–

३३. प्र०—तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?.

३३. उ०—गोयमा ! फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति. सेसं जहा नेरइयाणं, जाव–नो अचलियं कम्मं निज्जरेंति. एवं जाव–वणस्सइकाइयाणं. णवरं ठिई वण्णेयव्वा जा जस्स. उस्सासो वेमायाए.

२९. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिको आहारार्थी छे ?

२९. उ०—हे गौतम ! हा, तेओ आहारार्थी छे.

३०. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिकोने केटले काळे आहारनो अभिलाप थाय छे ?

३०. उ०—हे गौतम ! तेओने निरंतर आहारनो अभिलाष थाय छे.

३१. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिको शेनो आहार करे छे ?

३१. उ०—हे गौतम ! तेओ द्रव्यथी अनंत प्रदेशवाळां द्रव्योनो आहार करे छे, इत्यादि बधुं नैरयिकोनी पेठे कहेवुं अने यावत्–तेओ व्याघात न होय तो छ ए दिशामांथी आहार ले छे, जो व्याघात होय तो कदाचित् त्रण दिशामांथी, चार दिशामांथी अने पाच दिशामांथी आहार ले छे. वर्णथी काळां, नीलां, पीळां, लाल, हळदर जेवां अने शुक्ल द्रव्योनो आहार करे छे. गंधथी सारा अने नरसा गधवाळानो. रसथी तिक्तादि (पांच) बधा रसवाळानो अने स्पर्शथी कर्कशादि (आठ) बधा स्पर्शवाळानो आहार करे छे. बाकी बधुं पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं. भेद आ छे के:—

३२. प्र०—हे भगवन् ! तेओ केटला भागनो आहार करे अने केटला भागनो स्पर्श करे–आस्वाद ले–चाखे ?

३२. उ०—हे गौतम ! तेओ असंख्येय भागनो आहार करे अने अनंतभागने चाखे. यावत्–

३३. प्र०—हे भगवन् ! तेओए खाधेला पुद्गलो केवे रूपे वारंवार परिणाम पामे ?

३३. उ०—हे गौतम ! स्पर्शेंद्रिय विमात्रपणे–विविध प्रकारे स्पर्शेंद्रियपणे–परिणाम पामे. बाकी बधु नैरयिकोनी पेठे जाणवुं. यावत्–अचलित कर्मने निर्जरता नथी. ए प्रमाणे यावत्–जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक–तथा वनस्पतिकायिक सुधी जाणवुं. विशेष ए के, जेनी जे स्थिति होय ते कहेवी. अने विविधपणे उच्छ्वास जाणवो.

२२. अथ भुवनपतिवक्तव्यताऽनन्तरं दण्डकक्रमादेव पृथिव्यादीनां स्थित्यादि निरूपयन्नाह:–'पुढवी' इत्यादि व्यक्तमावनस्पतिसूत्रात्. नवरम्–'अंतोमुहुत्त'त्ति मुहूर्तस्यान्तरम्–अन्तर्मुहूर्तम्–भिन्नमुहूर्तं इत्यर्थः. 'उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं'ति यदुक्तं तत् खरपृथिवीमाश्रित्याऽवगन्तव्यम्, यदाह:–"सण्हा य सुद्ध वालुय मणोसिला सक्करा य खरपुढवी, एग, बारस, चोद्दस, सोलस, अट्ठारस, बावीस"त्ति 'वेमायाए'त्ति विषमा, विविधा वा मात्रा कालविभागो विमात्रा, तया. इदमुक्तं भवति–विषमकाला पृथिवीकायिकानामुच्छ्वासादिक्रिया, इयत्कालादिति न निरूपयितुं शक्यते. 'जहा नेरइयाणं' इति अतिदेशात् 'खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं,

---

मूलछाया:—१. पृथिवीकायिका आहारार्थिनः ? हन्त, आहारार्थिनः. पृथिवीकायिकानां कियत्कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते ? गौतम ! अनुसमयम् अविरहित आहारार्थः समुत्पद्यते पृथिवीकायिकाः कमाहारमाहरन्ति ? गौतम ! द्रव्यतो यथा नैरयिकाणां यावद्–निर्व्याघातेन षड्दिशम्, व्याघातं प्रतीत्य स्यात् त्रिदिशम्, स्यात् चतुर्दिशम्, स्यात् पञ्चदिशम्. वर्णतः काल–नील–पीत–लोहित–हारिद्र–शुक्लानाम्. गन्धतः सुरभिगन्धानि २. रसतः तिक्तानि ५. स्पर्शतः कर्कशानि ८. शेषं तथैव. नानात्वम्–कतिभागमाहरन्ति, कतिभागं स्पर्शयन्ति ? गौतम ! असंख्येयभागमाहरन्ति, अनन्तभागं स्पर्शयन्ति. यावत्–तेषां पुद्गलाः कीदृशतया भूयो भूयः परिणमन्ति ? गौतम ! स्पर्शेन्द्रियविमात्रतया भूयो भूयः परिणमन्ति. शेषं यथा नैरयिकाणाम् यावद्–नो अचलितं कर्म निर्जरयन्ति. एवं यावद्–वनस्पतिकायिकानाम्. नवरम्–स्थितिर्वर्णयितव्या या यस्य. उच्छ्वासो विमात्रया:–अनु०

१. प्र० छाया:–श्लक्ष्णा च शुद्धा वालुका मनःशिला शर्करा च खरपृथिवी, एकम्, द्वादश, चतुर्दश, षोडश, अष्टादश, द्वाविंशतिः. २. क्षेत्रतोऽसंख्येयप्रदेशावगाढानि:–अनु०

कोलओ अन्नयराइठियाइ" इत्यादि दृश्यम्. *'निव्वाघाएणं छद्दिसिं'*ति. व्याघात आहारस्य लोकान्तनिष्कुटेषु संभवति नान्यत्र, ततो निष्कुटेभ्योऽन्यत्र षट्सु दिक्षु; कथम्? चतसृषु पूर्वादिदिक्षु, ऊर्ध्वमधश्च पुद्गलग्रहणं करोति, तस्य स्थापना:—

*'वाघायं पडुच्च'*त्ति व्याघातं प्रतीत्य, व्याघातश्च निष्कुटेषु, तत्र च *'सिय तिदिसिं'*ति स्यात् कदाचित्, तिसृषु दिक्षु आहारग्रहणं भवति. कथम्? यदा पृथिवीकायिकोऽधस्तने, उपरितने वा कोणेऽवस्थितः स्यात् तदाऽधस्तादलोकः, पूर्वदक्षिणयोश्चाऽलोक इत्येवं तिसृणामलोकेनाऽऽवृतत्वात् तदन्यासु तिसृषु पुद्गलग्रहणम्. एवम्–उपरितनकोणेऽपि वाच्यम्. यदा पुनरधः, उपरि चाऽलोको भवति तदा चतसृषु दिक्षु. यदा तु पूर्वादीनां षण्णां दिशामन्यतरस्यामलोको भवति तदा पञ्चस्विति. *'फासओ कक्खडाइं' ति.* इह कर्कशादयो रूक्षान्ताः स्पर्शा दृश्याः. *'सेसं तहेव'*त्ति शेषं भणितावशेषम् तथैव- यथा नारकाणां तथा पृथिवीकायिकानामपि. तच्चेदम्:—*"जाइं भंते! लुक्खाइं आहारेंति, ताइं किं पुट्ठाइं, अपुट्ठाइं? जाइं पुट्ठाइं ताइं किं ओगाढाइं, अणोगाढाइं?"* इत्यादि. *'णाणत्तं'*ति नानात्वम्–भेदः पुनः पृथिवीकायिकानां नारकापेक्षयाऽऽहारं प्रति इदम्, यथा:—*'कइभागं'* इत्यादि. तत्र *'फासादिंति'*त्ति स्पर्शं कुर्वन्ति–स्पर्शयन्ति–स्पर्शेन्द्रियेणाऽऽहारपुद्गलानां कतिभागं स्पृशन्तीत्यर्थः, अथवा स्पर्शेनाऽऽस्वादयन्ति, प्राकृतशैल्या *'फासादिंति,'* स्पर्शेण वाऽऽददति गृह्णन्ति–उपलभन्त इति *'फासादिंति'*. इदमुक्तं भवति–यथा रसनेन्द्रियपर्याप्तिपर्याप्तका रसनेन्द्रियद्वारेणाऽऽहारमुपभुञ्जाना आस्वादयन्तीति व्यपदिश्यन्ते, एवमेते स्पर्शनेन्द्रियद्वारेणेति. *'सेसं जहा नेरइयाणं'*ति. तच्चैवम्:—*"पुढविकाइयाणं भंते! पुव्वाहरिया पोग्गला परिणया?"* इत्यादि. प्राग्वच्च व्याख्येयमिति. *'एवं जाव–वणस्सइकाइयाणं'ति.* अनेन पृथिवीकायिकसूत्रमिवाऽप्कायिकादिसूत्राणि समानीत्युक्तम्, स्थितौ पुनर्विशेषः, *अत एवाह*—*'नवरम–ठिई वण्णेयव्वा जा जस्स'*त्ति. तत्र जघन्या सर्वेषामन्तर्मुहूर्तम्. उत्कृष्टा तु अपां सप्त वर्षसहस्राणि. तेजसामहोरात्रत्रयम्. वायूनां त्रीणि वर्षसहस्राणि. वनस्पतीनां दशेति. उक्ता चेयं पृथिव्यादिक्रमेण: *"बावीसई सहस्सा, सत्त सहस्साइं, तिन्नि अहोरत्ता, वाए तिन्नि सहस्सा, दस वाससहस्सिया रुक्खे"*त्ति.

२२. हवे भुवनपतिनी वक्तव्यता पछी, दंडकना अनुक्रमथी ज पृथिवी वगेरेनी स्थित्यादिनु निरूपण करतां कहे छे. ['पुढवी' इत्यादि] वनस्पति सूत्र सुधी स्पष्ट छे. विशेष, ['अंतोमुहुत्त' ति] अंतर्मुहूर्त–अंतर–अभ्यंतर, मुहूर्त–मुहूर्त अर्थात् भिन्नमुहूर्त मुहूर्तनी अंदर, ए प्रमाणे अर्थ थाय छे. ['उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं' ति] 'उत्कृष्टथी बावीस हजार वर्ष पर्यन्त स्थिति छे' ए प्रमाणे जे कह्यु ते खरपृथ्वीने आश्रीने जाणवुं. कह्युं छे केः—"श्लक्ष्ण–सूक्ष्म-झीणी, शुद्ध–कुंवारी–नहीं वपराएली माटी, वालुका, मनःशिला, शर्करा अने खरपृथ्वी. ए छ पृथ्वीओ अनुक्रमे एक हजार, बार हजार, चौद हजार, सोळ हजार, अढार हजार, अने बावीस हजार वर्षनी स्थितिवाळी होय छे." ['वेमायाए' त्ति] विषम अथवा विविध जे मात्रा–कालविभाग–ने विमात्रा कहेवाय. ते विमात्रा वडे (श्वासोच्छ्वास ले छे) तथी एम कह्यु केः पृथ्वीकायनी उच्छ्वासादि क्रिया विषमकाळवाळी छे माटे 'आटला काळे थाय छे' ए प्रमाणे निरूपण करी शकाय नहीं. ['जहा नेरइयाण' ति] 'जेवी रीते नैरयिकोने' आ प्रमाणे अतिदेश करवाथी, "क्षेत्रथी असंख्य प्रदेशोनी साथे अवगाढ थयेला पुद्गलोनो आहार करे छे. काळथी जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्ट स्थितिमांथी कोइ पण स्थितिवाळा पुद्गलोनो आहार करे छे." इत्यादि नैरयिकना प्रकरणनी जेम अहीं पण जाणवुं ['निव्वाघाएणं छद्दिसिं' ति] 'व्याघात न होय तो छ दिशाओमां' आहारनो व्याघात लोकांतना निष्कुटोने खुणाओने विषे संभवे छे, अन्यस्थले निष्कुटोथी अन्यत्र–आहारनो व्याघात संभवतो नथी, माटे व्याघातरहित स्थळे छ दिशामांथी आहार करे छे. केवी रीते? (ते कहे छे-) पूर्वादि चारे दिशाओने विषे रहेला पुद्गलोने अने ऊर्ध्वभागे तथा अधोभागे रहेला पुद्गलोने (आहारमाटे) ग्रहण करे छे. तेनी (छ दिशानी) स्थापना आ प्रमाणे छेः-

पृथिवीकायिक–वगेरेनुं स्थित्यादि.

छप्रकारनी माटी.

['वाघाय पडुच्च' त्ति] 'व्याघातने आश्रीने,' (लोकान्तना) निष्कुटोने खुणाओने विषे व्याघात संभवे छे अने तेओने विषे ['सिय तिदिसिं' ति] कदाचित् त्रण दिशाओमां रहेला पुद्गलोने आहारार्थे ग्रहण करे छे. केवी रीते? (ते बतावे छे)ज्यारे पृथ्वीकायनो जीव नीचेना अथवा उपरना खुणाने विषे रहेलो होय छे त्यारे नीचे अलोक होय छे, तेम ज पूर्व तथा दक्षिणने विषे अलोक होय छे: आ प्रमाणे त्रणे दिशाओ अलोकवडे आच्छादित थयेली होवाथी अन्य त्रण दिशाओमां रहेला पुद्गलोने ग्रहण करे छे. आ प्रमाणे उपरना खुणाने विषे पण कहेवुं. वळी ज्यारे नीचे अने उपर अलोक होय त्यारे चार दिशाओने विषे रहेला पुद्गलोनो आहार करे अने ज्यारे पूर्वादि छ दिशाओमांनी कोइ पण एक दिशामां अलोक होय तो पांच दिशाओमां रहेला पुद्गलोनो आहार करे छे. ['फासओ कक्खडाइं' ति] 'स्पर्शथी कर्कश,' अहीं कर्कशथी लुखास्पर्श सुधीना आठे स्पर्शो लेवा. ['सेसं तहेव'त्ति] शेष-बाकीनुं-ते प्रमाणे जाणवुं अर्थात् उपर कहेलामां जे कांइ बाकी होय ते जेवी रीते नैरयिकोने कह्युं तेवी रीते पृथ्वीकायिकोने पण कहेवुं. ते आ प्रमाणे छेः—"हे भगवन्! जे लुखा पुद्गलोनो आहार करे छे ते पुद्गलोने शुं आत्मप्रदेशोनी साथे स्पृष्ट समजवां के अस्पृष्ट? जो स्पृष्ट पुद्गलोनो आहार करे तो शुं तेओ अवगाढ समजवां के अनवगाढ?" इत्यादि. ['णाणत्तं'] नानात्व-भेद-अर्थात् विशेष, नैरयिकोनी अपेक्षाए पृथ्वीकायिक जीवोमां आहार संबंधे नानात्व भेद-आ

---

१. प्र० छाया:—कालतोऽन्यतरस्थितिकानि २. यानि भगवन्! रूक्षाणि आहरन्ति, तानि किं स्पृष्टानि, अस्पृष्टानि? यानि स्पृष्टानि, तानि किमवगाढानि, अनवगाढानि?. ३. पृथिवीकायिकानां भगवन्! पूर्वाहृताः पुद्गलाः परिणताः?. ४. द्वाविंशतिः सहस्राणि, सप्त सहस्राणि, त्रीणि अहोरात्राणि, वाते त्रीणि सहस्राणि, दश वर्षसहस्राणि वृक्षे:—अनु०

प्रमाणे छेः—['कइभागं' इत्यादि] केटला भागनो (इत्यादि) ['फासादिंति'] स्पर्श करे छे? अर्थात् स्पर्शेन्द्रियवडे आहारना केटला भागनो स्पर्श करे छे? अथवा स्पर्शवडे आस्वादन करे छे स्पर्शवडे ग्रहे छे, उपलभे छे. आथी एम कह्युं केः जेवी रीते 'रसनेंद्रियपर्याप्तिवडे पर्याप्त जीवो-तैयार थयेली रसनावाळा जीवो रसनेंद्रियद्वारा आहारनो उपभोग करता आस्वादन करे छे' ए प्रमाणे कहेवाय छे, तेम पृथ्वीकायिक जीवो स्पर्शनेंद्रियद्वारा आहारनो उपभोग करता स्पर्श करे छे ए प्रमाणे व्यवहार थाय छे. ['सेसं जहा नेरइयाण'ति] बाकीनुं जेम नैरयिकोने कह्युं तेम जाणी लेवुं. ते आ प्रमाणे छेः "हे भगवन्! पृथ्वीकायिकोने पूर्वे आहार करेला पुद्गलो परिणम्या?" इत्यादि तेनुं पूर्वनी जेम व्याख्यान करवुं. ['एवं जाव—वणस्सइकाइयाण'ति] 'आ प्रमाणे यावत्- वनस्पतिकायिकोने पण कहेवुं.' आ वाक्यवडे अप्कायिकादि चार सूत्रो पृथ्वीकायिक संबंधी सूत्रनी समान छे एम कहेवायु. ते चार प्रकारना जीवोनी स्थितिमा विशेष छे, माटे कहे छे के.—['णवरं ठिई वण्णेयव्वा जा जस्स'त्ति] "जे जेनी स्थिति होय ते वर्णववी." तेने विषे सर्वेनी स्थिति जघन्यथी अन्तर्मुहूर्तनी छे अने उत्कृष्टताथी अप्कायनी सात हजार वर्षनी. तेजसनी त्रण अहोरात्रनी. वायुनी त्रण हजार वर्षनी अने वनस्पतिकायनी दस हजार वर्षनी समजवी. पृथिव्यादि जीवोनी अनुक्रमे आ उत्कृष्ट स्थिति कही पण छे केः—"(पृथ्वीकायनी) बावीस हजार, (जलकायनी) सात हजार, (अग्निकायनी) त्रण अहोरात्र, (वायुकायनी) त्रण हजार अने वनस्पतिकायनी दस हजार वर्ष.

जल—अग्नि—पवन अने वनस्पति.

बेइन्द्रिय.

३४. बेइंदियाण ठिई भाणिऊण उस्सासो वेमायाए.

३४. बेइंद्रियवाळा जीवोनी स्थिति कहीने. तेओनो उच्छ्वास विमात्राए कहेवो.

३५. प्र०—बेइंदियाण आहारे पुच्छा?.

३५. प्र०—बेइंद्रियवाळा जीवोना आहार विषयक (पूर्ववत्) प्रश्न करवो. अर्थात् हे भगवन्! बेइंद्रियवाळा जीवोने केटले काळे आहारनो अभिलाष थाय छे?

३५. उ०—अणाभोगनिव्वत्तिए तहेव, तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से ण असंखेज्जसमइए अन्तोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ. सेस तहेव जाव—अणतभागं आसायंति.

३५. उ० हे गौतम! अनाभोगनिर्वर्तित आहार तो पूर्वनी पेठे जाणवो, तेमां जे आभोगनिर्वर्तित आहार छे तेनो अभिलाष विमात्राए असंख्येयसामयिक अंतर्मुहूर्ते थाय छे. बाकी बधुं ते ज प्रमाणे जाणवु यावद् अनंतभागने चाखे छे.

३६. प्र०.—बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति, ते किं सव्वे आहारंति, णो सव्वे आहारंति?

३६. प्र०—हे भगवन्! जे पुद्गलोने बेइंद्रिय जीवो आहारपणे ग्रहण करे छे तो शुं तेओ ते बधा पुद्गलोने खाइ जाय छे, के बधाने नथी खाता?

३६. उ०—गोयमा! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पन्नत्ते, तं जहाः—लोमाहारे, पक्खेवाहारे य. जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गिण्हंति ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति. जे पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंति तेसि णं पोग्गलाणं असंखिज्जइभागं आहारेंति, अणेगाइं च ण भागसहस्साइं अणासाइज्जमाणाइं, अफासाइज्जमाणाइं, विद्धंसं आगच्छंति.

३६. उ०—हे गौतम! बेइंद्रिय जीवोनो आहार बे प्रकारनो कह्यो छे, ते आ प्रमाणेः—रोमाहार—रुंवा द्वारा लेवातो आहार, प्रक्षेपाहार—मुखमां प्रक्षेपाइने थतो आहार. तेमां तेओ जे पुद्गलोने रोमाहारपणे ग्रहे छे ते बधा संपूर्णपणे खावामां आवे छे अने जे पुद्गलो प्रक्षेपाहारपणे लेवाय छे तेमांनो असंख्यभाग खावामां आवे छे अने बीजा अनेक हजार भागो चख्याया विना, तेम ज स्पर्शाया विना ज नाश पामे छे.

३७. प्र०—एएसि णं भंते! पोग्गलाणं—अणासाइज्जमाणाणं, अफासाइज्जमाणाणं य कयरे कयरे—(हिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा)?

३७. प्र०—हे भगवन्! ए नहीं चखाएला अने नहीं स्पर्शाएला पुद्गलोमां क्या क्या पुद्गलो अल्प, बहु, तुल्य अने विशेषाधिक छे?

३७. उ०—गोयमा! सव्वत्थोवा पुग्गला—अणासाइज्जमाणा, अफासाइज्जमाणा अनंतगुणा.

३७. उ०—हे गौतम! नहीं चखाएला पुद्गलो सौथी थोडा छे अने नहीं स्पर्शाएला पुद्गलो अनंतगुण छे.

---

१. आ शब्दना जे अर्थो कर्या छे ते प्राकृतना धोरणने अनुसरीने कर्या छे—श्रीअभयदेव.

१. मूलच्छाया.—द्वीन्द्रियाणा स्थितिर्भणित्वा उच्छ्वासो विमात्रया. द्वीन्द्रियाणामाहारे पृच्छा? अनाभोगनिर्वर्तितस्तथैव, तत्र योऽसावाभोगनिर्वर्तितः सोऽसङ्ख्येयसामयिक आन्तर्मौहूर्तिकः विमात्रया आहारार्थः समुत्पद्यते. शेषं तथैव यावद्—अनन्तभागमास्वादयन्ति. द्वीन्द्रिया भगवन्! यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति, तान् किं सर्वान् आहरन्ति, नो सर्वान् आहरन्ति? गौतम! द्वीन्द्रियाणां द्विविध आहारः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—लोमाहारः, प्रक्षेपाहारश्च. यान् पुद्गलान् लोमाहारतया गृह्णन्ति तान् सर्वान् अपरिशेषितान् आहरन्ति. यान् (पुद्गलान्) प्रक्षेपाहारतया गृह्णन्ति तेषां पुद्गलानामसंख्येयभागमाहरन्ति अनेकानि च भागसहस्राणि अनास्वाद्यमानानि, अस्पृश्यमानानि विध्वंसमागच्छन्ति. एतेषां भगवन्! पुद्गलानाम्—अनास्वाद्यमानानाम्, अस्पृश्यमानानां च कतरे कतरेभ्योऽल्पा वा, बहुका वा, तुल्या वा, विशेषाधिका वा? गौतम! सर्वस्तोकाः पुद्गलाः अनास्वाद्यमानाः, अस्पृश्यमाना अनन्तगुणाः—अनु०

३८. प्र०—बेइंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गिण्हंति, ते णं तेसिं पुग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति?

३८. उ०—गोयमा! जिब्भिंदिय–फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति.

३९. प्र०—बेइंदियाणं भंते! पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया?

३९. उ०—तहेव जाव–चलियं कम्मं निज्जरंति.

३८. प्र०—हे भगवन्! बेइंद्रियजीवो जे पुद्गलोने आहारपणे ले छे, ते पुद्गलो तेओने वारंवार केवे रूपे परिणमे छे?

३८. उ०- हे गौतम! ते पुद्गलो तेओने विविधतापूर्वक जिह्वेंद्रियपणे अने स्पर्शेंद्रियपणे वारंवार परिणमे छे.

३९. प्र०—हे भगवन्! बेइंद्रियजीवोने पूर्वे आहरेला पुद्गलो परिणम्या?

३९. उ०—हे गौतम! ए बधु पूर्व प्रमाणे ज कहेवुं यावत्-चलित कर्मने निर्जरे छे.

२३. *'बेइंदियाणं ठिई भणिऊण उस्सासो वेमायाए'*त्ति वक्तव्य इति शेषः. स्थितिश्च द्वीन्द्रियाणां द्वादशवर्षाणि. द्वीन्द्रियाणामाहारसूत्रे यदुक्तम्:–*'तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ'*त्ति तस्याऽयमर्थः:- असंख्यातसामयिक आहारकालो भवति, स चाऽवसर्पिण्यादिरूपोऽप्यस्तीत्यत उच्यते–आन्तर्मौहूर्तिकः, तत्राऽपि विमात्रयाऽन्तर्मुहूर्ते, समयाऽसंख्यातत्वस्याऽसंख्येयभेदत्वादिति. *'बेइंदियाणं दुविहे आहारे पन्नत्ते–लोमाहारे, पक्खेवाहारे य'*त्ति तत्र लोमाहारः खलु ओघतो वर्षादिषु यः पुद्गलप्रवेशः स मूत्राद् गम्यत इति. प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकस्तत्र प्रक्षेपाहारे बहवोऽस्पृष्टा एव शरीरादन्तर्बहिश्च विध्वंसन्ते, स्थौल्य-सौक्ष्म्याभ्याम्. अत एवाह:–*'जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गिण्हति'* इत्यादि. *'अणेगाइं च णं भागसहस्साइं'*ति असंख्येया भागा इत्यर्थ.. *'अणासाइज्जमाणाइं'*ति रसनेन्द्रियतः. *'अफासाइज्जमाणाइं'ति* स्पर्शनेन्द्रियतः. *'कयरे'* इत्यादि यत् पदं तदेवं दृश्यम्–*'कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया व'* त्ति व्यक्तं च. *'सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा'* इत्यादि. येऽनास्वाद्यमानाः- केवल रसनेन्द्रियविषयास्ते स्तोकाः–अस्पृश्यमानानामनन्तभागवर्तिन इत्यर्थः, ये त्वस्पृश्यमानाः—केवलं स्पर्शनविषयास्तेऽनन्तगुणा रसनेन्द्रियविषयेभ्यः सकाशादिति.

२३. ['बेइंदियाणं ठिई भणिऊण उस्सासो वेमायाए'त्ति] बेइंद्रियजीवोनी स्थिति कहीने उच्छ्वास विमात्राए 'कहेवो' ए शेष छे. बेइंद्रियजीवोनी स्थिति बार वर्षनी छे. बेइंद्रिय जीवोना आहार सूत्रमां कह्युं छे के. ['तत्थ णं जे से आभोगनिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ'त्ति] तेने विषे जे आहार आभोगनिर्वर्तित छे तेनो अभिलाष विमात्राए असंख्येय समयवाळा अन्तमुहूर्तने विषे उत्पन्न थाय छे. आ वाक्यनो आ प्रमाणे अर्थ छेः बेइंद्रियजीवनो आहारकाळ असंख्यात समयवाळो छे. असंख्यात समयवाळो अवसर्पिण्यादि–स्वरूप पण काळ होय छे, तेथी कहे छे केः असंख्यात समयवाळो अने 'आन्तर्मुहूर्तिक'. वळी अंतर्मुहूर्तनी असंख्यात समयता असंख्य भेदवाळी होवाथी जणावे छे के, विमात्राए असंख्य समयवाळो. ['बेइंदियाण दुविहे आहारे पन्नत्ते–लोमाहारे, पक्खेवाहारे य' त्ति] बेइंद्रियनो आहार बे प्रकारे प्ररूप्यो छे लोमाहार अने प्रक्षेपाहार. तेने विषे लोमाहार–लोमद्वारा गृहीत थता आहरना पुद्गलो. सामान्य रीते वर्षादि ऋतुमा जे पुद्गलोनो (लोमद्वारा) प्रवेश थाय छे ते लोमाहार कहेवाय. ते लोमद्वारा थएलो पुद्गलनो प्रवेश मूत्रथी जणाय छे. प्रक्षेपाहार कवल कोळीया थी थाय छे. ते प्रक्षेपाहारमां स्थूल अने सूक्ष्मपणे घणा पुद्गलो स्पर्शाया विना ज शरीरनी अंदर अने बहार ध्वंस पामे छे. तेथी ज कहे छे के ['जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गिण्हंति' इत्यादि] जे पुद्गलोने प्रक्षेपाहारपणे ग्रहण करे छे इत्यादि. ['अणेगाइं च णं भागसहस्साइं' ति] अनेक हजार भागो एटले के असंख्येय भागो. ['अणासाइज्जमाणाइं' ति] आस्वाद नही कराएला रसनेन्द्रियथी रसना जीभ थी अनास्वाद्यमान चखाएला नहीं. ['अफासाइज्जमाणाइं' ति] *स्पर्शनेन्द्रियथी स्पर्श नहीं कराएला. ['कयरे' इत्यादि] जे पद छे ते आ प्रमाणे जाणवुं 'क्या कोनाथी अल्प, बहु, तुल्य अने* विशेषाधिक छे?' ['सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा' इत्यादि] 'सर्वथी थोडा पुद्गलो आस्वादन नहीं कराएला' इत्यादि. जे पुद्गलोनुं आस्वादन कराएलुं नथी, परंतु केवळ रसनेन्द्रियविषय–रसनेन्द्रियगम्य छे तेओ थोडा छे अर्थात् स्पर्श नहीं कराएला पुद्गलोना अनन्तभागे वर्तवावाळा छे. वळी जेओ स्पर्श कराएला नथी, केवळ स्पर्शनेन्द्रिय विषय स्पर्शनेन्द्रियगम्य पुद्गलो छे तेओ रसनेन्द्रियविषयक पुद्गलो करतां अनन्तगणा अधिक छे.

बेइंद्रिय–स्थित्यादि. बारवर्ष. आभोगनिर्वर्तित. लोमाहार. प्रक्षेपाहार विध्वंस. अनास्वाद्यमान. अस्पृश्यमान. ते बंनेनु अल्प–बहुत्व.

त्रीन्द्रियादि.

४०. *तेइंदिय–चउरिंदियाणं णाणत्तं ठिइए जाव–णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं, अणासाइज्जमाणाइं, अफासाइज्जमाणाइं विद्धंसं आगच्छंति.*

४०. त्रण इंद्रियवाळा अने चार इंद्रियवाळा जीवोनी स्थितिमा भेद छे. बाकी बधुं पूर्व प्रमाणे छे. यावत्–अनेक हजार भागो सुंघाया विना, चखाया विना अने स्पर्शाया विना ज नाश पामे छे.

---

१ मूलच्छायाः–द्वीन्द्रिया भगवन्! यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति, ते तेषां पुद्गलाः कीदृशतया भूयो भूयः परिणमन्ति? गौतम! जिह्वेन्द्रिय–स्पर्शेन्द्रियविमात्रतया भूयो भूयः परिणमन्ति. द्वीन्द्रियाणां भगवन्! पूर्वाहृताः पुद्गलाः परिणताः? तथैव यावत्—चलितं कर्म निर्जरयन्ति. २. त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रियाणां नानात्वं स्थितौ यावत्–अनेकानि च भागसहस्राणि अनाघ्रायमाणानि, अनास्वाद्यमानानि, अस्पृश्यमानानि विध्वंसमागच्छन्तिः–अनु०

१० भ० सू०

४१. प्र०—एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाणं ३. पुच्छा ?

४१. प्र०—हे भगवन् ! ए नहीं सुंघाएला, नहीं चखाएला अने नहीं स्पर्शाएला पुद्गलोमां क्या कोनाथी थोडा, बहु, तुल्य के विशेषाधिक छे ? (ए प्रमाणे प्रश्न करवो.)

४१. उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा, अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा, अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा. तेइंदियाणं घाणिंदिय—जिब्भिंदिय—फासिंदियवेमायाए भुज्जो भुज्जो परिणमंति. चउरिंदियाणं चक्खिंदिय—घाणिंदिय-जिब्भिंदिय—फासिंदियत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति.

४१. उ०—हे गौतम ! सौथी थोडा नहीं सुंघाएला पुद्गलो छे, तेथी अनंतगणां नहीं चखाएला अने तेथी अनंतगुण नहीं स्पर्शाएला पुद्गलो छे. त्रण इंद्रियवाळा जीवोए खाधेलो आहार घ्राणेंद्रियपणे, जिभइंद्रियपणे अने स्पर्शइंद्रियपणे वारंवार परिणमे छे. अने चार इंद्रियवाळा जीवोए खाधेलो आहार आंख(इंद्रिय)पणे, नाक(इंद्रिय)पणे, जिभ (इंद्रिय) पणे अने चामडी (इंद्रिय) पणे वारंवार परिणमे छे.

२४. '*तेइंदिय—चउरिंदियाणं णाणत्तं ठिइए*'त्ति, तच्चेदम्:—"*जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं. उक्कोसेणं तेइंदियाणं एगूणपन्नासं राइंदियाइं. चउरिंदियाणं छम्मासा*". तथाऽऽहारेऽपि नानात्वम्, तत्र च '*तेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति*' इत्यत आरभ्य तावत् सूत्रं वाच्यं यावद् '*अणेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं*' इत्यादि. इह च द्वीन्द्रियसूत्राऽपेक्षया 'अनाघ्रायमाणानि' इति अतिरिक्तमतो नानात्वम्. एवम्, अल्प-बहुत्वसूत्रे, परिणामसूत्रे च. चतुरिन्द्रियसूत्रेषु तु परिणामसूत्रे '*चक्खिंदियत्ताए, घाणिंदियत्ताए*' इत्यधिकमिति नानात्वमिति.

त्रीद्रिय, चतुरिंद्रिय. ओगणपचास दिन—छ मास.

नानात्व.

२४. ['तेइंदिय-चउरिंदियाणं णाणत्तं ठिइए' त्ति] त्रण इंद्रियवाळा अने चार इंद्रियवाळा जीवोनी स्थितिमां भेद छे. ते आ प्रमाणेः—"जघन्यथी अंतर्मुहूर्त स्थिति अने उत्कृष्टथी त्रण इंद्रियवाळा जीवोनी ओगणपचास रात्रिदिवस. तथा चार इंद्रियवाळा जीवोनी छ मास स्थिति होय छे." तथा आहारने विषे पण भेद छे. तेमां 'हे भगवन् ! त्रण इंद्रियवाळा जीवो आहारपणे जे पुद्गलोने ग्रहण करे छे.' त्यांथी आरंभी 'अनेक हजार भाग नहीं सुंघाता' (विध्वंस पामे छे) इत्यादि आवे त्यां सुधी कहेवुं. अहीं बे इंद्रियवाळा जीवना सूत्रनी अपेक्षाए 'नहीं सुंघाता' एटलुं अधिक होवाथी भेद छे. आवी रीते अल्प बहुत्वसूत्रने विषे तथा परिणामसूत्रने विषे भेद कहेवो. चतुरिंद्रियजीव संबंधी सूत्रमां तो परिणामसूत्रने विषे ['चक्खिंदियत्ताए'] 'चक्षुरिंद्रियपणे', तथा ['घाणिंदियत्ताए'] 'घ्राणेंद्रियपणे,' आ प्रमाणे अधिक होवाथी भेद छे.

मनुष्यादि.

४२. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ठिइं भणिऊणं उस्सासो वेमायाए. आहारो अणाभोगनिव्वत्तिओ अणुसमयं अविरहिओ, आभोगनिव्वत्तिओ जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स. सेसं जहा चउरिंदियाणं, जाव—चलियं कम्मं णिज्जरेंति.

४२. पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिकोनी स्थिति कहीने तेओनो उच्छ्वास विमात्राए कहेवो. अनाभोगनिर्वर्तित आहार तेओने विरह-विना प्रतिसमय होय छे, अने आभोगनिर्वर्तित आहार जघन्ये अंतर्मुहूर्ते, तथा उत्कृष्टे छट्ठभक्ते—बे दिवसे—बे दिवस गया पछी—होय छे. बाकी बधुं चार इंद्रियवाळा जीवोनी पेठे जाणवुं यावत्—चलित कर्मने निर्जरे छे.

४३. एवं मणुस्साण वि, णवरं—आभोगनिव्वत्तिए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठमभत्तस्स. सोइंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति. सेसं जहा तहेव जाव—निज्जरेंति.

४३. ए प्रमाणे मनुष्यो संबंधे पण जाणवुं. विशेष ए के, तेओने आभोगनिर्वर्तित आहार जघन्ये अंतर्मुहूर्ते अने उत्कृष्टे अट्ठमभक्ते—त्रण दिवसे—त्रण दिवस गया पछी—होय छे. मनुष्योए खाधेलो आहार (पूर्वोक्त चार इंद्रियपणे अने) कान (इंद्रिय) पणे विमात्राए वारंवार परिणमे छे. बाकी बधुं पूर्वनी पेठे जाणवुं अने यावत्—निर्जरे छे.

---

१. मूलच्छाया —एतेषां भगवन् ! पुद्गलानामनाघ्रायमाणानां ३. पृच्छा ? गौतम ! सर्वस्तोकाः पुद्गला अनाघ्रायमाणाः, अनास्वाद्यमाना अनन्तगुणाः, अस्पर्श्यमाना अनन्तगुणाः. त्रीन्द्रियाणां घ्राणेन्द्रिय—जिह्वेन्द्रिय—स्पर्शेन्द्रियविमात्रया भूयो भूयः परिणमन्ति. चतुरिन्द्रियाणां चक्षुरिन्द्रिय—घ्राणेन्द्रिय—जिह्वेन्द्रिय—स्पर्शेन्द्रियतया भूयो भूयः परिणमन्तिः—अनु०

२. प्र० छाया — जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्. उत्कृष्टेन त्रीन्द्रियाणाम्—एकोनपञ्चाशद् रात्री—दिनानि. चतुरिन्द्रियाणां षड्मासाः—अनु०

३. मूलच्छायाः—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां स्थितिर्भणित्वा उच्छ्वासो विमात्रया (भणितव्यः.) आहारोऽनाभोगनिर्वर्तितोऽनुसमयमविरहितः, आभोग-निर्वर्तितो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तेन, उत्कृष्टेन षष्ठभक्तेन. शेषं यथा चतुरिन्द्रियाणाम्, यावत्—चलितं कर्म निर्जरयन्ति. एवं मनुष्याणामपि, नवरम्—आभोग-निर्वर्तितो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तेन, उत्कृष्टेन अष्टमभक्तेन. श्रोत्रेन्द्रियविमात्रतया भूयो भूयः परिणमन्ति. शेषं यथा तथैव यावत्—निर्जरयन्तिः—अनु०

२५. पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सूत्रे *'ठिई भाणिऊणं'ति* *"जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं"*ति. इत्येतद्रूपां स्थितिं भणित्वा *'ऊसासो'*त्ति उच्छ्वासो विमात्रया वाच्य इति. तथा तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणामाहारार्थं प्रति यदुक्तम्—*'उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स'*त्ति, तद् देवकुरूत्तरकुरुतिर्यक्षु लभ्यते. मनुष्यसूत्रे यदुक्तम्—'अष्टमभक्तस्य'इति, तद् देवकुर्वादिमिथुनकनरानाश्रित्य समवसेयमिति.

२५. पंचेंद्रिय तिर्यंच सूत्रमां ['ठिई भणिऊणं' ति] 'स्थिति भणीने'—जघन्यथी अन्तर्मुहूर्त अने उत्कृष्टथी त्रण पल्योपम, आ स्वरूपवाळी स्थिति भणीने—कहीने, ['उस्सासो' त्ति] उच्छ्वास विमात्राए कहेवो. तथा तिर्यंच पंचेंद्रियना आहारना अभिलाष माटे जे कह्युं के:—['उक्कोसेणं छट्ठभत्तस्स' त्ति] 'उत्कृष्ट षष्ठभक्ते तेओने आहारनो अभिलाष थाय छे' ते कथन देवकुरु अने उत्तरकुरुना तिर्यंचमां मळी शके छे. अने मनुष्यना सूत्रमां जे कह्युं के:—अष्टमभक्ते मनुष्योने आहारार्थ थाय छे, ते देवकुरु वगेरेना मिथुननरो—युगलो—युगलिया मनुष्यो—ने आश्री समजवुं.

पंचेंद्रिय. मनुष्य. त्रण पल्योपम. छट्ठ—अट्ठम. देवकुरु—उत्तरकुरु.

वानव्यंतरादि.

४४. *वाणमंतराणं ठिईए नाणत्तं. अवसेसं जहा णागकुमाराणं.*

४५. *एवं जोइसियाण वि, णवरं—उस्सासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि मुहुत्तपुहुत्तस्स. आहारो जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि दिवसपुहुत्तस्स. सेसं तहेव.*

४६. *वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा ओहिया. ऊसासो जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं. आहारो आभोगनिव्वत्तिओ जहण्णेणं दिवसपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं. सेसं चलियाइयं तहेव निज्जरावेंति.*

४४. वानव्यंतरोनी स्थितिमां भेद छे. बाकी बधुं नागकुमारोनां पेठे जाणवुं.

४५. ए प्रमाणे ज्योतिषिक देवो संबंधे पण जाणवुं. विशेष ए के:—ज्योतिषिक देवोने जघन्ये अने उत्कृष्टे मुहूर्तपृथक्त्व पछी उच्छ्वास होय छे, अने आहार पण जघन्ये अने उत्कृष्टे दिवसपृथक्त्व पछी होय छे. बाकी बधुं ते ज प्रमाणे—पूर्व प्रमाणे—जाणवुं.

४६. वैमानिकोनी स्थिति औघिक कहेवी. तेओने उच्छ्वास जघन्ये मुहूर्तपृथक्त्व पछी, अने उत्कृष्टे तेत्रीश पखवाडीया (साडा सोळ मास) पछी होय छे. आभोगनिर्वर्तित आहार तेओने जघन्ये दिवसपृथक्त्व पछी, अने उत्कृष्टे तेत्रीश हजार वरस पछी होय छे. बाकी बधुं 'चलितादिक निर्जरावे छे' (इत्यादि) पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं.

२६. *'वाणमंतराणं'* इत्यादि. वानमन्तराणां स्थितौ नानात्वम्. *'अवसेसं'*ति स्थितेरवशेषम्—आयुष्कवर्जमित्यर्थः. प्रागुक्तमाहारादि वस्तु यथा नागकुमाराणां तथा दृश्यम्, व्यन्तराणां नागकुमाराणां च प्रायः समानधर्मत्वात्. तत्र व्यन्तराणां स्थितिर्जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण तु पल्योपममिति. *'जोइसियाण वि'* इत्यादि. ज्योतिष्काणामपि स्थितेरवशेषं तथैव यथा नागकुमाराणाम्. तत्र ज्योतिष्काणां स्थितिर्जघन्येन पल्योपमाष्टमभागः, उत्कर्षेण पल्योपमं वर्षलक्षाधिकमिति. नवरम्—*'उस्सास'*त्ति केवलमुच्छ्वासस्तेषां न नागकुमारसमानः, किंतु वक्ष्यमाणस्तथा चाह:—*'जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स'* इत्यादि. पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरानवभ्यः, तत्र यज्जघन्यं मुहूर्तपृथक्त्वं तद् द्वित्रा मुहूर्ताः, यच्चोत्कृष्टं तदष्टौ नव वेति. आहारोऽपि विशेषित एव, तथा चाह:—*'आहारो'* इत्यादि. *'वेमाणियाणं ठिई भाणियव्वा ओहिय'*त्ति औघिकी सामान्या, सा च पल्योपमादिकात्रयस्त्रिंशत्सागरोपमान्ताः, तत्र जघन्या सौधर्ममाश्रित्य, उत्कृष्टा चानुत्तरविमानानीति. उच्छ्वासप्रमाणं तु जघन्यस्थितिकदेवानाऽऽश्रित्य, इतरत् तु उत्कृष्टस्थितिकानाऽऽश्रित्येत्यर्थः. अत्र गाथाः—*"जस्स जाइं सागराइं तस्स ठिई तत्तिएहिं पक्खेहिं, उस्सासो देवाणं वाससहस्सेहिं आहारो"*त्ति. तदेतावता ग्रन्थेनोक्ता चतुर्विंशतिदण्डकवक्तव्यता, इयं च केषुचित् सूत्रपुस्तकेषु, *'एवं ठिई आहारो'* इत्यादिनाऽतिदेशवाक्येन दर्शिता, सा चेतो विवरणग्रन्थादवसेयेति.

२६. ['वाणमंतराणं' इत्यादि] वानव्यंतर देवोनी स्थितिने विषे भेद छे. ['अवसेसं' ति] 'अवशेष'—स्थितिथी अवशेष-बाकी अर्थात् आयुष्यने वर्जीने पूर्वे कहेली आहारादि वस्तुओ जेवी रीते नागकुमारोने कही तेवी रीते वानव्यंतरोने पण समजवी. कारण के प्रायः नागकुमार देवोनी अने व्यंतरोनी समानधर्मता छे. तेने विषे व्यंतरोनी स्थिति जघन्ये दस हजार वर्षनी अने उत्कृष्टताए पल्योपमनी छे. ['जोइसियाण वि' इत्यादि] ज्योतिष्क देवोने पण स्थितिथी अवशेष जेवी रीते नागकुमारोने कह्युं तेम कहेवुं. तेने

वानव्यंतरादि. दस हजार वर्ष—पल्योपम.

---

१. प्र० छायाः—जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन त्रीणि पल्योपमानिः—अनु०

२. मूलच्छायाः—वानव्यन्तराणां स्थितौ नानात्वम्, अवशेषं यथा नागकुमाराणाम्. एवं ज्योतिषिकाणामपि, नवरम्—उच्छ्वासो जघन्येन मुहूर्तपृथक्त्वेन, उत्कृष्टेनापि मुहूर्तपृथक्त्वेन. आहारो जघन्येन दिवसपृथक्त्वेन, उत्कृष्टेनापि दिवसपृथक्त्वेन. शेषं तथैव. वैमानिकानां स्थितिर्भणितव्या औघिकी. उच्छ्वासो जघन्येन मुहूर्तपृथक्त्वेन, उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशता पक्षैः. आहार आभोगनिर्वर्तितो जघन्येन दिवसपृथक्त्वेन, उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशता वर्षसहस्रैः. शेषं चलितादिकं तथैव निर्जरयन्तिः—अनु०

३. प्र० छायाः—यस्य यानि सागराणि तस्य स्थितिस्तावद्भिः पक्षैः, उच्छ्वासो देवानां वर्षसहस्रैराहारः. इतिः—अनु०

४. अतिदेशवाक्यं चेदम्:—एवं ठिई, आहारो य भणिअव्वो. ठिई जहा ठिइपदे तहा भणिअव्वा. सव्वजीवाणं आहारो वि जहा पण्णवणाए पढमे आहारुद्देसए तहा भणिअव्वो. एत्तो आढत्तो 'नेरइए णं भंते ! आहारट्ठी जाव—दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमन्ति.' अतिदेशवाक्यस्य संस्कृतमिदम्:—एवं स्थितिः, आहारश्च भणितव्यः. स्थितिर्यथा स्थितिपदे तथा भणितव्या. सर्वजीवानामाहारोऽपि यथा प्रज्ञापनायाः प्रथमे आहारोद्देशके तथा भणितव्यः. इत आरब्ध—'नैरयिको भगवन् ! आहारार्थी यावद्—दुःखतया भूयो भूयः परिणमन्ति':—अनु०

ज्योतिषिक आयुष्य. विषे ज्योतिष्कोनी स्थिति जघन्यथी पल्योपमना आठमा भागनी अने उत्कृष्टताए पल्योपम उपरांत एक लाख वर्षनी छे. [‘णवरं–उस्सास’ त्ति] केवळ तेओनो उच्छ्वास नागकुमारनी समान नथी, पण अहीं कहीए छीए तेवा स्वरूपवाळो छे:–[‘जहन्नेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स’ इत्यादि] ‘जघन्यथी मुहूर्तपृथक्त्व अतिक्रमे त्यारे’ इत्यादि. पृथक्त्व. पृथक्त्व बेथी आरंभी नव पर्यंतनी संख्याने कहे छे. अहीं जे जघन्यथी मुहूर्तपृथक्त्व कयुं छे, तेथी बे अथवा त्रण मुहूर्त लेवां, अने जे उत्कृष्टताए मुहूर्तपृथक्त्व कयुं छे, तेथी आठ अथवा नव मुहूर्त समजवां. तेओमा आहारमां पण विशेषता छे, ते वातने मूळकार ज ‘आहार’ इत्यादि पदद्वारा कहे छे' [‘वेमाणियाण ठिई भाणियव्वा ओहिय’ त्ति] ‘वैमानिकोनी औघिकी स्थिति भणवी–कहेवी.’ वैमानिक आयुष्य. औघिकी एटले सामान्य, अने ते पल्योपमथी आरंभी तेत्रीश सागरोपम सुधी जाणवी. तेने विषे जघन्य स्थिति सौधर्मने आश्रीने अने उत्कृष्ट स्थिति अनुत्तरविमान वासिओने आश्रीने समजवी. उच्छ्वासनुं पण जघन्य प्रमाण जघन्य स्थितिवाळाओने आश्रीने अने उत्कृष्ट प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाळाओने आश्रीने समजवु. अहीं गाथा कहे छे.– गाथा. “वैमानिक देवोमां जेनी जेटला सागरोपमनी स्थिति होय तेनो (ते देवोनो) तेटला पखवाडिये उच्छ्वास, अने तेटला हजार वर्षे आहार समजवो.” ए प्रमाणे आटला (मूळ) ग्रंथद्वारा चोवीस दंडकनी वक्तव्यता कही. आ वक्तव्यता केटलाक सूत्रपुस्तकोमां अतिदेश. ‘ए प्रमाणे स्थिति, आहार’ इत्यादि अतिदेश वाक्यवडे देखाडी छे, ते वक्तव्यता आ विवरण ग्रंथथी निर्णीत करी लेवी.

आत्मारंभादि.

४७. प्र०—जीवा णं भंते! किं आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अणारंभा?

४७. उ०—गोयमा! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा; णो अणारंभा. अत्थेगइया जीवा णो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा.

४८. प्र०—से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ, ‘अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि’ एवं पडिउच्चारेयव्वं?

४८. उ०—गोयमा! जीवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा.—संसारसमावण्णगा य, असंसारसमावण्णगा य. तत्थ ण जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं नो आयारंभा. जाव अणारंभा. तत्थ ण जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—संजया य, असंजया य. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—पमत्तसंजया य, अप्पमत्तसंजया य. तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया ते ण नो आयारंभा, नो परारंभा, जाव–अणारंभा. तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुहं जोगं पडुच्च नो आयारंभा, नो परारंभा, जाव–अणारंभा. असुभं जोगं पडुच्च आयारंभा वि, जाव–णो अणारंभा. तत्थ णं जे ते असंजया ते अविरतिं पडुच्च आयारंभा वि जाव–नो अणारंभा. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ ‘अत्थेगइया जीवा जाव अणारंभा.’

४७. प्र०—हे भगवन्! शु जीवो आत्मारंभ छे, परारंभ छे, तदुभयारंभ छे के अनारम्भ छे?

४७. उ०—हे गौतम! केटलाक जीवो आत्मारंभ पण छे, परारंभ पण छे अने उभयारंभ पण छे, पण अनारंभ नथी. तथा केटलाक जीवो आत्मारंभ नथी, परारंभ नथी, उभयारंभ नथी, पण अनारंभ छे.

४८. प्र०—हे भगवन्! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, ‘केटलाक जीवो आत्मारंभ पण छे’ इत्यादि पूर्वोक्त (प्रश्न) फरी थी उच्चारवो?

४८. उ०—हे गौतम! जीवो बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणे: संसारसमापन्नक अने असंसारसमापन्नक. तेमां जे जीवो असंसारसमापन्नक छे तेओ सिद्धरूप छे अने तेओ आत्मारंभ, परारंभ के उभयारंभ नथी, पण अनारंभ छे. तेमां जे संसारसमापन्नक जीवो छे ते बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—संयत अने असंयत. तेमां जे संयतो छे ते बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः- प्रमत्तसंयत अने अप्रमत्तसंयत. तेमां जे अप्रमत्तसंयतो छे तेओ आत्मारंभ, परारंभ के यावत् उभयारंभ नथी, पण अनारंभ छे. तेमा जे प्रमत्तसंयतो छे तेओ शुभ योगनी अपेक्षाए आत्मारंभ, परारंभ यावत्–उभयारंभ नथी, पण अनारंभ छे. अने तेओ अशुभ योगनी अपेक्षाए आत्मारंभ पण छे अने यावत्–अनारंभ नथी. तेमां जे असंयतो छे तेओ अविरतिने आश्रीने आत्मारंभ पण छे अने यावत् अनारंभ नथी. माटे हे गौतम! ते हेतुथी एम कहेवाय छे के, ‘केटलाक जीवो आत्मारंभ पण छे अने यावत्–अनारंभ पण छे.’

१ ते अतिदेशवाक्य पृ० आ प्रमाणे छे —ए प्रमाणे स्थिति अने आहार कहेवो. स्थितिपदमां कह्या प्रमाणे स्थिति कहेवी, अने ‘प्रज्ञापना’ना प्रथम आहार उद्देशकमा कह्या प्रमाणे सर्व जीवोने आहार पण कहेवो. ‘हे भगवन्! नैरयिक आहारार्थी छे?’ त्यांथी माडीने ‘यावद् दुःखपणे वारंवार परिणमे छे’ त्यां सुधी कहेवुं -अनु०

२. मूलच्छाया —जीवा भगवन्! किमात्मारम्भाः, परारम्भाः, तदुभयारम्भाः, अनारम्भाः? गौतम! सन्त्येकका जीवा आत्मारम्भा अपि, परारम्भा अपि, तदुभयारम्भा अपि नो अनारम्भाः. सन्त्येकका जीवा नो आत्मारम्भाः, नो परारम्भाः, नो उभयारम्भाः, अनारम्भाः. तत् केनार्थेन भगवन्! एवमुच्यते–‘सन्त्येकका जीवा आत्मारम्भा अपि’ एवं प्रत्युच्चारयितव्यम्? गौतम! जीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—संसारसमापन्नकाश्च, असंसारसमापन्नकाश्च. तत्र ये ते असंसारसमापन्नकास्ते सिद्धाः, सिद्धा नो आत्मारम्भाः. यावत्–अनारम्भाः. तत्र ये ते संसारसमापन्नकास्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—संयताश्च, असंयताश्च. तत्र ये ते संयतास्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—प्रमत्तसंयताश्च, अप्रमत्तसंयताश्च. तत्र ये ते अप्रमत्तसंयतास्ते नो आत्मारम्भाः, नो परारम्भाः, यावत्–अनारम्भाः. तत्र ये ते प्रमत्तसंयतास्ते शुभं योगं प्रतीत्य नो आत्मारम्भाः, नो परारम्भाः, यावत्–अनारम्भाः. अशुभं योगं प्रतीत्य आत्मारम्भा अपि, यावत्–नो अनारम्भाः. तत्र ये ते असंयताः ते अविरतिं प्रतीत्य आत्मारम्भा अपि यावत्–नो अनारम्भाः. तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–‘सन्त्येकका जीवा यावत्–अनारम्भाः’–अनु०

२७. उक्ता नारकादिधर्मवक्तव्यता, इयं च आरम्भपूर्विका, इति आरम्भनिरूपणायाऽऽह:—*'जीवा णं भंते ! किं आयारंभा?'* इत्यादि. आरम्भो जीवोपघातः—उपद्रवणमित्यर्थः—सामान्येन चाऽऽश्रवद्वारप्रवृत्तिः. तत्राऽऽत्मानमारभन्ते, आत्मना वा स्वयमारभन्ते, इत्यात्मारम्भाः. तथा परमाऽऽरभन्ते, परेण वाऽऽरम्भयन्तीति परारम्भाः. तदुभयमात्म-पररूपम्. तदुभयेन वाऽऽरभन्त इति तदुभयारम्भाः. आत्म-परो-भया-ऽऽरम्भवर्जितास्त्वनारम्भा इति प्रश्नः. अत्रोत्तरं स्फुटमेव, नवरम्—अस्तिशब्दस्याऽव्ययत्वेन बहुत्वार्थत्वादस्ति—विद्यन्ते—सन्तीत्यर्थः. अथवा अस्त्ययं पक्षो यदुत *'एगइय'*त्ति एकका:—एके—केचनेत्यर्थः. 'जीवा आत्मारम्भा अपि'इत्यादावपिशब्द उत्तरपदापेक्षया समुच्चये, स चात्मा-रम्भत्वादिधर्माणामेकाश्रयताप्रतिपादनार्थः, भिन्नाश्रयताप्रतिपादनार्थो वा; एकाश्रयत्वं च कालभेदेनावगन्तव्यम्, तथाहि:—कदाचिदात्मारम्भाः, कदाचित् परारम्भाः, कदाचित् तदुभयारम्भाः; अत एव नोऽनारम्भाः. भिन्नाऽऽश्रयत्वं त्वेवम्—एके जीवा असंयता इत्यर्थः, आत्मारम्भा वा, परारम्भा वेत्यादि. अथैकस्वभावत्वाद् जीवानां भेदमसंभावयन्नाह:—*'से केणट्ठेणं'*ति अथ केन कारणेनेत्यर्थः. *'दुविहा पन्नत्त'*त्ति मया चान्यैश्च केवलिभिः, अनेन समस्तसर्वविदां मताभेदमाह, मतभेदे तु विरोधवचनतया तेषामसत्यवचनताऽऽपत्तिः, पाटलीपुत्रस्वरूपाभिधायक-विरुद्धवचनपुरुषकदम्बकवदिति. प्रमत्तसंयतस्य हि शुभोऽशुभश्च योगस्स्यात् संयतत्वात्, प्रमादपरत्वाच्च. इत्यत आह:—*'सुहं जोगं पडुच्च'*त्ति शुभयोग–उपयुक्ततया प्रत्युपेक्षणादिकरणम्. अशुभयोगस्तु तदेवाऽनुपयुक्ततया. आह च:—*"[1]पुढवी-आउक्काए-तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं पडिलेहणापमत्तो छण्हं पि विराहओ होइ."* तथा *"[2]सव्वो पमत्तजोगो समणस्स ओ होइ आरंभो"*त्ति. अतः शुभाऽशुभौ योगावात्मा-रम्भादिकारणमिति. *'अविरइं पडुच्च'*त्ति इहायं भावः—यद्यप्यसंयतानां सूक्ष्मैकेन्द्रियादीनां नाऽऽत्मारम्भकादित्वं साक्षादस्ति, तथाप्यविरतिं प्रतीत्य तदस्ति तेषाम्, नहि ते ततो निवृत्ताः, अतोऽसंयतानामविरतिस्तत्र कारणमिति. निवृत्तानां तु कथंचिदात्माद्यारम्भकत्वेऽप्यनारम्भकत्वम्. यदाह:—*"[3]जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स. सा होइ निज्जरफला अज्झत्थविसोहिजुत्तस्स."*'त्ति. *'से तेणट्ठेणं'*ति अथ तेन कारणेनेत्यर्थः.

२७. आगळना प्रकरणमां नैरयिकादिना धर्मनी वक्तव्यता कही, ए वक्तव्यता आरंभपूर्वक होय छे माटे हवे आरंभनुं निरूपण करतां कहे छे:- ['जीवा णं भंते ! किं आयारंभा?' इत्यादि] 'हे भगवन्! शुं जीवो आत्मारंभी छे?' इत्यादि. आरंभ एटले जीवने उपघात-उपद्रव, सामान्य रीते कहीए तो आश्रवद्वारे प्रवृत्ति करवी. तेने विषे आत्माने जे आरंभे, अथवा आत्मावडे स्वयं आरंभ करे ते आत्मारंभी. तथा परने अथवा परवडे आरंभ करे ते परारंभी. आत्मा अने पररूप उभयने, अथवा ते उभयवडे आरंभ करे ते उभयारंभी. अने (जेओ) आत्मा, पर अने उभय संबंधी आरंभ रहित होय ते अनारंभी कहेवाय. आ प्रमाणे प्रश्न छे. आ स्थले (मूळमां) उत्तरसूत्र स्पष्ट छे. ['अत्थि'] ['एगइय' त्ति] केटलाक जीवो आत्मारंभी पण छे. 'जीवो आत्मारंभी पण छे' इत्यादिने विषे 'अपि पण' शब्द पूर्वपद अने उत्तरपदना संबंधनो सूचक छे. तेथी ते 'अपि' शब्द 'आत्मारंभिपणुं' इत्यादि धर्मोना एकाश्रयपणाने प्रतिपादन करवाने, अथवा भिन्नाश्रयपणाने प्रतिपादन करवाने योज्यो छे. एकाश्रयपणुं काळना भेदे समजवुं. ते आ प्रमाणे छे: (एक ज जीव) कोइ समये आत्मारंभी, कोइ समये परारंभी अने कोइ वखते उभयारंभी होय छे: माटे ज (जीव) अनारंभी नथी. भिन्नाश्रयपणुं (जुदा जुदा जीवोनी अपेक्षाए) छे, ते आ प्रमाणे:-केटलाक जीवो असंयत जीवो 'आत्मारंभी तथा परारंभी पण होय छे' इत्यादि. सर्व जीवोनी समान स्वभावता होवाथी पूर्वोक्त (कोइ एक जीव आत्मारंभी, कोइ एक जीव अनारंभी इत्यादि) प्रकारे जीवोमां भिन्न स्वभावता केम होइ शके? एम जीवोना भेदनी असंभावना करतां प्रश्नकार कहे छे के: ['से केणट्ठेणं' ति] (हे भगवन्!) 'तेनुं शुं कारण छे?' ए प्रमाणे अर्थ छे. ['दुविहा पन्नत्त' त्ति] 'में तथा अन्य केवलिओए (जीवो) बे प्रकारे प्ररूप्या छे' आ वाक्यवडे समस्त सर्वज्ञोना मतनो अभेद-एकमत-कह्यो. जो मतनो भेद थाय तो पाटलीपुत्र पटना शहेरना स्वरूपने कहेनार विरुद्धवचनवाळा पुरुषोना समूहनी पेठे विरुद्ध वचनो थवाथी तेओमां असत्यवक्तृत्व खोटाबोलापणुं आवे. प्रमत्त संयतने संयत होवाथी शुभ अने प्रमादी होवाथी अशुभ योग होय छे. तेथी कह्युं छे के:- ['सुहं जोगं पडुच्च' त्ति] 'शुभ योगने आश्री' उपयोगपूर्वक पडिलेहणादि करवां ते शुभयोग. अने उपयोगरहित पडिलेहणादि करवां ते अशुभयोग. कह्युं छे के:—"प्रतिलेखनाने विषे प्रमादी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छएनो पण विराधक थाय छे." तथा "श्रमणनो सर्व प्रमत्त योग प्रमादयुक्त मन, वचन अने कायानो योग आरंभरूप होय छे." आथी शुभाशुभ योगो आत्मारंभादिनां कारण थाय छे. ['अविरइं पडुच्च' त्ति] 'अविरतिने आश्री' आ स्थळे आवो आशय छे: जो के असंयत सूक्ष्मएकेंद्रियादिरूप (पृथिवी, पाणी वगेरेना) जीवोने साक्षात् आत्मारंभादि नथी, तो पण तेओनी अविरतिने आश्री तेओने आत्मारंभादि छे. कारण के ते सूक्ष्मएकेंद्रियादिक जीवो, अविरतिवाळा होवाथी अविरतिथी निवृत्ति थया नथी: माटे असंयतोने आत्मारंभादिमां अविरति कारण छे. विरतिवाळाओने तो कथंचिद् आत्मारंभादि होवां छतां पण आरंभकपणुं नथी. कह्युं छे के:-"अध्यात्मविशुद्धियुक्त, सूत्रमां बतावेली समग्र विधिवाळा अने यतनासहित पुरुषने जे विराधना थाय, ते निर्जरा फलवाळी छे." ['से तेणट्ठेणं' ति] 'ते कारणथी' ए प्रमाणे अर्थ छे.

आरंभनिरूपण.

आत्मारंभादि.

जीवोमां भेद केम ?

सर्वज्ञमताभेद.

शुभयोग.

अविरति.

गाथा.

---

१. प्र० छाया:—पृथिवी-अप्काय-तेजो-वायु-वनस्पति-त्रसानाम्, प्रतिलेखनाप्रमत्तः षण्णामपि विराधको भवति. २. सर्वः प्रमत्तयोगः श्रमणस्य तु भवति आरम्भः. ३. या यतमानस्य भवेद् विराधना सूत्रविधिसमग्रस्य, सा भवति निर्जरफला अध्यात्मविशुद्धियुक्तस्य:—अनु०

१. विशेष ए के:—'अत्थि-अस्ति' ए अव्यय छे, माटे 'सन्ति' ए बहुवचनना अर्थमां पण 'अस्ति' शब्द वपरातो होवाथी अहीं 'अस्ति'नो 'सन्ति' अर्थ कर्यो छे. अथवा 'अस्ति' शब्द क्रियापदअर्थवाळो न लेतां पक्षांतरसूचक लेवो अर्थात् 'शुं आ पक्ष छे ?':—श्रीअभयदेव.

नैरयिकादि आत्मारंभ वगेरे.

४९. प्र०—नेरइयाँ णं भंते ! कि आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अणारंभा ?

४९. उ०—गोयमा ! नेरइया आयारंभा वि, जाव–णो अणारंभा.

५०. प्र०—से केणट्ठेणं ?

५०. उ०—गोयमा ! अविरतिं पडुच्च से तेणट्ठेणं, 'जाव–नो अणारंभा.' एवं जाव–असुरकुमारा वि.

५१. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, मणुस्सा जहा जीवा, नवरं–सिद्धविरहिया भाणियव्वा.

५२. वाणमंतरा जाव–वेमाणिया, जहा नेरइया.

५३. सलेस्सा जहा ओहिया. कण्हलेसस्स, नीललेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं–पमत्त–अप्पमत्ता न भाणियव्वा. तेउलेसस्स, पम्हलेसस्स, सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा, नवरं–सिद्धा न भाणियव्वा.

४९. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको शुं आत्मारंभ, परारंभ, तदुभयारंभ छे के अनारंभ छे ?

४९. उ०—हे गौतम ! नैरयिको आत्मारंभ पण छे अने यावत्–अनारंभ नथी.

५०. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

५०. उ०—हे गौतम ! अविरतिनी अपेक्षाए–माटे ते हेतुथी–अविरतिरूप हेतुथी–नैरयिको यावत्–'अनारंभ नथी.' ए प्रमाणे यावत्–असुरकुमारो पण जाणवा.

५१. पूर्वोक्त सामान्य जीवोनी पेठे पंचेंद्रियतिर्यंचयोनिको अने मनुष्यो जाणवा. विशेष ए केः–अहीं तेमांना–ते जीवोमांना–सिद्धो न कहेवा.

५२. नैरयिकोनी पेठे वानव्यंतरो अने यावत्–वैमानिको जाणवा.

५३. लेश्यावाळा जीवो सामान्य जीवोनी पेठे कहेवा. कृष्णलेश्यावाळा अने नीललेश्यावाळा जीवो पण सामान्य जीवोनी पेठे जाणवा. विशेष ए केः–अहीं ते सामान्य जीवोमांना प्रमत्त अने अप्रमत्त जीवो न कहेवा. तथा तेजोलेश्यावाळा, पद्मलेश्यावाळा अने शुक्ललेश्यावाळा जीवो सामान्य जीवोनी पेठे जाणवा. तेमां विशेष ए केः–ते जीवोमांना सिद्धो अहीं न कहेवा.

२८. अथात्मारम्भकत्वादित्वमेव नारकादिचतुर्विंशतिदण्डकैर्निरूपयन्नाहः–'*नेरइया णं*'इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–'*मणुस्स*' इत्यादावयमर्थः, मनुष्येषु संयता–ऽसंयत–प्रमत्ता–ऽप्रमत्तभेदाः पूर्वोक्तास्सन्ति, ततस्ते यथा जीवास्तथाऽध्येतव्याः, किंतु 'संसारसमापन्ना इतरे च ते' न वाच्याः, भववर्तित्वादेव तेषाम्. इत्येतदेवाऽऽहः–'*सिद्धिविरहिए*'इत्यादि. व्यन्तरादयो यथा नारकास्तथाऽध्येयाः, असंयतत्वसाधर्म्यादिति. आत्मारम्भकत्वादिभिर्धर्मैर्जीवा निरूपितास्ते च सलेश्याश्चाऽलेश्याश्च भवन्तीति सलेश्यांस्तांस्तैरेव निरूपयन्नाहः–'*सलेस्सा जहा ओहिय*'त्ति लेश्या कृष्णादिद्रव्यसान्निध्यजनितो जीवपरिणामः. यदाहः–''कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मनः, स्फटिकस्येव तत्राऽयं लेश्याशब्दः प्रयुज्यते.'' तत्र सलेश्या लेश्यावन्तो जीवाः '*जहा ओहिय*'त्ति यथा नारकादिविशेषणवर्जिता जीवा अधीताः–'*जीवा णं भंते ! किं आयारंभा, परारंभा ?*'इत्यादिना दण्डकेन तथा सलेश्या जीवा अपि वाच्याः. सलेश्यानामसंसारसमापन्नत्वस्याऽसंभवेन 'संसारसमापन्न'–इत्यादिविशेषणवर्जितानां शेषाणां संयतादिविशेषणानां तेष्वपि युज्यमानत्वात्, तत्र चायं पाठक्रमः–''*सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं आयारंभा*'' इत्यादि. तदेव सर्वम्, नवरम्–जीवस्थाने 'सलेश्याः' इति वाच्यमिति अयमेको दण्डकः, कृष्णादिलेश्याभेदात् तदन्ये षट्, तदेवमेते सप्त. तत्र '*कण्हलेसस्स*'इत्यादि. कृष्णलेश्यस्य, नीललेश्यस्य, कापोतलेश्यस्य च जीवराशेर्दण्डको यथौघिकजीवदण्डकस्तथाऽध्येतव्यः प्रमत्ता-ऽप्रमत्तविशेषणवर्जः, कृष्णादिषु ह्यप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति, यच्चोच्यते ''*पुव्वपडिवण्णओ पुण अन्नयरीए ओ लेसाए*''त्ति. तद् द्रव्यलेश्यां प्रतीत्येति मन्तव्यम्. ततस्तासु प्रमत्ताद्यभावः, तत्र सूत्रोच्चारणमेवम्–''*कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किं आयारंभा, परारंभा,*

१. मूलच्छायाः—नैरयिका भगवन् ! आत्मारम्भाः, परारम्भाः, तदुभयारम्भाः, अनारम्भाः ? गौतम ! नैरयिका आत्मारम्भा अपि, यावत्–नो अनारम्भाः. तत्केनार्थेन ? गौतम ! अविरतिं प्रतीत्य, तत् तेनार्थेन यावत्–नो अनारम्भाः. एवं यावत्–असुरकुमारा अपि. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, मनुष्या यथा जीवा, नवरम्–सिद्धविरहिता भणितव्याः. वानव्यन्तरा यावत्–वैमानिकाः, यथा नैरयिकाः. सलेश्या यथा औघिकाः. कृष्णलेश्यस्य नीललेश्यस्य यथा औघिका जीवा, नवरम्–प्रमत्ताऽप्रमत्ता न भणितव्याः. तेजोलेश्यस्य, पद्मलेश्यस्य, शुक्ललेश्यस्य यथा औघिका जीवाः, नवरम्–सिद्धा न भणितव्याः–अनु०

२. संयता-ऽसंयत–प्रमत्ता–ऽप्रमत्तानाम् ३. लेश्या–शब्दार्थश्चायम्—लिश्यते श्लिष्यते कर्मणा सह आत्मा अनयेति लेश्या–कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात् आत्मनः शुभा-ऽशुभपरिणामविशेषः–चतुर्थकर्मग्रन्थे प्रथमगाथाटीकायाम्. (भा० पृ–९२) ४. पूर्वोक्तः–अनु०

५. प्र० छाया.—सलेश्या भगवन् ! जीवाः किमात्मारम्भाः ?. ६. पूर्वप्रतिपन्नकः पुनरन्यतरस्यां तु लेश्यायाम्. एतद् गाथार्धं श्रीभद्रबाहुस्वामिविरचितावश्यकनिर्युक्तौ उपोद्घातनिर्युक्तौ, तत्रेदं चैतस्य पूर्वार्धम्:–''सम्मत्तसुअं सव्वासु लहइ, सुद्धासु तीसु य चरित्तं'' ७. कृष्णलेश्या भगवन् ! जीवाः किमात्मारम्भाः, परारम्भाः, तदुभयारम्भाः, अनारम्भाः ? गौतम ! आत्मारम्भा अपि यावत्–नो अनारम्भाः. तत् केनार्थेन भगवन् ! एवमुच्यते ? गौतम ! अविरतिं प्रतीत्य:–अनु०

तदुभयारंभा, अनारंभा? गोयमा! आयारंभा वि जाव–नो अणारंभा. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा! अविरइं पडुच्च." एवं नील–कापोतलेश्यादण्डकावपीति. तथा तेजोलेश्यादेर्जीवराशेर्दण्डकाः यथौघिका जीवास्तथा वाच्याः. नवरम्—तेषु सिद्धा न वाच्याः, सिद्धानामलेश्यत्वात्. ते च एवम्:–"तेउलेस्सा णं भंते! जीवा किं आयारंभा?. ४. गोयमा! अत्थेगतिया आयारंभा वि जाव–णो अणारंभा. अत्थेगइया नो आयारंभा, जाव–अणारंभा. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा! दुविहा तेउलेस्सा पन्नत्ता, तं जहा– संजया य, असंजया य." इत्यादि.

४८. हवे आत्मारंभकपणादिनुं ज नैरयिकादि चोवीस दंडक द्वारा निरूपण करतां कहे छे:–['नेरइया णं' इत्यादि] स्पष्ट छे. विशेषः– ['मणुस्स'] मनुष्य इत्यादि पदमां आ अर्थ छे:–मनुष्योने विषे पूर्वे संयत, असंयत, प्रमत्त अने अप्रमत्त भेदो कह्या छे. तेथी तेओ (मनुष्यो) जे प्रकारे जीवो छे, ते प्रकारे कहेवा. परंतु तेओ (मनुष्यो) संसारसमापन्न–संसारी, अने असंसारसमापन्न–मुक्त, ए प्रमाणे बे भेदवाळा न कहेवा. कारण के संयत, असंयत, प्रमत्त अने अप्रमत्त मनुष्यो संसारने विषे ज वर्तवावाळा छे. ए माटे ज कहे छे के: ['सिद्धविरहिए' इत्यादि] 'सिद्ध विरहित' वगेरे. जेवी रीते नैरयिको चिन्तव्या तेवी रीते व्यंतरादि पण चिन्तववा. कारण के असंयतता बन्नेने समान छे. आत्मारंभकत्वादि धर्मोवडे जीवो निरूप्या, वळी ते (जीवो) लेश्यासहित अने लेश्यारहित होय छे. माटे लेश्यावाळा जीवोने आत्मारंभादि धर्मो द्वारा ज निरूपतां कहे छे के:–['सलेस्सा जहा ओहिय' त्ति] कृष्णादि द्रव्य–पदार्थ–ना समीपपणाथी जीवमां उत्पन्न थएला परिणाम विशेषने लेश्या[1] कहे छे. कह्युं छे के:– "कृष्ण वगेरे द्रव्यना संबंधथी स्फटिकमां जेम परिणाम थाय छे, तेम आत्माने विषे थता परिणामविशेषमां लेश्या शब्दनो प्रयोग थाय छे."[2] सलेश्या–लेश्यावाळा–जीवो. ['जहा ओहिय' त्ति] जेवी रीते सामान्ये–जेम 'हे भगवन्! शुं जीवो आत्मारंभी छे, परारंभी छे?' इत्यादि दंडकवडे नैरयिक वगेरे विशेषणो रहित–जीवो भण्या छे, तेम लेश्यावाळा जीवो पण (विशेषणो रहित–सामान्ये) कहेवा. लेश्यावाळा जीवोने विषे असंसारसमापन्नत्व–मुक्तत्व–सिद्धत्व–नो असंभव होवाथी, 'संसारसमापन्न' 'असंसारसमापन्न' इत्यादि विशेषणो रहित शेष 'संयत' वगेरे विशेषणो, तेओनो योग होवाथी जोडवां. तेने विषे आ प्रमाणे पाठक्रम कहेवो:–"हे भगवन्! शुं लेश्यावाळा जीवो आत्मारंभी छे?" इत्यादि पूर्वे कह्युं तेम कहेवुं. विशेष ए ज के, जीवने स्थाने 'लेश्यावाळा' ए प्रमाणे कहेवुं. ए रीते आ एक दंडक अने कृष्णादि (छ) लेश्याना भेदथी बीजा छ दंडक, आवी रीते बधा मेळवता सात दंडक थाय छे. ['कण्हलेसस्स' इत्यादि] जेवी रीते सामान्य जीवोनो दंडक कह्यो, तेवी रीते कृष्णलेश्यावाळा, नीललेश्यावाळा अने कापोतलेश्यावाळा जीव समूहनो दंडक कहेवो. परंतु प्रमत्त अने अप्रमत्त विशेषणो वर्जित कहेवो. अप्रशस्त भाववाळी कृष्णादि–कृष्ण, नील अने कापोत–लेश्यामां संयतपणुं नथी. "पूर्वे साधुपणाने प्राप्त थएलो जीव कोइ पण लेश्यामां होय छे" ए प्रमाणे जे कह्युं छे, ते द्रव्यलेश्याने आश्री मानवुं. तेथी (भावरूप) कृष्णलेश्यादिमां प्रमत्तादि विशेषणोनो अभाव कह्यो. तेने विषे सूत्रोच्चारण आ प्रमाणे छे:–"हे भगवन्! शुं कृष्णलेश्यावाळा जीवो आत्मारंभी छे, परारंभी छे, उभयना आरंभी छे के अनारंभी छे? हे गौतम! आत्मारंभी पण छे, यावत्–अनारंभी नथी. हे भगवन्! ते शा कारणथी एम कहो छो? हे गौतम! अविरतिने आश्री." आ प्रमाणे, नीललेश्या अने कापोतलेश्यानो पण दंडक कहेवो. तथा तेजोलेश्यादि त्रण लेश्यावाळा जीवराशिना त्रण दंडको जेवी रीते सामान्य जीवोने कह्या तेवी रीते कहेवा. विशेष ए छे के: तेजोलेश्यादि दंडकोमां सामान्य जीवनुं सरखापणुं लेतां सिद्धो न कहेवा. कारण के सिद्धो लेश्यारहित होय छे. तेओ आ प्रमाणे भणवा:–"हे भगवन्! शुं तेजोलेश्यावाळा जीवो आत्मारंभी छे, परारंभी छे, उभयारंभी छे के अनारंभी छे? हे गौतम! केटलाक आत्मारंभी पण छे, यावत् अनारंभी नथी. अने केटलाक आत्मारंभी नथी, यावत्–अनारंभी होय छे. हे भगवन्! ते शा कारणथी एम कहो छो? हे गौतम! तेजोलेश्या बे प्रकारनी कही छे, ते आ प्रमाणे छे:–संयत अने असंयत". इत्यादि.

नैरयिकादिआरंभ.

सलेश्यआरंभ.

लेश्या.

तेजोलेश्या.

ज्ञानादि.

५४. प्र०—इहभविए भंते! णाणे, परभविए नाणे, तदुभयभविए नाणे?

५४. उ०—गोयमा! इहभविए वि नाणे, परभविए वि नाणे, तदुभयभविए वि नाणे. दंसणं पि एवमेव.

५५. प्र०—इहभविए भंते! चरित्ते, परभविए चरित्ते, तदुभयभविए चरित्ते?

५४. प्र०—हे भगवन्! ज्ञान ऐहभविक छे, पारभविक छे के तदुभयभविक छे?

५४. उ०—हे गौतम! ज्ञान ऐहभविक पण छे, पारभविक पण छे अने तदुभयभविक पण छे. दर्शन पण ए ज प्रमाणे जाणवुं.

५५. प्र०—हे भगवन्! चारित्र ऐहभविक छे, पारभविक छे के तदुभयभविक छे?

१. प्र०छाः– तेजोलेश्या भगवन्! जीवाः किमात्मारम्भाः? ४. गौतम! सन्त्येकका आत्मारम्भा अपि यावद्–नो अनारम्भाः. सन्त्येकका नो आत्मारम्भाः यावत्–अनारम्भाः. तत् केनार्थेन भगवन्! एवमुच्यते? गौतम! द्विविधा तेजोलेश्या प्रज्ञप्ता, तद्यथा:–संयता च असंयता चः–अनु०

१. 'लेश्या'शब्दनो अर्थ आ छे:—'लिश् चोंटवुं' धातु उपरथी 'लेश्या' शब्द बने छे. लेश्या=जे वडे कर्म साथे आत्मा चोंटे ते, अर्थात् कोइ पण संयोगथी आत्मानो एक प्रकारनो शुभ के अशुभ परिणाम–चोथा कर्मग्रंथनी पेली गाथानी टीका (भा० पृ–९२). २. आ अर्थने जणावनारी गाथा–श्रीमद्भद्रबाहुस्वामिरचित आवश्यकनिर्युक्तिमां उपोद्घातनिर्युक्तिमां छे:–अनु०

१. मूलच्छायाः—ऐहभविकं भगवन्! ज्ञानम्, पारभविकं ज्ञानम्, तदुभयभविकं ज्ञानम्? गौतम! ऐहभविकमपि ज्ञानम्, पारभविकमपि ज्ञानम्, तदुभयभविकमपि ज्ञानम्, दर्शनमपि एवमेव. ऐहभविकं भगवन्! चारित्रम्, पारभविकं चारित्रम्, तदुभयभविकं चारित्रम्?:–अनु०

५५. उ०—*गोयमा ! इहभविए चरित्ते, नो परभविए चरित्ते, नो तदुभयभविए चरित्ते. एवं तवे, संजमे.*

५५. उ०—हे गौतम ! चारित्र ऐहभविक छे, पण पारभविक के तदुभयभविक चारित्र नथी. ए प्रमाणे तप अने संयम पण जाणवा.

२९. भवहेतुभूतमारम्भं निरूप्य भवाऽभावहेतुभूतं ज्ञानादिधर्मकदम्बकं निरूपयन्नाह:—*'इहभविए'*इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—इहभवे वर्तमानजन्मनि यद् वर्तते, नतु भवान्तरे तदैहभविकम्, काकुपाठाचेह प्रश्नताऽवसेया. तेन किमैहभविकं ज्ञानम्, उत *'परभविए'*त्ति परभवे वर्तमानाऽनन्तरं भाविन्यनुगामितया यद् वर्तते तत् पारभविकम्, आहोस्वित् *'तदुभयभविए'*त्ति तदुभयरूपयोरिह—परलक्षणयोर्भवयोर्यदनुगामितया वर्तते, तत् तदुभयभविकम्. इदं चैवं न पारभविकाद् भिद्यते, इति परतरभवेऽपि यदनुयाति तद् ग्राह्यम्, इहभवव्यतिरिक्तत्वेन परतरभवस्याऽपि परभवत्वात्, ह्रस्वता निर्देशश्चेह सर्वत्र प्राकृतत्वाद् इति प्रश्न:. निर्वचनमपि सुगमम्. नवरम्:—*'इहभविए'*त्ति ऐहभविकं यदिहाऽधीतं नाऽनन्तरभवेऽनुयाति. पारभविकं यदनन्तरभवेऽनुयाति. तदुभयभविकं तु यदिहाऽधीतं परभवे, परतरभवे चानुवर्तते इति. *'दंसणं पि एवमेव'*त्ति दर्शनमिह सम्यक्त्वमवसेयं मोक्षमार्गोऽधिकारत्वात्, यदाह:—"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" यत्र तु ज्ञान—दर्शनयोरेव ग्रहणं स्यात् तत्र दर्शनं सामान्याऽवबोधरूपमवगेयमिति. *'एवमेव'*त्ति ज्ञानवत् प्रश्न-निर्वचनाभ्यां समवसेयम्. चारित्रसूत्रे निर्वचने विशेष:, तथाहि:—चारित्रमैहभविकमेव, नहि चारित्रवानिह भूत्वा तेनैव चारित्रेण पुनश्चारित्री भवति, यावज्जीविताऽवच्छिन्नत्वात् तस्य. किंच, चारित्रिणः संसारे सर्वविरतस्य, देशविरतस्य च देवेष्वेवोत्पादात्, तत्र च विरतेरत्यन्तमभावात्, मोक्षगतावपि चारित्रसंभवाऽभावात्, चारित्रं हि कर्मक्षपणायाऽनुष्ठीयते. मोक्षे च तस्याऽकिञ्चित्करत्वात्, यावज्जीवमिति प्रतिज्ञासमाप्तेस्तदन्यस्याश्चाग्रहणाद् अनुष्ठानरूपत्वाच्च चारित्रस्य शरीराऽभावे च तदयोगात्. अत एवोच्यते—"*सिद्धे*[3] *नो चरित्ती.*" "*नो अचरित्ती, नो चरित्ताचरित्ती*"त्ति च अविरतेरभावादिति. अनन्तरं चारित्रमुक्तम्, तच्च द्विधा:—तप:—संयमभेदादिति. तयोर्निरूपणायाऽतिदेशमाह.—*'एवं तवे, संजमे'*त्ति प्रश्न—निर्वचनाभ्यां चारित्रवत् तपः संयमौ वाच्यौ, चारित्ररूपत्वात् तयोरिति.

ज्ञानादि.

२९. भवना कारणभूत आरंभनुं निरूपण कर्या बाद हवे भवना नाशमां कारणभूत ज्ञानादि धर्मसमूहनुं निरूपण करतां कहे छे के:- ['इहभविए'] इत्यादि व्यक्तार्थक छे. विशेष, भवान्तर बीजा भव मां नहीं पण आ भवमां एटले चालता जन्ममां जे होय, ते ऐहभविक समजवुं. अहीं काकुपाठथी प्रश्नो निश्चय कर्यो प्रश्न समजवो. तेथी शुं आ भवमां वर्तनारावाळुं ज्ञान छे? के ['परभविए' त्ति] पारभविक चालु भव पछी (अनन्तर) थवावाळा भवने विषे सहचरपणे वर्तवावाळुं ज्ञान छे? अथवा शुं ['तदुभयभविए' त्ति] तदुभयभविक ज्ञान छे? 'तदुभयभविक' शब्दनी (चालु भव अने परभवस्वरूप उभयभवमां जे सहचरपणे वर्तवावाळु, ते तदुभयभविक ज्ञान) आ प्रमाणे व्युत्पत्ति करवाथी तदुभयभविक ज्ञान, पारभविक-परभवमां वर्तवावाळा ज्ञानथी जूदुं थयुं नहीं, माटे परतर आगामी त्रीजा, चोथा वगेरे भवमां पण जे ज्ञान जाय ते ज्ञानने तदुभयभविक ज्ञान समजवुं. कारण के परतरभव पण चालता भवथी भिन्न होवाथी परभवस्वरूप ज छे. ('तदुभयभविक' शब्दमां रहेला 'तदुभय' शब्दवडे ग्रहण कराता इहभव अने परभवमां, परभव शब्दवडे परतर भवनुं पण ग्रहण करवुं. आ प्रमाणे परतरभवना ग्रहणथी तदुभयभविक ज्ञान पारभविक ज्ञानथी जुदुं देखाश्युं.) आवी रीते प्रश्नसूत्र अने उत्तरसूत्र पण सुगम छे. विशेष, ['इहभविए' त्ति] चालता भवमां भणाएलुं आगामी भवमां न जाय ते ऐहभविक ज्ञान. चालता भवमां भणाएलुं अनन्तर बीजा भवमां जाय ते पारभविक ज्ञान. चालता भवमां भणाएलुं परभवमां तथा परतरभवमां जाय ते तदुभयभविक ज्ञान. ['दंसणं पि एवमेव' त्ति] दर्शन पण आ प्रमाणे समजवुं. अहीं मोक्षमार्गना अधिकारथी (दर्शन) शब्दवडे 'सम्यक्त्व' समजवु. कह्युं छे के: "सम्यग् दर्शन, ज्ञान अने चारित्र ए मोक्षमार्ग छे." जे स्थले ज्ञान, दर्शननुं ज ग्रहण कर्युं होय, ते स्थले 'दर्शन' एटले सामान्य बोधरूप ज्ञान समजवुं. ['एवमेव' त्ति] प्रश्न अने उत्तरवडे दर्शन पण ज्ञाननी जेम समजवुं. चारित्र सूत्रमां उत्तरने विषे विशेष छे, ते आ प्रमाणे छे: चारित्र आ भवमां ज वर्तवावाळुं छे, जीव आ भवमां चारित्रवाळो थइ, ए ज चारित्रवडे बीजा भवमां चारित्रवाळो थतो नथी. कारण के ग्रहण करेलुं चारित्र यावज्जीव पर्यंत जीवतां सुधी ज होय छे. वळी सर्वविरत तथा देशविरत चारित्रवाळानी उत्पत्ति देवलोकमां ज होय छे अने देवलोकमां विरतिनो तद्दन अभाव होवाथी, त्यां पण चारित्रनो असंभव छे. चारित्रवाळा जीवोनी मोक्षगति थइ होय तो ते गतिमां पण चारित्रनो असंभव छे. कारण के चारित्रनो अंगीकार कर्मना क्षय माटे छे. माटे मोक्षमां चारित्रनुं कांइ पण प्रयोजन नथी. वळी प्रतिज्ञानी आ भवमां ज समाप्ति होवाथी अने अन्य भव संबंधी प्रतिज्ञाने नहीं ग्रहण करेली होवाथी, चारित्र पर अन्य भवमां जतुं नथी. तथा चारित्र क्रियारूप होवाथी, (शरीरमां संभवे छे. अने) मोक्षमां शरीरनो अभाव होवाथी, त्यां चारित्रनो योग संभवतो नथी. एथी ज कहेवाय छे के:- "सिद्धो चारित्रवाळा नथी". "अचारित्रवाळा नथी. तेम चारित्राऽचारित्री पण नथी." (मोक्षमां अनुष्ठानरूप चारित्रनो अभाव होवाथी 'चारित्रवाळा नथी' ए प्रमाणे कह्युं.) तथा अविरतिनो अभाव होवाथी 'अचारित्री तथा चारित्राचारित्री नथी' ए प्रमाणे कह्युं. हमणां कहेवाएलुं चारित्र-तप अने संयमना भेदथी बे प्रकारनुं छे. माटे हवे ते बन्नेनुं (तप अने संयमनुं) निरूपण करवा सारु अतिदेश कहे छे: ['एवं तवे, संजमे' त्ति] तप अने संयम ए प्रमाणे छे. तप अने संयम प्रश्नोत्तरवडे चारित्रनी जेम कहेवां, कारण के तेओ बन्ने चारित्ररूप ज छे.

ऐहभविक-पारभविक-उभयभविक.

दर्शन.

चारित्र.

तप अने संयम.

१. मूलच्छाया:—गौतम ! ऐहभविकं चारित्रम्, नो पारभविकं चारित्रम्, नो तदुभयभविकं चारित्रम्. एवं तपः, संयमः—अनु०

२. तत्त्वार्थाधिगमे प्रथमाध्याये प्रथमसूत्रम्. ३. प्र० छाया:—सिद्धा नो चारित्रिणः, नो अचारित्रिणः, नो चारित्राचारित्रिणः—अनु०

१. 'ऐहभविक अने पारभविक' ए बन्ने शब्दोने बदले 'इहभविअ अने परभविअ' ए बे शब्दो मूक्या छे ते प्राकृतने धोरणे ह्रस्व करीने मूक्या छे:—श्रीअभयदेव. २. तत्त्वार्थाधिगमसूत्रनुं प्रथम अध्यायनुं प्रथमसूत्र:—अनु०

असंवृत अनगार.

५६. प्र०—[१]असंवुडे णं भंते ! अणगारे किं सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइ, सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ ?

५६. उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

५७. प्र० से केणट्ठेणं जाव—नो अंतं करेइ ?

५७. उ० गोयमा ! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ, हस्सकालठिइयाओ दीहकालठिइयाओ पकरेइ, मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ पकरेइ; आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ. अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणइ, अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ, से तेणट्ठेण गोयमा ! असंवुडे अणगारे णो सिज्झइ, जाव -णो अंतं करेइ.

५६. प्र० —हे भगवन् ! शुं असंवृत अनगार सिद्ध थाय छे, बोध पामे छे, मूकाय छे, निर्वाण पामे छे, सर्व दुःखोनो अंत करे छे ?

५६. उ० —हे गौतम ! आ अर्थ ठीक नथी.

५७. प्र० हे भगवन् ! ते कोण कारणथी यावत्—अंतने नथी करतो ?

५७. उ० हे गौतम ! असंवृत अनगार आयुष्यने छोडीने शिथिल बंधने बांधेली साते कर्मप्रकृतिओने घन बंधने बांधेली करवानो आरंभ करे छे, ह्रस्व अल्प-काळ स्थितिवाळीने दीर्घ काळ स्थितिवाळी करवानो आरंभ करे छे, मंद अनुभागवाळीने तीव्र अनुभागवाळी करवानो आरंभ करे छे, अल्प-थोडा-प्रदेशवाळीने बहु प्रदेशवाळी करवानो आरंभ करे छे अने आयुष्य कर्मने तो कदाचित् बांधे छे, तेम कदाचित् बांधतो पण नथी. अशातावेदनीयकर्मने तो वारंवार एकठुं करे छे. तथा अनादि, अनंत, दीर्घमार्गवाळा, चारगतिवाळा संसारारण्यने विषे पर्यटन करे छे. गौतम ! ते कारणथी असंवृत अनगार सिद्ध थतो नथी, यावत्—सर्व दुःखोनो अंत नाश-करतो नथी.

३०. ननु सत्यपि ज्ञानादेर्मोक्षहेतुत्वे दर्शन एव यतितव्यम्, तस्यैव मोक्षहेतुत्वात्. यदाह· "*भट्टेण चरित्ताओ सुट्ठुयरं दंसणं गहेअव्वं, सिज्झंति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिज्झंति*" इति यो मन्यते तं शिक्षयितुं प्रश्नयन्नाह —'*असंवुडे णं*'इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'*असंवुडे णं*'ति असंवृतोऽनिरुद्धाश्रवद्वारः, '*अणगारे*'त्ति अविद्यमानगृह —साधुरित्यर्थः. '*सिज्झइ*'त्ति सिध्यति- अन्तिमचरमभवतया सिद्धिगमनयोग्यो भवति. '*बुज्झइ*'त्ति स एव यदा समुत्पन्नकेवलज्ञानतया स्व—परपर्यायोपेतान् निखिलान् जीवादिपदार्थान् जानाति, तदा 'बुध्यते' इति व्यपदिश्यते. '*मुच्चइ*'त्ति स एव सञ्जातकेवलबोधो भवोपग्राहिकर्मभिः प्रतिसमयं विमुच्यमानो 'मुच्यते' इत्युच्यते. '*परिनिव्वाइ*'त्ति स एव तेषां कर्मपुद्गलानामनुसमयं यथा यथा क्षयमाप्नोति, तथा तथा शीतीभवन् 'परिनिर्वाति' इति प्रोच्यते. '*सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ*'त्ति स एव चरमभवाऽऽयुषोऽन्तिमसमये क्षपिताऽशेषकर्मांशः 'सर्वदुःखानामन्तं करोति' इति भण्यते. इति प्रश्नः.

३०. जो के ज्ञानादिया मोक्षनुं हेतुपणुं छे, तो पण दर्शनमां ज यत्न करवो जोइए, कारण के मोक्षनुं खरेखरुं कारण दर्शन ज छे. कह्युं छे के "चारित्रथी भ्रष्ट थएलाए दर्शननुं ज ग्रहण करवुं ए अत्यंत सुंदर छे. कारण के चारित्रथी रहित जीव सिद्ध थाय छे, पण दर्शनथी रहित सिद्ध थतो नथी." आ प्रमाणे जे माने छे, तेओने शिक्षा बोध आपवाने प्रश्न करता कहे छेः ['असंवुडे णं' इत्यादि] 'असंवृत इत्यादि' स्पष्ट छे. विशेष, ['असंवुडे णं' ति] असंवृत आश्रवद्वारने—कर्म आववाना मार्गने नहीं रोकनार, ['अणगारे' त्ति] जेने घर न होय ते अनगार अर्थात् साधु. ['सिज्झइ' त्ति] छेल्लो भव मळवाथी सिद्धिमां गमन करवाने योग्य थाय छे. ['बुज्झइ' त्ति] ते ज (सिद्धिने विषे गमन करवाने योग्य) ज्यारे उत्पन्न थएला केवलज्ञानथी स्वपरपर्यायसहित समग्र जीवादि पदार्थने जाणे छे, त्यारे 'बोध पामे छे' ए प्रमाणेनो व्यवहार थाय छे. ['मुच्चइ' त्ति] ते उपजेल केवलज्ञानवाळो जीव प्रतिसमय भवोपग्राहि कर्मोथी मूकातो 'मुक्त थाय छे' ए प्रमाणेनो व्यवहार थाय छे. ['परिनिव्वाइ' त्ति] दरेक समये जेम जेम कर्मपुद्गलोनो क्षय करे छे, तेम तेम शीतळ थतो ते ज भवोपग्राहि कर्मोथी मूकातो जीव 'शीतळ थाय छे' ए प्रमाणे कहेवाय छे. ['सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ' त्ति] चरम भवना अंत समये समस्त कर्मांशनो क्षय करवावाळो ते ज जीव 'सर्व दुःखनो अंत करे छे' ए प्रमाणे भणाय छे. आ प्रमाणे प्रश्नसूत्र छे.

असंवृत अनगार.

दर्शन.

असंवृत—अनगार.

सिध्यति—बुध्यते ?

मुच्यते ?

निर्वाति ?

सर्व दुःखनाश० ?

३१. उत्तरं तु कण्ठ्यम्. नवरम्, '*णो इणट्ठे समट्ठे*'त्ति नो नैव, '*इणट्ठे*' त्ति अयमनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षः, अर्थो भावः, समर्थो बलवान्, वक्ष्यमाणदूषणमुद्गरप्रहरजर्जरितत्वात्. '*आउयवज्जाओ*'त्ति. यस्मादेकत्र भवग्रहणे सकृदेवाऽन्तर्मुहूर्तमात्रकाले एवाऽऽयुषो बन्धस्तत उक्तम्—आयुर्वर्जा इति. '*सिढिलबंधणबद्धाओ*'त्ति श्लथबन्धनं स्पृष्टता वा, निबद्धता वा, निधत्तता वाः तेन बद्धा आत्मप्रदेशेषु संबन्धिताः, पूर्वाऽवस्थायामशुभतरपरिणामस्य कथंचिदभावाद् इति. शिथिलबन्धनबद्धा एताश्चाऽशुभा एव द्रष्टव्याः, असंवृतभावस्य निन्दाप्रस्तावात्.

---

१. मूलच्छायाः—असंवृतो भगवन् ! अनगारः किं सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, परिनिर्वाति, सर्वदुःखानामन्तं करोति ? गौतम ! नायमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन यावत्—अन्तं न करोति ? गौतम ! असंवृतोऽनगार आयुर्वर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः शिथिलबन्धनबद्धा गाढबन्धनबद्धाः प्रकरोति, ह्रस्वकालस्थितिका दीर्घकालस्थितिकाः प्रकरोति, मन्दाऽनुभावास्तीव्राऽनुभावाः प्रकरोति, अल्पप्रदेशाग्रा बहुप्रदेशाग्राः प्रकरोति; आयुष्कं च कर्म स्याद् बध्नाति, स्याद् न बध्नाति. असातवेदनीयं च कर्म भूयो भूय उपचिनोति, अनादिकं च अनवदग्रम्, दीर्घाध्वम्, चातुरन्तसंसारकान्तारमनुपर्यटति, तत् तेनार्थेन गौतम ! असंवृतोऽनगारो न सिध्यति, यावद्—नाऽन्तं करोतिः—अनु०

ता: किं ? इत्याह:—'धणिअबंधणबद्धाओ पकरेइ'त्ति गाढतरबन्धना बद्धाऽवस्था वा, निधत्ताऽवस्था वा, निकाचिता वा प्रकरोति, प्रशब्दस्यादिकर्मार्थत्वात् कर्तुमारभते, असंवृतत्वस्याऽशुभयोगरूपत्वेन गाढतरप्रकृतिबन्धहेतुत्वात्. आह च:—"जोगा पयडि-पएसं"ति. पौन:पुन्यभावे त्वसंवृतत्वस्य ता: करोत्येवेति. तथा ह्रस्वकालस्थितिका दीर्घकालस्थितिका: प्रकरोति, तत्र स्थिति:—उपात्तस्य कर्मणोऽवस्थानम्, तामल्पकालां महतीं करोतीत्यर्थ:. असंवृतत्वस्य कषायरूपत्वेन स्थितिबन्धहेतुत्वात्. आह च:—"ठिइं[3] अणुभागं कसायओ कुणइ" त्ति. तथा 'मंदाणुभाव' इत्यादि. इहाऽनुभावो विपाक:—रसविशेष इत्यर्थ:, ततश्च मन्दाऽनुभावा: परिपेलवरसा: सतीर्गाढरसा: प्रकरोति. असंवृतत्वस्य कषायरूपत्वादेव, अनुभागबन्धस्य च कषायप्रत्ययत्वादिति.

अंतर्मुहूर्त.
शिथिलबंध.
गाढबंध.
योग.
ह्रस्वकाळ.दीर्घकाळ.
कषाय.
मंदरस. तीव्ररस.

३१. उत्तरसूत्र सुगम छे. विशेष, ['णो इणट्ठे समट्ठे' त्ति] आ हमणां कहेलो होवाथी प्रत्यक्ष, जे अर्थ-भाव, ते समर्थ बलवान्-नथी. कारण के आगळ कहेवानी दूषणरूप मोगरीना प्रहारथी ते जीर्ण थएलो छे. ['आउयवज्जाओ' त्ति] एक भवग्रहणमां एक ज वखत मात्र अन्तर्मुहूर्त काळने विषे ज आयुष्यनो बंध थाय छे, तेथी आयुष्यने मूकीने (कर्मप्रकृतिओ) कही. ['सिढिलबंधणबद्धाओ' त्ति] शिथिलबंधन एटले कर्मोनी एक बीजा साथे स्पृष्टता, निबद्धता, अथवा निधत्तता जोडाइ जवुं ते. तेवडे बंधाएली आत्मप्रदेशोनी साथे संबंधवाळी कर्मनी-प्रकृतिओने करे छे. 'शिथिल बंधनवडे बंधाएली कर्मप्रकृतिओने' एम कहेवानुं कारण ए छे के: पूर्व अवस्थामां अत्यंत अशुभ परिणामनो कथंचित् अभाव छे. आ शिथिल बंधनवडे बंधाएली कर्मप्रकृतिओ अशुभ ज देखवी जाणवी. कारण के असंवृतपणानी आश्रवद्वारनी निंदानो प्रस्ताव छे.तेओने (शिथिल बंधनवडे बंधाएली कर्मप्रकृतिओने) केवी करे छे ? ते कहे छे: ['धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ' त्ति] अत्यंत गाढ बंधनवाळी एटले के, बद्ध अवस्थावाळी अथवा निधत्त अवस्थावाळी, अथवा निकाचित (अवस्थावाळी) करवानो आरंभ करे छे. कारण के असंवृतपणुं ए (मन वचन अने कायना) अशुभ योगस्वरूप होवाथी अत्यंत गाढ प्रकृति बंधननुं कारण छे. कह्युं छे के: "(जीव मन, वचन, अने कायना) योगथी प्रकृतिबंध अने प्रदेशबंधने करे छे." वारंवार असंवृतपणुं थवाथी ते प्रकृतिओने (तेवी) ज करे छे. तथा जे प्रकृतिओ थोडा समयनी स्थितिवाळी होय छे, तेओने लांबा काळनी स्थितिवाळी करवानो आरंभ करे छे. स्थिति ग्रहण कराएला कर्मोनुं रहेवुं, तेने अल्प काळवाळी स्थितिने मोटी (लांबा समय सुधी रहेनारी) करे छे. कारण के असंवृतपणुं ए कषायरूप होवाथी स्थितिबंधनुं कारण छे. कह्युं छे के:—"(जीव) कषायवडे स्थितिबंध अने रसबंध करे छे." ['मंदाणुभाव' इत्यादि] अहीं अनुभावनो अर्थ विपाक रसविशेष छे. तेथी मंद अनुभाववाळी तीव्र रसवाळी अथवा दुर्बल रसवाळी कर्मप्रकृतिओने, गाढ रसवाळी करवानो आरंभ करे छे. कारण के असंवृतपणुं ए कषाय स्वरूप ज छे अने कषाय ज अनुभागबंधनुं कारण छे.

३२. 'अप्पपएसग्गा' इत्यादि. अल्पं स्तोकं प्रदेशाग्रं कर्मदलिकपरिमाणं यासां तास्तथा. ता बहुप्रदेशाग्रा: प्रकरोति. प्रदेशबन्धस्याऽपि योगप्रत्ययत्वात्, असंवृतत्वस्य च योगरूपत्वाद् इति. 'आउयं च' इत्यादि. आयु: पुन: कर्म, स्यात् कदाचिद् बध्नाति, स्यात् कदाचिन्न बध्नाति. यस्मात् त्रिभागाद्यवशेषाऽऽयुष: परभवायु: प्रकुर्वन्ति, तेन यदा त्रिभागादिस्तदा बध्नाति. अन्यदा न बध्नातीति. तथा 'असाय' इत्यादि. असातवेदनीयं च दु:खवेदनीयं कर्म, पुनर्भूयो भूय:—पुन: पुनरुपचिनोति—उपचितं करोति. ननु कर्मसमकान्तर्वर्तित्वाद् असातवेदनीयस्य पूर्वोक्तविशेषणेभ्य एव तदुपचयप्रतिपत्ते: किमेतद्ग्रहणेन ? अत्रोच्यते; असंवृतोऽत्यन्तदु:खितो भवति इति प्रतिपादनेन भयजननाद् असंवृतत्वपरिहारार्थमिदम्, इत्यदुष्टमिति. 'अणाइयं'ति अविद्यमानाऽऽदिकम्, अज्ञातिकं वा—अविद्यमानस्वजनम्, ऋणं वाऽतीतम्—ऋणजन्यदु:स्थताऽतिक्रान्त दु:स्थतानिमित्ततया इति ऋणाऽतीतम्, अणं वाऽणकं पापम्, अतिशयेनेतं गतम्—अणातीतम्. 'अणवयग्गं'ति 'अवयग्गं'ति देशीवचनोऽन्तवाचक:, ततस्तन्निषेधाद् 'अणवयग्गं' अनन्तमित्यर्थ:. अथवाऽवनतमासन्नम्, अग्रमन्तो यस्य तत् तथा, तन्निषेधादनवनताग्रम्, एतदेव वर्णनाशाद् 'अनवताग्रम्' इति. अथवाऽनवगतमपरिच्छिन्नम्. अग्रं परिमाणं यस्य तत् तथा, अत एव 'दीहमद्धं' ति दीर्घाद्धं—दीर्घकालम्, दीर्घाध्वं वा दीर्घमार्गम्, 'चाउरंत'ति चातुरन्तं देवादिगतिभेदात्, पूर्वादिदिग्भेदाच्च चतुर्विभागम्, तदेव स्वार्थिकाऽणप्रत्ययोपादानात् चातुरन्तम्, 'संसारकन्तारं' ति भवाऽरण्यम. 'अणुपरियट्टइ'त्ति पुन: पुनर्भ्रमतीति.

आयुष्यनो कदाचित् बंध.
आवरदा बांधवानो काळ.
अशातावेदनीय जूदुं केम ?
असंवृतत्वपरिहार.
संसारारण्य.

३२. ['अप्पपएसग्गा' इत्यादि] अल्प—थोडा प्रदेशवाळां कर्मदलियाना परिमाणवाळी कर्मनी प्रकृतिओने, घणा प्रदेशवाळां कर्मदलियाना परिमाणवाळी करे छे. कारण के योग प्रदेशबंधनुं पण कारण छे अने असंवृतपणुं ए योग छे. ['आउयं च' इत्यादि] आयुष्यकर्मने तो कदाचित् बांधे छे अने कदाचित् बांधतो (पण) नथी. कारण के जीवो (चालु) आयुष्यना त्रीजा भागादि अवशेष बाकी रहेतां परभवना आयुष्यने बांधवानो आरंभ करे, छे. तेथी असंवृत साधु पण ज्यारे आयुष्यना त्रीजा भागादि अवशेष होय छे त्यारे परभव संबंधी आयुष्यना बंधने बांधे छे, पण अन्य—बीजा—समये बांधतो नथी. ['असाय' इत्यादि] अशातावेदनीय कर्मनो-दु:खपूर्वक वेदवाना कर्मनो वारंवार उपचय करे छे. शंका- अशातावेदनीय कर्म सात कर्मोनी अंतर्गत होवाथी पूर्वमां कहेलां विशेषणोवडे ज तेना उपचयनुं ज्ञान थइ जशे, तो पछी शा माटे तेनुं पृथग् ग्रहण कर्युं ? समाधान— 'असंवृत आस्रव द्वारने नहीं रुंधनार-जीव, अशातावेदनीयनो उपचय करी अत्यंत दु:खी थाय छे' आ प्रमाणे प्रतिपादन करवावडे भय उत्पन्न थवाथी, असंवृतपणानो परिहार थाय माटे अशातावेदनीयनो उपचय जूदो ग्रहण कर्यो छे, तेथी दोष नथी. (हवेथी संसाररूपी अरण्यना विशेषणो छे) ['अणाइयं' ति] अनादिकम् जेनी आदि नथी. अथवा अज्ञातिकम्-जेमां ज्ञाति स्वजन-नथी. वा ऋणातीतम्-संसार, अत्यंत खराब हालतनुं कारण होवाथी करजथी उत्पन्न थती खराब स्थितिने पण अतिक्रमवावाळी हालतवाळुं, अर्थात् करजजन्य दु:ख करतां पण अधिक दु:खवाळुं,

---

१. "धणिअं गाढम्" देसीनाममालायाम् (पृ-१७८-गा-५८-श्रीहेमचन्द्रा:) २. एतद् वचनं पञ्चमे कर्मग्रन्थे ९६ गाथायाम्. ३. एतत्समानं वचनमपि तत्रैव:-अनु०

१. आ शब्द देश्यप्राकृतनो छे, अने तेनो अर्थ 'गाढ' थाय छे. (देशीनाममाळा-पृ-१७८-गा-५८-श्रीहेमचन्द्रसूरि.) २. आ वचन पांचमा कर्मग्रंथमां ९६ मी गाथामां छे. ३. आ वचननी समान वचन पण त्यां ज छे:-अनु०

अथवा अणातीतम्–अण एटले पाप, अति–अत्यन्त, इत–प्राप्त थएल, -घणा पापवाळुं,[‘अणवयग्गं’ ति] ‘अवयग्गं’ ए ‘अंत’ अर्थवाळो देशी-भाषानो शब्द छे, तेनो (नञ्-समासवडे) निषेध करवाथी ‘अणवयग्ग’ जेनो अंत नथी. अथवा अनवनताग्रम्–अवनत एटले आसन्न. अग्र एटले अंत, जेनो अंत आसन्न छे ते अवनताग्र, तेनो (नञ्-समासवडे) निषेध करवाथी जेनो अंत आसन्न नथी ते ‘अनवनताग्र’ कहेवाय. अथवा अनवनताग्रम्–जेनुं परिमाण ज्ञात नथी, आवा प्रकारनुं संसाररूपी अरण्य होवाथी ज–[‘दीहमद्धं’ ति] दीर्घाऽद्धम दीर्घ काळवाळुं, अथवा दीर्घाध्वम् दीर्घ मार्गवाळुं, [‘चाउरंतं’ ति] देवगति वगेरे गतिना भेदथी, अथवा पूर्व दिशा वगेरे दिशाओना भेदथी चातुरन्तम् चार विभागवाळुं, आवा प्रकारनुं [‘संसारकंतारं’ ति] जे संसाररूपी अरण्य, ते प्रति [‘अणुपरियट्टइ’ त्ति] (असंवृत जीव) वारंवार भ्रमण करे छे.

संवृत अनगार.

५८. प्र०—*संवुडे णं भंते! अणगारे सिज्झइ, जाव–सव्व-दुक्खाणं अंतं करेइ?*

५८. उ०—*हंता, सिज्झइ, जाव–अंतं करेइ.*

५९. प्र०—*से केणट्ठेणं?*

५९. उ०—*गोयमा! संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ, दीहकालट्ठिइयाओ हस्सकालट्ठिइयाओ पकरेइ, तिव्वाणुभावाओ मंदाणुभावाओ पकरेइ, बहुप्पएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं न बंधइ. असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ. अणादीयं च णं अणवदग्गं, दीहमद्धं, चाउरंतसंसारकंतारं वीईवयइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ ‘संवुडे अणगारे सिज्झइ, जाव अंतं करेइ’.*

५८. प्र०—हे भगवन्! संवृत अनगार सिद्ध थाय छे, यावत्–सर्व दुःखोना अंतने करे छे?

५८. उ०—हे गौतम! हा, सिद्ध थाय छे, यावत्–सर्व दुःखोना अंतने करे छे.

५९. प्र०—हे भगवन्! ते क्या अर्थथी–हेतुथी?

५९. उ०—गौतम! संवृत अनगार आयुने छोडीने गाढ बंधने बांधेली सात कर्मप्रकृतिओने शिथिल बंधने बांधवानो आरंभ करे छे, दीर्घ-लांबा काळनी स्थितिवाळीने ह्रस्व थोडा-काळनी स्थितिवाळी करवानो आरंभ करे छे, तीव्र अनुभागवाळीने मंद अनुभागवाळी करवानो आरंभ करे छे, बहु प्रदेशाग्रवाळीने अल्प प्रदेशाग्रवाळी करवानो आरंभ करे छे अने आयुष्यकर्मने बांधतो नथी. तथा अशातावेदनीय कर्मनो वारंवार उपचय पण करतो नथी. माटे अनादि, अनन्त, मोटा–लांबा–मार्गवाळा, चातुरन्त–चार प्रकारनी गतिवाळा–संसाररूपी अरण्यनुं अतिक्रमण–उल्लंघन–करे छे, हे गौतम! ते कारणथी ‘संवृत अनगार सिद्ध थाय छे, यावत्–सर्व दुःखोनो अंत करे छे’ ए प्रमाणे कहेवाय छे.

३३. असंवृतस्य तावदिदं फलम्. संवृतस्य तु यत् स्यात् तदाह ‘संवुडे णं’ इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्, संवृतोऽनगारः प्रमत्त-ऽप्रमत्त-संयतादिः. स च चरमशरीरः स्यात्, अचरमशरीरो वा, तत्र यश्चरमशरीरस्तदपेक्षयेदं सूत्रम्. यस्त्वचरमशरीरस्तदपेक्षया परंपरया सूत्रार्थोऽवसेयः. ननु पारंपर्येण असंवृतस्याऽपि सूत्रोक्तार्थस्यावश्यभावः, यतः शुक्लपाक्षिकस्यापि मोक्षोऽवश्यंभावी, तदेवं संवृता ऽसंवृतयो फलतो भेदाऽभाव एवेति.अत्रोच्यते; सत्यम्,किंतु यत् संवृतस्य पारंपर्यं तदुत्कर्षतः सप्त–ऽष्टभवप्रमाणम्, यतो वक्ष्यतिः “*जहन्निय चरित्ताऽऽराहणं आराहित्ता सत्तट्ठभवग्गहणेहिं सिज्झइ*”त्ति. यच्चाऽसंवृतस्य पारंपर्यं तदुत्कर्षतोऽपार्धपुद्गलपरावर्तमानमपि स्यात्, विराधनाफलत्वात् तस्य इति. ‘*वीईवयइ*’त्ति व्यतिव्रजति व्यतिक्रामतीत्यर्थः.

३३. पूर्वे कयु ते असंवृतनुं फल छे. हवे संवृतनुं फल कहे छेः- [‘संवुडे णं’ इत्यादि] संवृत अनगार प्रमत्तसंयत अने अप्रमत्तसंयत वगेरे भेदथी समजवो. अने ते संवृत अनगार चरमशरीरी, तथा अचरमशरीरी होय छे. तेमां जे संवृत अनगार चरमशरीरी होय तेनी अपेक्षाए आ सूत्र समजवुं. अने जे संवृत अनगार अचरमशरीरी होय तेनी अपेक्षाए आ सूत्रनो अर्थ परंपराए समजवो. शंका० परंपराए तो आ सूत्रमां कहेलो अर्थ असंवृत अनगारने पण घटे ए चोक्कस छे, कारण के शुक्लपाक्षिक (असंवृत) नो पण जरूर मोक्ष थवानो छे. तो आ प्रमाणे संवृत अने असंवृतनो परपराए फलथी अभेद ज थयो? समा० सत्य छे, परंतु जे संवृतनुं पारंपर्य छे ते उत्कर्षथी सात, आठ भव प्रमाण समजवुं, कारण के “जघन्यथी चारित्रनी आराधनाने आराधी सात, आठ भवना ग्रहणवडे सिद्ध थाय छे.” एम आगळ कहेशे. अने जे असंवृतनी परपरा छे ते उत्कर्षथी अपार्ध पुद्गलपरावर्त–प्रमाणवाळी पण होय छे. कारण के असंवृतनुं पारंपर्य विराधनाना फलरूप छे. [‘वीईवयइ’ त्ति] व्यतिव्रजति–अतिक्रमण करे छे–उल्लंघन करे छे.

संवृत.

आ सूत्र कोने घटे?

गाथा.

१. आ शब्द संस्कृत ‘अनवनताग्र’ शब्द उपरथी थाय छे. तेनुं प्राकृतरूप ‘अणवणयग्ग’ बने छे तो पण मूळमा जे ‘अणवयग्ग’ मूक्युं छे ते प्राकृतना धोरणे एक ‘ण’नो लोप करी मूक्युं छे :—श्रीअभयदेव.

१. मूलच्छायाः—संवृतो भगवन्! अनगारः सिध्यति, यावत्–सर्वदुःखानामन्तं करोति? हन्त, सिध्यति, यावद्–अन्तं करोति. तत् केनाऽर्थेन? गौतम! संवृतोऽनगार आयुर्वर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः गाढबन्धनबद्धाः शिथिलबन्धनबद्धाः प्रकरोति, दीर्घकालस्थितिका ह्रस्वकालस्थितिकाः प्रकरोति, तीव्राऽनुभावा मन्दाऽनुभावाः प्रकरोति, बहुप्रदेशाग्रा अल्पप्रदेशाग्राः प्रकरोति, आयुष्कं च कर्म न बध्नाति. असातवेदनीयं च कर्म न भूयो भूय उपचिनोति. अनादिकं च अनवनताग्रम्, दीर्घाध्वम्, चातुरन्तसंसारकान्तारं व्यतिव्रजति, तत् तेनाऽर्थेन गौतम एवमुच्यते ‘संवृतोऽनगारः सिध्यति, यावत्–अन्तं करोति’:–अनु०

२ प्र०छायाः—जघन्यां चारित्राऽऽराधनाम्–आराध्य सप्त–अष्टभवग्रहणैः सिध्यति:—अनु०

असंयत जीव.

६०. प्र०— जीवे णं भंते! अस्संजए अविरइए अप्पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे इओ चुए पेच्चा देवे सिया?

६०. उ०—गोयमा! अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए णो देवे सिया.

६१. प्र०— से केणट्ठेण जाव—'इओ चुए पेच्चा अत्थेगइए देवे सिया, अत्थेगइए नो देवे सिया'?

६१. उ०—गोयमा! जे इमे जीवा गामा—ऽऽगर—णगर निगम—रायहाणि—खेड—कब्बड—मडंब—दोणमुह—पट्टणा—ऽऽसम—सण्णिवेसेसु अकामतण्हाए, अकामछुहाए, अकामबंभचेरवासेणं, अकामसीता—तव—दंस—मसग—अकामअण्हाणग—सेय—जल्ल—मल—पंक—परिदाहेण, अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं अप्पाणं परिकिलेसंति. अप्पाणं परिकिलेसित्ता, कालमासे कालं किच्चा, अन्नयरेसु वाणमंतरेसु, देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति.

६२. प्र०—केरिसा णं भंते! तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोया पन्नत्ता?

६२. उ० गोयमा! से जहा णामए इह मणुस्सलोगम्मि असोगवणे इ वा, सत्तवन्नवणे इ वा, चंपयवणे इ वा, चूयवणे इ वा, तिलगवणे इ वा, लाउवणे इ वा, निग्गोहवणे इ वा, छत्तोहवणे इ वा, असणवणे इ वा, सणवणे इ वा, अयसिवणे इ वा, कुसुंभवणे इ वा, सिद्धत्थवणे इ वा, बंधुजीवगवणे इ वा, निच्चं कुसुमिय, माइय, लवइय, थवइय, गुलइय, गोच्छिय, जमलिय, जुवलिय, विणमिय, पणमिय, सुविभत्तपिंडिमंजरिवडेंसगधरे सिरीए अतीव अतीव उवसोभमाणे, उवसोभमाणे चिट्ठइ, एवामेव तेसिं वाणमंतराणं देवाणं देवलोगा जहण्णेण दसवाससहस्सट्ठितीएहिं, उक्को-

६०. प्र०— हे भगवन्! असंयत, अविरत तथा जेणे पाप कर्म हण्यां अने वर्ज्यां नथी एवो जीव अहींथी च्यवी-मरी-ने प्रेत्य-परलोकमां—देव थाय छे?

६०. उ०— हे गौतम! केटलाक (जीवो) देव थाय छे अने केटलाक देव थता नथी.

६१. प्र० हे भगवन्! अहींथी च्यवीने यावत्—पूर्व प्रमाणेना स्वरूपवाळा केटलाक प्रेत्य—परलोकमां—देव थाय छे अने केटलाक देव थता नथी तेनुं शु कारण?

६१. उ० गौतम! जे जीवो गाम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम तथा सन्निवेशमां अकाम तृष्णावडे, अकाम क्षुधावडे, अकाम ब्रह्मचर्य-वासवडे, अकाम ठंडी, आतप, डांस अने मच्छरथी थता दु:खना सहवावडे, अकाम अस्नान, परसेवो, जल्ल, मेल तथा पंकथी थता परिदाहवडे थोडा काळ सुधी अथवा वधारे काळ सुधी आत्माने क्लेशित करे छे, तेओ आत्माने क्लेशित करीने मृत्यु-काळे मरीने वाणव्यंतरदेवलोकोना कोइ पण देवलोकमां देवपणाए उत्पन्न थाय छे.

६२. प्र० —हे भगवन्! ते वाणव्यंतर देवोना देवलोको केवा प्रकारना कह्या छे?

६२. उ० हे गौतम! जेम अहीं मनुष्यलोकमां सदा पुष्प-वाळुं, मयूरित- पुष्प विशेषवाळुं—मोरवाळुं, लवकित -पल्लवोना लव-अल्पांश—वाळुं, पुष्पना गुच्छावाळुं, लताना समूहवाळुं, पादडाओना गुच्छावाळुं, यमल—समान श्रेणीवाळा वृक्षो—वाळुं, युगल वृक्षोवाळुं, पुष्प अने फळोना भारथी नमेलुं, पुष्प अने फळना भारथी नमवानी शरूआतवाळुं, अत्यन्त जुदी जुदी लुंबीओ अने मंजरीओरूप मुकुटोने धारण करवावाळुं (आवा प्रकारना विशेषणो सहित) अशोकवन, सप्तपर्ण—सादड—वृक्षोनुं वन, चंपानुं वन, आंबानुं वन, तिलक

१. मूलच्छाया.—जीवो भगवन्! असंयत, अविरतिक:, अप्रतिहत प्रत्याख्यातपापकर्मा इतश्च्युत: प्रेत्य देव स्यात्? गौतम! अस्ति, एकको देव स्यात्, अस्ति, एकको नो देव: स्यात्. तत् केनाऽर्थेन यावद्—'इतश्च्युत: प्रेत्य अस्त्येकको देव स्यात्, अस्त्येकको नो देव: स्यात्'? गौतम! ये इमे जीवा ग्रामा ऽऽकर—नगर—निगम—राजधानी—खेट—कर्बट—मडम्ब—द्रोणमुख—पट्टना—ऽऽश्रम—सन्निवेशेषु अकामतृषा, अकामक्षुधा, अकामब्रह्मचर्य-वासेन, अकामशीता—ऽऽतप—दंश—मशकाऽकामा—ऽस्नानक—स्वेद—जल्ल—मल—पङ्कपरिदाहेनाऽल्पतर वा भूयस्तरं वा कालमात्मानं परिक्लेशयन्ति, आत्मानं परिक्लिश्य कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु वानव्यन्तरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्तारो भवन्ति. कीदृशा भगवन्! तेषां वानव्यन्तराणां देवानां देवलोका प्रज्ञप्ता:? गौतम! तद् यथा नामेह मनुष्यलोकेऽशोकवनं वा, सप्तपर्णवनं वा, चम्पकवनं वा, चूतवनं वा, तिलकवनं वा, अलाबुवनं वा, न्यग्रोधवनं वा, छत्रौघवनं वा, असनवनं वा, शणवनं वा, अतसिवनं वा, कुसुम्भवनं वा, सिद्धार्थवनं वा, बन्धुजीवकवनं वा, नित्यं कुसुमितम्, मयूरितम्, लवकितम्, स्तबकितम्, गुल्मकितम्, गुच्छितम्, यमलितम्, युगलितम्, विनमितम् प्रणमितम्, सुविभक्तपिण्डी—मञ्जर्यवतंसकधरं श्रिया अतीवाऽतीवोपशोभमानम्—उपशोभमानं तिष्ठति, एवमेव तेषां वानव्यन्तराणां देवानां देवलोका जघन्येन दशवर्षसहस्रस्थितिकै:, उत्कृष्टेन पल्योपमस्थिति-कैर्बहुभिर्वानव्यन्तरैर्देवै: तद्देवीभिश्च आकीर्णा:, विकीर्णा:, उपस्तीर्णा:, संस्तीर्णा:, स्फुटा:, अवगाढगाढा:, श्रिया अतीवाऽतीवोपशोभमाना उपशोभमाना-स्तिष्ठन्ति. ईदृशा गौतम! तेषां च वानव्यन्तरदेवानां देवलोका: प्रज्ञप्ता:, तत् तेनाऽर्थेन गौतम! एवमुच्यते:—'जीवोऽसंयतो यावद्—देव: स्याद्':—अनु०

तेणं पलिओवमट्ठितीएहिं, बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि, तद्देवीहि य आइण्णा, विकिण्णा, उवत्थडा, संथडा, फुडा, अवगाढगाढा, सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा, उवसोभेमाणा चिट्ठंति. एरिसगा णं गोयमा! तेसिं च वाणमंतराणं देवाणं देवलोआ पन्नत्ता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—'जीवे णं असंजए जाव—देवे सिया.'

वृक्षोनुं वन, अलाबु—तुंबडा—ना वेलाओनुं वन, वड वृक्षोनुं वन, छत्रौघ वन, अशन(वृक्ष विशेष)नुं वन, शण वृक्षोनुं वन, अलसीना वृक्षोनुं वन, कसुंबाना वृक्षोनुं वन, सफेद सरसवनुं वन तथा बपोरीया वृक्षोनुं वन, घणी घणी शोभावडे अतीव शोभतुं होय छे, ते ज प्रमाणे वाणव्यंतर देवोना स्थानो जघन्यथी दस हजार वर्षनी स्थितिवाळा अने उत्कृष्टताथी पल्योपमनी स्थितिवाळा, घणा वाणव्यंतर देवो अने देवीओ वडे व्याप्त, विशेष व्याप्त, उपस्तीर्ण—उपराउपर आच्छादित, परस्पर संश्लेषथी आच्छादित, स्पर्श कराएलां—भोगवाएलां अथवा प्रकाशवाळां, अत्यंत अवगाढ थएलां, शोभावडे अतीव अतीव शोभतां शोभतां रहे छे. हे गौतम! वाणव्यंतर देवोना रहेठाणो—देवालयो—आवा प्रकारना प्ररूप्यां छे. ते कारणथी गौतम! आ प्रमाणे कहेवाय छे के:—'असंयत जीव यावत्—देव थाय छे.'

सेवं भंते!, सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति, नमंसति, वंदित्ता, नमंसित्ता संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ.[1]

हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे, एम कही भगवान् गौतम श्रमण भगवंत महावीरने वांदे छे, नमे छे, वांदीने तथा नमस्कार करीने, संयम तथा तपवडे आत्माने भावता विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये पढमो उद्देसो सम्मत्तो

३४. 'अनगारः संवृतत्वात् सिध्यति' इत्युक्तम्, यस्तु तदन्यः स विशिष्टगुणविकलः सन् किं देवः स्याद् नवा? इति प्रश्नयन्नाहः—'जीवे णं'इत्यादि व्यक्तम्, नवरम्—'अस्संजए'त्ति असाधुः, संयमरहितो वा, 'अविरइए'त्ति प्राणातिपातादिविरतिरहितः, विशेषेण वा तपसि रतो यो न भवति सोऽविरतः, 'अप्पडिहए'इत्यादि. प्रतिहतं निराकृतमतीतकालकृतं निन्दादिकरणेन, प्रत्याख्यातं च वर्जितमनागतकालविषयं पापकर्म प्राणातिपातादि येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा—तन्निषेधाद् अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, अनेनाऽतीता—ऽनागतपापकर्माऽनिषेध उक्तः. 'असंयतोऽविरतश्च'इत्यनेन वर्तमानपापासंवरणमभिहितम्. अथवा न नैव, प्रतिहतं तपोविधानेन मरणकालादारात् क्षपितम्, प्रत्याख्यातं च मरणकालेऽप्याश्रवनिरोधेन पापकर्म येन स तथा. अथवा न नैव, प्रतिहतं सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तितः, प्रत्याख्यातं च सर्वविरत्यङ्गीकरणतः पापकर्म ज्ञानावरणाद्यशुभं कर्म येन स तथा. 'इओ'त्ति इतः प्रज्ञापकप्रत्यक्षात् तिर्यग्भवाद्, मनुष्यभवाद् वा च्युतो मृतः, 'पेच'त्ति जन्मान्तरे देवः स्याद् इति प्रश्नः. 'जे इमे जीव'त्ति ये इमे प्रत्यक्षाऽऽसन्नाः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्या वा, 'गाम'इत्यादि. ग्रामादिषु अधिकरणभूतेषु, तत्र ग्रामो जनपदप्रायजनाश्रितः स्थानविशेषः. आकरो लोहाद्युत्पत्तिस्थानम्. नकरम्—कररहितं नगरम्. निगमो वणिग्जनप्रधानं स्थानम्. राजधानी यत्र राजा स्वयं वसति. खेटं धूलीप्राकारम्. कर्बटं कुनगरम्. मडम्बं सर्वतो दूरवर्ति सन्निवेशान्तरम्. द्रोणमुखं जलपथ—स्थलपथोपेतम्. पत्तनं विविधदेशागतपण्यस्थानम्, तच द्विधा जलपत्तनम्, स्थलपत्तनं चेति. "रत्नभूमिः" इत्यन्ये. आश्रमस्तापसादिस्थानम्. सन्निवेशो घोषादिः. एषां द्वन्द्वस्ततस्तेषु, अथवा ग्रामादयो ये सन्निवेशास्ते तथा तेषु, 'अकामतण्हाए'त्ति अकामानां निर्जराद्यनभिलाषिणां सतां तृष्णा तृड्—अकामतृष्णा तया, एवमकामक्षुधा, 'अकामबंभचेरवासेणं'ति अकामानां निर्जराद्यनभिलाषिणां सताम्, अकामो वा निरभिप्रायो ब्रह्मचर्येण स्त्र्यादिपरिभोगाऽभावमात्रलक्षणेन वासो रात्रौ शयनम्—अकामब्रह्मचर्यवासोऽतस्तेन, 'अकामअण्हाणग—सेय—जल्ल—मल—पंक—परिदाहेणं'ति अकामा येऽस्नानकादयस्तेभ्यो यः परिदाहः स तथा तेन; तत्र स्वेदः प्रस्वेदः. याति च लगति चेति जल्लो रजोमात्रम्. मलः कठिनीभूतं रज एव. पङ्को मल एव स्वेदेनाऽऽर्द्रीभूत इति.

३४. 'संवृत होवाथी अनगार सिद्ध थाय छे' एम कह्युं. हवे जे तेथी अन्य—असंवृत—होय ते विशिष्ट गुणविकल थयो सतो देव थाय के नहीं? एम पूछता कहे छे केः—['जीवे णं' इत्यादि] स्पष्ट छे. विशेष, ['अस्संजए'त्ति] असंयत एटले असाधु, अथवा संयमरहित. ['अविरइए'त्ति] प्राणातिपातादिथी विरतिरहित, अथवा वि—विशेष प्रकारे, तपने विषे रत—आसक्त—न होय ते अविरत. ['अप्पडिहए' इत्यादि] जे अतीत काळमां करेलां कर्मने (पापनी) निंदादि करवाथी हणवावाळो—दूर करवावाळो—अने आगामी काळमां थवावाळां प्राणातिपातादि पाप कर्मने वर्जवावाळो होय ते 'प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहेवाय, तेनो (नञ्—समासवडे) निषेध करवाथी 'अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा.' (एटले जेणे भूतकाळमां करेलां पाप

असंयत. अविरत. अप्रतिहत—प्रत्याख्यात—पापकर्मा.

१. मूलच्छायाः—तदेवं भगवन्! तदेवं भगवन्! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा संयमेन, तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति:—अनु०

कर्मने दूर कर्यां नथी अने आगामी–आवता काळविषयक प्राणातिपातादि पाप कर्मने वर्ज्यां नथी एवो जीव) आ विशेषणवडे भूत अने भविष्यत्–काळविषयक पाप कर्मना निषेधनो अभाव कह्यो. अने 'असंयत' तथा 'अविरत' विशेषणवडे वर्तमानकाळविषयक पाप कर्मनुं असंवरण–अरुंधन नहीं रोकवुं कह्युं. अथवा जेणे तप करवावडे मरण काळनी पहेलांनुं पाप कर्म खपाव्युं नथी अने आश्रवना निरोधवडे मरण काळमां पण पाप कर्म वर्जेलु नथी ते 'अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहेवाय. अथवा जेणे सम्यग्दर्शननो स्वीकार करी पाप कर्म दूर कर्युं नथी अने सर्वविरतिनो अंगीकार करी ज्ञानावरणीयादि अशुभ पाप कर्म वर्ज्युं नथी ते 'अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा' कहेवाय. ['इओ'त्ति] इतः अहींथी–एटले के जणाववावाळाने प्रत्यक्ष सम्मुख देखाता–तिर्यंच भव अथवा मनुष्य भवथी च्यवेलो–मरेलो जीव ['पेच्च'त्ति] प्रेत्य जन्मान्तरमां देव थाय? आ प्रमाणे प्रश्न छे. ['जे इमे जीव'त्ति] आ प्रत्यक्ष आसन्न देखाता जे पंचेन्द्रिय तिर्यंचो, अथवा मनुष्यो. ['गाम' इत्यादि] ग्राम[1], आकर[2], नगर[3], निगम[4], राजधानी[5], खेट[6], कर्बट[7], मडंब[8], द्रोणमुख[9], पत्तन[10], आश्रम[11] अने संनिवेश[12] तेने विषे (ग्रामादिने विषे) अथवा गाम वगेरे जे सन्निवेशो–स्थानो–तेने विषे. ['अकामतण्हाए'त्ति] अकाम तृष्णा एटले निर्जरादिनी अभिलाषाने नहीं राखवावाळानी जे तृष्णा–तरस ते अकामतृष्णा–तेवडे, आवी ज रीते अकामक्षुधावडे. ['अकामबंभचेरवासेणं'ति] निर्जरादिनी अभिलाषाने नहीं राखवावाळानुं, अथवा अभिप्रायरहित जे स्त्री वगेरेने भोगववामात्रना अभावरूप ब्रह्मचर्य, ते ब्रह्मचर्यवडे वास रात्रिने विषे शयन ते 'अकामब्रह्मचर्यवास' कहेवाय तेवडे. ['अकामअण्हाणग-सेय-जल्ल-मल-पंक-परिदाहेण'ति] अने अभिप्रायरहित जे 'स्नान न करवुं' वगेरे. तेओथी थतो जे परिदाह दाह–तेवडे, तेने विषे स्वेद–परसेवो. जे शरीरमांथी नीकळे छे अने लागे छे[13], ते जल्ल अर्थात् मात्र रज. कठिन थएली धूळ ते मल. परसेवा वडे भीनो थएलो मल ते पंक.

ग्रामादि.

३५. 'अप्पतरो वा भुज्जतरो वा काल'ति प्राकृतत्वेन विभक्तिपरिणामादल्पतरं वा, भूयस्तरं वा बहुतरं कालं यावत्, वाशब्दौ देवत्वं प्रति अल्प–तरकालयोः समताऽभिधानार्थौ, केवलं देवत्वे सामान्यतः सत्यपि अल्पतरकालमकामनिर्जरावतामविशिष्टं तत् स्यात्, इतरेषां तु विशिष्टमिति. 'अप्पाणं परिकिलेसंति'त्ति विबाधयन्ति. 'कालमासे'त्ति कालो मरणम्, तस्य मासः प्रक्रमादवसरः कालमासस्तत्र 'कालं किच्च'त्ति मृत्वा 'वाणमंतरेसु'त्ति वनान्तरेषु वनविशेषेषु भवा वर्णाऽऽगमकरणाद् वानमन्तराः. अन्ये त्वाहुः–"वनेषु भवा वानास्ते च ते व्यन्तराश्चेति वानव्यन्तरास्तेषामेते वानमन्तराः, वानव्यन्तरा वा" अतस्तेषु देवलोकेषु देवाश्रयेषु, 'देवत्ताए उववत्तारो भवंति'त्ति 'ये इमे' इत्यत्र यच्छब्दोपादानात् ते देवतयोपपत्तारो भवन्तीति द्रष्टव्यम्. 'तेसिं'ति ये देवलोकेष्वकामनिर्जरावन्तो देवतयोत्पद्यन्ते तेषामिति. 'से जहा नाम ए'त्ति 'से'त्ति अथ यथा येन प्रकारेण 'नामे'त्ति संभावने, वाक्यालंकारे वा. 'ए'त्ति आमन्त्रणार्थः, अलंकारार्थ एव वा. 'इह'त्ति इह मर्त्यलोके. 'असोगवणे इ व'त्ति अशोकवनम्, 'इति' शब्द उपदर्शने, अनुस्वारलोपः, सन्धिश्च प्राकृतत्वात्, 'वा 'इति विकल्पार्थः, अथवा 'असोगवणे' इति अत्र प्रथमैकवचनकृत एकारः, 'इ'शब्दस्तु वाक्याऽलंकारे, अशोकादयस्तु प्रतीता एव. नवरम् 'सत्तवन्न'त्ति सप्तपर्णः–सप्तच्छद इत्यर्थः. 'कुसुमिय'त्ति संजातकुसुमम्, 'माइय'त्ति मयूरितं जातपुष्पविशेषमित्यर्थः, 'लवइय'त्ति लवकितं संजातपल्लवम् अङ्कुरवदित्यर्थः. 'थवइय'त्ति स्तबकितं संजातपुष्पविशेषमित्यर्थः. 'गुलइय'त्ति संजातगुल्मकम्, गुल्मकश्च लतासमूहः. 'गुच्छिय'त्ति संजातगुच्छम्, गुच्छश्च पत्रसमूहः. यद्यपि च स्तबक गुच्छयोरविशेषो नामकोशेऽधीतः, तथापीह पुष्प–पत्रकृतो विशेषो भावनीयः. 'जमलिय'त्ति यमलतया समश्रेणितया व्यवस्थितत्वात् तत्तरूणां संजातयमलत्वेन यमलितम्, 'जुवलिय'त्ति युगलतया तत्तरूणां संजातत्वेन युगलितम्, 'विणमिय'त्ति विशेषेण पुष्प-फलभरेण नमितमिति कृत्वा विनमितम्, 'पणमिय'त्ति तेनैव नमयितुमारब्धत्वात् प्रणमितम्. प्रशब्दस्याऽऽदिकर्मार्थत्वादिति. तथा सुविभक्ता अतिविभक्ताः सुनिष्पन्नतया पिण्ड्यो लुम्ब्यः, मञ्जर्यश्च प्रतीताः, ता एवाऽवतंसकाः शेखरकाः. तान् धारयति यत् तत् सुविभक्तपिण्डी–मञ्जर्यवतंसकधरम्, ततः कुसुमितादीनां कर्मधारय इति.

३५. ['अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं'ति] तेने 'वा' शब्दो देवत्वनी प्रति अल्प काळ अने बहु काळनी तुल्यता बतावे छे. केवळ सामान्यथी बन्नेनुं देवपणुं होवा छतां अकामनिर्जरावाळानुं देवपणुं अल्प काळवाळुं तथा अविशिष्ट–विशेष सुख समृद्ध्यादिरहित–होय छे अने सकामनिर्जरावाळानुं देवपणुं तो बहु काळवाळुं तथा विशिष्ट विशेष सुख समृद्ध्यादिसहित होय छे. ['अप्पाणं परिकिलेसंति'त्ति] आत्माने क्लेशित दुःखी–करे छे. ['कालमासे'त्ति] काळ एटले मरण, तेनो मास एटले प्रकरणवशात् अवसर, तेने विषे ['कालं किच्च'ति] काळ करीने–मरीने ['वाणमंतरेसु'त्ति]

१. देशना माणसोनुं आशरारूप स्थान ते ग्राम–गाम. २ लोढुं वगेरे ज्यां नीपजे ते आकर–खाण. ३. न+कर- नकर अर्थात् कर (वेरो वगेरे) विनानुं स्थान ते नगर. ४. ज्यां पुष्कळ वाणिया लोक वधारे प्रमाणमां रहेता होय ते निगम ५ ज्यां राजा पोते रहेतो होय ते राजधानी. ६. जे धूळना किल्लावाळुं होय ते खेट. ७ खराब नगर ते कर्बट. ८. जे स्थान सौथी दूर होय ते मडंब. ९. जे स्थान जलमार्ग तथा स्थलमार्गवाळुं होय ते द्रोणमुख. १०. ज्यां विविध देशोथी करियाणां वेचावा माटे आवतां होय ते स्थान–पत्तन, ते जलपत्तन अने स्थलपत्तन एम बे प्रकारे छे. कोइ तो 'पत्तन' ने 'रत्नभूमि' कहे छे. ११. तपस्विओ तथा बावा वगेरेनुं स्थान ते आश्रम. १२. 'भरवाडनो झोक' वगेरे रूप स्थान ते संनिवेश. १३. 'जा' एटले 'नीकळवुं' अने 'लग' एटले 'लागवुं,' ए बे धातु उपरथी आ शब्द बने छे. १४. प्राकृतना धोरणने अनुसरी अहीं 'प्रथमा' विभक्तिनो अर्थ बीजी विभक्ति जेवो करवो:–श्रीअभयदेव.

वनान्तर—वन विशेष, तेमां थएला वानमन्तर. केटलाक तो कहे छे केः—"वनने विषे थएला ते 'वान' कहेवाय, वान जे व्यंतरो ते वानव्यंतरो, वानव्यंतरोना आ स्थान ते वानमंतर अथवा वानव्यंतर." ते वानव्यंतर देवलोकोमां एटले देवाश्रयोमां ['देवत्ताए उववत्तारो भवंति' त्ति] (पहेलां आवी गएला 'ये इमे' ए स्थले 'यत्' शब्दने ग्रहण करवाथी) 'ते'—तेओ देवपणे उत्पन्न थाय छे ए प्रमाणे जोवुं. ['तेसिं' ति] जेओ अकामनिर्जरा-वाळा जीवो देवलोकमां उत्पन्न थाय छे तेओना. ['[2]से जहा नाम[3] ए[4]' त्ति] ते जेवी रीते ['इह' त्ति] आ मर्त्यलोकमां ['असोगवणे[5]'] अशोकवन, अशोकादि वृक्षो प्रसिद्ध ज छे. विशेष, ['सत्तवन्न' त्ति] सप्तपर्ण सप्तच्छद -सादड—नामनुं वृक्ष, ['कुसुमिय' त्ति] कुसुमित—पुष्पोवाळुं. ['माइय' त्ति] मयूरित -उत्पन्न थएला पुष्पविशेषवाळुं—मोरवाळुं, ['लवइय' त्ति] लवकित उत्पन्न थएला पलवोवाळुं अर्थात् अंकुरावाळुं. ['थवइय' त्ति] स्तबकित—उत्पन्न थएला पुष्पोना गुच्छावाळुं, ['गुलइय' त्ति] थएला गुलमक -लतासमूह वाळुं, (लताओना समूहने 'गुल्म' कहे छे.) ['गुच्छिय' त्ति] उत्पन्न थएल गुच्छावाळुं, (पांदडाना समूहने 'गुच्छ' कहे छे.) जो के नामकोशमां 'स्तबक' अने 'गुच्छ' ए बन्ने शब्दो एक अर्थवाळा कह्या छे, तो पण अहीं स्तबक—पुष्पनो गुच्छ अने गुच्छ पांदडानो गुच्छ जाणवो. ['जमलिय' त्ति] ते वनना वृक्षो पङ्क्तिवडे तुल्य व्यवस्थित—गोठवाएला होवाथी यमलवाळुं, ['जुवलिय' त्ति] तेना वृक्षो जोडलापणे उत्पन्न थएला होवाथी युगलित, ['विणमिय' त्ति] विनमित विशेषप्रकारे पुष्प अने फलना भारथी नमेलुं, ['[6]पणमिय' त्ति] ते ज पुष्प अने फलना भारथी नमवाने शरु थएलुं होवाथी प्रणमित. तथा सारी रीतिए सुविभक्त अत्यंत विभागवाळी—छूटी छूटी—पिण्डी लुंबिओ- अने मंजरीओ, तद्रूप जे अवतंसको—मुकुटो, तेने धारण करनारुं, ते 'सुविभक्तपिण्डीमञ्जर्यवतंसकधर' कहेवाय. पछी 'कुसुमित' वगेरे पदोनो कर्मधारय (समास) करवो.

वानव्यंतर.

अशोकादिनां वनो.

३६. *'सिरीए'* त्ति श्रिया वनलक्ष्म्या, *'उवसोभमाणे उवसोभमाणे'* त्ति इह च द्विर्वचनमाभीक्ष्ण्ये भृशत्वे इत्यर्थः, *'आइन्न'* त्ति क्वचित् प्रदेशे देवाना देवीना च वृन्दैरात्मीयाऽऽत्मीयाऽऽवासमर्यादाऽनुल्लङ्घनेन व्याप्ता , 'आङ्'शब्दोऽत्र मर्यादावृत्ति , तथा क्वचित् *'विइन्न'* त्ति तैरेव वृन्दैर्निजाऽऽवाससीमोल्लङ्घनेन व्याप्ता , 'वि'शब्दो विशेषवाची. *'उवत्थड'* त्ति उपस्तीर्णा , 'उप'शब्दस्सामीप्यार्थ , 'स्तृञ्' चाऽऽच्छादनार्थः, ततश्चोत्पतद्भिर्निपतद्भिश्चाऽनवरतक्रीडासक्तैरुपर्युपरि च्छादिताः. *'संथड'* त्ति संस्तीर्णाः. 'सं'शब्द परस्परसंश्लेषार्थ., ततश्च क्वचित् तैरेव क्रीडमानैरन्योन्यस्पर्धया समन्ततश्चलद्भिराच्छादिता इति. *'फुड'* त्ति स्पृष्टाः—आसन-शयन रमण- परिभोगद्वारेण परिभुक्ताः, स्फुटा वा सप्रकाशा.. व्यन्तरसुरनिकरकिरणप्रसरनिराकृतान्धकारतया. *'अवगाढगाढ'* त्ति गाढं बाढम् , अवगाढास्तैरेव सकलक्रीडास्थान-परिभोगनिहितमनोभिरधोऽपि व्याप्ताः, 'गाढाऽवगाढा' इति वाच्ये प्राकृतत्वाद् 'अवगाढगाढा'. इह च देवत्वयोग्यस्य जीवस्याभिधाने तदयोग्यः सामर्थ्यादवसीयत एवेति *'अत्थेगइए नो देवे सिया'* इत्येतस्यादावुक्तस्य पक्षस्य निर्वचनं कृतं द्रष्टव्यमिति. अथोद्देशकनिग-मनार्थमाहः- *'सेवं भंते ! सेवं भंते !'* त्ति यन्मया पृष्टम् , तद् भगवद्भिः प्रतिपादितम् , तदेवम्—इत्थमेव भदन्त ! नान्यथा, अनेन भगवद्वचने बहुमानं दर्शयति, द्विर्वचनं चेह भक्तिसंभ्रमकृतमिति. एवं कृत्वा भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति चेति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते **श्रीभगवतीसूत्रे** प्रथमशते प्रथम उद्देशके **श्रीअभयदेवसूरि**विरचितं विवरणं समाप्तम्.

३६. ['सिरीए' त्ति] श्रिया—वननी शोभावडे ['उवसोभमाणे उवसोभमाणे' त्ति] अत्यंत शोभता. ['आइन्न' त्ति] पोतपोताना आवासनी मर्यादाने नहीं अतिक्रमीने देवोना अने देवीओना समूहवडे कोइ एक प्रदेशमां व्याप्त थएला. ['विइण्ण' त्ति] पोतपोताना आवासनी मर्यादाने ओळंघीने ते ज देव देवीओना समूहवडे कोइ एक प्रदेशमां व्याप्त थएला. ['उवत्थड' त्ति] उपस्तीर्ण निरंतर क्रीडामां आसक्त, उंचे जता तथा नीचे जता देव देवीओना समूहवडे उपर उपर आच्छादित. ['संथड' त्ति] संस्तीर्णाः कोइ एक प्रदेशमां एक बीजानी स्पर्धावडे क्रीडा करता अने चार तरफथी चालता ते देव देवीओना समूहवडे आच्छादित. ['फुड' त्ति] स्पृष्ट बेसवा, सूवा, अने रमवारूप अनेक परिभोगोवडे भोगवेला. अथवा स्फुट—व्यन्तर देव देवीना समूहना किरणना विस्तारवडे अंधकारने दूर करेलो होवाथी प्रकाशवाळा. ['अवगाढगाढ' त्ति] गाढ अत्यंत, अवगाढ—सकल क्रीडास्थानने विषे परिभोगमां निहित—स्थापेल—मनवाळा ते ज देव देवीओना समूहवडे नीचे पण व्यापेला. अहीं देवपणाने योग्य जीवोनुं

वानव्यंतरोना रहेठाणोनुं स्वरूप.

१. आ शब्दनी उत्पत्ति वर्णागम करवाथी- 'वन' अने अंतर' शब्दनी वचे 'म्' उमेरवाथी—थाय छे. २. 'से' शब्द 'अथ' शब्दना अर्थमां छे. ३. 'नाम' शब्द संभावना के अलंकार अर्थमां छे. ४. 'ए' शब्द आमंत्रण के अलंकार अर्थमां छे. ५. 'असोगवणं इइ वा' एम मूकवुं जोइए, छतां प्राकृतना धोरणने अनुसरी अनुस्वारनो लोप करी अने 'ण' साथे एक 'इ'नो संधि करी 'असोगवणे इ वा' एम मूक्युं छे. 'इइ' शब्द उपदर्शन अर्थवाळो छे. अथवा 'असोगवणे' ए प्रथमा (पेली) विभक्तिनुं रूप छे अने 'इ' शब्द तो वाक्यालंकारमां छे. ६. 'प्रणमित' आ शब्दमां 'प्र'नो 'आरंभ' अर्थ छे. ७. अहीं एक ज शब्दनो बेवडो उच्चार करी शोभानी अधिकता दर्शावी छे. ८. 'आ' शब्दनो 'मर्यादा' अर्थ छे. ९. 'वि' शब्दनो 'विशेष' अर्थ छे. १०. 'उप' शब्दनो अर्थ 'समीपता' छे अने 'स्तृञ्' धातुनो अर्थ 'आच्छादन' छे. ११. 'सम्' शब्दनो अर्थ 'परस्परसंश्लेष' छे. १२. 'गाढअवगाढ' मूकवाने बदले जे 'अवगाढगाढ' मूक्युं छे ते प्राकृतना धोरण प्रमाणे छेः—श्रीअभयदेव.

कथन होवाथी देवपणाने अयोग्य जीव सामर्थ्यथी ज जणाय छे. आ प्रकारे कहेवाथी ['अत्थेगइए नो देवे सिया'] 'केटलाक जीवो देव थता नथी' ए प्रश्ननुं निर्वचन आवी जाय छे. हवे चालता उद्देशकना निगमन–उपसंहार–ने माटे कहे छे:–['सेवं भंते ! सेवं भंते !'त्ति] में जे पूछ्युं, तेनुं हे भगवन् ! आपे जे प्रतिपादन कर्युं ते ते ज प्रमाणे छे, हे भगवन् ! बीजी रीते नथी आ वचन वडे भगवंतना वचननुं बहुमान देखाडे छे. अहीं जे ('भंते !' 'भंते !' ए प्रमाणे) बेवार उच्चारण कर्युं छे, ते भक्तिथी उत्पन्न थएला संभ्रमवडे कर्युं छे एम समजवुं. आ प्रमाणे करीने भगवान् गौतम, श्रमण भगवंत महावीरने वांदे छे, नमे छे. (वांदी, नमी संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे.)

उपसंहार.

उद्देशक समाप्ति अने गौतमविहार.

बेडारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.—उद्देशक २.

संबंध.—एक जीवबडे स्वयंकृत दुःख वेदाय छे ?—हा, ना.—तेनुं कारण.—ए प्रमाणे चोवीशे दंडक.—घणा जीवो संबंधे पूर्व प्रमाणे प्रश्नोत्तरो.—स्वयंकृत आयुष्य वेदाय छे ?—हा, ना.—तेनुं कारण.—ए प्रमाणे संबंध प्रश्नोत्तरो.—बधा नैरयिकोने सरखो आहार, सरखुं शरीर अने सरखो श्वासोच्छ्वास छे ?—ना.—तेनुं कारण.—महाशरीर.—अल्पशरीर.—नैरयिको समान कर्मवाळा छे ?—ना.—तेमा हेतु.—पूर्वोपपन्नक.—पश्चादुपपन्नक.—नैरयिकोनो वर्ण समान छे ?—ना.—कारण.—नैरयिकोनी लेश्याओ सरखी छे ?—ना.—कारण.—नैरयिकोनी पीडा सरखी छे ?—ना.—कारण.—संज्ञिभूत.—असंज्ञिभूत.—नैरयिकोने सरखी क्रिया होय छे ?—ना.—कारण.—सम्यग्दृष्टि.—मिथ्यादृष्टि.—मिश्रदृष्टि.—क्रियाविभाग —नैरयिकोनुं आयुष्य सरखुं होय छे ? अने तेओ साथे पेदा थएला छे ?—ना.—कारण —नैरयिकोना चार प्रकार.—असुरकुमार संबंधे पूर्व प्रमाणे विचार.—कर्म, वर्ण अने लेश्यामां भेद.—स्तनितकुमार.—पृथिवीकायिक संबंधे पूर्ववत् विचार.—आहार, कर्म, वर्ण अने लेश्यामां नैरयिको साथे सरखाई.—बधा पृथिवीकायिकोने सरखी पीडा.—शेष सर्व नैरयिक समान —तेम ज बेइंद्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिंद्रिय.—पंचेंद्रिय तिर्यंचो नैरयिक समान.—क्रियाभेद.—तिर्यंचो संयतासंयत अने असंयत.—मनुष्यो नैरयिक जेवा.—आहारभेद.—क्रियाभेद.—वानव्यंतर, ज्योतिषिक अने वैमानिको असुरकुमार जेवा —ज्योतिषिक अने वैमानिकमां वेदनाभेद.—लेश्यावाळा नैरयिकादि चोवीश दंडक विषे पूर्ववत् विचार.—तुल्यता अने विशेषता.—पूर्वोक्त विषयनो संग्रह.—लेश्या केटली ?—प्रज्ञापनानी साक्षि.—केटला प्रकारनो संसारसंस्थानकाळ ?—चार प्रकारनो.—केटला प्रकारनो नैरयिकसंसारसंस्थानकाळ ?—त्रण प्रकारनो—शून्य—अशून्य—मिश्र.—केटला प्रकारनो तिर्यंचसंसारसंस्थानकाळ ?—बे प्रकारनो—अशून्य—मिश्र.—मनुष्यो अने देवो नैरयिक जेवा —ए नैरयिकादिकना काळनुं ओछुं वधुं अल्पबहुत्व.—बधाना काळनुं साथे अल्पबहुत्व.—जीव अंतक्रिया—कर्मनाश—करे ?—हा, ना.—प्रज्ञापनानी साक्षि.—असंयतभव्यद्रव्यदेव,—अखंडितसंयमी,—खंडितसंयमी,—अखंडितसंयमासंयमी,—खंडितसंयमासंयमी,—असंज्ञी,—तापस,—कांदर्पिक,—चरकपरिव्राजक,—किल्बिषिक,—तिर्यंच,—आजीविक,—आभियोगी,—वेषधर अने सम्यक्त्वभ्रष्ट; ए बधा क्या देवलोकमां जाय ?—क्रमवार उत्तर.—केटला प्रकारनुं असंज्ञिआयुष्य ?—चार प्रकारनुं —असंज्ञी जीव क्युं आयुष्य बांधे ?—चारे जातनुं.—चारे जातना आयुष्यनी ओछामां ओछी अने वधारेमां वधारे हद —चारे जातना आयुष्यनुं अल्पबहुत्व.—उद्देशकसमाप्ति—गौतमविहार.

६३. *रायगिहे नगरे समोसरणं. परिसा णिग्गया, जाव—एवं वयासी:—*

६४. *प्र०—जीवे णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेएइ ?*

६४. *उ०—गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ.*

६५. *प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ' ?*

६५. *उ०—गोयमा ! उदिण्णं वेएइ, अणुदिण्णं नो वेएइ. से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ—'अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ.' एवं चउव्वीसदंडएणं, जाव—वेमाणिए.*

६३. संबंध:—राजगृह नगरमां समवसरण थयुं. सभा नीकळी अने यावद्—आ प्रमाणे बोल्या के:—

६४. प्र०—हे भगवन् ! जीव स्वयंकृत दुःखने-कर्मने-वेदे छे ?

६४. उ०—हे गौतम ! केटलुंक वेदे छे अने केटलुंक नथी वेदतो.

६५. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के 'केटलुंक वेदे छे अने केटलुंक नथी वेदतो ?'

६५. उ०—हे गौतम ! उदीर्ण कर्मने वेदे छे अने अनुदीर्ण कर्मने नथी वेदतो, माटे एम कहेवाय छे के, 'केटलुंक वेदे छे अने केटलुंक नथी वेदतो.' ए प्रमाणे चोवीशे दंडकमां यावत्—वैमानिक सुधी जाणवुं.

---

१. मूलच्छाया:—राजगृहे नगरे समवसरणम्. पर्षद् निर्गता, यावद्—एवमवादीत्:—जीवो भगवन् ! स्वयंकृतं दुःखं वेदयति ? गौतम ! अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति. तत् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवमुच्यते—'अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति' ? गौतम ! उदीर्णं वेदयति, अनुदीर्णं नो वेदयति, तत् तेनाऽर्थेन एवमुच्यते—'अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति'. एवं चतुर्विंशतिदण्डकेन, यावद्—वैमानिकः—अनु०

६६. प्र०—जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंति ?

६६. उ०—गोयमा ! अत्थेगइयं वेदेंति, अत्थेगइयं णो वेदेंति.

६७. प्र०—से केणट्ठेणं ?

६७. उ०—गोयमा ! उदिण्णं वेदेंति, नो अणुदिण्णं वेदेंति. से तेणट्ठेणं, एवं जाव–वेमाणिया.

६८. प्र०—जीवे णं भंते ! सयंकडं आउयं वेएइ ?

६८. उ०—गोयमा ! अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं नो वेएइ. जहा दुक्खेणं दो दंडगा तहा आउएणं वि दो दंडगा–एगत्तपुहत्तिया, एगत्तेणं जाव–वेमाणिया. पुहत्तेण वि तहेव.

६६. प्र०—हे भगवन् ! जीवो स्वयंकृत कर्मने वेदे छे ?

६६. उ०—हे गौतम ! केटलांकने वेदे छे अने केटलांकने नथी वेदता.

६७. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

६७. उ०—हे गौतम ! उदीर्ण कर्मने वेदे छे अने अनुदीर्णने नथी वेदता, माटे पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे. ए प्रमाणे यावद्–वैमानिको सुधी जाणवुं.

६८. प्र०—हे भगवन् ! जीव स्वयंकृत आयुष्यने वेदे छे ?

६८. उ०—हे गौतम ! केटलुंक वेदे छे अने केटलुंक नथी वेदतो. जे प्रमाणे दुःख–कर्म–संबंधे बे दंडक कह्या तेम, आयुष्य संबंधे पण एकवचन अने बहुवचनवाळा बे दंडक कहेवा, एकवचनवडे यावद्–वैमानिक सुधी कहेवुं अने बहुवचनवडे पण ते ज प्रमाणे कहेवुं.

१. व्याख्यात. प्रथमोद्देशकः, अथ द्वितीय आरभ्यते, अस्य चैवं संबन्धः–प्रथमोद्देशके चलनादिधर्मकं कर्म कथितं तदेव इह निरूप्यते, तथोद्देशकार्थसंग्रहिण्या 'दुक्खे'त्ति यदुक्तं तदिह उच्यते, तत्प्रस्तावनार्थं च पूर्वोक्तमेव ग्रन्थं स्मरन्नाहः–'रायगिहे' इत्यादि पूर्ववत्. 'जीवे णं' इत्यादि. तत्र 'सयंकडं दुक्खं'ति यत् परकृतं तन्न वेदयतीति प्रतीतमेव, अतः स्वयंकृतमिति पृच्छति स्म. 'दुक्खं'ति सांसारिकं सुखमपि वस्तुतो दुःखमिति दुःखहेतुत्वाद् दुःखं कर्म, 'वेदयति ?' इति काकुपाठात् प्रश्नः. निर्वचनं तु यद् उदीर्णं तद् वेदयति, अनुदीर्णस्य हि कर्मणो वेदनमेव नास्ति, तस्माद् उदीर्णं वेदयति, नाऽनुदीर्णम्. न च बन्धाऽनन्तरमेवोदेति, अतोऽवश्यं वेद्यमपि एकं वेदयति, एकं न वेदयति इत्येवं व्यपदिश्यते. अवश्यं वेद्यमेव च कर्म–"कडाण कम्माण ण मोक्खो अत्थि" इति वचनादिति. 'एवं जाव-वेमाणिए' इत्यनेन चतुर्विंशतिदण्डकः सूचितः, स चैवम्.–'नेरइए णं भंते ! सयंकडं' इत्यादि, एवमेकत्वेन दण्डकः. तथा बहुत्वेनाऽन्यः, स चैवम्:- 'जीवा णं भंते ! सयंकडं दुक्खं वेदेंति' इत्यादि. तथा 'नेरइया णं भंते ! सयंकडं दुक्खं' इत्यादि. ननु एकत्वे योऽर्थो बहुत्वेऽपि स एवेति किं बहुत्वप्रश्नेनेति ? अत्रोच्यते–क्वचिद् वस्तुनि एकत्व–बहुत्वयोरर्थविशेषो दृष्टः, यथा–सम्यक्त्वादेरेकं जीवमाश्रित्य षट्षष्टिसागरोपमाणि साऽधिकानि स्थितिकाल उक्तः, नाना जीवानाश्रित्य पुनः सर्वाद्धा इति. एवमत्राऽपि संभवेद् इति शङ्कायां बहुत्वप्रश्नो न दुष्टः, अत्यन्ताऽव्युत्पन्नमतिशिष्यव्युत्पादनार्थत्वाद् वेति. अथ आयुःप्रधानत्वाद् नारकादिव्यपदेशस्याऽऽयुराश्रित्य दण्डकद्वयम्–'जीवे णं' इत्यादि. एतस्य चेयं वृद्धोक्तभावना "यदा सप्तमक्षितावायुर्बद्धम्, पुनश्च कालान्तरे परिणामविशेषात् तृतीयधरणीप्रायोग्यं निर्वर्तितं वासुदेवेनेव तत् तादृशमङ्गीकृत्योच्यते–पूर्वबद्धं कश्चिन्न वेदयति, अनुदीर्णत्वात् तस्य यदा पुनर्यत्रैव बद्धं तत्रैवोत्पद्यते तदा वेदयतीत्युच्यते, तथैव तस्योदितत्वाद्" इति.

संबंध.

१. आगळ प्रथम उद्देशकनुं व्याख्यान कर्युं. हवे बीजा उद्देशकनी शरुआत थाय छे अने एनो संबंध आ प्रमाणे छेः–प्रथम उद्देशकमां चलनादिधर्मवाळा कर्मनुं निरूपण कर्युं अने आ बीजा उद्देशकमां पण तेनुं ज निरूपण करे छे, तथा उद्देशकार्थनी संग्रह गाथामां जे 'दुक्खे'त्ति ए शब्द कह्यो छे ते सबंधे अहीं कहे छे अने ते कथननी प्रस्तावना माटे पूर्वोक्त ग्रंथने ज याद करता ग्रंथकार कहे छे के, ['रायगिहे' इत्यादि] एनी व्याख्या पूर्वनी पेठे जाणवी. ['जीवे णं' इत्यादि] तेमां ['सयंकडं दुक्खं'ति]'कर्म करनारो ज कर्मने वेदे छे पण बीजाए करेलुं कर्म बीजाथी वेदातुं नथी' ए वात जग जाहेर छे, माटे अहीं ते सबंधे प्रश्न न करता 'जीव स्वयंकृत कर्म वेदे छे ?' ए संबंधे पूछे छे.['दुक्खं'ति] सांसारिक सुख पण वास्तविक दुःखरूप छे अने कर्म ए दुःखप्राप्तिमां कारण छे माटे अहीं 'दुक्ख' शब्दथी 'कर्म' लेवानुं छे, अर्थात् 'सांसारिक सुख के दुःखमां कारणरूप कर्मने जीव वेदे छे ?' ए प्रमाणे प्रश्न काकुपाठथी करवो. तेनो उत्तर आ प्रमाणे छेः–जे कर्म उदये आवेलुं छे तेने वेदे छे. कारण के उदये नहीं आवेल कर्मनुं वेदन करवुं ते असंभवित छे माटे, उदये आवेल कर्मने वेदे छे अने उदये नहीं आवेल कर्मने वेदतो नथी. वळी, कर्मने बांध्या पछी ते तुरत ज उदयमां आवतुं नथी माटे 'जे कर्मो चोक्कस वेदवानां छे तेमानुं एक कर्म वेदवामां आवे छे अने एक कर्म वेदवामां नथी आवतुं' ए प्रमाणेनो व्यवहार थाय छे. अने "करेल कर्मोनो (भोगव्या सिवाय) मोक्ष–छूटकारो–नथी" एम शास्त्रनुं वचन छे माटे कर्म अवश्य वेद्य छे. ['एवं जाव–वेमाणिए'] ए वाक्यथी चोवीश दडकोनुं सूचन कर्युं छे. ते आ प्रमाणेः-'हे भगवन् ! (एक) नैरयिक स्वयंकृत कर्मने वेदे छे ?' इत्यादि. ए प्रमाणे एकवचनवाळो

एक जीववडे स्वयंकृत दुःख वेदाय छे ?

उदय–अनुदय.

घम संबंध.

---

१. मूलच्छायाः—जीवा भगवन् ! स्वयकृतं दुःखं वेदयन्ति ? गौतम ! अस्त्येककं वेदयन्ति, अस्त्येककं नो वेदयन्ति. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! उदीर्णं वेदयन्ति, नो अनुदीर्णं वेदयन्ति. तत् तेनाऽर्थेन, एवं यावत्–वैमानिकाः. जीवो भगवन् ! स्वयंकृतमायुष्कं वेदयति ? गौतम ! अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति. यथा दुःखेन द्वौ दण्डकौ तथाऽऽयुष्केणापि द्वौ दण्डकौ–एकत्वपृथक्त्विकौ, एकत्वेन यावत्–वैमानिकाः. पृथक्त्वेनाऽपि तथैव.

२. प्र० छायाः—कृतानां कर्मणां न मोक्षोऽस्तिः–अनु०

१. जुओ पृ—८ मांनुं मूलः–अनु०

दंडक (सर्वत्र) जाणवो. तथा बहुवचनमां बीजो दंडक जाणवो, ते आ प्रमाणे छेः—'हे भगवन् ! (घणा) जीवो स्वयंकृत कर्मने वेदे छे ?' इत्यादि. तथा 'हे भगवन् ! (घणा) नैरयिको स्वयंकृत कर्मने वेदे छे ?' इत्यादि. (ए प्रमाणे बीजा दंडकोमां पण एकवचन अने बहुवचनवाळा दंडको कहेवा.) शंकाः—जे अर्थ एकवचनवाळा प्रश्नमां छे ते ज अर्थ बहुवचनवाळा प्रश्नमां पण जणाय छे, तो बहुवचनवाळो बीजो प्रश्न करवानी शी जरूर छे ?. समाधानः—कोइ वस्तुसंबंधी एकपणामां अने बहुपणामां अर्थविशेष देखवामां आवे छे. जेम के, एक जीवने आश्री सम्यक्त्वादि- (सम्यक्त्व, मति, श्रुत अने अवधिज्ञान)नी स्थिति छासठ सागरोपम कहेली छे अने घणा जीवोने आश्री तेनी स्थिति सदा काळ कही छे. माटे सम्यक्त्वादिनी पेठे अहीं पण 'एकपणामां अने बहुपणामां अर्थ विशेष संभवे' एवी शंका थतां बहुत्वसंबंधी प्रश्न दुष्ट नथी. अथवा अत्यंत अव्युत्पन्न बुद्धिवाळा शिष्यना बोध माटे ते बहुत्वनो प्रश्न छे. नरकादिना व्यवहारमां आयुष्यनी मुख्यता होवाथी हवे आयुष्यने आश्री बे दंडक कहे छेः—['जीवे णं' इत्यादि] अने ए सूत्रनी वृद्धोए करेली भावना आ प्रमाणे छेः— "पहेलां (कृष्ण) वासुदेवे सातमी (नरक) पृथिवीमां जवा योग्य आयुष्य बांध्युं हतुं अने वळी कालांतरे परिणामविशेषथी त्रीजी पृथिवीमां जवा योग्य आयुष्य बांध्युं. तो तेवा आयुष्यनी अपेक्षाए कहेवाय छे के, पूर्वे बांधेल आयुष्य अनुदीर्ण (उदयमां नहीं आवेल) होवाथी कोइना वेदवामां नथी आवतुं. जो वळी त्यां जवानुं आयुष्य बांध्युं होय त्यां ज उत्पत्ति थाय तो पूर्वे बांधेल आयुष्य ते ज प्रकारे उदयमां आवेल होवाथी वेदाय छे, एम कहेवाय."

बहुत्व.
बहुत्व शामाटे ?
समाधान.
आयुष्य.
वृद्धो.

नैरयिक.

६९. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सासनीसासा ?

६९. उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे.

७०. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'नेरइया नो सव्वे समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सासनीसासा' ?

७०. उ०—गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—महासरीरा य, अप्पसरीरा य. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले नीससंति; अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति. तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले उस्ससंति, अप्पतराए पोग्गले नीससंति; आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'नेरइया सव्वे नो समाहारा, नो सव्वे समसरीरा, नो सव्वे समुस्सास-नीसासा'.

७१. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समकम्मा ?

७१. उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे.

७२. प्र०—से केणट्ठेणं ?

७२. उ०—गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य. तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं अप्पकम्मतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं महाकम्मतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा !०.

६९. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको सरखा आहारवाळा, सरखा शरीरवाळा तथा सरखा उच्छ्वास अने निःश्वासवाळा छे ?

६९. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ—संगत—नथी अर्थात् ए प्रमाणे नथी.

७०. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, 'बधा नैरयिको सरखा आहारवाळा, सरखा शरीरवाळा अने सरखा उच्छ्वास अने निःश्वासवाळा नथी ?'

७०. उ०—हे गौतम ! नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—मोटा शरीरवाळा अने नाना शरीरवाळा, तेमां जे नैरयिको मोटा शरीरवाळा छे तेओ घणा पुद्गलोनो आहार करे छे, घणा पुद्गलोने परिणमावे छे, घणो उच्छ्वास अने निःश्वास ले छे; वारंवार आहार करे छे, वारंवार परिणमावे छे अने वारंवार उच्छ्वास तथा निःश्वास ले छे. तथा तेमां जे नाना शरीरवाळा छे तेओ थोडा पुद्गलोने परिणमावे छे, थोडो उच्छ्वास अने निःश्वास ले छे; कदाचिद् आहार करे छे, कदाचित् परिणमावे छे अने कदाच उच्छ्वास अने निःश्वास ले छे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी एम कहेवाय छे के 'बधा नैरयिको सरखा आहारवाळा, सरखा शरीरवाळा अने यावत्—सरखा उच्छ्वास तथा निःश्वासवाळा नथी'.

७१. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको सरखा कर्मवाळा छे ?

७१. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

७२. प्र०—हे भगवन् ! ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

७२. उ०—हे गौतम ! नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—पूर्वोपपन्नक—पहेलां उत्पन्न थएला—अने पश्चादुपपन्नक—पछी उत्पन्न थएला. तेमां जे नैरयिको पूर्वोपपन्नक छे तेओ अल्प कर्मवाळा छे अने जे पश्चादुपपन्नक छे तेओ महाकर्मवाळा छे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी एम कहेवाय छे के 'नैरयिको बधा सरखा कर्मवाळा नथी'.

---

१. मूलच्छायाः—नैरयिका भगवन् ! सर्वे समाहाराः, सर्वे समशरीराः, सर्वे समोच्छ्वासनिःश्वासाः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवमुच्यते, 'नैरयिका नो सर्वे समाहाराः, नो सर्वे समशरीराः, नो सर्वे समोच्छ्वासनिःश्वासाः' ? गौतम ! नैरयिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—महाशरीराश्च, अल्पशरीराश्च; तत्र ये ते महाशरीरास्ते बहुतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, बहुतरान् पुद्गलान् परिणमयन्ति, बहुतरान् पुद्गलान् उच्छ्वसन्ति, बहुतरान् पुद्गलान् निःश्वसन्ति; अभिक्षणमाऽऽहारयन्ति, अभिक्षणं परिणमयन्ति, अभिक्षणमुच्छ्वसन्ति, अभिक्षणं निःश्वसन्ति; तत्र ये ते अल्पशरीरास्ते अल्पतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, अल्पतरान् पुद्गलान् परिणमयन्ति, अल्पतरान् पुद्गलानुच्छ्वसन्ति, अल्पतरान् पुद्गलान् निःश्वसन्ति; आहत्याऽऽहारयन्ति, आहत्य परिणमयन्ति, आहत्योच्छ्वसन्ति, आहत्य निःश्वसन्ति, तत् तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते; 'नैरयिका नो सर्वे समाहाराः, नो सर्वे समशरीराः, नो सर्वे समोच्छ्वासनिःश्वासाः'. 'नैरयिका भगवन् ! सर्वे समकर्माणः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! नैरयिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—पूर्वोपपन्नकाश्च, पश्चादुपपन्नकाश्च; तत्र ये ते पूर्वोपपन्नकास्तेऽल्पकर्मतरकाः, तत्र ये ते पश्चादुपपन्नकास्ते महाकर्मतरकाः, तत् तेनाऽर्थेन गौतम !०:—अनु०

७३. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समवन्ना ?

७३. उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे.

७४. प्र०--से केणट्ठेणं तह चेव० ?

७४. उ०—गोयमा ! जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धवन्नतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धवन्नतरागा, तहेव से तेणट्ठेणं एवं०.

७५. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समलेस्सा ?

७५. उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे.

७६. प्र०—से केणट्ठेणं जाव-'नो सव्वे समलेस्सा' ?

७६. उ०—गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—पुव्वोववण्णगा य, पच्छोववण्णगा य; तत्थ णं जे ते पुव्वोववन्नगा ते णं विसुद्धलेस्सतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववन्नगा ते णं अविसुद्धलेस्सतरागा, से तेणट्ठेण०.

७७. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?

७७. उ०-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

७८. प्र०- से केणट्ठेणं ?

७८. उ०—गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—सण्णिभूआ य, असण्णिभूआ य; तत्थ णं जे ते सन्निभूआ ते णं महावेयणा, तत्थ ण जे ते असण्णिभूआ ते णं अप्पवेयणतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा !०.

७९. प्र०— नेरइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

७९. उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे.

८०. प्र०—से केणट्ठेणं ?

८०. उ०— गोयमा ! नेरइया तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः—सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी; तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी तेसिं णं चत्तारि किरियाओ पन्नत्ता, तं जहाः—आरंभिआ, परिग्गहिआ, मायावत्तिआ, अपच्चक्खाणकिरिया. तत्थ णं जे ते मिच्छदिट्ठी तेसिं णं पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहाः—आरंभिआ जाव—मिच्छादंसणवत्तिआ. एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं पि, से तेणट्ठेणं गोयमा !०.

७३. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको समान वर्णवाळा छे ?

७३. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

७४. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

७४. उ०—हे गौतम ! पूर्वे प्रमाणे जाणवुं अर्थात् नैरयिको बे प्रकारना छे ते आ प्रमाणेः—पूर्वोपपन्नक अने पश्चादुपपन्नक, तेमां जे पूर्वोपपन्नक छे तेओ विशुद्धवर्णवाळा छे अने जे पश्चादुपपन्नक छे तेओ अविशुद्धवर्णवाळा छे, माटे हे गौतम ! पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

७५. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको समान लेश्यावाळा छे ?

७५. उ०—हे गौतम ! ते अर्थ समर्थ नथी.

७६. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, 'बधा नैरयिको समान लेश्यावाळा नथी' ?

७६. उ०—हे गौतम ! नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—पूर्वोपपन्नक अने पश्चादुपपन्नक, तेमां जे नैरयिको पूर्वोपपन्नक छे तेओ विशुद्ध लेश्यावाळा छे अने जेओ पश्चादुपपन्नक छे तेओ अविशुद्ध लेश्यावाळा छे, माटे हे गौतम ! ते हेतुथी पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

७७. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको सरखी वेदनावाळा छे ?

७७. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

७८. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

७८. उ०—हे गौतम ! नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणे —संज्ञिभूत अने असंज्ञिभूत. तेमां जे संज्ञिभूत छे ते मोटी वेदनावाळा छे. अने जे असंज्ञिभूत छे ते ओछी वेदनावाळा छे, माटे हे गौतम ! ते हेतुथी पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

७९. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको समान क्रियावाळा छे ?

७९. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

८०. प्र० हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

८०. उ० - हे गौतम ! नैरयिको त्रण प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्मिथ्यादृष्टि; तेमां जेओ सम्यग्दृष्टि छे तेओने चार क्रियाओ होय छे, ते आ प्रमाणेः—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया अने अप्रत्याख्यानक्रिया. तेमां जेओ मिथ्यादृष्टि छे तेओने पांच क्रियाओ होय छे, ते आ प्रमाणेः—आरंभिकी, पारिग्रहिकी मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया अने मिथ्यादृष्टिप्रत्यया. तथा तेमां जेओ सम्यग्मिथ्यादृष्टि छे तेओने पण पूर्वे प्रमाणे पांच क्रियाओ होय छे, माटे हे गौतम ! ते हेतुथी ए प्रमाणे कह्युं छे.

---

१. मूलच्छायाः—नैरयिका भगवन् ! सर्वे समवर्णाः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन तथैव-(भगवन् ! एवमुच्यते) ? गौतम ! ये ते पूर्वोपपन्नकास्ते विशुद्धवर्णतरकाः, तत्र ये ते पश्चादुपपन्नकास्तेऽविशुद्धवर्णतरकाः, तथैव तत् तेनाऽर्थेनैवम्. नैरयिका भगवन् ! सर्वे समलेश्याः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनार्थेन यावद्-'नो सर्वे समलेश्याः' ? गौतम ! नैरयिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा -पूर्वोपपन्नकाश्च, पश्चादुपपन्नकाश्च, तत्र ये ते पूर्वोपपन्नकास्ते विशुद्धलेश्याः, तत्र ये ते पश्चादुपपन्नकास्तेऽविशुद्धलेश्याः, तत् तेनार्थेनः०. नैरयिका भगवन् ! सर्वे समवेदनाः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! नैरयिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—संज्ञिभूताश्च, असंज्ञिभूताश्च, तत्र ये ते संज्ञिभूतास्ते महावेदनाः, तत्र ये तेऽसंज्ञिभूतास्तेऽल्पवेदनाः, तत् तेनाऽर्थेन गौतम !०. नैरयिकाः भगवन् ! सर्वे समक्रियाः ? गौतम ! नायमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम, नैरयिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—सम्यग्दृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः; तत्र ये ते सम्यग्दृष्टयस्तेषां चतस्रः क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—आरम्भिकी ! पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानक्रिया; तत्र ये ते मिथ्यादृष्टयस्तैः पञ्च क्रियाः क्रियन्ते, तद्यथाः—आरम्भिकी यावद्-मिथ्यादर्शनप्रत्यया, एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि, तत् तेनाऽर्थेन गौतम !०ः—अनु०

८१. प्र०—नेरइया णं भंते ! सव्वे समाउआ, सव्वे समोववन्नगा ?

८१. उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

८२. प्र०—से केणट्ठेणं ?

८२. उ०—गोयमा ! नेरइया चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहाः— अत्थेगइआ समाउआ समोववन्नगा, अत्थेगइआ समाउआ विसमोववन्नगा, अत्थेगइआ विसमाउआ समोववन्नगा, अत्थेगइआ विसमाउआ विसमोववन्नगा; से तेणट्ठेणं गोयमा !०.

८१. प्र०—हे भगवन् ! बधा नैरयिको सरखी उमरवाळा अने समोपपन्नक—साथे उत्पन्न थएला—छे ?

८१. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

८२. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

८२. उ०—हे गौतम ! नैरयिको चार प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—केटलाक सरखी उमरवाळा अने साथे उत्पन्न थएला, केटलाक सरखी उमरवाळा अने विषमपणे—आगळ पाछळ—उत्पन्न थएला, केटलाक विषम उमरवाळा अने साथे उत्पन्न थएला तथा केटलाक विषम उमरवाळा अने विषमपणे उत्पन्न थएला. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

२. अथ चतुर्विंशतिदण्डकमाहारादिभिर्निरूपयन्नाहः—*'नेरइया'* इत्यादि व्यक्तम्, नवरम्—*'महासरीरा य अप्पसरीरा य'* इत्यादि. इहाऽल्पत्वं महत्त्वं चापेक्षिकम्, तत्र जघन्यमल्पत्वम्—अङ्गुलाऽसंख्येयभागमात्रत्वम्, उत्कृष्टं तु महत्त्वं पञ्चधनुःशतमानत्वम्; एतच्च भवधारणीयशरीराऽपेक्षया. उत्तरवैक्रियाऽपेक्षया तु जघन्यमङ्गुलसंख्यातभागमात्रत्वम्. इतरत् तु धनुःसहस्रमानत्वमिति. एतेन च 'किं समशरीराः' इत्यत्र प्रश्ने उत्तरमुक्तम्. शरीरविषमताऽभिधाने सति आहारो—च्छ्वासयोर्वैषम्यं सुखप्रतिपाद्यं भवतीति शरीरप्रश्नस्य द्वितीयस्थानोक्तस्याऽपि प्रथमं निर्वचनमुक्तम्. अथाहारो—च्छ्वासप्रश्नयोर्निर्वचनमाहः—*'तत्थ णं'* इत्यादि. ये यतो महाशरीरास्ते तदपेक्षया बहुतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, महाशरीरत्वादेव. दृश्यते हि लोके बृहच्छरीरो बह्वाशी. स्वल्पशरीरश्चाल्पभोजी, हस्ति—शशकवत्, बाहुल्याऽपेक्षं चेदमुच्यते; अन्यथा बृहच्छरीरोऽपि कश्चिद् अल्पमश्नाति, अल्पशरीरोऽपि कश्चिद् भूरि भुङ्क्ते, तथाविधमनुष्यवत्. न पुनरेवमिह, बाहुल्यपक्षस्यैवाऽऽश्रयणात्. ते च नारका उपपातादिसद्वेद्याऽनुभवाद् अन्यत्राऽसद्वेद्योदयवर्तित्वेन एकान्तेन यथा महाशरीरा महादुःखितास्तीव्राहाराभिलाषाश्च भवन्तीति. *'बहुतराए पोग्गले परिणामेंति'*त्ति आहारपुद्गलानुसारित्वात् परिणामस्य 'बहुतरान्' इत्युक्तम्, परिणामश्चापृष्टोऽपि आहारकार्यमिति कृत्वा उक्तः. तथा *'बहुतराए पोग्गले उस्ससंति'*त्ति उच्छ्वासतया गृह्णन्ति, *'नीससंति'*त्ति निःश्वासतया विमुञ्चन्ति, महाशरीरत्वादेव. दृश्यते हि बृहच्छरीरस्तज्जातीयेतराऽपेक्षया बहूच्छ्वास-निःश्वास इति. दुःखितोऽपि तथैव, दुःखिताश्च नारका इति बहुतरांस्तान् उच्छ्वसन्ति इति. तथाऽऽहारस्यैव कालकृतं वैषम्यमाहः—*'अभिक्खणं आहारेंति'*त्ति अभीक्ष्णं पौनःपुन्येन यो यतो महाशरीरः स तदपेक्षया शीघ्रशीघ्रतराहारग्रहण इत्यर्थः. *'अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति'* एते हि महाशरीरत्वेन दुःखिततरत्वाद् अभीक्ष्णमनवरतम्—उच्छ्वासादि कुर्वन्तीति. तथा *'जे ते'* इत्यादि. 'ये ते' इह 'ये' इत्येतावता एवार्थसिद्धौ 'ये ते' इत्युच्यते तद् भाषामात्रमेवेति. *'अप्पसरीरा अप्पतराए पोग्गले आहारेंति'*त्ति ये यतोऽल्पशरीरास्ते तदाहरणीयपुद्गलाऽपेक्षया अल्पतरान् पुद्गलानाहारयन्ति, अल्पशरीरत्वादेव. *'आहच्च आहारेंति'*त्ति कदाचिदाहारयन्ति, कदाचिन्नाहारयन्तीति—महाशरीराहारग्रहणान्तरालाऽपेक्षया बहुतरकालान्तरालतयेत्यर्थः. *'आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति'*त्ति एते ह्यल्पशरीरत्वेनैव महाशरीराऽपेक्षया अल्पतरदुःखत्वाद् आहत्य कदाचित् सान्तरमित्यर्थः—उच्छ्वासादि कुर्वन्ति. 'यच्च नारकाः सततमेवोच्छ्वासादि कुर्वन्ति' इति प्रागुक्तम्. तद् महाशरीरापेक्षया इत्यवगन्तव्यमिति. अथवाऽपर्याप्तकालेऽल्पशरीराः सन्तो लोमाहारापेक्षया नाहारयन्ति, उच्छ्वासाऽपर्याप्तकत्वेन च नोच्छ्वसन्ति, अन्यदा त्वाहारयन्ति, उच्छ्वसन्ति च, इत्यतः 'आहत्याहारयन्ति, आहत्य उच्छ्वसन्ति' इत्युक्तम्. *'से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'नेरइया सव्वे नो समाहारा'* इत्यादि निगमनमिति.

२. हवे आहारादिवडे चोवीश दंडकने निरूपता प्रथम क्रमप्राप्त नैरयिकोने निरूपे छेः ['नेरइया' इत्यादि] ए सूत्र सुगम छे. विशेष ए के, ['महासरीरा य अप्पसरीरा य' इत्यादि] ए सूत्रमां शरीरनुं जे मोटापणुं अने नानापणुं कह्युं छे ते आपेक्षिक अपेक्षाथी कहेल छे. तेमां ओछामां ओछुं नानापणुं आंगळना असंख्येय भाग जेटलुं छे अने वधारेमां वधारे मोटापणुं पांचसें धनुष (वाम) जेटलुं छे. ए बन्ने (नानापणुं अने मोटापणुं) भवधारणीय—मरणपर्यंत सहचर—शरीरनी अपेक्षाए जाणवां. तथा उत्तरवैक्रिय- इच्छापूर्वक नानुं मोटुं थइ शके एवा -शरीरनी अपेक्षाए तो ओछामां ओछुं नानापणुं अंगुलना संख्येय भाग जेटलुं छे अने वधारेमां वधारे मोटापणुं एक हजार धनुष जेटलुं छे. अहीं शरीरना नानापणानी अने मोटापणानी वात कहेवाथी 'नैरयिको शुं समान शरीरवाळा छे ?' ए प्रश्ननो उत्तर कह्यो छे. (शंकाः— शास्त्रकारे मूळ सूत्रमां प्रथम आहारनी समानता विषे पूछ्युं छे तो पण उत्तर (जवाब) सूत्रमां आहार संबंधे कांइ न कहेतां प्रथम शरीरसंबंधे विवेचन शामाटे कर्युं ?) समाधानः प्रथम शरीरनी विषमता जणाववामां आवे तो ते शरीरसंबंधी आहार अने उच्छ्वासनी विषमता सुखपूर्वक कही शकाय माटे पछवाडे कहेल शरीरना प्रश्ननुं पण प्रथम निर्वचन

नैरयिक. महाशरीर—अल्पशरीर.

---

१. मूलच्छायाः—नैरयिका भगवन् ! सर्वे समाऽऽयुष्काः, सर्वे समोपपन्नकाः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! नैरयिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—अस्त्येककाः समाऽऽयुष्काः समोपपन्नकाः, अस्त्येककाः समायुष्का विषमोपपन्नकाः, अस्त्येकका विषमाऽऽयुष्काः समोपपन्नकाः, अस्त्येकका विषमाऽऽयुष्का विषमोपपन्नकाः, तत् तेनाऽर्थेन गौतम !०ः—अनु०

अधिक आहार अने अल्प आहार.

करुं छे. हवे आहारना अने उच्छ्वासना प्रश्ननुं निर्वचन कहे छेः–['तत्थ णं' इत्यादि] जेना करतां जेओ मोटा शरीरवाळा छे तेओ तेनी अपेक्षाए (नाना शरीरवाळा करतां) घणा पुद्गलोनो आहार करे छे. कारण के, तेओ मोटा शरीरवाळा छे. लोकमां पण देखाय छे के, जे मोटा शरीरवाळो छे ते घणुं खानारो छे अने जे नाना शरीरवाळो छे ते थोडुं खानारो छे. उदाहरण तरीके जेम, हाथी अने ससलो. वळी तथाप्रकारना मनुष्यनी पेठे कोइ मोटा शरीरवाळो पण ओछुं खाय छे अने कोइ नाना शरीरवाळो पण वधारे खाय छे, माटे शरीरना मोटापणा के नानापणाने लीधे आहारनी जे अधिकता अने न्यूनता कही छे ते प्रमाणे सर्वत्र बधे ठेकाणे–नथी होतुं पण झाझा भागे एवुं बने छे, अने झाझा भागे एम बनतुं होवाथी–बाहुल्यपक्षनो अहीं आश्रय करेलो होवाथी नैरयिकोमां मोटा शरीरवाळो वधारे आहार करे अने नाना शरीरवाळो ओछो आहार करे, एम समजवुं. पण विपरीत मोटा शरीरवाळो थोडो आहार करे अने नाना शरीरवाळो वधारे आहार करे -न समजवुं. वळी उपपातादि सद्वेद्य सिवायना समये ते नैरयिकोने तद्दन–सर्वथा–असद्वेद्यनुं उदयवर्तिपणुं होवाथी जेम मोटा शरीरवाळा छे तेम मोटुं दुःख अनुभवे छे अने आहारमां तीव्र अभिलाषवाळा होय छे.

परिणाम.

अधिक अने अल्प श्वासोच्छ्वास.

['बहुतराए पोग्गले परिणामेंति'त्ति] परिणाम आहारना पुद्गलोने अनुसार होवाथी 'बहुतर- घणा' एम कह्युं छे. अने जो के परिणाम विषे कांइ पूछ्युं नथी तो पण ते आहारना कार्यरूप होवाथी विना पूछ्ये कह्यो छे. तथा ['बहुतराए पोग्गले उस्ससंति'त्ति] 'उस्ससंति' एटले उच्छ्वासरूपे ग्रहण करे छे, ['नीससंति'त्ति] एटले निःश्वासरूपे मूके छे, कारण के, तेओ मोटा शरीरवाळा छे. लोकमां पण देखाय छे के, मोटा शरीरवाळाने तेनी समानजातीय अने इतरजातीय (नाना शरीरवाळा) नी अपेक्षाए बहु उच्छ्वास अने निःश्वास होय छे अने दुःखित (जीव) पण तेवा ज प्रकारनो होय छे तथा नारको पण दुःखित होवाथी घणा पुद्गलोने उच्छ्वासरूपे ग्रहण करे छे. तथा आहारनुं ज कालकृत वैषम्य कहे छेः ['अभिक्खणं आहारेंति'त्ति] जे जेना करतां मोटा शरीरवाळो छे ते तेनी अपेक्षाए शीघ्र शीघ्रतर (वारंवार) आहारनुं ग्रहण करे छे. ['अभिक्खणं उस्ससंति, अभिक्खणं नीससंति'] एओ मोटा शरीरवाळा होवाने लीधे अत्यंत दुःखित होवाथी निरंतर उच्छ्वासादिक ले छे. तथा ['जे[1] ते' इत्यादि] ['अप्पसरीरा अप्पतराए पुग्गले आहारेंति'त्ति] जे जेनाथी नाना शरीरवाळा छे ते तेनाथी (मोटा शरीरवाळाना खावाना पुद्गलोनी अपेक्षाए) अल्पतर पुद्गलोनो आहार करे छे, कारण के तेओ अल्पशरीर छे. ['आहच्च आहारेंति'त्ति] कदाचित् आहार करे छे. कदाचित् आहार करता नथी अर्थात् महाशरीरवाळाना आहारग्रहणना अंतरालनी अपेक्षाए घणा कालना अंतराले आहारनुं ग्रहण करता नथी. ['आहच्च उस्ससंति, आहच्च नीससंति'त्ति] एओ नाना शरीरवाळा होवाथी ज मोटा शरीरवाळानी अपेक्षाए थोडा दुःखी छे. माटे कदाचित् आंतरे आंतरे उच्छ्वासादि करे छे. 'नारको निरंतर ज श्वासादिक करे छे' ए प्रमाणे जे पहेलां कह्युं छे ते मोटा शरीरवाळा

वारंवार आहार अने श्वासोच्छ्वास.

मतांतर.

नारकोनी अपेक्षाए जाणवुं. अथवा 'कदाचित् आहार करे छे अने कदाचित् उच्छ्वासादिक करे छे' एनो बीजो अर्थ आ प्रमाणे छेः–अपर्याप्त (पूरुं शरीर न बंधायुं होय एवा) समयमां नैरयिको नाना शरीरवाळा होवाथी लोमाहार[2] करी शकता नथी. माटे लोमाहारने लेवानी अपेक्षाए तेओ, आहार करता नथी अने बीजे समये–पर्याप्त थयाना (शरीर पूरुं बंधायाना) समये–आहार करे छे माटे कदाचित् आहार करे छे अने कदाचित् आहार नथी करता. तेम ज ज्यारे तेओ उच्छ्वासाऽपर्याप्त (उच्छ्वास लेवाने पूरती शक्तिरहित) होय छे त्यारे उच्छ्वास नथी लेता अने ते माटे ज्यारे तेओ पूरती शक्ति पामे छे त्यारे उच्छ्वास ले छे माटे कदाचित् उच्छ्वासादि करे छे अने कदाचित् उच्छ्वासादि नथी करता. ['से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ 'नेरइया सव्वे नो समाहारा' इत्यादि] अर्थात् हे गौतम! ते हेतुथी एम कहेवाय छे के, 'बधा नैरयिको समान आहारवाळा नथी' इत्यादि निगमन सूत्र कहेवुं.

३. समकर्मसूत्रे *'पुव्वोववन्नगा य, पच्छोववन्नगा य'*त्ति पूर्वोत्पन्नाः प्रथमतरमुत्पन्नाः, तदन्ये तु पश्चादुत्पन्नाः, तत्र पूर्वोत्पन्नानामाऽऽयुष्कस्तदन्यकर्मणां च बहुतरवेदनाद् अल्पकर्मत्वम्, पश्चादुत्पन्नानां च नारकाणामायुष्कादीनामल्पतराणां वेदितत्वाद् महाकर्मत्वम्, एतच्च सूत्रं समानस्थितिका ये नारकास्तानङ्गीकृत्य प्रणीतम्, अन्यथा हि रत्नप्रभायामुत्कृष्टस्थितेर्नारकस्य बहुन्यायुषि क्षयमिते पल्योपमावशेषे च तिष्ठति, तस्यामेव रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्रस्थितिर्नारकोऽन्यः कश्चिदुत्पन्न इति कृत्वा प्रागुत्पन्नं पल्योपमायुष्कं नारकमपेक्ष्य किं वक्तुं शक्यं 'महाकर्मा' इति ? एवं वर्णसूत्रे–पूर्वोत्पन्नस्याऽल्पं कर्म ततस्तस्य विशुद्धो वर्णः, पश्चादुत्पन्नस्य च बहुकर्मत्वाद् अविशुद्धतरो वर्ण इति. एवं लेश्यासूत्रेऽपि, इह च लेश्याशब्देन भावलेश्या ग्राह्या, बाह्यद्रव्यलेश्या तु वर्णद्वारेणैव उक्तेति. *'समवेयण'*त्ति समवेदनाः समानपीडाः. *'सन्निभूय'*त्ति संज्ञा सम्यग्दर्शनम्, तद्वन्तः संज्ञिनः, संज्ञिनो भूताः–संज्ञित्वं गताः संज्ञिभूताः. अथवा असंज्ञिनः संज्ञिनो भूताः संज्ञिभूताः–च्विप्रत्यययोगाद् मिथ्यादर्शनमपहाय सम्यग्दर्शनजन्मना समुत्पन्ना इति यावत्. "तेषां पूर्वकृतकर्मविपाकमनुस्मरताम्–अहो !! महद् दुःखसंकटमिदमकस्मादस्माकमापतितम्, न कृतो भगवदर्हत्प्रणीतः सकलदुःखक्षयकरो विषयविषमविषपरिभोगविप्रलब्धचेतोभिर्धर्मः, इत्यतो महद् दुःखं मानसमुपजायते, अतो महावेदनास्ते. असंज्ञिभूतास्तु मिथ्यादृष्टयः, ते तु 'स्वकृतकर्मफलमिदम्' इत्येवमजानन्तोऽनुपतप्तमानसा अल्पवेदनाः स्युः" इत्येके. अन्ये त्वाहुः–"संज्ञिनः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः सन्तो भूता नारकत्वं गताः

---

१. अहीं मूळसूत्रमां 'जे' शब्द मूकवाथी ज काम चाले छे तो पण जे 'जे ते' ए बे शब्दो मूक्या छे ते भाषामात्र ज छेः–श्रीअभयदेव.

२. जेम आपणे मनुष्यो आपणा खावाना पदार्थने मुख द्वारा लइ शरीरने पोषीए छीए तेम ज मुख विनाना जीवो पण जेओ रोमवाळा होय तेओ पोताना रोम (रुंवाटा) द्वारा खावानी वस्तुने अंदर पहोंचाडे छे अने जेओ रोम विनाना छे तेओ पोताना शरीरद्वारा ज खावानी चीजने अंदर उतारे छे. शास्त्रकारोए आहारना त्रण प्रकार दर्शाव्या छेः–प्रक्षेपाहार—कवलाहार. रोमाहार अने ओजआहार. कवलाहार=कोळीयारूप आहार अर्थात् खाद्य वस्तुने मुखमां प्रक्षेपवाने—नाखीने- लेवानो जे आहार ते प्रक्षेपाहार. रुंवाटा द्वारा लेवातो जे आहार ते रोमाहार के लोमाहार अने शरीर द्वारा लेवातो जे आहार ते ओजआहार. कह्युं छे केः—

"सरीरेणोयाहारो, तयाइ फासेण लोमआहारो, पक्खेवाहारो पुण कवलिओ होइ नायव्वो."—चतुर्थकर्मग्रन्थ, गा० टी–७ (भा० पृ–१०४.)

"शरीरथी जे आहार ते ओजआहार, चामडीवडे स्पर्शपूर्वक जे आहार ते लोमआहार अने कोळीयारूप आहार ते प्रक्षेपाहार."—चतुर्थकर्मग्रंथ, गा० टी–७ (भा० पृ–१०४):–अनु०

संज्ञिभूतास्ते महावेदनाः, तीव्राऽशुभाध्यवसायेनाऽशुभतरकर्मबन्धनेन महानरकेषूत्पादात्. असंज्ञिभूतास्तु अनुभूतपूर्वासंज्ञिभवाः, ते चाऽसंज्ञित्वादेव अत्यन्ताऽशुभाध्यवसायाऽभावाद् रत्नप्रभायामनतितीव्रवेदननरकेषूत्पादाद् अल्पवेदनाः. अथवा संज्ञिभूताः पर्याप्तकीभूताः, असंज्ञिनस्त्व-पर्याप्तकाः,ते च क्रमेण महावेदनाः, इतरे च भवन्तीति प्रतीयते एव" इति.

३. समकर्म–कर्मनी समानता संबंधी प्रश्नवाळा–सूत्रमां ['पुव्वोववन्नगा य पच्छोववन्नगा य'त्ति] (ए सूत्र छे तेनो अर्थ आ छेः-) जेओ पहेलां उत्पन्न थएला छे ते पूर्वोत्पन्न अने बीजाओ (जेओ पछी उत्पन्न थएला छे ते) पश्चादुत्पन्न. ते बन्नेमां पूर्वोत्पन्न नैरयिको ओछा कर्मवाळा छे, कारण के, तेओए पोतानुं आयुष्य अने बीजा सात कर्मो घणां वधारे वेद्यां छे अने पश्चादुत्पन्न नैरयिको तो महाकर्मवाळा छे, कारण के, तेओए पोतानुं आयुष्य अने बीजा सात कर्मो घणां ओछां वेद्यां छे. ए सूत्र समान स्थितिवाळा नैरयिकोनी अपेक्षाए कर्तुं छे, परंतु भिन्न (जुदी जुदी) स्थितिवाळा नैरयिकोनी अपेक्षाए कर्तुं नथी. जो एम न स्वीकारवामां आवे तो वांधो आवे छे, ते आ छेः रत्नप्रभा पृथिवीमां उत्कृष्ट स्थितिवाळा कोइ एक नैरयिकनुं घणुं आयुष्य क्षीण थयुं अने पल्योपम जेटलुं आयुष्य बाकी रह्युं ते वखते ते ज रत्नप्रभा पृथिवीमां दश हजार वर्षना आयुष्यवाळो कोइ नैरयिक उत्पन्न थयो तो जेनुं पल्योपम जेटलुं आयुष्य बाकी छे ते पूर्वोत्पन्नक थयो अने जे नवो दश हजार वर्षनी स्थितिवाळो नैरयिक उत्पन्न थयो छे ते पश्चादुत्पन्नक थयो. हवे जो पूर्वोक्त सूत्र (जे पूर्वोत्पन्नक होय ते अल्पकर्मवाळो अने जे पश्चादुत्पन्नक होय ते महाकर्मवाळो) सर्वत्र नैरयिकोमां घटाववामां आवे तो शुं पेला पल्योपम आयुष्यवाळा पूर्वोत्पन्नक करतां ते पश्चादुत्पन्नक दश हजार वर्षनी स्थितिवाळो नैरयिक 'महाकर्मवाळो छे' एम कही शकाय? न ज कहेवाय. कारण के, ते पश्चादुत्पन्नक करतां पूर्वोत्पन्नक नैरयिकनी घणी लांबी स्थिति छे माटे आ ठेकाणे तो पश्चादुत्पन्नक करतां पूर्वोत्पन्नक महा-कर्मवाळो छे तेथी–आ वांधो न आवे माटे–पूर्वोक्त सूत्र समानस्थितिवाळा नैरयिकोनी अपेक्षाए ज जाणवुं पण बधे न जाणवुं. ए प्रमाणे वर्णसूत्रमां पण जाणवुं–पूर्वोत्पन्न नैरयिक ओछा कर्मवाळो होवाथी तेनो विशुद्ध वर्ण छे अने पश्चादुत्पन्नक नैरयिक बहु कर्मवाळो होवाथी अविशुद्धतर वर्णवाळो छे. ए प्रमाणे लेश्यासूत्रमां पण जाणवुं. अहीं 'लेश्या' शब्दवडे भावलेश्या लेवी, कारण के द्रव्यलेश्या तो वर्णसूत्रमां वर्णना कथन द्वारा कहेवाइ गइ छे. ['समवेअण'त्ति] समान वेदनावाळा–सरखी पीडावाळा, ['संनिभूअ'त्ति] संज्ञा एटले सम्यग्दर्शन, जे सम्यग्दर्शनवाळा ते संज्ञिओ, अने जेओ संज्ञिपणुं पाम्या छे तेओ 'संज्ञिभूत' कहेवाय. अथवा पहेलां जे असंज्ञिओ होइ पछी संज्ञिओ थएला होय ते 'संज्ञिभूत' कहेवाय अर्थात् मिथ्यादर्शनने छोडी जेओ जन्मथी सम्यग्दर्शनयुक्त उत्पन्न थएला होय तेओ 'संज्ञिभूत' कहेवाय. "जे संज्ञिभूत नैरयिको छे तेओ मोटी पीडावाळा छे, कारण के, तेओ पोताना पूर्वे करेल कर्मना फलने संभारे छे अने पश्चात्तापपूर्वक कहे छे के, अहो ! ! अमने आ अणधार्युं मोटुं विशाळ दुःख आवी पड्युं छे, अमे पूर्व जन्ममां अरिहंत भगवंते कहेलो सकल दुःखनो नाशक धर्म आचर्यो नहीं. पण अमारुं चित्त विषयसुखना विषम (वसमा) झेर जेवा परिभोग करवामां ललचायुं–ठगायुं. तेथी ज अमारे आ कष्ट सहवुं पडे छे. आ प्रमाणे ते संज्ञिभूत नैरयिकोने मोटुं मानसिक दुःख थाय छे माटे तेओ मोटी पीडावाळा छे. अने जेओ असंज्ञिभूत मिथ्यादृष्टिओ छे तेओ तो 'भोगवातुं आ दुःख आपणा कर्मनुं फळ छे' एम न जाणता होवाथी तेओनुं मन उपतापरहित छे माटे तेओ मानसिक दुःखरहित होवाथी ओछी पीडावाळा छे." एम कोइ कहे छे. बीजाओ तो कहे छे के "संज्ञिओ एटले पंचें-द्रियवाळा संज्ञि जीवो, भूत–नारकपणुं पामेला, अर्थात् पंचेंद्रियवाळा जे संज्ञिजीवो नारकपणुं पाम्या छे ते 'संज्ञिभूत' कहेवाय, तेवा संज्ञिभूत नैरयिको मोटी पीडावाळा छे, कारण के, तेओने अशुभ परिणाम तीव्र छे माटे तेओ घणुं अशुभ कर्म बांधता होवाथी महानरकोमां उत्पन्न थाय छे, अने जेओ पूर्वे असंज्ञि होइ (असंज्ञिपणुं अनुभवी) पछी नारकपणुं पामेला छे तेओ 'असंज्ञिभूत' कहेवाय. ते असंज्ञिभूत नैरयिकोने पोताना असंज्ञि-पणाने लीधे अत्यंत अशुभ परिणाम न होवाथी तेओनी उत्पत्ति रत्नप्रभामां तीव्रवेदना विनाना नरकमां थाय छे अने तेथी तेओ अल्पवेदनावाळा छे. अथवा संज्ञिभूत एटले पर्याप्त थएला जेओनु शरीरादिक पूर्ण रचाइ गयु छे एवा, अने तेथी जुदा अपर्याप्त रहेला–ते 'असंज्ञिभूत' कहेवाय. तेमां जे पर्याप्त नैरयिको छे ते मोटी पीडावाळा छे अने जे अपर्याप्त नैरयिको छे ते ओछी पीडावाळा छे, एम जणाय ज छे.

समकर्म. पूर्वोत्पन्न अने पश्चादुत्पन्न. आ सूत्र कोने बंधे ? वर्ण. लेश्या. संज्ञिभूत. अन्य. असंज्ञिभूत. इतर. भिन्नार्थ.

४. 'समकिरिय' त्ति समास्तुल्याः, क्रियाः कर्मबन्धनिबन्धनभूताः आरम्भिक्यादिका येषां ते समक्रियाः. 'आरंभिय'त्ति आरम्भः पृथि-व्यादिउपमर्दः, स प्रयोजनं कारणं यस्याः सा आरम्भिकी. 'पारिग्गहिय' त्ति परिग्रहो धर्मोपकरणवर्जवस्तुस्वीकारः, धर्मोपकरणमूर्च्छा च; स प्रयोजनं यस्याः सा पारिग्रहिकी. 'मायावत्तिय'त्ति मायाऽनार्जवम्, उपलक्षणत्वात् क्रोधादिरपि च; सा प्रत्ययः कारणं यस्याः सा मायाप्रत्यया. 'अप्पच्चक्खाणकिरिय'त्ति अप्रत्याख्यानेन निवृत्त्यभावेन क्रिया कर्मबन्धादिकरणम्–अप्रत्याख्यानक्रियेति. 'पंच किरियाओ कज्जंति'त्ति क्रियन्ते, कर्मकर्तरि प्रयोगोऽयम्, तेन भवन्तीत्यर्थ.. 'मिच्छादंसणवत्तिय'त्ति मिथ्यादर्शनं प्रत्ययो हेतुर्यस्याः सा मिथ्यादर्शनप्रत्यया, ननु मिथ्यात्वा-ऽविरति–कषाय–योगाः कर्मबन्धहेतव इति प्रसिद्धिः. इह तु आरम्भादयस्तेऽभिहिता इति कथं न विरोधः ? उच्यते–आरम्भ–परिग्रहशब्दाभ्यां योगप-रिग्रहः-योगानां तद्रूपत्वात्, शेषपदैस्तु शेषबन्धहेतुपरिग्रहः प्रतीयत एवेति. तत्र सम्यग्दृष्टीनां चतस्र एव, मिथ्यात्वाभावात्. शेषाणां तु पञ्च अपि, सम्यग्मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वेनैवेह विवक्षितत्वादिति. 'सव्वे समाउया' इत्यादिप्रश्नस्य निर्वचनचतुर्भङ्ग्या भावना क्रियते–निबद्धदशवर्षसहस्रप्र-माणाऽऽयुषो युगपच्चोत्पन्ना इति प्रथमभङ्गः. तेष्वेव दशवर्षसहस्रस्थितिषु नरकेष्वेके प्रथमतरमुत्पन्नाः, अपरे तु पश्चादिति द्वितीयः. अन्यै-र्विषमायुर्निबद्धैः कैश्चिद् दशवर्षसहस्रस्थितिषु, कैश्चिच्च पञ्चदशवर्षसहस्रस्थितिषु उत्पत्तिः पुनर्युगपदिति तृतीयः. केचित् सागरोपमस्थितयः, केचित् तु दशवर्षसहस्रस्थितयः, इत्येवं विषमाऽऽयुषो विषममेव चोत्पन्ना इति चतुर्थः. इह संग्रहगाथाः–"आहाराईसु समा कम्मे, वन्ने, तहेव लेस्साए, वेयणाए, किरियाए, आउय उववत्ति चउभंगी."

---

१. आ शब्द 'च्चि' प्रत्ययना योगथी बने छेः–श्रीअभयदेव.

१ प्र० छायाः— आहारादिषु समाः कर्मणि, वर्णे, तथैव लेश्यायाम्, वेदनायाम्, क्रियायामायुषि उपपत्तौ चतुर्भङ्गीः–अनु०

समक्रिय. आरंभिकी. पारिग्रहिकी. मायाप्रत्यया. अप्रत्याख्यानक्रिया. मिथ्यादर्शन०. विरोध छे? चतुर्भंग. समुच्चय.

४. ['समकिरिय'त्ति] सम=तुल्य, क्रिया=कर्म बांधवामां कारणरूप आरंभिकी वगेरे क्रिया, जेओनी क्रिया सरखी छे ते समक्रिय. ['आरंभिय'त्ति] आरंभ=पृथिवीवगेरेना जीवनु उपमर्दन हनन–करवुं, जे क्रियामां आरंभ कारण छे ते 'आरंभिकी' क्रिया. ['पारिग्गहिय'त्ति] परिग्रह=धर्मना उपकरण–धर्मना काममां खपमां आवता सामान- सिवाय बीजी वस्तुओनो स्वीकार अने धर्मना उपकरणमां ममता, जे क्रियानुं कारण परिग्रह छे ते 'पारिग्रहिकी' क्रिया.['मायावत्तिय'त्ति] माया=सरलपणुं नहीं–वक्रता, उपलक्षण होवाथी क्रोध, मान वगेरे पण 'माया' शब्दथी स्वीकारवा. जे क्रियानुं निदान–कारण–माया छे ते 'मायाप्रत्यया' क्रिया. ['अपच्चक्खाणकिरिय'त्ति] अप्रत्याख्यान=प्रत्याख्यान नहीं अर्थात् कोइ पण बाबतथी निवृत्ति नहीं–परंतु सर्वत्र प्रवृत्ति, तेथी- अप्रत्याख्यानथी कर्मबंध वगेरेनुं करवुं ते अप्रत्याख्यानक्रिया. ['पंच किरियाओ कज्जंति'त्ति] पांच क्रियाओ थाय छे. ['मिच्छादंसणवत्तिय'त्ति] जे क्रियानुं कारण मिथ्यादर्शन छे ते 'मिथ्यादर्शनप्रत्यया' क्रिया. शंकाः–शास्त्रमां 'मिथ्यात्व, अविरति, कषाय अने योगो ए बधा कर्म बांधवामां कारणरूप छे' एवी प्रसिद्धि छे. अने अहीं तो कर्म बांधवाना कारणरूप आरंभ वगेरे कह्या छे, तो आ शास्त्रनो बीजा जिनवचन साथे विरोध केम न आवे? समाधानः अहीं 'आरंभ' अने 'परिग्रह' शब्दथी योगनुं ग्रहण करवुं, कारण के, योगो आरंभ अने परिग्रहरूप छे. अने बाकीना पदो वडे बाकीना कर्म बंधना हेतुओनो स्वीकार (करेलो) छे ए स्पष्ट ज छे. तेमां सम्यग्दृष्टि जीवोने मिथ्यात्व न होवाथी चार ज क्रियाओ होय छे अने बाकीना जीवोने पांचे क्रियाओ होय छे. कारण के, अहीं सम्यग्मिथ्यात्वने पण मिथ्यात्व तरीके ज गण्युं छे तेथी सम्यग्मिथ्यात्ववाळा–मिश्रदृष्टिवाळा–जीवो सम्यक्त्वी सिवायना बाकीना जीवोमां आवी जाय छे. ['सव्वे समाउया' इत्यादि] ए प्रश्ननुं भावन निर्वचननी चतुर्भंगीवडे थाय छे अर्थात् ए प्रश्नना उत्तर तरीके चार भांगा देखाडे छे. ते आ छेः–सरखा आयुष्यवाळा अने साथे उत्पन्न थएला. जेमके, केटलाके दश हजार वर्षनुं आयुष्य बांध्युं छे- अने तेओ एक काले–साथे उत्पन्न थएला छे. ए प्रथम भंग छे. सरखा आयुष्यवाळा अने साथे नहीं उत्पन्न थएला. जेमके, केटलाके दश हजार वर्षनु आयुष्य बांध्युं छे, पण तेओ केटलाक पहेलां उत्पन्न थया अने केटलाक पछी उत्पन्न थया. ए बीजो भंग छे. जुदा जुदा आयुष्यवाळा अने साथे उत्पन्न थएला. जेमके, केटलाके जुदुं जुदुं आयुष्य बांध्युं छे, अर्थात् घणाओए दश हजार वर्षनी स्थितिवाळा नरकोमां उत्पन्न थवानुं अने घणाओए पन्नर हजार वर्षनी स्थितिवाळा नरकोमां उत्पन्न थवानुं आयुष्य बांध्युं छे. अने ए बधानी उत्पत्ति एक ज साथे छे. ए त्रीजो भंग छे. छे. जुदा जुदा आयुष्यवाळा अने जुदा जुदा काळे उत्पन्न थएला. जेमके, केटलाक सागरोपमना आयुष्यवाळा अने केटलाक दश हजार वर्षना आयुष्यवाळा अने जुदा जुदा काळे उत्पन्न थएला. ए चोथो भंग छे. अही संग्रह गाथा कहे छेः "आहारादिमां समान, कर्ममां, वर्णमां, लेश्यामां, वेदनामां तेम ज क्रियामा पण समान तथा आयुष्य तथा उत्पत्तिमां चार भांगा छे". अर्थात् आ प्रकरणमां ए विषयोनी समानता विषे पूछ्युं हतुं.

असुरकुमारादि.

८३ प्र०—असुरकुमारा णं भंते! सव्वे समाहारा, समसरीरा?

८३. प्र०—हे भगवन्! बधा असुरकुमारो सरखा आहारवाळा अने सरखा शरीरवाळा छे? इत्यादि पूर्वेनी पेठे सघळा प्रश्नो करवा.

८३ उ०— जहा नेरइया तहा भाणिअव्वा, नवरं–कम्म–वण्ण-लेस्साओ परिवण्णेअव्वाओ–पुव्वोववण्णा महाकम्मतरा, अविसुद्धवण्णतरा, अविसुद्धलेसतरा. पच्छोववण्णा पसत्था, सेसं तहेव. एवं जाव-थणियकुमारा णं.

८३. उ०— हे गौतम! असुरकुमारो संबंधे बधुं नैरयिकोनी पेठे कहेवुं. विशेष ए के, असुरकुमारोना कर्म, वर्ण अने लेश्याओ नैरयिकोथी विपरीत कहेवा. अर्थात् जे असुरकुमारो पूर्वोपपन्नक छे. तेओ महाकर्मतर छे अने अविशुद्ध वर्ण तथा लेश्यावाळा छे. अने जे असुरकुमारो पश्चादुपपन्नक छे तेओ प्रशस्त छे, बाकी बधुं ए ज प्रमाणे जाणवुं. ए प्रमाणे यावत्–स्तनितकुमारो सुधी जाणवुं.

५. '*असुरकुमारा णं भंते*'! इत्यादिना असुरकुमारप्रकरणम्-आहारादिपदनवकोपेतं सूचितम्, तच्च नारकप्रकरणवन्नेयम्. एतदेवाहः–'*जहा नेरइया*' इत्यादि. तत्राहारकसूत्रे नारकसूत्रसमानेऽपि भावना विशेषेण लिख्यते–असुरकुमाराणामल्पशरीरत्वम्–भवधारणीयशरीराऽपेक्षया जघन्यतोऽङ्गुलाऽसंख्येयभागमानत्वम्. महाशरीरत्वं तु उत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणत्वम्. उत्तरवैक्रियाऽपेक्षया तु अल्पशरीरत्वं जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमानत्वम्. महाशरीरत्वं तु उत्कर्षतो योजनलक्षमानमिति. तत्र एते महाशरीरा बहुतरान् पुद्गलान् आहारयन्ति, मनोभक्षणलक्षणाऽऽहाराऽपेक्षया, देवानां ह्यसौ स्यात्, प्रधानश्च, प्रधानाऽपेक्षया च शास्त्रे निर्देशो वस्तूनां विधीयते. ततोऽल्पशरीरग्राह्याऽऽहारपुद्गलापेक्षया बहुतरांस्तानाहारयन्ति इत्यादि प्राग्वत्. अभीक्ष्णमाहारयन्ति. अभीक्ष्णमुच्छ्वसन्ति च; इत्यत्र ये चतुर्थादेरुपर्याहारयन्ति, स्तोकसप्तकादेश्चोपर्युच्छ्वसन्ति, तानाश्रित्याभीक्ष्णमित्युच्यते. उत्कर्षतो ये सातिरेकवर्षसहस्रस्योपरि आहारयन्ति, सातिरेकपक्षस्य चोपरि उच्छ्वसन्ति, तानङ्गीकृत्य, एतेषामल्पकालीनाऽऽहारोच्छ्वासत्वेन 'पुनः पुनराहारयन्ति' इत्यादिव्यपदेशविषयत्वादिति. तथाऽल्पशरीरा अल्पतरान् पुद्गलानाहारयन्ति, उच्छ्वसन्ति च अल्पशरीरत्वादेव. यत् पुनस्तेषां कदाचित्कत्वमाहारो–च्छ्वासयोस्तद् महाशरीराहारोच्छ्वासान्तरालाऽपेक्षया बहुतमाऽन्तरालत्वात् तत्र हि अन्तराले ते नाहारादि कुर्वन्ति, तदन्यत्र कुर्वन्तीत्येवं विवक्षणादिति. महाशरीराणामप्याहारो–च्छ्वासयोरन्तरालमस्ति, किन्तु तदल्पमित्यविवक्षणादेवाभीक्ष्णत्युक्तम्. सिद्धं च महाशरीराणां तेषामाहारो–च्छ्वासयोरल्पाऽन्तरत्वम्, अल्पशरीराणां तु महान्तरत्वम्, यथा

---

१. आ प्रयोग कर्मकर्तरि छेः–श्रीअभयदेव.

१. मूलच्छायाः—असुरकुमारा भगवन्! सर्वे समाऽऽहाराः, सर्वे समशरीराः? यथा नैरयिकास्तथा भणितव्याः, नवरम्–कर्म-वर्ण–लेश्याः परिवर्णयितव्याः–पूर्वोपपन्नका महाकर्मतराः, अविशुद्धवर्णतराः. अविशुद्धलेश्यतराः. पश्चादुपपन्नकाः प्रशस्ताः, शेषं तथैव. एवं यावत्–स्तनितकुमाराः.–अनु०

सौधर्मदेवानां सप्तहस्तमानतया महाशरीराणां तयोरन्तरं क्रमेण वर्षसहस्रद्वयम्, पक्षद्वयं च. अनुत्तरसुराणां च हस्तमानतयाऽल्पशरीराणां त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्राणि, त्रयस्त्रिंशदेव च पक्षा इति. एवं च महाशरीराणामभीक्ष्णाऽऽहारो—च्छ्वासाभिधानेनाऽल्पस्थितिकत्वमवसीयते, इतरेषां तु विपर्ययो वैमानिकवदेवेति. अथवा लोमाहाराऽपेक्षयाऽभीक्ष्णमनुसमयमाहारयन्ति महाशरीराः पर्याप्तकाऽवस्थायाम्, उच्छ्वासस्तु यथोक्तमानेनाऽपि भवन् परिपूर्णभवाऽपेक्षया पुनः पुनरित्युच्यते. अपर्याप्तकावस्थाया तु अल्पशरीरा लोमाहारतो नाऽऽहारयन्ति, ओजआहरत एव आहारणाद् इति—कदाचित् ते आहारयन्तीत्युच्यते, उच्छ्वासाऽपर्याप्तकाऽवस्थाया च नोच्छ्वसन्ति, अन्यदा तु उच्छ्वसन्तीत्युच्यते—आहत्योच्छ्वसन्तीति. *'कम्म-वण्ण-लेस्साओ परिवण्णेअव्वाओ'*त्ति कर्मादीनि नारकाऽपेक्षया विपर्ययेण वाच्यानि, तथाहि:—नारका ये पूर्वोत्पन्नास्तेऽल्पकर्मक—शुद्धतरवर्ण—शुभतरलेश्या उक्ताः. असुरास्तु ये पूर्वोत्पन्नास्ते महाकर्माणः, अशुद्धवर्णाः, अशुभतरलेश्याश्चेति. कथम्? ये हि पूर्वोत्पन्ना असुरास्तेऽतिकन्दर्पदर्पाऽऽध्मातचित्तत्वाद् नारकान् अनेकप्रकारया यातनया यातयन्त प्रभूतमशुभं कर्म संचिन्वन्ति इत्यतोऽभिधीयन्ते ते महाकर्माणः. अथवा ये बद्धायुषस्ते तिर्यगादिप्रायोग्यकर्मप्रकृतिनिबन्धनाद् महाकर्माणः, तथाऽशुद्धवर्णाः, अशुभलेश्याश्च ते, पूर्वोत्पन्नानां हि क्षीणत्वात् शुभकर्मणः शुभो वर्णो, लेश्या च ह्रसतीति. पश्चादुत्पन्नास्त्वबद्धाऽऽयुषोऽल्पकर्माणः बहुतरकर्मणामबन्धनात्, शुभकर्मणामक्षीणत्वाच्च शुभवर्णादयः स्युरिति. वेदनासूत्रं च यद्यपि नारकाणामिवासुरकुमाराणामपि, तथापि तद्भावनायां विशेषः, स चायम्:—ये संज्ञिभूतास्ते महावेदनाः, चारित्रविराधनाजन्यचित्तसंतापात्. अथवा संज्ञिभूताः संज्ञिपूर्वभवाः, पर्याप्ता वा, ते शुभवेदनामाश्रित्य महावेदनाः. इतरे त्वल्पवेदना इति. एवं नागकुमारादयोऽपि औचित्येन वाच्याः.

असुरकुमारो संबंधे पूर्व प्रमाणेनी हकीकत अने विशेषता.

५. ['असुरकुमारा णं भंते!' इत्यादि] ए सूत्रवडे आहारादि नव पदयुक्त असुरकुमारप्रकरण सूचित थयुं. ते नारकप्रकरणनी पेठे जाणवुं. ए ज वातने कहे छे केः- ['जहा नेरइया' इत्यादि] अर्थात् जेम नैरयिक कह्या तेम समजवुं. तेमां आहार संबंधि सूत्र नारकना सूत्रनी समान छे, तो पण ते संबंधे विशेष लखीए छीए: असुरकुमारोना शरीरनुं नानापणुं भवधारणीय शरीरनी अपेक्षाए छे. ते ओछामां ओछुं अंगुलना असंख्येय भाग जेटलुं छे. तेओना शरीरनुं मोटापणुं वधारेमां वधारे सात हाथ जेटलुं छे. वळी उत्तरवैक्रिय शरीरनी अपेक्षाए तेओना शरीरनुं नानापणुं ओछामां ओछुं अंगुलना संख्येय भाग जेटलुं छे. वधारेमां वधारे मोटापणुं एक लाख योजन जेटलुं छे. तेमां ए महाशरीरवाळा (असुरकुमारो) घणा पुद्गलोनो आहार करे छे. मनोभक्षणरूप आहारनी अपेक्षाए देवोने ए आहार छे तथा ते (आहार) प्रधान पण छे. शास्त्रमां पण प्रधान पदार्थनी अपेक्षाए वस्तुना निर्देशो होय छे. माटे तेओ (मोटा शरीरवाळा असुरकुमारो) अल्पशरीरवडे लेवाता आहारना पुद्गलो करतां घणा पुद्गलोनो आहार करे छे. इत्यादि बधुं पूर्वनी पेठे जाणवुं. 'वारंवार आहार करे छे' ए जे कह्युं छे ते जे असुरकुमारो चतुर्थादिथी उपर (पहेलां) आहार करे छे तेनी अपेक्षाए जाणवुं. 'वारंवार उच्छ्वास ले छे' ए जे कह्यु छे ते जे असुरकुमारो सात स्तोकादि करतां पहेलां उच्छ्वास ले छे तेनी अपेक्षाए जाणवुं. कारण के, जे असुरकुमारो वधारेमां वधारे हजार वर्ष करतां कांइक अधिक काळ पहेला आहार करे छे अने वधारेमां वधारे एक पखवाडीया करतां कांइक अधिक काळ पहेलां उच्छ्वास ले छे, तेओनी अपेक्षाए एओनो आहार अने उच्छ्वास अल्पकालीन होवाथी 'एओ वारवार खाय छे' एवो व्यवहार करवामां हरकत नथी. जेओ असुरकुमारो अल्प शरीरवाळा छे तेओ अल्पतर पुद्गलोनो आहार करे छे अने अल्पतर पुद्गलोने उच्छ्वासमां ले छे, कारण के, तेओ नाना शरीरवाळा छे. वळी ते असुरकुमारोना आहारनुं अने उच्छ्वासनुं जे कदाचित् लेवापणुं कह्युं छे ते, महाशरीरवाळाना आहार अने उच्छ्वासना अंतरालनी अपेक्षाए जाणवु. कारण के. त्यां घणुं अंतराल छे अने ते अतरालमां तेओ आहारादि करता नथी पण तेथी जुदे समये तेओ आहारादि करे छे. ए प्रमाणे विवक्षण करेलुं छे. महाशरीरवाळा असुरकुमारोने पण आहार अने उच्छ्वासनुं अंतराल छे पण ते थोडु होवाथी अहीं तेने गण्युं नथी माटे 'वारवार आहार करे छे' एम कह्यु छे. आथी सिद्ध थयुं के, महाशरीरवाळा असुरकुमारोने आहार अने उच्छ्वासनुं अल्प अंतर छे अने अल्प शरीरवाळा असुरकुमारोने मोटु अतर छे. जेम के, सात हाथ उंचा होवाथी मोटा शरीरवाळा सौधर्मदेवोने आहारनु अंतर बे हजार वर्षनुं छे अने उच्छ्वासनुं अतर बे पखवाडीआनु छे त्यारे नाना शरीरवाळा अनुत्तर देवोने एक हाथ उचा होवाथी आहारनुं अंतर तेत्रीश हजार वर्षनुं छे अने उच्छ्वासनुं अतर तेत्रीश पखवाडीआनु छे. ए महाशरीरवाळा असुरकुमारोने वारवार आहार अने उच्छ्वास लेवानु कह्युं छे. तेथी तेओनी अल्प स्थिति (ओछी आवरदा) जणाय छे अने बीजाओने तो तेथी उलटु वैमानिकोनी पेठे ज जणाय छे. अथवा पर्याप्त अवस्थामां महाशरीरवाळा असुरकुमारो लोमाहारनी अपेक्षाए वारवार आहार करे छे अने उच्छ्वास तो यथोक्तमानपूर्वक थतो होय तो पण आखा भवनी अपेक्षाए वारंवार कहेवाय छे. अपर्याप्त अवस्थामां तो अल्प शरीरवाळा असुरकुमारो लोमाहारथी आहार करता नथी पण ओजआहारथी ज आहार करे छे माटे 'तेओ कदाचित् आहार करे छे' एम कहेवाय. उच्छ्वासापर्याप्त अवस्थामां उच्छ्वास लेता नथी तथा उच्छ्वासपर्याप्त अवस्थामां उच्छ्वास ले छे माटे 'तेओ कदाचित् उच्छ्वास ले छे' एम कहेवाय. ['कम्म वण्ण लेस्साओ परिवण्णेअव्वाओ' त्ति] कर्म, वर्ण तथा लेश्या नारको करतां उलटी रीते कहेवां. ते ज कहे छेः जे नारको पूर्वोत्पन्न छे तेओ ओछा कर्मवाळा, शुद्ध वर्णवाळा अने शुभतर लेश्यावाळा छे, एम कह्युं छे अने अहीं जे असुरकुमारो पूर्वोत्पन्न छे तेओ महाकर्मवाळा, अशुद्ध वर्णवाळा अने अशुभतर लेश्यावाळा छे. शंका.-ते केम? समाधानः -जे असुरकुमारो पूर्वोत्पन्न छे तेओनुं चित्त अतिकंदर्प अने दर्प संयुक्त होवाथी तेओ अनेक प्रकारनी यातनावडे नारकोने पीडा पमाडता घणुं अशुभ कर्म एकठुं करे छे. माटे कहेवाय छे के, तेओ महाकर्मवाळा छे. अथवा जे असुरकुमारोए भविष्यनी गतिनुं आयुष्य बांधेलुं होय तेओए तिर्यंचादिगतिने योग्य कर्मप्रकृति बांधेली होवाथी तेओ महाकर्मवाळा छे. पूर्वोत्पन्न असुरकुमारोनुं शुभ कर्म क्षीण थएलुं होवाथी तेओनो शुभ वर्ण अने शुभ लेश्या घटी जाय छे माटे तेओ अशुद्ध वर्णवाळा अने अशुभ लेश्यावाळा छे. पश्चादुत्पन्न असुरकुमारो तो अबद्धायुष्क होवाथी अल्प कर्मवाळा छे, कारण के तेओए

घणुं कर्म बांध्युं नथी. अने तेओनुं शुभ कर्म क्षीण न होवाथी तेओ शुभ वर्ण तथा शुभ लेश्यावाळा छे. जो के असुरकुमारोनुं वेदनासूत्र पण नारकोनी पेठे छे तो पण तेनी भावनामां विशेष छे. ते विशेष आ छे :—जे असुरकुमारो संज्ञिभूत छे तेओने पोते करेली चारित्रनी विराधना याद आवती होवाथी चित्तने संताप थाय छे अने तेथी तेओ महावेदनावाळा छे. अथवा संज्ञिभूत जे असुरकुमारो पूर्व भवमां संज्ञिजीवरूपे हता तेओ, अथवा संज्ञिभूत पर्याप्त अवस्थावाळा जे असुरकुमारो छे तेओ शुभ वेदनानी अपेक्षाए महावेदनावाळा छे अने जे असंज्ञिभूत असुरकुमारो छे तेओ तो अल्प वेदनावाळा छे. ए प्रमाणे उचिततापूर्वक नागकुमारादिक पण कहेवा.

पृथिवीकायिक.

८४. *पुढविक्काइआणं आहार–कम्म–वन्न–लेस्सा जहा णेरइआणं.*

८४. पृथिवीकायिकोना आहार, कर्म, वर्ण अने लेश्या; ए बधुं नैरयिकोनी पेठे जाणवुं.

८५. प्र०—*पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समवेअणा ?*

८५. प्र०—हे भगवन्! बधा पृथिवीकायिको सरखी वेदनावाळा छे?

८५. उ०—*हंता, समवेअणा.*

८५. उ०—हे गौतम ! हा, बधा पृथिवीकायिको सरखी वेदनावाळा छे.

८६. प्र०—*से केणट्ठेणं भंते ! समवेयणा?*

८६. प्र०—हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, 'बधा पृथिवीकायिको सम वेदनावाळा छे?'

८६. उ०—*गोयमा! पुढविक्काइया सव्वे असन्नी असन्निभूअं अणिदाए वेयणं वेदेंति, से तेणट्ठेणं०.*

८६. उ०—हे गौतम! बधा पृथिवीकायिको असंज्ञिओ छे अने असंज्ञिभूत वेदनाने अनिर्धारणपणे वेदे छे, माटे हे गौतम! ते हेतुथी पूर्व प्रमाणे कह्युं छे.

८७. प्र०—*पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?*

८७. प्र०—हे भगवन्! बधा पृथिवीकायिको समान क्रियावाळा छे?

८७. उ०—*हंता, समकिरिया.*

८७. उ०—हे गौतम! हा, बधा पृथिवीकायिको समान क्रियावाळा छे.

८८. प्र०—*से केणट्ठेणं ?*

८८. प्र०—हे भगवन्! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो?

८८. उ०—*गोयमा! पुढविक्काइया सव्वे माई मिच्छादिट्ठी. ताणं णिअइआओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा:—आरंभिआ जाव–मिच्छादंसणवत्तिआ. से तेणट्ठेणं०. समाउआ, समोववन्नगा जहा नेरइया तहा भाणिअव्वा.*

८८. उ०—हे गौतम! बधा पृथिवीकायिको मायी अने मिथ्यादृष्टि छे. माटे तेओने पांच क्रियाओ नियमपूर्वक होय छे, ते पांच क्रियाओ आ छे:—आरंभिकी यावद्–मिथ्यादर्शनप्रत्यया. माटे हे गौतम! ते हेतुथी पूर्व प्रमाणे कह्युं छे. जेम समायुष्क अने समोपपन्नक नैरयिको कह्या तेम पृथिवीकायिको पण कहेवा.

६. '*पुढविक्काइआणं आहार–कम्म–वन्न–लेस्सा जहा णेरइआणं*' ति चत्वार्यपि सूत्राणि नारकसूत्राणीव पृथिवीकायिकाभिलापेनाऽभिधीयन्ते इत्यर्थः. केवलमाहारसूत्रे भावना एवम्:—पृथिवीकायिकानामङ्गुलासंख्येयभागमात्रशरीरत्वेऽपि अल्पशरीरत्वम्, इतरच्च इत आगमवचनादवसेयम्—"*पुढविक्काइए पुढविक्काइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए*"त्ति. ते च महाशरीरा लोमाहारतो बहुतरान् पुद्गलानाऽऽहारयन्तीति, उच्छ्वसन्ति च अभीक्ष्णम्, महाशरीरत्वादेव. अल्पशरीराणामल्पाहारोच्छ्वासत्वम्, अल्पशरीरत्वादेव. कादाचित्कत्वं च तयोः पर्याप्तकेतरावस्थापेक्षमवसेयम्. तथा कर्मादिसूत्रेषु पूर्व–पश्चादुत्पन्नानां पृथिवीकायिकानां कर्म–वर्ण–लेश्याविभागो नारकैः सम एव. वेदना–क्रिययोस्तु नानात्वम्, अत एवाहः—'*पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समवेअणा?*' इत्यादि. 'असन्नि'त्ति मिथ्यादृष्टयः, अमनस्का वा '*असन्निभूअं*'ति असंज्ञिभूताम्–असंज्ञिनां या जायते तामित्यर्थः. एतदेव व्यनक्ति—'*अणिदाए*'त्ति अनिर्धारणया वेदनां वेदयन्ति, वेदनामनुभवन्तोऽपि न 'पूर्वोपात्ताऽशुभकर्मपरिणतिरियम्' इति मिथ्यादृष्टित्वादवग-

१. मूलच्छायाः—पृथिवीकायिकानामाहार–कर्म–वर्ण-लेश्या यथा नैरयिकाणाम्. पृथिवीकायिका भगवन् ! सर्वे समवेदनाः? हन्त, समवेदनाः. तत् केनाऽर्थेन भगवन्! समवेदनाः? गौतम! पृथिवीकायिकाः सर्वे असंज्ञिनोऽसंज्ञिभूताम्–अनियतेन वेदनां वेदयन्ति, तत् तेनार्थेन०. पृथिवीकायिका भगवन्! सर्वे समक्रियाः? हन्त, समक्रियाः. तत् केनार्थेन? गौतम! पृथिवीकायिकाः सर्वे मायिनो मिथ्यादृष्टयः. तैर्नियतिकाः पञ्च क्रियाः क्रियन्ते, तद्यथाः—आरम्भिकी यावद्–मिथ्यादर्शनप्रत्यया. तत् तेनाऽर्थेन०. समाऽऽयुष्काः, समोपपन्नका यथा नैरयिकास्तथा भणितव्याः—अनु०

१. प्र० छायाः—पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकस्य अवगाहनार्थतया चतुःस्थानपतितः—अनु०

च्छन्ति, विमनस्कत्वाद्वा मत्तमूर्च्छितादिवदिति भावः. *'माई मिच्छादिट्ठि'*त्ति मायावन्तो हि तेषु प्रायेणोत्पद्यन्ते, यदाहः—*"उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहियय-माइल्लो, सढसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधए जीवो."* त्ति ततस्ते मायिन उच्यन्ते, अथवा 'मायेहाऽनन्तानुबन्धिकषायोपलक्षणम्, अतोऽनन्ताऽनुबन्धिकषायोदयवन्तोऽत एव मिथ्यादृष्टयो—मिथ्यात्वोदयवृत्तय इति. *'ताणं णिअइआओ'*त्ति तेषां पृथिवीकायिकानां नैयतिक्यो नियताः, न तु त्रिप्रभृतय इति—पञ्चैव इत्यर्थः. *'से तेणट्ठेणं समकिरिय'*त्ति निगमनम्.

पृथिवीकायिको विषे पूर्ववत् विचार अने भिन्नता.

६. ['पुढविक्काइआणं आहार—कम्म- वन्न—लेस्सा जहा णेरइआणं' ति] पृथिवीकायिकोना आहारनुं, कर्मनुं, वर्णनुं अने लेश्यानुं; ए चारे सूत्रो पृथिवीकायिकोना अभिलापवडे नैरयिक सूत्रनी पेठे कहेवां. मात्र आहारमां भावना आ प्रमाणे छेः—पृथिवीकायिको अंगुलना असंख्येय भाग जेटला शरीरवाळा होवाथी नाना शरीरवाळा अने मोटा शरीरवाळा छे. ए वात आगमना वचनथी जाणवी. ते वचन आ छेः—"पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकना अवगाहनार्थपणे चार स्थानकवाळा छे. अर्थात् संख्यात भागहीन, असंख्यात भागहीन, संख्यातगुणवृद्ध अने असंख्यातगुणवृद्ध छे" अर्थात् जो के सर्व पृथिवीकायिको अंगुलना असंख्येय भाग जेटला शरीरवाळा छे तो पण कोइनुं शरीर संख्यात भागहीन छे कोइनुं शरीर असंख्यात भागहीन छे, कोइनुं शरीर संख्यातगुणवृद्ध छे तथा कोइनुं शरीर असंख्यातगुणवृद्ध छे माटे ते सर्वे पृथिवीकायिको नाना अने मोटा शरीरवाळा छे. ते महाशरीरवाळा पृथिवीकायिको लोमाहार द्वारा घणा पुद्गलोनो वारंवार आहार करे छे अने घणा पुद्गलोने वारंवार उच्छ्वासमां ले छे, कारण के तेओ महाशरीरवाळा छे. अल्पशरीरवाळा पृथिवीकायिको थोडो आहार करे छे अने थोडो उच्छ्वास ले छे. ते बन्नेनुं आहार अने उच्छ्वासनुं कदाचित्पणुं पर्याप्तअवस्था अने अपर्याप्तअवस्थाने अपेक्षीने जाणवुं. तथा कर्मादिसूत्रोमां पूर्वोत्पन्नक अने पश्चादुत्पन्नक पृथिवीकायिकोना कर्म, वर्ण अने लेश्यानो विभाग नारकोनी जेवो ज जाणवो. वेदना अने क्रियामां विशेष छे माटे ज कहे छे केः ['पुढविक्काइया णं भंते! सव्वे समवेअणा?' इत्यादि] ['असन्नि'त्ति] असंज्ञिओ-मिथ्यादृष्टिओ अथवा मनविनाना जीवो. ['असन्निभूअं'ति] असंज्ञिभूत अर्थात् जे वेदना असंज्ञिओने थाय तेने—ए ज वातने—स्पष्ट करे छेः ['अणिदाए'त्ति] निर्धारण विना वेदनाने अनुभवे छे अर्थात् तेओ मिथ्यादृष्टि होवाथी अथवा विमनस्क होवाथी वेदनाने अनुभवतां पण उन्मत्त अने मूर्छित पुरुषनी पेठे आ वात नथी जाणता के, आ (अनुभवाती पीडा) पूर्वे करेल अशुभ कर्मनुं फळ छे. ['माई मिच्छादिट्ठि'त्ति] घणुं करीने पृथिवीकायिकोमां माया-कपट वाळा जीवो उत्पन्न थाय छे. कह्युं छे केः—"उन्मार्गनो उपदेशक, मार्गनो नाशक, गूढहृदयवाळो, मायावाळो, शठ स्वभाववाळो अने शल्यवाळो जीव तिर्यंचनुं आयुष्य बांधे छे." तेथी तेओ मायावाळा कहेवाय छे. अथवा 'माया' ए अहीं अनंतानुबंधी कषायनुं उपलक्षण छे माटे 'मायावाळा' एटले अनंतानुबंधी कषायना उदयवाळा, माटे ज मिथ्यादृष्टिवाळा अर्थात् मिथ्यात्वना उदयनी वृत्तिवाळा. ['ताणं णिअइआओ'त्ति] ते पृथिवीकायिकोने नियमपूर्वक पांचे क्रियाओ होय ज छे, पण त्रण वगेरे होती नथी. ['से तेणट्ठेणं समकिरिय'त्ति] ए निगमन—उपसंहार सूत्र कहेवुं.

बेइन्द्रियादि.

८९. *जहा पुढविक्काइया तहा जाव—चउरिंदिया.*

९०. *पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ जहा णेरइया, णाणत्तं किरियासु.*

९१. प्र०—*पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ णं भंते! सव्वे समकिरिया?*

९१. उ०—*गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे.*

९२. प्र०—*से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?*

९२. उ०—*गोयमा! पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः—सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी. तत्थ णं जे ते सम्मादिट्ठी ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—असंजया य, संजयासंजया य; तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसि णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहाः—आरंभिआ, परिग्गहिआ, मायावत्तिआ; असंजयाणं चत्तारि, मिच्छादिट्ठीणं पंच, सम्मामिच्छादिट्ठीणं पंच.*

८९. जेम पृथिवीकायिको कह्या तेम बेइंद्रियो, तेइंद्रियो अने यावत्—चउरिंद्रियो पण कहेवा.

९०. तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिको पण नैरयिकोनी पेठे कहेवा. मात्र क्रियाओमां भेद छे.

९१. प्र०—हे भगवन्! बधा पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिको समान क्रियावाळा छे?

९१. उ०—हे गौतम! ए अर्थ समर्थ नथी.

९२. प्र०—हे भगवन्! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो?

९२. उ०—हे गौतम! पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिको त्रण प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्मिथ्यादृष्टि; तेमां जेओ सम्यग्दृष्टि छे तेओ बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—असंयत अने संयतासंयत, तेमां जे संयतासंयत छे तेओने त्रण क्रियाओ होय छे; ते आ प्रमाणेः—आरंभिकी, पारिग्रहिकी अने मायाप्रत्यया. तथा जे असंयतो छे तेने चार अने मिथ्यादृष्टि तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि छे तेओने पांच क्रियाओ होय छे.

---

१. प्र० छायाः—उन्मार्गदेशको मार्गनाशको गूढहृदय—मायी, शठशीलश्च सशल्यः तिर्यगायुर्बध्नाति जीवः—अनु०

१. मूलच्छायाः—यथा पृथिवीकायिकास्तथा यावत्—चतुरिन्द्रियाः. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका यथा नैरयिकाः, नानात्वं क्रियासु. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका भगवन्! सर्वे समक्रियाः? गौतम! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनार्थेन भगवन्! एवमुच्यते? गौतम! पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—सम्यग्दृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः. तत्र ये ते सम्यग्दृष्टयस्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—असंयताश्च, संयताऽसंयताश्च; तत्र ये ते संयताऽसंयतास्तेषां तिस्रः क्रियाः क्रियन्ते, तद्यथाः—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया; असंयतानां चतस्रः, मिथ्यादृष्टीनां पञ्च, सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां पञ्चः—अनु०

७. 'जाव-चउरिंदिय'त्ति इह महाशरीरत्वम्, इतरच्च स्वस्वावगाहनाऽनुसारेणाऽवमेयम्. आहारश्च द्वीन्द्रियादीनां प्रक्षेपलक्षणोऽपि इति. 'पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ जहा णेरइय'त्ति प्रतीतम्, नवरम्-इह महाशरीरा अभीक्ष्णमाहारयन्ति, उच्छ्वसन्ति चेति यद् उच्यते तद् संख्यातवर्षाऽऽयुषोऽपेक्ष्येत्यवसेयम्, तथैव दर्शनात्, न असंख्यातवर्षायुषः,तेषां प्रक्षेपाऽऽहारस्य षष्ठस्योपरि प्रतिपादितत्वात्. अल्पशरीराणां तु आहारो-च्छ्वासयोः कादाचित्कत्वं वचनप्रामाण्यादिति. लोमाहाराऽपेक्षया तु सर्वेषामप्यभीक्ष्णमिति घटत एव. अल्पशरीराणां तु यत् कादाचित्कत्वं तदपर्याप्तकत्वे लोमाहारो-च्छ्वासयोरभवनेन, पर्याप्तकत्वे च तद्भावेनाऽवसेयमिति. तथा कर्मसूत्रे यत् पूर्वोत्पन्नानामल्पकर्मत्वम्, इतरेषां तु महाकर्मत्वम्, तद् आयुष्कादितद्भववेद्यकर्माऽपेक्षयाऽवसेयम्. तथा वर्ण-लेश्यासूत्रयोर्यत् पूर्वोत्पन्नानां शुभवर्णादि उक्तं तत्, तारुण्यात्, पश्चादुत्पन्नानामशुभवर्णादि बाल्यादवसेयम्, लोके तथैव दर्शनादिति. तथा 'संजयासंजय'त्ति देशविरताः-स्थूलात् प्राणातिपातादेर्निवृत्तत्वात्, इतरस्मादनिवृत्तत्वाच्चेति.

बेइंद्रियादि विषे पूर्ववत् विचार अने विशेषता.

७. ['जाव-चउरिंदिय'त्ति] अहीं महाशरीरपणुं अने लघुशरीरपणुं पोतपोतानी अवगाहनाने अनुसारे जाणवुं. अने बेइंद्रियादि जीवोने कवलाऽऽहाररूप आहार पण जाणवो. ['पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ जहा नेरइय'त्ति] ए सूत्र स्पष्ट छे, अहीं विशेष ए के 'जे महाशरीरवाळा छे तेओ वारंवार आहार करे छे अने वारंवार उच्छ्वास ले छे' ए जे कह्युं छे ते संख्यातवर्षनी आवरदावाळानी अपेक्षाए जाणवुं, कारण के, तेम ज देखाय छे. पण अहीं असंख्यात वर्षनी आवरदावाळा न लेवा, कारण के, तेओने प्रक्षेपाहार छट्ठ (बे दिवस) पछी कहेलो छे. नाना शरीरवाळाओने तो आहार अने उच्छ्वासनुं कदाचित्पणुं वचननी प्रमाणताथी जाणवुं. लोमाहारनी अपेक्षाए तो बधायने पण वारंवार आहार घटे ज छे. अल्पशरीरवाळाने तो जे कदाचित्पणु कह्युं छे ते अपर्याप्त अवस्थामां लोमाहार अने उच्छ्वास न थवाथी अने पर्याप्त अवस्थामां ते बन्ने थवाथी कह्युं छे, एम जाणवुं. तथा कर्मसूत्रमां पूर्वोत्पन्न जीवोनुं अल्प कर्मपणुं अने पश्चादुत्पन्न जीवोनुं जे महाकर्मपणुं कह्युं छे. ते (तेना) आयुष्कादि तद्भव वेद्य कर्मोनी अपेक्षाए जाणवुं. वर्ण अने लेश्या सूत्रमां पूर्वोत्पन्न जीवोनुं जे शुभवर्णादि कह्युं छे ते जुवानीनी अपेक्षाए कह्युं छे. पश्चादुत्पन्न जीवोनुं जे अशुभ वर्णादि कह्युं छे ते बालपणानी अपेक्षाए जाणवुं. कारण के, लोकमां ते ज प्रमाणे देखाय छे. ['संजयासंजय'त्ति] संयतासंयत एटले देशविरत-संयत अने असंयत अर्थात् स्थूल प्राणातिपात वगेरेथी निवृत्त होवाथी संयत अने इतर-बीजा थी निवृत्त न होवाथी असंयत.

मनुष्य.

९३. मणुस्सा जहा नेरइया, नाणत्तं-जे महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, ते आहच्च आहारेंति. जे अप्पसरीरा ते अप्पतराए पोग्गले आहारेंति. अभिक्खणं आहारेंति. सेसं जहा णेरइयाणं जाव-वेयणा.

९४. प्र०—मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

९४. उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

९५. प्र०—से केणट्ठेणं ?

९५. उ०—गोयमा ! मणुस्सा तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी; तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पन्नत्ता, तं जहाः-संजया, संजयाऽसंजया, असंजया. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-सरागसंजया य, वीअरागसंजया य. तत्थ णं जे ते वीअरागसंजया ते णं अकिरिया. तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः-पमत्तसंजया य, अप्पमत्तसंजया य, तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया तेसिं णं एगा मायावत्तिआ किरिया कज्जइ, तत्थ णं जे

९३. जेम नैरयिको कह्या तेम मनुष्यो कहेवा. तेमां भेद आ छेः-जे मनुष्यो मोटा शरीरवाळा छे ते घणा पुद्गलोनो आहार करे छे अने कदाचिद् आहार करे छे. तथा जे मनुष्यो नाना शरीरवाळा छे ते थोडा पुद्गलोनो आहार करे छे अने वारंवार आहार करे छे. बाकी बधुं यावद्-वेदना सुधी नैरयिकोनी पेठे जाणवुं.

९४. प्र० हे भगवन् ! बधा मनुष्यो समान क्रियावाळा छे ?

९४. उ० -हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी.

९५. प्र० -हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो ?

९५. उ०- हे गौतम ! मनुष्यो त्रण प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः-सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्मिथ्यादृष्टि. तेमां जेओ सम्यग्दृष्टि छे तेओ त्रण प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः-संयत, संयतासंयत अने असंयत. तेमां जे संयत छे ते बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः-सरागसंयत अने वीतरागसंयत. तेमां जे वीतरागसंयत छे तेओ क्रिया विनाना छे. जे सरागसंयत छे तेओ बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः-प्रमत्तसंयत अने अप्रमत्तसंयत. तेमां जे अप्रमत्तसंयत छे तेओने एक मायाप्रत्यया क्रिया होय छे अने

१. मूलच्छायाः—मनुष्या यथा नैरयिकाः, नानात्वं-ये महाशरीरास्ते बहुतरान् पुद्गलानाऽऽहारयन्ति, ते आहत्याऽऽहारयन्ति. येऽल्पशरीरास्तेऽल्पतरान् पुद्गलानाऽऽहारयन्ति, अभीक्ष्णमाहारयन्ति, शेषं यथा नैरयिकाणा यावद्-वेदना. मनुष्या भगवन् ! सर्वे समक्रियाः ? गौतम ! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! मनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा:-सम्यग्दृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः; तत्र ये ते सम्यग्दृष्टयस्ते त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः-संयताः, संयताऽसंयताः, असंयताः; तत्र ये ते संयतास्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः-सरागसंयताश्च, वीतरागसंयताश्च; तत्र ये ते वीतरागसंयतास्तेऽक्रियाः, तत्र ये ते सरागसंयतास्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः-प्रमत्तसंयताश्च, अप्रमत्तसंयताश्च, तत्र ये ते अप्रमत्तसंयतास्तैरेका माया-प्रत्यया क्रिया क्रियते, तत्र ये ते प्रमत्तसंयतास्तैर्द्वे क्रिये क्रियेते, तद्यथाः-आरम्भिकी, मायाप्रत्यया. तत्र ये ते संयतासंयतास्तैराद्यास्तिस्रः क्रियाः क्रियन्ते, तद्यथाः-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया. असंयतैः चतस्रः क्रियाः क्रियन्तेः-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया. मिथ्यादृष्टीनां पञ्चः-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया. सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां पञ्चः-अनु०

ते पमत्तसंजया तेसिं णं दो किरियाओ कज्जंति, तं जहाः–आरंभिआ, मायावत्तिआ. तत्थ णं जे ते संजयाऽसंजया तेसिं णं आइल्लाओ (आदिमाओ) तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहाः–आरंभिआ, परिग्गहिआ, मायावत्तिआ. असंजयाणं चत्तारि किरियाओ कज्जंतिः–आरंभिया, परिग्गहिआ, मायावत्तिआ, अप्पचक्खाणपच्चया. मिच्छादिट्ठीणं पंचः–आरंभिआ, परिग्गहिआ, मायावत्तिआ, अपचक्खाणपच्चया, मिच्छादंसणवत्तिया. सम्मामिच्छादिट्ठीणं पंच.

जेओ प्रमत्तसंयत छे तेओने बे क्रियाओ होय छेः–आरंभिकी अने मायाप्रत्यया. तेमां जे संयतासंयत छे तेओने प्रथमनी त्रण क्रियाओ कही छे, ते आ प्रमाणे:–आरंभिकी, पारिग्रहिकी अने मायाप्रत्यया. तथा असंयतोने चार क्रियाओ होय छे –आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया अने अप्रत्याख्यानप्रत्यया. मिथ्यादृष्टिओने तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिओने पांच क्रियाओ होय छे, ते आ प्रमाणे:–आरंभिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया अने मिथ्यादर्शनप्रत्यया.

८. *'मणुस्सा जहा नेरइय'*त्ति तथा वाच्या इति गम्यम्. *'नाणत्तं'*ति नानात्वं भेद. पुनरयम्–तत्र *'मणुस्सा णं भंते! सव्वे समाहारगा ?'*इत्यादि प्रश्नः. *'णो इणट्ठे समट्ठे'*इत्यादि उत्तरम्. *'जाव–दुविहा मणुस्सा पन्नत्ता. तं जहाः–महासरीरा य, अप्पसरीरा य; तत्थ णं जे ते महासरीरा ते बहुतराए पोग्गले आहारेंति, एवं परिणामेंति, उस्ससंति, नीससंति.'* इह स्थाने नारकसूत्रे *'अभिक्खणं आहारेंति'* इत्यधीतम्, इह तु *'आहच्च'* इत्यधीयते, महाशरीरा हि देवकुर्वादिमिथुनकाः, ते च कदाचिदेवाऽऽहारयन्ति कावलिकाऽऽहारेण, *"अट्ठमभत्तस्स आहारो"*त्ति वचनात्. अल्पशरीरास्तु अभीक्ष्णम्, अल्पं च; बालानां तथैव दर्शनात्. संमूर्च्छिममनुष्याणाम्–अल्पशरीराणामनवरतमाहारसंभवाच्च. यच्चेह पूर्वोत्पन्नानां शुद्धवर्णादि तत् तारुण्यात्, संमूर्च्छिमाऽपेक्षया वा इति. *'सरागसंजय'*त्ति अक्षीणाऽनुपशान्तकषायाः. *'वीअरागसंजय'* त्ति उपशान्तकषायाः, क्षीणकषायाश्च. *'अकिरिय'*त्ति वीतरागत्वेनाऽऽरम्भादीनामभावाद् अक्रियाः. *'एगा मायावत्तिय'*त्ति अप्रमत्तसंयतानाम्–एकैव मायाप्रत्यया *'किरिया कज्जइ'*त्ति क्रियते–भवति, कदाचिदुड्डाहरक्षणप्रवृत्तानामक्षीणकषायत्वादिति. *'आरंभिय'*त्ति प्रमत्तसंयतानां च 'सर्वं प्रमत्तयोग आरम्भः' इति कृत्वा आरम्भिकी स्यात्, अक्षीणकषायत्वाच्च मायाप्रत्ययेति.

मनुष्य विषे पूर्वनी पेठे विचार अने विशिष्टता.

८. ['मणुस्सा जहा नेरइय'त्ति] अर्थात् मनुष्यो नैरयिकोनी पेठे 'कहेवा' ए गम्य छे. ['नाणत्तं'ति] वळी तेमां भेद आ छे. ['मणुस्सा णं भंते ! सव्वे समाहारगा'] इत्यादि प्रश्न छे. ['नो इणट्ठे समट्ठे'] इत्यादि उत्तर छे. मनुष्यो बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः–मोटा शरीरवाळा अने नाना शरीरवाळा. तेमां जे मोटा शरीरवाळा छे ते घणा पुद्गलोनो आहार करे छे ए प्रमाणे यावत्–परिणमावे छेः उच्छ्वास ले छे अने निःश्वास ले छे, आ ठेकाणे नारकसूत्रमां 'वारंवार आहार करे छे' एम कह्यु छे अने अहीं तो 'कदाचित् आहार करे छे' एम कहेवानु छे. महाशरीरवाळा मनुष्यो देवकुर्वादिना मिथुनको छे अने तेओ कदाचित ज कवलाहारपूर्वक आहार करे छे, कह्युं छे के "तेओनो आहार अट्ठम त्रण दिवस–पछी होय छे" अल्प शरीरवाळा तो थोडुं खाय छे पण वारंवार खाय छे कारण के ते ज प्रमाणे बाळकोमा जोवामा आवे छे अने अल्प शरीरवाळा समूर्छिम मनुष्योने पण निरंतर आहारनो संभव छे; वळी अहीं पूर्वोत्पन्न जीवोने जे शुभवर्णादि कह्यु छे ते तारुण्यनी अपेक्षाए अथवा संमूर्छिमनी अपेक्षाए जाणवुं. ['सरागसंजय'त्ति] सरागसंयत एटले जेओना कषायो क्षीण थया नथी तेम उपशांत थया नथी ते. ['वीअराग-संजय'त्ति] जेओना कषायो उपशांत थया छे, अने जेओना कषायो क्षीण थया छे ते. ['अकिरिय'त्ति] अक्रिय क्रिया विनाना छे, कारण के, वीतराग होवाथी तेओने आरंभादिकनो अभाव छे. ['एगा मायावत्तिय'त्ति] अप्रमत्त संयतोने एक ज मायाप्रत्यया ['किरिया कज्जइ'त्ति] क्रिया होय छे, कारण के, कदाचित उड्डाहना रक्षणमां प्रवृत्त थता होवाथी तेओ अक्षीण कषाय छे. ['आरंभिअ'त्ति] 'बधो य प्रमत्त योग आरंभ छे' माटे प्रमत्तसंयतोने आरंभिकी क्रिया होय छे अने तेओना कषाय क्षीण न थएला होवाथी तेओने 'मायाप्रत्यया' क्रिया होय छे.

देव.

९६. *वाणमंतर–जोतिस–वेमाणिआ जहा असुरकुमारा, नवरं वेयणाए णाणत्तं–मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य अप्पवेयणतरा, अमायिसम्मदिट्ठीउववन्नगा य महावेयणातरागा भाणियव्वा जोतिस–वेमाणिया.*

९६. वानव्यंतर, ज्योतिषिक अने वैमानिक; ए बधा असुरकुमारोनी पेठे कहेवा. वेदनामां भेद छे, जे आ प्रमाणे छेः–ज्योतिष्क अने वैमानिकोमां जे मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न थएला होय ते ओछी वेदनावाळा होय छे अने जे अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्न थएला होय ते मोटी वेदनावाळा होय छे, एम कहेवु.

९. *'वाणमंतर–जोतिस–वेमाणिया जहा असुरकुमार'*त्ति तत्र शरीरस्याऽल्पत्व–महत्त्वे स्वावगाहनाऽनुसारेणाऽवसेये. तथा वेदनायाम्–असुरकुमाराः *'सन्निभूया य, असन्निभूया य; सन्निभूया महावेयणा, असन्निभूया अप्पवेयणा'* इत्येवमधीताः. व्यन्तरा अपि तथैवाऽध्येतव्याः,

---

१. प्र० छायाः—अष्टमभक्तस्य आहारः–अनु०

१. मूलच्छायाः—वानव्यन्तर–ज्योतिष्क–वैमानिका यथाऽसुरकुमाराः, नवरं वेदनायां नानात्वम्–मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकाश्च अल्पवेदनकाः, अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकाश्च महावेदनका भणितव्या ज्योतिष्क–वैमानिकाः–अनु०

यतोऽसुरादिषु व्यन्तरान्तेषु देवेषु असंज्ञिन उत्पद्यन्ते, यतोऽत्रैवोद्देशके वक्ष्यतिः–'*असन्नी णं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु*' त्ति. ते चाऽसुरकुमारप्रकरणोक्तयुक्तेरल्पवेदना भवन्तीत्यवसेयम्. यत्तु प्रागुक्तम्–'संज्ञिनः सम्यग्दृष्टयः, असंज्ञिनस्त्वितरे' तद् वृद्धव्याख्याऽनुसारेणैवेति. ज्योतिष्क–वैमानिकेषु त्वसंज्ञिनो नोत्पद्यन्ते, अतो वेदनापदे तेष्वधीयतेः–''*दुविहा जोइसिया, मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य*'' इत्यादि. तत्र मायिमिथ्यादृष्टयोऽल्पवेदनाः, इतरे च महावेदनाः, शुभवेदनामाश्रित्येति. एतदेव दर्शयन्नाहः–'*नवरं वेयणाए*' इत्यादि.

देव विषे पूर्व प्रमाणे विचार अने भिन्नता.

९. ['वाणमंतर- जोतिस -वेमाणिआ जहा असुरकुमार'त्ति] तेमां शरीरनुं नानापणुं अने मोटापणुं पोतपोतानी अवगाहनाने अनुसार जाणवुं. वेदनामां 'असुरकुमारो संज्ञिभूत अने असंज्ञिभूत छे, संज्ञिभूत महावेदनावाळा छे अने असंज्ञिभूत अल्प वेदनावाळा छे' ए प्रमाणे असुरकुमारो कह्या छे अने व्यंतरो पण तेम ज कहेवाः कारण के असुरकुमारथी मांडीने व्यंतर सुधीना देवोमां असंज्ञिजीवो उत्पन्न थाय छे. आ वातने आ ज (चालु) उद्देशकमां कहेशे–'असंज्ञिजीवो जघन्ये भवनवासिओमां उत्पन्न थाय अने उत्कृष्टे वानव्यंतर देवोमां उत्पन्न थाय.' तेओ अल्प वेदनावाळा होय छे. ए वात असुरकुमारना प्रकरणमां कहेली युक्तिथी जाणवी. जे पहेलां कह्युं छे के, 'संज्ञिओ एटले सम्यग्दृष्टिओ अने असंज्ञिओ एटले बीजा अर्थात् मिथ्यादृष्टिओ' ते वृद्धोनी व्याख्याने अनुसारे ज जाणवुं. ज्योतिष्क अने वैमानिकोमां तो असंज्ञिओ उत्पन्न थता नथी माटे ते संबंधे वेदनापदमां कहेवाय छे के, ''ज्योतिष्को बे प्रकारना छे–मायिमिथ्यादृष्टिउपपन्नक'' वगेरे. तेमां मायिमिथ्यादृष्टिओ ओछी वेदनावाळा छे अने बीजा शुभ वेदनाने आश्रीने महा वेदनावाळा छे. ए ज वातने दर्शावता कहे छेः–['नवरं वेअणाए' इत्यादि].

लेश्यावाळा जीवो.

९७. प्र०—*सलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारगा?*

९७. उ०— *ओहियाणं, सलेस्साणं, सुक्कलेस्साणं; एएसि णं तिण्हं एक्को गमो. कण्हलेस्साणं, नीललेस्साणं पि एक्को गमो. नवरं वेदणाए–मायिमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य. अमायिसम्मदिट्ठी-उववन्नगा य भाणियव्वा. मणुस्सा किरियासु सराग–वीअराग–पमत्ता–ऽपमत्ता न भाणिअव्वा, काउलेस्साण वि एसेव गमो. नवरं–नेरइए जहा ओहिए दंडए तहा भाणियव्वा, तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा जस्स अत्थि जहा ओहिओ दंडओ तहा भाणियव्वा. नवरं–मणुस्सा सरागा, वीअरागा न भाणियव्वा. गाहाः*

दुक्खा–उए उदिण्णे आहारे कम्म–वन्न–लेस्सा य.
समवेयण–समकिरिया समाउए चेव बोधव्वा.

९७. प्र०—हे भगवन्! लेश्यावाळा बधा नैरयिको समान आहारवाळा छे?

९७. उ०— हे गौतम! औधिक–सामान्य, सलेश्य अने शुक्ललेश्यावाळा; ए त्रणनो एक गम कहेवो–समान पाठ कहेवो. कृष्णलेश्यावाळा अने नीललेश्यावाळाओनो पण समान गम कहेवो, पण तेमां वेदनामां भेद आ प्रमाणे छेः–मायी अने मिथ्यादृष्टि उपपन्नक अने अमायी तथा सम्यग्दृष्टि उपपन्नक कहेवा. तथा कृष्ण अने नीललेश्यामां मनुष्यो सरागसंयत, वीतरागसंयत, प्रमत्तसंयत के अप्रमत्तसंयत न कहेवा. वळी कापोतलेश्यामां पण ए ज गम समजवो. विशेष ए के, कापोतलेश्यावाळा नैरयिको औधिक दंडकनी पेठे कहेवा. जेओने तेजोलेश्या अने पद्मलेश्या होय, तेओ औधिक दंडकनी पेठे कहेवा. विशेष ए के, मनुष्योना सराग अने वीतराग, एवा बे भेद न कहेवा. गाथाः—

दुःख–कर्म–अने आयुष्य जो उदीर्ण होय तो वेदे छे. आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया अने आयुष्य; ए बधानी समता संबंधे पूर्वे कह्युं छे एम जाणवुं.

१०. अथ चतुर्विंशतिदण्डकमेव लेश्यादिभेदविशेषणमाऽऽहारादिपदैर्निरूपयन् दण्डकसप्तकमाहः–'*सलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारग*'त्ति अनेनाऽऽहार–शरीरो–च्छ्वास–कर्म–वर्ण–लेश्या–वेदना–क्रियो–पपाताऽऽयुष्पूर्वोक्तनवपदोपेतनारकादिचतुर्विंशतिपददण्डको लेश्यापदविशेषितः सूचितः. तदन्ये च कृष्णलेश्यादिविशेषिताः पूर्वोक्तनवपदोपेता एव यथासंभवं नारकादिपदात्मकाः षड् दण्डकाः सूचिताः. तदेवमेतेषां सप्तानां दण्डकानां सूत्रसंक्षेपार्थं यो यथाऽध्येतव्यस्तं तथा दर्शयन्नाहः–'*ओहियाणं*' इत्यादि. तत्रौघिकानां पूर्वोक्तानां निर्विशेषणानां नारकादीनाम्, तथा सलेश्यानामधिकृतानामेव, शुक्ललेश्यानां तु सप्तमदण्डकवाच्यानाम्–एषां त्रयाणामेको गमः—सदृशपाठः.

१. अत्र उद्देशके १०४ उत्तरसूत्रेः–अनु०

१. जुओ आ उद्देशकमां १०४ मुं उत्तर सूत्रः–अनु०

१. मूलच्छायाः–सलेश्या भगवन्! नैरयिकाः सर्वे समाऽऽहारकाः? औघिकानाम्, सलेश्यानाम्, शुक्ललेश्यानाम्; एतेषां त्रयाणामेको गमः, कृष्णलेश्यानाम्, नीललेश्यानामपि एको गमः, नवरं वेदनायां–मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकाश्च, अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकाश्च भणितव्याः. मनुष्याः क्रियासु सराग–वीतराग–प्रमत्ता–ऽप्रमत्ता न भणितव्याः. कापोतलेश्यायामपि एष एव गमः. नवरम्–नैरयिके यथा औघिके दण्डके तथा भणितव्याः, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या यस्याऽस्ति यथौघिको दण्डकस्तथा भणितव्याः, नवरम्–मनुष्याः सरागाः, वीतरागा न भणितव्याः. गाथाः—दुःखाऽऽयुष्के उदीर्णे आहारः कर्म–वर्ण–लेश्याश्च, समवेदन–समक्रियाः समाऽऽयुष्कं चैव बोद्धव्यम्:—अनु०

'सलेश्याः, शुक्ललेश्याश्च'इत्येवंविधविशेषणकृत एव तत्र भेदः—औधिकदण्डकसूत्रवद् अनयोः सूत्रमिति हृदयम्. तथा *'जस्स अत्थि'* इत्येतस्य वक्ष्यमाणपदस्य इह संबन्धाद् यस्य शुक्ललेश्याऽस्ति स एव तद्दण्डकेऽध्येतव्यः. तेनेह पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः, मनुष्याः, वैमानिकाश्च वाच्याः. नारकादीनां शुक्ललेश्याया अभावादिति. *'कण्हलेस्साणं, नीललेस्साणं पि एक्को गमो'* औधिक एवेत्यर्थः. विशेषमाहः—*'नवरं वेदणाए—'* इत्यादि. कृष्णलेश्यादण्डके, नीललेश्यादण्डके च वेदनासूत्रे *'दुविहा णेरइया पन्नत्ता. सन्निभूया य, असन्निभूया य'*त्ति औधिकदण्डकाऽधीतं नाऽध्येतव्यम्, असंज्ञिनां प्रथमपृथिव्यामेव उत्पादात्, *''असण्णी खलु पढमं''* इति वचनात्, प्रथमायां च कृष्ण—नीललेश्ययोरभावात्. तर्हि किमध्येतव्यम्? इत्याहः—*'मायिमिच्छदिट्ठीउववन्नगा य'* इत्यादि. तत्र मायिनो मिथ्यादृष्टयश्च महावेदना भवन्ति, यतः प्रकर्षपर्यन्तवर्तिनीं स्थितिमशुभां ते निर्वर्तयन्ति, प्रकृष्टायां च तस्यां महती वेदना संभवति. इतरेषां तु विपरीता इति. तथा मनुष्यपदे क्रियासूत्रे यद्यप्यौधिकदण्डके *''तिविहा मनुस्सा पण्णत्ता. तं जहाः—संजया, असंजया, संजयासंजया. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पन्नत्ता. तं जहाः—सरागसंजया य, वीयरागसंजया य; तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता. तं जहाः—पमत्तसंजया य, अप्पमत्तसंजया य''*त्ति पठितम्, तथाऽपि कृष्ण—नीललेश्यादण्टकयोर्नाध्येतव्यम्, कृष्ण—नीललेश्योदये संयमस्य निषिद्धत्वात्, यच्चोच्यते *''पुव्वपडिवन्नओ पुण अन्नयरीए ओ लेस्साए''*त्ति तत् कृष्णादिद्रव्यरूपां द्रव्यलेश्यामङ्गीकृत्य, न तु कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यजनिताऽऽत्मपरिणामरूपां भावलेश्याम्. एतच्च प्रागप्युक्तमिति. एतदेव दर्शयन्नाह —*'मणुस्सा'*इत्यादि. तथा कापोतलेश्यादण्डकोऽपि नीलादिलेश्यादण्डकवदध्येतव्यः, नवरम्—नारकपदे वेदनासूत्रे नारका औधिकदण्डकवदेव वाच्याः, ते चैवम्—*''नेरइया दुविहा पन्नत्ता. तं जहाः—संन्निभूया य, असन्निभूया य''*त्ति असंज्ञिनां प्रथमपृथिव्युत्पादेन कापोतलेश्यासंभवाद्, अत आहः—*'काउलेस्साण वि'* इत्यादि. तथा तेजोलेश्या, पद्मलेश्या च यस्य जीवविशेषस्यास्ति, तमाश्रित्य यथौधिको दण्डकस्तथा तयोर्दण्डकौ भणितव्यौ. तदस्तिता चैवम्—नारकाणाम्, विकलेन्द्रियाणाम्, तेजो—वायूनां चाद्यास्तिस्र एव. भवनपति—पृथिव्य—म्बु—वनस्पति—व्यन्तराणामाद्याश्चतस्रः. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्—मनुष्याणां षट्. ज्योतिषां तेजोलेश्या. वैमानिकानां तिस्रः प्रशस्ता इति. आह चः—*''कण्हा नीला काऊ तेउलेस्सा य भवण—वंतरिया, जोइस—सोहम्मी—साणे तेउलेस्सा मुणेयव्वा. कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य, एएसु पम्हलेस्सा तेण परं सुक्कलेस्साओ.''* तथा *''पुढवी-आउ—वणस्सइ बायर—पत्तेय लेस चत्तारि.''* तेजोलेश्यान्ताः. *''गब्भय—तिरय—नरेसु छ ल्लेस्सा. तिण्णि सेसाणं.''* केवलमौधिकदण्टके क्रियासूत्रे मनुष्याः सराग—वीतरागविशेषणा अधीताः. इह तु तथा न वाच्याः, तेजः—पद्मलेश्ययोर्वीतरागत्वाऽसंभवात् शुक्ललेश्यायामेव तत्संभवात्. प्रमत्ता—ऽप्रमत्तास्तूच्यन्ते इति. एतदेव दर्शयन्नाहः—*'तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा'* इत्यादि. *'गाह'*त्ति उद्देशकादितः सूत्रार्थसंग्रहगाथा गतार्थाऽपि सुखावबोधार्थमुच्यते—दुःखमायुश्च उदीर्ण वेदयति इति एकत्व—बहुत्वाभ्यां दण्डकचतुष्टयमुक्तम्. तथा *'आहारे'*त्ति *'नेरइया किं समाहारा?'* इत्यादि, तथा *'किं समकम्मा?'* तथा *'किं समवन्ना?'* तथा *'किं समलेस्सा?'* तथा *'किं समवेयणा?'* तथा *'किं समकिरिया?'* तथा *'किं समाउया समोववन्नगा?'*त्ति गाथार्थः

लेश्यावाळा जीवो विषे पूर्ववत् विचार अने विशेषता.

१०. हवे लेश्यादि भेदना विशेषणवाळा चोवीशे दंडकने ज आहारादि पदोथी निरूपण करता प्रथम सात दंडक कहे छेः—['सलेस्सा णं भंते! नेरइया सव्वे समाहारग'त्ति] आ सूत्रवडे आहार, शरीर, उच्छ्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया अने उपपात नामना पूर्वोक्त नव पदयुक्त नारकादि चोवीश पदनो दंडक 'लेश्या' पदथी विशेषित करी सूचव्यो. अने बीजा कृष्णलेश्यादिथी विशेषित अने पूर्वोक्त नव पदोथी युक्त ज नारकादि पदरूप छ दंडको पण यथासंभव सूचव्या. तो ए प्रमाणे ए सात दंडको संबंधी सूत्रना संक्षेप माटे जे दंडक जेम कहेवानो छे, तेम तेने दर्शावता कहे छे केः—['ओहियाणं' इत्यादि] तेमां औधिक विशेषण विनाना पूर्वोक्त नारकादिकनो, अधिकृत प्रसंगप्राप्त—चालु, सलेश्योनो—लेश्यावाळाओनो अने सप्तम दंडकवडे कहेवा योग्य शुक्ल लेश्यावाळाओनो; ए त्रणेनो सरखो पाठ छे, मात्र 'लेश्यावाळो' अने 'शुक्ल लेश्यावाळो' ए प्रकारना विशेषणनो ज भेद छे अर्थात् औधिक सामान्य दंडकनी पेठे आ बेनु सूत्र छे. तथा ['जस्स अत्थि'] ए आगळ आवनारा पदनो अहीं संबंध होवाथी जेने शुक्ल लेश्या छे ते ज तेना दंडकमां कहेवो. तेथी करीने अहीं पंचेंद्रिय तिर्यंचो, मनुष्यो अने वैमानिको कहेवा, पण नारको न कहेवा, कारण के तेओने शुक्ललेश्यानो अभाव छे. ['कण्हलेस्साणं, नीललेस्साणं पि एक्को गमो'] अर्थात् कृष्णलेश्यावाळा अने नीललेश्यावाळाओनो एक ज पाठ छे—औधिक ज छे. विशेष कहे छे—['नवरं वेदणाए—' इत्यादि] कृष्णलेश्याना अने नीललेश्याना दंडकना वेदना सूत्रमां 'नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे संज्ञिभूत अने असंज्ञिभूत' ए औधिक दंडकमां कहेलुं न कहेवुं. कारण के असंज्ञिजीवोनी उत्पत्ति प्रथम पृथिवीमां ज थाय छे. कह्युं छे केः—''असंज्ञी प्रथम पृथिवीमां उपजे'' अने प्रथम पृथिवीमां कृष्णलेश्या अने नीललेश्या नथी. त्यारे तेने बदले शुं कहेवुं ? तो कहे छे केः—['मायिमिच्छदिट्ठीउववन्नगा य' इत्यादि] तेमां मायिमिथ्यादृष्टिओ महावेदनावाळा होय छे; कारण के तेओ सर्वथी विशेष अशुभ स्थितिने उत्पन्न करे छे, अने ज्यारे अशुभ स्थिति अत्यंत विशेष होय त्यारे मोटी वेदना संभवे छे. बीजाओने तो तेथी विपरीत अर्थात् ओछी वेदना होय छे. मनुष्यपदमां क्रियासूत्रमां औधिक दंडकमां जो के 'मनुष्यो त्रण प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः संयत, असंयत अने संयतासंयत. तेमां जे संयत छे ते बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—सरागसंयत अने वीतरागसंयत. तेमां जे सरागसंयत छे ते बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—प्रमत्त—

---

१. प्र॰ छायाः—असंज्ञी खलु प्रथमाम्. २. पूर्वप्रतिपन्नकः पुनरन्यतरस्यां तु लेश्यायाम्. ३. नैरयिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः. तद्यथाः—संज्ञिभूताश्च, असंज्ञिभूताश्चेति. ४. कृष्णा, नीला, कापोता, तेजोलेश्या च भवन—व्यन्तरेषु, ज्योतिष्क—सौधर्मे—शाने तेजोलेश्या ज्ञातव्या. ५. कल्पे सनत्कुमारे माहेन्द्रे चैव ब्रह्मलोके च एतेषु पद्मलेश्या, तेन परं शुक्ललेश्याः ६. पृथिव्य—प्—वनस्पति—बादर—प्रत्येके लेश्याश्चतस्रः. ७. गर्भज—तिर्यग्—नरेषु षड् लेश्याः. तिस्रः शेषाणाम्.—अनु॰

संयत अने अप्रमत्तसंयत' ए कह्युं छे, तो पण अहीं कृष्णलेश्या अने नीललेश्याना दंडकमां ते न कहेवुं. कारण के कृष्ण अने नीललेश्यानो उदय होय त्यारे संयमनो निषेध छे. "जेणे संयमने पूर्वे स्वीकार्यो हतो एवो जीव कोइ एक लेश्यामां होय छे." एम जे कह्युं छे ते कृष्णादि द्रव्यरूप लेश्याने आश्रीने कह्युं छे. पण कृष्णादि द्रव्यनी समीपताथी उत्पन्न थएल आत्मपरिणामरूप भावलेश्याने आश्रीने कह्युं नथी. अने ए आगळ पण कह्युं छे. ए ज वातने दर्शावता शास्त्रकार कहे छे केः ['मणुस्सा' इत्यादि] कापोतलेश्यानो दंडक पण नीलादि लेश्याना दंडकनी पेठे कहेवो. तेमां विशेष ए के नारक पदना वेदना सूत्रमां नारको औघिक दंडकनी पेठे ज कहेवा. अने ते आ प्रमाणे छेः-'नैरयिको बे प्रकारना कह्या छे, ते आ प्रमाणेः- संज्ञिभूत अने असंज्ञिभूत.' असंज्ञिजीवो प्रथम पृथिवीमां उत्पन्न थता होवाथी तेओने कापोतलेश्यानो संभव छे, माटे कहे छे के-['काउलेस्साण वि' इत्यादि] तथा जेम औघिक दंडक कह्यो तेम ज जीव विशेषने तेजोलेश्या अने पद्मलेश्या छे तेने आश्रीने तेना बे दंडक कहेवा. जीवोने लेश्याओ आ प्रमाणे होय छेः नारकोने, विकलेंद्रियोने, तेजने अने वायुने प्रथमनी त्रण ज लेश्याओ छे. भवनपति, पृथिवी, पाणी, वनस्पति अने व्यंतरोने प्रथमनी चार लेश्याओ छे. पचेंद्रियतिर्यंच अने मनुष्योने छ लेश्याओ छे. ज्योतिष्कोने तेजोलेश्या छे. वैमानिकोने त्रण प्रशस्त लेश्याओ छे. कह्युं छे केः "कृष्ण, नील, कापोत अने तेजोलेश्या भवनपतिओने तथा व्यंतरोने होय छे. ज्योतिष्क, सौधर्म अने ईशानमां तेजोलेश्या जाणवी. सनत्कुमार कल्पमां, माहेंद्र अने ब्रह्म लोकमां, (एओमां) पद्मलेश्या छे. अने त्यांथी आगळ शुक्ललेश्या छे. तथा पृथिवी, पाणी अने बादर तथा प्रत्येक वनस्पतिमां चार लेश्या-तेजोलेश्या सुधीनी लेश्याओ होय छे. अने गर्भज तिर्यंच अने मनुष्यमां छ लेश्याओ होय छे तथा बाकीनाने त्रण लेश्याओ होय छे" मात्र औघिक दंडकमां क्रियासूत्रमां सराग अने वीतराग विशेषणवाळा मनुष्यो कह्या, पण अहीं तो ते प्रकार न कहेवा. कारण के तेजोलेश्या अने पद्मलेश्यामां वीतरागपणुं संभवतुं नथी, पण शुक्ललेश्यामां ज संभवे छे. प्रमत्त अने अप्रमत्त मनुष्यो तो कहेवाना छे अने तेने ज दर्शावता कहे छे ['तेउलेस्सा पम्हलेस्सा' इत्यादि] ['गाह'त्ति] उद्देशकनी आदिथी ते अत्यार सुधीना सूत्रार्थने सूचवनारी संग्रहगाथा गतार्थ छे, तो पण सुखपूर्वक बोध थाय ते माटे तेनो अर्थ कहेवाय छे 'दुःख अने आयुष्य उदीर्ण होय तो वेदाय छे' ए प्रमाणे एकवचन अने बहुवचनवडे चार दंडक कह्या. तथा ['आहारे'त्ति] 'शुं नैरयिको समान आहारवाळा छे?' इत्यादि. तथा 'शुं समान कर्मवाळा छे?' तथा 'शुं समान वर्णवाळा छे?' तथा 'शुं समान लेश्यावाळा छे?' तथा 'शुं समान वेदनावाळा छे?' तथा 'शुं समान क्रियावाळा छे?' तथा 'शुं समान आयुष्यवाळा अने समान उपपन्नक छे?' (इत्यादि प्रश्नोनुं निराकरण आ उद्देशकमां अत्यार सुधी थयुं छे.) ए प्रमाणे गाथानो अर्थ छे.

संयम नथी.

कइ लेश्या कोने होय.

संग्रह.

लेश्या.

९८. प्र०—कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?

९८. उ०—गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ता, तं जहाः— लेस्साणं बिईओ उद्देसो भाणियव्वो, जाव—इड्ढी.

९८. प्र०—हे भगवन्! लेश्याओ केटली कही छे?

९८. उ०—हे गौतम! लेश्याओ छ कही छे. ते आ प्रमाणेः— कृष्णलेश्या वगेरे. अहीं प्रज्ञापनासूत्रमां कहेल चार उद्देशकवाळा लेश्यापदनो बीजो उद्देशक कहेवो. ते यावत्—'इड्ढी—ऋद्धि'नी वक्तव्यता सुधी कहेवो.

११. प्राक् 'सलेश्या नारकाः' इत्युक्तम्. अथ लेश्या निरूपयन्नाहः—'कइ णं' इत्यादि. तत्राऽऽत्मनि कर्मपुद्गलानां लेशनात् संश्लेषणाद् लेश्याः, योगपरिणामश्चैताः, योगनिरोधे लेश्यानामभावात्, योगश्च शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषः. 'लेस्साणं बीईओ उद्देसो'त्ति प्रज्ञापनायां लेश्यापदस्य चतुरुद्देशकस्य इह द्वितीयोद्देशको लेश्यास्वरूपाऽवगमाय भणितव्यः. 'प्रथमः'इति क्वचिद् दृश्यते सोऽपपाठ इति. अथ कियद् दूरं यावत्? इत्याहः—'जाव—इड्ढी' ऋद्धिवक्तव्यतां यावत्. स चाऽयं संक्षेपतः—"कइ ण भंते! लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ. तं जहाः -कण्हलेस्सा, ६." एवं सर्वत्र प्रश्नः, उत्तरं च वाच्यम्. "नेरइयाणं तिण्णि—कण्हलेस्सा, ३. तिरिक्खजोणियाणं ६. एगिंदियाणं ४. पुढवि—आउ—वणस्सईणं ४. तेउ—वाउ—बेइंदिय तेइंदिय-चउरिंदियाणं ३. पचिंदियातिरिक्खजोणियाणं ६." इत्यादि बहुवाच्यम्, यावत्—"एएसि णं भंते! जीवाणं कण्हलेस्साणं जाव—सुक्कलेस्साणं कयरे कयरोहिंतो अप्पिड्ढिया वा, महिड्ढिया वा? गोयमा! कण्हलेस्सेहिंतो नीललेस्सा महिड्ढिया, नीललेस्सेहिंतो कापोयलेस्सा" इत्यादि.

११. आगळना प्रकरणमां 'नारको सलेश्य लेश्यावाळा- छे' एम कह्युं छे माटे हवे लेश्याओने निरूपवा कहे छे के-['कइ णं' इत्यादि.] लेश्या -चोंटाडनारी अर्थात् आत्मा साथे कर्मपुद्गलोने चोंटाडनार ते लेश्या. ए लेश्या योगना (शारीरिक, वाचिक अने मानसिक व्यापारना) परिणाम रूप छे, कारण के ज्यारे योगनो निरोध होय छे त्यारे ते लेश्याओ होती नथी. अने योग ए शरीरनामकर्मनो एक प्रकारनो परिणाम छे. ['लेस्साणं बिईओ उद्देसो'त्ति] 'प्रज्ञापना'ना लेश्यापदना चार उद्देशकमांथी अहीं बीजो उद्देशक लेश्यानुं स्वरूप जाणवा माटे कहेवो. कोइ ठेकाणे 'प्रथम उद्देशक कहेवो' ए पाठ छे, पण ते पाठ अपपाठ छे. हवे ते (बीजा उद्देशकनो) पाठ क्यां सुधी कहेवो? तो कहे छे केः-['जाव—इड्ढी'] अर्थात् ऋद्धिनी

लेश्याविचार.

प्रज्ञापना.

१. मूलच्छायाः—कति भगवन्! लेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—लेश्यानां द्वितीय उद्देशो भणितव्यः, यावत्—ऋद्धिः—अनु०

१. प्र० छायाः—कति भगवन्! लेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः. तद्यथा—कृष्णलेश्या. २. नैरयिकाणां तिस्रः—कृष्णलेश्या. तिर्यग्योनिकानां षट्. एकेन्द्रियाणां चतस्रः. पृथिव्य—प्—वनस्पतीनां चतस्रः. तेजो—वायु—द्वीन्द्रिय—त्रीन्द्रिय—चतुरिन्द्रियाणां तिस्रः. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां षट्. ३. एतेषां भगवन्! जीवानां कृष्णलेश्यानां यावत्—शुक्ललेश्यानां कतरे कतरेभ्योऽल्पर्धिका वा, महर्धिका वा? गौतम! कृष्णलेश्येभ्यो नीललेश्या महर्धिकाः, नीललेश्येभ्यः कापोतलेश्याः—अनु०

वक्तव्यता सुधी. ते पाठ संक्षेपथी आ प्रमाणे छेः—"हे भगवन्! लेश्याओ केटली कही छे? हे गौतम! लेश्याओ छ कहेली छे. ते आ प्रमाणेः—कृष्णलेश्या वगेरे." ए प्रमाणे सर्वत्र प्रश्न अने उत्तर कहेवा. "नैरयिकोने कृष्ण वगेरे त्रण लेश्या छे. तिर्यंच योनिकोने छ लेश्या छे. एकेंद्रियोने चार लेश्या छे. तेज, पवन, बेइंद्रिय, त्रींद्रिय अने चतुरिंद्रियने त्रण लेश्या छे. पंचेंद्रियतिर्यंच योनिकोने छ लेश्या छे." इत्यादि घणुं कहेवुं. यावत्—"कृष्णलेश्यावाळा यावत्-शुक्ललेश्यावाळा ए जीवोमां कया कोनाथी, ओछी ऋद्धिवाळा छे? अने कया कोनाथी मोटी ऋद्धिवाळा छे?" (उत्तर) "हे गौतम! कृष्णलेश्यावाळा करतां नीललेश्यावाळा महर्धिक छे अने नीललेश्यावाळा करतां कापोतलेश्यावाळा महर्धिक छे" इत्यादि कहेवुं.

संसारसंस्थानकाळ.

९९. प्र०—जीवस्स णं भंते! तीतद्धाए आदिट्ठस्स कइविहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते?

९९. प्र०—हे भगवन्! अतीत काळमां आदिष्ट—नारकादिविशेषणविशिष्ट-थएल जीवने संसारसंस्थाननो काळ केटला प्रकारनो कह्यो छे?

९९. उ०—गोयमा! चउव्विहे संसारसंचिट्ठणकाले पण्णत्ते, तं जहाः—णेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले, तिरिक्ख–मणुस्स–देवसंसारसंचिट्ठणकाले य पण्णत्ते.

९९. उ०—हे गौतम! संसारसंस्थाननो काळ चार प्रकारनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणेः—नैरयिकसंसारसंस्थानकाळ, तिर्यंचसंसारसंस्थानकाळ, मनुष्यसंसारसंस्थानकाळ अने देवसंसारसंस्थानकाळ.

१००. प्र०—नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

१००. प्र०—हे भगवन्! नैरयिकसंसारसंस्थानकाळ केटला प्रकारनो कह्यो छे?

१००. उ०—गोयमा! तिविहे पन्नत्ते, तं जहाः—सुन्नकाले, असुन्नकाले, मिस्सकाले.

१००. उ०—हे गौतम! ते त्रण जातनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणेः- शून्यकाळ, अशून्यकाळ अने मिश्रकाळ.

१०१. प्र०—तिरिक्खजोणिअसंसार०पुच्छा?

१०१. प्र०—हे भगवन्! तिर्यंचयोनिकसंसारसंस्थानकाळ केटला प्रकारनो कह्यो छे?

१०१. उ०—गोयमा! दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः—असुन्नकाले य, मिस्सकाले य.

१०१. उ०—हे गौतम! ते बे प्रकारनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणेः—अशून्यकाळ अने मिश्रकाळ.

१०२.—मणुस्साण य, देवाण य जहा नेरइयाणं.

१०२.—मनुष्योना अने देवोना संसारसंस्थानकाळना प्रकारो नैरयिकोनी पेठे जाणवा.

१०३. प्र०—एअस्स णं भंते! नेरइयस्स संसारसंचिट्ठणकालस्स सुन्नकालस्स, असुन्नकालस्स, मीसकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा, बहुए वा, तुल्ले वा, विसेसाहिए वा?

१०३. प्र०—हे भगवन्! ए नैरयिक संबंधी संसारसंस्थानकाळना त्रण—शून्यकाळ, अशून्यकाळ अने मिश्रकाळरूप—प्रकारोमां कयो कोनाथी ओछो, वधारे, तुल्य के विशेषाधिक छे?

१०३. उ०—गोयमा! सव्वत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे, सुन्नकाले अणंतगुणे.

१०३. उ०—हे गौतम! सौथी थोडो अशून्यकाळ छे, ते करतां मिश्रकाळ अनंतगुण छे अने ते करतां पण शून्यकाळ अनंतगुण छे.

१०४.—तिरिक्खजोणिआण सव्वत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे.

१०४.—तथा तिर्यंचयोनिकसंसारसंस्थानकाळना बे प्रकारमां सौथी थोडो अशून्यकाळ छे अने ते करतां मिश्रकाळ अनंतगुण छे.

१०५.—मणुस्स-देवाण य जहा नेरइयाणं.

१०५.—मनुष्योना अने देवोना संसारसंस्थानकाळनी न्यूनाधिकता नैरयिकोना संसारसंस्थानकाळनी न्यूनाधिकता पेठे जाणवी.

१०६. प्र०—एअस्स णं भंते! नेरइयसंसारसंचिट्ठणकालस्स जाव–देवसंसारसंचिट्ठणकालस्स जाव–विसेसाहिए वा?

१०६. प्र०—हे भगवन्! नैरयिकना, तिर्यंचयोनिकना, मनुष्यना अने देवना ए संसारसंस्थानकाळमां कयो कोनाथी ओछो, वधारे, तुल्य के विशेषधिक छे?

---

१. मूलच्छायाः—जीवस्य भगवन्! अतीतकाले आदिष्टस्य कतिविधः संसारसंस्थानकालः प्रज्ञप्तः? गौतम! चतुर्विधः संसारसंस्थानकालः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—नैरयिकसंसारसंस्थानकालः, तिर्यग्–मनुष्य–देवसंसारसंस्थानकालश्च प्रज्ञप्तः. नैरयिकसंसारसंस्थानकालो भगवन्! कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—शून्यकालः, अशून्यकालः, मिश्रकालः. तिर्यग्योनिकसंसार० पृच्छा? गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—अशून्यकालश्च, मिश्रकालश्च. मनुष्याणां च, देवानां च यथा नैरयिकाणाम्. एतस्य भगवन्! नैरयिकस्य संसारसंस्थानकालस्य शून्यकालस्य, अशून्यकालस्य, मिश्रकालस्य च कतरः कतरेभ्योऽल्पो वा, बहुको वा, तुल्यो वा, विशेषाऽधिको वा? गौतम! सर्वस्तोकोऽशून्यकालः, मिश्रकालोऽनन्तगुणः, शून्यकालोऽनन्तगुणः. तिर्यग्योनिकानां सर्वस्तोकोऽशून्यकालः, मिश्रकालोऽनन्तगुणः. मनुष्य–देवानां च यथा नैरयिकाणाम्. एतस्य भगवन्! नैरयिकसंसारसंस्थानकालस्य यावत्–देवसंसारसंस्थानकालस्य यावत्–विशेषाऽधिको वा?:—अनु०

१०६. उ०—गोयमा ! सव्वत्थोवे मणुस्ससंसारसंचिट्ठणकाले, नेरइयसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, देवसंसारसंचिट्ठणकाले असंखेज्जगुणे, तिरिक्खजोणिअसंसारसंचिट्ठणकाले अणंतगुणे.

१०६. उ०—हे गौतम ! मनुष्यसंसारसंस्थानकाळ सौथी थोडो छे, ते करतां नैरयिकसंसारसंस्थानकाळ असंख्येयगुण छे, ते करतां देवसंसारसंस्थानकाळ असंख्येयगुण छे अने ते करतां तिर्यच-योनिकसंसारसंस्थानकाळ अनंतगुण छे.

१२. अथ 'पशव: पशुत्वमश्नुवते' इत्यादिवचनविप्रलम्भाद् यो मन्यते अनादौ अपि भवे एकधैव जीवस्यावस्थानमिति बोधनार्थं प्रश्नयन् आह:–'*जीवस्स णं*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–किंविधस्य जीवस्य ? इत्याह:–आदिष्टस्य अमुष्य नारकादेरित्येवंविशेषितस्य, '*तीतद्धाए*'त्ति अनादावतीत काले कतिविध:, उपाधिभेदात् कतिभेद:, संसारस्य भवाद् भवान्तरे संचरणलक्षणस्य, संस्थानमवस्थितिक्रिया, तस्य कालोऽवसर:–संसारसंस्थानकाल:–अमुष्य जीवस्याऽतीतकाले कस्यां कस्यां गतौ अवस्थानमासीद् इत्यर्थ:. अत्रोत्तरं चतुर्विध:–उपाधिभेदादिति भाव:. तत्र नारकभवाऽनुगतसंसाराऽवस्थानकालस्त्रिधा–शून्यकाल:, अशून्यकाल:, मिश्रकालश्चेति. तिरश्चां शून्यकालो नास्तीति तेषां द्विविध:. मनुष्य–देवानां तु त्रिविधोऽप्यस्ति आह च:–"*सुन्नासुन्नो मीसो तिविहो संसारचिट्ठणाकालो, तिरियाणं सुन्नवज्जो सेसाणं होइ तिविहो वि.*" तत्राऽशून्यकालस्तावदुच्यते–अशून्यकालस्वरूपपरिज्ञाने हि सतीतरौ सुज्ञानौ भविष्यत इति. तत्र वर्तमाने काले सप्तसु पृथिवीषु ये नारका वर्तन्ते तेषां मध्याद् यावत्–न कश्चिदुद्वर्तते, न चाऽन्य उत्पद्यते तावन्मात्रा एव ते आसते, स कालस्तान् नारकानङ्गीकृत्य अशून्य इति भण्यते. आह च:–"*आइट्ठसमइयाणं नेरइयाणं न जाव–एक्को वि, उव्वट्टइ अन्नो वा उववज्जइ सो असुन्नो ओ.*" मिश्रकालस्तु तेषामेव नारकाणां मध्याद् एकादय उद्वृत्ता:, यावत्–एकोऽपि शेषस्तावन् मिश्रकाल:. शून्यकालस्तु यदा त एवाऽऽदिष्टसामयिका नारका: सामस्त्येनोद्वृत्ता भवन्ति, नैकोऽपि तेषां शेषोऽस्ति स शून्यकाल इति, आह च:–"*उव्वट्टे एक्कम्मि वि ता मीसो धरइ जाव–एक्को वि, निल्लेविएहिं सव्वेहि वट्टमाणं हि सुन्नो ओ.*"

शुं कायम जीवनी एक ज जातनी दशा रहे ? ए विषे विचार.

१२. 'पशुओ पशुपणु पामे छे' इत्यादि वचनना विप्रलम्भथी जे एम माने छे के.–अनादि संसारमां पण जीवनी स्थिती एक ज प्रकारनी रहे छे. तेने हवे बोध करवा प्रश्न करता कहे छे के: ['जीवस्स णं' इत्यादि] सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, अहीं केवो जीव लेवो ? तो कहे छे के, नारक वगेरे विशेषणथी आदिष्ट-युक्त–जीव अही लेवो. ['तीतद्धाए'त्ति] (ते जीवनो) अनादि -आदि विनाना–अतीत काळमां उपाधिना भेदथी केटला प्रकारनो संसारसंस्थानकाळ छे ? संसारसंस्थानकाळ–संसार एटले एक भवथी–एक जींदगीथी-बीजी जींदगीमां जवारूप क्रिया. तेनी जे संस्थान–अवस्थान-स्थिर रहेवारूप-क्रिया अने तेनो जे काळ ते संसारसंस्थानकाळ अर्थात् आ जीव अतीत काळमां कइ गतिमां अवस्थित हतो ? तेनो उत्तर आ छे:-जीवनो संसारसंस्थानकाळ उपाधिभेदथी चार प्रकारनो छे. तेमां नारकभव संबंधी ससारावस्थानकाळ त्रण प्रकारनो छे. ते आ: -शून्यकाळ, अशून्यकाळ अने मिश्रकाळ. तिर्यचभव संबंधी संसारावस्थानकाळ बे प्रकारनो छे. कारण के तेमां शून्यकाळ नथी. मनुष्य अने देवोनो तो संसाराव-स्थानकाळ त्रण प्रकारनो छे. कह्यु छे के, "संसारावस्थानकाळ त्रण प्रकारनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणे -शून्य, अशून्य अने मिश्रकाळ. तिर्यचोने शून्य सिवायनो (बाकीनो) बे प्रकारनो होय छे अने बाकी बीजा बधाओने त्रण प्रकारनो होय छे." तेमां शरुआतमां अशून्यकाळनुं स्वरूप कहीए छीए. कारण के अशून्यकाळना स्वरूपनु ज्ञान थया पछी ते बाकी [illegible] बीजा बे (शून्य अने मिश्र) काळ सुखे समजाय तेम छे. अशून्यकाळ वर्तमान काळमां साते पृथिवीओमां जे नारको वर्ते छे तेओमांथी ज्या सुधी कोइ उद्वर्ते (मरे) नहीं अने बीजो कोइ उत्पन्न पण थाय नहीं, [illegible] छे तेटला ज रहे, ते काळ नारकोने आश्रीने 'अशून्य' काळ कहेवाय. कह्युं छे के, "वर्तमान काळे वर्तता नैरयिकोमांथी ज्यां सुधी एक पण जीव उद्वर्ते नहीं अने कोइ बीजो तेमां उत्पन्न पण थाय नहीं त्यां सुधीनो ए काळ अशून्यकाळ कहेवाय छे." हवे मिश्रकाळनुं स्वरूप कहे छे:–ते ज नारकोमांथी एक, बे, त्रण, चार, पांच; एम करीने बधा उद्वृत्त थया अने ज्या सुधी तेमां छेवटे एक (नारक) बाकी छे त्यां सुधी मिश्रकाळ छे. अने शून्यकाळ त्यारे ज होइ शके छे के, ज्यारे वर्तमान समयना ते बधा नारको समस्तपणे उद्वृत्त थइ गया, पण तेमां एके बाकी रह्यो नथी त्यारे (शून्यकाळ कहेवाय छे.) कह्युं छे के, "उद्वर्तन थतां ज्यां सुधी एक पण बाकी रहे त्यां सुधी मिश्रकाळ अने वर्तमान समयना बधा नारकोना निर्लेपवडे शून्यकाळ अर्थात् ज्यारे एक पण नारक बाकी न रहे त्यारे शून्यकाळ."

अशून्यकाळ.

मिश्रकाळ.

शून्यकाळ.

१३. इदं च मिश्रनारकसंसाराऽवस्थानकालचिन्तासूत्रं न तमेव वार्तमानिकनारकभवमङ्गीकृत्य प्रवृत्तम्, अपि तु वार्तमानिकनारकजीवानां गत्यन्तरगमनेन तत्रैवोत्पत्तिमाश्रित्य. यदि पुनस्तमेव नारकभवमङ्गीकृत्य इदं सूत्रं स्यात् तदाऽशून्यकालाऽपेक्षया मिश्रकालस्याऽनन्तगुणता सूत्रोक्ता न स्यात्. आह च:–"*एयं पुण ते जीवे पडुच्च सुत्तं न तब्भवं चेव, जइ होज्ज तब्भवं नो अनंतकालो न संभवइ.*" कस्माद् इति चेत्, उच्यते–ये वार्तमानिका नारकास्ते स्वाऽऽयुष्ककालस्याऽन्ते उद्वर्तन्ते, असंख्यातमेव च तदाऽऽयु:, अत उत्कर्षतो द्वादशमौहूर्ति-

१. मूलछाया:—गौतम ! सर्वस्तोको मनुष्यसंसारसंस्थानकाल:, नैरयिकसंसारसंस्थानकालोऽसंख्येयगुण:, देवसंसारसंस्थानकालोऽसंख्येयगुण:, तिर्यग्योनिकसंसारसंस्थानकालोऽनन्तगुण:–अनु०

१. प्र० छाया:—शून्याऽशून्यो मिश्रस्त्रिविध: संसारसंस्थानकाल:, तिरश्चां शून्यवर्ज: शेषाणां भवति त्रिविधोऽपि. २. आदिष्टसमयानां नैरयिकाणां न यावत्–एकोऽपि, उद्वर्ततेऽन्यो वा उपपद्यते सोऽशून्यस्तु. ३. उद्वृत्ते एकस्मिन् अपि तावद् मिश्रो धरति यावत्–एकोऽपि, निर्लेपितै: सर्वै: वर्तमानैर्हि शून्यस्तु. ४. एतत् पुनस्तान् जीवान् प्रतीत्य सूत्रं न तद्भवं चैव, यदि भवेत् तद्भवं ततोऽनन्तकालो न संभवति:–अनु०

काऽशून्यकालापेक्षया मिश्रकालस्यानन्तगुणत्वाभावप्रसङ्गाद् इति. आह चः—"किं कारणमाइट्ठा नेरइया जे इमम्मि समयम्मि, ते ठिइकाल-स्संते जम्हा सव्वे खविज्जंति." 'सव्वत्थोवे असुन्नकाले'त्ति नारकाणामुत्पादोद्वर्तनाविरहकालस्य उत्कर्षतोऽपि द्वादशमुहूर्तप्रमाणत्वात्. 'मिस्सकाले अणंतगुणे'त्ति मिश्राख्यो विवक्षितनारकजीवनिर्लेपनाकालोऽशून्यकालाऽपेक्षयाऽनन्तगुणो भवति, यतोऽसौ नारकेतरेष्वाऽऽगमन-गमनकालः, स च त्रस–वनस्पत्यादिस्थितिकालमिश्रितः सन्नऽनन्तगुणो भवति, त्रस वनस्पत्यादिगमनागमनानामनन्तत्वात्, स च नारक-निर्लेपनाकालो वनस्पतिकायस्थितेरनन्तभागे वर्तते इति. उक्तं चः—"थोवोऽसुन्नकालो सो उक्कोसेण बारसमुहुत्तो, तत्तो य अणंतगुणो मीसो निल्लेवणाकालो. आगमण–गमणकालो तसाइ–तरुमीसओ अणतगुणो, अह निल्लेवणकालो अणंतभागे वणद्धाए."त्ति 'सुन्नकाले अणंतगुणे'त्ति सर्वेषां विवक्षितनारकजीवानां प्रायो वनस्पतिष्वनन्तानन्तकालमवस्थानात्, एतदेव च वनस्पतिष्वनन्ताऽनन्तकालाऽवस्थानं जीवानां नारकभवाऽन्तरकाल उत्कृष्टो देशितः समये इति. उक्तं च.—"सुन्नो य अणंतगुणो सो पुण पायं वणस्सइगयाण, एय चेव य नारयभवंतरं देसियं जेट्ठं." ति 'तिरिक्खजोणिआणं सव्वत्थोवे असुन्नकाल' इति स चाऽऽन्तर्मुहूर्तमात्रः, अय च यद्यपि सामान्येन तिरश्चामुक्तः, तथापि विकलेन्द्रिय–संमूर्च्छिमानामेवाऽवसेयः, तेषामेवाऽन्तरमुहूर्तमानस्य विरहकालस्योक्तत्वात्. यदाह.—"भिन्नमुहुत्तो विगलेंदिएसु, समुच्छिमेसु वि स एव" एकेन्द्रियाणां तूद्वर्तना–उपपातविरहाऽभावेनाऽशून्यकालाऽभाव एव. आह च.—"एगो असखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायम्मि, एगनिगोए निच्चं एव सेसेसु वि स एव." पृथिव्यादिषु पुनः 'अणुसमय असंखेज्ज'त्ति वचनाद्विरहाभाव इति. 'मिस्सकाले अणंतगुणे'त्ति नारकवत्, शून्यकालस्तु तिरश्चां नास्त्येव, यतो वार्तमानिकसाधारणवनस्पतीनां तत उद्वृत्तानां स्थानमन्यद् नास्ति. 'मणुस्स–देवाण य जहा नेरइयाणं'ति अशून्यकालस्याऽपि द्वादशमुहूर्तप्रमाणत्वात्. अत्र गाथा —"एवं नरा–ऽमराण वि तिरियाणं नवरि नत्थि सुन्नद्धा, जं निग्गयाण तेसिं भायणं अन्नं तओ नत्थि." 'एयस्स' इत्यादि व्यक्तम्.

१३. मिश्र नारक ससारावस्थानकाळना विचार सबधी आ सूत्र ते ज वार्तमानिक नारक भवने आश्रीने प्रवर्त्युं नथी, पण वार्तमानिक नारक जीवोनी बीजी गतिना गमनवडे त्या ज उत्पत्तिने आश्रीने प्रवर्त्युं छे. वळी जो ते ज नारक भवने आश्रीने आ सूत्र प्रवर्ते तो सूत्रमा कहेली शून्यकाळनी अपेक्षाए मिश्रकाळनी अनंतगुणता थइ शके नही. कह्यु छे के.—"वळी ए सूत्र ते जीवोने माटे ते भवने आश्री ने नथी. जो ते भवने आश्रीने होय तो अनंतकाळ संभवतो नथी." केम सभवतो नथी? तो कहे छे –जे वार्तमानिक नारको छे तेओ पोताना आयुष्यकाळना छेवटने भागे उद्वर्ते छे अने तेओनुं आयुष्य तो असख्यात ज छे माटे वधारेमां वधारे बार मुहूर्तना अशून्यकाळनी अपेक्षाए मिश्रकाळनु अनतगुणपणुं बनवु ए अप्रसग जेवु छे. कह्युं छे के, "अनतकाळ न सभवे तेमां शुं कारण छे? तो कहे छे के' आ समये–वर्तमान समये जे नैरयिको छे तेओ स्थितिकाळने छेडे बधा खपी जवाना छे. ['सव्वत्थोवे असुन्नकाले'त्ति] नारकोनो उत्पाद, उद्वर्तना अने विरहकाळ वधारेमां वधारे पण बार मुहूर्त प्रमाण छे माटे अशून्यकाळ सौथी थोडो छे. ['मिस्सकाले अणंतगुणे'त्ति] मिश्र नामनो विवक्षित नारक जीवोनो निर्लेपनाकाळ अशून्यकाळनी अपेक्षाए अनतगुण छे. कारण के ए नारकोमां अने बीजाओमा गमनागमनकाळ छे अने ते त्रस अने वनस्पति वगेरेना स्थितिकाळथी मिश्रित थतो अनतगुण थाय छे. कारण के त्रस अने वनस्पत्यादिना गमनागमनो अनत छे अने ते नारकनो निर्लेपनाकाळ वनस्पतिकायनी स्थितिना अनत भागे वर्ते छे. कह्यु छे के,"अशून्यकाळ थोडो छे अने ते वधारेमां वधारे बार मुहूर्तनो छे. तेथी अनतगुण मिश्र निर्लेपनाकाळ छे." "आगमन अने गमननो काळ त्रस अने तरुथी मिश्रित थयो छतो अनंतगुण थाय छे अने निर्लेपनाकाळ वनस्पतिकाळने अनते भागे छे." ['सुन्नकाले अणंतगुणे'त्ति] शून्यकाळ अनतगुण छे. कारण के बधा विवक्षित नारकोनु घणुं करीने वनस्पतिमां अनतानतकाळ सुधी अवस्थान छे. अने ए ज (वनस्पतिमां अनतानतकाळ सुधीनु अवस्थान) जीवोनो नारकभवांतरकाळ उत्कृष्टरूपे सिद्धातमां कह्यो छे. कह्युं छे के' "शून्यकाळ अनतगुण छे, अने ते प्रायः भागे वनस्पतिमां गएलाओने होय छे अने ए ज मोटामां मोटुं नारकभवांतर कह्युं छे." ['तिरिक्खजोणिआण सव्वत्थोवे असुन्नकाल' इति] तिर्यचयोनिकोनो अशून्यकाळ सौथी थोडो छे अने ते अंतर्मुहूर्त जेटलो छे. जो के आ काळ साधारण दरेक तिर्यचोना सबधे कह्यो छे तो पण विकलेंद्रिय अने समूर्छिमो सबधे ज जाणवो कारण के तेओने ज अंतरमुहूर्तनो विरह काळ कह्यो छे. कह्यु छे केः—"विकलेंद्रिय अने समूर्छिमो सबधे पण भिन्नमुहूर्त कह्यो छे." एकेंद्रियोने तो उद्वर्तनाना अने उपपातना विरहनो अभाव छे माटे अशून्यकाळ नथी. कह्यु छे के "एक निगोदमां हमेशा एक असंख्यभाग उद्वर्तनामा अने उपपातमां वर्ते छे, ए प्रमाणे बाकीनामां पण जाणवु." वळी "प्रति समये असख्य" एवुं वचन होवाथी पृथिवी वगेरेमां विरहनो अभाव कह्यो छे. ['मिस्सकाले अणंत[गुणे'त्ति]] ए नारकनी पेठे छे. शून्यकाळ तो तिर्यचोने छे ज नही. कारण के त्यांथी उद्वृत्त वार्तमानिक साधारण वनस्पतिओनुं बीजुं स्थान नथी. ['मणुस्स–देवाण य जहा नेरइयाण'ति] मनुष्य अने देवोने नैरयिकोनी पेठे जाणवु. कारण के अशून्यकाळ पण बार मुहूर्त जेटलो छे. अहीं गाथाः—'ए प्रमाणे मनुष्य अने देवो सबंधे पण जाणवुं. विशेष ए के, तिर्यचोने शून्यकाळ नथी. कारण के नीकळेला तेओनु तेथी बीजु भाजन–स्थान–नथी ['एयस्स' इत्यादि] व्यक्त–स्पष्ट–छे.

आ सूत्र विषे आक्षेप समाधान.

सौथी थोडो.

अनंतगुण.

अनतगुण.

तिर्यच.

मनुष्य–देव.

---

१. प्र० छायाः—किं कारणमादिष्टा नैरयिका येऽस्मिन् समये, ते स्थितिकालस्यान्ते यस्मात् सर्वे क्षप्यन्ते. २. स्तोकोऽशून्यकाल स उत्कृष्टेन द्वादशमुहूर्तः, ततश्चानन्तगुणो मिश्रो निर्लेपनाकालः. ३. आगमन–गमनकालस्त्रसादि–तरुमिश्रकोऽनन्तगुणः, अथ निर्लेपनकालोऽनन्तभागे वनाद्धायाः. ४. शून्यश्चानन्तगुणः स पुनः प्रायो वनस्पतिगतानाम्, एतदेव च नारकभवान्तरं देशितं ज्येष्ठम्. ५. भिन्नमुहूर्तो विकलेन्द्रियेषु, सम्मूर्छिमेष्वपि स एव. ६. एकोऽसंख्यभागो वर्तते उद्वर्तनोपपाते, एकनिगोदे, नित्यमेवं शेषेष्वपि स एव. ७. एवं नरा–ऽमराणामपि, तिरश्चां नवरम्–नास्ति शून्याद्धा, यद् निर्गतानां तेषां भाजनमन्यत् ततो नास्तिः—अनु०

अंतक्रिया.

१०७. प्र०—जीवे णं भंते! अंतकिरियं करेज्जा?

१०७. प्र०—हे भगवन्! जीव अंतक्रिया करे अर्थात् जीव मोक्षप्राप्ति करे?

१०७. उ०- गोयमा! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए नो करेज्जा; अंतकिरियापयं नेयव्वं.

१०७. उ०—हे गौतम! कोइ करे छे अने कोइ करता नथी. आ प्रश्नना सविस्तर उत्तर माटे प्रज्ञापनासूत्रनुं 'अंतक्रिया' नामनुं वीशमुं पद जाणवुं.

१४. किं संसार एवाऽवस्थानं जीवस्य स्यात्, उत मोक्षेऽपि? इति शङ्कायां पृच्छामाह:—*'जीवे णं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—*'अंतकिरियं'*ति अन्त्या च सा पर्यन्तवर्तिनी क्रिया च अन्त्यक्रिया, अन्त्यस्य वा कर्माऽन्तस्य क्रिया अन्तक्रिया, ताम्—कृत्स्नकर्मक्षयलक्षणां मोक्षप्राप्तिमित्यर्थ:. *'अंतकिरियापयं नेयव्वं'*ति. तच्च प्रज्ञापनाया विंशतितमम्, तच्च एवम्.—*''जीवे णं भंते! अंतकिरियं करेज्जा? गोयमा! अत्थेगइए करेज्जा. अत्थेगइए नो करेज्जा. एवं नेरइए, जाव-वेमाणिए.'*' भव्य कुर्यात्, नेतर इत्यर्थ:. *''नेरईये णं भंते! नेरइएसु वट्टमाणे अंतकिरियं करेज्जा? गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे''* इत्यादि. नवरम्—*''मणुस्सेसु अंतं करेज्जा''* मनुष्येषु वर्तमानो नारको मनुष्यीभूत इत्यर्थ

मोक्ष छे? अंतक्रिया. प्रज्ञापनानी साक्षी.

१४ 'शुं जीवनुं अवस्थान संसारमा ज छे, के वळी तेनो मोक्ष पण छे?' एवी शंका थता पूछे छे के. ['जीवे णं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, ['अंतकिरियं'ति] अन्त्यक्रिया-अन्त्य छेवटे थनारी, एवी जे क्रिया ते अंत्यक्रिया. अथवा अंत्य-कर्मनो अंत-नाश, तेनी जे क्रिया ते अंत्यक्रिया अर्थात् सकलकर्मना क्षयरूप मोक्षप्राप्ति; ते अन्त्यक्रियाने. ['अंतकिरियापयं नेयव्वं'ति] ते अंतक्रिया नामनु पद प्रज्ञापना सूत्रमां वीशमुं छे अने ते आ प्रमाणे छे: ''हे भगवन्! जीव अंतक्रिया करे? हे गौतम! कोइ एक जीव करे अने कोइ एक जीव न करे. ए प्रमाणे नैरयिक, यावत्-वैमानिक सुधी जाणवुं.'' अर्थात् भव्य जीव अंतक्रिया करे अने अभव्य न करे. ''हे भगवन्! नैरयिकोमां वर्तमान नैरयिको अंतक्रिया करे? हे गौतम! ए अर्थ समर्थ नथी'' इत्यादि. विशेष ए के, ''मनुष्योमां अंतने करे'' अर्थात् मनुष्यमां वर्तमान-मनुष्य थएलो नारक अंतक्रिया करे.

उपपात.

१०८. प्र०—अह भंते! असंजयभवियदव्वदेवाणं, अविराहिअसंजमाणं, विराहिअसंजमाणं, अविराहिअसंजमासंजमाणं, विराहिअसंजमासंजमाणं, असण्णीणं, तावसाणं, कंदप्पिआणं, चरगपरिव्वायगाणं, किब्बिसिआणं, तेरिच्छियाणं, आजीविआणं, आभिओगिआणं, सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं, एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाए पन्नत्ते?

१०८. प्र०—हे भगवन्! संयमरहित अने देवपणुं पामवाने योग्य एवा जीवो, अखंडित संयमवाळा, खंडित संयमवाळा, अखंडित संयमासंयम—देशविरति—श्रावकपणा—वाळा, खंडित संयमासंयमवाळा, असंज्ञिओ, तापसो, कांदर्पिको, चरकपरिव्राजको, अथवा चरको अने परिव्राजको, किल्बिषिको, तिर्यंचयोनिको, आजीविको, आभियोगिको अने श्रद्धाभ्रष्ट वेषधारको; ए बधा जो देवलोकोमां उत्पन्न थाय तो कोनो क्यां उपपात—उत्पाद—कह्यो छे?

१०८. उ०—गोयमा! असंजयभवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं उवरिमगेविज्जएसु; अविराहिअसंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे; विराहिअसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे; अविराहिअसंजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे; विराहिअसंजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं

१०८. उ०—हे गौतम! संयमरहित अने देवपणुं पामवाने योग्य एवा जीवोनो जघन्ये भवनवासिमा अने उत्कृष्टे उपरना ग्रैवेयकमा उत्पाद कह्यो छे. अखंडित संयमवाळाओनो जघन्ये सौधर्मकल्पमां अने उत्कृष्टे सर्वार्थसिद्ध विमानमा उत्पाद कह्यो छे. खंडित संयमवाळाओनो जघन्ये भवनवासिमां अने उत्कृष्टे सौधर्मकल्पमां. अखंडित संयमासंयमवाळाओनो जघन्ये सौधर्मकल्पमां अने

१. मूलच्छाया —जीवो भगवन्! अन्तक्रिया कुर्यात्? गौतम! अस्त्येकक: कुर्यात्, अस्त्येकको नो कुर्यात्, अन्तक्रियापदं नेतव्यम्:—अनु०

१. प्र० छाया —जीवो भगवन्! अन्त्यक्रिया कुर्यात्? गौतम! अस्त्येकक कुर्यात्, अस्त्येकको नो कुर्यात्. एवं नैरयिक:, यावत्-वैमानिक:. २. नैरयिको भगवन्! नैरयिकेषु वर्तमानोऽन्त्यक्रियां कुर्यात्? गौतम! नायमर्थः समर्थ:—अनु०

१. मूलच्छाया.—अथ भगवन्! असंयतभव्यद्रव्यदेवानाम्, अविराधितसंयमानाम्, विराधितसंयमानाम्, अविराधितसंयमाऽसंयमानाम्, विराधितसंयमाऽसंयमानाम्, असंज्ञिनाम्, तापसानाम्, कान्दर्पिकाणाम्, चरकपरिव्राजकानाम्, किल्बिषिकाणाम्, तिरश्चाम्, आजीविकानाम्, आभियोगिकानाम्, सलिङ्गिनाम्, दर्शनव्यापन्नकानाम्—एतेषां देवलोकेषु उपपद्यमानानां कस्य कुत्र उपपातः प्रज्ञप्तः? गौतम! असंयतभव्यद्रव्यदेवानां जघन्येन भवनवासिषु, उत्कृष्टेन उपरिमग्रैवेयकेषु; अविराधितसंयमानां जघन्येन सौधर्मे कल्पे, उत्कृष्टेन सर्वार्थसिद्धे विमाने; विराधितसंयमानां जघन्येन भवनवासिषु, उत्कृष्टेन सौधर्मे कल्पे; अविराधितसंयमाऽसंयमानां जघन्येन सौधर्मे कल्पे, उत्कृष्टेन अच्युते कल्पे; विराधितसंयमाऽसंयमानां जघन्येन भवनवासिषु, उत्कृष्टेन:—अनु०

जोइसिएसु; असंण्णीणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु; अवसेसा सव्वे जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसगं वोच्छामिः—तावसाणं जोतिसिएसु, कंदप्पिआणं सोहम्मे कप्पे, चरगपरिव्वायगाणं बंभलोए कप्पे, किब्बिसियाणं लंतगे कप्पे, तेरिच्छिआण सहस्सारे कप्पे, आजीविआणं अच्चुए कप्पे, आभिओगिआ अच्चुए कप्पे, सलिंगीणं दंसणवावन्नगाणं उवरिमगेविज्जएसु.

उत्कृष्टे अच्युतकल्पमां, खंडित संयमासंयमवाळाओनो जघन्ये भवनवासिमां अने उत्कृष्टे ज्योतिषिकमां, असंज्ञिओनो जघन्ये भवनवासिमा अने उत्कृष्टे वानव्यंतरमां उत्पाद थाय छे. अने बाकी बीजा बधानो जघन्ये भवनवासिमां उत्पाद थाय छे अने उत्कृष्टे ज्या उत्पाद थाय छे तेने हवे कहीशः—तापसोनो ज्योतिषिकमां, कादर्पिकोनो सौधर्मकल्पमा, चरक—परिव्राजकोनो ब्रह्मलोककल्पमां, किल्बिषिकोनो लांतककल्पमां, तिर्यंचोनो सहस्रारकल्पमां, आजीविकोनो तथा आभियोगिकोनो अच्युतकल्पमा अने दर्शनभ्रष्ट वेषधारकोनो उत्पाद उपरना ग्रैवेयकमा थाय छे.

१५. कर्मलेशाद् अन्तक्रियाया अभावे केचिज्जीवा देवेषूत्पद्यन्ते, अतस्तद्विशेषाऽभिधानाय आहः—*'अह भंते!'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'अथ' इति परिप्रश्नार्थः. *'असंजय–भविय–दव्वदेवाणं'*ति. इह प्रज्ञापनाटीका लिख्यते, असंयताश्चरणपरिणामशून्या, भव्या देवत्वयोग्याः, अत एव च द्रव्यदेवाः. समासश्चैवम्:—असंयताश्च ते भव्यद्रव्यदेवाश्च इति, असंयतभव्यद्रव्यदेवाः. तत्रैते "असंयतसम्यग्दृष्टयः किल" इत्येके. यतः किलोक्तम्:—"*अणुव्वय–महाव्वएहि य बालतवा-ऽकामनिज्जराए य, देवाउयं निबंधइ सम्मदिट्ठी य जो जीवो.*" एतच्चाऽयुक्तम्, यतोऽमीषामुत्कृष्टत उपरिमग्रैवेयकेषूपपात उक्तः. सम्यग्दृष्टीनां तु देशविरतानामपि न तत्रासौ विद्यते, देशविरतश्रावकाणामच्युताद् ऊर्ध्वमगमनात्, नाप्येते निह्नवास्तेषामिहैव भेदेनाऽभिधानात्, तस्माद् मिथ्यादृष्टय एवाऽभव्या, भव्या वा असंयतभव्यद्रव्यदेवाः-श्रमणगुणधारिणो निखिलसामाचार्यनुष्ठानयुक्ता द्रव्यलिङ्गधारिणो गृह्यन्ते, ते ह्यखिलकेवलक्रियाप्रभावत एवोपरिमग्रैवेयकेषूत्पद्यन्ते इति. असंयताश्च ते सत्यप्यनुष्ठाने चारित्रपरिणामशून्यत्वात्. ननु कथं तेऽभव्या भव्या वा श्रमणगुणधारिणो भवन्तीति? अत्रोच्यतेः—तेषां हि महामिथ्यादर्शनमोहप्रादुर्भावे सत्यपि चक्रवर्तिप्रभृत्यनेकभूपतिप्रवरपूजासत्कारसन्मानदानात् साधून् समालोक्य तदर्थं प्रव्रज्याक्रियाकलापाऽनुष्ठानं प्रति श्रद्धा जायते, ततश्च ते यथोक्तक्रियाकारिण इति. तथा *'अविराहिअसंजमाणं'*ति प्रव्रज्याकालादारभ्याऽभग्नचारित्रपरिणामानां संज्वलनकषायसामर्थ्यात् प्रमत्तगुणस्थानकसामर्थ्याद् वा स्वल्पमायादिदोषसंभवेऽप्यनाचरितचरणोपघातानामित्यर्थः. तथा *'विराहिअसंजमाणं'*ति उक्तविपरीतानाम् *'अविराहिअसंजमासंजमाणं'*ति प्रतिपत्तिकालाद् आरभ्याऽखण्डितदेशविरतिपरिणामानां श्रावकाणाम्, *'विराहिअसंजमासंजमाणं'*ति उक्तव्यतिरेकिणाम्, *'असन्नीण'*ति मनोलब्धिरहितानाम् -अकामनिर्जरावताम्. तथा *'तावसाणं'*ति पतितपत्राद्युपभोगवतां-बालतपस्विनाम्.

१५. जो कर्मनो लेश बाकी रह्यो तो कोइएक जीवो देवोमा उत्पन्न थाय छे माटे हवे एक प्रकारना देवो संबंधे प्ररूपवा माटे कहे छे के.–['अह भंते!' इत्यादि] विशेष ए के. 'अथ' शब्द परिप्रश्न अर्थमां छे. ['असंजयभवियदव्वदेवाण'ति] अहीं प्रज्ञापना सूत्रनी टीका लखीए छीए "असंयत—चारित्रना परिणाम रहित, भव्य देवपणाने योग्य, माटे ज द्रव्यदेव ते असंयतभव्यद्रव्यदेव. कोइ तो कहे छे के. "असंयतभव्यद्रव्यदेव एटले अविरत-सम्यग्दृष्टि जीवो. कारण के कह्युं छे के. "जे जीव सम्यग्दृष्टि होय ते अणुव्रतोवडे, महाव्रतोवडे, बालतपवडे अने अकामनिर्जरावडे देवनु आयुष्य बांधे छे." आ कथन अयुक्त छे. कारण के एओनुं (असंयतभव्यद्रव्यदेवोनु) उपजवुं वधारेमा वधारे ग्रैवेयको सुधी कह्यु छे. अने देशविरति सम्यग्दृष्टिओनुं तो त्यां उपजवुं कह्युं नथी. कारण के देशविरत श्रावको अच्युतथी आगळ जता नथी. आ असंयतभव्यद्रव्यदेवो निह्नवो पण नथी. कारण के आ ज सूत्रमां निह्नवो माटे जुदुं कथन छे, माटे असंयतभव्यद्रव्यदेव एटले श्रमणना गुणना धारण करनारा, समस्त सामाचारी अने अनुष्ठानथी युक्त तथा द्रव्यलिंगना धारक एवा भव्य के अभव्य मिथ्यादृष्टिओ ज जाणवा. तेओ मात्र संपूर्ण क्रियाना प्रभावथी ज उपरिम ग्रैवेयकमां उत्पन्न थाय छे. जो के तेओ अनुष्ठान करे छे, पण चारित्रना परिणामथी रहित होवाथी असंयत छे. शंका -ते भव्य के अभव्य मिथ्यादृष्टिओ श्रमणगुणना धारक केम कहेवाय? समाधानः- जो के तेओने महामिथ्यादर्शनरूप मोहनी प्रबळता छे, तो पण साधुओने चक्रवर्ति वगेरे अनेक राजाओथी सारी रीते पूजा, सत्कार अने सन्मान पामता जोइने ते पूजादि पोताने मळे ते माटे तेओनी श्रद्धा प्रव्रज्या अने क्रियासमूहना अनुष्ठान उपर बेसे छे अने तेथी तेओ पूर्वप्रमाणे क्रिया करनारा छे. तथा ['अविराहिअसंजमाणं'ति] दीक्षा लीधी त्यारथी मांडीने जेओना चारित्रना परिणाम अभग्न अखंडित छे. संज्वलन कषायना सामर्थ्यथी, के प्रमत्तगुणस्थानकना बळथी थोडो मायादि दोष तेओने संभवे छे तो पण जेओए चारित्रनो उपघात आचर्यो नथी. तथा ['विराहिअसंजमाणं'ति] पूर्वे कहेल करता उलटा ते विराधितसंयम. ['अविराहिअसंजमासंजमाणं'ति] स्वीकार कर्यो त्यारथी जेओनो देशविरतिपरिणाम अखंडित छे एवा श्रावको. ['विराहिअसंजमासंजमाणं'ति] पूर्वे कहेल करता उलटा ते विराधितसंयमासंयम. ['असन्निणं'ति] मन विनाना अकाम निर्जरावाळा जीवो. तथा ['तावसाणं'ति] पडेला पांदडा वगेरेना उपभोग करनारा बालतपस्वी जीवो.

प्रज्ञापना.
असंयतभव्य-द्रव्यदेव.
अविराधितसंयम.
विराधितसंयम.—संयमासंयम.
असंज्ञी.
तापस.

---

१. मूलच्छायाः—ज्योतिषिकेषु; असंज्ञिनां जघन्येन भवनवासिषु, उत्कृष्टेन वानव्यन्तरेषु, अवशेषा सर्वे जघन्येन भवनवासिषु, उत्कृष्टकं वक्ष्यामिः—तापसानां ज्योतिषिकेषु, कान्दर्पिकाणां सौधर्मे कल्पे, चरकपरिव्राजकाना ब्रह्मलोके कल्पे, किल्बिषिकाणां लान्तके कल्पे, तिरश्चां सहस्रारे कल्पे, आजीविकानां अच्युते कल्पे, आभियोगिकानां अच्युते कल्पे, सलिङ्गिनां, दर्शनव्यापन्नकानां उपरिमग्रैवेयकेषु.—अनु०

१. प्र० छायाः—अणुव्रत–महाव्रतैश्च बालतपो–ऽकामनिर्जरया च, देवायुर्निबध्नाति, सम्यग्दृष्टिश्च यो जीवः–अनु०

१. आ शब्दनो समास आ प्रमाणे छेः–'असंयताश्च ते भव्यद्रव्यदेवाश्च':—श्रीअभयदेव.

१६. तथा '*कंदप्पिआणं*'ति कन्दर्पः परिहासः स येषामस्ति, तेन वा ये चरन्ति ते कन्दर्पिकाः, कान्दर्पिका वा. व्यवहारतश्चरणवन्त एव कन्दर्पकौकुच्यादिकारकाः. तथा हि "*कहकहकहस्स हसणं कंदप्पो अणिहुया य उल्लावा, कंदप्पकहाकहणं कंदप्पुवएससंसा य. भुम–नयण–वयण–दसणच्छदेहिं कर–पाय–कण्णमाइहिं, तं तं करेइ जह जह हसइ परो अत्तणा अहसं. वायाँ कुक्कुइओ पुण तं जंपइ जेण हस्सए अन्नो. नाणाविहजीवरुए कुव्वइ मुहतूरए चेव.*" इत्यादि. "*जो संजओ वि एयासु अप्पसत्थासु भावणं कुणइ, सो तव्विहेसु गच्छइ सुरेसु भइओ चरणहीणो त्ति.*" अतस्तेषां कान्दर्पिकाणाम्. '*चरगपरिव्वाअगाणं*'ति चरकपरिव्राजका धाटिभैक्षोपजीविनस्त्रिदण्डिनः. अथवा चरकाः कुच्छोटकादयः. परिव्राजकास्तु कपिलमुनिसुनवोऽतस्तेषाम्, '*किब्बिसिआणं*'ति किल्बिषं पापं तदस्ति येषां ते किल्बिषिकाः. ते च व्यवहारतश्चरणवन्तोऽपि ज्ञानाद्यवर्णवादिनः. यथोक्तम्–"*णाणस्स केवलीण धम्मायरियस्स सव्वसाहूणं, माई अवण्णवाई किब्बिसियं भावणं कुणइ.*" अतस्तेषाम्. तथा '*तेरिच्छियाणं*' ति तिरश्चां गवाश्वादीनां देशविरतिभाजाम्. '*आजीविआणं*'ति पाखण्डिविशेषाणाम्, "नाग्न्यधारिणां गोशालकशिष्याणाम्"इति अन्ये. आजीवन्ति वा येऽविवेकिलोकतो लब्धि–पूजा–ख्यात्यादिभिस्तपश्चरणादीनि ते आजीविकाऽस्तित्वेनाऽऽजीविका अतस्तेषाम्, तथा '*आभिओगिआण*'ति अभियोजनम्–विद्यामन्त्रादिभिः परेषां वशीकरणादि अभियोगः, स च द्विधा, यदाहः–"*दुविहो खलु अभियोगो दव्वे भावे य होइ नायव्वो, दव्वम्मि होंति जोगा विज्जा मंता य भावम्मि.*" इति. सोऽस्ति येषाम्. तेन वा चरन्ति ये ते अभियोगिकाः, आभियोगिका वा. ते च व्यवहारतश्चरणवन्त एव मन्त्रादिप्रयोक्तारः. यदाहः–"*कोउय भूईकम्मे पसिणापसिणे निमित्तमाजीवी इड्ढि–रस–सायगरुओ अहिओग भावणं कुणइ*" इति. कौतुकं सौभाग्याद्यर्थं स्नपनकम्, भूतिकर्म ज्वरितादिभूतिदानम्, प्रश्नाप्रश्नं च स्वप्नविद्यादि. '*सलिंगीणं*'ति रजोहरणादिसाधुलिङ्गवताम्, किंविधानाम्? इत्याहः–'*दंसणवावन्नगाणं*'ति दर्शनं सम्यक्त्वं व्यापन्नं भ्रष्टं येषा ते तथा, तेषां निह्नवानामित्यर्थः. '*एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं*'ति अनेन देवत्वादन्यत्रापि केचिदुत्पद्यन्ते इति प्रतिपादितम्. '*विराहिअसंजमाणं जहण्णेणं भवणवासिसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे*'त्ति इह कश्चिदाहः–विराधितसंयमानामुत्कर्षेण सौधर्मे कल्पे केचिदुत्पद्यन्ते इति यदुक्तं तत् कथं घटते? द्रौपद्याः सुकुमालिकाभवे विराधितसंयमाया ईशाने उत्पादश्रवणादिति. अत्रोच्यतेः–तस्याः संयमविराधना उत्तरगुणविषया बकुशत्वमात्रकारिणी, न मूलगुणविराधना इति. सौधर्मोत्पादश्च विशिष्टतरसंयमविराधनायां स्यात्. यदि पुनर्विराधनमात्रमपि सौधर्मोत्पत्तिकारकं स्यात् तदा बकुशादीनामुत्तरगुणादिप्रतिसेवावतां कथमच्युतादिषूत्पत्तिः स्यात्? कथंचिद् विराधकत्वात् तेषामिति–'*असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु*'त्ति इह यद्यपि "*चमरबलिसारमहियं*" इत्यादिवचनाद् असुरादयो महर्द्धिका, "*पलिओवममुक्कोसं वंतरियाणं*" इति वचनाच्च व्यन्तरा अल्पर्द्धिकाः, तथाऽयत एव वचनादवसीयते–सन्ति व्यन्तरेभ्यः सकाशादल्पर्द्धयो भवनपतयः केचनेति.

कांदर्पिक.

१६. तथा ['कदप्पिआण'ति] कंदर्प=परिहास, जेओ परिहासवाळा छे ते कांदर्पिक, अथवा जेओ कंदर्पवडे चरे ते कांदर्पिक; कंदर्प अने कौकुच्यादि करनारा व्यवहारथी चारित्रवाळा ज कांदर्पिको कहेवाय छे. तथाहि 'कह कह कह' ए प्रमाणे हसवुं, ए कंदर्प अनिभृत उल्लापो, कंदर्पनी वार्ता कहेवी अने कंदर्पनो उपदेश तथा प्रशंसा करवी." "भवां, नेत्र, मुख, होठ, हाथ, पग अने कर्णादिवडे ते ते (एवी एवी) चेष्टा करे जेथी पोते हसे नहीं पण बीजो हसे." "वळी वाणीवडे कुकुचित ए कहेवाय के जेना बोलवाथी बीजो हसे. वळी अनेक प्रकारना जीवोना शब्द करे अर्थात् चकली, मेना, पोपट वगेरेनी भाषा बोले तथा मोढेथी वाजा वगाडे." इत्यादि. (ए बधो कंदर्प कहेवाय.) "जे संयत पण ए अप्रशस्त भावना विषे विचार करे ते चरण विनानो तथा प्रकारना देवोमां भजनाए जाय छे." माटे ते कांदर्पिको कहेवाय. ['चरगपरिव्वायगाणं'ति]

चरकपरिव्राजक.

चरकपरिव्राजको एटले धाडनी भिक्षाथी जीवनारा त्रिदंडिओ, अथवा चरको एटले कुच्छोटकादिक अने परिव्राजको तो कपिलमुनिना शिष्यो. ['किब्बिसिआणं'ति] किल्बिष=पाप, जे पापवाळा छे ते किल्बिषिक अने किल्बिषिको तेओ ज कहेवाय छे के जेओ व्यवहारथी चारित्रवाळा होता ज्ञानादिनो अवर्णवाद कहेनारा होय. कह्युं छे केः "ज्ञाननो, केवलिओनो, धर्माचार्यनो अने सर्व साधुओनो अवर्णवाद बोलनारा अने किल्बिषिक भावना करनारा ते किल्बिषिको. ['तेरिच्छियाणं'ति] देशविरतिने धारण करनारा तिर्यंचो गाय, घोडो वगेरे. ['आजीविआणं'ति] एक प्रकारना पाखंडिओ. कोइतो कहे छे के:- "नग्नता धारण करनारा गोशालकना शिष्यो," अथवा अविवेकि लोकथी प्राप्त थती लब्धि, पूजा अने ख्यात्यादिवडे तप अने चारित्र वगेरेने जे धारण करे अर्थात् आजीविकावाळा होवाथी आजीविक कहेवाय. ['आभिओगिआणं'ति] विद्या अने मंत्रादिवडे बीजाओने वश करवा ते अभियोग, ते अभियोग बे प्रकारनो छेः कह्युं छे के:-"अभियोग बे प्रकारनो छे अने ते द्रव्य अने भावमां जाणवानो छे अर्थात् द्रव्यअभियोग अने भाव अभियोग, एम बे प्रकारनो अभियोग छे. विद्या तथा मंत्रादिक योग ते द्रव्यअभियोग कहेवाय छे. जे द्रव्याभियोगवाळा छे तेओ, अथवा जेओ द्रव्य–अभियोगवडे चरे छे तेओ आभियोगिक कहेवाय अर्थात् मंत्रादिनो प्रयोग करनारा अने व्यवहारथी चारित्रवाळा ज आभियोगिको कहेवाय छे. कह्युं छे के "कौतुक, भूतिकर्म, प्रश्नाप्रश्न अने निमित्तथी जीवनारो तथा ऋद्धि, रस अने शाताथी गुरुक (एवो प्राणी) अभियोगनी भावना करे छे". कौतुक

किल्बिषिक.

तिर्यंच.—आजीविक.

आभियोगिक.

---

१. प्र० छाया —कहकहकहस्य हसनं कन्दर्पोऽनिभृताश्चोल्लापा. कन्दर्पकथाकथनं कन्दर्पोपदेशशंसा च. २. भ्रू–नयन–वचन–दशनच्छदैः कर–पाद–कर्णादिभिः, तत् तत् करोति यथा यथा हसति पर आत्मनाऽहसन्. ३. वाचा कौकुच्यं पुनस्तत् कथयति येन हसत्यन्यः, नानाविधजीवरुतानि करोति मुखतूर्याणि चैव. ४. यः संयतोऽप्येतासु अप्रशस्तासु भावनां करोति, स तद्विधेषु गच्छति सुरेषु भक्तश्चरणहीनः ५. ज्ञानस्य केवलिनां धर्माचार्यस्य सर्वसाधूनाम्, मायी अवर्णवादी किल्बिषिकीं भावनां करोति. ६. द्विविधः खलु अभियोगो द्रव्ये भावे च भवति ज्ञातव्यः, द्रव्ये भवन्ति योगा विद्या मन्त्राश्च भावे. ७. कौतुकं भूतिकर्म प्रश्नाऽप्रश्नौ निमित्तमाजीवी ऋद्धि–रस–सातगुरुकोऽभियोगे भावनां करोति. ८. चमर–बली सागरमधिकम्. ९. पल्योपममुत्कृष्टं व्यन्तराणाम्:–अनु०

एटले सौभाग्यादि माटे न्हवण, भूतीकर्म एटले तावबाळा वगेरेने भूति देवी अने प्रश्नाप्रश्न स्वप्नविद्या वगेरे. ['सलिंगीणं'ति] रजोहरण वगेरे (साधुना) लिंगवाळा, तेओ केवा? तो कहे छे के:–['दंसणवावन्नगाणं'ति] जेओनु सम्यक्त्व भ्रष्ट थयुं छे तेओ अर्थात् निह्नवो. ['एएसि णं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं'ति] देवलोकमां उत्पन्न थता ए बधाओनो, आ सूत्रथी एम सूचव्युं के, कोइ देव सिवाय बीजी गतिमा पण उत्पन्न थाय छे. ['विराहिअसजमाणं जहण्णेणं भवणवासि, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे'त्ति] जेओए सयम विराध्यो छे एओनी उत्पत्ति जघन्ये भवनवासिमां अने उत्कृष्टे सौधर्म कल्पमा थाय छे. शंकाः—अहीं कोइ कहे छे के: सुकुमालिकाना भवमां विराधेल संयमवाळी द्रौपदी ईशान देवलोकमा गइ छे एवु साभळ्यु छे. तो अहीं जे लख्यु छे के:—'विराधेल संयमवाळानी उत्कृष्टे सौधर्म देवलोकमां उत्पत्ति थाय छे' ए केम घटी शके? समाधान.—ते द्रौपदीनी सयमनी विराधना उत्तरगुण संबंधी हती माटे ते मात्र बकुशत्वकरनारी हती पण ते मूलगुणनी विराधना न हती. अने ज्यारे सयमनी विराधना विशिष्टतर थाय त्यारे ज सौधर्ममां उत्पाद थाय छे. जो वळी साधारण विराधना मात्रथी सौधर्ममा उत्पत्ति थती होय तो उत्तरगुणादिनी प्रतिसेवावाळा बकुशादिकनी अच्युतादिकमां उत्पत्ति केम थइ शके? कारण के तेओए पण सयमनी विराधना कथंचित् करी छे. ['असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु'त्ति] जघन्ये भवनवासिओमां अने उत्कृष्टे वानव्यंतरोमा असंज्ञिओ उत्पन्न थाय छे. "चमर अने बलिनु सागरोपम करतां अधिक आयुष्य छे" एवा वचनथी असुरादि महर्धिक छे अने "व्यंतरोनुं उत्कृष्टे पल्योपम जेटलु आयुष्य छे" एवा वचनथी वानव्यतरो अल्पर्धिक छे. ए प्रमाणे जो के अहीं जणाय छे, तो पण आ वचनथी जणाय छे के कोइ एक भवनपतिओ एवा छे के जेओ व्यतरो करतां अल्पर्धिक छे

सलिंगी.

ए बधानी देवगति विषे विचार.

आक्षेप. समाधान.

असंज्ञिआयुष्य.

१०९. प्र०—कतिविहे णं भंते! असण्णिआउए पन्नत्ते?

१०९. प्र०—हे भगवन्! असंज्ञिनुं आयुष्य केटला प्रकारनु होय छे अर्थात् असंज्ञी जीव केटला प्रकारनु आयुष्य बांधे छे?

१०९. उ०—गोयमा! चउव्विहे असण्णिआउए पन्नत्ते, तं जहा:—नेरइयअसण्णिआउए, तिरिक्ख–मनुस्स–देवअसण्णिआउए.

१०९. उ०—हे गौतम! असंज्ञिनुं आयुष्य चार प्रकारनुं होय छे. ते आ प्रमाणे.—नैरयिक असंज्ञिआयुष्य, तिर्यंच असंज्ञिआयुष्य, मनुष्य असंज्ञिआयुष्य अने देव असंज्ञिआयुष्य.

११०. प्र०—असण्णी णं भंते! जीवे किं नेरइयाउअं पकरेइ, तिरिक्ख–मणु–देवाउअं पकरेइ?

११०. प्र०—हे भगवन्! शुं असंज्ञी जीव नैरयिकनुं आयुष्य करे, के तिर्यंचनुं, मनुष्यनु के देवनुं आयुष्य करे?

११०. उ०—हंता, गोयमा! नेरइयाऽऽउयं पि पकरेइ, तिरिक्ख–मणु–देवाउअं पि पकरेइ. नेरइयाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिआवेमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ; तिरिक्खजोणियाउअं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पकरेइ; मणुस्साउअं वि एवं चेव, देवाउअं जहा नेरइयाउए.

११०. उ०—हे गौतम! हा, नैरयिकनुं आयुष्य पण करे अने तिर्यंचनुं, मनुष्यनुं के देवनुं आयुष्य पण करे. नैरयिकनु आयुष्य करतो असंज्ञि जीव जघन्ये दस हजार वरसनुं अने उत्कृष्टे पल्योपमना असंख्येयभाग जेटलुं आयुष्य करे. तिर्यंचयोनिकनु आयुष्य करतो जघन्ये अंतर्मुहूर्तनुं अने उत्कृष्टे पल्योपमना असंख्येयभाग जेटलुं आयुष्य करे, मनुष्यनुं आयुष्य करतो पण ए ज प्रमाणे करे अने देवनुं आयुष्य नैरयिकना आयुष्यनी पेठे करे.

१११. प्र०—एअस्स णं भंते! नेरइयअसण्णिआउअस्स, तिरिक्ख–मणु–देवअसण्णिआउअस्स कयरे कयरे० जाव–विसेसाहिए वा?

१११. प्र०—हे भगवन्! ए नैरयिक असंज्ञिआयुष्य, तिर्यंचयोनिक असंज्ञिआयुष्य, मनुष्य असंज्ञिआयुष्य अने देव असंज्ञिआयुष्य; ए बधामां कयुं कोनाथी अल्प, बहु, तुल्य अने विशेषाधिक छे?

१११. उ०—गोयमा! सव्वत्थोवे देवअसण्णिआउए, मणुस्स० असंखेज्जगुणे, तिरिय० असंखेज्जगुणे, नेरइअ० असंखेज्जगुणे.

१११. उ०—हे गौतम! देव असंज्ञिआयुष्य सौथी थोडु छे, ते करतां मनुष्य असंज्ञिआयुष्य असंख्येयगुण छे ते करता तिर्यंचयोनिक असंज्ञिआयुष्य असंख्येयगुण छे अने ते करतां नैरयिक असंज्ञिआयुष्य असंख्येयगुण छे.

सेवं भंते!, सेवं भंते! त्ति.

हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे; हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे. एम कही यावत्–विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये बिइओ उद्देसो सम्मत्तो.

---

१. मूलच्छाया:—कतिविधं भगवन्! असंज्ञ्याऽऽयुष्कं प्रज्ञप्तम्? गौतम! चतुर्विधमसंज्ञ्याऽऽयुष्कं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा:—नैरयिकाऽसंज्ञ्याऽऽयुष्कम्, तिर्यग्–मनुष्य–देवाऽसंज्ञ्याऽऽयुष्कम्. असंज्ञी भगवन्! जीवः किं नैरयिकाऽऽयुष्कं प्रकरोति, तिर्यग्–मनुष्य–देवाऽऽयुष्कं प्रकरोति? हन्त, गौतम! नैरयिकायुष्कमपि प्रकरोति, तिर्यग्–मनुष्य–देवायुष्कमपि प्रकरोति; नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन् जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्येयभागं प्रकरोति; तिर्यग्योन्यायुष्कं प्रकुर्वन् जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्येयभागं प्रकरोति; मनुष्यायुष्केऽपि एवं चैव, देवायुष्कं यथा नैरयिकायुष्कम्. एतस्य भगवन्! नैरयिकाऽसंज्ञ्यायुष्कस्य, तिर्यग्–मनुष्य–देवासंज्ञ्यायुष्कस्य कतरत् कतरत्० यावत्–विशेषाऽधिकं वा? गौतम! सर्वस्तोकं देवअसंज्ञ्यायुष्कम्, मनुष्य० असंख्येयगुणम्, तिर्यग्० असंख्येयगुणम्, नैरयिक० असंख्येयगुणम्, तदेवं भगवन्!, तदेवं भगवन्! इति:—अनु०

१७. असंज्ञी देवेषूत्पद्यते इत्युक्तम्, स चायुषा इति तदायुर्निरूपयन्नाह:–*'कइविहे णं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–*'असन्निआउए'*त्ति असंज्ञी सन् यत् परभवप्रायोग्यमायुर्बध्नाति तदसंज्ञ्यायु., *'नेरइयअसन्निआउए'*त्ति नैरयिकप्रायोग्यमसंज्ञ्यायुर्नैरयिकाऽसंज्ञ्यायुः, एवमन्यान्यपि. एतच्चासंज्ञ्यायुः संबन्धमात्रेणापि भवति, यथा 'भिक्षोः पात्रम्' अतस्तत्कृतत्वलक्षणसबन्धविशेषनिरूपणायाऽऽह:–*'असन्नी'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–*'पकरेइ'*त्ति बध्नाति, *'दस वाससहस्साइं'*ति रत्नप्रभाप्रथमप्रतरमाश्रित्य *'उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं'*ति रत्नप्रभाचतुर्थ-प्रतरे मध्यमस्थितिकं नारकमाश्रित्येति. कथम्? यतः प्रथमप्रस्तटे दश वर्षाणां सहस्राणि जघन्या स्थितिः, उत्कृष्टा नवतिः सहस्राणि. द्वितीये तु दशलक्षाणि जघन्या, इतरा तु नवतिर्लक्षाणि. एषा एव तृतीये जघन्या, इतरा तु पूर्वकोटी. एषा एव चतुर्थे जघन्या, इतरा तु सागरो-पमस्य दशभाग. एवं चात्र पल्योपमाऽसंख्येयभागो मध्यमा स्थितिर्भवति. तिर्यग्सूत्रे यदुक्तम्–*'पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं'*ति तन्मि-थुनकतिरश्चोऽधिकृत्येति. *'मणुस्साउअं वि एवं चेव'*त्ति जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षतः पल्योपमाऽसंख्येयभाग इत्यर्थः. तत्र चासंख्येय-भागो मिथुनकनरानाश्रित्य *'देवाउअं जहा नेरइयाउए'*त्ति *'देवाउअं'*इति असंज्ञिविषयं देवाऽऽयुरुपचारात् तथा वाच्यम्, *'जहा नेरइयाउअं'*ति यथा असंज्ञिविषयं नारकायुः, तच्च प्रतीतमेव. नवरम्–भवनपति व्यन्तरानाश्रित्य तदायुरवसेयमिति. *'एयस्स णं भंते!'* इत्यादिना यदसंज्ञ्यायुषोऽल्पबहुत्वमुक्त तदस्य ह्रस्व–दीर्घत्वमाश्रित्येति.

भगवत्**सुधर्मस्वामि**प्रणीते **श्रीभगवतीसूत्रे** प्रथमशते द्वितीयोद्देशके **श्रीअभयदेवसूरि**विरचितं विवरणं समाप्तम्.

असंज्ञिआयुष्य विषे भेदपूर्वक विचार.

१७ असंज्ञी जीव देवोमा उत्पन्न थाय छे एम कह्युं छे अने ते उत्पत्ति आयुष्यथी थाय छे, माटे हवे असंज्ञिओनुं आयुष्य निरूपता कहे छे के:– ['कइविहे ण' इत्यादि] सूत्र व्यक्त छे. विशेष ए के, ['असन्निआउए'त्ति] जे जीव पोते असंज्ञी होतो परभवने योग्य आयुष्य बांधे ते 'असंज्ञ्यायुः– असंज्ञिनुं आयुष्य' कहेवाय. ['नेरइअअसन्निआउए'त्ति] नैरयिकने योग्य जे असंज्ञ्यायु ते नैरयिक असंज्ञ्यायुः; ए प्रमाणे बीजां पण जाणवां. ए असंज्ञ्यायु संबधमात्रथी पण थाय, जेम के, 'भिक्षुनु पात्र'. माटे 'तेणे करेलुं' एरूप विशेष संबंध निरूपवा कहे छे के. ['असन्नी' इत्यादि] सूत्र व्यक्त छे. विशेष ए के, ['पकरेइ'त्ति] एटले बांधे छे. ['दस वाससहस्साइं'ति] रत्नप्रभाना प्रथम पाथडाने आश्रीने दश हजार वर्षनुं आयुष्य बांधे छे ['उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं'ति] रत्नप्रभाना चोथा प्रतरमां मध्यम स्थितिवाळा नारकने आश्रीने ए कह्युं छे. केम? तो कहे छे के:– प्रथम पाथडामां जघन्ये दश हजार वर्षनी स्थिति कही छे. अने उत्कृष्टे नेवु हजार वर्षनी स्थिति कही छे. बीजामां तो जघन्ये दश लाख वर्षनी अने उत्कृष्टे नेवु लाख वर्षनी स्थिति कही छे. त्रीजामां जघन्ये नेवु लाख वर्षनी अने उत्कृष्टे पूर्वकोटि वर्षनी स्थिति कही छे. चोथामां जघन्ये पूर्वकोटिनी अने उत्कृष्टे सागरोपमनो दशमो भाग स्थिति कही छे. अने ए प्रमाणे आ चोथा पाथडामां पल्योपमनो असंख्येय भाग मध्यम स्थिति थाय छे. तिर्यंचना सूत्रमां जे कह्युं छे के, ['पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग'ति] ते युगलिया तिर्यंचने आश्रीने कह्युं छे. ['मणुस्साउअं वि एवं चेव'त्ति] जघन्ये अंतर्मुहूर्त अने उत्कृष्टे पल्योपमनो असंख्येय भाग. तेमां युगलमनुष्योने आश्रीने पल्योपमनो असंख्येय भाग जाणवो. ['देवा जहा नेरइयाउअं'ति] देवो एटले उपचारथी असंज्ञिविषयक देवनु आयुष्य, ते असंज्ञिविषयक नैरयिक आयुष्यनी पेठे जाणवु. अने ते प्रतीत ज छे. विशेष ए के, ते भवनपति अने व्यंतरोने आश्रीने जाणवुं ['एअस्स णं भंते!' इत्यादि] सूत्रथी असंज्ञि आयुष्यनी जे अल्प बहुता कही छे ते तेनी ह्रस्वता अने दीर्घताने अपेक्षीने कही छे.

उद्देशकसमाप्ति.

येऽदारूप समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी य सद्गुणाना परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक ३.

कांक्षामोहनीय कर्म जीवकृत छे ?—करवानी रीतना चार प्रकार.—एक प्रकारनो स्वीकार.—नैरयिकादि चोवीशे दंडक संबंधे कांक्षामोहनीय विचार.—चोवीशे दंडक संबंधे कांक्षामोहनीय विषे त्रणे काळ विषयक चिंतन.—चय.—उपचय.—उदीरण.—वेदन.—निर्जरण.—संग्रह.—कांक्षामोहनीयना वेदननी रीति.—वेदनना कारण.—संदेह.—स्वधर्म मूकी परधर्मनुं ग्रहण.—फलाशंका.—अनिश्चितपणुं.—विपरीतपणुं.—जिनभाषित सत्य.—तेम माननार—आचरनार आराधक.—अस्तित्व तथा नास्तित्वना परिणामनो विचार.—प्रयोग.—स्वभाव.—कांक्षामोहनीयबंध.—तेनी रीति.—कारण.—प्रमाद अने योग.—प्रमादनो जनक योग.—योगनुं जनक वीर्य.—वीर्यनुं जनक शरीर.—शरीरनो जनक जीव.—उत्थान तथा कर्मादिकनी अस्तिता.—उदीरण.—गर्हण.—संवरण.—कोनुं उदीरण?—उदीरणायोग्यनुं उदीरण.—उत्थानादिकवडे उदीरण.—अनुदीर्णनुं उपशमन.—पूर्ववत् परिपाटी.—उदयप्राप्तनुं निर्जरण.—नैरयिकादिक स्तनितकुमारांत जीवविषे वेदन विचार.—पृथिवीकायिक जीव कांक्षामोहनीयने वेदे ?—हा.—तेने तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन के वचन छे ?—नथी.—तो पण वेदे.—जिनोक्त सत्य.—ए प्रमाणे चार इंद्रियवाळा जीवो सुधी विचार.—जीवोनी पेंठे पंचेंद्रिय तिर्यंचो अने यावत्—वैमानिको.—श्रमणो कांक्षामोहने वेदे ?—हा.—केम ?—ज्ञानना, दर्शनना, चारित्रना, वेषना, प्रवचनना, प्रवचनाभ्यासी पुरुषना, कल्पना, मार्गना, मतना, भांगाना, नयना, नियमना अने प्रमाणना भेदोने जोइ संदिग्ध थवाथी, स्वधर्म तजवाथी, फलाशंका थवाथी, अनिश्चितपणुं तथा विपरीतता पामवाथी श्रमणो कांक्षामोहने वेदे छे.—उद्देशकसमाप्ति.—

११२. प्र०—जीवाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

११२. प्र०—हे भगवन् ! शुं जीवो संबंधि कांक्षामोहनीय कर्म कृत–क्रियानिष्पाद्य—छे ?

११२. उ०—हंता, कडे.

११२. उ०—हे गौतम ! हा, ते क्रियानिष्पाद्य छे.

११३. प्र०—से भंते ! किं देसेणं देसे कडे, देसेणं सव्वे कडे, सव्वेणं देसे कडे, सव्वेणं सव्वे कडे ?

११३. प्र०—हे भगवन् ! ते शुं देशथी देश कृत छे, देशथी सर्व कृत छे, सर्वथी देश कृत छे के सर्वथी सर्व कृत छे ?

११३. उ०—गोयमा ! नो देसेणं देसे कडे, नो देसेणं सव्वे कडे, नो सव्वेणं देसे कडे, सव्वेणं सव्वे कडे.

११३. उ०—हे गौतम ! ते देशथी देश कृत नथी, देशथी सर्व कृत नथी, सर्वथी देश कृत नथी पण सर्वथी सर्व कृत छे.

११४. प्र०—नेरइयाणं भंते ! कंखामोहणिज्जे कम्मे कडे ?

११४. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको संबंधि कांक्षामोहनीय कर्म कृत छे ?

११४. उ०—हंता, कडे. जाव–सव्वेणं सव्वे कडे, एवं जाव–वेमाणिआणं दंडओ भाणिअव्वो.

११४. उ०—हे गौतम ! हा, ते कृत छे. यावत्–सर्वथी सर्व कृत छे. अने ए प्रमाणे यावत्–वैमानिको सुधी दंडक कहेवो.

११५. प्र०—जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं करिंसु ?

११५. प्र०—हे भगवन् ! जीवोए कांक्षामोहनीय कर्म कर्युं ?

११५. उ०—हंता, करिंसु.

११५. उ०—हे गौतम ! हा, कर्युं.

११६. प्र०—तं भंते ! किं देसेणं देसं करिंसु० ?

११६. प्र०—हे भगवन् ! ते शुं देशथी देशे कर्युं ? (इत्यादि पूर्वोक्त अभिलापवडे पूछवुं.)

---

१. मूलच्छायाः—जीवानां भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म कृतम् ? हन्त, कृतम्. तद् भगवन् ! किं देशेन देशं कृतम्, देशेन सर्वं कृतम्, सर्वेण देशं कृतम्, सर्वेण सर्वं कृतम् ? गौतम ! नो देशेन देशं कृतम्, नो देशेन सर्वं कृतम्, नो सर्वेण देशं कृतम्, सर्वेण सर्वं कृतम्. नैरयिकाणां भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म कृतम् ? हन्त, कृतम्, यावत्–सर्वेण सर्वं कृतम्, एवं यावत्–वैमानिकानां दण्डको भणितव्यः. जीवैः भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म कृतम् ? हन्त, कृतम्. तद् भगवन् ! किं देशेन देशं कृतम्० ?:—अनु०

११६. उ०—एएणं अभिलावेणं दंडओ भाणिअव्वो, जाव—वेमाणिआणं. एवं करेंति, एत्थ वि दंडओ जाव—वेमाणिआणं. एवं करिस्संति, एत्थ वि दंडओ जाव—वेमाणिआणं. एवं चिए, चिणिंसु, चिणंति, चिणिस्संति: उवचिए, उवचिणिंसु, उवचिणंति, उवचिणिस्संति; उदीरेंसु, उदीरेंति, उदीरिस्संति; वेदेंसु, वेदेंति, वेदिस्संति; निज्जरेंसु, निज्जरेंति, निज्जरिस्संति. गाहाः—

कड-चिया उवचिया उदीरिया वेदिया य निज्जिन्ना,
आदितिए चउभेदा तियभेया पच्छिमा तिन्नि.

११६. उ०—हे गौतम! ते सर्वेथी सर्व कर्युं छे. ए प्रमाणे यावत्–वैमानिको सुधी दंडक कहेवो. ए ज प्रमाणे करे छे अने करशे, ए बन्नेनो अभिलाप पण यावत्–वैमानिको सुधी कहेवो. तथा ए ज प्रमाणे चय, चय कर्यो, चय करे छे, चय करशे; उपचय, उपचय कर्यो, उपचय करे छे, उपचय करशे; उदीर्युं, उदीरे छे, उदीरशे; वेद्युं, वेदे छे, वेदशे; निर्जर्युं, निर्जरे छे अने निर्जरशे; ए बधा अभिलापो कहेवा. गाथाः—

कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित अने निर्जरित; एटला अभिलापो अहीं कहेवाना छे. तेमां कृत, चित अने उपचितमां एक एकना चार भेद कहेवाना छे अर्थात् सामान्यक्रिया, पछी भूतकाळनी, वर्तमानकाळनी तथा भविष्यत्काळनी क्रिया; अने पाछळना त्रण पदमां–उदीरित, वेदित अने निर्जीर्णमां एक एक पदमां मात्र त्रण काळनी ज क्रिया कहेवानी छे.

११७. प्र०—जीवा ण भंते! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति?

११७. प्र०—हे भगवन्! शुं जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे?

११७. उ०—हंता, गोयमा! वेदेंति.

११७. उ०—हे गौतम! हा, वेदे छे.

११८. प्र०—कह णं भंते! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति?

११८. प्र०—हे भगवन्! जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने केवी रीते वेदे छे?

११८. उ०—गोयमा! तेहिं तेहिं कारणेहिं संकिया, कंखिया, वितिगिंछिया, भेदसमावन्ना, कलुससमावन्ना; एवं खलु जीवा कखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति.

११८. उ०—हे गौतम! ते ते कारणोवडे शंकावाळा, कांक्षावाळा, विचिकित्सावाळा, भेदसमापन्न अने कलुषसमापन्न थइने ए प्रमाणे जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे.

११९. प्र०—से णूण भंते! तमेव सच्चं, णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं?

११९. प्र०—हे भगवन्! ते ज सत्य अने निःशंक छे के जे जिनोए जणाव्युं छे?

११९. उ०—हंता, गोयमा! तमेव सच्चं, णीसंकं जं जिणेहिं पवेदितं.

११९. उ०—हे गौतम! हा, ते ज सत्य अने निःशंक छे के जे जिनोए जणाव्युं छे.

१२०. प्र०—से णूणं भंते! एवं मणं धारेमाणे, एवं पकरेमाणे, एव चिट्ठमाणे, एव संवरेमाणे आणाए आराहए भवति?

१२०. प्र०—हे भगवन्! ए प्रमाणे (ते ज सत्य अने निःशंक छे के जे जिनोए प्रवेद्युं छे) मनमां धारतो, प्रकरतो, रहेतो अने संवरतो प्राणी आज्ञानो आराधक थाय छे?

१२०. उ०—हता, गोयमा! एवं मणं धारेमाणे जाव—भवइ.

१२०. उ०—हे गौतम! हा, ए प्रमाणे मनमां धारतो यावत्–प्राणी आज्ञानो आराधक थाय छे.

१. द्वितीयोदेशकान्तिमसूत्रेष्वायुर्विशेषो निरूपित., स च मोहदोषे सति भवतीत्यतो मोहनीयविशेषं निरूपयन्, आदौ च संग्रहगाथायां यदुक्तं *'कंखपओस'*त्ति तद् दर्शयन्नाह.—*'जीवाणं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—जीवानां संबन्धि यत् *'कखामोहणिज्जे'*त्ति मोहयतीति मोहनीय कर्म, तच्च चारित्रमोहनीयमपि भवतीति विशिष्यते—काङ्क्षा-अन्यान्यदर्शनग्रह., उपलक्षणत्वाच्चास्य शङ्कादिपरिग्रहः, ततः काङ्क्षाया मोहनीयं काङ्क्षामोहनीयम्–मिथ्यात्वमोहनीयमित्यर्थः. 'कडे' त्ति कृत क्रियानिष्पाद्यमिति प्रश्न.. उत्तरं तु *'हंता, कडे'* त्ति अकृतस्य कर्मत्वाऽ-

---

१. मूलच्छाया—एतेनाऽभिलापेन दण्डको भणितव्य., यावत्–वैमानिकानाम् एवं 'कुर्वन्ति' अत्रापि दण्डको यावत्–वैमानिकानाम्, एवं 'करिष्यन्ति' अत्राऽपि दण्डको यावत्–वैमानिकानाम्, एवं चितम्, अचैषु, चिन्वन्ति, चेष्यन्ति, उपचितम्, उपाचैषु., उपचिन्वन्ति, उपचेष्यन्ति; उदीरितवन्तः, उदीरयन्ति, उदीरयिष्यन्ति, वेदितवन्त., वेदयन्ति, वेदयिष्यन्ति, निर्जरितवन्त., निर्जरयन्ति, निर्जरयिष्यन्ति. गाथाः—कृत-चिता उपचिता उदीरिता वेदिताश्च निर्जीर्णा, आदित्रिके चतुर्भेदा. त्रिभेदा. पश्चिमास्त्रयः. जीवा भगवन्! काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति? हन्त, गौतम! वेदयन्ति. कथं भगवन्! जीवाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति? गौतम! तैस्तैः कारणैः शङ्किताः, काङ्क्षिताः, विचिकित्सिताः, भेदसमाऽऽपन्नाः, कलुषसमापन्ना एवं खलु जीवाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति. तद् नूनं भगवन्! तदेव सत्यम्, निःशङ्कं यद् जिनैः प्रवेदितम्? हन्त, गौतम! तदेव सत्यम्, निःशङ्कं यद् जिनैः प्रवेदितम्. तद् नूनं भगवन्! एवं मनो धारयन्, एवं प्रकुर्वन्, एवं चेष्टमानः, एवं संवृण्वन् आज्ञाया आराधको भवति? हन्त, गौतम! एवं मनो धारयन् यावत्–भवतिः—अनु०

नुपपत्तेः. इह च वस्तुनः करणे चतुर्भङ्गी दृष्टा, यथा—देशेन हस्तादिना वस्तुनो देशस्याऽऽच्छादनं करोति. अथवा हस्तादिदेशेनैव समस्तस्य वस्तुनः. अथवा सर्वात्मना वस्तुदेशस्य. अथवा सर्वात्मना सर्वस्य वस्तुन इति. एतां काङ्क्षामोहनीयकरणं प्रति प्रश्नयन्नाहः—*'से भंते!'* इत्यादि. 'से'त्ति तस्य कर्मणः, हे भदन्त! किमिति प्रश्ने. देशेन जीवस्यांऽशेन, देशः काङ्क्षामोहनीयस्य कर्मणोंऽशः कृत इत्येको भङ्गः. अथ देशेन जीवांशेनैव, सर्वकाङ्क्षामोहनीयं कृतमिति द्वितीयः. उत सर्वेण सर्वात्मना, देशः काङ्क्षामोहनीयस्य कृत इति तृतीयः. उताहो सर्वेण सर्वात्मना, सर्वं कृतमिति चतुर्थः. अत्रोत्तरम्—*'सव्वेणं सव्वे'* कडे'त्ति जीवस्वाभाव्यात्, सर्वस्वप्रदेशाऽवगाढतदेकसमयबन्धनीयकर्मपुद्गलबन्धने सर्वजीवप्रदेशानां व्यापार इत्यत उच्यते—सर्वात्मना सर्वं तदेककालकरणीयं काङ्क्षामोहनीयं कर्म कृतम्—कर्म तया बद्धम्. अत एव च भङ्गत्रयप्रतिषेध इति. अत एवोक्तम्ः—*"एगपएसोगाढं सव्वपएसेहिं कम्मुणो जोग्गं, बंधइ जहुत्तहेउ"*त्ति. 'एगपएसोगाढं'ति जीवाऽपेक्षया, कर्मद्रव्यापेक्षया च ये एके प्रदेशाः तेष्ववगाढम्, सर्वजीवप्रदेशव्यापारत्वाच्च तदेकसमयबन्धनार्हं सर्वमिति गम्यम्. अथवा सर्वं यत्किञ्चित् काङ्क्षामोहनीयं तत् सर्वात्मना कृतम्, न देशेनेति.

१. बीजा उद्देशकना छेलां सूत्रोमां एक प्रकारना आयुष्यनु प्ररूपण कर्युं छे. ज्यारे मोहरूप दोषनी हयाती होय त्यारे ज जीवने ते आयुष्य संभवी शके छे माटे हवे आयुष्यना निरूपण पछी एक प्रकारना मोहनीय कर्मने निरूपता अने प्रथम शतकनी शरुआतमां जणावेल संग्रहगाथामां जे ['कंखपओस'त्ति] ए पद कह्युं छे तेने दर्शावता कहे छे के:-['जीवाणं' इत्यादि.] ए बधुं स्पष्ट छे. विशेष ए के, जीवो संबंधी जे कांक्षामोहनीय कर्म छे ते ['कडे'त्ति] कृत—करेल—क्रियानिष्पाद्य छे? एम प्रश्न छे. तेनो उत्तर आ छे:-['हंता, कडे'त्ति] हा, कृत छे. कारण के जो कृत-करेल न होय तो ते 'कर्म' कही शकाय नहीं. जे कराय ते ज कर्म कहेवाय अने 'कांक्षामोहनीय' पण कराय छे माटे कर्म कहेवाय छे. जे मोह पमाडे—मुंझवे—ते मोहनीय. शंकाः—'मोहनीय' एटलुं ज मूक्युं होत अने तेनी साथे 'कांक्षा' ए पद न जोड्युं होत तो शुं दूषण छे? समाधान —मोहनीय कर्मना बे प्रकार छे—एक चारित्रमोहनीय अने बीजुं दर्शनमोहनीय. आ स्थळे 'दर्शनमोहनीय' कर्म ज अपेक्षित छे माटे तेने लेवा माटे 'मोहनीय' पद साथे 'कांक्षा' पद जोड्युं छे. 'कांक्षामोहनीय' शब्दनो अर्थ आ छे.—कांक्षा एटले बीजा बीजा दर्शनो—मतो नुं ग्रहण करवुं अर्थात् अमुकमा ज श्रद्धा न राखतां भिन्न भिन्न मतोने अवलंबवुं. तद्रूप—कांक्षारूप—जे मोहनीय मोह पमाडनारु—ते कांक्षामोहनीय—मिथ्यात्व मोहनीय. ते कांक्षामोहनीय कर्म कृत कराएल छे. क्रिया करवानी पद्धति लोकमा चार प्रकारे प्रसिद्ध छे. ते चार प्रकार आ छे.—जेम के; कोइ मनुष्य कोइ पण वस्तुने ढांकतो (ढांकवानी क्रिया करतो) होय तो ते, ते वस्तुने चार रीतिए ढांकी शके छे. पोताना शरीरना कोइ पण हाथ वगेरे भागवडे ते वस्तुना कोइ पण भागने ढांके छे. १. शरीरना कोइ पण भागवडे आखी वस्तुने ढांके छे. २. आखा शरीरवडे वस्तुना कोइ पण भागने ढांके छे. ३. अने आखा शरीरवडे आखी वस्तुने ढांके छे. ४. अर्थात् —

कांक्षामोहनीय कर्म जीवकृत छे?

शंका, समाधान.

कांक्षामोहनीय.

करवानी रीतना चार प्रकार.

१.	अवयवथी	अवयवनी	क्रिया.
२.	अवयवथी	आखानी	क्रिया.
३.	आखाथी	अवयवनी	क्रिया.
४.	आखाथी	आखानी	क्रिया.

पूर्व प्रमाणे दर्शावेल क्रिया करवानी चार पद्धतिओमांथी कइ पद्धतिवडे आत्मा कर्मने करे छे ए विषे प्रश्न पूछता कहे छे के. ['से भंते!' इत्यादि] हे भगवन्! शुं जीव पोताना कोइ पण भागवडे कांक्षामोहनीय कर्मनो कोइ एक भाग करे छे? (१) शुं जीव पोताना कोइ पण भागवडे आखुं कांक्षामोहनीय कर्म करे छे? (२) शुं जीव पोते आखो ज (पोताना समस्त भागोवडे) कांक्षामोहनीय कर्मना कोइ एक भागने करे छे? (३) के शुं जीव पोते आखो ज आखुं कांक्षामोहनीय कर्म करे छे?(४). आनो उत्तर आ छे:-['सव्वेणं सव्वे कडे'त्ति] आखो जीव पोते ज आखा कांक्षामोहनीय कर्मने करे छे अर्थात् क्रिया करवाना पूर्वोक्त चार प्रकारमांथी मात्र अहीं छेल्लो चोथो प्रकार-ज इष्ट छे. जे स्थळे जीवना बधा प्रदेशो अवगाढ छे ते स्थळे रहेलां अने एक समये बांधवा योग्य जे कर्मपुद्गलो होय तेने ते बांधायने बांधवामा जीवना बधा प्रदेशो क्रिया करे छे. कारण के एवा प्रकारनो जीवनो स्वभाव छे. तेथी ज अहीं बाकीना त्रण प्रकारने निषेधी क्रिया करवानो चोथो प्रकार स्वीकार्यो छे अर्थात् आखा जीवे पोते एक काळे बांधी शकाय तेवुं (आखुं) कांक्षामोहनीय कर्म बांध्युं छे. ते माटे ज कह्युं छे के. "एक प्रदेशमां अवगाढ अने कर्मने योग्य पुद्गलने जीव पोताना सर्व प्रदेशोवडे यथोक्त हेतुपूर्वक बांधे छे." ['एगपएसोगाढं'ति] 'एक प्रदेशमां अवगाढ' एटले जीवद्रव्यनी अपेक्षाए तथा कर्मद्रव्यनी अपेक्षाए जे एक —समान-प्रदेशो, तेमां अवगाढ ते 'एक प्रदेशमा अवगाढ.' कर्मने बांधवामां जीवना बधा प्रदेशो क्रिया करे छे माटे तेनाथी (जीवथी) एक समये बांधी शकाय तेवुं बधुं कर्म (ते बांधे छे.) अथवा जे कांइ कांक्षामोहनीय कर्म छे ते बधुं आखा जीववडे ज करायुं छे पण तेना कोइ एक भागवडे ते (कर्म) कराएल नथी.

एक प्रकारनो स्वीकार.

२. 'जीवानाम्' इति सामान्योक्तौ विशेषो नावगम्यते, इति विशेषावगमाय नारकादिदण्डकेन प्रश्नयन्नाहः—*'नेरइयाणं'* इत्यादि भावितार्थमेव. क्रियानिष्पाद्यं कर्मोक्तम्, तत्क्रिया च त्रिकालविषया, अतस्तां दर्शयन्नाहः—*'जीवा णं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—*'करिंसु'*त्ति अतीतकाले कृतवन्तः? उत्तरं तु हन्ताऽकार्षुः, तदकरणे अनादिसंसाराभावप्रसङ्गात्. एवम्—*'करेंति'* संप्रति कुर्वन्ति. एवम्—*'करिस्संति'* अनेन च भविष्यत्कालता करणस्य दर्शिता इति. कृतस्य च कर्मणश्चयादयो भवन्ति, इति तान् दर्शयन्नाहः—*'एवं चिए'* इत्यादि व्यक्तम्.

---

१. चतुर्भङ्गीम्. २. प्र० छायाः—एकप्रदेशाऽवगाढं सर्वप्रदेशैः कर्मणो योग्यम्, बध्नाति यथोक्तहेतुम्ः—अनु०
१. जुओ पृ० ८ टि०—अनु०

नवरम्–चयः प्रदेशाऽनुभागादेर्वर्धनम्. उपचयस्तदेव पौनःपुन्येन. अन्ये त्वाहुः–"चयनं कर्मपुद्गलोपादानमात्रम् उपचयनं तु चितस्याऽबाधाकालं मुक्त्वा वेदनार्थं निषेकः. स चैवम्–प्रथमस्थितौ बहुतरं कर्मदलिकं निषिञ्चति, ततो द्वितीयायां विशेषहीनम्, एवं यावदुत्कृष्टायां विशेषहीनं निषिञ्चति. उक्तं चः–*मोत्तूण सगमबाहं पढमाइ ठिईइ बहुयरं दव्वं, सेसं विसेसहीणं जाव उक्कोसं ति सव्वासं*"ति. उदीरणम्–अनुदितस्य करणविशेषादुदयप्रवेशनम्. वेदनम्–अनुभवनम्. निर्जरणं जीवप्रदेशेभ्यः कर्मप्रदेशानां शातनमिति. इह च सूत्रसंग्रहगाथा भवति, सा च गाहा–'*कड चिया*' इत्यादिः, भावितार्था च. नवरम्–'*आइतिए*'त्ति कृत–चितो-पचितलक्षणे. '*चउभेद*'त्ति सामान्यक्रिया-कालत्रय-क्रियाभेदात्. '*तियभेय*'त्ति सामान्यक्रियाविरहात्. '*पच्छिम*'त्ति उदीरित- वेदित–निर्जीर्णा मोहपुद्गला इति शेषः. '*तिवि*'त्ति त्रयस्त्रिविधा इत्यर्थः. ननु आद्ये सूत्रत्रये कृत-चितो-पचितान्युक्तानि, उत्तरेषु कस्माद् न उदीरित-वेदित-निर्जीर्णानीति? उच्यते–कृतम्, चितम्, उपचितं च कर्म चिरमप्यवतिष्ठते, इति करणादीनां त्रिकालक्रियामात्राऽतिरिक्तं चिरावस्थानलक्षणं कृतत्वाद्याश्रित्य कृतादीन्युक्तानि. उदीरणादीनां तु न चिराऽवस्थानमस्ति, इति त्रिकालवर्तिना क्रियामात्रेणैव तानि अभिहितानि इति.

चोवीशे दंडक.

त्रिकाळ विचार.

चयादि.

उदीरण, वेदन, निर्जरण.

शंका, समाधान.

२. आगळना प्रकरणमां सामान्य प्रकारे जीव संबंधे हकीकत कही छे अने सामान्य रीतीए विवेचन करवाथी विशेष प्रकारे ज्ञान थइ शकतुं नथी, माटे हवे विशेषपणे विवेचन करवा नारकादि दंडकपूर्वक प्रश्न करता कहे छे के–['नेरइयाण' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट अर्थवाळुं ज छे. आगळना सूत्रोमां क्रियानिष्पाद्य कर्म कह्युं छे, ते क्रिया त्रणे काळ साथे संबंधवाळी होय छे, माटे हवे तेने दर्शावता कहे छे के–['जीवा णं' इत्यादि] ए सूत्र व्यक्त छे. विशेष ए के, ['करिसु त्ति] भूतकाळमा (तेओए कर्मो) कर्यां? अही उत्तर आ छेः–'हा, तेओए कर्यां'. जो भूतकाळमां आत्माए कर्मो न कर्यां ज होय अने ते तद्दन अमुक काळथी ज करतो होय एम मानवामां आवे तो संसारनो अनादि प्रवाह संभवी शके नहीं. ['करेंति'] ए प्रमाणे वर्तमानकाळे करे छे, अने ए प्रमाणे ['करिस्संति'] करशे, 'करशे' ए शब्दथी क्रियाविषयक भविष्यत्काळ कह्यो. जे कर्म करवामां आवे छे, तेनो चय, उपचय वगेरे होइ शके छे माटे हवे ते संबंधेनी हकीकत कहे छे ['एत चिए' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, प्रदेश अने अनुभाग वगेरेनुं वधवु ते 'चय'. ते ज संबंधी वारवार वधवु ते 'उपचय'. बीजाओ तो कहे छे केः "मात्र कर्मपुद्गलोनुं ज ग्रहण करवु ते 'चय'. अबाधाकाळ सिवायना काळे ग्रहेल कर्म पुद्गलने वेदवा माटे निषेचन ते 'उपचय'. निषेचननु स्वरूप आ प्रमाणे छेः–प्रथम स्थितिमा बहुतर कर्मदलिकने निषेचे छे. त्यार पछी बीजी स्थितिमा विशेषहीन–वधारे ओछु निषेचे छे. ए प्रमाणे यावत् उत्कृष्ट स्थितिमां विशेषहीन निषेचे छे. कह्यु छे के. "पोतानो अबाधाकाळ मूकीने प्रथमा स्थितिमा बहुतर द्रव्यने अने ए प्रमाणे यावत् उत्कृष्ट स्थितिमा बाकीना सर्वने विशेषहीन करे छे." उदयमा नहीं आवेल कर्मने एक प्रकारना करणवडे उदयमां लाववु ते उदीरण. अनुभव करवो ते वेदन. जीवना प्रदेशोथी कर्म प्रदेशोनुं खरी पडवु ते निर्जरण. अही सूत्र संबंधी संग्रह गाथा आ छे' ['कड, चिया' इत्यादि] आ गाथानो अर्थ स्पष्ट छे. विशेष ए के ['आइतिए'त्ति] एटले आदिनिके अर्थात् आदिना त्रण पदोमां 'कृत' 'चित' अने 'उपचित' ए पदोमा ['चउभेद'त्ति] चार जातनो काळ कहेवो. कारण के त्या सामान्य क्रियानो काळ अने त्रणे काळनी त्रणे क्रियानो काळ जूदो जूदो कह्यो छे. ['तियभेय'त्ति] अने पाछळना त्रण पदोमा सामान्य क्रियानो विरह होवाथी त्रण भेदवाळो काळ कह्यो छे ते पाछळना पदो ['पच्छिम'त्ति] उदीरित, वेदित अने निर्जीर्ण मोहपुद्गलरूपे ['तिवि'त्ति] त्रण प्रकारना–त्रण–छे. शंका–आदिना त्रण सूत्रोमां सामान्य क्रियाना सूचक 'कृत' 'चित' अने 'उपचित' ए त्रण पदो कह्यां छे अने पाछळना सूत्रोमां सामान्य क्रियानां दर्शक 'उदीरित' 'वेदित' अने 'निर्जीर्ण' ए त्रण पदो केम कह्यां नथी? समाधान करेलु, चयेलु अने उपचयेलु कर्म लांबा काळ सुधी पण टकी रहे छे. माटे 'कृत' 'चित' अने 'उपचित'मां त्रण काळनी क्रियाओ बताववा उपरात सामान्य क्रियानो काळ लांबा काळ सुधीनी स्थितिनो सत्तारूप काळ देखाडवो जोइए. माटे कृतत्वादिने आश्रीने सामान्य क्रियाना सूचक 'कृत' वगेरे त्रण पदो कह्यां छे अने उदीरणादिनुं तो लांबा काळ सुधी अवस्थान नथी, माटे त्यां सामान्य काळ न दर्शावतां मात्र त्रण काळ संबंधी ज क्रियाओ कही छे

३. 'जीवाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति'इत्युक्तम्, अथ तद्वेदनकारणप्रतिपादनाय प्रस्तावयन्नाह–'*जीवा णं भंते!*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम् ननु जीवाः काङ्क्षामोहनीयं वेदयन्तीति प्राग् निर्णीतम्, किं पुनः प्रश्नः? उच्यते–वेदनोपायप्रतिपादनार्थम्. उक्तं चः–"*पुव्वभणियं पि पच्छा जं भन्नइ तत्थ कारणं अत्थि, पडिसेहो य अणुन्ना हेउविसेसोवलंभो*"त्ति. '*तेहिं तेहिं*'ति तैस्तैर्दर्शनान्तरश्रवण-कुतीर्थिकसंसर्गादिभिर्विद्वप्रसिद्धैः–द्विर्वचनं चेह वीप्सायाम्–कारणैः शङ्कादिहेतुभिः, किम्? इत्याहः–शङ्किता जिनोक्तपदार्थान् प्रति-सर्वतः, देशतो वा संजातसंशयाः. काङ्क्षिता देशतः, सर्वतो वा संजाताऽन्यान्यदर्शनग्रहाः. '*वितिगिच्छिय*'त्ति विचिकित्सिताः संजातफलविषयशङ्काः. भेदसमापन्ना इति 'किम् इदं जिनशासनम्? आहोस्विदिदम्?' इत्येवं जिनशासनस्वरूपं प्रति मतेर्द्वैधीभावं गताः, अनध्यवसायरूपं वा मतिभङ्गं गताः, अथवा यत एव शङ्कितादिविशेषणा अत एव मतेर्द्वैधीभावं गताः. कलुषसमापन्नाः–'न एतदेवम्' इत्येवं मतिविपर्यासं गताः. '*एवं खलु*' इत्यादि. एवमित्युक्तेन प्रकारेण, '*खलु*'त्ति वाक्याऽलङ्कारे, निश्चये, अवधारणे वा. एतच्च जीवानां काङ्क्षामोहनीयवेदनमित्थमेवाऽवसेयम्, जिनप्रवेदितत्वात्, तस्य च सत्यत्वादिति. तत्सत्यतामेव दर्शयन्नाहः–'*से णूणं*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–सदेव–न पुरुषान्तरैः प्रवेदितम्, रागाद्युपहतत्वेन तत्प्रवेदितस्याऽसत्यत्वसंभवात्–सत्यं सूनृतम्. तच्च व्यवहारतोऽपि स्याद् अत आहः–निःशङ्कम्–अविद्यमानसंदेहमिति. अथ जिनप्रवेदितं सत्यमित्यभिप्रायवान् यादृशो भवति तद् दर्शयन्नाहः–'*से णूणं*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–नूनं

---

१. प्र० छायाः—मुक्त्वा स्वकामबाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यम्, शेषं विशेषहीनं यावत्–उत्कृष्टमिति सर्वासाम्. २. पूर्वभणितमपि पश्चाद् यद् भण्यते तत्र कारणमस्ति, प्रतिषेधश्चाऽनुज्ञा–हेतुविशेषोपलम्भः–अनु०

निश्चितम्. 'एवं मणं धारेमाणे'त्ति 'तदेव सत्यम्, निःशङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम्' इत्यनेन प्रकारेण मनो मानसमुत्पन्नं सद् धारयन् स्थिरीकुर्वन्, 'एवं पकरेमाणे'त्ति उक्तरूपेणाऽनुत्पन्नं सत् प्रकुर्वन् विदधानः, 'एवं चिट्ठेमाणे'त्ति उक्तन्यायेन मनश्चेष्टयन्—'नान्यमतानि सत्यानि' इत्यादिचिन्तायां व्यापारयन्, चेष्टमानो वा विधेयेषु तपोध्यानादिषु, 'एवं संवरेमाणे'त्ति उक्तवदेव मनः संवृण्वन्—मतान्तरेभ्यो निवर्तयन्, प्राणातिपातादीन् वा प्रत्याचक्षाणो 'जीव' इति गम्यते. 'आणाए'त्ति आज्ञायाः—ज्ञानाद्यासेवारूपजिनोपदेशस्य. 'आराहए'त्ति आराधकः पालयिता भवति इति.

३. आगळना प्रकरणमां 'जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे' एम कह्युं छे. हवे ते कर्मनुं वेदन करवामां कया कया कारणो छे ए वातने जणाववा प्रस्तावनापूर्वक कहे छे केः—['जीवा णं भंते !' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. जे विशेष छे ते आ छे —शंका. 'जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे' ए वातनो निर्णय पूर्वना प्रकरणमां थइ चूक्यो छे, तो पण शा माटे फरीथी प्रश्न कर्यो छे ? समाधानः —वेदनना कारणोनुं प्रतिपादन करवा आ प्रश्न कर्यो छे. कह्युं छे केः—"जे वात पूर्वे एकवार कहेवाइ जाय अने ते ज वातने जो फरीथी शास्त्रकार कहे, तो तेमां कांइ कारण होवुं जोइए एम समजवुं. एकवार कहेवाएल वातने फरीथी कहेवानां नीचेनां कारणो छेः-प्रतिषेध, अनुज्ञा अने एक प्रकारना हेतुनुं कथन अर्थात् पूर्वनी वातने प्रतिषेधवा, पूर्वनी वातमां अनुमति आपवा के पूर्वनी वातना निर्णयमां कोइ विशेष हेतुने कहेवा एकवार कहेल वात फरीथी कहेवामां आवे छे." ['तेहिं' तेहिं' ति] 'बीजा दर्शननुं सांभळवुं' 'कुतीर्थिकनो संसर्ग करवो' इत्यादि विद्वत्प्रसिद्ध कारणोवडे—शंकादि हेतुओवडे, ए हेतुओथी शुं? तो कहे छे के, ए हेतुओथी शंकित थएला अर्थात् श्रीजिने कहेल पदार्थो संबंधे सर्वथा के थोडे भागे संशयने पामेला. कांक्षित थएला अन्य अन्य दर्शनने ग्रहण करनारा.['वितिगिछिअ'त्ति] फल संबंधे शंका पामेला, भेदने पामेला अर्थात शुं आ जिनशासन छे, के आ जिनशासन छे ? ए प्रमाणे जिनशासनना स्वरूपमां जेओनी बुद्धि भेदने पामेली छे तेओ. अथवा अनिश्चयरूप मतिभंगने पामेला. अथवा पूर्वोक्त शंकितादि विशेषणवाळा छे माटे ज जेओनी बुद्धि द्विधा भावने पामेली छे एवा. कलुषसमापन्न- कलुषने पामेल अर्थात् 'ए एम नथी' ए प्रमाणे विपरीत बुद्धिने पामेला. ['एवं खलु' इत्यादि] ए प्रकारे जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे, एम जाणवुं. कारण के एम श्रीजिने जणाव्युं छे. अने ते सत्य छे. हवे तेनी साचाइने दर्शाववा कहे छे केः-['से णूणं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, जे जिने कहेलुं होय ते ज सत्य छे. पण बीजा पुरुषोए जणावेलुं होय ते सत्य होतु नथी. कारण के जिन सिवायना बीजा पुरुषो रागादिथी उपहत थएला होवाथी तेओए जणावेलामां असत्यपणु संभवे छे. केटलीक साची वातो एवी होय छे के, जे वातो मात्र व्यवहारथी—उपर उपरथी-साची होय पण वास्तविक साची न होय. माटे कहे छे के, जे जिने कहेलु छे ते निःशंक छे- संदेह विनानुं छे. हवे भगवंतनी जणावेल वातने साची माननार केवो होय ते संबंधे कहे छे केः ['से णूणं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, ['एवं मणं धारेमाणे'त्ति] जिनोए जे कह्युं छे ते ज निःशंक छे ए प्रमाणे मानी मनने स्थिर करतो. ['एवं पकरेमाणे'त्ति] उक्तरूपे मन न होय तो पण ते-रूपे करतो. ['एवं चिट्ठमाणे'त्ति]पूर्वोक्त प्रमाणे मननी चेष्टा करतो, 'बीजां मतो सत्य नथी' इत्यादि चिंतामां मननो व्यापार करतो, अथवा तप तथा ध्यानादिमां मननी चेष्टा करतो ['एवं संवरेमाणे'त्ति] ए प्रमाणे मनने रोकतो—बीजां मतोथी मनने पाछु वाळतो, अथवा प्राणातिपात- हिंसा -वगेरेथी मनने अटकावतो जीव ['आणाए'त्ति] जिनोपदेश जिने कहेल ज्ञानादिनी आसेवारूप आज्ञा—नो ['आराहए'त्ति] आराधक थाय छे.

कांक्षामोहनीयना वेदननुं कारण.

एक ज वातने फरीथी कहेवानुं कारण.

अस्तित्व अने नास्तित्व.

१२१. प्र०—से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

१२१. उ०— हंता, गोयमा ! जाव—परिणमइ.

१२२. प्र०—जं तं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ; तं किं पओगसा, वीससा ?

१२२. उ०—गोयमा ! पओगसा वि तं, वीससा वि तं.

१२३. प्र०—जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ? जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?

१२१. प्र०—हे भगवन् ! अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे, नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे ?

१२१. उ०—हे गौतम ! हा, ते प्रमाणे यावत्—परिणमे छे.

१२२. प्र०—हे भगवन् ! जे ते अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे अने नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे, ते शु प्रयोगथी—जीवना व्यापारथी-परिणमे छे के स्वभावथी परिणमे छे ?

१२२. उ०—हे गौतम ! ते प्रयोगथी अने स्वभावथी (बन्ने प्रकारे) परिणमे छे.

१२३. प्र०—हे भगवन् ! जेम तारुं अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे तेम तारुं नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे ? अने जेम तारुं नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे तेम तारुं अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे ?

---

१. आ बेवडुं उच्चारण वीप्सासु सूचक छे. २. 'खलु' शब्द वाक्यालंकारनो, निश्चयनो के अवधारणनो सूचक छेः-श्रीअभय०

१. मूलच्छायाः—तद् नूनं भगवन् ! अस्तित्वम् अस्तित्वे परिणमति, नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति ? हन्त, गौतम ! यावत्—परिणमति. यत् तद् भगवन् ! अस्तित्वम् अस्तित्वे परिणमति, नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति, तत् किं प्रयोगेण, विस्रसया ? गौतम ! प्रयोगेणाऽपि तत्, विस्रसयाऽपि तत्. यथा ते भगवन् ! अस्तित्वम् अस्तित्वे परिणमति, तथा ते नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति ? यथा ते नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति, तथा ते अस्तित्वम् अस्तित्वे परिणमति ?:—अनु०

१२३. उ०—हंता, गोयमा! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ. जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ.

१२३. उ०—हे गौतम! हा, जेम मारुं अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे तेम मारुं नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे. अने जेम मारुं नास्तित्व नास्तित्वमां परिणमे छे तेम मारुं अस्तित्व अस्तित्वमां परिणमे छे.

१२४. प्र० से णूणं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं?

१२४. प्र०—हे भगवन् अस्तित्व अस्तित्वमां गमनीय छे?

१२४. उ०—जहा 'परिणमइ' दो आलावगा, तहा ते इह गमणिज्जेण वि दो आलावगा भाणिअव्वा. जाव–जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं.

१२४. उ०—हे गौतम! जेम 'परिणमे छे' ए पदना बे आलापक कह्या तेम अहीं 'गमनीय' पदसाथे पण बे आलापक कहेवा. यावत्–जेम मारुं अस्तित्व अस्तित्वमां गमनीय छे.

१२५. प्र०—जहा ते भंते! एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं, जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं?

१२५. प्र०—हे भगवन्! जेम तारुं अहीं गमनीय छे तेम तारुं इह गमनीय छे? जेम तारुं इह गमनीय छे तेम तारुं अहीं गमनीय छे?

१२५. उ० हंता, गोयमा! जहा मे एत्थं गमणिज्जं जाव–तहा मे एत्थं गमणिज्जं.

१२५. उ०—हे गौतम! हा, जेम मारुं अहीं गमनीय छे यावत्–तेम मारुं अहीं गमनीय छे.

४. अथ कस्मात् तदेव सत्यं यज्जिनैः प्रवेदितमिति? अत्रोच्यते–यथावद्वस्तुपरिणामाऽभिधानादिति. तमेव दर्शयन्नाह:–'से णूणं' इत्यादि. 'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'त्ति अस्तित्वम्–अङ्गुल्यादेः अङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम्. उक्तं च:–"सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च. अन्यथा सर्वभावानामेकत्वं संप्रसज्यते." तच्चेह ऋजुत्वादिपर्यायरूपमवसेयम्. अङ्गुल्यादिद्रव्यास्तित्वस्य कथंचिद् ऋजुत्वादिपर्यायाऽव्यतिरिक्तत्वात्–अस्तित्वे–अङ्गुल्यादेरेवाङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वे–वक्रत्वादिपर्याये इत्यर्थः, परिणमति तथा भवति. इदमुक्तं भवति–द्रव्यस्य प्रकारान्तरेण सत्ता प्रकारान्तरसत्तायां वर्तते, यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता घटप्रकारसत्तायामिति. 'नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति नास्तित्वम्–अङ्गुल्यादेरङ्गुष्ठादिभावेनाऽसत्त्वम्–तच्चाङ्गुष्ठादिभाव एव. ततश्चाङ्गुल्यादेर्नास्तित्वम्–अङ्गुष्ठाद्यस्तित्वरूपम्, अङ्गुल्यादेर्नास्तित्वे अङ्गुष्ठादेः पर्यायान्तरेणाऽस्तित्वरूपे परिणमति, यथा मृदो नास्तित्वं तन्त्वादिरूपं मृन्नास्तित्वरूपे पटे इति; अथवा अस्तित्वमिति धर्मधर्मिणोरभेदात् सद्वस्तु, अस्तित्वे सत्त्वे परिणमति–सत् सदेव भवति, नाऽत्यन्तं विनाशि स्यात्, विनाशस्य पर्यायान्तरगमनमात्ररूपत्वात्, दीपादिविनाशस्याऽपि तमिस्रादिरूपतया परिणामात्. तथा नास्तित्वमत्यन्ताऽभावरूपं यत् खरविषाणादि तद् नास्तित्वेऽत्यन्ताऽभाव एव वर्तते, नात्यन्तमसतः सत्त्वमस्ति खरविषाणस्येवेति. उक्तं च:–"नाऽसतो जायते भावो नाऽभावो जायते सतः." अथवा अस्तित्वमिति धर्म्यभेदात् सत्, अस्तित्वे सत्त्वे वर्तते, यथा पटः पटत्व एव. नास्तित्वं चासत्, नास्तित्वेऽसत्त्वे वर्तते, यथा–अपटोऽपटत्व एवेति. अथ परिणामहेतुदर्शनायाह:–'जं तं' इत्यादि. 'अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'त्ति–पर्यायः पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः. 'नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति–वस्त्वन्तरस्य पर्यायस्तत्पर्यायान्तरतां यातीत्यर्थः. 'पओगसा'त्ति मकारस्याऽऽगमिकत्वात् प्रयोगेण जीवव्यापारेण. 'वीससा' त्ति यद्यपि लोके विस्रसाशब्दो जरापर्यायतया रूढस्तथापीह स्वभावार्थो दृश्यः. इहापि प्राकृतत्वात् 'वीससाए'त्ति वाच्ये 'वीससा'इत्युक्तमिति. अत्रोत्तरम्–'पओगसा वि तं'ति प्रयोगेणापि तदस्तित्वादि. यथा कुलालव्यापाराद् मृत्पिण्डो घटतया परिणमति, अङ्गुलिर्ऋजुता वा वक्रतया इति. अपिः समुच्चये. 'वीससा वि तं'ति यथा शुभ्राभ्रमशुभ्राभ्रतया, नास्तित्वस्यापि नास्तित्वपरिणामे प्रयोग–विस्रसयोरेतान्येव उदाहरणानि, वस्त्वन्तरापेक्षया मृत्पिण्डादेरस्तित्वस्य नास्तित्वात्. 'सत् सदेव स्याद्' इति व्याख्यानान्तरेऽप्येतानि एवोदाहरणानि, पूर्वोत्तरावस्थयोः सद्रूपत्वादिति. यद्यपि 'अभावोऽभाव एव स्याद्' इति व्याख्यातम्–तत्रापि प्रयोगेणापि, तथा विस्रसयापि अभावोऽभाव एव स्यात्, न प्रयोगादेः साकल्यमिति व्याख्येयमिति.

अस्तित्व तथा नास्तित्वना परिणामनो विचार.

४. शंका:–जे वात जिनेश्वरोए कही छे ते ज सत्य छे तेनुं शुं कारण? समाधान:–जेवी वस्तुस्थिति छे तेवी ज वस्तुस्थिति जिनोए जणावेली छे माटे तेओए कहेलुं ते सत्य छे. हवे ते ज संबंधे विचार दर्शावता कहे छे के:–['से णूणं' इत्यादि] ['अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'त्ति] अंगुलि वगेरे पदार्थोनुं अंगुलि वगेरे पणे होवुं ते अस्तित्व अर्थात् जे पदार्थ जे रूपे होय ते पदार्थनुं ते ज रूपे रहेवापणुं ते अस्तित्व. कह्युं छे के:–"वस्तुमात्र पोत पोताने रूपे सत् विद्यमान छे अने पररूपे असत्–अविद्यमान छे. अर्थात् मनुष्य मनुष्यरूपे सर्वकाळे सत् छे अने मनुष्य अश्वरूपे सर्वकाळे असत् छे. जो एम न मानवामां आवे तो दरेक पदार्थ एक सरखा ज गणाय अर्थात् सर्व पदार्थो एकरूप ज थइ जाय." आ चालु प्रकरणमां पर्यायरूप ऋजुत्वादिने सत्त्व–सद्रूप–

१. मूलच्छाया:—हन्त, गौतम! यथा मेऽस्तित्वमस्तित्वे परिणमति, तथा मे नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति; यथा मे नास्तित्वं नास्तित्वे परिणमति, तथा मेऽस्तित्वमस्तित्वे परिणमति. तद् नूनं भगवन्! अस्तित्वमस्तित्वे गमनीयम्? यथा 'परिणमति' द्वावालापकौ, तथा ते इह गमनीयेनाऽपि द्वावालापकौ भणितव्यौ. यावत्–यथाऽस्तित्वमस्तित्वे गमनीयम्. यथा ते भगवन्! अत्र गमनीयं तथा ते इह गमनीयम्, यथा ते इह गमनीयं तथा तेऽत्र गमनीयम्? हन्त, गौतम! यथा मेऽत्र गमनीयं यावत्–तथा मेऽत्र गमनीयम्:—अनु०

थवानुं. कारण के कोइ पण अपेक्षाए अंगुली वगेरे द्रव्यनुं अस्तित्व ऋजुत्वादि पर्यायथी अभिन्न छे—नोखुं नथी. तात्पर्य ए के, अंगुलि वगेरेनुं अंगुलि वगेरे भावे जे सत्त्व छ ते ते ज रूपे—अंगुलि वगेरेना अंगुलि वगेरे भावे सत्त्वपणे—वक्रत्वादि पर्यायपणे परिणमे छे—अंगुलीमां अंगुलीपणुं कायम रहे अने तेना रूपांतरो—वांकी, सीधी वगेरे—थाय छे. आ वाक्यनो निष्कर्ष ए ज छे के, कोइ पण पदार्थनी कोइ पण प्रकारे सत्ता होय अने ते ज सत्ता बीजे प्रकारे—जे प्रकारे पूर्वे होय ते करतां भिन्न प्रकारे—होय छे. जेम के; माटीरूप पदार्थनी सत्ता सौथी पहेलां एक पिंडलारूपे छे. अने पछी ते ज सत्ता घटरूपे थइ जाय छे. ['नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति] अंगुलि वगेरेनुं अंगुठा वगेरे रूपे न होवुं ते नास्तित्व अर्थात् अंगुलीनी अपेक्षाए अंगुष्ठादिपणुं ते ज नास्तित्व. अने ते अंगुष्ठादिपणारूप नास्तित्व अंगुल्यादिना नास्तित्वमां—अंगुठा वगेरेना पर्यायांतरे अस्तित्वरूपे—परिणमे छे—होय छे. जेम के; माटीनुं नास्तित्व तंतु वगेरे रूप छे अने ते माटीना नास्तित्वरूप पटमां होय छे. अथवा पूर्वोक्त सूत्रनी व्याख्या बीजी रीतिए करवी. ते रीति आ छे:—अस्तित्व एटले सत्त्व नहीं, पण सत्—विद्यमान—सत्तावाळी—वस्तु लेवी. कारण के 'सत्त्व' ए धर्मरूप छे अने 'सत्' ए धर्मिरूप छे, तथा ते बन्नेनो अभेद छे—ते बन्ने नोखा नथी, माटे ज अहीं 'अस्तित्व' नो 'सत्' अर्थ करवो. सत् पदार्थ सद्रूपे परिणमे छे—सत् वस्तु सत् ज होय छे. परंतु सद् वस्तु सर्वथा नाश पामती नथी—कारण के विनाशनो अर्थ मात्र रूपांतर थवारूप छे. परंतु सर्वथा नाशरूप नथी. शंका:—जेम; कोइ एक दीवो बळतो होय अने तेमांनुं तेल बळी जवाथी के पवननो सपाटो लागवाथी ते दीवो बुझाइ जाय छे. हवे जो 'विनाश'नो अर्थ मात्र 'विकार'—'रूपांतर थवारूप'—ज होय तो ते दीवानो नाश थया पछी पण ते बीजे रूपे देखावो जोइए, परंतु तेम जणातुं नथी माटे 'विनाश' नो अर्थ 'विकार' न थाय, पण 'समूळ नाश' थवो जोइए. समाधान:—दीवानो नाश तद्दन थतो ज नथी, पण ते बीजे रूपे देखाय छे. आ स्थळे प्रकाशना परमाणुना समूहने आपणे दीवो कहीए छीए अने प्रकाशनो नाश थवाथी आपणे दीवानो नाश समजीए छीए. खरी रीते प्रकाशनो नाश थतो ज नथी पण तेने आपणे रूपांतरमां आवेलो जोइए छीए. ज्यारे दीवो बळतो होय छे त्यारे प्रकाशवाळा स्थळे अंधकार जणातो नथी पण ज्यारे दीवो बुझाइ जाय छे—प्रकाश मटी जाय छे—त्यारे ते ज प्रकाशवाळा स्थळमां अंधारुं थइ जाय छे. जे आ अंधारुं छे ते ज दीवानो विकार अर्थात् पेला प्रकाशना परमाणुओ सामग्रीवशात् अंधकाररूपे परिणम्या छे, माटे दीवानो तद्दन नाश थतो नथी पण ते अंधकाररूपे अस्तित्व धरावे छे, माटे 'नाश' नो अर्थ 'विकार' ज करवो ठीक छे, पण 'समूळ नाश' ए अर्थ अघटित छे. ए ज प्रकारे दरेक पदार्थना नाश संबंधे पण समजवुं. बीजा प्रकारना व्याख्यानमां 'नास्तित्व'नो अर्थ अत्यंत अभावरूप छे अने ते अत्यंत अभावरूप नास्तित्व खरविषाण (गर्दभशृंग) वगेरे छे. ते (अत्यंत अभावरूप नास्तित्व) नास्तित्वमां—अत्यंत अभावमां—वर्ते छे. कारण के जे वस्तु सर्वथा असत् होय तेनुं कोइ दिवस सत्त्व होइ शकतुं ज नथी. जेम; खरविषाणनुं. कह्युं छे के:—"असत् सद्रूप थतुं नथी, अने सत् असद्रूप थतुं नथी" अथवा धर्मि साथे अभेद छे माटे 'अस्तित्व' एटले सत्, जे सत् छे ते सत्त्वरूप धर्ममां होय छे. जेम; पट पटत्वमां ज छे तेम. अने नास्तित्व एटले असत्. जे असत् छे ते असत्त्वरूप धर्ममां होय छे. जेम; अपट अपटपणामां ज छे तेम. हवे पदार्थना जूदा जूदा परिणाम थवाना हेतुओ दर्शावता कहे छे के:—['जं तं' इत्यादि] [अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ'त्ति] अर्थात् एक प्रकारनो पर्याय बीजा प्रकारना पर्यायने पामे छे. ['नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ'त्ति] कोइ पण बीजा पदार्थनो पर्याय इतर पर्यायने पामे छे. ['पओगसे'त्ति] प्रयोग—जीवनो व्यापार, ते वडे. ['वीसेस'त्ति] जो के 'विश्रसा' शब्दनो प्रसिद्ध अर्थ तो घडपण छे, तो पण अहीं तेनो 'स्वभाव' अर्थ समजवो. अहीं उत्तर आ छे:—['पओगसा वि तं'ति] ते अस्तित्वादिरूप परिणाम प्रयोगवडे पण थाय छे. जेम; कुंभारनी क्रियाथी माटीनो पिंडलो घटरूपे परिणमे छे. मनुष्यनी क्रियाथी सीधी आंगळी वांकी वळे छे. ['वीससा वि तं'ति] ते अस्तित्वादि परिणाम स्वभाववडे—कोइनी क्रिया सिवाय—पण थाय छे. जेम; शुभ्र—धोळुं—वादळुं अशुभ्रपणे परिणमे छे. ए ज प्रकारे नास्तित्वपरिणाममां पण प्रयोग अने स्वभावना उदाहरणो कहेवां, पण ते बीजी वस्तुनी अपेक्षाए समजवां. कारण के बीजी वस्तुनी अपेक्षाए बीजी वस्तु नास्तित्वरूप होय छे अर्थात् घटादिनी अपेक्षाए माटीनो पिंडलो नास्तित्वरूप छे. 'सत्' पदार्थ 'सत्' रूप ज होय छे' एवी बीजी व्याख्याना पक्षमां पण ए ज (पूर्वोक्त) उदाहरणो समजवां. कारण के वस्तु पूर्व अने उत्तर अवस्थामां सद्रूप छे. वळी 'जे अभावरूप होय ते अभावरूप ज रहे' एवुं जे व्याख्यान कर्युं छे ते पक्षमां प्रयोग अने विस्रसा ए बन्नेने पण हेतुरूप समजवां अर्थात् जे अभाव होय ते प्रयोगथी पण अने विस्रसाथी पण अभावरूप ज रहे. पण प्रयोगादिनुं साकल्य छे एम न कहेवुं. अर्थात् अमुक परिणाम प्रयोगथी ज थाय छे अने अमुक परिणाम स्वभावथी ज थाय छे एम न कहेवुं.

विनाश शब्दनो अर्थ.

प्रयोग.

स्वभाव.

५. अथ उक्तहेत्वोरुभयत्र समताम्, भगवदभिमततां च दर्शयन्नाह:—*'जहा ते'* इत्यादि. यथा प्रयोग—विश्रसाभ्यामित्यर्थः. *'ते'* इति तव मतेन, अथवा सामान्येन अस्तित्वनास्तित्वपरिणामः प्रयोग—विश्रसाजन्य उक्तः. सामान्यश्च विधिः क्वचिदतिशयवति वस्तुनि अन्यथाऽपि स्यात्, अतिशयवांश्च भगवानिति तमाश्रित्य परिणामान्यथात्वमाशङ्कमान आह:—*'जहा ते'* इत्यादि. *'ते'* इति तव सम्बन्धिअस्तित्वम्, शेषं तथैवेति. अथ उक्तस्वरूपस्यैवार्थस्य सत्यत्वेन प्रज्ञापनीयतां दर्शयितुमाह:—*'से णूणं'* इत्यादि. अस्तित्वम्—अस्तित्वे गमनीयम्—सद्वस्तु सत्त्वेनैव प्रज्ञापनीयमित्यर्थः. *'दो आलावग'*त्ति—"*से णूणं भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं* इत्यादि, *पओगसा वि तं, वीससा वि तं*" इत्येतदन्त एकः, परिणामभेदाऽभिधानात्. "*जहा ते भंते! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं* इत्यादि, *तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं*" इत्येतदन्तस्तु द्वितीयः—अस्तित्वनास्तित्वपरिणामयोः समताऽभिधायी. एवं वस्तुप्रज्ञापनाविषयां समभावतां भगवतोऽभिधाय, अथ शिष्यविषयां तां दर्शयन्नाह:—*'जहा ते'* इत्यादि. यथा स्वकीयपरकीयताऽनपेक्षतया समत्वेन विहितमिति प्रवृत्त्या, उपकारबुद्ध्या वा ते तव भदन्त! *'एत्थं'* ति एतस्मिन् मयि संनिहिते स्वशिष्ये गमनीयं वस्तु प्रज्ञापनीयम्, तथा तेनैव समतालक्षणप्रकारेण, उपकारधिया वा *'इहं'*ति इह अस्मिन् गृहिपाखण्डिकादौ जने गमनीयं वस्तु प्रकाशनीयमिति प्रश्नः. अथवा *'एत्थं'*ति स्वात्मनि यथा गमनीयं सुखप्रियत्वादि, तथा इह परात्मनि. अथवा यथा प्रत्यक्षाऽधिकरणार्थतया *'एत्थं'* इत्येतच्छब्दरूपं गमनीयम्, तथा *'इहं'* इत्येतत्शब्दरूपमिति, समानार्थत्वाद् द्वयोरपि इति. काङ्क्षामोहनीयकर्मवेदनं सप्रसङ्गमुक्तम्.

---

१. अहीं 'त' कारनो आगम लागेलो छे. २. आ विभक्तिरहितरूप प्राकृतमां बोलवो छे. ३. 'अपि' शब्द समुच्चयनो सूचक छे:—श्रीअभयदेव.

भगवदभिमत.

५. हवे ते पूर्वोक्त बन्ने हेतुओ बन्ने स्थळे समान छे अने भगवंतने अभिमत छे. ए वातने दर्शावता कहे छे केः–['जहा ते' इत्यादि] 'यथा' एटले जेम प्रयोग अने विस्रसावडे. 'ते' एटले तारा मतमां. अथवा आ सूत्र कहेवानुं बीजुं कारण कहे छेः–पूर्व सूत्रमां प्रयोगजन्य अने विस्रसाजन्य परिणाम सामान्य प्रकारे कह्यो छे अने सामान्य प्रकारनो विधि बधे स्थळे सरखी रीतिए होय तेवो नियम नथी, किंतु कोइ अतिशयवाळा पदार्थमां ते सामान्य प्रकारनो विधि उलटी रीते पण होय. आ स्थळे भगवंत महावीर अतिशयवाळा छे अने तेमां पूर्वोक्त सामान्य प्रकारनो विधि ते ज प्रकारे छे के जूदे प्रकारे छे, ए प्रमाणे आशंका करता प्रश्नकार कहे छे केः–['जहा ते' इत्यादि] 'ते' एटले तारा संबंधी अस्तित्व, बाकी बधुं पूर्व प्रमाणे ज जाणवु. हवे पूर्वोक्त स्वरूपवाळा अर्थनी ज सत्यपणे प्रज्ञापनीयता दर्शाववा कहे छे केः–['से णूणं' इत्यादि] अस्तित्व अस्तित्वमां जाणवुं अर्थात् सद् वस्तु सत्त्ववडे ज जणाववी. ['दो आलावग'त्ति] 'से णूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं' त्यांथी मांडीने 'पओगसा वि तं, वीससा वि तं' त्या सुधीनो एक आलापक जाणवो. कारण के ते परिणामना भेदनो सूचक छे. अने 'जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं' त्यांथी मांडीने 'तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं' त्यां सुधीनो बीजो दंडक जाणवो. आ बीजो दंडक अस्तित्व अने नास्तित्वरूप परिणामनी समानता सूचवे छे. ए प्रमाणे भगवत संबंधी वस्तुप्रज्ञापना विषयक समानता कहीने हवे ते ज समानताने शिष्यसंबंधे दर्शावता कहे छे केः–['जहा ते' इत्यादि] 'यथा' एटले पोतानी अने पारकानी दरकार राख्या सिवाय समपणे कर्युं एवी प्रवृत्तिवडे, अथवा उपकार बुद्धिवडे, 'ते' एटले तारुं, अर्थात् हे भगवन् ! जे तारामां अस्तित्वादिक छे, ते ['एत्थं'ति] ते ज प्रकारे समानतापूर्वक के उपकार बुद्धिवडे, आमां–मारामां–पासे रहेला शिष्यमां गमनीय छे? अने ['इह'ति] 'इह' एटले आ संसारिमां के पाखंडिकादि मनुष्यमां गमनीय छे? ए प्रश्न छे. अथवा ['एत्थं'ति] 'एत्थ' एटले जेम स्वात्मामां सुखप्रियत्वादि धर्मो गमनीय छे तेम आ परात्मामां पण ते सुखप्रियत्वादि धर्मो गमनीय छे? अथवा जेम प्रत्यक्ष अधिकरणार्थपणे 'एत्थं' ए 'एतद्' शब्दनुं रूप गमनीय छे तेम ज 'इहं' ए पण 'एतत्' शब्दनु रूप गमनीय छे ? कारण के ए बन्ने रूपो समान अर्थवाळां छे. ए प्रमाणे प्रसंग सहित कांक्षामोहनीय कर्मनु वेदन जणाव्यु छे.

कांक्षामोहबंधादि.

१२६. प्र०—जीवा णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

१२६. उ० हंता, गोयमा ! बंधंति.

१२७. प्र०—कहं णं भंते ! जीवा कंखामोहणिज्जं कम्मं बंधंति ?

१२७. उ०—गोयमा ! पमादपच्चया, जोगनिमित्तं च.

१२८. प्र० - से णं भंते ! पमाए किंपवहे ?

१२८. उ०—गोयमा ! जोगप्पवहे.

१२९. प्र०—से णं भंते ! जोए किंपवहे ?

१२९. उ०—गोयमा ! वीरियप्पवहे.

१३०. प्र०—से णं भंते ! वीरिए किंपवहे ?

१३०. उ०—गोयमा ! सरीरप्पवहे.

१३१. प्र०—से णं भंते ! सरीरे किंपवहे ?

१३१. उ०—गोयमा ! जीवप्पवहे. एवं सति अत्थि उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा.

१३२. प्र०—से णूणं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरइ ?

१२६. प्र० - हे भगवन् ! जीवो कांक्षामोहनीय कर्म बांधे छे ?

१२६. उ० हे गौतम ! हा, बांधे छे.

१२७. प्र० – हे भगवन् ! जीवो कांक्षामोहनीय कर्म केवी रीते बांधे छे ?

१२७. उ० हे गौतम ! प्रमादरूप हेतुथी अने योगरूप निमित्तथी जीवो कांक्षामोहनीय कर्म बांधे छे.

१२८. प्र०—हे भगवन् ! ते प्रमाद शाथी प्रवहे छे–पेदा थाय छे ?

१२८. उ०—हे गौतम ! ते प्रमाद योगथी–मानसिक, वाचिक अने कायिक व्यापारथी–पेदा थाय छे.

१२९. प्र०— हे भगवन् ! ते योग शाथी पेदा थाय छे ?

१२९. उ०—हे गौतम ! ते योग वीर्यथी पेदा थाय छे.

१३०. प्र०—हे भगवन् ! ते वीर्य शाथी पेदा थाय छे ?

१३०. उ०—हे गौतम ! ते वीर्य शरीरथी पेदा थाय छे.

१३१. प्र०—हे भगवन् ! ते शरीर शाथी पेदा थाय छे ?

१३१. उ०—हे गौतम ! ते शरीर जीवथी पेदा थाय छे. अने ज्यारे तेम छे तो उत्थान, कर्म, बळ, वीर्य अने पुरुषकार-पराक्रम छे.

१३२. प्र०—हे भगवन् ! शुं जीव पोतानी मेळे ज तेने उदीरे छे ? पोतानी मेळे ज तेने गर्हे छे ? अने पोतानी मेळे ज तेने संवरे छे ?

---

१. मूलच्छाया —जीवा भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म बध्नन्ति ? हन्त, गौतम ! बध्नन्ति. कथं भगवन् ! जीवाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म बध्नन्ति ? गौतम ! प्रमादप्रत्ययात्, योगनिमित्तं च. तद् भगवन् ! प्रमादः किंप्रवहः ? गौतम ! योगप्रवहः. तद् भगवन् ! योगः किंप्रवहः ? गौतम ! वीर्यप्रवहः. तद् भगवन् ! वीर्यं किंप्रवहम् ? गौतम ! शरीरप्रवहम्. तद् भगवन् ! शरीरं किंप्रवहम् ? गौतम ! जीवप्रवहम्. एवं सति अस्ति उत्थानमिति वा, कर्मेति वा, बलमिति वा, वीर्यमिति वा, पुरुषकारपराक्रम इति वा. तद् नूनं भगवन् ! आत्मना चैव उदीरयति, आत्मना चैव गर्हते, आत्मना चैव संवृणोति ?–अनु०

१३२. उ०—हंता, गोयमा ! अप्पणा चेव० तं चेव उच्चारेअव्वं.

१३३. प्र०—जं तं भंते ! अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ तं किं उदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, उदयाणं-तरपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ ?

१३३. उ०—गोयमा ! नो उदिण्णं उदीरेइ, नो अणुदिण्णं उदीरेइ, अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ. णो उदयाणं-तरपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ.

१३४. प्र०—जं तं भंते ! अणुदिन्नं उदीरणाभविय कम्मं उदीरेइ तं किं उट्ठाणेणं, कम्मेणं, बलेण, वीरिएणं, पुरिसक्कारप-रिक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभविय कम्मं उदीरेइ; उदाहु त अणु-ट्ठाणेणं, अकम्मेण, अबलेणं. अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरिक्कमेणं अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ ?

१३४. उ० गोयमा ! तं उट्ठाणेण वि, कम्मेण वि, बलेण वि, वीरियेण वि. पुरिसक्कारपरक्कमेण वि अणुदिण्णं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ; णो तं अणुट्ठाणेण, अकम्मेणं, अबलेण, अवीरिएणं, अपुरिसक्कारपरक्कमेण अणुदिण्ण उदीरणाभविय कम्म उदीरेइ; एव सति अत्थि उट्ठाणेइ वा. कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा.

१३५. प्र० से णूणं भंते ! अप्पणा चेव उवसामेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणा चेव संवरेइ ?

१३५. उ० हंता, गोयमा ! एत्थ वि तहेव भाणियव्व. नवरं—अणुदिण्ण उवसामेइ; सेसा पडिसेहेयव्वा तिण्णि.

१३६. प्र० जं त भंते ! अणुदिन्न उवसामेइ त किं उट्ठाणेण ?

१३६. उ० - जाव—पुरिसक्कारपरिक्कमेत वा.

१३७. प्र०—से णूण भंते ! अप्पणा चेव वेदेइ, अप्पणा चेव गरहइ ?

१३२. उ०—हे गौतम ! हा, पोतानी मेळे ज पूर्व प्रमाणे करे छे (पूर्व प्रमाणे बधो पाठ कहेवो).

१३३. प्र०—हे भगवन् ! जे ते पोतानी मेळे ज उदीरे छे, गर्हे छे अने संवरे छे ते शुं उदीर्णने उदीरे छे ? अनुदीर्णने उदीरे छे ? अनुदीर्ण तथा उदीरणाने योग्यने उदीरे छे ? के उदयानंतर-पश्चात्कृत कर्म उदीरे छे ?

१३३. उ०—हे गौतम ! उदीर्णने उदीरतो नथी, अनुदीर्णने उदीरतो नथी तथा उदयानंतरपश्चात्कृत कर्मने उदीरतो नथी पण अनुदीर्ण अने उदीरणाने योग्य कर्मने उदीरे छे.

१३४. प्र०—हे भगवन् ! जे ते अनुदीर्ण तथा उदीरणाने योग्य कर्मने उदीरे छे ते शु उत्थानथी, कर्मथी, बळथी, वीर्यथी अने पुरुषकारपराक्रमथी उदीरे छे ? के अनुत्थानथी, अकर्मथी, अबळथी, अवीर्यथी अने अपुरुषकारपराक्रमथी उदीरे छे?

१३४. उ०—हे गौतम ! ते अनुदीर्ण अने उदीरणाने योग्य कर्मने उत्थानथी, कर्मथी, बळथी वीर्यथी अने पुरुषकारपराक्रमथी पण उदीरे छे. पण अनुत्थानथी, अकर्मथी. अबळथी, अवीर्यथी अने अपुरुषकारपराक्रमथी उदीरतो नथी अने ज्यारे तेम छे त्यारे उत्थान छे, कर्म, बल, वीर्य अने पुरुषकारपराक्रम पण छे.

१३५. प्र०—हे भगवन् ! ते पोतानी मेळे ज उपशमावे, गर्हे अने संवरे ?

१३५. उ०—हे गौतम ! हा. अहीं पण तेम ज (पूर्व प्रमाणे) कहेवुं. विशेष ए के, अनुदीर्णने उपशमावे, बाकी त्रणे विकल्पोनो निषेध करवो.

१३६. प्र०—हे भगवन् ! जे ते अनुदीर्णने उपशमावे ते शुं उत्थानथी, यावत्—पुरुषकारपराक्रमथी ? के अनुत्थानथी, यावत्—अपुरुषकारपराक्रमथी ?

१३६. उ०—हे गौतम ! पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं.

१३७. प्र०—हे भगवन् ! ते पोतानी मेळे ज वेदे अने गर्हे ?

१. मूलच्छायाः—हन्त, गौतम ! आत्मना चैव० तचैव उच्चारयितव्यम्. यत् तद् भगवन ! आत्मना चैव उदीरयति, आत्मना चैव गर्हते, आत्मना चैव संवृणोति तत् किमुदीर्णम्—उदीरयति, अनुदीर्णम्—उदीरयति, अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति, उदयाऽनन्तरपश्चात्कृतं कर्म उदीरयति ? गौतम ! नो उदीर्णम्—उदीरयति, नो अनुदीर्णम्—उदीरयति, अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति, नो उदयाऽनन्तरपश्चात्कृतं कर्म उदीरयति. यत् तद् भगवन् ! अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति तत् किमुत्थानेन, कर्मणा, बलेन, वीर्येण, पुरुषकारपराक्रमेण अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति; उताहो तद् अनुत्थानेन, अकर्मणा, अबलेन, अवीर्येण, अपुरुषकारपराक्रमेण अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति ? गौतम ! तद् उत्थानेनाऽपि कर्मणापि, बलेनाऽपि, वीर्येणापि, पुरुषकारपराक्रमेणाऽपि अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति; नो तद् अनुत्थानेन, अकर्मणा, अबलेन, अवीर्येण, अपुरुषकारपराक्रमेण अनुदीर्णम्—उदीरणाभव्यं कर्म उदीरयति; एवं सति अस्ति उत्थानमिति वा, कर्मेति वा, बलमिति वा, वीर्यमिति वा, पुरुषकार-पराक्रम इति वा.तद् नूनं भगवन् ! आत्मना चैव उपशमयति, आत्मना चैव गर्हते, आत्मना चैव संवृणोति ? हन्त, गौतम ! अत्राऽपि तथैव भणितव्यम्. नवरम्—अनुदीर्णम्—उपशमयति; शेषाः प्रतिषेधयितव्यास्त्रयः. यत् तद् भगवन् ! अनुदीर्णम्—उपशमयति तत् किम्—उत्थानेन ? यावत्—पुरुषकारपराक्रम इति वा. तद् नूनं भगवन् ! आत्मना चैव वेदयति, आत्मना चैव गर्हते ?:—अनु०

१३७. उ०—एत्थ वि सव्वे वि परिवाडी, नवरं–उदिण्णं वेएइ, णो अणुदिण्णं वेएइ, एवं जाव–पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा.

१३७. उ०—हे गौतम ! अहीं पण बधी पूर्वोक्त परिपाटी जाणवी. विशेष ए के, उदीर्णने वेदे छे पण अनुदीर्णने वेदतो नथी, तथा ए प्रमाणे यावत्–पुरुषकारपराक्रमथी वेदे छे.

१३८. प्र० से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेति, अप्पणा चेव गरहइ ?

१३८. प्र०—हे भगवन् ! ते पोतानी मेळे ज निर्जरे, गर्हे ?

१३८. उ०– एत्थ वि सव्वे वि परिवाडी, नवरं–उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं निज्जरेइ, एवं जाव–परिक्कमेइ वा.

१३८. उ०—हे गौतम ! अहीं पण बधी परिपाटी पूर्वनी प्रमाणे जाणवी. विशेष ए के, उदयानंतर पश्चात्कृत कर्मने निर्जरे छे अने ए प्रमाणे यावत्–पुरुषकारपराक्रमथी निर्जरे छे.

६. अथ तस्यैव बन्धमभिधातुमाह–*'जीवा णं भंते ! कंखा–'* इत्यादि. *'पमायपच्चय'*त्ति प्रमादप्रत्ययात् प्रमत्ततालक्षणाद्धेतोः, प्रमादश्च मद्यादिः. अथवा प्रमादग्रहणेन मिथ्यात्वा–ऽविरति-कषायलक्षणं बन्धहेतुत्रयं गृहीतम्, इष्यते च प्रमादेऽन्तर्भावोऽस्य. यदाहः–*''पमाओ य मुणिंदेहिं भणिओ अट्ठभेयओ, अण्णाणं संसओ चेव मिच्छानाणं तहेव य. रागदोसो मइब्भंसो धम्मम्मि य अणायरो जोगा णं दुप्पणिहाणं अट्ठहा वज्जियव्वओ''*त्ति. तथा *'जोगनिमित्तं च'* योगा मनःप्रभृतिव्यापाराः, ते निमित्तं हेतुर्यत्र तत्, तथा बध्नन्ति इति, क्रियाविशेषणं चेदम्, एतेन च योगाख्यश्चतुर्थः कर्मबन्धहेतुरुक्त.. चः शब्दः समुच्चये. अथ प्रमादादेरेव हेतुफलभावं दर्शयन्नाहः–*'से णं'* इत्यादि. *'पमाए किंपवहे'*त्ति प्रमादोऽसौ कस्मात् प्रवहति–प्रवर्तते इति किंप्रवहः. पाठान्तरेण किंप्रभव.. *'जोगप्पवहे'*त्ति योगो मनःप्रभृतिव्यापार, तत्प्रवहत्वं च प्रमादस्य–मद्याद्यासेवनस्य, मिथ्यात्वादित्रयस्य च मनःप्रभृतिव्यापारसद्भावे भावात्. *'वीरियप्पवहे'*त्ति वीर्यं नाम वीर्यान्तरायकर्मक्षय–क्षयोपशमसमुत्थो जीवपरिणामविशेष.. *'सरीरप्पवहे'*त्ति वीर्यं द्विधा–सकरणम्, अकरणं च. तत्राऽलेश्यस्य केवलिनः कृत्स्नयोर्ज्ञेय–दृश्ययोः केवलं ज्ञानम्, दर्शनं च उपयुञ्जानस्य योऽसौ अपरिस्पन्दोऽप्रतिघो जीवपरिणामविशेषस्तदकरणम्, तदिह नाधिक्रियते. यत्तु मनो वाक्-कायकारणसाधन. सलेश्यजीवकर्तृको जीवप्रदेशपरिस्पन्दात्मको व्यापारोऽसौ सकरणं वीर्यम्, तच्च शरीरप्रवहम्–शरीरं विना तदभावादिति. *'जीवप्पवहे'*त्ति इह यद्यपि शरीरस्य कर्मापि कारणम्, न केवल एव जीवः. तथाऽपि कर्मणो जीवकृतत्वेन जीवप्राधान्याद् 'जीवप्रवहं शरीरम्' इत्युक्तम्.

काङ्क्षामोहनीयबंध.

६. हवे ते काङ्क्षामोहनीयना बंधनुं निरूपण करवा कहे छे के.–['जीवा ण भंते ! कंखा'–इत्यादि] ['पमायपच्चय'त्ति] प्रमादरूप कारणने लइने काङ्क्षा मोहनीय कर्म बंधाय छे. ते प्रमाद मद्य वगेरे रूप छे. अथवा अहीं प्रमाद एटले मिथ्यात्व, अविरति अने कषाय ए त्रण बंधना हेतुनुं ग्रहण करवुं. अने ए प्रमाणे इष्ट पण छे. कारण के आ (हमणा कहेला) मिथ्यात्वादि त्रणनो समावेश प्रमादमा थवो संभवित पण छे. कह्युं छे केः- ''मुनींद्रोए आठ प्रकारनो प्रमाद कह्यो छे ते आ प्रमाणे. अज्ञान, संशय, मिथ्याज्ञान, राग, द्वेष, मतिभ्रंश, धर्ममां अनादर, योगो अने दुर्ध्यान; ए आठ प्रकारनो प्रमाद छोडी देवो जोइए.'' तथा ['जोगनिमित्तं च'] योगो एटले मन, वचन अने शरीरना व्यापारो; जेमां योगो निमित्त छे ते योगनिमित्त, 'योगनिमित्त' ए बंधन क्रियानुं विशेषण छे. आ सूत्र द्वारा कर्मबंधनो चोथो हेतु कह्यो छे. हवे प्रमादादिकनो परस्पर हेतुफलभाव कार्यकारण संबंध दर्शावता कहे छे के.–['से ण' इत्यादि] ['पमाए किंपवहे'त्ति] क्याथी प्रवहे ते किंपवह, अर्थात् आ प्रमाद क्यांथी थाय छे ? कोइ स्थळे 'किंप्रभव' एवो पाठ छे. तेनो अर्थ पण पूर्वनी जेवो ज छे. ['जोगप्पवहे'त्ति] योग एटले मन वगेरेनो व्यापार, प्रमादनो उत्पादक योग छे. कारण के मद्यादिकनुं आसेवन अने मिथ्यात्वादिक त्रण ए रूप प्रमाद त्यारे ज संभवी शके छे ज्यारे मन वगेरेनो व्यापार होय छे. ['वीरियप्पवहे'त्ति] वीर्य एटले वीर्यांतरायना क्षय अने क्षयोपशमथी उत्पन्न थएलो एक प्रकारनो जीवनो परिणाम. ['सरीरप्पवहे'त्ति] वीर्यना बे प्रकार छेः—सकरण अने अकरण. लेश्या विनाना अने समस्त ज्ञेय तथा दृश्य पदार्थमा केवलज्ञानना अने केवलदर्शनना उपयोगवाळा केवलिनो जे चेष्टा विनानो अस्खलित परिणाम ते अकरणवीर्य. आ प्रकरणमा ते अकरण वीर्यनो अधिकार नथी. पण सकरणवीर्यनो अधिकार छे अने ते सकरणवीर्यनुं स्वरूप आ छे. लेश्यावाळा जीवनो मन, वचन अने कायरूप साधनवाळो आत्मप्रदेशना परिस्पंदरूप जे व्यापार ते सकरणवीर्य, ते सकरणवीर्यनुं उत्पादक शरीर छे. कारण के शरीर विना ते वीर्य थइ शकतुं नथी. ['जीवप्पवहे'त्ति] शरीरनो उत्पादक जीव छे. जो के शरीरनुं कारण एकलो जीव ज नथी, कर्म पण छे, तो पण कर्मनुं कारण जीव छे माटे जीव सर्वथी प्रधान होवाथी शरीरनुं कारण पण जीव कह्यो छे.

प्रमाद अने योग.

प्रमाद शाथी ? योगथी. योग शाथी? वीर्यथी. वीर्य शाथी? शरीरथी. शरीर शाथी ?

अकरण.

सकरण.

जीवथी.

---

१. मूलच्छाया—अत्राऽपि सर्वाऽपि परिपाटी. नवरम्—उदीर्णं वेदयति,नो अनुदीर्णं वेदयति, एवं यावत्–पुरुषकारपराक्रम इति वा. तद् नूनं भगवन् ! आत्मनैव निर्जरयति, आत्मनैव गर्हते ? अत्रापि सर्वापि परिपाटी. नवरम्—उदयाऽनन्तरपश्चात्कृतं कर्म निर्जरयति, एवं यावत्–पराक्रम इति वाः–अनु०

१. प्र०छाया—प्रमादश्च मुनीन्द्रैर्भणितोऽष्टभेदकः–अज्ञानम्, संशयः, चैव मिथ्याज्ञानं तथैव च. २. रागद्वेषौ मतिभ्रंशो धर्मे चानादरो योगा दुष्प्रणिधानमष्टधा वर्जयितव्यः–अनु०

१. 'च' शब्द समुच्चयनो बोधक छेः–श्रीअभय०

७. अथ प्रसङ्गतो गोशालकमतं निषेधयन्नाहः—'एवं सइ'त्ति एवमुक्तन्यायेन, जीवस्य काङ्क्षामोहनीयकर्मबन्धकत्वे सति, अस्ति विद्यते—न तु नास्ति, यथा गोशालकमते नास्ति जीवानाम्—उत्थानादिः, पुरुषार्थाऽसाधकत्वात्, नियतित एव च पुरुषार्थसिद्धेः. यदाहः—"प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा, भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने नाऽभव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः" इति. एवं हि अप्रामाणिकाया नियतेरभ्युपगमः कृतो भवति, अध्यक्षसिद्धपुरुषकाराऽपलापश्च स्यादिति. 'उट्ठाणेइ व'त्ति 'उत्थानमिति वा' इति वाच्ये प्राकृतत्वात् सन्धि—लोपाभ्यामेवं निर्देशः. तत्र उत्थानम्—ऊर्ध्वीभवनम्, इतिरुपप्रदर्शने, वा शब्दो विकल्पे, समुच्चये वा. 'कम्मेइ व'त्ति कर्म उत्क्षेपणाऽपक्षेपणादि, 'बलेइ व'त्ति बलं शारीरः प्राणः. 'वीरिएइ व'त्ति वीर्यं जीवोत्साहः. 'पुरिसक्कारपरक्कमेइ व'त्ति पुरुषकारश्च पौरुषाऽभिमानः, पराक्रमश्च स एव साधिताऽभिमतप्रयोजनः—पुरुषकारपराक्रमः. अथवा पुरुषकारः पुरुषक्रिया, सा च प्रायः स्त्रीक्रियातः प्रकर्षवती भवतीति, तत्स्वभावत्वादिति विशेषेण तद्ग्रहणम्. पराक्रमस्तु शत्रुनिराकरणमिति. काङ्क्षामोहनीयस्य वेदनम्, बन्धश्च सहेतुक उक्तः. अथ तस्यैवोदीरणाम्, अन्यच्च तद्गतमेव दर्शयन्नाहः—'से णूणं' इत्यादि. 'अप्पणा चेव'त्ति आत्मनैव स्वयमेव जीवः, अनेन कर्मणो बन्धादिषु मुख्यवृत्त्याऽऽत्मन एवाऽधिकार उक्तः, नापरस्य. आह च:—"[१]अणुमेत्तो वि न कस्सइ बंधो परवत्थुपच्चया भणिओ" त्ति. उदीरयति करणविशेषेणाऽऽकृष्य भविष्यत्कालवेद्यं कर्म क्षपणाय उदयावलिकां प्रवेशयति, तथा 'गरहइ'त्ति आत्मनैव गर्हते निन्दति इत्यतीतकालकृतं कर्म स्वरूपतः, तत् कारणगर्हणद्वारेण वा जातविशेषबोधः सन्, तथा 'संवरइ'त्ति संवृणोति न करोति वर्तमानकालिकं कर्म स्वरूपतः, तद्धेतुसंवरणद्वारेण वा इति. गर्हादौ च यद्यपि गुर्वादीनामपि सहकारित्वमस्ति, तथापि न तेषां प्राधान्यम्, जीववीर्यस्यैव तत्र कारणत्वात्, गुर्वादीनां च वीर्योल्लासनमात्र एव हेतुत्वादिति.

७. हवे प्रसंगवशात् गोशालकना मतने निषेधता कहे छे के. ['एवं सइ'त्ति] ए प्रमाणे उक्त न्यायथी काङ्क्षामोहनीय कर्मनो बंधक जीव सिद्ध थाय छे तो पुरुषार्थसाधक उत्थानादि होवुं जोइए. पण गोशालकना मतनी पेठे न होवुं जोइए एम थवुं असंभवतुं छे. गोशालकना मतमां उत्थानादिक नथी. कारण के ते पुरुषार्थनुं साधक नथी, किंतु मात्र नियति ज पुरुषार्थनी सिद्धिमां कारण छे. कह्यु छे के. "नियतिना प्रभावे जे शुभ के अशुभ अर्थ मनुष्योने मळवानो होय छे ते अवश्य मळे छे. जीवो गमे तेवो मोटो प्रयत्न करे तो पण न थवानुं ते थतुं नथी अने थवानु छे ते फरतुं पण नथी." जो ए प्रमाणे अप्रामाणिक नियतिनो स्वीकार करवामां आवे तो प्रत्यक्षसिद्ध पुरुषार्थनो अपलाप थाय छे. ['उट्ठाणेइ व'त्ति] उत्थान एटले उभुं थवुं—उठवु. ['कम्मेइ व'त्ति] उंचु फेंकवुं अने नीचुं फेंकवु इत्यादिरूप कर्म. ['बलेइ व'त्ति] बल एटले शारीरिक प्राण. ['वीरिएइ व'त्ति] जीवनो उत्साह ते वीर्य. ['पुरिसक्कारपरक्कमेइ व'त्ति] पुरुषकार एटले पुरुषत्वाभिमान, अने इष्ट फळने साधनार जे पुरुषकार ते पराक्रम, अथवा पुरुषकार एटले पुरुषनी क्रिया अने ते क्रिया, स्वभावथी ज घणु करीने स्त्रीनी क्रिया करतां प्रकर्षवाळी होय छे माटे विशेषतापूर्वक ते पुरुषकारनुं अहीं ग्रहण करवु. अने पराक्रम एटले तो शत्रुनु निराकरण. अत्यार सुधी कांक्षामोहनीय कर्मनु वेदन अने बंध हेतुसहित कह्यो छे. हवे ते ज कर्मनी (काङ्क्षामोहनीयकर्मनी) उदीरणा अने ते संबंधि बीजु काइ देखाडवाने कहे छे के ['से णूणं' इत्यादि] ['अप्पणा चेव'त्ति] जीव पोतानी मेळे ज कर्मनु बंधनादिक करे छे. आ सूत्रथी कर्मना बंधादिमां मुख्यताए जीवनो ज अधिकार दर्शाव्यो छे, पण बीजानो नही. कह्यु छे केः- "कोइ पण जीवने जरा पण (कर्म) बंध बीजा पदार्थना निमित्तथी कह्यो नथी." उदीरे छे एटले भविष्यत्काळे वेदवाना कर्मने तेनो नाश करवा माटे करणविशेषथी खेंची उदयावलिकामां प्रवेशावे छे. तथा ['गरहइ'त्ति] कर्मना स्वरूपने जाणवाथी के तेना कारणनी गर्हा द्वारा बोध पामेलो थइ कर्मने आत्मा द्वारा ज गर्हे छे अर्थात् भूतकाळे करेल कर्मने निंदे छे. तथा ['संवरइ'त्ति] स्वरूपथी के तेना (कर्मना) हेतुने अटकाववाथी वर्तमानकाळना कर्मने संवरे छे अटकावे छे अर्थात् करतो नथी. जो के गर्हादिकमां गुर्वादिक पण सहकारिरूपे होय छे तो पण तेनी प्रधानता नथी. कारण के ते काममां जीवना वीर्यनु ज कारणत्व छे. अने गुर्वादिक तो मात्र वीर्यना उल्लासनमां ज हेतुरूप छे.

गोशालक. उत्थान. कर्म. बल. वीर्य. पुरुषकार. बंधादिमां जीवनी मुख्यता. उदीरण. गर्हण. संवरण.

८. अथोदीरणामेवाऽऽश्रित्याहः—'जं तं भंते!' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—अथोदीरयतीत्यादिपदत्रयोद्देशेऽपि कस्मात् 'तं किं उदिन्नं उदीरेइ' इत्यादिना आद्यपदस्यैव निर्देशः कृत? उच्यतेः-उदीर्णादिके कर्मविशेषणचतुष्टये उदीरणामेवाऽऽश्रित्य विशेषस्य सद्भावात्, इतरयोस्तु तदभावात्. एवम्, तर्हि उद्देशसूत्रे 'गर्हते' 'संवृणोति' इत्येतत् पदद्वयं कस्माद् उपात्तम्? उत्तरत्राऽनिर्देक्ष्यमाणत्वात् तस्येति. उच्यतेः—कर्मण उदीरणायां गर्हा—संवरणे प्राय उपायावित्यभिधानार्थम्, एवमुत्तरत्रापि वाच्यमिति. प्रश्नार्थश्चेह उत्तरव्याख्यानाद् बोद्धव्यः. तत्र 'नो उदिन्नं उदीरेइ'त्ति उदीर्णत्वादेव, उदीर्णस्याप्युदीरणे उदीरणाऽविरामप्रसङ्गात्. 'नो अणुदिन्नं उदीरेइ'त्ति इहाऽनुदीर्णम्—चिरेण भविष्यदुदीरणम्, अभविष्यदुदीरणं च तन्नोदीरयति, तद्विषयोदीरणायाः संप्रति, अनागतकाले चाभावात्. 'अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ'त्ति अनुदीर्णं स्वरूपेण, किन्तु अनन्तरसमये एव यदुदीरणाभविकं तद् उदीरयति, विशिष्टयोग्यताप्राप्तत्वात्, तत्र भविष्यतीति भवा, सैव भविका, उदीरणा भविका यस्येति प्राकृतत्वाद् उदीरणाभविकम्, अन्यथा 'भविकोदीरणम्' इति स्यात्, उदीरणायां वा भव्यं योग्यम्—उदीरणाभव्यमिति. 'नो उदयाणंतरपच्छाकडं'ति उदयेनाऽनन्तरसमये पश्चात् कृतमतीतता नीत यत् तत् तथा, तदपि नोदी-

---

१. प्र॰छायाः—अणुमात्रोऽपि न कस्यचिद् बन्धः परवस्तुप्रत्ययाद् भणितः—अनु॰

१. 'उट्ठाणमिइ' एम मूकवाने बदले जे 'उट्ठाणेइ' एम मूक्युं छे ते 'म'नो लोप करी अने अन्त्यस्वर साथे 'इ' नो संधि करीने मूक्युं छे. २. 'इति' शब्द 'उपदर्शन' सूचक छे. ३. 'वा' शब्द विकल्प के समुच्चयनो बोधक छे:—श्रीअभय॰

रयति, तस्याऽतीतत्वात्–अतीतस्य चाऽसत्त्वाद्–असतश्चानुदीरणीयत्वादिति. इह च यद्यपि उदीरणादिषु काल–स्वभावादीनां कारणत्वमस्ति, तथापि प्राधान्येन पुरुषवीर्यस्यैव कारणत्वमुपदर्शयन्नाह:–'जं तं' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–'उत्थानादिना उदीरयति' इत्युक्तम्, तत्र च यदापन्नं तदाह:–'एवं सइ'त्ति एवमुत्थानादिसाध्ये उदीरणे सतीत्यर्थः. शेषं तथैव. काङ्क्षामोहनीयस्य उदीरणा उक्ता. अथ तस्यैवोपशमनमाऽऽह:–'से णूणं' इत्यादि. उपशमनं मोहनीयस्यैव, यदाह:–"[1]मोहस्सेवोवसमो, खओवसमो चउण्हं घाईणं, उदय–क्खय–परिणामा अट्ठण्ह वि होंति कम्माणं". उपशमश्च उदीरणस्य क्षयः. अनुदीर्णस्य च विपाकतः, प्रदेशतश्चाऽननुभवनम्–सर्वथैव विष्कम्भितोदयत्वमित्यर्थः. अयं चानादिमिथ्यादृष्टेरौपशमिकसम्यक्त्वस्य लाभे, उपशमश्रेणिगतस्य चेति. 'अणुदिन्नं उवसामेति'त्ति उदीरणस्य त्ववश्यंवेदनादुपशमनाऽभाव इति. उदीर्णं सद् वेद्यते इति वेदनसूत्रम्. तत्र 'उदिन्नं वेएइ'त्ति अनुदीर्णस्य वेदनाऽभावात्, अथाऽनुदीर्णमपि वेदयति तर्हि उदीर्णाऽनुदीर्णयोः को विशेषः स्यादिति ? वेदितं सन्निर्जीर्यते इति निर्जरासूत्रम्. तत्र 'उदयअणंतरपच्छाकडं'ति उदयेनानन्तरसमये यत् पश्चात्कृतम्–अतीततां गमितं तत् तथा, तद् निर्जरयति प्रदेशेभ्यः शातयति नाऽन्यत्, अननुभूतरसत्वादिति. उदीरणो-पशम–वेदना–निर्जरणसूत्रोक्तार्थसंग्रहगाथा:–"[2]तइएण उदीरेंति, उवसामेंति य पुणो वि बीएणं, वेइंति निज्जरंति य पढमचउत्थेहिं सव्वे वि."

शंका, समाधान.

८. हवे उदीरणाने आश्रीने ज कहे छे केः ['जं तं भंते !' इत्यादि] ए सूत्र व्यक्त छे. विशेष आ छे केः शंका जेम मूळकारे मूळमां ['जं तं अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहेइ, अप्पणा चेव संवरेइ, तं किं उदिण्णं उदीरेइ, अणुदिन्नं उदीरेइ, अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ, उदयाणंतरपच्छाकडं कम्मं उदीरेइ.'] आ सूत्र लख्युं छे तेम आ ['तं किं उदिण्णं गरहेइ, उदिण्णं संवरेइ'] सूत्र पण केम न लख्युं ? अर्थात् 'उदीर्ण' साथे 'उदीरेइ' ए प्रथम पद ज जोड्युं पण बाकीना 'गरहेइ' अने संवरेइ' ए बे पद केम न जोड्यां ? समा० –उदीर्ण, अनुदीर्ण, अनुदीर्ण, तथा उदीरणाभव्य अने उदयानंतरपश्चात्कृत ए चार विशेषणमां उदीरणाने लईने ज विशेषनो सद्भाव छे. माटे ए चारे साथे 'उदीरेइ' ए क्रियापद जोड्युं छे पण ए चारे विशेषणमांथी एक पण विशेषणनो 'संवरेइ' के 'गरहेइ' ए बन्ने क्रियापद साथे संबंध नथी. माटे ते बन्ने क्रियापदो ते चार विशेषण साथे जोड्यां नथी.

शंका, समाधान.

शंका ज्यारे उदीरणा साथे 'गरहेइ' के 'संवरेइ' ए बे क्रियाओनो कांई संबंध नथी तो आगळ कहेल उद्देशक सूत्रमां 'उदीरेइ' 'गरहेइ' अने 'संवरेइ' ए त्रणे क्रियापदो शा माटे साथे मूक्यां ? मात्र एकलुं 'उदीरेइ' ज क्रियापद मूकवुं हतुं. समा. जो के पूर्वोक्त शंका समुचित छे. तो पण 'गरहेइ' अने 'संवरेइ' ए बे क्रियापदो 'उदीरेइ' साथे मूक्यां छे तेनुं कारण आ छेः गर्हण अने संवरण ए बन्ने उदीरणाना साधन छे एम जणाववा माटे पूर्वोक्त प्रकारे उल्लेख कर्यो छे. ए प्रमाणे सर्वत्र पण समजवुं. उत्तर (जवाब) सूत्रना व्याख्यानथी प्रश्ननो अर्थ समजवो. तेमां ['नो उदिण्णं उदीरेइ'त्ति] उदीर्णने उदीरतो नथी. कारण के ते उदीर्ण उदीरेल–ज छे अने उदीर्णनुं पण फरीथी उदीरण करवाथी उदीरणानो पार आवशे नहीं. ['नो अणुदिन्नं उदीरेइ'त्ति] अनुदीर्णने उदीरतो नथी, अर्थात् जे कर्मनी उदीरणा घणी मोडी थवानी छे तथा जे कर्मनी उदीरणा भविष्यमां थवानी नथी ते अनुदीर्ण कर्म संबंधी उदीरणा वर्तमान के भविष्यत्काळमां होइ शकती नथी. ['अणुदिन्नं उदीरणाभवियं कम्मं उदीरेइ'त्ति] जो के स्वरूपथी अनुदीर्ण छे तो पण तुरतमां ज जे कर्म उदीरणाने योग्य होय ते कर्म 'उदीरणाभविक' कहेवाय अने तेने उदीरे छे. कारण के ते कर्म विशिष्ट योग्यताने प्राप्त छे.

उदीरणाभव्य.

'उदीरणाभविक' शब्दनो अर्थ आ छेः थनारुं होय ते 'भविक' कहेवाय अने जेनी उदीरणा थनारी होय ते 'उदीरणाभविक' कहेवाय. अथवा जे कर्म उदीरणाने योग्य होय ते 'उदीरणाभव्य' कहेवाय. ['नो उदयाणंतरपच्छाकडं'ति] जे कर्म उदयमां आवी गएलुं होय तेने पण उदीरतो नथी.

अतीत असत्.

कारण के ते अतीतरूप छे अने अतीतरूप वस्तु असद्रूप होवाथी उदीरणीय होती नथी. जो के अहीं उदीरणादिक कार्योमां काळ तथा स्वभाव वगेरेनी कारणता होय छे तो पण प्रधानपणे तो तेमां जीवनुं वीर्य ज कारणरूप छे. ए वातने दर्शावता ग्रंथकार कहे छे केः–['जं तं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, 'उत्थानादिवडे उदीरे छे' एम कहेवाथी जे सार आव्यो ते जणावे छेः ['एवं सइ'त्ति] ज्यारे उदीरण उत्थानादिथी साध्य छे त्यारे. बाकी बधुं ते ज प्रकारे समजवुं. अत्यार सुधी कांक्षामोहनीय कर्मनी उदीरणा कही, हवे ते ज कर्मना उपशमनने कहे छे केः–['से णूणं' इत्यादि] उपशमन तो

गाथा.

मोहनीयनुं ज होय छे. कह्युं छे केः "उपशम तो मोहनो ज होय छे अने चार घाती कर्मनो क्षयोपशम होय छे तथा आठे कर्मनो उदय, क्षय अने परिणाम होय छे." 'उपशम' शब्दनो अर्थ आ छेः– उदीर्ण कर्मनो क्षय अने अनुदीर्ण कर्मनो विपाकथी तथा प्रदेशथी तद्दन ज अननुभव अर्थात्

उपशम.

आच्छादित उदयपणुं. अनादि मिथ्यादृष्टिवाळा जीवने ज्यारे औपशमिकसम्यक्त्वनो लाभ थाय त्यारे अने जे जीव उपशम श्रेणीमां गएल होय तेने आ उपशम होय छे. ['अणुदिन्नं उवसामेइ'त्ति] उदीर्ण कर्म वेदाएलुं होवाथी तेनुं उपशमन होतुं ज नथी. उदीरणामां आवतुं कर्म वेदाय छे. माटे हवे वेदन विषयक सूत्र कहे छेः तेमां ['उदिन्नं वेएइ'त्ति] उदीर्ण कर्मने वेदे छे. कारण के अनुदीर्ण कर्म वेदातुं नथी. कदाच अनुदीर्ण कर्म पण वेदाय तो उदीर्ण अने अनुदीर्ण कर्ममां शो फेर रहे ? वेदवामां आवतुं कर्म निर्जराय छे. माटे हवे निर्जरासूत्र कहे छेः तेमां ['उदयअणंतरपच्छाकडं'ति] उदयमां आवेलुं कर्म जीव प्रदेशोथी खरी पडे छे पण बीजुं नहीं. कारण के बीजा कर्मनो रस अनुभवायो नथी. हवे उदीरण, उपशमन, वेदन अने निर्जरा संबंधी पूर्वोक्त सूत्रना अर्थोने संग्रह करनारी गाथा कहे छेः–त्रीजामां उदीरे छे, बीजामां उपशमावे छे. अने प्रथममां तथा चोथामां सर्व जीवो वेदे छे तथा निर्जरे छे.

संग्रह.

---

१. प्र० छाया:—मोहस्यैवोपशमः, क्षयोपशमश्चतुर्णां घातिनाम्, उदय–क्षय–परिणामा अष्टानामपि भवन्ति कर्मणाम्. २. तृतीयेनोदीरयन्ति, उपशमयन्ति च पुनरपि द्वितीयेन, वेदयन्ति, निर्जरयन्ति च प्रथम–चतुर्थैः सर्वेऽपिः–अनु०

नैरयिकादि तथा श्रमणो.

१३९. प्र०—नेरइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति?

१३९. उ०—जहा ओहिआ जीवा तहा नेरइया, जाव–थणियकुमारा.

१४०. प्र०—पुढविकाइया णं भंते ! कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति ?

१४०. उ०—हंता, वेएंति.

१४१. प्र०—कह णं भंते ! पुढविक्काइया कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति ?

१४१. उ०—गोयमा ! तेसि णं जीवाणं णो एवं तक्का इ वा, सण्णा इ वा, पण्णा इ वा, मणे इ वा, वई त्ति वा अम्हे ण कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएमो, वेएंति पुण ते.

१४२. प्र०—से णूणं भंते ! तमेव सच्चं, नीसंकं जं जिणेहि पवेइअं ?

१४२. उ० सेसं तं चेव, जाव–पुरिसक्कारपरिक्कमेइ वा; एवं जाव–चउरिंदियाणं–पंचिंदियतिरिक्खजोणिआ जाव–वेमाणिआ जहा ओहिआ जीवा.

१४३. प्र० अत्थि णं भंते ! समणा वि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ?

१४३. उ० हंता, अत्थि.

१४४. प्र०—कह णं भंते ! समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ?

१४४. उ०—गोयमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं नाणंतरेहिं, दंसणंतरेहिं, चरित्तंतरेहिं, लिंगंतरेहिं, पवयणंतरेहिं, पावयणंतरेहिं, कप्पंतरेहिं, मग्गंतरेहिं, मयंतरेहिं, भंगंतरेहिं, णयंतरेहिं, नियमंतरेहिं, पमाणंतरेहिं संकिआ, कंखिआ, वितिकिच्छिआ, भेअसमावन्ना, कलुससमावन्ना एवं खलु समणा, निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेइंति.

१३९. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे ?

१३९. उ०—हे गौतम ! जेम औधिक–सामान्य–जीवो कह्या तेम नैरयिको पण जाणवा अने ए प्रमाणे यावत्–स्तनितकुमारो सुधी जाणवुं.

१४०. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिको कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे ?

१४०. उ०—हे गौतम ! हा, वेदे छे.

१४१. प्र०—हे भगवन् ! ते पृथिवीकायिक जीवो कांक्षामोहनीय कर्मने केवी रीते वेदे छे ?

१४१. उ०—हे गौतम ! 'अमे कांक्षामोहनीय कर्म वेदीए छीए' ए प्रमाणे ते जीवोने–पृथिवीकायिकोने तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन के वचन नथी, पण तेओ तेने वेदे छे.

१४२. प्र०—हे भगवन् ! ते निःशंक अने सत्य छे के जे जिनोए प्रवेद्य छे ?

१४२. उ०—गौतम ! बाकीनुं पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं–हा, जिनोए जे जणाव्युं छे–ते निःशंक अने सत्य छे यावत्–पुरुषकार पराक्रमवडे निर्जरे छे. ए प्रमाणे यावत्–चार इन्द्रियवाळा जीवो सुधी जाणवुं. जेम सामान्य जीवो कह्या तेम पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिको अने यावत्–वैमानिको कहेवा.

१४३. प्र० हे भगवन् ! श्रमण निर्ग्रंथो पण कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे ?

१४३. उ०—हे गौतम ! हा, वेदे छे.

१४४. प्र०—हे भगवन् ! श्रमण निर्ग्रंथो कांक्षामोहनीय कर्मने केवी रीते वेदे छे ?

१४४. उ० हे गौतम ! ते ते ज्ञानांतर, दर्शनांतर, चारित्रांतर, लिंगांतर, प्रवचनांतर, प्रावचनिकांतर, कल्पांतर, मार्गांतर, मतांतर, भंगांतर, नयांतर, नियमांतर अने प्रमाणांतरवडे शंकावाळा, कांक्षावाळा, विचिकित्सावाळा, भेदसमापन्न अने कलुषसमापन्न थइने, ए प्रमाणे ते श्रमण निर्ग्रंथो पण कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे छे.

---

१. मूलच्छायाः—नैरयिका भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति ? यथौधिका जीवास्तथा नैरयिकाः, यावत्–स्तनितकुमाराः. पृथ्वीकायिका भगवन् ! काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति ? हन्त, वेदयन्ति. कथं भगवन् ! पृथ्वीकायिका: काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति ? गौतम ! तेषां जीवानां नो एवं तर्क इति वा, संज्ञेति वा, प्रज्ञेति वा, मन इति वा, वच इति वा–वयं काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयामः, वेदयन्ति पुनस्ते. तद् नूनं भगवन् ! तदेव सत्यम्, निःशङ्कं यद् जिनैः प्रवेदितम् ? शेषं तदेव, यावत्–पुरुषकारपराक्रम इति वा; एवं यावत्–चतुरिन्द्रियाणाम्. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका यावद्–वैमानिका यथौधिका जीवाः. अस्ति भगवन् ! श्रमणा अपि निर्ग्रन्थाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति ? हन्त, अस्ति. कथं भगवन् ! श्रमणा निर्ग्रन्थाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्ति ? गौतम ! तैस्तैः कारणैः–ज्ञानाऽन्तरैः, दर्शनान्तरैः, चारित्राऽन्तरैः, लिङ्गान्तरैः, प्रवचनाऽन्तरैः, प्रावचनिकाऽन्तरैः, कल्पाऽन्तरैः, मार्गाऽन्तरैः, मताऽन्तरैः, भङ्गाऽन्तरैः, नयाऽन्तरैः, नियमाऽन्तरैः, प्रमाणाऽन्तरैः शङ्किताः, काङ्क्षिताः, विचिकित्सिताः, भेदसमापन्नाः, कलुषसमापन्नाः एवं खलु श्रमणा निर्ग्रन्थाः काङ्क्षामोहनीयं कर्म वेदयन्तिः–अनु०

१४५. प्र०—से णूणं भंते ! तमेव सच्चं, नीसंकं जं जिणेहिं पवेदितं ?

१४५. उ०—हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं, नीसंकं, एवं जाव–पुरिसक्कारपरक्कमेइ वा.

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति.

१४५. प्र०—हे भगवन् ! ते ज सत्य अने निःशंक छे, जे जिनोए जणाव्युं छे?

१४५. उ०—हे गौतम ! हा, ते ज सत्य अने निःशंक छे, जे जिनोए प्रवेद्युं छे. यावत्—पुरुषकारपराक्रमथी निर्जरे छे. हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, एम कही यावत् विचरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये तइओ उद्देसो सम्मत्तो.

९. अथ काङ्क्षामोहनीयवेदनादिकं निर्जरान्तं सूत्रप्रपञ्चं नारकादिचतुर्विंशतिदण्डकैर्नियोजयन्नाहः—'नेरइआ णं' इत्यादि. इह च 'जहा ओहिया जीवा' इत्यादिना 'हंता वेअंति. कहं णं भंते ! नेरइआ ण कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएंति ? गोयमा. तेहिं तेहिं कारणेहिं' इत्यादि-सूत्रं निर्जरासूत्रान्तं स्तनितकुमारप्रकरणान्तेषु प्रकरणेषु सूचितम्. तेषु च यत्र यत्र जीवपदं प्रागधीतं तत्र तत्र नारकादिपदम्—अध्येतव्य-मिति. पञ्चेन्द्रियाणामेव शङ्कितत्वादयः काङ्क्षामोहनीयवेदनप्रकारा घटन्ते. नैकेन्द्रियादीनाम्, अतस्तेषां विशेषेण तद्वेदनप्रकारदर्शनायाहः—'पुढविक्काइयाणं' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'एवं तक्काइ व'त्ति एवं वक्ष्यमाणोल्लेखेन, तर्को—विमर्शः, स्त्रीलिङ्गनिर्देशश्च प्राकृतत्वात्. 'सन्नाइ व'त्ति संज्ञाऽर्थावग्रहरूपं ज्ञानम्. 'पण्णाइ व'त्ति प्रज्ञा—अशेषविशेषविषयं ज्ञानमेव. 'मणेइ व' त्ति मनः स्मृत्यादिविशेषमतिभेदरूपम्. 'वईइ व'त्ति वाग् वचनम्. 'सेसं तं चेव' त्ति शेषं तदेव यथौघिकप्रकरणेऽधीतम्, तच्चेदम्—'हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं, नीसंकं जं जिणेहि पवेइयं. से णूणं भंते ! एवं मणं धारेमाणे' इत्यादि तावद्वाच्यं यावत् 'से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेइ. अप्पणा चेव गरहइ'इत्यादिसूत्रस्य 'पुरिसक्कारपरक्कमेइ व'त्ति पदम्.'एवं जाव—चउरिंदिय'त्ति पृथिवीकायप्रकरणवदप्कायादिप्रकरणानि चतुरिन्द्रियप्रकरणान्तान्यध्येयानि. तिर्यक्पञ्चेन्द्रियप्रकरणादीनि तु वैमानिकप्रकरणान्तानि औधिकजीवप्रकरणवत्तदभिलापेनाऽध्येयानीत्यत एवाहः—'पचेंदिअ' इत्यादि. भवतु नाम शेषजीवानां काङ्क्षामोहनीयवेदनम्, निर्ग्रन्थानां पुनस्तन्न संभवति, जिनागमाऽवदातबुद्धित्वात् तेषाम्, इति प्रश्नयन्नाहः—'अत्थि णं' इत्यादि काक्वाध्येयम्. अस्ति विद्यतेऽयं पक्षो यदुत श्रमणा व्रतिनः. अपिशब्दः श्रमणानां काङ्क्षामोहनीयस्यावेदनसंभावनार्थः, ते च शाक्यादयोऽपि भवन्तीत्याहः—निर्ग्रन्थाः सबाह्याऽभ्यन्तरग्रन्थाद् निर्गता. साधव इत्यर्थः. 'णाणंतरेहिं'ति एकस्माद् ज्ञानादन्यानि ज्ञानानि- ज्ञानान्तराणि, तैर्ज्ञानविशेषैर्ज्ञानविशेषेषु वा शङ्किता इत्यादिभिः संबन्धः. एवं सर्वत्र.

चोवीशे दंडक.

९. हवे कांक्षामोहनीय कर्मना वेदनथी मांडीने निर्जरा सुधीना सूत्र समूहने नारकादि चोवीश दंडक साथे जोडतां कहे छे केः—['नेरइआ'णं इत्यादि] ['जहा ओहिया जीवा'] इत्यादि सूत्रवडे अही आ ['हंता वेअंति. कहं ण भंते! नेरइआ ण कंखामोहणिज्जं कम्मं वेएन्ति ? गोअमा ! तेहिं तेहिं कारणेहिं' इत्यादि] निर्जरा सुधीनुं सूत्र स्तनितकुमार सुधीना प्रकरणोमां जाणवानी भलामण करी छे. तेमा ज्यां ज्यां आगळना सूत्रोमां 'जीवपद' कह्यु छे त्यां त्यां 'जीवपद'ने बदले नारकादि पद कहेवा. जे शंकितत्वादिरूप कांक्षामोहनीय कर्मने वेदवाना प्रकारो छे ते पंचेंद्रियोने ज संभवे छे, परतु एकेंद्रियादिक जीवोने ते होता नथी. माटे हवे तेओना वेदवाना प्रकारने विशेषतापूर्वक दर्शावता कहे छे—['पुढविक्काइआणं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, ['एव तक्का इ व'त्ति] 'आम थशे' एवा स्वरूपवाळो तर्क. ['सन्ना इ व'त्ति] संज्ञा एटले अर्थावग्रहस्वरूप ज्ञान. [पण्णा इ व'त्ति] प्रज्ञा एटले बधा विशेष संबंधी ज्ञान. [मणे इ व'त्ति] मन एटले एक प्रकारना स्मरणादिकरूप मतिज्ञानना भेदो. ['वई इ व'त्ति] वचन. [सेसं त चेव'त्ति] बाकी बधुं औघिक प्रकरणमां कह्या प्रमाणे जाणवुं. ते आ प्रमाणे छे —['हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइअं. से णूणं भंते ! एव मण धारेमाणे'] इत्यादि सूत्र कहेवु अने ते ['से णूणं भंते ! अप्पणा चेव निज्जरेइ, अप्पणा चेव गरहइ'] इत्यादि सूत्रना आ [पुरिसक्कारपरक्कमे इ व'त्ति] पद सुधी कहेवुं. ['एवं जाव चउरिंदिय'त्ति] पृथिवीकायिकना प्रकरणनी पेठे अप्कायिकादिकना प्रकरणो कहेवां अने ते प्रमाणे यावत् चार इंद्रियवाळा जीवो सुधी जाणवुं. तिर्यंचपचेंद्रियना प्रकरणथी मांडी वैमानिक सुधीना प्रकरणो औघिक जीवना प्रकरणनी पेठे कहेवां मात्र 'औघिक जीव'ने बदले ते ते जीवोनो अभिलाप करवो. माटे ज कहे छे के ['पचेंदिअ' इत्यादि] कांक्षामोहनीय कर्मनुं वेदन निर्ग्रंथ सिवायना बाकी बधा जीवोने हो तो हो. पण ते वेदन निर्ग्रंथ जीवोने संभवी शकतुं नथी. कारण के निर्ग्रंथोनी बुद्धि जिनना आगमथी पवित्र थएली होय छे.

श्रमणो कांक्षामोहने वेदे?

माटे हवे ते विषे प्रश्न पूछतां कहे छे केः ['अत्थि णं भंते ! समणा वि' इत्यादि] 'साधुओ पण कांक्षामोहनीय कर्मने वेदे' ए पक्ष पण छे? मूलसूत्रमां 'साधु'अर्थवाळा बे शब्द मूक्या छेः श्रमण अने निर्ग्रंथ. अहीं बन्ने शब्द साथे मूकवानुं प्रयोजन आ छेः—शाक्यो—बुद्धना शिष्यो—वगेरे पण 'श्रमण' कहेवाय छे, तो तेने अहीं न लेवा माटे 'श्रमण' साथे 'निर्ग्रंथ' विशेषण मूक्युं छे. बहारना अने अंतरना ग्रंथ परिग्रह- थी नीकळेला—अलग थएला—ते निर्ग्रंथ अर्थात् साधु.

ज्ञानान्तर.

['णाणंतरेहिं'ति] एक ज्ञानथी बीजां ज्ञानो ते ज्ञानांतर. ते ज्ञानांतरोवडे के ज्ञानांतरो विषे शंकाने पामेला इत्यादि साथे संबंध करवो अने ए प्रमाणे सर्वत्र समजवुं.

१. मूलच्छायाः—तद् नूनं भगवन् ! तदेव सत्यम्, निःशङ्कं यद् जिनैः प्रवेदितम् ? हन्त, गौतम ! तदेव सत्यम्, निःशङ्कम्, एवं यावत्—पुरुषकारपराक्रम इति वा. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इतिः—अनु०

१. अहीं स्त्रीलिंगनो निर्देश प्राकृतना धोरणे छेः—श्रीअभय०

१०. तेषु च एवं शङ्कादयः स्युः—यदि नाम परमाण्वादिसकलरूपिद्रव्यावसानविषयग्राहिकत्वेन संख्यातीतरूपाण्यवधिज्ञानानि सन्ति, तत् किमपरेण मनःपर्यायज्ञानेन? तद्विषयभूतानां मनोद्रव्याणामवधिनैव दृष्टत्वात्, उच्यते चाऽऽगमे मनःपर्यायज्ञानमिति किमत्र तत्त्वम्? इति ज्ञानतः शङ्का. इह समाधिः—यद्यपि मनोविषयमप्यवधिज्ञानमस्ति, तथापि न मनःपर्यायज्ञानमवधावन्तर्भवति, भिन्नस्वभावत्वात्. तथाहिः—मनःपर्यायज्ञानं मनोमात्रद्रव्यग्राहकमेवाऽदर्शनपूर्वकं च, अवधिज्ञानं तु किंचिद्मनोद्रव्यव्यतिरिक्तद्रव्यग्राहकम्, किञ्चिच्चोभयग्राहकम्, दर्शनपूर्वकं च, नतु केवलमनोद्रव्यग्राहकमित्यादि बहु वक्तव्यम्, अतोऽवधिज्ञानाऽतिरिक्तं भवति मनःपर्यायज्ञानमिति. तथा दर्शनं सामान्यबोधः, तत्र यदि नामेन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तः सामान्यार्थविषयो बोधो दर्शनम्, तदा किमेकश्चक्षुर्दर्शनम् अन्यस्त्वचक्षुर्दर्शनम्? अथेन्द्रियाऽनिन्द्रियभेदाद् भेदः, तदा चक्षुष इव श्रोत्रादीनामपि दर्शनभावात् षड् इन्द्रियनोइन्द्रियजानि दर्शनानि स्युः, न द्वे एवंति. अत्र समाधिः—सामान्यविशेषात्मकत्वाद् वस्तुनः क्वचिद्विशेषतः तन्निर्देशः, क्वचिच्च सामान्यतः. तत्र चक्षुर्दर्शनमिति विशेषतः, अचक्षुर्दर्शनमिति च सामान्यतः. यच्च प्रकारान्तरेणापि निर्देशस्य संभवे चक्षुर्दर्शनम्—अचक्षुर्दर्शनं चेत्युक्तं तद् इन्द्रियाणामप्राप्तकारित्व—प्राप्तकारित्व—विभागात्, मनसस्तु अप्राप्तकारित्वेऽपि प्राप्तकारीन्द्रियवर्गस्य तदनुसरणीयस्य बहुत्वात् तद्दर्शनस्याऽचक्षुर्दर्शनशब्देन ग्रहणमिति. अथवा दर्शनं सम्यक्त्वम्, तत्र शङ्का—*"मिच्छत्तं जमुदिन्नं त खीणं, अणुदियं च उवसंतं"* इत्येवंलक्षणं क्षायोपशमिकम्. औपशमिकमप्येवं—लक्षणमेव, यदाहः—*खीणम्मि उइन्नम्मि अणुदिज्जंते य सेसमिच्छत्ते, अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसमसम्मं लहइ जीवो."* ततोऽनयोर्न विशेषः, उक्तश्चासौ इति. समाधिश्च—क्षयोपशमो हि उदीर्णस्य क्षयः, अनुदीर्णस्य च विपाकानुभवापेक्षया उपशमः, प्रदेशानुभवतस्तूदयोऽस्त्येव, उपशमे तु प्रदेशानुभवोऽपि नास्तीति. उक्तं च—*"वेएइ संतकम्मं खओवसमिएसु नाणुभावं सो, उवसंतकसाओ पुण वेएइ ण संतकम्मं"ति.*

१०. तेओ विषे शंकादिक आ प्रमाणे छे —शंका – अवधिज्ञानथी मनःपर्यायज्ञानने जूदु कहेवानु शुं कारण? कारण के परमाणुथी मांडी बधां रूपवाळां द्रव्यो सुधीना विषयोने ग्रहण करनारु अवधिज्ञान छे माटे ते (अवधिज्ञान) असंख्य प्रकारनु छे. अने मनःपर्यायज्ञाननो विषय मात्र मनोद्रव्यो ज छे. ते मनोद्रव्यो अवधिज्ञानवडे पण जोवाइ शकाय छे माटे मनोद्रव्योने जाणनारु अवधिज्ञानथी जूदुं मनःपर्याय ज्ञान होवानुं कारण नथी. तो पण शास्त्रोमां जूदुं मनःपर्याय ज्ञान शा माटे कह्यु अर्थात् तेने जूदु कहेवामा तत्त्व शु छे? ए प्रमाणे ज्ञानांतर विषे शका छे. स०—जो के अवधिज्ञानवडे मनोद्रव्यो पण उपलब्ध थइ शके छे. तो पण मनःपर्यायज्ञान अवधिज्ञानना भेदोमा समाइ शकतु नथी. कारण के अवधि अने मनःपर्यायज्ञाननो जूदो जूदो स्वभाव छे. तेओनो भिन्न स्वभाव आ रीतिए छे —मन पर्यायज्ञान मात्र मनोद्रव्योनु ज ग्राहक छे अने ते ज्ञानमां प्रथम दर्शन (सामान्य ज्ञान) होतु नथी अने केटलुक अवधिज्ञान मन सिवायना द्रव्योनु ग्राहक छे तथा केटलुक अवधिज्ञान मनने अने बीजा द्रव्योने पण ग्रहण करनारुं होय छे तथा अवधिज्ञानमा सौथी प्रथम दर्शन होय छे, पण कोइ अवधिज्ञान एवु नथी के जे मात्र मनोद्रव्यनुं ज ग्राहक होय. इत्यादि आ संबंधे घणुं कहेवानुं छे. तात्पर्य ए छे के, पूर्व प्रमाणे अवधिज्ञान अने मनःपर्याय ज्ञानना स्वभावमा जूदाइ छे माटे मनःपर्यायज्ञान अवधिज्ञान करतां जूदुं कहेवुं जोइए. दर्शन विषे शंका. तथा दर्शन एटले सामान्यज्ञान, तेमा जो इंद्रियनिमित्तक अने अनिंद्रिय (मनो) निमित्तक सामान्य अर्थविषयक ज्ञानने दर्शन कहेवामां आवे तो एक चक्षुर्दर्शन अने बीजु अचक्षुर्दर्शन एम बे भेद ज शा माटे होइ शके? जो इंद्रियजन्य अने अनिंद्रियजन्य ए प्रकारे दर्शनना भेद करवाना होय तो चक्षुर्दर्शननी पेठे श्रोत्रदर्शन, घ्राणदर्शन, रसनादर्शन, स्पर्शदर्शन अने मनोदर्शन ए प्रकारे दर्शनना छ भेद थवा जोइए, पण बे भेद न ज थवा जोइए. स० -वस्तुना बे प्रकार छे सामान्य अने विशेष, माटे कोइ स्थळे सामान्यप्रकारे वस्तुनो निर्देश थाय छे अने कोइ स्थळे विशेष प्रकारे वस्तुनो निर्देश थाय छे. तेमां अहीं 'चक्षुर्दर्शन' ए निर्देश विशेषता पूर्वक छे अने 'अचक्षुर्दर्शन' ए निर्देश सामान्य प्रकारे छे. वळी दर्शनना विभाग बीजी रीतिए पण कही शकाय छे. तो पण जे 'चक्षुर्दर्शन अने अचक्षुर्दर्शन' ए प्रकारे दर्शनना भेद कर्या छे तेमां कारणरूपे इंद्रियोना बे विभाग छे. ते आ छे. प्राप्यकारी अने अप्राप्यकारी. जो के मन तो अप्राप्यकारी छे तो पण मनने अनुसरनारी प्राप्यकारी इंद्रियो घणी छे, माटे मनोदर्शन अने आंख सिवायनी बीजी दरेक इंद्रियोनु दर्शन अचक्षुर्दर्शन शब्दथी लेवाय छे अने आंखनुं दर्शन चक्षुर्दर्शन शब्दथी समजवानुं छे. अथवा दर्शन एटले 'सम्यक्त्व' लेवुं. अने ते विषे शंका आ प्रमाणे छे.-दर्शनना बे विभाग छे—क्षायोपशमिक अने औपशमिक. तेमां क्षायोपशमिकनुं स्वरूप आ छेः-"उदीर्ण थएलुं मिथ्यात्व क्षीण थयुं होय अने अनुदीर्ण मिथ्यात्व उपशांत—टाढुं पडी गएलुं—होय" त्यारे क्षायोपशमिक दर्शन—सम्यक्त्व—होइ शके छे. औपशमिकनुं स्वरूप आ छेः- "उदीर्ण थएलु मिथ्यात्व क्षीण थयुं होय, अने बाकीनुं मिथ्यात्व अनुदीर्ण होय त्यारे मात्र अंतर्मुहूर्त सुधी जीव औपशमिक सम्यक्त्वने पामे छे" हवे क्षायोपशमिक दर्शननुं अने औपशमिक दर्शननुं लक्षण जोतां तो ते बेमां जरापण तफावत भासतो नथी अने ते बन्नेमां तफावत तो कह्यो छे. तेनुं शुं कारण? समाः—क्षयोपशम अने उपशमनुं लक्षण जूदुं ज छे. उदीर्णनो क्षय अने अनुदीर्णनो विपाकानुभवनी अपेक्षाए उपशम होय पण प्रदेशानुभवनी अपेक्षाए तो उदय ज होय तेने 'क्षयोपशम' कहे छे. अने उपशममां तो प्रदेशानुभव ज नथी अर्थात् क्षयोपशममां प्रदेशानुभव होय छे अने उपशममां ते नथी होतो ए रीतिए ए बेमां तफावत छे. कह्यु छे केः "क्षायोपशमिक भावमां विपाक—अनुभाव—सिवाय सत्—विद्यमान -कर्म वेदाय छे अर्थात् विपाकानुभवपूर्वक वेदातुं नथी अने उपशांतकषायवाळो जीव तो सत् कर्मने पण वेदतो नथी."

अवधिथी मनःपर्याय जूदुं शा माटे?

जूदी जातनु छे माटे.

तेओनी जूदाइ.

दर्शन विषे शंका.

समाधान.

दर्शन—सम्यक्त्व.

क्षयोपशम अने उपशमनी जूदाइ.

---

१. प्र० छा:—मिथ्यात्वं यद् उदीर्णं तत् क्षीणम्, अनुदितं चोपशान्तम्. २. क्षीणे उदीर्णे अनुदीयमाने च शेषमिथ्यात्वे, अन्तर्मुहूर्तमात्रमुपशमसम्यक्त्वं लभते जीवः. ३. वेदयति सत्कर्म क्षायोपशमिकेषु नानुभावं सः, उपशान्तकषायः पुनर्वेदयति न सत्कर्मः—अनु०

११. तथा चारित्रं चरणम्, तत्र यदि सामायिकं सर्वसावद्यविरतिलक्षणम्, छेदोपस्थापनीयमपि तल्लक्षणमेव, महाव्रतानामवद्यविरतिरूपत्वात्. तत् कोऽनयोर्भेदः? उक्तश्चासौ इति. अत्र समाधिः–ऋजुजड–वक्रजडानां प्रथम–चरमजिनसाधूनामाश्वासनाय छेदोपस्थापनीयमुक्तम्, व्रतारोपणे हि मनाक् सामायिकाऽशुद्धावपि व्रताखण्डनाच्चारित्रिणो वयं चारित्रस्य व्रतरूपत्वादिति बुद्धिः स्यात्, सामायिकमात्रे तु तदशुद्धौ भग्नं नश्चारित्रम्. चारित्रस्य सामायिकमात्रत्वाद् इत्येवमनाश्वासस्तेषां स्यादिति. आह च–"[1]रिउ–वक्कजडा पुरिमेयराण सामाइए वयारुहणं. मणयमसुद्धेऽपि जओ सामाइए हुंति हु वयाइं" इति. तथा लिङ्गं साधुवेषः, तत्र च यदि मध्यमजिनैर्यथालब्धवस्त्ररूपं लिङ्गं साधूनामुपदिष्टम्, तदा किमिति प्रथम–चरमजिनाभ्यां सप्रमाणधवलवसनरूपं तदेवोक्तम्. सर्वज्ञानामविरोधिवचनत्वादिति. अत्रापि ऋजुजड–वक्रजड–ऋजुप्राज्ञशिष्यानाश्रित्य भगवतां तस्योपदेशः, तथैव तेषामुपकारसंभवादिति समाधिः. तथा प्रवचनमत्राऽऽगमः, तत्र च यदि मध्यमजिनप्रवचनानि चतुर्यामधर्मप्रतिपादकानि, कथं प्रथमेतरजिनप्रवचने पञ्चयामधर्मप्रतिपादके? सर्वज्ञानामविरुद्धवचनत्वात्. अत्रापि समाधिः–चतुर्यामोऽपि तत्त्वतः पञ्चयाम एव असौ, चतुर्थव्रतस्य परिग्रहेऽन्तर्भूतत्वात्, "योषा हि नाऽपरिगृहीता भुज्यते" इति न्यायादिति. तथा प्रवचनमधीते, वेत्ति वा प्रावचनः–कालापेक्षया बह्वागम पुरुष, तत्रैक प्रावचनिक एवं कुरुते, अन्यस्त्वेवम्, इति किमत्र तत्त्वम्? इति. समाधिश्चेह चारित्रमोहनीयक्षयोपशमविशेषेण, उत्सर्गापवादादिभावितत्वेन च प्रावचनिकानां विचित्रा प्रवृत्तिरिति, नासौ सर्वथाऽपि प्रमाणम्, आगमाविरुद्धप्रवृत्तेरेव प्रमाणत्वादिति. तथा कल्पो जिनकल्पिकादिसमाचारः, तत्र यदि नाम जिनकल्पिकानां नाग्न्यादिरूपो महाकष्टः कल्पः कर्मक्षयाय, तदा स्थविरकल्पिकानां वस्त्र–पात्रादिपरिभोगरूपो यथाशक्तिकरणात्मकोऽकष्टस्वभावः कथं कर्मक्षयाय इति? इह च समाधिः द्वावपि कर्मक्षयहेतू अवस्थाभेदेन जिनोक्तत्वात्, कष्टाकष्टयोश्च विशिष्टकर्मक्षयं प्रत्यकारणत्वादिति.

चारित्र विषे शंका.

११. तथा चारित्र विषे पण शंका आ प्रमाणे छे–चारित्रना बे प्रकार छे, एक सामायिक अने बीजुं छेदोपस्थानीय. सामायिक चारित्र सर्वसावद्य विरतिरूप छे अने महाव्रतरूप होवाथी छेदोपस्थानीय चारित्र पण अवद्यविरतिरूप ज छे. तो आ बन्नेनुं लक्षण सरखुं छे छतां तेमां तफावत केम होइ शके? अने शास्त्रोमां तो ते बेमां तफावत कह्यो छे. तेनुं शुं कारण? समा० प्रथम जिनना साधुओ ऋजुजड छे तथा अंतिम जिनना साधुओ वक्रजड छे माटे तेओना आश्वासन सारु पूर्व प्रमाणे चारित्रना बे प्रकार कह्या छे. जो चारित्रना बे प्रकार करवामां न आवे अने आगळ एक ज सामायिक चारित्ररूप प्रकार व्यवस्थापवामां आवे तो नीचे लख्या प्रमाणे बाधो आवे छे. जे मुमुक्षुए पूर्वे ज सामायिक चारित्र स्वीकार्युं छे ते मुनि जो तेमां कांइ जरा पण भूल करे तो तेना मनमां एम आवे के मारुं चारित्र नष्ट थइ गयुं अने हुं भ्रष्ट थइ गयो. कारण के चारित्र मात्र केवळ सामायिकरूप ज छे पण बीजुं नथी अर्थात् ए प्रमाणे ते आकळो थइ जाय अने सौथी पहेला चारित्र स्वीकार्या पछी जो बीजी वार चारित्र लेवानो प्रसंग होय तथा पूर्वना चारित्रमां जो कांइ भूल थाय तो पूर्व प्रमाणे आकळा थवानो प्रसंग न रहे. कारण के व्रतनो आरोप कर्या बाद जो सामायिक संबंधे जराक अशुद्धता थइ होय तो व्रत खंडातुं नथी. अने तेम थवाथी तेओ (थोडी भूलवाळा) पण 'अमे चारित्रवाळा छीए' एम समजी आकळा थता नथी अने आ कारणने लीधे ज पूर्वप्रमाणे चारित्रना बे प्रकार कह्या छे. कह्युं छे के "प्रथम अने अंतिम जिनना साधुओ अनुक्रमे ऋजुजड तथा वक्रजड छे माटे तेओने सारु सामायिक पछी व्रतनो आरोप कह्यो छे. कारण के जो सामायिक जराक अशुद्ध थयुं होय तो पण व्रतोने बाध आवतो नथी. अर्थात् सामायिक संबंधी थोडी भूल थाय तो पण व्रतो रहे छे" हवे लिंग वेष–संबंधे पण आ प्रमाणे शंका छे. जो वचला जिनोए एम कह्युं होय के, वस्त्रो मळे तेवो वेष साधुओए राखवो तो प्रथम अने अंतिम जिने एम शा माटे कह्युं के, साधुओए मापवाळां अने धोळां वस्त्रथी पोताना वेष धरवो? कारण के सर्वज्ञनुं वचन परस्पर विरुद्ध नथी होतुं. समा० ऋजुजड, वक्रजड अने ऋजुप्राज्ञ स्वभाववाळा शिष्योने अपेक्षी भगवते पूर्व प्रमाणे भिन्न लिंग विषे उपदेश कर्यो छे. कारण के तेवा शिष्योनो उपकार ते ज प्रकारे थइ शके छे. हवे प्रवचन आगम संबंधे पण आ प्रमाणे शंका छेः–जो वचला जिननुं प्रवचन चार व्रतरूप धर्मने कहेतुं होय तो प्रथम अने अंतिम जिननुं प्रवचन पांच व्रतरूप धर्मने कहे तेनुं शुं कारण? कारण के सर्वज्ञोना वचनो परस्पर विरुद्ध होइ शकता नथी. समा० चार व्रतरूप धर्म पण खरी रीते पांच व्रतरूप ज छे. कारण के चोथा व्रतनो, परिग्रहमां समावेश कर्यो छे 'स्वीकारेली ज स्त्री भोगवाय छे' एवा न्यायथी स्त्री पण परिग्रहरूप ज छे. हवे प्रावचनिक विषे शंका आ प्रमाणे छे प्रवचनने भणे के जाणे ते प्रावचनिक, अर्थात् कालापेक्षाए बहुश्रुत पुरुष. एक प्रावचनिक आम करे छे अने बीजो प्रावचनिक आम करे छे तो एमां खरुं तत्त्व कोनुं समजवुं? समा० चारित्रमोहनीयना एक प्रकारना क्षयोपशमथी अने उत्सर्ग तथा अपवादादिना सबंधपणाने लीधे प्रावचनिकोनी प्रवृत्ति विचित्रतावाळी जणाय छे अने ते सर्वथा प्रमाणरूप पण नथी. कारण के ते ज प्रवृत्ति प्रमाणभूत छे जे आगमथी अविरुद्ध छे. तथा कल्प विषेनी शंका आ प्रमाणे छेः–कल्प एटले जिनकल्पिकादिकनो आचार. तेमां जो जिनकल्पिकोनो नाग्न्यादि नागा रहेवुं वगेरे रूप महाकष्टवाळो कल्प कर्मक्षयनुं कारण होय तो स्थविरकल्पिकोनो वस्त्र अने पात्रादिनो परिभोग करवारूप तथा यथाशक्ति करवारूप ओछा कष्टवाळो कल्प कर्मक्षयनुं कारण केम थइ शके? अर्थात् न थइ शके. समा० ते बन्ने कल्पो अवस्थाना भेदथी कर्मक्षयमां कारण छे, एम श्रीजिने कहेलुं छे. तथा कष्ट अने अकष्ट विशिष्ट कर्मना नाश माटे कांइ कारण नथी.

समाधान.

वेष विषे शंका. समाधान. प्रवचन विषे शंका. समाधान. कोनुं साचुं? आगम. कल्प विषे शंका. समाधान.

१२. तथा मार्गः पूर्वपुरुषक्रमागता सामाचारी, तत्र केषांचिद् द्विश्चैत्यवन्दनाऽनेकविधकायोत्सर्गकरणादिकाऽऽवश्यकसामाचारी. तदन्येषां तु न तथेति किमत्र तत्त्वमिति? समाधिश्च–गीतार्थाशठप्रवर्तिताऽसौ सर्वापि न विरुद्धा, आचरितलक्षणोपेतत्वात्, आचरितलक्षणं चेदम्–"[2]असढेण समाइण्णं जं कत्थइ केणई असावज्जं, न निवारियमन्नेहिं बहुमणुमयमेयमायरियं"ति. तथा मतं समान एवाऽऽगमे

---

१. प्र०छाया.—ऋजु–वक्रजडाः पूर्वेतराणां सामायिके व्रतारोहणम्, मनाग् अशुद्धेऽपि यतः सामायिके भवन्ति खलु व्रतानि. २. अशठेन समाचीर्णं यत् कुत्राऽपि केनचिद् असावद्यम्, न निवारितमन्यैर्बहु अनुमतमेतद् आचरितम्:–अनु०

आचार्याणामभिप्रायः, तत्र च सिद्धसेनदिवाकरो मन्यते केवलिनो युगपद् ज्ञानम्, दर्शनं च, अन्यथा तदावरणक्षयस्य निरर्थकता स्यात्. जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्तु भिन्नसमये ज्ञान-दर्शने जीवस्वरूपत्वात्. यथा तदावरणक्षयोपशमे समानेऽपि क्रमेणैव मति-श्रुतोपयोगौ, न चैकतरोपयोगे इतरक्षयोपशमाभावः, तत्क्षयोपशमस्योत्कृष्टतः षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वात्, अतः किं तत्त्वमिति ? इह च समाधिः—यदेव मतमागमाऽनुपाति तदेव सत्यम् इति मन्तव्यम्, इतरत् पुनरुपेक्षणीयम्. अथ अबहुश्रुतेन नैतदवसातुं शक्यते, तदेवं भावनीयम्—आचार्याणां संप्रदायादिदोषादयं मतभेदः, जिनानां तु मतमेकमेव, अविरुद्धं च रागादिविरहितत्वात्, आह चः—"*अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जुगप्पवरा, जियराग-दोस-मोहा य णण्णहा वाइणो तेणं*"ति.

१२. हवे मार्ग विषेनो संदेह आ प्रमाणे छेः—मार्ग एटले पुरुषना क्रमवडे—परंपरावडे—चाली आवेली सामाचारी—पद्धति. तेमां कोइनी आवश्यक सामाचारी बे चैत्यवंदन अने अनेक प्रकारना कायोत्सर्ग करणादिरूप छे तथा बीजानी सामाचारी तेवी नथी. तो अहीं खरुं शुं छे ? समा०—ए बधी य सामाचारी विरुद्ध नथी. कारण के तेना प्रवर्तक गीतार्थ अने अशठ छे तथा ते सामाचारी आचरितलक्षणयुक्त छे. आचरितनुं लक्षण आ छेः—"जेनुं आचरण अशठे कर्युं होय, जे असावद्य—निष्पाप—होय, अने जे कोइ स्थळे कोइनाथी निवारित थएलुं न होय, तथा जे बहुमत होय ते आचरित कहेवाय छे" हवे मत विषे आ प्रमाणे संशय छेः—मत एटले सरखा ज शास्त्रमां आचार्योनो (जूदो) अभिप्राय, तेमां सिद्धसेन दिवाकर नामना आचार्य कहे छे के, केवलिने ज्ञान अने दर्शन एक साथे ज होय छे. जो एम न मानवामां आवे तो ज्ञानावरण अने दर्शनावरणना क्षयनी निरर्थकता थइ जाय. वळी ए ज वात विषे जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण नामना आचार्य तो एम माने छे के, केवलिने ज्ञान अने दर्शन भिन्न काळे होय छे. कारण के जीवनुं स्वरूप एवा प्रकारनुं ज छे. जेम मतिज्ञान अने श्रुतज्ञानना आवरणनो क्षयोपशम सरखो ज छे तो पण ते बन्ने ज्ञान क्रमपूर्वक ज थाय छे अने ज्यारे ते बेमांथी एक ज्ञाननो उपयोग होय त्यारे बीजा ज्ञाननो क्षयोपशम नथी होतो एम नथी. कारण के तेना क्षयोपशमनो समय ६६ सागरोपमनो छे. हवे आ बे मतमां कयुं मत साचुं ? समा०—जे वात आगमने अनुसरती होय ते ज साची छे, एम मानवुं. अने बीजी वातनी उपेक्षा करवी. 'कइ वात आगममान्य छे अने कइ वात तेवी नथी' ए हकीकत तो बहुश्रुत पुरुष ज जाणी शके छे पण जे बहुश्रुत न होय ते पूर्वोक्त वात जाणी शकतो नथी. तेणे ते विवादवाळी वात माटे आ प्रमाणे विचार करवोः—संप्रदायादिना दोषथी पूर्व प्रमाणेनो आचार्योनो मत भेद छे. पण श्रीजिनोनुं मत तो एक ज छे अने ते अविरुद्ध छे. कारण के ते रागादिथी रहित छे. कह्युं छे केः—"जेओए उपकार नथी कर्यो एवा बीजा माणसो उपर अनुग्रह करवामां जे जिनो तत्पर छे, वळी जे जिनो युगप्रवर तथा राग, द्वेष अने मोहने जितनारा छे माटे तेओ अन्यथा कहेनारा—खोटुं बोलनारा—होय ज नहीं."

बधी किया साची ? हा. कारण.

आचार्योना मतभेद विषे शंका.

समाधान.

जिने तो साचुं ज कह्युं छे.

१३. तथा भङ्गा द्व्यादिसंयोगभङ्गकाः, तत्र च द्रव्यतो नाम एका हिंसा, न भावत इत्यादिचतुर्भङ्ग्युक्ता, न च तत्र प्रथमोऽपि भङ्गो युज्यते, यतः किल द्रव्यतो हिंसा ईर्यासमित्या गच्छतः पिपीलिकादिव्यापादनम्, न चेयं हिंसा तल्लक्षणायोगात्. तथाहिः—"*जो उ पमत्तो पुरिसो तस्स उ जोगं पडुच्च जे सत्ता, वावज्जंति नियमा तेसिं सो हिंसओ होई*"त्ति. उक्ता चेयम्, अतः शङ्का, न चैवं युक्ता, एतद्गाथोक्तहिंसालक्षणस्य द्रव्य-भावहिंसाश्रयत्वात्, द्रव्यहिंसायास्तु मरणमात्रतया रूढत्वादिति. तथा नया द्रव्यास्तिकादयः, तत्र यदि नाम द्रव्यास्तिकमतेन नित्यं वस्तु, पर्यायास्तिकनयमतेन कथं तदेवाऽनित्यम् ? विरुद्धत्वादिति शङ्का. इयं चायुक्ता, द्रव्यापेक्षया एव तस्य नित्यत्वात्, पर्यायापेक्षया चानित्यत्वात्, दृश्यते चापेक्षया एकत्र एकदा विरुद्धानामपि धर्माणां समावेशः, यथा—जनकापेक्षया य एव पुत्रः, स एव पुत्राऽपेक्षया पिता इति. तथा नियमोऽभिग्रहः, तत्र यदि नाम सर्वविरतिसामायिकं तदा किमन्येन पौरुष्यादिनियमेन ? सामायिकेनैव सर्वगुणाऽवाप्तेः, उक्तश्चासौ इति शङ्का, इयं चायुक्ता. यतः सत्यपि सामायिके युक्तः पौरुष्यादिनियमः, अप्रमादवृद्धिहेतुत्वादिति. आह चः—"*सामाइए वि हु सावज्जचागरूवे उ गुणकरं एयं, अपमायवुड्डिजणगत्तणेण आणाओ विन्नेयं*"ति. तथा प्रमाणं प्रत्यक्षादि, तत्राऽऽगमप्रमाणम्—आदित्यो भूमेरुपरि योजनशतैरष्टाभिः संचरति, चक्षुःप्रत्यक्षं च तस्य भुवो निर्गच्छतो ग्राहकमिति किमत्र सत्यम् ? इति संदेहः. अत्र समाधिः—नहि सम्यक् प्रत्यक्षमिदम्, दूरतरदेशतो विभ्रमादिति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते **श्रीभगवतीसूत्रे** प्रथमशते तृतीयोद्देशके **श्रीअभयदेवसूरि**विरचितं विवरणं समाप्तम्.

१३. हवे भंगो—भांगाओ—संबंधे नीचे प्रमाणे शंका छेः—भंगो एटले द्व्यादि संयोगरूप भांगाओ. तेमां हिंसा संबंधे चार भांगा कहेला छे. ते आ प्रमाणेः—

भांगा विषे शंका.

१. द्रव्यथी हिंसा, भावथी नहीं.
२. भावथी हिंसा, द्रव्यथी नहीं.
३. द्रव्यथी नहीं अने भावथी नहीं.
४. द्रव्यथी पण हिंसा अने भावथी पण हिंसा.

---

१. प्र० छायाः—अनुपकृतपराऽनुग्रहपरायणा यद् जिना युगप्रवराः, जितराग-दोष-मोहाश्च नान्यथावादिनस्तेनः—अनु०

१. प्र० छायाः—यस्तु प्रमत्तः पुरुषः तस्य तु योगं प्रतीत्य ये सत्त्वाः, विपद्यन्ते नियमात् तेषां स हिंसको भवति. २. सामायिकेऽपि खलु सावद्यत्यागरूपे तु गुणकरमेतद्, अप्रमादवृद्धिजनकत्वेन आज्ञातो विज्ञेयम्:—अनु०

हवे आ चार भांगामांनो प्रथम भंग पण युक्त नथी. कारण के ते प्रथम भांगामां हिंसानुं लक्षण घटतुं नथी. द्रव्य हिंसा एटले ईर्यसमितिपूर्वक गमन करनार जीवद्वारा कीडी वगेरे जीवोनुं जे व्यापादन ते. खरी रीते तपासीए तो पूर्वप्रमाणेना लक्षणवाळी द्रव्यहिंसामां हिंसानुं लक्षण ज घटतुं नथी. कह्युं छे केः–"जे पुरुष प्रमत्त होय अने तेनी क्रियाथी जे जीवो हणाइ जाय तो ते जीवोनो हणनार चोक्कस ते प्रमत्त पुरुष ज कहेवाय." आ लक्षण प्रथम भांगामां जणातुं नथी, माटे ते हिंसा शी रीतिए कहेवाय ? शास्त्रमां तो तेने हिंसा कही छे.

समाधान. समा०–पूर्वनी शंका युक्त नथी. कारण के पूर्वनी गाथामां हिंसानुं जे लक्षण बताव्युं छे ते लक्षण द्रव्यहिंसानुं नथी. पण द्रव्य अने भावहिंसानुं छे. द्रव्यहिंसानुं लक्षण तो मात्र मरण छे अने ते प्रथम भांगामां घटी जाय छे माटे कोइ प्रकारनो वांधो आवतो नथी.

नयो विषे शंका. हवे नयो संबंधे आ प्रमाणे शंका छेः–द्रव्यास्तिक वगेरे सात नयो छे. तेमां द्रव्यास्तिक नयना मतथी जे वस्तु नित्य छे ते ज वस्तु पर्यायास्तिक नयना मतथी अनित्य केम होइ शके ? कारण के नित्य अने अनित्य ए बे धर्मो परस्पर विरुद्ध होवाथी एक ज पदार्थमां केम संभवी शके ?

समाधान. समा० ए शंका अयुक्त छे. कारण के वस्तुमां जे नित्यत्व अने अनित्यत्व धर्म छे ते भिन्न भिन्न अपेक्षाए छे. अर्थात् द्रव्यनी अपेक्षाए वस्तु नित्य छे अने पर्यायनी अपेक्षाए वस्तु अनित्य छे. एक काळे एक ज वस्तुमां भिन्न भिन्न अपेक्षाए विरुद्ध धर्मोनो समावेश थतो लोकमां पण देखाय छे. जेम केः पितानी अपेक्षाए जे मनुष्य पुत्र कहेवाय छे ते ज मनुष्य पोताना पुत्रनी अपेक्षाए पिता कहेवाय छे. अर्थात् एक ज मनुष्य एक ज काळे जूदी जूदी अपेक्षाए पिता पण कहेवाय छे अने पुत्र पण कहेवाय छे.

नियमो विषे शंका. हवे नियमोमां शंका आ प्रमाणे छेः नियम एटले अभिग्रह. तेमां एक ज नियम करवो पण बीजा नियमो करवानुं शुं प्रयोजन ? अर्थात् सर्वविरतिरूप सामायिक एक ज करवुं पण पौरुषी–पोरषी वगेरे बीजा नियमो करवाथी शुं ? कारण के एक सामायिक करवाथी ज बधा गुणोनो लाभ थाय छे. अने एक नियम करवाथी बधो लाभ थाय छे. तो पण बीजा नियमो करवानुं शास्त्रमां लख्युं छे. तेनुं शु कारण ?

समाधान. समाधानः पूर्वनी शंका अयुक्त छे. कारण के सामायिक करवामां आवे तो पण प्रमादना नाशक अने अप्रमादना वर्धक होवाथी पौरुषी वगेरे बीजा नियमो पण करवा योग्य छे. कह्युं छे के, "सर्व पापना छोडवारूप सामायिक करवामां आवे तो पण पौरुषी वगेरे नियमो करवा ए गुणकर छे. कारण के ते नियमो अप्रमादने वधारनारा छे, एम आज्ञाथी जाणवुं."

प्रमाण विषे शंका. हवे प्रमाण संबंधे शंका आ प्रमाणे छे प्रमाण प्रत्यक्षादिरूप छे. तेमां आगमप्रमाण संबंधे संशय संभवे छे. आगममां लख्युं छे के, भूमिथी उंचे आठसें योजन सूर्य संचरे छे. अने आपणे आपणी नजरथी तो ते सूर्यने हमेशा पृथ्वीथी नीकळतो देखीए छीए. तो अहीं सत्य वात शी छे ?

समाधान. समाधानः जेवी रीते आपणे सूर्यने नीकळतो देखीए छीए ते आपणुं प्रत्यक्ष सत्य नथी. कारण के सूर्य अत्यंत दूर होवाथी ते संबंधे आपणने भ्रम थवो संभवित छे.

बेडारूप. समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववर मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक ४.

कर्मप्रकृति केटली ?—आठ.—गाथा.—उपस्थान.—वीर्यथी के अवीर्यथी ?—बालवीर्य.—पंडितवीर्य.—अपक्रमण.—उपशांत मोहनीय.—पोताथी अपक्रमे के परथी अपक्रमे ?—रुचि अने अरुचि.—करेल कर्म वेद्या विना छुटकारो थाय ?—ना.—कारण.—बे प्रकारनुं कर्म.—अरहंते जाणेलुं.—आभ्युपगमिकी वेदना.—औपक्रमिकी वेदना.—पुद्गल हतुं ?—पुद्गल छे ?—पुद्गल हशे ?—हा.—स्कंध.—जीव.—मात्र संयमादिकथी मनुष्य सिद्ध थयो ? थाय छे ? अने थशे ?—ना.—कारण.—आधोवधिक.—परमाधोवधिक.—केवली सिद्ध थया ?—हा.—केवलज्ञानी थया पछी सिद्ध थाय ?—हा.—केवली ए पूर्ण कहेवाय ?—हा.—उद्देशकसमाप्ति.—

१४६. प्र०—कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

१४६. उ०—गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, कम्मप्पगडीए पढमो उद्देसो नेयव्वो जाव–अणुभागो सम्मत्तो. गाहा:–

कइ पयडी ? कह बंधइ ? कइहिं च ठाणेहिं बंधइ पयडी ?
कइ वेदेइ य पयडी ? अणुभागो कइविहो कस्स ?

१४७. प्र०—जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं उवट्ठाएज्जा ?

१४७. उ०—हंता, उवट्ठाएज्जा.

१४८. प्र०—से भंते ! किं वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

१४८. उ०—गोयमा ! वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो अवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा.

१४९. प्र०—जइ वीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, किं बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, पंडिअवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, बालपंडियवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा ?

१४९. उ०—गोयमा! बालवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो पंडिअवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा, णो बालपंडिअवीरियत्ताए उवट्ठाएज्जा.

१४६. प्र०—हे भगवन् ! कर्मप्रकृतिओ केटली कही छे ?

१४६. उ०—हे गौतम ! कर्मप्रकृतिओ आठ कही छे, अहीं 'प्रज्ञापना'ना कर्मप्रकृति नामना त्रेवीशमा पदनो प्रथम उद्देशक जाणवो यावत्–अनुभाग समाप्त. गाथाः—

केटली कर्मप्रकृति ? केवी रीते बांधे छे ? केटलां स्थानोवडे प्रकृतिओने बांधे छे ? केटली प्रकृति वेदे छे ? अने कोनो केटला प्रकारनो रस छे ?

१४७. प्र०—हे भगवन् ! कृत मोहनीय कर्म ज्यारे उदयमां आवेलुं होय त्यारे जीव उपस्थान करे–परलोक प्रति प्रयाण करे ?

१४७. उ०—हे गौतम ! हा, त्यारे उपस्थान करे.

१४८. प्र०—हे भगवन् ! ते उपस्थान शुं वीर्यताथी थाय ? के अवीर्यताथी थाय ?

१४८. उ०—हे गौतम ! ते उपस्थान वीर्यताथी थाय, पण अवीर्यताथी न थाय.

१४९. प्र०—हे भगवन् ! जो ते उपस्थान वीर्यताथी थाय तो शुं बालवीर्यताथी थाय, पंडितवीर्यताथी थाय के बालपंडितवीर्यताथी थाय ?

१४९. उ०—हे गौतम ! ते उपस्थान बालवीर्यताथी थाय, पण पंडितवीर्यताथी के बालपंडितवीर्यताथी न थाय.

---

१. मूलच्छायाः—कति भगवन् ! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! अष्ट कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः. कर्मप्रकृत्याः प्रथम उद्देशो ज्ञातव्यो यावत्–अनुभाग समाप्तः. गाथा–कति प्रकृतयः ? कथं बध्नाति ? कतिभिश्च स्थानैः बध्नाति प्रकृतीः ? कति वेदयति च प्रकृतीः ? अनुभागः कतिविधः कस्य ? जीवो भगवन् ! मोहनीयेन कृतेन कर्मणा उदीर्णेनोपतिष्ठेत् ? हन्त, उपतिष्ठेत्. तद् भगवन् ! किं वीर्यतयोपतिष्ठेत्, अवीर्यतयोपतिष्ठेत् ? गौतम ! वीर्यतयोपतिष्ठेत्, नो अवीर्यतयोपतिष्ठेत्. यदि वीर्यतयोपतिष्ठेत्, किं बालवीर्यतयोपतिष्ठेत्, पण्डितवीर्यतयोपतिष्ठेत्, बालपण्डितवीर्यतयोपतिष्ठेत् ? गौतम ! बालवीर्यतयोपतिष्ठेत्, नो पण्डितवीर्यतयोपतिष्ठेत्, नो बालपण्डितवीर्यतयोपतिष्ठेत्:–अनु०

२. आ प्रथम उद्देशक प्रज्ञापना सूत्र क० आ० पृ० ६६०–६७३ सुधी छे:—अनु०

१५०. प्र०—जीवे णं भंते ! मोहणिज्जेणं कडेणं कम्मेणं उदिण्णेणं अवक्कम्मेज्जा ?

१५०. उ०—हंता, अवक्कमेज्जा.

१५१. प्र०—से भंते ! जाव–बालपंडिअवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा ?

१५१. उ०—गोयमा ! बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, नो पंडिअवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा, सिय बालपंडिअवीरियत्ताए अवक्कमेज्जा. जहा उदिण्णेणं दो आलावगा तहा उवसंतेण वि दो आलावगा भाणियव्वा; नवरं–उवट्ठाएज्जा पंडिअवीरियत्ताए, अवक्कमेज्जा, बालपंडिअवीरियत्ताए.

१५२. प्र०—से भंते ! किं आयाए अवक्कमइ, अणायाए अवक्कमइ ?

१५२. उ०—गोयमा ! आयाए अवक्कमइ, णो अणायाए अवक्कमइ.

१५३. प्र०—मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे से कहमेयं भंते ! एवं?

१५३. उ०—गोयमा ! पुव्विं से एयं एवं रोयइ, इयाणिं से एयं एवं नो रोयइ; एवं खलु एयं एवं.

१५४. प्र०— से णूणं भंते ! नेरइयस्स वा, तिरिक्खजोणिअस्स वा, मणूसस्स वा, देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि तस्स अवेइअत्ता मोक्खो ?

१५४. उ० हंता, गोयमा ! नेरइयस्स वा, तिरिक्ख–मणु–देवस्स वा जे कडे पावे कम्मे, नत्थि तस्स अवेइत्ता मोक्खो.

१५५. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नेरइयस्स वा जाव–मोक्खो ?

१५५. उ०—एवं खलु मए गोयमा ! दुविहे कम्मे पन्नत्ते. तं जहा·—पएसकम्मे य, अणुभागकम्मे य. तत्थ णं जं तं पएसकम्मं तं नियमा वेएइ, तत्थ णं जं त अणुभागकम्मं तं अत्थेगइयं वेएइ, अत्थेगइयं णो वेएइ, णायमेय अरहया, सुयमेयं अरहया, विन्नायमेयं अरहया—इमं कम्मं अयं जीवे अब्भोवगमिआए वेयणाए वेदेस्सइ, इमं कम्मं अयं जीवे उवक्कमिआए

१५०. प्र०—हे भगवन् ! कृत मोहनीय कर्म ज्यारे उदयमां आवेलुं होय त्यारे जीव अपक्रमण करे–उत्तम गुणस्थानकथी हीनतर गुणस्थानके जाय ?

१५०. उ०—हे गौतम ! हा, अपक्रमण करे.

१५१. प्र०—हे भगवन् ! ते अपक्रमण यावत्–बालवीर्यताथी, पंडितवीर्यताथी के बालपंडितवीर्यताथी थाय ?

१५१. उ०—हे गौतम ! बालवीर्यताथी थाय अने कदाचित् बालपंडितवीर्यताथी पण थाय, पण पंडितवीर्यताथी न थाय. जेम 'उदयमां आवेल' पद साथे बे आलापक कह्या तेम 'उपशांत' साथे पण बे आलापक कहेवा. विशेष ए के, त्यां पंडितवीर्यताथी उपस्थान थाय अने बालपंडितवीर्यताथी अपक्रमण थाय.

१५२. प्र०—हे भगवन् ! ते अपक्रमण शुं आत्मावडे थाय ? के अनात्मावडे थाय ?

१५२. उ०— हे गौतम ! ते अपक्रमण आत्मावडे थाय, पण अनात्मावडे न थाय.

१५३. प्र०—हे भगवन् ! मोहनीय कर्मने वेदतो ते ए ए प्रमाणे केम होय ?

१५३. उ०—हे गौतम ! पहेलां तेने ए ए प्रमाणे रुचे छे अने हमणा तेने ए ए प्रमाणे रुचतुं नथी, माटे ते ए ए प्रमाणे छे.

१५४. प्र०—हे भगवन् ! जे पाप कर्म करेलुं छे तेने वेद्या विना–अनुभव्या विना–नैरयिकनो, तिर्यंचयोनिकनो, मनुष्यनो के देवनो मोक्ष नथी ?

१५४. उ०—हे गौतम हा, करेल पाप कर्मने अनुभव्या विना नैरयिकनो, तिर्यंचयोनिकनो, मनुष्यनो के देवनो मोक्ष नथी.

१५५. प्र०—हे भगवन् ! तमे ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, 'नैरयिकनो यावत्—मोक्ष नथी' ?

१५५. उ०—हे गौतम ! ए प्रमाणे निश्चित छे के, में कर्मना बे प्रकार कह्या छे. ते आ प्रमाणे:—प्रदेशकर्म अने अनुभागकर्म. तेमां जे प्रदेशकर्म छे ते चोक्कस वेदवुं पडे छे अने जे अनुभागकर्म छे. ते केटलुंक वेदाय छे अने केटलुंक नथी वेदातुं. ए अर्हत द्वारा ज्ञात, स्मृत अने विज्ञात छे के, आ जीव आ कर्मने आभ्युपगमिकवेदनावडे वेदशे. आ जीव आ कर्मने औपक्रमिकवेदनावडे वेदशे.

१. मूलच्छाया:—जीवो भगवन् ! मोहनीयेन कृतेन कर्मणा उदीर्णेनाऽपक्रामेत् ? हन्त, अपक्रामेत्. तद् भगवन्! यावत्–बालपण्डितवीर्यतयाऽपक्रामेत् ? गौतम ! बालवीर्यतयाऽपक्रामेत्, नो पण्डितवीर्यतयाऽपक्रामेत्, स्याद् बालपण्डितवीर्यतयाऽपक्रामेत्. यथोदीर्णेन द्वौ आलापकौ तथोपशान्तेनाऽपि द्वौ आलापकौ भणितव्यौ; नवरम्–उपतिष्ठेत् पण्डितवीर्यतया, अपक्रामेद् बालपण्डितवीर्यतया. तद् भगवन् ! किमात्मनाऽपक्रामति, अनात्मनाऽपक्रामति? गौतम ! आत्मनाऽपक्रामति, नो अनात्मनाऽपक्रामति. मोहनीयं कर्म वेदयन् तत् कथमेतद् भगवन् ! एवम् ! गौतम ! पूर्वं तस्यैतदेवं रोचते, इदानीं तस्यैतदेवं रोचते, एवं खलु एतदेवम् तद् नूनं भगवन् ! नैरयिकस्य वा, तिर्यग्योनिकस्य वा, मनुष्यस्य वा, देवस्य वा यत् कृतं पापं कर्म, नास्ति तस्याऽवेदयित्वा मोक्षः ? हन्त, गौतम ! नैरयिकस्य वा, तिर्यग्–मनुज–देवस्य वा यत् कृतं पापं कर्म नास्ति तस्याऽवेदयित्वा मोक्षः तत् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवमुच्यते–नैरयिकस्य वा, यावत्–मोक्षः ? एवं खलु मया गौतम ! द्विविधं कर्म प्रज्ञप्तम्. तद्यथा:—प्रदेशकर्म च, अनुभागकर्म च: तत्र यत् तद् प्रदेशकर्म तद् नियमेन वेदयति, तत्र यत् तदनुभागकर्म तद् अस्त्येककं वेदयति, अस्त्येककं नो वेदयति. ज्ञातमेतदर्हता, स्मृतमेतदर्हता, विज्ञातमेतदर्हता–इदं कर्माऽयं जीवः आभ्युपगमिकया वेदनया वेदयिष्यति. इदं कर्माऽयं जीव औपक्रमिकया:–अनु०

वेदणाए वेदेस्सइ. अहाकम्मं, अहानिगरणं जहा जहा तं भगवया दिट्ठं तहा तहा तं विप्परिणमिस्सतीति. से तेणट्ठेणं गोयमा ! नेरइयस्स वा जाव—मुक्खे.

यथाकर्म—बांधेल कर्मने अनुसारे, निकरणोने अनुसारे जेम जेम भगवंते ते जोयुं छे तेम तेम ते विपरिणमशे—विपरिणाम पामशे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी एम कह्युं छे के, यावत्—करेल कर्मोने अनुभव्या विना नैरयिकनो, तिर्यचयोनिकनो, मनुष्यनो के देवनो मोक्ष नथी.

१. अनन्तरोद्देशके कर्मण उदीरण—वेदनादि उक्तमिति तस्यैव भेदादीन् दर्शयितुम्, तथा द्वारगाथायां '*पगइ*'त्ति यदुक्तं तच्चाभिधातुमाहः— '*कइ णं*' इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्—'*कम्मप्पगडीए*'त्ति प्रज्ञापनायां त्रयोविंशतितमस्य कर्मप्रकृत्यभिधानस्य पदस्य प्रथमोद्देशको नेतव्यः. एतद्व्याख्यानां चार्थानां संग्रहगाथाऽस्ति, इत्यत आह—'*गाहा*' सा चेयम्—'*कइ*' इत्यादि. तत्र '*कइ पगडी*'त्ति द्वारम्. तच्च एवम्:—"*कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! अट्ठ. तं जहाः—णाणावरणिज्जं*" इत्यादि. '*कह बंधइ*'त्ति द्वारम्. इदं चैवम्:—"*कहं णं भंते ! जीवे अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधइ ? गोयमा ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणावरणिज्जं कम्मं निगच्छइ.*" विशिष्टोदयाऽवस्थं जीवस्तद् आसादयतीत्यर्थः. "*दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं दंसणमोहणिज्जं कम्मं निग्गच्छइ*" विपाकाऽवस्थं करोतीत्यर्थः. "*दंसणमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मिच्छत्तं निगच्छइ, मिच्छत्तेणं उदिण्णेणं, एवं खलु जीवे अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधइ*" इत्यादि. न चैवमिहेतरेतराश्रयदोषः, कर्मबन्धप्रवाहस्याऽनादित्वाद् इति. '*कइहिं च ठाणेहिं*'ति द्वारम्. तच्चैवम्:—"*जीवे णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं कइहिं ठाणेहिं बंधइ ? गोयमा ! दोहिं ठाणेहिं. तं जहाः—रागेण य, दोसेण य*" इत्यादि. '*कइ वेदेइ य*'त्ति द्वारम्. इदं चैवम्:—"*जीवे णं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ वेएइ ? गोयमा! अत्थेगइए वेएइ, अत्थेगइए नो वेएइ. जे वेएइ से अट्ठ*" इत्यादि. "*जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ? गोयमा ! अत्थेगइए वेएइ, अत्थेगइए नो वेएइ.*" केवलिनोऽवेदनात्. "*णेरइए णं भंते ! णाणावरणिज्जं कम्मं वेएइ? गोयमा! नियमा वेएइ*" इत्यादि. '*अणुभागो कइविहो कस्स*'त्ति, कस्य कर्मणः कतिविधो रस इति द्वारम्. इदं चैवम्:—"*णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स कतिविहे अणुभागे पण्णत्ते ? गोयमा ! दसविहे अणुभागे पन्नत्ते. तं जहाः—सोयावरणे, सोयविन्नाणावरणे*" इत्यादि. द्रव्येन्द्रियावरणः, भावेन्द्रियावरणश्चेत्यर्थः.

१. आगळना उद्देशकमां कर्मनुं उदीरण तथा वेदन वगेरे कह्युं छे. हवे आ चालु उद्देशकमां ते ज कर्मना भेदोने दर्शाववा तथा आगळ कहेल द्वार गाथामां जणावेल ['पगइ'] पदनी व्याख्या करवा सारु कहे छे केः—['कइ णं' इत्यादि] ए सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, ['पगडीए'त्ति] प्रज्ञापना सूत्रमां कहेल कर्मप्रकृति नामना त्रेवीशमा पदनो प्रथम उद्देशक अहीं समजवो. ए उद्देशकमां कहेल अर्थोनी संग्रह गाथा छे. माटे कहे छे केः— ['गाहा'] ते गाथा आ छेः—['कइ' इत्यादि.] तेमां ['कइ पगडी'] ए नामनुं द्वार छे. ते आ प्रमाणेः—"हे भगवन्! कर्मप्रकृतिओ केटली कही छे? हे गौतम! कर्मप्रकृतिओ आठ कही छे. ते आ प्रमाणेः—ज्ञानावरणीय, इत्यादि. ['कह बंधइ'त्ति] ए द्वार छे. ते आ प्रमाणेः—"हे भगवन्! जीव आठ कर्मप्रकृतिओने केवी रीते—कये प्रकारे—बांधे छे? हे गौतम! ज्ञानावरणीय कर्मनो उदय थवाथी (विशिष्ट उदयावस्थावाळा) दर्शनावरणीय कर्मने जीव पामे—बांधे—छे. दर्शनावरणीय कर्मनो उदय थवाथी जीव दर्शनमोहनीय कर्मने विपाकावस्थ करे छे. दर्शनमोहनीय कर्मनो उदय थवाथी जीव मिथ्यात्वने प्राप्त करे छे. अने मिथ्यात्वनो उदय थवाथी जीव ए प्रमाणे आठे कर्मप्रकृतिओने बांधे छे" इत्यादि. पूर्व प्रकारे कर्मनो बंध थवामां इतरेतराश्रय दोष होइ शकतो नथी. कारण के कर्मबंधनो प्रवाह अनादिनो छे. ['कइहिं च ठाणेहिं'ति] ए द्वार छे. ते आ प्रमाणे छेः "हे भगवन्! जीव केटलां स्थानोवडे ज्ञानावरणीय कर्मने बांधे छे? हे गौतम! बे स्थानोवडे बांधे छे. ते आ प्रमाणेः—रागवडे अने द्वेषवडे" इत्यादि. ['कइ वेदेइ य'त्ति] ए द्वार छे. ते आ प्रमाणेः—"हे भगवन् ! जीव केटली कर्मप्रकृतिओने वेदे छे? हे गौतम ! केटलीकने जीव वेदे छे अने केटलीकने जीव नथी वेदतो. जेने जीव वेदे छे ते आठ कर्मप्रकृतिओ छे" इत्यादि. "हे भगवन् ! जीव ज्ञानावरणीय कर्मने वेदे छे ? हे गौतम! कोइ जीव वेदे छे? अने कोइ जीव नथी वेदतो" कारण के केवली ज्ञानावरणीय कर्मने नथी वेदतो. "हे भगवन् ! नैरयिक जीव ज्ञानावरणीय कर्मने वेदे छे? हे गौतम!

प्रज्ञापना.

कर्मप्रकृति केटली ?

केवी रीते बांधे ?

केटलां स्थान ?

केटली वेदे ?

१. मूलच्छायाः—वेदनया वेदयिष्यति. यथाकर्म, यथानिकरणं यथा यथा तद् भगवता दृष्टं तथा तथा तत् विपरिणंस्यति. इति. तत् तेनाऽर्थेन गौतम ! नैरयिकस्य वा यावत्—मोक्षः—अनु०

१. अयं च सविस्तरः, सटीकश्च प्रज्ञापनायामस्ति. (क० आ० ६६०—६७३):—अनु०

२. प्र० छायाः—कति भगवन् ! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! अष्ट. तद्यथाः—ज्ञानावरणीयम्. ३. कथं भगवन् ! जीवोऽष्ट कर्मप्रकृतीर्बध्नाति ? गौतम ! ज्ञानावरणीयस्य कर्मण उदयेन दर्शनावरणीयं कर्म निर्गच्छति. ४. दर्शनावरणीयस्य कर्मण उदयेन दर्शनमोहनीयं कर्म निर्गच्छति. ५. दर्शनमोहनीयस्य कर्मण उदयेन मिथ्यात्वं निर्गच्छति, मिथ्यात्वेन उदीर्णेन, एवं खलु जीवोऽष्ट कर्मप्रकृतीर्बध्नाति. ६. जीवो भगवन् ! ज्ञानावरणीयं कर्म कतिभिः स्थानैर्बध्नाति ? गौतम ! द्वाभ्यां स्थानाभ्याम्. तद्यथाः—रागेण च, दोषेण च. ७. जीवो भगवन् ! कति कर्मप्रकृतीर्वेदयति ? गौतम ! अस्त्येकका वेदयति, अस्त्येकका नो वेदयति. या वेदयति ता अष्ट. ८. जीवो भगवन् ! ज्ञानावरणीयं कर्म वेदयति ? गौतम ! अस्त्येकको वेदयति, अस्त्येकको नो वेदयति. ९. नैरयिको भगवन् ! ज्ञानावरणीयं कर्म वेदयति ? गौतम ! नियमाद् वेदयति. १०. ज्ञानावरणीयस्य भगवन् ! कर्मणः कतिविधोऽनुभागः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! दशविधोऽनुभागः प्रज्ञप्तः. तद्यथाः—श्रोत्रावरणः, श्रोत्रविज्ञानावरणः—अनु०

१. जुओ पृ० ८ सू०. २. आ उद्देशक विस्तारपूर्वक अने टीकासहित प्रज्ञापना सूत्रमां छे. (क० आ० पृ—६६०—६७३):—अनु०

केटली जातनो रस?

ते तो चोक्कस वेदे छे" इत्यादि. ['अणुभागो कइविहो कस्स'त्ति] 'कया कर्मनो केटला प्रकारनो रस छे?' ए द्वार छे. ते आ प्रमाणेः—"हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मनो रस केटला प्रकारनो कह्यो छे? हे गौतम ! तेनो रस दश प्रकारनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणेः-श्रोत्रावरण, श्रोत्रविज्ञानावरण" इत्यादि. श्रोत्रावरण ए द्रव्येंद्रियावरण छे अने श्रोत्रविज्ञानावरण ए भावेंद्रियावरण छे.

२. अथ कर्मचिन्ताधिकाराद् मोहनीयमाश्रित्याहः—*'जीवे णं'* इत्यादि. *'मोहणिज्जेणं'*ति मिथ्यात्वमोहनीयेन. *'उदिण्णेणं'*ति उदितेन. *'उवट्ठाएज्ज'*त्ति उपतिष्ठेत्, उपस्थानम्- परलोकक्रियासु अभ्युपगमं कुर्यादित्यर्थः. *'वीरियत्ताए'*त्ति वीर्ययोगाद् वीर्यः प्राणी, तद्भावो वीर्यता, अथवा वीर्यमेव स्वार्थिकप्रत्ययाद् वीर्यता, वीर्याणां वा भावो वीर्यता, तया. *'अवीरियत्ताए'*त्ति अविद्यमानवीर्यतया वीर्याऽभावेनेत्यर्थः. *'नो अवीरियत्ताए'*त्ति वीर्यहेतुकत्वादुपस्थानस्येति. *'बालवीरियत्ताए'*त्ति बालः सम्यगर्थानवबोधात्, सद्बोधकार्यविरत्यभावाच्च मिथ्यादृष्टिः, तस्य या वीर्यता परिणतिविशेषः सा तथा, तया. *'पंडियवीरियत्ताए'*त्ति पण्डितः सकलावद्यवर्जकः, तदन्यस्य परमार्थतो निर्ज्ञानत्वेनाऽपण्डितत्वात्. यदाहः—"तद् ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः, तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम्" इति. सर्वविरत इत्यर्थः. *'बालपंडियवीरियत्ताए'*त्ति बालो देशे विरत्यभावात्, पण्डितो देश एव विरतिसद्भावाद् इति बालपण्डितो देशविरतः. इह मिथ्यात्वे उदिते मिथ्यादृष्टित्वाज्जीवस्य बालवीर्येणैवोपस्थानं स्यात्, नेतराभ्याम्. एतदेवाहः—*'गोयमा !'* इत्यादि. उपस्थानविपक्षोऽपक्रमणम्, अतस्तदाश्रित्याहः—*'जीवे णं भंते !'* इत्यादि. *'अवक्कमेज्ज'*त्ति अपक्रामेद् अपसर्पेत्—उत्तमगुणस्थानकाद् हीनतरं गच्छेदित्यर्थः. *'बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'*त्ति मिथ्यात्वमोहोदये सम्यक्त्वात्, संयमात्, देशसंयमाद् वाऽपक्रामेत्—मिथ्यादृष्टिर्भवेदिति. *'णो पंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'*त्ति नहि पण्डितत्वात् प्रधानतरं गुणस्थानकमस्ति, यतः पण्डितवीर्येणापसर्पेत्. *'सिय बालपंडियवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'*त्ति स्यात् कदाचित्, चारित्रमोहनीयोदयेन संयमादपगत्य बालपण्डितवीर्येण देशविरतो भवेदिति. वाचनान्तरे त्वेवम्:—*'बालवीरियत्ताए, नो पंडियवीरियत्ताए, नो बालपंडियवीरियत्ताए'*त्ति तत्र च मिथ्यात्वमोहोदयेन बालवीर्यस्यैव भावाद् इतरवीर्यद्वयनिषेध इति.

उपस्थान. वीर्य. बाल. पंडित.

२. आगळना प्रकरणमां कर्म विषे विचार आवेलो होवाथी हवे मोहनीय कर्म संबंधे विचार दर्शावे छेः ['जीवे णं' इत्यादि] ['मोहणिज्जेणं'ति] ['उदिण्णेणं'ति] ['उवट्ठाएज्ज'त्ति] अर्थात् उदयप्राप्त मोहनीय कर्मवडे उपस्थान करे -परलोकनी क्रियानो स्वीकार करे ['वीरियत्ताए'त्ति] वीर्यनो योग होवाथी वीर्य एटले प्राणी, प्राणिपणुं एटले वीर्यता- तेवडे. ['अवीरियत्ताए'त्ति] वीर्यना अभाववडे. ['नो अवीरियत्ताए' त्ति] कारण के उपस्थानमां वीर्यनी जरूर पडे छे. ['बालवीरियत्ताए' त्ति] जे जीवने सम्यग् अर्थनो बोध न होय अने सद्बोधकारक विरति न होय ते जीव 'बाल' कहेवाय अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव ते बाल, तेनी वीर्यतावडे एक प्रकारनी परिणतिवडे. ['पंडिअवीरियत्ताए'त्ति] जे जीव सर्व पापनो त्यागी होय ते 'पंडित' कहेवाय. अने जे जीव एवो न होय ते खरी रीतिए ज्ञानहीन होवाथी अपंडित छे. कह्युं छे के. -"जे ज्ञाननो प्रकाश थया पछी जो रागद्वेषादिनी परिणति आत्मामां देखाय तो ते ज्ञान ज नथी. अंधकारना शा भार छे के, ते जळहळता सूर्यकिरणना प्रकाश सामे टकी शके ?" तात्पर्य ए के, जे सर्वविरत होय ते 'पंडित' कहेवाय. ['बालपंडिअवीरियत्ताए'त्ति] अमुक भागमां विरति न होवाथी बाल अने अमुक भागमां विरति होवाथी पंडित अर्थात् देशविरतिवाळो ते 'बालपंडित'. मिथ्यात्वनो उदय होय त्यारे जीव मिथ्यादृष्टि गणाय छे अने ज्यारे जीव मिथ्यादृष्टि होय छे त्यारे ते बालवीर्यतावाळो ज होय छे. माटे आ स्थळे जीवनुं उपस्थान बालवीर्यवडे ज थाय छे पण बीजा बेवडे (पंडित अने बालपंडितवीर्यवडे) थतुं नथी. माटे ए ज वातने कहे छे केः ['गोयमा !' इत्यादि] उपस्थान क्रियानी विपक्षभूत अपक्रमण क्रिया छे. माटे हवे ते संबंधे कहे छेः ['जीवे णं भंते !' इत्यादि] ['अवक्कमेज्ज'त्ति] पाछो वळे अर्थात् उत्तमगुण स्थानकथी हलका गुण स्थानकने पामे. ['बालवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति] बालवीर्यतावडे पाछो वळे अर्थात् ज्यारे मिथ्यात्वमोहनो उदय होय त्यारे सम्यक्त्वथी, संयमथी के देशसंयमथी पाछो वळी जीव मिथ्यादृष्टि थाय. ['णो पंडिअवीरियत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति] पंडितवीर्यवडे पाछो फरतो नथी. कारण के पंडितना होवाथी प्रधानतर गुणस्थानक उपर होय छे. ['सिय बालपंडिअवीरिअत्ताए अवक्कमेज्ज'त्ति] कदाचित् चारित्रमोहनीयनो उदय थयो होय त्यारे संयमथी पतित थइ बालपंडितवीर्यवडे देशविरत थाय. आ ठेकाणे बीजी वाचनामां पाठांतर छे. ते आ प्रमाणे छे· ['बालवीरियत्ताए, नो पंडिअवीरियत्ताए, नो बालपंडिअवीरियत्ताए'त्ति] आ सूत्रमां पंडितवीर्यनो अने बालपंडितवीर्यनो निषेध कर्यो छे. कारण के ज्यारे मिथ्यात्वमोहनो उदय होय छे त्यारे मात्र बालवीर्य ज होय छे.

बालपंडित. अपक्रमण.

३. उदीर्णविपक्षत्वाद् उपशान्तस्य इति, उपशान्तसूत्रद्वयं तथैव. नवरम्—*'उवट्ठाएज्जा पंडियवीरियत्ताए'*त्ति उदीर्णाऽऽलापकापेक्षया उपशान्ताऽऽलापकयोर्यं विशेषः—प्रथमालापके सर्वथा मोहनीयेनोपशान्तेन सता उपतिष्ठेत क्रियासु पण्डितवीर्येण, उपशान्तमोहावस्थायां पण्डितवीर्यस्यैव भावात्, इतरयोश्चाभावात्. वृद्धैस्तु कांचिद् वाचनामाश्रित्येदं व्याख्यानम्:—मोहनीयेन उपशान्तेन सता न मिथ्यादृष्टिर्जायते—साधुः, श्रावको वा भवति इति. द्वितीयालापके तु *'अवक्कमेज्जा बालपंडियवीरियत्ताए'*त्ति मोहनीयेन हि उपशान्तेन संयतत्वाद् बालपण्डितवीर्येणापक्रामन् देशसंयतो भवति, देशतस्तस्य मोहोपशमसद्भावात्. ननु मिथ्यादृष्टिर्मोहोदय एव तस्य भावात्, मोहोपशमस्य चेहाधिकृतत्वाद् इति. अथापक्रामतीति यदुक्तं तत्र सामान्येन प्रश्नयन्नाहः—*'से भंते !'* किमित्याहः—*'से'* त्ति असौ जीवः, अथार्थो वा से- शब्दः *'आयाए'*त्ति आत्मना. *'अणायाए'*त्ति अनात्मना परत इत्यर्थः. अपक्रामति अपसर्पति—पूर्वं पण्डितत्वरुचिर्भूत्वा पश्चाद् मिश्ररुचिः, मिथ्यात्वरुचिर्वा भवतीति. कोऽसावित्याह—मोहनीयं कर्म, मिथ्यात्वमोहनीयम्, चारित्रमोहनीयं वा वेदयन् उदीर्णमोह इत्यर्थः. *'से कहमेयं भंते!'*त्ति अथ कथं केन प्रकारेण एतदपक्रमणम्? *'एवं'*ति मोहनीयं वेदयमानस्येति. इह उत्तरं *'गोयमा !'* इत्यादि. पूर्वमपक्रमणात् प्राग्,

---

१. अहीं 'ता' प्रत्यय स्वार्थमां पण लागे छेः—श्रीअभय०

असावपक्रमणकारी जीवः, एतज्जीवादि, अहिंसादि वा वस्तु एवं यथा जिनैरुक्तम् रोचते, श्रद्धत्ते, करोति वा; इदानीं मोहनीयोदयकाले स जीवः, एतज्जीवादि, अहिंसादि वा एवं यथा जिनैरुक्त नो रोचते, न श्रद्धत्ते. न करोति वा; एवं खलु उक्तप्रकारेण एतदपक्रमणम्, एवं मोहनीय-वेदने इत्यर्थः मोहनीयकर्माऽधिकारात् सामान्यकर्म चिन्तयन्नाहः—'से णूणं' इत्यादि. 'नेरइयस्स वा' इत्यादौ नास्ति मोक्षः, इत्येवं सम्बन्धात् षष्ठी. 'जं कडे'त्ति तैरेव यद् बद्धम्. 'पावे कम्मे'त्ति पापमशुभं नरकगत्यादि, सर्वमेव वा पापं दुष्टम्, मोक्षव्याघातहेतुत्वात्. 'तस्स'त्ति तस्मात् कर्मणः सकाशात्. 'अवेइय'त्ति तत् कर्माननुभूय.

३. 'उदीर्ण' नो विपक्ष 'उपशांत' छे. माटे हवे उपशांत संबंधे बे सूत्र कहे छे. तेनो अर्थ पूर्वनी पेठे ज जाणवो. विशेष ए के, ['उवट्ठाएज्जा पंडिअवीरियत्ताए'त्ति] उदीर्णसूत्रना आलापकनी अपेक्षाए उपशांत सूत्रना आलापकमां विशेष आ छे: प्रथम आलापकमां ज्यारे मोहनीय कर्म तद्दन उपशांत थाय त्यारे पंडितवीर्यवडे क्रियामां उपस्थान करे. कारण के जे अवस्थामां मोह उपशमी गयो होय ते अवस्थामां एकलु पंडितवीर्य ज होय छे, पण बीजां बे वीर्यो नथी होतां. वृद्धोए तो कोइ व्याख्याने आश्री आ प्रमाणे व्याख्यान कर्यु छेः "ज्यारे मोहनीय कर्म उपशांत थाय त्यारे जीव मिथ्यादृष्टि थतो नथी, पण साधु के श्रावक होय छे" बीजा आलापकमां तो ['अवक्कमेज्जा बालपंडिअवीरिअत्ताए'त्ति] ज्यारे मोहनीय कर्म उपशांत थाय त्यारे बालपंडितवीर्यवडे संयतपणाथी पाछो हटे छे अने देशसंयत थाय छे. कारण के तेनो मोहोपशम अमुक भागमां छे, पण मिथ्यादृष्टि थतो नथी. कारण के ज्यारे मोहनो उदय होय त्यारे ज मिथ्यादृष्टिपणु होय छे अने अहीं तो मोहोपशम संबंधी अधिकार छे. माटे तेने लगती ज हकीकत कहेवी. आगळना प्रकरणमां जे 'अपक्रमे छे' एम कह्यु छे. हवे ते संबंध सामान्य प्रकारे पूछता कहे छे के. ['से भंते! किं'] ए जीव ['आयाए' त्ति] आत्मावडे, के ['अणायाए'त्ति] अनात्मावडे अर्थात् परवडे अपक्रमे अर्थात् पहेलां पंडितरुचि थइ पछी मिश्ररुचि के मिथ्यात्वरुचि थाय तेमां आत्मा कारण छे? के पर कारण छे? ए जीव एटले कयो जीव? तो कहे छे के, मिथ्यात्व मोहनीय के चारित्र मोहनीयने वेदतो अर्थात् जेने मोह उदयवर्ती छे ते. ['से कहमेयं भंते'त्ति] ते अपक्रमण कया प्रकारे थाय? अर्थात ['एवं'ति] ए प्रमाणे मोहनीयने वेदता जीवनुं ए अपक्रमण कया प्रकारे थाय? अही उत्तर आ प्रमाणे छेः ['गोयमा!' इत्यादि] अपक्रमण थया पहेलां आ अपक्रमण करनारो जीव जिनोना कह्या प्रमाणे जीवादि अथवा अहिंसादि वस्तु प्रत्ये रुचि राखे छे, श्रद्धा राखे छे, जिने कह्या प्रमाणे करे छे. अने हमणा ज्यारे मोहनीयनो उदय छे त्यारे ए ज जीव जिनोना कह्या प्रमाणे जीवादि के अहिंसादि वस्तु प्रत्ये रुचि के श्रद्धा राखतो नथी, तथा जिने कह्या प्रमाणे करतो नथी. अने ए ज कारणथी ज्यारे मोहनीयनुं वेदन थतुं होय छे त्यारे ए अपक्रमण थाय छे. आ चालु प्रकरण मोहनीय कर्म विषे होवाथी हवे सामान्य कर्म संबंधे विचार दर्शावे छेः ['से णूणं' इत्यादि] ['नेरइयस्स वा'] इत्यादिमां 'नैरयिकनो के बीजा कोइनो मोक्ष नथी' ए प्रमाणे संबंध होवाथी छठ्ठी विभक्ति लागी छे. ['जे कडे'त्ति] तेओए ज जे ['पावे कम्मे'त्ति] पाप कर्म बांध्युं छे. पाप एटले अशुभ नरकगत्यादि अथवा जे कांइ दुष्ट कृत्य छे ते बधुं मोक्षमां व्याघातरूप होवाथी पाप छे. ['तस्स'त्ति] ते पाप कर्मने ['अवेइअत्त'त्ति] भोगव्या विना (तेओनो मोक्ष नथी ?).

उपशांत. आत्मवडे ? परवडे ? कर्मने वेद्या विना मोक्ष नथी !

४. 'एवं खलु'त्ति वक्ष्यमाणप्रकारेण, खलु वाक्यालंकारे. 'मए'त्ति मया अनेन च वस्तुप्रतिपादने सर्वज्ञत्वेनात्मनः स्वातन्त्र्यं प्रतिपादयति. 'पएसकम्मे य'त्ति प्रदेशाः कर्मपुद्गला जीवप्रदेशेषु उतप्रोताः, तद्रूपं कर्म प्रदेशकर्म. 'अणुभागकम्मे य' त्ति अनुभागस्तेषामेव कर्मप्रदेशानां संवेद्यमानताविषयो रसः, तद्रूपं कर्माऽनुभागकर्म. तत्र यत् प्रदेशकर्म तद् नियमाद् वेदयति, विपाकस्याऽननुभवनेऽपि कर्मप्रदेशानामवश्यं क्षपणात् प्रदेशेभ्यः प्रदेशान् नियमाच्छातयतीत्यर्थः. अनुभागकर्म च तथाभावं वेदयति, वा नवा, यथा मिथ्यात्वं तत्क्षयोपशमकालेऽनुभागकर्मतया न वेदयति, प्रदेशकर्मतया तु वेदयत्येवेति. इह च द्विविधेऽपि कर्मणि वेदयितव्ये प्रकारद्वयमस्ति, तच्चार्हता एव ज्ञायते इति दर्शयन्नाहः—ज्ञातं सामान्येनावगतम्, एतद् वक्ष्यमाणं वेदनाप्रकारद्वयम्, अर्हता जिनेन 'सुयं'ति स्मृतं प्रतिपादितम्, अनुचिन्तितं वा, तत्र स्मृतमिव स्मृतम्, केवलित्वेन स्मरणाभावेऽपि जिनस्यात्यन्तमव्यभिचारसाधर्म्यादिति. 'विण्णायं'ति विविधप्रकारैर्देशकालादिविभागरूपैर्ज्ञातं विज्ञातम्. तदेवाहः—'इमं कम्मं अयं जीवे'त्ति अनेन द्वयोरपि प्रत्यक्षतामाह, केवलित्वादर्हतः. 'अब्भोवगमियाए'त्ति प्राकृतत्वादभ्युपगमः—प्रव्रज्याप्रतिपत्तितो ब्रह्मचर्य-भूमिशयन-केशलुञ्चनादीनामङ्गीकारः, तेन निर्वृत्ता आभ्युपगमिकी, तया. 'वेयइस्सइ'त्ति भविष्यत्कालनिर्देशः भविष्यत्पदार्थो विशिष्टज्ञानवतामेव ज्ञेयः, अतीतो वर्तमानश्च पुनरनुभवद्वारेणाऽन्यस्यापि ज्ञेयः संभवतीति ज्ञापनार्थः. 'उवक्कमियाए'त्ति उपक्रम्यतेऽनेन इत्युपक्रमः—कर्मवेदनोपायः, तत्र भवा औपक्रमिकी. स्वयमुदीर्णस्य, उदीरणाकरणेन चोदयम्-उपनीतस्य कर्मणोऽनुभवः, तया औपक्रमिक्या वेदनया वेदयिष्यति. तथा च 'अहाकम्मं'ति यथाकर्म—बद्धकर्मानतिक्रमेण. 'अहानिगरणं'ति निकरणानां—नियतानां देशकालादीनां करणानां विपरिणामहेतूनामनतिक्रमेण—यथा यथा तत् कर्म भगवता दृष्टं तथा तथा विपरिणंस्यति इति. इतिशब्दो वाक्यार्थसमाप्ताविति.

४. ['एवं खलु'त्ति] कहेवाशे ए प्रकारे. ['मए'त्ति] में कह्युं छे. आ सूत्रवडे पोताना सर्वज्ञपणाने लीधे वस्तुस्वरूपने कहेवामां पोतानी स्वतंत्रता दर्शावी छे. ['पएसकम्मे य'त्ति] प्रदेश एटले कर्मना पुद्गलो, जीवना प्रदेशोमां जे कर्मपुद्गलो ओतप्रोत छे ते प्रदेशकर्म. ['अणुभागकम्मे य'त्ति] अनुभाग एटले ते ज कर्मप्रदेशोनो अनुभवातो रस, अने तद्रूप जे कर्म ते अनुभागकर्म. ते बेमां जे प्रदेशकर्म छे तेनुं वेदन तो चोक्कस थाय छे. जो के तेनो विपाक नथी अनुभवातो, तो पण कर्म प्रदेशोनो नाश तो नियमे थाय छे माटे जीव (पोताना) प्रदेशथी कर्मप्रदेशोने चोक्कस जूदा पाडे छे—

में कह्युं छे. प्रदेशकर्म. अनुभागकर्म.

---

१. अथवा 'से' शब्दनो 'अथ'—अनंतर—अर्थ छेः—श्रीअभय.

१. आ शब्द अलंकारसूचक छेः—श्रीअभय.

खेरी नाखे छे. अनुभागकर्मने तथाभावे वेदे छे अने नथी वेदतो. जेम के; मिथ्यात्वना क्षयोपशम वखते मिथ्यात्वने अनुभागकर्मपणे नथी वेदतो, पण प्रदेशकर्मपणे तो वेदे ज छे. अहीं पूर्वोक्त बन्ने प्रकारना वेदवायोग्य कर्मने वेदवाना बे प्रकार छे. अने ते बे प्रकारने अर्हतोए ज जाण्या छे. ए वातने दर्शावता कहे छे के, ए (वक्ष्यमाण) वेदनना बन्ने प्रकारने अर्हते सामान्य प्रकारे जाण्या छे. ['सुअं'ति] स्मर्या- प्रतिपाद्या-छे, अथवा अनुचिंतित कर्या छे. जिन केवलज्ञानी होवाथी तेने सर्व वस्तु प्रत्यक्ष ज होय छे अने तेथी ज तेने कोइ वस्तु संभारवी नथी पडती. तो पण सूत्रमां जे 'स्मृतम्-स्मर्या' ए पद मूक्युं छे तेनुं कारण जिनना ज्ञान साथे स्मरणनुं अत्यंत अव्यभिचारपणे सादृश्य छे. ['विण्णाय'ति] ते बे प्रकारने देश, काळादि विभागरूपे विविध प्रकारे जाण्या छे. ते ज वातने कहे छे के, ['इमं कम्मं अयं जीवे' त्ति] आ सूत्रवडे कर्म अने जीव श्रीजिनने प्रत्यक्ष जणाय छे एम सूचव्युं छे. कारण के अर्हत केवली छे. ['अब्भोवगमिआए'त्ति] अभ्युपगम एटले प्रव्रज्या लीधा पछी ब्रह्मचर्यनो, भूमिशयन (भोंय पथारी) नो अने केशलोच वगेरेनो स्वीकार, ते स्वीकारथी निपजेली जे क्रिया ते आभ्युपगमिकी, तेवडे ['वेयइस्सइ'त्ति] वेदशे. 'भविष्यत्‌काळविषयक पदार्थनुं ज्ञान विशिष्टज्ञानवाळाओने ज होय छे अने भूतकाळ तथा वर्तमानकाळ संबधी ज्ञान तो अनुभवद्वारा विशिष्टज्ञानी सिवाय बीजा प्राणिने पण होय छे ए वात जणाववा सारुं अहीं 'वेदशे' ए क्रियापदमां भविष्यत्काळनो निर्देश मूक्यो छे. ['उवक्कमिआए'त्ति] जेनाथी उपक्रमाय ते उपक्रम अर्थात् कर्मने वेदवानो उपाय, तेमां थएली ते औपक्रमिकी पोतानी मेळे उदीर्ण के उदीरणाद्वारा उदयमां आणेल कर्मनो अनुभव ते वडे औपक्रमिकी वेदनावडे—वेदशे. तथा ['अहाकम्मं'ति] जेवी रीतिए कर्म बान्युं छे ते प्रकारे. ['अहानिगरणं'ति] अने विपरिणामना कारणरूप नियत देश, काळादिक करणनी मर्यादाने उलध्या सिवाय. जे जे प्रकारे ते कर्म भगवंते जोयु हशे ते ते प्रकारे ['विपरिणामिस्सति' इति] विपरिणाम पामशे.

श्रीजिनने प्रत्यक्ष.

आभ्युपगमिकी.

औपक्रमिकी.

पुद्गल.

१५६. प्र०—एस णं भंते ! पोग्गले अतीतं अणंतं, सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया ?

१५६. उ०—हंता, गोयमा ! एस णं पोग्गले अतीतं अणंतं, सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया.

१५७. प्र०—एस णं भंते ! पोग्गले पडुप्पण्णं, सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया ?

१५७. उ०—हंता, गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं.

१५८. प्र० एस णं भंते ! पोग्गले अणागयं, अणंतं, सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया ?

१५८. उ०—हंता, गोयमा ! तं चेव उच्चारेअव्वं. एवं खंधेण वि तिण्णि आलावगा. एवं जीवेण वि तिण्णि आलावगा भाणिअव्वा.

१५६. प्र० हे भगवन् ! 'ए पुद्गल वीतेला अनंत अने शाश्वत काळे हतु' एम कही शकाय ?

१५६. उ०—हे गौतम ! हा, 'ए पुद्गल वीतेला अनंत अने शाश्वत काळे हतु' एम कही शकाय.

१५७. प्र० हे भगवन् ! 'ए पुद्गल वर्तमान शाश्वत काळे छे' एम कहेवाय ?

१५७. उ० -हे गौतम ! हा. एम कहेवाय. (पूर्वोक्त प्रश्न प्रमाणे ज कहेवुं.)

१५८. प्र०— हे भगवन् ! 'ए पुद्गल अनंत अने शाश्वत भविष्यत्काळे थशे—रहेशे'—एम कही शकाय ?

१५८. उ०—हे गौतम ! हा, एम कहेवाय. (प्रश्न प्रमाणे ज कहेवुं) ए प्रमाणे स्कंध साथे पण त्रण आलापक कहेवा. तथा जीव साथे पण त्रण आलापक कहेवा.

५. अनन्तरं कर्म चिन्तितम्, तच्च पुद्गलात्मकमिति परमाण्वादिपुद्गलांश्चिन्तयन्नाह, अथवा परिणामाधिकारात् पुद्गलपरिणाममाहः—'एस णं भंते !' इत्यादि. 'पोग्गले'त्ति परमाणुः, उत्तरत्र स्कन्धग्रहणात्. 'तीतं'ति इह च "सर्वे अध्व—भाव—कालाः" इत्यनेनाधारे द्वितीया, ततश्च सर्वस्मिन्नतीते इत्यर्थः. 'अणंत'ति अपरिमाणमनादित्वात्, 'सासय'ति सदा विद्यमानम्, नहि लोकोऽतीतकालेन कदाचित् शून्य इति. 'समयं'ति कालम्, 'भुवि'त्ति अभूत्, इति एतद् वक्तव्यं स्यात् सद्भूतार्थत्वात्. 'पडुप्पण्णं'ति प्रत्युत्पन्नं वर्तमानम्, इत्यर्थः. वर्तमानस्यापि शाश्वतत्वं सदाभावाद्, एवमनागतस्यापि इति.

पुद्गलपरिणाम.

५. आगळना प्रकरणमां कर्म संबंधे विचार्युं छे. ते कर्म पुद्गलरूप छे माटे, अथवा परिणाम विषे प्रकरण चालु छे माटे हवे परमाणु वगेरे पुद्गलोना परिणाम संबंधे विचारतां कहे छे केः ['एस णं भंते !' इत्यादि.] ['पोग्गले'त्ति] नीचेना १५८ मा उत्तरसूत्रमां स्कंध लीधो छे माटे आ सूत्रनां पुद्गलनो अर्थ 'परमाणु' करवो. ['तीतं'ति] बधा भूतकाळमा, ['अणतं'ति] ते भूतकाळ केवो ? तो कहे छे के, अनादि होवाथी माप विनानो—अनंत—छेडा विनानो,

१. आ प्रयोग प्राकृतने धोरणे थयो छे. २. आ शब्द वाक्यनी समाप्ति सूचवे छेः—श्री अभय०

१. मूलच्छायाः—एष भगवन् ! पुद्गलोऽतीतम्, अनन्तम्, शाश्वतं समयम् 'अभूद्' इति वक्तव्यं स्यात् ? हन्त, गौतम ! एष पुद्गलोऽतीतम्, अनन्तम्, शाश्वतं समयम् 'अभूद्' इति वक्तव्यं स्यात्. एष भगवन् ! पुद्गलः प्रत्युत्पन्नम्, शाश्वतं समयं 'भवति' इति वक्तव्यं स्यात् ? हन्त, गौतम ! तच्चैव उच्चारयितव्यम्. एष भगवन् ! पुद्गलोऽनागतम्, अनन्तम्, शाश्वतं समयं 'भविष्यति' इति वक्तव्यं स्यात् ? हन्त, गौतम ! तच्चैव उच्चारयितव्यम्. एवं स्कन्धेनाऽपि त्रयः आलापकाः. एवं जीवेनाऽपि त्रयः आलापकाः भणितव्याः—अनु०

१. आ ठेकाणे "सर्वे अध्व—भाव—कालाः" आ सूत्रथी आधार अर्थमां बीजी विभक्ति थइ छेः—श्रीअभय०

तथा ['सासयं'ति] हमेशा रहेनारो. हजु सुधी एवुं थयुं नथी के लोक, कोइ वखत भूतकाळ विनानो—भूतकाळशून्य—होय. एवा अतीत ['समयं' ति] समये सद्भूत अर्थरूप होवाथी परमाणू 'हतो' एम कहेवाय? अर्थात् परमाणू भूतकाळमां 'हतो' एम कहेवाय? ['पडुप्पण्णं'ति] वर्तमान काळमां, वर्तमानकाळ पण सदा रहेतो होवाथी शाश्वत छे अने ए प्रमाणे भविष्यत्काळ पण शाश्वत छे.

छद्मस्थादि.

१५९. प्र०—छउमत्थे णं भंते! मणुस्से अतीतं, अणंतं, सासयं समयं केवलेणं संजमेणं, केवलेणं संवरेणं, केवलेणं बंभचेरवासेणं, केवलाहि पवयणमाईहि सिज्झिसु, बुज्झिसु, जाव–सव्वदुक्खाणं अंतं करिंसु?

१५९. उ०—गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे.

१६०. प्र०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–तं चेव जाव–अंतं करेंसु?

१६०. उ०—गोयमा! जे केइ अतकरा, अंतिमसरीरिआ वा सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा सव्वे ते उप्पण्णणाण–दंसणधरा, अरहा, जिणा, केवली भवित्ता, तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा; से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव–सव्वदुक्खाणं अंतं करेसु; पडुप्पन्ने वि एवं चेव, नवर- 'सिज्झंति' भाणियव्वं, अणागये वि एवं चेव, नवरं—'सिज्झिस्संति' भाणियव्वं. जहा छउमत्थो तहा आहोहिओ वि, तहा परमाहोहिओ वि; तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणिअव्वा.

१६१. प्र०—केवली णं भंते! मणूसे अतीत, अणतं, सासय समयं जाव–अंतं करेसु?

१६१. उ०—हंता, सिज्झिसु, जाव–अंतं करेंसु, एते तिन्नि आलावगा भाणियव्वा छउमत्थस्स जहा, नवरं—सिज्झिसु, सिज्झंति, सिज्झिस्संति.

१६२. प्र०—से णूणं भंते! अतीतं, अणतं, सासयं समय; पडुप्पण्णं वा सासयं समयं; अणागयं अणंतं वा सासयं समयं जे केइ अंतकरा वा, अंतिमसरीरिआ वा, सव्वदुक्खाणं अतं करेंसु वा,

१५९. प्र०—हे भगवन्! वीतेला अनंत शाश्वत काळमां छद्मस्थ मनुष्य केवल सयमथी, केवल संवरथी, केवल ब्रह्मचर्यवासथी अने केवल प्रवचनमाताथी सिद्ध थयो, बुद्ध थयो, अने यावत्—सर्वदुःखोनो नाश करनार थयो?

१५९. उ०—हे गौतम! ए अर्थ समर्थ नथी.

१६०. प्र०—हे भगवन्! ते ए प्रमाणे शा हेतुथी कहो छो के, (पूर्वे प्रमाणे ज कहेवुं) 'पूर्वोक्त छद्मस्थ मनुष्य यावत्–अंतकर थयो नथी?'

१६०. उ०—हे गौतम! जे कोइ अंतकरे वा अंतिमशरीरवाळाए सर्व दुःखोना नाशने कर्यो, 'तेओ' करे छे के करशे ते बधा उत्पन्नज्ञानदर्शनधर, अरिहन्त, जिन अने केवली थइने त्यार पछी सिद्ध, बुद्ध अने मुक्त थया छे, परिनिर्वाण पाम्या छे तथा तेओए सर्व दुःखोनो नाश कर्यो छे, (तेओ) करे छे अने करशे. माटे हे गौतम! ते हेतुथी एम कह्युं छे के यावत्—सर्व दुःखोनो अंत कर्यो. वर्तमानकाळमां पण ए प्रमाणे ज जाणवु. विशेष ए के, 'सिद्ध थाय छे' एम कहेवु. तथा भविष्यत्काळमां तेवी ज रीते जाणवु. विशेष ए के, 'सिद्ध थशे' एम कहेवुं. जेम छद्मस्थ कह्यो तेम आधोवधिक अने परमाधोवधिक पण जाणवो, अने तेना त्रण त्रण आलापक कहेवा.

१६१. प्र०—हे भगवन्! वीतेला अनंत शाश्वत काळमां केवली मनुष्ये यावत् सर्व दुःखोनो नाश कर्यो?

१६१. उ०—हे गौतम! हा, ते सिद्ध थया, तेणे सर्व दुःखोनो नाश कर्यो. अहीं पण छद्मस्थनी पेठे त्रण आलापक कहेवा. विशेष ए के, सिद्ध थया, सिद्ध थाय छे अने सिद्ध थशे; एम कहेवुं.

१६२. प्र०—हे भगवन्! वीतेला अनंत शाश्वत काळने विषे, वर्तमान शाश्वत समयमां अने अनंत शाश्वत भविष्यत्काळमां जे कोइ अंतकरोए, अंतिमशरीरवाळाओए सर्वदुःखोनो नाश कर्यो,

---

१. मूलच्छाया.—छद्मस्थो भगवन्! मनुष्यः, अतीतम्, अनन्तम्, शाश्वतं समयं केवलेन संयमेन, केवलेन संवरेण, केवलेन ब्रह्मचर्यवासेन, केवलाभिः प्रवचनमातृभिरसैत्सीत्, अबुद्ध, यावत्–सर्वदुःखानामन्तमकार्षीत्? गौतम! नाऽयमर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन भगवन्! एवमुच्यते–तच्चैव यावदन्तमकार्षीत्? गौतम! ये केऽप्यन्तकराः, अन्तिमशरीरा वा सर्वदुःखानामन्तम्–अकार्षुर्वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा सर्वे ते उत्पन्नज्ञान–दर्शनधराः, अर्हाः, जिनाः, केवलिनो भूत्वा, ततः पश्चात् सिध्यन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परिनिर्वान्ति, सर्वदुःखानामन्तमकार्षुर्वा, कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा; तत् तेनाऽर्थेन गौतम! यावत्–सर्वदुःखानामन्तम्–अकार्षुः; प्रत्युत्पन्नेऽपि एवं चैव, नवरम्–'सिध्यन्ति' भणितव्यम्, अनागतेऽपि एवं चैव, नवरम्–'सेत्स्यन्ति' भणितव्यम्. यथा छद्मस्थस्तथा आधोऽवधिकोऽपि, तथा परमाऽधोवधिकोऽपि, त्रयः त्रयः आलापका भणितव्या. केवली भगवन्! मनुष्यः अतीतमनन्तम्, शाश्वतं समयं यावत्–अन्तमकार्षीत्? हन्त, असैत्सीत्, यावदन्तमकार्षीत्, एते त्रयः आलापका भणितव्याः छद्मस्थस्य यथा, नवरम्—असैत्सुः, सिध्यन्ति, सेत्स्यन्ति. तद् नूनं भगवन्! अतीतम्, अनन्तम्, शाश्वतं समयम्, प्रत्युत्पन्नं वा शाश्वतं समयम्, अनागतमनन्तं वा शाश्वतं समयं ये केऽपि अन्तकरा वा, अन्तिमशरीरा वा, सर्वदुःखानामन्तम्–अकार्षुर्वा:—अनु०

करेंति वा, करिस्संति वा; सव्वे ते उप्पन्नणाण–दंसणधरा, अरहा, जिणा, केवली भवित्ता, इओ पच्छा सिज्झंति, जाव–अंतं करेस्संति वा ?

१६२. उ०—हंता, गोयमा ! अतीतं, अणंतं, सासयं जाव-अंतं करिस्संति वा.

१६३. प्र०—से णूणं भंते ! उप्पण्णणाण–दंसणधरे, अरहा, जिणे केवली, 'अलमत्थु'त्ति वत्तव्वं सिया ?

१६३. उ०—हंता, गोयमा ! उप्पण्णणाण–दंसणधरे, अरहा, जिणे, केवली 'अलमत्थु'त्ति वत्तव्व सिया.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति.

करे छे अने करशे; ते बधा उत्पन्नज्ञानदर्शनधर, अरिहंत, जिन अने केवली थइ त्यार पछी सिद्ध थाय छे यावत्—सर्व दुःखोनो नाश करशे ?

१६२. उ०—हे गौतम ! हा, वीतेला अनंत शाश्वत काळने विषे यावत्—सर्व दुःखोनो नाश करशे.

१६३. प्र०—हे भगवन् ! ते उत्पन्नज्ञानदर्शनधर, अरिहंत जिन अने केवली अलमस्तु–पूर्ण–कहेवाय ?

१६३. उ०—हे गौतम ! हा, ते उत्पन्नज्ञानदर्शनधर, अरिहंत, जिन अने केवली पूर्ण कहेवाय अर्थात् पूर्णज्ञानी कहेवाय.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, एम कही यावत्—विहरे छे.

भगवंत**सुहम्मसामि**पणीए **सिरीभगवईसुत्ते** पढमसये चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो.

६. अनन्तरं स्कन्ध उक्तः, स्कन्धश्च स्वप्रदेशापेक्षया जीवोऽपि स्याद् इति जीवसूत्रम्; जीवाधिकारात्र प्रायो यथोत्तरप्रधानजीववक्तव्यतामुद्देशकान्तं यावदाहः—'छउमत्थे णं' इत्यादि. इह छद्मस्थोऽवधिज्ञानरहितोऽवसेयः, न पुनरकेवलिमात्रम्; उत्तरत्रावधिज्ञानिनो वक्ष्यमाणत्वाद् इति. 'केवलेणं'ति असहायेन, शुद्धेन वा, परिपूर्णेन वा, असाधारणेन वा. यदाहः—''केवलमेगं सुद्धं वा सगलमसाहारणं अणंतं च''[१] 'संजमेणं'ति पृथिव्यादिरक्षणरूपेण, 'संवरेणं'ति इन्द्रिय–कषायनिरोधेन, 'सिज्झिसु' इत्यादौ च बहुवचनं प्राकृतत्वादिति. एतच्च गौतमेनानेनाभिप्रायेण पृष्टम्–यदुत उपशान्तमोहाद्यवस्थाया सर्वविशुद्धाः संयमादयोऽपि भवन्ति, विशुद्धसंयमादिसाध्या च सिद्धिरिति सा छद्मस्थस्यापि स्यादिति. 'अंतकरे'त्ति भवान्तकारिणः, ते च दीर्घतरकालाऽपेक्षयाऽपि भवन्ति इत्यत आहः–'अंतिमसरीरया व'त्ति अन्तिमं शरीरं येषामस्ति तेऽन्तिमशारीरिकाश्चरमदेहा इत्यर्थः. वाशब्दो समुच्चये. 'सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु' इत्यादौ 'सिज्झिसु, सिज्झति' इत्याद्यपि द्रष्टव्यम्, सिद्ध्यविनाभूतत्वात् सर्वदुःखान्तकरणस्येति. 'उप्पण्णणाण–दंसणधरे'त्ति उत्पन्ने ज्ञान–दर्शने धारयन्ति ये ते तथा, नतु अनादिसंसिद्धज्ञानाः, अत एव 'अरह'त्ति पूजार्हाः, 'जिण'त्ति रागादिजेतारः. ते च छद्मस्था अपि भवन्ति, इत्यत आहः–'केवलि'त्ति सर्वज्ञाः. 'सिज्झंति' इत्यादिषु चतुर्षु पदेषु वर्तमाननिर्देशस्य शेषोपलक्षणत्वात्, 'सिज्झिसु, सिज्झति, सिज्झिस्संति' इत्येवमतीतादिनिर्देशो द्रष्टव्यः. अत एव 'सव्वदुक्खाणं' इत्यादौ पञ्चमपदेऽसौ विहित इति. 'जहा छउमत्थो'इत्यादेरिय भावना—'आहोही णं भंते ! मणूसे तीतं–अणंतं सासयं' इत्यादि दण्डकत्रयम्, तत्राधः परमावधेरधस्ताद् योऽवधिः सोऽधोऽवधिः, तेन यो व्यवहरति असावाधोवधिकः—परिमितक्षेत्रविषयावधिकः. 'परमाहोहिओ'त्ति परम आधोवधिकाद् यः स परमाधोवधिकः. प्राकृतत्वाच्च व्यत्ययनिर्देशः. 'परमोहिओ'त्ति कचित् पाठः, व्यक्तश्च. स च समस्तरूपिद्रव्याऽसंख्यातलोकमात्राऽलोकखण्डाऽसंख्याताऽवसर्पिणीविषयाऽवधिज्ञानः. 'तिन्नि आलावग'त्ति कालत्रयभेदतः. 'केवली णं' इत्यादि. केवलिनोऽप्येत एव त्रयो दण्डकाः. विशेषस्तु सूत्रोक्त एवेति. 'से णूणं' इत्यादिषु कालत्रयनिर्देशो वाच्य एवेति. 'अलमत्थु त्ति वत्तव्व सिय'त्ति अलमस्तु पर्याप्तं भवतु, नातः परं किञ्चिद् ज्ञानान्तरं प्राप्तव्यमस्यास्ति, इति एतत्, वक्तव्यं स्याद् भवेत्, सत्यत्वादस्य इति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते **श्रीभगवतीसूत्रे** प्रथमशते चतुर्थोद्देशके **श्रीअभयदेवसूरिविरचितं** विवरणं समाप्तम्.

---

१. मूलच्छायाः—कुर्वन्ति वा, करिष्यन्ति वा; सर्वे ते उत्पन्नज्ञान–दर्शनधराः, अर्हाः, जिना, केवलिनो भूत्वा इतः पश्चात् सिध्यन्ति, यावत्–अन्तं करिष्यन्ति वा ? हन्त, गौतम ! अतीतमनन्तम्, शाश्वतं समयं यावत्–अन्तं करिष्यन्ति वा. तद् नूनं भगवन् ! उत्पन्नज्ञान–दर्शनधरः, अर्हः, जिनः, केवली 'अलमस्तु' इति वक्तव्यं स्यात् ? हन्त, गौतम ! उत्पन्नज्ञान–दर्शनधरः, अर्ह, जिन, केवली 'अलमस्तु' इति वक्तव्यं स्यात्. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इति.—अनु०

१. प्र० छायाः—केवलमेकं शुद्धं वा सकलमसाधारणम् अनन्तं च:—अनु०

१. आगळना प्रकरणमां स्कंध संबंधे विवेचन कर्युं छे. अने ते स्कंध स्वप्रदेशनी अपेक्षाए जीवरूप पण होय, माटे हवे जीवविषे सूत्र कयुं छे. जीवनो अधिकार होवाथी हवे आखा उद्देशक सुधी यथोत्तर प्रधान जीव विषे ज वक्तव्यता कहे छेः-['छउमत्थे णं' इत्यादि] छद्मस्थनो अर्थ अहीं 'अवधिज्ञान विनानो' जीव जाणवो, पण 'मात्र केवलज्ञान विनानो होय ते छद्मस्थ' एम अहीं न समजवुं. कारण के नीचेना सूत्रमां ज 'अवधिज्ञानी' संबंधे वात कहेशे. ['केवलेणं'ति] कोइनी सहायता विनानुं, शुद्ध अथवा परिपूर्ण के असाधारण, कयुं छे केः—"केवल एटले एक, शुद्ध, सकल, असाधारण, अने अनंत." एवा ['संजमेणं'ति] पृथिव्यादिना रक्षणरूप संयमवडे, ['संवरेणं'ति] इंद्रिय अने कषायना रोकवारूप संवरवडे ['सिज्झिंसु'] सिद्ध थया? आ प्रश्न पूछवामां श्रीगौतमनो अभिप्राय आ छेः—ज्यारे उपशांत मोहवाळी अवस्था होय छे त्यारे संयमादिक सर्व विशुद्ध होय छे अने सिद्धि प्राप्त करवानुं साधन पण ते सर्व विशुद्ध संयमादिक ज छे. अने तेवा पवित्र संयमादिक छद्मस्थ जीवने पण होय छे माटे ते सिद्ध थया? ए प्रश्न पूछ्यो छे. ['अंतकरे'त्ति] भवनो नाश करनारा, लांबे काळे भवनो नाश करनारा ते पण 'अंतकर' कहेवाय छे, माटे कहे छे केः- ['अंतिमसरीरिआ वे'त्ति] चालु शरीर ए ज जेओनुं छेल्लुं शरीर छे अर्थात् चालु शरीर छोड्या पछी जेओ बीजुं शरीर प्राप्त करवाना नथी ते 'अंतिमशरीरिक' कहेवाय. ['सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु'त्ति] इत्यादि सूत्रमां 'सिज्झिंसु' 'सिज्झंति' इत्यादि क्रियापदो कहेवां. कारण के सर्व दुःखनो नाश सिद्धि मेळव्या सिवाय संभवी शकतो नथी. ['उप्पण्णणाण-दंसणधरे'त्ति] अनादिथी संसिद्ध ज्ञानवाळा नहीं पण उत्पन्न थएल ज्ञान अने दर्शनने धारण करे ते 'उत्पन्नज्ञान-दर्शनधर' एवा छे माटे ज ['अरह'त्ति] पूजाने योग्य. ['जिण'त्ति] रागादिनो जय करनार. तेवा तो छद्मस्थो पण होय छे माटे कहे छे के, ['केवलि'त्ति] अने सर्वज्ञ सिद्ध थाय छे, थया अने थशे. ['सिज्झंति'] इत्यादि चार क्रियापदोमां मूकेलो वर्तमान काळनो निर्देश बाकीना बे काळना निशानरूप छे, माटे ते बे (भूत अने भविष्यत्) काळ पण अहीं जाणी लेवा. अने एम छे, माटे ज ['सव्वदुक्खाणं'] इत्यादि पांचमां पदमां ए त्रणे काळनो निर्देश कर्यो छे. ['जहा छउमत्थो'] इत्यादि सूत्रनी भावना आ प्रमाणे छेः- अहीं 'आहोही णं भंते! मणूसे तीतं अणंतं सासयं' इत्यादि त्रण आलापक कहेवा. 'आधोऽवधिक' शब्दनो अर्थ आ छेः—परमावधिथी हलको

अवधिज्ञान.

केवळ.

गौतम.

अंतिमशरीर.

अर्ह. जिन.

आधोवधिक.

---

१. जैनपरिभाषामां 'ज्ञान ए शुं छे?' ए संबंधेनुं संक्षिप्त विवेचन पृ-३६ मानी बीजी नोटमां करेलुं छे. ते ठेकाणे ज्ञानना पांच भेद पण दर्शाव्या छे. तेमां आ 'अवधिज्ञान' ए ज्ञाननो त्रीजो भेद छे. ते संबंधे साररूप संक्षिप्त विवेचन आ छेः—

"× × × अवशब्दस्य अव्ययत्वेन अनेकार्थत्वाद् अधो अधो विस्तृतं धीयते परिच्छिद्यते रूपि वस्तु तेन ज्ञानेन इत्यवधिः. अथवा अव मर्यादया एतावत् क्षेत्रं पश्यन्, एतावन्ति द्रव्याणि, एतावन्तं कालं पश्यति, इत्यादिपरस्परनियमितक्षेत्रादिलक्षणया धीयते परिच्छिद्यते रूपि वस्तु तेन इत्यवधिः. 'तम्मि व'त्ति × × × तथैव अवधीयते जीवेन तस्मिन् सति वस्तु इत्यवधिः. × × × अथवा अवधानम् अवधिः—साक्षाद् अर्थपरिच्छेदनमित्यर्थः"—(श्रीविशेषा० पृ-५४ गा० ८२. य० ग्रं०):—अनु०

जेना द्वारा (परोक्ष रहेला पण) रूपवाळा पदार्थो विस्तारपूर्वक जणाय ते 'अवधिज्ञान'. 'एटलां ज द्रव्यो' 'अमुक काळ सुधी' एवी मर्यादा-पूर्वक जेना द्वारा (परोक्ष रहेला पण) रूपवाळा पदार्थो जणाय ते 'अवधिज्ञान'. जे ज्ञाननी विद्यमानता होय त्यारे जीव (परोक्ष रहेला पण) रूपवाळा पदार्थोने मर्यादापूर्वक जाणी शके ते ज्ञान 'अवधिज्ञान'. अथवा रूपवाळा सर्व पदार्थोनुं साक्षात् जोवुं ते 'अवधिज्ञान'. (श्रीविशेषा० पृ-५४ गा० ८२. य० ग्रं०):—अनु०

"शेषाणामिति नारक-देवेभ्यः शेषाणाम्—तिर्यग्योनिजानां मनुष्याणां च. अवधिज्ञानावरणीयस्य कर्मणः क्षयोपशमाभ्यां भवति षड्विधम्. तद्यथा:—अनानुगामिकम्, आनुगामिकम्, हीयमानकम्, वर्धमानकम्, अनवस्थितम्, अवस्थितमिति. तत्र अनानुगामिकं यत्र क्षेत्रे स्थितस्य उत्पन्नं ततः प्रच्युतस्य प्रतिपतति. × × × आनुगामिकं च यत्र क्वचिद् उत्पन्नं क्षेत्रान्तरगतस्याऽपि न प्रतिपतति. × × × हीयमानकम् असंख्येयेषु द्वीपेषु, समुद्रेषु × × × यद् उत्पन्नं क्रमशः संक्षिप्य-माणं प्रतिपतति. × × × वर्धमानकं × × × उत्पन्नं वर्धते आ सर्वलोकात्. × × × अनवस्थितं हीयते, वर्धते; वर्धते, हीयते; प्रति-पतति, चोत्पद्यते च. × × × अवस्थितं यावति क्षेत्रे उत्पन्नं भवति, ततो न प्रतिपतति आ केवलप्राप्तेः, आ भवक्षयाद् वा. (तत्त्वार्थ-सूत्रे प्रथमाध्याये २३ सूत्रम्):—अनु०

आ अवधिज्ञान देवोने अने नैरयिकोने जन्मथी ज होय छे. अने मनुष्योने तथा तिर्यंचयोनिकोने, तेनुं प्रतिबंधक कर्म नाश पामे अने टंडु पडे त्यार पछी थाय छे. कर्मना वैचित्र्यने लीधे ते अवधिज्ञान छ प्रकारनुं होय छे. ते आ प्रमाणेः—अनानुगामिक, आनुगामिक, हीयमानक, वर्धमानक, अनवस्थित अने अवस्थित. जे स्थळे रहेतां अवधिज्ञान थयुं होय अने ते स्थळने छोडी देतां ते अवधिज्ञान चाल्युं जाय ते अनानुगामिक-पाछळ नहीं चालनार—अवधिज्ञान कहेवाय. जे अवधिज्ञान गमे त्यां थयुं होय अने गमे त्यां जवाथी पण जे नाश पामतुं नथी—साथे ज रहेनारुं छे-ते आनुगामिक—पाछळ चाल-नार—अवधिज्ञान कहेवाय. जे अवधि ज्ञान शरुआतमां अनेक विषयोने जाणे अने पछी क्रमे करी ओछुं ओछुं जाणे अने छेवटे नाश पामे ते हीयमानक-हीणपने पामतुं-अवधिज्ञान कहेवाय. जे अवधिज्ञान शरुआतमां थोडुं थोडुं जाणे अने पछी क्रमे क्रमे वधतां सर्व लोकना रूपी पदार्थोने जाणे ते वर्धमानक-वधतुं-अवधिज्ञान कहेवाय. जे अवधिज्ञान हीणुं थाय, वधे; वधे, हीणुं थाय; अने पडे तथा उत्पन्न थाय ते अवधिज्ञान अनवस्थित-अस्थिर-अवधिज्ञान कहेवाय. अने जे अवधिज्ञान जेटलुं थयुं छे तेटलुं ज, जीवे त्यां सुधी अथवा केवळज्ञान थाय त्यां सुधी तेटलुंने तेटलुं ज रहे, पण बदलाय नहीं ते अवस्थित-स्थिर-अवधिज्ञान कहेवाय. (तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र-२३):—अनु०

२. अहीं एकवचन मूकवुं जोइए, तो पण जे बहुवचन मूक्युं छे ते प्राकृतना नियम प्रमाणे छे. ३. 'वा' शब्द समुच्चयनो सूचक छेः—श्रीअभय०

जे अवधि ते अधोऽवधि, जे जीव ते अधोऽवधिवडे व्यवहार करे ते आधोऽवधिक अर्थात् परिमित क्षेत्रविषयक अवधिज्ञानवाळो. ['परमाहोहिओ' त्ति] पूर्वोक्त आधोऽवधिक ज्ञानी करतां जे उत्तम होय ते 'परमाधोऽवधिक' कहेवाय. कोइ स्थळे ['परमोहिओ'त्ति] एवो पाठ छे अने ते पाठ स्पष्ट छे. ते परमावधिक जीवनो विषय आ प्रमाणे छेः- परमावधिवाळो जीव रूपवाळां समस्त द्रव्यो, अलोकमां लोकप्रमाण असंख्यात खंडो तथा असंख्य अवसर्पिणीओ; ए बधुं जाणे छे. ['तिण्णि आलावग'त्ति] त्रण काळना भेदथी त्रण आलापक कहेवा. ['केवली णं' इत्यादि] ए त्रण आलापक केवळज्ञानिने विषे पण कहेवा. ते संबंधे जे विशेष छे ते सूत्रमां ज कह्यो छे. ['से णूणं' इत्यादि] ए सूत्रमां पण त्रणे काळनो निर्देश कहेवो ज जोइए. ['अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिय'त्ति] अर्थात् जीव पूर्णज्ञानी छे, अने तेने हवे बीजुं कोइ ज्ञान मेळववानुं बाकी रह्युं नथी–जेटलुं ज्ञान ते जीवे मेळव्युं छे तेटलुं ज बस -पूरतुं छे एम कहेवाय, कारण के ए ज्ञान सत्य छे.

परमाधोऽवधिक.

अलमस्तु.

---

१. आवो निर्देश प्राकृतना धोरणे कर्यो छेः—श्रीअभय०

खेडारूप· ममुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी य सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति-शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेव सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्य ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक ५.

पृथिवीओ केटली?—सात.—ते सातेमां केटला निरयावास?—असुरकुमारावासो केटला?—पृथिवीकायिकावासो केटला?—ज्योतिष्कावासो.—विमानावासो केटला?—संग्रह.—नैरयिकस्थितिस्थान.—नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त अने लोभोपयुक्त छे?—भंगक.—अवगाहनास्थान.—शरीर.—संघयण.—संस्थान.—लेश्या.—दृष्टि.—ज्ञान.—अज्ञान.—योग.—उपयोग.—असुरकुमारस्थितिस्थानादि.—लोभप्राधान्य.—पृथिवीकायिकस्थितिस्थान.—बेइंद्रियादि जीव विषे पूर्ववत् विचार.—पचेंद्रियतिर्यंचयोनिक.—मनुष्य.—वानव्यंतरादि.—उद्देशकसमाप्ति.—

१६४. प्र०—कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?

१६४. उ०—गोयमा! सत्त पुढवीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव—तमतमा.

१६५. प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए कति निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता?

१६५. उ०—गोयमा! तीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता. गाहाः—

तीसा य पन्नवीसा पन्नरस दसेव या सयसहस्सा,
तिन्नेग पचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया.

१६४. प्र०—हे भगवन्! केटली पृथिवीओ कही छे?

१६४. उ०—हे गौतम! सात पृथिवीओ कही छे, ते आ प्रमाणेः—रत्नप्रभा, यावत्—तमतमाप्रभा.

१६५. प्र०—हे भगवन्! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां केटला लाख निरयावासो–नारकिनां रहेठाणो–कहेला छे?

१६५. उ०—हे गौतम! त्यां त्रीश लाख निरयावासो कह्या छे. हवे बधी पृथिवीना निरयावासने सूचवनारी गाथा कहे छेः—१ लीमां त्रीश लाख. २ जीमां पचीश लाख. ३ जीमां पंदर लाख. ४ थीमां दस लाख. ५ मीमां त्रण लाख. ६ ट्ठीमा नवाणुं हजार, नवसे ने पंचाणुं–९९,९,९५ अर्थात् लाखमां पांच ओछा निरयावास छे अने ७ मीमां पांच ज अनुत्तर निरयावास छे.

१. अनन्तरोद्देशकस्यान्तिमसूत्रेषु अर्हदादय उक्ताः, ते च पृथिव्यां भवन्तीति, अथवा पृथिवीतोऽप्युद्धृत्य मनुजत्वमवाप्ताः सन्तस्ते भवन्तीति पृथिवीप्रतिपादनाय, तथा '*पुढवि*'त्ति यद् उद्देशकसंग्रहिण्याम्-उक्तं तत्प्रतिपादनाय चाहः—'*कइ णं*' इत्यादि. तत्र '*रयणप्पभ*'त्ति नरकवर्जं प्रायः प्रथमकाण्डे इन्द्रनीलादिबहुविधरत्नसंभवाद् रत्नानां प्रभा दीप्तिर्यस्यां सा रत्नप्रभा. यावत्–करणाद् इद दृश्यम्—'शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा'इति. शब्दार्थश्च रत्नप्रभावदिति. '*तमतम*'त्ति तमस्तमप्रभेत्यर्थः, तत्र प्रकृष्टं तम तमस्तमम्, तस्येव प्रभा यस्याः सा तमस्तमप्रभा. एतासु च नरकावासा भवन्ति इति तान्, आवासाधिकाराच्च शेषजीवावासान् परिमाणतो दर्शयन्नाहः—'*इमीसे णं*' इत्यादि. अस्यां विनेयप्रत्यक्षायाम्. '*नरयावाससयसहस्स*'त्ति आवसन्ति येषु ते आवासाः, नरकाश्च ते आवासाश्च इति नरकावासाः, तेषां यानि शतसहस्राणि तानि तथा इति. शेषपृथिवीसूत्राणि तु गाथानुसारेणाध्येयानि, अत एवाहः—'*गाह*'त्ति सा चेयम्—'*तीसा य पन्नवीसा*' इत्यादि. सूत्राभिलापश्चः—'*सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए कइ नरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता? गोयमा! पणवीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता.' इत्यादिरिति.*

---

१. मूलच्छायाः—कति भगवन्! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—रत्नप्रभा यावत्–तमस्तमा. अस्यां भगवन्! रत्नप्रभायां पृथिव्यां कति निरयाऽऽवासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! त्रिंशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि. गाथाः—त्रिंशच्च पञ्चविंशतिः पञ्चदश दशैव च शतसहस्राणि, त्रीणि एकं पञ्चोनम्, पञ्च एवाऽनुत्तरा निरयाः—अनु०

१. अत्रै छायाः—शर्कराप्रभायां भगवन्! पृथिव्यां कति निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! पञ्चविंशतिर्निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानिः–अनु०

१. आगळना उद्देशकमां छेवटने भागे अर्हंत वगेरे संबंधे हकीकत कही छे. अने ते अर्हंत वगेरे कोइ समये पृथिवीना जीवरूपे पण होय छे. माटे, अथवा पृथिवीकायरूप गतिथी नीकळीने मनुष्यपणुं मळवे त्यारे ज ते अर्हंत वगेरे थइ शके छे. माटे हवे पृथिवी विषे प्रतिपादन करवा सारु अने आगळ आवेली प्रथम शतकनी संग्रह गाथामां जे ['पुढवि' त्ति] ए पद कह्युं छे तेनुं प्रतिपादन करवा आ उद्देशकनी शरुआत करतां कहे छे के:— ['कइ णं' इत्यादि] तेमां ['रयणप्पभ' त्ति] रत्नप्रभा, 'रत्नप्रभा'नो शब्दार्थ आ छे:—रत्नप्रभा पृथिवीमां त्रण कांड छे:-रत्नकांड, जलकांड अने पंककांड. ते त्रण कांडमांना प्रथम कांडमां नरकावासवाळी जग्या सिवाय बीजी जग्याए अनेक प्रकारना इंद्रनीलादि रत्नो होय छे अने तेथी जे जग्याए ते रत्नोनी प्रभा—कांति-पडे ते जग्यानुं नाम 'रत्नप्रभा' कहेवाय. आ स्थळे 'यावत्' शब्द मूक्यो छे माटे आ प्रमाणे समजवुं:—शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा अने तमःप्रभा. ए बधा शब्दोनो अर्थ 'रत्नप्रभा' शब्दनी पेठे ज जाणवो. ['तमतम' त्ति] तमस्तमप्रभा, तेनो अर्थ आ छे:—'तमस्तम' एटले घणुं ज अंधारुं, जे जग्याए घणु अंधारुं छे एवी (घणा अंधारा जेवी) प्रभावाळी ते 'तमस्तमप्रभा' कहेवाय. उपरनी बधी पृथिवीओमां नरकावासो होय छे. माटे हवे ते नरकना आवासो—रहेठाणो—नुं परिमाणपूर्वक प्रतिपादन करवा अने आवासना अधिकारथी बाकी बधा जीवोना आवासोनुं पण परिमाणपूर्वक प्रतिपादन करवा कहे छे:-['इमीसे णं' इत्यादि] 'इमीसे' एटले आमां —पूछनार शिष्यने प्रत्यक्षभूत आ पृथिवीमां, ['नरयावाससयसहस्स' त्ति] जेमां (जीवो) रहे ते आवास अने नरकरूप जे आवास, ते नरकाऽऽवास, तेओना जे शतसहस्रो ते नरकावास शतसहस्रो अर्थात् लाखो नरकावास. बाकीनी बधी पृथिवी संबंधेना सूत्रो गाथाने अनुसारे जाणवां. माटे ज कहे छे के: -['गाह' त्ति] ते गाथा आ छे:—['तीसा य पन्नवीसा' इत्यादि] सूत्रनो अभिलाप तो आ प्रमाणे कहेवो: -'सक्करप्पभाए' णं भंते ! पुढवीए कइ नरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता? गोयमा! पणवीसं नरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता' इत्यादि.

(हांसियामां: रत्नप्रभा. तमस्तमा. आवास. गाथा.)

असुरकुमारावास.

१६६. प्र०—केवइया णं भंते ! असुरकुमारावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

१६६. उ०—एवं:-

चउसट्ठी असुराणं चउरासीई य होइ नागाणं,
बावत्तरिं सुवण्णाणं वाउकुमाराण छन्नउई.
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणियम-ग्गीण,
छण्हं पि जुयलयाणं छावत्तरिमो सयसहस्सा.

१६६. प्र०—हे भगवन् ! असुरकुमारोना केटला लाख आवासो कह्या छे ?

१६६. उ०—हे गौतम ! ते आवासो आ प्रमाणे कह्या छे:— असुरकुमारोना चोसठ लाख आवासो कह्या छे. तेम ज नागकुमारोना चोराशी लाख, सुवर्णकुमारोना बहुंतेर लाख, वायुकुमारोना छन्नु लाख तथा द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमारेंद्र, स्तनितकुमार अने अग्निकुमार, ए छए युगलकना छोंतेर लाख आवासो कह्या छे.

२. *'छण्हं पि जुयलयाणं'*ति दक्षिणो-त्तरदिग्भेदेनाऽसुरादिनिकायो द्विभेदो भवतीति युगलानि उक्तानि, तत्र षट्सु युगलेषु प्रत्येकं षट्सप्ततिर्भवनलक्षाणामिति. एषा चासुरादिनिकाययुगलानां दक्षिणोत्तरदिशोरयं विभागः—*"चउतीसा, चउचत्ता, अट्ठतीसं, च सयसहस्साओ, पन्ना, चत्तालीसा, दाहिणओ हुंति भवणाइं."* *'चत्तालीस'*त्ति द्वीपकुमारादीना षण्णां प्रत्येकं चत्वारिंशद् भवनलक्षाः—*"तीसा, चत्तालीसा, चोत्तीसं, चेव सयसहस्साइं, छायाला, छत्तीसा, उत्तरओ होंति भवणाइं."* *'छत्तीस'*त्ति द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं षट्त्रिंशद् भवनलक्षाणि इति.

२. ['छण्हं पि जुयलयाणं' ति] असुरादिनो निकाय बे भेदवाळो छे-एक दक्षिणनो अने बीजो उत्तरनो, माटे अहीं 'छ युगल' एम कह्युं छे. ते छए युगलना असुरोने एक एकने छहुंतेर छहुतेर लाख भवनो छे. ए असुरादिनिकायना युगलोनो दक्षिण अने उत्तर दिशामां आ प्रमाणे विभाग छे:— "चोत्रीश लाख, चुमाळीश लाख. आडत्रीश लाख, पचास लाख अने चाळीस लाख भवनो दक्षिण दिशा तरफ होय छे." ['चत्तालीस' त्ति] द्वीपकुमारादिक छने प्रत्येकने चाळीस चाळीस लाख भवनो होय छे. तथा "त्रीश लाख, चाळीश लाख, चोत्रीश लाख, छेंताळीश लाख अने छत्रीश लाख भवनो उत्तर दिशा तरफ होय छे" ['छत्तीस' त्ति] द्वीपकुमारादिक छने प्रत्येक प्रत्येकने छत्रीश लाख भवनो होय छे.

(हांसियामां: असुरकुमारावास.)

---

१. जुओ पृ० ८ मुं:—अनु०

१. मूलच्छाया:—कियन्ति भगवन् ! असुरकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ? एवम्:—चतुष्षष्टिः असुराणां चतुरशीतिश्च भवति नागानाम्, द्विसप्ततिः सुवर्णानां वायुकुमाराणां षण्णवतिः. द्वीप-दिग्-उदधीनां विद्युत्कुमारेन्द्र-स्तनिता-ऽग्नीनाम्, षण्णामपि युगलकानां षट्सप्ततिः शतसहस्राणि:-अनु०

१. प्र० छाया:—चतुस्त्रिंशत्, चतुश्चत्वारिंशत्, अष्टात्रिंशत्, च शतसहस्राणि, पञ्चाशद्, चत्वारिंशद् दक्षिणतो भवन्ति भवनानि. १. त्रिंशद्, चत्वारिंशत्, चतुस्त्रिंशत्, चैव शतसहस्राणि, षट्त्रिंशत् उत्तरतो भवन्ति भवनानि:-अनु०

पृथिवीकायिकादिआवास.

१६७. प्र०—केवइया णं भंते ! पुढविकाईयावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

१६७. उ०—गोयमा ! असंखेज्जा पुढविकाइयावाससयसहस्सा पन्नत्ता, जाव—असंखिज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता.

१६८. प्र०—सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवईया विमाणावासा पन्नत्ता ?

१६८. उ०—गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पन्नत्ता एवं:—

बत्तीस—ट्ठावीसा बारस—अट्ठ—चउरो सयसहस्सा,
पन्ना—चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे.
आणय—पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण—च्चुए तिण्णि,
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु.
एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं सयं च मज्झमए,
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा.

१६७. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिकोना केटला लाख आवासो कह्या छे ?

१६७. उ०—हे गौतम ! पृथिवीकायिकोना असंख्येय लाख आवासो कह्या छे. अने ए प्रमाणे यावत्—ज्योतिषिकोना असंख्येय लाख विमानावासो जाणवा.

१६८. प्र०—हे भगवन् ! सौधर्म कल्पमां केटला विमानावासो कह्या छे ?

१६८. उ०—हे गौतम ! त्यां बत्रीश लाख विमानावासो कह्या छे. आ प्रमाणे:—

अनुक्रमे बत्रीश लाख, अट्ठावीश लाख, बार लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार, चालीश हजार विमानावासो जाणवा. अने छ हजार विमानावासो सहस्रार देवलोकमां छे. आनत अने प्राणत कल्पमां चारसो, आरण अने अच्युतमां त्रणसो अर्थात् ए चार कल्पोमां मळी सातसो विमानावासो छे. एकसोने अग्यार विमानावासो नीचला—अधस्तन—मां, एकसोने सात वचला—मध्यम—मां तथा एकसो उपरना—उपरिमक—मां छे. अने अनुत्तर विमानो तो पांच ज छे.

स्थितिस्थान.

संगहो:—पुढवी ट्ठिति—ओगाहण—सरीर—संघयणमेव संठाणे,
लेस्सा—दिट्ठी—णाणे जोगु—वओगे य दस ट्ठाणा.

१६९. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ठितिट्ठाणा पन्नत्ता ?

१६९. उ०—गोयमा ! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा:—जहण्णिया ठिती समयाहिया, जहण्णिया ठिई दुसमयाहिया; जाव—असंखेज्जसमयाहिया जहण्णिया ठिती. तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिती.

संग्रह:—पृथिवी वगेरे जीवावासोमां स्थिति, अवगाहना, शरीर, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग अने उपयोग ए दश स्थान संबंधे विचारवानुं छे.

१६९. प्र०—हे भगवन् ! ए रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां रहेनारा नैरयिकोना केटलां स्थितिस्थानो कह्यां छे अर्थात् एक एक निरयावासमां रहेनारा नैरयिकोनी केटली केटली उमर कही छे ?

१६९. उ०—हे गौतम ! तेओनां असंख्य स्थितिस्थानो कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:—ओछामां ओछी उमर दश हजार वर्षनी छे ते एक समयाधिक, बे समयाधिक ए प्रमाणे यावत्—जघन्य स्थिति असंख्येयसमयाधिक तथा तेने उचित उत्कृष्ट स्थिति पण ए प्रमाणे छे.

---

१. मूलच्छाया:—कियन्ति भगवन् ! पृथिवीकायिकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! असंख्येयानि पृथिवीकायिकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, यावत्—असंख्येयानि ज्योतिषिकविमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि. सौधर्मे भगवन् ! कल्पे कियन्तो विमानावासाः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! द्वात्रिंशद् विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि. एवम्:—द्वात्रिंशद्—अष्टाविंशतिर्द्वादश—ष्ट—चत्वारि शतसहस्राणि, पञ्चाशत्—चत्वारिंशत् षट् च सहस्राणि सहस्रारे. आनत—प्राणतकल्पे चत्वारि शतानि, आरणा—च्युते त्रीणि, सप्त विमानशतानि चतुर्ष्वपि एतेषु कल्पेषु. एकादशोत्तरम्—अधस्तनेषु, सप्तोत्तरं शतं च मध्यमके, शतमेकम्—उपरितने पञ्च एव अनुत्तरविमानानि:—अनु०

२. मूलच्छाया:—पृथवीषु स्थिति—अवगाहना—शरीर—संहननमेव संस्थानम्, लेश्या—दृष्टि—ज्ञानं योगोपयोगौ च दश स्थानानि. एतस्यां भगवन् ! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे नैरयिकाणां कियन्ति स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! असंख्येयानि स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा:—जघन्या स्थितिः समयाधिका, जघन्या स्थितिर्द्विसमयाधिका; यावत्—असंख्येयसमयाधिका जघन्या स्थितिः. तत्—प्रायोग्योत्कर्षिका स्थितिः—अनु०

१७०. प्र०—ईमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहण्णियाए ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

१७०. उ०—गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्ता य. अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य. अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य. अहवा कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ते य. अहवा कोहोवउत्ता य, मायोवउत्ता य. अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ते य. अहवा कोहोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य. अहवा कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ता य. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ते य. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य. एवं कोह–माण–लोभेण वि चउ. एवं कोह–माया–लोभे चउ. एवं १२. पच्छा माणेण, मायाए, लोभेण य कोहो भयियव्वो. ते कोहं अमुंचता. एवं सत्तावीसं भंगा णेयव्वा.

१७०. प्र०—हे भगवन् ! ए रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां ओछामां ओछी उमरमां वसनारा नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ? मानोपयुक्त छे ? मायोपयुक्त छे ? के लोभोपयुक्त छे ?

१७०. उ०—हे गौतम ! ते बधाय पण क्रोधोपयुक्त होय छे. अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने एकाद मानोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने मानोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने एकाद मायोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने मायोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने एकाद लोभोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने लोभोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त अने एकाद मानोपयुक्त तथा मायोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त तथा एकाद मानोपयुक्त अने घणा मायोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त मानोपयुक्त अने एकाद मायोपयुक्त, अथवा घणा क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त तथा मायोपयुक्त; ए प्रमाणे क्रोध, मान अने लोभ साथे बीजा चार भांगा करवा. तथा ए ज प्रमाणे क्रोध, माया अने लोभ साथे पण चार भांगा करवा. पछी मान, माया अने लोभनी साथे क्रोधवडे भांगा करवा. तथा ते बधा क्रोधने मूक्या सिवायना ए प्रमाणे सत्तावीश भांगा जाणवा.

१७१. प्र०—ईमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि समयाहियाए जहन्नट्ठितीए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

१७१. उ०—गोयमा ! कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते य, लोभोवउत्ते य. कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य. अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य. अहवा कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ता य. एवं असीतिभंगा नेयव्वा. एवं जाव–संखेज्जसमयाहिया ठिई, असंखेज्जसमयाहिया ठिई, तप्पाउग्गुक्कोसियाए ठिईए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा.

१७१. प्र०—हे भगवन् ! ए रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासोमां एक समयाधिक जघन्य उमरमां वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ? मानोपयुक्त छे ? मायोपयुक्त छे ? के लोभोपयुक्त छे ?

१७१. उ०—हे गौतम ! तेओमां एकाद क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त अने लोभोपयुक्त होय छे. अथवा घणा क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त मायोपयुक्त, अने लोभोपयुक्त होय छे. अथवा कोइ एक क्रोधोपयुक्त अने मानोपयुक्त, अथवा कोइ एक क्रोधोपयुक्त अने घणा मानोपयुक्त होय छे, इत्यादि ए प्रमाणे एंशी भांगा जाणवा. अने ए प्रमाणे यावत्–संख्येयसमयाधिक स्थितिवाळा नैरयिको माटे पण जाणवु. असंख्येयसमयाधिक स्थितिने उचित उत्कृष्ट स्थितिमां सत्तावीश भांगा कहेवा.

३. अथाऽधिकृतोद्देशकार्थसंग्रहाय गाथामाह:—'पुढवी' इत्यादि. तत्र 'पुढवी' इति लुप्तविभक्तिकत्वाद् निर्देशस्य 'पृथिवीषु' उपलक्षणत्वाच्चास्य 'पृथिव्यादिषु जीवावासेषु' इति द्रष्टव्यमिति. 'ठिइ'त्ति सूचनात् सूत्रमिति न्यायात् स्थितिस्थानानि वाच्यानीति शेषः. एवम् 'ओगाहणे'त्ति अवगाहनास्थानानि, शरीरादिपदानि तु व्यक्तानि एव. एकारान्तं च पदं प्रथमैकवचनान्तं दृश्यमिति. एवमेतानि स्थिति—

१. मूलच्छायाः—एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभाया पृथिव्यास्त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे जघन्यया स्थित्या वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः, मानोपयुक्ताः, मायोपयुक्ताः, लोभोपयुक्ताः ? गौतम ! सर्वेऽपि तावद् भवेयुः क्रोधोपयुक्ताश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्तश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्ताश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्तश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्ताश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, लोभोपयुक्तश्च, अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, लोभोपयुक्ताश्च. अथवा क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्तश्च, मायोपयुक्तश्च. क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्तश्च, मायोपयुक्ताश्च. क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्तश्च. क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्ताश्च. एवं क्रोध–मान–लोभेनाऽपि चत्वारः. एवं क्रोध–माया–लोभेन चत्वारः. एवं. पश्चाद् मानेन, मायया, लोभेन च क्रोधो भक्तव्यः. ते क्रोधम्–अमुञ्चन्तः, एवं सप्तविंशतिभङ्गा ज्ञातव्याः. एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे समयाधिकया जघन्यस्थित्या वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः, मानोपयुक्ताः, मायोपयुक्ताः, लोभोपयुक्ताः ? गौतम ! क्रोधोपयुक्तश्च, मानोपयुक्तश्च, मायोपयुक्तश्च, लोभोपयुक्तश्च. क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्ताश्च, लोभोपयुक्ताश्च. अथवा क्रोधोपयुक्तश्च. मानोपयुक्तश्च. अथवा क्रोधोपयुक्तश्च, मानोपयुक्ताश्च. एवम् अशीतिर्भङ्गा ज्ञातव्याः. एवं यावत्–संख्येयसमयाधिका स्थितिः, असंख्येयसमयाधिका स्थितिः. तत्प्रायोग्योत्कर्षिकया स्थित्या सप्तविंशतिभङ्गा भणितव्याः–अनु०

[illegible] वस्तूनि इहोद्देशके विचारयितव्यानि इति गाथासमासार्थः. विस्तरार्थं तु सूत्रकारः स्वयमेव वक्ष्यतीति. तत्र रत्नप्रभापृथिव्यां स्थितिस्थानानि तावत् प्ररूपयन्नाह:–*'इमीसे णं'* इत्यादि व्यक्तम्. नवरम्–*'एगमेगंसि निरयावासंसि'*त्ति प्रतिनारकावासमित्यर्थः. *'ठितीट्ठाण'* त्ति आयुष्को विभागाः, *'असंखेज्ज'*त्ति संख्यातीतानि, कथं ? प्रथमपृथिव्यपेक्षया जघन्या स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टा तु सागरोपमम्. एतस्यां चैकैकसमयवृद्ध्याऽसंख्येयानि स्थितिस्थानानि भवन्ति, असंख्येयत्वात् सागरोपमसमयानाम्. इत्येवं नरकावासाऽपेक्षयाऽप्यसंख्येयान्येव [illegible] केवलं तेषु जघन्योत्कृष्टविभागो ग्रन्थान्तरादवसेयः, यथा–प्रथमप्रस्तटनरकेषु जघन्या स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, उत्कृष्टा तु नवतिः सहस्राणि–इति. एतदेव दर्शयन्नाह:–*'जहण्णिया ठिती'* इत्यादि. जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्रादिका इत्येकं स्थितिस्थानम्, तच्च प्रतिनरकं भिन्नम्, सा एव समयाधिकेति द्वितीयम्, इदमपि विचित्रम्, एवं यावदसंख्येयसमयाधिका सा. सर्वान्तिमस्थितिस्थानदर्शनायाऽऽह:–*'तप्पा–उग्गुक्कोसिय'* त्ति उत्कृष्टाऽसावनेकविधेति विशिष्यते, तस्य विवक्षितनरकावासस्य प्रायोग्या उचिता, उत्कर्षिका तत्प्रायोग्योत्कर्षिका, इत्यपरं स्थितिस्थानम्, इदमपि विचित्रम्, विचित्रत्वादुत्कर्षस्थितेरिति. एवं स्थितिस्थानानि प्ररूप्य तेष्वेव क्रोधाद्युपयुक्तत्वाद् नारकाणां विभागेन दर्शयन्निदमाह:–*'इमीसे णं'* इत्यादि. *'जहन्नियाए ठिईए वट्टमाण'* त्ति या यत्र नरकावासे जघन्या तस्यां वर्तमानाः *'किं कोहो-वउत्ता'* इत्यादिप्रश्ने *'सव्वे वि'* इत्यादि उत्तरम्. तत्र च प्रतिनरकं जघन्यस्थितिकानां सदैव भावात्, तेषु च क्रोधोपयुक्तानां बहुत्वात् सप्तविंशतिर्भङ्गकाः. एकादिसंख्यातसमयाधिकाऽजघन्यस्थितिकानां तु कादाचित्कत्वात्, तेषु च क्रोधाद्युपयुक्तानामेकत्वानेकत्वसंभवाद् अशीतिर्भङ्गकाः.

२. हवे चालु उद्देशकना अर्थनो संग्रह करनारी गाथा कहे छे:–['पुढवी' इत्यादि.] पृथिवी एटले पृथिवीओमां, 'पृथिवी' ए निर्देश बीजा अर्थने जणावनारी निशानीरूप–उपलक्षणरूप–होवाथी तेनो अर्थ आ प्रमाणे समजवो—पृथिव्यादिक जीवावासोमां ['ठिई'त्ति] स्थितिस्थानो कहेवां. ['एवं ओगाहणे'त्ति] अवगाहनास्थानो. शरीरादि पदो तो स्पष्ट ज छे. ए प्रमाणे स्थितिस्थान वगेरे दश वस्तु संबंधे आ उद्देशकमां विचार करवानो छे. पूर्वोक्त गाथानो आ संक्षिप्त अर्थ छे. ते गाथाना विस्तीर्ण अर्थने तो ग्रंथकार पोतानी जाणे ज कहेशे. तेमां सौथी प्रथम रत्नप्रभा पृथिवीमां स्थिति–स्थानोने निरूपवा कहे छे के:–['इमीसे णं' इत्यादि.] ए सूत्र व्यक्त छे. विशेष आ छे के, ['एगमेगंसि निरयावासंसि'त्ति] अर्थात् एक एक नरकावासे, ['ठितिट्ठाण'त्ति] स्थिति–आयुष्य, स्थान–विभाग अर्थात् स्थितिस्थानो एटले आयुष्यना विभागो, ['असंखेज्ज'त्ति] असंख्येय छे. ते केवी रीते ? तो कहे छे के, प्रथम पृथिवीनी अपेक्षाए थोडामां थोडी आवरदा दस हजार वर्षनी होय छे अने वधारेमां वधारे आवरदा सागरोपम सुधीनी होय छे. हवे ए थोडामां थोडी स्थितिमां–उमरमां–एक एक समय वधारीए तो ए रत्नप्रभा पृथिवीमां आवरदाना असंख्येय विभाग थाय छे. जेम के; कोइ जीवनी दस हजार वर्षनी आवरदा, कोइनी दस हजार वर्ष अने एक समय वधारे, कोइनी दस हजार वर्ष अने बे समय वधारे, एम एक एक समय वधारीने सागरोपम सुधी पहोंचाडवुं. अने ए प्रकारे रत्नप्रभा पृथिवीमां आवरदाना असंख्येय विभाग थइ शके छे. कारण के सागरोपमना समयो असंख्येय छे. ए प्रमाणे नरकावासोनी अपेक्षाए पण ते स्थितिस्थानो असंख्येय छे. मात्र ते नरकावासो विषेनो जघन्यता अने उत्कृष्टता संबंधी विचार बीजा ग्रंथथी जाणवो. जेम के; पहेला पाथडामां रहेल नरकावासोमां जघन्य स्थिति दस हजार वर्षनी अने उत्कृष्ट स्थिति नेवु हजार वर्षनी छे. ए ज वातने दर्शावता कहे छे के:–['जहण्णिया ठिती' इत्यादि.] ओछामां ओछी स्थिति दस हजार वर्षनी छे. ए एक स्थितिस्थान छे. अने ते स्थितिस्थान प्रत्येक नरके भिन्न भिन्न छे. ते ओछामां ओछी स्थितिमां एक समय वधारीए तो ते बीजुं स्थितिस्थान कहेवाय, अने ए पण विचित्र छे. ए प्रमाणे ते ओछामां ओछी स्थितिमां यावत् असंख्येय समय वधारवा. हवे सौथी छेल्लुं स्थितिस्थान देखाडवा कहे छे के:–['तप्पाउग्गुक्कोसिअ'त्ति] ए उत्कृष्ट स्थिति अनेक प्रकारनी छे माटे तेने विशेषणद्वारा जणावे छे के, ते उत्कृष्ट स्थिति तत्प्रायोग्य होवी जोइए. तत्प्रायोग्य एटले ते विवक्षित नरकावासने योग्य–उचित–एवी उत्कृष्ट स्थिति ते 'तत्प्रायोग्योत्कृष्टस्थिति' कहेवाय. ए एक बीजुं स्थितिस्थान छे अने ते पण विचित्र छे. कारण के उत्कृष्ट स्थिति विचित्र होय छे. ए प्रमाणे स्थितिस्थानोनुं निरूपण करी तेमां ज रहेला क्रोधादि उपयोगवाळा नारकोनो विभागपूर्वक देखाड करतां आ सूत्र कहे छे:–['इमीसे णं' इत्यादि.] ['जहन्नियाए ठिईए वट्टमाण'त्ति] जे नरकावासमां ओछामां ओछी जेटली स्थिति होय तेमां वर्तता–ओछामां ओछी आवरदावाळा ['किं कोहोवउत्ता' इत्यादि.] शुं क्रोधोपयुक्त छे ? इत्यादि प्रश्न छे. अने तेनो उत्तर आ छे के:—['सव्वे वि' इत्यादि.] प्रत्येक नरके ओछामां ओछी उमरवाळा नैरयिको हमेशा ज होय छे. अने तेमां पण क्रोधोपयुक्त नैरयिको घणा होय छे माटे ते संबंधे सत्तावीश भांगा जाणवा. तथा एक, बे के त्रणथी मांडी संख्यात समयना वधारावाळी अजघन्य स्थितिना नैरयिको कोइ वखत ज होय छे अने तेम होवाथी तेमां क्रोधादि उपयुक्त नैरयिकोनी संख्या एक अने अनेक होय छे. माटे ते संबंधे एंशी भांगा समजवा.

संग्रह.

स्थितिस्थान.

क्रोधोपयुक्तादि.

३. एकेन्द्रियेषु तु सर्वकषायोपयुक्तानां प्रत्येकं बहूनां भावादभङ्गकम्. आह च:–*"संभवइ जहिं विरहो असीइं भंगा तहिं करेज्जाहि, जहिं न होइ विरहो अभंगयं, सत्तवीसा वा."* अयं च तत्सत्ताऽपेक्षो विरहो द्रष्टव्यः, न तूत्पादापेक्षः, यतो रत्नप्रभायां चतुर्विंशतिमुहूर्त उत्पादविरहकाल उक्तः, ततश्च यत्र सप्तविंशतिर्भङ्गका उच्यन्ते तत्रापि विरहभावादशीतिः प्राप्नोति, सप्तविंशतेश्चाभाव एवेति. तत्र *'सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्त'*त्ति प्रतिनरकं स्वकीयस्वकीयस्थित्यपेक्षया जघन्यस्थितिकानां नारकाणां सदैव बहूनां सद्भावात्, नारकभवस्य च

---

१. आ शब्दनी सातमी विभक्ति लोपाएली छे, माटे तेनो सातमी विभक्ति जेवो अर्थ करवो. २. आ शब्दनो 'स्थितिस्थान' अर्थ करवो. कारण के सूत्र तो सूचक ज होय छे, माटे अहीं 'स्थिति' एटलुं ज सूच्युं छे. ३. एकारांत पद पहेली विभक्तिवाळुं जाणवुं:—श्रीअभयदेव.

[illegible]

क्रोधोदयप्रचुरत्वात् सर्वे एव क्रोधोपयुक्ता भवेयुरित्येको भङ्गः. *'अहवा'* इत्यादिना द्वि-त्रि-चतुःसंयोगे भङ्गा दर्शिताः. तत्र द्विकसंयोगे बहुवचनान्तं क्रोधममुञ्चता षड् भङ्गाः कार्याः, तथाहिः-क्रोधोपयुक्ताश्च, मानोपयुक्तश्च. तथा क्रोधोपयुक्ताश्च मानोपयुक्ताश्च. एवं मायया एकत्व-बहुत्वाभ्यां द्वौ, लोभेन च द्वौ, एवमेते द्विकसंयोगे षट्. त्रिकसंयोगे तु द्वादश भवन्ति, तथाहिः-क्रोधे नित्यं बहुवचनम्, मान-माययोरेक-वचनमित्येकः, मानैकत्वे मायाबहुत्वे च द्वितीयः, माने च बहुवचनं मायायामेकत्वमिति तृतीयः, मानबहुत्वे मायाबहुत्वे च चतुर्थः. पुनः क्रोध-मान-लोभैरित्थमेव चत्वार. पुनः क्रोध-माया-लोभैरित्थमेव चत्वारः. एवमेते द्वादश. चतुष्कसंयोगे तु अष्टौ, तथाहिः-क्रोधे बहु-वचनेन मान-माया-लोभेषु च एकवचनेन एकः, इत्थमेव लोभे बहुवचनेन द्वितीयः-एवमेतावेकवचनान्तमायया जातौ. एवं बहुवचनान्त-मायया ऽन्यौ द्वौ, एवमेते चत्वारः एकवचनान्तमानेन जाताः. एवमेव बहुवचनान्तमानेन चत्वारः-इत्येवमष्टौ. एवमेते जघन्यस्थितिषु नार-केषु सप्तविंशतिर्भवन्ति, जघन्यस्थितौ हि बहवो नारका भवन्ति, अतः क्रोधे बहुवचनमेव.

४. एकेंद्रिय जीवोमां तो बधा कषायमां उपयुक्त जीवो प्रत्येक गतिमां (पृथिवीमां, जळमां, वायुमां, अग्निमां अने वनस्पतिमां) घणा छे माटे त्यां अभंगक समजवुं. कह्युं छे केः-"ज्यां विरहनो संभव होय त्यां एंशी भांगा करवा अने ज्यां विरहनो संभव न होय त्यां अभंगक के सत्तावीश भांगा समजवा." आ गाथामां कहेल विरह क्रोधादि उपयुक्त नैरयिकोनी सत्तानी अपेक्षाए जाणवो. पण नैरयिकोना उत्पादनी अपेक्षाए न जाणवो. कारण के रत्नप्रभामां चोवीश मुहूर्तनो उत्पाद विरह काळ कह्यो छे. अने जो अहीं उत्पादनी अपेक्षाए विरह लेवामां आवे तो ज्यां सत्तावीश भांगा कहेवामां आव्या छे त्यां पण उत्पादनो विरह होवाथी एंशी भांगा थवा जोइए अने सत्तावीश भांगा तो क्यांइ थवा ज न जोइए. अने शास्त्रकारे तो सत्तावीश भांगा समज-वानुं पण लख्युं छे, माटे अहीं उत्पादापेक्ष विरह न समजवो. तेमां ['सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्त'त्ति] दरेक नरके पोत पोतानी स्थितिनी अपेक्षाए जघन्य स्थितिवाळा नैरयिको निरंतर ज घणा होय छे. अने नारक भव क्रोधना उदयथी अत्यंत व्याप्त छे. माटे 'बधा य नैरयिको क्रोधोपयुक्त छे' एम एक भांगो समजवो. ['अहवा'] इत्यादि सूत्रवडे द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग अने चतुष्कसंयोग संबंधी भांगाओ दर्शाव्या छे. तेमां द्विकसंयोगमां बहुवचनांत क्रोधने साथे राखी छ भांगा करवा. ते भांगा करवानी रीति आ प्रमाणे छेः-बधे ठेकाणे क्रोधने बहुवचनांत राखी मान, माया अने लोभने एकवचनांत तथा बहुवचनांत राखवाथी नीचे दर्शाव्या प्रमाणे छ भांगा द्विक संयोगमां थाय छे अने त्रिकसंयोगमां तो बार भांगा थाय छे. ते भांगा करवानी पद्धति नीचे जणावेल भांगा प्रमाणे समजवी. चतुष्कसंयोगमां तो आठ भांगा थाय छे ते आठ भांगा करवानी रीति आ छेः-'क्रोध'मां बहुवचन राखी अने 'मान,' 'माया' तथा 'लोभ'मां एकवचन राखी प्रथम भांगो करवो. ए ज प्रमाणे बीजो भांगो करवो, पण 'लोभ'ने बहुवचनांत करी देवो. ए ज प्रमाणे बीजा बे भांगा करवा, पण 'माया'ने बहुवचनांत करी देवी. ए ज प्रमाणे बीजा चार भांगा करवा, पण 'मान' ने बहुवचनांत करी देवो. ए प्रमाणे चतुष्क संयोगमां आठ भांगा जाणवा. ए प्रमाणे जघन्य स्थितिवाळा नैरयिकोमां-१-६ १२-८-ए बधा मळीने सत्तावीश भांगा थाय छे. ए सत्तावीशे भांगामां 'क्रोध' बहुवचनांत ज रहे छे. कारण के जघन्य स्थितिमां रहेनारा नैरयिको घणा होय छे.

विरह.

नारकभव.

सत्तावीश.

५. *'समयाहिआए जहण्णठिईए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ?'* इत्यादिप्रश्नः. इहोत्तरम्-*'कोहोवउत्ते य'* इत्यादयोऽशीतिर्भङ्गाः, इह समयाधिकायां यावत् संख्येयसमयाधिकायां जघन्यस्थितौ नारका न भवन्त्यपि, भवन्ति चेदेको वाऽनेको वेति. ततः क्रोधादिषु एकत्वेन चत्वारो विकल्पाः, बहुत्वेन चान्ये चत्वार एव. द्विकसयोगे चतुर्विंशतिः, तथाहिः-क्रोध-मानयोरेकत्व-बहुत्वाभ्यां चत्वारः, एवं क्रोध-माय-योः, एवं क्रोध-लोभयोः, एवं मान-माययोः, एवं मान-लोभयोः, एवं माया-लोभयोरिति द्विकयोगे चतुर्विंशतिः. त्रिकसंयोगे द्वात्रिंशत्. तथाहिः-क्रोध-मान-मायास्वेकत्वेनैकः, एष्वेव मायाबहुत्वेन द्वितीयः, एवमेतौ मानैकत्वेन द्वावेव, अन्यौ तद्बहुत्वेन-एवमेते चत्वारः-क्रोधैकत्वेन चत्वार एव. अन्ये क्रोधबहुत्वेन, इत्येवमष्टौ क्रोध-मान-मायात्रिके जाताः. तथैवान्येऽष्टौ क्रोध-मान-लोभेषु, तथैवान्येऽष्टौ क्रोध-माया-लोभेषु, तथैवाऽ-न्येऽष्टौ मान-माया-लोभेषु इति द्वात्रिंशत्. चतुष्कसंयोगे षोडश, तथाहिः- क्रोधादिषु एकत्वेनैकः, लोभस्य बहुत्वेन द्वितीयः, एवमेतौ मायैकत्वेन, तथान्यौ मायाबहुत्वेन, एवमेते चत्वारो मानैकत्वेन; तथान्ये चत्वारः एव मानबहुत्वेन, एवमेतेऽष्टौ क्रोधैकत्वेन, एवमन्येऽष्टौ

---

१. (१) क्रोधोपयुक्तो

२. (१) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्तो लोभोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो.

३. (१) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (७) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (८) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (९) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१०) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (११) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१२) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो.

४. (१) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्तो मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (७) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (८) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो.—अनु.

क्रोधोपयुक्तेन इति योज्यम्. एवमेते सर्वे एकाशीतिरिति. एते च जघन्यस्थितौ एकादिसंख्यातान्तसमयाधिकायां भवन्ति, असंख्यातसमयाधिकायास्तु जघन्यस्थितेरारभ्य उत्कृष्टस्थितिं यावत् सप्तविंशतिर्भङ्गास्ते एव, तत्र नारकाणां बहुत्वादिति.

५. [समयाहिआए जहण्णठिईए वट्टमाणा नेरइआ किं कोहोवउत्ता ?' इत्यादि.] ए प्रश्न सूत्र छे. तेनो उत्तर आ छेः—['कोहोवउत्ते य' इत्यादि.] अर्थात् उत्तरमां कुल एंशी भांगा थाय छे. एक समयथी मांडीने यावत्—संख्येय समयना वधारावाळी जघन्य स्थितिमां नारको नथी होता. जो होय छे तो एक पण होय छे. अने घणा पण होय छे. अने तेम होवाथी क्रोध, मान, माया अने लोभमां एक संख्यावडे चार भांगा थाय छे. तथा तेमां ज बहु संख्यावडे बीजा चार भांगा थाय छे. द्विक संयोगमां चोवीश भांगा थाय छे. ते भांगा करवानी रीति आ छेः—क्रोध अने मानमां एकवचन तथा बहुवचन राखी चार भांगा करवा. ए ज प्रमाणे क्रोध अने मायाना चार. क्रोध अने लोभना चार, मान अने मायाना चार, मान अने लोभना चार तथा माया अने लोभना चार भांगा करवा. ए बधा मळीने चोवीश भांगा थाय छे. त्रिक संयोगमां बत्रीश भांगा थाय छे. ते बत्रीश भांगा करवानी आ पद्धति छेः—क्रोध, मान, अने माया; ए बधामां एक वचन राखी प्रथम भांगो करवो. ए ज भांगामां 'माया' मां बहुवचन राखी बीजो भांगो करवो. ए बन्ने भांगामां 'मान'ने बहुवचनांत राखी बीजा बे—कुल चार—भांगा करवा. ए चारे भांगामां 'क्रोध'ने बहुवचनांत राखी बीजा चार—कुल आठ—भांगा करवा. ए प्रमाणे क्रोध, मान अने माया संबंधे त्रिकसंयोगी आठ भांगा थया. ए ज प्रमाणे बीजा आठ भांगा क्रोध, मान अने लोभ संबंधे करवा. ते ज प्रकारे बीजा आठ भांगा क्रोध, माया अने लोभ संबंधे करवा. अने तेवी ज रीतिए बीजा आठ भांगा मान, माया अने लोभ संबंधे करवा. ए बधा मळीने कुल बत्रीश भांगा त्रिक संयोगमां थाय छे. चतुष्क संयोगमां सोळ भांगा थाय छे. ते भांगा करवानी आ रीति छेः—क्रोध, मान, माया अने लोभ; ए बधामां एकवचन राखवाथी प्रथम भांगो थाय छे. ए ज भांगामां 'लोभ' ने बहुवचनांत करवाथी बीजो भांगो थाय छे. ए बन्ने भांगामां 'माया' ने बहुवचनांत करवाथी बीजा बे—चार—भांगा थाय छे. ए चारे भांगामां 'मान' ने बहुवचन लगाडवाथी बीजा चार—आठ—भांगा थाय छे अने ए आठे भांगामां 'क्रोध'ने बहुवचनांत करवाथी बीजा आठ—कुल सोळ—भांगा चतुष्कसंयोगमां थाय छे. ए प्रमाणे ४–४–२४–३२–१६ ए बधा मळीने कुल एंशी भांगा थाय छे. एकादि समयथी मांडी संख्यात समय सुधीना वधारावाळी जघन्य स्थितिमां पूर्वोक्त एंशी भांगा थाय छे अने असंख्यात समय सुधीना वधारावाळी जघन्य स्थितिथी मांडी उत्कृष्ट स्थिति सुधी तो पूर्वोक्त सत्तावीश भांगा ज थाय छे. कारण के ते स्थितिवाळा नारको घणा होय छे.

चार, चार. चोवीश. बत्रीश. सोळ. ८०.

---

१. (१) क्रोधोपयुक्त. (२) मानोपयुक्त. (३) मायोपयुक्त. (४) लोभोपयुक्त.

२. (१) क्रोधोपयुक्तो. (२) मानोपयुक्तो. (३) मायोपयुक्तो. (४) लोभोपयुक्तोः—अनु०

३. (१) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्तो. (७) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (८) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. (९) क्रोधोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१०) क्रोधोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (११) क्रोधोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१२) क्रोधोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (१३) मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. (१४) मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. (१५) मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (१६) मानोपयुक्तो मायोपयुक्तो. (१७) मानोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१८) मानोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (१९) मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (२०) मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (२१) मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (२२) मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (२३) मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (२४) मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तोः—अनु०

४. (१) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. (७) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. (८) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. (९) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१०) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (११) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१२) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (१३) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१४) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (१५) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१६) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (१७) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१८) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (१९) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (२०) क्रोधोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (२१) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (२२) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (२३) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (२४) क्रोधोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (२५) मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (२६) मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (२७) मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (२८) मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (२९) मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (३०) मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (३१) मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (३२) मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तोः—अनु०

५. (१) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (२) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (३) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (४) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (५) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (६) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (७) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (८) क्रोधोपयुक्त. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (९) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१०) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (११) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१२) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्त. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तो. (१३) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्त. (१४) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्त. लोभोपयुक्तो. (१५) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्त. (१६) क्रोधोपयुक्तो. मानोपयुक्तो. मायोपयुक्तो. लोभोपयुक्तोः—अनु०

अवगाहनास्थान.

१७२. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ओगाहणाठाणा पन्नत्ता ?

१७२. उ०—गोयमा ! असंखेज्जा ओगाहणाठाणा पन्नत्ता. तं जहाः—जहण्णिया ओगाहणा पदेसाहिया, जहण्णिया ओगाहणा दुप्पएसाहिया, जहण्णिया ओगाहणा जाव—असंखिज्जपएसाहिया जहण्णिया ओगाहणा. तप्पाउग्गुक्कोसिया ओगाहणा.

१७२. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां वसता नैरयिकोनां अवगाहनास्थानो केटलां कह्यां छे ?

१७२. उ०—हे गौतम ! तेओना अवगाहनास्थानो असंख्येय कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—ओछामां ओछी अंगुलना असंख्येयभाग जेटली अवगाहना ते एक प्रदेशाधिक, बे प्रदेशाधिक, ए प्रमाणे यावत्—असंख्येयप्रदेशाधिक जाणवी तथा जघन्य अवगाहना अने तेने उचित उत्कृष्ट अवगाहना पण जाणवी.

१७३. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि णिरयावासंसि जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणा णेरइया किं कोहोवउत्ता० ?

१७३. उ०—गोयमा ! असीइभंगा भाणियव्वा, जाव—संखिज्जपएसाहिया, जहण्णिया ओगाहणा, असंखेज्जपएसाहियाए जहण्णियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं, तप्पाउग्गुक्कोसियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं नेरइयाणं दोसु वि सत्तावीसं भंगा.

१७३. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां जघन्य अवगाहनाए वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त० छे ?

१७३. उ०—हे गौतम ! अहीं एंशी भांगा जाणवा. अने ए प्रमाणे यावत्—संख्येयप्रदेशाधिक जघन्य अवगाहनाए वर्तता नैरयिको माटे पण जाणवुं. असंख्येयप्रदेशाधिक जघन्य अवगाहनाए वर्तता तथा तदुचित उत्कृष्ट अवगाहनाए वर्तता नैरयिकोना अर्थात् ए बन्नेना पण सत्तावीश भांगा कहेवा.

६. अथावगाहनाद्वारम्—तत्र *'ओगाहणट्ठाण'* त्ति अवगाहन्ते आसते यस्यां साऽवगाहना—तनुः, तदाधारभूतं वा क्षेत्रम्; तस्याः स्थानानि प्रदेशवृद्ध्या विभागाः—अवगाहनास्थानानि. तत्र *'जहन्निअ'* त्ति जघन्या अङ्गुलाऽसंख्येयभागमात्रा सर्वनरकेषु. *'तप्पाउग्गुक्कोसिअ'* त्ति तस्य—विवक्षितनरकस्य प्रायोग्या या उत्कर्षिका सा तत्प्रायोग्योत्कर्षिका, यथा त्रयोदशप्रस्तरे धनुःसप्तकम्, रत्नि (हस्त) त्रयम्, अङ्गुलषट्कं चेति. *'जहन्निआए'* इत्यादि. जघन्यायां तस्यामेव चैकादिसंख्यातान्तप्रदेशाधिकायामवगाहनायां वर्तमानानां नारकाणामल्पत्वात् क्रोधाद्युपयुक्त एकोऽपि लभ्यते, अतोऽशीतिर्भङ्गाः. *'असंखेज्जपएसा'* इत्यादि. असंख्यातप्रदेशाधिकायां तत्प्रायोग्योत्कृष्टायां च नारकाणां बहुत्वात्, तेषु च बहूनां क्रोधोपयुक्तत्वेन क्रोधे बहुवचनस्य भावाद् मानादिषु त्वेकत्व—बहुत्वसंभवात् सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति. ननु ये जघन्यस्थितयः, जघन्यावगाहनाश्च भवन्ति, तेषां जघन्यस्थितिकत्वेन सप्तविंशतिर्भङ्गकाः प्राप्नुवन्ति, जघन्यावगाहकत्वेन चाशीतिरिति विरोधः. अत्रोच्यतेः—जघन्यस्थितिकानामपि जघन्याऽवगाहनाकालेऽशीतिरेव, उत्पत्तिकालभावित्वेन जघन्यावगाहनानामल्पत्वादिति. या च जघन्यस्थितिकानां सप्तविंशतिः, सा जघन्यावगाहनत्वमतिक्रान्तानाम् इति भावनीयम्.

अवगाहना द्वार.

६. हवे अवगाहना द्वार संबंधे विवेचन करे छे. तेमां ['ओगाहणट्ठाण' त्ति] जेमां (जीव) रहे ते अवगाहना अर्थात् अवगाहना एटले शरीर, अथवा शरीरनुं आधारभूत क्षेत्र ते अवगाहना, तेमां जे स्थानो—प्रदेशनी वृद्धिवडे विभागो—ते अवगाहनास्थानो. तेमां ['जहन्निअ' त्ति] बधा नरकोमां नानामां नानुं शरीर अंगुलना असंख्येय भाग जेटलुं होय छे अर्थात् बधा नरकोमां जघन्य अवगाहना अंगुलना असंख्येय भाग जेटली होय छे. ['तप्पाउग्गुक्कोसिअ' त्ति] ते विवक्षित नरकने योग्य जे उत्कर्षवाळी अवगाहना ते तत्प्रायोग्योत्कर्षिका अवगाहना कहेवाय. जेम के, तेरमा पाथडामां वसता नैरयिकोनुं शरीरप्रमाण सात धनुष्य, त्रण हाथ अने छ आंगळ छे. ['जहन्निआए' इत्यादि.] एक थी मांडीने संख्यात प्रदेश सुधीना वधारावाळी ते जघन्य अवगाहनामां वर्तता नैरयिको अल्प होवाथी तेमां 'क्रोधादिमां उपयुक्त एक जीव पण होइ शके' माटे एंशी भांगा पूर्वनी पेठे जाणवा. ['असंखेज्जपएसा' इत्यादि.] अने असंख्येयप्रदेशना वधारावाळी तथा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिमां घणा नैरयिको होय छे माटे तेमां 'क्रोधोपयुक्त घणा नैरयिको संभवे छे, अने तेम होवाथी क्रोधमां बहुवचन रहे छे अने मानादिमां एकवचन तथा बहुवचन रहे छे अने तेथी त्यां सत्तावीश भांगा पूर्व प्रमाणे थाय छे.

शंका.

शंकाः—जे नैरयिको जघन्य स्थितिवाळा अने जघन्य अवगाहनावाळा होय छे तेओने तेओनी जघन्य स्थितिने लीधे सत्तावीश भांगा थवा जोइए अने तेओनी जघन्य अवगाहनाने लीधे एंशी भांगा थवा जोइए—एम परस्पर विरुद्ध थवुं जोइए.

समाधान.

समाधानः—जघन्यस्थितिवाळा जे नैरयिको ज्यां सुधी जघन्य अवगाहनावाळा होय छे त्यां सुधी तेओने एंशी भांगा ज होय छे. कारण के जघन्य अवगाहना उत्पत्तिना वखते ज होय छे अने ते वखते ते अवगाहनावाळा अल्प होय छे. अने जघन्य स्थितिवाळा जे नैरयिकोने सत्तावीश भांगा कह्या छे ते नैरयिको जघन्य अवगाहनाने ओळंगी गयेला होय छे अर्थात् तेओनी अवगाहना जघन्य होती नथी. एम समजवुं.

---

१. मूलच्छायाः—एतस्यां भगवन् ! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे नैरयिकाणां कियन्ति अवगाहनास्थानानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! असंख्येयानि अवगाहनास्थानानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथाः—जघन्याऽवगाहना प्रदेशाधिका, जघन्याऽवगाहना द्विप्रदेशाधिका, जघन्याऽवगाहना यावत्—असंख्येयप्रदेशाधिका जघन्याऽवगाहना. तत्प्रायोग्योत्कर्षिकाऽवगाहना. एतस्यां भगवन् ! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे जघन्याऽवगाहनया वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? गौतम ! अशीतिर्भङ्गा भणितव्याः, यावत्—संख्येयप्रदेशाधिका जघन्याऽवगाहना, असंख्येयप्रदेशाधिकया जघन्ययाऽवगाहनया वर्तमानानाम्, तत्प्रायोग्योत्कर्षिकयाऽवगाहनया वर्तमानानां नैरयिकाणां द्वयोरपि सप्तविंशतिः—अनु०

शरीर.

१७४. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव–एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं कइ सरीरया पन्नत्ता ?

१७४. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां वसता नैरयिकोने केटलां शरीरो कह्यां छे ?

१७४. उ०—गोयमा ! तिन्नि सरीरया पन्नत्ता. तं जहाः—वेउव्विए, तेयए, कम्मए.

१७४. उ०—हे गौतम ! तेओने त्रण शरीरो कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—वैक्रिय, तैजस अने कार्मण.

१७५. प्र०—इमीसे णं भंते ! जाव–वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ?

१७५. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां त्रीश लाख निरयावासोमांना एक एक निरयावासमां वसता अने वैक्रियशरीरवाळा नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१७५. उ०—गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा. एएणं गमेणं तिन्नि सरीरा भाणियव्वा.

१७५. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा कहेवा. अने ए गमवडे बाकीना बे शरीर अर्थात् बधां मळीने त्रण शरीर संबंधे पूर्वोक्त प्रमाणे जाणवुं.

१७६. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभापुढविए जाव—नेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पन्नत्ता ?

१७६. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां यावत्–वसता नैरयिकोना शरीरोनु कयुं संघयण—संहनन—कह्युं छे ?

१७६. उ०—गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, नेवट्ठी, नेव छिरा, नेव ण्हारूणि. जे पोग्गला अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, असुहा, अमणुन्ना, अमणामा एतेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति.

१७६. उ०—हे गौतम ! तेओनुं शरीर संघयण विनानुं छे अर्थात् छ संघयणमांथी तेओने एके संघयण नथी. वळी तेओना शरीरमां हाडकां, शिरा–नसो अने स्नायु नथी. तथा जे पुद्गलो अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ अने अमनोम छे ते पुद्गलो एओना (नैरयिकोना) शरीरसंघातपणे परिणमे छे.

१७७. प्र०—इमीसे णं भंते ! जाव–छण्हं संघयणाणं असंघयणे वट्टमाणा णं नेरइया किं कोहोवउत्ता ?

१७७. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां यावत्–वसता अने छ संघयणमांथी एक पण संघयण विनाना नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१७७. उ०—गोयमा ! सत्तावीसं भंगा.

१७७. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा जाणवा.

१७८. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव—सरीरया किंसंठिया पन्नत्ता ?

१७८. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां यावत्–वसता नैरयिकोना शरीरो कया संस्थानवाळां कह्यां छे ?

१७८. उ०—गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता. तं जहाः—भवधारणिज्जा य, उत्तरवेउव्विया य. तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पन्नत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पन्नत्ता.

१७८. उ०—हे गौतम ! ते नैरयिकोना शरीरो बे प्रकारना कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—भवधारणीय—ज्यां सुधी जीवे त्यां सुधी रहेनारां–अने उत्तरवैक्रिय. तेमां जे शरीरो भवधारणीय छे ते हुंडसंस्थानवाळां कह्यां छे अने जे शरीरो उत्तरवैक्रियरूप छे ते पण हुंडसंस्थानवाळां कह्यां छे.

१७९. प्र०—इमीसे णं जाव–हुंडसंठाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ?

१७९. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां यावत्–हुंडसंस्थाने वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१७९. उ०—गोयमा ! सत्तावीसं भंगा.

१७९. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा कहेवा.

---

१. मूलच्छायाः—एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभाया यावत्–एकैकस्मिन् निरयावासे नैरयिकाणां कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–वैक्रियम्, तैजसम्, कार्मणम्. एतस्या भगवन् ! यावत्–वैक्रियशरीरे वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? गौतम ! सप्तविंशतिर्भङ्गा भणितव्याः. एतेन गमेन त्रीणि शरीराणि भणितव्यानि. एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभापृथिव्या यावत्–नैरयिकाणां शरीराणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! षण्णां संहननानाम् असंहननानि. नैवास्थि, नैव शिराः, नैव स्नायवः. ये पुद्गला अनिष्टाः, अकान्ताः, अप्रियाः, अशुभाः, अमनोज्ञाः, अमनोमा एतेषां शरीरसंघाततया परिणमन्ति. एतस्या भगवन् ! यावत्–षण्णां संहननानाम् असंहनने वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? गौतम ! सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभाया यावत्–शरीराणि किंसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथाः–भवधारणीयानि च, उत्तरवैक्रियाणि च. तत्र यानि भवधारणीयानि तानि हुण्डसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि, तत्र यानि उत्तरवैक्रियाणि तान्यपि हुण्डसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि. एतस्या यावत्–हुण्डसंस्थाने वर्तमाना नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? गौतम ! सप्तविंशतिर्भङ्गाः.—अनु॰

७. शरीरद्वारे *'सत्तावीसं भंग'*त्ति अनेन यद्यपि वैक्रियशरीरे सप्तविंशतिर्भङ्गका उक्तास्तथापि या स्थित्याश्रया, अवगाहनाश्रया च भङ्गकप्ररूपणा सा तथैव द्रष्टव्या, निरवकाशत्वात् तस्याः, शरीराश्रयायाश्च सावकाशत्वात्. एवमन्यत्रापि विमर्शनीयमिति. *'एएणं गमेणं तिन्नि सरीरया भाणियव्व'*त्ति वैक्रियशरीरसूत्रपाठेन त्रीणि शरीरकाणि—वैक्रिय—तैजस—कार्मणानि भणितव्यानि, त्रिष्वपि भङ्गकाः सप्तविंशति-र्वाच्या इत्यर्थः. ननु विग्रहगतौ केवले ये तैजस—*कार्मणशरीरे स्याताम्, तयोरल्पत्वेनाशीतिरपि भङ्गकानां संभवतीति* कथमुच्यते तयोः सप्तविंशतिरेव ? इति. अत्रोच्यतेः—सत्यमेतत्, केवलं वैक्रियशरीरानुगतयोस्तयोरिहाश्रयणम्, केवलयोश्चानाश्रयणम्, इति सप्तविंशतिरेवेति. अत्र द्वयोरेवातिदेश्यत्वे 'त्रीणि' इत्युक्तं तच्च त्रयाणामपि गमस्यात्यन्तसाम्योपदर्शनार्थमिति. संहननद्वारे *'छण्हं संघयणाणं असंघयणि'*त्ति षण्णां संहननानां—वज्रर्षभनाराचादीनां मध्यादेकतरेणापि संहननेनाऽसंहननानीति. कस्मादेवम् ? इत्यत आहः—*'नेवट्ठि'* इत्यादि. नैवास्थ्यादीनि तेषां सन्ति, अस्थिसंचयरूपं च संहननमुच्यते इति. *'अणिट्ठ'*त्ति इष्यन्ते स्म इति इष्टाः, तन्निषेधादनिष्टाः, अनिष्टमपि किञ्चित् कमनीयं भवतीत्यत उच्यते—अकान्ताः, अकान्तमपि किञ्चित् कारणवशात् प्रीतये भवतीत्याहः—*'अप्पिया'* अप्रीतिहेतवः, अप्रियत्वं तेषां कुतः ? यत *'असुभ'*त्ति अशुभस्वभावाः, ते च सामान्या अपि भवन्ति, इत्यतो विशेष्यन्तेः—*'अमणुण्ण'*त्ति न मनसा अन्तःसंवेदनेन शुभतया ज्ञायन्ते इत्यमनोज्ञाः, अमनोज्ञता चैकदापि स्यादत आहः—*'अमणाम'*त्ति न मनसाऽम्यन्ते—गम्यन्ते पुनः पुनः स्मरणतो ये ते अमनोऽमाः, एकार्थिकाश्च एते शब्दा अनिष्टताप्रकर्षप्रतिपादनार्था इति. *'एतेसिं सरीरसंघायत्ताए'*त्ति संघाततया शरीररूपसंचयतयेत्यर्थः. संस्थानद्वारे *'किंसंठिअ'*त्ति किं संस्थितं संस्थानं येषां तानि किंसंस्थितानि. *'भवधारणिज्ज'*ति भवधारणं निजजन्मातिवाहनं प्रयोजनं येषां तानि भवधारणीयानि—आजन्म-धारणीयानीत्यर्थः. *'उत्तरवेउव्विय'*त्ति पूर्ववैक्रियापेक्षया उत्तराणि उत्तरकालभावीनि, वैक्रियाणि—उत्तरवैक्रियाणि. *'हुंडसंठिअ'*त्ति सर्वत्राऽसंस्थितानि.

शरीरद्वार. ७. हवे शरीर द्वार संबंधे विचार करतां जणावे छे के, ['सत्तावीसं भंग' त्ति] जो के आ सूत्रवडे वैक्रियशरीरविषे सत्तावीश भांगा कह्या छे तो पण स्थितिने तथा अवगाहनाने आश्रीने जे भांगाओ प्ररूप्या छे ते तो तेमना तेम ज समजवा. कारण के जो ते तेमना तेम न समजवामां आवे अने तेमां आ सूत्रने लइने फेरफार करवामां आवे तो ते प्ररूपणा अन्यत्र सावकाश न होवाथी निष्फल थाय छे अने आ शरीर विषेनी प्ररूपणा तो बीजे ठेकाणे फलवती छे. ए प्रमाणे बीजे ठेकाणे पण समजवुं. ['एएणं गमेणं तिन्नि सरीरया भाणियव्व' ति] जेम वैक्रियशरीर संबंधे सूत्रपाठ कह्यो छे ते ज प्रमाणे त्रणे शरीर—वैक्रिय, तैजस अने कार्मण शरीर—संबंधे पण समजवुं अर्थात् ते त्रणे शरीरोमां सत्तावीश भांगा कहेवा. **शंका.** शंकाः—जीव ज्यारे विग्रह-गतिमां होय छे त्यारे तेने मात्र बे ज—तैजस अने कार्मण—शरीर होय छे अने ते बे ज शरीरवाळा जीवो अल्प होय छे माटे ते संबंधे एंशी भांगा पण संभवे छे. तो ते केम नथी कह्या ? अने सत्तावीश ज शा माटे कह्या ? **समाधान.** समाधानः—जो के आ शंका साची छे, पण अहीं ते बंध बेसती नथी. कारण के आ ठेकाणे तैजस अने कार्मण ए बे शरीर एकलां ज लेवानां नथी पण वैक्रिय साथे ज ए बे—तैजस अने कार्मण—शरीर लेवानां छे. माटे जे सत्तावीश भांगा कह्या छे ते ठीक छे. जो के मूळमां 'एएणं गमेणं दुण्णि' एम अतिदेश करवो जोइए—एम कहेवुं जोइए, तो पण जे 'एएणं गमेणं तिण्णि—'एम कह्युं छे तेनुं कारण त्रणे शरीरना गमनुं अत्यंत सादृश्य देखाडवानुं छे. **संहननद्वार.** हवे संहनन द्वार संबंधे जणावे छेः—['छण्हं संघयणाणं अस्संघयणि' ति] 'वज्रर्षभनाराच' वगेरे छ संहननोमांथी एक संहननवडे पण असंहननी छे अर्थात् नैरयिकोने एक पण संहनन—संघयण—होतुं नथी. तेम कहेवानुं शुं कारण ? तो कहे छे के, ['नेवट्ठि' इत्यादि.] ते नैरयिकोने हाडकां वगेरे नथी होतां माटे ते संहननरहित छे. कारण के हाडकाना समूहरूप ज 'संहनन' कहेवाय छे. ['अणिट्ठ' त्ति] इच्छाय ते इष्ट, तेवा नहीं ते अनिष्ट, कोइ अनिष्ट वस्तु सुंदर पण होय छे माटे कहे छे के, असुंदर—खराब, केटलीक खराब वस्तु एवी होय छे के कोइ कारणने लीधे तेना उपर प्रीति पण थाय, माटे कहे छे के, ['अप्पिया'] कारण होय तो पण अप्रीतिमां कारणभूत, ते अप्रिय शामाटे छे ? तो कहे छे के, ['असुभ'त्ति] ते अशुभ स्वभाववाळां छे माटे, केटलीक वस्तुओ तो सामान्य रीतिए अशुभ होय छे, माटे अहीं विशेषता दर्शाववा कहे छे के, ['अमणुण्ण'त्ति] मनद्वारा जे शुभपणे न जणाय ते अमनोज्ञ, कोइ अमनोज्ञ एवुं होय छे के जे कदाच ज एवुं होय. माटे कहे छे के, ['अमणाम' त्ति] जे वारंवार स्मरणमां आववाथी पण मनने ग्लानि आपे अर्थात् मनने गमे नहीं ते अमनोऽम, अथवा आ बधा शब्दो समान अर्थवाळा छे अने अत्यंत अनिष्टता दर्शाववा सारु अहीं तेओने प्रयोज्या छे. ['एतेसिं सरीरसंघायत्ताए' त्ति] अर्थात् पूर्वोक्त स्वरूपवाळां पुद्गलो ए नैरयिकोना शरीरसंघातरूपे छे. **संस्थानद्वार.** हवे संस्थान द्वार विषे जणावे छे के, ['किंसंठिअ' त्ति] जेओनुं केवुं संस्थान (आकार) छे ते 'किंसंस्थित' कहेवाय. **भवधारणीय.** ['भवधारणिज्ज' त्ति] जेनुं प्रयोजन पोताना जन्मने वीताववानुं छे—जेने लइने जन्म वीती शके छे ते 'भवधारणीय' अर्थात् आखी जिंदगी सुधी जे रहे ते 'भवधारणीय' कहेवाय. ['उत्तरवेउव्विय'त्ति] पूर्व वैक्रियनी अपेक्षाए जे उत्तर काळे थनारां वैक्रियो छे ते 'उत्तरवैक्रियो' कहेवाय. **हुंड.** ['हुंडसंठिअ' त्ति] सर्वत्र अव्यवस्थित ते हुंडसंस्थित अर्थात् बधा शारीरिक अवयवोनो अव्यवस्थित आकार.

---

१. आ शब्द माटे जुओ पृ-२४ नी नोट नं-१. २. आ शब्द माटे जुओ पृ-२४ नी नोट नं-३-अनु.

लेश्या.

१८०. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं [illegible] लेस्साओ पन्नत्ता ?

१८०. उ०—गोयमा ! एगा काउलेस्सा पन्नत्ता.

१८१. प्र०—इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए जाव—काउलेस्साए वट्टमाणा० ?

१८१. उ०—गोयमा ! सत्तावीसं भंगा.

१८२. प्र०—इमीसे णं जाव—किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ?

१८२. उ०—तिन्नि वि.

१८३. प्र०—इमीसे णं जाव—सम्मदंसणे वट्टमाणा नेरइया० ?

१८३. उ०—सत्तावीसं भंगा. एवं मिच्छादंसणे वि. सम्मामिच्छादंसणे असीतिभंगा.

१८४. प्र०—इमीसे णं भंते ! जाव—किं णाणी, अण्णाणी ?

१८४. उ०—गोयमा ! णाणी वि, अन्नाणी वि; तिण्णि णाणाइं नियमा, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए.

१८५. प्र०—इमीसे णं भंते ! जाव—आभिणिबोहियणाणे वट्टमाणा० ?

१८५. उ०—सत्तावीसं भंगा. एवं तिण्णि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भाणियव्वाइं.

१८६. प्र०—इमीसे णं जाव—किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

१८६. उ०—तिन्नि वि.

१८७. प्र०—इमीसे णं जाव—मणजोए वट्टमाणा कोहोवउत्ता० ?

१८७. उ०—सत्तावीसं भंगा. एवं वइजोए, एवं कायजोए.

१८८. प्र०—इमीसे णं जाव—नेरइया किं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता ?

१८८. उ०—गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि.

१८०. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां वसता नैरयिकोने केटली लेश्याओ कही छे ?

१८०. उ०—हे गौतम ! तेओने एक कापोतलेश्या कही छे.

१८१. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां वसता कापोतलेश्यावाळा नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१८१. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा कहेवा.

१८२. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां वसता नैरयिको शुं सम्यग्दृष्टि छे ? मिथ्यादृष्टि छे ? के सम्यग्मिथ्यादृष्टि छे ?

१८२. उ०—हे गौतम ! तेओ त्रणे प्रकारना छे.

१८३. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां वसता अने सम्यग्दर्शनमां वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१८३. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा कहेवा अने ए प्रमाणे मिथ्यादर्शन तथा सम्यग्मिथ्यादर्शनमां एंशी भांगा कहेवा.

१८४. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां वसता जीवो शुं ज्ञानी छे के अज्ञानी छे ?

१८४. उ०—हे गौतम ! तेओ ज्ञानी पण छे अने अज्ञानी पण छे. जेओ ज्ञानी छे तेओने त्रण ज्ञान नियमपूर्वक होय छे अने जेओ अज्ञानी छे तेओने त्रण अज्ञान भजनापूर्वक होय छे.

१८५. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां रहेता अने आभिनिबोधिक ज्ञानमां वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१८५. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा जाणवा. अने ए प्रमाणे त्रण ज्ञान तथा त्रण अज्ञान कहेवां—जाणवां.

१८६. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां रहेनार नैरयिको शुं मनोयोगी छे ? वचनयोगी छे ? के काययोगी छे ?

१८६. उ०—हे गौतम ! तेओ प्रत्येक त्रणे प्रकारना छे.

१८७. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां रहेनारा अने यावत्—मनोयोगमां वर्तता जीवो शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१८७. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा जाणवा. अने ए प्रमाणे वचनयोगमां तथा काययोगमां कहेवु.

१८८. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभा पृथिवीमां रहेनारा नैरयिको शुं साकारोपयुक्त छे के अनाकारोपयुक्त छे ?

१८८. उ०—हे गौतम ! तेओ साकारोपयुक्त पण छे अने अनाकारोपयुक्त पण छे.

---

१. मूलच्छायाः—एतस्या भगवन् ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या नैरयिकाणां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! एका कापोतलेश्या प्रज्ञप्ता. एतस्या भगवन् ! [illegible] यावत्—कापोतलेश्यायां वर्तमानाः० ? गौतम ! सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एतस्या यावत्—किं सम्यग्दृष्टयः, मिथ्यादृष्टयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ? त्रयोऽपि. [illegible] यावत्—सम्यग्दर्शने वर्तमाना नैरयिकाः० ? सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एवं मिथ्यादर्शनेऽपि. सम्यग्मिथ्यादर्शनेऽशीतिर्भङ्गाः. एतस्या भगवन् ! [illegible]—किं ज्ञानिनः, अज्ञानिनः ? गौतम ! ज्ञानिनोऽपि, अज्ञानिनोऽपि. त्रीणि ज्ञानानि नियमात्, त्रीण्यज्ञानानि भजनया. एतस्या भगवन् ! [illegible]—आभिनिबोधिकज्ञाने वर्तमानाः ? सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एवं त्रीणि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि भणितव्यानि. एतस्या यावत्—किं मनोयोगिनः [illegible], काययोगिनः ? त्रीण्यपि. एतस्या यावत्—मनोयोगे वर्तमानाः क्रोधोपयुक्ताः ? सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एवं वचोयोगे, एवं० काययोगे. [illegible] नैरयिकाः किं साकारोपयुक्ताः, अनाकारोपयुक्ताः ? गौतम ! साकारोपयुक्ता अपि, अनाकारोपयुक्ता अपि.—अनु०

१८९. प्र०—इमीसे णं जाव–सागारोवयोगवट्टमाणा किं कोहोवउत्ता ?

१८९. उ०—सत्तावीसं भंगा. एवं अणागारोवउत्ता वि सत्तावीसं भंगा. एवं सत्त वि पुढवीओ नेयव्वाओ, णाणत्तं लेसासु. गाहा:—

काऊ य दोसु, तइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए,
पंचमीयाए मीसा, कण्हा तत्तो परमकण्हा.

१८९. प्र०—हे भगवन् ! आ रत्नप्रभामां रहेनारा अने साकारोपयोगमां वर्तता नैरयिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ?

१८९. उ०—हे गौतम ! अहीं सत्तावीश भांगा कहेवा. अने ए प्रमाणे अनाकारोपयोगमां पण जाणवुं. तथा ए प्रमाणे सातें पृथिवीओने पण जाणवी. मात्र विशेषता लेश्याओमां छे, ते आ प्रमाणे छे: गाथा:—

पेली अने बीजी पृथिवीमां कापोत लेश्या छे, त्रीजीमां मिश्र लेश्या—कापोत अने नील लेश्या—छे, चोथीमां नीललेश्या छे, पांचमीमां मिश्र—नील अने कृष्ण—लेश्या छे, छट्ठीमां कृष्णलेश्या छे अने सातमीमां परमकृष्ण लेश्या छे.

८. दृष्टिद्वारे *'सम्मामिच्छादंसणे असीइभंग'*त्ति मिश्रदृष्टीनामल्पत्वाद् तद्भावस्यापि च कालतोऽल्पत्वाद् एकोऽपि लभ्यते इत्यशीतिर्भङ्गाः. ज्ञानद्वारे *'तिण्णि णाणाइं नियम'*त्ति ये ससम्यक्त्वा नरकेषूत्पद्यन्ते तेषां प्रथमसमयादारभ्य भवप्रत्ययस्यावधिज्ञानस्य भावात् त्रिज्ञानिन एव ते. ये तु मिथ्यादृष्टयस्ते संज्ञिभ्यः, असंज्ञिभ्यश्चोत्पद्यन्ते. तत्र ये संज्ञिभ्यस्ते भवप्रत्ययादेव विभङ्गस्य भावाद् अज्ञानिनः. ये त्वसंज्ञिभ्यस्तेषामाद्यादन्तर्मुहूर्तात् परतो विभङ्गस्योत्पत्तिरिति तेषां पूर्वमज्ञानद्वयम्, पश्चाद्विभङ्गोत्पत्तावज्ञानत्रयमित्यत उच्यते—*'तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए'*त्ति भजनया विकल्पनया कदाचिद् द्वे, कदाचित् त्रीणि इत्यर्थः. अत्रार्थे गाथे स्याताम्:—*"सन्नी नेरइएसु उरलपरिच्चायणंतरे समये, विब्भंगं ओहिं या अविग्गहे विग्गहे लहइ. असन्नी नरएसु पज्जत्तो जेण लहइ विब्भंगं, नाणा तिन्नेव तओ अन्नाणा दोन्नि तिन्नेव."* *'एवं तिन्नि णाण-'* इत्यादि. आभिनिबोधकज्ञानवत् सप्तविंशतिभङ्गकोपेतान्याद्यानि त्रीणि ज्ञानानि, अज्ञानानि चेति. इह च 'त्रीणि ज्ञानानि'इति यदुक्तं तद् आभिनिबोधकस्य पुनर्गणनेन, अन्यथा द्वे एव ते वाच्ये स्यातामिति. *'तिण्णि अण्णाणाइं'* इत्यत्र यदि मत्यज्ञान–श्रुताज्ञाने विभङ्गात् पूर्वकालभाविनी विवक्ष्येते तदाऽशीतिर्भङ्गा लभ्यन्ते, अल्पत्वात् तेषाम्. किंतु जघन्यावगाहनास्ते, ततो जघन्यावगाहनाश्रयेणैवाशीतिर्भङ्गकास्तेषामवसेया इति. योगद्वारे एवम्—*'कायजोए'*त्ति इह यद्यपि केवलकार्मणकाययोगेऽशीतिर्भङ्गाः संभवन्ति, तथापि तस्याऽविवक्षणात्, सामान्यकाययोगाश्रयणाच्च सप्तविंशतिरुक्ता इति. उपयोगद्वारे—*'सागारोवउत्त'*त्ति आकारो विशेषांशग्रहणशक्तिः, तेन सहेति साकारः, तद्विकलोऽनाकारः—सामान्यग्राहीत्यर्थः. *'णाणत्तं लेसासु'*त्ति रत्नप्रभापृथिवीप्रकरणवच्छेषपृथिवीप्रकरणान्यध्येयानि, केवलं लेश्यासु विशेषः, तासां भिन्नत्वात्, अत एव तद्दर्शनाय गाथा:—*'काऊ'* इत्यादि. तत्र *'तइयाए मीसिय'*त्ति वालुकाप्रभाप्रकरणे उपरितननरकेषु कापोती, अधस्तनेषु नीली भवति इति. ते यथासंभवं प्रश्नसूत्रे, उत्तरसूत्रे चाध्येतव्ये इत्यर्थः. यच्च सूत्राभिलापेषु नरकावाससंख्यानानात्वं तत् *'तीसा य पन्नवीसा'* इत्यादिना पूर्वप्रदर्शितेन समवसेयमिति. एवं च सूत्राभिलापः कार्यः—*'सक्करप्पहाए णं भंते ! पुढवीए पणवीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एक्कमेक्कंसि निरयावासंसि कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! एगा काउलेस्सा पन्नत्ता. सक्करप्पभाए णं भंते ! जाव–काउलेस्साए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता ?* इत्यादि. *'जाव–सत्तावीसं भंगा'* एवं सर्वपृथिवीषु गाथानुसारेण वाच्याः.

दृष्टिद्वार.
ज्ञानद्वार.

८. हवे दृष्टि द्वार संबंधे जणावे छे के, ['सम्मामिच्छादंसणे असीइभंग' त्ति] अर्थात् मिश्रदृष्टि जीवो अल्प छे तेथी तेनी हयाती पण काळनी अपेक्षाए थोडी छे, माटे ते मिश्रदृष्टि जीव एक पण होइ शके छे तेथी ते संबंधे एंशी भांगा जाणवा. हवे ज्ञान द्वार विषे कहे छे के, ['तिण्णि णाणाइं नियम' त्ति] नरकोमां जे जीवो सम्यक्त्वसहित उत्पन्न थाय छे तेओने जन्मकाळना प्रथम समयथी मांडी भवप्रत्यय अवधिज्ञान होय छे माटे तेओ त्रण ज्ञानवाळा ज होय छे. जे जीवो नरकमां मिथ्यादृष्टि होय छे तेओ तो संज्ञिओथी के असंज्ञिओथी उत्पन्न थएला होय छे. तेमां जेओ संज्ञिओथी उत्पन्न थएला होय छे तेओने भवप्रत्यय विभंग होवाथी तेओ त्रण अज्ञानवाळा होय छे. अने जेओ तो असंज्ञिओथी उत्पन्न थएला होय छे तेओने एक-त्यां (नरकमां) जन्म लीधा बाद प्रथम अंतर्मुहूर्त वीत्या पछी विभंग ज्ञान उपजे छे, माटे तेओने पहेलां तो बे अज्ञान होय छे अने पछी विभंग ज्ञान उपज्या पछी— त्रण अज्ञान होय छे—विभंग अने बीजां बे पूर्वनां. माटे कह्युं छे के, ['तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए' त्ति]

---

१. मूलच्छाया—एतस्या यावत्–साकारोपयोगवर्तमानाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एवम् अनाकारोपयुक्ता अपि सप्तविंशतिर्भङ्गाः. एवं सप्ताऽपि पृथिव्यो ज्ञातव्याः, नानात्वं लेश्यासु. गाथाः—कापोती द्वयोः, तृतीयायां मिश्रिता, नीलिका चतुर्थ्याम्, पञ्चम्यां मिश्रा, कृष्णा ततः परमकृष्णा.

१. प्र० छायाः—संज्ञी नैरयिकेषु औदारिकपरित्यागानन्तरे समये, विभङ्गम्, अवधिं वा अविग्रहे, विग्रहे लभते. २. असंज्ञी नरकेषु पर्याप्तो येन लभते विभङ्गम्, ज्ञानानि त्रीण्येव ततः, अज्ञानानि द्वे त्रीणि वा. ३. शर्कराप्रभायां भगवन् ! पृथिव्यां पञ्चविंशतौ निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! एका कापोतलेश्या प्रज्ञप्ता. शर्कराप्रभायां भगवन् ! यावत्–कापोतलेश्यायां वर्तमानाः नैरयिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? ४. यावत्–सप्तविंशतिर्भङ्गाः—अनु०

[illegible] होय छे-कोइ वखत बे अने कोइ वखत त्रण. आ संबंधे बे गाथाओ छे. ते आ प्रमाणेः—"औदारिक [illegible] छोड्या पछी तुरत ज नैरयिकोमां उत्पन्न थनार संज्ञी जीव अविग्रह के विग्रह गतिमां विभंग के अवधिज्ञानने पामे छे." गाथा. [illegible] के असंज्ञी जीव नैरयिकोमां उत्पन्न थाय छे ते त्यां पर्याप्तअवस्था पाम्या पछी विभंग ज्ञान पामे छे. माटे त्यां नरकमां ज्ञान तो त्रण [illegible] होय छे अने अज्ञान बे पण होय छे अने त्रण पण होय छे." ['एवं तिन्नि णाण—' इत्यादि.] प्रथमना त्रण ज्ञान अने त्रण अज्ञान विषे आभिनि-[illegible] ज्ञाननी पेठे सत्तावीश भांगा जाणवा. अहीं जे त्रण ज्ञान कह्यां छे ते खरी रीतिए त्रण न कहेवां जोइए, पण बे ज्ञान कहेवां जोइए. तो पण [illegible] ज्ञान कह्यां छे ते आभिनिबोधिकज्ञानने साथे लइने कह्यां छे एम जाणवुं. ['तिण्णि अण्णाणाइं'] आ सूत्रमां जो विभंगज्ञानना काळथी पूर्वे [illegible] मतिअज्ञान अने श्रुतअज्ञान लेवामां आवे तो एंशी भांगा थाय छे. कारण के तेवा अज्ञानवाळा जीवो थोडा होय छे. परंतु ते पूर्वोक्त [illegible]वाळा जीवो जघन्य अवगाहनावाळा होय छे माटे ते संबंधे तो जघन्य अवगाहनाने लइने ज एंशी भांगा जाणवा. हवे योग द्वार संबंधे कहे योगद्वार. छे के, ['एवं कायजोए' त्ति] अहीं जो के, एकला कार्मणकायना योगमां एंशी भांगा संभवे छे तो पण तेनी अहीं विवक्षा नथी करी अने सामान्य [illegible]योगनी विवक्षा करी छे माटे सत्तावीश भांगा कह्या छे. हवे उपयोग द्वार संबंधे जणावे छे के, ['सागारोवउत्त' त्ति] विशेषरूप अंशने ग्रहण करवानी उपयोगद्वार. [illegible] ते आकार, जे आकारसहित ते साकार अने जे आकाररहित ते अनाकार अर्थात् विशेषने नहीं ग्रहण करनारुं पण सामान्यने ग्रहण करनारुं ते अनाकार. ['णाणत्तं लेसासु' त्ति] रत्नप्रभापृथिवीना प्रकरणनी पेठे बाकी बधी पृथिवीओनां प्रकरणो कहेवां. मात्र तेमां लेश्या संबंधे [illegible] होवाथी लेश्या विषे विशेष छे. माटे हवे ते वातने देखाडवा गाथा कहे छे केः—['काऊ' इत्यादि.] तेमां ['तइयाए मीसिय' त्ति] वालुकाप्रभाना [illegible]मां उपरितम नरकोमां कापोतलेश्या तथा अधस्तन नरकोमां नीललेश्या होय छे. माटे ते बन्ने लेश्या यथासंभव प्रश्नसूत्रमां अने उत्तरसूत्रमां कहेवी. सूत्राभिलापोमां नरकावासोनी संख्यामां जे भेद दर्शाव्यो छे ते आगळ कहेल 'तीसा य पन्नवीसा' इत्यादि गाथा द्वारा जाणवो. अने सूत्राभिलाप आ प्रमाणे कहेवोः—"सक्करप्पहाए णं भंते! पुढवीए पणवीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एक्कमेक्कंसि निरयावासंसि कइ लेस्साओ [illegible]? गोयमा! एगा काउलेस्सा पन्नत्ता. सक्करप्पभाए णं भंते! जाव—काउलेस्साए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता?" इत्यादि. "जाव—सत्तावीसं भंगा" ए प्रमाणे बधी पृथिवीओमां गाथाने अनुसारे भांगाओ जाणवा.

असुरकुमारस्थितिस्थानादि.

१९०. प्र०—चउसट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठिइट्ठाणा पन्नत्ता?

१९०. उ०—गोयमा! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पण्णत्ता. जहण्णिया ठिई जहा नेरइया तहा, नवरं—पडिलोमा भंगा भणियव्वा. सव्वे वि ताव होज्ज लोभोवउत्ता. अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ते य. अहवा लोभोवउत्ता य, मायोवउत्ता य. एएणं गमेणं णेयव्वं जाव-थणियकुमाराणं, नवरं णाणत्तं जाणियव्वं.

१९०. प्र०—हे भगवन्! चोसठ लाख असुरकुमारावासोमांना एक एक असुरकुमारावासमां वसता असुरकुमारोनां स्थितिस्थानो केटलां कह्यां छे?

१९०. उ०—हे गौतम! तेओनां स्थितिस्थानो असंख्येय कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—ओछामां ओछी स्थिति, ते एक समयाधिक, बे समयाधिक, इत्यादि नैरयिकोनी पेठे जाणवानुं छे. विशेष ए के, भांगा प्रतिलोम—उलटा—कहेवाना छे अर्थात् असुरकुमारोना भांगामां लोभ प्रथम कहेवानो छे. ते आ प्रमाणेः—ते बधा य पण असुरकुमारो लोभोपयुक्त होय, अथवा घणा लोभोपयुक्त अने एकाद मायोपयुक्त होय, अथवा घणा लोभोपयुक्त अने मायोपयुक्त पण होय, इत्यादि ए गमवडे जाणवुं अने ए प्रमाणे यावत्—स्तनितकुमारो सुधी जाणवुं. विशेष ए के, तेओनुं नानात्व—भिन्नत्व—जाणवुं.

१. असुरकुमारप्रकरणे 'पडिलोमा भंग' त्ति नारकप्रकरणे हि क्रोध—मानादिना क्रमेण भङ्गकनिर्देशः कृतः, असुरकुमारादिप्रकरणेषु तु लोभ—मायादिनाऽसौ कार्य इत्यर्थः. अत एवाहः—'सव्वे वि ताव होज्ज लोहोवउत्त' त्ति देवा हि प्रायो लोभवन्तो भवन्ति, तेन सर्वेऽप्यसुरकुमारा लोभोपयुक्ताः स्युः. द्विकसंयोगे तु लोभोपयुक्तत्वे बहुवचनमेव, मायोपयोगे त्वेकत्व—बहुत्वाभ्यां द्वौ भङ्गकौ, एवं सप्तविंशतिर्भङ्गकाः कार्याः; 'नवरम्—णाणत्तं जाणियव्वं' त्ति नारकाणाम्, असुरकुमारादीनां च परस्परं नानात्वं ज्ञात्वा प्रश्नसूत्राणि उत्तरसूत्राणि चाध्येयानि

---

१. जुओ पृ० १४१ मुं:—अनु०

१. [illegible]:—चतुःषष्टयां भगवन्! असुरकुमारावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् असुरकुमारावासेऽसुरकुमाराणां कियन्ति स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि? [illegible] असंख्येयानि स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि. जघन्या स्थितिर्यथा नैरयिकास्तथा, नवरम्—प्रतिलोमा भङ्गा भणितव्याः. सर्वेऽपि तावद् भवेयुर्लोभोपयुक्ताः [illegible] लोभोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्तश्च, अथवा लोभोपयुक्ताश्च, मायोपयुक्ताश्च. एतेन गमेन ज्ञेयम् यावत्—स्तनितकुमाराणाम्, नवरम्—[illegible]

इति हृदयम्. तच्च नारकाणाम्–असुरकुमारादीनां च संहनन–संस्थान–लेश्यासूत्रेषु भवति, तत्रैवम्–*'चउसट्ठीए णं भंते ! असुरकुमारावास- सयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं सरीरगा किंसंघयणी ? गोयमा ! अस्संघयणी. जे पोग्गला इट्ठा, कंता ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति. एवं संठाणे वि, नवरं—भवधारणिज्जा समचउरंससंठिया, उत्तरवेउव्विया अन्नयरसंठिया. एवं लेस्सासु वि. नवरं–कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! चत्तारि, तं जहा:–किण्हा, नीला, काऊ, तेउलेस्सा. चउसट्ठीए णं जाव–कण्हलेस्साए वट्ट- माणा किं कोहोवउत्ता ? गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा लोहोवउत्ता'* इत्यादि. एवम्–*'नीला, काऊ, तेऊ वि'* नागकुमारादिप्रकरणेषु तु *'चुलसीए नागकुमारावाससयसहस्सेसु'* इति. एवं *''चउसट्ठी असुराणं, नागकुमाराण होइ चुलसीई''* इत्यादेर्वचनात् प्रश्नसूत्रेषु भवनसं- ख्यानानात्वमवगम्य सूत्राभिलापः कार्य इति.

असुरकुमारादि. प्रतिलोम भांगा.

९. असुरकुमारना प्रकरणमां ['पडिलोमा भंग' त्ति] प्रतिलोम भांगाओ कहेवा अर्थात् नारकना प्रकरणमां 'क्रोध, मान, माया अने लोभ' ए प्रमाणे भांगानो निर्देश कर्यो हतो, पण असुरकुमारना प्रकरणमां तो ए प्रमाणे निर्देश न करवो. किंतु 'लोभ, माया, मान अने क्रोध' ए प्रमाणे भांगानो निर्देश करवो. माटे ज कहे छे के:–['सव्वे वि ताव होज्ज लोहोवउत्त' त्ति] घणे भागे तो देवो लोभवाळा–लोभिआ–होय छे माटे 'बधा य असुरकुमारो लोभोपयुक्त होय छे' ए प्रमाणे प्रथम भांगो करवो. द्विकसंयोगमां तो 'लोभोपयुक्त' शब्दने बहुवचनांत राखवो अने 'मायोपयुक्त' शब्दमां एकवचन तथा बहुवचन राखी बे भांगा करवा अने ए प्रमाणे सत्तावीश भांगा करवा. ['नवरं–णाणत्तं जाणिअव्वं' ति] विशेष ए के, नारकोमां अने असुरकुमारादिकमां जे भेद छे ते जाणीने प्रश्नसूत्रो तथा उत्तरसूत्रो कहेवां ए तात्पर्य छे. संहनन, संस्थान अने लेश्या संबंधी सूत्रोमां नारको अने असुरकुमारोमां भेद छे. ते आ प्रमाणे छे:–''हे भगवन् ! चोसठ लाख असुरकुमारावासमांना प्रत्येक प्रत्येक असुरकुमारावासमां वर्तता असुरकुमारोनां शरीरो कयां संघयणवाळां छे ? हे गौतम ! ते असंघयणी–संघयण विनानां–छे. तेओना शरीरसंघातपणे ते ज पुद्गलो परिणमे छे, जे इष्ट अने सुंदर होय छे'' ''ए प्रमाणे संस्थान विषे पण समजवुं. विशेष ए के, तेओनुं जे शरीर भवधारणीय–कायमनुं–छे ते समचोरस संस्थाने संस्थित छे, अने जे शरीर उत्तर– वैक्रियरूप छे ते अनेक प्रकारमांना कोइ एक संस्थाने संस्थित छे. ए प्रमाणे लेश्यामां पण जाणवुं.'' विशेष ए के–''तेओने केटली लेश्याओ कही छे ? हे गौतम ! तेओने चार लेश्याओ कही छे. ते आ प्रमाणेः–कृष्ण, नील, कापोत अने तेजोलेश्या. चोसठ लाख असुरकुमारावासमांना यावत्–कृष्ण- लेश्यामां वर्तता असुरकुमारो शुं क्रोधोपयुक्त छे ? हे गौतम ! बधा य लोभोपयुक्त होय छे'' इत्यादि. ''ए प्रमाणे नील, कापोत अने तेजोलेश्या संबंधे पण जाणवुं.'' नागकुमारादिना प्रकरणमां तो ''चउसट्ठी असुराणं, नागकुमाराण होइ चूलसीई'' अर्थात् असुरकुमारोना चोसठ लाख अने नागकुमारोनां चोराशी लाख भवनो होय छे'' इत्यादि वचनवडे प्रश्नसूत्रोमां आवास–भवन–नी संख्यानो भेद जाणीने सूत्रनो अभिलाप करवो अर्थात् नागकुमारोनां भवनो चोराशी लाख कहेवां.

विशेष.

पृथिवीकायिकस्थितिस्थानादि.

१९१. प्र०—असंखिज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसह- स्सेसु एगमेगंसि पुढविकाईयावासंसि पुढविकाइयाणं केवइया ठिति- ट्ठाणा पन्नत्ता ?

१९१. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिकना असंख्येय लाख आवासोमांना एक एक आवासमां वसता पृथिवीकायिकोनां स्थिति– स्थानो केटलां कह्यां छे ?

१९१. उ०—गोयमा ! असंखेज्जा ठितिट्ठाणा पन्नत्ता. तं जहा:–जहन्निया ठिई जाव–तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिई.

१९१. उ०—हे गौतम ! तेओनां स्थितिस्थानो असंख्येय कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः–तेओनी ओछामां ओछी स्थिति, ते एक समयाधिक, बे समयाधिक, इत्यादि यावत्–तेने उचित उत्कृष्ट स्थिति जाणवी.

१९२. प्र०—असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविकाईयावाससयसह- स्सेसु एगमेगंसि पुढविकाईयावासंसि जहण्णियाए ठितिए वट्टमाणा पुढविकाईया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभो- वउत्ता ?

१९२. प्र०—हे भगवन् ! पृथिवीकायिकना असंख्येय लाख आवासोमांना एक एक आवासमां निवसता अने जघन्य स्थितिवाळा पृथिवीकायिको शुं क्रोधोपयुक्त छे ? मानोपयुक्त छे ? मायोपयुक्त छे ? के लोभोपयुक्त छे ?

---

१. प्र० छायाः—चतुष्षष्टौ भगवन् ! असुरकुमारावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् असुरकुमारावासे असुरकुमाराणां शरीराणि किंसंहननीनि ? गौतम ! असंहननीनि. ये पुद्गला इष्टाः, कान्तास्ते तेषां संघाततया परिणमन्ति. एवं संस्थानेऽपि. नवरम्–भवधारणीयानि समचतुरस्रसंस्थितानि, उत्तरवैक्रियाणि अन्यतरसंस्थितानि. एवं लेश्यास्वपि. नवरम्–कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! चतस्रः, तद्यथा:—कृष्णा, नीला, कापोता, तेजोलेश्या, चतुष्षष्टौ यावत्–कृष्णलेश्यायां वर्तमानाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? गौतम ! सर्वेऽपि तावद् भवेयुर्लोभोपयुक्ताः. २. चतुरशीतौ नागकुमारावासशतसहस्रेषु. ३. चतुष्षष्टिरसुराणां नागकुमाराणां भवति चतुरशीतिः–अनु०

१. मूलच्छायाः—असंख्येयेषु भगवन् ! पृथिवीकायिकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् पृथिवीकायिकावासे पृथिवीकायिकानां कियन्ति स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! असंख्येयानि स्थितिस्थानानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथा:–जघन्या स्थितिर्यावत्–तत्प्रायोग्योत्कर्षिका स्थितिः. असंख्येयेषु भगवन् ! पृथिवीकायिकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् पृथिवीकायिकावासे जघन्यका स्थित्या वर्तमानाः पृथिवीकायिकाः किं क्रोधोपयुक्ताः, मानोपयुक्ताः, मायोपयुक्ताः, लोभोपयुक्ताः ?–अनु०

१९२. उ०—गोयमा! कोहोवउत्ता वि, माणोवउत्ता वि, मायोवउत्ता वि, लोभोवउत्ता वि. एवं पुढविकाइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं. नवरं—तेउलेस्साए असीतिभंगा, एवं आउकाइया वि. तेउकाइया, वाउकाइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं. वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया.

१९२. उ०—हे गौतम! तेओ क्रोधोपयुक्त पण छे, मानोपयुक्त पण छे, मायोपयुक्त पण छे अने लोभोपयुक्त पण छे. ए प्रमाणे पृथिवीकायिकोने बधा य पण स्थानोमां अभंगक छे. विशेष ए के, तेजोलेश्यामां एंशी भांगा कहेवा. ए प्रमाणे अप्काय—जलकाय—पण जाणवो. तथा तेजस्काय अने वायुकायने सर्व पण स्थानोमां अभंगक छे. वळी वनस्पतिकायिको पण पृथिवीकायिकनी पेठे जाणवा.

१०. 'एवम् पुढविकाइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं' त्ति पृथिवीकायिका एकैकस्मिन् कषाये उपयुक्ता बहवो लभ्यन्त इत्यभङ्गकं दशस्वपि स्थानेषु. 'नवरम्—तेउलेस्साए असीई भंग' त्ति पृथिवीकायिकेषु लेश्याद्वारे तेजोलेश्या वाच्या, सा च यदा देवलोकाच्च्युतो देव एकोऽनेको वा पृथिवीकायिकेषूत्पद्यते तदा भवति, ततश्च तदैकत्वादिभवनाद् अशीतिर्भङ्गका भवन्तीति. इह पृथिवीकायिकप्रकरणे स्थितिस्थानद्वारं साक्षाल्लिखितमेवास्ति, शेषाणि तु नारकवद् वाच्यानि. तत्र च नवरम्—'णाणत्तं जाणियव्वं' इति एतस्याऽनुवृत्तेर्नानात्वमिह प्रश्नतः, उत्तरतश्चावसेयम्, तत्र शरीरादिषु सप्तसु द्वारेष्विदम्—'असंखिज्जेसु णं भंते! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु जाव—पुढविकाइयाणं कइ सरीरा पन्नत्ता? गोयमा! तिन्नि, तं जहा:—ओरालिये, तेयए, कम्मए.' एतेषु च 'कोहोवउत्ता वि माणोवउत्ता वि' इत्यादि वाच्यम्. तथा 'असंखेज्जेसु णं जाव—पुढविकाइयाणं सरीरगा किंसंघयणी' इत्यादि तथैव. नवरम्—पोग्गला मणुन्ना, अमणुन्ना सरीरसंघायत्ताए परिणमंति' एवं संस्थानद्वारेऽपि. किंतु उत्तरे 'हुंडसंठिया' एतावदेव वाच्यम्, नतु 'दुविहा सरीरगा पन्नत्ता, तं जहाः—भवधारणिज्जा य, उत्तरवेउव्विया य' इत्यादि. पृथिवीकायिकानां तदभावादिति. लेश्याद्वारे पुनरेवं वाच्यम्—'पुढविकाइयाणं भंते! कइ लेस्साओ पन्नत्ताओ? गोयमा! चत्तारि, तं जहाः-कण्हलेस्सा, जाव—तेउलेस्सा' एतासु च तिसृष्वभङ्गकमेव. तेजोलेश्यायां त्वशीतिर्भङ्गकाः. एतच्च प्रागेवोक्तमिति. दृष्टिद्वारे इदं वाच्यम्—'असंखेज्जेसु जाव—पुढविकाइया किं सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी? गोयमा! नियमा मिच्छदिट्ठी' शेषं तथैव.ज्ञानद्वारेऽपि तथैव. नवरम्—'पुढविकाइया णं भंते! किं णाणी, अण्णाणी? गोयमा! णो णाणी, अन्नाणी, नियमा दोअन्नाणी' योगद्वारेऽपि तथैव. नवरम्—'पुढविकाइया णं भंते! किं मणयोगी, वइयोगी, काययोगी? गोयमा! नो मणजोगी, नो वयजोगी, काययोगी.' 'एवम्—आउकाइया वि' त्ति पृथिवीकायिकवदप्कायिका अपि वाच्याः. ते हि दशस्वपि स्थानकेषु अभङ्गकाः. तेजोलेश्यायां चाशीतिभङ्गकवन्तः, यतस्तेष्वपि देव उत्पद्यत इति. 'तेउकाइआ' इत्यादौ 'सव्वेसु वि ठाणेसु' त्ति स्थितिस्थानादिषु दशस्वप्यभङ्गकम्, क्रोधाद्युपयुक्तानामेकदैव तेषु बहूनां भावात्, इह देवा नोत्पद्यन्ते इति तेजोलेश्या तेषु नास्ति, ततस्तत्संभवा नाऽशीतिरपि इत्यभङ्गकमेवेति. एतेषु च सूत्राणि पृथिवीकायिकसमानि, केवलं वायुकायसूत्रेषु शरीरद्वारे एवमध्येयम्—'असंखेज्जेसु णं भंते! जाव—वाउकाइयाणं कइ सरीरा पन्नत्ता? गोयमा! चत्तारि. तं जहाः—ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए' त्ति 'वणस्सइकाइया' इत्यादि. वनस्पतयः पृथिवीकायिकसमाना वक्तव्याः. दशस्वपि स्थानकेषु भङ्गकाऽभावात्. तेजोलेश्यायां च तथैव, अशीतिभङ्गकसद्भावादिति. ननु पृथिव्य—ऽम्बु—वनस्पतीनां दृष्टिद्वारे सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं कर्मग्रन्थेष्वभ्युपगम्यते, तत एव ज्ञानद्वारे मतिज्ञानम्, श्रुतज्ञानं च, अल्पाश्चैते, इत्येवमशीतिर्भङ्गाः सम्यग्दर्शन-आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञानेषु भवन्तु.नैवम्, पृथिव्यादिषु सास्वादनभावस्याऽत्यन्तविरलत्वेनाविवक्षितत्वात्. तत एवोच्यतेः—''उभयाभावो पुढवाइएसु, विगलेसु होज्ज उववण्णो'' त्ति उभयं प्रतिपद्यमान—पूर्वप्रतिपन्नरूपमिति.

१०. ['एवं पुढविकाइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं' ति] एक एक कषायमां उपयुक्त थएला पृथिवीकायिको घणा होय छे माटे ते संबंधे दशे स्थानमां अभंगक समजवुं. ['नवरं—तेउलेस्साए असीई भंग' त्ति] पृथिवीकायिक संबंधी लेश्याद्वारमां तेजोलेश्या कहेवी. ज्यारे कोइ देव के देवो देवलोकथी च्यवी पृथिवीकायिकमां उत्पन्न थाय छे त्यारे पृथिवीकायिकमां तेजोलेश्या होय छे अने तेथी तेना एकत्वादिपणाने लीधे एंशी भांगा थाय छे.

पृथिवीकायिक.

तेजोलेश्या.

---

१. मूलच्छायाः—गौतम! क्रोधोपयुक्ता अपि, मानोपयुक्ता अपि, मायोपयुक्ता अपि, लोभोपयुक्ता अपि. एवं पृथिवीकायिकानां सर्वेष्वपि स्थानेष्वभङ्गकम्. नवरम्—तेजोलेश्यायां अशीतिर्भङ्गाः, एवं अप्कायिका अपि. तेजस्कायिका (नाम्,) वायुकायिकानां सर्वेष्वपि स्थानेष्वभङ्गकम्. वनस्पतिकायिका यथा पृथिवीकायिकाः—अनु०

१. प्र० छायाः—असंख्येयेषु भगवन्! पृथिवीकायिकावासशतसहस्रेषु यावत्—पृथिवीकायिकानां कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! त्रीणि. तद्यथाः—औदारिकम्, तैजसम्, कार्मणम्. २. क्रोधोपयुक्ता अपि, मानोपयुक्ता अपि. ३. असंख्येयेषु यावत्—पृथिवीकायिकानां शरीराणि किं—संहननानि? ४. पुद्गला मनोज्ञाः, अमनोज्ञाः शरीरसंघाततया परिणमन्ति. ५. हुण्डसंस्थितानि. ६. द्विविधानि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथाः—भवधारणीयानि च, उत्तरवैक्रियाणि च. ७. पृथिवीकायिकानां भगवन्! कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतस्रः. तद्यथाः—कृष्णलेश्या यावत्—तेजोलेश्या. ८. असंख्येयेषु यावत्—पृथिवीकायिकाः किं सम्यग्दृष्टयः, मिथ्यादृष्टयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः? गौतम! नियमाद् मिथ्यादृष्टयः. ९. पृथिवीकायिका भगवन्! किं ज्ञानिनः, अज्ञानिनः? गौतम! नो ज्ञानिनः, अज्ञानिनः. नियमाद् [illegible] अज्ञानिनः. १०. पृथिवीकायिका भगवन्! किं मनोयोगिनः, [illegible], काययोगिनः? गौतम! नो मनोयोगिनः, नो वचोयोगिनः, काययोगिनः. ११. असंख्येयेषु भगवन्! यावत्—वायुकायिकानां कति शरीराणि [illegible]? गौतम! चत्वारि. तद्यथाः—औदारिकम्, वैक्रियम्, तैजसम्, कार्मणम्. १२. [illegible] पृथिव्यादिषु [illegible] उपपन्नः—अनु०

अहीं पृथिवीकायिकना प्रकरणमां स्थितिस्थानद्वार साक्षात् लख्युं ज छे अने बाकीनां द्वारो नारकनी पेठे कहेवां. पण विशेष ए के, [illegible] कायिक संबंधी भेद, प्रश्न अने उत्तर सूत्रथी जाणवो. ते भेद शरीरादि सात द्वारोमां छे. अने ते आ प्रमाणे छेः—"हे भगवन्! [illegible] पृथिवीकायिकावासोमां यावत्–वर्तता पृथिवीकायिकोने केटलां शरीर कह्यां छे? हे गौतम! तेओने त्रण शरीरो कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:—औदारिक, तैजस अने कार्मण." ए पृथिवीकायिकोमां "क्रोधोपयुक्तो, मानोपयुक्तो" इत्यादि कहेवुं. तथा "असंख्येय लाख पृथिवीकायिकावासोमां यावत्–वर्तता पृथिवीकायिकोनां शरीरो क्यां संघयणवाळां छे?" इत्यादि पूर्व प्रमाणे ज कहेवुं. विशेष ए के, "पृथिवीकायिकोना शरीरसंघातरूपे सारां अने नरसां [illegible] प्रकारनां पुद्गलो परिणमे छे." ए प्रमाणे संस्थानद्वारमां पण कहेवुं. किंतु उत्तरसूत्रमां "पृथिवीकायिको हुंडसंस्थाने संस्थित छे" एम कहेवुं. परंतु पृथिवीकायिकना प्रकरणमां आ पाठ—"बे प्रकारनुं शरीर कह्युं छे. ते आ प्रमाणेः—भवधारणीय अने उत्तरवैक्रिय" इत्यादि—न कहेवो. कारण के, पृथिवीकायिकोने ते बे प्रकारनुं शरीर होतुं नथी. वळी लेश्याद्वारमां आ प्रमाणे कहेवुंः—"हे भगवन्! पृथिवीकायिकोने केटली लेश्याओ कही छे? हे गौतम! तेओने चार लेश्याओ कही छे. ते आ प्रमाणेः—कृष्णलेश्या, यावत्–तेजोलेश्या." ते चारमांनी त्रण लेश्यामां अभंगक समजवुं अने तेजोलेश्यामां तो एंशी भांगा जाणवा. ए वात आगळ ज कही छे. दृष्टिद्वारमां आ प्रमाणे कहेवुंः—"ते असंख्येय लाख पृथिवीकायिकावासोमां निवास करता पृथिवीकायिको शुं सम्यग्दृष्टि छे? मिथ्यादृष्टि छे? के मिश्र–सम्यग्मिथ्या–दृष्टि छे? गौतम! तेओ चोक्कस मिथ्यादृष्टि छे." बाकी बधुं ते ज प्रकारे जाणवुं. ज्ञानद्वारमां पण तेम ज जाणवुं. विशेष ए के, "हे भगवन्! पृथिवीकायिको शुं ज्ञानी छे? के अज्ञानी छे? हे गौतम! तेओ ज्ञानी नथी, पण अज्ञानी छे. अने तेओने बे अज्ञान ज होय छे. योगद्वारमां पण तेम ज समजवुं. विशेष ए के, "हे भगवन्! पृथिवीकायिको शुं मनोयोगी छे? वचनयोगी छे, के काययोगी छे? हे गौतम! तेओ मनोयोगी के वचनयोगी नथी, पण काययोगी छे. ['एवं आउक्काइया वि' त्ति] पृथिवीकायिकनी पेठे अप्कायिको पण जाणवा. ते अप्कायिको दशे स्थानोमां अभंगक होय छे अने तेजोलेश्यामां तेओ संबंधे एंशी भांगा थाय छे. कारण के, अप्कायिकोमां पण देव उत्पन्न थाय छे. ['तेउक्काइया'] इत्यादिमां ['सव्वेसु ठाणेसु' त्ति] स्थितिस्थानादिक दशे स्थानोमां अभंगक जाणवुं. कारण के, तेमां क्रोधादिमां उपयुक्त जीवो एक ज काळे घणा होय छे. अहीं देवो उत्पन्न थता नथी माटे तेजोलेश्या नथी. अने तेम होवाथी तेजोलेश्याने लइने थता एंशी भांगाओ पण नथी, पण अभंगक ज छे. ते संबंधी सूत्रो पृथिवीकायिकनां सूत्रोनी पेठे कहेवां. मात्र वायुकायसंबंधी सूत्रोमां शरीरद्वारमां आ प्रमाणे विशेष जाणवुंः—"हे भगवन्! असंख्येय लाख वायुकायिकावासोमां वर्तता वायुकायिकोने केटलां शरीर कह्यां छे? हे गौतम! तेओने चार शरीर कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने कार्मण." ['वणस्सइकाइया' इत्यादि.] वनस्पतिकायिको पृथिवीकायिकोनी पेठे ज जाणवा. कारण के, तेओना दशे स्थानोमां अभंगक छे. अने तेजोलेश्यामां ते ज प्रकारे एंशी भांगा थाय छे. शं०—दृष्टिद्वारमां पृथिवीकायिको, अप्कायिको अने वनस्पतिकायिको सम्यक्त्वी कहेवा जोइए. कारण के कर्मग्रंथोमां ए त्रणेने सास्वादनभावे सम्यक्त्व होय छे एम स्वीकार्युं छे. अने ज्यारे ए मत प्रमाणे ए त्रणे सम्यक्त्वी थाय त्यारे ज ज्ञान द्वारमां तेओने (त्रणेने) ज्ञानी कहेवा जोइए अर्थात् मतिज्ञानी अने श्रुतज्ञानी कहेवा जोइए. अने मतिज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी तेओ (त्रणे) थोडा होय छे माटे सम्यग्दृष्टि, आभिनिबोधिक–मति–ज्ञान अने श्रुतज्ञानमां ए त्रणे माटे एंशी भांगा थवा जोइए. ते केम नथी कह्या? समा०—ए शंका ठीक नथी. कारण के, पृथिव्यादिक त्रणमां सास्वादनभाव घणो ज थोडो छे. माटे तेने अहीं गण्यो नथी. ते माटे ज कह्युं छे केः—"पृथिवीवगेरेमां उभयाभाव–उभयनो अभाव–छे. अने विकलेंद्रियोमां पूर्वोपपन्नक होय छे" उभयाभाव एटले प्रतिपद्यमान के पूर्वप्रतिपन्न ए बन्ने सम्यक्त्वनो अभाव जाणवो. अर्थात् पृथिवीकायिकादिमां वर्ततो कोइ जीव सम्यक्त्व पामतो नथी तथा पूर्वे पामेल सम्यक्त्वने साथे लावतो नथी अने विकलेंद्रियोमां वर्ततो जीव पूर्वे पामेल सम्यक्त्वने साथे लावे छे माटे पूर्वोपपन्नक कहेवाय छे.

बेइंद्रियादि.

१९३.—बेइंदिय–तेइंदिय–चउरिंदियाणं जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं असीइं चेव. नवरं–अब्भहिया सम्मत्ते, आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे य एएहिं असीइभंगा. जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं.

१९३.—जे स्थानोवडे नैरयिकोने एंशी भांगा छे ते स्थानोवडे बेइंद्रिय, त्रींद्रिय, अने चउरिंद्रिय जीवोने पण एंशी भांगा छे. विशेष ए के, नीचे लखेला त्रण स्थानमां पण ते (बेइंद्रियादि) जीवोने एंशी भांगा थाय छे, ते त्रण स्थानो आ छेः—सम्यक्त्व, आभिनिबोधिक ज्ञान अने श्रुतज्ञान अर्थात् आ त्रण स्थानोमां पण बेइंद्रियादि जीवोने एंशी भांगा लाभे छे अने एटलुं नैरयिको करतां वधारे छे. तथा जे स्थानोवडे नैरयिकोने सत्तावीश भांगा छे ते बधा य पण स्थानोमां अहीं अभंगक छे.

११. 'बेइंदिय' इत्यादावेवमक्षरघटना–'जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा तेहिं ठाणेहिं बेइंदिय–तेइंदिय–चउरिंदियाणं असीइं चेव' त्ति तत्रैकादिसंख्यातान्तसमयाधिकायां जघन्यस्थितौ, तथा जघन्यायामवगाहनायां च, तत्रैव च संख्येयान्तप्रदेशवृद्धायाम्, मिथ्यादृष्टौ च नारकाणामशीतिर्भङ्गका उक्ताः, विकलेन्द्रियाणामप्येतेषु स्थानेषु मिश्रदृष्टिवर्जेष्वशीतिरेव. अल्पत्वात् तेषाम्, एकैकस्यापि क्रोधाद्युपयुक्तस्य संभवात्. मिश्रदृष्टिस्तु विकलेन्द्रियेषु, एकेन्द्रियेषु च न भवतीति न विकलेन्द्रियाणां तत्राशीतिभङ्गकसंभव इति. वृद्धैस्तु–इह सूत्रे कुतोऽपि

---

१. आ वात मूळमां नथी. पण तेने पूर्वसूत्रथी अहीं जाणवी:—श्रीअभयदेव.

१. मूलच्छायाः—द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रियाणां यैः स्थानैर्नैरयिकाणाम् अशीतिर्भङ्गास्तैः स्थानैरशीतिरेव. नवरम्–अभ्यधिकाः सम्यक्त्वे, आभिनिबोधिकज्ञाने, श्रुतज्ञाने च एतैरशीतिर्भङ्गाः. यैः स्थानैर्नैरयिकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गास्तेषु स्थानेषु सर्वेषु अभङ्गकम्:—अनु०

[illegible] ''[illegible]'' इति व्याख्यातमिति. इहैव विशेषमभिधातुमाऽऽहः—'नवरम्' इत्यादि. अयमर्थः—दृष्टिद्वारे, ज्ञानद्वारे च [illegible] सप्तविंशतिर्भङ्गा, विकलेन्द्रियाणां तु 'अब्भहिय'त्ति अभ्यधिका अन्या अशीतिर्भङ्गकानां भवति, क? इत्याह:—सम्यक्त्वे, अल्पीयसां [illegible] विकलेन्द्रियाणां सास्वादनभावेन सम्यक्त्वं भवति, अल्पत्वाच्च तेषामेकत्वस्यापि संभवेनाशीतिर्भङ्गकानां भवति. एवमाभि-[illegible], श्रुते चेति. तथा 'जेहिं' इत्यादि. येषु स्थानकेषु नैरयिकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गकास्तेषु स्थानेषु द्वि-त्रि-चतु-[illegible]णां भङ्गकाभावः. तानि च प्रागुक्ताशीतिभङ्गस्थानावशिष्टानि मन्तव्यानि. भङ्गकाभावश्च क्रोधाद्युपयुक्तानामेकदा एव [illegible] भावादिति. विकलेन्द्रियसूत्राणि च पृथिवीकायिकसूत्राणीवाध्येयानि. नवरम्—इह लेश्याद्वारे तेजोलेश्या नाध्येतव्या. दृष्टि-[illegible] च *'बेइंदिया णं भंते ! किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी ? गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी. [illegible] वट्टमाणा बेइंदिया किं कोहोवउत्ता'* इत्यादिप्रश्ने, उत्तरम्—अशीतिर्भङ्गाः. तथा ज्ञानद्वारे *'बेइंदियो णं भंते ! किं णाणी, अन्नाणी ? [illegible] ! णाणी वि, अन्नाणी वि. जइ णाणी दुनाणी—मइनाणी, सुयणाणी य'* शेषं तथैव, अशीतिश्च भङ्गा इति. योगद्वारे *'बेइंदिया णं भंते ! किं मणयोगी, वइयोगी, काययोगी य ? गोयमा ! णो मणयोगी, वइजोगी य, काययोगी य'* शेषं तथैव. एवं त्रीन्द्रिय—चतुरिन्द्रियसूत्राण्यपि.

११. ['बेइंदिय—'] इत्यादिसूत्रमां आ प्रमाणे अक्षरघटना करवी:—['जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइभंगा, तेहिं ठाणेहिं बेइंदिय—तेइंदिय—चउरिंदियाणं असीइं चेव'त्ति] ते नारकप्रकरणमां एकथी मांडी संख्यात समयना वधारावाळी जघन्य स्थितिमां, जघन्य अवगाहनामां, संख्यात प्रदेशना वधारावाळी [illegible] अवगाहनामां अने मिश्रदृष्टिनी स्थितिमां नारको संबंधे एंशी भांगा कह्या छे. अने अहीं मिश्रदृष्टि सिवायना विकलेंद्रिय जीवो संबंधे पण ए ज ठेकाणे [illegible] भांगा जाणवा. कारण के ते विकलेंद्रिय जीवो अल्प होवाथी तेमां क्रोधादिउपयुक्त एक एक जीवनो पण संभव छे. मिश्रदृष्टि जीव तो विकलेंद्रियोमां के [illegible]योमां होता नथी. माटे मिश्रदृष्टिमां ते संबंधे एंशी भांगा संभवता नथी. वृद्धोए तो कोइ पण वाचनाविशेषथी ''ज्यां एंशी भांगा छे त्यां पण अभंगक छे'' एम व्याख्या करी छे. हवे अहीं ज विशेष कहेवा माटे कहे छे के:—['नवरं' इत्यादि.] तेनो अर्थ आ छे:—दृष्टिद्वारमां अने ज्ञानद्वारमां नारकोने सत्ता-वीश भांगा कह्या छे. अहीं विकलेंद्रियोने तो ['अब्भहिअ'त्ति] अधिक कहेवा अर्थात् एंशी भांगा कहेवा. क्यां कहेवा ? तो कहे छे के, सम्यक्त्वमां, थोडा ज विकलेंद्रियोने सास्वादनभावे सम्यक्त्व होय छे. अने तेओ थोडा होवाथी तेओनुं एकत्व पण संभवे छे अने तेने लीधे तेओ संबंधे सम्यक्त्वमां एंशी भांगा थाय छे. ए ज प्रमाणे मतिज्ञान अने श्रुतज्ञानमां पण एंशी भांगा जाणवा. तथा ['जेहिं'इत्यादि.] जे स्थानकोमां नैरयिकोने सत्तावीश भांगा कह्या छे ते स्थानकोमां बेइंद्रिय, त्रींद्रिय अने चतुरिंद्रिय जीवो संबंधे अभंगक—भंगकाभाव—समजवुं. अने पूर्वे कहेल एंशी भांगावाळा स्थानो सिवाय बीजां बधां स्थानको अभंगक—भंगकाभाववाळां—जाणवां. एक ज काळे ते बेइंद्रियादिजीवोमां क्रोधादिउपयुक्त जीवो घणा होय छे माटे तेमां अभंगक कह्युं छे. विकलेंद्रिय संबंधी सूत्रो पृथिवीकायिक सूत्रोनी पेठे जाणवां. विशेष ए के, अहीं लेश्याद्वारमां तेजोलेश्या न कहेवी. अने दृष्टिद्वारमां आ प्रमाणे प्रश्न करवो:—''हे भगवन् ! शुं बेइंद्रिय जीवो सम्यग्दृष्टिवाळा छे ? मिथ्यादृष्टिवाळा छे ? के सम्यग्मिथ्यादृष्टिवाळा छे ? हे गौतम ! तेओ सम्यग्दृष्टिवाळा पण छे, मिथ्यादृष्टिवाळा पण छे. पण सम्यग्मिथ्यादृष्टि—मिश्रदृष्टि—वाळा नथी. सम्यग्दर्शनमां वर्तता ए बेइंद्रियो शुं क्रोधोपयुक्त छे ?'' इत्यादि प्रश्न करवो. अने तेना उत्तरमां तेओ माटे एंशी भांगा कहेवा. तथा ज्ञानद्वारमां आ प्रमाणे पूछवुं:—''हे भगवन् ! शुं बेइंद्रियजीवो ज्ञानी छे ? के अज्ञानी छे ? हे गौतम ! तेओ ज्ञानी पण छे अने अज्ञानी पण छे. जो तेओ ज्ञानी छे तो तेओ बे ज्ञानवाळा—मतिज्ञान अने श्रुतज्ञानवाळा—छे. अने जो तेओ अज्ञानी छे तो तेओ बे अज्ञान—मतिअज्ञान अने श्रुतअज्ञान—वाळा छे. बाकी बधुं ते ज प्रमाणे—पूर्व प्रमाणे—जाणवुं. अने ते संबंधे एंशी भांगा जाणवा. योगद्वारमां आ प्रमाणे प्रश्न करवो:—''हे भगवन् ! शुं बेइंद्रिय जीवो मनयोगी छे ? वचनयोगी छे ? के काययोगी छे ? हे गौतम ! तेओ वचनयोगी अने काययोगी छे. पण मनयोगी नथी.'' बाकी बधुं पूर्वनी पेठे ज जाणवुं अने त्रींद्रिय तथा चतुरिंद्रिय संबंधी सूत्रो पण ए ज प्रमाणे कहेवां.

बेइंद्रिय. वृद्धो. विशेष. दृष्टिद्वार. ज्ञानद्वार. योगद्वार. त्रींद्रियादि.

पंचेंद्रियतिर्यंच.

१९४.—पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरईया तहा भाणियव्वा. नवरं—जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं. जत्थ असीति तत्थ असीतिं चेव.

१९४.—जेम नैरयिको कह्या तेम पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिको पण जाणवा. विशेष ए के, जे स्थानोवडे नैरयिकोमां सत्तावीश भांगा कह्या छे, ते स्थानोवडे अहीं अभंगक कहेवुं. अने ज्यां नैरयिकोमां एंशी भांगा कह्या छे त्यां अहीं पण एंशी भांगा ज कहेवा.

१२. *'पंचिंदिय'* इत्यादि. *'जेहिं सत्तावीसं भंग'* त्ति यत्र नारकाणां सप्तविंशतिर्भङ्गास्तत्र पञ्चेन्द्रियतिरश्चामभङ्गकम्, तच्च जघन्यस्थि-त्यादिक पूर्वं दर्शितमेव. भङ्गकाभावश्च क्रोधाद्युपयुक्तानां बहूनामेकदैव तेषु भावादिति. सूत्राणि च इह नारकसूत्रवदध्येयानि. नवरम्—

---

१. [illegible] छाया:—द्वीन्द्रिया भगवन् ! किं सम्यग्दृष्टयः, मिथ्यादृष्टयः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ? गौतम ! सम्यग्दृष्टयोऽपि, मिथ्यादृष्टयोऽपि, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टयः. [illegible] वर्तमाना द्वीन्द्रियाः किं क्रोधोपयुक्ताः ? २. द्वीन्द्रिया भगवन् ! किं ज्ञानिनः अज्ञानिनः ? गौतम ! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि. यदि ज्ञानिनः—[illegible]—मतिज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनश्च. ३. द्वीन्द्रिया भगवन् ! किं मनोयोगिनः वचोयोगिनः, काययोगिनश्च ? गौतम ! नो मनोयोगिनः, वचोयोगिनश्च, [illegible]—अनु॰

[illegible]—अ॰

शरीरद्वारेऽयं विशेषः—*'असंखेज्जेसु णं भंते! पंचिंदियतिरिक्खजोणियावासेसु पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया सरीरा* [illegible] *गोयमा! चत्तारि. तं जहाः—ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए.'* सर्वत्र चाभङ्गकमिति. तथा संहननद्वारे *'पंचिंदियतिरिक्ख*[illegible] *केवइया संघयणा पन्नत्ता? गोयमा! छ संघयणा. तं जहाः—वइरोसहनारायं, जाव—छेवट्ठं'*ति एवं संस्थानद्वारेऽपि *'छ* [illegible] *पन्नत्ता. तं जहाः—समचउरंसे०.'* एवं लेश्याद्वारे *'कइ लेस्साओ पन्नत्ता? गोयमा! छ. तं जहाः—किण्हलेस्सा०.'*

पंचेंद्रिय. शरीरद्वार. संघयणद्वार. संस्थान. लेश्या.

१२. ['पंचिंदिय' इत्यादि.] ['जेहिं सत्तावीसं भंग' त्ति] जे स्थानकोमां नारकोने सत्तावीश भांगा कह्या छे ते स्थानकोमां पंचेंद्रिय तिर्यंचोने [illegible] भंगक समजवुं. जे स्थानकोमां अभंगक थाय छे ते स्थानको—जघन्य स्थित्यादिक—आगळ दर्शाव्यां ज छे. ते पंचेंद्रिय तिर्यंचोमां एक [illegible] क्रोधाद्युपयुक्त घणा नारको होवाथी अभंगक कह्युं छे. आ संबंधी सूत्रो नारकसूत्रनी पेठे कहेवां. विशेष ए के, शरीर द्वारमां आ प्रमाणे [illegible] "हे भगवन्! असंख्येय तिर्यंचपंचेंद्रिय योनिकावासमां वर्तता तिर्यंचपंचेंद्रियोने केटलां शरीरो कह्यां छे? हे गौतम! तेओने चार शरीरो [illegible] छे. ते आ प्रमाणेः—औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने कार्मण. ए बधामां अभंगक जाणवुं. तथा संघयण द्वारमां आ प्रमाणे प्रश्न करवोः—"हे [illegible] पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिकोने केटलां संघयणो कह्यां छे? गौतम! तेओने छ संघयणो कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—वज्रऋषभनाराच, यावत्—छेवट्टुं—[illegible] ए प्रमाणे संस्थान द्वारमां पण जाणवुं. 'तेओने छ संस्थानो होय छे. ते आ प्रमाणेः—समचोरस' इत्यादि. ए प्रमाणे लेश्याद्वारमां पण [illegible] "तेओने केटली लेश्याओ होय छे? हे गौतम! तेओने छ लेश्याओ होय छे. ते आ प्रमाणेः—कृष्णलेश्या वगेरे."

मनुष्य.

१९५.—मणुस्सा वि जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीतिभंगा तेहिं ठाणेहिं मणुस्साणं वि असीतिभंगा भाणियव्वा. जेसु ठाणेसु सत्तावीसा तेसु अभंगयं. नवरं—मणुस्साणं अब्भहियं जहण्णिय-ठिइए, आहारए य असीतिभंगा.

१९५.—नैरयिकोमां जे स्थानोवडे एंशी भांगा कह्या छे ते स्थानोवडे मनुष्योमां पण एंशी भांगा कहेवा. अने नैरयिकोमां जे स्थानोवडे सत्तावीश भांगा कह्या छे ते स्थानोवडे मनुष्योमां अभगक कहेवुं. विशेष ए के, मनुष्योने जघन्यस्थितिमां अने आहारक शरीरमां एंशी भांगा छे. अने ए नैरयिको करतां मनुष्योमां अधिक छे.

१३. *'मणुस्सा वि'*त्ति यथा नैरयिका दशसु द्वारेष्वभिहितास्तथा मनुष्या अपि भणितव्या इति प्रक्रमः. एतदेवाहः—*'जेहिं'* इत्यादि. तत्र नारकाणां जघन्यस्थितावेकादिसंख्यातान्तसमयाधिकायाम्, तथा जघन्यावगाहनायाम्, तस्यामेव संख्यातान्तप्रदेशाधिकायाम्, मिश्रे चाशीतिर्भङ्गका उक्ताः, मनुष्याणामप्येतेष्वशीतिरेव, तत्कारणं च तदल्पत्वमेवेति. नारकाणाम्, मनुष्याणां च सर्वथा साम्यपरिहारायाऽऽहः— 'जेसु सत्तावीसा' इत्यादि. सप्तविंशतिभङ्गकस्थानानि च नारकाणां जघन्यस्थिति—असंख्यातसमयाधिक—जघन्यस्थितिप्रभृतीनि, तेषु च जघन्यस्थितौ विशेषस्य वक्ष्यमाणत्वेन तद्वर्जेषु मनुष्याणामभङ्गकम्, यतो नारकाणां बाहुल्येन क्रोधोदय एव भवति, तेन तेषां सप्तविंशतिर्भङ्गका उक्तस्थानेषु युज्यन्ते; मनुष्याणां तु प्रत्येकं क्रोधाद्युपयोगवतां बहूनां भावाद् न कषायोदये विशेषोऽस्ति, तेन तेषां तेषु स्थानेषु भङ्गकाभाव इति. इहैव विशेषाभिधानायाहः—*'नवरम्'* इत्यादि. येषु स्थानेषु नारकाणामशीतिः, तेषु मनुष्याणामप्यशीतिः. तथा *'जेसु सत्तावीसा तेसु अभंगयं'* इत्युक्तम्. केवलं मनुष्याणामिदमभ्यधिकम्—यदुत जघन्यकस्थितौ तेषामशीतिः, नतु नारकाणाम्, तत्र सप्तविंशतिरुक्ता इत्यभ्यधिकम्. तथाऽऽहारकशरीरेऽशीतिः, आहारकशरीरवतां मनुष्याणामल्पत्वात्, नारकाणां तन्नास्त्येव, इत्येतदभ्यधिकं मनुष्याणामिति. इह च नारकसूत्राणाम्, मनुष्यसूत्राणां च प्रायः शरीरादिषु चतुर्षु, ज्ञानद्वारे एव च विशेषः. तथाहिः—*'असंखेज्जेसु णं भंते! मणुस्सावासेसु मणुस्साणं कइ सरीरा पन्नत्ता? गोयमा! पंचविहा. तं जहाः—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए. असंखेज्जेसु ण जाव-ओरालियसरीरे वट्टमाणा मणूसा किं कोहोवउत्ता? गोयमा! कोहोवउत्ता वि'* एवं सर्वशरीरेषु, नवरम्—आहारकेऽशीतिर्भङ्गकानां वाच्या. एवं संहननद्वारेऽपि. नवरम्—*'मणुस्साणं भंते! कइ संघयणा पन्नत्ता? गोयमा! छ संघयणा पन्नत्ता. तं जहाः—*[illegible]

---

१. प्र० छायाः—असंख्येयेषु भगवन्! पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकावासेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां कियन्ति शरीराणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! [illegible] तद्यथा—औदारिकम्, वैक्रियम्, तैजसम्, कार्मणम्. २. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां कियन्ति संहननानि प्रज्ञप्तानि? गौतम! षट् संहननानि. तद्यथाः—[illegible] र्षभनाराचम्, यावत-सेवार्तम्. ३. षट् संस्थानानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथाः—समचतुरस्रम्०. ४. कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! षट्. तद्यथाः—कृष्णलेश्या०।—[illegible]

१. मूलच्छायाः—मनुष्या अपि यैस्स्थानैर्नैरयिकाणामशीतिर्भङ्गास्तैः स्थानैर्मनुष्याणामपि अशीतिर्भङ्गा भणितव्याः. येषु स्थानेषु सप्तविंशतिस्तेषु अभङ्गकम्. नवरम्—मनुष्याणामभ्यधिकं जघन्यस्थित्याम्, आहारके चाशीतिर्भङ्गाः—अनु०

१. प्र० छायाः—असंख्येयेषु भगवन्! मनुष्यावासेषु मनुष्याणां कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! पञ्चविधानि. तद्यथाः—औदारिकम्, वैक्रियम्, आहारकम्, तैजसम्, कार्मणम्. असंख्येयेषु यावत्—औदारिकशरीरे वर्तमाना मनुष्याः किं क्रोधोपयुक्ताः? गौतम! क्रोधोपयुक्ता अपि. २. [illegible] भगवन्! कति संहननानि प्रज्ञप्तानि? गौतम! षट् संहननानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथाः—वज्रर्षभनाराचम्, यावत्—[illegible]

[illegible], जाव–केवले' संस्थानद्वारे 'छ संठाणा पन्नत्ता. तं जहाः–समचउरंसे, जाव–हुंडे.' लेश्याद्वारे 'छ लेस्साओ. तं जहाः–किण्ह-लेस्सा, जाव—सुक्कलेस्सा.' ज्ञानद्वारे 'मणुस्साणं भंते ! कइ णाणाणि ? गोयमा ! पंच. तं जहाः–आभिणिबोहियणाणं, जाव–केवल-णाणं.' एषु च केवलवर्जेष्वभङ्गकम्, केवले तु कषायोदय एव नास्ति इति.

१३. ['मणुस्सा वि' त्ति] दशे द्वारमां जेम नैरयिको कह्या छे तेम मनुष्यो पण कहेवा ए प्रक्रम छे. ए ज वातने जणावे छे के:–['जेहिं' इत्यादि.] नारकना प्रकरणमां एकथी मांडी संख्यात समयना वधारावाळी जघन्यस्थितिमां, जघन्य अवगाहनामां, संख्यात प्रदेशना वधारावाळी जघन्य अवगाहनामां अने मिश्रदृष्टिमां एंशी भांगा कह्या छे. तेम ए स्थानकोमां अहीं मनुष्यप्रकरणमां पण मनुष्योने एंशी भांगा ज कहेवा. तेम होवानुं कारण तेओनुं अल्पपणुं ज छे. नारको अने मनुष्यो परस्पर तद्दन सरखा नथी ए वातने जणाववा कहे छे के:–['जेसु सत्तावीसं' इत्यादि.] जघन्यस्थिति, असंख्यात समयाधिक जघन्यस्थिति इत्यादि स्थानकोमां नारको संबंधे सत्तावीश भांगा कह्या छे. तो, जेमां [illegible] कहेवाशे एवी जघन्य स्थिति सिवायनां ते स्थानकोमां मनुष्यो संबंधे अभंगक जाणवुं. कारण के घणा भागे नारकोने क्रोधनो उदय ज होय छे माटे तेओने ते स्थानकोमां सत्तावीश भांगा कहेवा उचित छे. पण मनुष्योमां तो प्रत्येक क्रोधादिउपयोगवाळा घणा मनुष्यो होवाथी तेओमां कषायना उदय संबंधी विशेष नथी. माटे तेओमां ते स्थानको संबंधे अभंगक कहेवुं ठीक छे. आ ज संबंधे विशेषता कहेवा सारु कहे छे के:–['णवरं' इत्यादि.] 'जे स्थानोमां नारकोने एंशी भांगा कह्या छे. ते स्थानोमां मनुष्योने पण एंशी भांगा ज कहेवा. तथा जे स्थानोमां नारकोने सत्तावीश भांगा कह्या छे ते स्थानोमां मनुष्यो संबंधे अभंगक कहेवुं.' ए कथनमां मात्र मनुष्यो संबंधे आटलो भेद छे के:–'मनुष्योने जघन्य स्थितिमां एंशी भांगा कहेवा अने नारकोने तेम नथी कह्युं, पण तेओने (नारकोने) सत्तावीश भांगा कह्या छे.' एटली बात मनुष्यो संबंधे विशेष छे. तथा आहारक शरीरमां मनुष्योने एंशी भांगा कहेवा. कारण के आहारकशरीरवाळा मनुष्यो थोडा छे. अने नारकोने तो ते आहारक शरीर ज नथी. आ वात पण नारको करतां मनुष्योमां अधिक छे. आ स्थळे घणे भागे नारकसूत्रोमां अने मनुष्यसूत्रोमां शरीरादि चार द्वार संबंधे तथा ज्ञान द्वार संबंधे ज विशेष छे. ते आ प्रमाणे छे:–"हे भगवन् ! असंख्येय मनुष्यावासोमां रहेता मनुष्योने केटलां शरीरो कह्यां छे ? हे गौतम ! तेओने पांच प्रकारनां शरीरो कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:–औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस अने कार्मण. हे भगवन् ! असंख्येय मनुष्यावासोमां वसता अने यावत्–औदारिक शरीरमां वर्तमान मनुष्यो शुं क्रोधोपयुक्त छे ? हे गौतम ! तेओ क्रोधोपयुक्त पण छे. ए प्रमाणे बधा शरीरोमां कहेवुं. विशेष ए के, आहारक शरीरमां एंशी भांगा कहेवा. ए प्रमाणे संहनन द्वारमां पण कहेवुं. विशेष ए के:–"हे भगवन् ! मनुष्योने केटलां संघयणो कह्यां छे ? हे गौतम ! तेओने छ संघयणो कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:–वज्रऋषभनाराच, यावत्–छेवट्ठ." संस्थान द्वारमां "मनुष्योने छ संस्थानो छे. ते आ प्रमाणे:–समचोरस, यावत्–हुंडसंस्थान." लेश्या द्वारमां "छ लेश्याओ कही छे. ते आ प्रमाणे:–कृष्णलेश्या, यावत्–शुक्ललेश्या." ज्ञान द्वारमां "हे भगवन् ! मनुष्योने केटलां ज्ञानो कह्यां छे ? हे गौतम ! तेओने पांच ज्ञानो कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:–आभिनिबोधिक–मति–ज्ञान, यावत्–केवलज्ञान." ए पांच ज्ञानमांना केवलज्ञान सिवाय बाकीना चार ज्ञानमां अभंगक जाणवुं. अने केवलमां तो कषायनो उदय ज नथी.

मनुष्य. विशेष. संहनन. संस्थान. लेश्या. ज्ञान.

वानव्यंतरादि.

१९६.—वाणमंतर–जोतिस–वेमाणिया जहा भवणवासी. णवरं–णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स, जाव–अणुत्तरा.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति जाव–विहरइ.

१९६.—जेम भवनवासी देवो कह्या तेम वानव्यंतर, ज्योतिषिक अने वैमानिको जाणवा. विशेष ए के, जे जेनुं नानात्व–जुदापणुं–छे ते जाणवुं अने ए प्रमाणे यावत्–अनुत्तर सुधी जाणवुं.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही यावत् विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये पंचमो उद्देसो सम्मत्तो.

१४. 'वाणमंतर' इत्यादि. व्यन्तरादयो दशस्वपि स्थानेषु यथा भवनवासिनस्तथा वाच्याः. यत्रासुरादीनामशीतिर्भङ्गकाः, यत्र च सप्तविंशतिः, तत्र च व्यन्तरादीनामपि तथैव वाच्याः. भङ्गकास्तु लोभमादौ विधाय अध्येतव्याः. तत्र भवनवासिभिः सह व्यन्तराणां साम्यमेव. ज्योतिष्कादीनां तु न तथा इति तैस्तेषां सर्वथा साम्यपरिहारसूचनायाहः–'णवरं–णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स' त्ति यत् लेश्यादिगतम्, यस्य ज्योतिष्कादेः, नानात्वमितरापेक्षया भेदः, तद् ज्ञातव्यमिह इति परस्परतो विशेषं ज्ञात्वा एतेषां सूत्राण्यध्येयानि इति भावः. तत्र लेश्याद्वारे ज्योतिष्काणामेकैव तेजोलेश्या वाच्या. ज्ञानद्वारे त्रीणि ज्ञानानि, अज्ञानान्यपि त्रीणि एव; असंज्ञिनां तत्रोपपाताभावेन विभङ्गस्यापर्याप्तकावस्थायामपि

---

१. प्र० छायाः—षट् संस्थानानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथाः—समचतुरस्रम्, यावत्–हुण्डम्. २. षट् लेश्याः. तद्यथाः–कृष्णलेश्या, यावत्–शुक्ललेश्या. मनुष्याणां भगवन् ! कति ज्ञानानि ? गौतम ! पञ्च.तद्यथाः—आभिनिबोधिकज्ञानम्, यावत्–केवलज्ञानम्ः–अनु०

१. मूलच्छायाः—वानव्यन्तर–ज्योतिषिक–वैमानिका यथा भवनवासिनः. नवरम्–नानात्वं ज्ञातव्यं यद् यस्य, यावत्–अनुत्तराः. तदेवं भगवन् !, तदेवं [illegible]—अनु०

भावात्. तथा वैमानिकानां लेश्याद्वारे तेजोलेश्यादयस्तिस्रो लेश्या वाच्याः, ज्ञानद्वारे च त्रीणि ज्ञानानि, अज्ञानानि वा इति. वैमानिकसूत्राणि चैवमध्येयानिः—'*संखेज्जेसु णं भंते! वेमाणियावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावासंसि केवइया ठिइट्ठाणा पन्नत्ता?* इत्येवमादीनि.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे प्रथमशते पञ्चमोद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

व्यन्तरादि. लेश्या. ज्ञान.

१४. ['वाणमंतर' इत्यादि.] जेम भवनवासिओ कह्या छे तेम दशे स्थानोमां व्यंतरो वगेरे पण कहेवा. जे स्थळे असुरादिकने एंशी भांगा होय अने जे स्थळे सत्तावीश भांगा होय ते स्थळे व्यंतरादिक संबंधे पण तेम ज कहेवुं. मात्र भांगा करती वखते लोभने आदिमां मूकवो. तेमां भवनवासिओनी साथे व्यंतरोनुं समानपणुं छे पण ते प्रमाणे ज्योतिष्कादिकनुं नथी. माटे भवनवासिओनी साथे ज्योतिष्कादिकनी तद्दन सरखाई नथी, ए वातने सूचववा कहे छे केः-['णवरं–णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स' त्ति] जे ज्योतिष्कादिकनुं लेश्यादि संबंधी भिन्नत्व बीजानी अपेक्षाए होय ते जाणवुं अने अहीं परस्पर विशेष जाणीने ते संबंधी सूत्रो कहेवां. तेमां लेश्या द्वारमां ज्योतिष्कोने एक ज तेजोलेश्या कहेवी. ज्ञान द्वारमां त्रण ज्ञानो कहेवां. अज्ञान पण त्रण कहेवां. कारण के, त्यां असंज्ञिजीवोनो उपपात–उत्पाद–थतो नथी माटे अपर्याप्ताऽवस्थामां पण विभंग ज्ञान होय छे. तथा वैमानिको संबंधी लेश्या द्वारमां तेजोलेश्यादिक त्रण लेश्या कहेवी. ज्ञानद्वारमां त्रण ज्ञानो अने त्रण अज्ञानो कहेवां. वैमानिक सूत्रो आ प्रमाणे कहेवांः–"संखेज्जेसु णं भंते! वेमाणिआवाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावासंसि केवइया ठिइट्ठाणा पण्णत्ता?" इत्यादि. अर्थात् "हे भगवन्! संख्येय लाख वैमानिकावासोमांना प्रत्येक प्रत्येक वैमानिकावासमां केटलां स्थितिस्थानो कह्यां छे?" इत्यादि.

वेलारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.—उद्देशक ६.

सूर्य जेटले दूरथी उगतो देखाय छे तेटले ज दूरथी आथमतो पण देखाय छे?—हा.—उगता अने आथमता सूर्यनुं प्रकाशक्षेत्र सरखुं छे?—हा.—क्षेत्रविचार.—लोकांत अलोकांतने अडके?—हा.—द्वीपांत सागरांतने अडके?—छायान्त आतपांतने अडके?—हा.—जीवोने प्राणातिपात क्रिया छे?—हा.—क्रियाविचार.—ए प्रमाणे चोवीशे दंडक.—मृषावादादि.—रोह नामना श्रमणना प्रश्नो.—पहेलो लोक के अलोक?—बन्ने पहेला अने बन्ने पछी.—पहेला जीवो के अजीवो?—पूर्ववत्.—पहेला भव्यो के अभव्यो?—पहेला सिद्धो के असिद्धो?—पहेली सिद्धि के असिद्धि—संसार?—पहेलुं इंडुं के कुकडी?—पूर्ववत्.—ए प्रमाणेना अनेक प्रश्नो.—गौतमप्रश्न.—लोकस्थितिना केटला प्रकार?—आठ.—आकाश वगेरेनो परस्पर आधार आधेय भाव.—तेनां साधक लौकिक उदाहरणो.—जीवो अने पुद्गलो परस्पर बद्ध छे?—हा.—तेनुं साधक लौकिक उदाहरण.—सूक्ष्म स्नेहकाय पडे?—हा.—ते लांबो काळ रहे?—ना. उद्देशकसमाप्ति.—

१९७. प्र०—जावइयाओ णं भंते! उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं हव्वं आगच्छति, अत्थमंते वि य णं सूरिए तावतियाओ चेव उवासंतराओ चक्खुप्फासं० ?

१९७. प्र०—हे भगवन्! जेटला अवकाशांतरथी—आकाशना व्यवधानथी—(जेटले दूरथी) उगतो सूर्य शीघ्र नजरे जोवाय छे तेटला ज दूरथी आथमतो सूर्य पण शीघ्र नजरे जोवाय छे?

१९७. उ०—हंता, गोयमा! जावइयाओ णं उवासंतराओ उदयंते सूरिए चक्खुप्फासं०, अत्थमंते वि सूरिए जाव—हव्वं आगच्छति.

१९७. उ०—हे गौतम! हा,—जेटले दूरथी उगतो सूर्य नजरे जोवाय छे तेटला ज दूरथी आथमतो सूर्य पण शीघ्र नजरे जोवाय छे.

१९८. प्र०—जावइया णं भंते! खित्तं उदयंते सूरिए आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ; अत्थमंते वि य णं सूरिए तावइयं चेव खित्तं आयवेणं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोएइ, तवेइ, पभासेइ?

१९८. प्र०—हे भगवन्! उगतो सूर्य पोताना ताप द्वारा जेटला क्षेत्रने सर्व प्रकारे चारे बाजुथी–बधी दिशाओमां अने बधा खूणाओमां प्रकाशित करे छे, उद्द्योतित करे छे, तपावे छे अने खूब उष्ण करे छे तेटला ज क्षेत्रने बधी दिशाओमां अने बधा खूणाओमां आथमतो सूर्य पण पोताना ताप द्वारा प्रकाशित करे छे? उद्द्योतित करे छे? तपावे छे? अने खूब उनुं करे छे?

१९८. उ०—हंता, गोयमा! जावतियं णं खेत्तं जाव—पभासेइ.

१९८. उ०—हे गौतम! हा,—उगतो सूर्य जेटला क्षेत्रने प्रकाशे छे तेटला ज क्षेत्रने आथमतो सूर्य पण यावत्—खूब उनुं करे छे.

१९९. प्र०—तं भंते! किं पुट्ठं ओभासेइ, अपुट्ठं ओभासेइ?

१९९. प्र०—हे भगवन्! सूर्य जे क्षेत्रने प्रकाशित करे छे ते क्षेत्र सूर्यथी स्पर्शाएलुं होय छे? के अस्पर्शाएलुं होय छे?

---

१. मूलच्छाया:—यावतो भगवन्! अवकाशान्तरात् उदयन् सूर्यश्चक्षुःस्पर्शं शीघ्रमागच्छति, अस्तमयन्नपि च सूर्यस्तावत एवाऽवकाशान्तरात् चक्षुःस्पर्शम्०? हन्त, गौतम! यावतोऽवकाशान्तराद् उदयन् सूर्यश्चक्षुःस्पर्शम्०, अस्तमयन्नपि सूर्यो यावत्–शीघ्रमागच्छति. यावद् भगवन्! क्षेत्रमुदयन् सूर्य आतपेन [illegible] उद्द्योतयति, तपति, [illegible] च सूर्यस्तावदेव क्षेत्रम्–आतपेन सर्वतः समन्तादवभासयति, उद्द्योतय- [illegible] गौतम! [illegible] भगवन्! किं [illegible]?—अनु०

१९९. उ०—जाव–छद्दिसिं ओभासेति. एवं उज्जोवेइ, तवेइ, पभासेइ, जाव–नियमा छद्दिसिं.

१९९. उ०—हे गौतम! ते क्षेत्र सूर्यथी स्पर्शाएलुं [illegible] अने यावत्–ते क्षेत्रने छ ए दिशामां प्रकाशित करे छे, उद्योतित करे छे, तपावे छे तथा खूब तपावे छे. यावत्–चोक्कस छ ए दिशाओमां (खूब तपावे छे.)

२००. प्र०—से णूणं भंते! सव्वं ति सव्वावं–ति फुसमाण-कालसमयंसि जावतियं खेत्तं फुसइ तावतियं 'फुसमाणे पुट्ठे'त्ति वत्तव्वं सिया?

२००. प्र०—हे भगवन्! स्पर्श करवाना काळसमये सर्वात्म– सूर्यनी साथे संबंधवाळा– जेटला क्षेत्रने सर्व दिशाओमां सूर्य स्पर्शे छे तेटलुं ते स्पर्शातुं क्षेत्र 'स्पर्शाएलुं' एम कहेवाय?

२००. उ०—हंता, गोयमा! सव्वं ति जाव–वत्तव्वं सिया.

२००. उ०—हे गौतम! हा, सर्व यावत्–एम कहेवाय.

२०१. प्र०—तं भंते! किं पुट्ठं फुसइ, अपुट्ठं फुसइ?

२०१. प्र०—हे भगवन्! स्पर्शाएल क्षेत्रने स्पर्शे छे? के स्पर्शाया विनाना क्षेत्रने स्पर्शे छे?

२०१. उ०—जाव—नियमा छद्दिसिं.

२०१. उ०—हे गौतम? स्पर्शाएल क्षेत्रने स्पर्शे छे. यावत्–चोक्कस छ ए दिशामां स्पर्शे छे.

१. अथ षष्ठो व्याख्यायते, तस्य चाऽयं संबन्धः–अनन्तरोद्देशके अन्तिमसूत्रेषु *'असंखेज्जेसु णं भंते! जाव–जोतिसिय–वेमाणियावासेसु'* तथा *'संखेज्जेसु णं भंते! वेमाणियावाससयसहस्सेसु'* इत्येतद् अधीतम्, तेषु च ज्योतिष्कविमानावासाः प्रत्यक्षा एव, इति तद्गतदर्शनं प्रतीत्य, तथा *'जावंते'* इति यदुक्तमादिगाथायाम्, तच्च दर्शयितुमाहः–*'जावइयाओ'* इत्यादि. यत्परिमाणात्, *'उवासंतराओ'*त्ति अवकाशान्तरात्–आकाशविशेषात्, अवकाशरूपान्तरालाद् वा—यावत्यवकाशान्तरे स्थित इत्यर्थः. *'उदयंते'* त्ति उदयन् उद्गच्छन्, *'चक्खुप्फासं'* ति चक्षुषो दृष्टेः स्पर्श इव स्पर्शः, नतु स्पर्श एव. चक्षुषः अप्राप्तकारित्वात्, इति चक्षुःस्पर्शस्तम्. *'हव्वं'* ति शीघ्रम्, स च सर्वाऽभ्यन्तरमण्डले सप्तचत्वारिंशद्योजनानां सहस्रेषु द्वयोः शतयोस्त्रिषष्टौ च साधिकायां वर्तमान उदये दृश्यते. अस्तसमयेऽप्येवम्. एवं प्रतिमण्डलं दर्शने विशेषोऽस्ति, स च स्थानान्तरादवसेयः. *'सव्वओ समंता'* त्ति सर्वतः सर्वासु दिक्षु, समन्ताद् विदिक्षु, एकार्थौ वा एतौ. *'ओभासेइ'* इत्यादि. अवभासयति–ईषत् प्रकाशयति, यथा स्थूलतरमेव वस्तु दृश्यते. उद्योतयति भृशं प्रकाशयति, यथा स्थूलमेव दृश्यते. तपति अपनीतशीतं करोति, यथा वा सूक्ष्मं पिपीलिकादि दृश्यते तथा करोति. प्रभासयति अतितापयोगाद् विशेषतोऽपनीतशीतं विधत्ते, यथा वा सूक्ष्मतरं वस्तु दृश्यते तथा करोति इति.

१. हवे छट्ठा उद्देशकनुं विवेचन थाय छे. अने तेनो संबंध आ प्रमाणे छे.–आगळना उद्देशकमां छेलां सूत्रोमां 'असंखेज्जेसु णं भंते! जाव–जोइसिअ–वेमाणिआवासेसु' तथा 'संखेज्जेसु णं भंते! वेमाणिआवाससयसहस्सेसु' ए वात कही छे अर्थात् ते सूत्रोमां नजरो नजर जणाता ज ज्योतिष्कना विमानावासो कह्या छे. एथी तेनी अंदरना देखावने आश्रीने, तथा जे ['जावंते'] ए पद आदि गाथामां कह्युं छे. तेने दर्शाववा कहे छेः— ['जावइआओ' इत्यादि.] जेटला ['उवासंतराओ'त्ति] अवकाशांतरथी कोइ जातना आकाशथी के (अवकाश खाली भाग) रूप अंतराळथी— अर्थात् जेटला अवकाशने अंतरे सूर्य रहेलो छे. ['उदयंते'त्ति] उदय पामतो–उगतो सूर्य ['चक्खुप्फासं'ति] चक्षुःस्पर्शे- नजरे ['हव्वं'ति] शीघ्र आवे छे. अहीं 'चक्षुःस्पर्श' शब्दनो अर्थ आ प्रमाणे छे—चक्षु=नजर अने स्पर्श=अडकवु. जो के, 'स्पर्श' शब्दनो अर्थ 'अडकवुं' थाय छे तो पण अहीं तेनो अर्थ 'अडकवा जेवुं' करवो. कारण के, नजरे जोवाता कोइ पण पदार्थनुं ज्यारे नेत्रद्वारा निरीक्षण थाय छे त्यारे आंख अने पदार्थनो स्पर्श थतो नथी. कारण के, आंख अप्राप्तकारी छे. अर्थात् 'चक्षुःस्पर्श' एटले 'आंखने अडकवा जेवुं.' हवे ते सूर्य सौथी अंदरना मांडलामां कांइक वधारे ४७,२,६३ योजन जेटले वर्ततो उदयावस्थामां देखाय छे अने आथमवानी अवस्थामां पण ए ज रीते देखाय छे. तथा ए प्रमाणे दरेक मांडले जोवामां विशेष छे अने ते विशेष बीजा ग्रंथथी जाणवानो छे. ['सव्वओ समंता' त्ति] 'सर्वतः' एटले बधी दिशाओमां अने 'समंतात्' एटले बधा खुणाओमां. ['ओभासेइ' इत्यादि.] थोडुं प्रकाशे छे-जे प्रकाशने लीधे मोटामां मोटी ज वस्तु देखाय छे. खूब प्रकाशे छे उद्योत करे छे, जेथी मोटी वस्तु ज देखाय छे. तपे छे–ठंडकने दूर करे छे, अथवा ए ताप एवो छे के जेथी नानी कीडी वगेरे पण देखाय छे. खूब तपे छे–घणो ताप थतो होवाथी ठंडकने वधारे दूर करे छे. अथवा ए ताप एवो छे के जेथी नानामां नानी वस्तु देखाय छे.

उगता अने आथमता सूर्यनुं दूरपणुं.

२. एतत् क्षेत्रमेवाऽऽश्रित्याहः–*'तं भंते!'* इत्यादि. यत् क्षेत्रमवभासयति, उद्योतयति, तपति, प्रभासयति च तत् क्षेत्रं किं भदन्त! स्पृष्टमवभासयति? अस्पृष्टमवभासयति? इह यावत्–करणादिदं दृश्यम्–*"गोयमा! पुट्ठं ओभासेइ, नो अपुट्ठं. तं भंते! ओगाढं ओभासेइ,*

---

१. मूलच्छायाः—यावत्–षड्दिशमवभासयति. एवमुद्योतयति, तपति, प्रभासयति, यावत्–नियमात् षड्दिशम्. तद् नूनं भगवन्! सर्वम् इति सर्वापमिति स्पृश्यमानकालसमये यावत्कं क्षेत्रं स्पृशति तावत्कं स्पृश्यमानं स्पृष्टमिति वक्तव्यं स्यात्? हन्त, गौतम! सर्वम् इति यावत्–वक्तव्यं स्यात्. तद् भगवन्! किं स्पृष्टं स्पृशति, अस्पृष्टं स्पृशति? यावत्–नियमात् षड्दिशम्. २. ५९ [illegible]–अनु०

१. पूज्यो पु–८ पुं:–अनु० २. आ बन्ने शब्दो एक [illegible] छे:—श्रीअभय०

[illegible] ओभासइ ? गोयमा ! ओगाढं ओभासेइ, नो अणोगाढं. एवं अणंतरोगाढं ओभासेइ, नो परंपरोगाढं. तं भंते ! किं अणुं ओ-[illegible], बायरं ओभासइ ? गोयमा ! अणुं पि ओभासइ, बायरं पि ओभासइ. तं भंते ! उड्ढं ओभासइ, तिरियं ओभासइ, अहे ओभासइ ? [illegible] ! उड्ढं पि, ३. तं भंते ! आइं ओभासइ, मज्झे ओभासइ, अंते ओभासइ ? गोयमा ! आइं, ३. तं भंते ! सविसए ओभासेइ, [illegible] ओभासइ ? गोयमा ! सविसए ओभासइ, नो अविसए. तं भंते ! आणुपुव्विं ओभासेइ, अणाणुपुव्विं ओभासेइ ? गोयमा ! आ-[illegible] ओभासेइ, नो अणाणुपुव्विं. तं भंते ! कइदिसं ओभासेइ ? गोयमा ! नियमा छद्दिसं'' ति. एतेषां च पदानां प्रथमोद्देशकनारका-[illegible]व्याख्या दृश्या इति. य एव 'ओभासेइ' इत्यनेन सह सूत्रप्रपञ्च उक्तः, स एव 'उज्जोअइ' इत्यादिना पदत्रयेण वाच्यः, इति [illegible]आह:—'एवं उज्जोवेइ' इत्यादि.

२. हवे क्षेत्रने आश्रीने ए ज वातने कहे छेः–['तं भंते' इत्यादि.] जे क्षेत्रने अवभासे छे, उद्द्योतित करे छे, तपावे छे अने खूब तपावे छे. हे [illegible] ! ते क्षेत्रने स्पर्शीने अवभासे छे के स्पर्श्या सिवाय अवभासे छे ? अहीं 'यावत्' शब्द मूकेलो होवाथी आ प्रमाणे जाणवुं: -'हे गौतम ! स्पर्शीने [illegible] छे, पण स्पर्श्या सिवाय अवभासतो नथी. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने अवगाहीने अवभासे छे के अवगाह्या सिवाय अवभासे छे ? हे गौतम ! अवगाहीने अवभासे छे, पण अवगाह्या सिवाय अवभासतो नथी. ए प्रमाणे अनंतर अवगाढने अवभासे छे, पण परंपराए अवगाढने अवभासतो नथी. हे भगवन् ! ते अणु क्षेत्रने अवभासे छे के बादर क्षेत्रने अवभासे छे ? हे गौतम ! ते अणुने पण अवभासे छे अने बादरने पण अवभासे छे. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने उंचे अवभासे छे, तीरछे अवभासे छे के नीचे अवभासे छे ? हे गौतम ! तेने उंचे, तीरछे अने नीचे पण अवभासे छे. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने आदिमां, मध्यमां के अंते अवभासे छे ? हे गौतम ! ते आदिमां, मध्यमां अने अंतमां पण अवभासे छे. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने पोताना विषयमां अवभासे छे के परविषयमां अवभासे छे ? हे गौतम ! तेने पोताना विषयमां अवभासे छे, पण परविषयमां अवभासतो नथी. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने क्रमपूर्वक अवभासे छे के क्रम सिवाय अवभासे छे ? हे गौतम ! तेने क्रमपूर्वक अवभासे छे, पण क्रम सिवाय अवभासतो नथी. हे भगवन् ! ते क्षेत्रने केटली दिशामां अवभासे छे ? हे गौतम ! चोक्कस छ ए दिशामां ते क्षेत्रने अवभासे छे.'' ए बधां पदोनी व्याख्या प्रथम उद्देशकमां कहेल नारकना आहार सूत्रनी पेठे कहेवी. जे सूत्रनो समूह 'अवभासे छे' ए क्रियापद साथे कह्यो छे ते ज सूत्रनो समूह 'उद्द्योत करे छे' 'तपावे छे' अने 'खूब तपावे छे' ए त्रण क्रियापद साथे पण कहेवो. ए ज वातने दर्शावतां कहे छे केः–['एवं उज्जोवेइ' इत्यादि.]

३. 'स्पृष्टं क्षेत्रं प्रभासयति' इत्युक्तम्, अथ स्पर्शनामेव दर्शयन्नाह:—'से णूणं' इत्यादि. 'सव्वं'ति प्राकृतत्वात् सर्वतः सर्वासु दिक्षु. 'सव्वावं–ति'त्ति प्राकृतत्वाद् एव सर्वात्मना, सर्वेण वाऽऽतपेनाऽऽपत्तिर्व्याप्तिर्यस्य क्षेत्रस्य तत् सर्वापत्ति. अथवा सर्वं क्षेत्रम्, 'इति' शब्दो 'विषयभूतं क्षेत्रं सर्वम्, नतु समस्तमेव' इत्यस्य अर्थस्य उपप्रदर्शनार्थः, तथा सर्वेणाऽऽतपेन, आपो व्याप्तिर्यस्य क्षेत्रस्य तत् सर्वापम्, 'इति' शब्दः 'सामान्यतः सर्वेणातपेन व्याप्तिः, नतु प्रतिप्रदेशं सर्वेण' इत्यस्याऽर्थस्योपप्रदर्शनार्थः. अथवा सह व्यापेनाऽऽतपव्याप्त्या यत् तत् सव्यापम्, इतिशब्दस्तु तथैव. 'फुसमाणकालसमयंसि'त्ति स्पृश्यमानक्षणे, अथवा स्पृशतः सूर्यस्य स्पर्शनायाः कालसमयः स्पृशत्कालसमयः—तत्र, आतपेनेति गम्यते. यावत् क्षेत्रं स्पृशति सूर्य इति प्रकृतम्, तावत् क्षेत्रं स्पृश्यमानं स्पृष्टम्–इति वक्तव्यं स्यादिति प्रश्नः. 'हंता' इत्याद्युत्तरम्. स्पृश्यमान-स्पृष्टयोश्च एकत्वं प्रथमसूत्रादवगन्तव्यम्.

३. 'स्पृष्ट–स्पर्शाएल–क्षेत्रने प्रभासे छे' एम कह्युं छे. माटे हवे स्पर्शनाने ज दर्शावता कहे छे केः–['से णूणं' इत्यादि.] ['सव्वं ति'त्ति] एटले सर्वतः–बधी दिशाओमां, ['सव्वावं ति'त्ति] सर्व आत्मवडे, अथवा 'सव्वावंति'–जे क्षेत्र खूब तापथी व्याप्त छे ते 'सर्वापत्ति' अथवा 'सव्वं' एटले 'सर्व' अने 'ति' एटले 'इति' अहीं आ 'इति' शब्द विषयभूत बधा क्षेत्रनो सूचक छे. पण जेटलुं क्षेत्र छे ते बधायनो सूचक नथी. 'सव्वावं' एटले 'सर्वाप' अर्थात् जे क्षेत्र खूब तडकाथी व्याप्त होय ते 'सर्वाप' अने 'ति' एटले 'इति' आ 'इति' शब्द 'क्षेत्रनो दरेक भागे भाग तापथी व्याप्त छे एम नथी, पण सामान्य रीते क्षेत्र तापथी व्याप्त छे' ए अर्थनो सूचक छे. अथवा 'सव्वावं' एटले 'सव्याप' जे तडकाथी व्याप्त होय ते क्षेत्र [illegible]. अने 'इति' शब्दनो अर्थ तो पूर्व प्रमाणे ज जाणवो. ['फुसमाणकालसमयंसि' त्ति] जे वखते स्पर्श कराय छे ते वखते, अथवा स्पर्श करता–सूर्यनी स्पर्शना–नो काळ–समय ते 'स्पृशत्कालसमय' तेमां. आ ठेकाणे 'आतपवडे' ए अर्थ अध्याहार्य छे. 'जेटलुं क्षेत्र सूर्य स्पर्शे छे' ए चालु वात छे. ते स्पृश्यमान क्षेत्र 'स्पृष्ट' एम कहेवाय ? ए प्रश्न छे. ['हंता' इत्यादि.] ए उत्तरसूत्र छे. स्पृश्यमान अने स्पृष्टनुं एकपणुं प्रथम सूत्रथी जाणवुं.

लोकांतादिस्पर्शना.

२०२. प्र०—*लोयंते भंते ! अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ ?*

२०२. उ०—*हंता, गोयमा ! लोयंते अलोयंतं फुसइ, अलोयंते वि लोयंतं फुसइ.*

२०२. प्र०—हे भगवन् ! लोकनो अंत (छेडो) अलोकना अंतने स्पर्शे, अलोकनो पण अंत लोकना छेडाने स्पर्शे ?

२०२. उ०—हा, गौतम ! लोकनो छेडो अलोकना छेडाने स्पर्शे अने अलोकनो पण अंत लोकना छेडाने स्पर्शे.

---

१. जुओ पृ० ५२, प्रश्न ५ नामी टीका–पेरा–११:–अनु० २. आ शब्दोनो जे अर्थ कर्यो छे ते प्राकृतना धोरणे छेः–श्रीअभय० ३. जुओ पृष्ठ–४१, [illegible] अने तेनी टीका:—अनु०

१. [illegible]:—लोकान्तो भगवन् ! अलोकान्तं स्पृशति ? अलोकान्तोऽपि लोकान्तं स्पृशति ? हन्त, गौतम ! लोकान्तोऽलोकान्तं स्पृशति, अलोका-[illegible] स्पृशति:–अनु०

२०३. प्र०—तं भंते ! किं पुंट्ठं फुसइ, अपुट्ठं फुसइ ?

२०३. उ०—जाव–नियमा छद्दिसिं फुसइ.

२०४. प्र०—दीवंते भंते ! सागरंतं फुसइ, सागरंते वि दीवंतं फुसइ ?

२०४. उ०—हंता, जाव–नियमा छद्दिसिं फुसइ.

२०५. प्र०—एवं एएणं अभिलावेणं–उदंते पोयंतं फुसइ, छिद्दन्ते दूसंतं, छायंते आयवंतं० ?

२०५. उ०—जाव–नियमा छद्दिसिं फुसइ.

२०३. प्र०—हे भगवन् ! जे स्पर्शाय छे ते शुं स्पृष्ट छे के अस्पृष्ट छे ?

२०३. उ०—हे गौतम ! यावत्–नियमपूर्वक छ ५ दिशामां स्पर्शाय छे.

२०४. प्र०—हे भगवन् ! बेटनो छेडो समुद्रना छेडाने स्पर्शे समुद्रनो पण छेडो बेटना छेडाने स्पर्शे ?

२०४. उ०—हा, यावत्–नियमे छ ए दिशामां स्पर्शे.

२०५. प्र०—ए प्रमाणे ए अभिलापवडे–पाणीनो छेडो वहाणना छेडाने स्पर्शे, छिद्र–काणा–नो छेडो वस्त्रना छेडाने स्पर्शे, अने छायानो छेडो तडकाना छेडाने स्पर्शे ?

२०५. उ०—हे गौतम ! यावत् -नियमे छ ए दिशामां स्पर्शे.

४. स्पर्शनामेवाधिकृत्याऽऽहः–'लोयंते भंते ! अलोयंतं' इत्यादि. लोकान्तः सर्वतो लोकाऽवसानम्. अलोकान्तस्तु तदनन्तर एवेति. इहापि 'पुट्ठं फुसइ' इत्यादिसूत्रप्रपञ्चो दृश्यः. अत एवोक्तम्–'जाव–नियमा छद्दिसिं'ति एतद्भावना चैवम्–स्पृष्टमलोकान्तम्, लोकान्तः स्पृशति, स्पृष्टत्वं च व्यवहारतो दूरस्थस्यापि दृष्टम्, यथा–चक्षुःस्पर्श इत्युच्यते- अवगाढमासन्नमित्यर्थः, अवगाढत्वं चाऽऽसत्तिमात्रमपि स्यात्, अत उच्यते-अनन्तराऽवगाढमव्यवधानेन संबद्धम्, नतु परंपराऽवगाढम्, शृङ्खलाकटिका इव परंपरासंबद्धम्, तं चाणुं स्पृशति, अलोकान्तस्य क्वचिद् विवक्षया प्रदेशमात्रत्वेन सूक्ष्मत्वात्. बादरमपि स्पृशति, क्वचिद् विवक्षयैव बहुप्रदेशत्वेन बादरत्वात्. तम् ऊर्ध्वम्, अधः, तिर्यक् च स्पृशति, ऊर्ध्वादिदिक्षु लोकान्तस्याऽलोकान्तस्य च भावात्. तं चादौ मध्येऽन्ते च स्पृशति. कथम्? अधस्तिर्यग्-ऊर्ध्व-लोकप्रान्तानामादि–मध्या -ऽन्तकल्पनात्. तं च स्वविषये स्पृशति स्पृष्टाऽवगाढादौ, नाऽविषयेऽस्पृष्टादाविति. तं चानुपूर्व्या स्पृशति, आनुपूर्वी चेह प्रथमे स्थाने लोकान्तः, ततोऽनन्तरं द्वितीये स्थानेऽलोकान्त इत्येवमवस्थानतया स्पृशति, अन्यथा तु स्पर्शनैव न स्यात्. तं च षट्सु दिक्षु स्पृशति, लोकान्तस्य पार्श्वतः सर्वतोऽलोकान्तस्य भावात्, इह च विदिक्षु स्पर्शना नास्ति, दिशां लोकविष्कम्भप्रमाणत्वात्, विदिशां च तत्परिहारेण भावादिति. एवम्, द्वीपान्त–सागरान्तादिसूत्रेषु स्पृष्टादिपदभावना कार्या. नवरम्–द्वीपान्त–सागरान्तादिसूत्रे 'छद्दिसिं' इत्यस्यैवं भावना–योजनसहस्रावगाढा द्वीपाश्च, समुद्राश्च भवन्ति, ततश्चोपरितनान्, अधस्तनांश्च द्वीप–समुद्रप्रदेशानाऽऽश्रित्य ऊर्ध्वाऽधोदिग्द्वयस्य स्पर्शना वाच्या. पूर्वादिदिशां तु प्रतीता एव, समन्ततस्तेषामवस्थानात्. 'उदंते पोयंतं'ति नद्याद्युदकान्तः, पोतान्तो नौपर्यवसानम्, इहाप्युच्छ्रयाऽपेक्षया ऊर्ध्वदिक्स्पर्शना वाच्या. जलनिमज्जने वा इति. 'छिद्दंते दूसंतं'ति छिद्रान्तः, दूष्यान्तं वस्त्रान्तं स्पृशति, इहापि षड्दिक्स्पर्शनाभावना–वस्त्रोच्छ्रयाऽपेक्षया, अथवा कम्बलरूपवस्त्रपोट्टलिकायां तन्मध्योत्पन्नजीवभक्षणेन तन्मध्यरन्ध्राऽपेक्षया लोकान्तसूत्रवत् षड्दिक्स्पर्शना भावयितव्या. 'छायंते आयवंतं'ति इह छायाभेदेन षड्दिग्भावना एवम्–आतपे व्योमवर्तिपक्षिप्रभृति-द्रव्यस्य या छाया तदन्तः, आतपान्तं चतसृषु दिक्षु स्पृशति, तथा तस्या एव छायाया भूमेः सकाशात् तद् द्रव्यं यावदुच्छ्रयोऽस्ति, ततश्च छायान्तः, आतपान्तम् ऊर्ध्वम्, अधश्च स्पृशति. अथवा प्रासाद–वरण्डिकादेर्या छाया तस्या भित्तेरवतरन्त्याः, आरोहन्त्या वाऽन्तः आतपान्तम् ऊर्ध्वम्, अधश्च स्पृशति इति भावनीयम्, अथवा तयोरेव छाया–ऽऽतपयोः पुद्गलानामसंख्येयप्रदेशाऽवगाहित्वाद् उच्छ्रयसद्भावः, तत्सद्भावाच्च ऊर्ध्वाऽधोविभागः, ततश्च छायान्त आतपान्तम् ऊर्ध्वम्, अधश्च स्पृशति इति.

लोकांत.

४. हवे स्पर्शनाने ज उद्देशीने कहे छे केः—['लोयंते भंते ! अलोयंतं' इत्यादि.] लोकांत एटले चारे बाजुथी लोकनो अंत–छेडो, अलोकांत एटले लोकना छेडानी पछीनो ज भाग, आ स्थळे पण पूर्वनी पेठे ['पुट्ठं फुसइ'] इत्यादि सूत्रो कहेवां. माटे ज कह्युं छे केः–['जाव–नियमा छद्दिसिं' ति] एनी भावना आ प्रमाणे जाणवीः–स्पर्शेल अलोकांतने लोकांत स्पर्शे छे. कोइ पदार्थ दूर रहेलो होय तो पण व्यवहारथी ते पदार्थ स्पृष्ट कहेवाय छे. जेम के, आंख, जोवा सारु कोइ पण पदार्थनो स्पर्श करती नथी तो पण 'चक्षुःस्पर्श' शब्दनो प्रयोग थाय छे, तेम अहीं न समजवुं माटे कहे छे के, अवगाढ एटले आसन्न. अवगाढपणुं तो मात्र निकटतारूप ज होय, माटे कहे छे के, अनंतरावगाढ–अव्यवधान विना संबद्ध, पण सांकळनी कडीओनी पेठे परंपराए संबद्ध–परंपराए अवगाढ–नहीं. 'ते अणुने स्पर्शे छे' कारण के विवक्षाथी कोइ स्थळे अलोकांत अल्प प्रदेश मात्र होवाथी सूक्ष्म छे. 'बादरने पण स्पर्शे छे' कारण के विवक्षाथी कोइ स्थळे अलोकांत पण बहुप्रदेशरूप होवाथी बादर छे. 'तेने ऊंचे, नीचे

अणु.
बादर. ऊंचे०.

---

१. मूलच्छायाः—तद् भगवन् ! किं स्पृष्टं स्पृशति ? अस्पृष्टं स्पृशति ? यावत्–नियमात् षड्दिशं स्पृशति. द्वीपान्तो भगवन् ! सागरान्तं स्पृशति ? सागरान्तोऽपि द्वीपान्तं स्पृशति ? हन्त, यावत्–नियमात् षड्दिशं स्पृशति. एवम् एतेनाऽभिलापेन–उदकान्तः पोतान्तं स्पृशति, छिद्रान्तो दूष्यान्तम्, छायान्त आतपान्तम्० ? यावत्–नियमात् षड्दिशं स्पृशतिः–अनु०

[illegible] स्पर्शे छे' कारण के ऊर्ध्वादि दिशाओमां लोकांत अने अलोकांत होय छे. 'तेने आदिमां, वचमां अने अंते स्पर्शे छे' ते केवी [illegible] जो कहे छे के, बीचेना, तीरछा अने उंचा लोकप्रांतोनी आदिपणे, वचलापणे अने अंतपणे कल्पना करवाथी पूर्व प्रमाणे थाय छे. 'तेने [illegible] विषयमां स्पर्शे छे' पोताना विषयमां एटले स्पृष्ट अने अवगाढादिमां, पण पोताना अविषयमां—अस्पृष्टादिमां—नहीं. 'तेने क्रमपूर्वक स्पर्शे [illegible] एटले अहीं प्रथम स्थानमां लोकांत अने त्यार पछी बीजा स्थानमां अलोकांत, ए प्रमाणे अवस्थानपणे स्पर्शे छे. जो एम न करवामां [illegible] स्पर्शना ज थाय नहीं. 'तेने छए दिशामां स्पर्शे छे' कारण के लोकांतने पडखे चारे बाजु अलोकांत छे. आ स्थळे खूणाओनी [illegible]. कारण के, दिशाओनुं प्रमाण लोकना विष्कंभ जेटलुं छे. अने विदिशाओ लोकना परिहारपूर्वक रहे छे. ए ज प्रमाणे द्वीपांत अने [illegible]दि सूत्रोमां पण 'स्पृष्ट' वगेरे पदोनी भावना करवी. विशेष ए के, द्वीपांत अने सागरांतादि सूत्रमां ['छद्दिसिं'] ए सूत्रनी भावना—विचार—[illegible] प्रमाणे करवीः—द्वीपो अने समुद्रो हजार योजन अवगाढ होय छे तेथी द्वीप तथा समुद्रना उपरना अने हेठळना प्रदेशोने आश्री ऊर्ध्वदि[illegible] अने अधोदिशानी स्पर्शना कहेवी. पूर्वादि दिशाओनी स्पर्शना तो प्रतीत ज छे. कारण के तेओनुं (प्रदेशोनुं) अवस्थान चारे बाजु छे. ['उदंते [illegible] ति] नदी वगेरेना पाणीनो छेडो नावना अंतने स्पर्शे छे. अहीं पण उंचाइनी अपेक्षाए ऊर्ध्व दिशानी स्पर्शना जाणवी. अथवा जलमां निमज्जन [illegible] उंचाइनी अपेक्षाए ते स्पर्शना जाणवी. ['छिद्दंते दूसंतं' ति] छिद्रनो अंत वस्त्रना अंतने स्पर्शे छे. अहीं पण वस्त्रनी उंचाइनी अपेक्षाए छ ए दिशाना स्पर्शनी भावना करवी. अथवा कांबळरूप वस्त्रनी पोटलिमां तेनी वच्चे उत्पन्न थएल कोइ जीवे खावाथी पडेल (तेना) [illegible] काणानी अपेक्षाए लोकांत सूत्रनी पेठे छ ए दिशाना स्पर्शनी भावना करवी. ['छायंते आयवंतं' ति] अहीं छायाना भेदथी छ दिशानी भावना [illegible] प्रमाणे करवीः—आतपमां आकाशमां उडता पक्षि वगेरे द्रव्यनी जे छाया, अने तेनो जे अंत ते छायानो अंत—ते, आतपना अंतने चारे दिशामां स्पर्शे छे. तथा ते ज छायानी उंचाइ जमीनथी मांडी ते द्रव्य सुधीनी छे. तेथी छायानो अंत आतपना अंतने उंचे अने नीचे स्पर्शे छे. अथवा हवेलीनी अने वरंडी वगेरेनी भींत उपरथी उतरती के चडती जे छाया, तेनो अंत आतपना अंतने उंचे अने नीचे स्पर्शे छे. एम भावना करवी. अथवा पुद्गलोनुं असंख्येय प्रदेशोमां अवगाहिपणुं होय छे तेथी ते ज छाया अने आतपने उंचाइ होवाथी तेनी उंचाइ अने नीचाइनो विभाग करवो. अने तेथी छायानो अंत आतपना अंतने उंचे अने नीचे स्पर्शे छे.

आदि०. क्रम. द्वीपनो छेडो. पाणीनो छेडो. काणानो छेडो. छायानो छेडो. प्रकाश अने छाया- ना अणुओ.

क्रियाविचार.

२०६. प्र०—*अत्थि णं भंते! जीवाणं पाणाइवाए णं किरिया कज्जइ?*

२०६. प्र०—हे भगवन्! जीवो द्वारा प्राणातिपात क्रिया कराय छे?

२०६. उ०—*हंता, अत्थि.*

२०६. उ०—हा, कराय छे.

२०७. प्र०—*सा भंते! किं पुट्ठा कज्जइ? अपुट्ठा कज्जइ?*

२०७. प्र०—हे भगवन्! जे क्रिया कराय छे ते शुं स्पृष्ट छे? के अस्पृष्ट छे?

२०७. उ०—*जाव—निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं.*

२०७. उ०—हे गौतम! यावत्—निर्व्याघातवडे छ ए दिशाने, व्याघातने आश्रीने कदाच त्रण दिशाने, कदाच चार दिशाने अने कदाच पांच दिशाने स्पर्शे छे.

२०८. प्र०—*सा भंते! किं कडा कज्जइ? अकडा कज्जइ?*

२०८. प्र०—हे भगवन्! जे क्रिया कराय छे ते शुं कृत छे? के अकृत छे?

२०८. उ०—*गोयमा! कडा कज्जइ, नो अकडा कज्जइ.*

२०८. उ०—हे गौतम! ते क्रिया कृत छे. पण अकृत नथी.

२०९. प्र०—*सा भंते! किं अत्तकडा कज्जइ? परकडा कज्जइ? तदुभयकडा कज्जइ?*

२०९. प्र०—हे भगवन्! जे क्रिया कराय छे ते शुं आत्मकृत छे? परकृत छे? के उभयकृत छे?

२०९. उ०—*गोयमा! अत्तकडा कज्जइ, णो परकडा कज्जइ, णो तदुभयकडा कज्जइ.*

२०९. उ०—हे गौतम! ते क्रिया आत्मकृत छे. पण परकृत के तदुभयकृत नथी.

२१०. प्र०—*सा भंते! किं आणुपुव्विं कडा कज्जइ? अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ?*

२१०. प्र०—हे भगवन्! जे क्रिया कराय छे ते अनुक्रमपूर्वक कृत छे? के अनुक्रम सिवाय कृत छे?

२१०. उ०—*गोयमा! आणुपुव्विं कडा कज्जइ, णो अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ. जा य कडा कज्जइ, जा य कज्जिस्सइ सव्वा सा आणुपुव्विकडा, णो अणाणुपुव्विकड त्ति वत्तव्वं सिया.*

२१०. उ०—हे गौतम! ते अनुक्रमपूर्वक कृत छे. पण अनुक्रम सिवाय कृत नथी. वळी जे कृत क्रिया कराय छे अने कराशे ते बधी अनुक्रमपूर्वक कृत छे. पण अनुक्रम सिवाय कृत नथी एम कहेवाय.

---

१. [illegible]छायाः—अस्ति भगवन्! जीवैः प्राणातिपातः क्रिया क्रियते? हन्त, अस्ति. सा भगवन्! किं स्पृष्टा क्रियते, अस्पृष्टा क्रियते? यावत्—निर्व्या[illegible] [illegible]दिशम्, व्याघातं प्रतीत्य स्यात् त्रिदिशम्, स्यात् चतुर्दिशम्, स्यात् पञ्चदिशम्. सा भगवन्! किं कृता क्रियते, अकृता क्रियते? गौतम! कृता [illegible] नो अकृता क्रियते. सा भगवन्! किम् आत्मकृता क्रियते, परकृता क्रियते, तदुभयकृता क्रियते? गौतम! आत्मकृता क्रियते, नो परकृता क्रियते, [illegible] क्रियते. सा भगवन्! किम् आनुपूर्वी कृता क्रियते, अनानुपूर्वी कृता क्रियते? गौतम! आनुपूर्वी कृता क्रियते, नो अनानुपूर्वी कृता क्रियते. [illegible] या च करिष्यते सर्वा सा आनुपूर्वीकृता, नो अनानुपूर्वीकृता इति वक्तव्यं स्यात्.—अनु.

२११. प्र०—अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं पाणाइवायकिरिया कज्जइ ?

२११. उ०—हंता, अत्थि.

२१२. प्र०—सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?

२१२. उ०—जाव–नियमा छद्दिसिं कज्जइ.

२१३. प्र०—सा भंते ! किं कडा कज्जइ ? अकडा कज्जइ ?

२१३. उ०—तं चेव जाव–णो अणाणुपुव्विं कड त्ति वत्तव्वं सिया.

२१४.—जहा णेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्वा जाव–वेमाणिआ. एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्वा.

२१५.—जहा पाणाइवाए तहा मुसावाए, तहा अदिण्णादाणे, मेहुणे, परिग्गहे, कोहे जाव–मिच्छादंसणसल्ले. एवं एए अट्ठारस चउवीसं दंडगा भाणिअव्वा.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं जाव–विहरति.

२११. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको द्वारा प्राणातिपात [illegible] कराय छे ?

२११. उ०—हे गौतम ! हा, कराय छे.

२१२. प्र०—हे भगवन् ! जे क्रिया कराय छे ते [illegible] छे ? के अस्पृष्ट छे ?

२१२. उ०—हे गौतम ! ते यावत्–नियमे छ ए दिशामां कराय छे.

२१३. प्र०—हे भगवन् ! जे क्रिया कराय छे ते शुं कृत छे के अकृत छे ?

२१३. उ०—हे गौतम ! ते पूर्व प्रमाणे जाणवुं, यावत्–ते अनुक्रम सिवाय कृत छे एम न कहेवाय.

२१४.—नैरयिकोनी पेठे एकेंद्रिय सिवायना यावत्–वैमानिक सुधीना बधा जीवो कहेवा. अने जीवोनी पेठे एकेंद्रियो कहेवा.

२१५.—प्राणातिपातनी क्रिया पेठे मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध अने यावत्–मिथ्यादर्शनशल्य सुधी जाणवुं. अने ए प्रमाणे ए अढार पापस्थान विषे चोवीश दंडक कहेवा.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे. हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे. एम कही भगवान् गौतम श्रमण भगवंत महावीरने नमीने यावत्–विहरे छे.

५. स्पर्शनाऽधिकारादेव च प्राणातिपातादिपापस्थानप्रभवकर्मस्पर्शनाम् अधिकृत्याऽऽह:–'अत्थि' इत्यादि. अस्त्ययं पक्षः '*किरिया कज्जइ*' त्ति क्रियते इति क्रिया–कर्म, सा क्रियते भवति. '*पुट्ठे*' इत्यादेर्व्याख्या पूर्ववत्. '*कडा कज्जइ*'त्ति कृता भवति, अकृतस्य कर्मणोऽभावात्. '*अत्तकडा कज्जइ*'त्ति आत्मकृतमेव कर्म भवति, नाऽन्यथा. '*अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ*'त्ति पूर्व–पश्चाद्विभागो नाऽस्ति यत्र तद् अनानुपूर्वी-शब्देनोच्यत इति. '*जहा णेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्व*' त्ति नारकवदसुरादयोऽपि वाच्याः एकेन्द्रियवर्जाः, ते त्वन्यथा, तेषां हि दिक्पदे '*निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं*' इत्यादेर्विशेषाऽभिलापस्य जीवपदोक्तस्य भावात्. अत एवाह:–'*एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणियव्व*'त्ति '*जाव–मिच्छादंसणसल्ले*' इह यावत्–करणाद् '*माणे माया–लोभे*' '*पेज्जे*' अनभिव्यक्तमायालोभस्वभावमभि-ष्वङ्गमात्रं प्रेम. '*दोसे*' अनभिव्यक्तक्रोध–मानस्वरूपमप्रीतिमात्रं द्वेषः. कलहो राटिः. '*अब्भक्खाणे*' असद्दोषाऽऽविष्करणम्. पैशून्यं प्रच्छन्न-मसद्दोषाऽऽविष्करणम्. '*परपरिवाए*' विप्रकीर्णं परेषां गुणदोषवचनम्. '*अरइरइ*' अरतिर्मोहनीयोदयात् चित्तोद्वेगः तत्फला, रतिर्विषयेषु मोहनीयोदयात् चित्ताऽभिरतिः अरतिरतिः. '*मायामोसे*' तृतीयकषायद्वितीयाश्रवयोः संयोगः. अनेन च सर्वसंयोगा उपलक्षिताः. अथवा वेषान्तर–भाषान्तरकरणेन यत् परवञ्चनं तद् मायामृषा इति. मिथ्यादर्शनं शल्यमिव विविधव्यथानिबन्धनत्वाद् मिथ्यादर्शनशल्यम्–इति.

[illegible] घातक्रिया.

आत्मकृत.

एकेंद्रिय.

५. स्पर्शनानो ज अधिकार होवाथी प्राणातिपात (हिंसा) वगेरे पापस्थानकथी उत्पन्न थती कर्म संबंधी स्पर्शनाने उद्देशीने कहे छे के:–['अत्थि' इत्यादि.] आ पक्ष छे–आ वात छे ? ['किरिया कज्जइ'त्ति] कराय ते क्रिया अने क्रिया एटले कर्म, ते थाय छे ? ['पुट्ठे'] इत्यादि सूत्रनी व्याख्या पूर्वनी पेठे करवी. ['कडा कज्जइ'त्ति] कृत होय ते थाय छे. कारण के अकृत कर्मनो अभाव छे. ['अत्तकडा कज्जइ'त्ति] कर्म तो आत्मकृत ज होय छे. पण अन्यथा–परकृत–नथी होतुं. ['अणाणुपुव्विं कडा कज्जइ' त्ति] ज्यां आगळ पाछळनो विभाग न होय ते 'अनानुपूर्वी' शब्दथी व्यवहराय छे. ['जहा णेरइया तहा एगिंदियवज्जा भाणियव्व'त्ति] एकेंद्रिय जीवोने वर्जीने नारकिओनी पेठे असुरादिक बधा जीवो पण कहेवा. अने एकेंद्रिय जीवो जूदी रीते कहेवा. कारण के तेओने विषे दिक्पदमां 'अडचण न होय तो छ ए दिशामां अने अडचण होय तो कदाच त्रण दिशामां' इत्यादि विशेष

---

१. मूलच्छाया:— अस्ति भगवन् ! नैरयिकैः प्राणातिपातक्रिया क्रियते ? हन्त, अस्ति. सा भगवन् ! किं स्पृष्टा क्रियते, अस्पृष्टा क्रियते ? यावत्–नियमात्–षड्दिशं क्रियते. सा भगवन् ! किं कृता क्रियते, अकृता क्रियते ? तदेव यावत्–नो अनानुपूर्वी कृता इति वक्तव्यं स्यात्, यथा नैरयिकास्तथा एकेन्द्रियवर्जा भणितव्या यावत्–वैमानिकाः. एकेन्द्रिया यथा जीवास्तथा भणितव्याः. यथा प्राणातिपातस्तथा मृषावादः, तथाऽदत्तादानम्, मैथुनम्, परिग्रहः, क्रोधो यावत्–मिथ्यादर्शनशल्यम्, एवमेते अष्टादश चतुर्विंशतिर्दण्डका भणितव्याः. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं यावत्–विहरति:–अनु०

[illegible] विशेष औपपातिकमां कहेलो छे. माटे ज कहे छे के, ['एगिंदिया जहा जीवा तहा भाणिअव्व'त्ति] ['जाव-मिच्छादंसणसल्ले'] अहीं 'यावत्' [illegible] शब्दथी मान, माया, लोभ, वगेरे जाणवा. प्रेम-जे आसक्तिमां माया अने लोभनो स्वभाव अप्रकट छे ते आसक्ति प्रेम. द्वेष-अप्रकट क्रोध अने [illegible] भाव अप्रीति ते द्वेष. कलह एटले राड-कजीओ. अभ्याख्यान एटले अछता दोषोनुं जाहेर करवुं. पैशून्य एटले अछता दोषोनुं गुप्तपणे [illegible] करवुं. परपरिवाद-विप्रकीर्णपणे बीजाओना गुण दोष कहेवा. ['अरइरइ'त्ति] मोहनीयना उदयथी चित्तना उद्वेगरूप फलवाळी ते अरति, मोह- [illegible] उदयथी विषयोमां चित्तनी अभिरति ते रति अने ते बन्ने अरतिरति. मायामृषावाद एटले त्रीजा कषायनो अने बीजा आश्रवनो संयोग. आ, [illegible] दोषोनुं उपलक्षण छे. अथवा मायामृषावाद एटले वेष बदलावीने के भाषा बदलावीने जे बीजाने ठगवुं ते. अनेक प्रकारनी पीडानुं [illegible] होवाथी मिथ्यादर्शन, शल्यनी पेठे छे माटे ते मिथ्यादर्शनशल्य छे.

प्रेमादि. मिथ्यादर्शन [illegible]

श्रमण भगवंत महावीर अने आर्य श्रीरोह.

संबंधो—ते णं काले णं, ते णं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णामं अणगारे पगइभद्दए, पगइमउए, पगइविणीए, पगइउवसंते, पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभे, मिउमद्दवसंपन्ने, अलीणे, भद्दए, विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणु, अहोसिरे, झाणकोट्ठोवगए संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ. तए णं से रोहे अणगारे जायसड्ढे जाव-पज्जुवासमाणे एवं वदासीः—

संबंध—ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीरना शिष्य रोह नामना अनगार हता. जेओ स्वभावे भद्र, कोमळ, विनयी, शांत, ओछा क्रोध, मान, माया अने लोभवाळा, अत्यंत निरभिमानी, गुरुने आशरे रहेनारा, कोइने संताप न करे तेवा अने गुरुभक्त हता. ते रोह नामना अनगार पोते उभडक रहेला, नीचे नमेल मुखवाळा, ध्यानरूप कोठामां पेठेला तथा संयम अने तपवडे आत्माने भावता श्रमण भगवंत महावीरनी आजुबाजु विहरे छे. पछी ते रोह नामना अनगार जातश्रद्ध थइ यावत्-पर्युपासना करता आ प्रमाणे बोल्याः—

२१६. प्र०—पुव्विं भंते! लोए, पच्छा अलोए? पुव्विं अलोए, पच्छा लोए?

२१६. उ०—रोहा! लोए य, अलोए य, पुव्विं पेते, पच्छा पेते-दो वि ए सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा!.

२१६. प्र०—हे भगवन्! पहेलो लोक छे अने पछी अलोक छे? के पहेलो अलोक छे अने पछी लोक छे?

२१६. उ०—हे रोह! लोक अने अलोक, ए पहेलो पण छे अने पछी पण छे. ए बन्ने पण शाश्वत भाव छे, हे रोह! ए बेमां 'अमुक पहेलो अने अमुक पछी' एवो क्रम नथी.

२१७. प्र०—पुव्विं भंते! जीवा, पच्छा अजीवा? पुव्विं अजीवा पच्छा जीवा?

२१७. उ०—जहेव लोए, अलोए य; तहेव जीवा य, अजीवा य. एवं भवसिद्धिआ य अभवसिद्धिआ य, सिद्धी, असिद्धी. सिद्धा, असिद्धा.

२१७. प्र०—हे भगवन्! जीवो पहेला छे अने अजीवो पछी छे? के पहेला अजीवो छे अने पछी जीवो छे?

२१७. उ०—हे रोह! जेम लोक अने अलोक विषे कह्युं तेम जीवो अने अजीवो संबंधे पण जाणवुं. ए प्रमाणे भवसिद्धिको, अने अभवसिद्धिको, सिद्धि अने असिद्धि-संसार तथा सिद्ध अने संसारिओ पण जाणवा.

२१८. प्र०—पुव्विं भंते! अंडए, पच्छा कुक्कुडी? पुव्विं कुक्कुडी, पच्छा अंडए? 'रोहा! से णं अंडए कओ?' 'भयवं! कुक्कुडीओ.' 'सा णं कुक्कुडी कओ?' 'भंते! अंडयाओ.'

२१८. उ०—एवामेव रोहा! से य अंडए, सा य कुक्कुडी पुव्विं पेते, पच्छा पेते-दुवे सासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा!.

२१८. प्र०—हे भगवन्! पहेलां इंडुं छे अने पछी कुकडी छे? के पहेलां कुकडी छे अने पछी इंडुं छे? 'हे रोह! ते इंडुं क्यांथी थयुं?' 'हे भगवन्! ते इंडुं कुकडीथी थयुं.' 'हे रोह! ते कुकडी क्यांथी थइ?' 'हे भगवन्! ते कुकडी इंडाथी थइ.'

२१८. उ०—ए ज प्रमाणे हे रोह! ते इंडुं अने ते कुकडी ए पहेलां पण छे अने पछी पण छे-ए शाश्वत भाव छे. पण हे रोह! ते बेमां कोइ जातनो क्रम नथी.

---

१. मूलच्छायाः—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्याऽन्तेवासी रोहो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः, प्रकृतिमृदुकः, प्रकृतिविनीतः, प्रकृत्युपशान्तः, प्रकृतिप्रतनुक्रोध-मान-माया-लोभः, मृदुमार्दवसम्पन्नः, अलीनः, भद्रकः, विनीतः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते ऊर्ध्वजानुः, अधःशिराः, ध्यानकोष्ठोपगतः संयमेन, तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति. तदा स रोहोऽनगारो जातश्रद्धो यावत्-पर्युपासीन [illegible] अवादीत्—पूर्वं भगवन्! लोकः, पश्चाद् अलोकः पूर्वम्-अलोकः, पश्चाद् लोकः? रोह! लोकश्च अलोकश्च, पूर्वम्-अपि एतौ, पश्चाद् अपि एतौ-द्वौ अपि [illegible] शाश्वतौ भावौ अनानुपूर्वी एषा रोह!. पूर्वं भगवन्! जीवाः, पश्चाद् अजीवाः पूर्वम्-अजीवाः, पश्चाद् जीवाः? यथैव लोकः, अलोकश्च; तथैव जीवाश्च, [illegible] एवं भवसिद्धिकाश्च, अभवसिद्धिकाश्च. सिद्धिः, असिद्धिः. सिद्धाः, असिद्धाः. पूर्वं भगवन्! अण्डकम्, पश्चात् कुकुटी? पूर्वं कुकुटी, पश्चाद् अण्डकम्? [illegible] एवमेव रोह! तद् अण्डकम्, सा च कुकुटी पूर्वम्-अपि एते [illegible]

२१९. प्र०—पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा अलोयंते ? पुव्विं अलोयंते पच्छा लोयंते ?

२१९. उ०—रोहा ! लोयंते य, अलोयंते य; जाव—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !.

२२०. प्र०—पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा सत्तमे उवासंतरे? पुच्छा.

२२०. उ०—रोहा ! लोयंते य, सत्तमे उवासंतरे; पुव्विं पि दो वि एते, जाव—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !. एवं लोयंते य, सत्तमे य तणुवाए, एवं घणवाए, घणोदही, सत्तमा पुढवी. एवं लोयंते एक्केकेणं संजोएयव्वे इमेहिं ठाणेहिं, तं जहा:—

उवास—वाय—घणउदहि—पुढवी—दीवा य सागरा वासा,
नेरइआई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ.
दिट्ठी दंसण णाणा सण्णा सरीरा य जोग—उवओगे,
दव्वपएसा पज्जव अद्धा किं पुव्विं लोयन्ते.

२२१. प्र०—पुव्विं भंते ! लोयंते, पच्छा सव्वद्धा ?

२२१. उ०—जहा लोयंतेणं संजोइआ सव्वे ठाणा एते. एव अलोयंतेण वि संजोएयव्वा सव्वे.

२२२. प्र०—पुव्विं भंते ! सत्तमे उवासंतरे, पच्छा सत्तमे तणुवाए ?

२२२. उ०—एवं सत्तमं उवासंतरं सव्वेहिं समं संजोएअव्वं, जाव—सव्वद्धाए.

२२३. प्र०—पुव्विं भंते ! सत्तमे तणुवाए, पच्छा सत्तमे घणवाए ?

२२३. उ०—एअं पि तहेव नेयव्वं, जाव—सव्वद्धा. एवं उवरिल्लं एक्केकं संजोयंतेणं जो जो हिट्ठिल्लो, तं तं छड्डुंतेणं नेयव्वं, जाव—अतीअ—अणागयद्धा, पच्छा सव्वद्धा, जाव—अणाणुपुव्वी एसा रोहा !.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति जाव—विहरइ.

२१९. प्र०—हे भगवन् ! पहेलां लोकांत छे अने पछी अलोकांत छे ? के पहेलां अलोकांत छे अने पछी लोकांत छे ?

२१९. उ०—हे रोह ! लोकांत अने अलोकांत, ए [illegible] यावत्—हे रोह ! कोइ जातनो क्रम नथी.

२२०. प्र०—हे भगवन् ! पहेलां लोकांत छे अने पछी सातमुं अवकाशांतर छे ? इत्यादि पूछवुं.

२२०. उ०—हे रोह ! लोकांत अने सातमुं अवकाशांतर, ए बन्ने पहेलां पण छे. ए प्रमाणे यावत्—हे रोह ! ए बेमां कोइ जातनो क्रम नथी. ए प्रमाणे लोकांत, सातमो तनुवात, ए प्रमाणे घनवात, घनोदधि अने सातमी पृथिवी. ए प्रमाणे एक एकनी साथे लोकांत आ नीचे लखेलां स्थानो साथे जोडवो:—

अवकाशांतर, वात, घनोदधि, पृथिवी, द्वीप, सागर, वर्ष—क्षेत्र, नैरयिकादिक जीव, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्यप्रदेशो अने पर्यवो तथा शुं काळ पहेलां छे अने लोकांत (पछी छे?)

२२१. प्र०—हे भगवन् ! पहेलां लोकांत छे अने पछी सर्वाद्धा छे ?

२२१. उ०—हे रोह ! जेम लोकांत साथे ए बधां स्थानो जोड्यां, तेम आ संबंधे पण जाणवुं. अने ए प्रमाणे ए बधां स्थानो अलोकांत साथे पण जोडवां.

२२२. प्र०—हे भगवन् ! पहेलां सातमुं अवकाशांतर छे अने पछी सातमो तनुवात छे ?

२२२. उ०—हे रोह ! ए प्रमाणे सातमुं अवकाशांतर बधा साथे जोडवुं अने ए प्रमाणे यावत्—सर्वाद्धा सुधी जाणवुं.

२२३. प्र०—हे भगवन् ! पहेलां सातमो तनुवात छे अने पछी सातमो घनवात छे ?

२२३. उ०—हे रोह ! ए पण ते प्रमाणे जाणवुं, यावत्—सर्वाद्धा. ए प्रमाणे उपरना एक एकने संयोजतां अने जे जे हेठलो होय तेने छोडतां पूर्व प्रमाणे जाणवुं, यावत्—अतीत अने अनागतकाळ अने पछी सर्वाद्धा, यावत्—हे रोह ! एमां कोइ जातनो क्रम नथी.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही यावत्—विहरे छे.

---

१. मूलच्छाया:—पूर्वं भगवन् ! लोकान्तः, पश्चाद् अलोकान्तः; पूर्वम् अलोकान्तः, पश्चाद् लोकान्तः ? रोह ! लोकान्तश्च, अलोकान्तश्च; यावत्—अनानुपूर्वी एषा रोह !. पूर्वं भगवन् ! लोकान्तः, पश्चात् सप्तमम्—अवकाशान्तरम् ? पृच्छा. रोह ! लोकान्तश्च, सप्तमम्—अवकाशान्तरम्. पूर्वम्—अपि द्वौ अपि एतौ यावत्—अनानुपूर्वी एषा रोह !. एवं लोकान्तश्च सप्तमश्च तनुवातः, एवं घनवातः, घनोदधिः, सप्तमी पृथिवी. एवं लोकान्त एकैकेन संयोजयितव्य एभिः स्थानैः, तद्यथा:—अवकाश—वात—घनोदधि—पृथिवी—द्वीपाश्च सागरा वर्षाणि, नैरयिकादि अस्तिकायाः समयाः कर्माणि लेश्याः. दृष्टिर्दर्शनं ज्ञानानि संज्ञा शरीराणि च योगोपयोगौ, द्रव्यप्रदेशाः पर्यवा अद्धा किं पूर्वं लोकान्तः. पूर्वं भगवन् ! लोकान्तः, पश्चात् सर्वाद्धा ? यथा लोकान्तेन संयुक्तानि सर्वाणि स्थानानि एतानि. एवम्—अलोकान्तेनाऽपि संयोजयितव्यानि सर्वाणि. पूर्वं भगवन् ! सप्तमम्—अवकाशान्तरम्, पश्चात् सप्तमस्तनुवातः ? एवं सप्तमम्—अवकाशान्तरं सर्वैः समं संयोजयितव्यम्, यावत्—सर्वाद्धा. पूर्वं भगवन् ! सप्तमस्तनुवातः, पश्चात् सप्तमो घनवातः ? एतद्—अपि तथैव ज्ञातव्यम्, यावत्—सर्वाद्धा. एवम्—उपरितनम्, एकैकेन संयोजयता यो योऽधस्तनः, तं तं छर्दयता ज्ञातव्यम्, यावत्—अतीत—अनागताद्धा, पश्चात् सर्वाद्धा, यावत्—अनानुपूर्वी एषा रोह !. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इति यावत्—विहरति:—अनु०

६. एवं तावद् गौतमद्वारेण कर्म प्ररूपितम्, तच्च प्रवाहतः शाश्वतम्, इत्यतः शाश्वतान् एव लोकादिभावान् रोहकाऽभिधानमुनि-[illegible] प्ररूपयितुं प्रस्तावयन्नाहः—'*ते णं काले णं*' इत्यादि. '*पगइभद्दए*' त्ति स्वभावत एव परोपकारकरणशीलः, '*पगइमउए*' त्ति [illegible] एव भावमार्दविकः, अत एव '*पगइविणीए*' त्ति तथा '*पगइउवसंते*'त्ति क्रोधोदयाऽभावात्, '*पगइपयणुकोह–माण–माया-लोभे*' सत्यपि कषायोदये तत्कार्याऽभावात्–प्रतनुक्रोधादिभावः. '*मिउमद्दवसंपन्ने*' त्ति मृदु यद् मार्दवम्–अत्यर्थम्–अहंकृतिजयः, तत् [illegible] प्राप्तो गुरूपदेशाद् यः स तथा. '*अलीणे*' त्ति गुरुसमाश्रितः, संलीनो वा. '*भद्दए*' त्ति अनुपतापको गुरुशिक्षागुणात्. '*विणीए*' त्ति गुरुसेवागुणात्. '*भवसिद्धिया य*' त्ति भविष्यतीति भवा, भवा सिद्धिर्निर्वृत्तिर्येषां ते भवसिद्धिका इत्यर्थः. '*सत्तमे उवासंतरे*' त्ति सप्तमपृथिव्या अधोवर्तिआकाशम्–इति. सूत्रसंग्रहगाथेः—'*उवास*' इत्यादिके. तत्र '*उवासे*' त्ति सप्तावकाशान्तराणि. '*वाय*' त्ति तनुवाताः, घनवाताः. '*घणउदहि*' त्ति घनोदधयः सप्त. '*पुढवि*'त्ति नरकपृथ्व्यः सप्तैव. '*दीवा य*' त्ति जम्बूद्वीपाद्योऽसंख्येयाः, एवम्–सागरा लवणादयः. '*वास*' त्ति वर्षाणि भरतादीनि सप्त एव. '*नेरइयाइ*' त्ति चतुर्विंशतिदण्डकः. '*अत्थिय*' त्ति अस्तिकायाः पञ्च. '*समय*' त्ति कालविभागाः. कर्माण्यष्टौ. लेश्याः षट्. दृष्टयो मिथ्यादृष्ट्यादयस्तिस्रः. दर्शनानि चत्वारि. ज्ञानानि पञ्च. संज्ञाश्चतस्रः. शरीराणि पञ्च. योगास्त्रयः. उपयोगौ द्वौ. द्रव्याणि षट्. प्रदेशा अनन्ताः. पर्यवा अनन्ताः. एवम् '*अद्ध*' त्ति अतीताद्धा, अनागताद्धा, सर्वाद्धा चेति. '*किं पुव्विं लोयंति*' त्ति अयं सूत्राभिलापनिर्देशः तथैव. पश्चिमसूत्राभिलापं दर्शयन् आहः—'*पुव्विं भंते! लोयंते, पच्छा सव्वद्धे?*' त्ति एतानि च सूत्राणि शून्य–ज्ञानादिवादनिरासेन विचित्रबाह्या–ऽऽध्यात्मिकवस्तुसत्ताऽभिधानार्थानि, ईश्वरादिकृतत्वनिरासेन च अनादित्वाऽभिधानार्थानि इति.

६. ए प्रमाणे गौतमद्वारा कर्मनुं प्ररूपण थयुं. अने ते कर्म प्रवाहथी शाश्वत छे, माटे हवे शाश्वत लोकादि भावोने रोहक नामना मुनिवर द्वारा प्ररूपाववा प्रस्तावना करतां कहे छे केः–['ते णं काले णं' इत्यादि.] ['पगइभद्दए'त्ति] स्वभावथी ज परोपकार करवाना स्वभाववाळो, ['पगइमउए'त्ति] स्वभावथी ज कोमळ, माटे ज ['पगइविणीए'] स्वभावथी विनयवाळो, तथा ['पगइउवसंते'त्ति] क्रोधनो उदय न होवाथी स्वभावे शांत, ['पगइपयणुकोह–माण–माया–लोभे'] जो के कषायनो उदय छे तो पण तेनुं परिणाम न होवाथी जेना क्रोधादिक भाव पातळा छे एवो, ['मिउमद्दवसंपन्ने'त्ति] गुरुना उपदेशथी अहंकार उपर अत्यंत जय मेळवनार–निरभिमानी, ['अलीणे'त्ति] गुरुने आशरे रहेलो अथवा गुप्तेंद्रिय, ['भद्दए'त्ति] गुरुनी शिक्षाना गुणथी कोइने संताप न उपजावे तेवो, ['विणीए'त्ति] गुरुसेवाना गुणथी विनीत–विनयवंत. ['भवसिद्धिआ य'त्ति] जेओनी सिद्धि थनारी छे ते भवसिद्धिक. ['सत्तमे उवासंतरे'त्ति] सातमी पृथिवीनी नीचेनुं आकाश. सूत्रसंग्रहगाथाः—['उवास' इत्यादि.] तेमां ['उवासे'त्ति] 'उवास' एटले सात आकाशांतरो. ['वाय'त्ति] तनुवात अने घनवात. ['घणउदहि'त्ति] सात घनोदधि. ['पुढवि'त्ति] सात नरक पृथिवी. ['दीवा य'त्ति] जंबूद्वीप वगेरे असंख्य द्वीपो. ए प्रमाणे लवण वगेरे समुद्रो. ['वास'त्ति] भरतादिक सात क्षेत्रो. ['नेरइयाइ'त्ति] नैरयिकादिक चोवीश दंडक. ['अत्थिय'त्ति] पांच अस्तिकाय. ['समय'त्ति] कालना विभागो. आठ कर्मो. छ लेश्या. मिथ्यादृष्टि वगेरे त्रण दृष्टि. चार दर्शन. पांच ज्ञान. चार संज्ञा. पांच शरीर. त्रण योगो. बे उपयोग. छ द्रव्यो. अनंता प्रदेशो. अनंत पर्यायो. ए प्रमाणे ['अद्ध'त्ति] भूतकाळ, भविष्यत्काळ अने समग्र काळ. ['किं पुव्विं लोयंति'त्ति] आ सूत्र बोलवानी पद्धति पूर्ववत् छे. वळी छेल्ला सूत्राभिलापने दर्शावतां कहे छे केः–['पुव्विं भंते! लोयंते, पच्छा सव्वद्धे?' त्ति] ए बधां सूत्रो शून्यवाद[1], ज्ञानवाद[2] वगेरेना निरासपूर्वक विचित्र बाह्य अने आध्यात्मिक पदार्थोनी सत्ताना सूचक छे. तथा 'आ जगत् ईश्वर कृत छे' इत्यादि वादना निरासपूर्वक जगतना अनादिपणाना सूचक छे.

आर्य रोह मुनिस्वभाव.

सूत्रप्रयोजन.

लोकस्थिति.

२२४ प्र०—'*भंते!*' *त्ति भगवं गोयमे समणं जाव–एवं वयासीः–कइविहा णं भंते! लोयट्ठिती पन्नत्ता?*

२२४. प्र०—'हे भगवन्!' एम कहीने भगवंत गौतमे श्रमण भगवंत महावीरने यावत्–आ प्रमाणे कह्युंः—हे भगवन्! लोकनी स्थिति केटला प्रकारनी कही छे?

२२४. उ०—*गोयमा! अट्ठविहा लोयट्ठिती पन्नत्ता. तंजहाः—आगासपइट्ठिए वाए. वायपइट्ठिए उदही, उदय(हि)–*

२२४. उ०—हे गौतम! लोकनी स्थिति आठ प्रकारनी कही छे. ते आ प्रमाणेः—वात–वायु–आकाशने आधारे रहेलो छे. उदधि वायुने आधारे रहेलो छे. पृथिवी–जमीन–उदधिने

---

१. शून्यवाद एटले बधुं शून्य छे—पदार्थ के ज्ञान कांइ ज नथी. आ शून्यवादने केटलाक बौद्धो स्वीकारे छे. ते माटे विशेष विवेचन सारु जुओ रत्ना[illegible]–पृ–२७–१२. (य० ग्रं). २. ज्ञानवाद एटले जे कांइ बधुं देखाय छे ते ज्ञानरूप छे एम मानवुं तेः–अनु०

१. [illegible]:—भगवन्! इति भगवान् गौतमः श्रमणं यावत्–एवम् अवादीत्:–कतिविधा भगवन्! लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम! अष्टविधा लोकस्थितिः [illegible]—आकाशप्रतिष्ठितो वातः, वातप्रतिष्ठित उदधिः, उदधि(क) प्रतिष्ठिता पृथिवी:–अनु०

पइट्ठिया पुढवी. पुढविपइट्ठिया तसा, थावरा पाणा. अजीवा जीवपइट्ठिया. जीवा कम्मपइट्ठिया. अजीवा जीवसंगहिया. जीवा कम्मसंगहिया.

आधारे रहेली छे. त्रस जीवो—हाली चाली शके तेवा [illegible] अने स्थावर जीवो—कायम स्थिर रहेनार प्राणिओ—पृथिवीने [illegible] रहेला छे. अजीवो—जड पदार्थो—जीवने आधारे रहेला [illegible] (सकर्मक) जीवो कर्मने आधारे रहेला छे. अजीवोने जीवोए [illegible] रेला छे अने जीवोने कर्मोए संघरेला छे.

२२५. प्र०—*से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—'अट्ठविहा जाव—जीवा कम्मसंगहिया'?*

२२५. प्र०—हे भगवन्! एम कहेवानुं शुं कारण के, '[illegible] कनी स्थिति आठ प्रकारनी कही छे अने यावत्—जीवोने कर्मोए संघरेला छे'?

२२५. उ०—*गोयमा! से जहाणामए केई पुरिसे वत्थिमाडोवेइ, वत्थिमाडोवेत्ता उप्पिं—सितं बंधइ, बंधइत्ता; मज्झेणं गंठिं बंधइ, बंधइत्ता; उवरिल्लं गंठिं मुयइ, मुइत्ता; उवरिल्लं देसं वामेइ, उवरिल्लं देसं वामेत्ता; उवरिल्लं देसं आउयायस्स पूरेइ, पूरित्ता उप्पिं—सितं बंधइ, बंधित्ता मज्झिल्लगंठिं मुयइ, मुइत्ता; से णूणं गोयमा! से आउयाये वाउयायस्स उप्पिं उवरिमतले चिट्ठइ? हंता, चिट्ठइ. से तेणट्ठेणं जाव—'जीवा कम्मसंगहिया'. से जहा वा केइ पुरिसे वत्थिं आडोवेइ, आडोवित्ता कडीए बंधइ, बंधित्ता; अत्थाह—मतार—मपोरुसियंसि उदगंसि ओगाहेज्जा. से णूणं गोयमा! से पुरिसे तस्स आउयायस्स उवरिमतले चिट्ठइ? हंता, चिट्ठइ. एवं वा अट्ठविहा लोयट्ठिई पन्नत्ता, जाव—जीवा कम्मसंगहिया.*

२२५. उ०— हे गौतम! जेम कोइ एक पुरुष होय, [illegible] ते (पुरुष) चामडानी मसकने पवनवडे फुलावे. पछी ते मसकनुं मुख बंध करे, मसकने वचले भागे गांठ बांधे, पछी ते मसकनुं मुख उघाडुं करे अने तेनी अंदरनो पवन काढी नांखे. पछी ते मसकना उपरना भागमां पाणी भरे, पछी पाछुं ते मसकनुं मुख बांधी दे, पछी तेनी वचली गांठ छोडी दे. तो हे गौतम! ते भरेलुं पाणी ते पवननी उपर उपरना भागमां रहे? 'हा, रहे' ते कारण थी यावत्—'जीवोने कर्मोए संघरेला छे' ए, पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे. अथवा हे गौतम! जेम कोइ एक पुरुष होय, अने ते चामडानी मसकने पवनवडे फुलावी पोतानी कडे बांधे, पछी ते पुरुष ताग विनाना, तरी न शकाय तेवा, अने माथोडा करतां वधारे उंडा पाणीमां प्रवेश करे. तो हे गौतम! ते पुरुष ते पाणीनी उपर उपरना भागमां रहे? 'हा, रहे' ए रीते लोकनी स्थिति आठ प्रकारनी कही छे, यावत्—जीवोने कर्मोए संघरेला छे.

२२६. प्र०—*अत्थि णं भंते! जीवा य, पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा, अन्नमन्नपुट्ठा, अन्नमन्नओगाढा, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति?*

२२६. प्र०—हे भगवन्! जीवो अने पुद्गलो परस्पर संबद्ध छे. परस्पर वधारे संबद्ध छे, परस्पर एक बीजा मळी गएला छे, परस्पर स्नेह—चिकाश—थी प्रतिबद्ध छे अने परस्पर घट्ट थइने रहे छे?

२२६. उ०—*हंता, अत्थि.*

२२६. उ०—हे गौतम! हा.

२२७. प्र०—*से केणट्ठेणं भंते! जाव—चिट्ठंति?*

२२७. प्र०—हे भगवन्! तेम कहेवानुं शुं कारण के, यावत्—'तेओ ते प्रमाणे रहे छे'?

२२७. उ०—*गोयमा! से जहाणामए हरदे सिया, पुन्ने, पुण्णप्पमाणे, वोलट्टमाणे, वोसट्टमाणे, समभरघडत्ताए चिट्ठइ.*

२२७. उ०—हे गौतम! जेम कोइ एक ह्रद—पाणीनो नद— छे अने ते पाणीथी भरेलो, पाणीथी छलोछल भरेलो, पाणीथी छलकातो, पाणीथी वधतो छे तथा ते भरेला घडानी पेठे रहे छे. हवे ते

---

१. मूलच्छाया:—पृथिवीप्रतिष्ठितास्त्रसाः, स्थावराः प्राणाः. अजीवा जीवप्रतिष्ठिताः. जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः. अजीवा जीवसंगृहीताः. जीवाः कर्मसंगृहीताः. तत् केनाऽर्थेन भगवन्! एवमुच्यते 'अष्टविधा यावत्—जीवाः कर्मसंगृहीताः?' गौतम! तद् यथानामकः कश्चित् पुरुषो बस्तिमाटोपयति, बस्तिमाटोप्य उपरि तद् बध्नाति, बद्ध्वा मध्ये ग्रन्थिं बध्नाति, बद्ध्वा उपरितनां ग्रन्थिं मुञ्चति, मुक्त्वा उपरितनं देशं वमयति, उपरितनं देशं वमयित्वा उपरितनं देशम् अप्कायेन पूरयति, पूरयित्वा उपरि तद् बध्नाति, बद्ध्वा मध्यमग्रन्थिं मुञ्चति, मुक्त्वा तद् नूनं गौतम! स अप्कायः वायुकायस्य उपरि उपरिमतले तिष्ठति? हन्त, तिष्ठति. तत् तेनार्थेन यावत्—'जीवाः कर्मसंगृहीताः' तद् यथा वा कश्चित् पुरुषो बस्तिम् आटोपयति, आटोप्य कट्यां बध्नाति, बद्ध्वा अस्ताघा—ऽतारा—ऽपौरुषेये, उदके अवगाहयेत्, तद् नूनं गौतम! स पुरुषस्तस्य अप्कायस्य उपरिमतले तिष्ठति? हन्त, तिष्ठति. एवं वाऽष्टविधा लोकस्थितिः प्रज्ञप्ता, यावत्—जीवाः कर्मसंगृहीताः. अस्ति भगवन्! जीवाश्च, पुद्गलाश्च अन्योन्यबद्धाः, अन्योन्यस्पृष्टाः, अन्योन्यावगाढाः, अन्योन्यस्नेहप्रतिबद्धाः, अन्योन्यघटतया तिष्ठन्ति? हन्त, अस्ति. तत् केनाऽर्थेन भगवन्! यावत्—तिष्ठन्ति? गौतम! तद् यथानामको ह्रदः स्यात्, पूर्णः, पूर्णप्रमाणः, व्यपलोटयन्, विकसन्, समभरघटतया तिष्ठति:—अनु०

[illegible] पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सयासवं, सयछिदं [illegible]. से णूणं गोयमा! सा णावा तेहिं आसवदारेहिं आ- [illegible], आपूरमाणी पुण्णा, पुण्णप्पमाणा, वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा, [illegible]ताए चिट्ठइ? हंता, चिट्ठइ. से तेणट्ठेणं गोयमा! [illegible] णं जीवा य जाव–चिट्ठंति.

हृदमां कोइ पुरुष एक मोटी, सो नाना काणावाळी, सो मोटा काणा- वाळी नावने नाखे. तो हे गौतम! ते नाव ते काणाओथी भराती, वधारे भराती, छलकाती, पाणीथी वधती थाय? अने ते भरेला घडानी पेठे रहे? 'हा, रहे' माटे हे गौतम! ते हेतुथी यावत्– 'जीवो पूर्व प्रमाणे रहे छे'.

७. लोकान्तादिलोकपदार्थप्रस्तावाद् अथ गौतममुखेन लोकस्थितिप्रज्ञापनायाह:—*'कइविहा णं'* इत्यादि. आकाशप्रतिष्ठितो वायुः–तनुवात–घनवातरूपः, तस्यावकाशान्तरोपरि स्थितत्वात्. आकाशं तु स्वप्रतिष्ठितमेव इति न तत्प्रतिष्ठाचिन्ता कृता इति. तथा वातप्रतिष्ठित उदधिः–घनोदधिः, तनुवात–घनवातोपरि स्थितत्वात्. तथा उदधिप्रतिष्ठिता पृथिवी, घनोदधीनामुपरि स्थितत्वाद् रत्नप्रभादीनाम्, बाहुल्यापेक्षया च इदमुक्तम्. अन्यथा ईषत्प्राग्भारा पृथिवी आकाशप्रतिष्ठिता एव. तथा पृथिवीप्रतिष्ठितास्त्रस–स्थावराः प्राणाः, इदमपि प्रायिकम्–एव, अन्यथा आकाश–पर्वत–विमानप्रतिष्ठिता अपि ते सन्ति इति. तथाऽजीवाः शरीरादिपुद्गलरूपा जीवप्रतिष्ठिताः, जीवेषु तेषां स्थितत्वात्. तथा जीवाः कर्मप्रतिष्ठिताः, कर्मसु अनुदयाऽवस्थकर्मपुद्गलसमुदायरूपेषु संसारिजीवानामाश्रितत्वात्. अन्ये त्वाहुः—"जीवाः कर्मभिः प्रतिष्ठिताः–नारकादिभावेनावस्थिताः". तथाऽजीवा जीवसंगृहीताः, मनो–भाषादिपुद्गलानां जीवैः संगृहीतत्वात्. अथाऽजीवा जीवप्रतिष्ठिताः, तथाऽजीवा जीवसंगृहीता इत्येतयोः को भेदः? उच्यते–पूर्वस्मिन् वाक्ये आधाराऽऽधेयभाव उक्तः, उत्तरे तु संग्राह्य-संग्राहकभाव इति भेदः, यच्च यस्य संग्राह्यं तत् तस्याऽऽधेयमपि अर्थापत्तितः स्यात्, यथाऽपूपस्य तैलम्, इति आधारा–ऽऽधेयभावोऽपि उत्तरवाक्ये दृश्य इति. तथा जीवाः कर्मसंगृहीताः, संसारिजीवानाम् उदयप्राप्तकर्मवशवर्तित्वात्, ये च यद्वशास्ते तत्र प्रतिष्ठिताः, यथा घटे रूपादयः, इत्येवम्–इहाऽपि आधारा-ऽऽधेयता दृश्या इति. *'से जहानामए केइ'* त्ति स यथानामको यत्प्रकारनामा देवदत्तादिनामा इत्यर्थः. अथवा *'से'* इति सः, यथा इति दृष्टान्तार्थः. *'नाम'* इति संभावनायाम्, *'ए'* इति वाक्याऽलंकारे. *'वत्थि'* ति बस्तिं–दृतिम्. *'आडोवेइ'* त्ति आटोपयेद् वायुना पूरयेत्, *'उप्पिं–सितं बंधइ'* त्ति उपरि सितं 'षिञ् बन्धने' इति वचनात्, क्तप्रत्ययस्य च भावार्थत्वात्, कर्मार्थत्वाद् वा बद्धं ग्रन्थिमित्यर्थः. बध्नाति करोतीत्यर्थः. अथवा *'उप्पिंसि'* त्ति उपरि, *'तं'* इति बस्तिम्, *'से आउयाए'* त्ति सोऽप्कायः तस्य वायुकायस्य *'उप्पिं'* ति उपरि, उपरिभावश्च व्यवहारतोऽपि स्याद् इत्यत आहः–उपरितले सर्वोपरीत्यर्थः, यथा वायुराधारो जलस्य दृष्टः, एवमाधारा-ऽऽधेयभावो भवति आकाश–घनवातादीनाम् इति, आधाराऽऽधेयभावश्च प्रागेव सर्वपदेषु व्यञ्जित इति. *'अत्थाहंअतारंअपोरुसियंसि'* त्ति अस्ताघम्–अविद्यमानस्ताघम्–अगाधमित्यर्थः, अस्ताघो वा निरस्ताधस्तलमित्यर्थः, अत एवाऽतारम्–तरीतुमशक्यम्, पाठान्तरेणाऽपारम्–पारवर्जितम्, पुरुषः प्रमाणमस्य इति पौरुषेयम्, तत्प्रतिषेधाद् अपौरुषेयम्, ततः कर्मधारयः, अतस्तत्र. मकारश्चेहाऽलाक्षणिकः. *'एवं वा'* इत्यत्र वाशब्दो दृष्टान्ताऽन्तरतासूचनार्थः.

७. लोकांत वगेरे लोकना पदार्थोनो प्रस्ताव होवाथी हवे गौतमना मुख द्वारा लोकस्थितिने जणाववा सारु कहे छे केः–['कइविहा णं' इत्यादि. तनुवात अने घनवातरूप वायु आकाशने आधारे रहेलो छे. कारण के, ते वायु अवकाशांतरनी उपर रहेलो छे. अने आकाश तो पोताने आधारे ज रहेलुं छे–तेनो बीजो कोइ आधार नथी माटे 'आकाश कोने आधारे रहेलुं छे?' ए संबंधी विचार नथी कर्यो. तथा घनोदधि, वातने आधारे रहेलो छे, कारण के घनोदधि, तनुवात अने घनवात उपर रहेलो छे. तथा पृथिवी घनोदधिने आधारे रहेली, छे कारण के रत्नप्रभा वगेरे पृथिवीओ घनोदधिनी उपर रहेली छे. शं०–आ सूत्रमां जे कह्युं छे 'पृथिवीओ घनोदधिने आधारे रहेली छे' ते बराबर नथी. कारण के, पृथिवीओ आठ छे तेमां सात पृथिवीओ तो घनोदधिने आधारे कही ते व्याजबी छे. पण आठमी ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) पृथिवी तो घनोदधिने आधारे नथी रही. पण ते आकाशने ज आधारे रहेली छे. माटे सूत्रमां ईषत्प्राग्भारा सिवायनी बीजी पृथिवीओ घनोदधिने आधारे रहेली छे एम कहेवुं उचित छे, पण सामान्य प्रकारे सर्व पृथिवीओ घनोदधिने आधारे रहेली छे ते कथन तो सुसंगत नथी. समा०–पूर्वनी शंका ठीक छे. पण सूत्रनुं आ वचन औपचारिक छे. ते आ रीतेः–जेम एक सो माणसनो समुदाय जतो होय, तेमां पोणोसो माणस छत्रीवाळा होय अने पचीश माणस छत्री विनाना होय तो पण ते समुदायमां छत्रीवाळा घणा होवाथी अने छत्री विनाना थोडा होवाथी ते समुदाय छत्रीवाळो कहेवाय छे अर्थात् जेनी संख्या वधारे होय तेनो व्यवहार मुख्यपणे थाय छे. तेम ज आ आठ पृथिवीओमां सात पृथिवीओ तो घनोदधिने आधारे रहेली छे अने मात्र एक आठमी सिद्धशिला घनोदधिने आधारे नथी रही. तो पण वधारे संख्यावाळी पृथिवीओ घनोदधिने आधारे रहेली छे माटे ज एम कह्युं छे के, 'पृथिवीओ घनोदधिने आधारे रहेली छे' अने एम

आर्य श्रीगौतम. कोण कोने आधारे छे?

शंका.

समाधान.

---

६. मूलच्छायाः— अथ कश्चित् पुरुषस्तस्मिन् हृदे एकां महतीं नावं शतास्रवाम्, शतच्छिद्राम् अवगाहयेत्, तद् नूनं गौतम! सा नौः तैः [illegible] आपूर्यमाणी, आपूर्यमाणी पूर्णा, पूर्णप्रमाणा, [illegible], [illegible] समभरघटतया तिष्ठति? हन्त, तिष्ठति. तद् तेनाऽर्थेन गौतम! अस्ति [illegible]–तिष्ठन्ति–[illegible].

सामान्य प्रकारे कहेवुं ते उचित पण छे. त्रस–हाली चाली शके तेवा प्राणिओ अने स्थावर–हाली चाली न शके तेवा जीवो–ए बधा [illegible] पृथिवीने आधारे रहेला छे. आ वचन पण प्रायिक छे. कारण के पृथिवी सिवाय पण जीवो आकाशने, पर्वतने अने विमानने आधारे रहेला छे. [illegible] शरीरादि पुद्गलरूप अजीवो जीवने आधारे रहेला छे, कारण के तेओ जीवोमां स्थित छे. तथा जीवो कर्मने आधारे रहेला छे, कारण के संसारि जीवो आधार अनुदय अवस्थामां रहेल कर्मपुद्गलना समुदाय उपर छे. बीजाओ तो कहे छे के, "जीवो कर्मने आधारे रहेला छे एटले जीवो नारकादि [illegible] रहेला छे." तथा अजीवोने जीवोए संघरेला छे, कारण के मनना अने भाषा वगेरेना पुद्गलो जीवोए संघरेला छे. शं०–'अजीवो जीवोने आधारे [illegible] छे' तथा 'अजीवोने जीवोए संघरेला छे' ए बे वाक्यना अर्थमां शो भेद–तफावत–छे ? समा०–आगळना वाक्यमां आधार आधेय–भाव कह्यो छे. [illegible] पाछळना वाक्यमां संग्राह्य–संग्राहक भाव कह्यो छे. ए प्रमाणे ए बे वाक्यमां भिन्नता छे. तथा पाछळना वाक्यमां आधार—आधेय भाव पण छे [illegible] ते आ रीते छे:–जे जेनुं संग्राह्य होय ते तेनुं आधेय पण होय छे. अर्थात् जेम, पूडलावडे तेल संग्रहाय छे तो ते तेल संग्राह्य पण छे अने आधेय [illegible] छे. तेम अहीं पण समजवुं. तथा जीवोने कर्मोए संघरेला छे, कारण के संसारि जीवो उदयप्राप्त कर्मने ताबे रहेला छे. वळी जे जेने वश होय ते तेमां रहेलुं होय छे, जेम; घटना रूपादिगुणो घटने वश रहेला छे माटे ज ते घटमां रहेला छे. ए प्रमाणे अहीं पण आधार आधेय भाव जाणवो. [['से] जहानामए केइ' त्ति] कोइ एक देवदत्तादि नामवाळो पुरुष, ['वत्थि'ति] मसकने ['आडोवेइ'त्ति] आटोपे–वायुवडे फुलावे. ['उप्पिं–सिअं बंधइ'त्ति] उपर गांठ बांधे. अथवा ['उप्पिसि'त्ति] एटले उपर अने ['तं' इति] एटले ते मसकने. ['से आउयाए'त्ति] अप्काय–पाणी, ते वायुकायनी उपर. उपरपणुं व्यवहारथी पण होय, माटे कहे छे के, उपरने तळिये अर्थात् सौथी उपरना भागमां. जेम जलनो आधार वायु छे ए प्रमाणे आकाश अने घनवातादिनो पण परस्पर आधार–आधेय भाव समजवो. अने ते आधार–आधेय भाव सर्व पदोमां पहेलां ज व्यक्त थइ चूक्यो छे. ['अत्थाह–मतार–मपोरुसिअंसि'त्ति] अगाध अथवा तळिया विनानुं घणुं ऊंडुं, माटे ज न तरी शकाय तेवुं, अथवा 'अपार' एवुं पाठांतर होवाथी अपार–पार विनानुं, पुरुष जेटलुं ऊंडुं ते पौरुषेय अने तेवुं नहीं (ते करतां वधारे ऊंडुं) ते अपौरुषेय, एवा पाणीमां. ['एवं वा' इति.]

त्रस. स्थावर. कर्मपाश. मसक.

८. लोकस्थित्यधिकाराद् एव इदमाह:—'*अत्थि णं*' इत्यादि. अन्ये त्वाहु:–"*अजीवा जीवपइट्ठिया*' इत्यादेः पदचतुष्टयस्य भावनार्थम् इदमाह:–'*अत्थि णं*' इत्यादि". '*पोग्गले*' त्ति कर्म-शरीरादिपुद्गलाः, '*अन्नमन्नबद्ध*' त्ति अन्योन्यं जीवाः पुद्गलानाम्, पुद्गलाश्च जीवानां संबद्धा इत्यर्थः. कथं बद्धाः ? इत्याह–'*अन्नमन्नपुट्ठ*' त्ति पूर्वं स्पर्शनामात्रेणाऽन्योन्यं स्पृष्टाः, ततोऽन्योन्यं बद्धाः–गाढतरसंबद्धा इत्यर्थः. '*अन्नमन्नं ओगाढ*' त्ति परस्परेण लोलीभावं गताः, अन्योन्यं स्नेहप्रतिबद्धा इत्यत्र रागादिरूपः स्नेहः, यदाहः–"स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुना श्लिष्यते यथा, गात्रं राग-द्वेषक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवति एवम्" इति. अत एव '*अन्नमन्नघडत्ताए*' त्ति अन्योन्यं घटाः समुदायो येषां तेऽन्योन्यघटाः, तद्भावस्तत्ता तया–अन्योन्यघटतया. '*हरिए सिय*' त्ति ह्रदो नदः, स्याद् भवेत्, '*पुन्ने*' त्ति भृतो जलस्य, स च किञ्चिद् न्यूनोऽपि व्यवहारतः स्यात्, अतश्चाह–'*पुण्णप्पमाणे*' त्ति पूर्णप्रमाणः–पूर्णं वा जलेनाऽऽत्मनो मानं यस्य स पूर्णात्ममानः. '*वोलट्टमाणे*' त्ति व्यपलोट्यन्, अतिजलभरणात् छर्द्यमानजल इत्यर्थः. '*वोसट्टमाणे*' त्ति जलप्राचुर्याद् एव विकसन् स्फारीभवन् वर्धमान इत्यर्थः. '*समभरघडत्ताए*' त्ति समो न विषमः, घटैकदेशम्–अनाश्रितत्वेन भरो जलसमुदायो यत्र स समभरः, सर्वथा भृतो वा समभरः, समशब्दस्य सर्वशब्दार्थत्वात्, समभरश्चासौ घटश्च इति समासः, समभरघट इव समभरघटः, तद्भावस्तत्ता तया–समभरघटतया–सर्वथा भृतघटाकारतया इत्यर्थः. '*अहे णं*' ति '*अहे*' शब्दोऽथार्थः. अथ शब्दश्चाऽऽनन्तर्यार्थः, '*णं*' इति वाक्यालंकारे. '*महं*' ति महतीम्, '*सयासवं*' ति आस्रवति–ईषत् क्षरति जलं यैस्ते आस्रवाः–सूक्ष्मरन्ध्राणि, सन्तो विद्यमानाः, सदा वा सर्वदा, शतसंख्या वा आस्रवा यस्यां सा सदाऽऽश्रवा, शताश्रवा वा, अतस्ताम्. एवं '*सयछिद्दं*' नवरम्–छिद्रं महत्तरं रन्ध्रम्. '*ओगाहेज्ज*' त्ति अवगाहयेत्–प्रवेशयेत्. '*आसवदारेहिं*' ति आश्रवच्छिद्रैः. '*आपूरमाणि*' त्ति आपूर्यमाणा 'जलेन' इति शेषः. इह द्विर्वचनमाभीक्ष्ण्ये. '*पुन्ना*' इत्यादि प्राग्वत्, नवरम्–'*वोसट्टमाणा*' इत्यादौ वृद्धैरयं विशेष उक्तः–"'*वोसट्टमाणा*' भृता सती या तत्रैव निमज्जति सा उच्यते. '*समभरघडत्ताए*' त्ति ह्रदक्षिप्तसमभरघटवत्–ह्रदस्याऽधस्त्योदकेन सह तिष्ठति इत्यर्थः. यथा नौश्च, ह्रदोदकं चाऽन्योन्याऽवगाहेन वर्तेते" एवम्-जीवाश्च, पुद्गलाश्च इति भावना.

जीवा. अन्योन्य बद्धादि.

८. लोकनी स्थितिनो ज अधिकार होवाथी आ सूत्र कहे छे:–['अत्थि णं' इत्यादि.] बीजाओ तो कहे छे के, "अजीवा जीवपइट्ठिआ' इत्यादि चार पदनी भावना माटे आ ['अत्थि णं' इत्यादि.] सूत्र कह्युं छे". ['पोग्गले'त्ति] कर्मना अने शरीर वगेरेना पुद्गलो, ['अन्नमन्नबद्ध' त्ति] अन्योन्य बद्ध–जीवो पुद्गलोनी साथे अने पुद्गलो जीवोनी साथे एम परस्पर संबद्ध, केवी रीते बद्ध छे ? तो कहे छे के, ['अन्नमन्नपुट्ठा' इति] पूर्वे मात्र स्पर्शथी ज अन्योन्यस्पृष्ट हता अने पछी अन्योन्यबद्ध थया–खूब संबद्ध थया, ['अन्नमन्नमोगाढ'त्ति] परस्पर एकमेक थएला, परस्पर स्नेहथी प्रतिबद्ध थएला, अहीं

---

१. 'से' एटले ते. २. 'यथा' ए शब्द दृष्टांतनो सूचक छे–३. 'नाम' ए शब्द संभावनानो बोधक छे. ४. 'ए' वाक्यमां अलंकार रूप छे. ५. [illegible] धातु बंधन अर्थमां छे अने तेनाथी भाव के कर्म अर्थमां 'क्त' प्रत्यय आववाथी उपर प्रमाणे अर्थ थाय छे. ६. अहीं 'स' [illegible] छे [illegible] शब्दोनो कर्मधारय समास करवो. ७. 'वा' शब्द बीजा उदाहरणनो सूचक छे.—श्रीअभय०

[illegible] पण तेह समजवो. कह्युं छे के, "जेम कोइ एक पुरुषना, चिकाशथी—तेलथी—लेपेल शरीर उपर रज चोंटे छे तेम राग अने द्वेषथी क्लिन्न [illegible] आत्माने कर्मबंध थाय छे" माटे ज ['अन्नमन्नघडत्ताए'त्ति] जेओनो अन्योन्य समुदाय छे ते अन्योन्यघटा, तेपणे अर्थात् परस्पर समुदायपणे. [illegible] सिया'त्ति] हद—नद—होय, ते ['पुन्ने'त्ति] पाणीथी भरेलो होय, कदाच ते कांइक अधुरो पण होय अने व्यवहारथी पूरो कहेवातो होय माटे [illegible] छे के, ['पुण्णप्पमाणे'त्ति] जेनुं प्रमाण पाणीथी पूरुं छे ते, ['वोलट्टमाणे'त्ति] घणुं पाणी भरावाथी छलकतो, ['वोसट्टमाणे'त्ति] घणुं पाणी होवाथी [illegible]—वधतो, ['समभरघडत्ताए'त्ति] घटना एकभागनुं अनाश्रितपणुं होवाथी ज्यां पाणिनो समुदाय विषम नथी पण समान छे ते समभर, [illegible] 'सम' शब्द 'सर्व' अर्थवाळो होवाथी तद्दन भरेलो ते समभर, समभररूप जे घट ते समभरघट, तेपणे—तद्दन भरेला घटना घाटनी पेठे ['अहे णं'ति] ['महं'ति] मोटी, ['सयासवं'ति] सो नाना आस्रव—(जेनाथी पाणी जरे ते) काणा—वाळी, अथवा हमेशा काणावाळी, ए प्रमाणे सो [illegible] काणावाळी. ['ओगाहेज्ज'त्ति] प्रवेश करावे. ['आसवदारेहिं'ति] छिद्ररूप द्वारोवडे ['आपूरैमाणि' त्ति] पाणीथी भराती. ['पुण्ण' इत्यादि.] ए [illegible] पूर्वनी पेठे छे. विशेष ए के, ['वोसट्टमाणा'] इत्यादि सूत्रो संबंधे वृद्धोए आ प्रमाणे विशेषता जणावी छेः—"वोसट्टमाणा, एटले भराया पछी (जे ज्यां [illegible] छे) त्यां ज डुबे ते, ['समभरघडत्ताए'त्ति] नदमां फेंकेल अने पाणीथी पूर्ण भरेल घडानी पेठे अर्थात् नदना नीचेना पाणी माथे रहे छे—तळिए [illegible] थाय छे". जेम नाव अने ह्रदनुं पाणी अन्योन्य अवगाहपूर्वक रहे छे तेम जीवो अने पुद्गलो अन्योन्य अवगाहपूर्वक रहे छे. ए प्रमाणे [illegible] करवी.

राग.

हद अने नाव.

स्नेहकाय.

२२८. प्र०—*अत्थि णं भंते ! सया समियं सुहुमे सिणेह-काये पवडइ ?*

२२८. उ०—*हंता, अत्थि.*

२२९. प्र०—*से भंते ! किं उड्ढे पवडइ, अहे पवडइ, तिरिए पवडइ ?*

२२९. उ०—*गोयमा ! उड्ढे वि पवडइ, अहे वि पवडइ, तिरिए वि पवडइ.*

२३०. प्र०—*जहा से बायरे आउयाए अन्नमन्नसमाउत्ते चिरं पि, दीहकालं चिट्ठइ तहा णं से वि ?*

२३०. उ०—*णो इणट्ठे समट्ठे. से णं खिप्पं एव विद्धंसं आगच्छइ.*

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति.

२२८. प्र०—हे भगवन् ! हमेशा सूक्ष्म स्नेहकाय—अप्काय (एक जातनुं पाणी) मापपूर्वक पडे छे ?

२२८. उ०—हे गौतम ! हा, पडे छे.

२२९. प्र०—हे भगवन् ! शुं ते उंचे पडे छे, नीचे पडे छे, के तीरछे पडे छे ?

२२९. उ०—हे गौतम ! ते उंचे पण पडे छे. नीचे पण पडे छे अने तीरछे पण पडे छे.

२३०. प्र०—हे भगवन् ! ते सूक्ष्म अप्काय आ स्थूल अप्काय (पाणी) नी पेठे परस्पर समायुक्त थइने लांबा काळ सुधी रहे ?

२३०. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी—तेम न रहे. पण ते सूक्ष्म अप्काय शीघ्र ज नाश पामे छे.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही यावत्—विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो.

१. लोकस्थितौ एव इदमाहः—*'अत्थि'* इत्यादि. सदा सर्वदा, *'समियं'* ति सपरिमाणम्, न बादराप्कायवद् अपरिमितमपि, अथवा सदा इति सर्वर्तुषु, समितमिति रात्रौ, दिवसस्य च पूर्वा—ऽपरयोः प्रहरयोः, तत्रापि कालस्य स्निग्धे—तरभावमपेक्ष्य बहुत्वम्, अल्पत्वं वा-ऽवसेयम्—इति. यदाहः—*"पढम—चरिमाओ सिसिरे, गिम्हे अद्धं तु तासि वज्जेत्ता, पायं ठवे सिणेहाइरक्खणट्ठा पवेसे वा."* लेपितपात्रं बहिर्न स्थापयेत् स्नेहादिरक्षणार्थाय इति. सूक्ष्मस्नेहकाय इति अप्कायविशेष इत्यर्थः. *'उड्ढे'* त्ति ऊर्ध्वलोके वर्तुलवैताढ्यादिषु. *'अहे'* त्ति अधोलोकग्रामेषु *'तिरिए'* त्ति तिर्यग्लोके *'दीहकालं चिट्ठइ'* त्ति तडागादिपूरणात्, *'विद्धंसं आगच्छइ'* त्ति स्वल्पत्वात् तस्येति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे प्रथमशते षष्ठोद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

---

१. आ शब्दनो 'अनंतरपणुं' अर्थ छे. २. आ शब्द अलंकार सूचक छे. ३. अहीं बेवडुं उच्चारण अधिकतानुं सूचक छेः—श्रीअभय०

१. मूलच्छायाः—अस्ति भगवन् ! सदा समितं सूक्ष्मः स्नेहकायः प्रपतति ? हन्त, अस्ति. तद् भगवन् ! किम् ऊर्ध्वं प्रपतति, अधः प्रपतति, तिर्यक् प्रपतति ? गौतम ! ऊर्ध्वमपि प्रपतति, अधोऽपि प्रपतति, तिर्यगपि प्रपतति. यथा स बादरोऽप्कायः अन्योन्यसमायुक्तश्चिरम् अपि दीर्घकालं तिष्ठति तथा [illegible] ? [illegible] अर्थः समर्थः. तद् क्षिप्रम् एव विध्वंसम् आगच्छति. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इतिः—अनु०

[illegible]—प्रथम—चरमौ शिशिरे, ग्रीष्मे अर्धं तु तयोर्वर्जयित्वा, पात्रं स्थापयेत् स्नेहादिरक्षणार्थं प्रवेशे वाः—अनु०

९. लोकस्थिति विषे ज आ वात कहे छे के:–['अत्थि' इत्यादि.] हमेशा ['समियं'ति] मापसहित, पण स्थूल अप्कायनी पेठे अपरिमित [illegible] अथवा सदा एटले बधी ऋतुओमां, समित एटले रातना अने दिवसना आगळना अने छेल्ला प्रहरे (पोरे). तेमां पण चिकाश अने [illegible] काळनुं बहुत्व तथा अल्पत्व समजवुं. कह्युं छे के, "स्नेहादिना–अप्कायादिना–रक्षण माटे के प्रवेशे, शिशिर ऋतुमां प्रथम अने छेल्ला प्रहरने छोडीने [illegible] ग्रीष्म ऋतुमां ते प्रथम अने छेल्ला प्रहरनो अडधो भाग वर्जीने बीजे समये पात्र स्थापे." अर्थात् स्नेहादिना रक्षणमाटे लेपवाळुं पात्र बहार न [illegible] स्नेहकाय एटले एक जातनो अप्काय. ['उड्ढे'त्ति] ऊर्ध्वलोकमां–वर्तुल वैताढ्यादिमां, ['अहे'त्ति] अधोलोक ग्रामोमां, ['तिरिए'त्ति] तिर्यग्लोकमां, ['दीहकालं चिट्ठइ'त्ति] तळावो वगेरेमां भरावाथी लांबो काळ रहे? ['विद्धंसमागच्छइ'त्ति] ते थोडो होवाथी नाश पामे छे.

•

वेलारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक ७.

नैरयिकोत्पातविचार.—चोवीशे दंडक.—नैरयिकआहारविचार.—[illegible].—उपपात.—उद्वर्तन.—[illegible].—[illegible].—मायक—चोवीशे दंडक.—देवच्यवन.—गर्भशास्त्र—गर्भमां उपजतो जीव इंद्रियवाळो के इंद्रिय विनानो होय?—द्रव्येंद्रिय,—भावेंद्रिय.—गर्भमां उपजतो जीव शरीरवाळो के शरीर विनानो होय ?—औदारिक.—वैक्रिय.—आहारक.—तैजस.—कार्मण.—गर्भमां उपजतो जीव सौथी पहेलां शुं खाय?—मातृशोणित.—पितृशुक्र.—गर्भमां गया पछी जीव शुं खाय?—मातृशोणित साथे माताए खावेलो आहार.—गर्भमां रहेल जीवने विष्ठा वगेरे होय?—ना.—तेनुं कारण?—आहारनुं बीजे बीजे रूपे परिणमन.—गर्भमां रहेल जीव मुखवडे खाय?—ना.—कारण.—ते आखा शरीरथी आहारादि करे.—मातृजीवरसहरणी नाडी.—पुत्रजीवरसहरणी नाडी.—संतानने केटलां मातानां अंग होय?—त्रण.—बापरसामां मळेलां अंगो केटला काळ सुधी रहे?—संतान जीवे त्यां सुधी.—गर्भमां गएलो जीव नरके जाय?—हा.—ना.—कारण.—संज्ञी.—गर्भमां रहेल जीवनो शत्रु साथे संग्राम.—गर्भमां गएलो जीव देव थाय?—हा.—ना.—गर्भमां रहेल जीवने धार्मिक वचननुं श्रवण.—जीव गर्भमां चत्तो होय?—पडखाभेर होय?—केरीनी पेठे कुब्ज होय?—उभो होय?—बेठो होय?—सुतो होय?—माताने सुखे सुखी अने दुःखे दुःखी होय?—हा.—प्रसूतिसमये माथा द्वारा अने पग द्वारा बहार आवे तो ठीक आवे.—आडो थइने आवे तो मरण पामे.—दुर्वर्ण थाय.—उद्देशकसमाप्ति.—

२३१. प्र०—नेरइए णं भंते! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं–देसं उववज्जइ, देसेणं–सव्वं उववज्जइ, सव्वेणं–देसं उववज्जइ, सव्वेणं–सव्वं उववज्जइ?

२३१. उ०—गोयमा! नो देसेणं–देसं उववज्जइ, नो देसेणं–सव्वं उववज्जइ, नो सव्वेणं–देसं उववज्जइ, सव्वेणं–सव्वं उववज्जति; जहा नेरइए, एवं जाव–वेमाणिए.

२३२. प्र०—नेरइया णं भंते! नेरइएसु उववज्जमाणे किं देसेणं–देसं आहारेइ, देसेणं–सव्वं आहारेइ, सव्वेणं–देसं आहारेइ, सव्वेणं–सव्वं आहारेइ?

२३२. उ०—गोयमा! नो देसेणं–देसं आहारेइ, नो देसेणं–सव्वं आहारेइ, सव्वेणं वा देसं आहारेइ, सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ. एवं जाव–वेमाणिआ.

२३१. प्र०—हे भगवन्! नैरयिकोमां उत्पद्यमान (उपजतो) नैरयिक शुं एक भागवडे एक भागने आश्री उत्पन्न थाय, एक भागवडे सर्व भागने आश्री उत्पन्न थाय, सर्व भागवडे एक भागने आश्रीने उत्पन्न थाय के सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने उत्पन्न थाय?

२३१. उ०—हे गौतम! ते एक भागवडे एक भागने आश्रीने न उत्पन्न थाय. एक भागवडे सर्व भागने आश्रीने न उत्पन्न थाय. सर्व भागवडे एक भागने आश्रीने न उत्पन्न थाय. पण सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने उत्पन्न थाय. जेम नैरयिक विषे कह्युं तेम यावत्–वैमानिक सुधी जाणवुं.

२३२. प्र०—हे भगवन्! नैरयिकोमां उत्पद्यमान नैरयिक शुं एक भागवडे एक भागने आश्री आहार करे, एक भागवडे सर्व भागने आश्री आहार करे, सर्व भागवडे एक भागने आश्री आहार करे के सर्व भागवडे सर्व भागने आश्री आहार करे?

२३२. उ०—हे गौतम! ते एक भागवडे एक भागने आश्रीने आहार न करे. एक भागवडे सर्व भागने आश्रीने आहार न करे. पण सर्व भागवडे एक भागने आश्रीने आहार करे के सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने आहार करे. अने ए प्रमाणे यावत्–वैमानिक सुधी जाणवुं.

---

१. मूलच्छाया:—नैरयिको भगवन्! नैरयिकेषु उपपद्यमानः किं देशेन–देशम् उपपद्यते, देशेन–सर्वम् उपपद्यते, सर्वेण–देशम् उपपद्यते, सर्वेण–सर्वम् उपपद्यते? गौतम! नो देशेन–देशम् उपपद्यते, नो देशेन–सर्वम् उपपद्यते, नो सर्वेण–देशम् उपपद्यते, सर्वेण–सर्वम् उपपद्यते, यथा नैरयिकः, एवं यावत्–वैमानिकः. नैरयिका भगवन्! नैरयिकेषु उपपद्यमानाः किं देशेन–देशम् आहारयन्ति, देशेन–सर्वम् आहारयन्ति, सर्वेण–देशम् आहारयन्ति, सर्वेण–सर्वम् आहारयन्ति? गौतम! नो देशेन–देशम् आहारयन्ति, नो देशेन–सर्वम् आहारयन्ति, सर्वेण वा देशम् आहारयन्ति, सर्वेण वा सर्वम् आहारयन्ति, एवं यावत्–वैमानिकाः.–अनु॰

२३३. प्र०—णेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उववट्टमाणे किं देसेणं–देसं उववट्टइ ?

२३३. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोथी उद्वर्ततो नैरयिक शुं एक भागवडे एक भागने आश्रीने उद्वर्ते ? इत्यादि पूछवुं.

२३३. उ०—जहा उववज्जमाणे तहेव उव्वट्टमाणे वि दंडगो भाणियव्वो.

२३३. उ०—हे गौतम ! जेम उत्पद्यमान विषे कह्युं, तेम उद्वर्तमान विषे पण दंडक कहेवो.

२३४. प्र०—नेरइए णं भंते ! नेरइएहिंतो उववट्टमाणे किं देसेणं–देसं आहारेइ ?

२३४. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोथी उद्वर्तमान नैरयिक शुं एक भागवडे एक भागने आश्रीने आहार करे ? इत्यादि पूछवुं.

२३४. उ०—तहेव जाव–सव्वेण वा देसं आहारेइ, सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ. एवं जाव–वेमाणिए.

२३४. उ०—हे गौतम ! पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं. यावत्–सर्व भागवडे एक देशने आश्रीने आहार करे अने सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने आहार करे. तथा ए प्रमाणे यावत्–वैमानिक सुधी जाणवुं.

२३५. प्र०—नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववन्ने किं देसेणं–देसं उववन्ने ?

२३५. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोमां उपपन्न नैरयिक शुं एक भागवडे एक भागने आश्रीने उत्पन्न छे ? इत्यादि पूछवुं.

२३५. उ०—एसो वि तहेव. जाव–सव्वेणं–सव्वं उववण्णे. जहा उववज्जमाणे, उव्वट्टमाणे य चत्तारि दंडगा, तहा उववन्नेणं, उव्वट्टेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा. सव्वेणं–सव्वं उववण्णे. सव्वेणं वा देसं आहारेइ. सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ. एएणं अभिलावेणं उववन्ने वि, उव्वट्टेण वि नेयव्वं.

२३५. उ०—हे गौतम ! ए दंडक पण ते ज प्रमाणे जाणवो, यावत्–सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने उत्पन्न छे. जेम उत्पद्यमान अने उद्वर्तमान विषे चार दंडक कह्या तेम उपपन्न अने उद्वृत्त संबंधे पण चार दंडक कहेवा. 'सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने उपपन्न' 'सर्व भागवडे एक भागने आश्रीने आहार' अने 'सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने आहार' ए अभिलापवडे उपपन्न अने उद्वृत्त विषे पण समजवुं.

२३६. प्र०—नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे किं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ, अद्धेणं सव्वं उववज्जइ, सव्वेणं अद्धं उववज्जइ, सव्वेणं सव्वं उववज्जइ ?

२३६. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिकोमां उपजतो नैरयिक शुं अर्ध भागवडे अर्ध भागने आश्रीने उत्पन्न थाय, अर्ध भागवडे सर्व भागने आश्रीने उत्पन्न थाय, सर्व भागवडे अर्ध भागने आश्रीने उत्पन्न थाय, के सर्व भागवडे सर्व भागने आश्रीने उत्पन्न थाय ?

२३६. उ०—जहा पढमिल्लेण अट्ठ दंडगा तहा अद्धेण वि अट्ठ दंडगा भाणियव्वा. नवरं–जहिं देसेण देसं उववज्जइ, तहिं अद्धेणं अद्धं उववज्जइ इति भाणियव्वं. एयं णाणत्तं, एते सव्वे वि सोलस दंडगा भाणियव्वा.

२३६. उ०—हे गौतम ! जेम प्रथमनी साथे आठ दंडक कह्या, तेम अर्धनी साथे पण आठ दंडक कहेवा. विशेष ए के, ज्यां 'एक भागवडे एक भागने आश्रीने उत्पन्न थाय' एवो पाठ आवे त्यां 'अर्ध भागवडे अर्ध भागने आश्रीने उत्पन्न थाय' आ पाठ कहेवो, मात्र एटलो ज भेद छे. अने ए बधा मळीने सोळ दंडक थया छे.

१. अथ सप्तम आरभ्यते, तस्य चैवं संबन्धः–'विध्वंसम्–आगच्छति' इत्युक्तं प्राक्, इह तु तद्विपर्यय उत्पादोऽभिधीयते, अथवा लोकस्थितिः प्राग् उक्ता, इहापि सैव. तथा 'नेरइए' त्ति यदुक्तं संग्रहण्यां तच्चाऽवसरायातम्–इहोच्यते इति. तत्रादिसूत्रम्–'नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे' त्ति ननु उत्पद्यमान एव कथं नारक इति व्यपदिश्यते ? अनुत्पन्नत्वात् तिर्यगादिवद् इति. अत्र उच्यते–उत्पद्यमान उत्पन्न एव, तदाऽऽयुष्कोदयात्. अन्यथा तिर्यगाद्याऽऽयुष्काऽभावाद् नारकाऽऽयुष्कोदयेऽपि यदि नारको नाऽसौ, तदन्यः

---

१. मूलच्छायाः—नैरयिको भगवन् ! नैरयिकेभ्य उद्वर्तमानः किं देशेन–देशम् उद्वर्तते ? यथा उपपद्यमानस्तथैव उद्वर्तमानेऽपि दण्डको भणितव्यः. नैरयिको भगवन् ! नैरयिकेभ्य उद्वर्तमानः किं देशेन–देशम् आहारयति ? तथैव यावत्–सर्वेण वा देशम् आहारयति, सर्वेण वा सर्वम् आहारयति . एवं यावत्–वैमानिकः. नैरयिको भगवन् ! नैरयिकेषु उपपन्नः किं देशेन–देशम् उपपन्न. ? एषोऽपि तथैव. यावत्–सर्वेण–सर्वम् उपपन्नः. यथा उपपद्यमाने, उद्वर्तमाने च चत्वारो दण्डकाः, तथा उपपन्नेन, उद्वृत्तेनाऽपि चत्वारो दण्डका भणितव्याः. सर्वेण–सर्वम् उपपन्नः. सर्वेण वा देशम् आहारयति. सर्वेण वा सर्वम् आहारयति. एतेनाऽभिलापेन उपपन्नेऽपि, उद्वृत्तेनाऽपि ज्ञातव्यम्. नैरयिको भगवन् ! नैरयिकेषु उपपद्यमानः किम् अर्धेन अर्धम् उपपद्यते, अर्धेण सर्वम् उपपद्यते, सर्वेण अर्धम् उपपद्यते, सर्वेण सर्वम् उपपद्यते ? यथा प्राथमिकेनाऽष्ट दण्डकास्तथा अर्धेनाऽपि अष्ट दण्डका भणितव्याः. नवरम्–यत्र देशेन देशम् उपपद्यते, तत्राऽर्धेन अर्धम् उपपद्यते इति भणितव्यम्. एतद् नानात्वम्, एते सर्वेऽपि षोडश दण्डका भणितव्याः—अनु०.

[illegible] ! इति. *'किं देसेणं—देसं उववज्जइ'* त्ति देशेन च देशेन च यद् उत्पादनं प्रवृत्तं तद् देशेन—देशम्, छान्दसत्वात् चाव्ययीभावप्रतिरूपः [illegible]:, एवम् उत्तरत्रापि. तत्र जीवः किं देशेन स्वकीयाऽवयवेन, देशेन नारकाऽवयविनोंऽशतया उत्पद्यते, अथवा देशेन देशमाऽऽश्रित्य [illegible] इति शेषः, एवम् अन्यत्राऽपि. तथा *'देसेणं—सव्वं'*ति देशेन च सर्वेण च यत् प्रवृत्तं तद् देशेन—सर्वम्. तत्र देशेन स्वाऽवयवेन सर्वतः सर्वात्मना नारकाऽवयवितया उत्पद्यते इत्यर्थः. आहोस्वित् सर्वेण सर्वात्मना, देशतो नारकांशतया उत्पद्यते, अथवा सर्वेण सर्वात्मना सर्वतो नारकतया इति प्रश्नः. अत्रोत्तरम्—"न देशेन देशतया उत्पद्यते, यतो न परिणामिकारणाऽवयवेन कार्याऽवयवो निर्वर्त्यते, तन्तुना पटाऽप्रतिबद्धपटप्रदेशवत्, यथा हि—पटदेशभूतेन तन्तुना पटाऽप्रतिबद्धः पटदेशो न निर्वर्त्यते, तथा पूर्वाऽवयविप्रतिबद्धेन तद्देशेन उत्तराऽवयविदेशो न निर्वर्त्यत इति भावः. तथा न देशेन सर्वतया उत्पद्यते, अपरिपूर्णकारणत्वात् तन्तुना पट इव इति. तथा न सर्वेण देशतया उत्पद्यते, संपूर्णपरिणामिकारणत्वात् समस्तघटकारणैर्घटैकदेशवत्. *'सव्वेणं—सव्वं उववज्जइ'* सर्वेण तु सर्वं उत्पद्यते, पूर्णकारणसमवायाद् घटवत्" इति चूर्णिव्याख्या. टीकाकारस्तु एवमाहः—"किमवस्थित एव जीवो देशमपनीय यत्रोत्पत्तव्यं तत्र देशत उत्पद्यते ? अथवा देशेन सर्वत उत्पद्यते ? अथवा सर्वाऽऽत्मना यत्रोत्पत्तव्यं तस्य देशेन उत्पद्यते ? अथवा सर्वात्मना सर्वत्र ? इति. एतेषु पाश्चात्यभङ्गौ ग्राह्यौ, यतः सर्वेण सर्वात्मप्रदेशव्यापारेण इलिकागतौ यत्रोत्पत्तव्यं तस्य देशे उत्पद्यते, तद्देशेन उत्पत्तिस्थानदेशस्य एव व्याप्तत्वात्, कन्दुकगतौ वा सर्वेण सर्वत्रोत्पद्यते, विमुच्यैव पूर्वस्थानम्" इति. एतच्च टीकाकारव्याख्यानं वाचनाऽन्तरविषयमिति. उत्पादे चाऽऽहारक इत्याहारसूत्रम्- तत्र देशेन देशम् इति आत्मदेशेनाऽभ्यवहार्यद्रव्यदेशम् इत्येवं गमनीयम्. उत्तरम्—*'सव्वेण वा देसं आहारेइ'*त्ति उत्पत्त्यनन्तरं समयेषु सर्वात्मप्रदेशैराहारपुद्गलान् कांश्चिद् आदत्ते, कांश्चिद् विमुञ्चति, तप्ततापिकागततैलग्राहक—विमोचकाऽपूपवत्, अत उच्यते—देशमाहारयति इति. *'सव्वेणं वा सव्वं'* ति सर्वात्मप्रदेशैरुत्पत्तिसमये आहारपुद्गलान् आदत्त एव. प्रथमतस्तैलभृततप्ततापिकाप्रथमसमयपतिताऽपूपवत्, इत्युच्यते सर्वमाहारयति इति. उत्पादस्तदाहारेण सह प्राग् दण्डकाभ्याम् उक्तः. अथ उत्पादप्रतिपक्षत्वाद् वर्तमानकालनिर्देशसाधर्म्यात् च उद्वर्तनादण्डकस्तदाऽऽहारदण्डकेन सह. तदनन्तरं च नोद्वर्तनानुत्पन्नस्य स्याद् इति उत्पन्न-तदाऽऽहारदण्डकौ. उत्पन्नप्रतिपक्षत्वात् च उद्वृत्त—तदाहारदण्डकौ इति. पुस्तकान्तरे तु उत्पाद—तदाऽऽहारदण्डकानन्तरम् उत्पादे सति उत्पन्नः स्याद् इति उत्पन्न-तदाहारदण्डकौ, ततस्तु उत्पादप्रतिपक्षत्वाद् उद्वर्तनायाः, उद्वर्तना-तदाहारदण्डकौ. उद्वर्तनायां च उद्वृत्तः स्याद् इति उद्वृत्त-तदाऽऽहारदण्डकौ, कण्ठ्याश्च एते इति. एवं तावदष्टाभिर्दण्डकैर्देश-सर्वाभ्याम् उत्पादादि चिन्तितम्. अथ अष्टाभिरेवाऽर्ध—सर्वाभ्याम् उत्पादाद्येव चिन्तयन् आहः—*'नेरइए णं'* इत्यादि. *'जहा पढमिल्लेणं'* ति यथा देशेन. ननु देशस्य च, अर्धस्य च को विशेषः ? उच्यते-देशस्त्रिभागादिरनेकधा, अर्धं तु एकधैव इति.

१. हवे सातमा उद्देशकनी शरूआत थाय छे. अने तेनो संबंध आ प्रमाणे छेः आगळना उद्देशकमां छेवटे 'स्नेहकाय शीघ्र नाश पामे छे' एम कह्युं छे अने अहीं तो ते नाशनो विपर्यय—उत्पाद -कहेवानो छे. अथवा आगळना उद्देशकमां लोकस्थिति संबंध कह्युं छे अने आ उद्देशकमां पण ते ज संबंध कहेवानुं छे. तथा ['नेरइए'त्ति] ए पद आगळ संग्रहगाथामां कह्युं छे तेनुं विवेचन अहीं समय प्राप्त छे, माटे ते विषे अहीं कहेवानुं छे. तेमां आदिसूत्र आ छेः- ['नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे'त्ति] शंकाः—मूळ सूत्रमां जे कह्युं छे के, 'नैरयिकोमां उपजतो नैरयिक' आ वाक्य असंगत लागे छे. कारण के जे जीव नैरयिकोमां उत्पन्न थयो नथी, पण हजु उत्पन्न थवानो छे ते जीव 'नैरयिक' केम कहेवाय. जेम के, कोइ मनुष्य के तिर्यंच हजु सुधी नारकिमां उत्पन्न थया नथी, पण हवे पछी उपजवाना छे तो पण ते 'नैरयिक' कहेवाता नथी तेम ज नारकिमां उपजेलो नहीं, पण हवे पछी उपजवानो के उपजतो कोइ जीव 'नैरयिक' केम कहेवाय ? समा०—वर्तमानकाळ अने भूतकाळना अभेदने लीधे उपजतो जीव पण उपजेलो ज जीव गणाय छे, माटे ज नारकिमां उपजतो जीव पण उपजेलानी पेठे गणातो होवाथी तेने 'नैरयिक' कहेवामां हरकत नथी. कारण के नारकिमां उपजता जीवने नारकिना आयुष्यनो उदय होय छे पण तिर्यंच वगेरे बीजा आयुष्यनो उदय नथी होतो. वळी ज्यारे जीवने बीजा कोइ आयुष्यनो उदय न होय अने मात्र नारकिना आयुष्यनो ज उदय होय तो ते 'नैरयिक' न कहेवाय तो बीजुं शुं कहेवाय ? तात्पर्य ए के जीवने जे गतिनुं आयुष्य उदयवर्ति होय ते गतिनो ते (जीव) गणाय छे. "['किं देसेणं—देसं उववज्जइ'त्ति] भागे भागे प्रवर्तेलुं जे उत्पादन ते देशेनदेश उत्पादन कहेवाय. ए प्रमाणे नीचे पण जाणवुं. तेमां शुं जीव पोताना अवयववडे नारकना अवयवपणे उत्पन्न थाय ? अथवा पोताना अवयववडे नारकना अवयवने आश्रीने—उत्पन्न करीने उत्पन्न थाय ? ए प्रमाणे बीजे ठेकाणे पण जाणवुं. तथा ['देसेणं—सव्वं'ति] भागवडे अने बधावडे प्रवर्तेलुं जे उत्पादन ते देशेनसर्व उत्पादन कहेवाय. तेमां पोताना अवयववडे नारकपणे सर्व आत्मवडे उत्पन्न थाय ? अथवा पोताना सर्व आत्मवडे नारकपणे अंशवडे उत्पन्न थाय ? के पोताना सर्व आत्मवडे नारकपणे सर्व आत्मवडे उत्पन्न थाय ? अहीं उत्तर आ छेः—पोताना अवयववडे नारकिना अवयवपणे उत्पन्न न थाय. तेनुं कारण आ छे, जे कार्यनुं जे उपादान कारण होय ते पोताना एक भागथी कार्यना एक भागने न नीपजावे. कारण के उपादान कारण तो ए ज कहेवाय के जे पोते आखुं ज कार्यना रूपमां बदलाइ जाय. जेम के; एक कपडुं वणातुं होय, तो तेमां कपडुं ए कार्य छे अने तांतणा ए कापडानुं उपादान

शंका.

समा०

चूर्णिकार.

देशेन—देश.

देशेन—सर्व.

सर्वेण—देश.

सर्वेण—सर्व.

१. एतद्विषये चूर्णिगतः पाठोऽयम्:—"कारणावयवेन कार्यावयवी न निर्वर्त्यते, तन्तुना पटानवबद्धप्रदेशो ता (?) (पटो न बद्धप्रदेशो च (व) ता (?) [illegible] देशेन सर्वः, असकलकारणत्वात्, तन्तुना पट इव. न च सर्वावयवैर्देशकार्याभिनिर्वृत्तिः संपूर्णसमवायसमवायिकारणत्वात्, घटैकदेशदेशवत्. सर्वाव-[illegible] सर्वः, पूर्णकारणसमवायात्, पटवत्"—श्रीभगवतीचूर्णि. २. एतद्विषये टीका (अवचूर्णि) गतः पाठोऽयम्:—"किमत्रावस्थित एव जीव एकं [illegible]—अपनीय तत्र देशेन उत्पद्यते, यत्र उत्पत्तव्यम्. अथवा देशेन यत्र उत्पत्तव्यम्, तत्र सर्वेण उत्पद्यते. सर्वेण वा शरीरेण तत्र देशेन उत्पद्यते. सर्वेण [illegible] इलिकागती देशेन उत्पद्यते, कन्दुकगती वा सर्वेण उत्पद्यते, विमुच्य च पूर्वस्थानम्"—श्रीभगवतीअवचूर्णिः—अनु०

[illegible]—अनु०. ४. [illegible] पण आ [illegible]—श्रीअभय०

टीकाकार. आहार. पूडलो. अर्ध. अर्ध अने भाग.

कारण छे. ज्यारे कपडुं वणावुं शरु थइ गयुं अने कपडानो केटलोक भाग वणाइ पण चूक्यो त्यारे जे तंतुओ कपडाने उत्पन्न करे छे ते, कपडानो बीजो कोइ भाग उत्पन्न नहीं करी शके के जे भाग पेला वणाता कपडाथी अलग होय. कारण के ते तंतुओ पेला वणाता कपडा साथे जोडाएला छे. अर्थात् जे उपादान कारण पोताना कार्य साथे जोडाएलुं होय ते (उपादान) पोताथी उत्पन्न थता कार्यथी जूदो कोइपण भाग उत्पन्न न करी शके. तेवी ज रीते जे जीव पूर्वनी तिर्यंच वगेरे गतिमां प्रतिबद्ध होय अने ते जीव त्यां प्रतिबद्ध रहीने पोताना एक भागवडे अहीं नरकमां नारकिनो एक भाग न नीपजावी शके–एक भागवडे एक भागपणे न उपजे. तथा एक भागवडे सर्वपणे न उपजे. जेम, एक तांतणावडे कपडुं उत्पन्न थइ शकतुं नथी तेम जीव पोताना एक भागवडे नारकिना सर्व भागोने उपजावी शकतो नथी. कारण के अधूरा कारणथी संपूर्ण कार्य थइ शकतुं नथी–एक भागवडे सर्वपणे न उपजे. तथा सर्व भागोवडे एक भागपणे न उपजे. जेम, घटने पेदा थवामां जेटलां कारणो जोइए तेटलां बधां पूरेपूरां कारणो मळेलां होय तो त्यां चोक्कस घडो ज उत्पन्न थवो जोइए, पण घडानो एक कटको ज उत्पन्न न थइ शके. कारण के ज्यां संपूर्ण कारणो भेगां थयां होय त्यां कार्य संपूर्ण ज थाय. तेम ज्यारे जीवना सर्व भागो कार्यरूपे बदलाता होय त्यारे ते सर्व भागोवडे नारकिनो एक भाग ज नीपजे ते असंगत छे. कारण के अहीं उपादान कारण आखो जीव छे माटे कार्य पण आखुं ज थवुं जोइए. तथा [‘सव्वेणं सव्वं उववज्जइ’] जीव पोताना सर्व भागोवडे नारकिना सर्वभागोने नीपजावे छे–आखा नारकिपणे नीपजे छे. कारण के ज्यां पूर्ण कारण होय त्यां कार्य पण पूर्ण ज थाय छे. अहीं पण आखो जीव कारण छे माटे नारकिरूप कार्य पण आखुं ज थाय छे. जेम, घडानां बधां कारणो पूरेपूरां मळ्यां होय त्यारे पूरो ज घडो उत्पन्न थाय छे तेम आखा जीववडे आखुं ज कार्य उत्पन्न थाय छे.’’ ए प्रमाणे चूर्णिकारनी[1] व्याख्या छे. अने टीकाकारनी[2] व्याख्या तो आ प्रमाणे छेः– ‘‘(१) शुं एक ठेकाणे रहेलो ज जीव पोताना एक भागने दूर करीने ज्यां उत्पन्न थवानुं छे त्यां एक भागवडे उत्पन्न थाय ? (२) अथवा एक भागवडे सर्वतः उत्पन्न थाय ? (३) अथवा ज्यां सर्व आत्मवडे उत्पन्न थवानुं छे त्यां तेना एक भागे उत्पन्न थाय ? के (४) सर्व आत्मवडे सर्वत्र उत्पन्न थाय ? ए चार भांगाओमां पछीना बे भांगा–त्रीजो अने चोथो–लेवा. कारण के ज्यां जीवने उत्पन्न थवानुं छे त्यां जो जीव इलिकागतिवडे–इयळनी चालवानी पद्धति प्रमाणे–जाय तो तेना (जीवना) सर्व आत्मप्रदेशना व्यापारवडे उत्पन्न थवाने स्थळे एक भागे उत्पन्न थाय. कारण के जीवमा एक भागवडे तेने उत्पन्न थवाना स्थळनो पण एक ज भाग व्याप्त छे. अने ज्यां जीवने उत्पन्न थवानुं छे त्यां जो जीव दडानी पेठे जाय तो पोताना पूर्वस्थानने छोडीने ज तेना सर्व आत्मप्रदेशोवडे उत्पन्न थवाने ठेकाणे सर्वत्र उत्पन्न थाय’’ अने आ प्रमाणेनुं टीकाकारनुं व्याख्यान बीजी वाचनाने लागु पडे तेवुं छे. उत्पन्न थया पछी आहारनी जरूर होय छे माटे हवे आहार संबंधे सूत्र कहे छेः–तेमां ‘देशेन देशम्’ एटले आत्माना एक भागवडे खावाना पदार्थनो एक भाग खाय ? एम जाणवुं. उत्तर आ छेः–[‘सव्वेण वा देसं आहारेइ’त्ति] एटले आत्मा पोताना सर्व प्रदेशोवडे खावानी चीजनो एक भाग खाय छे. कारण के उत्पन्न थया पछी तुरत ज जीव पोताना सर्व प्रदेशोवडे खावाना पुद्गलो ले छे. तेमांना केटलांकने खाय छे अने केटलांकने पडतां मूके छे–खातो नथी. जेम; तपी गएली लोढीमां नाखेलो पूडलो केटलुंक तेल चूसे छे अने केटलुंक तेल नथी चूसतो, तेम पूर्वोक्त जीव पण केटलुंक खाय छे अने केटलुंक पडतुं मूके छे. माटे ज एम कह्युं छे के, खावानी चीजनो एक भाग खाय छे. [‘सव्वेण वा सव्वं’ति] जीव ज्यारे उत्पन्न थाय छे त्यारे पोताना बधा प्रदेशोवडे खावाने मळेली सर्व वस्तुनो आहार करे ज छे. जेम; पहेलेथी तेलथी भरेली अने तपी गएली तवीमां पहेले ज क्षणे पडेलो पूडलो तेलने चूसी ले छे, तेम पूर्वोक्त जीव पण सर्व वस्तुने आहरे छे. माटे ज एम कह्युं छे के, सर्व वस्तुने खाय छे. आहार साथे उत्पाद संबंधी बे दंडक आगळ कह्या. हवे उत्पादनो प्रतिपक्ष होवाथी अने वर्तमानकाळना निर्देशनी सरखाइने लीधे आहार साथे उद्वर्तना विषे दंडक कह्यो छे. उत्पन्न थया विनाना जीवनी उद्वर्तना होती नथी माटे हवे पछी आहार साथे उत्पन्न जीव संबंधे बे दंडक कह्या छे. तथा उत्पन्ननो प्रतिपक्ष होवाथी हवे पछी आहार साथे उद्वृत्त संबंधे बे दंडक कह्या छे. बीजा पुस्तकमां तो उत्पाद अने आहारना' दंडक पछी (उत्पाद थया पछी उत्पन्न थाय छे माटे) उत्पन्न अने आहार संबंधे बे दंडक छे. त्यार बाद उद्वर्तना, ते उत्पादनी प्रतिपक्ष होवाथी उद्वर्तना अने आहार संबंधे बे दंडक छे अने पछी (उद्वर्तनामां उद्वृत्त थाय छे माटे) उद्वृत्त अने आहार संबंधे बे दंडक छे अने ए बधा दंडको स्पष्ट छे. ए प्रमाणे आठ दंडकोवडे देश अने सर्ववडे उत्पादादि विषे विचार कर्यो. हवे बीजा आठ दंडकोवडे अर्ध अने सर्ववडे उत्पादादि विषे ज चिंतन करतां कहे छे केः–[‘नेरइए णं’ इत्यादि.] [‘जहा पढमिल्लेणं’ति] जेम देश (भाग) विषे कह्युं तेम अहीं पण जाणवुं. शंकाः–भाग अने अर्धमां शुं विशेष छे ? समा०–भाग तो अडधो होय, पोणो होय अने पा होय तथा तेथी पण ओछो वधतो अनेक जातनो होय. अने अडधुं एटले बराबर अडधुं अने ते एक जातनुं ज होय.

विग्रहगति अने देवच्यवन.

२३७. प्र०—जीवे णं भंते ! किं विग्गहगतिसमावण्णए, अविग्गहगतिसमावन्नए ?

२३७. उ०—गोयमा ! सिय विग्गहगइसमावन्नगे, सिय अविग्गहगतिसमावन्नगे. एवं जाव–वेमाणिए.

२३७. प्र०—हे भगवन् ! शुं जीव विग्रहगतिने प्राप्त छे के अविग्रहगतिने प्राप्त छे ?

२३७. उ०—हे गौतम ! ते कदाच विग्रहगतिने प्राप्त छे अने कदाच अविग्रहगतिने प्राप्त छे. ए प्रमाणे यावत्–वैमानिक सुधी जाणवुं.

---

१. ‘चूर्णि’ नामनी श्रीभगवतीजी उपर एक संक्षिप्त व्याख्या छे. ते चूर्णि बनावनारनुं ए मत छे. तेनो (चूर्णिनो) पाठ आगळ दर्शाव्यो छेः—अनु॰

२. टीकाकार एटले अवचूर्णिकार जाणवा. (अवचूर्णि) नामनी पण एक संक्षिप्त व्याख्या छे. जे पूर्वोक्त चूर्णिनो अर्थ स्पष्टपणे दर्शावे छे. ते अवचूर्णिनो पाठ पण आगळ दर्शाव्यो छेः—अनु॰

१. मूलच्छायाः—जीवो भगवन् ! किं विग्रहगतिसमापन्नकः, अविग्रहगतिसमापन्नकः ? गौतम ! स्याद् विग्रहगतिसमापन्नकः, स्याद् अविग्रहगतिसमापन्नकः. एवं यावत्–वैमानिकः–अनु॰

२३८. प्र०—जीवा णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नया, अविग्गहगइसमावन्नगा ?

२३८. प्र०—हे भगवन् ! शुं जीवो विग्रहगतिने प्राप्त छे के अविग्रहगतिने प्राप्त छे ?

२३८. उ०—गोयमा ! विग्गहगइसमावन्नगा वि, अविग्गहगइसमावन्नगा वि.

२३८. उ०—हे गौतम ! जीवो विग्रहगतिने प्राप्त छे अने अविग्रहगतिने पण प्राप्त छे ?

२३९. प्र०—नेरइया णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नया, अविग्गहगतिसमावन्नगा ?

२३९. प्र०—हे भगवन् ! शुं नैरयिको विग्रहगतिने प्राप्त छे के अविग्रहगतिने प्राप्त छे ?

२३९. उ०—गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्ज अविग्गहगतिसमावन्नगा. अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा, विग्गहगतिसमावन्नगे य. अहवा अविग्गहगतिसमावन्नगा य, विग्गहगइसमावन्नगा य. एवं जीव–एगिंदियवज्जो तियभंगो.

२३९. उ०—हे गौतम ! ते बधा य अविग्रहगतिने प्राप्त छे. अथवा घणा अविग्रहगतिने प्राप्त छे अने एकाद विग्रहगतिने प्राप्त छे. अथवा घणा अविग्रहगतिने प्राप्त छे अने घणा विग्रहगतिने प्राप्त छे. ए प्रमाणे सर्वत्र त्रण भांगा जाणवा. मात्र जीव अने एकेंद्रियमां त्रण भांगा न कहेवा.

२४०. प्र०—देवे णं भंते ! महड्ढिए, महज्जुइए, महब्बले, महायसे, महेसक्खे, महाणुभावे अविउक्कंतियं चयमाणे किंचिकालं हिरिवत्तियं, दुगंछवत्तियं, परिसहवत्तियं आहारं नो आहारेइ. अहे णं आहारेइ आहारिज्जमाणे आहारिए, परिणामिज्जमाणे परिणामिए, पहीणे य आउए भवइ. जत्थ उववज्जइ तं आउयं पडिसंवेदेइ. तं तिरिक्खजोणियाउयं वा, मणुस्साउयं वा ?

२४०. प्र०—हे भगवन् ! मोटी ऋद्धिवाळो, मोटी द्युतिवाळो, मोटा बळवाळो, मोटी कीर्तिवाळो, मोटा सामर्थ्यवाळो अने मरण समये च्यवतो महेश नामनो देव शरमने लीधे, घृणाने लीधे, परिषहने लीधे केटलाक काळ सुधी आहार नथी करतो. पछी आहार करे छे अने लेवातो आहार परिणत पण थाय छे, अने छेवटे ते देवनुं आयुष्य सर्वथा नष्ट थाय छे, तेथी ते देव ज्यां उत्पन्न थाय छे त्यांनुं आयुष्य अनुभवे छे. तो हे भगवन् ! ते कयुं आयुष्य जाणवुं–तिर्यंचयोनिकनुं आयुष्य जाणवुं के मनुष्यनुं आयुष्य जाणवुं ?

२४०. उ०—हंता, गोयमा ! देवे णं महड्ढीए जाव–मणुस्साउयं वा.

२४०. उ०—हे गौतम ! ते महर्धिक देवनुं यावत्–मर्या पछी मनुष्यनुं आयुष्य पण जाणवुं.

२. उत्पत्तिः, उद्वर्तना च प्रायो गतिपूर्विका भवति, इति गतिसूत्राणि–'*विग्गहगइसमावन्नए*' त्ति विग्रहो वक्रम्, तत्प्रधाना गतिर्विग्रहगतिः, तत्र यदा वक्रेण गच्छति तदा विग्रहगतिसमापन्न उच्यते. अविग्रहगतिसमापन्नस्तु ऋजुगतिकः, स्थितो वा, विग्रहगतिनिषेधमात्राऽऽश्रयणात्. यदि वाऽविग्रहगतिसमापन्न ऋजुगतिक एव उच्यते, तदा नारकादिपदेषु सर्वदैवाऽविग्रहगतिकानां यद् बहुत्वं वक्ष्यति तद् न स्यात्, एकादीनामपि तेषु उत्पादश्रवणात्. टीकाकारेण तु केनाऽपि अभिप्रायेण "विग्रहगतिसमापन्न ऋजुगतिक एव व्याख्यातः" इति. '*जीवा णं भंते !*' इत्यादि प्रश्नः. तत्र जीवानामानन्त्यात् प्रतिसमयं विग्रहगतिमताम्, तन्निषेधवतां च बहूनां भावाद् आहः–'*विग्गहगई*' इत्यादि. नारकाणां तु अल्पत्वेन विग्रहगतिमतां कदाचिद् असंभवात्, संभवेऽपि च एकादीनामपि तेषां भावात्, विग्रहगतिप्रतिषेधवतां च सदैव बहूनां भावाद् आहः–'*सव्वे वि ताव होज्ज अविग्गह–*' इत्यादि विकल्पत्रयम्, असुरादिषु एतदेवाऽतिदिशत आहः–'एवम्' इत्यादि. जीवानां निर्विशेषाणाम्, एकेन्द्रियाणां च उक्तयुक्त्या विग्रहगतिसमापन्नत्वे, तत्प्रतिषेधे च बहुत्वमेव इति न भङ्गत्रयम्. तदन्येषु तु त्रयमेव इति '*तियभंगो*' त्ति त्रिकरूपो भङ्गस्त्रिकभङ्गो भङ्गत्रयम् इत्यर्थः.

२. उत्पत्ति अने उद्वर्तना घणुं करीने गतिपूर्वक होय छे माटे हवे गतिसंबंधे सूत्रो कहे छेः–['विग्गहगइसमावन्नए'त्ति] विग्रह एटले वांकुं. जे गतिमां वांकाइ वधारे होय ते गति 'विग्रहगति' कहेवाय. ज्यारे बीजी गतिमां जनारो जीव वांको चूंको चाले त्यारे ते जीव विग्रहगतिने प्राप्त कहेवाय. अने ज्यारे बीजी गतिमां जनारो जीव सीधो थइने चाले त्यारे ते जीव तथा नारक वगेरे भवमां रहेलो जीव–गति विनानो जीव–'ऋजुगतिक' कहेवाय. कारण के अहीं 'अविग्रहगतिसमापन्न' शब्दनो अर्थ आ प्रमाणे कर्यो छेः–विग्रहगतिने नहीं पामेल–गमे तेवी स्थितिवाळो–गतिवाळो के गति

विग्रह.
विग्रहगतिप्राप्त.
ऋजुगतिक.
अविग्रहगति–

---

१. मूलच्छायाः—जीवा भगवन् ! किं विग्रहगतिसमापन्नकाः, अविग्रहगतिसमापन्नकाः ? गौतम ! विग्रहगतिसमापन्नका अपि, अविग्रहगतिसमापन्नका अपि. नैरयिका भगवन् ! किं विग्रहगतिसमापन्नकाः, अविग्रहगतिसमापन्नकाः ? गौतम ! सर्वेऽपि तावद् भवेयुरविग्रहगतिसमापन्नकाः. अथवा अविग्रहगतिसमापन्नकाः, विग्रहगतिसमापन्नकश्च. अथवाऽविग्रहगतिसमापन्नकाश्च, विग्रहगतिसमापन्नकाश्च. एवं जीव–एकेन्द्रियवर्जस्त्रिभङ्गः. देवो भगवन् ! महर्धिकः, महाद्युतिकः, महाबलः, महायशाः, महेशाख्यः, (महासौख्यः) महानुभावः, अव्युत्क्रान्तिकम् (अव्यवक्रान्तिकम्) च्यवमानः किञ्चित्कालं ह्रीप्रत्ययम्, जुगुप्साप्रत्ययम्, परिषहप्रत्ययम् आहारं नो आहारयति. अथ आहारयति, आह्रियमाणम् आहृतम्, परिणम्यमानं परिणतम्, प्रहीणं च आयुष्कं भवति. यत्र उपपद्यते तदाऽऽयुष्कं प्रतिसंवेदयति. तत् तिर्यग्योन्यायुष्कं वा, मनुष्याऽऽयुष्कं वा ? हन्त, गौतम ! देवो महर्धिको यावत्–मनुष्याऽऽयुष्कं वा.–अनु.

[illegible]

विनानो जे जीव ते 'अविग्रहगतिसमापन्न' कहेवाय. जो कदाच 'अविग्रहगतिसमापन्न' शब्दनो अर्थ 'सीधी गतिवाळो' एवो ज करवामां आवे तो सूत्रमां कहेल 'अविग्गहगइसमावन्नगा' ए शब्दनो अर्थ एवो थशे के, नारकिमां सीधी–ऋजु–गतिवाळा जीवो घणा होय छे. अने आ सूत्रनो ए अर्थ साथे एवुं निर्णीत थइ जशे के, नारकिमां अविग्रहगतिवाळा घणा ज होय छे, पण एक, बे नथी होता. अने एवो अर्थ इष्ट नथी. कारण के शास्त्रो द्वारा एम संभळाय छे के, 'नारकिमां अविग्रहगतिवाळा एक, बे जीवो पण उत्पन्न थाय छे' हवे जो पूर्वनो निर्णय कायम राखवामां आवे तो आ सांभळेली वात द्वारा ते अर्थमां वांधो आवशे अने ते पण इष्ट नथी. माटे 'अविग्रहगतिसमापन्न' शब्दनो अर्थ मात्र 'सीधी गतिवाळो' ज न करतां, 'सीधी गतिवाळो के गति विनानो' एवो अर्थ करवो. अने एवो अर्थ करवाथी सांभळेली अने लखेली बन्ने वातो संगत थशे. कारण के 'अविग्रहगतिसमापन्न' नो पूर्व प्रमाणे अर्थ करवाथी सूत्रनो अर्थ आ प्रमाणे थशे–अविग्रहगतिसमापन्न एटले सीधी गतिवाळा के गति विनाना जीवो घणा होय छे. एम अर्थ थवाथी एवो एक अर्थ तो नहीं थाय के, नारकिमां मात्र सीधी गतिवाळा जीवो ज घणा होय छे अने एम अर्थ न थवाथी पेली सांभळेली वातने अने सूत्रमां कहेली अविग्रहगतिवाळानी बहुपणानी वातने मानवामां बाध नथी आवतो–माटे ते बन्ने वातने संगत करवा पूर्वे कह्या प्रमाणे ज 'अविग्रहगतिसमापन्न' शब्दनो अर्थ करवो. टीकाकारे तो कोइ पण अभिप्रायथी 'अविग्रहगतिसमापन्न' शब्दनो 'सीधी गतिवाळा' एवो ज अर्थ कर्यो छे. ['जीवा णं भंते !'] इत्यादि प्रश्न सूत्र छे. जीवो अनंत होवाथी अने प्रत्येक समये विग्रह गतिवाळा तथा विग्रहगति विनाना जीवो घणा होवाने लीधे कहे छे के:–['विग्गहगइ' इत्यादि.] जीवो करतां नारको थोडा होवाथी तेमां विग्रहगतिवाळानो कदाचित् असंभव होय छे अने संभव होय छतां पण तेमां विग्रहगतिवाळा एक, बे पण होय छे अने विग्रहगति विनाना जीवो हंमेशा ज घणा होय छे, माटे कहे छे के, ['सव्वे वि ताव होज्ज अविग्गह–' इत्यादि.] ए त्रण विकल्पो कह्या छे. असुरादि विषे ए ज वातने अतिदेशथी कहे छे के, ['एवं' इत्यादि.] सामान्य जीवो अने एकेंद्रियो पूर्वोक्त युक्तिवडे विग्रहगतिवाळा अने विग्रहगति विनाना घणा ज होय छे माटे अहीं त्रण भांगा नथी कह्या. अने ए सिवाय तो त्रण ज भांगा जाणवा. माटे कहे छे के, ['तिअभंगो' त्ति] अर्थात् त्रण भांगा.

३. गत्यधिकारात् च्यवनसूत्रम्–*'महड्ढिए'* त्ति महर्द्धिको विमान–परिवाराद्यपेक्षया. *'महज्जुइए'* त्ति महाद्युतिकः शरीरा–ऽऽभरणाद्यपेक्षया. *'महब्बले'* त्ति महाबलः शारीरप्राणाऽपेक्षया. *'महायसे'* त्ति महायशा बृहत्प्रख्यातिः. *'महेसक्खे'* त्ति महेशो महेश्वर इति आख्याऽभिधानं यस्याऽसौ महेशाख्यः. *'महासोक्खे'* त्ति क्वचित्. *'महाणुभावे'* त्ति महाऽनुभावो विशिष्टवैक्रियादिकरणाऽचिन्त्यसामर्थ्यः. *'अविउक्कंतियं चयमाणे'* त्ति च्यवमानता किल उत्पत्तिसमयेऽपि उच्यते, इत्यत आहः–व्युत्क्रान्तिः उत्पत्तिः, तन्निषेधाद् अव्युत्क्रान्तिकम्; अथवा व्यवक्रान्तिर्मरणम्, तन्निषेधाद् अव्यवक्रान्तिकम्, तद्यथा भवति एवं च्यवमानो–जीवन् एव मरणकाले इत्यर्थः. *'अविउक्कंतियं चयं चयमाणे'* त्ति क्वचिद् दृश्यते, तत्र च चयं शरीरम्, *'चयमाणे'* त्ति त्यजन्, *'किंचिकालं'* ति कियन्तमपि कालं यावद् नाऽऽहारयेद् इति योगः. कुतः ? इत्याह–ह्रीप्रत्ययं लज्जानिमित्तम्, स हि च्यवनसमयेऽनुपक्रान्त एव पश्यति उत्पत्तिस्थानम् आत्मनः, दृष्ट्वा च तद् देवभवविसदृशं पुरुषपरिभुज्यमानस्त्रीगर्भाशयरूपं जह्रे इति ह्रिया च नाऽऽहारयति. तथा जुगुप्साप्रत्ययं कुत्सानिमित्तं शुक्रादेरुत्पत्तिकारणस्य कुत्साहेतुत्वात्. *'परिसहवत्तियं'* ति इह प्रक्रमात् परीषहशब्देनाऽरतिपरिषहो ग्राह्यः, ततश्चाऽरतिपरीषहनिमित्तम्, दृश्यते चाऽरतिप्रत्ययाद् लोकेऽपि आहारग्रहणवैमुख्यमिति, आहारं मनसा तथाविधपुद्गलोपादानरूपम्. *'अहे णं'* ति अथ लज्जाऽऽदिक्षणाऽनन्तरमाहारयति, बुभुक्षावेदनीयस्य चिरं सोढुम् अशक्यत्वादिति. *'आहारिज्जमाणे आहारिए'* इत्यादौ भावार्थः प्रथमसूत्रवत्. अनेन च क्रियाकाल–निष्ठाकालयोर् अभेदाऽभिधानेन तदीयाऽऽहारकालस्याऽल्पता उक्ता. तदनन्तरं च *'पहीणे य आउए भवइ'* त्ति चः समुच्चये, प्रक्षीणं प्रहीणं वा आयुर्भवति, ततश्च यत्रोत्पद्यते मनुजत्वादौ *'तं आउयं'*ति तस्य मनुजत्वादेरायुस्तदायुः, प्रतिसंवेदयति अनुभवति इति. *'तिरिक्खजोणियाउयं वा'* इत्यादौ देव–नारकाऽऽयुषोः प्रतिषेधः, देवस्य तत्राऽनुत्पादाद् इति.

३. गतिनो अधिकार होवाथी हवे च्यवनसूत्र कहे छे के:–['महड्ढिए' त्ति] विमान तथा परिवार वगेरेनी अपेक्षाए मोटी ऋद्धिवाळो, ['महज्जुइए' त्ति] शरीर तथा तेना घरेणानी अपेक्षाए मोटी कांतिवाळो, ['महब्बले' त्ति] शारीरिक प्राणनी अपेक्षाए मोटा बळवाळो, ['महायसे' त्ति] मोटी प्रख्यातिवाळो, ['महेसक्खे' त्ति] 'महेश्वर' नामनो. कोइ ठेकाणे ['महासोक्खे' त्ति] पाठ छे तेनो अर्थ–मोटा सुखवाळो. ['महाणुभावे' त्ति] विशेष रीते अनेक जातनां रूपो करवा वगेरे क्रियामां अत्यंत बळवाळो, ['अविउक्कंतियं चयमाणे' त्ति] च्यवमानपणुं उत्पत्तिना वखते पण होय छे माटे कह्युं छे के, 'अव्युत्क्रांतिक' एटले 'उत्पत्ति नहीं' अथवा 'अव्यवक्रांतिक' एटले 'मरण नहीं' अर्थात् च्यवतो–जीवतो ज मरवानी तैयारीवाळो. कोइ ठेकाणे ['अविउक्कंतियं चयं चयमाणे' त्ति] एवो पाठ छे. तेमां 'चय' एटले शरीरने 'चयमाणे' एटले छोडतो ['किंचिकालं' ति] केटलोक काळ खाय पण नहीं. शा माटे ? तो कहे छे के, शरमाय छे माटे. कारण के ज्यारे देव मरवानी तैयारीमां होय छे त्यारे पोते ज्यां उत्पन्न थवानो छे ते ठेकाणाने जोइने शरमाय छे. शरमावानुं कारण ए के, जे ठेकाणे पोताने उत्पन्न थवानुं छे ते ठेकाणुं पुरुषद्वारा भोगवाती स्त्रीनो गर्भाशय छे. अने ते देवना स्थान करतां नठारुं छे माटे ते शरमाय छे. अने तेथी ते आहार करतो नथी. वळी तेने घृणा आवे छे, तेनुं कारण ए के, पोतानी उत्पत्तिमां गंदकीरूप वीर्य वगेरे कारण छे एम ते जाणे छे अने तेथी तेने घृणा आवे छे. ['परिसहवत्तियं' ति] 'परीषह' शब्दथी अहीं 'अरतिपरिषह' जाणवो. कारण के अहीं तेनुं प्रकरण होवाथी ते ज अर्थ घटी शके तेम छे. अने ते अरतिने लीधे–चेन न पडवाथी–ते देव आहार करतो नथी. लोकमां पण चेन न पडवाथी आहार नहीं करवानुं प्रसिद्ध छे. (देवनो) आहार एटले तथाविध पुद्गलोने मनथी ग्रहण करवां. ['अहे णं' ति] हवे लज्जा वगेरे थइ गया पछीना समये आहार करे छे. कारण के भूखथी थती पीडा लांबा काळ सुधी तेनाथी सहाती नथी. ['आहारिज्जमाणे आहारिए'] इत्यादि सूत्रनो भावार्थ प्रथम प्रश्नना प्रथम सूत्रनी पेठे जाणवो. अने आ [illegible] अने [illegible] एकता कहेवाइ माटे तेना (देवना) आहारना वखतनी अल्पता कहेली छे एम [illegible] आहार [illegible]

[illegible]' ति] तेनुं आयुष्य क्षीण थाय छे अने ज्यां मनुष्य वगेरेमां उत्पन्न थवानुं छे ['तमाउयं'ति] ते मनुष्य वगेरेनुं आयुष्य अनुभवे छे. आयुष्य, अथवा ['तिरिक्खजोणिआउयं वा'] तिर्यंच योनिकना आयुष्यने अनुभवे छे. देवो देवगतिमां अने नारकिमां उत्पन्न थता नथी माटे ते बन्ने आयुष्यनो अहीं निषेध कर्यो छे.

गर्भशास्त्र.

२४१. प्र०—जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे किं सइंदिए वक्कमइ, अणिंदिए वक्कमइ?

२४१. प्र०— हे भगवन्! गर्भमां उत्पन्न थतो जीव शुं इंद्रियवाळो उत्पन्न थाय के इंद्रिय विनानो उत्पन्न थाय?

२४१. उ०—गोयमा! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ.

२४१. उ०—हे गौतम! इंद्रियवाळो पण उत्पन्न थाय अने इंद्रियविनानो पण उत्पन्न थाय.

२४२. प्र०—से केणट्ठेणं?

२४२. प्र०—हे भगवन्! तेनुं शुं कारण?

२४२. उ०—गोयमा! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ. से तेणट्ठेणं०.

२४२. उ०—हे गौतम! द्रव्येंद्रियो–स्थूल इंद्रियो–नी अपेक्षाए इंद्रिय विनानो उत्पन्न थाय अने भाव इंद्रिय—चैतन्य–नी अपेक्षाए इंद्रियवाळो उत्पन्न थाय. माटे हे गौतम! ते कारणथी पूर्वप्रमाणे कह्युं छे.

२४३. प्र०—जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ, असरीरी वक्कमइ?

२४३. प्र०—हे भगवन्! गर्भमां उपजतो जीव शुं शरीरवाळो उत्पन्न थाय के शरीर विनानो उत्पन्न थाय?

२४३. उ०—गोयमा! सिय ससरीरी वक्कमइ, सिय असरीरी वक्कमइ.

२४३. उ०—हे गौतम! शरीरवाळो पण उत्पन्न थाय अने शरीर विनानो पण उत्पन्न थाय.

२४४. प्र०—से केणट्ठेणं?

२४४. प्र०—हे भगवन्! तेनुं शुं कारण?

२४४. उ०—गोयमा! ओरालिय–वेउव्विय–आहारयाइं पडुच्च असरीरी वक्कमइ. तेया–कम्माइं पडुच्च ससरीरी वक्कमइ, से तेणट्ठेणं गोयमा!०.

२४४. उ०—हे गौतम! औदारिक, वैक्रिय अने आहारक–स्थूल–शरीरोनी अपेक्षाए शरीर विनानो उत्पन्न थाय अने सूक्ष्म–तैजस तथा कार्मण–शरीरनी अपेक्षाए शरीरवाळो उत्पन्न थाय. हे गौतम! ए कारणथी पूर्वप्रमाणे कह्युं छे.

२४५. प्र०—जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे तप्पढमयाए किं आहारं आहारेइ?

२४५. प्र०—हे भगवन्! जीव गर्भमां उत्पन्न थता वेंत ज शुं खाय छे?

२४५. उ०—गोयमा! माउओयं, पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं, किब्बिसं तप्पढमयाए आहारं आहारेइ.

२४५. उ०—हे गौतम! परस्पर एक बीजामां मळेलुं मातानुं आर्तव अने पितानुं वीर्य, जे कलुष अने किल्बिष छे. तेने ते जीव गर्भमां उत्पन्न थता वेंत ज खाय छे.

२४६. प्र०—जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे किं आहारं आहारेइ?

२४६. प्र०—हे भगवन्! गर्भमां गयो छतो जीव शुं खाय छे?

२४६. उ०—गोयमा! जं से माया नाणाविहाओ रसविगईओ आहारं आहारेइ, तदेकदेसेणं ओयं आहारेइ.

२४६. उ०—हे गौतम! गर्भमां गयो छतो जीव माताए खाधेल अनेक प्रकारना रसविकारोना एक भाग साथे माताना आर्तवने खाय छे.

---

१. 'ण' शब्द समुच्चयसूचक छे:–श्रीअभय०

२. मूलच्छायाः—जीवो भगवन्! गर्भं व्युत्क्रामन् किं सेन्द्रियो व्युत्क्रामति, अनिन्द्रियो व्युत्क्रामति? गौतम! स्यात् सेन्द्रियो व्युत्क्रामति, स्याद् अनिन्द्रियो व्युत्क्रामति. तत् केनार्थेन? गौतम! द्रव्येन्द्रियाणि प्रतीत्य अनिन्द्रियो व्युत्क्रामति, भावेन्द्रियाणि प्रतीत्य सेन्द्रियो व्युत्क्रामति. तत् तेनाऽर्थेन. जीवो भगवन्! गर्भं व्युत्क्रामन्! किं सशरीरी व्युत्क्रामति, अशरीरी व्युत्क्रामति? गौतम! स्यात् सशरीरी व्युत्क्रामति, स्याद् अशरीरी व्युत्क्रामति. तत् केनार्थेन? गौतम! औदारिक–वैक्रिय–आहारकाणि प्रतीत्य अशरीरी व्युत्क्रामति. तैजस–कार्मणे प्रतीत्य सशरीरी व्युत्क्रामति. तत् तेनाऽर्थेन गौतम!०. जीवो भगवन्! गर्भं व्युत्क्रामन् तत्प्रथमतया कम् आहारम् आहारयति? गौतम! मातुरोजः, पितुः शुक्रं तत् तदुभयसंश्लिष्टं कलुषम्, किल्बिषं तत्प्रथमतया आहारम् आहारयति. जीवो भगवन्! गर्भगतः सन् कम् आहारम् आहारयति? गौतम! यत् तन्माता नानाविधा रसविकृतीः आहारयति, तदेकदेशेन ओज आहारयति:—अनु०

२४७. प्र०—जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा, पासवणे इ वा, खेले इ वा, सिंघाणे इ वा, वंते इ वा, पित्ते इ वा ?

२४७. उ०—णो इणट्ठे समट्ठे.

२४८. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२४८. उ०—गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जं आहारेइ तं चिणाइ, तं सोइंदियत्ताए जाव-फासिंदियत्ताए, अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए, से तेणट्ठेणं०.

२४९. प्र०—जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए ?

२४९. उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

२५०. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२५०. उ०—गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ, सव्वओ उस्ससइ, सव्वओ निस्ससइ; अभिक्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ, अभिक्खणं उस्ससइ, अभिक्खणं निस्ससइ; आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ, आहच्च उस्ससइ, आहच्च नीससइ; माउजीवरसहरणी, पुत्तजीवरसहरणी, माउजीवपडिबद्धा पुत्तजीवफुडा तम्हा आहारेइ, तम्हा परिणामेइ; अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ, तम्हा उवचिणाइ; से तेणट्ठेणं जाव-नो पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए.

२५१. प्र०—कइ णं भंते ! माइअंगा पन्नत्ता ?

२५१. उ०—गोयमा ! तओ माइयंगा पन्नत्ता. तं जहा:—मंसे, सोणिए, मत्थुलुंगे.

२५२. प्र०—कइ णं भंते ! पिइयंगा पन्नत्ता ?

२५२. उ०—गोयमा ! तओ पिइयंगा पन्नत्ता. तं जहा:—अट्ठिं, अट्ठिमिंजा, केस-मंस-रोम-नहे.

२४७. प्र०—हे भगवन् ! गर्भमां गएल जीवने विष्टा होय, मूत्र होय, श्लेष्मा होय, नाकनो मेल होय, वमन होय अने पित्त होय ?

२४७. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी—ए न होय.

२४८. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२४८. उ०—हे गौतम ! गर्भमां गया पछी जीव जे आहारने खाय छे, जे आहारनो चय करे छे ते आहारने कानपणे अने यावत्—चामडीपणे, हाडकापणे, मज्जापणे, वाळपणे, दाढीपणे, रुंवाटापणे अने नखपणे परिणमावे छे. माटे हे गौतम ! ते कारणथी गर्भमां गएला जीवने विष्टादिक नथी होतुं.

२४९. प्र०—हे भगवन् ! गर्भमां गएलो जीव मुखद्वारा कोळियारूप आहारने लेवा शक्त छे ?

२४९. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी—शक्त नथी.

२५०. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२५०. उ०—हे गौतम ! गर्भमां गएलो जीव सर्व आत्मवडे आहार करे छे, सर्व आत्मवडे परिणमावे छे, सर्व आत्मवडे उच्छ्वास ले छे, सर्व आत्मवडे निःश्वास ले छे, कदाचित् आहार करे छे, कदाचित् परिणमावे छे, कदाचित् उच्छ्वास ले छे अने कदाचित् निःश्वास ले छे. तथा पुत्र जीवने रस पहुंचाडवामां कारणभूत अने माताने रस लेवामां कारणभूत जे मातृजीवरस-हरणी नामनी नाडी छे ते माताना जीव साथे संबद्ध छे अने पुत्रना जीवने अडकेली छे तेनाथी पुत्रनो जीव आहार ले छे अने आहारने परिणमावे छे. तथा बीजी पण एक नाडी छे, जे पुत्रना जीव साथे संबद्ध छे अने माताना जीवने अडकेली छे, तेनाथी पुत्रनो जीव आहारनो चय अने उपचय करे छे. हे गौतम ! ते कारणथी गर्भमां गएलो जीव मुखद्वारा कोळियारूप आहार लेवाने शक्त नथी.

२५१. प्र०—हे भगवन् ! मातानां अंगो केटलां कह्यां छे ?

२५१. उ०—हे गौतम ! मातानां अंगो त्रण कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:—मांस, शोणित—लोही—अने मस्तुलुंग—माथानुं भेजुं.

२५२. प्र०—हे भगवन् ! पितानां अंगो केटलां कह्यां छे ?

२५२. उ०—हे गौतम ! पितानां अंगो त्रण कह्यां छे. ते आ प्रमाणे:—हाडकां, मज्जा अने केश, दाढी, रोम तथा नख.

---

१. मूलच्छाया:—जीवस्य भगवन् ! गर्भगतस्य सतोऽस्ति उच्चार इति वा, प्रस्रवणम् इति वा, खेल इति वा, सिङ्घानकम् इति वा, [illegible] इति वा, पित्तम् इति वा? नाऽयम् अर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् यद् आहारयति, तद् चिनोति, तत् श्रोत्रेन्द्रियतया यावत्-स्पर्शेन्द्रियतया, अस्थि-अस्थिमज्जा-केश-श्मश्रु-रोम-नखतया, तत् तेनाऽर्थेन०. जीवो भगवन् ! गर्भगतः सन् [illegible] कावलिकम् आहारम् आहर्तुम् ? गौतम ! नाऽयम् अर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! जीवो गर्भगतः सन् सर्वत आहारयति, [illegible] परिणमयति, सर्वत उच्छ्वसति, सर्वतः निःश्वसति, अभिक्षणम् आहारयति, अभिक्षणं परिणमयति, अभिक्षणम् उच्छ्वसति, अभिक्षणं निःश्वसति, [illegible] आहारयति, आहत्य परिणमयति, आहत्य उच्छ्वसति, आहत्य निःश्वसति; मातृजीवरसहरणी, पुत्रजीवरसहरणी, मातृजीवप्रतिबद्धा पुत्रजीवस्पृष्टा, [illegible] आहारयति, तस्मात् परिणमयति; अपराऽपि च पुत्रजीवप्रतिबद्धा मातृजीवस्पृष्टा तस्मात् चिनोति, तस्माद् उपचिनोति; तत् तेनार्थेन यावत्-नो [illegible] कावलिकम् आहारम् आहर्तुम्. कति भगवन् ! मात्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि मात्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथा:—[illegible], [illegible], [illegible] कति भगवन् ! पित्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! त्रीणि पित्रङ्गानि प्रज्ञप्तानि. तद्यथा:—अस्थि, [illegible]

[illegible]. प्र०—अम्मापिइए णं भंते ! सरीरए केवइयं कालं [illegible] ?

[illegible]. उ०—गोयमा ! जावइयं से कालं भवधारणिज्जे सरीरए [illegible] भवइ एवतियं कालं संचिट्ठइ. अहे णं समए, समए, [illegible]माणे, वोयसिज्जमाणे चरमकालसमयंसि वोच्छिन्ने भवइ.

२५४. प्र०—जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उव-[illegible] ?

२५४. उ०—गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा.

२५५. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२५५. उ०—गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्ज-[illegible] पज्जत्तए वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए पराणीएणं आगयं सोच्चा, निसम्म पएसे निच्छुभइ, निच्छुभित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता चाउरंगिणिं सेन्नं विउव्वइ, चाउरं-गिणिं सेन्नं विउवित्ता चाउरंगिणीए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ. से णं जीवे अत्थकामए, रज्जकामए, भो-गकामए, कामकामए; अत्थकंखिए, रज्जकंखिए, भोगकंखिए, कामकंखिए; अत्थपिवासए, रज्जपिवासए, भोगपिवासए, कामपिवा-सए; तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणभाविए; एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज नेरइएसु उववज्जइ. से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव—अत्थे-गईए उववज्जेज्जा, अत्थेगईए नो उववज्जेज्जा.

२५६. प्र०—जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?

२५६. उ०—गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा.

२५७. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२५७. उ०—गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा, निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे, तिव्वधम्माणुरागरत्ते, से णं जीवे धम्मकामए, पुण्णकामए, सग्गकामए,

२५३. प्र०—हे भगवन् ! ते माता अने पितानां अंगो संताननां शरीरमां केटला काळ सुधी रहे ?

२५३. उ०—हे गौतम ! संताननुं भवधारणीय शरीर—जन्मथी जीवतां सुधी रहेनारुं शरीर—जेटला काळ सुधी टके, तेटला काळ सुधी ते अंगो रहे. अने ज्यारे ते भवधारणीय शरीर समये समये हीन थतुं जाय छे अने छेवटने समये ज्यारे ते नष्ट थाय छे त्यारे पेलां माता पितानां अंगो पण नाश पामे छे.

२५४. प्र०—हे भगवन् ! गर्भमां गया पछी जीव नैरयिकोमां उत्पन्न थाय ?

२५४. उ०—हे गौतम ! कोइ एक थाय अने कोइ एक न थाय.

२५५. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२५५. उ०—हे गौतम ! ते संज्ञी पंचेंद्रिय अने सर्व पर्याप्तिथी पूर्ण थएलो जीव वीर्यलब्धिवडे, वैक्रियलब्धिवडे शत्रुनुं लश्कर आवेलुं सांभळी, अवधारी आत्मप्रदेशोने गर्भथी बहारना भागे फेंके छे, फेंकी वैक्रियसमुद्‌घातवडे समवहणी, चतुरंगी सेनाने विकुर्वे छे, एवी सेनाने विकुर्वी ते सेनावडे शत्रुना लश्कर साथे युद्ध करे छे. अने ते पैसानो लालचु, राज्यनो लालचु, भोगनो लालचु, कामनो लालचु, पैसामां लंपट, राज्यमां लंपट, भोगमां लंपट, काममां लंपट, पैसानो तरस्यो, राज्यनो तरस्यो, भोगनो तरस्यो अने कामनो तरस्यो जीव तेमां चित्तवाळो, तेमां मनवाळो, तेमां आत्मपरिणामवाळो, तेमां अध्यवसित थएलो, तेमां अध्यवसान—प्रयत्न—वाळो, तेमां सावधानतावाळो तेने माटे क्रियाओनो भोग आपनार अने तेना ज संस्कारवाळो ए समये जो मरण पामे तो नैरयिकोमां उत्पन्न थाय. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी यावत्—कोइ जीव नरके जाय अने कोइ जीव न जाय.

२५६. प्र०—हे भगवन् ! गर्भमां गएलो जीव देवलोके जाय?

२५६. उ०—हे गौतम ! कोइ जाय अने कोइ न जाय.

२५७. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२५७. उ०—हे गौतम ! ते संज्ञी पंचेंद्रिय अने सर्व पर्याप्तिथी पूर्ण थएलो जीव तथारूप श्रमण के माहण (ब्राह्मण) नी पासे एक पण धार्मिक अने आर्य वचन सांभळी, अवधारी तुरत ज संवेगथी धर्ममां श्रद्धाळु बनी, धर्ममां तीव्र अनुरागथी रंगाएलो,

---

१. मूलच्छाया:—अम्बापैतृकं भगवन् ! शरीरं कियन्तं कालं संतिष्ठते ? गौतम ! यावन्तं कालं तस्य भवधारणीयं शरीरम् अव्यापन्नं भवति एतावन्तं [illegible] संतिष्ठते. अथ समये, समये, व्यवकृष्यमाणम्, व्यवकृष्यमाणं चरमकालसमये व्युच्छिन्नं भवति. जीवो भगवन् ! गर्भगतः सन् नैरयिकेषु उपपद्येत ? गौतम ! अस्त्येकक उपपद्येत, अस्त्येकको नोपपद्येत. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! स संज्ञी पञ्चेन्द्रियः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको वीर्यलब्ध्या, वैक्रियलब्ध्या पराऽनीकम् आयातं श्रुत्वा, निशम्य प्रदेशान् निक्षिपति, निक्षिप्य वैक्रियसमुद्घातं समवहन्ति, समवहत्य चतुरङ्गिणीं सेनां विकुर्वति, चतुरङ्गिणीं सेनां विकुर्व्य, [illegible] सेनया पराऽनीकेन सार्धं संग्रामं संग्रामयते. स जीवोऽर्थकामुकः, राज्यकामुकः, भोगकामुकः, कामकामुकः; अर्थकाङ्क्षी, राज्यकाङ्क्षी, भोगकाङ्क्षी [illegible] अर्थपिपासकः, राज्यपिपासकः, भोगपिपासकः, कामपिपासकः; तच्चित्तः, तन्मनाः, तल्लेश्यः, तदध्यवसितः, तत्तीव्राऽध्यवसानः, तदर्थोपयुक्तः, [illegible] तद्भावनाभावितः; एतस्मिन् अन्तरे कालं कुर्यात्, नैरयिकेषु उपपद्यते. तत् तेनाऽर्थेन गौतम ! यावत्—अस्त्येकक उपपद्यते, [illegible] नोपपद्यते. जीवो भगवन् ! गर्भगतः सन् देवलोकेषु उपपद्येत ? गौतम ! अस्त्येकक उपपद्यते, अस्त्येकको नोपपद्यते. तत् केनार्थेन ? [illegible] [illegible] माहनस्य वा अन्तिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा, नि-[illegible]

मोक्खकामए; धम्मकंखिए, पुण्णकंखिए, सग्गकंखिए, मोक्खकंखिए; धम्मपिवासए पुण्णपिवासए, सग्ग–मोक्खपिवासए; तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए एयंसि णं अंतरंसि कालं करेज्ज देवलोगेसु उववज्जइ. से तेणट्ठेणं गोयमा! ०.

ते जीव धर्मनो लालचु, पुण्यनो लालचु, स्वर्गनो लालचु, मोक्षनो लालचु, धर्ममां सक्त, पुण्यमां सक्त, स्वर्गमां सक्त, मोक्षमां सक्त, धर्मनो तरस्यो, पुण्यनो, स्वर्गनो अने मोक्षनो तरस्यो, तेमां चित्तवाळो, तेमां मनवाळो, तेमां आत्मपरिणामवाळो, तेमां अध्यवसित थएलो, तेमां तीव्र प्रयत्नवाळो, तेमां सावधानतावाळो, तेमां क्रियाओनो भोग आपनारो अने तेना ज संस्कारवाळो ए समये मरण पामे तो देवलोके जाय. माटे हे गौतम! ते हेतुथी पूर्व प्रमाणे कह्युं छे.

२५८. प्र०—*जीवे णं भंते! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा, पासिल्लए वा, अंबखुज्जए वा; अच्छेज्जए वा, चिट्ठेज्जए वा, निसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, माउए सुवमाणीए सुवइ, जागरमाणीए जागरइ, सुहियाए सुहिए भवइ, दुहियाए दुहिए भवइ?*

२५८. प्र०—हे भगवन्! गर्भमां गएलो जीव चत्तो होय, पडखाभेर होय, केरीनी जेवो कुब्ज होय, उभेलो होय, बेठेलो होय के सूतेलो होय? तथा ज्यारे माता सूती होय त्यारे सूतो होय, ज्यारे माता जागती होय त्यारे जागतो होय, माता सुखी होय त्यारे सुखी होय अने ज्यारे माता दुःखी होय त्यारे दुःखी होय?

२५८. उ०—*हंता गोयमा! जीवे णं गब्भगए समाणे जाव–दुहियाए दुहिए भवइ, अहे णं पसवणकालसमयंसि सीसेण वा, पाएहिं वा आगच्छति, सम्मं आगच्छइ, तिरियं आगच्छइ, विणिहायं आवज्जइ, वण्णवज्झाणि य से कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं, निहत्ताइं, कडाइं, पट्ठवियाइं, अभिनिविट्ठाइं, अभिसमन्नागयाइं, उदिन्नाइं, नो उवसंताइं भवंति, तओ भवइ दुरूवे, दुवन्ने, दुरसे, दुफासे, अणिट्ठे, अकंते, अप्पिए, असुभे, अमणुन्ने, अमणामे; हीणस्सरे; दीणस्सरे, अणिट्ठस्सरे, अकंतस्सरे, अप्पियस्सरे, असुभस्सरे, अमणुन्नस्सरे, अमणामस्सरे; अणाएज्जवयणे, पच्चायाए या वि भवइ. वण्णवज्झाणि य से कम्माइं नो बद्धाइं, पसत्थं णेयव्वं जाव–आदिज्जवयणे पच्चायाए या वि भवइ.*

२५८. उ०—हे गौतम! हा, गर्भमां गएलो जीव यावत्–ज्यारे माता दुःखी होय त्यारे दुःखी होय. हवे जो ते गर्भ, प्रसव समये माथाद्वारा के पगद्वारा बहार आवे, तो सरखी रीते आवे अने जो आडो थइने बहार आवे तो मरण पामे. (जो कदाच जीव तो बहार आवे तो) अने ते जीवना कर्मो जो अशुभ रीते बद्ध होय स्पृष्ट होय, निधत्त होय, कृत होय, प्रस्थापित होय, अभिनिविष्ट होय, अभिसमन्वागत होय, उदीर्ण होय अने उपशांत न होय तो ते जीव कदरूपो, दुर्वर्णवाळो, दुर्गंधवाळो, खराब रसवाळो, खराब स्पर्शवाळो, अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, सांभर्यो पण न सारो लागे तेवो, हीन स्वरवाळो, दीन स्वरवाळो, अनिष्ट स्वरवाळो, अकांत स्वरवाळो, अप्रिय स्वरवाळो, अशुभ स्वरवाळो, अमनोज्ञ स्वरवाळो, सांभर्यो पण न सारो लागे तेवा स्वरवाळो अने अनादेय वचन (जेनुं वचन कोइ न माने तेवो) थाय अने जो ते जीवना कर्मो अशुभ रीते बद्ध न होय तो बधुं प्रशस्त जाणवुं यावत्–ते जीव आदेय वचन (जेनुं वचन बधा माने तेवो) थाय छे.

सेवं भंते!, सेवं भंते! त्ति.

हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे. एम कही यावत्– विचरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए **सिरीभगवईसुत्ते** पढमसये सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो.

---

१. मूलच्छायाः—मोक्षकामुकः; धर्मकाङ्क्षी, पुण्यकाङ्क्षी, स्वर्गकाङ्क्षी, मोक्षकाङ्क्षी; धर्मपिपासकः, पुण्यपिपासकः, स्वर्ग–मोक्षपिपासकः; तच्चित्तः, तन्मनाः, तल्लेश्यः, तदध्यवसितः, तत्तीव्राऽध्यवसानः, तदर्थोपयुक्तः, तदर्पितकरणः, तद्भावनाभावितः एतस्मिन् अन्तरे कालं कुर्यात्, देवलोकेषु उपपद्यते. तद् तेनार्थेन गौतम!०. जीवो भगवन्! गर्भगतः सन् उत्तानको वा, पार्श्वीयो वा, आम्रकुब्जको वा, आसीद् वा, तिष्ठेद् वा, निषीदेद् वा, त्वग्वर्तयेद् वा, मातरि स्वपत्यां स्वपिति, जाग्रत्यां जागर्ति, सुखितायां सुखितो भवति, दुःखितायां दुःखितो भवति? हन्त, गौतम! जीवो गर्भगतः सन् यावत्–दुःखितायां दुःखितो भवति, अथ प्रसवनकालसमये शीर्षेण वा, पादाभ्यां वा आगच्छति, सम्यग् आगच्छति; तिर्यग् आगच्छति, विनिघातम् आपद्यते, वर्णवध्यानि च तस्य कर्माणि बद्धानि, पुष्टानि, निधत्तानि, कृतानि, प्रस्थापितानि, अभिनिविष्टानि, अभिसमन्वागतानि, उदीर्णानि, उपशान्तानि भवन्ति, ततो भवति दूरूपः, दुर्वर्णः, दूरसः, दुःस्पर्शः; अनिष्टः, अकान्तः, अप्रियः, अशुभः, अमनोज्ञः, अमनोमः, हीनस्वरः, दीनस्वरः, अनिष्टस्वरः, अकान्तस्वरः, अप्रियस्वरः, अशुभस्वरः, अमनोज्ञस्वरः अमनोमस्वरः; अनादेयवचनः प्रत्याजातश्चाऽपि भवति. वर्णवध्यानि च तस्य कर्माणि नो बद्धानि, प्रशस्तं ज्ञातव्यम्, यावत्–आदेयवचनः प्रत्याजातश्चाऽपि भवति. तदेवं भगवन्!, तदेवं भगवन्! इति:–अनु०

४. उत्पत्त्यधिकाराद् इदमाह:—*'जीवे णं'* इत्यादि. *'गब्भं वक्कममाणे'* त्ति गर्भे व्युत्क्रामन् गर्भे उत्पद्यमान इत्यर्थः. *'दव्विंदियाइं'* ति निर्वृत्ति-उपकरणलक्षणानि, तानि हि इन्द्रियपर्याप्तौ सत्यां भविष्यन्ति इत्यनिन्द्रिय उत्पद्यते, *'भाविंदियाइं'* ति लब्धि-उपयोगलक्षणानि, तानि च संसारिणः सर्वावस्थाभावीनि इति. *'ससरीर'* त्ति सह शरीरेण इति सशरीरी, इन्समासान्तभावात्. *'असरीरि'* त्ति शरीरवान् औदारिकादिशरीरापेक्षया, तन्निषेधाद् अशरीरी. *'वक्कमइ'* त्ति व्युत्क्रामति उत्पद्यते इत्यर्थः. *'तप्पढमयाए'* त्ति तस्य गर्भव्युत्क्रमणस्य प्रथमता तत्प्रथमता तया, *'किं'* इति प्राकृतत्वात् कम् ? *'माउओयं'* ति मातुरोजो जनन्या आर्तवं शोणितम् इत्यर्थः. *'पिउसुक्कं'* ति पितुः शुक्रम्, इह यदिति शेषः. *'तं'* ति आहारम् इति योगः. *'तदुभयसंसिट्ठं'* ति तयोरुभयं तदुभयम्, तच्च तत् संश्लिष्टं च, संसृष्टं वा संसर्गवत् तदुभयसंश्लिष्टम्, तदुभयसंसृष्टं वा. *'जं से'* त्ति या तस्य गर्भसत्त्वस्य माता, *'रसविगइओ'* त्ति रसरूपा विकृतीर्दुग्धाद्या रसविकारास्ताः, *'तदेगदेसेणं'* ति तासां रसविकृतीनाम् एकदेशस्तदेकदेशः, तेन सह ओज आहारयति इति. *'उच्चारे इ व'* त्ति उच्चारो विष्टा, इतिरुपप्रदर्शने, वा विकल्पे. खेलो निष्ठीवनम्, *'सिंघाणं'* ति नासिकाश्लेष्मा. *'केस-मंसु-रोम-नहत्ताए'* त्ति इह श्मश्रूणि कूर्चकेशाः. रोमाणि कक्षादिकेशाः. *'जीवे णं'* इत्यादि. *'सव्वओ'* त्ति सर्वात्मना *'अभिक्खणं'* ति पुनः पुनः. *'आहच्च'* त्ति कदाचिद् आहारयति, कदाचिद् न आहारयति, तथास्वभावत्वात्, यतश्च सर्वत आहारयति इत्यादि, ततो मुखेन न प्रभुः कावलिकमाहारमाहर्तुम् इति भावः. अथ कथं सर्वत आहारयति ? इत्याह:—*'माउजीवरसहरणी'* इत्यादि. रसो ह्रियते आदीयते यया सा रसहरणी—नाभिनालम्—इत्यर्थः. मातृजीवस्य रसहरणी मातृजीवरसहरणी. किम् ? इत्याह:—*'पुत्तजीवरसहरणी'* पुत्रस्य रसोपादाने कारणत्वात्. कथमेवम् ? इत्याह:—मातृजीवप्रतिबद्धा सती सा यतः *'पुत्तजीवफुड'* त्ति पुत्रजीवं स्पृष्टवती. इह च प्रतिबद्धता गाढसंबन्धः, तदंशत्वात्. स्पृष्टता च संबन्धमात्रम्, अतदंशत्वात्. अथवा मातृजीवरसहरणी, पुत्रजीवरसहरणी च इति द्वे नाड्यौ स्तः. तयोश्च आद्या मातृजीवप्रतिबद्धा पुत्रजीवस्पृष्टा इति. *'तम्हे'* त्ति यस्माद् एवं तस्माद् मातृजीवप्रतिबद्धया रसहरण्या पुत्रजीवस्पर्शनाद् आहारयति. *'अवरा वि य'* त्ति पुत्रजीवरसहरण्यपि च पुत्रजीवप्रतिबद्धा सती मातृजीवं स्पृष्टवती *'तम्ह'* त्ति यस्माद् एवं तस्मात् चिनोति शरीरम्. उक्तं च तन्त्रान्तरे—"पुत्रस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते, यथाऽसौ पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया" इति.

४. उत्पत्तिनो अधिकार चालतो होवाथी हवे आ सूत्र कहे छे:—['जीवे णं' इत्यादि.] ['गब्भं वक्कममाणे' त्ति] गर्भमां उपजतो. ['दव्विंदियाइं' गर्भ-

---

१. श्रीतन्दुलवैचारिकप्रकीर्णकमां (तंदुलवेआलिअपइण्णग-पयन्ना-मां) गर्भ संबंधे तथा शरीरसंबंधे सविस्तर हकीकत आ रीते छे:—

"दोन्नि अहोरत्तसए संपुण्णे सत्तसत्तरिं चेव, गब्भम्मि वसइ जीवो अद्ध-अहोरत्तमद्धं च. एए अहोरत्ता नियमा जीवस्स गब्भवासम्मि, हीणाहिआ उ इत्तो उवघायवसेण जायंति. ××× आउसो ! इत्थीए नाभिहिट्ठा सिराजुगं पुप्फनालिआगारं, तस्स य हिट्ठा जोणी अहोमुहा संठिआ कोसा. तस्स य हिट्ठा चूअस्स मंजरी तारिसा उ मंसस्स, ते रिउकाले फुडिआ सोणिअलवया विमुंचंति. कोसायारं जोणिं संपत्ता सुक्कमीसिआ जइआ, तइआ जीवुववाए जुग्गा भणिआ जिणिंदेहिं. बारस चेव मुहुत्ता उवरिं विद्धंसं गच्छइ सा उ, जीवाणं परिसंखा लक्ख-पुहुत्तं च उक्कोसं. पणपण्णा य परेणं जोणी पमिलायए महिलिआणं, पण-सत्तरी य परओ पाएण पुमं भवे अबीओ. वाससयाउयमेअं परेण जा होइ पुव्वकोडीओ, तस्सद्धे अमिलाया सव्वाउयवीसभागे य. रत्तुक्कडा य इत्थी लक्खपुहुत्तं च बारस मुहुत्ता, पिउसंखसयपुहुत्तं बारसवासाओ गब्भस्स. दाहिणकुच्छी पुरिसस्स होइ वामाए इत्थीआओ य, उभयंतरे नपुंसे तिरिए अट्ठेव वरिसाइं. इमो खलु जीवो अम्मापिउसंजोगे माऊयं पिउसुक्कं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमयाए आहारं आहरित्ता गब्भत्ताए वक्कमइ. गाथा—सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ अब्बुअं, अब्बुआ जायए पेसी पेसीओ वि घणं भवे. तो पढमे मासे करिसूणं पलं जायइ, बीए मासे पेसी संजायए घणा, तइए मासे माउए डोहलं जणइ, चउत्थे मासे माऊए अंगाइं पीणेइ, पंचमे मासे पंच पिंडिआउ—पाणिपायं, सिरं चेव निव्वत्तेइ, छट्ठे मासे पित्तसोणिअं उवचिणेइ, सत्तमे मासे सत्त सिरासयाइं, पंच पेसीसयाइं, नव धमणी, नवनउइं चेव रोमकूवसयसहस्साइं निव्वत्तेइ विणा केस–समंसुणा; सह केस–समंसुणा अद्धुट्ठाओ रोमकूवकोडीओ निव्वत्तेइ, अट्ठमे मासे वित्तिकप्पो हवइ. × × × × गाथा—तस्स [illegible] सरिसा उप्पलनालोवमा हवइ नाभी, रसहरणी जणणीए सयाइ नाभीए पडिबद्धा. नाभीए तीए गब्भो ओयं आईअइ जायंतीए, ओयाए [illegible] गब्भो विवड्ढइ जाव जाओ त्ति. × × × × × आउसो ! तओ [illegible] [illegible]

"जीव गर्भनी अंदर बसेंने साडा सत्योतेर २७७॥ दिवस अर्थात् नव मास उपर साडा सात दिवस सुधी रहे छे. हमणां कह्या एटला दिवसो सुधी तो जीव गर्भमां रहेवो ज जोइए, हवे जो कदाच कोइ जीव उपर कहेल दिवसो करतां वधारे के ओछा दिवस सुधी रहे तो एम समजवुं के गर्भने कांइ उपघात–अडचण–थयो छे. चिरंजीव शिष्य ! स्त्रीनी नाभि (डुंटी)नी नीचे फुलना नाळना जेवा घाटवाळी बे नाडीओ होय छे, अने तेनी नीचे नीचा मुखवाळी अने फुलना डोडा जेवी योनि होय छे. तेनी नीचे आंबानी मांजरना जेवा घाटवाळी मांसनी मांजर होय छे. ते मांजर ऋतुसमये फूटे छे अने तेमांथी लोहीना बिंदु झरे छे. हवे ते झरता लोहीना बिंदुओमांथी जेटला बिंदुओ (पुरुषना) वीर्यथी मिश्रित थइ ते डोडाना जेवा आकारवाळी योनिमां जाय छे तेटला बिंदुओ जीवनी उत्पत्तिने योग्य छे एम जिनेश्वरोए भण्युं छे. बार मुहूर्त पछी ते योनि (अर्थात् योनिमां आवेला पूर्वोक्त प्रकारना लोहीना बिंदुओमां रहेली जीवनी उत्पत्तिनी योग्यता) नाश पामे छे. अने तेनी अंदर वधारेमां वधारे बेथी नवलाख जीवो उपजे छे. पंचावन वर्ष पछी स्त्रीनी योनि म्लान थाय छे अर्थात् ते गर्भोत्पत्तिने माटे योग्य नथी रहेती. तथा पंचोतेर वर्ष पछी पुरुष घणा भागे निर्बीज थइ जाय छे. उपरनी वात सो वर्षनी आवरदावाळा मनुष्यो माटे जाणवानी छे. अने तेथी उपरनी आवरदावाळा–पूर्वकोटि सुधी जीवनारा–मनुष्यो माटे विशेष छे. ते आ छे:—तेवी जातनी स्त्रीओनी योनि ज्यारे तेनुं अडधुं आयुष्य बाकी रहे छे त्यारे गर्भोत्पत्तिने माटे अयोग्य थाय छे तथा तेवी जातना पुरुषो ज्यारे तेओना आयुष्यनो वीशमो भाग बाकी रहे त्यारे निर्बीज बने छे. ऋतुकाळने प्राप्त थएली स्त्रीनी योनिमां बार मुहूर्त जेटला समये बेथी नव लाख जीवो उत्पन्न थाय छे. तथा वधारेमां वधारे एक जीवने बसेंथी नवसें सुधी जनक (पिता) होइ शके छे अने वधारेमां वधारे जीव गर्भावासमां बार वरस सुधी रहे छे. स्त्रीनी जमणी कुखे पुरुष (पुत्र) उत्पन्न थाय छे, डाबी कुखे स्त्री (पुत्री) उत्पन्न थाय छे अने डाबुं तथा जमणुं ए बन्नेनी वच्चे नपुंसक पेदा थाय छे. तिर्यंचोमां वधारेमां वधारे जीव गर्भावासमां आठ वर्ष सुधी रहे छे. ज्यारे माता अने पितानो संयोग थाय छे त्यारे पहेले वखते जीव मातानुं लोही अने पितानुं वीर्य, ते बन्नेथी मिश्रित थएल, घृणा उपजे तेवो मलिन

तत्थ जायइ. अप्पं ओयं, बहु सुक्कं. पुरिसो तत्थ जायइ. दुण्हं पि रत्त–सुक्काणं तुल्लभावे नपुंसओ. इत्थीओयसमाओगे बिंबं तत्थ जायइ × × × × × कोइ पुण पावकारी बारस संवच्छराइं उक्कोसं, वसइ गब्भवासे. × × × आउसो ! आणुपुव्वेणं अट्ठारसपीठकरंडगसधीओ, बारस पंसुलिआकरंडे, छ पंसुलिए कडाहे, विहत्थिआ कुच्छी, चउरंगुलिआ गीवा, चउपलिआ जिब्भा, दुपलियाणि अच्छीणि, चउप्पलकवालं सिरं, बत्तीसं दंता, सत्तंगुलिआ जीहा, अद्धुट्ठपलयं हिअयं, पणवीसपलं कालिज्जं. दो अंता पंचवामा पण्णत्ता. तं जहा—थुल्लंते य, तणुअंते य. तत्थ णं जे से थूलंते, तेणं उच्चारे परिणमइ. तत्थ णं जे से तणुअंते, तेणं पासवणेणं परिणमइ. दो पासा पन्नत्ता. तं जहाः–वामपासे,दाहिणपासे तत्थ ण जे से वामपासे से सुहपरिणामे, तत्थ णं जे से दाहिणपासे से दुहपरिणामे. आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठिसंधिसयं, सत्तुत्तरं मम्मसयं, तिण्णि अट्ठिदामसयाइं, नव नाडिआसयाइं, सत्त सिरासयाइं, पंच पेसीसयाइं, नव धमणीओ, नवनउइं च रोमकूवसयसहस्साइं विणा केस–रामंसुणा, सह केस–समंसुणा, अद्धुट्ठाओ रोमकूवकोडीओ. आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं उड्ढगामिणीणं सिरं उवागयाणं जाउ रसहरणीओ त्ति वुच्चइ जासिं णं निरुवघाएणं चक्खु–सोय–घाण–जीहाबलं च भवइ × × × आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठिसिरासयं नाभिप्पभवाणं अहोगामिणीणं पायतल उवागयाणं जासिं णं निरुवघाएणं जंघाबल भवइ. × × × आउसो ! इमम्मि सरीरए सट्ठिसिरासय नाभिप्पभवाणं तिरियगामिणीणं हत्थतलमुवागयाणं. जासिं णं निरुवघाएण बाहुबलं हवइ. × × × आउसो ! इमस्स जंतुस्स सट्ठिसिरासय नाभिप्पभवाणं अहोगामिणीणं गुदपविट्ठाणं. जासिं ण निरुवघाएण मुत्त–पुरिस–वाउकम्म पवत्तइ. × × × आउसो ! इमस्स जंतुस्स पणवीस सिराउ सिंभधारिणीउ, पणवीस सिराउ पित्तधारिणीउ, दस सिराउ सुक्कधारिणीओ, सत्त सिरासयाइं पुरिसस्स. तीसूणाइं इत्थिआए वीसूणाइं पंडगस्स आउसो ! इमस्स जंतुस्स रुहिरस्स आढगं, वसाए अद्धाढगं, मत्थुलुंगस्स पत्थो, मुत्तस्स आढयं, पुरिसस्स पत्थो, पित्तस्स कुलवो, सिंभस्स कुलवो, सुक्कस्स अद्धकुलवो, जं जाहे दुट्ठं भवइ तं ताहे अइप्पमाण भवइ. पंचकोट्ठे पुरिसे, छक्कोट्ठा इत्थिआ. नवसोए पुरिसे, इक्कारससोआ इत्थिआ, पंच पेसीसयाइं पुरिसस्स, तीसूणाइं इत्थिआए, वीसूणाइं पंडगस्स. × × × × × जं पिंडिआसु ऊरु पइट्ठिआ तट्ठिआ कडिपिट्ठी, कडिअट्ठिवेढिआइं अट्ठारस पिट्ठिअट्ठीणं दो अच्छिअट्ठिआइं, सोलस गीवट्ठिआ मुणेअव्वा, पिट्ठीपइट्ठिआउ बारस किल पंसुली हुंति ''—श्रीतन्दुलवैचारिकप्रकीर्णक

पदार्थ खाय छे. अने तेने खाइने गर्भपणे उपजे छे. त्यार बाद सात दिवसे ते गर्भ कललरूप थाय छे. पछी बीजा सात दिवसे ते गर्भ परपोटा जेवो थाय छे. पछी ते परपोटानी पेशी बने छे अने पछी ते, कठण पेशी जेवो थाय छे. पहेले महीने गर्भनुं वजन एक कर्ष ऊणुं एक पल थाय छे. (सोळ मासानो एक कर्ष तथा चार कर्षनो एक पल थाय छे.) बीजे मासे कठण पेशी जेवो थाय छे त्रीजे मासे माताने दोहद (डोळो) उत्पन्न करे छे. चोथे मासे माताना अंगोने पुष्ट करे छे. पांचमे मासे ते पेशीमांथी पांच अंकुरा फूटे छे–बे पगना बे, बे हाथना बे अने माथानो एक. छठ्ठे महीने पित्त अने शोणित उपजे छे. सातमे महीने सातसो नसो, पांचसे मांसपेशीओ, मोटी नव धमणीओ–नाडीओ अने दाढी तथा मुछ सिवाय नवाणु लाख रोमकूपोने उपजावे छे, वळी डाढी अने मुछना मळीने साडा त्रण क्रोड रोमकूपो निपजावे छे. आठमे मासे ते पूरेपूरो अंगवाळो बने छे. × × × × (अहीं २४४ मा प्रश्न सूत्रथी मांडीने २५८ सुधीना प्रश्न सूत्र सुधीनो बधो अर्थ जाणवो, कारण के श्रीतंदुलवैचारिक प्रकीर्णकमां (तन्दुलवेआलिय पयन्नामां) अने श्रीभगवतीसूत्रमां आ अर्थ लगभग सरखो ज छे माटे तेने अहीं देखाड्यो नथी. जे विशेष छे ते आ छे –२५५मा उत्तरसूत्रमां 'विभंगज्ञानलब्धिवडे' ए अने २५७ मा उत्तरसूत्रमां 'वैक्रियलब्धिवडे' 'वीर्यलब्धिवडे' 'अवधिज्ञानलब्धिवडे' एटलुं श्रीतंदुलवैचारिक प्रकीर्णकमां वधारे छे अने बाकी बधुं नो सरखुं जेवुं ज छे तथा आगळ श्रीभगवतीसूत्रना बीजा शतकना पांचमा उद्देशकमां पण आ संबंध विचार आवशे, अने ते विचार त्यांथी जाणी लेवो.) ते गर्भने फळना डिंटिया सरखी, कमळना नाळ जेवा घाटवाळी नाभि उपर रसहरणी नामना नाडी होय छे अने ते नाडी माताना नाभि साथे संबद्ध होय छे, तेथी ते वाटे गर्भनो जीव ओजने ग्रहण करे छे अने ते वडे ज्यां सुधी जन्मे त्यां सुधी वृद्धि पामे छे × × × × × वळी हे दीर्घजीवि शिष्य ! पछी नव मास वीत्या पछी, नव मास पूरा थया पछी के नव मास पूरा थया पहेला ते गर्भवती स्त्री चार जातमांना एक जातना जीवने प्रसवे छे पुत्रीरूपे पुत्रीने प्रसवे छे, पुत्ररूपे पुत्रने प्रसवे छे, नपुंसकरूपे नपुंसकने प्रसवे छे अने बिंबरूपे बिंबने प्रसवे छे. ज्यारे वीर्य ओछुं होय अने ओज वधारे होय त्यारे पुत्री उत्पन्न थाय छे, वीर्य वधारे अने ओज ओछुं होय त्यारे पुत्र उत्पन्न थाय छे, ओज अने वीर्य बन्ने सरखां होय त्यारे नपुंसक उत्पन्न थाय छे अने ज्यारे स्त्रीना ओजनो (ऋतुवती स्त्रीनो) संयोग थाय त्यारे मात्र कोइ पण जातना आकार विनानो मांस पिंड (बिंब) उत्पन्न थाय छे. कोइ महापापी जीव वधारेमां वधारे बार वरस सुधी गर्भावासमां रहे छे. वळी हे चिरजीव शिष्य !

आ देहमां अनुक्रमे अढार पीठकरंडकनी संधिओ छे. बार पांसळिओनो करंड छे. छ छ पांसळिनो एक एक कडाह छे–एक तरफ छ पांसळिओ छे अने बीजी तरफ बाजी छ पांसळिओ छे. एक वेंतनी कुख छे. चार आंगळनी ग्रीवा–डोक–छे. वजनमां चार पलनी जीभ छे. बे पलनी आंखो छे चार पलना कपाळवाळुं माथुं छे. बत्रीश दांतो छे. सात आंगळनी जीभ छे. साडा त्रण पलनुं हृदय छे. पचीस पलनुं काळजुं छे. वळी आ शरीरमां बे अंत–आंतरडां–(आंतरडा ?) अने पांच वामो छे. ते आ रीते.—एक स्थूल अंत अने बीजो सूक्ष्म अंत, स्थूल अंतवडे निहारनो परिणाम थाय छे अने सूक्ष्म अंतवडे मूत्रनो परिणाम थाय छे. बे पासां (पडखां) कहेला छे. ते आ प्रमाणे.–डाबुं अने जमणुं डाबु पडखुं सुखना परिणामवाळुं छे अने जमणुं पडखुं दुःखना परिणामवाळुं छे. वळी हे आयुष्मन् ! आ शरीरमां एकसो साठ सांधाओ छे, एकसो सीत्योतेर मर्मस्थानो छे, त्रणसो हाडमाळाओ छे, नवसें नाडीओ छे, सातसो नसो छे, पांचसे पेशीओ छे, नव धमणीओ–मोटी नाडीओ–छे, रोमकूपोनी संख्या आगळ जणावी छे. वळी हे चिरंजीव ! आ शरीरमां डुंटीथी नीकळेली एकसो साठ नसो छे, जे उपर ठेठ माथा सुधी पहोंचेली छे अने ते रसहरणी कहवाय छे ज्यां सुधी ते नसो बराबर छे त्यां सुधी आंख, कान, नाक अने जीभनुं सामर्थ्य ठीक होय छे × × × वळी नाभिथी नीकळेली बीजी एकसो साठ नसो छे. ते नीचे ठेठ पगना तळिआ सुधी पहोंचेली छे. ज्यां सुधी ते नसो बराबर होय छे त्यां सुधी जांघनुं सामर्थ्य ठीक होय छे × × × तथा नाभिथी नीकळेली बीजी पण एकसो साठ नसो छे. जे तीरछी ठेठ हाथना तळिया–हथेळी–सुधी पहोंचेली छे. ज्यां सुधी ते नसो बराबर होय छे त्यां सुधी हाथनुं सामर्थ्य टके छे. वळी हे चिरंजीव शिष्य ! डुंटीथी एकसोने साठ नसो नीकळी छे अने ते ठेठ गुदा सुधी नीचे गएली छे. ज्यां सुधी ते नसो बराबर छे त्यां सुधी मूत्र अने निहार संबंधी वायु ठीक रीते प्रवर्ते छे. वळी हे चिरंजीव ! पचीश नसो श्लेष्मने धरनारी छे, पचीश नसो पित्तने अने दस नसो वीर्यने धरनारी छे–पुरुषने कुल सातसो नाडीओ होय छे. स्त्रीने छसेंने सीत्तेर तथा नपुंसकने छसेंने एंशी नाडीओ होय छे. वळी हे चिरंजीव शिष्य ! आ शरीरमा एक आढक (आठ शेर) रुधिर होय छे, चार शेर चरबी होय छे, बे शेर भेजुं होय छे, आठ शेर मूत्र होय छे, बे शेर विष्ठा होय छे, अडधो शेर पित्त होय छे, अडधो शेर श्लेष्म होय छे, पा शेर वीर्य होय छे; ए बधी धातुओमां ज्यारे विकार थाय छे त्यारे तेनुं वजन वधे या घटे छे. पुरुषने पांच कोठा होय छे. अने स्त्रीने छ कोठा होय छे. पुरुषने मळ नीकळवानां नव द्वार अने स्त्रीने अगियार द्वार होय छे. पुरुषने पांचसे, स्त्रीने चारसेंने सीत्तेर तथा नपुंसकने चारसेंने एंशी मांसपेशी होय छे. × × × × × आंखना पिंडो उपर साथळ रहेला छे अने ते उपर ज कडनो भाग रहेलो छे. पीठना अढार हाडकाओ कडना हाडकांथी वींटाएला छे. आंखना बे हाडकां छे, गरदनना सोळ हाडकां छे अने पीठमां बार पांसळीओ छे.''—श्रीतंदुलवैचारिक प्रकीर्णक (तंदुलवेआलिय पयन्ना):–अनु०

[illegible] निर्वृति अने उपकरणरूप द्रव्यइंद्रियो. ज्यारे इंद्रियपर्याप्ति–इंद्रियोनी बनावट–थइ गइ होय छे त्यारे ते द्रव्यइंद्रियो होय छे अने गर्भमां ताजा [illegible] जीवने तो इंद्रियपर्याप्ति नथी होती, माटे ते–गर्भमां उपजतो जीव–अनिंद्रिय–इंद्रियरहित–होय छे. [‘भाविंदियाइं’ति] लब्धि अने [illegible]रूप भावइंद्रियो. सर्व संसारी जीवने सर्व अवस्थामां आ भावइंद्रियो होय छे माटे आ भाव इंद्रियोनी अपेक्षाए गर्भमां उपजतो ताजो ज जीव [illegible]वाळो पण होय छे. [‘ससरीरि’त्ति] शरीरवाळो. [‘असरीरि’त्ति] शरीर विनानो. [‘वक्कमइ’त्ति] उत्पन्न थाय छे. [‘तप्पढमयाए’त्ति] गर्भमां [illegible] के तुरत ज–गर्भमां उपज्यो के सौथी पहेलां. [‘किं’ इति] शुं. [‘माउओयं’ति] मातानुं ओज–ऋतुसंबंधी लोही. [‘पिउसुक्कं’ति] पितानुं [illegible]. ते–तद्रूपआहार–ने खाय छे. [‘तदुभयसंसिट्ठं’ति] ते बन्नेथी संश्लिष्ट के ते बन्नेना संसर्गवाळुं. [‘जं से’त्ति] जे ते गर्भना जीवनी माता [‘[illegible]विगइओ’त्ति] दुध वगेरे रसविकारोने. [‘तदेगदेसेणं’ति] गर्भमां रहेलो जीव ते रसविकारोना एक भागनी साथे ओजनो आहार करे छे. [‘उच्चारे इ वे’त्ति] उच्चार एटले विष्टा. खेल एटले निष्ठीवन–थूंकवुं. [‘सिंघाणं’ति] नाकनो मेल. [‘केस–मंसु रोम–नहत्ताए’त्ति] अहीं ‘श्मश्रु’ एटले ‘दाढीना वाळ’ लेवा. ‘रोम’ एटले ‘काखली वगेरेना वाळ’ जाणवा. [‘जीवे णं’ इत्यादि.] [‘सव्वओ’त्ति] सर्व आत्मवडे. [‘अभिक्खणं’ति] वारंवार अने [‘आहच्च’त्ति] कदाचित्—कदाचित् आहार ले छे अने कदाचित् आहार नथी लेतो. कारण के तेनो तेवो स्वभाव छे. गर्भमां उपजेलो जीव पोताना आखा शरीरवडे आहार करे छे माटे ज मुखवडे कोळियारूप आहार लेवाने ते शक्त नथी ए तात्पर्य छे. शं०–ते गर्भस्थ जीव आखा शरीरवडे केवी रीते आहार करे छे? तो कहे छे के, [‘माउजीवरसहरणी’ इत्यादि.] जेनाथी रस लेवाय ते रसहरणी–नाभिनुं नाळ. माताना जीवनी जे रसहरणी ते मातृजीवरसहरणी. ए शुं? तो कहे छे के, [‘पुत्तजीवरसहरणी’]ए, पुत्रने रस मेळववामां कारणरूप होवाथी ‘पुत्रजीवरसहरणी’ कहेवाय. एम केवी रीते कहेवाय? तो कहे छे के, ते नाडी माताना जीव साथे प्रतिबद्ध छे अने [‘पुत्तजीवफुड’त्ति] पुत्रना जीवने अडकेली छे. अहीं ‘प्रतिबद्धता’ एटले ‘गाढ संबंध’ अर्थ समजवो. कारण के ते नाडी माताना जीवनो एक अंश छे अने ‘स्पृष्टता’ एटले ‘मात्र अडकवुं’ समजवुं. कारण के ते नाडी पुत्रना जीवनो अंश नथी. अथवा ‘मातृजीवरसहरणी’ अने ‘पुत्रजीवरसहरणी’ नामनी बे नाडीओ छे. ते बेमां पेली नाडी माताना जीवसाथे गाढ संबद्ध छे अने पुत्रना जीवने अडकेली छे. [‘तम्हा’त्ति] एम छे तेथी गर्भस्थ पुत्ररूप जीवने मातृप्रतिबद्ध रसहरणी नाडी अडकेली छे माटे ते द्वारा ते आहार करे छे. [‘अवरा वि य’त्ति] पुत्रजीवरसहरणी नाडी पण पुत्रना जीव साथे गाढ संबद्ध छे अने माताना जीवने अडकेली छे. [‘तम्हा’त्ति] एम छे तेथी शरीरनो चय करे छे. बीजा तंत्रोमां पण कह्युं छेः–‘‘पुत्रनी नाभिमां अने मातानां हृदये नाडीनो संबंध होय छे. जेथी घोरियावडे जेम क्यारो पुष्ट थाय, तेम गर्भ पुष्टि पामे छे’’

अनिंद्रिय. इंद्रियसहित. शरीर. गर्भनो आहार. कवलाहार नथी. मातृजीवरसहरणी. पुत्रजीवरसहरणी. अथवा. बीजा शास्त्रनी साक्ष.

५. गर्भाऽधिकाराद् एव इदमाह- *‘कइ णं’* इत्यादि. *‘माइअंग’* त्ति आर्तवविकारबहुलानि इत्यर्थः. *‘मत्थुलुंग’* त्ति मस्तकभेद्यकम्, अन्ये त्वाहुः–‘‘मेदः फिप्फिसादि मस्तुलुङ्गम्’’ इति. *‘पिइअंग’* त्ति पैतृकाङ्गानि शुक्रविकारबहुलानि इत्यर्थः. *‘अट्ठिमिंज’* त्ति अस्थिमध्याऽवयवः, केशादिकं बहुसमानरूपत्वाद् एकमेव. उभयव्यतिरिक्तानि तु शुक्र–शोणितयोः समविकाररूपत्वाद् मातृ–पित्रोः साधारणानि इति. *‘अम्मा–पिइएणं’* ति अम्बापैतृकम्, शरीराऽवयवेषु शरीरोपचारात्, उक्तलक्षणानि मातृ–पित्रङ्गानि इत्यर्थः. *‘जावइयं से कालं’* ति यावन्तं कालम्, *‘से’* त्ति तत्, तस्य वा जीवस्य भवधारणीयं भवधारणप्रयोजनं मनुष्यादिभवोपग्राहकम् इत्यर्थः. *‘अव्वावन्ने’* त्ति अविनष्टम्. *‘अहे णं’* ति उपचयान्तिमसमयाद् अनन्तरमेतद् अम्बा–पैतृकं शरीरकम्. *‘वोयसिज्जमाणे’* त्ति व्यवकृष्यमाणं हीयमानम्. गर्भाऽधिकाराद् एवाऽपरं सूत्रम्–*‘गब्भगए समाणे’* त्ति गर्भगतः सन्–मृत्वा इति शेषः. *‘एगइए’* त्ति सगर्वराजादिगर्भरूपः. संज्ञित्वादिविशेषणानि च गर्भस्थस्याऽपि नरकप्रायोग्यकर्मबन्धसंभवाऽभिधायकतया उक्तानि. वीर्यलब्ध्या, वैक्रियलब्ध्या संग्रामयति इति योगः. अथवा वीर्यलब्धिकः, वैक्रियलब्धिकश्च सन् इति. *‘पराणीए णं’* ति परानीकं शत्रुसैन्यम्, *‘सोच्च’* त्ति आकर्ण्य निशम्य–मनसाऽवधार्य *‘पएसे निच्छुभइ’* त्ति गर्भदेशाद् बहिः क्षिपति. *‘समोहणइ’* त्ति समवहन्ति समवहतो भवति तथाविधपुद्गलग्रहणार्थम्, संग्रामं संग्रामयति युद्धं करोति, *‘अत्थकामए’* इत्यादि. अर्थे द्रव्ये, कामो वाञ्छामात्रं यस्याऽसौ अर्थकामः, एवमन्यान्यपि विशेषणानि. नवरम्–राज्य नृपत्वम्. भोगा गन्ध–रस–स्पर्शाः. कामौ शब्द–रूपे. काङ्क्षा गृद्धिः–आसक्तिः इत्यर्थः. अर्थे काङ्क्षा संजाता यस्य इति अर्थकाङ्क्षितः. पिपासा इव पिपासा–प्राप्तेऽपि अर्थेऽतृप्तिः. *‘तच्चित्ते’* त्ति तत्राऽर्थादौ चित्तं सामान्योपयोगरूपं यस्याऽसौ तच्चित्तः. *‘तम्मणे’* त्ति तत्रैवाऽर्थादौ मनो विशेषोपयोगरूपं यस्य स तन्मनाः, *‘तल्लेसे’* त्ति लेश्या आत्मपरिणामविशेषः. *‘तदज्झवसिए’* त्ति इहाऽध्यवसायोऽध्यवसितम्, तत्र तच्चित्तादिभावयुक्तस्य सतस्तस्मिन् अर्थादौ एवाऽध्यवसितं परिभोगक्रियासंपादनविषयम् अस्य इति तदध्यवसितः. *‘तत्तिव्वज्झवसाणे’* त्ति तस्मिन् एवाऽर्थादौ तीव्रम्–आरम्भकालाद् आरभ्य प्रकर्षयायि अध्यवसान प्रयत्नविशेषलक्षणं यस्य स तथा. *‘तदट्ठोवउत्ते’* त्ति तदर्थम्–अर्थादिनिमित्तमुपयुक्तोऽवहितस्तदर्थोपयुक्तः. *‘तदप्पियकरणे’* त्ति तस्मिन् एवाऽर्थादौ अर्पितानि–आहितानि करणानि इन्द्रियाणि, कृत–कारिता–ऽनुमतिरूपाणि वा येन स तथा. *‘तब्भावणभाविए’* त्ति असकृदनादौ संसारे तद्भावनयाऽर्थादिसंस्कारेण भावितो यः स तथा. *‘एयंसि णं अंतरंसि’* त्ति एतस्मिन् संग्रामकरणाऽवसरे *‘कालं’* मरणम् इति.

५. गर्भनो अधिकार ज चालतो होवाथी हवे आ सूत्र कहे छेः—[‘कइ णं’ इत्यादि.] [‘माइअंग’त्ति] मातानां अंगो एटले जे अंगोमां माताना आर्तवनो भाग वधारे होय ते (अंगो). [‘मत्थुलुंग’त्ति] माथानुं भेजुं. बीजाओ तो कहे छे के, ‘‘मस्तुलुंग एटले चरबी, फेफसां वगेरे’’ [‘पिइअंग’त्ति] पितानां अंगो–पिताना वीर्यनो भाग जेमां वधारे होय ते अंगो. [‘अट्ठिमिंज’त्ति] हाडकानी वच्चेनो अवयव- हाडकानो वचलो भाग–मज्जा. [illegible] भागे सरखा होवाथी केशादिक एक सरखा ज छे. जे अंगो मातानां अने पितानां अंगोथी जूदां देखाय छे ते अंगो माता अने पिता, ए बेमां साधारण अंगो कहेवाय छे. कारण के, ते अंगोमां पिताना शुक्रनो अने माताना आर्तवनो सरखी रीते विकार होय छे. [‘अम्मापिइएणं’ति] शरीरना भागोने पण शरीररूप कल्पाता होवाथी पूर्वोक्त लक्षणवाळां माता अने पिताना अंगो. [‘जावइयं से कालं’ति] जेटला वखत सुधी [illegible]’त्ति] ते जीवनुं भवधारणीय (जीवे त्यां सुधी रहेनारुं शरीर) अने मनुष्यादि भवनुं उपग्राहक शरीर [‘अव्वावन्ने’त्ति] अखंड होय. [‘अहे णं’ति] उपचयना छेवटना समय पछी तुरत ज ए मातापिता संबंधी शरीर [‘वोयसिज्जमाणे’त्ति] हीन थतुं–घटतुं. गर्भनो अधिकार होवाथी ज ते [illegible] आ बीजुं सूत्र छेः–[‘गब्भगए समाणे’त्ति] गर्भमां गएलो जीव मरीने. [‘एगइए’त्ति] कोइ एक–अहंकारी राजादिरूप गर्भ. ‘गर्भस्थ जीव [illegible] कर्मोने बांधे ए संभवतुं छे’ ए वातना सूचक तरीके ‘संज्ञी’ वगेरे विशेषणो मूक्यां छे. वीर्यलब्धिवडे अने वैक्रियलब्धिवडे संग्राम

मातानां अंग. अन्य. पितानां अंग. साधारण अंग. केटलो काळ? गर्भस्थ जीवनी लडाइ अने नरक.

१. [illegible] २. [illegible] ३. [illegible] ४. आ शब्द विकल्पदर्शक छेः–श्रीअभय०

करे छे एम संबंध छे. अथवा वीर्यलब्धिवाळो अने वैक्रियलब्धिवाळो थइने, ['पराणीए णं' ति] शत्रुना लश्करने ['सोच' त्ति] [illegible] मनथी अवधारी ['पएसे निच्छुभइ' त्ति] गर्भना भागथी बहारना भागे आत्मप्रदेशोने फेंके छे. ['समोहणइ' त्ति] तेवां प्रकारनां पुद्गलोमा [illegible] समवहत थाय छे, अने युद्ध करे छे. ['अत्थकामए' इत्यादि.] जेनी वांछा धनमां छे ते अर्थकाम. जेनी कांक्षा धनमां छे ते अर्थकांक्षित. [illegible] तो पण न धरावुं तेनुं नाम पिपासा—तरष. ['तच्चित्ते' ति] जेनुं चित्त—सामान्य उपयोग—ते अर्थादिकमां छे ते तच्चित्त. ['तम्मणे' त्ति] जेनुं मन—[illegible] उपयोगरूप मन—ते अर्थादिकमां छे ते तन्मनाः. ['तल्लेसे' त्ति] लेश्या एटले एक जातनो आत्मपरिणाम. ['तदज्झवसिए' त्ति] अहीं अध्यवसाय [illegible] अध्यवसित अने अध्यवसित एटले परिभोग करवानी प्राप्ति संबंधी क्रिया. ते अर्थादिकमां ज तच्चित्तादिभावयुक्त जे, ते (पूर्वोक्त) क्रिया करे ते [illegible]ध्यवसित. ['तत्तिव्वज्झवसाणे' त्ति] शरुआतथी मांडी जेनो तीव्र प्रयत्न ते अर्थादिकमां ज छे ते तत्तीव्राध्यवसान कहेवाय. ['तदट्ठोवउत्ते' त्ति] [illegible]दिकने माटे ज सावधान ते तदर्थोपयुक्त. ['तदप्पिअकरणे' त्ति] जेनी इंद्रियो अथवा करवुं, करावबुं अने अनुमोदनरूप क्रियाओ ते अर्थादिक माटे [illegible] अर्पाइ चूकी छे ते तदर्पितकरण. ['तब्भावणभाविए' त्ति] अनादि संसारमां जेने अनेकवार ते अर्थादिसंबंधी अनेक संस्कारो लाग्या छे ते तद्भावना-भावित. ['एयंसि णं अंतरंसि' त्ति] ए लडाइने समये ['कालं' ति] मरण पामे.

६. *'तहारूवस्स'* त्ति तथाविधस्य उचितस्य इत्यर्थः श्रमणस्य साधोः, वा—शब्दो देवलोकोत्पादहेतुत्वं प्रति श्रमण—माहनवचनयो-स्तुल्यत्वप्रकाशनार्थः. *'माहणस्स'* त्ति 'मा हन' इत्येवमादिशति स्वयं स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तत्वाद् यः स माहनः, अथवा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यस्य देशतः सद्भावाद् ब्राह्मणो देशविरतस्तस्य वा. *'अंतिए'* त्ति समीपे एकमपि, आस्तामनेकम्. आर्यम् आराद् यातं पापकर्मभ्य इत्यार्यम्, अत एव धार्मिकम् इति. *'तओ'* त्ति तदनन्तरमेव 'संवेगजायसड्ढे' त्ति संवेगेन भवभयेन जाता श्रद्धा श्रद्धानं धर्मादिषु यस्य स तथा. *'तिव्वधम्माणुरागरत्ते'* त्ति तीव्रो यो धर्माऽनुरागो धर्मबहुमानस्तेन रक्त इव यः स तथा. *'धम्मकामए'* त्ति धर्मः श्रुत—चारित्रलक्षणः, पुण्यं तत्फलभूतं शुभकर्म इति. *'अंबखुज्जए'* त्ति आम्रफलवत् कुब्जः. *'अच्छेज्ज'* त्ति आसीत् सामान्यतः. एतदेव विशेषत उच्यते—*'चिट्ठेज्ज'* त्ति ऊर्ध्वस्थानेन. *'निसीएज्ज'* त्ति निषदनस्थानेन. *'तुयट्टेज्ज'* त्ति शयीत. *'सममागच्छइ'* त्ति सममविषमम्, *'सम्मं'* ति पाठे सम्यग् अनुपघातहेतुत्वादागच्छति—मातुरुदराद् योन्या निष्क्रामति. 'तिरियं आगच्छइ' त्ति तिरश्चीनो भूत्वा जठराद् निर्गन्तुं प्रवर्तते यदि, तदा विनिघातं मरणमाऽऽपद्यते, निर्गमाऽभावाद् इति. गर्भाद् निर्गतस्य च यत् स्यात् तदाहः—*'वण्णवज्झाणि य'* त्ति वर्णः श्लाघा, बध्यो हन्तव्यो येषां तानि वर्णवध्यानि, अथवा वर्णाद् बाह्यानि वर्णबाह्यानि—अशुभानीत्यर्थः. चशब्दो वाक्यान्तरत्वद्योतनार्थः. 'से' त्ति तस्य गर्भनिर्गतस्य, *'बद्धाइं'* ति सामान्यतो बद्धानि. *'पुट्ठाइं'* ति पोषितानि गाढतरबन्धतः, *'निहत्ताइं'* उद्वर्तना—ऽपवर्तनकरणवर्ज-शेषकरणाऽयोग्यत्वेन व्यवस्थापितानि इत्यर्थः, अथवा बद्धानि, कथम्? यतः पूर्वं स्पृष्टानि इति. *'कडाइं'* ति निकाचितानि सर्वकरणाऽयो-ग्यत्वेन व्यवस्थापितानि इत्यर्थः. *'पट्ठवियाइं'* ति मनुष्यगति—पञ्चेन्द्रियजाति—त्रसादिनामकर्मादिना सह उदयत्वेन व्यवस्थापितानि इत्यर्थः. *'अभिनिविट्ठाइं'* ति तीव्राऽनुभावतया निविष्टानि. *'अभिसमन्नागयाइं'* ति उदयाऽभिमुखीभूतानि इति. ततश्च *'उदिण्णाइं'* ति उदीर्णानि स्वतः, उदीरणाकरणेन च उदितानि. व्यतिरेकमाहः—*'नो उवसंताइं'* ति. अनिष्टादीनि व्याख्यातानि एव, एकार्थानि वा, *'हीणस्सरे'* त्ति अल्पस्वरः. *'दीणस्सरे'* त्ति दीनस्येव, दुःस्थितस्येव स्वरो यस्य स दीनस्वरः. *'अणादेज्जवयणे पच्चायाए याऽवि'* त्ति इहैवमक्षरघटना—प्रत्याजा-तश्चाऽपि समुत्पन्नोऽपि चाऽनादेयवचनो भवति इति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे प्रथमशते सप्तमोद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

गर्भस्थ जीवनी धर्म-प्रवृत्ति अने स्वर्गगमन.

६. ['तहारूवस्स' त्ति] तेवा प्रकारना उचित साधु पासेथी. ['माहणस्स वे' त्ति] पोते स्थूल हिंसादिकथी निवृत्त होवाने लीधे 'हणो नहीं' ए कहेनार ते माहन. अथवा देशथी ब्रह्मचर्ययुक्त होवाथी 'माहन' एटले 'ब्राह्मण'—देशविरति, तेनुं. ['अंतिए' त्ति] पासे, वधारे नहीं तो पण एक ज, पापकर्मथी दूर गएलुं माटे ज धार्मिक. ['तओ' त्ति] त्यार पछी तुरत ज ['संवेगजायसड्ढे' त्ति] संवेग—संसारथी बीक, जेने तेथी धर्मादिकमां श्रद्धा थएली छे ते संवेगजातश्रद्ध. ['तिव्वधम्माणुरागरत्ते' त्ति] धर्मना तीव्र अनुरागथी जे रक्त छे ते तीव्रधर्मानुरागरक्त. ['धम्मकामए' त्ति] श्रुत अने चारित्ररूप धर्म. तेना फलरूप पुण्य—शुभ कर्म. ['अंबखुज्जए व' त्ति] आंबाना फळनी पेटे कुब्ज—कुबडो. ['अच्छेज्ज' त्ति] सामान्यपणे होय. ए ज वातने विशेषे करी कहे छे के, ['चिट्ठेज्ज' त्ति] उभवावडे. ['निसीएज्ज' त्ति] बेसवावडे. ['तुयट्टेज्ज' त्ति] सुवावडे. ['सममागच्छइ' त्ति] सम एटले सरखी रीते, ['सम्मं' ति] एवो पण पाठ छे, तो तेनो अर्थ नुकशानिनुं कारण न होवाथी सम्यक्—सारी रीते—आवे छे—माताना पेटमांथी योनिवाटे नीकळे छे. ['तिरियं आगच्छइ' त्ति] जो आडो थइने पेटमांथी नीकळवा जाय तो मरण पामे, कारण के नीकळी शके नहीं. जो कदाच ते, गर्भथी (जीवतो) नीकळे तो तेनुं शुं थाय? ते कहे छेः—['वण्णवज्झाणि य' त्ति] जेनी श्लाघा हणाएली छे अथवा जे वर्णथी बहार छे ते वर्णवध्य—वर्णबाह्य अर्थात् अशुभ—नठारां. ['से' त्ति] गर्भथी नीकळेल तेनां, ['बद्धाइं' ति] सामान्य रीते बंधाएलां. ['पुट्ठाइं' ति] गाढ बंधनथी पुष्ट थएलां. ['निहत्ताइं'] उद्वर्तना अने अपवर्तना करण सिवाय बीजां करणो ते कर्ममां कांइ न करी शके तेवां करेलां—निधत्त. अथवा बद्ध—बांधेलां, ते केवी रीते? पूर्वे स्पर्शाएलां माटे. ['कडाइं' ति] कोइ पण करण ते कर्ममां कांइ न करी शके तेवां करेलां—निकाचित. ['पट्ठविआइं' ति] मनुष्यगति, पंचेंद्रियजाति अने त्रसादिनामकर्म वगेरेनी साथे उदयपणे व्यवस्थापेलां. ['अभिनिविट्ठाइं' ति] तीव्र रसपणे निवेशेलां. ['अभिसमन्नागयाइं' ति] उदयमां आववाने तैयार थएलां. अने तेथी ['उदिण्णाइं' ति] पोतानी मेळे के उदीरणा करवाथी उदयमां आवेलां. हवे व्यतिरेक कहे छे के, ['नो उवसंताइं' ति] उपशमेलां नहीं. 'अनिष्ट' वगेरे शब्दोनो अर्थ कहेवाइ चूक्यो ज छे. अथवा ए बधा शब्दो सरखा अर्थवाळा छे. ['हीणस्सरे' त्ति] क्षीण स्वरवाळो. ['दीणस्सरे' त्ति] जेनो स्वर रांकनी जेवो छे ते. ['अणादेज्जवयणे पच्चायाए याऽवि' त्ति] अहीं अक्षरनी घटना आ प्रमाणे छेः—ते उत्पन्न थएलो होय तो पण तेनुं वचन कोइ माने नहीं एवो (ते) थाय.

आम्रकुब्ज.

गर्भथी निर्गमन.

गर्भथी बहार आवतां मरण अथवा कद्रूपता वगेरे.

१. आ शब्द 'श्रमण' अने 'माहन' ए बन्नेनां वचनो देवलोक लइ जवामां कारणरूपे सरखां छे' ए अर्थनो सूचक छे. २. आ शब्द वाक्यांतरनो सूचक छेः—श्रीअभय०

बेलारूपः समुद्रेऽखिलजलचारिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति-शान्त्योः, दद्यात् श्रीवीरदेवः [illegible] ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक ८.

एकांतबालक.—एकांतपंडित.—अंतक्रिया.—कल्पोपपत्तिका.—बालपंडित.—देवगतिनुं कारण.—मृगघातक पुरुष.—क्रिया.—कायिकी.—आधिकरणिकी.—प्राद्वेषिकी.—पारितापनिकी.—प्राणातिपात.—तृणदाहक पुरुष.—धनुर्धारी पुरुष.—मृगवैर.—पुरुषवैर.—छ मास.—पुरुषघातक पुरुष.—सरखा बे पुरुष.—जय अने पराजयनुं कारण.—वीर्यविचार.—लब्धिवीर्य अने करणवीर्य.—चोवीश दंडक.—उद्देशकसमाप्ति.—

सं०—*रायगिहे समोसरणं. जाव–एवं वयासी:–*

सं०—राजगृह नगरमां समवसरण थयुं अने यावत्–आ प्रमाणे बोल्या के:—

२५९. प्र०—*एगंतबाले णं भंते! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेति, तिरिक्खाउयं पकरेति, मणुस्साउयं पकरेति, देवाउयं पकरेइ? णेरइयाउयं किच्चा णेरइएसु उववज्जति, तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जति, मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जति, देवाउयं किच्चा देवलोगेसु उववज्जति?*

२५९. प्र०—हे भगवन्! एकांत बालक (मिथ्यात्ववाळो) मनुष्य शुं नैरयिकनुं आयुष्य बांधे, तिर्यंचनुं आयुष्य बांधे, मनुष्यनुं आयुष्य बांधे के देवनुं आयुष्य बांधे? अने नैरयिकनुं आयुष्य बांधी नैरयिकमां जाय, तिर्यंचनुं आयुष्य बांधी तिर्यंचमां जाय, मनुष्यनुं आयुष्य बांधी मनुष्यमां जाय के देवनु आयुष्य बांधी देवलोकमां जाय?

२५९. उ०—*गोयमा! एगंतबाले णं मणुस्से णेरइयाउयं पि पकरेति, तिरियाउयं पि पकरेइ, मणुस्साउयं पि पकरेइ, देवाउयं पि पकरेइ. णेरइयाउयं पि किच्चा णेरइएसु उववज्जति, तिरियाउयं पि किच्चा तिरिएसु उववज्जइ, मणुस्साउयं पि किच्चा मणुएसु उववज्जति, देवाउयं पि किच्चा देवलोगेसु उववज्जति.*

२५९. उ०—हे गौतम! एकांत बालक मनुष्य नैरयिकनुं पण आयुष्य बांधे. तेम ज तिर्यंचनुं, मनुष्यनु अने देवनु पण आयुष्य बांधे. तथा नैरयिकनुं आयुष्य बांधी नैरयिकोमां जाय अने तिर्यंचनुं आयुष्य बांधी तिर्यंचमां, मनुष्यनुं आयुष्य बांधी मनुष्यमां अने देवनुं आयुष्य बांधी देवलोकमां उत्पन्न थाय.

२६०. प्र०—*एगंतपंडिए णं भंते! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेति, जाव–देवाउयं किच्चा देवलोएसु उववज्जति?*

२६०. प्र०—हे भगवन्! एकांत पंडित मनुष्य शु नैरयिकनु आयुष्य बांधे, के यावत्–देवनुं आयुष्य बांधे? अने यावत्–देवनुं आयुष्य करी देवलोकमां उत्पन्न थाय?

२६०. उ०—*गोयमा! एगंतपंडिए णं मणूसे आउयं सिय पकरेति, सिय णो पकरेति; जइ पकरेइ णो णेरइयाउयं पकरेति,*

२६०. उ०—हे गौतम! एकांत पंडित मनुष्य कदाच आयुष्य बांधे अने कदाच आयुष्य न बांधे. जो ते आयुष्य बांधे तो

---

१. एकस्मिन् मूलपुस्तके एतद् वाक्यं नोपलभ्यते:–अनु०

२. मूलच्छाया:—राजगृहे समवसरणम्. यावत्–एवम् अवादीत्:–एकान्तबालो भगवन्! मनुष्यः किं नैरयिकाऽऽयुष्कं प्रकरोति, तिर्यगाऽऽयुष्कं प्रकरोति, मनुष्याऽऽयुष्कं प्रकरोति, देवाऽऽयुष्कं प्रकरोति? नैरयिकाऽऽयुष्कं कृत्वा नैरयिकेषु उपपद्यते, तिर्यगाऽऽयुष्कं कृत्वा तिर्यक्षु उपपद्यते, मनुष्याऽऽयुष्कं कृत्वा मनुष्येषु उपपद्यते, देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवलोकेषु उपपद्यते? गौतम! एकान्तबालो मनुष्यो नैरयिकाऽऽयुष्कमपि प्रकरोति, तिर्यगाऽऽयुष्कमपि प्रकरोति, मनुष्याऽऽयुष्कमपि प्रकरोति, देवाऽऽयुष्कमपि प्रकरोति. नैरयिकाऽऽयुष्कमपि कृत्वा नैरयिकेषु उपपद्यते, तिर्यगाऽऽयुष्कमपि कृत्वा तिर्यक्षु उपपद्यते, मनुष्याऽऽयुष्कमपि कृत्वा मनुष्येषु उपपद्यते, देवाऽऽयुष्कमपि कृत्वा देवलोकेषु उपपद्यते. एकान्तपण्डितो भगवन्! मनुष्यः किं नैरयिकाऽऽयुष्कं प्रकरोति, यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवलोकेषु उपपद्यते? गौतम! एकान्तपण्डितो मनुष्य आयुष्कं स्यात् प्रकरोति, स्यात् नो प्रकरोति; यदि प्रकरोति नो नैरयिकाऽऽयुष्कं [illegible]

णो तिरियाउयं पकरेति, णो मणुस्साउयं पकरेति, देवाउयं पकरेति. णो णेरइयाउयं किच्चा णेरइएसु उववज्जति, णो तिरियाउयं किच्चा तिरिएसु उववज्जति, णो मणुस्साउयं किच्चा मणुस्सेसु उववज्जइ, देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति.

२६१. प्र०—*से केणट्ठेणं जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ?*

२६१. उ०—*गोयमा ! एगंतपंडितस्स णं मणूसस्स केवलं एव दो गतीओ पण्णायंति, तं जहाः- अंतकिरिया चेव, कप्पोववत्तिया चेव. से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति.*

२६२. प्र०—*बालपंडिते णं भंते ! मणुस्से किं णेरइयाउयं पकरेति, जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ?*

२६२. उ०—*गोयमा ! णो णेरइयाउयं पकरेइ, जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति.*

२६३. प्र०—*से केणट्ठेणं, जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति ?*

२६३. उ०—*गोयमा ! बालपंडिते णं मणुस्से तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमपि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा, निसम्म देसं उवरमइ, देसं णो उवरमति; देसं पच्चक्खाइ, देसं णो पच्चक्खाति. से तेणट्ठेणं देसोवरम–देसपच्चक्खाणेणं णो णेरइयाउयं पकरेति, जाव–देवाउयं किच्चा देवेसु उववज्जति. से तेणट्ठेणं जाव–देवेसु उववज्जति.*

नैरयिकनुं, तिर्यंचनुं अने मनुष्यनुं आयुष्य न बांधे, पण देवनुं आयुष्य बांधे. तथा ते नैरयिकनुं, तिर्यंचनुं अने मनुष्यनुं आयुष्य बांध्या विना नैरयिकमां, तिर्यंचमां अने मनुष्यमां न जाय, पण ते देवनुं आयुष्य करी देवमां उत्पन्न थाय.

२६१. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवमां उत्पन्न थाय ?

२६१. उ०—हे गौतम ! सर्व एकांत पंडित मनुष्यनी मात्र बे गतिओ कही छे. ते आ प्रमाणेः–अंतक्रिया अने कल्पोपपत्तिका. माटे ते हेतुथी हे गौतम ! यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवोमां उत्पन्न थाय.

२६२. प्र०—हे भगवन् ! बालपंडित मनुष्य शुं नैरयिकनुं आयुष्य बांधे के यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवोमां उत्पन्न थाय ?

२६२. उ०—हे गौतम ! ते नैरयिकनुं आयुष्य न करे अने यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवमां उत्पन्न थाय.

२६३. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवोमां उत्पन्न थाय ?

२६३. उ०—हे गौतम ! बालपंडित मनुष्य तथाप्रकारना श्रमण के ब्राह्मणनी पासेथी एक पण धार्मिक अने आर्य वचन सांभळी, अवधारी केटलीक प्रवृत्तिथी अटके छे अने केटलीक प्रवृत्तिथी नथी अटकतो. केटलाकनुं पच्चक्खाण करे छे अने केटलाकनुं पच्चक्खाण नथी करतो. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी–केटलीक प्रवृत्तिथी अटकवाने लीधे अने केटलाकनुं पच्चक्खाण करवाथी–ते नैरयिकनुं आयुष्य बांधतो नथी अने यावत्–देवनुं आयुष्य बांधी देवोमां उत्पन्न थाय छे अने ते कारणथी पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

१. गर्भवक्तव्यता सप्तमोद्देशकस्याऽन्ते उक्ता. गर्भावासश्चाऽऽयुषि सति, इत्याऽऽयुर्निरूपणायाऽऽह, तथा आदिगाथायां यदुक्तम् *'बाले'* त्ति तदभिधानाय चाऽष्टमोद्देशकः. तत्र च सूत्रम्:– *'एगंतबाल'* इत्यादि. एकान्तबालो मिथ्यादृष्टिः, अविरतो वा. एकान्तग्रहणेन मिश्रतां व्यवच्छिनत्ति. यच्चैकान्तबालत्वे समानेऽपि नानाविधाऽऽयुर्बन्धन तद् महारम्भादि–उन्मार्गदेशनादि–तनुकषायत्वादि–अकामनिर्जरादि–तद्धेतुविशेषवशाद् इति. अत एव बालत्वे समानेऽपि अविरतसम्यग्दृष्टिर्मनुष्यो देवायुरेव प्रकरोति, न शेषाणि, एकान्तबालप्रतिपक्षत्वाद् एकान्तपण्डितसूत्रम् , तत्र च *'एगंतपंडिए णं'* ति एकान्तपण्डितः साधुः. *'मणुस्से'* त्ति विशेषणं स्वरूपज्ञापनार्थमेव, अमनुष्यस्य एकान्तपण्डितत्वाऽयोगात् , तदयोगश्च सर्वविरतेरन्यस्याऽभावाद् इति. *'एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेइ, सिय नो पकरेइ'* त्ति सम्यक्त्वसप्तके क्षपिते न बध्नाति आयुः साधुः, अर्वाक् पुनर्बध्नाति इत्यत उच्यते—*'स्यात् प्रकरोति'* इत्यादि. *'केवलमेव दो गईओ पण्णायंति'* त्ति केवलशब्दः सकलार्थः, तेन साकल्येन एव द्वे गती प्रज्ञायेते अवबुध्येते केवलिना, तयोरेव

१. मूलच्छायाः–नो तिर्यगाऽऽयुष्कं प्रकरोति, नो मनुष्याऽऽयुष्कं प्रकरोति, देवाऽऽयुष्कं प्रकरोति. नो नैरयिकाऽऽयुष्कं कृत्वा नैरयिकेषु उपपद्यते, नो तिर्यगाऽऽयुष्कं कृत्वा तिर्यक्षु उपपद्यते, नो मनुष्याऽऽयुष्कं कृत्वा मनुष्येषु उपपद्यते, देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते. तत् केनाऽर्थेन यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते ? गौतम ! एकान्तपण्डितस्य मनुष्यस्य केवलमेव द्वे गती प्रज्ञायेते. तद्यथा–अन्तक्रिया चैव, कल्पोपपत्तिका चैव. तत् तेनाऽर्थेन गौतम ! यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते बालपण्डितो भगवन् ! मनुष्यः किं नैरयिकाऽऽयुष्क प्रकरोति, यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते ? गौतम ! नो नैरयिकाऽऽयुष्कं प्रकरोति, यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते तत् केनाऽर्थेन, यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते ? गौतम ! बालपण्डितो मनुष्यस्तथारूपस्य श्रमणस्य वा, माहनस्य वाऽन्तिके एकमपि आर्यम् , धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा, निशम्य देशाद् उपरमते, देशाद् नो उपरमते; देशं प्रत्याख्याति, देशं नो प्रत्याख्याति. तत् तेनाऽर्थेन देशोपरम–देशप्रत्याख्यानेन नो नैरयिकाऽऽयुष्कं प्रकरोति, यावत्–देवाऽऽयुष्कं कृत्वा देवेषु उपपद्यते. तत् तेनाऽर्थेन यावत्–देवेषु उपपद्यतेः–अनु०

...माद् इति. 'अंतकिरियं'ति निर्वाणम्, 'कप्पोववत्तिअं'त्ति कल्पेषु अनुत्तरविमानान्तदेवलोकेषु उपपत्तिर्या सा एव कल्पोपपत्तिका, इह ...कल्पशब्दः सामान्येन एव वैमानिकदेवाऽऽवासाऽभिधायक इति. एकान्तपण्डितद्वितीयस्थानवर्तित्वाद् बालपण्डितस्य, अतो बालपण्डित-सूत्रं, तत्र च 'बालपंडिए णं' ति श्रावकः, 'देसं उवरमइ' त्ति विभक्तिपरिणामाद् देशाद् उपरमते—विरतो भवति, ततो देशं स्थूल प्राणातिपातादिकं प्रत्याख्याति—वर्जनीयतया प्रतिजानीते.

१. सातमा उद्देशकने छेडे गर्भ संबधी हकीकत कही छे. अने गर्भावास आयुष्य कर्मनो उदय होय त्यारे ज संभवी शके छे, माटे हवे आयुष्य विषे निरूपण करवा तथा आदिमां कहेली संग्रह गाथामां जे ['बाले' त्ति] ए पद कह्युं छे तेनुं विवेचन करवा आ आठमो उद्देशक प्रारंभाय छे अने तेनुं आदि सूत्र आ छे केः—['एगंतबाल' इत्यादि.] एकांतबाल एटले मिथ्यादृष्टि जीव अथवा विरति विनानो जीव. अहीं 'बाल' एटलुं ज न मूकतां जे 'एकांतबाल' शब्द मूक्यो छे तेनुं कारण ए के, अहीं तद्दन बालक (मिथ्यादृष्टि) जीव लेवानो छे पण मिश्रदृष्टि जीव लेवानो नथी. जो 'बाल' एटलुं ज मूक्युं होत तो मिश्रदृष्टि जीव पण आवी जाय. शं०—बधा एकांतबालकोनुं एकांतबालकपणुं सरखु होय छे तो पण कोइ एकांतबालक देव के मनुष्यनुं आयुष्य बांधे छे अने कोइ एकांतबालक नरक के तिर्यंचनुं आयुष्य बांधे छे, तेनुं शुं कारण? समा०—आयुष्य बांधवाना कारणो जूदां जूदां होय छे माटे एकांतबालको पण जूदां जूदां आयुष्यो बांधे छे. जे एकांतबालक जीव मोटा आरंभादिवाळां कार्यो करे छे अने असत्य मार्ग देखाडी लोकोने कुमार्गे चडावे छे तथा एवां ज बीजां पापमय कार्यो करे छे ते तिर्यंच के नरकनुं आयुष्य बांधे छे अने जे एकांतबालकना कषायो ओछा होय छे तथा जे अकामनिर्जरावगेरे वाळो होय छे ते, मनुष्य के देवनुं आयुष्य बांधे छे. माटे ज बालपणुं सरखुं होय छे तो पण अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य, देवनुं ज आयुष्य बांधे छे, पण बीजां आयुष्यो बांधतो नथी. एकांतपंडित जीव एकांतबालक जीवनो प्रतिपक्षी छे माटे हवे एकांतपंडित विषे सूत्र कहे छे केः—['एगंतपंडिए णं' ति] एकांतपंडित एटले साधु. ['मणुस्से' त्ति] एकांतपंडितनुं जे आ 'मनुष्य' ए विशेषण छे ते मात्र स्वरूपसूचक छे. कारण के, एकांतपंडित कहेवाथी ज 'मनुष्य' ए अर्थ आवी जाय छे. तेनुं कारण ए के, मनुष्य सिवाय बीजो कोइ एकांतपंडित होय ए संभवतुं नथी—मनुष्य सिवाय बीजो कोइ सर्वविरत—साधु—होइ शकतो नथी. ['एगंतपंडिए णं मणुस्से आउयं सिय पकरेइ, सिय नो पकरेइ' त्ति] चार अनंतानुबंधी अने त्रण मोहनीय—सम्यक्त्वसप्तक—खपी गया पछी ते, (साधु) आयुष्य बांधतो नथी. अने तेना खपवा पहेलां तो बांधे छे माटे कह्युं छे के, कदाच आयुष्य बांधे छे अने कदाच आयुष्य नथी बांधतो. ['केवलमेव दो गईओ पन्नायंति' त्ति] अहीं 'केवल' शब्दनो अर्थ सकल छे माटे साकल्यवडे ज—सकल एकांतपंडितोनी बे गतिओ केवलज्ञानिए जाणी छे. कारण के, तेओने बे गतिओ ज होय छे. ['अंतकिरियं' त्ति] एटले निर्वाण—मोक्ष. ['कप्पोववत्तिअं' त्ति] कल्प- अनुत्तर विमान—सुधीना देवलोकोमां जे उपपत्ति ते 'कल्पोपपत्ति' कहेवाय. अहीं मूकेलो 'कल्प' शब्द सामान्य प्रकारे ज वैमानिक देवोना रहेठाणोनो सूचक छे. एकांतपंडित पछी उतरती पदवीवाळो बालपंडित छे माटे हवे बालपंडित विषे सूत्र कहे छेः—['बालपंडिए णं' ति] बालपंडित एटले श्रावक. ['देसं उवरमइ' त्ति] अमुक भागथी अटके छे—विरत थाय छे तेथी स्थूल हिंसादिकनो त्याग करे छे—ते स्थूल हिंसादिक छोडवा योग्य छे माटे तेने न करवानी प्रतिज्ञा करे छे.

आयुष्य. एकांतबाल. शंका. समाधान. एकांतपंडित. विशेषण. आयुष्य करे अने न करे. बे गति. बालपंडित.

मृगघातक पुरुष वगेरे.

२६४. प्र०—पुरिसे णं भंते! कच्छंसि वा, दहंसि वा, उदगंसि वा, दवियंसि वा, वलयंसि वा, नूमंसि वा, गहणंसि वा, गहणविदुग्गंसि वा, पव्वयंसि वा, पव्वतविदुग्गंसि वा, वणंसि वा, वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता 'एते मिए' त्ति काउं अण्णयरस्स मियस्स वहाए कूडपासं उद्दाति, ततो णं भंते! से पुरिसे कतिकिरिए पन्नत्ते?

२६४. उ०—गोयमा! जावं च णं से पुरिसे कच्छंसि वा, जाव—कूडपासं उद्दाइ, तावं च णं से पुरिसे सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए.

२६५. प्र०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—'सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए'?

२६४. प्र०—हे भगवन्! हरणोथी आजीविका चलावनार, हरणोनो शिकारी अने हरणोना शिकारमां तल्लीन एवो कोइ पुरुष हरणने मारवा माटे कच्छमां—नदीना पाणीथी घेराएल झाडीवाळा स्थानमां, धरा तरफ, पाणीना वहेळामां, घास वगेरेना ढगलामां, गोळाकार नदीना वांका चुका भागमां, अंधारावाळी जग्याए, जंगलमां, पर्वतना एक भागमां रहेला वनमां, पर्वतमां, डुंगरावाळा प्रदेशमां, वनमां, तथा अनेक वृक्षवाळा वनमां जइ 'ए मृगो छे' एम करी कोइ एक मृगना वध माटे खाडा अने जाळ रचे. तो हे भगवन्! ते पुरुष केटली क्रियावाळो कहेवाय?

२६४. उ०—हे गौतम! ते पुरुष कच्छमां यावत्—जाळ रचे तो कदाच त्रण क्रियावाळो, कदाच चार क्रियावाळो अने कदाच पांच क्रियावाळो कहेवाय.

२६५. प्र०—हे भगवन्! तेनुं शुं कारण के, ते पुरुष कदाच त्रण क्रियावाळो, कदाच चार क्रियावाळो अने कदाच पांच क्रियावाळो कहेवाय?

---

१. जुओ पानुं ८ मुं:—अनु० २. अहीं बीजी विभक्तिनो अर्थ पांचमी विभक्ति जेवो करवोः—श्रीअभय०

*. मूलच्छायाः—पुरुषो भगवन्! कच्छे वा, हृदे वा, उदके वा, द्रवके वा, वलये वा, नूमे वा, गहने वा, गहनविदुर्गे वा, पर्वते वा, पर्वतविदुर्गे वा, वने वा, वनविदुर्गे वा मृगवृत्तिकः, मृगसंकल्पः, मृगप्रणिधानो मृगवधाय गत्वा 'एते मृगाः' इति कृत्वा अन्यतरस्य मृगस्य वधाय कूटपाशम् उद्दाति, ततो भगवन्! स पुरुषः कतिक्रियः प्रज्ञप्तः? गौतम! यावत् च स पुरुषः कच्छे वा, यावत्—कूटपाशम् उद्दाति, तावच्च स पुरुषः स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः. तत् केनार्थेन भगवन्! एवम् उच्यते—'स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः'?:—अनु०

२६५. उ०—गोयमा ! जे भविए उद्दवणयाए, णो बंधणयाए, णो मारणयाए, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए-तिहिं किरियाहिं पुट्ठे. जे भविए उद्दवणताए वि, बंधणताए वि, णो मारणताए, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारितावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे. जे भविए उद्दवणताए वि, बंधणताए वि, मारणताए वि, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणिआए, पाउसिआए, जाव—पाणातिवायकिरियाए-पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, से तेणट्ठेणं जाव—पंचकिरिए.

२६६. प्र०—पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, जाव—वणविदुग्गंसि वा तणाइं ऊसविय, ऊसविय अगणिकायं णिसिरइ. तावं च णं से भंते ! पुरिसे कतिकिरिए ?

२६६. उ०—गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए.

२६७. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२६७. उ०—गोयमा ! जे भविए उस्सवणयाए तिहिं. उस्सवणताए वि, णिसिरणयाए वि, णो दहणयाए चउहिं. जे भविए उस्सवणयाए वि, णिसिरणयाए वि, दहणयाए वि, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे. से तेणट्ठेणं गोयमा !०.

२६८. प्र०—पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, जाव—वणविदुग्गंसि वा मियवित्तीए, मियसंकप्पे, मियपणिहाणे, मियवहाए गंता 'एते मिय' त्ति काउं अण्णतरस्स मियस्स वहाए उसुं णिसिरति, ततो णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

२६८. उ०—गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए.

२६९. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२६५. उ०—हे गौतम ! ज्यां सुधी ते पुरुष ते जाळने धारण करे छे, अने मृगोने बांधतो नथी, तथा मृगोने मारतो नथी त्यां सुधी ते पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी अने प्राद्वेषिकी ए त्रण क्रियाथी स्पर्शाएल छे-ए त्रण क्रियावाळो कहेवाय छे. वळी ज्यां सुधी ते पुरुष ते जाळने धरी राखे छे अने मृगोने बांधे छे, पण मृगोने मारतो नथी त्यां सुधी ते पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी अने पारितापनिकी; ए चार क्रियाथी स्पर्शाएल छे-ए चार क्रियावाळो कहेवाय छे. वळी ज्यां सुधी ते पुरुष ते जाळने धरी राखे, मृगोने बांधे अने मृगोने मारे त्यां सुधी ते पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी अने प्राणातिपात-क्रिया; ए पांच क्रियाथी स्पर्शाएल छे-ए पांच क्रियावाळो कहेवाय छे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी यावत्—पांच क्रियावाळो कहेवाय छे.

२६६. प्र०—हे भगवन् ! कच्छमां यावत्—वनविदुर्ग-अनेक वृक्षवाळा वन-मां कोइ पुरुष तरणांने भेगां करी तेमां आग मूके. तो ते पुरुष केटली क्रियावाळो कहेवाय ?

२६६. उ०—हे गौतम ! ते पुरुष कदाच त्रण क्रियावाळो, कदाच चार क्रियावाळो अने कदाच पांच क्रियावाळो कहेवाय.

२६७. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२६७. उ०—हे गौतम ! ज्यां सुधी ते पुरुष तरणांने भेगां करे छे त्यां सुधी ते पुरुष त्रण क्रियावाळो कहेवाय. अने वळी ज्यां सुधी तरणाने भेगां करे छे अने तेमां आग मूके छे, पण बाळतो नथी त्यां सुधी ते पुरुष चार क्रियावाळो कहेवाय अने ज्यां सुधी तरणांने भेगां करे छे, तेमां आग मूके छे अने बाळे छे त्यां सुधी ते पुरुष कायिकी वगेरे यावत्—पांच क्रियावाळो कहेवाय. माटे हे गौतम ! ते कारणथी पूर्व प्रमाणे कह्युं छे.

२६८. प्र०—हे भगवन् ! हरणोथी आजीविका चलावनार, हरणोनो शिकारी अने हरणोना शिकारमां तल्लीन एवो कोइ पुरुष हरणने मारवा माटे कच्छमां यावत्—अनेक वृक्षोवाळा वनमां जइ 'ए मृगो छे' एम करी कोइ एक हरणने मारवा सारु बाणने फेंके छे, तो ते पुरुष केटली क्रियावाळो कहेवाय ?

२६८. उ०—हे गौतम ! ते पुरुष कदाच त्रण क्रियावाळो, कदाच चार क्रियावाळो अने कदाच पांच क्रियावाळो कहेवाय.

२६९. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

---

१. मूलच्छायाः—गौतम ! यो भव्य उद्रवणतया, नो बन्धनतया, नो मारणतया तावच्च स पुरुषः कायिकया, आधिकरणिक्या, प्राद्वेषिक्या तिसृभिः क्रियाभिः स्पृष्टः. यो भव्य उद्रवणतयाऽपि, बन्धनतयाऽपि, नो मारणतया तावच्च स पुरुषः कायिक्या, आधिकरणिक्या, प्राद्वेषिक्या, पारितापनिक्या चतसृभिः क्रियाभिः स्पृष्टः. यो भव्य उद्रवणतयाऽपि, बन्धनतयाऽपि, मारणतयाऽपि तावच्च स पुरुषः कायिक्या, आधिकरणिक्या, प्राद्वेषिक्या यावत्—प्राणातिपातक्रियया—पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः. तत् तेनाऽर्थेन यावत्—पञ्चक्रियः. पुरुषो भगवन् ! कच्छे वा, यावत्—वनविदुर्गे वा तृणानि उत्सर्प्य, उत्सर्प्य अग्निकायं निसृजति, तावच्च भगवन् ! पुरुषः कतिक्रियः ? गौतम ! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः. तत् केनाऽर्थेन ? गौतम ! यो भव्य उच्छ्रयणतया तिसृभिः, उच्छ्रयणतयाऽपि, निसर्जनतयाऽपि, नो दहनतया चतसृभिः, यो भव्य उच्छ्रयणतयाऽपि, निसर्जनतयाऽपि, दहनतयाऽपि, तावच्च स पुरुषः कायिक्या, यावत्—पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः, तत् तेनाऽर्थेन गौतम !०. पुरुषो भगवन् ! कच्छे वा, यावत्—वनविदुर्गे वा मृगवृत्तिकः, मृगसंकल्पः, मृगप्रणिधानः, मृगवधाय गत्वा 'एते मृगाः' इति कृत्वा अन्यतरस्य मृगस्य वधाय इषुं निसृजति, ततो भगवन् ! स पुरुषः कतिक्रियः ? गौतम ! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः. तत् केनाऽर्थेन ?—अनु०

२६९. उ०—गोयमा ! जे भविए णिसिरणयाए, नो विद्धंसणयाए वि, नो मारणयाए वि तिहिं. जे भविए णिसिरणताए वि, विद्धंसणताए वि, णो मारणयाए चउहिं. जे भविए णिसिरणयाए वि, विद्धंसणयाए वि, मारणताए वि, तावं च णं से पुरिसे जाव—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे. से तेणट्ठेणं गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए.

२६९. उ०—हे गौतम ! ज्यां सुधी ते पुरुष बाणने फेंके छे, पण मृगने विंधतो नथी, तेम मृगने मारतो नथी, त्यां सुधी ते पुरुष त्रण क्रियावाळो कहेवाय. ज्यां सुधी ते पुरुष बाणने फेंके छे अने मृगने विंधे छे. पण मृगने मारतो नथी त्यां सुधी ते पुरुष चार क्रियावाळो कहेवाय अने ज्यां सुधी ते पुरुष बाणने फेंके छे, मृगने विंधे छे अने मृगने मारे छे त्यां सुधी ते पुरुष पांच क्रियावाळो कहेवाय. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी कदाच त्रण क्रियावाळो, कदाच चार क्रियावाळो अने कदाच पांच क्रियावाळो कहेवाय.

२७०. प्र०—पुरिसे णं भंते ! कच्छंसि वा, जाव—अण्णतरस्स मियस्स वहाए आयतकण्णायतं उसुं आयामेत्ता चिट्ठेज्जा, अण्णे य (अवयरे) से पुरिसे मग्गतो आगम्म सयपाणिणा, असिणा सीसं छिंदेज्जा, से य उसू ताए चेव पुव्वायामणयाए तं मियं विंधेज्जा, से णं भंते ! पुरिसे किं मियवेरेणं पुट्ठे ? पुरिसवेरेणं पुट्ठे ?

२७०. प्र०—हे भगवन् ! पूर्वे प्रकारवाळो कोइ एक पुरुष कच्छमां यावत्—कोइ एक मृगना वध माटे कान सुधी लांबा करेला बाणने प्रयत्नपूर्वक खेंचीने उभो रहे. अने बीजो कोइ पुरुष पाछळथी आवीने ते उभेल पुरुषनुं माथुं पोताना हाथथी तरवारवडे कापी नाखे. पछी ते बाण पूर्वेना खेंचाणथी उछळीने ते मृगने विंधे. तो हे भगवन् ! शुं ते पुरुष मृगना वैरथी स्पृष्ट छे के पुरुषना वैरथी स्पृष्ट छे ?

२७०. उ०—गोयमा ! जे मियं मारेति, से मियवेरेणं पुट्ठे. जे पुरिसं मारेइ, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे.

२७०. उ०—हे गौतम ! जे पुरुष मृगने मारे छे, ते पुरुष मृगना वैरथी स्पृष्ट छे. अने जे पुरुष पुरुषने मारे छे ते पुरुष पुरुषना वैरथी स्पृष्ट छे.

२७१. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'जाव—से पुरिसवेरेणं पुट्ठे' ?

२७१. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, 'यावत्—ते पुरुष पुरुषना वैरथी स्पृष्ट छे' ?

२७१. उ०—से णूणं गोयमा ! कज्जमाणे कडे, संधिज्जमाणे संधिते, णिव्वत्तिज्जमाणे णिव्वत्तिते, निसरिज्जमाणे णिसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया ? "हंता, भगवं ! कज्जमाणे कडे, जाव—णिसिट्ठे त्ति वत्तव्वं सिया". से तेणट्ठेणं गोयमा ! जे मियं मारेइ, से मियवेरेणं पुट्ठे. जे पुरिसं मारेति, से पुरिसवेरेणं पुट्ठे. अंतोछण्हं मासाणं मरइ, काइयाए, जाव—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे. बाहिंछण्हं मासाणं मरइ, काइयाए, जाव—पारियावणियाए चउहिं किरियाहिं पुट्ठे.

२७१. उ०—हे गौतम ! ते निश्चित छे के, करातुं होय ते करायुं कहेवाय, संधातुं होय ते संधायुं कहेवाय, वळातुं होय ते वळायुं कहेवाय अने फेंकातुं होय ते फेंकायुं कहेवाय ? "हा, भगवन् ! करातुं होय ते करायुं कहेवाय अने यावत्—फेंकातुं होय ते फेंकायुं कहेवाय" माटे हे गौतम ! ते हेतुथी जे मृगने मारे ते मृगना वैरथी स्पृष्ट कहेवाय अने जे पुरुषने मारे ते पुरुषना वैरथी स्पृष्ट कहेवाय. अने जो मरनार छ मासनी अंदर मरे तो मारनार पुरुष कायिकी यावत्—पांच क्रियाओथी स्पृष्ट कहेवाय अने जो मरनार छ मास पछी मरे तो मारनार जण कायिकी यावत्—पारितापनिकी क्रियाथी—चार क्रियाओथी स्पृष्ट कहेवाय.

२७२. प्र०—पुरिसे णं भंते ! पुरिसं सत्तीए समभिधंसेज्जा, सयपाणिणा वा, से असिणा सीसं छिंदेज्जा ततो णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

२७२. प्र०—हे भगवन् ! कोइ एक पुरुष बीजा पुरुषने बरछीवडे मारे, अथवा पोताना हाथे तरवारवडे ते पुरुषनुं माथुं कापी नाखे, तो ते पुरुष केटली क्रियावाळो कहेवाय ?

---

१. मूलच्छाया:—गौतम ! यो भव्यो निसर्जनतया, नो विध्वंसनतयाऽपि, नो मारणतयाऽपि तिसृभिः, यो भव्यो निसर्जनतयाऽपि, विध्वंसनतयाऽपि, नो मारणतया चतसृभिः, यो भव्यो निसर्जनतयाऽपि, विध्वंसनतयाऽपि, मारणतयाऽपि तावच्च स पुरुषो यावत्—पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः. तद् तेनार्थेन गौतम ! स्यात् त्रिक्रियः, स्यात् चतुष्क्रियः, स्यात् पञ्चक्रियः. पुरुषो भगवन् ! कच्छे वा, यावत्—अन्यतरस्य मृगस्य वधाय आयतकर्णाऽऽयतम् इषुम्—आयम्य तिष्ठेत्, अन्यश्च स पुरुषो मार्गतः (पश्चात्) आगत्य स्वकपाणिना, असिना शीर्षं छिन्द्यात्, स च इषुः तया चैव पूर्वाऽऽयमनतया तं मृगं विध्येत्, स भगवन् ! पुरुषः किं मृगवैरेण स्पृष्टः ? पुरुषवैरेण स्पृष्टः ? गौतम ! यो मृगं मारयति स मृगवैरेण स्पृष्टः, यः पुरुषं मारयति स पुरुषवैरेण स्पृष्टः. तद् केनार्थेन भगवन् ! एवम् उच्यते, यावत्—स पुरुषवैरेण स्पृष्टः ? तद् नूनं गौतम ! क्रियमाणं कृतम्, संधीयमानं संधि(हि)तम्, निर्वर्त्यमानं निर्वर्तितम्, निसृज्यमानं निसृष्टम् इति वक्तव्यं स्यात् ? "हन्त, भगवन् ! क्रियमाणं कृतम्, यावत्—निसृष्टम् इति वक्तव्यं स्यात्." तद् तेनार्थेन गौतम ! यो मृगं [illegible]
[illegible]
[illegible]

२७२. उ०—गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे तं पुरिसं सत्तीए समभिधंसेति, से पाणिणा वा, से असिणा सीसं छिंदति, तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, जाव–पाणातिवातकिरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे. आसण्णवधएण य अणवकंखणवत्तीए णं पुरिसवेरेणं पुट्ठे.

२७२. उ०—हे गौतम ! ज्यां सुधी ते पुरुष ते पुरुषने बरछी वडे मारे अथवा पोताना हाथे तरवारवडे ते पुरुषनुं माथुं कापी नाखे त्यां सुधी ते पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी यावत्–प्राणातिपात क्रियावडे–पांच क्रियावडे–स्पृष्ट छे. अने ते पुरुष, आसन्नवधक तथा बीजाना प्राणनी दरकार नहीं राखनार पुरुषवैरथी स्पर्शाय छे.

२७३. प्र०—दो भंते ! पुरिसा सरिसया, सरित्तया, सरिव्वया, सरिसभंड–मत्तोवकरणा अण्णमण्णेणं सद्धिं संगामं संगामेंति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणति, एगे पुरिसे पराइज्जति; से कहमेयं भंते ! एवं ?

२७३. प्र०—हे भगवन् ! सरखा, सरखी चामडीवाळा, सरखी उमरवाळा अने सरखा द्रव्य तथा उपकरण (शस्त्र वगेरे) वाळा कोइ एक बे पुरुष होय अने ते बे पुरुष परस्पर एक बीजा साथे लडाइ करे. तेमां एक पुरुष जीते अने एक पुरुष हारे, हे भगवन् ! ते केवी रीते ए ए प्रमाणे थाय ?

२७३. उ०—गोयमा ! एवं वुच्चति–सवीरिए परायिणति, अवीरिए परायिज्जति.

२७३. उ०—हे गौतम ! जे पुरुष वीर्यवाळो होय ते जीते छे अने जे पुरुष वीर्य विनानो छे ते हारे छे.

२७४. प्र०—से केणट्ठेणं जाव–परायिज्जति ?

२७४. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, यावत्–एक हारे छे ?

२७४. उ०—गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं णो बद्धाइं, णो पुट्ठाइं, जाव–णो अभिसमण्णागयाइं, णो उदिण्णाइं, उवसंताइं भवंति; से णं परायिणति. जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं, जाव–उदिण्णाइं, णो उवसंताइं भवंति; से णं पुरिसे परायिज्जति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति–'सविरिए परायिणाति, अविरिए परायिज्जति.

२७४. उ०—हे गौतम ! जे पुरुषे वीर्यरहित कर्मो नथी बांध्या, नथी स्पर्श्या, यावत्–नथी प्राप्त कर्या अने तेना ते कर्मो उदीर्ण नथी, पण उपशांत छे ते पुरुष जीते छे. अने जे पुरुषे वीर्यरहित कर्मो बांध्या छे, स्पर्श्या छे अने यावत्–तेना ते कर्मो उदयमां आवेलां छे पण उपशांत नथी ते पुरुष पराजय पामे छे. माटे हे गौतम ! ते कारणथी एम कहुं छे के, वीर्यवाळो पुरुष जीते छे अने वीर्य विनानो पुरुष हारे छे.

२. आयुर्बन्धस्य क्रियाः कारणमिति क्रियासूत्राणि पञ्च. तत्र 'कच्छंसि व' त्ति कच्छे नदीजलपरिवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे, 'दहंसि व' त्ति ह्रदे प्रतीते, 'उदगंसि व' त्ति उदके जलाशयमात्रे, 'दवियंसि व' त्ति द्रवके तृणादिद्रव्यसमुदाये, 'वलयंसि व' त्ति वलये वृत्ताकारनद्याद्युदककुटिलगतियुक्तप्रदेशे, 'नूमंसि व' त्ति नूमे अवगततमसे, 'गहणंसि व' त्ति गहने वृक्षवल्लीलतावितानवीरुत्समुदाये, 'गहणविदुग्गंसि व' त्ति गहनविदुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्ल्यादिसमुदाये, 'पव्वयंसि व' त्ति पर्वते, 'पव्वयविदुग्गंसि व' त्ति पर्वतसमुदाये, 'वणंसि व' त्ति वने एकजातीयवृक्षसमुदाये, 'वणविदुग्गंसि व' त्ति नानाविधवृक्षसमूहे, 'मिगवित्तीए' त्ति मृगैर्हरिणैः, वृत्तिर्जीविका यस्य स मृगवृत्तिकः, स च मृगरक्षकोऽपि स्यात्, इत्यत आहः—'मिअसंकप्पे' त्ति मृगेषु संकल्पो वधाध्यवसायः, छेदनं वा यस्य असौ मृगसंकल्पः, स च चलचित्ततया अपि भवति, इत्यत आह:—'मिअपणिहाणे' त्ति मृगवधैकाग्रचित्तः, 'मिगवहाए' त्ति मृगवधाय 'गंता' त्ति गत्वा कच्छादौ इति योगः. 'कूडपासं' ति कूटं च मृगग्रहणकारणं गर्तादि, पाशश्च तद्बन्धनमिति कूटपाशम्, 'उद्दाइ' त्ति मृगवधाय उद्दाति रचयति इत्यर्थः. 'तओ णं' ति ततः कूटपाशकरणात्, 'कइकिरिए' त्ति कतिक्रियः क्रियाश्च कायिक्यादिकाः. 'जे भविए' त्ति यो भव्यो योग्यः—कर्ता इति यावत्. 'जावं च णं' इति शेषः—यावन्तं कालम् इत्यर्थः. कस्याः कर्ता ? इत्याह:—'उद्दवणयाए' त्ति कूटपाशधारणतायाः, 'ता' प्रत्ययश्चेह स्वार्थिकः. 'तावं च णं' ति तावन्तं कालम्. 'काइयाए' त्ति गमनादिकायचेष्टारूपया, 'अहिगरणियाए' त्ति अधिकरणेन कूटपाशरूपेण निर्वृत्ता या सा तया—तया, 'पाउसियाए' त्ति प्रद्वेषो मृगेषु दुष्टभावः, तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी -तया, 'तिहिं किरियाहिं' ति क्रियन्ते इति क्रियाश्चेष्टाविशेषाः 'परितावणिआइ' त्ति परितापनप्रयोजना पारितापनिकी, सा च बद्धे सति मृगे भवति,

१. मूलच्छाया—गौतम ! यावच्च स पुरुषस्तं पुरुषं शक्त्या समभिध्वंसते, तस्य पाणिना वा, तस्याऽसिना शीर्षं छिनत्ति तावच्च स पुरुषः कायिक्या, आधिकरणिक्या, यावत्–प्राणातिपातक्रियया पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः. आसन्नवधकेन च अनवकाङ्क्षणवृत्तिकेन पुरुषवैरेण स्पृष्टः. द्वौ भगवन् ! पुरुषौ सदृशौ, सदृक्त्वचौ, सदृग्वयसौ, सदृग्भाण्ड–मात्रोपकरणौ अन्यान्येन सार्धं संग्रामं संग्रामयेते, तत्र एकः पुरुषः पराजयते, एकः पुरुषः पराजीयते, तत् कथमेतद् भगवन् ! एवम् ? गौतम ! एवम् उच्यते–सवीर्यः पराजयते, अवीर्यः पराजीयते. तत् केनाऽर्थेन यावत्–पराजीयते ? गौतम ! यस्य वीर्यवर्जानि कर्माणि नो बद्धानि, नो स्पृष्टानि, यावत्–नो अभिसमन्वागतानि, नो उदीर्णानि, उपशान्तानि भवन्ति; स पराजयते. यस्य वीर्यवर्जानि कर्माणि बद्धानि, यावत्–उदीर्णानि, नो उपशान्तानि भवन्ति; स पुरुषः पराजीयते, तत् तेनाऽर्थेन गौतम ! एवम् उच्यते–सवीर्यः पराजयते, अवीर्यः पराजीयते:—अनु०

प्राणातिपातक्रिया च वाच्यते इति. 'ऊसविए' त्ति उत्सर्प्य—'उसिक्किऊण' इत्यर्थः, ऊर्ध्वीकृत्येति वा 'निसिरइ' त्ति निसृजति निक्षिपति तावद् इति शेषः. 'उसुं' ति बाणम्, 'आययकण्णाययं' ति कर्णं यावद् आयतः आकृष्टः कर्णायतः, आयतं प्रयत्नवद् यथाभवति एवं कर्णायतः—आयतकर्णायतः—तम्, 'आयामेत्ता' त्ति आयम्य आकृष्य, 'मग्गओ' त्ति पृष्ठतः, 'सयपाणिणा' त्ति स्वकपाणिना स्वक-हस्तेन, 'पुव्वायामणयाए' त्ति पूर्वाकर्षणेन 'से णं भंते! पुरिसे' त्ति स शिरश्छेत्ता पुरुषः, 'मिअवेरेणं' ति इह वैरं वैरहेतुत्वाद् वधः, पापं वा वैरं वैरहेतुत्वादिति. अथ शिरश्छेतृपुरुषहेतुकत्वाद् इषुनिपातस्य कथं धनुर्धरपुरुषो मृगवधेन स्पृष्टः? इत्याकूतवतो गौतमस्य तद्-अनुपपत्तमेवार्थमुसरतया प्राह—क्रियमाणं धनुष्काण्डादि, कृतमिति व्यपदिश्यते, युक्तिस्तु प्राग्वत्. तथा संधीयमानं प्रत्यञ्चायाम् आरो-प्यमाणं काण्डम्, धनुर्वा आरोप्यमाणप्रत्यञ्चं संधितं कृतसंधानं भवति. यथा निर्वृत्यमानं नितरां वर्तुलीक्रियमाणं प्रत्यञ्चाकर्षणेन निर्वर्तितं वृत्तीकृतं मण्डलाकारं कृतं भवति, तथा निसृज्यमानं निक्षिप्यमाणं काण्डं निसृष्टं भवति. यदा च—निसृज्यमानं निसृष्टम्, तदा निसृ-ज्यमानतया धनुर्धरेण कृतत्वात् तेन काण्ड निसृष्टं भवति—काण्डनिसर्गाच्च मृगस्तेनैव मारितः. ततश्चोच्यते—'जे मिअं मारेइ' इत्यादि. इति.

२. आयुष्यने बांधवामां क्रियाओ कारण छे माटे हवे क्रिया संबंधे पांच सूत्र कहे छे. तेमां ['कच्छंसि व' त्ति] कच्छ एटले नदीना पाणीथी वेराएल वृक्ष वगेरेवाळो भाग, तेमां ['दहंसि व' त्ति] द्रह एटले धरो ए प्रतीत छे. ['उदगंसि व' त्ति] पाणीमां-गमे ते प्रकारना जलाशयमां. ['दविअंसि व' त्ति] घास वगेरेना समुदाय-ढगला-मां. ['वलयंसि व' त्ति] गोळाकार नदी वगेरेना पाणीथी वांका चूंका प्रदेशमां. ['नूमंसि व' त्ति] अंधारावाळा प्रदेशमां. ['गहणंसि व' त्ति] वृक्षोना, वेलडीओना, लताओना अने विशाळ वेलाना समुदायमां. ['गहणविदुग्गंसि व' त्ति] पर्वतना एक भागमां रहेल वृक्ष तथा वेलडीओना जत्थामां. ['पव्वयंसि व' त्ति] पर्वतमां. ['पव्वयविदुग्गंसि व' त्ति] पर्वतना समुदायमां. ['वणंसि व' त्ति] वन—एक जातना वृक्षना समुदाय—मां. ['वणविदुग्गंसि व' त्ति] अनेक जातना वृक्षना समूहमां. ['मिगवित्तीए' त्ति] जेनी आजीविका हरणो उपर छे ते मृगवृत्तिक, एवो मनुष्य कदाच मृगनो रखवाळ पण होय, माटे कहे छे के, ['मिअसंकप्पे' त्ति] जेनो संकल्प हरणोने मारवानो छे ते मृगसं-कल्प, तेवो मनुष्य चंचल पण होय माटे कहे छे के, ['मिअपणिहाणे' त्ति] मृगने मारवामां एकाग्र चित्तवाळो. ['मिगवहाए' त्ति] मृगने मारवा माटे ['गंता' त्ति] ते कच्छ वगेरे प्रदेशोमां जइने एम सबंध करवो. ['कूडपासं' ति] मृगोने पकडवानुं कारण ते कूट—खाडा वगेरे, अने पाश एटले मृगोने बांधवानुं, ते कूटपाश. ['उद्दाइ' त्ति] ते कूटपाशने मृगने मारवा माटे बनावे छे. ['तओ णं' ति] ते कूटपाश करवाथी ['कइकिरिए' त्ति] ते केटली क्रियावाळो कहेवाय? क्रिया एटले कायिकी वगेरे क्रिया, ['जे भविए' त्ति] जे योग्य छे—करनार छे. ['जावं च णं'] जेटला काळ सुधी. शेनो करनार छे? तो कहे छे के, ['उद्दवणयाए' त्ति] कूटपाशने धरी राखवानी क्रियानो. ['तावं च णं' ति] तेटला काळ सुधी. ['काइयाए' त्ति] जवुं, आववुं वगेरे शरीरनी चेष्टारूप कायिकी क्रियावडे, ['अहिगरणिआए' त्ति] कूटपाशरूप अधिकरणथी उत्पन्न थएली ते आधिकरणिकी क्रिया तेवडे, ['पाउसिआए' त्ति] मृगो संबंधी जे दुष्ट भाव ते प्रद्वेष अने तेनाथी उत्पन्न थएली ते प्राद्वेषिकी क्रिया—तेवडे, ['तिहिं किरियाहिं' ति] कराय ते क्रिया—एक जातनी चेष्टा. ['परितावणिआइ' त्ति] जेनुं प्रयोजन परिताप छे ते पारितापनिकी क्रिया, मृगने बांध्या पछी ते क्रिया बांधनारने लागे छे. अने मृगने मार्या पछी मारनारने प्राणातिपात क्रिया लागे छे. ['ऊसविए' त्ति] उंचुं करीने ['निसिरइ' त्ति] फेंके छे, ['उसुं' ति] बाणने, ['आयय-कण्णाययं' ति] कान सुधी खेंचेल ते कर्णायत अने आयत-प्रयत्नपूर्वक जे कर्णायत ते आयतकर्णायत, ['तं आयामेत्ता' त्ति] तेने खेंचीने, ['मग्गओ' त्ति] पाछळथी, ['सयपाणिणा' त्ति] पोताना हाथवडे, ['पुव्वायामणयाए' त्ति] पूर्वना खेंचवाथी. ['से ण भंते! पुरिसे' त्ति] ते माथुं कापनार पुरुष, ['मिअवेरेणं' ति] वैरनुं कारण होवाथी वध पण वैर कहेवाय अथवा वैरनुं कारण होवाथी पाप पण वैर कहेवाय. बाणने छूटवामां कारणरूप माथुं कापनारो पुरुष छे. तो धनुर्धर पुरुष, मृगना वधथी स्पृष्ट थाय ते केम संभवी शके? ए प्रमाणे अभिप्रायवाळा भगवंत गौतमना स्वीकृत अर्थने ज उत्तरपणे कहे छे. क्रियमाण धनुष्य अने कांड वगेरे कृत छे, एम व्यवहार जाणवो. आ संबंधेनी बधी युक्तिओ पूर्वनी—प्रथम प्रश्न उपर करेल विवेचननी—पेठे जाणवी. तथा संधातुं—प्रत्यंचा—कामठानी दोरी—उपर चडावातुं—धनुष्य के कांड सांधेलुं जाणवुं. दोरी खेंचवाथी गोळाकार करातुं ते गोळाकार थएलुं जाणवुं. तथा फेंकातुं कांड ते फेंकेलुं जाणवुं. ज्यारे फेंकातुं ते फेंकेलुं गणाय छे त्यारे फेंकवानी तैयारी ते धनुर्धर पुरुषे करेली हती माटे तेणे ज ते फेंकेलुं गणाय अने कांडना फेंकवाथी ज ते धनुर्धारी पुरुषे मृगने मार्यो छे एम गणाय. माटे ज कह्युं छे के, ['जे मिअं मारेइ' इत्यादि.]

मृगघातक पुरुषनी क्रिया विषे विचार.

प्रथम प्रश्न.

३. इह च क्रियाः प्रक्रान्ताः, ताश्च अनन्तरोक्ते मृगादिवधे यावत्यो यत्र कालविभागे भवन्ति, तावतीस्तत्र दर्शयन्नाह:—'अंतो-छण्हं' इत्यादि. षण्मासान् यावत् प्रहारहेतुकं मरणम्, परतस्तु परिणामान्तरापादितमिति कृत्वा षण्मासाद् ऊर्ध्वं प्राणातिपातक्रिया न स्यादिति हृदयम्. एतच्च व्यवहारनयापेक्षया प्राणातिपातक्रियाव्यपदेशमात्रोपदर्शनार्थमुक्तम्. अन्यथा यदा कदापि अधिकृतप्रहारहेतुकं मरणं भवति तदा एव प्राणातिपातक्रियेति. 'सत्तीए' त्ति शक्त्या प्रहरणविशेषेण, 'समभिधंसेज्जा' त्ति हन्यात्, 'सयपाणिणा' त्ति स्वक-हस्तेन, 'से' त्ति तस्य, 'काइआए' त्ति कायिक्या शरीरस्पन्दरूपया, आधिकरणिक्या—शक्ति—खड्गव्यापाररूपया, प्राद्वेषिक्या—मनोदुष्प्रणि-धानेन, पारितापनिक्या परितापनरूपया, प्राणातिपातक्रियया मारणरूपया. 'आसन्न' इत्यादि. शक्त्या अभिध्वंसकः, असिना वा शिर-श्छेदकः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः, तथा पुरुषवैरेण च स्पृष्टः मारितपुरुषवैरिभावेन, किंभूतेन? इत्याह:—आसन्नो वधो यस्मात् वैरात् तत्

१. मूळे 'सर' प्रकार मांखमां आवेलो छे:—श्रीअभय०.

तथा—तेन आसन्नवधकेन. भवति च वैराद् वधो वधकस्य तमेव बध्यमाश्रित्य, अन्यतो वा, तत्रैव जन्मनि, जन्मान्तरे वा. यदाह:— "वह—मारण—अब्भक्खाणदाण—परधणविलोवणाईणं, सव्वजहन्नो उदयो दसगुणिओ एक्कसि कयाणं" ति. चः समुच्चये. अनवकाङ्क्षणा परप्राणनिरपेक्षा, स्वगताऽपायपरिहारनिरपेक्षा वा, वृत्तिर्वर्तनं यत्रैव वैरे तत् तथा—तेन अनवकाङ्क्षणवृत्तिकेन इति. क्रियाधिकारे एव इद-माह:—'सरिसय' त्ति सदृशकौ कौशल—प्रमाणादिना, 'सरित्तय' त्ति सदृक्त्वचौ सदृशच्छवी, 'सरिव्वय' त्ति सदृग्वयसौ—समानयौवना-द्यवस्थौ, 'सरिसभण्डमत्तोवगरण' त्ति भाण्डं भाजनं—मृन्मयादि, मात्रो मात्रया युक्तः उपधिः, स च कांस्यभाजनादि भोजनभण्डिका. भाण्डमात्रा वा गणिमादिद्रव्यरूपः परिच्छदः, उपकरणानि अनेकधा आवरण—प्रहरणादीनि, ततः सदृशानि भाण्डमात्रोपकरणानि ययोस्तौ तथा—अनेन च समानविभूतिकत्वं तयोरभिहितम्. 'सवीरिए' त्ति सवीर्यः, 'वीरिअवज्झाइं' ति वीर्यं वध्यं येषां तानि—तथा.

२. आ प्रकरणमां क्रियाओनी हकीकत कही छे अने ते जेटली क्रियाओ हमणां कहेल मृगादि वधमां जे कालविभागमां थाय छे तेटलीने त्यां दर्शावतां कहे छे के, ['अंतोछण्हं' इत्यादि.] छ मासनी अंदर मरण थाय तो तेमां प्रहारने कारण जाणवो अने जो पछी मरण थाय तो ते मरणमां बीजुं कांइ—परिणामांतर—कारण जाणवुं. माटे छ मासनी पछी प्राणातिपात क्रिया न लागे ए तात्पर्य छे. अने ए व्यवहारनयनी अपेक्षाए प्राणातिपात क्रियाना व्यवहारने मात्र देखाडवा सारु जणाव्युं छे. नहींतर खरी रीते तो ज्यारे क्यारे पण अधिकृत प्रहारना कारणथी मरण थाय त्यारे ज प्राणा-तिपात क्रिया लागे छे. ['सत्तीए' त्ति] एक जातना शस्त्र—शक्ति—बरछी—वडे ['समभिधंसेज्ज' त्ति] हणे. ['सयपाणिण' त्ति] पोताना हाथवडे. ['से' त्ति] तेनुं. ['काइयाए' त्ति] शरीरना कंपवारूप कायिकी क्रियावडे, बरछी के तरवारना व्यापाररूप आधिकरणिकी क्रियावडे, मनना दुर्विचाररूप प्राद्वेषिकी क्रियावडे, परितापरूप पारितापनिकी क्रियावडे, मारवारूप प्राणातिपात क्रियावडे. ['आसन्नवहएण य' इत्यादि.] बरछीवडे हणनार के तरवारथी माथुं कापनार मनुष्य पांच क्रियाथी स्पर्शाय छे तथा पुरुषना वैरथी—मारेल पुरुषना वैरिभाववडे—पण स्पर्शाय छे. ते वैरिभाव केवो छे? तो कहे छे के, जे वैरथी आसन्न—नजीकमां—ज वध थवानो छे ते आसन्नवधक वैरिभाववडे स्पर्शाय छे. जेनो घात कर्यो होय तेनाथी के बीजाथी ते ज जन्ममां के बीजा जन्ममां हणनारनो घात थाय छे. कह्युं छे के:—"वध, मारण, आळ चडाववुं, चोरी करवी; ए बधां एकवार करेलां अपकृत्योनो सौथी ओछामां ओछो उदय दसगणो होय छे." बीजाना प्राणनी दरकार नहीं अथवा पोताना दुःखना नाशमां बेदरकारी ते अनवकांक्षणा, जे वैरमां ते अनवकांक्षणारूप वृत्ति छे ते वैर 'अनवकांक्षणवृत्ति' कहेवाय—तेवडे. क्रियाना अधिकारथी ज आ सूत्र कहे छे के, ['सरिसय' त्ति] चतुराइ अने शरीरना माप वगेरेथी सरखा, ['सरित्तय' त्ति] सरखी कांतिवाळा, ['सरिव्वय' त्ति] सरखी उमरवाळा—सरखी युवा वगेरे अवस्थावाळा, ['सरिसभंडमत्तोवगरण' त्ति] भांड एटले माटी वगेरेना वासणो, कांसा वगेरेना वासण ते मात्रा—भोजननी सामग्री—रूप उपधि. अथवा जे गणवा लायक द्रव्य वगेरेरूप परिच्छद ते भांडमात्रा अने अनेक प्रकारनां वस्त्रो तथा शस्त्रो वगेरे ते उपकरण. जे बन्नेनां भांडमात्रा अने उपकरणो सरखां छे ते बे 'सदृशभांडमात्रोपकरण' कहेवाय. आ हकीकतथी ते बे जणानुं समानविभूतिपणुं कह्युं छे. ['सवीरिए' त्ति] वीर्यवाळो. ['वीरियवज्झाइं' ति] जेनाथी वीर्य हणाय छे ते वीर्यवध्य—वीर्य विनानां.

वीर्यविचार.

२७५. प्र०—*जीवा णं भंते! किं सविरिया, अविरिया?*

२७५. प्र०—हे भगवन्! शुं जीवो वीर्यवाळा छे के वीर्य विनाना छे?

२७५. उ०—*गोयमा! सवीरिया वि, अवीरिया वि.*

२७५. उ०—हे गौतम! जीवो वीर्यवाळा पण छे अने वीर्य विनाना पण छे.

२७६. प्र०—*से केणट्ठेणं.*

२७६. प्र०—हे भगवन्! तेनुं शुं कारण?

२७६. उ०—*गोयमा! जीवा दुविहा पन्नत्ता. तं जहाः—संसारसमावण्णगा य, असंसारसमावण्णगा य; तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णया ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया. तत्थ जे ते संसारसमावण्णया ते दुविहा पन्नत्ता. तं जहाः—सेलेसिपडिवण्णगा य, असेलेसिपडिवण्णगा य; तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नया ते णं लद्धिवीरियेणं सवीरिया, करणवीरियेणं अवीरिया. तत्थ णं जे ते असेलेसि-*

२७६. उ०—हे गौतम! जीवो बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—संसारसमापन्नक अने असंसारसमापन्नक. तेमां जे जीवो असंसारसमापन्नक छे ते सिद्धो छे अने तेओ वीर्यरहित छे. तथा तेमां जे जीवो संसारसमापन्नक छे ते बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—शैलेशीप्रतिपन्न अने अशैलेशीप्रतिपन्न. तेमां जे शैलेशीप्रतिपन्न छे ते लब्धिवीर्यवडे सवीर्य छे अने करणवीर्यवडे अवीर्य छे. तथा तेमां जे अशैलेशीप्रतिपन्न छे ते लब्धिवीर्यवडे

---

१. प्र० छायाः—वध—मारण—अभ्याख्यानदान—परधनविलोपनादीनाम्, सर्वजघन्य उदयो दशगुणित एकशः कृतानाम्:—अनु०

१. 'च' शब्द समुच्चयनो सूचक छेः—श्रीअभय०

१. मूलच्छायाः—जीवा भगवन्! किं सवीर्याः, अवीर्याः? गौतम! सवीर्या अपि, अवीर्या अपि. तत् केनाऽर्थेन? गौतम! जीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—संसारसमापन्नकाश्च, असंसारसमापन्नकाश्च. तत्र ये तेऽसंसारसमापन्नकास्ते सिद्धाः, सिद्धा अवीर्याः. तत्र ये ते संसारसमापन्नकास्ते द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शैलेशीप्रतिपन्नकाश्च, अशैलेशीप्रतिपन्नकाश्च; तत्र ये ते शैलेशीप्रतिपन्नकास्ते लब्धिवीर्येण सवीर्याः, करणवीर्येणाऽवीर्याः. तत्र ये ते—अनु०

[illegible] ते णं लद्धिवीरियेणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुचइ—'जीवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहाः—सवीरिया वि, अवीरिया वि'.

सवीर्य होय छे. पण करणवीर्यवडे तो सवीर्य तथा अवीर्य पण होय छे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी एम कह्युं छे के, 'जीवो बे जातना छे—वीर्यवाळा पण छे अने वीर्य विनाना पण छे'.

२७७. प्र०—णेरइया णं भंते ! किं सवीरिया, अवीरिया ?

२७७. प्र०—हे भगवन् ! शुं नैरयिको वीर्यवाळा छे के वीर्य विनाना छे ?

२७७. उ०—गोयमा ! णेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि.

२७७. उ०—हे गौतम ! नैरयिको लब्धिवीर्यवडे सवीर्य छे अने करणवीर्यवडे सवीर्य पण छे अने अवीर्य पण छे.

२७८. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२७८. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२७८. उ०—गोयमा ! जेसि णं णेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे; ते णं णेरइया लद्धिवीरिएणं वि सवीरिया, करणवीरिएण वि सवीरिया. जेसि णं णेरइयाणं नत्थि उट्ठाणे, जाव–परक्कमे; ते णं णेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया. से तेणट्ठेणं०.

२७८. उ०—हे गौतम ! जे नैरयिकोने उत्थान, कर्म, बळ, वीर्य अने पुरुषकारपराक्रम छे ते नैरयिको लब्धिवीर्यवडे अने करणवीर्यवडे पण सवीर्य छे. तथा जे नैरयिकोने उत्थान यावत्–पुरुषकारपराक्रम नथी ते नैरयिको लब्धिवीर्यवडे सवीर्य छे अने करणवीर्यवडे अवीर्य छे. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी पूर्व प्रमाणे कह्युं छे.

२७९.—जहा णेरइया, एवं जाव–पंचिंदियतिरिक्खजोणिया. मणूसा जहा ओहिया जीवा. णवरं–सिद्धवज्जा भाणियव्वा. वाणमंतर–जोतिस–वेमाणिया जहा णेरइया.

२७९.—ए प्रमाणे यावत्–पंचेंद्रियतिर्यंच योनिको सुधीना जीवो विषे नैरयिकोनी पेठे जाणवुं. अने सामान्य जीवोनी पेठे मनुष्यो विषे जाणवुं. विशेष ए के, सिद्धोने वर्जी देवा–सामान्य जीवोमां आवता सिद्धोनी पेठे मनुष्यो न जाणवा. तथा वानव्यंतरो, ज्योतिषिको अने वैमानिको नैरयिकोनी पेठे जाणवा.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति जाव–विहरइ.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे. एम कही यावत्–विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते पढमसये अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो.

४. वीर्यप्रस्तावाद् इदमाहः—'*जीवा णं*' इत्यादि. '*सिद्धा णं अवीरिय*' त्ति सकरणवीर्याभावाद् अवीर्याः सिद्धाः. '*सेलेसिपडिवन्नया य*' त्ति शीलेशः सर्वसंवररूपचरणप्रभुः, तस्येयमवस्था शैलेशी. शैलेशो वा मेरुः, तस्येव या अवस्था स्थिरतासाधर्म्यात् सा शैलेशी. सा च सर्वथा योगनिरोधे पञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारकालमाना–तां प्रतिपन्नका ये ते तथा. '*लद्धिवीरिएणं*' ति '*सवीरिय*' त्ति वीर्यान्तरायक्षय–क्षयोपशमतो या वीर्यस्य लब्धिः, सा एव तद्धेतुत्वाद् वीर्यं लब्धिवीर्यं तेन सवीर्याः–एतेषां च क्षायिकमेव लब्धिवीर्यम्. '*करणवीरिएणं*' ति लब्धिवीर्यकार्यभूता क्रिया करणम्, तद्रूपं वीर्यं करणवीर्यम्. '*करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि*' त्ति तत्र सवीर्या उत्थानादिक्रियावन्तः, अवीर्यास्तु उत्थानादिक्रियाविकलाः, ते च अपर्याप्तादिकाले अवगन्तव्या इति. नवरम्—'*सिद्धवज्जा भाणिअव्व*' त्ति औघिकजीवेषु सिद्धाः सन्ति, मनुष्येषु तु ते न, इति मनुष्यदण्डके वीर्यं प्रति सिद्धस्वरूपं नाध्येयमिति.

४. वीर्यनो अधिकार होवाथी हवे आ सूत्र कहे छे के, ['जीवा णं' इत्यादि.] ['सिद्धा णं अवीरिय' त्ति] सकरण वीर्य सिद्धोने नथी होतुं माटे सिद्धो अवीर्य छे. ['सेलेसिपडिवन्नया य' त्ति] शीलेश एटले चारित्रशाळो जीव, तेनी जे अवस्था ते शैलेशी, शैलेश एटले मेरु, तेनी जेवी जे

वीर्यविचार.
शैलेशी.

---

१. मूलच्छायाः—अशैलेशीप्रतिपन्नकास्ते लब्धिवीर्येण सवीर्याः, करणवीर्येण सवीर्या अपि, अवीर्या अपि. तद् तेनाऽर्थेन गौतम ! एवम् उच्यते 'जीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः–सवीर्या अपि, अवीर्या अपि.' नैरयिका भगवन् ! किं सवीर्याः, अवीर्याः ? गौतम ! नैरयिका लब्धिवीर्येण सवीर्याः, करणवीर्येण सवीर्या अपि, अवीर्या अपि. तद् केनाऽर्थेन ? गौतम ! येषां नैरयिकाणाम् अस्ति उत्थानम्, कर्म, बलम्, वीर्यम्, पुरुषकारपराक्रमस्ते नैरयिका लब्धिवीर्येणाऽपि सवीर्याः, करणवीर्येणाऽपि सवीर्याः. येषां नैरयिकाणां नास्ति उत्थानम्, यावत्–पराक्रमस्ते नैरयिका लब्धिवीर्येण सवीर्याः, करणवीर्येण अवीर्याः. तद् तेनाऽर्थेन०. यथा नैरयिकाः, एवं यावत्–पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः. मनुष्या यथा औघिका जीवाः. नवरम्–सिद्धवर्जा भणितव्याः. वानव्यन्तर–ज्योतिष्क–वैमानिका यथा नैरयिकाः. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इति यावत्–विहरतिः–अनु०

२. वीर्य बे प्रकारनुं छे. जेमके, लब्धिवीर्य अने करणवीर्य. वीर्य एटले एक जातनुं आत्मबळ. लब्धिवीर्य एटले एक जातना आत्मबळनी सत्ता अने करणवीर्य एटले कोई पण प्रकारनी क्रिया करतुं आत्मबळ. लब्धिवीर्य [illegible] संसारी जीवोने होय छे अने करणवीर्य सर्वने होय तेवो नियम नथी.
[illegible]—अनु०

स्थिरतावाळी स्थिति ते शैलेशी. ज्यारे तद्दन योगनो निरोध होय छे त्यारे ते शैलेशी नामनी स्थिति होय छे अने ते, पांच ह्रस्व अक्षरो उच्चारण करवामां जेटलो काळ लागे तेटला काळ सुधी रहे छे. ते शैलेशी दशाने पहोंचेला–पामेला ते 'शैलेशीप्रतिपन्नक' कहेवाय. ['लद्धिवीरिएणं' त्ति] ['सवीरिय' त्ति] वीर्यांतरायना क्षय अने क्षयोपशमथी थएली जे वीर्यनी लब्धि, ते ज वीर्य मळवामां कारणरूप छे माटे वीर्य–'वीर्यलब्धि'–कहेवाय तेवडे तेओ वीर्यवाळा छे अने एओनुं लब्धिवीर्य क्षायिक ज छे. ['करणवीरिएणं' ति] लब्धिवीर्यनी जे कार्यभूत क्रिया ते 'करण' कहेवाय अने तद्रूप जे वीर्य ते करणवीर्य कहेवाय. ['करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि' त्ति] तेमां सवीर्य एटले उत्थानादि क्रियावाळा, अवीर्य एटले उत्थानादि क्रिया विनाना. अने तेओ (अवीर्य) अपर्याप्तादि वखते जाणवा. ['नवरं सिद्धवज्जा भाणियव्व' त्ति] सामान्य जीवोमां सिद्धो आवे छे अने मनुष्योमां तो तेओ नथी आवता, माटे मनुष्यना दंडकमां वीर्य विषे सिद्धोनुं स्वरूप न कहेवुं.

बेडारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.—उद्देशक ९.

जीवो भारेपणु केम पामे ?—प्राणातिपातादिथी.—जीवो हळवापणुं केम पामे ?—अहिंसादिथी.—चार प्रशस्त.—चार अप्रशस्त.—शुं अवकाशांतर भारे छे ? हळवो छे ? भारेहळवो छे ? के भारेहळवा सिवायनो छे ?—ते भारेहळवा सिवायनो छे.—शु सातमो तनुवात भारे छे ? हळवो छे ? भारेहळवो छे ? के भारेहळवा सिवायनो छे ?—ए संबंधे बीजा प्रश्नो.—लोघरहितपणु वगेरे निर्ग्रंथोने माटे सारु छे ?—हा.—कांक्षाप्रदोष क्षीण थया पछी अथवा पूर्वे बहु मोहवाळी स्थितिमां रह्या पछी संवृत थइ श्रमण सिद्ध थाय ?—हा.—अन्यतीर्थिक.—एक जीव एक काळे बे आयुष्य करे ते केम ?—ते खोटुं.—एक जीव एक काळे एक आयुष्य करे.—गौतमविहार.—कालास्यवेषिपुत्र अनगार अने स्थविरो वच्चे प्रश्न.—कालास्यवेषिपुत्र अनगारनुं अजाणपणुं.—चार महाव्रत मूकी पांच महाव्रतनो स्वीकार.—कालास्यवेषिपुत्र अनगारनो मोक्ष.—शेठ, दरिद्र, लोभिओ अने क्षत्रिय, ए बधा एक साथे अप्रत्याख्यान क्रिया करे ?—हा.—तेनुं कारण.—आधाकर्म अन्न खावानुं श्रमणने फळ.—प्रासुक अन्न खावानुं श्रमणने फळ.—अस्थिर पदार्थ बदलाय ?—स्थिर पदार्थ न बदलाय ? इत्यादि.—हा.—गौतमविहार.—उद्देशकसमाप्ति.—

२८०. प्र०—[1]*कह णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?*

२८०. प्र०—हे भगवन् ! जीवो गुरुपणुं—भारेपणुं—केवी रीते शीघ्र पामे छे ?

२८०. उ०—*गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं, कोह—माण—माया—लोभ—पेज्ज—दोस—कलह—अब्भक्खाण—पेसुन्न—अरतिरति—परपरिवाय — मायामोस—मिच्छादंसणसल्लेणं; एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वं आगच्छंति.*

२८०. उ०—हे गौतम ! प्राणातिपातवडे, मृषावादवडे, अदत्तादानवडे, मैथुनवडे, परिग्रहवडे, क्रोधवडे, मानवडे, मायावडे, लोभवडे, प्रेमवडे, द्वेषवडे, कलहवडे, आळ देवावडे, चाडी खावावडे, अरतिरतिवडे, बीजानी निंदा करवाथी, कपटपूर्वक खोटुं बोलवाथी अने मिथ्यादर्शनशल्य—अविवेक—वडे; हे गौतम ! ए रीते जीवो शीघ्र भारेपणुं पामे छे.

२८१. प्र०—*कह णं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति ?*

२८१. प्र०—हे भगवन् ! जीवो लघुपणुं—हळवापणु—केवी रीते शीघ्र पामे छे ?

२८१. उ०—*गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव—मिच्छादंसणसल्लविरमणेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्वं आगच्छंति.*

२८१. उ०—हे गौतम ! प्राणातिपातनो अटकाव करवाथी अने यावत्—विवेकथी, हे गौतम ! ए रीते जीवो शीघ्र हळवापणुं पामे छे.

२८२.—*एवं संसारं आउलीकरेंति, एवं परित्तीकरेंति, एवं*

२८२.—ए रीते—प्राणातिपातादिना करवाथी—जीवो संसारने वधारे छे, लांबो करे छे अने संसारमां भम्या करे छे तथा ए रीते प्राणातिपातादिथी निवृत्त थइने जीवो संसारने घटाडे छे, टुंको

---

[1] मूलच्छाया:—कथं भगवन् ! जीवा गुरुकत्वं शीघ्रमागच्छन्ति ? गौतम ! प्राणातिपातेन, मृषावादेन, अदत्तादानेन, मैथुनेन, परिग्रहेण, क्रोध—मान—माया—लोभ—प्रेम—द्वेष—कलह—अभ्याख्यान—पैशुन्य—अरतिरति—परपरिवाद—मायामृषा—मिथ्यादर्शनशल्येन; एवं खलु गौतम ! जीवा गुरुकत्वं शीघ्रमागच्छन्ति. कथं भगवन् ! जीवा लघुकत्वं शीघ्रमागच्छन्ति ? गौतम ! प्राणातिपातविरमणेन, यावत्—मिथ्यादर्शनशल्यविरमणेन. एवं खलु गौतम ! जीवा लघुकत्वं [illegible], एवं संसारम् आकुलीकुर्वन्ति, एवं परीत्तीकुर्वन्ति, [illegible]:—अनु०

दीहीकरेंति, एवं हस्सीकरेंति, एवं अणुपरियट्टंति, एवं वीतिवयंति. पसत्था चत्तारि. अप्पसत्था चत्तारि.

करे छे अने संसारने ओळंगी जाय छे—चार—हळवापणुं, संसारने घटाडवो, संसारने टूंको करवो अने संसारने ओळंगवो—प्रशस्त छे अने चार—भारेपणुं, संसारने वधारवो, संसारने लांबो करवो अने संसारमां भमवुं—अप्रशस्त छे.

२८३. प्र०—सत्तमे णं भंते ! उवासंतरे किं गरुए, किं लहुए, गरुयलहुए, अगरुयलहुए ?

२८३. प्र०—हे भगवन् ! शुं सातमो अवकाशांतर भारे छे, हळवो छे, भारेहळवो छे के अगुरुलघु—भारेहळवा सिवायनो छे ?

२८३. उ०—गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, णो गुरुलहुए, अगुरुलहुए.

२८३. उ०—हे गौतम ! ते भारे नथी, हळवो नथी, भारेहळवो नथी पण अगुरुलघु—भारेहळवा सिवायनो—छे.

२८४. प्र०—सत्तमे णं भंते ! तणुवाए किं गरुए, लहुए, गुरुयलहुए, अगुरुयलहुए ?

२८४. प्र०—हे भगवन् ! शु सातमो तनुवात भारे छे, हळवो छे, भारेहळवो छे के अगुरुलघु छे ?

२८४. उ०—गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, गुरुयलहुए, णो अगुरुयलहुये. एवं सत्तमे घणवाए, सत्तमे घणोदही, सत्तमा पुढवी. उवासंतराइं सव्वाइं. जहा सत्तमे उवासंतरे, जहा तणुवाए, एवं गरुयलहुए, घणवाय, घणउदहि, पुढवी, दीवा य, सायरा, वासा.

२८४. उ०—हे गौतम ! ते भारे नथी, हळवो नथी, भारेहळवो छे पण अगुरुलघु नथी. ए प्रमाणे सातमो घनवात, सातमो घनोदधि, सातमी पृथिवी अने बधां अवकाशांतरो जाणवां. सातमा अवकाशांतर विषे जेम कह्युं छे, तनुवात विषे जेम कह्युं छे ए प्रमाणे घनोदधि, पृथिवी, द्वीप, समुद्रो अने क्षेत्रो विषे पण जाणवुं.

२८५. प्र०—णेरइया णं भंते ! किं गरुया जाव—अगुरुयलहुया ?

२८५. प्र०—हे भगवन् ! शुं नैरयिको भारे छे, यावत्—अगुरुलघु छे ?

२८५. उ०—गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगुरुयलहुया वि.

२८५. उ०—हे गौतम ! तेओ गुरु—भारे—नथी, हळवा नथी, भारेहळवा छे अने अगुरुलघु—भारेहळवा सिवायना—पण छे.

२८६. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२८६. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२८६. उ०—गोयमा ! विउव्विय—तेयाइं पडुच्च णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया, णो अगरुयलहुया. जीवं च, कम्मं च पडुच्च णो गुरुया, णो लहुया, णो गुरुलहुआ, अगरुयलहुया. से तेणट्ठेणं, एवं जाव—वेमाणिया. णवरं—णाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं. धम्मत्थिकाए, जाव—जीवत्थिकाए चउत्थपएणं.

२८६. उ०—हे गौतम ! नैरयिको वैक्रिय अने तैजस शरीरनी अपेक्षाए गुरु—भारे—नथी, लघु—हळवा—नथी अने अगुरुलघु—भारेहळवा सिवायना—नथी. पण भारेहळवा—गुरुलघु छे. अने जीव तथा कर्मनी अपेक्षाए भारे नथी, हळवा नथी, भारेहळवा नथी, पण भारेहळवा सिवायना छे. हे गौतम ! ते कारणथी पूर्व प्रमाणे कह्यु छे. अने ए प्रमाणे यावत्—वैमानिको सुधी जाणवुं. विशेष ए के, शरीरोनो भेद जाणवो. तथा धर्मास्तिकाय अने यावत् जीवास्तिकाय चोथा पदवडे जाणवा अर्थात् ए बधा अगुरुलघु जाणवा.

२८७. प्र०—पोग्गलत्थिकाए णं भंते ! किं गरुए, लहुए, गरुयलहुए, अगुरुयलहुए ?

२८७. प्र०—हे भगवन् ! शु पुद्गलास्तिकाय गुरु छे, लघु छे, गुरुलघु छे के अगुरुलघु छे ?

२८७. उ०—गोयमा ! णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए वि, अगुरुयलहुए वि.

२८७. उ०—हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय गुरु नथी, लघु नथी पण गुरुलघु छे. अने अगुरुलघु पण छे.

२८८. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२८८. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

---

१. मूलच्छाया.—दीर्घीकुर्वन्ति, एवं ह्रस्वीकुर्वन्ति, एवम् अनुपरिवर्तन्ते, एवं व्यतिव्रजन्ति. प्रशस्तानि चत्वारि. अप्रशस्तानि चत्वारि. सप्तमं भगवन् ! अवकाशान्तरं किं गुरुकम्, किं लघुकम्, गुरुकलघुकम्, अगुरुकलघुकम् ? गौतम ! नो गुरुकम्, नो लघुकम्, नो गुरुलघुकम्, अगुरुलघुकम्. सप्तमो भगवन् ! तनुवातः किं गुरुकः, लघुकः, गुरुकलघुकः, अगुरुकलघुकः ? गौतम ! नो गुरुकः, नो लघुकः, गुरुलघुकः, नो अगुरुलघुकः. एवं सप्तमो घनवातः, सप्तमो घनोदधिः, सप्तमी पृथिवी, अवकाशान्तराणि सर्वाणि. यथा सप्तमम् अवकाशान्तरम्, यथा तनुवातः, एवं गुरुलघुको घनवातः, घनोदधिः, पृथिवी, द्वीपाश्च, सागराः, वर्षाणि. नैरयिका भगवन् ! किं गुरुकाः यावत्—अगुरुलघुकाः ? गौतम ! नो गुरुकाः, नो लघुकाः, गुरुकलघुका अपि, अगुरुकलघुका अपि. तत् केनार्थेन ? गौतम ! वैक्रिय–तैजसानि प्रतीत्य नो गुरुकाः, नो लघुकाः, गुरुकलघुकाः, नो अगुरुकलघुकाः. जीवं च, कार्मणं च प्रतीत्य नो गुरुकाः नो लघुकाः नो गुरुकलघुकाः, अगुरुकलघुकाः. तत् तेनार्थेन, एवं यावत्—वैमानिकाः. नवरम्—नानात्वं ज्ञातव्यं शरीरैः. धर्मास्तिकायो यावत्—जीवास्तिकायः चतुर्थपदेन. पुद्गलास्तिकायो भगवन् ! किं गुरुकः, लघुकः, गुरुकलघुकः, अगुरुकलघुकः ? गौतम ! नो गुरुकः, नो लघुकः, गुरुकलघुकोऽपि, अगुरुकलघुकोऽपि. तत् केनार्थेन ?:—अनु०

२८८. उ०—गोयमा ! गरुयलहुयदव्वाइं पडुच णो गरुए, णो लहुए, गरुयलहुए, णो अगुरुयलहुए. अगुरुयलहुयदव्वाइं पडुच णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगुरुयलहुए. समया, कम्माणि य चउत्थपएणं.

२८९. प्र०—कण्हलेस्सा णं भंते ! किं गरुया, जाव–अगरुयलहुया ?

२८९. उ०—गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, गरुयलहुया वि, अगुरुयलहुया वि.

२९०. प्र०—से केणट्ठेणं ?

२९०. उ०—गोयमा ! दव्वलेस्सं पडुच ततियपएणं, भावलेस्सं पडुच चउत्थपदेणं, एवं जाव–सुक्कलेस्सा.

२९१.—दिट्ठी–दंसण–णाण–ऽण्णाण–सण्णाओ चउत्थपदेणं णेतव्वाओ. हेट्ठिल्ला चत्तारि सरीरा णेयव्वा ततिएणं पदेणं. कम्मया चउत्थएणं पदेणं. मणजोगो, वइजोगो चउत्थएणं पदेणं, कायजोगो ततिएणं पदेणं. सागारोवओगो, अणागारोवओगो चउत्थपदेणं. सव्वदव्वा, सव्वपएसा, सव्वपज्जवा जहा पोग्गलत्थिकाओ. तीयद्धा, अणागयद्धा, सव्वद्धा चउत्थेणं पदेणं.

२८८. उ०—हे गौतम ! गुरुलघु द्रव्योनी अपेक्षाए गुरु नथी, लघु नथी, अगुरुलघु नथी पण गुरुलघु छे. अने अगुरुलघु द्रव्योनी अपेक्षाए गुरु नथी, लघु नथी, गुरुलघु नथी, पण अगुरुलघु छे. समयो अने कर्मो चोथा पदवडे जाणवां अर्थात् तेओ अगुरुलघु छे.

२८९. प्र०—हे भगवन् ! शुं कृष्णलेश्या गुरु छे, के यावत्–अगुरुलघु छे ?

२८९. उ०—हे गौतम ! ते गुरु नथी, लघु नथी, पण गुरुलघु छे अने अगुरुलघु पण छे.

२९०. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२९०. उ०—हे गौतम ! द्रव्यलेश्यानी अपेक्षाए त्रीजा पदवडे जाणवुं अर्थात् द्रव्यलेश्यानी अपेक्षाए कृष्णलेश्या गुरुलघु छे अने भावलेश्यानी अपेक्षाए चोथा पदवडे जाणवुं–भावलेश्यानी अपेक्षाए कृष्णलेश्या अगुरुलघु छे. ए प्रमाणे यावत्—शुक्ललेश्या सुधी जाणवुं.

२९१.—तथा दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान अने संज्ञाने चोथा पदवडे अगुरुलघु जाणवां. हेठळनां चार शरीर त्रीजा पदवडे गुरुलघु जाणवां. कार्मण शरीरने चोथा पदवडे अगुरुलघु जाणवुं. मन–योग–मन, वचनयोग–शब्द, साकार उपयोग अने निराकार उपयोग; ए बधा चोथा पदवडे अगुरुलघु जाणवा. तथा काययोग–शरीर, त्रीजा पदवडे गुरुलघु जाणवो. सर्व द्रव्यो, सर्व प्रदेशो अने सर्व पर्यवो पुद्गलास्तिकायनी पेठे जाणवा. अतीतकाळ, अनागतकाळ अने सर्वकाळ चोथा पदवडे अगुरुलघु जाणवा.

१. अष्टमोद्देशकान्ते वीर्यम् उक्तम्, वीर्याच्च जीवा गुरुत्वादि आसादयन्ति इति गुरुत्वादिप्रतिपादनपरः, तथा संग्रहिण्यां यदुक्तम् 'गुरुए' त्ति तत्प्रतिपादनपरश्च नवमोद्देशकः, तत्र च सूत्रम्–'कहं णं' इत्यादि. 'गुरुअत्तं' ति गुरुकत्वम् अशुभकर्मोपचयरूपम्–अधस्ताद् गमनहेतुभूतम्. लघुकत्वं गौरवविपरीतम्. 'एवं आउलीकरेंति' त्ति इह 'एवम्' शब्दः पूर्वोक्ताऽभिलापसंसूचनार्थः, स च एवम्:– 'कह णं भंते ! जीवा संसारं आउलीकरेंति ? गोयमा ! पाणाइवाएणं' इत्यादि. एवम्–उत्तरत्राऽपि. तत्र 'आउलीकरेंति' त्ति प्रचुरीकुर्वन्ति कर्मभिरित्यर्थः. 'परित्तीकरेंति' त्ति स्तोकं कुर्वन्ति कर्मभिरेव. 'दीहीकरेंति' त्ति दीर्घं प्रचुरकालम् इत्यर्थः. 'हस्सीकरेंति' त्ति अल्पकालम् इत्यर्थः. 'अणुपरियट्टंति' त्ति पौनःपुन्येन भ्रमन्ति इत्यर्थः. 'वीइवयंति' व्यतिव्रजन्ति व्यतिक्रामन्ति इत्यर्थः. 'पसत्था चत्तारि' त्ति लघुत्व–परीतत्व–ह्रस्वत्व–व्यतिव्रजनदण्डकाः प्रशस्ताः, मोक्षाऽङ्गत्वात्. 'अप्पसत्था चत्तारि' त्ति गुरुत्वा–ऽऽकुलत्व–दीर्घत्वा–ऽनुपरिवर्तनदण्डका अप्रशस्ताः, अमोक्षाङ्गत्वाद् इति. गुरुत्व–लघुत्वाऽधिकाराद् इदमाह–'सत्तमे णं' इत्यादि. इह च इयं गुरु–लघुव्यवस्थाः— "निच्छयओ सव्वगुरुं सव्वलहुं वा न विज्जए दव्वं, ववहारओ उ जुज्जइ बायरखंधेसु नऽण्णेसु. अगुरुलहू चउफासा अरूविदव्वा य होंति नायव्वा, सेसाओ अट्ठफासा गुरुलहुया निच्छयणयस्स." 'चउफास' त्ति सूक्ष्मपरिणामानि, 'अट्ठफास' त्ति बादराणि. गुरुलघुद्रव्यं रूपि, अगुरुलघुद्रव्यं तु अरूपि, रूपि च इति. व्यवहारतस्तु गुर्वादीनि चत्वार्यपि सन्ति, तत्र च निदर्शनानि:–गुरुर्लोष्टोऽधोगमनात्. लघुर्धूम ऊर्ध्वगमनात्. गुरुलघुर्वायुस्तिर्यग्गमनात्. अगुरुलघु आकाशं तत्स्वभावत्वाद् इति. एतानि चाऽवकाशान्तरादिसूत्राणि एतद्गाथाऽनुसारेणाऽवग-

१. मूलच्छाया:—गौतम ! गुरुकलघुकद्रव्याणि प्रतीत्य नो गुरुकः, नो लघुकः, गुरुकलघुकः, नो अगुरुकलघुकः. अगुरुकलघुकद्रव्याणि प्रतीत्य नो गुरुकः, नो लघुकः नो गुरुकलघुकः, अगुरुकलघुकः. समयाः, कर्माणि च चतुर्थपदेन. कृष्णलेश्या भगवन् ! किं गुरुका यावत्–अगुरुकलघुका ? गौतम ! नो गुरुका, नो लघुका, गुरुकलघुका अपि, अगुरुकलघुका अपि. तत् केनार्थेन ? गौतम ! द्रव्यलेश्यां प्रतीत्य तृतीयपदेन, भावलेश्यां प्रतीत्य चतुर्थपदेन, एवं यावत्–शुक्ललेश्या. दृष्टि–दर्शन–ज्ञान–अज्ञान–संज्ञाश्चतुर्थपदेन नेतव्याः, अधस्तनानि चत्वारि शरीराणि ज्ञातव्यानि तृतीयेन पदेन. कार्मणं चतुर्थकेन पदेन. मनोयोगः, वचोयोगश्चतुर्थकेन पदेन. काययोगस्तृतीयेन पदेन. साकारोपयोगः, अनाकारोपयोगश्चतुर्थपदेन. सर्वद्रव्याणि, सर्वप्रदेशाः, सर्वपर्यवाः यथा पुद्गलास्तिकायः. अतीताद्धा, अनागताद्धा, सर्वाद्धा चतुर्थेन पदेन:—अनु॰

१. प्र॰ छाया:—निश्चयतः सर्वगुरु सर्वलघु वा न विद्यते द्रव्यम्, व्यवहारतस्तु युज्यते बादरस्कन्धेषु नान्येषु. २. अगुरुलघवः चतुःस्पर्शाः अरूपि- [illegible] गुरुलघुका निश्चयनयस्य:—अनु॰

[illegible]

न्त्व्यानि, तद्यथा:—*"उवास–वाय–घणउदहि–पुढवि–दीवा य सागरा वासा, नेरईयाई अत्थिय समया कम्माइं लेसाओ. दिट्ठी–दंसण–नाणे सन्ना–सरीरा य जोग–उवओगे, दव्व–पएसा पज्जव तीया आगामि सव्वद्ध"*त्ति. *'वेउव्विय–तेयाइं पडुच'* त्ति नारका वैक्रिय–तैजसशरीरे प्रतीत्य गुरुक–लघुका एव, यतो वैक्रिय–तैजसवर्गणात्मके ते, एताश्च गुरुलघुका एव. यदाह:—*"ओरालिय–वेउव्विय–आहारग–तेय गुरुलहुदव्व"* त्ति. *'जीवं च कम्मणं च पडुच'* त्ति जीवाऽपेक्षया, कार्मणशरीराऽपेक्षया च नारका अगुरुलघुका एव. जीवस्याऽरूपित्वेनाऽगुरुलघुत्वात्, कार्मणशरीरस्य च कार्मणवर्गणात्मकत्वात्, कार्मणवर्गणानां चाऽगुरुलघुत्वात्. आह च:—*"कम्मग–मण–भासाई एयाइं अगुरुलहुआइं"* ति.

१. आठमा उद्देशकने छेडे वीर्य संबंधी हकीकत कही छे. अने जीवो वीर्यथी भारेपणुं वगेरे पामे छे माटे हवे 'भारेपणुं' वगेरेनुं प्रतिपादन करवा तथा आगळ आवेली संग्रहगाथामां जे ['गुरुए' त्ति] ए पद कह्युं छे, तेनुं प्रतिपादन करवा आ नवमो उद्देशक शरु थाय छे. अने तेमां सूत्र आ छे:— ['कहं णं' इत्यादि.] ['गुरुअत्तं' ति] भारेपणुं अर्थात् नीचे जवामां कारणभूत अने नठारां कर्मना उपचयरूप जे, ते 'भारेपणुं' जाणवुं. भारेपणाथी उलटुं ते हळवापणुं जाणवुं. ['एवं आउलीकरेन्ति'त्ति] आ स्थळे जे 'एवं' शब्द मूक्यो छे तेनुं कारण ए छे के, ए प्रमाणे—पूर्वनी पेठे—अहीं पण पाठ कहेवो. जेमके; ['कहं णं भंते ! जीवा संसारं आउलीकरेंति ? गोयमा ! पाणाइवाएणं' इत्यादि.] ए प्रमाणे नीचे पण समजवुं. तेमां ['आउलीकरेंति' त्ति] कर्मवडे संसारने प्रचुर करे छे. ['परित्तीकरेंति'त्ति] कर्मवडे संसारने ओछो करे छे. ['दीहीकरेंति' त्ति] संसारने लांबो–लांबा काळवाळो–करे छे. ['हस्सीकरेंति' त्ति] संसारने टुंको–टुंका काळवाळो–करे छे. ['अणुपरियट्टंति' त्ति] वारंवार संसारमां भमे छे. ['वीईवयंति' त्ति] संसारने ओळंगे छे. ['पसत्था चत्तारि' त्ति] हळवापणुं, संसारने ओछो करवो, टुंको करवो अने ओळंगवो, ए चार दंडक प्रशस्त छे. कारण के ते चारवानां मोक्षनां अंगरूप छे. ['अप्पसरथा चत्तारि' त्ति] भारेपणुं, संसारने प्रचुर करवो, लांबो करवो, अने तेमां रखडवुं, ए चार दंडक अप्रशस्त छे. कारण के ते चारवानां मोक्षनां अंगरूप नथी. गुरुत्व अने लघुत्वनो अधिकार होवाथी आ सूत्र कहे छे:–['सत्तमे णं' इत्यादि.] आ स्थळे गुरु–भारे–अने लघु–हळवा–नी व्यवस्था आ प्रमाणे छे:—"निश्चयनयनी अपेक्षाए सौथी भारे अने सौथी हळवुं कोइ द्रव्य–वस्तु–नथी. पण व्यवहारनयनी अपेक्षाए बादर (स्थूल) स्कंधोमां सौथी भारेपणुं अने सौथी हळवापणुं रहे छे पण बीजामां ते नथी." "जे द्रव्यो चार स्पर्शवाळां होय छे अने जे द्रव्यो अरूपी होय छे ते बधा अगुरुलघु होय छे. तथा बाकीनां आठ स्पर्शवाळां जे द्रव्यो छे ते बधां गुरुलघु छे. एम निश्चयनयनुं मत छे" ['चउफास' त्ति] एटले सूक्ष्म परिमाणवाळां, ['अट्ठफास'त्ति] बादर–स्थूल–मोटां. जे द्रव्य गुरुलघु होय छे ते रूपवाळुं होय छे अने जे द्रव्य अगुरुलघु होय छे ते रूपवाळुं होय छे अने रूप विनानुं पण होय छे. व्यवहारथी तो चारे जातनां–गुरु, लघु, गुरुलघु अने अगुरुलघु–द्रव्यो होय छे. ते संबंधे आ प्रमाणे उदाहरणो छे:—ढेफुं ए भारे–गुरु–वस्तु छे. कारण के तेनो नीचे जवानो स्वभाव छे. धूमाडो ए हळवो–लघु–पदार्थ छे. कारण के तेनो उंचे जवानो स्वभाव छे. वायु गुरुलघु पदार्थ छे, कारण के तेनो तीरच्छा जवानो स्वभाव छे. आकाश ए अगुरुलघु द्रव्य छे. कारण के तेनो तेवो स्वभाव छे. अवकाशांतर वगेरे संबंधेनां ए सूत्रो आ गाथाने अनुसारे जाणवां. ते आ प्रमाणे:—"अवकाश, वायु, घनोदधि, पृथिवी, द्वीप, सागरो, क्षेत्रो, नैरयिकादि, अस्तिकाय–धर्मास्तिकायादि, समयो, कर्मो, लेश्या" "दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य, प्रदेश, पर्यव, अतीतकाळ, आगामिकाळ अने सर्वकाळ." ['वेउव्विअ–तेयाइं पडुच' त्ति] वैक्रिय अने तैजस शरीरनी अपेक्षाए नारको गुरुलघुको ज छे. कारण के ते बन्ने–वैक्रिय अने तैजस–शरीर, वैक्रिय अने तैजस वर्गणाना बनेलां छे अने ते वर्गणाओ गुरुलघु ज छे. कह्युं छे के, "औदारिक, वैक्रिय, आहारक अने तैजस; ए बधी वर्गणाओ गुरुलघु छे" ['जीवं च कम्मणं च पडुच' त्ति] जीव अने कार्मण शरीरनी अपेक्षाए नारको अगुरुलघुको ज छे. कारण के जीव अरूपी छे माटे अगुरुलघु छे तथा कार्मण शरीर, कार्मण वर्गणाओनुं बनेलुं छे अने कार्मण वर्गणाओ अगुरुलघु छे माटे कार्मण शरीर पण अगुरुलघु छे. कह्युं छे के, "कार्मण, मन, अने भाषा–शब्द; ए बधी वर्गणाओ अगुरुलघु छे".

गुरुत्व. लघुत्व. चार प्रशस्त. चार अप्रशस्त. निश्चय अने व्यवहार. उदाहरण. वैक्रिय अने तैजस. जीव अने कार्मण.

२. *'णाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं'* ति यस्य यानि शरीराणि भवन्ति तस्य तानि ज्ञात्वाऽसुरादिसूत्राणि अध्येयानि इति हृदयम्. तत्र असुरादिदेवा नारकवद् वाच्याः. पृथिव्यादयस्तु औदारिक–तैजसे प्रतीत्य गुरुलघवः. जीवम्, कार्मणं च प्रतीत्याऽगुरुलघवः. वायवस्तु औदारिक–वैक्रिय–तैजसानि प्रतीत्य गुरुलघवः. एवं पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि. मनुष्यास्तु औदारिक–वैक्रिय–तैजसा-ऽऽहारकाणि प्रतीत्य इति. *'धम्मत्थिकाए'* त्ति इह 'यावत्' करणात् *'अहम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए'* त्ति दृश्यम्. *'चउत्थपएणं'* ति एते *'अगुरुलहु'* इत्यनेन पदेन वाच्याः. शेषाणां तु निषेधः कार्यः. धर्मास्तिकायादीनाम् अरूपितयाऽगुरुलघुत्वाद् इति. पुद्गलास्तिकायसूत्रे उत्तरं निश्चयनयाऽऽश्रयम्, एकान्तगुरुलघुनोस्तन्मतेनाऽभावात्. *'गुरुय–लहुयदव्वाइं'* ति औदारिकादीनि चत्वारि. *'अगुरुय–लहुयदव्वाइं'* ति कार्मणादीनि. *'समया' कम्माणि य चउत्थपएणं'* ति समया अमूर्ताः, कर्माणि च कार्मणवर्गणात्मकानि इति अगुरुलघुत्वम् एषाम्. *'दव्वलेस्सं पडुच तइयपएणं'* ति द्रव्यतः कृष्णलेश्या औदारिकादिशरीरवर्णः, औदारिकादिकं च 'गुरुलघु' इति कृत्वाऽनेन तृतीयविकल्पेन व्यपदेश्या. भावलेश्या तु जीवपरिणतिः, तस्याश्चाऽमूर्तत्वाद् 'अगुरुलघु' इत्यनेन व्यपदेशः. इत्यत आह:—*'भावलेस्सं पडुच चउत्थपएणं'* ति *'दिट्ठी–दंसण'* इत्यादि. दृष्टयादीनि जीवपर्यायत्वेनाऽगुरुलघुत्वाद् अगुरुलघुलक्षणेन चतुर्थपदेन वाच्यानि. अज्ञानपदं तु इह ज्ञानविपक्षत्वाद् अधीतम्, अन्यथा द्वारेषु ज्ञानपदमेव दृश्यते. *'हेट्ठिल्ल'* त्ति औदारिकादीनि, *'तइयपएणं'* ति गुरुलघुपदेन, गुरुलघुवर्गणात्मकत्वात्. *'कम्मया चउत्थपएणं'* ति अगुरुलघुद्रव्यात्मकत्वात् कार्मणशरीराणाम्. मनोयोग–वाग्योगौ चतुर्थपदेन वाच्यौ, तद्द्रव्याणाम् अगुरुलघुत्वात्. काययोगः कार्मणवर्जस्तृतीयेन, गुरुलघुत्वात् तद्द्रव्याणाम् इति. *'सव्वदव्व'* इत्यादि. सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायाऽऽदीनि,

---

१. जुओ पृ० ८ पं०–अनु०

सर्वप्रदेशास्तेषामेव निर्विभागा अंशाः, सर्वपर्यवा वर्णो–पयोगादयो द्रव्यधर्माः, एते पुद्गलास्तिकायवद् व्यपदेश्याः. गुरुलघुत्वेन, अगुरुलघुत्वेन वीत्यर्थः, यतः सूक्ष्माणि, अमूर्तानि च द्रव्याणि अगुरुलघूनि, इतराणि तु गुरुलघूनि, प्रदेशाः, पर्यवास्तु तत्तद्द्रव्यसंबन्धित्वेन तत्तत्–स्वभावा इति.

२. ['णाणत्तं जाणिअव्वं सरीरेहिं' ति] जेने जेटलां शरीरो होय, तेने तेटलां जाणीने असुरवगेरे संबंधे सूत्रो कहेवां ए तात्पर्य छे. तेमां असुर वगेरे देवो नारक जीवोनी पेठे कहेवा. अने पृथिवी वगेरेना जीवो तो औदारिक तथा तैजस शरीरनी अपेक्षाए गुरुलघु जाणवा. अने जीव तथा कार्मण शरीरनी अपेक्षाए अगुरुलघु जाणवा. वळी वायुना जीवोने तो औदारिक, वैक्रिय अने तैजस शरीरनी अपेक्षाए गुरुलघु जाणवा. ए प्रमाणे पंचेंद्रियतिर्यंचो पण जाणवा. मनुष्योने तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने आहारक शरीरनी अपेक्षाए गुरुलघु जाणवा. ['धम्मत्थिकाए'त्ति] अहीं 'यावत्' शब्द मूकेलो होवाथी 'अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय' एम जाणवुं. ['चउत्थपएणं' ति] 'अगुरुलघु' ए प्रमाणेना चोथा पदवडे तेओ कहेवा. अने बाकीना पदोवडे तेओने न कहेवा. कारण के धर्मास्तिकाय वगेरे अरूपी होवाथी अगुरुलघु द्रव्यो छे. पुद्गलास्तिकायना सूत्रमां तो जे उत्तर दीधो छे ते निश्चयनयने आश्रीने दीधो छे. कारण के तेना (निश्चय नयना) मते कोइ पण चीज सौथी हळवी के सौथी भारे नथी. ['गुरुयलहुयदव्वाइं' ति] औदारिक वगेरे चार द्रव्यो, ['अगुरुलहुयदव्वाइं' ति] कार्मण वगेरे द्रव्यो. ['समया, कम्माणि य चउत्थपएणं' ति] समयो अमूर्त छे माटे अगुरुलघु छे अने कर्मो, कार्मण वर्गणानां बनेलां छे माटे अगुरुलघु छे. ['दव्वलेस्सं पडुच्च तइयपएणं' ति] औदारिक शरीर वगेरेनो जे काळो वर्ण ते द्रव्य कृष्णलेश्या छे. अने औदारिकादिक गुरुलघु कह्युं छे माटे द्रव्य कृष्णलेश्या त्रीजा पदथी कहेवी अर्थात् गुरुलघु कहेवी, भावलेश्या तो जीवनो परिणाम छे अने ते अमूर्त छे माटे 'अगुरुलघु' ए प्रमाणेना चोथा पदवडे कहेवी–अगुरुलघु कहेवी. माटे कहे छे के, ['भावलेस्सं पडुच्च चउत्थपएणं' ति] ['दिट्ठी–दंसण' इत्यादि.] दृष्टि वगेरे, जीवना पर्यायरूप छे माटे अगुरुलघु छे, अने तेथी तेओने 'अगुरुलघु' ए प्रमाणेना चोथा पदवडे कहेवां. ज्ञानथी विपरीत होवाथी अहीं अज्ञानपद कह्युं छे. नहीं तो सूत्रमां ज्ञानपद ज देखाय छे, पण अज्ञानपद नथी. ['हेट्ठिल्ल' त्ति] औदारिक वगेरे ['तइयपएणं' ति] 'गुरुलघु' ए प्रमाणेना त्रीजा पदवडे कहेवां–गुरुलघु कहेवां. कारण के ते गुरुलघु वर्गणानां बनेलां छे. ['कम्मया चउत्थपएणं' ति] कार्मण शरीरो चोथा पदवडे अगुरुलघु–कहेवां. कारण के कार्मण शरीरोनी बनावट अगुरुलघु वर्गणाओथी थएली छे. तथा मनोयोग–मन–अने वाग्योग–वचनयोग–शब्द–चोथा पदवडे–अगुरुलघु–कहेवा. कारण के ते बन्नेनी बनावट अगुरुलघु अणुओथी थएली छे. कार्मण सिवायनो काययोग त्रीजा पदवडे–गुरुलघु–कहेवो. कारण के, तेना द्रव्यो गुरुलघु छे. ['सव्वदव्व' इत्यादि.] धर्मास्तिकाय वगेरे द्रव्यो, सर्व प्रदेशो एटले ते द्रव्योना ज भाग न थइ शके तेवा अंशो, वर्ण अने उपयोग वगेरे द्रव्यना धर्मो ते सर्वपर्यवो; ए बधा पुद्गलास्तिकायनी पेठे कहेवा–गुरुलघु अने अगुरुलघु कहेवा. कारण के जे द्रव्यो सूक्ष्म अने अमूर्त छे ते अगुरुलघु छे अने जे बीजां द्रव्यो–बादर–स्थूल अने मूर्त–छे ते गुरुलघु जाणवां. प्रदेशो अने पर्यवो तो ते ते द्रव्यना संबंधी होवाथी ते ते द्रव्यना स्वभाववाळा जाणवा.

असुरादि. धर्मास्तिकायादि. निश्चयनय. समयादि. द्रव्यलेश्या. भावलेश्या. दृष्टि वगेरे. औदारिकादि. सर्व द्रव्य. प्रदेश अने पर्यव.

निर्ग्रन्थ.

२९२. प्र०—*से णूणं भंते ! लाघवियं, अप्पिच्छा, अमुच्छा, अगेही, अपडिबद्धया समणाणं णिग्गंथाणं पसत्थं ?*

२९२. उ०—*हंता, गोयमा ! लाघवियं, जाव–पसत्थं.*

२९३. प्र०—*से णूणं भंते ! अकोहत्तं, अमाणत्तं, अमायत्तं, अलोभत्तं समणाणं णिग्गंथाणं पसत्थं ?*

२९३. उ०—*हंता, गोयमा ! अकोहत्तं, अमाणत्तं, जाव–पसत्थं.*

२९४. प्र०—*से णूणं भंते ! कंखपदोसे णं खीणे समणे णिग्गंथे अंतकरे भवति ? अंतिमसरीरिए वा ? बहुमोहे वि य णं पुव्विं विहरित्ता, अह पच्छा संवुडे कालं करेइ, ततो पच्छा सिज्झति, बुज्झइ, मुच्चइ, जाव–अंतं करेइ ?*

२९४. उ०—*हंता, गोयमा ! कंखपदोसे खीणे, जाव–अंतं करेइ.*

२९२. प्र०—हे भगवन् ! लाघव, ओछी इच्छा, अमूर्छा, अनासक्ति अने अप्रतिबद्धता; ए बधुं श्रमण निर्ग्रंथोने माटे प्रशस्त छे?

२९२. उ०—हे गौतम ! हा, लाघव, अने यावत्–अप्रतिबद्धता; ए बधुं निर्ग्रंथोने माटे प्रशस्त छे.

२९३. प्र०—हे भगवन् ! अक्रोधपणुं, अमानपणुं, अकपटपणुं अने अलोभपणुं; ए बधुं श्रमण निर्ग्रंथोने माटे प्रशस्त छे ?

२९३. उ०—हे गौतम ! हा, अक्रोधपणुं, अमानपणुं अने यावत्–ए बधुं प्रशस्त छे.

२९४. प्र०—हे भगवन् ! कांक्षाप्रदोष क्षीण थया पछी श्रमण निर्ग्रंथ अंतकर अने अंतिमशरीरवाळो थाय ? अथवा पूर्वनी अवस्थामां बहुमोहवाळो थइ विहार करे अने पछी संवृत (संवरवाळो) थइने काळ करे तो पछी सिद्ध थाय, यावत्–सर्व दुःखना नाशने करे ?

२९४. उ०—हे गौतम ! हा, कांक्षाप्रदोष क्षीण थया पछी यावत्–सर्व दुःखना नाशने करे.

१. गुरुलघुत्वाधिकाराद् इदमाह:—'*से णूणं*' इत्यादि. '*लाघवियं*' ति लाघवमेव लाघविकम्–अल्पोपधित्वम्, '*अप्पिच्छ*' त्ति अल्पोऽभिलाष आहारादिषु, '*अमुच्छ*' त्ति उपधौ असंरक्षणाऽनुबन्धः, '*अगेहि*' त्ति भोजनादिषु परिभोगकालेऽनासक्तिः, अप्रतिबद्धता

१. मूलच्छायाः—तद् नूनं भगवन् ! लाघविकम्, अल्पेच्छा, अमूर्छा, अगृद्धिः, अप्रतिबद्धता श्रमणानां निर्ग्रन्थानां प्रशस्तम् ? हन्त, गौतम ! लाघविकम्, यावत्–प्रशस्तम्. तद् नूनं भगवन् ! अक्रोधत्वम्, अमानत्वम्, अमायत्वम्, अलोभत्वं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां प्रशस्तम् ? हन्त, गौतम ! अक्रोधत्वम्, अमानत्वम्, यावत्–प्रशस्तम्. तद् नूनं भगवन् ! कांक्षाप्रदोषे क्षीणे श्रमणो निर्ग्रन्थः अन्तकरो भवति, अन्तिमशरीरको वा (भवति)? बहुमोहोऽपि पूर्वं विहृत्य [illegible] करोति, ततः पश्चात् सिध्यति, बुध्यते, मुच्यते, यावत्–अन्तं करोति ? हन्त, गौतम ! कांक्षाप्रदोषे क्षीणे यावत्–अन्तं करोति:—अनु०

स्वजनादिषु स्नेहाऽभावः; इत्येतत् 'पञ्चकम्' इति गम्यम्. श्रमणानां निर्ग्रन्थानां प्रशस्तं सुन्दरम्, अथवा लाघविकं प्रशस्तम्. कथंभूतम् ? इत्याहः–'*अप्पिच्छा*' अल्पेच्छारूपम् इत्यर्थः, एवम् इतराण्यपि पदानि. उक्ता लाघविकस्य प्रशस्तता, तच्च क्रोधाद्यभावाऽविनाभूतम्, इति क्रोधादिदोषाऽभावप्रशस्तताऽभिधानार्थम्, क्रोधादिदोषाऽभावाऽविनाभूतकाङ्क्षाप्रदोषक्षयकार्याऽभिधानार्थं च क्रमेण सूत्रे, व्यक्ते च. नवरम्:– काङ्क्षा दर्शनाऽन्तरग्रहः, गृद्धिर्वा; सैव प्रकृष्टो दोषः काङ्क्षाप्रदोषः, काङ्क्षाप्रद्वेषं वा राग–द्वेषौ इत्यर्थः.

लाघविकादि.

३. गुरुलघुत्वनो अधिकार होवाथी हवे आ सूत्र कहे छेः–['से णूणं' इत्यादि.] ['लाघवियं' ति] हळवापणुं.–ओछी उपधिवाळापणुं, ['अप्पिच्छा' त्ति] आहार वगेरेमां ओछी इच्छा, ['अमुच्छ' त्ति] उपधिने साचववा माटेनी चीवट–काळजी–नहीं, ['अगेहि' त्ति] भोजन वगेरेमां असवाने बदले अलंपटपणुं, स्वजन वगेरेमां अप्रतिबद्धपणुं–स्नेहनो अभाव; ए पांचवानां श्रमण निर्ग्रंथोने माटे सारां छे. अथवा श्रमणोने लाघविक सारुं छे. ते लाघविक केवुं छे ? तो कहे छे के, ['अप्पिच्छा'] ओछी इच्छारूप. ए प्रमाणे बीजां पण पदो जाणवां. आगळ लाघविकनुं प्रशस्तपणुं कह्युं, अने ते लाघविक त्यारे ज होइ शके छे, ज्यारे क्रोध वगेरेनो अभाव होय. माटे हवे क्रोध वगेरे दोषोना अभावनी प्रशंसा करवा अने क्रोध वगेरे दोषोना अभाव सिवाय न बनी शके तेवुं कांक्षाप्रदोषना क्षयनुं कार्य छे माटे तेने कहेवा क्रमपूर्वक बे सूत्र कहे छे. अने ते बन्ने सूत्र स्पष्ट छे. विशेष ए के, कांक्षा एटले बीजा मतमां आग्रह अथवा आसक्ति. अने तद्रूप जे मोटो दोष ते कांक्षाप्रदोष अथवा कांक्षा एटले राग अने प्रद्वेष एटले द्वेष.

कांक्षाप्रदोष.

बीजा मतवाळा विषे प्रश्नोत्तर.

२९५. प्र०—*अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति–एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति. तं जहाः–इहभवियाउगं च, परभवियाउगं च; जं समयं इहभवियाउं पकरेति, तं समयं परभवियाउं पकरेति; जं समयं परभवियाउगं पकरेति, तं समयं इहभवियाउगं पकरेति; इहभवियाउगस्स पकरणयाए परभवियाउगं पकरेति, परभवियाउयस्स पकरणयाए इहभवियाउं पकरेति; एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पकरेति. तं जहाः—इहभवियाउगं च, परभवियाउगं च. से कहमेयं भंते ! एवं ?*

२९५. उ०—*गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिआ एवं आइक्खंति, जाव–परभवियाउगं च. जे ते एवं आहंसु मिच्छा ते एवं आहिंसु. अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव–परूवेमि. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउगं पकरेइ, तं जहाः–इहभविआउगं वा, परभविआउगं वा; जं समयं इहभवियाउगं पकरेति, णो तं समयं परभवियाउगं पकरेति; जं समयं परभवियाउगं पकरेति; णो तं समयं इहभवियाउगं पकरेति; इहभवियाउगस्स पकरणताए णो परभवियाउगं पकरेति, परभवियाउयस्स पकरणताए णो इहभवियाउगं पकरेति; एवं खलु एगे जीवे एगेणं समयेणं एगं आउगं पकरेति. तं जहाः—इहभवियाउगं वा, परभवियाउगं वा,*

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव–विहरति.

२९५. प्र०—हे भगवन् ! अन्यतीर्थिको आ प्रमाणे कहे छे, आ प्रमाणे भाषे छे, आ प्रमाणे जणावे छे अने आ प्रमाणे प्ररूपे छे के, एक जीव एक समये बे आयुष्य करे छे. ते आ प्रमाणेः—आ भवनुं आयुष्य अने पर भवनुं आयुष्य. जे समये आ भवनुं आयुष्य करे छे ते समये पर भवनुं आयुष्य करे छे अने जे समये पर भवनुं आयुष्य करे छे ते समये आ भवनुं आयुष्य करे छे–आ भवनुं आयुष्य करवाथी पर भवनुं आयुष्य करे छे अने पर भवनुं आयुष्य करवाथी आ भवनुं आयुष्य करे छे. ए प्रमाणे एक जीव एक समये बे आयुष्य करे छे–आ भवनुं आयुष्य अने पर भवनुं आयुष्य. हे भगवन् ! ते ए ए प्रमाणे केवी रीते छे ?

२९५. उ०—हे गौतम ! अन्यतीर्थिको जे ए प्रमाणे कहे छे यावत्–पर भवनुं आयुष्य. तेओए जे ए प्रमाणे कह्युं छे ते खोटुं कह्युं छे. वळी हे गौतम ! हुं ए प्रमाणे कहुं छुं यावत्–प्ररूपुं छुं के, एक जीव एक समये एक आयुष्य करे छे. अने ते आ भवनुं आयुष्य करे छे अथवा पर भवनुं आयुष्य करे छे. जे समये आ भवनुं आयुष्य करे छे. ते समये पर भवनुं आयुष्य नथी करतो अने जे समये पर भवनुं आयुष्य करे छे ते समये आ भवनुं आयुष्य करतो नथी. तथा आ भवनुं आयुष्य करवाथी पर भवनुं आयुष्य करतो नथी अने पर भवनुं आयुष्य करवाथी आ भवनुं आयुष्य करतो नथी. अने ए प्रमाणे एक जीव एक समये एक आयुष्य करे छे–आ भवनुं आयुष्य अथवा पर भवनुं आयुष्य.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कहीने भगवंत गौतम यावत्–विहरे छे.

---

१. मूलच्छायाः—अन्यतीर्थिका भगवन् ! एवमाख्यान्ति, एवं भाषन्ते, एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति–एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन द्वे आयुषी प्रकरोति, तद्यथाः—इहभवायुः, परभवायुश्च. यं समयम् इहभवायुः प्रकरोति, तं समयं परभवायुः प्रकरोति; यं समयं परभवायुः प्रकरोति, तं समयम् इहभवायुः प्रकरोति. इहभवायुष्कस्य प्रकरणतया परभवायुष्कं प्रकरोति, परभवायुष्कस्य प्रकरणतया इहभवायुष्कं प्रकरोति. एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन द्वे आयुषी प्रकरोति. तद्यथाः–इहभवायुश्च, परभवायुश्च. तत् कथमेवं भगवन् ! एतत् ? गौतम ! यत् ते अन्यतीर्थिका एवम् आख्यान्ति, यावत्–परभवायुष्कं च. ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः. अहं पुनर्गौतम ! एवम् आख्यामि, यावत्–प्ररूपयामि, एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन एकम् आयुष्कं प्रकरोति. तद्यथाः–इहभवायुष्कं वा, परभवायुष्कं वा. यं समयम् इहभवायुष्कं प्रकरोति, नो तं समयं परभवायुष्कं प्रकरोति. यं समयं परभवायुष्कं प्रकरोति, नो तं समयम् इहभवायुष्कं प्रकरोति. इहभवायुष्कस्य प्रकरणतया नो परभवायुष्कं प्रकरोति, परभवायुष्कस्य प्रकरणतया नो इहभवायुष्कं प्रकरोति. एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन एकम् आयुष्कं करोति. तद्यथाः–इहभवायुष्कं वा, परभवायुष्कं वा. तदेवं भगवन् ! तदेवं भगवन् ! इति भगवान् गौतमो यावत्–विहरति:–अनु०

४. काङ्क्षाप्रदोषः प्रागुक्तः. प्रदोषत्वं च काङ्क्षायास्तद्विषयभूतदर्शनान्तरस्य विपर्यस्तत्वात्, इति दर्शनान्तरस्य विपर्यस्ततां दर्शयन्नाह:— *'अन्नउत्थिया'* इत्यादि. अन्ययूथम्—विवक्षितसंघाद् अपरः संघः, तद् अस्ति येषां ते अन्ययूथिकास्तीर्थान्तरीया इत्यर्थः. *'एवं'* इति वक्ष्यमाणम्, *'आइक्खंति'* त्ति आख्यान्ति सामान्यतः, *'भासंति'* त्ति विशेषतः, *'पण्णवेंति'* त्ति उपपत्तिभिः, *'परूवेंति'* त्ति भेदकथनतः. द्वयोर्जीवयोः, एकस्य वा समयभेदेनाऽऽयुर्द्वयकरणेन नास्ति विरोध इत्युक्तम्—*'एगे जीवे'* इत्यादि. *'दो आउयाइं पकरेइ'* त्ति जीवो हि स्वपर्यायसमूहात्मकः, स च यदा एकमायुष्पर्यायं करोति तदाऽन्यमपि, स्वपर्यायत्वात्, ज्ञान—सम्यक्त्वपर्यायवत्. स्वपर्यायकर्तृत्वं च जीवस्याऽभ्युपगन्तव्यम् एव. अन्यथा सिद्धत्वादिपर्यायाणाम् अनुत्पादप्रसङ्ग इति भाव. उक्ताऽर्थस्यैव भावनार्थम् आह:—*'जं'* इत्यादि. विभक्तिविपरिणामाद् यस्मिन् समये. इहभवो वर्तमानभवः यत्राऽऽयुषि विद्यते फलतया तद् इहभवायु.. एवं परभवायुरपि. अनेन च इहभवायुष्करणसमये परभवायुष्करणं नियमितम्. अथ परभवायुष्करणसमये इहभवायुष्करण नियमयन् आह:—*'जं समयं परभवियाउं'* इत्यादि. एवम् एकसमयकार्यतां द्वयोरपि अभिधाय एकक्रियाकार्यतामाह:—*'इहभवियाउयस्स'* इत्यादि. *'पकरणयाए'* त्ति करणेन, *'एवं खलु'* इत्यादि निगमनं *'जं ण ते अन्नउत्थिया एवं आइक्खंति'* इत्यादिअनुवादवाक्यस्याऽन्ते तत् प्रतीतम्. 'न केवलम्' इति अयं वाक्यशेषो दृश्यः—*'जे ते एवं आहंसु, मिच्छं ते एवं आहंसु'* त्ति तत्र *'आहंसु'* त्ति उक्तवन्तः. यच्चाऽयं वर्तमाननिर्देशेऽभिक्रान्तेऽतीतनिर्देशः सः, सर्वो वर्तमानः कालोऽतीतो भवति, (इत्यस्य) अतीतार्थस्य ज्ञापनार्थः. मिथ्यात्वं च अस्यैवम्:—एकेनाऽध्यवसायेन विरुद्धयोरायुषोर्बन्धाऽयोगात्. यच्च उच्यते—'पर्यायान्तरकरणे पर्यायान्तरं करोति, स्वपर्यायत्वाद्' इति. तद् अनैकान्तिकम्. सिद्धत्वकरणे संसारित्वाऽकरणाद् इति. टीकाकारव्याख्यानं तु "इहभवायुर्यदा प्रकरोति वेदयते इत्यर्थः, परभवायुस्तदा प्रकरोति बध्नाति इत्यर्थः; इहभवायुरुपभोगेन परभवायुर्बध्नाति इत्यर्थः. मिथ्या च एतत् परमतम्. यस्माद् जातमात्रो जीव इहभवायुर्वेदयते, तदैव तेन यदि परभवायुर्बद्धं तदा दाना—ऽध्ययनादीनां वैयर्थ्यं स्याद्" इति. एतच्च आयुर्बन्धकालाद् अन्यत्राऽवसेयम्, अन्यथा आयुर्बन्धकाले इहभवायुर्वेदयते, परभवायुस्तु प्रकरोत्येव इति.

अन्ययूथिकोनुं कहेवुं—बेनो आयुष्य करवा विषे विचार.

४. आगळना प्रकरणमां कांक्षाप्रदोष कह्यो. कांक्षा ए मोटा दोषरूप छे तेनुं कारण ए के, जे बीजा मतमां कांक्षा–आग्रह–राखवामां आवे छे ते बीजो मत विपरीत होय छे. माटे हवे बीजा मतनी विपरीतता दर्शावतां कहे छे के, ['अन्नउत्थिया' इत्यादि.] अमुक संघथी जूदो जे संघ ते अन्ययूथ. तेमां जे रहेनार ते अन्ययूथिक अर्थात् तीर्थांतरीय-बीजा मतवाळा. ['एवं' त्ति] जे आगळ कहेवाशे ते, ['आइक्खंति' त्ति] सामान्य प्रकारे कहे छे. ['भासंति' त्ति] विशेष प्रकारे कहे छे. ['पण्णवेंति' त्ति] युक्तिपूर्वक कहे छे. ['परूवेंति' त्ति] भेदोना कहेवापूर्वक कहे छे. बे जीवो बे आयुष्यने करे अथवा एक जीव जूदे जूदे समये बे आयुष्य करे तेमां विरोध नथी. माटे कह्युं छे के, ['एगे जीवे' इत्यादि.] ['दो आउयाइं पकरेइ' त्ति] जीव जे छे ते, पोताना पर्यायोना समूहरूप छे अने ते ज्यारे आयुष्यरूप एक पर्यायने करे छे त्यारे बीजाने पण करे छे. कारण के ज्ञान अने सम्यक्त्वनी पेठे ते (आयुष्य) पोताना पर्यायरूप छे. वळी जीव पोताना पर्यायोनो कर्ता छे एम तो स्वीकारवुं ज जोइए. नहीं तो 'सिद्धपणुं' वगेरे पर्यायोनी उत्पत्ति बनवी ए असंभवतुं थइ जशे. कहेली वातने ज वधारे जणाववा कहे छे के, ['जं' इत्यादि.] जे समये इहभविक आयुष्य करे छे ते समये परभविक आयुष्य करे छे. इहभविक एटले जे आयुष्यना फळरूप आ चालु भव छे ते आयुष्य इहभविक जाणवुं. अने ए प्रमाणे परभविकायुष्यनो पण अर्थ करवो. आ सूत्रवडे इहभविकायुष्यने करवाना समये परभविकायुष्यनुं करवुं निर्णीत कर्युं. हवे परभविकायुष्यने करवाना समये इहभविकायुष्यने करवानुं निर्णीत करतां कहे छे के, ['जं समयं परभविआउयं' इत्यादि.] ए प्रमाणे ए बन्ने आयुष्यनुं एक ज समये करवानुं कहीने हवे ए बन्ने आयुष्य एक ज क्रियाथी कराय छे ए वातने जणावे छे के, ['इहभवियाउयस्स' इत्यादि.] ['पकरणयाए' त्ति] करवावडे. ['एवं खलु' इत्यादि.] ए जे उपसंहार सूत्र छे ते ['जं णं ते अन्नउत्थिआ एवं आइक्खंति' इत्यादि.] आ अनुवाद वाक्यने छेडे प्रतीत छे एटलुं ज नहीं पण ['जे ते एवं आहंसु, मिच्छं ते एवं आहंसु' त्ति] जे तेओ कहे छे ते खोटुं कहे छे. अहीं वर्तमान काळनुं क्रियापद मूकवुं जोइए तो पण बधो वर्तमान काळ भूतकाळरूपे थाय छे ए वातने जणाववा सारु, ['आहंसु' त्ति] ए भूतकाळनुं क्रियापद मूक्युं छे. अन्यतीर्थिकना मतनी असत्यता आ रीते छे:—एक प्रकारना आत्माना परिणामवडे विरुद्ध बे आयुष्यो बांधी शकातां नथी. वळी आगळ जे कह्युं छे के, पोताना पर्यायो होवाथी सम्यक्त्व अने ज्ञाननी पेठे एक पर्यायने करवामां बीजा पर्यायने करे छे, ते वात अनिश्चित छे. कारण के ज्यारे आत्मा सिद्धत्व पर्यायने करे छे त्यारे संसारित्व पर्यायने नथी करतो अर्थात् एक ज काळे एक जीव बे आयुष्योने करी शकतो नथी. टीकाकारनुं व्याख्यान तो आ प्रमाणे छे:—"ज्यारे आ भवनुं आयुष्य 'प्रकरोति' एटले वेदे छे—अनुभवे छे—त्यारे परभवनुं आयुष्य 'प्रकरोति' एटले बांधे छे. अर्थात् आ भवना आयुष्यने भोगववाथी परभवनु आयुष्य बांधे छे. ए प्रमाणेनुं पण अन्यतीर्थिकनुं मत खोटुं छे. कारण के ताजो ज जन्मेलो बाळक आ भवनुं आयुष्य अनुभवे छे, हवे जो ते बाळके ते ज समये बीजा भवनुं आयुष्य बांध्युं होय एम मानवामां आवे तो पछी दान अने अध्ययन (भणवुं) वगेरे क्रियाओ नकामी थइ जशे. तात्पर्य ए के, दान वगेरे क्रियाओ प्रायः एटला माटे ज करवामां आवे छे के करनारने सद्गति—स्वर्ग वगेरे—मळे. हवे जो जन्मतां वेंत ज बीजा भवनुं आयुष्य बंधाइ जतुं होय तो पछी सद्गतिनी प्राप्तिने माटे दानादिक धर्म नकामो छे." उपरनुं टीकाकारनुं व्याख्यान आयुष्य बांधवाना समय सिवाय बीजे समये—अपर्याप्त अवस्थामां—समजवुं. नहीं तो आयुष्यना बंधने वखते आ भवनुं आयुष्य वेदे छे अने पर भवनुं आयुष्य तो करे छे. (ए वात खोटी ठरी शकती नथी.)

तेनी असत्यता.

टीकाकार.

टीकाकारनुं व्याख्यान.

---

१. अत्र टीकागतोऽयं पाठः—"अण्णउत्थिआ णं इहभविआउयं' इत्यादि. इहभवायुर्यदा वेदयति, तदा जीवः परभवे आयुर्बध्नाति. इह(भव)ायुरुपभोगे परभवायुः करोति. नैतदेवम्, यस्मात् जातमात्र एव असौ 'इहभविआउयं पडिसंवेदेति' तदैव तेन आयुः परभवप्रायोग्यं बद्धम् इति कृत्वा तस्य दान—[illegible](दान)दीनां वैयर्थ्यं प्राप्नोति. तस्माद् 'जं समयं इहभविआउं, न तं समयं परभविआउं च.'"—(श्रीभगवतीअवचूर्णिः):—अनु॰

[illegible]विभक्तिओ वपराय छे माटे अहीं सातमी विभक्ति जेवो अर्थ समजवो:—श्रीअभय॰ १. आ, टीकाकारे वधारेलो मूळ संस्कृत [illegible]—अनु॰

स्थविरो अने आर्य श्रीकालास्यवेषिपुत्र अनगार.

२९६.—[1]*ते णं काले णं, ते णं समए णं पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते णामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते एवं वयासीः—थेरा सामाइयं न याणंति; थेरा सामाइयस्स अट्ठं ण याणंति; थेरा पच्चक्खाणं ण याणंति, थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं न याणंति; थेरा संजमं न याणंति, थेरा संजमस्स अट्ठं न याणंति; थेरा संवरं ण याणंति, थेरा संवरस्स अट्ठं न याणंति; थेरा विवेगं न याणंति, थेरा विवेगस्स अट्ठं ण याणंति; थेरा विउस्सग्गं ण याणंति, थेरा विउस्सग्गस्स अट्ठं न याणंति. तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वदासीः—जाणामो णं अज्जो! सामाइयं, जाणामो णं अज्जो! सामाइयस्स अट्ठं, जाव—जाणामो णं अज्जो! विउस्सग्गस्स अट्ठं.*

२९६.—ते काले, ते समये पार्श्वनाथना वंशमां थएल कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारे जे तरफ स्थविर भगवंतो हता, ते तरफ जइने ते स्थविर भगवंतोने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे स्थविरो! तमे सामायिक जाणता नथी, सामायिकनो अर्थ जाणता नथी. तमे पच्चक्खाण जाणता नथी, पच्चक्खाणनो अर्थ जाणता नथी. संयमने जाणता नथी, संयमना अर्थने जाणता नथी. संवर जाणता नथी, संवरना अर्थने जाणता नथी. तमे विवेक जाणता नथी, विवेकना अर्थने जाणता नथी. व्युत्सर्गने जाणता नथी अने व्युत्सर्गना अर्थने जाणता नथी. त्यारे ते स्थविर भगवंतोए कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारने आ प्रमाणे कह्युं के, हे आर्य! सामायिकने जाणीए छीए अने सामायिकना अर्थने जाणीए छीए यावत् हे आर्य! व्युत्सर्गने जाणीए छीए अने व्युत्सर्गना अर्थने जाणीए छीए.

२९७. प्र०—*तते णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे ते थेरे भगवंते एवं वयासीः—जइ णं अज्जो! तुब्भे जाणह सामाइअं, जाणह सामाइयस्स अट्ठं, जाव—जाणह विउस्सग्गस्स अट्ठं. के भे अज्जो! सामाइए, के भे अज्जो! सामाइयस्स अट्ठे. जाव—के भे विउस्सग्गस्स अट्ठे?*

२९७. प्र०—त्यारे ते कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारे ते स्थविर भगवंतोने आ प्रमाणे कह्युं के, हे आर्यो! जो तमे सामायिकने, सामायिकना अर्थने अने यावत्—व्युत्सर्गना अर्थने जाणो छो, तो हे आर्यो! सामायिक ए शुं? सामायिकनो अर्थ ए शुं अने यावत्—हे आर्यो! व्युत्सर्गनो अर्थ ए शुं?

२९७. उ०—*तए णं थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासीः—आया णे अज्जो! सामाइए, आया णे अज्जो! सामाइयस्स अट्ठे, जाव—विउस्सग्गस्स अट्ठे.*

२९७. उ०—त्यारे ते स्थविर भगवंतोए ते कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारने आ प्रमाणे कह्युं के, हे आर्य! अमारो आत्मा ए सामायिक छे अने ए ज सामायिकनो अर्थ छे तथा यावत्—ए ज व्युत्सर्गनो अर्थ पण छे.

२९८. प्र०—*तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वदासीः—जइ भे अज्जो! आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे, एवं जाव—आया विउस्सग्गस्स अट्ठे, अवहट्टु कोह—माण—माया—लोभे किं अट्ठं अज्जो! गरहह?*

२९८. प्र०—त्यार पछी ते कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारे ते स्थविर भगवंतोने आ प्रमाणे कह्युं के, हे आर्यो! जो आत्मा ए सामायिक छे, आत्मा ए सामायिकनो अर्थ छे अने ए प्रमाणे यावत्—आत्मा ए व्युत्सर्गनो अर्थ छे, तो तमे क्रोध, मान, माया अने लोभनो त्याग करी शा माटे ते क्रोध वगेरे निंदो छो?

२९८. उ०—*कालासवेसियपुत्त! संजमट्ठयाए.*

२९८. उ०—हे कालास्यवेषिपुत्र! संयमने माटे अमे क्रोधादिकने निंदीए छीए.

---

१. मूलच्छायाः—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये पार्श्वापत्यीयः कालास्यवेषी पुत्रो नाम अनगारो येनैव स्थविरा भगवन्तः, तेनैव उपागच्छति, उपागत्य स्थविरान् भगवत एवमवादीतः—स्थविराः! सामायिकं न जानन्ति, स्थविराः! सामायिकस्य अर्थं न जानन्ति, स्थविराः! प्रत्याख्यानं न जानन्ति, स्थविराः! प्रत्याख्यानस्य अर्थं न जानन्ति, स्थविराः! संयमं न जानन्ति, स्थविराः! संयमस्य अर्थं न जानन्ति, स्थविराः! संवरं न जानन्ति, स्थविराः! संवरस्य अर्थं न जानन्ति, स्थविराः! विवेकं न जानन्ति, स्थविराः! विवेकस्य अर्थं न जानन्ति, स्थविराः! व्युत्सर्गं न जानन्ति, स्थविराः! व्युत्सर्गस्य अर्थं न जानन्ति. ततस्ते स्थविरा भगवन्तः कालास्यवेषिकपुत्रमनगारमेवमवादिषुः—जानीमः आर्य! सामायिकम्, जानीमः आर्य! सामायिकस्य अर्थम्, यावत्—जानीमः आर्य! व्युत्सर्गस्य अर्थम्. ततः स कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः तान् स्थविरान् भगवत एवमवादीतः—यदि आर्य! यूयं जानीत सामायिकम्, जानीत सामायिकस्य अर्थम्, यावत्—जानीत व्युत्सर्गस्य अर्थम्. किं भवताम् आर्य! सामायिकम्? किं भवताम् आर्य! सामायिकस्य अर्थः? किं भवताम् आर्य! व्युत्सर्गस्य अर्थः? ततस्ते स्थविरा भगवन्तः कालास्यवेषिकपुत्रमनगारमेवमवादिषुः—आत्मा अस्माकम् आर्य! सामायिकम्, आत्मा अस्माकम् आर्य! सामायिकस्य अर्थः, यावत्—व्युत्सर्गस्य अर्थः. ततः स कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः स्थविरान् भगवत एवमवादीतः—यदि भवताम् आर्य! आत्मा सामायिकम्, आत्मा सामायिकस्य अर्थः, एवं यावत्—व्युत्सर्गस्य अर्थः, अपहृत्य क्रोध—मान—माया—लोभान्, किमर्थं आर्य! गर्हत? कालास्यवेषिकपुत्र! संयमार्थतयाः—अनु०

२९९. प्र०—से भंते ! किं गरहा संजमे ? अगरहा संजमे ?

२९९. उ०—कालासवेसियपुत्त ! गरहा संजमे, णो अगरहा संजमे. गरहा वि य णं सव्वं दोसं पविणेति, सव्वं बालियं परिण्णाए. एवं खु णे आया संजमे उवहिते भवति, एवं खु णे आया संजमे उवचिए भवति, एवं खु णे आया संजमे उवट्ठिते भवति.

३००.—एत्थ णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति, णमंसति, णमंसित्ता एवं वयासीः—एएसि णं भंते ! पयाणं पुव्विं अन्नाणयाए, असवणयाए, अबोहियाए, अणभिगमेणं, अदिट्ठाणं, असुआणं, अस्सुआणं, अविन्नायाणं, अव्वोगडाणं, अवोच्छिन्नाणं, अणिज्जूढाणं, अणुवधारिआणं एअमट्ठं नो सद्दहिए, णो पत्तिइए, णो रोइए. इयाणि भंते ! एतेसिं पयाणं जाणयाए, सवणयाए, बोहिए, अभिगमेणं, दिट्ठाणं, सुआणं, सुआणं, विन्नायाणं, वोगडाणं, वोच्छिन्नाणं, णिज्जूढाणं, उवधारिआणं एअमट्ठं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, एवमेअं से जहेयं तुब्भे वदह. तए णं ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासीः—सद्दहाहि अज्जो !, पत्तियाहि अज्जो !, रोएहि अज्जो !, से जहेयं अम्हे वदामो. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता एवं वदासीः—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति. तए णं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे, मुंडभावे, अण्हाणयं, अदंतधुवणयं, अच्छत्तयं, अणोवाहणयं, भूमिसेज्जा, फलहसेज्जा, कट्ठसेज्जा, केसलोओ, बंभचेरवासो, परघरप्पवेसो, लद्धावलद्धी; उच्चावया, गामकंटगा, बावीसं परिसहेवसग्गा अहियासिज्जंति. तं अट्ठं आराहेइ,

२९९. प्र०—हे भगवंतो ! शुं गर्हा (निंदा) ए संयम छे के अगर्हा ए संयम छे ?

२९९. उ०—हे कालास्यवेषिपुत्र ! गर्हा ए संयम छे. पण अगर्हा ए संयम नथी. गर्हा बधा दोषोनो नाश करे छे—आत्मा सर्व मिथ्यात्वने जाणीने गर्हा द्वारा बधा दोषोनो नाश करे छे अने ए प्रमाणे अमारो आत्मा संयममां स्थापित छे, ए प्रमाणे अमारो आत्मा संयममां पुष्ट छे, ए प्रमाणे अमारो आत्मा संयममां उपस्थित छे.

३००.—(आटलुं सांभळ्या पछी) अहीं ते कालास्यवेषिपुत्र अनगार संबुद्ध थया अने तेमणे ते स्थविर भगवंतोने वांद्या, नमस्कार कर्यो. पछी ते कालास्यवेषिपुत्र अनगारे आ प्रमाणे कह्युं के, हे भगवंतो ! पूर्वे—पहेलां—ए पदोने नहीं जाणवाथी, श्रुतरहितपणुं होवाथी, अबोधिपणुं होवाथी, अनभिगम होवाथी, नहीं जोएलां होवाथी, चिंतवेलां न होवाथी, नहीं सांभळवाथी, विशेषे नहीं जाणवाथी, कहेलां नहीं होवाथी, अनिर्णीत होवाथी, उद्धरेलां न होवाथी अने ए पदो अनवधारित होवाथी ए अर्थमां में श्रद्धा करी न हती, प्रीति करी न हती, रुचि करी न हती; अने हे भगवंतो! हमणा ए पदो जाण्यां होवाथी, श्रुतसहितपणुं होवाथी, बोधिपणुं होवाथी, अभिगम होवाथी, जोएलां होवाथी, चिंतवेलां होवाथी, सांभळ्यां होवाथी, विशेषे जाण्यां होवाथी, कहेलां होवाथी, निर्णीत होवाथी, उद्धरेलां होवाथी अने ए पदो अवधारित होवाथी ए अर्थमां हुं श्रद्धा करुं छुं, प्रीति करुं छुं, रुचि करुं छुं—(हे भगवंतो !) तमे जेम ए कहो छो ते ए ए प्रमाणे छे. त्यारे ते स्थविर भगवंतोए कालास्यवेषिपुत्र अनगारने आ प्रमाणे कह्युं के, हे आर्य ! जेम अमे ए कहीए छीए तेम तुं श्रद्धा राख, प्रीति राख अने रुचि राख. त्यार पछी ते कालास्यवेषिपुत्र अनगारे ते स्थविर भगवंतोने वांद्या, नमस्कार कर्यो अने आ प्रमाणे कह्युं के, हे भगवंतो ! तमारी पासे चार महाव्रतवाळो धर्म (मूकी) प्रतिक्रमणसहित अने पांच महाव्रतवाळो धर्म प्राप्त करी विहरवा इच्छुं छुं. (त्यारे ते स्थविरोए कह्युं के,) हे देवानुप्रिय ! जेम सुख थाय तेम कर, विलंब न कर. त्यार बाद ते कालास्यवेषिपुत्र अनगारे ते स्थवि-

---

१. मूलच्छायाः—तद् भगवन् ! किं गर्हा संयमः, अगर्हा संयमः ? कालास्यवेषिकपुत्र ! गर्हा संयमः, नो अगर्हा संयमः. गर्हाऽपि च सर्वं दोषं प्रविनयति, सर्वां बालतां परिज्ञाय. एवं खलु अस्माकम् आत्मा संयमे उपहितः भवति, एवं खलु अस्माकम् आत्मा संयमे उपचितो भवति, एवं खलु अस्माकम् आत्मा संयमे उपस्थितो भवति. अत्र स कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः संबुद्धः स्थविरान् भगवतो वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा एवमवादीत्:—एतेषां भगवन् ! पदानां पूर्वम् अज्ञानतया, अश्रवणतया, अबोधितया, अनभिगमेन, अदृष्टानाम्, अश्रुतानाम्, अस्मृतानाम्, अविज्ञातानाम्, अव्याकृतानाम्, अव्युच्छिन्नानाम्, अनिर्यूढानाम्, अनवधारितानाम्; एषोऽर्थः नो श्रद्धितः, नो प्रीतः (प्रत्ययितः), नो रुचितः. इदानीं भगवन् ! एतेषां पदानां ज्ञानतया, श्रवणतया, बोधितया, अभिगमेन, दृष्टानाम्, श्रुतानाम्, स्मृतानाम्, विज्ञातानाम्, व्याकृतानाम्, व्युच्छिन्नानाम्, निर्यूढानाम्, अवधारितानाम्; एनमर्थं श्रद्दधामि, प्रत्येमि, रोचे—एवमेतत् तत् यथैतद् यूयं वदत. ततः ते स्थविरा भगवन्तः कालास्यवेषिकपुत्रमनगारमेवमवादिषुः—श्रद्धेहि आर्य !, प्रत्येहि आर्य !, रोचस्व आर्य !, तद् यथैतद् वयं वदामः. ततः कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः स्थविरान् भगवतो वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा एवमवादीत्:—इच्छामि भगवन् ! भवतामन्तिके चतुर्यामाद् धर्मात् पञ्चमहाव्रतिकं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुम्. यथासुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धम्. ततः स कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः स्थविरान् भगवतो वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा चतुर्यामाद् धर्मात् पञ्चमहाव्रतिकं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य विहरति. ततः स कालास्यवेषिकपुत्रोऽनगारः बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य (पालयित्वा) यस्यार्थे क्रियते नग्नभावः, मुण्डभावः, अस्नानकम्, अदन्तधावनकम्, अच्छत्रकम्, अनुपानत्कम्, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोचः, ब्रह्मचर्यवासः, परगृहप्रवेशः, लब्धापलब्धिः; उच्चावचा ग्रामकण्टका [illegible] परिषहोपसर्गाः [illegible]—अनु०

आराहित्ता, चरमेहिं उस्सास-नीसासेहिं सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, परिनिव्वुडे, सव्वदुक्खप्पहीणे.

रोने वांदी, प्रणाम करी अने चार महाव्रतवाळो धर्म (मूकी) प्रतिक्रमणवाळो अने पांच महाव्रतवाळो धर्म स्वीकार्यो. अने तेम करी ते अनगार विहरे छे. त्यार पछी ते कालास्यवेषिपुत्र नामना अनगारे घणा वर्षो सुधी साधुपणुं पाळ्युं. अने जे प्रयोजन माटे नग्नपणुं, मुंडपणुं, स्नान न करवुं, दातण न करवुं, छत्र न राखवुं, जोडा न पहेरवा, भोंय पथारी करवी, पाटीया उपर सुवुं, लाकडा उपर सुवुं, केशनो लोच करवो, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहेवुं, (भिक्षा माटे) बीजाना घरे जवुं, क्यांय मळे के क्यांय न मळे अथवा ओछुं मळे (ए सहवुं) तथा अनुकूल अने प्रतिकूल, इंद्रियोने कांटा जेवा बावीश परिषहो—उपसर्गो—ने सहवा; ए बधुं कर्युं ते प्रयोजनने ते कालास्यवेषिपुत्र अनगारे आराध्युं अने ते अनगार छेल्ला उच्छ्वासनिःश्वासवडे सिद्ध थयो, बुद्ध थयो, मुक्त थयो, परिनिर्वृत थयो अने सर्व दुःखथी हीन थयो.

५. अन्ययूथिकप्रस्तावाद् इदमाहः—*'ते णं'* इत्यादि. *'पासावच्चिज्जे'* त्ति पार्श्वोऽपत्यानां पार्श्वजिनशिष्याणाम् अयं पार्श्वापत्यीयः. *'थेरे'* त्ति श्रीमन्महावीरजिनशिष्याः श्रुतवृद्धाः. *'सामाइयं'* ति समभावरूपम्, *'न याणंति'* त्ति न जानन्ति सूक्ष्मत्वात् तस्य *'सामाइयस्स अट्ठं'* ति प्रयोजनं कर्माऽनुपादान-निर्जरणरूपम्, *'पच्चक्खाणं'* ति पौरुष्यादिनियमम्, तदर्थं चाऽऽश्रवद्वारनिरोधम्; *'संजम'* त्ति पृथिव्यादिसंरक्षणलक्षणम्, तदर्थं चाऽनास्रवत्वम्; *'संवरं'* ति इन्द्रिय-नोइन्द्रियनिवर्तनम्, तदर्थं तु अनास्रवत्वम् एव; *'विवेगं'* ति विशिष्टबोधम्, तदर्थं च त्याज्यत्यागादिकम्, *'विउसग्गं'* ति व्युत्सर्गं कायादीनाम्, तदर्थं चाऽनभिष्वङ्गताम्, *'अज्जो'* त्ति हे आर्य! ओकारान्तता संबोधने प्राकृतत्वात्, *'किं भंते!'* त्ति किं भवताम्? इत्यर्थः. *'आया णे'* त्ति आत्मा नोऽस्माकं मते सामायिकम् इति, यदाहः—*"जीवो गुणपडिवन्नो नयस्स दव्वट्ठियस्स सामाइयं"* ति. सामायिकाऽर्थोऽपि जीव एव, कर्माऽनुपादानादीनां जीवगुणत्वात् जीवाव्यतिरिक्तत्वाच्च तद्गुणानाम् इति. एवं प्रत्याख्यानादि अपि अवगन्तव्यम्. *'जइ मे अज्जो!'* त्ति यदि भवतां हे आर्याः! स्थविराः सामायिकम् आत्मा, तदा *'अवहट्टु'* त्ति अपहृत्य त्यक्त्वा क्रोधादीन् किमर्थं गर्हध्वे *"निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि"* इति वचनात् क्रोधादीन् एव, अथवा 'अवद्यम्' इति गम्यते. अयम् अभिप्रायः—यः सामायिकवान्, त्यक्तक्रोधादिश्च, स कथं किमपि निन्दति? निन्दा हि किल द्वेषसंभवा इति. अत्रोत्तरम्—संयमार्थम्—इति. अवद्ये गर्हिते संयमो भवति, अवद्यानुमतेर्व्यवच्छेदनात्. तथा गर्हा संयमः, तद्धेतुत्वात्. न केवलम्—असौ गर्हा कर्मानुपादानहेतुत्वात् संयमो भवति. *'गरहा वि य'* त्ति गर्हैव च सर्वं *'दोसं'* ति दोषं रागादिकम्, पूर्वकृतं पापं वा, द्वेषं वा प्रविनयति क्षपयति, किं कृत्वा? इत्याहः—*'सव्वं बालियं'* ति बाल्यं बालताम्—मिथ्यात्वम्, अविरतिं च; *'परिण्णाए'* त्ति परिज्ञाय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च प्रत्याख्याय इति. इह च गर्हायाः, तद्वतश्च अभेदाद् एककर्तृत्वेन 'परिज्ञाय' इत्यत्र क्त्वा-प्रत्ययविधिः अदुष्ट इति. *'एवं खु'* त्ति एवमेव *'णे'* इति अस्माकम्, *'आया संजमे उवहिए'* त्ति उपहितः प्रक्षिप्तो—न्यस्तो भवति, अथवा आत्मरूपः संयम उपहितः प्राप्तो भवति. *'आया संजमे उवचिए'* त्ति आत्मा संयमविषये पुष्टो भवति, आत्मरूपो वा संयमः उपचितो भवति. *'उवट्ठिए'* त्ति उपस्थितः—अत्यन्तावस्थायी, *'एएसि णं भंते! पयाणं'* इत्यस्य *'अदिट्ठाणं'* इत्यादिना संबन्धः. कथम् अदृष्टानाम्? इत्याहः—*'अन्नाणयाए'* त्ति अज्ञानो निर्ज्ञानः, तस्य भावोऽज्ञानता, तया—अज्ञानतया—स्वरूपेण अनुपलम्भाद् इत्यर्थः. एतदेव कथम्? इत्याहः—*'असवणयाए'* त्ति अश्रवणः श्रुतवर्जितः, तद्भावः तत्ता—तया, *'अबोहिए'* त्ति अबोधिः जिनधर्माऽनवाप्तिः, इह तु प्रक्रमाद् महावीरजिनधर्मानवाप्तिः—तया अथवा औत्पत्तिक्यादिबुद्ध्यभावेन, *'अणभिगमेणं'* ति विस्तरबोधाभावेन हेतुना, अदृष्टानां साक्षात् स्वयमनुपलब्धानाम्, अश्रुतानाम्—अन्यतोऽनाकर्णितानाम्, *'अस्सुआणं'* ति अस्मृतानाम्—दर्शना—ऽऽकर्णनाऽभावेन अननुध्यातानाम्, अत एव अविज्ञातानाम्—विशिष्टबोधाऽविषयीकृतानाम्, एतदेव कुतः? इत्याहः—*'अव्वोकडाणं'* ति अव्याकृतानाम्—विशेषतो गुरुभिरनाख्यातानाम्, *'अव्वोच्छिन्नाणं'* ति विपक्षाद् अव्यवच्छेदितानाम्, *'अणिज्जूढाणं'* ति महतो ग्रन्थात् सुखावबोधाय संक्षेपनिमित्तम्—अनुग्रहपरगुरुभिः अनुद्धृतानाम्, अत एव अस्माभिः अनुपधारितानाम्—अनवधारितानाम्, *'एयमट्ठे'* त्ति एवंप्रकारोऽर्थः, अथवा अयम्—अर्थः, *'नो सद्दहिए'* त्ति न श्रद्धितः, *'नो पत्तइए'* त्ति नो नैव, *'पत्तइयं'* ति 'प्रीतिः' उच्यते, तद्योगात् *'पत्तइए'* त्ति प्रीतः—प्रीतिविषयीकृतः, अथवा न प्रीतितः, न प्रत्ययितो वा हेतुभिः, *'नो रोइए'* त्ति न चिकीर्षितः, *'एवमेयं से जहेयं तुब्भे वयह'* त्ति अथ यथा एतद् वस्तु यूयं वदथ, एवमेतद् वस्तु इति भावः.

---

१. मूलच्छायाः—आराध्य चरमैः उच्छ्वास-निःश्वासैः सिद्धः, बुद्धः, मुक्तः, परिनिर्वृतः, सर्वदुःखप्रहीणः—अनु॰

१. प्र॰ छायाः—जीवो गुणप्रतिपन्नो नयस्य द्रव्यार्थिकस्य सामायिकम्. २. पूर्वार्धरूपम् एतद् गाथार्धं श्रीविशेषावश्यके [illegible] गाथायाम् (पृ॰ [illegible] य॰ ग्रं). ३. निन्दामि, गर्हे, आत्मानं व्युत्सृजामिः—अनु॰

५. [illegible] प्रकरण होवाथी हवे आ सूत्र कहे छेः–['ते णं' इत्यादि.] ['पासावच्चिज्जे' त्ति] पार्श्वनाथ जिनना शिष्योमांनो जे कोइ एक ते 'पार्श्वापत्यीय' कहेवाय. ['थेरे' त्ति] स्थविरो एटले श्रीमहावीर जिनना बहुश्रुत शिष्यो, ['सामाइयं' ति] समभावरूप सामायिक–तेने, ['न याणंति' त्ति] जाणता नथी. कारण के ते सामायिकनुं स्वरूप घणुं झीणुं छे. ['सामाइअस्स अट्ठं' ति] सामायिकना प्रयोजनने अर्थात् नवीन कर्मने न बांधवां अने जुनां कर्मने निर्जरवारूप प्रयोजनने. ['पच्चक्खाणं' ति] पौरुषी वगेरे नियमने अने तेने माटे आस्रव आववाना मार्गनी अटकायतने, ['संजमं' ति] पृथिवी वगेरेना साचववारूप संयमने अने तेने माटेना आस्रवरहितपणाने, ['संवरं' ति] इंद्रिय अने मननी प्रवृत्तिना अटकावने, अने तेने माटेना [illegible]हितपणाने, ['विवेगं' ति] विशेष बोधने अने तेने माटे छोडवा लायक वस्तुना त्याग वगेरेने, ['विउस्सग्गं' ति] शरीर वगेरेना व्युत्सर्गने अने तेने माटे असंगपणाने; ['अज्जो' त्ति] हे आर्य! ['किं मे' त्ति] तमारा मतमां शुं छे? ['आया णे' त्ति] अमारा मतमां आत्मा ए सामायिक छे. कह्युं छे के, "द्रव्यार्थिक नयना मत प्रमाणे गुणप्रतिपन्न–पोताना गुणमां रमतो–जीव ए सामायिक छे" अने सामायिकनो अर्थ पण जीव ज छे. कारण के 'कर्मनुं नहीं बांधवुं' वगेरे जीवना गुणो छे अने जीवना गुणोथी जीव जुदो नथी. माटे सामायिकनो अर्थ पण आत्मा छे. ए प्रमाणे प्रत्याख्यान वगेरे पण जाणवुं. ['जइ भे अज्जो!' त्ति] हे आर्यो! हे स्थविरो! जो तमारा मतमां सामायिक आत्मा छे तो ['अवहट्टु' त्ति] क्रोधादिकने छोडीने क्रोधादिकनी शा माटे निंदा करो छो? कारण के तमे 'निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि' एवां वचनो बोलो छो तेथी क्रोधादिकने निंदो छो एम जणाय छे. अथवा तमे पापने शा माटे निंदो छो? 'पाप' ए अर्थ अध्याहार्य छे. अहीं तात्पर्य आ छेः–जे सामायिकवाळो जीव होय छे तेणे क्रोध वगेरे कषायो छोडी दीधा होय छे माटे ते केवी रीते निंदा करी शके? कारण के निंदा त्यारे ज संभवी शके के, ज्यारे द्वेष होय त्यारे अर्थात् आत्मा ए ज सामायिक छे एम माननारा लोको कोइ पण वस्तुनी निंदा करी ज केम शके? अहीं उपला प्रश्नो उत्तर आ रीते छेः–संयमने माटे निंदा करवानी जरूर छे–पापनी निंदा थवाथी संयम होइ शके छे. कारण के पापनी निंदा करवाथी पाप संबंधी अनुमतिनो व्यवच्छेद थाय छे. संयममां हेतुरूप होवाथी गर्हा संयम छे. कर्मबंधनमां कारण न होवाथी ए गर्हा संयम छे एटलुं ज नहीं पण, ['गरहा वि य' त्ति] गर्हा ज बधा ['दोसं' ति] रागादिक दोषने अथवा पूर्वे करेल पापने के द्वेषने नाश करे छे. शुं करीने? तो कहे छे के, ['सव्वं बालियं' ति] बालकपणाने–मिथ्यात्वने के अविरतिने ['परिण्णाए' त्ति] ज्ञानपूर्वक जाणीने अने छोडवानी बुद्धिथी छोडीने. ['एवं खु' त्ति] ए ज रीते ['णे'] अमारो ['आया संजमे उवहिए' त्ति] आत्मा संयममां स्थापित थाय छे. अथवा आत्मरूप संयम प्राप्त थाय छे. ['आया संजमे उवचिए' त्ति] संयमने विषे आत्मा पुष्ट थाय छे. अथवा आत्मरूप संयम पुष्ट थाय छे. ['उवट्ठिए' त्ति] उपस्थित एटले अत्यंत स्थिर रहेनार. ['एएसि णं भंते! पयाणं'] ए वाक्यनो ['अदिट्ठाणं'] इत्यादि पदो साथे संबंध छे. नहीं जोएलां शा माटे? तो कहे छे के, ['अन्नाणयाए' त्ति] अज्ञान होवाथी–स्वरूपथी प्राप्ति नहीं होवाथी, ए ज शा माटे? तो कहे छे के, ['असवणयाए' त्ति] श्रुतरहितपणुं होवाथी, ['अबोहिए' त्ति] अबोधि एटले जिनधर्मनी अप्राप्ति, अहीं तो प्रकरणवशे 'जिनधर्म' एटले श्रीमहावीरजिननो धर्म जाणवो, तेनी अप्राप्तिथी अथवा औत्पत्तिकी वगेरे बुद्धि नहीं होवाथी, ['अणभिगमेणं' ति] विस्तारपूर्वक बोध न होवाथी, अदृष्ट–साक्षात् पोताने अनुपलब्ध–होवाथी, अश्रुत–बीजाथी नहीं सांभळेलां–होवाथी, ['अस्सुआणं' ति] जोएलां अने सांभळेलां न होवाने लीधे अणचिंतवेलां होवाथी, अने एम छे माटे ज विशेष प्रकारे नहीं जाणेलां होवाथी. ए ज शा माटे? तो कहे छे के, ['अव्वोकडाणं' ति] विशेष प्रकारे गुरुए नहीं कहेलां होवाथी, ['अव्वोच्छिन्नाणं' ति] विपक्षथी अव्यवच्छेदित होवाने लीधे, ['अनिज्जूढाणं' ति] दयाळु गुरुओए सुखे समजाय ते माटे मोटा ग्रंथथी टुंकां करीने नहीं उद्धरेलां होवाथी, अने एम छे माटे अमे नहीं अवधारेलां होवाथी ['एयमट्ठे' त्ति] ए प्रकारनो अर्थ अथवा आ अर्थ ['नो सद्दहिए' त्ति] सद्दह्यो नहीं, ['नो पत्तिए' त्ति] प्रिय थयो नहीं, अथवा ए अर्थ हेतुओथी जाण्यो नहीं, ['नो रोइए' त्ति] करवाने इच्छ्यो नहीं, ['एयमेयं से जहेयं तुब्भे वयह' त्ति] हवे तमे जेम कहो छो ते ए प्रमाणे छे.

६. *'चाउज्जामाओ'* त्ति चतुर्महाव्रतात्, पार्श्वनाथजिनस्य हि चत्वारि महाव्रतानि, 'न अपरिगृहीता स्त्री भुज्यते' इति मैथुनस्य परिग्रहे अन्तर्भावाद् इति. *'सपडिक्कमणं'* ति पार्श्वनाथधर्मो हि अप्रतिक्रमणः, कारण एव प्रतिक्रमणकरणात्, अन्यथा तु अकरणात्. महावीरजिनस्य तु सप्रतिक्रमणः, कारणं विना अपि अवश्यं प्रतिक्रमणकरणादिति. *'देवाणुप्पिय'* त्ति प्रियामन्त्रणम्, *'मा पडिबंधं'* ति वा व्याघातं 'कुरुष्व' इति गम्यम्. *'मुंडभावे'* त्ति मुण्डभावो दीक्षितत्वम्, *'फलगसेज्ज'* त्ति प्रतलाऽऽयतविष्कम्भवत्काष्ठरूपा, *'कट्ठसेज्ज'* त्ति असंस्कृतकाष्ठशयनम्, कष्टशय्या वा अमनोज्ञा वसतिः, *'लद्धावलद्धि'* त्ति लब्धं च लाभः, अपलब्धिश्च अलाभः, अपरिपूर्णलाभो वा लब्धापलब्धिः, *'उच्चावय'* त्ति उच्चावचाः अनुकूलप्रतिकूलाः, असमञ्जसा वा; *'गामकंटय'* त्ति ग्रामस्य इन्द्रियसमूहस्य कण्टका इव कण्टका बाधकाः, शत्रवो वा ग्रामकण्टकाः; क एते? इत्याहः––*'बावीसं परिसहोवसग्ग'* त्ति परीषहाः क्षुधादयः, त एव उपसर्गाः–उपसर्जनाद् धर्मभ्रंशनात्–परीषहोपसर्गाः. अथवा द्वाविंशतिपरिषहाः, तथा उपसर्गा दिव्यादयः.

६. ['चाउज्जामाओ' त्ति] चार महाव्रतवाळो, पार्श्वनाथजिनने चार महाव्रत छे, कारण के 'परिग्रहेली स्त्री भोगवाय छे' एम करीने मैथुनने परिग्रहमां समावेलुं छे. ['सपडिक्कमणं' ति] पार्श्वनाथनो धर्म प्रतिक्रमण विनानो छे. कारण के तेमना साधुओ कारण होय त्यारे ज प्रतिक्रमण करे छे, नहीं तो नथी करता. अने महावीर जिनना साधुओ तो कारण होय के न होय तो पण प्रतिक्रमण तो चोक्कस करे छे, माटे महावीर जिननो धर्म प्रतिक्रमणवाळो–सप्रतिक्रमण –छे. ['देवाणुप्पिय' त्ति] ए शब्द प्रियना आमंत्रणनो सूचक छे. ['मा पडिबंधं' ति] व्याघात न कर. ['मुंडभावे' त्ति] दीक्षितपणुं, ['फलगसेज्ज' त्ति] पातळी लांबी अने पहोळी लाकडानी पथारी, ['कट्ठसेज्ज' त्ति] खराब (खडबचडा) लाकडानी पथारी अथवा खराब–कष्टरूप–पथारी, ['लद्धावलद्धि' त्ति]

स्थविरो अने पार्श्वनाथना शिष्य.

सामायिक.

प्रत्याख्यान.

संयम–संवर.

विवेक–व्युत्सर्ग.

आत्मा सामायिक.

गर्हा.

पार्श्वनाथना शिष्यनुं अजाणपणुं.

तेनी स्थविरोमां श्रद्धा.

चार व्रत.

सप्रतिक्रमण.

मुंडभावादि.

---

१. प्राकृतशैलीने लीधे संबोधनमां ओकारान्तपणुं छेः—श्रीअभय० २. श्रीविशेषावश्यकसूत्रमां (य० ग्रं० पृ० १०५२) मां २६४३ मी गाथानुं आ [illegible] छेः–"सो चेव पञ्चक्खाणस्स [illegible]"–अनु० ३. 'परिग्रह' आ स्थळे जे 'स्त्री' जाण्यो छे. ते निर्दोष छे, [illegible]—श्रीअभय०

[illegible]

लाभ अने अलाभ अथवा ओछो लाभ ते 'लब्धापलब्धि' कहेवाय, ['उच्चावय' त्ति] अनुकूल अने प्रतिकूल अथवा असमंजस, ['गामकंटग' त्ति] इंद्रिय–ग्राम–ना समूहने कांटा जेवा–शत्रुरूप–बाधक ते 'ग्रामकंटक' कहेवाय. ए ग्रामकंटकरूप कोण छे ? तो कहे छे के, ['बावीसं परिसहोवसग्गा' त्ति] क्षुधा वगेरे परिषहो अने तद्रूप उपसर्गो, उपसर्ग एटले धर्मथी भ्रष्ट करनार, अथवा बावीश परिषह अने देव वगेरेना उपसर्गो.

अप्रत्याख्यान अने आधाकर्मादि.

२०१. प्र०—'[1]भंते' ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवंतं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वदासी:–से णूणं भंते ! सेट्ठियस्स य, तणुयस्स य, किवणस्स य, खत्तियस्स य समं चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ?

२०१. प्र०—'हे भगवन् !' एम कही भगवंत गौतमे श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, प्रणाम करी आ प्रमाणे कह्युं के:–हे भगवन् ! एक शेठ, एक दरिद्र, एक लोभिओ अने एक क्षत्रिय (राजा); ए बधा एक साथे ज अप्रत्याख्यान क्रिया करे ?

२०१. उ०—हंता, गोयमा ! सेट्ठियस्स य, जाव–अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ.

२०१. उ०—हे गौतम ! हा, शेठ अने यावत्–ए बधा एक साथे अप्रत्याख्यान क्रिया करे.

२०२. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! ?

२०२. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण ?

२०२. उ०—गोयमा ! अविरतिं पडुच्च. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–सेट्ठियस्स य, तणुयस्स य, जाव–कज्जइ.

२०२. उ०—हे गौतम ! अविरतिने आश्रीने एम कह्युं के एक शेठ, एक दरिद्र अने ए बधा यावत्–एक साथे अप्रत्याख्यान क्रिया करे छे.

२०३. प्र०—आहाकम्मं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ, किं पकरेइ, किं चिणाइ, किं उवचिणाइ ?

२०३. प्र०—हे भगवन् ! आधाकर्म दोषवाळा अन्नने खातो श्रमण निर्ग्रंथ शुं बांधे छे, शुं करे छे, शेनो चय करे छे अने शेनो उपचय करे छे ?

२०३. उ०—गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ, जाव–अणुपरियट्टइ.

२०३. उ०—हे गौतम ! आधाकर्म दोषवाळा अन्नने खातो श्रमण निर्ग्रंथ आयुष्य सिवायनी अने पोचे बंधने बंधाएली सात कर्मप्रकृतिओने मजबूत बंधने बांधेली करे छे, अने यावत्–संसारमां वारंवार भमे छे.

२०४. प्र०—से केणट्ठेणं जाव–अणुपरियट्टइ ?

२०४. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, यावत्–ते संसारमां वारंवार भमे छे ?

२०४. उ०—गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कमइ, आयाए धम्मं अइक्कममाणे पुढविकाइयं णावकंखइ, जाव–तसकायं णावकंखइ; जेसिं पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारं आहारेइ ते वि जीवे नावकंखइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ, जाव–अणुपरियट्टइ.

२०४. उ०—हे गौतम ! आधाकर्म दोषवाळा अन्नने खातो श्रमण निर्ग्रंथ पोताना धर्मने ओळंगी जाय छे. अने पोताना धर्मने ओळंगतो ते श्रमण पृथिवीकायना जीवनी दरकार करतो नथी अने यावत्–त्रसकायना जीवनी दरकार करतो नथी. तथा जे जीवोनां शरीरोने ते खाय छे ते जीवोनी पण दरकार करतो नथी. माटे हे गौतम ! ते हेतुथी एम कह्युं छे के, आधाकर्म दोषवाळा अन्नने खातो श्रमण आयुष्य सिवायनी सात कर्मप्रकृतिओने मजबूत बांधे छे अने यावत्–संसारमां वारंवार भमे छे.

२०५. प्र०—फासु-एसणिज्जं भंते ! भुंजमाणे किं बंधइ, जाव–उवचिणाइ ?

२०५. प्र०—हे भगवन् ! प्रासुक अने निर्दोष आहारने खातो श्रमण निर्ग्रंथ शुं बांधे छे अने यावत्–शेनो उपचय करे छे ?

---

१. मूलच्छाया:—'भगवन् !' इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवमवादीत्:—तद् नूनं भगवन् ! श्रेष्ठिकस्य, तनुकस्य, कृपणस्य, क्षत्रियस्य च सममेव अप्रत्याख्यानक्रिया क्रियते–भवति ? हन्त, गौतम ! श्रेष्ठिकस्य च, यावत्–अप्रत्याख्यानक्रिया क्रियते. तत् केनार्थेन भगवन् ! ? गौतम ! अविरतिं प्रतीत्य, तत् तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते–श्रेष्ठिकस्य च तनुकस्य यावत्–क्रियते. आधाकर्म भुञ्जानः श्रमणो निर्ग्रन्थः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किमु उपचिनोति ? गौतम ! आधाकर्म भुञ्जानः आयुष्कवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः शिथिलबन्धनबद्धाः दृढबन्धनबद्धाः प्रकरोति, यावत्–अनुपरिवर्तते. तत् केनार्थेन यावत्–अनुपरिवर्तते ? गौतम ! आधाकर्म भुञ्जानः आत्मनो धर्ममतिक्रामति, आत्मनो धर्ममतिक्रामन् पृथिवीकायिकं नावकाङ्क्षति, यावत्–त्रसकायं नावकाङ्क्षति. येषामपि च जीवानां शरीराणि आहारमाहरति, तानपि जीवान् नावकाङ्क्षति, तत् तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते–आधाकर्म भुञ्जानः आयुष्कवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः यावत्–अनुपरिवर्तते. प्रासुकैषणीयं भगवन् ! भुञ्जानः किं बध्नाति ? यावत्–उपचिनोति ?–अनु०

३०५. उ०—गोयमा ! फासु-एसणिज्जं णं भुंजमाणे आउय-वज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेति. जहा संवुडेणं, नवरं–आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ; सेसं तहेव, जाव–वीइवयइ.

३०५. उ०—हे गौतम ! प्रासुक अने निर्दोष आहारने खातो श्रमण निर्ग्रंथ आयुष्य सिवायनी अने मजबूत बंधाएली सात कर्मप्रकृतिओने पोची करे छे. तथा एने संवृत अनगारनी पेठे जाणवो. विशेष ए के, आयुष्य कर्मने कदाचित् बांधे छे अने कदाचित् नथी बांधतो. अने बाकी बधुं ते ज प्रमाणे जाणवुं यावत्–संसारने ओळंगी जाय छे.

३०६. प्र०—से केणट्ठेणं जाव–वीइवयइ ?

३०६. प्र०—हे भगवन् ! तेनुं शुं कारण के, ए यावत्–संसारने ओळंगी जाय छे ?

३०६. उ०—गोयमा ! फासु-एसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नो अइक्कमइ, आयाए धम्मं अणइक्कममाणे पुढविक्काइयं अवकंखति, जाव–तसकायं अवकंखइ; जेसिं पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेइ, ते वि जीवे अवकंखइ से तेणट्ठेणं जाव–वीइवयइ.

३०६. उ०—हे गौतम ! प्रासुक अने निर्दोष आहारने खातो श्रमण निर्ग्रंथ पोताना धर्मने ओळंगतो नथी, अने पोताना धर्मने नहीं ओळंगतो ते श्रमण निर्ग्रंथ पृथिवीकायिक जीवोनी दरकार करे छे, यावत्–त्रसकायना जीवोनी दरकार करे छे, अने जे जीवोनां शरीरोनो ते आहार करे छे ते जीवोनी पण ते दरकार करे छे. माटे ते हेतुथी यावत्–ते श्रमण संसारने ओळंगी जाय छे.

३०७. प्र०—से णूणं भंते ! अथिरे पलोट्टइ, नो थिरे पलोट्टइ, अथिरे भज्जइ, नो थिरे भज्जइ; सासए बालए, बालिअत्तं असासयं, सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं ?

३०७. प्र०—हे भगवन् ! अस्थिर पदार्थ बदलाय छे ? स्थिर पदार्थ नथी बदलातो ? अस्थिर पदार्थ भांगे छे ? स्थिर पदार्थ नथी भांगतो ? बालक शाश्वत छे ? बाळकपणुं अशाश्वत छे ? पंडित शाश्वत छे ? अने पंडितपणुं अशाश्वत छे ?

३०७. उ०—हंता, गोयमा ! अथिरे पलोट्टइ, जाव–पंडियत्तं असासयं.

३०७. उ०—हे गौतम ! अस्थिर पदार्थ बदलाय छे अने यावत्–पंडितपणुं अशाश्वत छे.

सेवं भंते !, सेवं भंते त्ति जाव–विहरइ.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे. एम कही यावत्–विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए **सिरीभगवईसुत्ते** पढमसये नवमो उद्देसो सम्मत्तो.

७. कालास्यवैशिकपुत्रः प्रत्याख्यानक्रियया सिद्ध इति तद्विपर्ययभूताऽप्रत्याख्यानक्रियानिरूपणसूत्रम्:–*'भंते !'* इत्यादि. तत्र *'भंते !'* त्ति हे भदन्त ! इति एवम्, 'आमन्त्र्य' इति शेषः, अथवा भदन्त इति कृत्वा–'गुरुः' इति कृत्वा इत्यर्थः. *'सेट्ठियस्स य'* त्ति श्रीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितशिरोवेष्टनोपेतपौरजननायकस्य, *'तणुयस्स'* त्ति दरिद्रस्य, *'किवणस्स'* त्ति रङ्कस्य, *'खत्तियस्स'* त्ति राज्ञः, *'अपच्चक्खाणकिरिय'* त्ति प्रत्याख्यानक्रियाया अभावः, अप्रत्याख्यानजन्यो वा कर्मबन्धः, *'अविरई'* ति इच्छाया अनिवृत्तिः, सा हि सर्वेषां समैव इति. अप्रत्याख्यानक्रियाप्रस्तावाद् इदमाह:–*'आहाकम्मं'* इत्यादि. आधया साधुप्रणिधानेन यत् सचेतनम्–अचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, चीयते वा गृहादिकम्, व्यूयते वा वस्त्रादिकम्, तद् आधाकर्म. *'किं बंधइ'* त्ति प्रकृतिबन्धमाश्रित्य, स्पृष्टावस्थापेक्षया वा. *'किं पकरेइ'* त्ति स्थितिबन्धापेक्षया, बद्धावस्थापेक्षया वा. *'किं चिणाइ'* त्ति अनुभागबन्धापेक्षया, निधत्तावस्थापेक्षया वा. *'किं उवचिणाइ'* त्ति प्रदेशबन्धापेक्षया, निकाचनापेक्षया वेति. *'आयाए'* त्ति आत्मना, धर्मम्–चारित्रधर्मम्, श्रुतधर्मं वा. *'पुढविकाइयं नावकंखइ'* त्ति नाऽपेक्षते–नाऽनुकम्पते इत्यर्थः. आधाकर्मविपक्षश्च प्रासुकैषणीयम्, इति प्रासुकैषणीयसूत्रम्. अनन्तरसूत्रे संसारव्यतिव्रजनम्–उक्तम्, तच्च कर्मणोऽस्थिरतया प्रलोटने सति भवति, इति अस्थिरसूत्रम्–तत्र *'अथिरे'* त्ति अस्थास्नु द्रव्यं लोष्टादि, प्रलोटति परिवर्तते. अध्यात्मचिन्तायाम्–अस्थिरं कर्म, तस्य जीवप्रदेशेभ्यः प्रतिसमयचलनेन अस्थिरत्वात् प्रलोट्यति–बन्धो–दय–निर्जरणादिपरिणामैः परिवर्तते. स्थिरं शिलादि न प्रलोट्यति. अध्यात्मचिन्तायां तु–स्थिरो जीवः, कर्मक्षयेऽपि तस्य अवस्थितत्वाद् नाऽसौ प्रलोट्यति–

---

१. मूलच्छाया:— गौतम ! प्रासुकैषणीयं भुञ्जानः आयुष्कवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः दृढबन्धनबद्धाः शिथिलबन्धनबद्धाः प्रकरोति, यथा संवृतः. नवरम्–आयुष्कं च कर्म स्याद् बध्नाति, स्याद् नो बध्नाति. शेषं तथैव यावत्–व्यतिव्रजति. तत् केनार्थेन यावत्–व्यतिव्रजति ? गौतम ! प्रासुकैषणीयं भुञ्जानः श्रमणो निर्ग्रन्थः आत्मनो धर्मं नातिक्रामति. आत्मनो धर्मम् अनतिक्रामन् पृथिवीकायिकम् अवकाङ्क्षति, यावत्–त्रसकायम् अवकाङ्क्षति. येषामपि च जीवानां शरीराणि आहरति, तानपि जीवान् अवकाङ्क्षति, तत् तेनार्थेन यावत्–व्यतिव्रजति. तद् नूनं भगवन् ! अस्थिरः प्रलोटति, नो स्थिरः प्रलोटति, अस्थिरो भज्यते, नो स्थिरो भज्यते, शाश्वतः बालकः, बालिकत्वम् (बालत्वम्) अशाश्वतम्, शाश्वतः पण्डितः, पण्डितत्वम् अशाश्वतम् ? हन्त गौतम ! अस्थिरः प्रलोटति, यावत्–पण्डितत्वम् अशाश्वतम्. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! यावत्–विहरति.—अनु.

उपयोगलक्षणस्वभावाद् न परिवर्तते. तथा अस्थिरं भङ्गुरस्वभावं तृणादि भज्यते विदलयति. अध्यात्मचिन्तायाम्–अस्थिरं कर्म, तत् भज्यते व्यपैति. तथा स्थिरम्–अभङ्गुरम्–अयःशलाकादि न भज्यते. अध्यात्मचिन्तायाम्–स्थिरो जीवः, स च न भज्यते, शाश्वतत्वाद् इति. जीवप्रस्तावाद् इदमाहः—*'सासए बालए'* त्ति बालको व्यवहारतः शिशुः, निश्चयतोऽसंयतो जीवः, स च शाश्वतो द्रव्यत्वात्. *'बालियत्त'* ति इह इक–प्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वाद् बालत्वं व्यवहारतः शिशुत्वम्. निश्चयतस्तु असंयतत्वम्. तच्च अशाश्वतं पर्यायत्वाद् इति. एवं पण्डितसूत्रमपि. नवरम्–पण्डितो व्यवहारेण शास्त्रज्ञो जीवः. निश्चयतस्तु संयतः इति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे प्रथमशते नवमोद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

७. कालासवेशिकपुत्र नामना साधु पच्चक्खाण क्रियाथी सिद्ध थया, एम आगळ जणाव्युं छे. हवे पच्चक्खाण क्रियाथी विपरीत अपच्चक्खाण क्रिया विषे निरूपण करवा सूत्र कहे छे के, ['भंते !' इत्यादि.] 'हे भगवन् !' एम आमंत्रीने अथवा 'गुरु' एम करीने. ['सेट्ठियस्स य' त्ति] जेनुं मोळीयुं लक्ष्मी देवीनी छापवाळा सोनाना पट्टथी शोभायमान छे ते गामनो नगर शेठ 'श्रेष्ठी' कहेवाय–तेने, ['तणुयस्स' त्ति] दरिद्रने, ['किवणस्स' त्ति] रांकने, ['खत्तियस्स' त्ति] राजाने, ['अपच्चक्खाणकिरिय' त्ति] अप्रत्याख्यान क्रिया अथवा अपच्चक्खाण क्रियाथी थतो कर्मबंध. ['अविरइं' ति] अविरति एटले इच्छानी अटकायत नहीं ते, ते अविरति दरेक जीवोने सरखी ज होय छे. अप्रत्याख्यान क्रियानुं प्रकरण होवाथी हवे आ सूत्र कहे छेः–['आहाकम्मं' इत्यादि.] साधुने माटे जे जीववाळुं निर्जीव कराय, अथवा जे निर्जीव वस्तु पकावाय–रंधाय, अथवा साधुने माटे जे घर वगेरे चणावाय के कपडुं वगेरे वणावाय ते 'आधाकर्म' कहेवाय. ['किं बंधइ' त्ति] प्रकृति बंधने आश्रीने अथवा स्पृष्ट अवस्थाने अपेक्षीने, ['किं पकरेइ' त्ति] स्थितिबंधनी अपेक्षाए अथवा बद्ध अवस्थानी अपेक्षाए, ['किं चिणाइ' त्ति] अनुभाग बंधनी अपेक्षाए के निधत्त अवस्थानी अपेक्षाए, ['किं उवचिणाइ' त्ति] प्रदेश बंधनी अपेक्षाए अथवा निकाचननी अपेक्षाए. ['आयाए' त्ति] आत्मावडे चारित्रधर्मने के श्रुतधर्मने. ['पुढविकाइयं नावकंखइ' त्ति] पृथिवीकायिक उपर अनुकंपा नथी आणतो. आधाकर्मनो विपक्ष प्रासुक अने एषणीय पदार्थ छे, माटे हवे प्रासुक अने एषणीय विषे सूत्र कह्युं छे. आगळना सूत्रमां संसारने ओळंगवानुं कह्युं छे अने ते कर्मना अस्थिरपणाने लीधे तेनो (कर्मनो) नाश थवाथी थाय छे, माटे हवे अस्थिर पदार्थ विषे सूत्र कहे छेः–['अथिरे' त्ति] ढेफुं वगेरे अस्थिर द्रव्यो बदलाय छे. अध्यात्मपक्षमां कर्म अस्थिर छे. कारण के ते प्रत्येक समये जीवप्रदेशोथी चाले छे–अलग थाय छे–माटे अस्थिर होवाथी बंध, उदय अने निर्जरण वगेरे परीणामोवडे बदलाय छे. पत्थरनी शिला वगेरे स्थिर वस्तु बदलाती नथी. अध्यात्मपक्षमां जीव स्थिर छे. कारण के कर्मनो क्षय थया पछी पण ते स्थिर रहे छे अने तेथी ते तेना उपयोगरूप स्वभावथी बदलातो नथी. तथा नाश पामवाना स्वभाववाळुं तृणादि भांगी जाय छे. अध्यात्मपक्षमां अस्थिर कर्म भांगी जाय छे–नाश पामे छे. तथा लोढानी सळी वगेरे स्थिर पदार्थ भांगता नथी. अध्यात्मपक्षमां शाश्वत होवाथी जीव स्थिर छे अने तेथी ते भांगतो नथी–नाश पामतो नथी. जीवनुं प्रकरण होवाथी हवे आ सूत्र कहे छेः–['सासए बालए' त्ति] व्यवहार नयनी अपेक्षाए बालक एटले नानुं छोकरुं. अने निश्चय नयनी अपेक्षाए बालक एटले असंयत जीव. ते जीव शाश्वत छे. कारण के द्रव्यरूप छे. ['बालियत्त' ति] व्यवहार नयनी अपेक्षाए बालपण एटले छोकरमत. अने निश्चय नयनी अपेक्षाए बालपण एटले असंयतपणुं. ते बालपण अशाश्वत छे. कारण के ते पर्यायरूप छे. ए प्रमाणे पंडितसंबंधी सूत्र पण जाणवुं. विशेष ए के, व्यवहार नयनी अपेक्षाए पंडित एटले शास्त्रनो जाणकार जीव. अने निश्चय नयनी अपेक्षाए पंडित एटले संयमवाळो जीव.

अप्रत्याख्यान.

आधाकर्म.

अस्थिरादि.

व्यवहार अने अध्यात्मपक्ष.

१. 'बालिकत्व' अहीं 'इक' प्रत्यय स्वार्थमां लाग्यो छेः–श्रीअभय०

बेडारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक १.–उद्देशक १०.

अन्यतीर्थिक वक्तव्य—चलमान अचलित.—बे परमाणु परस्पर न चोंटे.—तेमां चिकाश नथी.—त्रण अणु चोंटे.—तेना बे सरखा भाग १॥, १॥ थाय.—अने त्रण भाग पण थाय.—चार अणु.—पांच अणुनुं कर्म बने.—ते शाश्वत छे.—कर्म चयापचय पामे.—बोल्या पहेलां भाषा ते भाषा.—बोलाती भाषा ते भाषा नहीं.—बोल्या पछीनी भाषा ते भाषा.—बोलतानी भाषा नहीं.—अणबोलतानी भाषा.—कर्या पहेलानी क्रिया ते दुःखरूप.—कराती क्रिया अदुःखरूप.—कर्या पछीनी क्रिया दुःखरूप.—अकरणथी.—अकृत्य दुःख.—श्रीमहावीर वक्तव्य—अन्यतीर्थिकनुं असत्य.—चलमान चलित.—बे परमाणु परस्पर चोंटे.—तेना बे सरखा भाग थाय.—त्रण परमाणु चोंटे.—तेना बे भाग थाय, पण सरखा न थाय.—त्रण भाग थाय.—चार अणु.—पांच अणुनो स्कंध (कर्म नहीं).—ते अशाश्वत.—बोल्या पहेलानी भाषा ते अभाषा.—बोलाती भाषा भाषा.—बोल्या पछीनी भाषा अभाषा.—बोलतानी भाषा.—अणबोलतानी अभाषा.—भाषानी पेठे क्रिया.—कृत्य दुःख.—अन्यतीर्थिकमत.—एक जीव एक समये बे क्रिया साथे करे.—ऐर्यापथिकी.—सांपरायिकी.—ते खोटुं.—श्रीमहावीरमत.—एक जीव एक समये एक क्रिया करे.—केटला काळ सुधी नरकमां जीव उत्पन्न ज न थाय?—बार मुहूर्त.—व्युत्क्रान्तिपद.—गौतमविहार.—उद्देशकसमाप्ति.—शतकसमाप्ति.—

३०८.—[1]अन्नउत्थिया णं भंते! एवं आइक्खंति, जाव–एवं परूवेंति–"एवं खलु चलमाणे अचलिए, जाव–निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिण्णे."

३०९.—"दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति. कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगंततो न साहणंति? दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं नत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ न साहणंति."

३१०.—"तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति. कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति? तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति. ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिविहा वि कज्जंति. दुहा कज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ, एगयओ वि दिवड्ढे परमाणुपोग्गले भवइ. तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति. एवं जाव—चत्तारि."

३०८.—हे भगवन्! अन्यतीर्थिको आ प्रमाणे कहे छे यावत्–आ प्रमाणे प्ररूपे छे के "चालतुं ते चाल्युं न कहेवाय अने यावत्–निर्जरातुं ते निर्जरायुं न कहेवाय."

३०९.—"बे परमाणु पुद्गलो एक एकने चोंटता नथी. बे परमाणु पुद्गलो एक एकने शामाटे चोंटता नथी? बे परमाणु पुद्गलोमां चीकाश नथी माटे ते बे परमाणु पुद्गलो एक एकने चोंटता नथी."

३१०.—"त्रण परमाणु पुद्गलो एक एकने परस्पर चोंटी जाय छे. त्रण परमाणु पुद्गलो एक एकने परस्पर चोंटे छे तेनुं शुं कारण? त्रण परमाणु पुद्गलोमां चीकाश होय छे. माटे ते त्रण परमाणु पुद्गलो एक एकने परस्पर चोंटी जाय छे. वळी जो ते त्रण परमाणुओना भाग करवामां आवे तो तेना बे भाग पण थइ शके छे अने त्रण भाग पण थइ शके छे, जो ते त्रण परमाणु पुद्गलना बे भाग करवामां आवे तो एक तरफ दोढ परमाणु आवे छे अने बीजी तरफ पण दोढ परमाणु आवे छे. अने जो ते त्रण परमाणु पुद्गलना त्रण भाग करवामां आवे तो त्रणे परमाणु पुद्गलो एक एक एम जुदा जुदा थइ जाय छे. ए प्रमाणे यावत्–चार परमाणु पुद्गलो विषे पण समजवुं."

---

१. मूलच्छाया:—अन्यतीर्थिका भगवन्! एवम् आख्यान्ति, यावत्–एवं प्ररूपयन्ति–एवं खलु चलमानम् अचलितम्, यावत्–निर्जीर्यमाणम् अनिर्जीर्णम्. द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतः न संहन्येते. कस्माद् द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतो न संहन्येते? द्वयोः परमाणुपुद्गलयोः नास्ति स्नेहकायः, तस्माद् द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतो न संहन्येते. त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते. कस्माद् त्रयः परमाणुपुद्गला एकतः संहन्यन्ते? त्रयाणां [illegible] अस्ति स्नेहकायः, तस्माद् त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते. ते भिद्यमाना द्विधा अपि, त्रिविधा अपि क्रियन्ते. द्विधा क्रियमाणा [illegible] एवं यावत्–चत्वारः–अनु०

३११.—"पंच परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति, साहणित्ता दुक्खत्ताए कज्जंति. दुक्खे वि य णं से सासए सया समिअं उवचिज्जइ य, अवचिज्जइ य."

३११.—"पांच परमाणु पुद्गलो एक एकने परस्पर चोंटी जाय छे अने दुःखपणे–कर्मपणे–थाय छे. ते दुःख–कर्म–शाश्वत छे अने हमेशा सारी रीते उपचय पामे छे तथा अपचय पामे छे."

३१२.—"पुव्विं भासा भासा. भासिज्जमाणी भासा अभासा. भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिआ भासा."

३१२.—"बोलवाना समयनी पूर्वे जे भाषा–भाषाना पुद्गलो–छे ते भाषा छे. बोलवाना समयनी जे भाषा छे ते अभाषा छे अने बोलवाना समय पछीनी–जे (भाषा) बोलाएली छे ते भाषा छे."

३१३.—"जा सा पुव्वं भासा भासा. भासिज्जमाणी भासा अभासा. भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिआ भासा. सा किं भासओ भासा? अभासओ भासा? अभासओ णं सा भासा. नो खलु सा भासओ भासा."

३१३.—"जे ते पूर्वेनी भाषा भाषा छे, बोलाती भाषा अभाषा छे अने बोलवाना समय पछीनी जे (भाषा) बोलाएली छे ते भाषा छे, तो शुं ते बोलता पुरुषनी भाषा छे के अणबोलता पुरुषनी भाषा छे? (उत्तर)–अणबोलता पुरुषनी ते भाषा छे. पण ते बोलता पुरुषनी तो भाषा नथी ज."

३१४.—"जा सा पुव्वं किरिया दुक्खा. कज्जमाणी किरिया अदुक्खा. किरियासमयवितिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा."

३१४.—"जे ते पूर्वेनी क्रिया छे ते दुःखहेतु छे. कराती क्रिया दुःखहेतु नथी अने करवाना समय पछीनी–जे कराएली–क्रिया छे ते दुःखहेतु छे."

३१५.—"जा सा पुव्वं किरिया दुक्खा. कज्जमाणी किरिया अदुक्खा. किरियासमयवितिक्कंतं च णं कडा किरिया दुक्खा. सा किं करणओ दुक्खा? अकरणओ दुक्खा? अकरणओ णं सा दुक्खा. नो खलु सा करणओ दुक्खा, सेवं वत्तव्वं सिया."

३१५.—"जे ते पूर्वेनी क्रिया छे ते दुःखहेतु छे. कराती क्रिया दुःखहेतु नथी अने करवाना समय पछीनी–जे कराएली–क्रिया छे ते दुःखहेतु छे तो शुं ते करणथी दुःखहेतु छे के अकरणथी दुःखहेतु छे? (उत्तर)–ते अकरणथी दुःखहेतु छे पण ते करणथी दुःखहेतु तो नथी ज. ते ए प्रमाणे वक्तव्य छे."

३१६.—"अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं, अकज्जमाणकडं दुक्खं अकट्टु अकट्टु पाण–भूअ–जीव–सत्ता वेदणं वेदंति इति वत्तव्वं सिया."

३१६.—"अकृत्य दुःख छे, अस्पृश्य दुःख छे अने अक्रियमाणकृत दुःख छे; तेने नहीं करीने, नहीं करीने प्राणो, भूतो, जीवो अने सत्त्वो वेदनाने वेदे छे ते ए प्रमाणे वक्तव्य छे" (ए बधुं पूर्वे जणावेलुं अन्यतीर्थिकोनुं मत छे.)

३१७. प्र०—से कहमेअं भंते! एवं?

३१७. प्र०—हे भगवन्! ए ते (अन्यतीर्थिकोनुं मत) केवी रीते ए प्रमाणे होय?

३१७. उ०—गोयमा! जं णं ते अन्नउत्थिआ एवं आइक्खंति, जाव–वेदणं वेदेंति वत्तव्वं सिया. जे ते एवं आहिंसु, मिच्छा ते एवं आहिंसु. अहं पुण गोयमा! एवं आइक्खामि–एवं खलु चलमाणे चलिए, जाव–निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे.

३१७. उ०—हे गौतम! जे ते अन्यतीर्थिको कहे छे के, "यावत्–वेदनाने वेदे छे, एम कहेवाय" तेओए जे ए प्रमाणे कह्यु छे ते खोटुं कह्युं छे. वळी हे गौतम! हुं एम कहुं छुं के, चालतुं ते चाल्युं कहेवाय अने यावत्–निर्जरातुं होय ते निर्जरायुं कहेवाय.

३१८.—"दो परमाणुपुग्गला एगयओ साहणंति. कम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति? दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा दो परमाणुपोग्गला एगयओ साहणंति.

३१८.—"बे परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे. बे परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे तेनुं शुं कारण? बे परमाणु पुद्गलोमां चीकाश छे माटे बे परमाणु पुद्गलो

---

१. मूलच्छायाः—पञ्च परमाणुपुद्गला एकतः संहन्यन्ते, संहत्य दुःखतया क्रियन्ते, दुःखमपि च तत् शाश्वतं सदा समितम् उपचीयते, अपचीयते. पूर्वं भाषा भाषा. भाष्यमाणा भाषा अभाषा. भाषासमयव्यतिक्रान्ता च भाषिता भाषा. या सा पूर्वं भाषा भाषा, भाष्यमाणा भाषा अभाषा, भाषासमयव्यतिक्रान्ता च भाषिता भाषा; सा किं भाषमाणस्य भाषा, अभाषमाणस्य भाषा? अभाषमाणस्य सा भाषा, नो खलु सा भाषमाणस्य भाषा. या सा पूर्वं क्रिया दुःखा, क्रियमाणा क्रिया अदुःखा, क्रियासमयव्यतिक्रान्ता च कृता क्रिया दुःखा. या सा पूर्वं क्रिया दुःखा, क्रियमाणा क्रिया अदुःखा, क्रियासमयव्यतिक्रान्ता च कृता क्रिया दुःखा. सा किं करणतः दुःखा, अकरणतो दुःखा? अकरणतः सा दुःखा, नो खलु सा करणतो दुःखा; तदेवं वक्तव्यं स्यात्. अकृत्यं दुःखम्, अस्पृश्यं दुःखम्, अक्रियमाणकृतं दुःखम्; अकृत्वा अकृत्वा प्राण–भूत–जीव–सत्त्वा वेदनां वेदयन्ति. तत् कथम् एतद् भगवन्! एवम्? गौतम! यत् ते अन्यतीर्थिका एवम् आख्यान्ति, यावत्–वेदनां वेदयन्ति वक्तव्यं स्यात्. ये ते एवम् आहुः, मिथ्या ते एवमाहुः. अहं पुनर्गौतम! एवम् आख्यामि—एवं खलु चलत् चलितम्, यावत्–निर्जीर्यमाणं निर्जीर्णम्. द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतः संहन्येते [illegible] द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतः संहन्येते? द्वयोः परमाणुपुद्गलयोः अस्ति स्नेहकायः, तस्मात् द्वौ परमाणुपुद्गलौ एकतः [illegible]—अनु०

ते भिज्जमाणा दुहा कज्जंति, दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपो-ग्गले, एगयओ परमाणुपोग्गले भवंति."

एक एक परस्पर. चोंटी जाय छे. अने ते बे परमाणु पुद्गलोना बे भाग थइ शके छे. जो ते बे परमाणु पुद्गलोना बे भाग करवामां आवे तो एक तरफ एक परमाणु पुद्गल आवे छे अने एक तरफ एक परमाणु पुद्गल छे."

३१९.—"तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, कम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति ? तिण्हं परमा-णुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए, तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति. ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिहा वि कज्जंति. दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे भवंति. तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति. एवं जाव–चत्तारि."

३१९.—"त्रण परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे. त्रण परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे तेनुं शुं कारण ? त्रण परमाणु पुद्गलोमां चीकाश छे माटे त्रण परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे. अने ते त्रण परमाणु पुद्गलोना बे तथा त्रण भाग पण थइ शके छे. जो तेना बे भाग करवामां आवे तो एक तरफ एक परमाणु पुद्गल आवे छे अने एक तरफ बे प्रदेशवाळो एक स्कंध आवे छे. जो तेना त्रण भाग करवामां आवे तो एक एक एम त्रणे परमाणुओ जुदा जुदा थइ जाय छे. ए प्रमाणे यावत्–चार परमाणुओ संबंधे पण समजवुं."

३२०.—"पंच परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति. एगयओ साहणित्ता खंधत्ताए कज्जंति. खंधे वि य णं से असासए सया समिअं उवचिज्जइ य, अवचिज्जइ य."

३२०.—"पांच परमाणु पुद्गलो एक एक परस्पर चोंटी जाय छे. अने ते परस्पर चोंटी गया पछी एक स्कंधरूपे बनी जाय छे तथा ते स्कंध अशाश्वत छे अने हमेशा सारी रीते उपचय पामे छे, अपचय पामे छे."

३२१.—"पुव्विं भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिआ अभासा."

३२१.—"पूर्वेनी भाषा अभाषा छे. बोलाती भाषा भाषा छे. अने बोल्या पछीनी–बोलाएली–भाषा अभाषा छे."

३२२.—"जा सा पुव्विं भासा अभासा. भासिज्जमाणी भासा, भासा, भासासमयवितिक्कंतं च णं भासिआ भासा अभासा; सा किं भासओ भासा ? अभासओ भासा ? भासओ णं भासा. नो खलु सा अभासओ भासा."

३२२.—"जे ते पूर्वेनी भाषा अभाषा छे, बोलाती भाषा भाषा छे अने बोल्या पछीनी–बोलाएली–भाषा अभाषा छे. तो शुं ते बोलता पुरुषनी भाषा छे के अणबोलता पुरुषनी भाषा छे ? (उत्तर)—ते बोलता पुरुषनी भाषा छे. पण अणबोलता पुरुषनी तो ते भाषा नथी ज."

३२३.—"पुव्विं किरिया अदुक्खा. जहा भासा तहा भाणि-अव्वा. किरिया वि जाव–करणओ सा दुक्खा नो खलु सा अकरणओ दुक्खा सेवं वत्तव्वं सिया."

३२३.—"पूर्वेनी क्रिया दुःखहेतु नथी, तेने पण भाषानी पेठे जाणवी यावत्–करणथी ते दुःखहेतु छे. पण अकरणथी ते दुःखहेतु नथी ज. ए प्रमाणे कहेवाय."

३२४.—"किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं, कज्जमाणकडं दुक्खं कट्टु कट्टु पाण–भूअ–जीव–सत्ता वेदणं वेदेंति इति वत्तव्वं सिया."

३२४.—"कृत्य दुःख छे, स्पृश्य दुःख छे, क्रियमाणकृत दुःख छे, तेने करी करीने प्राणो, भूतो, जीवो अने सत्त्वो वेदना-ने वेदे छे. एम कहेवाय."

१. अनन्तरोद्देशकेऽस्थिरं कर्म इत्युक्तम्. कर्मादिषु च कुतीर्थिका विप्रतिपद्यन्ते अतस्तद्विप्रतिपत्तिनिरासप्रतिपादनार्थः, तथा संग्रहिण्यां 'चलणाओ' त्ति यदुक्तं तत्प्रतिपादनार्थश्च दशमोद्देशको व्याख्यायते. तत्र च सूत्रम्–'*अन्नउत्थिया णं*' इत्यादि. '*चलमाणे अचलिए*' त्ति चलत् कर्म अचलितम्, चलता तेन चलितकार्याऽकरणात्, वर्तमानस्य चाऽतीततया व्यपदेष्टुमशक्यत्वात्, एवमन्यत्राऽपि वाच्यम् इति.

---

१. मूलच्छायाः—तौ भिद्यमानौ द्विधा क्रियेते. द्विधा क्रियमाणौ एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः परमाणुपुद्गलो भवतः. त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते. कस्मात् त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते ? त्रयाणां परमाणुपुद्गलानाम् अस्ति स्नेहकायः, तस्मात् त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते. ते भिद्यमाना द्विधा अपि, त्रिधा अपि क्रियन्ते. द्विधा क्रियमाणा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धो भवति. त्रिधा क्रियमाणाः त्रयः परमाणुपुद्गला भवन्ति. एवं यावत्–चत्वारः. पञ्च परमाणुपुद्गला एकतः संहन्यन्ते. एकतः संहत्य स्कन्धतया क्रियन्ते. स्कन्धोऽपि च स अशाश्वतः सदा समितम् उपचीयते, अपचीयते च. पूर्वं भाषा अभाषा. भाष्यमाणा भाषा भाषा. भाषासमयव्यतिक्रान्ता च भाषिता भाषा अभाषा. या सा पूर्वं भाषा अभाषा, भाष्यमाणी भाषा भाषा, भाषासमयव्यतिक्रान्ता च भाषिता भाषा अभाषा; सा किं भाषमाणस्य भाषा, अभाषमाणस्य भाषा ? भाषमाणस्य भाषा, नो खलु सा अभाषमाणस्य भाषा, पूर्वं क्रिया अदुःखा, यथा भाषा तथा भणितव्या. क्रिया अपि [illegible] सा दुःखा, नो खलु सा अकरणतो दुःखा, [illegible] वक्तव्यं स्यात्, कृत्यं दुःखम्, स्पृश्यं दुःखम्, क्रियमाणकृतं दुःखं कृत्वा कृत्वा [illegible] वक्तव्यं स्यात्–अनु०

'*एगयओ न साहण्णंति*' त्ति एकत एकत्वेन एकस्कन्धतया इत्यर्थः, न संहन्येते न संहती स्याताम्. '*नत्थि सिणेहकाए*' त्ति स्नेहकायः— स्नेहराशिर्नास्ति सूक्ष्मत्वात्, त्र्यादियोगे तु स्थूलत्वात् सोऽस्ति. '*दुक्खत्ताए कज्जंति*' त्ति पञ्च पुद्गलाः संहत्य दुःखतया—कर्मतया क्रियन्ते— भवन्तीत्यर्थः. '*दुक्खे वि य णं*' ति कर्माऽपि च, '*से*' त्ति तत् शाश्वतम् अनादित्वात्, '*सय*' त्ति सर्वदा, '*समियं*' ति सम्यक्, सपरिमाणं वा चीयते—चयं याति, अपचीयते—अपचयं याति. तथा '*पुव्विं*' ति भाषणात् प्राक्, '*भास*' त्ति वाग्द्रव्यसंहतिः, '*भास*' त्ति सत्यादि-भाषा स्यात्, तत्कारणत्वात्, विभङ्गज्ञानित्वेन वा तेषां मतमात्रमेतद् निरुपपत्तिकम्—उन्मत्तकवचनवत्, अतो न इह उपपत्तिः अत्यर्थं गवेषणीया. एवं सर्वत्र अपि इति. तथा '*भासिज्जमाणी भासा अभास*' त्ति निसृज्यमानवाग्द्रव्याणि अभाषा, वर्तमानसमयस्य अतिसूक्ष्मत्वेन व्यवहाराऽनङ्गत्वादिति. '*भासासमयवितिक्कंतं च णं*' ति इह क्त–प्रत्ययस्य भावार्थत्वात्, विभक्तिविपरिणामाच्च भाषासमयव्यतिक्रमे च '*भासिय*' त्ति निसृष्टा सती भाषा भवति, प्रतिपाद्यस्य अभिधेये प्रत्ययोत्पादकत्वाद् इति. '*अभासओ णं भास*' त्ति अभाषमाणस्य भाषा, भाषणात् पूर्वं पश्चाच्च तदभ्युपगमात्. '*नो खलु भासओ*' त्ति भाष्यमाणायाः तस्या अनभ्युपगमाद् इति. तथा '*पुव्विं किरिया*' इत्यादि. क्रिया कायिक्यादिका, सा यावद् न क्रियते तावद् '*दुक्ख*' त्ति दुःखहेतुः. '*कज्जमाण*' त्ति क्रियमाणा क्रिया न दुःखा—न दुःखहेतुः. क्रियासमयव्यतिक्रान्तं च क्रियायाः क्रियमाणताव्यतिक्रमे च, कृता सती क्रिया दुःखेति. इदमपि तन्मतमात्रमेव निरुपपत्तिकम्. अथवा पूर्वं क्रिया दुःखा, अनभ्यासात्. क्रियमाणा क्रिया न दुःखा, अभ्यासात्. कृता क्रिया दुःखा, अनुताप–श्रमादेः. '*करणओ दुक्ख*' त्ति करणम्–आश्रित्य—करणकाले कुर्वतः इत्यर्थः. '*अकरणओ दुक्ख*' त्ति अकरणम्—आश्रित्य–अकुर्वत इति यावत्. '*नो खलु सा करणओ दुक्ख*' त्ति अक्रियमाणत्वे दुःखतया तस्या अभ्युपगमात्. '*सेवं वत्तव्वं सिया*' अथ एवं पूर्वोक्तं वस्तु, वक्तव्यं स्याद् उपपन्नत्वाद् अस्य इति. अथ अन्ययूथिकान्तरमतमाहः—अकृत्यम्—अनागतकालापेक्षया अनिर्वर्तनीयं 'जीवैः' इति गम्यम्. दुःखम्—असातम्, तत्कारणं वा कर्म. तथा अकृत्यत्वाद् एव अस्पृश्यम्—अबन्धनीयम्. तथा क्रियमाणं वर्तमानकाले, कृत च अतीतकाले, तन्निषेधाद् अक्रियमाणकृतम्, कालत्रयेऽपि कर्मणो बन्धनिषेधाद् अकृत्वा अकृत्वा आभीक्ष्ण्ये द्विर्वचनम्. 'दुःखम्' इति प्रकृतमेव. के? इत्याहः— प्राण—भूत—जीव—सत्त्वाः. प्राणादिलक्षणं चेदम्—"प्राणा द्वि—त्रि—चतुःप्रोक्ताः भूतास्तु तरवः स्मृताः, जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः शेषा सत्त्वा इतीरिताः." '*वेअणं*' ति शुभाऽशुभं कर्म, वेदनां पीडां वा, वेदयन्ति अनुभवन्ति, इत्येतद् वक्तव्य स्यात्, अस्यैव उपपद्यमानत्वात्, यादृच्छिकं हि सर्वं लोके सुख—दुःखम्—इति. यदाहः—"अतर्कितोपस्थितमेव सर्वं चित्रं जनानां सुख—दुःखजातम्, काकस्य तालेन यथाऽभिघातो न बुद्धिपूर्वोऽत्र वृथाऽभिमानः." '*से कहमेअं*' ति अथ कथमेतद् भदन्त! एवम्—अन्ययूथिकोक्तन्यायेन? इति प्रश्नः. '*जं णं ते अन्नउत्थिआ*' इत्यादि उत्तरम्. व्याख्या चास्य प्राग्वत्. मिथ्या च एतद् एवम्—यदि चलदेव प्रथमसमये चलितं न भवेत्, तदा द्वितीयादिष्वपि तद् अचलितमेव इति न कदाचनाऽपि चलेत्, अत एव वर्तमानस्याऽपि विवक्षया अतीतत्वं न विरुद्धम्. एतच्च प्रागेव निर्णीतमिति न पुनः उच्यते. यच्चोच्यते 'चलितकार्याऽकरणाद् अचलितमेव' इति. तद् अयुक्तम्, यतः प्रतिक्षणम्—उत्पद्यमानेषु श्वास—कोशादिवस्तुषु अन्त्यक्षणभावि वस्तु आद्यक्षणे स्वकार्यं न करोत्येव, असत्त्वात्. अतो यद् अन्त्यसमयचलितं कार्यं विवक्षितं परेण, तद् आद्यसमयचलित यदि न करोति तदा क इव दोषोऽत्र?, कारणानां स्वस्वकार्यकरणस्वभावत्वाद् इति.

कुतीर्थिकप्रलाप.

१. आगळना उद्देशकमां 'कर्म अस्थिर छे' एम कह्युं छे अने कर्म वगेरे परोक्ष वस्तुना स्वरूपमां कुतीर्थिको विवाद करे छे माटे तेओना विवादने अटकाववा तथा आगळ कहेली संग्रह गाथामां कहेलुं जे ['चलणाओ'त्ति] ए पद छे, तेनुं प्रतिपादन करवा आ दशमा उद्देशकनु व्याख्यान करवामां आवे छे. तेमां आ सुत्र छेः–['अन्नउत्थिआ णं' इत्यादि.] ['चलमाणे अचलिए' त्ति] चालतु कर्म चाल्युं गणातुं नथी. कारण के चालतुं कर्म, चालेल कर्म जे कार्य करी शके छे ते, ते करी शकतुं नथी. तथा वर्तमानकाळनी वस्तुनो व्यवहार भूतकाळनी वस्तुनी पेठे थवो ए दुर्घट छे. ए प्रमाणे बीजे ठिकाणे पण समजवुं. ['एगयओ न साहण्णंति' त्ति] एक स्कंधपणे जोडाता नथी–मळता नथी. ['नत्थि सिणेहकाए' त्ति] तेओ बन्ने परमाणुओ सूक्ष्म होवाथी तेमां स्नेह–चीकाशगुण नथी. अने ज्यारे त्रण, चार के पांच वगेरे परमाणुओ भेगा थाय छे त्यारे तेमां स्थूलपणुं आवे छे, तेथी तेमां चिकाश पण होय छे. ['दुक्खत्ताए कज्जंति' त्ति] पांच पुद्गलो भेगा थइने दुःख-कर्म-पणे थाय छे. ['दुक्खे वि य णं' ति] अने ['से' त्ति] ते कर्म अनादिनुं होवाथी शाश्वत- नित्य–छे. ['सय' त्ति] हमेशा ['समिअं'ति] सारी रीते, अथवा मापपूर्वक चय–वृद्धि–पामे छे अने नाश पामे छे. तथा ['पुव्विं' ति] बोल्या पहेलांनी जे ['भास' त्ति] शब्दना अणुओनी थोकडी ते ['भास'त्ति] सत्य वगेरे भाषा कहेवाय छे. कारण के, ते शब्दना अणुओ सा- चाना कारणरूप छे. अथवा विभंगज्ञानिपणाने लीधे ए प्रमाणे ते अन्यतीर्थिकोनुं युक्तिविनानुं मत छे. जे उन्मत्त मनुष्यना वचननी जेवुं छे. माटे आ स्थळे तेनी सिद्धिने सारु वधारे युक्ति गोतवानी जरूर नथी. अने ए प्रमाणे बीजे ठेकाणे पण जाणवुं. तथा ['भासिज्जमाणी भासा अभास' त्ति] मुख द्वारा बहार नीकळतां शब्दना अणुओ अभाषा छे. कारण के वर्तमानकाळ घणो सूक्ष्म होवाथी व्यवहारनुं अंग नथी. ['भासासमयवितिक्कंतं च णं' ति] भाषानो समय गया पछीनी अर्थात् ['भासिअ' त्ति] मुख द्वारा नीकळेली भाषा–बोलाएली भाषा–ते भाषा कहेवाय छे. कारण के, ते भाषाद्वारा सांभळनारने अर्थनुं ज्ञान थाय छे. ['अभासओ णं भास'त्ति] बोल्यां पहेलां के पछी भाषानो स्वीकार करेलो होवाथी ते अभाषमाण–नहीं बोलता–नी भाषा छे. ['नो खलु भासओ' त्ति] बोलाती भाषा, भाषा तरीके नहीं स्वीकारेली होवाथी बोलता पुरुषनी भाषा, ए भाषा न कहेवाय. तथा ['पुव्विं

१. जुओ आगळ पृ–८:–अनु० २. 'व्यतिक्रान्त' आ शब्दने छेडे रहेलो 'त' क्रियानो सूचक छे अने विभक्तिओनुं परिवर्तन थवुं होवाथी आवी रीतेनी सप्तमी जेवो अर्थ करवोः—श्रीअभय०

[किरिआ' इत्यादि.] क्रिया एटले कायिकी वगेरे क्रिया. ज्यां सुधी ते क्रिया कराती नथी त्यां सुधी ['दुक्ख' त्ति] दुःखमां हेतुरूप छे. ['कज्जमाण' त्ति] कराती क्रिया दुःखमां हेतुरूप नथी. ज्यारे क्रियानो समय वीती जाय छे एटले 'क्रिया कराय छे' ए व्यवहार मटीने, 'क्रिया कराएली छे' एवो व्यवहार थाय छे त्यारे करेली क्रिया ['दुक्खे' त्ति] दुःखमां हेतुरूप छे. आ पण तेओनुं ज युक्तिविनानुं मत छे. अथवा अभ्यास (टेव) न होवाने लीधे पहेलां क्रिया दुःखरूप लागे छे. पछी अभ्यास पडी जवाथी कराती क्रिया दुःखरूप नथी लागती अने क्रिया कर्या पछी पश्चात्ताप थाय छे, अथवा थाक वगेरे लागे छे तेथी करेली क्रिया दुःखरूप लागे छे. ['करणओ दुक्ख' त्ति] करणने आश्रीने—करवाने वखते—करता पुरुषने. ['अकरणओ दुक्ख' त्ति] अकरणने आश्रीने—नहीं करता पुरुषने. ['नो खलु सा करणओ दुक्ख' त्ति] कारण के, क्रियानी अक्रियमाण स्थितिमां तेने (ते क्रियाने) दुःखरूपे स्वीकारेली छे. ['सेवं वत्तव्वं सिया'] ए प्रमाणे पूर्वोक्त वस्तु वक्तव्य छे. कारण के, ए उपपन्न—युक्तियुक्त छे. हवे बीजा कोइ अन्ययूथिकनुं मत कहे छे के, अकृत्य एटले भविष्यत्काळनी अपेक्षाए जीवोवडे अनिर्वर्तनीय—अनिष्पाद्य—नहीं उपजे तेवुं. दुःख एटले सुख नहीं अथवा तेनुं कारण कर्म, तथा अकृत्य होवाथी ज अबंधनीय—न बंधाय तेवुं छे. तथा वर्तमान काळे करातुं ते क्रियमाण अने भूतकाळे कराएलुं ते कृत, ते बन्नेनो निषेध करवाथी अक्रियमाणकृत, अर्थात् त्रणे काळे पण कर्मना बंधनो निषेध होवाथी दुःखने नहीं करीने नहीं करीने. कोण ? तो कहे छे के, प्राणो, भूतो, जीवो अने सत्त्वो. ए प्राण वगेरेनुं स्वरूप आ छेः—"बे इंद्रियवाळा, त्रण इंद्रियवाळा अने चार इंद्रियवाळा जीवो 'प्राण' कहेवाय छे. वृक्षोने 'भूतो' कहेवाय छे. जे पांच इंद्रियवाळा होय ते 'जीवो' कहेवाय छे अने बाकीना बधा—पृथिवी वगेरेना जीवो—'सत्त्वो' कहेवाय छे." ['वेअणं' ति] सारा के नरसा कर्मने अथवा पीडाने अनुभवे छे, एम वक्तव्य छे, कारण के ए रीते ए युक्तियुक्त छे. लोकमां जे कांइ सुख के दुःख देखाय छे ते बधुं यादृच्छिक छे. कह्युं छे के, "माणसोने जे कांइ विचित्र सुख के दुःख थाय छे ते बधुं अतर्कितोपस्थित छे—विचार सिवाय थाय छे.—जेम; कागडाने बेसवुं अने ताडने पडवुं ते प्रमाणे ए बधुं थाय छे. पण कांइ बुद्धिपूर्वक थतुं नथी, माटे 'में कर्युं' एवुं अभिमान राखवुं ए नकामुं—खोटुं—छे." ['से कहमेयं' ति] हे भगवन् ! अन्ययूथिके कहेल न्याये ए प्रमाणे ए केम होइ शके ? ए प्रश्न छे. ['जं णं ते अन्नउत्थिआ' इत्यादि.] ए उत्तर छे. एनी व्याख्या पूर्वनी पेठे जाणवी. अने ते बधुं मिथ्या—खोटुं—आ प्रमाणे छेः—जो चालतुं ज कर्म प्रथम समये चलित—'चालेलुं' न होय तो बीजा समयोमां पण ते कर्म अचलित ज होय—कोइ पण समये ते कर्म चाले ज नहीं. माटे ज वर्तमानने पण विवक्षावडे लागतुं अतीतपणुं विरुद्ध नथी. ए विषे आगळ ज निर्णय कर्यो छे. माटे फरीथी कहेता नथी. जे कह्युं छे के, चलित कर्म जे काम करे छे ते काम चालतुं कर्म नथी करतुं माटे चालताने 'चलित' केम कहेवाय ?' ते कथन अयुक्त छे. कारण के प्रतिक्षणे उत्पन्न थता 'स्थास,' (घडो बनावती वखते माटीने जे पहोळी करवी ते 'स्थास' कहेवाय.) कोश वगेरे उत्पन्न थया पछी छेवटे—छेल्ले क्षणे—उत्पन्न थनारुं घटरूप कार्य प्रथम क्षणे—घट करवाना आरंभ समये—असत् होवाथी पोतानुं कर्तव्य न करे ए युक्तियुक्त ज छे. अने अहीं कुतीर्थिकोए अंत समयनुं चलित कर्म जे कार्य करे छे, ते कार्यने 'कार्य' तरीके कल्पेलुं छे. हवे जो ते कार्यने आद्य समयनुं चलित कर्म न करे तो तेओ एवो दोष दइ शकता नथी के, चलित कर्मनी पेठे कार्य न करवाथी 'चालतुं' कर्म चलित कहेवातुं नथी. तेनुं कारण ए के, दरेक कारणो पोत पोतानां कार्यो करे छे. पण बीजुं कारण बीजा कारणना कार्यने नथी करतुं तेम छतां एमां दोष देवो ते कांइ ज नहीं एम गणवुं युक्त छे.

ते प्रज्ञापनी असत्यता.

२. यच्चोक्तम्—'द्वौ परमाणू न संहन्येते, सूक्ष्मतया स्नेहाभावात्' तद् अयुक्तम्. एकस्याऽपि परमाणोः स्नेहसंभवात्, सार्धपुद्गलस्य संहतत्वेन तैरेव अभ्युपगमाच्च. यत उक्तम्—'*तिण्णि परमाणु—पोग्गला एगयओ साहणंति, ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिविहा वि कज्जंति. *दुहा कज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे*' त्ति अनेन हि सार्धपुद्गलस्य संहतत्वाभ्युपगमेन तस्य स्नेहोऽभ्युपगत एव, इति कथं परमाण्वोः स्नेहाभावेन संघाताभावः ? इति. यच्चोक्तम्—'एकतः सार्धः, एकतः सार्धः' इति. एतद् अपि अचारु, परमाणोः अर्धीकरणे परमाणुत्वाभावप्रसङ्गात्. तथा यदुक्तम्—'पञ्च पुद्गलाः संहताः कर्मतया भवन्ति' तद् अपि असंगतम्, कर्मणोऽनन्तपरमाणुतया अनन्तस्कन्धरूपत्वात्, पञ्चाणुकस्य च स्कन्धमात्रत्वात्. तथा कर्म जीवावरणस्वभावमिष्यते, तच्च कथं पञ्चपरमाणुस्कन्धमात्ररूपं सद् असंख्यातप्रदेशात्मकं जीवम्—आवृणुयात् ? इति. तथा यदुक्तम्—'कर्म च शाश्वतम्' तद् अपि असमीचीनम्, कर्मणः शाश्वतत्वे क्षयोपशमाद्यभावेन ज्ञानादीनां हानेः, उत्कर्षस्य च अभावप्रसङ्गात्. दृश्येते च ज्ञानादिहानि—वृद्धी. तथा यदुक्तम्—'कर्म सदा चीयते, अपचीयते च' इति. तद् अपि एकान्तशाश्वतत्वे नोपपद्यते इति. यच्चोक्तम्—'भाषणात् पूर्वं भाषा, तद्धेतुत्वात्' तद् अयुक्तमेव, औपचारिकत्वात्, उपचारस्य च तत्त्वतोऽवस्तुत्वात्. किञ्च, उपचारः तात्त्विके वस्तुनि सति संभवति, इति तात्त्विकी भाषा अस्तीति सिद्धम्. यच्च उक्तम्—'भाष्यमाणा अभाषा, वर्तमानसमयस्य अव्यवहारिकत्वात्' तदपि असम्यक्, वर्तमानसमयस्य एव अस्तित्वेन व्यवहाराङ्गत्वात्, अतीता—ऽनागतयोश्च विनष्टा—ऽनुत्पन्नतया असत्त्वेन व्यवहारानङ्गत्वाद् इति. यच्च उक्तम्—'भाषासमय'—इत्यादि. तदपि असाधु, भाष्यमाणभाषाया अभावे 'भाषासमय'—इत्यस्य अभिलापस्य अभावप्रसङ्गात्. यच्च—'प्रतिपाद्यस्य अभिधेये प्रत्ययोत्पादकत्वात्' इति हेतुः, सोऽनैकान्तिकः—करादिचेष्टानाम्—अभिधेयप्रतिपादकत्वे सत्यपि भाषात्वाऽसिद्धेः. तथा यदुक्तम्—'अभाषकस्य भाषा' इति. तद् असंगततरम्, एवं हि सिद्धस्य, अचेतनस्य वा भाषाप्राप्तिप्रसङ्ग इति. एवं क्रिया अपि वर्तमानकाल एव युक्ता, तस्यैव सत्त्वादिति. यच्च अनभ्यासा—ऽभ्यासादिकं कारणम्—उक्तम्, तच्च अनैकान्तिकम्—अनभ्यासादौ अपि यतः काचित् सुखादिरूपा एव. तथा यदुक्तम्—'अकरणतः क्रिया दुःखा' इति. तदपि प्रतीतिबाधितम्, यतः करणकाल एव क्रिया दुःखा, सुखा वा दृश्यते. न पुनः पूर्वं पश्चाद् वा, तदसत्त्वाद् इति.

२. वळी जे कह्युं छे के, 'बे परमाणुओ चोंटता नथी, कारण के ते सूक्ष्म छे माटे चिकाश विनाना छे.' ते पण अयुक्त छे. कारण के एक परमाणुमां पण चिकाश होय छे. तथा ते अन्यतीर्थिकोए ज एम स्वीकार्युं छे के, दोढ दोढ परमाणुओ परस्पर चोंटी जाय छे अर्थात् एम

कुतीर्थिक प्रलाप अने तेनी असत्यता.

---

* [illegible]

स्वीकारवाथी अडधा परमाणुमां पण तेओना मते चिकाश होवी संभवे छे. तेओए कह्युं छे के, [‘तिन्नि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिविहा वि कज्जंति. दुहा कज्जमाणां एगयओ दिवड्ढे’त्ति] आ सूत्रथी तेओए ‘दोढ दोढ परमाणु चोंटे छे’ एम स्वीकार्युं छे, तो पछी तेमां चिकाश तो स्वीकारी ज होवी जोइए. ज्यारे एम छे तो पछी ‘बे परमाणुओ चिकाश विनाना होवाथी चोंटता नथी’ एम कहेवुं ते व्याजबी केम होइ शके? वळी जे कह्युं छे के, ‘एक तरफ दोढ अने बीजी तरफ दोढ’ ए पण सारुं नथी. कारण के परमाणुना बे भाग थइ शकता ज नथी. जो तेना बे भाग करवामां आवे तो ते ‘परमाणु’ कहेवाय ज नहीं. तथा जे कह्युं छे के, ‘चोंटेला पांच पुद्गलो कर्मपणे थाय छे’ ते पण असंगत छे. कारण के कर्म अनंत परमाणुरूप होवाथी अनंत स्कंधरूप छे अने पांच परमाणु तो मात्र स्कंधरूप ज छे. तथा कर्म, ए जीवने आवरण कर-वाना स्वभाववाळुं छे, जो ए मात्र पांच ज परमाणुरूप होय तो असंख्यात प्रदेशवाळा जीवने केवी रीते ढांकी शके? तथा जे कह्युं छे के, ‘कर्म, ए शाश्वत छे’ ते पण ठीक नथी. जो कर्मने शाश्वत मानवामां आवे तो तेनो (कर्मनो) क्षयोपशम वगेरे न थवाथी ज्ञानादिनी हानि अने वृद्धि न थवी जोइए. पण लोकमां ‘कोइने थोडुं ज्ञान अने कोइने वधारे ज्ञान’ ए प्रमाणे ज्ञानादिकनी हानि अने वृद्धि जणाय छे. माटे कर्म शाश्वत न होवुं जोइए. तथा जे कह्युं छे के, ‘कर्म हमेशा चय पामे छे अने नाश पामे छे’ ते पण जो कर्मने शाश्वत मानवामां आवे तो अयुक्त छे. वळी जे कह्युं छे के, ‘भाषामां हेतु होवाथी बोल्या पहेलांनी भाषा कहेवाय छे’ ते अयुक्त ज छे. कारण के ते कथन औपचारिक छे अने उपचार तो खरी रीते वस्तु-रूप नथी. वळी ज्यारे कोइ एक सत्य वस्तु होय त्यारे तेना उपरथी उपचार थइ शके छे माटे ‘भाषा’ ए तात्त्विक वस्तु छे एम सिद्ध थयुं. वळी जे कह्युं छे के, ‘बोलाती भाषा, भाषा कहेवाती नथी, कारण के वर्तमानकाळ व्यवहारनुं अंग नथी.’ ते पण खोटुं छे. कारण के विद्यमानरूप होवाथी वर्तमानकाळ ज व्यवहारनुं अंग छे. अने भूतकाळ, नाश पामेल होवाथी अविद्यमानरूप छे. तथा भविष्यत्काळ, असद्रूप होवाथी अविद्यमानरूप छे माटे ते बन्ने काळ व्यवहारनुं अंग नथी. वळी जे कह्युं छे के, [‘भासासमय’ इत्यादि.] ते पण ठीक नथी. कारण के भाष्यमाण भाषानो अभाव होवाथी [‘भासासमय’ इत्यादि.] ए सूत्रना अभिलापनो असंभव प्रसक्त छे. अर्थात् ज्यारे वर्तमान काळनी भाषा न होय त्यारे भूतकाळनी भाषा तो होय ज नहीं. ‘सांभळनारने अर्थनुं ज्ञान कराववामां हेतुरूप छे’ ए जे हेतु कह्यो छे ते अनैकांतिक–व्यभिचारी–छे. कारण के हाथ अने आंख वगेरेनी चेष्टाथी पण सांभळनारने अर्थनुं भान थइ शके छे, तो पण ते चेष्टा भाषा कहेवाती नथी. वळी जे कह्युं छे के, ‘अभाषकनी भाषा छे’ ते तो वधारे खोटुं छे. कारण के जो तेम मानवामां आवे तो सिद्धने अथवा जडने भाषानी प्राप्ति थवी जोइए. ए प्रमाणे क्रिया पण वर्तमानकाळे ज युक्त छे. कारण के ते वर्तमानकाळ ज सद्रूप छे. वळी जे ‘टेव तथा नहीं टेव होवानुं’ कारण लख्युं ते पण व्यभिचारी छे. कारण के टेव वगेरे न होय तो पण कोइ एक क्रिया सुखरूप ज लागे छे. तथा जे कह्युं के, ‘नहीं करवाथी क्रिया दुःखरूप लागे छे’ ते कथन अनुभवविरुद्ध छे. कारण के करवाने समये ज क्रिया दुःखरूप के सुखरूप लागे छे. पण कर्या पहेलां के कर्या पछी असद्रूप होवाथी क्रिया सुख के दुःखरूप होइ शकती नथी.

३. तथा यदुक्तम्–*‘अकिच्चं’* इत्यादि यदृच्छावादिमताश्रयणात्. तदपि असाधीयः. यतो यदि अकरणाद् एव कर्म दुःखम्, सुखं वा स्यात् तदा विविधैहिक–पारलौकिकानुष्ठानाऽभावप्रसङ्गः स्यात्. अभ्युपगतं च किंचित् पारलौकिकानुष्ठानं तैरपि च इति. एवमेतत् सर्वम्–अ-ज्ञानविजृम्भितम्. उक्तं च वृद्धैः–*“परतित्थिअवत्तव्वयपढमसए दसमयम्मि उद्देसे, विब्भंगीणादेसा मइभेआ या वि सा सव्वा.” “सब्भूअं असब्भूअे भंगा चत्तारि होंति विब्भंगे, उम्मत्तवायसरिसं तो अन्नाणं ति निद्दिट्ठं”* सद्भूते परमाणौ असद्भूतम्–अर्धादि. असद्भूते सर्वगात्मनि सद्भूतं चैतन्यम्. सद्भूते परमाणौ सद्भूतं निष्प्रदेशत्वम्. असद्भूते सर्वगात्मनि असद्भूतम्–अकर्तृत्वमिति. *‘अहं पुण गोयमा ! एवं आइ-क्खामि’* इत्यादि तु प्रतीतार्थमेव इति. नवरम्–*‘दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए’* त्ति एकस्य अपि परमाणोः शीतो–ष्ण–स्निग्ध–रूक्षस्पर्शानाम्–अन्यतरद् अविरुद्धं स्पर्शद्वयम्–एकदा एव अस्ति. ततो द्वयोरपि तयोः स्निग्धत्वभावात् स्नेहकायोऽस्त्येव. ततश्च तौ विषमस्नेहात् संहन्येते. इदं च परमतानुवृत्त्या उक्तम्. अन्यथा रूक्षौ अपि रूक्षत्ववैषम्ये संहन्येते एव. यदाहः–*“समनिद्धयाए बंधो न होइ, समलुक्खयाए वि न होइ, वेमायनिद्ध–लुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं”* ति. *‘खंधे वि य णं से असासए’* त्ति उपचयाऽपचयिकत्वात्. अत एव आहः–*‘सया समियं’* इत्यादि. *‘पुव्विं भासा अभास’* त्ति भाष्यते इति भाषा, भाषणात् पूर्वं न भाष्यते इति न भाषा इति. *‘भासिज्जमाणी भासा भास’* त्ति शब्दार्थोपपत्तेः. *‘भासिआ अभास’* त्ति शब्दार्थवियोगात्. *‘पुव्विं किरिया अदुक्खा’* त्ति करणात् पूर्वं क्रिया एव नास्ति इति. असत्त्वादेव च न दुःखा, सुखाऽपि नासौ असत्त्वादेव. केवलं परमतानुवृत्त्या ‘अदुःखा’ इत्युक्तम्. *‘जहा भास’* त्ति वचनात् *‘कज्जमाणी किरिया दुक्खा’* सत्त्वात्. इहाऽपि यत् क्रियमाणा क्रिया दुःखा इत्युक्तम्, तत् परमतानुवृत्त्या एव, अन्यथा सुखाऽपि क्रियमाणा एव क्रिया. तथा *‘किरियासमयवितिक्कंतं च णं’* इत्यादि दृश्यमिति. *‘किच्चं दुक्खं’* इत्यादि. अनेन च कर्मसत्ता वेदिता, प्रमाणसिद्धत्वाद् अस्य. तथाहि:–इह यद् द्वयोः इष्टशब्दादिविषयसुखसाधनसमेतयोः एकस्य दुःखलक्षणं फलम्, अन्यस्य इतरत्, न तद् विशिष्टहेतुमन्तरेण संभाव्यते, कार्यत्वात्, घटवत्. यश्चासौ विशिष्टो हेतुः स कर्म इति. आह च:—*“जो तुल्लसाहणाणं फले विसेसो न सो विणा हेउं, कज्जत्तणओ गोयम ! घडो व्व, हेउ य से कम्मं”* ति.

३. तथा यदृच्छावादिना मतने लइने जे कह्युं छे के, [‘अकिच्चं’ इत्यादि.] ते पण अयुक्त छे. कारण के जो कर्या सिवाय ज कर्म दुःख के सुख-रूप थतुं होय तो अनेक प्रकारनां ऐहिक अने पारलौकिक अनुष्ठानोनो अभाव आवशे. अने ते अन्ययूथिकोए पण कांइक पारलौकिक अनुष्ठान तो

१. प्र० छा:—परतीर्थिकवक्तव्यकप्रथमशते दशमे उद्देशे, विभङ्गिनामादेशा मतिभेदाश्चापि सा सर्वा. सद्भूतमसद्भूते भङ्गाश्चत्वारो भवन्ति विभङ्गे, उन्मत्तवाक्सदृशं ततोऽज्ञानमिति निर्दिष्टम्. २. एतद् गाथाद्वयं श्रीभगवतीअवचूर्णौ. ३. समस्निग्धतया बन्धः न भवति, समरूक्षतयाऽपि न भवति, विमात्र-स्निग्ध–रूक्षत्वेन बन्धस्तु स्कन्धानाम्. ४. एतत्समानं श्रीतत्त्वार्थसूत्रे पञ्चमाध्याये ३२, ३३, ३४, ३५, ३६ सूत्रे. ५. [illegible] न स विना हेतुम्, कार्यत्वतो गौतम ! घट इव हेतुश्च तत् कर्म: १. इयं गाथा श्रीविशेषावश्यके [illegible]

[illegible] ज छे. ए प्रमाणे ए बधुं अज्ञानना चाळारूप छे. वृद्धोए कह्युं छे के, "परतीर्थिकनी वक्तव्यतावाळा प्रथम शतकमां दशमा उद्देशकमां [illegible]ओना मतिभेदना प्रकारो छे–ते बधी वक्तव्यता तेवी ज छे. सद्भूत अने असद्भूत ए भेदवडे विभंगमां चार भांगा थाय छे. ए अन्य-यूथिकोनुं वक्तव्य उन्मत्तना वचन जेवुं छे माटे तेने अज्ञान कह्युं छे." ते चार भांगा आ छेः–

चार भांगा.

१. साचामां खोटुं. २. खोटामां साचुं.

३. साचामां साचुं. ४. खोटामां खोटुं.

तेनां उदाहरणो आ छेः–सद्भूत–साचा–परमाणुमां असद्भूत–खोटुं–अडधुं वगेरे. खोटा व्यापक आत्मामां साचुं चैतन्य. साचा परमाणुमां साचुं अप्रदेशपणुं. अने खोटा व्यापक आत्मामां खोटुं अकर्तापणुं. ['अहं पुण गोयमा! एवं आइक्खामि' इत्यादि.] ए बधुं तो स्पष्ट अर्थवाळुं ज छे. विशेष ए के, ['दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए' त्ति] ठंडो, उनो, चिकणो अने लुखो; ए चार स्पर्शमांना कोइ पण बे अविरुद्ध स्पर्श एक पण परमाणुमां एक ज काळे होय छे. माटे ते बे परमाणुओमां चिकाश होवाथी तेमां स्नेहकाय होय ज छे. तेथी ते बन्ने एक बीजा करतां ओछी वधती चिकाशवाळा होवाथी परस्पर चोंटी जाय छे. आ वात बीजाना मतने लइने कही छे. नहीं तो, एक बीजा करतां ओछी वधती लुखाशवाळा पण परमाणुओ परस्पर चोंटी जाय ज छे. कह्युं छे के, "जेमां सरखी चिकाश होय अने जेमां सरखी लुखाश होय तेवा पुद्गलो परस्पर चोंटता नथी. पण एक बीजा करतां ओछी वधती चिकाश अने लुखाशवाळा पुद्गलो परस्पर चोंटी जाय छे" ['खंधे वि य णं से असासए' त्ति] कारण के ते स्कंध वधघटना स्वभाववाळो छे. माटे ज कहे छे के, ['सया समियं' इत्यादि.] ['पुव्विं भासा अभास' त्ति] बोलाय छे माटे भाषा कहेवाय. अने बोलाया पहेलां बोलाती नथी माटे भाषा न कहेवाय. ['भासिज्जमाणी भासा भास' त्ति] बोलाती भाषा भाषा छे, कारण के शब्द अने अर्थनी उपपत्ति थाय छे. ['भासिआ अभास' त्ति] बोलाएली (भाषा) अभाषा छे, कारण के शब्द अने अर्थनो वियोग छे. ['पुव्विं किरिया अदुक्ख' त्ति] कर्या पहेलां क्रिया ज नथी. अने तेम होवाथी ज ते दुःख के सुखरूप नथी, कारण के ते नथी ज. मात्र बीजाना मतने आश्रीने 'दुःखरूप नथी' एम एकलुं कह्युं छे. ['जहा भास' त्ति] एम कह्युं होवाथी 'कराती क्रिया दुःखरूप छे.' कारण के ते विद्यमान छे. अहीं पण जे कह्युं छे के, 'कराती क्रिया दुःखरूप छे' ते परमतने आश्रीने ज कह्युं छे. नहीं तो कराती ज क्रिया सुखरूप पण होय छे. तथा ['किरियासमयवितिक्कंतं च णं' इत्यादि.] ए बधुं जाणवुं. ['किच्चं दुक्खं' इत्यादि.] आ सूत्रथी कर्मनी सत्ता जणावी छे. कारण के कर्मनी सत्ता प्रमाणोथी सिद्ध छे. ते आ प्रमाणेः–कोइ एक बे पुरुषो होय अने ते बन्नेने इष्ट शब्द, इष्ट गंध, इष्ट रूप वगेरे विषयसुखना साधनो प्राप्त होय. तो पण ते बेमांथी एक जीवने दुःखरूप फळ मळे छे अने बीजा जीवने सुखरूप फळ मळे छे. स्थूल कारणोनी सरखी रीते सगवड होवा छतां जे जूदुं जूदुं कार्य नीपजे छे ते कोइ बीजा चोक्कस हेतु सिवाय बनतुं नथी. कारण के जे कांइ कार्य नीपजे छे ते घडानी पेठे कारण सिवाय बनतुं नथी. माटे पूर्वे कहेल जूदा जूदा कार्यनो जे कोइ चोक्कस हेतु छे ते कर्म छे. कह्युं छे के, "जेओनी पासे दरेक साधनो सरखां होय, पण (ते साधनोथी) फळ मळवामां जूदाइ होय, तो हे गौतम! ते फळ मळवानी जूदाइनुं कोइ चोक्कस बीजुं कारण होवुं जोइए–कारण सिवाय ते थइ शके नहीं. कारण के जे कार्य थतुं देखाय छे तेनुं घडानी पेठे कारण होवुं जोइए. अने जे कारण–हेतु–छे ते कर्म छे."

श्रीमहावीरमत.

परमाणुमां चिकाश.

कर्म.

बीजा मतवाळाना क्रियाविषे प्रश्नोत्तर.

३२५. प्र०—अन्नउत्थिआ णं भंते! एवं आइक्खंति, जाव–"एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति. तं जहाः–इरियावहिअं च, संपराइयं च. जं समयं इरियावहिअं पकरेइ तं समयं संपराइअं पकरेइ, जं समयं संपराइअं पकरेइ, तं समयं इरियावहिअं पकरेइ–इरियावहिआए पकरणयाए संपराइअं पकरेइ, संपराइआए पकरणयाए इरियावहिअं पकरेइ. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति. तं जहाः–इरियावहिअं च, संपराइअं च." से कहं एअं भंते! एवं?

३२५. प्र०—हे भगवन्! अन्यतीर्थिको ए प्रमाणे कहे छे के, यावत्–एक जीव एक समये बे क्रियाओ करे छे. ते आ प्रमाणेः–ऐर्यापथिकी अने सांपरायिकी. जे समये ऐर्यापथिकी क्रिया करे छे ते समये सांपरायिकी क्रिया करे छे अने जे समये सांपरायिकी क्रिया करे छे ते समये ऐर्यापथिकी क्रिया करे छे. ऐर्यापथिकी क्रिया करवाथी सांपरायिकी क्रिया करे छे अने सांपरायिकी क्रिया करवाथी ऐर्यापथिकी क्रिया करे छे ए प्रमाणे एक जीव एक समये बे क्रिया करे छे–एक ऐर्यापथिकी अने बीजी सांपरायिकी. हे भगवन्! ए ते ए प्रमाणे केवी रीते होय?

---

१. आ वात श्रीभगवतीजीनी अवचूर्णिमां छे. २. आ वातने मळती विगतवार हकीकत श्रीतत्त्वार्थसूत्रना पांचमा अध्यायमां ३२, ३३, ३४, ३५ अने ३६ मा सूत्रमां छे. ३. आ गाथा श्रीविशेषावश्यकसूत्रमां, बीजा गणधरवादमां १६१२ मी छे. (पृ० ६८९. य० ग्रं०):–अनु०

१. मूलच्छायाः—अन्यतीर्थिका भगवन्! एवमाख्यान्ति, यावत्–एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन द्वे क्रिये प्रकरोति. तद्यथाः–ऐर्यापथिकीं च, सांपरायिकीं च. यं समयम् ऐर्यापथिकीं प्रकरोति, तं समयं सांपरायिकीं प्रकरोति. यं समयं सांपरायिकीं प्रकरोति, तं समयम् ऐर्यापथिकीं प्रकरोति. ऐर्यापथिक्याः प्रकरणतया सांपरायिकीं प्रकरोति, सांपरायिक्याः प्रकरणतया ऐर्यापथिकीं प्रकरोति. एवं खलु एको जीवः एकेन समयेन द्वे क्रिये प्रकरोति–तद्यथाः–ऐर्यापथिकीं च, सांपरायिकीं च. तद् कथमेतद् भगवन्! एवम्?–अनु०

१. 'एक काळे एक जीव बे किया करे छे' ए प्रमाणे केटलाक महाशयोनुं मानवुं छे. आ ३२५ मुं सूत्र पण एक काळे बे क्रिया करवानुं माननार [illegible] दार्शनिको संबंधे कहायुं छे. आ श्रीभगवतीसूत्र ज्यारे हस्तीमां आव्युं हशे त्यारे (श्रीमहावीरना समान काळे अथवा त्यार पछी) 'एक काळे एक जीव बे किया करे छे' ए प्रमाणे माननाराओनो एक मोटो पंथ हशे एम आ सूत्रथी समजी शकाय छे. 'एक काळे एक जीव बे आयुष्य उपार्जी [illegible] पण एक मत ते काळे हशे (जुओ पृ० २०४, प्रश्न–१९५) तथा ते मत अने आ मतने बहु अंतर होय एम जणातुं नथी. [illegible] एक काळे बे क्रिया करवानुं मानवुं ज जोइए, नहीं तो एक क्रियाथी जूदां जूदां बे आयुष्य [illegible]

३२५. उ०—*गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिआ एवं आइक्खंति, तं चेव जाव–जे ते एवं आहिंसु, मिच्छा ते एवं आहिंसु. अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि–एवं खलु एगे जीवे एगसमए एकं किरियं पकरेइ. परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं. ससमयवत्तव्वयाए णेयव्वं. जाव–इरियावहिअं, संपराइअं वा.*

३२५. उ०—हे गौतम ! जे ते अन्यतीर्थिको ए प्रमाणे कहे छे, यावत्–जे तेओए एम कह्युं छे ते खोटुं कह्युं छे. वळी हे गौतम ! हुं आ प्रमाणे कहुं छुं के, एक जीव एक समये एक क्रिया करे छे. अहीं परतीर्थिकनुं तथा स्वसमयनुं वक्तव्य कहेवुं. यावत्–ऐर्यापथिकी अथवा सांपरायिकी क्रिया करे छे.

४. पुनरपि अन्ययूथिकान्तरमतमुपदर्शयन् आहः–'*अन्नउत्थिया णं*' इत्यादि. तत्र च '*इरियावहियं*' ति ईर्या गमनम्, तद्विषयः पन्था मार्गः–ईर्यापथः, तत्र भवा ऐर्यापथिकी–केवलकाययोगप्रत्ययः कर्मबन्ध इत्यर्थः. '*संपराइयं च*' त्ति संपरैति भ्रमति प्राणी भवे एभिरिति संपरायाः कषायाः, तत्प्रत्यया या सा सांपरायिकी–कषायहेतुकः कर्मबन्ध इत्यर्थः. '*परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं*' ति इह सूत्रे अन्ययूथिकवक्तव्यं स्वयमुच्चारणीयम्, ग्रन्थगौरवभयेन अलिखितत्वात् तस्य. तच्चेदम्–'*जं समयं संपराइयं पकरेइ, तं समयं इरियावहियं पकरेइ–इरियावहियापकरणयाए संपराइयं पकरेइ, संपराइयपकरणयाए इरियावहियं पकरेइ. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ. तं जहाः–इरियावहियं, संपराइयं च*' इति. '*ससमयवत्तव्वयाए णेयव्वं*' '*सूत्रम्*' इति गम्यम्. सा च एवम्ः–"*से कहमेअं भंते ! एवं ? गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिआ एवमाइक्खंति, जाव–संपराइयं च. जे ते एवमाहिंसु, मिच्छा ते एवमाहिंसु. अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ. तं जहाः–*" इत्यादि पूर्वोक्तानुसारेण

प्रमाणे अहीं ३२५ मां प्रश्न सूत्रमां जे मत जणाव्युं छे ते मतनो स्थापक अने श्रीविशेषावश्यकमां जणावेलो ते ज मतनो स्थापक एक ज होय तो तेमां कांइ प्रायः अणघटतुं नथी. एम धारीने अहीं शब्दशः तेनो हेवाल आपीए छीएः—

"अट्ठाविसा दो वाससया तइआ सिद्धिं गयस्स वीरस्स, दोकिरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पण्णा. २४२४. अष्टाविंशत्यभ्यधिके द्वे वर्षशते तदा सिद्धिं गतस्य श्रीमहावीरस्य अत्रान्तरे द्वैक्रियनिह्नवानां दृष्टिरुल्लुकतीरे समुत्पन्ना इति. नइखेडजणवउल्लुग महगिरि धणगुत्त अज्जगंगे य किरिया दो रायगिहे महातवोवतीरमणिनाए. २४२५. उल्लुका नाम नदी, तदुपलक्षितो जनपदोऽप्युल्लुका. उल्लुकानद्याश्चैकस्मिंस्तीरे धूलिप्राकारावृतनगरविशेषरूपं खेटस्थानम् आसीत्, द्वितीये तु उल्लुकातीरं नाम नगरम्. अन्ये त्वाहुः–एतदेव उल्लुकातीरं धूलिप्राकारावृतत्वात् खेटम् उच्यते. तत्र च महागिरिशिष्यो धनगुप्तो नाम. अस्याऽपि शिष्य आर्यगङ्गो नामाचार्यः. अयं च नद्याः पूर्वतटे, तदाचार्यस्त्वपरतटे. ततोऽन्यदा शरत्समये सूरिवन्दनार्थं गच्छन् गङ्गो नदीमुत्तरति. स च खल्वाटः. ततस्तस्योपरिष्टादुष्णेन दह्यते खल्ली. अधस्तात्तु नद्याः शीतजलेन शैत्यमुत्पद्यते. ततोऽत्रान्तरे कथमपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयादसौ चिन्तितवान्ः–अहो ! सिद्धान्ते युगपत्क्रियाद्वयानुभवः किल निषिद्धः, अहं तु एकस्मिन्नेव समये शैत्यम्, औष्ण्यं च वेदयामि, अतोऽनुभवविरुद्धत्वाद् नेदम् आगमोक्तं शोभमानम् आभाति. इति विचिन्त्य गुरुभ्यो निवेदयामास. ततस्तैर्वक्ष्यमाणयुक्तिभिः प्रज्ञापितोऽसौ. यदा च स्वाग्रहग्रस्तबुद्धित्वाद् न किञ्चित् प्रतिपद्यते. तदोद्घाट्य बाह्यः कृतो विहरन् राजगृहं नगरम् आगतः. तत्र च महातपस्तीरप्रभवनाम्नि प्रश्रवणे मणिनागनाम्नो नागस्य चैत्यम् अस्ति. तत्समीपे च स्थितो गङ्गः पर्षत्पुरस्सरं युगपत्क्रियाद्वयवेदनं प्ररूपयति स्म. तच्च श्रुत्वा प्रकुपितो मणिनागस्तम् अवादीत्ः–अरे दुष्टशिक्षक ! किमेवं प्रज्ञापयसि, यतोऽत्रैव प्रदेशे समवसृतेन श्रीमद्वर्धमानस्वामिना एकस्मिन् समये एकस्या एव क्रियाया वेदनं प्ररूपितम्. तच्च इह स्थितेन मयापि श्रुतम्. तत् किं ततोऽपि लष्टतरः प्ररूपको भवान्, येनैवं युगपत् क्रियाद्वयवेदनं प्ररूपयसि ? तत्परित्यज एतां कूटप्ररूपणाम्, अन्यथा नाशयिष्यामि त्वाम्. इत्यादितदुदितभयवाक्यैर्युक्तिवचनैश्च प्रबुद्धोऽसौ मिथ्यादुष्कृतं दत्त्वा गुरुमूलं गत्वा प्रतिक्रान्त इति.—(श्रीविशेषावश्यके गा० २४२४, २४२५. पृ० ९७१–९७२. य० ग्रं०):–अनु०

"भगवंत श्रीमहावीर सिद्ध थया पछी २२८ वर्षे 'उल्लुकातीर' नामना नगरमां एक काळे बे क्रियाने जणावनार निह्नवोनो पंथ उत्पन्न थयो. 'उल्लुका' नामनी नदी छे, ते नदीवाळो देश पण 'उल्लुका' कहेवाय छे. ते उल्लुका नदीने एक कांठे धूळना गढथी विंटाएलुं एक खेटस्थान हतुं अने बीजे कांठे 'उल्लुकातीर' नामनुं नगर हतुं. बीजाओ तो कहे छे केः–'उल्लुकातीर' नगर ज धूळना किल्लावाळुं छे माटे तेने ज खेटस्थान कहेवाय. ते नगरमां महागिरिना शिष्य धनगुप्त अने तेना पण शिष्य आर्य गंग नामना आचार्य रहेता हता. ए आर्य गंग नदीना पूर्वना कांठा उपर हता अने तेना गुरु पश्चिमना कांठा उपर हता. एक दिवसे शरद ऋतुमां पोताना गुरुने वांदवा जवा माटे ते आर्य गंग नदीमां उतर्या. ते गंग आचार्य टालीआ हता–तेना माथामां टाल हती तेथी उपर तडको पडतो होवाथी तेनी टालने ताप लाग्यो अने नीचे नदीनुं पाणी होवाथी तेमने टंडक लागी. तो आ समये कोइ रीते मिथ्यात्वमोहनीयना उदयथी तेणे आ प्रमाणे विचार्युं केः–अहो ! आगममां तो 'एक काळे बे क्रियानो अनुभव न थई शके' एम कह्युं छे अने हुं तो एक ज काळे ताप अने टंडक अनुभवुं छुं माटे आगमवाक्य अनुभव विरुद्ध होवाथी असंगत लागे छे. एम विचारीने तेणे पोतानो अभिप्राय गुरुश्रीने जणाव्यो. पछी गुरुए अनेक युक्तिओथी (जे युक्तिओ अहीं कहेवानी छे) तेने समजाव्यो पण तेणे पोतानो आग्रह मूक्यो नहीं. पछी तेने उघाडो पाडीने बहिष्कृत कर्यो अने ते विहार करतो करतो राजगृह नगरमां आव्यो. त्यां 'महातपस्तीरप्रभव' नामना झरणामां मणिनाग नामना नागनुं चैत्य हतुं. ते चैत्यनी पासे रहीने ते गंग आचार्ये सभानी समक्ष 'एक काळे बे क्रिया अनुभवाय छे' एवा पोताना सिद्धांतने जाहेर कर्यो. ते सांभळीने गुस्से थएला मणिनागे तेने कह्युं केः–"अरे दुष्टशिक्षक ! तुं आ शुं जणावे छे. कारण के एक वखते आ ज ठेकाणे पधारेला श्रीमहावीर भगवंते एक समये एक ज क्रियानो अनुभव जणाव्यो हतो. अने ते वात अहीं रहीने में पण सांभळी हती. तो शुं तुं ते श्रमण महावीर करतां पण लष्ट प्ररूपक थइ गयो छे के जेथी एक काळे बे क्रियानो अनुभव होवानुं जणावे छे. माटे ए खोटी वात छोडी दे, नहीं तो तारो नाश करी नाखीश." ए प्रमाणे मणिनागनी डरामणीथी अने युक्तिओथी ते गंग आचार्यने बोध थयो, पछी तेणे पोतानी भुलनी माफी मागी अने गुरुनी पासे जइ आलोचन कर्युं.–(श्रीविशेषावश्यक गा० २४२४, २४२५. पृ० ९७१–९७२. य० ग्रं०):–अनु०

१. मूलच्छायाः—गौतम ! यत् ते अन्यतीर्थिका एवमाख्यान्ति. तदेव यावत्–ये ते एवमाहुः, मिथ्या ते एवमाहुः–अहं पुनर्गौतम ! एवम् आख्यामि, एवं खलु एको जीवः एकसमये एकां क्रियां प्रकरोति. परतीर्थिकवक्तव्यं नेतव्यम्, स्वसमयवक्तव्यतया नेतव्यम्, यावत्–ऐर्यापथिकीम्, सांपरायिकीं वाः–अनु०

[illegible]मिति. मिथ्यात्वं च अस्य एवम्:—ऐर्यापथिकी क्रिया अकषायोदयप्रभवा, इतरा तु कषायप्रभवा इति कथमेकस्य एकदा तयोः संभवः ? विरोधाद् इति.

४. वळी फरीने पण बीजा अन्ययूथिकना मतने दर्शावतां कहे छे केः—[‘अन्नउत्थिआ णं’ इत्यादि.] अने तेमां [‘इरियावहियं’ ति] ईर्या एटले जवुं अने पथ एटले मार्ग अर्थात् जे जवानो मार्ग ते ईर्यापथ. तेमां थएली जे क्रिया ते ऐर्यापथिकी क्रिया अर्थात् मात्र शरीरना व्यापारथी थतो कर्मबन्ध. [‘संपराइयं च’ त्ति] जेनावडे प्राणी संसारमां भमे ते संपराय अर्थात् कषाय. ते कषायोथी जे क्रिया थाय ते सांपरायिकी—कषायोथी थतो कर्मबंध. [‘परउत्थियवत्तव्वं णेयव्वं’ ति] आ सूत्रमां परतीर्थिकनुं मत पोतानी मेळे कहेवुं. कारण के पुस्तक वधी जवाना भयथी अहीं तेने लख्युं नथी. ते मतनो पाठ आ छेः—[‘जं समयं संपराइयं पकरेइ, तं समयं इरियावहियं पकरेइ; इरियावहियापकरणयाए संपराइयं पकरेइ, संपराइयपकरणयाए इरियावहियं पकरेइ. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ. तं जहा:—इरियावहियं, संपराइयं च’ इति] [‘ससमयवत्तव्वयाए णेयव्वं’] अहीं ‘सूत्र’ ए अध्याहार्य छे. ते वक्तव्यता आ छेः—[‘से कहमेयं भंते! एवं? गोयमा! जं णं ते अन्नउत्थिया एवं आइक्खंति, जाव—संपराइयं च. जे ते एवं आहिंसु, मिच्छा ते एवं आहिंसु; अहं पुण गोयमा! एवं आइक्खामि, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ. तं जहा:—इत्यादि.] ए बधुं पूर्वे कह्या प्रमाणे जाणवुं. तेनी असत्यता आ प्रमाणे छेः—ऐर्यापथिकी क्रियानुं कारण अकषाय—कषाय विनानी—स्थिति छे अने सांपरायिकी क्रियानुं कारण कषायवाळी स्थिति छे. माटे ते बन्ने परस्पर विरुद्ध क्रियानी उत्पत्ति एक ज काळे एक जीवमां केम होइ शके? कारण के ते बन्ने क्रिया परस्पर विरुद्ध छे.

एक काळे बे क्रिया माननार अन्यतीर्थिक.

ते मतनी असत्यता.

उपपातविरह.

३२६. प्र०—*निरयगई णं भंते! केवतियं कालं विरहिआ उववाएणं पण्णत्ता?*

३२६. उ०—*गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता. एवं वक्कंतीपयं भाणिअव्वं निरवसेसं.*

सेवं भंते!, सेवं भंते त्ति जाव—विहरइ.

३२६. प्र०—हे भगवन्! निरय गति—नारकी—केटला काळ सुधी उपपातवडे विरहित—उपपात विनानी—कही छे?

३२६. उ०—हे गौतम! जघन्ये एक समय सुधी अने उत्कृष्टे बार मुहूर्त सुधी नारकी उपपात विनानी कही छे. अहीं ए प्रमाणे व्युत्क्रांतिपद आखुं कहेवुं.

हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे. हे भगवन्! ते ए प्रमाणे छे. एम कही यावत्—विहरे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए **सिरीभगवईसुत्ते** पढमसये दसमो उद्देसो सम्मत्तो.

५. अनन्तरं क्रिया उक्ता, क्रियावतां च उत्पादो भवति, इति उत्पादविरहप्ररूपणाय आहः—*‘निरयगई’* इत्यादि. *‘वक्कंतीपयं’* ति व्युत्क्रान्तिर्जीवानामुत्पादः, तदर्थं प्रकरणं व्युत्क्रान्तिपदम्, तच्च प्रज्ञापनायां षष्ठम्, तच्च अर्थलेशत एवं द्रष्टव्यम्—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतौ, मनुष्यगतौ, देवगतौ च उत्कर्षतो द्वादश मुहूर्ताः, जघन्यतस्तु एकसमय उत्पादविरह इति. तथा—*“चउवीसई मुहुत्ता सत्त अहोरत्त तह य पन्नरस, मासो य दो य चउरो छम्मासा विरहकालो उ.” “उक्कोसो रयणाईसु सव्वासु जहण्णओ भवे समयो, एमेव य उव्वट्टण, संखा पुण सुरवरा तुल्ला.”* सा चेयम्:—*“ऐगो य दो य तिण्णि य संखमसंखा च एगसमएणं, उववज्जंते चइया उव्वट्टंता वि एमेव.”* तिर्यग्गतौ च विरहकालो यथा:—*“भिन्नमुहुत्तो विगलिंदियाण समुच्छिमाण य तहेव, बारस मुहुत्त गब्भे उक्कोस, जहन्नओ समओ.”* एकेन्द्रियाणां तु विरह एव नास्ति. मनुष्यगतौ तु *“बारस मुहुत्त गब्भे मुहुत्त समुच्छिमेसु चउवीसं, उक्कोसविरहकालो दोसु वि य जहन्नओ समओ”* देवगतौ तु *“भवण—वण—जोइ—सोहम्मी—साणे चउवीस मुहुत्ता ओ, उक्कोसविरहकालो पंचसु वि जहन्नओ समओ. नव दिण वीस मुहुत्ता बारस दस चेव दिण मुहुत्ताओ, बावीसा अद्ध चिय पणयाल असीइ दिवससयं, संखेज्जा मासा आणय—पाणयएसु तह आरणऽच्चुए वासा, संखेज्जा विन्नेया गेवेज्जेसुं अओ वोच्छं. हेट्ठिमवाससयाइं मज्झि सहस्साइं उवरिमे लक्खा, संखेज्जा*

१. मूलच्छायाः—निरयगतिर्भगवन्! कियन्तं कालं विरहिता उपपातेन प्रज्ञप्ता? गौतम! जघन्येन एकं समयम्, उत्कृष्टेन द्वादश मुहूर्तान्. एवं व्युत्क्रान्तिपदं भणितव्यं निरवशेषम्. तदेवं भगवन्! तदेवं भगवन् इति यावत्—विहरतिः—अनु०

१. प्र० छायाः—चतुर्विंशतिर्मुहूर्ताः सप्त अहोरात्राणि तथा च पञ्चदश, मासश्च द्वौ च चत्वारः षण्मासा विरहकालस्तु. २. उत्कृष्टो रत्ना (रत्नप्रभा)—दिषु सर्वासु जघन्यतो भवेत् समयः, एवमेव च उद्वर्तनम्, संख्या पुनः सुरवरास्तुल्याः. ३. एकश्च द्वौ च त्रयश्च संख्याता असंख्याताश्च एकसमयेन, उपपद्यन्ते च्यवमाना उद्वर्तमाना अपि एवमेव. ४. भिन्नमुहूर्तो विकलेन्द्रियाणां सम्मूर्छिमानां च तथैव, द्वादश मुहूर्ता गर्भे उत्कृष्टेन, जघन्यतः समयः. ५. द्वादश मुहूर्ता गर्भे मुहूर्ताः सम्मूर्छिमेषु चतुर्विंशतिः, उत्कृष्टविरहकालः द्वयोरपि च जघन्यतः समयः. ६. भवन—वन (व्यन्तर)—ज्योतिषिक—सौधर्मेशाने चतुर्विंशतिर्मुहूर्तास्तु, उत्कृष्टविरहकालः पञ्चस्वपि जघन्यतः समयः. नव दिना विंशतिर्मुहूर्ता द्वादश दश चैव दिना मुहूर्तास्तु, द्वाविंशतिरर्धं चैव पञ्चचत्वारिंशद् अशीतिर्दिवसशतम्. संख्येया मासा आनत—प्राणतेषु तथा आरणा—ऽच्युते वर्षाणि, संख्येयानि विज्ञेयानि ग्रैवेयकेषु अतो वक्ष्ये, अधस्तने वर्षशतानि मध्ये सहस्राणि उपरितने लक्षाणि, संख्येयानि विज्ञेयानि यथासंख्यं तु त्रिष्वपि. पल्यासंख्यभागः उत्कृष्टो भवति [illegible] सर्वेषु जघन्यतः समयः. उपपातविरहकालः [illegible] वर्णितस्तु देवेषु, उद्वर्तनायामपि एवं सर्वेषां भवति विज्ञेया, जघन्येन [illegible] विरहः [illegible]—अनु०

विन्नेया जहासंखेणं तु तिसुं पि. पलियाअसंखभागो उक्कोसो होइ विरहकालो ओ, विजयाईसु निद्दिट्ठो सव्वेसुं जहन्नओ समओ. उववायविरहकालो इय एसो वण्णिओ उ देवेसु, उवट्टणा वि एवं सव्वेसिं होइ विन्नेया. जहन्नेण एगसमओ उक्कोसेणं तु होंति छम्मासा, विरहो सिद्धिगईए उवट्टणवज्जिया नियम'' त्ति.

इति गुरुगमभङ्गैः सागरस्याऽहमस्य स्फुटमुपचितजाड्यः पञ्चमाङ्गस्य सद्यः,
प्रथमशतपदार्थावर्तगर्तं व्यतीतो विवरणवरपोतौ प्राप्य सद्धीवराणाम्.[5]

उत्पादविरह. प्रज्ञापना. कह्युं छे के.

५. आगळना प्रकरणमां क्रिया विषे हकीकत कही छे. अने क्रियावाळा जीवोनो उत्पाद–उत्पत्ति–थाय छे माटे हवे उत्पादना विरह विषे प्ररूपणा करवा कहे छे केः–['निरयगई' इत्यादि.] व्युत्क्रांति एटले जीवोनो उत्पाद, अने ते संबंधी जे प्रकरण ते व्युत्क्रांतिपद. ते व्युत्क्रांतिपद[1] प्रज्ञापना सूत्रमां छट्ठुं छे. तेनो टुंको अर्थ आ प्रमाणे छेः–''पंचेंद्रियतिर्यंचगतिमां, मनुष्यगतिमां अने देवगतिमां वधारेमां वधारे बार मुहूर्तनो अने ओछामां ओछो एक समयनो उत्पाद विरह छे.'' कह्युं छे के, ''रत्नप्रभा वगेरे बधी नरकोमां अनुक्रमे वधारेमां वधारे उत्पादविरहनो काळ आ प्रमाणे छेः–(१)[3] चोवीश मुहूर्त. (२) सात अहोरात्र. (३) पन्नर अहोरात्र. (४) एक मास. (५) बे मास. (६) चार मास अने (७) छ मास. तथा ओछामां ओछो उत्पादविरह एक समयनो होय छे. ए प्रमाणे उद्वर्तनाना विरह संबंधी काळ विषे पण जाणवुं. अने नैरयिकोनी संख्या तो देवोनी समान छे. ते संख्या आ छेः–एक, बे, त्रण, संख्येय अने असंख्येय जीवो एक समये उपजे छे, च्यवे छे अने उद्वर्ते छे.'' तिर्यंचगतिमां विरहकाळ आ प्रमाणे छेः–''विकलेंद्रियोनो अने संमूर्छिमोनो वधारेमां वधारे विरहकाळ भिन्न मुहूर्तनो छे. गर्भज जीवोनो वधारेमां वधारे विरहकाळ बार मुहूर्तनो होय छे. अने ए बधानो ओछामां ओछो विरहकाळ एक समयनो छे.'' एक इंद्रियवाळा जीवोनो विरहकाळ ज नथी. मनुष्यगतिमां तो आ प्रमाणे छेः–''गर्भज मनुष्योनो वधारेमां वधारे विरहकाळ बार मुहूर्तनो अने संमूर्छिम मनुष्योनो वधारेमां वधारे विरहकाळ चोवीश मुहूर्तनो छे. अने ते बन्ने जातना मनुष्योनो ओछामां ओछो विरहकाळ एक समयनो होय छे.'' देवगतिमां तो आ रीते छेः–''भवनपति, वानव्यंतर, ज्योतिषिक, सौधर्म अने ईशान; ए पांचेमां वधारेमां वधारे विरहकाळ चोवीश मुहूर्तनो छे. अने ओछामां ओछो विरहकाळ एक समयनो छे'' ''(३)[4]नव दिवस अने वीश मुहूर्त, (४) बार दिवस अने दश मुहूर्त, (५) साडी बावीश दिवस, (६) पीस्ताळीश दिवस, (७) एंशी दिवस, (८) सो दिवस अने (९–१०) संख्येय मास–एक वर्षनी अंदर; आनत अने प्राणतमां. तथा (११–१२) आरण अने अच्युतमां संख्येय वर्ष–सो वर्षनी अंदर, एटलो काळ जाणवो. तथा हवे ग्रैवेयक विषे कहीशः–नीचलामां संख्येय सो वर्ष, वचलामां संख्येय हजार वर्ष अने उपलामां संख्येय लाख वर्ष अनुक्रमे जाणवां–ए त्रणेमां पूर्व प्रमाणे काळ जाणवो. विजय वगेरे विमानमां वधारेमां वधारे विरहकाळ पल्योपमनो असंख्य भाग जाणवो. अने बधामां सौथी ओछामां ओछो एक समयनो विरहकाळ जाणवो. ए प्रमाणे वर्णवेलो देवोमां उपपातविरहकाळ जाणवो. अने ए ज रीते उद्वर्तना पण बधानी जाणवी.'' ''जघन्ये–ओछामां ओछो–एक समय अने वधारेमां वधारे छ मास सिद्धिगतिनो उपपात विरहकाळ जाणवो, अने ते सिद्धिगति उद्वर्तना विनानी ज छे अर्थात् त्यां गया पछी मरण होतुं नथी.''

इति गुरुगमम्हेरे हुं वद्यो छेक मूढ निधिसम शुभसूत्र पांचमानी सुगूढ,
प्रथम शतक खाडी, मेळवी धीवरोनी विवरण वर नौका, शीघ्र अर्थो करीने.

१. आ 'व्युत्क्रान्तिपद' प्रज्ञापनासूत्रमां (क० आ० पृ० २८६–३१९) छे. तेमां अनेक वातो विकासवादने लगती तद्दन नवी जाणवा जेवी छे. २. आ बधी गाथाओ त्रैलोक्यदीपिका (संग्रहणी)मां छे. ३. आ बधा आंकडाओ नरकना सूचक छे. ४. आ बधा आंकडाओ स्वर्गना सूचक छे. ५. श्रीभगवतीजीनुं विवरण करतां श्रीअभयदेवसूरिजीए चूर्णि अने अवचूर्णि (जूओ पृ०१७८ मां१, २ जुं टिप्पण) नुं अवलंबन कर्युं छे अने तेथी ते बेने 'विवरणवरपोतौ' ए वाक्यथी नावनुं रूपक आप्युं छेः–अनु०

प्रथम शतक समाप्त.

बेडारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति-शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक १.

उच्छ्वास.—पृथिवी वगेरेना जीवोने श्वासोच्छ्वास छे ?—हा.—तेओ श्वासोच्छ्वासमां शुं ले अने शुं काढे ?—एक जातना (श्वासोच्छ्वासना) अणुओ.—ते अणुओमां रूप, रस, गंध अने स्पर्श पण छे.—प्रज्ञापना सूत्र.—नैरयिक.—छए दिशा.—पवनना जीवोने श्वासोच्छ्वास होय?—हा.—जीव पवनमांथी नीकळीने पाछो अनेक वार पवनमां आवे ?—हा.—तेनुं मरण केवी रीते थाय ?—आघात थवाथी.—सशरीर अने अशरीर.—पवनने चार शरीर.—सकर्मक मृतादी साधु.—प्राण.—भूत.—जीव —सत्त्व.—विज्ञ.—वेत्ता.—अकर्मक मृतादी साधु.—सिद्ध.—बुद्ध.—मुक्त.—पारगत.—परंपरागत.—श्रीगौतमविहार.—आर्य श्रीस्कंदक.—कृतंगला नगरी.—छत्रपलाशक चैत्य.—श्रावस्ती नगरी.—गर्दभाल परिव्राजक.—ऋग्वेदादि चार वेद.—इतिहास (पुराण)—निघंटु.—षष्टितंत्र.—गणितशास्त्र.—वेदना छ अंग—शिक्षा.—कल्प.—व्याकरण.—पिंगळ.—निरुक्त.—ज्योतिःशास्त्र.—पिंगलक नामे श्रमण.—वैशालिकश्रावक.—कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक.—स्कंदक प्रत्ये पिंगलकना प्रश्नो.—लोकनो छेडो छ के नथी ?—जीवनो छेडो छे के नथी ?—सिद्धिनो छेडो छे के नथी ?—सिद्धनो छेडो छे के नथी ?—कया मरणथी जीव वधे अने घटे ?—स्कंदक परिव्राजकनुं मौन.—त्रण वार आक्षेपपूर्वक एना ए प्रश्नो.—स्कंदकने थएल शंकादि.—श्रीमहावीर पधार्यानी वात.—स्कंदकनो विचार.—श्रीमहावीर पासे जइ पूर्वोक्त प्रश्नना खुलासा लेवानी जिज्ञासा.—श्रीमहावीरने सेववानी इच्छा.—तापसनो वेष.—स्कंदक परिव्राजक विषे श्रीमहावीर अने श्रीगौतम वच्चे वातचित.—श्रीमहावीरना स्थान तरफ स्कंदकनुं गमन.—'स्कंदक साधु थशे' ? एम श्रीगौतमनो प्रश्न.—हा.—स्कंदकने आवता जोइने श्रीगौतमे करेलो तेमनो आदर.—तेनी गुप्त वातनुं स्पष्टीकरण.—स्कंदकनो अचंबावाळो प्रश्न.—श्रीगौतमना धर्माचार्य (महावीर) उपर स्कंदकनुं बहु मान.—व्यावृत्तभोजी (नित्याहारी) श्रीमहावीर.—तेओना शरीरनुं सौंदर्य.—श्रीमहावीरने मळ्या पछी स्कंदकने थएलो हर्ष.—स्कंदकना पूर्वोक्त प्रश्नोना खुलासा.—द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भाव.—अमुक रीते लोक वगेरेनो छेडो छे अने अमुक प्रकारे तेनो छेडो नथी.—बालमरण.—पंडितमरण.—बालमरणना बार भेद—वलन्मरण —वशार्त्तमरण.—अंतःशल्यमरण.—तद्भवमरण.—गिरिपतन.—तरुपतन.—जलप्रवेश.—अग्निप्रवेश.—विषभक्षण —शस्त्रावपात.—वैहानस.—गृध्रस्पृष्ट.—ए मरणोथी जीवनो संसार वधे.—पंडितमरणना बे भेद.—पादपोपगमन.—भक्तप्रत्याख्यान.—निर्हारिम.—अनिर्हारिम.—ए मरणोथी जीवनो संसार घटे.—स्कंदकप्रतिबोध.—धर्म सांभळवानी तेनी इच्छा.—धर्मनुं कथन.—श्रीमहावीरना प्रवचन उपर स्कंदकनी श्रद्धा—प्रीति.—तापस वेषनो परित्याग.—बळता संसारनो विचार.—श्रीमहावीर पासे साधु थवानी इच्छा.—श्रीस्कंदक साधु.—तेने श्रीमहावीरे आपेली शिखामण.—स्कंदकनुं आध्यात्मिक जीवन.—स्कंदकनुं अग्यार अंगोनुं भणवुं.—तप करवा माटे श्रीमहावीरनी अनुमति.—श्रीस्कंदकनी घणी आकरी तपस्या.—भिक्षुनी बार प्रतिमा अने तेनुं टुंकुं स्वरूप.—गुणरत्नसंवत्सर तप अने तेनुं टुंकुं स्वरूप.—आकरी तपस्या करवाथी स्कंदकना शरीरनी क्षीणता.—'श्रीमहावीर पासे अनशन करवुं' एवो श्रीस्कंदकनो विचार.—क्षमापना.—विपुल पर्वत.—विपुल पर्वत उपर घणा साधुओनी साथे श्रीस्कंदक.—भगवंतने वंदना —फरीवार व्रतनो उच्चार.—एक मास सुधी अनशन.—समाधिपूर्वक श्रीस्कंदकनुं कालगमन.—तेना पात्रो अने वस्त्रो साथे साधुओनुं पुनरागमन.—श्रीगौतमप्रश्न.—ते स्कंदक कइ गतिमां गया ?—अच्युतकल्प.—बावीश सागरोपमनी आवरदा.—महाविदेहमां मुक्ति.—श्रीस्कंदकनुं जीवन समाप्त.—

१.—*गाहा:—*

ऊसास खंदए वि अ समुग्घाय पुढवि—दिअ अन्नउत्थि भासा य,
देवा य चमरचंचा समयक्खित्तऽत्थिकाय बियसए.

१.—आ बीजा शतकमां दश उद्देशको छे. अने ते उद्देशकोमां नीचे प्रमाणेना अधिकारो छे:—प्रथम उद्देशकमां श्वासोच्छ्वास विषे अने स्कंदक नामना अनगार विषे अधिकार छे. बीजा उद्देशकमां समुद्घात विषे विवेचन छे. त्रीजा उद्देशकमां पृथिवी विषे विचार छे. चोथा उद्देशकमां इंद्रियो विषे विचार छे. पांचमा उद्देशकमां अन्यतीर्थिकनो अधिकार छे. छट्ठा उद्देशकमां भाषा संबंधे विवेचन छे. सातमा उद्देशकमां देवनो अधिकार छे. आठमा उद्देशकमां चमरचंचा नाम (देवनगरी)नी वात छे. नवमा उद्देशकमां समयक्षेत्रनुं स्वरूप छे अने दशमा उद्देशकमां अस्तिकाय संबंधे विवेचन छे.

---

१. मूलच्छाया:—गाथा:—उच्छ्वासः स्कन्दकोऽपि च समुद्घातः पृथिवी—इन्द्रियाणि अन्ययूथिका भाषा च, देवाश्च चमरचञ्चा समयाः क्षेत्रम्—अस्तिकाया [illegible]

२.—ते[1] णं काले णं, ते णं समये णं रायगिहे णामं नयरे होत्था. वण्णओ. सामी समोसढे. परिसा णिग्गया. धम्मो कहिओ. पडिगया परिसा.

२.—ते काळे, ते समये राजगृह नामनुं नगर हतुं. वर्णक. स्वामी (श्रीमहावीरस्वामी) समवसर्या–पधार्या. तेओनी देशना सांभळवा सभा नीकळी–मळी. तेओए धर्म कह्यो. ते सांभळी सभा विसर्जित थइ.

३. प्र०—ते णं काले णं, ते णं समये णं जेट्ठे अंतेवासी जाव–पज्जुवासमाणे एवं वदासीः–जे इमे भंते ! बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया जीवा; एएसि णं आणामं वा, पाणामं वा, उस्सासं वा, निस्सासं वा जाणामो पासामो. जे इमे पुढविकाइया, जाव–वणप्फइकाइया एगिंदिया जीवा; एएसि णं आणामं वा, पाणामं वा, उस्सासं वा, नीसासं वा न याणामो, न पासामो. एए णं भंते ! जीवा आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा ?

३. प्र०—ते काळे, ते समये भगवंतना मोटा शिष्य यावत्–पर्युपासना करता आ प्रमाणे बोल्याः–हे भगवन् ! जे आ बे इंद्रियवाळा, त्रण इंद्रियवाळा, चार इंद्रियवाळा अने पांच इंद्रियवाळा जीवो छे. एओना अंदरना अने बहारना उच्छ्वासने तथा अंदरना अने बहारना निःश्वासने जाणीए छीए, देखीए छीए, पण जे आ एक इंद्रियवाळा पृथिवीना जीवो छे, यावत्–(पाणीना, वायुना, अग्निना अने) वनस्पतिना जीवो छे. तेओना अंदरना अने बहारना उच्छ्वासने तथा अंदरना अने बहारना निःश्वासने जाणता नथी, देखता नथी. तो शुं हे भगवन् ! ते एक इंद्रियवाळा जीवो अंदरना अने बहारना उच्छ्वासने ले छे ? तथा अंदरना अने बहारना निःश्वासने मूके छे ?

३. उ०—हंता, गोयमा ! एए वि णं जीवा आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, णिस्ससंति वा.

३. उ०—हे गौतम ! हा, ए एक इंद्रियवाळा जीवो पण बहारना अने अंदरना उच्छ्वासने ले छे तथा बहारना अने अंदरना निःश्वासने मूके छे.

४. प्र०—किं णं भंते ! एते जीवा आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, णीससंति वा ?

४. प्र०—हे भगवन् ! ते जीवो केवा प्रकारनां द्रव्योने बहारना अने अंदरना श्वासमा ले छे ? तथा केवा प्रकारनां द्रव्योने बहारना अने अंदरना निःश्वासमा मूके छे ?

४. उ०—गोयमा ! दव्वओ णं अणंतपएसिआइं दव्वाइं, खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं, कालओ अन्नयरठितीआइं, भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइं, फासमंताइं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा.

४. उ०—हे गौतम ! द्रव्यथी अनंत प्रदेशवाळां द्रव्योने, क्षेत्रथी असंख्य प्रदेशमां रहेलां द्रव्योने, काळथी कोइ पण जातनी स्थितिवाळां (एक पळ रहेनारां के बे पळ रहेनारां वगेरे) द्रव्योने तथा भावथी वर्णवाळां, गंधवाळां रसवाळां अने स्पर्शवाळां द्रव्योने बहारना अने अंदरना श्वासमां ले छे. तथा तेवां ज द्रव्योने बहारना अने अंदरना निःश्वासमां मूके छे.

५. प्र०—जाइं भावओ वण्णमंताइं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा; ताइं किं एगवण्णाइं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा ?

५. प्र०—हे भगवन् ! ते जीवो, भावथी वर्णवाळां जे द्रव्योने बहारना अने अंदरना श्वासमां ले छे तथा मूके छे ते द्रव्यो शुं एक वर्णवाळां छे ?

५. उ०—आहारगमो णेयव्वो, जाव–पंचदिसं.

५. उ०—हे गौतम ! अहीं आहारगम जाणवो अने ते यावत्–पांच दिशा तरफथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे.

---

१. मूलच्छायाः—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमभवत्. वर्णकः. स्वामी समवसृतः. पर्षद् निर्गता. धर्मः कथितः. प्रतिगता पर्षत्. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये ज्येष्ठोऽन्तेवासी यावत्–पर्युपासीन एवम् अवादीत्ः–ये इमे भगवन् ! द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रिया जीवा एतेषाम् आनामं वा, प्राणामं वा, उच्छ्वासं वा, निःश्वासं वा जानीमः, पश्यामः. ये इमे पृथिवीकायिकाः, यावत्–वनस्पतिकायिका एकेन्द्रिया जीवाः, एतेषाम् आनामं वा, प्राणामं वा, उच्छ्वासं वा, निःश्वासं वा न जानीमः, न पश्यामः. एते भगवन् ! जीवा आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा ? हन्त, गौतम ! एतेऽपि जीवा आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा. किं भगवन् ! एते जीवा आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा ? गौतम ! द्रव्यतोऽनन्तप्रदेशानि द्रव्याणि, क्षेत्रतोऽसंख्येयप्रदेशाऽवगाढानि, कालतोऽन्यतरस्थितिकानि, भावतो वर्णवन्ति, गन्धवन्ति, रसवन्ति, स्पर्शवन्ति आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा. यानि भावतो वर्णवन्ति आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा तानि किम् एकवर्णानि आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा ? आहारगमो ज्ञातव्यः, यावत्–पञ्चदिशम्ः—अनु०

६. प्र०—*किं णं भंते ! नेरइया आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, नीससंति वा ?*

६. प्र०—हे भगवन् ! नैरयिको केवा प्रकारनां द्रव्योने वहारना अने अंदरना श्वासमां ले छे ? अने केवा प्रकारनां द्रव्योने वहारना अने अंदरना निःश्वासमां मूके छे ?

६. उ०—*तं चेव जाव–नियमा छद्दिसिं आणमंति वा, पाणमंति वा, उस्ससंति वा, निस्ससंति वा.*

६. उ०—हे गौतम ! ते संबंधे पूर्व प्रमाणे ज जाणवुं, अने यावत्–नियमे छए दिशामांथी वहारना तथा अंदरना श्वास अने निःश्वासनां अणुओने मेळवे छे.

७.—*जीव–एगिंदिया वाघाय–निव्वाघाया य भाणियव्वा. सेसा नियमा छद्दिसिं.*

७.—जीवो अने एकेंद्रियो संबंधे एम कहेवुं के, तेओने जो कांइ व्याघात–बाधक–अडचण–न होय तो तेओ बधी दिशाओमांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे. अने जो तेओने कांइ अडचण होय तो ते छए दिशामांथी श्वास अने निःश्वासना अणुओ मेळवी शकता नथी, पण कोइ वार त्रण दिशामांथी, कोइ वार चार दिशामांथी अने कोइ वार पांच दिशामांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे अने बाकी बधा जीवो चोक्कस छए दिशामांथी श्वास तथा निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे.

१. व्याख्यातं प्रथमं शतम्, अथ द्वितीयं व्याख्यायते. तत्राऽपि प्रथमोद्देशकः, तस्य चाऽयम्–अभिसंबन्धः–प्रथमशताऽन्तिमोद्देशकान्ते जीवानाम् उत्पादविरहोऽभिहितः, इह तु तेषामेव उच्छ्वासादि चिन्त्यते इति एवंसंबन्धस्याऽस्य इदम् उपोद्घातसूत्राऽनन्तरं सूत्रम्–'*जे इमे*' इत्यादि. यद्यपि एकेन्द्रियाणाम् आगमादिप्रमाणाद् जीवत्वं प्रतीयते, तथापि समुच्छ्वासादीनां साक्षाद् अनुपलम्भात्, जीवशरीरस्य च निरुच्छ्वासादेरपि कदाचिद् दर्शनात् पृथिव्यादिषु उच्छ्वासादिविषया शङ्का स्याद् इति तन्निरासाय, 'तेषाम् उच्छ्वासादिकम् अस्ति' इत्येतस्याऽऽगमप्रमाणप्रसिद्धस्य प्रदर्शनपरम् इदं सूत्रम् अवगन्तव्यम् इति. उच्छ्वासाद्यधिकाराद् जीवादिषु पञ्चविंशतौ पदेषु उच्छ्वासादिद्रव्याणां स्वरूपनिर्णयाय प्रश्नयन् आह:–'*किं णं भंते ! जीवे*' इत्यादि. '*किम्*' इत्यस्य सामान्यनिर्देशत्वात् कानि किंविधानि द्रव्याणि इत्यर्थः. '*आहारगमो नेयव्वो*' त्ति प्रज्ञापनाया अष्टाविंशतितमाऽऽहारपदोक्तसूत्रपद्धतिरिहाऽध्येया इत्यर्थः, सा च इयम्:–'*दुवन्नाइं, तिवन्नाइं, जाव–पंचवन्नाइं पि. जाइं वन्नओ कालाइं ताइं किं एकगुणकालाइं ? जाव–अनंतगुणकालाइं पि*' इत्यादिरिति. '*जीव–एगिंदिया*' इत्यादि. जीवा एकेन्द्रियाश्च '*वाघाय–निव्वाघाय*' त्ति मतुब्लोपाद् व्याघात–निर्व्याघातवन्तो भणितव्याः. इह च एवंपाठेऽपि निर्व्याघातशब्दः पूर्वं द्रष्टव्यः, तदभिलापस्य सूत्रे तथैव दृश्यमानत्वात्, तत्र जीवा निर्व्याघात–सव्याघाताः सूत्रे एव दर्शिताः. एकेन्द्रियास्तु एवम्:–'*पुढविक्काइया णं भंते ! कइदिसं आणमंति० ? गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं*' इत्यादि. एवम्–अप्कायादिषु अपि. तत्र निर्व्याघातेन षड्दिशम्, षड् दिशो यत्र आनमनादौ तत् तथा. व्याघातं प्रतीत्य स्यात् त्रिदिशम्, स्यात् चतुर्दिशम्, स्यात् पञ्चदिशम् आनमन्ति. यतस्तेषां लोकान्तवृत्तौ अलोकेन त्र्यादिदिक्षु उच्छ्वासादिपुद्गलानां व्याघातः संभवति इति. '*सेसा नियमा छद्दिसिं*' ति शेषा नारकादित्रसाः षड्दिशम् आनमन्ति, तेषां हि त्रसनाड्यन्तर्भूतत्वात् षड्दिशम् उच्छ्वासादिपुद्गलग्रहोऽस्त्येव इति.

१. प्रथम शतकनुं विवेचन थइ चूक्युं. हवे द्वितीय शतकनुं विवेचन शरु थाय छे. अने तेमां पण तेनो प्रथम उद्देशक विवेचाय छे. अने तेनो अभिसंबंध आ छेः–'पहेला शतकना छेल्ला उद्देशकने छेडे जीवोनी उत्पत्तिनो विरह कह्यो छे. अने आ स्थळे तो ते ज जीवो संबंधी उच्छ्वास वगेरे विषे चिंतन थवानुं छे' ए प्रमाणेना संबंधवाळा आ पहेला उद्देशकनुं, उपोद्घात सूत्र पछी तुरत ज आ सूत्र छेः–['जे इमे' इत्यादि.] जो के पृथिवी, पाणी वगेरे (एक इंद्रियवाळा), जीवो छे–चैतन्यवाळा छे. ए वात आगम वगेरे प्रमाणोथी प्रतीत थाय छे. तो पण तेओने उच्छ्वास अने निःश्वास वगेरे होय छे के नहीं ? ए प्रमाणे शंका थवी, ए स्वाभाविक छे. कारण के जेम मनुष्य, पशु वगेरेनो उच्छ्वास अने निःश्वास नजरे जणाय छे तेम पृथ्वी, पाणी वगेरेनो उच्छ्वास तथा निःश्वास नजरे जणातो नथी. शं०– कदाच एम कहेवामां आवे के, ज्यारे ते पृथ्वी वगेरे चैतन्यवाळा छे, एम प्रतीत थइ शके छे, त्यारे तेओना उच्छ्वास विषे शंका थवानुं कारण नथी. कारण के जीवमात्रने उच्छ्वास अने निःश्वास होय छे ए वात आबाळगोपाळने प्रतीत छे. तो अहीं तेना (पृथ्वी वगेरेना) उच्छ्वास वगेरे विषे शंका थवानुं शुं कारण ? समा०–जो के जीव मात्रने उच्छ्वास तथा निःश्वास वगेरे होय छे, ए वात जगजाहेर छे. पण केटलाक जीवता जीवोनुं (डेडका वगेरेनुं) शरीर (घणी वार घणा काळ सुधी) उच्छ्वास अने निःश्वास विनानुं देखाय छे, माटे पृथ्वी वगेरेना जीवो पण तेवा प्रकारना छे के मनुष्यादिनी पेठे श्वासोच्छ्वासवाळा छे ? ए प्रमाणे

संबंध. सूत्रतात्पर्य. शंका. समाधान.

१. मूलच्छायाः–किं भगवन् ! नैरयिका आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा ? तथैव यावत्–नियमेन षड्दिशम् आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति वा. जीव–एकेन्द्रिया व्याघातात्, निर्व्याघाताच्च भणितव्याः, शेषा नियमात् षड्दिशम्:–अनु०
२. प्र० छाया:—द्विवर्णानि, त्रिवर्णानि, यावत्–पञ्चवर्णान्यपि. यानि वर्णतः कालानि तानि किमेकगुणकालानि ? यावत्–अनन्तगुणकालानि अपि.
[illegible]
[illegible]

प्रज्ञापना.

श्वासोच्छ्वासनां अणुओ केवां?

व्याघात-निर्व्याघात.

कया कया जीवो केटली दिशाओमांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे?

शंका थाय ते सुसंगत छे. तथा घणा काळ सुधी श्वासोच्छ्वासने नहीं लेनारा जीवोने पण कोइ काळे तो श्वासोच्छ्वास लेवो ज पडे छे अने ते आपणने नजरे देखाय छे. पण पृथिवी वगेरेना जीवोनो श्वासोच्छ्वास तो कोइ काळे नजरे जणातो ज नथी माटे पण 'तेओने-पृथिवी वगेरेना जीवोने-श्वासोच्छ्वास छे के केम ? ए संदेह थवो ए स्थाने ज छे. तो हवे ते शंकाने दूर करवा सारु अने 'पृथिवी वगेरेना जीवोने उच्छ्वास वगेरे होय छे' ए प्रमाणेनी आगम प्रमाणथी प्रसिद्ध थएली वातने दर्शावनारुं आ सूत्र समजवुं. उच्छ्वास वगेरेनो अधिकार होवाथी जीवादिक पचीस पदोमां उच्छ्वासादिकनां अणुओना स्वरूप संबंधी निर्णय करवा सारु प्रश्न करतां कहे छे केः-['किं[1] णं भंते ! जीवे' इत्यादि.] उच्छ्वास तथा निःश्वासनां द्रव्यो केवा प्रकारनां होय छे ? ['आहारगमो नयव्वो' त्ति] [2]प्रज्ञापनासूत्रमां कहेल अट्ठावीशमा आहारपदनां सूत्रो अहीं कहेवां. ते आ प्रमाणे छेः-"बे वर्णवाळां, त्रण वर्णवाळां अने यावत्-पांच वर्णवाळां पण. जे अणुओ वर्णथी काळां छे, ते शुं एकगुण काळां छे ? के यावत्-अनंतगुण काळां छे ? यावत्-ते अनंतगुण काळां पण छे" इत्यादि. ['जीव-एगिंदिया' इत्यादि.] जीवो अने एक इंद्रियवाळा जीवो ['वाघाय-निव्वाघाय'[3] त्ति] व्याघातवाळा अने निर्व्याघातवाळा कहेवा. तेमां व्याघात विनाना अने व्याघातवाळा जीवो सूत्रमां ज दर्शाव्या छे. एक इंद्रियवाळा जीवो तो आ प्रमाणे छेः-"हे भगवन् ! पृथिवीकायिको केटली दिशाओमांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे ? हे गौतम ! व्याघात न होय तो छए दिशामांथी अने जो व्याघात होय तो कदाच त्रण दिशामांथी श्वास तथा निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे" इत्यादि. ए प्रमाणे अप्काय वगेरेमां पण समजवुं. त्यां जो व्याघात न होय तो छए दिशामांथी अने जो व्याघात होय तो कदाच त्रण दिशामांथी, कदाच चार दिशामांथी तथा कदाच पांच दिशामांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे. कारण के ते पृथिवीकायिक वगेरे लोकने छेडे पण रहे छे माटे त्यादि-त्रण वगेरे-दिशामांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळववामां अलोकद्वारा तेओने व्याघात-अडचण-थाय छे. ['सेसा नियमा छद्दिसिं' त्ति] बाकीना नैरयिक वगेरे त्रस जीवो छए दिशामांथी श्वास अने निःश्वासनां अणुओ मेळवे छे. कारण के तेओ त्रसनाडीनी अंतर्भूत होवाथी तेओने छए दिशामांथी श्वास तथा निःश्वासनां अणुओ मळी शके छे.

वायु.

८. प्र०—वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति ?

८. प्र०—हे भगवन् ! वायुकाय वायुकायोने ज अंदरना अने बहारना श्वासमां ले छे ? तथा तेओने ज अंदरना अने बहारना निःश्वासमां मूके छे ?

८. उ०—हंता, गोयमा ! वाउआए णं जाव-नीससंति वा.

८. उ०—हे गौतम ! हा, वायुकाय वायुकायोने ज यावत्-अंदरना अने बहारना निःश्वासमां मूके छे.

९. प्र०—वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता, उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाइ ?

९. प्र०—हे भगवन् ! वायुकाय वायुकायमां ज अनेक लाखवार मरीने (बीजे जइने) पाछो त्यां ज (वायुकायमां ज) आवे-उत्पन्न थाय ?

---

१. 'किम्' ए सामान्य निर्देश होवाथी उपर प्रमाणे अर्थ थयो छेः—श्रीअभय० २. प्रज्ञापनासूत्रमां आहारपद २८ मुं छे. तेना बे उद्देशक छे. तेमां प्रथम उद्देशकमां ११ बाबतनो समावेश छे अने बीजा उद्देशकमां मुख्य १३ बाबतनुं विवेचन छे. तेनुं संक्षिप्त स्वरूप आ छेः—

सचित्ताऽऽहारट्ठी केवति किं वा वि सव्वतो चेव, कतिभागं सव्वे खलु परिणामे चेव बोद्धव्वे. एगिंदियसरीरादि लोमाहारे तहेव मणभक्खी, एतेसिं तु पदाणं विभावणा होइ कायव्वा.

२८ मा आहारपदना प्रथम उद्देशकमां नीचे लखेला विषयो परत्वे विवेचन छेः-१. जीवो शुं जीववाळी वस्तु खाय छे के निर्जीव वस्तु खाय छे ? २. जीवोने आहार लेवानो अभिलाष थाय छे के केम ? ३. जीवोने केटले केटले वखते जमवानी जरूर पडे छे ? ४. जे वस्तुओने जीवो जमे छे ते वस्तुओनुं स्वरूप शुं छे ? ५. जीवो पोताना शरीरना दरेक भागद्वारा आहार लइ शके छे ? ६. जे अणुओने खावा माटे लीधां होय, तेमांना केटलो भाग खवाय छे, केटलो भाग चखाय छे अने केटलो भाग नाश पामे छे ? ७. खावा माटे लीधेलो बधो खोराक खवाय छे ? ८. आहारनुं परिणाम शुं छे-खाधेलो खोराक शरीरमां केवे रूपे परिणमे छे ? ९. एक इंद्रियवाळा, बे इंद्रियवाळा, त्रण इंद्रियवाळा, चार इंद्रियवाळा अने पांच इंद्रियवाळा जीवोनां शरीरनां अणुओने जीवो खाय छे ? १०. लोमाहार-रुंवाटावती लेवाता आहार-नुं स्वरूप. ११. अने मनोभक्षी देवोना आहारनुं स्वरूप 'देवो खावानी इच्छा करे के तुरत ज धराइ जाय' ते केवी रीते छे ? (आ प्रथम उद्देशक पृ-७१८ थी ७३६ सुधी क० आ० मां छे.)

आहार भविय सन्नी लेस्सा दिट्ठी य संजय कसाए, नाणा जोगु—वओगे वेदे य सरीर पज्जत्ती.

ए आहार पदना बीजा उद्देशकमां नीचे जणावेल विषयो संबंधी विवेचन छेः-१. सामान्य आहार. २. भव्य जीवोनो आहार. ३. संज्ञी जीवोनो आहार. ४. लेश्यावाळा जीवोनो आहार. ५. दृष्टिवाळा (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अने मिश्रदृष्टिवाळा) जीवोनो आहार. ६. संयमी जीवोनो आहार. ७. कषायवाळा जीवोनो आहार. ८. ज्ञानवाळा जीवोनो आहार. ९. योग(शरीरयोगादि)वाळा जीवोनो आहार. १०. उपयोगवाळा जीवोनो आहार. ११. वेद (पुरुषवेद वगेरे) वाळा जीवोनो आहार. १२. शरीरवाळा जीवोनो आहार. अने १३. पर्याप्तिवाळा जीवोनो आहार. (आ बीजो उद्देशक पृ-७३६ थी ७५० सुधी क० आ० मां छे.)-प्रज्ञापना सूत्र मुद्रित, पृ-७१८ थी ७५०:-अनु०

३. अहीं 'मतुप्' प्रत्यय आवीने लोपाइ गयो छे. वळी जो के अहीं आ पाठनो उपर प्रमाणे निर्देश छे. तो पण 'निर्व्याघात' शब्दने पहेलो समजवो. कारण के सूत्रमां तेनो तेम ज निर्देश छेः—श्रीअभय०

१. मूलच्छायाः—वायुकायो भगवन् ! वायुकायान् चैव आनमन्ति वा, प्राणमन्ति वा, उच्छ्वसन्ति वा, निःश्वसन्ति ? हन्त, गौतम ! वायुकाया यावत् निःश्वसन्ति वा. वायुकायो भगवन् ! वायुकाये चैव अनेकशतसहस्रकृत्वोऽपद्रुत्य अपद्रुत्य तत्रैव भूयो भूयः प्रत्यायाति ?—अनु०

९. उ०—हंता, गोयमा ! जाव–पच्चायाइ.

९. उ०—हे गौतम ! हा, यावत्–ते पाछो त्यां ज आवे.

१०. प्र०—से भंते ! किं पुट्ठे उद्दायाति, अपुट्ठे उद्दायाति ?

१०. प्र०—हे भगवन् ! ते वायुकाय स्वजातिना अथवा परजातिना जीवो साथे अथडावाथी मरण पामे ? के कोइ साथे अथडाया सिवाय मरण पामे ?

१०. उ०—गोयमा ! पुट्ठे उद्दाति, नो अपुट्ठे उद्दाइ.

१०. उ०—हे गौतम ! ते वायुकाय स्वजातिना के परजातिना जीवो साथे अथडावाथी मरण पामे. पण कोइ साथे अथडाया सिवाय ते मरे नहीं.

११. प्र०—से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ, असरीरी निक्खमइ ?

११. प्र०—हे भगवन् ! ते वायुकाय मरीने ज्यारे बीजी गतिमां जाय छे त्यारे शुं ते शरीरवाळो थइने जाय छे ? के शरीर विनानो थइने जाय छे ?

११. उ०—गोयमा ! सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ.

११. उ०—हे गौतम ! ते कथंचित् शरीरवाळो थइने जाय छे अने कथंचित् शरीर विनानो थइने जाय छे.

१२. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–'सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ' ?

१२. प्र०—हे भगवन् ! तेम कहेवानुं शुं कारण के, 'ते कथंचित् शरीरवाळो थइने जाय छे अने कथंचित् शरीर विनानो थइने जाय छे' ?

१२. उ०—गोयमा ! वाउयायस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहाः–ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए. ओरालिय–वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयय–कम्मएहिं निक्खमइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–'सिय सरीरी, सिय असरीरी निक्खमइ.

१२. उ०—हे गौतम ! वायुकायने चार शरीर कह्यां छे. ते आ प्रमाणेः—औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने कार्मण. तेमां औदारिक अने वैक्रिय शरीरने छोडीने जाय छे माटे शरीर विनानो थइने जाय छे अने तैजस तथा कार्मण शरीरने साथे लइने जाय छे माटे शरीरवाळो थइने जाय छे. हे गौतम ! ते कारणथी पूर्वे प्रमाणे कह्युं छे.

२. अथ एकेन्द्रियाणाम् उच्छ्वासादिभावात्, उच्छ्वासादेश्च वायुरूपत्वात् किं वायुकायिकानामपि उच्छ्वासादिना वायुना एव भवितव्यम् ? उत अन्येन केनाऽपि पृथिव्यादीनाम् इव तद्विलक्षणेन ? इत्याऽऽशङ्कायां प्रश्नयन् आहः–*'वाउयाए णं'* इत्यादि. अथ उच्छ्वासस्याऽपि वायुत्वाद् अन्येन उच्छ्वासवायुना भाव्यम्, तस्याऽपि अन्येनैव, एवमनवस्था. नैवम्, अचेतनत्वात् तस्य. किं च, योऽयमुच्छ्वासवायुः स वायुत्वेऽपि न वायुसंभविऔदारिक-वैक्रियशरीररूपः, तदीयपुद्गलानाम् आन-प्राणसंज्ञितानाम् औदारिक–वैक्रिय-शरीरपुद्गलेभ्योऽनन्तगुणप्रदेशत्वेन सूक्ष्मतया एतच्छरीराऽव्यपदेश्यत्वात्, तथा च प्रत्युच्छ्वासादीनामभाव इति नाऽनवस्था. *'वाउयाए णं भंते !'* इति. अयं च प्रश्नो वायुकायप्रस्तावाद् विहितः, अन्यथा पृथिवीकायिकादीनामपि मृत्वा स्वकाये उत्पादोऽस्त्येव, सर्वेषामेषां कायस्थितेरसंख्याततया, अनन्ततया च उक्तत्वात्. यदाहः–''*असंखोसप्पिणीओसप्पिणीउ एगिंदियाण चउण्हं, ता चेव उ अणंता वणस्सईए उ बोधव्वा.*'' तत्र वायुकायो वायुकाये एवानेकशतसहस्रकृत्वः, *'उद्दाइत्त'* त्ति अपद्रुत्य मृत्वा, *'तत्थेव'* त्ति वायुकाये एव, *'पच्चायाइ'* त्ति प्रत्याजायते उत्पद्यते. *'पुट्ठे उद्दाइ'* त्ति स्पृष्टः स्वकायशस्त्रेण, परकायशस्त्रेण वाऽपद्रवति म्रियते. *'नो अपुट्ठे'* त्ति सोपक्रमाऽपेक्षमिदम्, *'निक्खमइ'* त्ति स्वकलेवराद् निस्सरति. *'सिय सरीरी'* त्ति स्यात् कथंचित्, *'ओरालिय–वेउव्वियाइं विप्पजहाय'* इत्यादि. अयमर्थः–औदारिक–वैक्रियाऽपेक्षया अशरीरी, तैजस–कार्मणाऽपेक्षया तु सशरीरी निष्क्रामति इति.

२. एक इंद्रियवाळा जीवोने उच्छ्वास वगेरे होय छे अने ते उच्छ्वासादि वायुरूप छे. तो शुं वायुकायिक जीवोना पण उच्छ्वासादि वायुरूप छे ? के पृथिवी वगेरेना उच्छ्वासादिनी पेठे वायुथी विलक्षण छे ? ए आशंकानुं निराकरण करवा हवे प्रश्न करतां कहे छे केः–['वाउयाए णं' इत्यादि.] शं०–पृथिवी पोते पृथिवीरूप छे अने तेनो श्वास, निःश्वास वायुरूप छे. ए ज रीते पाणी वगेरेमां पण समजवुं. पण वायुमां तेथी जूदी ज रीति छे–वायु पोते वायुरूप छे अने तेनो श्वास अने निःश्वास पण वायुरूप छे. ज्यारे वायु वायुरूप छे तो पण तेने वायुरूप बीजा श्वास, निःश्वासनी जरूर रहे छे त्यारे वायुरूप श्वास, निःश्वासने पण बीजा वायुरूप श्वास, निःश्वासनी जरूर रहे ए घटतुं ज छे. अने जो एम थाय

वायुनो उच्छ्वास केवो ? शंका.

---

१. मूलच्छायाः—हन्त, गौतम ! यावत्–प्रत्यायाति. स भगवन् ! किं स्पृष्ट उद्रवति, अस्पृष्ट उद्रवति ? गौतम ! स्पृष्ट उद्रवति, नो अस्पृष्ट उद्रवति. स भगवन् ! किं सशरीरी निष्क्रामति, अशरीरी निष्क्रामति ? गौतम ! स्यात् सशरीरी निष्क्रामति, स्यात् अशरीरी निष्क्रामति. तद् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवम् उच्यते–स्यात् सशरीरी निष्क्रामति, स्यात् अशरीरी निष्क्रामति. गौतम ! वायुकायस्य चत्वारि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथाः–औदारिकम्, वैक्रियम्, तैजसम्, कार्मणम्. औदारिकवैक्रिये विप्रहाय तैजस-कार्मणाभ्यां निष्क्रामति, तद् तेनाऽर्थेन गौतम ! एवम् उच्यते–स्यात् सशरीरी, स्यात् अशरीरी निष्क्रामतिः–अनु०

१. [illegible]–अनु०

समाधान.

तो ते श्वास, निःश्वासनो कोइ दिवस आरो ज न आवे–अनवस्था दूषण आवे. तो तेनुं केम? समा०–श्वास, निःश्वासनी जरूर जीवने–चैतन्यवाळा प्राणिने–होय छे. पण जे निर्जीव होय छे तेने श्वास वगेरे होता नथी. वायु चैतन्यवाळो छे माटे तेने श्वास, निःश्वासनी जरूर छे. पण जे उच्छ्वास–श्वास, निःश्वासरूप–वायु छे ते तो निर्जीव–जड–छे माटे तेने बीजा श्वास वगेरेनी जरूर रहे तेम नथी अने तेथी अनवस्था पण आवती नथी. वळी आ उच्छ्वास–श्वास, निःश्वास–वायुरूप छे पण ते वायुकायना औदारिक अने वैक्रियशरीररूप नथी. कारण के आन, प्राण नामवाळां उच्छ्वास–श्वास अने निःश्वास–नां पुद्गलो, ते औदारिक शरीरनां अने वैक्रिय शरीरनां पुद्गलो करतां अनंतगुण प्रदेशवाळां होवाथी सूक्ष्म छे माटे ते उच्छ्वास–श्वास, निःश्वासरूप–वायु ते आ चैतन्यवाळा वायुना शरीररूप नथी. तात्पर्य ए के, उच्छ्वास–श्वास, निःश्वासरूप–वायु जड छे माटे तेने श्वास, निःश्वासनी जरूर नथी अने तेम होवाथी अनवस्था पण नथी. ['वाउयाए णं भंते!' इति] आ प्रश्न वायुकायनो प्रस्ताव होवाथी वायुकाय संबंधे कर्यो छे. नहीं तो आ प्रश्न पृथिवीकायिकादिकमां पण लागु पडे छे. कारण के पृथिवीकायिकादिको पण तेओनी कायस्थितिना असंख्यपणाने तथा अनंतपणाने लीधे मरण पामीने पाछा पोताना कायमां जन्म ले छे. कह्युं छे केः–"एक इंद्रियवाळा चार प्रकारना जीवोनी कायस्थिति असंख्य अवसर्पिणी अने उत्सर्पिणी सुधी होय छे. अने वनस्पतिकायनी कायस्थिति तो अनंत अवसर्पिणी अने उत्सर्पिणी सुधी जाणवी." तेमां वायुकाय वायुकायमां ज अनेक लाखवार ['उद्दाइत्त'त्ति] मरीने ['तत्थेव'त्ति] वायुकायमां ज ['पच्चायाइ'त्ति] उत्पन्न थाय छे. ['पुट्ठे उद्दाइ' त्ति] पोताना कायरूप शस्त्र साथे अथवा परकायरूप शस्त्र साथे अथडावाथी मरण पामे छे. ['नो अपुट्ठे' त्ति] आ सूत्र सोपक्रमनी अपेक्षाए छे. ['निक्खमइ' त्ति] शरीरथी नीकळे छे. ['सिय ससीरि' त्ति] स्यात् एटले कथंचित्–कोइ प्रकारे–कोइ रीते, ['ओरालिय–वेउव्वियाइं विप्पजहाय' इत्यादि.] तेनो आ अर्थ छेः–औदारिक अने वैक्रिय शरीरनी अपेक्षाए शरीर विनानो थइने नीकळे छे, तथा तैजस अने कार्मण शरीरनी अपेक्षाए तो शरीरवाळो थइने नीकळे छे.

वायुनो वायुमां जन्म.

वायुनुं मरण.

सशरीर अने अशरीर.

मृताऽदी अनगार.

१३. प्र०—मडाई णं भंते! नियंठे नो निरुद्धभवे, नो निरुद्धभवपवंचे, णो पहीणसंसारे, णो पहीणसंसारवेअणिज्जे, णो वोच्छिन्नसंसारे, णो वोच्छिन्नसंसारवेअणिज्जे, नो निट्ठिअट्ठे, नो निट्ठिअट्ठकरणिज्जे पुणरवि इत्थत्थं हव्वं आगच्छइ?

१३. प्र०—हे भगवन्! जेणे संसारने निरोध्यो–रोक्यो–नथी, जेणे संसारना प्रपंचोने निरोध्या नथी, जेनो संसार क्षीण थयो नथी, जेनुं संसारवेदनीयकर्म क्षीण थयुं नथी, जेनो संसार व्युच्छिन्न–छेदाएलो–नथी, जेनुं संसारवेदनीयकर्म व्युच्छिन्न नथी, जे सिद्ध-प्रयोजन–कृतार्थ–नथी अने जेनुं काम, समाप्त थएल कार्यनी पेठे पूर्ण नथी तेवो मृतादी (प्रासुकभोजी) निर्ग्रंथ–अनगार–शुं फरीने पण शीघ्र मनुष्यपणुं वगेरे भावोने पामे?

१३. उ०—हंता, गोयमा! मडाई णं नियंठे, जाव–पुणरवि इत्थत्थं हव्वं आगच्छइ.

१३. उ०—हे गौतम! हा, पूर्व प्रमाणेना स्वरूपवाळो निर्ग्रंथ यावत्–फरीने पण शीघ्र मनुष्यपणुं वगेरे भावोने पामे.

१४. प्र०—से णं भंते! किं ति वत्तव्वं सिया?

१४. प्र०—हे भगवन्! ते निर्ग्रंथना जीवने कया शब्दथी बोलावाय?

१४. उ०—गोयमा! 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'भूए' त्ति वत्तव्वं सिया, 'जीवे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'सत्ते' त्ति वत्तव्वं सिया, 'विण्णु' त्ति वत्तव्वं सिया, 'वेयो' त्ति वत्तव्वं सिया; पाणे, भूए, जीवे, सत्ते, विण्णू, वेदे त्ति वत्तव्वं सिया.

१४. उ०—हे गौतम! ते कदाच 'प्राण' कहेवाय, कदाच 'भूत' कहेवाय, कदाच 'जीव' कहेवाय, कदाच 'सत्त्व' कहेवाय, कदाच 'विज्ञ' कहेवाय अने कदाच 'वेद' कहेवाय तथा कदाच 'प्राण' 'भूत' 'जीव' 'सत्त्व' 'विज्ञ' अने 'वेद' पण कहेवाय.

१५. प्र०—से केणट्ठेणं 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया, जाव–'विन्नु' त्ति, 'वेयो' त्ति वत्तव्वं सिया?

१५. प्र०—हे भगवन्! ते 'प्राण' कहेवाय अने यावत्–'विज्ञ' अने 'वेद' कहेवाय, तेनुं शुं कारण?

१५. उ०—गोयमा! जम्हा आणमइ वा, पाणमइ वा, उस्ससइ वा, णीससइ वा तम्हा 'पाणे' त्ति वत्तव्वं सिया. जम्हा भूते, भवति, भविस्सति य तम्हा 'भूए' त्ति वत्तव्वं सिया. जम्हा जीवेति, जीवत्तं, आउयं च कम्मं उवजीवति तम्हा 'जीवे' त्ति वत्तव्वं सिया, जम्हा सत्ते सुभाऽसुभेहिं कम्मेहिं तम्हा 'सत्ते' त्ति

१५. उ०—हे गौतम! ते निर्ग्रंथनो जीव बहार अने अंदर श्वास तथा निःश्वास ले छे माटे ते 'प्राण' कहेवाय. तथा ते थवाना स्वभाववाळो छे–थयो छे, थाय छे अने थशे–माटे 'भूत' कहेवाय. तथा जीवे छे अने जीवपणाने तथा आयुष्यकर्मने अनुभवे छे माटे 'जीव' कहेवाय. तथा शुभ अने अशुभ कर्मोवडे संबद्ध छे

१. मूलच्छायाः—मृतादी भगवन्! निर्ग्रन्थो नो निरुद्धभवः, नो निरुद्धभवप्रपञ्चः, नो प्रहीणसंसारः, नो प्रक्षीणसंसारवेदनीयः, नो व्यवच्छिन्नसंसारः, नो व्यवच्छिन्नसंसारवेदनीयः, नो निष्ठितार्थः, नो निष्ठितार्थकरणीयः पुनरपि इत्यर्थं शीघ्रम् आगच्छति? हन्त, गौतम! मृतादी निर्ग्रन्थः, यावत्–पुनरपि इत्यर्थं शीघ्रम् आगच्छति. तद् भगवन्! किम् इति वक्तव्यं स्यात्? गौतम! प्राण इति वक्तव्यं स्यात्, भूत इति वक्तव्यं स्यात्, जीव इति वक्तव्यं स्यात्, सत्त्व इति वक्तव्यं स्यात्, विज्ञ इति वक्तव्यं स्यात्, वेदयिता इति वक्तव्यं स्यात्; प्राणः, भूतः, सत्त्वः, विज्ञः, वेदयिता इति वक्तव्यं स्यात्. तत् केनाऽर्थेन प्राण इति वक्तव्यं स्यात्, यावत्–विज्ञः इति, वेदयिता इति वक्तव्यं स्यात्? गौतम! यस्माद् आनमति वा, प्राणमति वा, उच्छ्वसति वा, निःश्वसति वा तस्मात् प्राण इति वक्तव्यं स्यात्, यस्माद् भूतः, भवति, भविष्यति च तस्माद् भूत इति वक्तव्यं स्यात्. यस्माद् जीवति, जीवत्वम्, आयुष्कं च कर्म उपजीवति तस्माद् जीव इति वक्तव्यं स्यात्, यस्माद् सक्तः शुभाशुभैः कर्मभिः तस्मात् सत्त्व इतिः—अनु०

[वत्त]व्वं सिया. जम्हा तित्त–कडु–कसायं–ऽबिल–महुरे रसे जाणइ तम्हा 'विधु' त्ति वत्तव्वं सिया. वेदेति य सुह–दुक्खं तम्हा 'वेदो' त्ति वत्तव्वं सिया, से तेणट्ठेणं पाणे त्ति वत्तव्वं सिया, जाव–वेदो त्ति वत्तव्वं सिया.

माटे 'सत्त्व' कहेवाय छे. तथा कडवा, कषाएला, खाटा अने मीठा रसोने जाणे छे माटे 'विज्ञ' कहेवाय छे अने सुख तथा दु:खने भोगवे छे माटे 'वेद' कहेवाय छे. माटे ते हेतुथी ते निर्ग्रंथनो जीव 'प्राण' अने यावत्–'वेद' कहेवाय छे.

१६. प्र०—मडाई णं भंते ! नियंठे निरुद्धभवे, निरुद्धभवपवंचे, जाव–निट्ठिअट्ठकरणिज्जे णो पुणरवि इत्थत्थं हव्वं आगच्छइ?

१६. प्र०—हे भगवन् ! जेणे संसारने रोक्यो छे, जेणे संसारना प्रपंचने रोक्यो छे, यावत्-जेनुं कार्य, समाप्त थएल कार्यनी पेठे पूर्ण छे तेवो मृतादी निर्ग्रंथ शुं फरीने पण शीघ्र मनुष्यपणुं वगेरे भावोने न पामे ?

१६. उ०—गोयमा ! मडाई णं नियंठे जाव–नो पुणरवि इत्थत्थं हव्वं आगच्छइ.

१६. उ०—हे गौतम ! हा, पूर्वे प्रमाणेनो मृतादी निर्ग्रंथ यावत्–फरीने पण शीघ्र मनुष्यपणुं वगेरे भावोने पामतो नथी.

१७. प्र०—से णं भंते ! किं वत्तव्वं सिया ?

१७. प्र०—हे भगवन् ! ते निर्ग्रंथनो जीव कया शब्दथी बोलावाय ?

१७. उ०—गोयमा ! 'सिद्धे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'बुद्धे' त्ति वत्तव्वं सिया, 'मुत्ते' त्ति वत्तव्वं सिया, 'पारगए' त्ति वत्तव्वं सिया, 'परंपरगए' त्ति वत्तव्वं सिया; 'सिद्धे, बुद्धे. मुत्ते, परिनिव्वुडे, अंतकडे, सव्वदुक्खप्पहीणे' त्ति वत्तव्वं सिया.

१७. उ०—हे गौतम ! ते 'सिद्ध' कहेवाय. 'बुद्ध' कहेवाय. 'मुक्त' कहेवाय. 'पारगत–पारने पामेलो'—कहेवाय. 'परंपरागत—अनुक्रमे—एक पगथिएथी बीजे अने बीजे पगथिएथी त्रीजे एवी रीते संसारना पारने पामेलो'—कहेवाय. अने ते 'सिद्ध' 'बुद्ध' 'मुक्त' 'परिनिर्वृत' 'अंतकृत्' तथा 'सर्वदु:खप्रहीण' कहेवाय.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति, नमंसति, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही भगवान् गौतम श्रमण भगवंत महावीरने वांदे छे, नमे छे अने संयम तथा तपवडे आत्माने भावता विहरे छे.

१. वायुकायस्य पुनः पुनस्तत्रैव उत्पत्तिर्भवति इत्युक्तम्. अथ कस्यचिद् मुनेरपि संसारचक्राऽपेक्षया पुनः पुनस्तत्रैव उत्पत्तिः स्याद् इति दर्शयन् आह:—'मडाई णं भंते ! नियंठे' इत्यादि. मृतादी प्रासुकभोजी, उपलक्षणत्वाद् 'एषणीयादी च' इति दृश्यम्. निर्ग्रन्थः साधुरित्यर्थः, 'हव्वं' शीघ्रमागच्छति इति योगः. किंविधः सन्? इत्याह:—'नो निरुद्धभवे' त्ति अनिरुद्धाऽग्रेतनजन्मा चरमभवाऽप्राप्त इत्यर्थः, अयं च भवद्वयप्राप्तव्यमोक्षोऽपि स्यात्, इत्याह:—'नो निरुद्धभवपवंचे' त्ति प्राप्तव्यभवविस्तार इत्यर्थः. अयं च देव–मनुष्यभवप्राप्त्याऽपेक्षयाऽपि स्यात्, इत्याह:—'णो पहीणसंसारे' त्ति अप्रहीणचतुर्गतिगमन इत्यर्थः, यत एवम् अत एव 'नो पहीणसंसारवेयणिज्जे' त्ति अप्रहीणसंसारवेद्यकर्मा, अयं च सकृच्चतुर्गतिगमनतोऽपि स्यात्, इत्यत आह:—'नो वोच्छिन्नसंसारे' त्ति अत्रुटितचतुर्गतिगमनाऽनुबन्ध इत्यर्थः, अत एव 'नो वोच्छिन्नसंसारवेयणिज्जे' त्ति नो नैव, व्यवच्छिन्नम् अनुबन्धव्यवच्छेदेन चतुर्गतिगमनवेद्यं कर्म यस्य स तथा. अत एव 'नो निट्ठियट्ठे' त्ति अनिष्ठितप्रयोजनः, अत एव 'नो निट्ठियट्ठकरणिज्जे' त्ति नो नैव निष्ठितार्थानाम् इव करणीयानि कृत्यानि यस्य स तथा. यत एवंविधोऽसौ अतः पुनरपि इति अनादौ संसारे पूर्वं प्राप्तम्, इदानीं पुनर्विशुद्धचरणाऽवाप्तेः सकाशाद् असंभावनीयम् 'इत्थत्थं' ति इत्यर्थम् एतमर्थम् अनेकशस्तिर्यङ्–नर–नाकि–नारकगतिगमनलक्षणम्. 'इत्थत्तं' इति पाठाऽन्तरम्, तत्र अनेन प्रकारेण इत्थम्, तद्भाव इत्थंत्वं मनुष्यादित्वम् इति भावः. अनुस्वारलोपश्च प्राकृतत्वात्. 'हव्वं' ति शीघ्रम्, 'आगच्छइ' त्ति प्राप्नोति, अभिधीयते च कषायोदयात् प्रतिपतितचरणानां चारित्रवतां संसारसागरपरिभ्रमणम्. यदाह:—"जइ उवसंतकसाओ लहइ अणंतं पुणो वि पडिवायं" ति. स च संसारचक्रगतो मुनिजीवः प्राणादिना नामषट्केन कालभेदेन, युगपच्च वाच्यः स्याद् इति विभणिषुः प्रश्नयन् आह:—'से णं' इत्यादि. तत्र स निर्ग्रन्थजीवः, 'किं' शब्दः प्रश्ने, सामान्यवाचित्वाच्च नपुंसकलिङ्गेन निर्दिष्ट इति. एवम् अन्वर्थयुक्ततया इत्यर्थः,

१. मूलच्छाया:—वक्तव्यं स्यात्. यस्मात् तिक्त–कटु–कषाय–अम्ल–मधुरान् रसान् जानाति तस्माद् विज्ञ इति वक्तव्यं स्यात्. वेदयति च सुख–दुःखं तस्माद् वेदयिता इति वक्तव्यं स्यात्. तत् तेनार्थेन प्राण इति वक्तव्यं स्यात्, यावत्–वेदयिता इति वक्तव्यं स्यात्. मृतादी भगवन् ! निर्ग्रन्थो निरुद्धभवः, निरुद्धभवप्रपञ्चः, यावत्–निष्ठितार्थकरणीयो नो पुनरपि इत्यर्थं शीघ्रम् आगच्छति ? गौतम ! मृतादी निर्ग्रन्थो यावत्–नो पुनरपि इत्यर्थं शीघ्रम् आगच्छति. तद् भगवन् ! किं वक्तव्यं स्यात् ? गौतम ! सिद्ध इति वक्तव्यं स्यात्, बुद्ध इति वक्तव्यं स्यात्, मुक्त इति वक्तव्यं स्यात्, पारगत इति वक्तव्यं स्यात्, परंपरागत इति वक्तव्यं स्यात्; सिद्धः, बुद्धः, मुक्तः, परिनिर्वृतः, अन्तकृतः, सर्वदुःखप्रक्षीण इति वक्तव्यं स्यात्. तदेवं भगवन् ! तदेवं भगवन् ! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति:—अनु०

[illegible] —यदि उपशान्तकषायः लभते अनन्तं पुनरपि प्रतिपातम्. २. इयं पूर्वार्धरूपा गाथा श्रीविशेषावश्यके ११०१ (पृ० ५६९, य० ग्रं०). [illegible] "[illegible]"—अनु०

वक्तव्यः स्यात् ? प्राकृतत्वाच्च सूत्रे नपुंसकलिङ्गताऽस्य इति–अन्वर्थयुक्तशब्दैरुच्यमानः किम् असौ वक्तव्यः स्याद् इति भावः. अत्रोत्तरम्–'*पाणेति वत्तव्वं*' इत्यादि. तत्र प्राण इति एतत् तं प्रति वक्तव्यं स्यात्, यदा उच्छ्वासादिमत्त्वमात्रम् आश्रित्य तस्य निर्देशः क्रियते. एवं भवनादिधर्मविवक्षया भूतादिशब्दपञ्चकवाच्यता तस्य कालभेदेन व्याख्येया. यदा तु उच्छ्वासादिधर्मैर्युगपदसौ विवक्ष्यते तदा प्राणः, भूतः, जीव., सत्त्वः, विज्ञः, वेदयिता इति एतत् तं प्रति वाच्यं स्यात्. अथवा निगमनवाक्यम् एव इदम्, अतो न युगपत्–पक्षव्याख्या कार्या इति. '*जम्हा जीवे*' इत्यादि. यस्माद् जीवः आत्माऽसौ–जीवति प्राणान् धारयति, तथा जीवत्वम् उपयोगलक्षणम्, आयुष्कं च कर्म उपजीवति अनुभवति तस्माद् जीव इति वक्तव्य स्याद् इति. '*जम्हा सत्ते सुहाऽसुहेहिं कम्मेहिं*' ति सक्त आसक्तः, शक्तो वा समर्थः. सुन्दराऽसुन्दरासु चेष्टासु, अथवा सक्तः संबद्धः, शुभाऽशुभैः कर्मभिरिति. अनन्तरोक्तस्यैवाऽर्थस्य विपर्ययम् आह:–'*मडाई*' इत्यादि. '*पारगए*' त्ति पारगतः संसारसागरस्य, 'भाविनि भूतवद्' इत्युपचाराद् इति. '*परंपरगए*' त्ति परंपरया मिथ्यादृष्ट्यादि-गुणस्थानकानाम्, मनुष्यादिसुगतीनां वा पारंपर्येण गतो भवाऽम्भोधिपारं प्राप्तः परंपरागतः.

३. आगळना प्रकरणमां 'वायुकायनी फरी फरीने वायुकायमां ज उत्पत्ति थाय छे' एम कह्युं छे. माटे हवे 'कोइ मुनिनी पण संसार-

मृतादी. चक्रनी अपेक्षाए फरी फरीने त्यां ज उत्पत्ति थाय' ए वातने दर्शावतां कहे छे केः -['मडाई णं भंते! नियंठे' इत्यादि.] मृत एटले निर्जीव, अदी एटले खानार–मृतादी एटले प्रासुक पदार्थने जमनार, उपलक्षण होवाथी 'एषणीय पदार्थने खानार' पण लेवो. निर्ग्रंथ एटले साधु.

अनिरुद्धभव. ['हव्वं'] एटले शीघ्र, (आवे छे) ए प्रमाणे वाक्यसंबंध छे. केवो थयो छतो? तो कहे छे के, ['नो निरुद्धभवे'त्ति] जेणे आवनार जन्मने रोक्यो नथी अर्थात् जेणे छेल्लो भव प्राप्त कर्यो नथी एवो. जेणे आवनार जन्मने रोक्यो नथी, एवो साधु तो बे भव पछी पण मुक्ति प्राप्त करवानो

अनिरुद्धभवप्रपंच. होय माटे कहे छे के, ['नो निरुद्धभवपवंचे' त्ति] जेणे भवनो विस्तार अटकाव्यो नथी–जे हजु अनेक भवो पामवानो छे ते. जेणे भवना वि-

अप्रहीणसंसार. स्तारने अटकाव्यो नथी, एवो साधु तो देवना अने मनुष्यना ज अनेक भवो पामवानो होय माटे कहे छे, ['नो पहीणसंसारे' त्ति] जेनो चार गतिमां फरवारूप संसार क्षीण थयो नथी एवो. एम छे माटे ज ['नो पहीणसंसारवेअणिज्जे' त्ति] जेनुं संसारवेदनीयकर्म क्षीण थयुं नथी एवो.

अविच्छिन्नसंसार. जेनुं संसारवेदनीयकर्म क्षीण थयुं नथी, एवो साधु तो एक वार ज चारे गतिमां जनारो पण होय माटे कहे छे के, ['नो वोच्छिण्णसंसारे' त्ति] जेने चारे गतिमां अनेकवार जवानु छे एवो. एवो छे माटे ज ['नो वोच्छिन्नसंसारवेअणिज्जे' त्ति] जेनु संसारवेदनीय कर्म–चारे गतिमां अनेकवार रख-

अनिष्ठितार्थ-करणीय. डवामां कारणभूत कर्म–तूटयुं नथी एवो. एवो छे माटे ज ['नो निट्ठिअट्ठे' त्ति] जेनुं प्रयोजन असमाप्त–अधुरुं–छे एवो, माटे ज ['नो निट्ठिअट्ठकरणिज्जे' त्ति] जेनां कार्यो पूरां थएल कार्योनी पेठे पूरां थयां नथी एवो. एवा प्रकारनो ए मुनि फरीने पण अर्थात् आ अनादि संसारमां पूर्वे अनेकवार मनुष्यपणुं वगेरे प्राप्त थयुं हतुं, पण हमणां शुद्ध चारित्र प्राप्त थवाथी तेनी प्राप्ति असंभवती छे–मुक्त थवानुं संभवतुं छे एवा समये पण फरीथी ['इत्थत्थं' ति] एवी स्थितिने–अनेकवार तिर्यंच, मनुष्य, देव अने नारकिमां जवारूप अवस्थाने–['हव्वं' ति] शीघ्र ['आगच्छइ' त्ति] पामे. आ स्थळे 'इत्थत्थं'ने बदले 'ईत्थत्त' एवो बीजो पाठ पण छे. तेनो अर्थः–एवा प्रकारे रहेवानु–मनुष्य वगेरे प्रकारे रहेवानुं. क्रोधादिक कषायना उदये करी चारित्रथी चळी गएला–भ्रष्ट थएला–साधुने संसारमां रखडवुं पडे छे. ते विषे कह्युं छे के, "जेना क्रोधादिक कषायो उपशमी गया छे एवो जीव फरीने पण संसारमां अनंत प्रतिपातने–ठेबांने–पामे छे." 'संसारचक्रमां भमतो मुनिनो जीव प्राण वगेरे छ नामोवडे जूदे जूदे समये के एक ज समये बोलावी शकाय' ए वातने कहेवानी इच्छावाळा सूत्रकार प्रश्न करता कहे छे के, ['से णं किं[3] ति वत्तव्वं' इत्यादि.] अर्थात् जेवी व्युत्पत्ति छे तेवा अर्थवाळा प्राण, जीव वगेरे शब्दो ते मुनिने बोलाववामां वपराय–ए प्रमाणे ते मुनि 'प्राण' कहेवाय, 'जीव' कहेवाय–तेनुं शुं कारण?–कइ रीते ते मुनि उपर प्राण, जीव वगेरे शब्दोनो प्रयोग थइ शके? अहीं उत्तर आ रीते छेः–['पाणेति वत्तव्वं' इत्यादि.] ज्यारे ते

प्राण. मुनि मात्र उच्छ्वास, निःश्वासवाळो होय, एम कल्पीए, त्यारे ते 'प्राण' कहेवाय. (ए प्रमाणे ज्यारे ते मुनिमां भवनरूप–थवारूप–धर्म कल्पीए

भूत. त्यारे ते 'भूत' कहेवाय) तथा ए रीते भवन (थवुं) वगेरे धर्मनी विवक्षा करवाथी 'भूत' इत्यादि पांच शब्दो ते मुनिने बोलाववामां जूदे जूदे काळे वापरी शकाय छे. अने ज्यारे एक ज काळे ते मुनिमां उच्छ्वास वगेरे धर्मो कल्पवामां आवे त्यारे तो ते मुनि 'प्राण' 'भूत' 'जीव' 'सत्त्व' 'विज्ञ' अने 'वेदयिता' कहेवाय. अथवा आ निगमन–उपसंहार–सूचक ज वाक्य छे माटे 'प्राण वगेरे शब्दो एक ज काळे वपराय' एवी व्याख्या

जीव. न करवी. ['जम्हा जीवे' इत्यादि.] ते मुनि जीवे छे–प्राणोने धारण करे छे–तथा उपयोगरूप जीवपणाने अने आयुष्य कर्मने अनुभवे छे माटे ते

सत्त्व. 'जीव' कहेवाय. ['जम्हा सत्ते सुहासुहेहिं कम्मेहिं' ति] सारी अने नरसी चेष्टामां ते मुनि आसक्त छे के समर्थ छे माटे अथवा ते शुभ अने अशुभ

पारगत. कर्मो साथे संबंधवाळो छे माटे 'सत्त्व' कहेवाय. हवे आगळ कहेली वातथी ज उलटी वातने दर्शावतां कहे छे के, ['मडाई' इत्यादि.] ['पार-

परंपरगत. गए' त्ति] पारगत एटले संसाररूप समुद्रना पारने पामेल, ['परंपरगए' त्ति] परंपरावडे–मिथ्यादृष्टि वगेरे गुणस्थानकोनी के मनुष्य वगेरे सुगतिनी परंपरावडे–संसाररूप समुद्रना पारने पामेल ते परंपरागत.

---

१. अहीं प्राकृतनी शैलीथी अनुस्वार लोपायो छेः–श्रीअभय० २. आ अर्थ श्रीविशेषावश्यक सूत्रमां १३०९ मी गाथामां छे. (पृ० ५६९, य० ग्रं०):–अनु० ३. आ शब्द प्रश्न सूचक छे. अने सामान्यवाचक होवाथी तेनो, आभ्यतर जातिथी निर्देश कर्यो छे. ४. प्राकृत शैलीथी आ [illegible] नपुंसकलिंगे मूक्यो छे. ५. आ मुनि 'पारगत' केम कहेवाय? कारण के ते पारने पामेलो नथी, पण पारने [illegible] छे. [illegible] कह्युं छे के, '[illegible] पण कोइ वार 'थएलुं' मनाय छे' एवा व्यवहारथी 'पार पामवानो छे' तो पण 'पारने पामेलो छे' एम कह्युं छेः–[illegible]

आर्य श्रीस्कंदक.

१८.—ते[1] णं काले णं, ते णं समये णं तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइआओ पडिनिक्खमइ; पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ. ते णं काले णं, ते णं समये णं कयंगला नामं नगरी होत्था. वण्णओ. तीसे णं कयंगलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए छत्तपलासए नामं चेइए होत्था. वण्णओ. तए णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नाण्ण–दंसणधरे, जाव–समोसरणं. परिसा निग्गच्छइ. तीसे णं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था. वण्णओ. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अन्तेवासी खंदए णामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ. रिउव्वेद–जजुव्वेद–सामवेद–अहव्वणवेद, इतिहासपंचमाणं, निघंटुछट्ठाणं, चउण्हं वेआणं संगोवंगाणं–सरहस्साणं, सारए, वारए, धारए, पारए, सडंगवी, सट्ठितंतविसारए, संखाणे, सिक्खा–कप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिव्वायएसु नयेसु सुपरिनिट्ठिए या वि होत्था. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए णामं नियंठे वेसालिअसावए परिवसइ. तए णं से पिंगलए णामं नियंठे वेसालिअसावए अन्नया कयाइं जेणेव खंदए कच्चायणसगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदगं कच्चायणस्सगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे:—मागहा! किं सअंते लोए, अणंते लोए? सअंते जीवे, अणंते जीवे? सअंता सिद्धी, अणंता सिद्धी? सअंते सिद्धे, अणंते सिद्धे? केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा? एतावं ताव आयक्खाहि. वुच्चमाणे एवं, तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं नियंठेणं, वेसालियसावएणं इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए, कंखिए, वितिगिच्छिए, भेदसमावन्ने, कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलयस्स नियंठस्स, वेसालिअसावयस्स किंचि वि पमोक्खमक्खाइउं, तुसिणीए संचिट्ठइ. तए णं से पिंगलए नियंठे, वेसालीसावए खंदयं कच्चायणसगोत्तं दोच्चं पि, तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छे—मागहा! किं सअंते लोए, जाव–केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा,

१८.—ते काळे, ते समये श्रमण भगवंत महावीर राजगृह नगरनी पासे आवेला गुणशिल चैत्यथी निकळ्या. तेओए बहारना देशमां विहार कर्यो. ते काळे, ते समये कृतंगला नामनी नगरी हती. वर्णक. ते कृतंगला नगरीना बहारना प्रदेशमां उत्तर अने पूर्व-दिशाना भागमां–ईशानकोणमां 'छत्रपलाशक' नामनुं चैत्य हतुं. वर्णक. ते वखते, उत्पन्न थएल ज्ञान अने दर्शनना धारण करनार श्रमण भगवंत महावीर (त्यां पधार्या) यावत्–समवसरण थयुं. सभा निकळी. ते कृतंगला नगरीनी पासे श्रावस्ती नामनी नगरी हती. वर्णक. ते श्रावस्ती नगरीमां कात्यायनगोत्रनो, गर्दभाल-नामना परिव्राजकनो शिष्य स्कंदक नामनो परिव्राजक (तापस) रहेतो हतो. ते ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अने अथर्वणवेद ए चार वेदोनो, पांचमा इतिहास–पुराणो–नो तथा छट्ठा निघंटु नामना कोशनो सांगोपांग अने रहस्य, सहित प्रवर्तक, याद करनार; तथा तेमां थती भूलोनो अटकावनार हतो. वेदादि शास्त्रोनो धारक हतो. वेद वगेरेनो पारगामी अने छ अंगनो ज्ञाता हतो. तथा षष्टितंत्र (कापिलीय शास्त्र)मां विशारद हतो. वळी गणित शास्त्रमां, शिक्षा शास्त्रमां, आचार शास्त्रमां, व्याकरण शास्त्रमां, छंदःशास्त्रमां, व्युत्पत्ति शास्त्रमां, ज्योतिष शास्त्रमां अने बीजा घणा ब्राह्मण तथा परिव्राजक संबंधी नीति तथा दर्शन शास्त्रोमां पण घणो चतुर हतो. ते ज श्रावस्ती नगरीमां वैशालिक (श्रीमहावीर)नो श्रावक (वचन सांभळनार माटे श्रावक) पिंगल नामनो निर्ग्रंथ रहेतो हतो. ते वखते वैशालिकना वचनने सांभळवामां रसिक पिंगल नामना साधुए कोइ एक दिवसे, जे ठेकाणे कात्यायन गोत्रनो स्कंदक तापस रहेतो हतो, ते तरफ जइने तेने आक्षेपपूर्वक आ प्रमाणे पूछ्युं के, हे मागध–(मगध देशमां जन्मेल)! शुं लोक अंतवाळो छे के अंत विनानो छे? जीव अंतवाळो छे के अंत विनानो छे? सिद्धि अंतवाळी छे के अंत विनानी छे? सिद्धो अंतवाळा छे के अंत विनाना छे? तथा कया मरणवडे मरतो जीव वधे अथवा घटे अर्थात् जीव केवी रीते मरे

---

१. मूलच्छाया:—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये ततः श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहाद् नगरात्, गुणशिलकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये कृतङ्गला नाम नगरी अभवत्. वर्णकः. तस्याः कृतङ्गलाया नगर्या बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे छत्रपलाशकं नाम चैत्यम् अभवत्. वर्णकः. ततः श्रमणो भगवान् महावीर उत्पन्नज्ञान–दर्शनधरः, यावत्–समवसरणम्. [illegible] निर्गच्छति. तस्याः कृतङ्गलाया नगर्या अदूरसामन्ते श्रावस्ती नाम नगरी अभवत्. वर्णकः. तस्यां श्रावस्त्यां नगर्यां गर्दभालस्याऽन्तेवासी स्कन्दको नाम कात्यायनसगोत्रः परिव्राजकः परिवसति. ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद–अथर्वणवेदानाम्, इतिहासपञ्चमानाम्, निघण्टुषष्ठानाम्, चतुर्णां वेदानां साङ्गोपाङ्गानाम्–सरहस्यानाम्, स्मारकः, वारकः, पारगः, षडङ्गवित्, षष्टितन्त्रविशारदः, संख्याने, शिक्षा–कल्पे, व्याकरणे, छन्दसि, निरुक्ते, ज्योतिषामयने, अन्येषु च बहुषु ब्राह्मणकेषु, परिव्राजकेषु नयेषु सुपरिनिष्ठितश्चाऽपि अभवत्. तस्यां श्रावस्त्यां नगर्यां पिङ्गलको नाम निर्ग्रन्थो वैशालिकश्रावकः परिवसति. ततः स पिङ्गलको नाम निर्ग्रन्थो वैशालिकश्रावकोऽन्यदा कदाचिद् यत्रैव स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रस्तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रम् इदम् आक्षेपम् अप्राक्षीत्:—मागध! किं सान्तो लोकः, अनन्तो लोकः? सान्तो जीवः, अनन्तो जीवः? सान्ता सिद्धिः, अनन्ता सिद्धिः? सान्तः सिद्धः, अनन्तः सिद्धः? केन वा मरणेन म्रियमाणो जीवो वर्धते वा, हीयते वा? एतावत् तावद् आख्याहि. [illegible] एवम्, ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः पिङ्गलकेन निर्ग्रन्थेन, वैशालिकश्रावकेण इदम् आक्षेपं पृष्टः सन् शङ्कितः, काङ्क्षितः, [illegible], भेदसमापन्नः, कलुषसमापन्नो न शक्नोति पिङ्गलस्य निर्ग्रन्थस्य, वैशालिकश्रावकस्य किञ्चिद् अपि प्रमोक्षम् आख्यातुम्, तूष्णीकः [illegible] ... पिङ्गलको निर्ग्रन्थः, वैशालिकश्रावकः स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रं द्विकृत्वोऽपि, त्रिकृत्वोऽपि इदम् आक्षेपम् अप्राक्षीत्:—मागध! सान्तो [illegible] ... केन वा मरणेन म्रियमाणो जीवो वर्धते वा—[illegible]

हीयाति वा ? एताव ताव आइक्खाहि. वुच्चमाणे एवं, तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते पिंगलएणं णियंठेणं वेसालीसावएणं दोच्चं पि, तच्चं पि इणमक्खेवं पुच्छिए समाणे संकिए, कंखिए, वितिगिच्छिए, भेदसमावन्ने, कलुससमावन्ने णो संचाएइ पिंगलस्स णियंठस्स, वेसालिअसावयस्स किंचि वि पमोक्खं अक्खाइतुं, तुसणीए संचिट्ठइ. तए णं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग, जाव–पहेसु महया जणसंमद्दे इ वा, जणवूहे इ वा, परिसा निग्गच्छइ. तए णं तस्स खंदयस्स कच्चायणस्सगोत्तस्स बहुजणस्स अंतिए एअं अट्ठं सोच्चा, निसम्म इमे एयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु समणे भगवं महावीरे कयंगलाए नयरीए बहिया छत्तपलासए चेइए संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ. तं गच्छामि णं, समणं भगवं महावीरं वंदामि, नमंसामि. सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता, कल्लाणं, मंगलं देवयं, चेइअं पज्जुवासित्ता, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं, हेऊइं, पसिणाइं, कारणाइं, वागरणाइं पुच्छित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव परिव्वायगावसहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिदंडं च, कुंडिअं च, कंचणिअं च, करोडिअं च, भिसिअं च, केसरिअं च, छण्णालयं च, अंकुसयं च, पवित्तयं च, गणेत्तिअं च, छत्तयं च, वाहणाउ य, पाउआओ य, धाउरत्ताओ य गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायावसहाओ पडिनिक्खमइ. पडिनिक्खमित्ता तिदंड–कुंडिअ–कंचणिअ–करोडिअ–भिसिअ–केसरिअ–छण्णालय–अंकुसय–पवित्तय–गणेत्तिअहत्थगए, छत्तो–वाणहसंजुत्ते, धाउरत्तवत्थपरिहिए सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ. निग्गच्छित्ता जेणेव कयंगला नगरी, जेणेव छत्तपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए. 'गोयमा !' इति समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी:–दच्छसि णं गोयमा ! पुव्वसंगयं. कं णं भंते ! ? खंदयं नाम. से काहे वा, कहं वा, केवच्चिरेण वा ? एवं खलु गोयमा ! ते णं काले णं, ते णं समये णं सावत्थी नामं नगरी होत्था. वण्णओ. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायए

तो तेनो संसार वधे अने घटे ? तुं आटला प्रश्नोनो तो उत्तर [illegible] (ए प्रमाणे स्कंदक तापसने ते पिंगलक नामना साधुए [illegible]) ज्यारे वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रंथे ते स्कंदक तापसने [illegible] प्रमाणे पूछ्युं त्यारे ते स्कंदक तापस, 'ए प्रश्नोनो शुं आ उत्तर हशे के बीजो' एम शंकावाळो थयो, 'आ प्रश्नोनो जवाब मने केवी रीते आवडे' एम कांक्षावाळो थयो, 'हुं जवाब आपीश तेथी पूछनारने प्रतीति थशे के केम ?' ए प्रमाणे अविश्वासु थयो, तथा एनी बुद्धि बुंठी थइ गइ अने ते क्लेशने पाम्यो. पण ते तापस, वैशालिक श्रावक पिंगलक साधुने कांइ पण उत्तर आपी शक्यो नहीं अने चुपचाप बेठो. ते वखते वैशालिक श्रावक पिंगलक साधुए कात्यायनगोत्रना स्कंदक परिव्राजकने बे, त्रणवार पण पूर्व प्रमाणे आक्षेपपूर्वक पूछ्युं के–हे मागध ! शुं लोक अंतवाळो छे ? यावत्–जीव केवी रीते मरे तो तेनो संसार वधे अने घटे ? तुं मारा ए प्रश्नोनो तो उत्तर आप. ज्यारे फरीने पण ते वैशालिक पिंगल निर्ग्रंथे ते स्कंदक तापसने पूर्व प्रमाणे कह्युं त्यारे पण ते स्कंदक तापस शंकावाळो थयो, कांक्षावाळो थयो, अविश्वासु थयो, बुद्धिभंगने पाम्यो अने क्लेशने प्राप्त थयो. पण कांइ जवाब आपी शक्यो नहीं अने छानो मानो बेठो. ते वखते श्रावस्ती नगरीमां त्रण खूणावाळा मार्गमां, मनुष्योनी गडदीवाळा मार्गमां, चालती वखते व्यूहरूपे गोठवाएल मनुष्योवाळा मार्गमां (श्रीमहावीर पासे जवा माटे) सभा नीकळे छे. त्यां अनेक मनुष्योना मुखथी श्रीमहावीर आव्यानी वात सांभळी कात्यायनगोत्री स्कंदक तापसना मनमां पोताना विषे स्मरणरूप अने अभिलाषरूप आ प्रकारनो विचार थयो के, श्रमण भगवंत महावीर कृतंगला नगरीनी बहार छत्रपलाशक नामना चैत्यमां संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे. माटे हुं तेनी पासे जाउं, श्रमण भगवंत महावीरने वांदुं, नमस्कार करुं. अने श्रमण भगवंत महावीरने वांदीने, नमीने, तेओनो सत्कार करीने तथा तेओने सन्मान आपीने अने कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप अने चैत्यरूप श्रीमहावीरनी पर्युपासना करीने आ ए प्रकारना अर्थोने, हेतुओने, प्रश्नोने, कारणोने, व्याकरणोने पूछुं. तो मारुं कल्याण छे ए नक्की छे.

---

१. मूलच्छाया:—हीयते वा ? एतावत् तावद् आख्याहि. उच्यमान एवम्, ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः पिङ्गलकेन निर्ग्रन्थेन वैशालिकश्रावकेण द्विकृत्वोऽपि, त्रिकृत्वोऽपि इदम् आक्षेपं पृष्टः सन् शङ्कितः, काङ्क्षितः, विचिकित्सितः, भेदसमापन्नः कलुषसमापन्नो न शक्नोति पिङ्गलकस्य निर्ग्रन्थस्य, वैशालिकश्रावकस्य किञ्चिदपि प्रमोक्षम् आख्यातुम्, तूष्णीकः संतिष्ठते. ततः श्रावस्त्यां नगर्यां शृङ्गाटके, यावत्—पथिषु महता जनसंमर्देन इति वा, जनव्यूहेन इति वा, पर्षद् निर्गच्छति. तस्य स्कन्दकस्य कात्यायनसगोत्रस्य बहुजनानाम् अन्तिके एतम् अर्थं श्रुत्वा, निशम्य अयम् एतद्रूप आध्यात्मिकः, चिन्तितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत–एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीरः कृतङ्गलाया नगर्या बहिः छत्रपलाशके चैत्ये संयमेन, तपसा आत्मानं भावयन् विहरति. तं गच्छामि, श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे, नमस्यामि, श्रेयः खलु मम श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा, नमस्यित्वा, सत्कार्य, संमान्य, कल्याणम्, मङ्गलम्, दैवतम्, चैत्यं पर्युपास्य, इमान् एतद्रूपान् अर्थान् हेतून्, प्रश्नान्, कारणानि, व्याकरणानि प्रष्टुम् इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य येनैव परिव्राजकाऽऽवसथम्, तेनैव उपागच्छति, उपागम्य त्रिदण्डं च, कुण्डिकां च, काञ्चनिकां च, करोटिकां च, भृशिकां (वृषिकाम्)च, केसरिकां च, षण्नालकं च, अङ्कुशकं च, पवित्रकं च, गणेत्रिकां च, छत्रकं च, उपानहौ च, पादुके च, धातुरक्ताश्च गृह्णाति, गृहीत्वा परिव्राजकाऽऽवसथात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य त्रिदण्ड–कुण्डिका–काञ्चनिका–करोटिका–भृशिका–केसरिका–षण्नालक–अङ्कुशक–पवित्रक–गणेत्रिकाहस्तगतः, छत्रो–पानत्संयुक्तः, परिहितधातुरक्तवस्त्रः श्रावस्त्यां नगर्यां मध्यंमध्येन निर्गच्छति, निर्गम्य येनैव कृतङ्गला नगरी, येनैव छत्रपलाशकं चैत्यम्, येनैव श्रमणो भगवान् महावीरः, तेनैव प्राधारयद् (प्रधारितवान्) गमनाय. 'गौतम !' इति श्रमणो भगवान् महावीरो भगवन्तं गौतमम् एवम् अवादीत्:—द्रक्ष्यसि गौतम ! पूर्वसंगतम्. कं भदन्त ! ? स्कन्दकं नाम. स कुत्र वा, कथं (केन) वा, कियच्चिरेण वा ? एवं खलु गौतम ! तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रावस्ती नाम नगरी अभवत्. वर्णकः. तत्र श्रावस्त्यां नगर्यां गर्दभालस्य [illegible]

[illegible]. तं चेव, जाव—जेणेव ममं अंतिए, तेणेव [illegible] गमणाए. से अदूरागते, बहुसंपत्ते, अद्धाणपडिवन्ने, [illegible] वट्टइ. अज्जेव णं दच्छसि गोयमा!. 'भंते!' त्ति [illegible] गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, [illegible] एवं वदासी:—पहू णं भंते! खंदए कच्चायणसगोत्ते देवाणु-[illegible] अंतिए मुंडे भवित्ता णं, आगाराओ अणगारिअं पव्वइत्तए? [illegible], पभू. जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स [illegible] परिकहेइ, तावं च णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तं देसं [illegible] आगए.

ए पूर्वे प्रमाणे ते स्कंदक तापसे विचारीने, ज्यां परिव्राजकोनो मठ छे त्यां जइने त्यांथी त्रिदंड, कुंडी, रुद्राक्षनी माळा, करोटिका-माटीनुं वासण, एक जातनुं आसन—बेसणुं, केसरिका—वासणोने साफसुफ राखवानो कपडानो कटको, त्रिगडी, अंकुशक—वृक्षो उपरथी पांदडा वगेरेने एकठां करवा सारु अंकुशना जेवुं एक जातनुं साधन, वींटी, गणेत्रिका—एक प्रकारनुं कलाइनुं घरेणुं, छत्र, पगरखां, पावडी अने धातु—गेरु—थी रंगेलां वस्त्रोने लइने नीकळे छे, नीकळी त्रिदंड, कुंडी, रुद्राक्षनी माळा, करोटिका, बेसणुं, केस-रिका, त्रिगडी, अंकुशक, वींटी अने एक जातनुं कलाइनुं घरेणुं, ए बधी वस्तुओने हाथमां राखी, छत्रने ओढी, पगरखां पहेरी तथा धातुथी रंगेलां वस्त्रोने शरीर उपर पहेरी ते स्कंदक तापस श्रावस्ती नगरीनी वचोवच नीकळे छे. नीकळी जे तरफ कृतंगला नगरी छे, जे तरफ छत्रपलाशक चैत्य छे, अने जे तरफ श्रमण भगवंत महा-वीर छे ते तरफ जवानो ते तापसे संकल्प कर्यो. (ते स्कंदक तापस श्रीमहावीर पासे जवा नीकळ्या. हवे ज्यां श्रीमहावीर विराज्या छे त्यां शुं बन्युं ते जणावे छे) 'हे गौतम!' ए प्रमाणे आमंत्री श्रमण भगवंत महावीरे भगवान् गौतमने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे गौतम! (आज) तुं तारा पूर्वना संबंधीने जोईश. (भगवान् गौतमे कह्युं के,) हे भगवन्! हुं कोने जोईश? (श्रीमहावीरे जणाव्युं के,) हे गौतम! तुं स्कंदक नामना तापसने जोईश. (भगवान् गौतमे कह्युं के,) हे भगवन्! हुं तेने क्यारे, केवी रीते अने केटला समये जोईश? (श्रीमहावीरे फरमाव्युं के,) हे गौतम! ते काळे, ते समये श्रावस्ती नामनी नगरी हती. वर्णक. त्यां श्रावस्ती नगरीमां गर्दभाल नामना तापसना, कात्यायनगोत्रीय शिष्य स्कंदक नामे परिव्राजक रहेता हता. ए संबंधेनी बधी हकीकत आगळ कह्या प्रमाणे ज जाणवी यावत्—ते स्कंदक परि-व्राजके जे तरफ हुं छुं ते तरफ—मारी पासे—आववाने संकल्प कर्यो छे. अने ते स्कंदक परिव्राजक (ज्यां आपणे छीए ते ठेका-णानी) लगभग पासे पहोंचवा आव्या छे, घणो मार्ग ओळंगी गया छे, मार्ग उपर छे, वचगाळाना मार्गे छे. अने हे गौतम! ते स्कंदक परिव्राजकने तुं आज ज जोईश. पछी 'हे भगवन्!' एम कही भगवान् गौतमे श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, नमी आ प्रमाणे कह्युं केः—हे भगवन्! ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक आप देवानुप्रियनी पासे मुंड थइने, अगार तजीने अणगारपणुं लेवाने शक्त छे? हे गौतम! हा, ते स्कंदक परिव्रा-जक मारी पासे अनगार थवा शक्त छे. ज्यारे श्रमण भगवंत महा-वीर, भगवान् गौतमने पूर्व प्रमाणेनी वात कहेता हता तेवामां ज ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक ते ठेकाणे—श्रीमहावीर पासे—शीघ्र आव्या.

---

१. [illegible]:—परिव्रजति. तथैव यावत्—येनैव मम अन्तिके, तेनैव प्रादीधरद् गमनाय. सोऽदूरागतः, बहुसंप्राप्तः, अध्वप्रतिपन्नः, अन्तरा पथि वर्तते. [illegible] गौतम!. 'भगवन्!' इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:—प्रभुर्भगवन्! [illegible] देवानुप्रियाणाम् अन्तिके मुण्डो भूत्वा, अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्? हन्त, प्रभुः. यावच्च श्रमणो भगवान् महावीरो [illegible] परिकथयति, तावच्च [illegible] तं देशं शीघ्रम् [illegible]—अनु०

तए णं भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं अदूरागतं जाणित्ता खिप्पामेव अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता खिप्पामेव पच्चुवगच्छइ. जेणेव खंदए कच्चायणस्सगोत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी–हे खंदया ! सागयं, खंदया ! सुसागयं, खंदया ! अणुरागयं, खंदया ! सागयमणुरागयं. खंदया! से णूणं तुमं खंदया सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं णामं नियंठेणं वेसालिअसावयेणं इणमक्खेवं पुच्छिए–मागहा ! किं सअंते लोके, अणंते लोगे ? तं चेव जेणेव इहं, तेणेव हव्वमागए, से णूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ? हंता, अत्थि. तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी–से केसे णं गोयमा ! तहारूवे णाणी वा, तवस्सी वा ? जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वं अक्खाए, जओ णं तुमं जाणसि ? तए णं से भगवं गोयमे खंदयं कच्चायणस्सगोत्तं एवं वयासी–एवं खलु खंदया ! मम धम्मायरिए, धम्मोवएसए, समणे भगवं महावीरे उप्पन्नणाण–दंसणधरे, अरहा, जिणे, केवली, तीअ–पच्चुप्पन्न–मणागयवियाणए, सव्वण्णू, सव्वदरिसी, जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वं अक्खाए, जओ णं अहं जाणामि खंदया !. तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी–गच्छामो णं गोयमा ! तव धम्मायरिअं, धम्मोवएसयं, समणं भगवं महावीरं वंदामो, नमंसामो, जाव–पज्जुवासामो. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं. तए णं से भगवं गोयमे खंदएणं कच्चायणस्सगोत्तेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए. ते णं काले णं, ते णं समये णं समणे भगवं महावीरे वियट्टभोई या वि होत्था. तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं, सिंगारं, कल्लाणं, सिवं, धन्नं, मंगल्लं, अणलंकिअविभूसिअं, लक्खण–वंजण–गुणोववेअं, सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणं चिट्ठइ. तए णं से खंदए कच्चायणस्सगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरयं ओरालं जाव–अईव अईव उवसोभेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ–तुट्ठचित्तमाणंदिए, णंदिए, पीइमणे, परमसोमणसिए, हरिसवसविसप्पमाणहियए जेणेव समणे

पछी भगवान् गौतम कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने पासे आवेला जाणीने, तुरत ज आसनथी उभा थइ ने परिव्राजकनी सामा गया. अने ज्यां कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक हता त्यां आव्या. तथा त्यां आवीने श्रीगौतमे कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने आ प्रमाणे कह्युं के:–हे स्कंदक ! तमने स्वागत छे, हे स्कंदक ! तमने सुस्वागत छे, हे स्कंदक ! तमने अन्वागत छे, हे स्कंदक ! तमने स्वागतअन्वागत छे. अर्थात् हे स्कंदक ! पधारो, भले पधार्या. (ए प्रमाणे श्रीगौतमे स्कंदक परिव्राजकने सन्मान्या.) पछी श्रीगौतमे ते स्कंदकने आ प्रमाणे कह्युं के, 'हे स्कंदक ! श्रावस्ती नगरीमां वैशालिक श्रावक पिंगलक नामना निर्ग्रंथे तमने आ रीते आक्षेपपूर्वक पूछ्युं हतुं के, हे मागध ! लोक अंतवाळो छे. के अंत विनानो छे ! इत्यादि बधुं आगळनी पेठे कहेवुं. यावत्–तेना प्रश्नोथी मुंझाइने तमो अहीं शीघ्र आव्या.' हे स्कंदक ! कहो, ए वात साची के केम ? (श्रीस्कंदके कह्युं के,) हा, ए वात साची छे. पछी कात्यायनगोत्रीय ते स्कंदक परिव्राजके भगवान् गौतमने आ प्रमाणे कह्युं के:–हे गौतम ! ए ते एवा, तेवा प्रकारना ज्ञानी अने तपस्वी पुरुष कोण छे, के जेओए ए मारी गुप्त वात तमने शीघ्र कही दीधी ? जेथी तमे मारी छानी वातने जाणो छो. त्यार पछी भगवान् गौतमे कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने आ प्रमाणे कह्युं के:–हे स्कंदक ! मारा धर्मगुरु, धर्मोपदेशक श्रमण भगवंत महावीर उत्पन्न ज्ञान अने दर्शनना धरनार छे, अर्हंत छे, जिन छे, केवळी छे, भूत, वर्तमान अने भविष्यत्काळना जाणनार छे, तथा सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे, जेणे मने तमारी गुप्त वात शीघ्र कही दीधी छे अने हे स्कंदक ! जेथी हुं तेने (वातने) जाणुं छुं. पछी कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजके भगवान् गौतमने आ प्रमाणे कह्युं के:–हे गौतम ! तारा धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवंत महावीर पासे जइए अने तेओने वंदन करीए, नमन करीए यावत्–तेओनी पर्युपासना करीए. (पछी श्रीगौतमे कह्युं के,) हे देवानुप्रिय ! जेम तमने ठीक लागे तेम करो, विलंब न करो. पछी भगवान् गौतमे ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक साथे ज्यां श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां जवानो संकल्प कर्यो.

---

१. मूलच्छाया:—ततो भगवान् गौतमः स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रम् अदूराऽऽगतं ज्ञात्वा क्षिप्रम् एव अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय क्षिप्रम् एव प्रत्युपगच्छति. येनैव स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रस्तेनैव उपागच्छति, उपागम्य स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रम् एवम् अवादीत्:–हे स्कन्दक ! स्वागतम्, स्कन्दक ! सुस्वागतम्, स्कन्दक ! अन्वागतम्, स्कन्दक ! स्वागतमन्वागतम्. स्कन्दक ! तद् नूनं त्वं स्कन्दकः श्रावस्त्यां नगर्यां पिङ्गलकेन नाम निर्ग्रन्थेन वैशालिकश्रावकेण इदम् आक्षेपं पृष्टः–मागध ! किं सान्तो लोकः, अनन्तो लोकः ? तच्चैव येनैव इह, तेनैव शीघ्रम् आगतः, तद् नूनं स्कन्दक ! अर्थः समर्थः ? हन्त, अस्ति. ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रो भगवन्तं गौतमम् एवम् अवादीत्–स क एष गौतम ! तथारूपो ज्ञानी वा, तपस्वी वा ? येन तव एषोऽर्थो मम तावद् रहस्यकृतः शीघ्रम् आख्यातः, यतस्त्वं जानासि ? ततः स भगवान् गौतमः स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रम् एवम् अवादीत्—एवं खलु स्कन्दक ! मम धर्माऽऽचार्यः, धर्मोपदेशकः, श्रमणो भगवान् महावीर उत्पन्नज्ञान–दर्शनधरः, अर्हः, जिनः, केवली, अतीत–प्रत्युत्पन्ना–ऽनागतविज्ञायकः, सर्वज्ञः, सर्वदर्शी, येन मम एषोऽर्थस्तव तावद् रहस्यकृतः शीघ्रम् आख्यातः, यतोऽहं जानामि स्कन्दक ! ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रो भगवन्तं गौतमम् एवम् अवादीत्–गच्छामो गौतम ! तव धर्माऽऽचार्यम्, धर्मोपदेशकम्, श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामहे, नमस्यामः, यावत्–पर्युपास्महे. यथासुखं देवाऽनुप्रिय ! मा प्रतिबन्धः. ततः स भगवान् गौतमः स्कन्दकेन कात्यायनसगोत्रेण सार्धं येनैव श्रमणो भगवान् महावीरः, तेनैव प्रादीधरद् गमनाय. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरो व्यावृत्तभोजी चापि अभूत्. ततः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य व्यावृत्तभोजिनः शरीरकम् उदारम्, शृङ्गारम्, कल्याणम्, शिवम्, धन्यम्, मङ्गलम्, अनलंकृतविभूषितम्, लक्षण–व्यञ्जन–गुणोपेतम्, श्रिया अतीवाऽतीव उपशोभमानं तिष्ठति. ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य व्यावृत्तभोजिनः शरीरकम् उदारम्, यावत्–अतीवाऽतीव उपशोभमानं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्ट–तुष्टचित्तमानन्दितः, नन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितः, हर्षवशविसर्पद्हृदयो येनैव श्रमणो–अनु०

[illegible] महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण—पयाहिणं करेइ, जाव—पज्जुवासइ.

'खंदया !' त्ति समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं एवं वयासी—से णूणं तुमं खंदया ! सावत्थीए नयरीए पिंगलएणं नियंठेणं, वेसालियसावएणं इणं अक्खेवं पुच्छिए—मागहा ! किं सअंते लोए, अणंते लोए ? एवं तं चेव जाव—जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वं आगए. से णूणं खंदया ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता, अत्थि. जे वि य ते खंदया ! अयमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं सअंते लोए, अणंते लोए०. तस्स वि य णं अयं अट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहे लोए पन्नत्ते, तं जहाः—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ. दव्वओ णं एगे लोए सअंते, खेत्तओ णं लोए असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ आयाम—विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं पण्णत्ता, अत्थि पुण से अंते. कालओ णं लोए ण कयाइ न आसी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ; भविंसु य, भवति य, भविस्सइ य. धुवे, णियए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे; नत्थि पुण से अंते. भावओ णं लोए अणंता वण्णपज्जवा, गंध—रस—फासपज्जवा, अणंता संठाणपज्जवा, अणंता गरुअलहुअपज्जवा, अणंता अगरुअलहुअपज्जवा; नत्थि पुण से अंते. सेत्तं खंदगा ! दव्वओ लोए सअंते, खेत्तओ लोए सअंते, कालओ लोए अणंते, भावओ लोए अणंते. जे वि य ते खंदया ! जाव—सअंते जीवे, अणंते जीवे, तस्स वि य णं अयं अट्ठे—एवं खलु जाव—दव्वओ णं एगे जीवे सअंते, खेत्तओ णं जीवे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे,

ते काले, ते समये श्रमण भगवंत महावीर व्यावृत्तभोजी (हमेशा जमनार) हता. ते व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवंत महावीरनुं उदार, शणगारेला जेवुं, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप, अलंकारो—घरेणां—विना शोभतुं, सारां लक्षणो, व्यंजनो अने गुणोथी युक्त एवुं शरीर शोभावडे अत्यंत शोभतुं हतुं. पछी ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक, व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवंत महावीरनुं पूर्वे प्रकारनुं उदार यावत्—शोभावडे अत्यंत शोभायमान शरीर जोइ हर्ष पाम्यो, तोष पाम्यो, आनंदयुक्त चित्तवाळो थयो, आनंद पाम्यो, प्रीतियुक्त मनवाळो थयो, परम सौमनस्यने पाम्यो तथा हर्षे करीने फुलाएल हृदयवाळो थइ ज्यां श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे ते तरफ जइ, श्रमण भगवंत महावीरने त्रणवार प्रदक्षिणा करी यावत्—तेओनी पर्युपासना करे छे.

पछी 'हे स्कंदक !' एम कही श्रमण भगवंत महावीरे कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे स्कंदक ! श्रावस्ती नगरीमां रहेता वैशालिकश्रावक पिंगलक नामना निर्ग्रंथे तने आ प्रमाणे आक्षेप पूर्वक पूछ्युं हतुं के, 'हे मागध ! शुं लोक अंतवाळो छे के अंत विनानो छे ? ए बधुं आगळ कह्या प्रमाणे जाणी लेवुं, यावत्—तेना प्रश्नोथी मुंझाइने तुं मारी पासे शीघ्र आव्यो छे.' हे स्कंदक ! केम ए साची वात छे ? (श्रीस्कंदके कह्युं के,) हा, ते साची वात छे. वळी हे स्कंदक ! तारा मनमां जे आ प्रकारनो संकल्प थयो हतो के, 'शुं लोक अंतवाळो छे के अंत विनानो छे ?' तेनो पण आ अर्थ छेः—हे स्कंदक ! में लोकने चार प्रकारनो जणाव्यो छे. ते आ प्रमाणेः—द्रव्यथी—द्रव्यलोक. क्षेत्रथी—क्षेत्रलोक. काळथी—काळलोक अने भावथी—भावलोक. तेमां जे द्रव्यलोक छे ते एक छे अने अंतवाळो छे. जे क्षेत्रलोक छे ते असंख्य कोडाकोडी योजन सुधी लंबाइ अने पहोळाइवाळो छे, तथा तेनो परिधि असंख्य योजन कोडाकोडीनो कह्यो छे. अने वळी तेनो अंत—छेडो—छे. तथा जे काळलोक छे ते कोइ दिवस न हतो एम नथी, कोइ दिवस नथी एम नथी अने कोइ दिवस नहीं हशे एम पण नथी—ते हमेशा हतो, हमेशा होय छे अने हमेशा रहेशे—ते ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित अने नित्य छे. वळी तेनो अंत नथी. तथा जे भावलोक छे ते अनंत वर्णपर्यवरूप छे, अनंत गंध, रस अने स्पर्शपर्यवरूप छे, अनंत संस्थान (आकार) पर्यवरूप छे, अनंत गुरुलघु पर्यवरूप छे तथा अनंत अगुरुलघु

---

१. मूलच्छायाः—भगवान् महावीरः, तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति, यावत्—पर्युपास्ते 'स्कन्दक !' इति श्रमणो भगवान् महावीरः स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रम् एवम् अवादीत्—तद् नूनं त्वं स्कन्दक ! श्रावस्त्यां नगर्यां पिङ्गलकेन निर्ग्रन्थेन, वैशालिकश्रावकेण इदम् आक्षेपं पृष्टः—मागध ! किं सान्तो लोकः, अनन्तो लोकः ? एवं तथैव यावत्—येनैव ममाऽन्तिके तेनैव शीघ्रम् आगतः. तद् नूनं स्कन्दक ! अयम् अर्थः समर्थः ? हन्त, अस्ति. योऽपि च स स्कन्दक ! अयम् एतद्रूप आध्यात्मिकः, चिन्तितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत—किं सान्तो लोकः, अनन्तो लोकः०. तस्याऽपि चाऽयम् अर्थः—एवं खलु मया स्कन्दक ! चतुर्विधो लोकः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः. द्रव्यतः एको लोकः सान्तः, क्षेत्रतो लोकोऽसंख्याता योजनकोटाकोट्य आयाम—विष्कम्भेण, असंख्येया योजनकोटाकोट्यः परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः, अस्ति पुनस्तस्य अन्तः, कालतो लोको न कदाचिद् नासीत्, न कदाचिद् न भवति, न कदाचिद् न भविष्यति; अभूत् च, भवति च, भविष्यति च. ध्रुवः, नियतः, शाश्वतः, अक्षतः, अव्ययः, अवस्थितः, नित्यः; नास्ति पुनः तस्य अन्तः. भावतो लोकः अनन्ता वर्णपर्यवाः, गन्ध—रस—स्पर्शपर्यवाः, अनन्ताः संस्थानपर्यवाः, अनन्ता गुरुकलघुकपर्यवाः, अनन्ता अगुरुकलघुकपर्यवाः; नास्ति पुनस्तस्य अन्तः. तद् एतत् स्कन्दक ! द्रव्यतो लोकः सान्तः, क्षेत्रतो लोकः सान्तः, कालतो लोकोऽनन्तः, भावतो लोकोऽनन्तः. योऽपि च स स्कन्दक ! यावत्—सान्तो जीवः, अनन्तो जीवः; [illegible] एवं खलु यावत्—द्रव्यतः एको जीवः सान्तः, क्षेत्रतो [illegible], [illegible]—अनु०

अत्थि पुण से अंते, कालओ णं जीवे न कयाइ न आसी, जाव–निच्चे, नत्थि पुण से अंते. भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, अणंता चारित्तपज्जवा, अणंता अगुरुलहुपज्जवा, नत्थि पुण से अंते, सेत्तं दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे सअंते, कालओ जीवे अणंते, भावओ जीवे अणंते. जे वि य ते खंदया ! (पुच्छा) इमेआरूवे चिंतिए जाव–किं सअंता सिद्धी, अणंता सिद्धी, तस्स वि य णं अयं अट्ठे–मए खंदया ! एवं खलु चउव्विहा सिद्धी पण्णत्ता, तं जहाः–दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ. दव्वओ णं एगा सिद्धी सअंता, खेत्तओ णं सिद्धी पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम–विक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं च जोयणसयसहस्साइं तीसं च जोयणसहस्साइं दोण्णि य अउणापन्नजोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं, अत्थि पुण से अंते. कालओ णं सिद्धी न कयाइ न आसी, भावओ य जहा लोयस्स तहा भाणियव्वा. तत्थ दव्वओ सिद्धी सअंता, खेत्तओ सिद्धी सअंता, कालओ सिद्धी अणंता, भावओ सिद्धी अणंता. जे वि य ते खंदया ! जाव–किं अणंते सिद्धे तं चेव, जाव–दव्वओ णं एगे सिद्धे सअंते, खेत्तओ णं सिद्धे असंखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे अत्थि पुण से अन्ते; कालओ णं सिद्धे सादीए, अपज्जवसिए, नत्थि पुण से अन्ते; भावओ णं सिद्धे अणंता णाणपज्जवा, अणंता दंसणपज्जवा, जाव–अणंता अगुरुलहुयपज्जवा, नत्थि पुण से अन्ते; सेत्तं दव्वओ णं सिद्धे सअंते, खेत्तओ णं सिद्धे सअंते, कालओ णं सिद्धे अणंते, भावओ णं सिद्धे अणंते.

पर्यवरूप छे, वळी तेनो अंत नथी. तो हे स्कंदक ! [illegible] द्रव्यलोक अंतवाळो छे, क्षेत्रलोक अंतवाळो छे, काळलोक अंत विनानो छे अने भावलोक अंत विनानो छे–लोक अंतवाळो छे अने अंत विनानो पण छे. वळी हे स्कंदक ! तने जे आ विकल्प थयो हतो के, शुं जीव अंतवाळो छे के अंत विनानो छे ? तेनो पण आ खुलासो छेः–यावत्–द्रव्यथी जीव एक छे अने अंतवाळो छे, क्षेत्रथी जीव असंख्य प्रदेशवाळो छे अने असंख्य प्रदेशमां अवगाढ छे, तथा तेनो अंत पण छे. काळथी जीव कोइ दिवस न हतो एम नथी, यावत्–नित्य छे अने तेनो अंत नथी. भावथी जीव अनंत ज्ञानपर्यायरूप छे, अनंत दर्शनपर्यायरूप छे, अनंत अगुरुलघु पर्यायरूप छे अने तेनो छेडो–अंत–नथी. तो हे स्कंदक ! ए प्रमाणे द्रव्यजीव अंतवाळो छे, क्षेत्रजीव अंतवाळो छे, काळजीव अंत विनानो छे तथा भावजीव अंत विनानो छे. वळी हे स्कंदक ! तने जे आ विकल्प थयो हतो के, शुं सिद्धि अंतवाळी छे के अंत विनानी छे ? तेनो पण आ उत्तर छे केः–हे स्कंदक ! में सिद्धि चार प्रकारनी कही छे, ते आ प्रमाणेः–द्रव्यथी सिद्धि एक छे अने अंतवाळी छे, क्षेत्रथी सिद्धिनी लंबाइ तथा पहोळाइ पीस्ताळीश लाख योजननी छे. अने तेनो परिधि एक क्रोड, बेंताळीश लाख, त्रीश हजार, बसेंने ओगणपचास योजन करतां कांइक विशेषाधिक छे. तथा तेनो अंत–छेडो–पण छे. काळथी सिद्धि कोइ दिवस न हती एम नथी, कोइ दिवस नथी एम नथी अने कोइ दिवस ते नहीं हशे एवुं पण नथी. तथा भावथी सिद्धि भावलोकनी पेठे कहेवी. तेमां द्रव्यसिद्धि अने क्षेत्रसिद्धि अंतवाळी छे, तथा काळसिद्धि अने भावसिद्धि अंत विनानी छे–सिद्धि अंतवाळी पण छे अने अंत विनानी पण छे. वळी हे स्कंदक ! तने जे आ संकल्प थयो हतो के, सिद्धो अंतवाळा छे के अंत विनाना छे ? तेनो पण आ निवेडो छेः–अहीं बधुं आगळनी पेठे कहेवुं यावत्–द्रव्यथी सिद्ध एक छे अने अंतवाळा छे, क्षेत्रथी सिद्ध असंख्य प्रदेशवाळा छे अने असंख्य प्रदेशमां अवगाढ छे. तथा तेनो अंत पण छे. काळथी सिद्ध आदिवाळा छे अने अंत विनाना छे–तेनो अंत नथी. भावथी सिद्ध अनंत ज्ञानपर्यवरूप छे, अनंत दर्शनपर्यवरूप छे, यावत्–अनंत अगुरुलघु पर्यवरूप छे अने तेनो अंत नथी अर्थात् द्रव्यथी अने क्षेत्रथी सिद्ध अंतवाळा छे तथा काळथी अने भावथी सिद्ध अनंत–अंत विनाना छे–सिद्धो अंतवाळा पण छे अने अंत विनाना पण छे.

---

१. मूलच्छायाः—अस्ति पुनस्तस्य अन्तः, कालतो जीवो न कदाचिद् नासीत्, यावत्–नित्यः. नास्ति पुनस्तस्य अन्तः. भावतो जीवः अनन्ताः ज्ञानपर्यवाः, अनन्ता दर्शनपर्यवाः, अनन्ताः चारित्रपर्यवाः, अनन्ता अगुरुलघुपर्यवाः, नास्ति पुनः तस्य अन्तः, तदेतद् द्रव्यतो जीवः सान्तः, क्षेत्रतो जीवः सान्तः, कालतो जीवोऽनन्तः, भावतो जीवोऽनन्तः. योऽपि च स स्कन्दक ! (पृच्छा) अयम् एतद्रूपः चिन्तितो यावत्–किं सान्ता सिद्धिः, अनन्ता सिद्धिः, तस्याऽपि च अयम् अर्थः—मया स्कन्दक ! एवं खलु चतुर्विधा सिद्धिः प्रज्ञप्ता, तद्यथाः–द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, द्रव्यत एका सिद्धिः सान्ता, क्षेत्रतः सिद्धिः पञ्चचत्वारिंशद् योजनशतसहस्राणि आयाम–विष्कम्भेण, एका योजनकोटिः, द्विचत्वारिंशत् च योजनशतसहस्राणि, त्रिंशत् च योजनसहस्राणि, द्वे च एकोनपञ्चाशद्योजनशते किञ्चिद् विशेषाधिके परिक्षेपेण, अस्ति पुनः तस्य अन्तः. कालतः सिद्धिर्न कदाचिद् नासीत्, भावतश्च यथा लोकस्य तथा भणितव्या. तत्र द्रव्यतः सिद्धिः सान्ता, क्षेत्रतः सिद्धिः सान्ता, कालतः सिद्धिः अनन्ता, भावतः सिद्धिः अनन्ता. योऽपि च स स्कन्दक ! यावत्–किम् अनन्ताः सिद्धाः तच्चैव, यावत्–द्रव्यत एकः सिद्धः सान्तः, क्षेत्रतः सिद्धोऽसंख्येयप्रदेशिकः, असंख्येयप्रदेशावगाढः, अस्ति पुनः तस्य अन्तः, कालतः सिद्धः सादिकः, अपर्यवसितः, नास्ति पुनः तस्य अन्तः, भावतः सिद्धः अनन्ताः ज्ञानपर्यवाः, अनन्ता दर्शनपर्यवाः, यावत्–अनन्ता [illegible], नास्ति पुनः तस्य अन्तः, तदेतद् द्रव्यतः सिद्धः सान्तः, क्षेत्रतः सिद्धः सान्तः, कालतः सिद्धोऽनन्तः, भावतः सिद्धोऽनन्तः–अनु०

[illegible] वि य ते खंदया ! इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, जाव—[illegible]—'केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढति वा, हायति वा' तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु खंदया ! मए दुविहे मरणे पन्नत्ते. तं जहाः—बालमरणे य, पंडियमरणे य. से किं तं बालमरणे ? बालमरणे दुवालसविहे पन्नत्ते. तं जहाः—बलयमरणे, वसट्टमरणे, अन्तोसल्लमरणे, तब्भवमरणे, गिरिपडणे, तरुपडणे जलप्पवेसे, जलणप्पवेसे, विसभक्खणे, सत्थोवाडणे, वेहाणसे, गिद्धपट्ठे. इच्चेतेणं खंदया ! दुवालसविहेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ, तिरिय—मणुअ—देव—अणाइअं च णं अणवदग्गं, चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ, सेत्तं मरमाणे वड्ढइ, सेत्तं बालमरणे. से किं तं पंडियमरणे ? पंडियमरणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहाः—पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य. से किं तं पाओवगमणे ? पाओवगमणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः—नीहारिमे य, अनिहारिमे य नियमा अप्पडिकम्मे. सेत्तं पाओवगमणे. से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ? भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहाः—नीहारिमे य, अनीहारिमे य नियमा सपडिकम्मे, सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे. इच्चेतेणं खंदया ! दुविहेणं पंडियमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं विसंजोएइ, जाव—वीयीवयइ. सेत्तं मरमाणे हायइ. सेत्तं पंडियमरणे. इच्चेएणं खंदया ! दुविहेणं मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ वा, हायइ वा. एत्थ णं से खंदये कच्चायणसगोत्ते संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ; वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासीः—इच्छामि णं भन्ते ! तुज्झं अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं.

वळी हे स्कंदक ! तने जे आ संकल्प थयो हतो के, जीव केवी रीते मरे तो तेनो संसार वधे अने घटे ? तेनो उत्तर आ रीते छेः—हे स्कंदक ! में मरणना बे प्रकार जणाव्या छे. ते आ प्रमाणेः—एक बालमरण अने बीजुं पंडितमरण. (प्र०) बालमरण ए शुं ? (उ०) बालमरणना बार भेद कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—बलन्मरण (तरफडता तरफडता मरवुं), वसट्टमरण—वशार्तमरण (पराधीनता पूर्वक रीबाइने मरवुं), अंतःशल्यमरण (शरीरमां कांइ पण शस्त्रादिक पेसी जवाथी मरवुं अथवा सन्मार्गथी भ्रष्ट थइने मरवुं), तद्भवमरण (जे गतिमांथी मरीने फरीने पाछुं ते ज गतिमां आववुं—मनुष्यरूपे मरीने फरी पण मनुष्य थवुं), पहाडथी पडीने मरवुं, झाडथी पडीने मरवुं, पाणीमां डुबीने मरवुं, अग्निमां पेसीने मरवुं, झेर खाइने मरवुं, शस्त्रवडे मरवुं, झाड वगेरे साथे गळाफांसो खाइने मरवुं अने गिध वगेरे जंगली जनावरो ठोले तेथी मरवुं. हे स्कंदक ! ए बार प्रकारना बालमरणवडे मरतो जीव पोते अनंतवार नैरयिकभवोने पामे छे. तिर्यंच, मनुष्य अने देवगतिरूप, अनादि, अनंत तथा चारगतिवाळा संसाररूप वनमां ते जीव रखडे छे अर्थात् ए प्रमाणे बार जातना मरणवडे मरतो ते जीव पोताना संसारने वधारे छे. ए बालमरणनी हकीकत छे. (प्र०) पंडितमरण ए शुं ? (उ०) पंडितमरण बे प्रकारनुं कह्युं छे. ते आ प्रमाणेः—पादपोपगमन (झाडनी पेठे स्थिर रहीने मरवुं) अने भक्तप्रत्याख्यान (खान पानना त्यागपूर्वक मरवुं). (प्र०) पादपोपगमन ए शुं ? (उ०) पादपोपगमन बे प्रकारनुं कह्युं छे. ते आ प्रमाणेः—निर्हारिम (जे मरनारनुं शब बहार काढी संस्कारवामां आवे ते मरनारनुं मरण निर्हारिम मरण) अने अनिर्हारिम (पूर्वोक्त निर्हारिम मरणथी उलटुं जे, ते अनिर्हारिम मरण). ए बन्ने जातनुं पादपोपगमन मरण प्रतिकर्म विनानुं ज छे. ए प्रमाणे पादपोपगमन मरणनी हकीकत छे. (प्र०) भक्तप्रत्याख्यान ए शुं ? (उ०) भक्तप्रत्याख्यान मरण पण बे प्रकारनुं कह्युं छे. ते आ प्रमाणेः—निर्हारिम अने अनिर्हारिम. ए बन्ने जातनुं भक्तप्रत्याख्यान मरण प्रतिकर्मवाळुं ज छे. ए प्रमाणे भक्तप्रत्याख्यान मरणनी हकीकत छे. हे स्कंदक ! ए बन्ने जातना पंडितमरणवडे मरतो जीव पोते नैरयिकना अनंत भवने पामतो नथी, यावत्—संसाररूप वनने वटी जाय छे—ए प्रमाणे मरता जीवनो संसार घटे छे.

---

१. मूलच्छायाः—योऽपि च स स्कन्दक ! अयम् एतद्रूपः आध्यात्मिकः, चिन्तितः, यावत्—समुदपद्यत—'केन वा मरणेन म्रियमाणो जीवो वर्धते वा, हीयते वा' तस्याऽपि च अयमर्थः—एवं खलु स्कन्दक ! मया द्विविधं मरणं प्रज्ञप्तम्. तद्यथाः—बालमरणं च, पण्डितमरणं च. तत् किं तद् बालमरणम् ? बालमरणं द्वादशविधं प्रज्ञप्तम्. तद्यथाः—बलन्मरणम्, वशार्तमरणम्, अन्तःशल्यमरणम्, तद्भवमरणम्, गिरिपतनम्, तरुपतनम्, जलप्रवेशः-ज्वलनप्रवेशः विषभक्षणम्, शस्त्राऽवपाटनम्, वैहानसम्, गृध्रस्पृष्टम्. इति एतेन स्कन्दक ! द्वादशविधेन बालमरणेन म्रियमाणो जीवोऽनन्तैः नैरयिकभवग्रहणैः आत्मानं संयोजयति, तिर्यग्—मनुष्य—देवाऽनादिकं च अनवनताग्रम्, चातुरन्तं संसारकान्तारम् अनुपर्यटति, तदेतद् म्रियमाणो वर्धते, तद् एतद् बालमरणम्. अथ किं तत् पण्डितमरणम् ? पण्डितमरणं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथाः—पादपोपगमनं च, भक्तप्रत्याख्यानं च. अथ किं तत् पादपोपगमनम् ? पादपोपगमनं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथाः—निर्हारिमं च, अनिर्हारिमं च नियमेन अप्रतिकर्म. तद् एतत् पादपोपगमनम्. अथ किं तद् भक्तप्रत्याख्यानम् ? भक्तप्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथाः—निर्हारिमं च, अनिर्हारिमं च नियमेन सप्रतिकर्म, तद् एतद् भक्तप्रत्याख्यानम्. इति एतेन स्कन्दक ! द्विविधेन पण्डितमरणेन म्रियमाणो जीवोऽनन्तैः नैरयिकभवग्रहणैः आत्मानं विसंयोजयति, यावत्—व्यतिव्रजति. तदेतद् म्रियमाणो हीयते, तद् एतत् पण्डितमरणम्. इति एतेन स्कन्दक ! द्विविधेन मरणेन म्रियमाणो जीवो वर्धते वा, हीयते वा. अत्र स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः [illegible] श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्—इच्छामि भगवन् ! तव अन्तिके केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं [illegible] यथासुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धम्—[illegible].

ए प्रमाणे पंडितमरणनी हकीकत छे. हे स्कंदक ! ए–पूर्वोक्त बे प्रकारना–मरणवडे मरता जीवनो संसार वधे छे अने घटे छे. (आटली वात सांभळ्या पछी) ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक बोध पाम्यो अने तेणे श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, नमी आ प्रमाणे कह्युं के:–हे भगवन् ! तमारा मुखथी केवलिए कहेल धर्मने सांभळवाने इच्छुं छुं. (श्रीमहावीरे कह्युं के,) हे देवानुप्रिय ! जेम ठीक लागे तेम कर, विलंब न कर.

तेए णं समणे भगवं महावीरे खंदयस्स कच्चायणसगोत्तस्स, तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ. धम्मकहा भाणिअव्वा. तए णं से खंदये कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, णिसम्म, हट्ठ–तुट्ठे जाव–हियहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं करेइ, करित्ता एवं वयासीः–सद्दहामि णं भन्ते ! णिग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भन्ते ! णिग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भन्ते ! णिग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भन्ते ! णिग्गंथं पावयणं; एवमेअं भन्ते !, तहमेअं भन्ते !, अवितहमेअं भन्ते !, असंदिद्धमेअं भन्ते !, इच्छिअमेअं भन्ते!, पडिच्छिअमेअं भन्ते !, इच्छिअ–पडिच्छिअमेअं भन्ते !, से जहेअं तुब्भे वदह त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तिदंडं च, कुंडिअं च, जाव–धाउरत्ताओ य एगंते एडेइ, एडित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण–पयाहिणं करेइ, करित्ता जाव–नमंसित्ता एवं वैयासीः–आलित्ते णं भन्ते ! लोए, पलित्ते णं भन्ते ! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते ! लोए जराए, मरणेण य. से जहाणामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि, जे से तत्थ भंडे भवइ, अप्पभारे, मोल्लगुरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ. एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा, पुराए हियाए, सुहाए, खेमाए, निस्सेयसाए, आणुगामियत्ताए भविस्सइ. एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे, कंते, पिए, मणुण्णे, मणामे, थेज्जे, वेस्सासिए, संमए, अणुमए, बहुमए भंडकरंडगसमाणे; मा णं सीअं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा,

त्यार पछी श्रमण भगवंत महावीरे कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने अने त्यां मळेली मोटामां मोटी सभाने धर्म कह्यो. अहीं धर्मकथा कहेवी. पछी ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजक श्रमण भगवंत महावीरना मुखथी धर्मने सांभळी, अवधारी हर्ष पाम्यो, तोष पाम्यो, यावत्–विकसित हृदयवाळो थयो अने पछी तेणे उभा थइ, श्रमण भगवंत महावीरने त्रण प्रदक्षिणा दइ आ प्रमाणे कह्युं के:–हे भगवन् ! निर्ग्रंथना प्रवचनमां हुं श्रद्धा राखुं छुं. हे भगवन् ! निर्ग्रंथना प्रवचनमां हुं प्रीति राखुं छुं. हे भगवन् ! निर्ग्रंथनुं प्रवचन मने रुचे छे. हे भगवन् ! निर्ग्रंथना प्रवचननो हुं स्वीकार करुं छुं. हे भगवन् ! ए ए प्रमाणे छे. हे भगवन् ! ए ते रीते छे. हे भगवन् ! ते सत्य छे. हे भगवन् ! ते संदेह विनानुं छे. हे भगवन् ! ते इष्ट छे. हे भगवन् ! ते प्रतीष्ट छे अने हे भगवन् ! ए इष्ट, प्रतीष्ट छे जे तमे कहो छो. एम करीने ते स्कंदक तापस श्रमण भगवंत महावीरने वांदे छे, नमे छे; पछी उत्तर पूर्वनी दिशाना भागमां (ईशानखूणामां) जइने ते स्कंदक परिव्राजके त्रिदंडने, कुंडिकाने, यावत्–धातु–गेरु–रक्त वस्त्रोने एकांते मूक्यां अने पछी ज्यां श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां आव्यो, श्रमण भगवंत महावीरने त्रण वार प्रदक्षिणा करी ते स्कंदक परिव्राजक आ प्रमाणे बोल्याः–हे भगवन् ! घडपण अने मोतना दुःखथी आ लोक–आ संसार–सळगेलो छे, वधारे सळगेलो छे अने ते एक काळे ज सळगेलो तथा वधारे सळगेलो छे. जेम कोइ एक गृहस्थ होय अने तेनुं घर सळगतुं होय, तथा ते सळगता घरमां तेनो बहु मूल्यवाळो अने ओछा वजनवाळो सामान होय, ते सामानने ते गृहस्थ बळवा देतो नथी. पण ते सामानने लइने एकांते जाय छे. कारण के ते गृहस्थ एम विचारे छे के, जो थोडो पण

१. मूलच्छायाः—ततः श्रमणो भगवान् महावीरः स्कन्दकाय कात्यायनसगोत्राय, तस्यै च महातिमहत्यै पर्षदे धर्मं परिकथयति. धर्मकथा भणितव्या. ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य, हृष्ट–तुष्टः यावत्–हृतहृदय उत्थानेन उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वः आदक्षिण–प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा एवम् अवादीत्:—श्रद्दधामि भगवन् ! नैर्ग्रन्थ्यं प्रावचनम्, प्रत्येमि भगवन् ! नैर्ग्रन्थ्यं प्रावचनम्, रोचये भगवन् ! नैर्ग्रन्थं प्रावचनम्, अभ्युत्तिष्ठे भगवन् ! नैर्ग्रन्थाय प्रावचनाय, एवमेतद् भगवन् !, तथा एतद् भगवन् !, अवितथम् एतद् भगवन् !, असंदिग्धम् एतद् भगवन् !, ईप्सितम् एतद् भगवन् !, प्रतीप्सितम् एतद् भगवन् !, ईप्सित-प्रतीप्सितम् एतद् भगवन् !, तद् यथेदं यूयं वदथ इति कृत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा उत्तर–पौरस्त्ये दिग्भागे अवक्रामति, अवक्रम्य त्रिदण्डं च, कुण्डिकां च यावत्–धातुरक्ताश्च एकान्ते एडयति, एडयित्वा येनैव श्रमणो भगवान् महावीरः तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति, कृत्वा यावत्–नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:–आदीप्तो भगवन् ! लोकः, प्रदीप्तो भगवन् ! लोकः, आदीप्त–प्रदीप्तो भगवन् ! लोको जरया, मरणेन च. तद् यथा नाम कोऽपि गृहपतिः अगारे ध्मायमाने (दह्यमाने) यत् तत् तत्र भाण्डं भवति, अल्पभारम्, मूल्यगुरुकं तद् गृहीत्वा आत्मना एकान्तम् अन्तम् अवक्रामति. एतद् मे निस्तारितं सत् पश्चात्, पुरा हिताय, सुखाय, क्षेमाय, निःश्रेयसाय, अनुगामितायै भविष्यति. एवमेव देवानुप्रिय ! ममापि आत्मा एकं भाण्डम् इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः, मनोऽमः, स्थैर्यम्, वैश्वासिकः, संमतः, अनुमतः, बहुमतः, भाण्डकरण्डकसमानः मा (एनम्) शीतम्, मा उष्णम्, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा चौराः—[illegible]

[illegible] वाला, मा णं दंसा, मा णं मसया, मा णं वाइय–पित्तिय–[illegible]–संनिवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति [illegible] एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए, सुहाए, खेमाए, [illegible]साए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ. तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! [illegible] पव्वाविअं, सयमेव मुंडाविअं, सयमेव सेहाविअं, सयमेव [illegible]विअं, सयमेव आयार–गोयरं विणय–वेणयिय–चरण–[illegible]ण–जाया–मायावत्तियं धम्ममाइक्खिउं.

सामान बचे तो मने ते आगळ पाछळ हितरूप, सुखरूप, कुशळरूप, अने छेवटे कल्याणरूप थशे. ए प्रमाणे ज हे देवानुप्रिय! मारो पण आत्मा एक जातना सामानरूप छे अने ते इष्ट, कांत, प्रिय, सुंदर, मन गमतो, स्थिरतावाळो, विश्वासपात्र, संमत, अनुमत, बहुमत अने घरेणाना करंडिया जेवो छे, माटे तेने टाढ, तडको, भुख, तरस, चोर, वाघ के सर्प, डांस, मच्छर, वात, पित्त, श्लेष्म–सळेखम वगेरे अने सन्निपात वगेरे अनेक प्रकारना रोगो अने जीवलेण दरदो तथा परिषह अने उपसर्गो नुकशान न करे अने जो हुं तेने पूर्वोक्त विघ्नोथी बचावी लउं तो ते मारो आत्मा मने परलोकमां हितरूप, सुखरूप, कुशळरूप अने परंपराए कल्याणरूप थशे. माटे हे देवानुप्रिय! हुं इच्छुं छुं के, आपनी पासे हुं प्रव्राजित थाउं. मुंडित थाउं. प्रतिलेखनादि क्रियाओने शीखुं. सूत्र अने तेना अर्थो भणुं; तथा हुं इच्छुं छुं के तमे आचारने, विनयने, विनयना फळने, चारित्रने, पिंडविशुद्ध्यादिक करणने, संयमयात्राने अने संयमना निर्वाहक आहारना निरूपणने अर्थात् एवा प्रकारना धर्मने कहो.

तए णं समणे भगवं महावीरे खंदयं कच्चायणसगोत्तं सयमेव पव्वावेइ, जाव–धम्ममाइक्खइ–एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एवं चिट्ठिअव्वं, एवं निसीइअव्वं, एवं तुयट्टिअव्वं, एवं भुंजिअव्वं, एवं भासिअव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं, भूएहिं, जीवेहिं, सत्तेहिं संजमेणं संजमिअव्वं, अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमाइअव्वं. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स इमं एआरूवं धम्मियं उवएसं सम्मं संपडिवज्जइ, तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीअइ, तह तुयट्टइ, तह भुंजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं, भूएहिं, जीवेहिं, सत्तेहिं संजमेणं संजमेइ, अस्सिं च णं अट्ठे णो पमायइ. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते, अणगारे जाते, इरियासमिए, भासासमिए, एसणासमिए, आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार–पासवण–खेल–जल्ल–सिंघाणपारिट्ठावणिआसमिए, मणसमिए, वयसमिए, कायसमिए, मणगुत्ते, वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी, चाई, लज्जू, धन्ने, खंतिखमे, जिइंदिए, सोहिए, अणियाणे,

पछी श्रमण भगवंत महावीरे पोते ज ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक परिव्राजकने प्रव्राजित कर्यो अने यावत्–पोते ज धर्म कह्यो केः–हे देवानुप्रिय! आ प्रमाणे जवुं, आ प्रमाणे रहेवुं, आ प्रमाणे बेसवुं, आ प्रमाणे सूवुं, आ प्रमाणे खावुं, आ प्रमाणे बोलवुं अने आ प्रमाणे उठीने प्राण, भूत, जीव तथा सत्त्वो विषे संयमपूर्वक वर्तवुं तथा आ बाबतमां जरा पण आळस न राखवी. पछी ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक मुनिए ते श्रमण भगवंत महावीरनो ए पूर्व प्रमाणेनो धार्मिक उपदेश सारी रीते स्वीकार्यो. अने जे प्रमाणे श्रीमहावीरनी आज्ञा छे ते प्रमाणे ते स्कंदक मुनि चाले छे, रहे छे, बेसे छे, सुवे छे, खाय छे, बोले छे तथा उठीने प्राण, भूत, जीव अने सत्त्वो तरफ दयापूर्वक वर्ते छे तथा ए बाबतमां जरा पण आळस राखता नथी. हवे ते कात्यायनगोत्रीय स्कंदक अनगार थया, तथा ईर्यासमित–चालवामां सावधानतावाळा, भाषासमित–बोलवामां सावधानतावाळा, एषणासमित–खान पान लाववामां अने लेवामां सावधानतावाळा, आदानभांडमात्रनिक्षेपणासमित–पोताना सामानने तथा पात्रोने लेवामां अने मूकवामां काळजीवाळा, उच्चार–

---

१. मूलच्छायाः—मा व्यालाः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा वातिक–पैत्तिक–श्लैष्मिक–सांनिपातिकविविधाः रोगाऽऽतङ्काः, परिषहोपसर्गाः स्पृशन्तु इति, [illegible] एष मे निस्तारितः सन् परलोकस्य हिताय, सुखाय, क्षेमाय, निःश्रेयसाय, अनुगामितायै भविष्यति. तद् इच्छामि देवाऽनुप्रिय! स्वयमेव प्रव्राजितम्, स्वयमेव मुण्डितम्, स्वयमेव सेधितम्, स्वयमेव शिक्षितम्, स्वयमेव आचारगोचरं विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्राप्रत्ययं धर्मम् आख्यातुम्. ततः श्रमणो भगवान् महावीरः स्कन्दकं कात्यायनसगोत्रं स्वयमेव प्रव्राजयति, यावत्–धर्मम् आख्याति–एवं देवाऽनुप्रिय! गन्तव्यम्, एवं स्थातव्यम्, एवं निषत्तव्यम्, एवं त्वग्वर्तितव्यम्, एवं भोक्तव्यम्, एवं भाषितव्यम्, एवम् उत्थाय उत्थाय प्राणैः, भूतैः जीवैः, सत्त्वैः संयमेन संयमितव्यम्, अस्मिंश्च अर्थे न किञ्चिद् अपि प्रमदितव्यम्, ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य इमम् एतद्रूपं धार्मिकम् उपदेशं सम्यक् संप्रतिपद्यते, तद् आज्ञया तथा गच्छति, तथा तिष्ठति, तथा निषीदति, तथा त्वग्वर्तते, तथा भुङ्क्ते, तथा भाषते, तथा उत्थाय उत्थाय प्राणैः, भूतैः, जीवैः, सत्त्वैः संयमेन संयमयति, अस्मिंश्च अर्थे न प्रमाद्यति. ततः स स्कन्दकः कात्यायनसगोत्रोऽनगारो जातः, ईर्यासमितः, भाषासमितः, एषणासमितः, [illegible]निक्षेपणासमितः, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाणकपरिष्ठापनिकासमितः, मनस्समितः, वचस्समितः, कायसमितः, मनोगुप्तः, वचोगुप्तः, [illegible] गुप्तः, गुप्तेन्द्रियः, गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी, लज्जुः, धन्यः, क्षान्तिक्षमः, जितेन्द्रियः, शोधितः, अनिदानः–अनु॰

अप्पुस्सुए, अबहिल्लेसे, सुसामण्णरए, दंते, इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ.

प्रस्त्रवण–खेळ–जल्ल–शिंघानकपरिष्ठापनिकासमित–[illegible] [illegible] अने नाडाछोड–वडी नीति अने लघु नीतिने–करवामां, [illegible] कंठनो मेल नाखवामां, कोइ पण जातनो मेल नाखवामां [illegible] नाकनो मेल नाखवामां सावधान, मानसिक क्रियामां सावधान, वचननी क्रियामां सावधान, शरीरनी क्रियामां सावधान, मनने वश राखनार, वचनने वश राखनार, कायने वश राखनार, सर्वने वश राखनार, इंद्रियने वश राखनार, गुप्त ब्रह्मचारी, त्यागी, सरळ, धन्य, क्षमाथी सहन करनार, जितेंद्रिय, व्रत वगेरेना शोधक, निदान विनाना–कोइ प्रकारनी आकांक्षा विनाना, उतावळ विनाना, संयम सिवाय बीजे स्थळे चित्तने नहीं राखनार, सुंदर साधुपणामां लीन अने दांत एवा स्कंदक अनगार आ ज निर्ग्रंथ प्रवचनने आगळ करी विहरे छे.

तए णं समणे भगवं महावीरे कयंगलाओ नयरीओ, छत्तपलासयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ. तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ. उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी:–इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासिअं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं. तए णं से खंदये अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठे, जाव–नमंसित्ता मासिअं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ. तए णं से खंदये अणगारे मासिअं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, अहासम्मं काएण फासेइ, पालेइ, सोभेइ, तीरेइ, पूरेइ, किट्टेइ, अणुपालेइ, आणाए आराहेइ; सम्मं कायेण फासित्ता जाव–आराहेत्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, समणं भगवं जाव–नमंसित्ता, एवं वयासी:–इच्छामि णं भन्ते! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे दोमासिअं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं, तं चेव. एवं तेमासियं, चाउम्मासियं, पंचमासियं, छम्मासियं, सत्तमासियं, पढमं सत्तराइंदियं, दोच्चं सत्तराइंदियं, तच्चं सत्तराइंदियं, अहोराइंदियं, एगराइयं. तए णं से खंदए अणगारे एगराइयं भिक्खुपडिमं

हवे श्रीश्रमण भगवंत महावीर कृतंगला नगरीथी, छत्रपलाशक नामना चैत्यथी बहार नीकळी जनपद विहारे विहरे छे. त्यार बाद ते स्कंदक अनगार श्रमण भगवंत महावीरना तथारूप स्थविरो पासे सामायिक वगेरे अग्यार अंगोने शीखे छे अने शीखीने, ज्यां श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां जइने, श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, नमी आ प्रमाणे बोल्या केः–हे भगवन्! जो तमे अनुमति आपो तो मासिक भिक्षुप्रतिमाने धारण करी विचरवा इच्छु छु. (श्रीमहावीर बोल्या के,) हे देवानुप्रिय! जेम सुख थाय तेम करो, विलंब न करो. पछी श्रमण भगवंत महावीरनी अनुमति लइ ते स्कंदक अनगार हर्षवाळा थइ यावत्–श्रीमहावीरने नमी मासिक भिक्षुप्रतिमाने धारण करी विहरे छे. त्यार बाद ते स्कंदक अनगार मासिक भिक्षुप्रतिमाने सूत्रने अनुसारे, आचारने अनुसारे, मार्गने अनुसारे सत्यतापूर्वक अने सारी रीते कायवडे स्पर्शे छे, पाळे छे, शोभावे छे, समाप्त करे छे, पूर्ण करे छे, तेनु कीर्तन करे छे, तेनुं अनुपालन करे छे अने तेने आज्ञापूर्वक आराधे छे; तथा तेने कायवडे स्पर्शीने, यावत्–आराधीने, ज्यां श्रीश्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां आवीने, तेमने यावत्–नमीने श्रीस्कंदक अनगार आ प्रमाणे बोल्या केः–हे भगवन्! जो तमे अनुमति आपो तो हुं द्विमासिक भिक्षुप्रतिमाने धारण करीने विहरवा इच्छुं छुं. (श्रीमहावीर बोल्या के,) हे देवानुप्रिय! जेम सुख उपजे तेम करो, विलंब न करो. ए प्रमाणे त्रिमासिक, चतुर्मासिक, पंचमासिक, छमासिक, सप्त-

१. मूलच्छाया–अल्पौत्सुक्य., अबहिर्लेश्य., सुश्रामण्यरत, दान्त, इदम् एव नैर्ग्रन्थं प्रावचनं पुरत. कृत्वा विहरति. ततः श्रमणो भगवान् महावीरः कृतङ्गलातो नगरीत, छत्रपलाशतः चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिर्जनपदविहारं विहरति. तत. स स्कन्दकोऽनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणा स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादिकानि एकादश अङ्गानि अधीते, अधीत्य येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमण भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्–इच्छामि भगवन्! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् मासिकीं भिक्षुप्रतिमाम् उपसंपद्य विहर्तुम्, यथासुखं देवाऽनुप्रिय! मा प्रतिबन्धम्. ततः स स्कन्दकोऽनगारः श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् हृष्टः, यावत्–नमस्यित्वा मासिकीं भिक्षुप्रतिमाम् उपसपद्य विहरति. ततः स स्कन्दकोऽनगारो मासिकीं भिक्षुप्रतिमा यथासूत्रम्, यथाकल्पम्, यथामार्गम्, यथातथ्यम्, यथासम्यक् कायेन स्पर्शयति, पालयति, शोभयति, तीरयति, पूरयति, कीर्तयति, अनुपालयति, आज्ञया आराधयति; सम्यक् कायेन स्पर्शयित्वा, यावत्–आराध्य, येनैव श्रमणो भगवान् महावीरः, तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं यावत्–नमस्यित्वा एवम् अवादीत्–इच्छामि भगवन्! युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् द्वैमासिकीं भिक्षुप्रतिमाम् उपसंपद्य विहर्तुम्, यथासुखं देवाऽनुप्रिय! मा प्रतिबन्धम्, तत् चैव. एवं त्रैमासिकीम्, चातुर्मासिकीम्, पञ्चमासिकीम्, षण्मासिकीम्, सप्तमासिकीम्. प्रथमा सप्त रात्रिंदिवा, द्वितीया सप्त रात्रिंदिवा, तृतीया सप्त रात्रिंदिवा, अहोरात्रिंदिवा, एकरात्रिकी. ततः स स्कन्दकोऽनगारः एकरात्रिकीं भिक्षुप्रतिमाम्–अनु०

[illegible], जाव—आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव [illegible], उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं जाव—नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भन्ते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गुणरयणं [illegible] तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं.

मासिक, प्रथम सात रात्री दिवसनी, बीजी सात रात्री दिवसनी, त्रीजी सात रात्री दिवसनी, चोथी अहोरात्रीनी अने पांचमी रात्री दिवसनी; ए प्रमाणे बार भिक्षुप्रतिमाने आराधे छे. तथा छेल्ली एक रात्री दिवसनी भिक्षुप्रतिमाने सूत्रानुसारे आराधी, ज्यां श्रीश्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां आवी, श्रमण भगवंत महावीरने नमी यावत्—ते स्कंदक अनगार आ प्रमाणे बोल्या केः—हे भगवन् ! जो तमे अनुमति आपो तो हुं गुणरत्न संवत्सर नामना तपने धारण करीने विहरवा इच्छुं छुं. (श्रीमहावीर बोल्या के,) हे देवानुप्रिय ! जेम ठीक पडे तेम करो, विलंब न करो.

तए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे जाव—नमंसित्ता गुणरयणसंवच्छरतवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति. तं जहाः—पढमं मासं चउत्थंचउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य. एवं दोच्चं मासं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेण य. एवं तच्चं मासं अट्ठमंअट्ठमेणं, चउत्थं मासं दसमंदसमेणं, पंचमं मासं बारसमंबारसमेणं, छट्ठं मासं चउद्दसमंचउद्दसमेणं, सत्तमं मासं सोलसमंसोलसमेणं, अट्ठमं मासं अट्ठारसमंअट्ठारसमेणं, नवमं मासं वीसइमंवीसइमेण, दसमं मासं बावीसइमंबावीसइमेण, एक्कारसमं मासं चउवीसइमंचउवीसइमेणं, बारसमं मासं छव्वीसइमंछव्वीसइमेण, तेरसमं मासं अट्ठावीसइमंअट्ठावीसइमेण, चउद्दसमं मासं तिसइमंतिसइमेण, पण्णरसमं मासं बत्तीसइमंबत्तीसइमेण, सोलसमं मासं चोत्तीसइमंचोत्तीसइमेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे, रत्तिं वीरासणेणं अवाउडेणं; तए णं से खंदये अणगारे गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं अहासुत्तं, अहाकप्पं, जाव—आराहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ—छट्ठ—

पछी ते स्कंदक अनगार श्रमण भगवंत महावीरनी अनुमति लइ, यावत्—तेमने नमी गुणरत्न संवत्सर नामना तप कर्मने धारण करीने विहरे छे. ते (गुणरत्न तपनो विधि) आ प्रमाणेः—पहेला मासमां निरंतर उपवास करवा, अने दिवसे सूर्यनी सामी नजर मांडी ज्यां तडको आवतो होय तेवी जग्यामां—आतापनभूमिमां—उभडक बेसी रहेवुं. तथा रात्रीए कांइ पण वस्त्र ओढ्या के पहेर्या सिवाय वीरासने बेसी रहेवुं. ए प्रमाणे बीजे महीने निरंतर छट्ठ—बबे उपवास—करवा अने दिवसे सूर्यनी सामी नजर मांडी तडकामां उभडक बेसी रहेवुं तथा रात्रे कांइ पण पहेर्या के ओढ्या सिवाय वीरासने बेसी रहेवुं. ए प्रमाणे त्रीजे मासे निरंतर अट्ठम—त्रण उपवास—करवा. चोथे मासे दशम—चार चार उपवास—करवा. पांचमे मासे द्वादश—पांच पांच उपवास—करवा. छट्ठे मासे चतुर्दश—छ छ उपवास—करवा. सातमे मासे षोडश—सात सात उपवास—करवा. आठमे मासे अष्टादश—आठ आठ उपवास—करवा. नवमे मासे विंशति—नव नव उपवास—करवा. दशमे मासे द्वाविंशति—दश दश उपवास—करवा. अग्यारमे मासे चतुर्विंशति—अग्यार अग्यार उपवास—करवा. बारमे मासे षड्विंशति—बार बार उपवास—करवा. तेरमे मासे अष्टाविंशति—तेर तेर उपवास—करवा. चौदमे मासे त्रिंशत्—चौद चौद उपवास—करवा. पन्नरमे मासे द्वात्रिंशत्—पन्नर पन्नर उपवास—करवा. अने सोळमे मासे निरंतर चतुस्त्रिंशत्—सोळ सोळ उपवास—करवा, अने सूर्यनी सामी नजर मांडी तडकावाळी जग्याए उभडक बेसी तडको लेवो तथा रात्रीए कांइ पण पहेर्या के ओढ्या सिवाय

---

१. मूलच्छायाः—यथासूत्रम्, यावत्—आराध्य यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं यावत्—नमस्थित्वा एवम् अवादीत्ः—इच्छामि भगवन् ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् गुणरत्नं संवत्सरं तपस्कर्म उपसंपद्य विहर्तुम्, यथासुखं देवाऽनुप्रिय ! मा प्रतिबन्धम्. ततः स स्कन्दकोऽनगारः श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् यावत्—नमस्थित्वा गुणरत्नसंवत्सरतपस्कर्म उपसंपद्य विहरति. तद्यथाः—प्रथमं मासं चतुर्थंचतुर्थेन अनिक्षिप्तेन तपस्कर्मणा दिवा स्थानोत्कुटुकः सूर्याभिमुख आतापनभूमौ आतापयन्, रात्रौ वीरासनेन अप्रावृतश्च. एवं द्वितीयं मासं षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन दिवा स्थानोत्कुटुकः सूर्याऽभिमुख आतापनभूमौ आतापयन्, रात्रिं वीरासनेन अप्रावृतश्च. एवं तृतीयं मासम् अष्टममष्टमेन, चतुर्थं मासं दशमंदशमेन, पञ्चमं मासं द्वादशंद्वादशतमेन, षष्ठं मासं चतुर्दशंचतुर्दशतमेन, सप्तमं मासं षोडशंषोडशतमेन, अष्टमं मासम् अष्टादशमष्टादशतमेन, नवमं मासं विंशतिंविंशतितमेन, दशमं मासं द्वाविंशतिंद्वाविंशतितमेन, एकादशतमं मासं चतुर्विंशतिंचतुर्विंशतितमेन. द्वादशतमं मासं षड्विंशतिंषड्विंशतितमेन, त्रयोदशतमं मासम् अष्टाविंशतिमष्टाविंशतितमेन, चतुर्दशतमं मासं त्रिंशतंत्रिंशत्तमेन, पञ्चदशतमं मासं द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशत्तमेन, षोडशतमं मासं चतुस्त्रिंशच्चतुस्त्रिंशत्तमेन अनिक्षिप्तेन तपस्कर्मणा दिवा स्थानोत्कुटुकः सूर्याभिमुखः आतापनभूमौ आतापयन्, रात्रौ वीराऽऽसनेन अप्रावृतः; ततः स स्कन्दकोऽनगारो गुणरत्नसंवत्सरं तपस्कर्म यथासूत्रम्, यथाकल्पम्, यावत्—आराध्य यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्थित्वा बहुभिः—अनु०

अट्टम–दसम–दुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ.

वीरासने बेसी रहेवुं. पछी ते स्कंदक अनगार गुणरत्न [illegible] नामना तपकर्मने सूत्रानुसारे, आचारानुसारे यावत्–आराधीने [illegible] श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां आवी श्रमण [illegible] महावीरने वांदी, नमी अनेक उपवास, छट्ठ, अट्ठम, दशम [illegible] द्वादशरूप तपकर्मवडे अने मासखमण तथा अर्धमास[illegible] विचित्र तपकर्मवडे आत्माने भावता विहरे छे.

तए णं से खंदए अणगारे तेणं उरालेणं, विउलेणं, पयत्तेणं, पग्गहिएणं, कल्लाणेणं, सिवेणं, धन्नेणं, मंगल्लेणं, सस्सिरीएणं, उदग्गेणं, उदत्तेणं, उत्तमेणं, उदारेणं, महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के, लुक्खे, निम्मंसे, अट्ठि–चम्मावणद्धे, किडिकिडियाभूए, किसे, धमणिसंतए जाए यावि होत्था. जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेण चिट्ठइ, भासं भासित्ता वि गिलाइ, भासं भासमाणे गिलाइ, भासं भासिस्सामीति गिलायति. से जहानामए कट्ठसगडिया इ वा, पत्तसगडिया इ वा, पत्त-तिल-भंडगसगडिया इ वा, एरंडकट्ठसगडिया इ वा, इंगालसगडिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव खंदए वि अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेणं, अवचिए मंस–सोणिएणं, हुयासणे विव भासरासिपडिच्छण्णे तवेणं, तेएणं, तव–तेयसिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे चिट्ठइ. ते णं काले णं, ते णं समये णं रायगिहे नगरे समोसरणं. जाव–परिसा पडिगया. तए णं तस्स खंदयस्स अणगारस्स अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए जाव–समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं जाव–किसे, धमणिसंतए जाए, जीवंजीवेण गच्छामि, जीवंजीवेण चिट्ठामि, जाव–गिलामि, जाव–एवामेव अहं पि ससद्दं गच्छामि, ससद्दं चिट्ठामि, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे तं जाव–ता मे अत्थि उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे, जाव–य मे धम्मायरिए, धम्मोवदेसए, समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी अच्छिति (विहरइ), तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे

हवे ते स्कंदक अनगार पूर्वोक्त प्रकारना उदार, विपुल, [illegible] प्रगृहीत, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, शोभा[illegible], उत्तम, उदात्त–उज्ज्वल, सुंदर, उदार अने मोटा प्रभाववाळा तपकर्मथी शुष्क थया, रूक्ष थया, मांसरहित थया, मात्र हाडकां अने चामडाथी ज अवनद्ध–ढंकाएला–रह्या, चाले त्यारे हाडकां [illegible] एवा थया, दुबळा थया अने तेना शरीर उपर बधी नाडीओ [illegible] आवी एवा थया. हवे ते मात्र पोताना आत्मबळथी ज गति अने स्थिति करे छे, तथा एवा दुर्बळ थइ गया छे के, बोली रह्या पछी अने बोलतां बोलतां तथा बोलवानुं काम पडे त्यारे पण ग्लानि पामे छे. जेम कोइ एक लाकडाथी भरेली सगडी होय, पांदडाथी भरेली सगडी होय, पांदडा, तल अने बीजा कोइ सुका सामानथी भरेली सगडी होय, एरडाना लाकडाथी भरेली सगडी होय तथा अंगाराथी भरेली सगडी होय; ज्यारे ते बधी सगडीओने तडके सुकव्या पछी ढसडवामां आवे त्यारे ते सगडीओ अवाज करती करती गति करे छे अने अवाज करती करती उभी रहे छे. ए ज प्रमाणे स्कंदक अनगार पण ज्यारे चाले छे तथा उभा रहे छे त्यारे खडखड शब्द थाय छे अने ते अनगार तपथी पुष्ट छे, मांस तथा लोहिथी क्षीण छे अने राखना ढगलामां भारेल अग्निनी पेठे तपवडे, तेजवडे तथा तप अने तेजनी शोभावडे बहु बहु शोभता रहे छे. ते काले, ते समये राजगृह नगरमां समवसरण थयुं. अने यावत्–(धर्म सांभळीने) सभा पाछी चाली गई. हवे कोइ एक दिवसे रात्रीने पाछले पहोरे जागता जागता धर्म विषे विचार करतां ते स्कंदक अनगारना मनमां आ प्रमाणे संकल्प थयो केः–हुं पूर्व प्रकारना उदार तपकर्मवडे यावत्–दुबळो थइ गयो छुं अने मारी बधी नाडीओ बहार तरी आवी छे. तथा हुं

---

१. मूलच्छायाः—चतुर्थ–षष्ठा–ऽष्टम–दशम–द्वादशैः, मासाऽर्धमासक्षमणैः विचित्रैः तपस्कर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति. ततः स स्कन्दकोऽनगारः तेन उदारेण, विपुलेन, प्रयत्नेन (प्रदत्तेन) प्रगृहीतेन, कल्याणेन, शिवेन, धन्येन, मङ्गल्येन, सश्रीकेण, उदग्रेण, उदात्तेन, उत्तमेन, उदारेण, महानुभागेन तपस्कर्मणा शुष्कः, रूक्षः, निर्मांसः, अस्थिचर्माऽवनद्धः,किटीकिटीकाभूतः, कृशः, धमनीसंततो जातश्चाऽपि अभूत्. जीवंजीवेन गच्छति, जीवंजीवेन तिष्ठति, भाषां भाषितुम् अपि ग्लायति, भाषां भाषमाणो ग्लायति, भाषां भाषिष्ये इति ग्लायति. अथ यथा नाम काष्ठशकटिका इति वा, पत्रशकटिका इति वा, पत्र-तिल–भाण्डकशकटिका इति वा, एरण्डकाष्ठशकटिका इति वा, अङ्गारशकटिका इति वा उष्णे दत्ता शुष्का सती सशब्दं गच्छति, सशब्दं तिष्ठति, एवम् एव स्कन्दकोऽपि अनगारः सशब्दं गच्छति, सशब्दं तिष्ठति, उपचितः तपसा, अपचितो मांसशोणितेन, हुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्नः तपसा, तेजसा, तपस्तेजःश्रिया अतीव अतीव उपशोभमानः तिष्ठति. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये राजगृहे नगरे समवसरणम्. यावत्– पर्षत् प्रतिगता. ततः तस्य स्कन्दकस्य अनगारस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्राऽपररात्रकालसमये धर्मजागरिकां जाग्रतः अयम् एतद्रूपः आध्यात्मिकः, चिन्तितो यावत्–समुदपद्यत–एवं खलु अहम् अनेन एतद्रूपेण उदारेण यावत्–कृशः, धमनीसंततो जातः, जीवंजीवेन गच्छामि, जीवंजीवेन तिष्ठामि, यावत्–ग्लायामि, यावत्–एवमेव अहमपि सशब्दं गच्छामि, सशब्दं तिष्ठामि, तद् अस्ति तावद् मम उत्थानम्, कर्म, बलम्, वीर्यम्, पुरुषकारपराक्रमः; तद् यावत् तावद् मम अस्ति उत्थानम्, कर्म, बलम्, वीर्यम्, पुरुषकारपराक्रमः, यावत् मम धर्माचार्यः, धर्मोपदेशकः, श्रमणो भगवान् महावीरो जिनः शुभार्थी (सुहस्ती) आस्ते (विहरति), तावता मम श्रेयः, कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां [illegible] [illegible] यथापाण्डुरे:–अनु॰

[illegible], रत्तासोगप्पगासे, किंसुय–सुयमुह–गुंजद्धरागसरिसे, कमला-[illegible], उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा [illegible] समणं भगवं महावीरं वंदित्ता, नमंसित्ता जाव–पज्जुवासित्ता, [illegible] भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सयमेव पंच [illegible] आरोवेत्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, तहा-[illegible] थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरु-[illegible] मेहघणसंनिगासं, देवसंनिवातं पुढवीसिलापट्टयं पडिले-[illegible], दब्भसंथारगं संथरित्ता, दब्भसंथारोवगयस्स, संलेहणा–[illegible]झूसिअस्स, भत्त–पाणपडियाइक्खियस्स, पाओवगयस्स, [illegible] अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता [illegible] पाउप्पभायाए रयणीए जाव–जलंते जेणेव समणे भगवं [illegible]वीरे, तेणेव जाव–पज्जुवासइ.

मात्र आत्मबळथी ज गति अने स्थिति करुं छुं, यावत्–बोलतां बोलतां पण ग्लान थइ जाउं छुं. यावत्–ए सगडीओनी ज प्रमाणे हुं पण चालुं छुं अने बेसुं छुं त्यारे खडखड शब्द थाय छे. आवी स्थितिमां पण मने उत्थान छे, कर्म छे, बळ छे, वीर्य छे अने पुरुषकारपराक्रम पण छे. तो ज्यां सुधी मने उत्थान, कर्म, बळ, वीर्य अने पुरुषकारपराक्रम पण छे अने ज्यां सुधी मारा धर्माचार्य, धर्मोपदेशक अने शुभार्थी श्रमण भगवंत महावीर जिन विहरे छे, त्यां सुधी अर्थात् श्रीमहावीरनी समक्ष मारुं कल्याण छे माटे आवती काले प्रकाशवाळी रात्री थया पछी–मळसकुं थया पछी, कोमळ कमळ खील्या पछी तथा एक जातना हरिणनी आंखो उघड्या पछी, निर्मळ प्रभात थया पछी अने राता अशोकनी जेवा प्रकाशवाळो, केसुडां, पोपटनी चांच अने चणोठीना अडधा भाग जेवो लाल, कमळना समूहवाळा वनखंडोने विकसावनारो, हजार किरणोवाळो तथा तेजथी जळहळतो एवो दिनकर–सूर्य–उग्या पछी श्रीश्रमण भगवंत महावीर पासे जइ, तेमने वांदी, नमी तथा यावत्–तेओनी पर्युपासना करी, श्रमण भगवंत महावीरनी अनुमति लइ, पांच महाव्रतोने आरोपी, श्रमण तथा श्रमणीओ–साध्वीओ–ने खमावी, तेवा प्रकारना योग्य स्थविरो साथे विपुल पर्वत उपर धीमे धीमे चडी, मेघना समूहनी जेवा वर्णवाळा अने देवोने उतरवाना ठेकाणारूप पृथिवीशिलापट्टकनुं प्रतिलेखन करी, तेना उपर डाभनो संथारो पाथरी, आत्माने संलेखना तथा शोषणाथी युक्त करी, खान पाननो त्याग करी, वृक्षनी पेठे स्थिर रही मारे काळनी अवकांक्षा न करतां विहरवुं जोइए. ए प्रमाणे विचार करी, प्रातःकाळ थया पछी यावत्–सूर्य उग्या पछी ज्यां श्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे, त्यां जइ यावत्–तेओनी पर्युपासना करे छे.

'खंदया' ! इ समणे भगवं महावीरे खंदयं अणगारं एवं वयासीः–से णूणं तव खंदया ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव–[illegible]माणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं तवेणं ओरालेणं, विउलेणं तं चेव जाव–कालं अणवकंखमाणस्स विहारित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेसि, (संपेहेति) संपेहित्ता कल्लं पाउप्पभायाए जाव–जलंते जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए. से णूणं खंदया ! अट्ठे समट्ठे ? हन्ता, अत्थि. अहासुहं देवाणुप्पिया !, मा पडि-

पछी 'हे स्कंदक' ! एम कही श्रमण भगवंत महावीरे स्कंदक अनगारने आ प्रमाणे कह्युं केः–हे स्कंदक ! रात्रीना पाछला पहोरे जागता जागता धर्म विषे चिंतन करतां तने आ प्रमाणे संकल्प थयो हतो के, हुं ए पूर्व प्रकारना उदार अने विपुल तपवडे बहु दुबळो थयो छुं माटे (अहीं बधुं ए प्रमाणे कहेवुं) यावत्–मारे काळनी अवकांक्षा न करतां विहरवुं ए उचित छे. अने ए प्रमाणे तें विचार करी सवार थतां ज यावत्–सूर्य उग्या पछी तुं शीघ्र मारा तरफ आव्यो छे. तो हे स्कंदक ! तुं कहे के ए साची वात

---

१. मूलच्छायाः—प्रभाते, रक्ताऽशोकप्रकाशे, किंशुक–शुकमुख–गुञ्जार्धरागसदृशे, कमलाकरखण्डबोधके, उत्थिते सूर्ये सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति (सति) श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा, नमस्थित्वा यावत्–पर्युपास्य श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरोप्य श्रमणांश्च श्रमणीश्च क्षमयित्वा तथारूपैः स्थविरैः कृतादिभिः सार्धं विपुलं पर्वतं शनैः शनैः दूरुह्य मेघघनसन्निकाशम्, देवसन्निपातं पृथिवीशिलापट्टकं [illegible], दर्भसंस्तारकं संस्तीर्य, दर्भसंस्तारकोपगतस्य संलेखना–जोषणाजुषितस्य, प्रत्याख्यातभक्त–पानस्य, पादपोपगतस्य, कालम् अनवकाङ्क्षमाणस्य विहर्तुम् [illegible] कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत्–ज्वलति येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव यावत्–पर्युपास्ते. 'स्कन्दक !' इति [illegible] भगवान् महावीरः स्कन्दकम् अनगारम् एवम् अवादीत्ः—तद् नूनं तव स्कन्दक ! पूर्वरात्राऽपररात्रकालसमये यावत्–जाग्रतः अयम् एतद्रूप [illegible] यावत्–समुदपद्यत–एवं खलु अहम् अनेन एतद्रूपेण तपसा उदारेण, विपुलेन तचैव यावत्–कालम् अनवकाङ्क्षमाणस्य विहर्तुम् इति कृत्वा [illegible], संप्रेक्ष्य कल्यं प्रादुष्प्रभातायां यावत्–ज्वलति येनैव [illegible] तेनैव [illegible]. तद् नूनं स्कन्दक ! अर्थः समर्थः ? हन्त, अस्ति. [illegible] ! मा प्रतिबन्धम्—अनु॰

वन्नं. तेए णं से खंदए अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठ–तुट्ठ० जाव–हयहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणप्पयाहिणं करेइ, जाव–नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता समणा य, समणीओ य खामेइ. तहारूवेहिं थेरेहिं कडाईहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहेइ, मेहघणसन्निगासं, देवसन्निवायं पुढविसिलावट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चार–पासवण–भूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता, दब्भसंथारं (संथरइ) संथरित्ता, पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासीः–नमोऽत्थु णं अरिहंताणं, भगवंताणं, जाव–संपत्ताणं. नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव–संपाविउकामस्स. वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगये इहगयं ति कट्टु वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः–पुव्विं पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वे पाणाइवाये पच्चक्खाए जावज्जीवाए, जाव–मिच्छादंसणसल्ले पच्चक्खाए जावज्जीवाए. इयाणिं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जाव–मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि. एवं सव्वं असण–पाण–खाइम–साइमेणं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, जं पि य इमं सरीरं इट्ठं. कंतं, पियं, जाव–फुसन्तु त्ति कट्टु एअं पि णं चरमेहिं उस्सासनीसासेहिं वोसिरिस्सामि त्ति कट्टु संलेहणा–झूसणाझूसिए, भत्त–पाणपडियाइक्खिए, पाओवगए, कालं अणवकंखमाणे विहरइ.

छे ! (श्रीस्कंदके कह्युं के,) हा ए साची वात छे. ([illegible] कह्युं के,) हे देवानुप्रिय ! जेम सुख थाय तेम करो, [illegible] न करो. पछी ते स्कंदक अनगार श्रमण भगवंत महावीरनी [illegible] मति लइने हर्षवाळा, तोषवाळा यावत्–विकसित हृदयवाळा [illegible] उभा थया. उभा थइ श्रमण भगवंत महावीरने त्रण वार [illegible] करी यावत्–नमस्कार करी पोतानी मेळे ज पांच [illegible] आरोपे छे. आरोपी साधु अने साध्वीओने खमावे छे, [illegible] तेवा प्रकारना योग्य स्थविरो साथे विपुलपर्वत उपर धीमे [illegible] चडी, मेघना समूहनी जेवा प्रकाशवाळा अने देवना [illegible] पृथिवीशिलापट्टकने पडिलेहे–चारे बाजु तपासे–छे, तेम [illegible] नीति अने लघु नीति करवाना स्थानने तपासे छे. पछी ते शिला-पट्टक उपर डाभनो संथारो पाथरी, पूर्व दिशामां मुख [illegible] पर्यंकासने बेसी, दशे नख सहित बन्ने हाथने भेगा करी–माथा साथे अडकावी–माथा साथे बन्ने हाथने जोडी आ प्रमाणे बोल्या केः–अरिहंत, भगवंतने यावत्–अचळ स्वरूपने प्राप्त थएलाओने नमस्कार थाओ. तथा अचळ स्थानने पामवानी इच्छावाळा श्रमण भगवंत महावीरने नमस्कार थाओ. त्यां रहेला श्रमण भगवंत महावीरने अहीं रहेलो हुं वांदुं छुं, त्यां रहेला श्रमण भगवंत महावीर अहीं रहेला मने जूओ. एम करीने भगवंतने वांदी, नमी आ प्रमाणे बोल्या केः–में पहेलां पण श्रमण भगवंत महावीरनी पासे 'कोइ पण जीवनो विनाश न करवो–कोइ पण प्रकारे कोइने दुःख न देवुं' एवो नियम ज्यां सुधी जींदगी टके त्यां सुधी लीधो हतो अने यावत्–'वस्तुनुं ज्ञान, जेवी वस्तु होय तेवुं ज करवुं, पण तेथी जूदुं के उलटुं न समजवुं' एवो पण नियम ज्यां सुधी जीवुं त्यां सुधी पाळवानो निर्णय कर्यो हतो अने हमणां पण श्रमण

---

१. मूलच्छायाः—ततः स स्कन्दकोऽनगारः श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् हृष्टतुष्टः यावत्–हतहृदय उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, यावत्–नमस्यित्वा स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरोहति, आरुह्य श्रमणांश्च श्रमणींश्च क्षमयति, तथारूपैः स्थविरैः कृतादिभिः सार्धं विपुलं पर्वतं शनैः शनैः दूरोहति, मेघघनसन्निकाशम्, देवसन्निपातं पृथिवीशिलापट्टकं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य उच्चार–प्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य दर्भसंस्तारकं (संस्तृणोति,) संस्तीर्य, पौरस्त्याऽभिमुखः संपल्यङ्कनिषण्णः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसाऽऽवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवम् अवादीत्:—नमोऽस्तु अर्हद्भ्यः, भगवद्भ्यः, यावत्–संप्राप्तेभ्यः, नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय यावत्–संप्राप्तुकामाय, वन्दे भगवन्तं तत्रगतम् इहगतः, पश्यतु मम भगवान् तत्रगत इहगतम् इति कृत्वा वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:—पूर्वमपि मया श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके सर्वः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातो यावज्जीवम्, यावत्—मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यातं यावज्जीवम्. इदानीमपि च श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्, यावत्–मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि. एवं सर्वम् अशन–पान–खादिम–स्वादिमं चतुर्विधमपि आहारं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्, यद् अपि च इदं शरीरम् इष्टम्, कान्तम्, प्रियम्, यावत्–स्पृशन्तु इति कृत्वा एतदपि चरमैः उच्छ्वासनिःश्वासैः व्युत्स्रक्ष्यामि इति कृत्वा संलेखना–जोषणाजुषितः प्रत्याख्यातभक्त–पानः पादपोपगतः, कालम् अनवकाङ्क्षमाणो विहरतिः–अनु०

१. राजगृह (जूओ पृ–१३ मांनुं १. गूजराती टिप्पण.) नगरथी अडधा गाउ जेटले छेटे पांच पहाडो आवेला छेः—१. विभारगिरि, २. विपुलगिरि, ३. उदयगिरि, ४. सुवर्ण(सोवन)गिरि, अने ५. रयण (रत्न)गिरि. (जूओ पृ–१७–मांनुं † आ निशानीवाळुं टिप्पण.) ते पांच [illegible] एक विपुलपर्वत नामनो पहाड छे. प्रायः श्रीस्कंदके पण आ पहाड उपर जइने अनशन कर्युं होय एम जाणी शकाय छे. 'श्रीसमेतशिखररास' ([illegible] विक्रम संवत् १६६१ मां श्रीविजयदेवसूरिना समये कल्याणविजय उपाध्यायना शिष्य जयविजये बनाव्यो छे अने तेमां जे हकीकत [illegible] ते प्रायः ग्रंथकारे नजरे जोएली छे.) नामना पुस्तकमां ए पहाडो संबंधे नीचे प्रमाणे जणाव्युं छेः—

"वैभारगिरि थकी उतरी चढिउ विपुलगिरिंद रे । थट परिमाण एह जिणहर पूज करं जिनचंद रे ॥ ६१ ॥ जयो० ॥ [illegible] सोवनगिरि जाण रे । रयणगिरि सिरि उपरिं दोय प्रासाद वखाण रे ॥ ६२ ॥ जयो० ॥ पंच ए पर्वत फरसीया " × × × × [illegible] विभारगिरिवर उपरि । श्रीजिनबिंब सोहामणां एकसो पंचास सुणीइ । नव विपुलगिरि उपरि [illegible] सिरि [illegible] रयणगिरि सिरि पंच ।"–(श्रीसमेतशिखररास, पृ० ८ [illegible])–अनु०

भगवंत महावीर पासे ज्यां सुधी जीवुं त्यां सुधी 'कोइने कोइ पण प्रकारे दुःख न देवुं' अने यावत् 'वस्तुनुं ज्ञान, तेना स्वभाव उपरथी करवुं पण तेथी जूठुं न करवुं' एवा नियमो लउं छुं तथा सर्व प्रकारनी खावानी वस्तुनो, सर्व प्रकारना पाणीनो, सर्व प्रकारना मेवा, मिठाइनो अने सर्व प्रकारना मशाला तथा मुखवासनो—एम चारे जातना आहारनो ज्यां सुधी जीवुं त्यां सुधी त्याग करुं छुं. वळी जे आ दुःखने न देवा लायक यावत्—इष्ट, कांत अने प्रिय मारुं शरीर छे, तेने पण हुं मारा छेल्ला श्वासोच्छ्वासे—मरवानी छेल्ली घडीए—त्याग करी दइश, एम करी तेणे संलेखना अने झूषणा करी, खान, पाननो त्याग कर्यो, तथा ते झाडनी पेठे स्थिर रही, काळनी अवकांक्षा न करतां विहरे छे—रहे छे.

तए णं से खंदए अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जेत्ता, बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासिआए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइयपडिक्कन्ते, समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए. तए णं ते थेरा भगवंतो खंदयं अणगारं कालगयं जाणित्ता परीनिव्वाणवत्तियं काउसग्गं करेंति, करित्ता पत्त—चीवराणि गिण्हंति, गेण्हित्ता विपुलाओ पव्वयाओ सणियं सणियं पच्चोसक्कंति, पच्चोसक्कित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए, पगइविणीए, पगइउवसंते, पगईपयणु-कोह—माण—माया—लोभे, मिउमद्दवसंपन्ने, अल्लीणे, भद्दए, विणीए. से णं देवाणुप्पियेहिं अब्भणुन्नाए समाणे सयमेव पंच महव्वयाणि आरोवित्ता, समणा य समणीओ य खामेत्ता, अम्हेहिं सद्धिं विपुलं पव्वयं तं चेव निरवसेसं जाव—आणुपुव्वीए कालगए. इमे य से आयारभंडए. 'भंते' ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता एवं वयासीः—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी खंदए नामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववण्णे ? 'गोयमादि' ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वदासी—एवं खलु गोयमा ! मम अन्तेवासी खंदए नामं अणगारे पगइभद्दए, जाव—से णं मए अब्भणुन्नाए

हवे ते स्कंदक अनगार श्रमण भगवंत महावीरना तेवा प्रकारना स्थविरो पासे सामायिक वगेरे अग्यार अंगोने भणी, पूरेपूरां बार वर्ष सुधी साधुपणुं पाळी—साचवी—एक महीनानी संलेखनावडे आत्माने संयोजी, साठ टंक खाधा विनाना वीतावी, आलोचन अने प्रतिक्रमण करी, समाधि प्राप्त करी क्रमपूर्वक काळधर्मने—मरणने—पाम्या. पछी ते स्थविर भगवंतो स्कंदक अनगारने मरण पामेल जाणी, तेना परिनिर्वाण निमित्ते काउसग्ग—कायोत्सर्ग—एक प्रकारनुं ध्यान—करे छे. अने तेनां वस्त्रो अने पात्रो ले छे. पछी ते विपुल पर्वत उपरथी धीमे धीमे उतरी, ज्यां श्रीश्रमण भगवंत महावीर विराज्या छे त्यां आवी, श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, नमी ते स्थविरोए आ प्रमाणे कह्युं केः—आप देवानुप्रियना शिष्य स्कंदक नामना अनगार, जे प्रकृतिए—स्वभावे—भद्र, विनयी, शांत, ओछा क्रोध, मान, माया अने लोभवाळा, अत्यंत निरभिमानी, गुरुनी ओथे रहेनारा, कोइने संतापे नहीं एवा अने गुरुभक्त हता. तथा जे आप देवानुप्रियनी अनुमतिथी पोतानी मेळे ज पांच महाव्रतोने आरोपी, साधु—श्रमण—अने श्रमणी—साध्वी—ओने खमावी, अमारी साथे विपुल पर्वत उपर आव्या हता (अहीं बधुं पूर्व प्रमाणे कहेवुं) यावत्—ते (स्कंदक अनगार) क्रमपूर्वक काळधर्मने पाम्या छे. अने आ तेनां उपकरणो—वस्त्र, पात्रो—छे. हवे 'भगवन् !' एम कही भगवान् गौतमे श्रमण भगवंत महावीरने वांदी, नमी आ प्रमाणे कह्युं केः—आप देवानुप्रियना शिष्य स्कंदक नामना अनगार काळमासे काळ करी क्यां गया छे अने क्यां

---

१. मूलच्छायाः—ततः स स्कन्दकोऽनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादिकानि एकादश अङ्गानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णानि द्वादशवर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा, मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, षष्टिभक्तानि अनशनेन छित्त्वा, आलोचितप्रतिक्रान्तः, समाधिप्राप्तः आनुपूर्व्या कालगतः. ततस्ते स्थविरा भगवन्तः स्कन्दकम् अनगारं कालगतं ज्ञात्वा परिनिर्वाण-प्रत्ययिकं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कृत्वा पात्र—चीवराणि गृह्णन्ति, गृहीत्वा विपुलात् पर्वतात् शनैः शनैः प्रतिसंक्रामन्ति, प्रतिसंक्रम्य येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव उपागच्छति, श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति (वन्दित्वा,) नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:—एवं खलु देवाऽनुप्रियाणाम् अन्तेवासी स्कन्दको नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः, प्रकृतिविनीतः, प्रकृत्युपशान्तः, प्रकृतिप्रतनुक्रोध—मान—माया—लोभः, मृदुमार्दवसंपन्नः, आलीनः, भद्रकः, विनीतः. स देवानुप्रियैः अभ्यनुज्ञातः सन् स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरोप्य, श्रमणांश्च, श्रमणीश्च क्षमयित्वा, अस्माभिः सार्धं विपुलं पर्वतं तच्चैव निरवशेषं यावत्—आनुपूर्व्या कालगतः. इदं च तस्य आचारभाण्डकम्, 'भगवन् !' इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:—एवं खलु देवाऽनुप्रियाणाम् अन्तेवासी स्कन्दको नाम अनगारः कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गतः, कुत्र उपपन्नः ? [illegible] श्रमणो भगवान् महावीरो भगवन्तं गौतमम् एवम् अवादीत्—एवं खलु गौतम ! मम अन्तेवासी स्कन्दको नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः, [illegible]

समाणे सयमेव पंच महव्वयाइं आरुहेत्ता, तं चेव सव्वं अवसेसिअं नेयव्वं, जाव—आलोइअपडिक्कंते, समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने, तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, तस्स णं खंदयस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता. से णं भन्ते! खंदए देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ? त्ति. गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति, बुज्झिहिति, मुच्चिहिति, परिणिव्वाहिति, सव्वदुक्खाणं अन्तं करेहिति.

उत्पन्न थया छे! त्यारे 'हे गौतम वगेरे' एम [illegible] महावीरे भगवान् गौतमने आ प्रमाणे कह्युं के, हे [illegible] स्वभावे भद्र यावत्—मारा शिष्य स्कंदक नामे अनगार [illegible] मतिथी पोतानी मेळे ज पांच महाव्रतोने आरोपी (अहीं [illegible] प्रमाणे ज कहेवुं) यावत्—आलोचन अने प्रतिक्रमण करी, [illegible] पामी कालमासे काळ करी अच्युतकल्पमां देवपणे उत्पन्न थया [illegible] ते कल्पमां केटलाक देवोनुं बावीश सागरोपमनुं आयुष्य [illegible] अने ते स्कंदक देवनुं पण बावीश सागरोपमनुं आयुष्य [illegible] (श्रीगौतमे कह्युं के) हे भगवन्! ते स्कंदक देव, ते आयुष्यनो क्षय थया पछी, ते भवनो क्षय थया पछी अने ते स्थितिनो [illegible] थया पछी ते देवलोकथी च्यवीने तुरत ज क्यां जशे अने क्यां उत्पन्न थशे? हे गौतम! ते स्कंदक देव पोतानुं आयुष्य पूरुं [illegible] पछी महाविदेह क्षेत्रमां सिद्ध थशे, बुद्ध थशे, मुक्त थशे, परि- निर्वाण पामशे अने सर्व दुःखोनो विनाश करशे.

खंदओ सम्मत्तो.

अहीं श्रीस्कंदकनुं जीवनवृत्त पूरुं थयुं.

४. इह अनन्तरं संयतस्य संसारवृद्धि—हानी उक्ते, सिद्धत्वं च इति. अधुना तु तेषाम्—अन्येषां च अर्थानां व्युत्पादनार्थं स्कन्दक-चरितं विवक्षुरिदमाहः—'*ते णं काले णं*' इत्यादि. '*उप्पन्ननाण—दंसणधरे*' इह यावत्—करणात् '*अरहा, जिणे, केवली, सव्वन्नू, सव्वद-रिसी, आगासगएणं छत्तेणं*' इत्यादि समवसरणान्तं वाच्यमिति. '*गद्दभालस्स*' त्ति गर्दभालाभिधानपरिव्राजकस्य, '*रिउव्वेद—जजुव्वेद—सामवेद—अथव्वणवेद*' त्ति इह षष्ठीबहुवचनलोपदर्शनाद् ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेदा—ऽथर्वणवेदानामिति दृश्यम्. इतिहासः पुराणम्, स पञ्चमो येषां ते—तथा तेषाम्, '*चउण्हं वेयाणं*' ति विशेष्यपदम्. '*निग्घंटुछट्ठाणं*' ति निघण्टुर्नामकोशः. '*संगोवंगाणं*' ति अङ्गानि शिक्षादीनि षट्, उपाङ्गानि तदुक्तप्रपञ्चनपराः प्रबन्धाः. '*सरहस्साणं*' ति ऐदंपर्ययुक्तानाम्. '*सारए*' त्ति सारकोऽध्यापनद्वारेण प्रवर्तकः, स्मारको वा—अन्येषां विस्मृतस्य सूत्रादेः स्मारणात्. '*वारए*' त्ति वारकोऽशुद्धपाठनिषेधात्. '*धारए*' त्ति क्वचित् पाठः, तत्र धारकोऽधी-तानामेषां धारणात्. '*पारए*' त्ति पारगामी. 'षडङ्गवित्' इति षडङ्गानि शिक्षादीनि वक्ष्यमाणानि, 'साङ्गोपाङ्गानाम्' इति यदुक्तम्, तद् वेदपरिकरज्ञापनार्थम्. अथवा 'षडङ्गवित्' इत्यत्र तद्विचारकत्वं गृहीतम्, 'विद् विचारणे' इति वचनात्, इति न पुनरुक्तत्वमिति. '*सट्ठितंतविसारए*' त्ति कापिलीयशास्त्रपण्डितः. '*संखाणे*' त्ति गणितस्कन्धे सुपरिनिष्ठित इति योगः. षडङ्गवेदकत्वमेव व्यनक्ति—'*सिक्खा—कप्पे*' त्ति शिक्षा अक्षरस्वरूपनिरूपकं शास्त्रम्, कल्पश्च तथाविधसमाचारनिरूपकं शास्त्रमेव; ततः समाहारद्वन्द्वात् शिक्षा—कल्पे. '*वागरणे*' त्ति शब्दशास्त्रे, '*छंदे*' त्ति पद्यलक्षणशास्त्रे, '*निरुत्ते*' त्ति शब्दव्युत्पत्तिकारकशास्त्रे, '*जोइसामयणे*' त्ति ज्योतिःशास्त्रे, '*बंभण्णएसु*' त्ति ब्राह्मण-संबन्धिषु, '*परिव्वायएसु*' त्ति परिव्राजकसत्केषु नयेषु—नीतिषु, दर्शनेषु इत्यर्थः. '*नियंठे*' त्ति निर्ग्रन्थः, श्रमण इत्यर्थः. '*वेसालिअसावए*' त्ति विशाला महावीरजननी, तस्या अपत्यमिति वैशालिको भगवान्, तस्य वचनं शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिकश्रावकः—तद्वचनामृतपान-निरत इत्यर्थः. '*इणमक्खेवं*' ति एतमाक्षेपं प्रश्नम्, '*पुच्छे*' त्ति पृष्टवान्. '*मागह*' त्ति मगधजनपदजातत्वाद् मागधः, तस्याऽऽमन्त्रणम्—हे मागध!. '*वड्ढइ*' त्ति संसारवर्धनात्. '*हायइ*' त्ति संसारपरिहान्येति. '*एतावं ताव*' इत्यादि. एतावत् प्रश्नजातं तावद् आख्याहि, उच्यमानः पृच्छ्यमानः, एवमनेन प्रकारेण, एतस्मिन्नाख्याते पुनरन्यत् प्रक्ष्यामि, इति हृदयम्. '*संकिए*' इत्यादि. किमिदमिहोत्तरम् ? इदं वा? इति संजातशङ्कः. इदमिहोत्तरं न साधु, इदं च न साधु, अतः कथमत्रोत्तरं लप्स्ये, इति उत्तरलाभाकाङ्क्षावान् काङ्क्षितः. अस्मिन्नुत्तरे दत्ते किमस्य प्रतीतिरुत्पत्स्यते न वा? इत्येवं विचिकित्सितः. भेदं समापन्नः—मतेर्भङ्गं किंकर्तव्यताव्याकुलत्वलक्षणमापन्नः. कलुषसमापन्नः—नाहमिह किञ्चिद् जानामीत्येवं स्वविषयं कालुष्यं समापन्न इति. '*नो संचाएइ*' त्ति न शक्नोति. '*पमोक्खं अक्खाइउं*' त्ति प्रमुच्यते पर्यनुयोगबन्धनादनेन इति प्रमोक्ष उत्तरम्—आख्यातुम्—वक्तुम्.

---

१. मूलच्छायाः— सन् स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरुह्य तच्चैव सर्वम्, अवशिष्टं ज्ञातव्यम्, यावत्—आलोचितप्रतिक्रान्तः, समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा अच्युते कल्पे देवतया उपपन्नः, तत्र अस्त्येककानां देवानां द्वाविंशतिः सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तस्य स्कन्दकस्यापि देवस्य द्वाविंशतिः सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता. स भगवन्! स्कन्दको देवस्ततो देवलोकाद् आयुःक्षयेण, भवक्षयेण, स्थितिक्षयेण [illegible] [illegible] च्यवं च्युत्वा, कुत्र गमिष्यति, कुत्र उत्पत्स्यते? इति. गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति, भोत्स्यति, मोक्ष्यति, परिनिर्वास्यति, सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति. स्कन्दकः समाप्तः—अनु०

१. सं० छा०—अर्हः, जिनः, केवली, सर्वज्ञः, सर्वदर्शी, आकाशगतेन छत्रेण—अनु०

...के आगळना प्रकरणमां संयमवाळा जीवना संसारनो वधारो, घटाडो अने सिद्धपणुं–संसारनो सर्वथा नाश–ए बधुं कह्युं छे अने हवे तो ... तथा बीजी बातोना व्युत्पादनने निमित्ते स्कंदकमुनिनुं चरित्र कहेवानी इच्छावाळा मूळकार आ सूत्र कहे छेः–['ते णं काले णं' इत्यादि.] ['उप्पन्नणाण–दंसणधरे'] आ पद साथे 'यावत्' शब्द मूकेलो छे माटे नीचे लखेलां पदो वधारे जाणवांः–['अरहा' (अरिहंत), 'जिणे' (जिन) 'केवली' (केवलज्ञानी), 'सव्वन्नू' (सर्वज्ञ), 'सव्वदरिसी' (सर्वदर्शी–बधुं जोनार), 'आगासगएणं छत्तेणं' (आकाशमां अद्धर रहेल छत्रयुक्त)] इत्यादि समवसरण सुधीनी वर्णना कहेवी. ['गद्दभालस्स'त्ति] गर्दभाल नामना परिव्राजकनो. ['रिउव्वेद–जजुव्वेद–सामवेद–अथव्वणवेद' त्ति] ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अने अथर्वणवेद; ए चार वेदोनो, इतिहास एटले पुराण, ए पांचमुं छे अर्थात् वेद पछी एनुं स्थान छे. ['चउण्हं वेदाणं' त्ति] ए विशेष्यरूप पद छे. ['निग्घंटुछट्ठाणं' ति] निघंटु ए नामोनो कोश छे. ['संगोवंगाणं' ति] वेदनां छ अंगो छे. जेम के; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदशास्त्र अने ज्योतिःशास्त्र. तथा वेदना अर्थोने जे ग्रंथो विस्तारपूर्वक जणावे ते (ग्रंथो) वेदना उपांगो कहेवाय छे. ['सरहस्साणं' त्ति] रहस्यवाळा ए वेदादिकने ['सारए' त्ति] भणावे छे माटे तेनो प्रवर्तक छे अथवा जे कोइ बीजा लोको वेदादिकने विसरी गया छे तेने याद करावे छे माटे तेनो स्मारक–याद करावनार–छे. ['वारए' त्ति] जे कोइ लोको वेदादिकनो अशुद्ध उच्चार करे छे तेनो अटकावनार छे माटे वारक छे. कोइ स्थळे ['धारए' त्ति] एवो पाठ छे. तेनो अर्थ–भणेलां वेदादिक शास्त्रोने नहीं भूलनार. ['पारए' त्ति] वेदादिक शास्त्रनो पारंगत छे. 'षडङ्गवित्' एटले पूर्व प्रमाणे नामवाळां शिक्षा वगेरे छ शास्त्रोनो जाणनार. ते नामो संबंधे हमणां विवेचन करवामां आव्युं. शं०–'सांगोपांग वेदोनो जाणनार' एम आगळ कह्युं छे, तो पछी अहीं 'छ अंगोने जाणनार' ए कहेवुं नकामुं छे. कारण के 'सांगोपांग' एम कहेवाथी ज छ अंगो आवी जाय छे. माटे एक ज वातने फरीथी कहेवामां पुनरुक्ति दोष छे. छतां शामाटे एम कह्युं ? समा०–आगळ जे 'सांगोपांग' एवुं विशेषण कह्युं छे ते वेदोनो परिकर जणाववा कह्युं छे. अथवा 'षडङ्गवित्' ए शब्दनो अर्थ 'छ अंगोने जाणनार' एम न करवो पण 'छ अंगोने विचारनार' एवो अर्थ करवो. एवो अर्थ करवाथी पुनरुक्ति दोष आवशे नहीं. कारण के आ अर्थ पूर्वना अर्थ करतां जूदो छे. ['सट्ठितंतविसारए' त्ति] कपिलना शास्त्रने जाणनार, ['संखाणे' त्ति] गणित शास्त्रमां प्रवीण, 'वेदना छ अंगोने जाणे छे' ए वातने प्रकट करे छेः–['सिक्खा–कप्पे' त्ति] अक्षरना स्वरूपने जणावनारुं शास्त्र ते शिक्षा, तथाप्रकारना आचारनुं जणावनारुं शास्त्र ते कल्प, ते बन्ने शास्त्रमां, तथा ['वागरणे' त्ति] व्याकरण–शब्द–शास्त्रमां, ['छंदे' त्ति] कविताना स्वरूप सूचक शास्त्रमां–पिंगळमां, ['निरुत्ते' त्ति] शब्दनी व्युत्पत्ति दर्शक शास्त्रमां, ['जोइसामयणे' त्ति] जोतिःशास्त्रमां, ['बंभण्णएसु' त्ति] ब्राह्मण संबंधी, तथा ['परिव्वायएसु' त्ति] परिव्राजक संबंधी दर्शन शास्त्रमां ते स्कंदक परिव्राजक प्रवीण हतो. ['नियंठे' त्ति] निर्ग्रंथ एटले श्रमण. ['वेसालिअसावए' त्ति] विशाला एटले श्रीमहावीरनी माता अर्थात् त्रिशला देवी, तेनो पुत्र ते वैशालिक–भगवान् महावीर. तेना वचनमो रसिक होवाथी जे तेनुं वचन सांभळे ते वैशालिकश्रावक–श्रीमहावीरना वचनरूप अमृतने पीवामां लीन–एवो पिंगलक नामनो साधु हतो. ['इणमक्खेवं' ति] एणे आक्षेपपूर्वक ए प्रश्नने ['पुच्छे'त्ति] पूछ्यो. ['मागह' त्ति] मगध देशमां जन्मेलो माटे मागध. 'हे मागध!' ए शब्द संबोधनसूचक छे. ['वड्ढइ' त्ति] संसार वधवाथी वधे छे. ['हायइ' त्ति] संसार घटवाथी घटे छे. ['एतावं ताव' इत्यादि.] एटला प्रश्नोने तो कहे अर्थात् एटलानो उत्तर आप्या पछी वळी बीजुं कांइ पूछीश, ए तात्पर्य छे. ['संकिए' इत्यादि.] आ प्रश्ननो शुं आ उत्तर छे के आ उत्तर छे? ए प्रमाणे शंकाने पामेल, आ प्रश्न माटे आ उत्तर सारो नथी अने आ उत्तर पण ठीक नथी, तो हुं पूछनारने जवाब केवी रीते दइश? ए रीते उत्तर मेळववानी आतुरतावाळो, हुं जे उत्तर आपीश तेथी पूछनारने संतोष थशे के केम–विश्वास आवशे के केम? ए प्रमाणे डोळाइ गएल चित्तवाळो, 'हवे शुं करवुं' ए रीते मुंझवणमां पडेलो, 'अरे!!! हुं आ संबंधे कांइ जाणतो पण नथी ए प्रमाणे पोता उपर खिन्न थएलो ते स्कंदक तापस ['नो संचाएइ' त्ति] शक्यो नहीं ['पमोक्खं अक्खाइउं' ति] उत्तर कहेवाने अर्थात् ते कांइ जवाब दइ शक्यो नहीं. प्रमोक्ष एटले जेवडे प्रश्नरूप बंधनथी छूटा थवाय ते–उत्तर.

आर्य श्रीस्कंदक.

वेदो.

पुराण.

निघंटु अने शिक्षा वगेरे अंगो.

शंका.

समाधान.

गणित वगेरे अनेक शास्त्रो.

वैशालिक महावीर.

प्रश्नपृच्छा.

शंकादि.

१. *'महया जणसंमद्दे इ वा, जणवूहे इ वा' इति. अत्र इदम्–अन्यद् दृश्यम्–"जणबोले इ वा, जणकलकले इ वा, जणुम्मी इ वा, जणुक्कलिया इ वा, जणसन्निवाए इ वा, बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे, आइगरे, जाव–संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे कयंगलाए नयरीए, छत्तपलासए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ. तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं, भगवंताणं नाम–गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण–वंदण–नमंसण–पडिपुच्छण–पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरिअस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए?*

---

१. आ पदनी छट्ठी विभक्ति लोपाएली छेः—श्रीअभय०. २. "वर्ण–स्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा. (जे ग्रंथमां वर्ण अने स्वरोने बोलवानी रीत शिखवाय ते ग्रंथ शिक्षा–ऋग्वेदभाष्य–शब्दचिंतामणि पृ–१२५०):–अनु० ३. 'विद' धातुनो 'विचारवुं' पण अर्थ छेः–श्रीअभय०

१. प्र० छायाः—जनबोलो वा, जनकलकलो वा, जनोर्मिर्वा, जनोत्कलिका वा, जनसंनिपातो वा, बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति–एवं खलु देवानुप्रिय! श्रमणो भगवान् महावीरः आदिकरः, यावत्–संप्राप्तुकामः, पूर्वानुपूर्वी चरमाणः, ग्रामानुग्रामं द्रवन् कृतङ्गलायां नगर्यां छत्रपलाशके चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति. तद् महाफलं खलु भो देवानुप्रिय! तथारूपाणाम् अर्हताम्, भगवतां नाम–गोत्रस्याऽपि श्रवणतया, किमङ्ग पुनः अभिगमन–वन्दन–नमस्यन–प्रतिप्रच्छन–पर्युपासनतया? एकस्य अपि आर्यस्य धार्मिकस्य सुवचनस्य श्रवणतया, किमङ्ग पुनः विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणतया? तद् गच्छामो देवानुप्रिय! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामहे, नमस्यामः, सत्कारयामः, संमानयामः, कल्याणम्, मङ्गलम्, दैवतम्, चैत्यम् (इव) पर्युपास्महे. एतद् अस्माकं प्रेत्य भवे हिताय, सुखाय, क्षेमाय, निःश्रेयसाय, अनुगामितया भविष्यति इति कृत्वा बहवः उग्राः, उग्रपुत्राः, भोगाः, राजन्याः, क्षत्रियाः, ब्राह्मणाः, भटाः, योधाः, मल्लकिनः, लेच्छकिनः, अन्ये च बहवो राजे–श्वर–तलवर–माडम्बिक–कौटुम्बिक–इभ्य–श्रेष्ठि–सेनापति–सार्थवाहप्रभृतयः उत्कृष्टि–सिंहनाद–बोल–कलकलरवेण समुद्ररवभूतमिव (कुर्वन्तः) कुर्वाणाः श्रावस्त्यां नगर्यां मध्यमध्येन निर्गच्छन्ति–अनु०

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया !, समणं भगवं महावीरं वंदामो, नमंसामो, सक्कारेमो, सम्माणेमो, कल्लाणं, मंगलं, [illegible] *पज्जुवासामो. एअं णो पेच्चे भवे हिआए, सुहाए, खेमाए, निस्सेयसाए, आणुगामिअत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु बहवे उग्गा,* [illegible] *भोगा, राइन्ना, खत्तिया, माहणा, भडा, जोहा, मल्लई, लेच्छई, अन्ने य बहवे राई–सर–तलवर–माडंबिअ–कोडुंबिअ–*[illegible] *सेणावइ–सत्थवाहपभियओ जाव–उक्किट्ठि–सीहनाय–बोल–कलयलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा सावत्थीए नयरीए* [illegible] *निग्गच्छन्ति."* अस्यायमर्थः—श्रावस्त्यां नगर्याम्, यत्र *'महय'* त्ति महान् जनसंमर्दः तत्र बहुजनोऽन्योऽन्यस्यैवमाख्यातीति [illegible] तत्र जनसंमर्द उरोनिष्पेषः, इतिरुपप्रदर्शने, वा समुच्चये, पाठान्तरे 'शब्द' इति वा. जनव्यूहश्चक्राद्याकारो जनसमुदायः. बोलोऽ[illegible] ध्वनिः. कलकलः स एव उपलभ्यमानवचनविभागः. ऊर्मिः संबाधः, कल्लोलाकारो वा जनसमुदायः. उत्कलिका समुदाय एव [illegible] जनसंनिपातोऽपरापरस्थानेभ्यो जनानां मीलनम्, यथाप्रतिरूपमित्युचितम्. तथारूपाणां संगतरूपाणाम्, *'नाम–गोयस्स'* त्ति [illegible] याहच्छिकस्याऽभिधानस्य, गोत्रस्य च गुणनिष्पन्नस्य, *'सवणयाए'* श्रवणेन *'किमंग पुण'* त्ति किंपुनरिति पूर्वोक्तार्थस्य विशेषद्योत[illegible] अङ्गेत्यामन्त्रणे. अभिगमनम्—अभिमुखगमनम्, वन्दनम्—स्तुतिः, नमस्यनम्—प्रणमनम्, प्रतिप्रच्छनम्—शरीरादिवार्ताप्रश्नः, पर्युपास[illegible] सेवा, तेषामभिगमनादीनां भावस्तत्ता—तया. आर्यस्येत्यार्यप्रणेतृकत्वात्, धार्मिकस्य धर्मप्रतिबद्धत्वात्. *'वंदामो'* त्ति स्तुमः [illegible] इति प्रणमामः, सत्कारयामः—आदरं कुर्मः, वस्त्रार्चनं वा, सम्मानयाम उचितप्रतिपत्तिभिः. किंभूतम् ? इत्याह—कल्याणं कल्याणहेतुम्, मङ्गलम्—दुरितोपशमनहेतुम्, दैवतम् दैवम्, चैत्यम्—इष्टदेवप्रतिमा, चैत्यमिव चैत्यम्; पर्युपासयामः—सेवामहे. एतत् *'णे'* त्ति नः— अस्माकम्, प्रेत्यभवे जन्मान्तरे, हिताय पथ्यान्नवत्, सुखाय शर्मणे, क्षेमाय संगतत्वाय, निःश्रेयसाय मोक्षाय, आनुगामिकत्वाय परम्परया शुभानुबन्धसुखाय भविष्यति, इति कृत्वा—इति हेतोः. बहवः उग्रा आदिदेवावस्थापितरक्षकवंशजाताः, भोगाः—तेनैवावस्थापितगुरु- वंशजाताः, राजन्याः भगवद्वयस्यवंशजाः, क्षत्रिया राजकुलीनाः, भटाः शौर्यवन्तः, योधाः तेभ्यो विशिष्टतराः, मल्लकिनः, लेच्छकिनश्च राजविशेषाः, राजानो नृपाः, ईश्वरा युवराजाः, तदन्ये च महर्धिकाः; तलवराः—प्रतुष्टनरपतिवितीर्णपट्टबन्धविभूषिता राजस्थानीयाः, माडम्बिकाः—सन्निवेशविशेषनायकाः, कौटुम्बिकाः—कतिपयकुटुम्बप्रभवो राजसेवकाः; उत्कृष्टिश्चानन्दमहाध्वनिः, सिंहनादश्च प्रतीतः, बोलश्च वर्णव्यक्तिवर्जितो महाध्वनिः, कलकलश्च व्यक्तवचनः स एव, एतल्लक्षणो यो रवस्तेन समुद्ररवभूतमिव जलधिशब्दप्राप्तमिव—तन्मय- मिवेत्यर्थः, 'नगरम्' इति गम्यते इति. एतस्यार्थस्य संक्षेपं कुर्वन्नाह *'परिसा निग्गच्छइ'* इति.

श्रावस्ती नगरीना लोकोनुं श्रीमहावीर पासे जवुं.

५. ['महया जणसंमद्दे इ वा, जणवूहे इ वा' इति] श्रावस्ती नगरीमां, 'ज्यां ['महय' त्ति] मनुष्योनी मोटी भीड छे त्यां घणा माणसो परस्पर एक बीजाने आ प्रमाणे कहे छे' ए प्रमाणे वाक्यनो अर्थ छे. बीजे स्थळे 'सद्द' 'शब्द'एवो पाठ छे. तेनो अर्थ—ज्यां माणसोनो घोंघाट छे. चक्र वगेरेना आकारवाळुं माणसोनुं टोळुं ते जनव्यूह. अस्पष्ट वर्णवाळो शब्द ते बोल. छूटां छूटां संभळाय तेवां वचनोवाळो अवाज ते कलकल. धक्काधक्की—संबाध—ते ऊर्मि. अथवा पाणीमां चालता तरंगोनी जेवुं माणसोनुं टोळुं ते ऊर्मि. माणसोनुं नानुं टोळुं ते उत्कलिका. जूदे जूदे ठेकाणे माणसोनो मेळो ते जनसंनिपात. घणां माणसो परस्पर आ प्रमाणे वात करे छे के, हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवंत महावीर, जे आदिकर छे, अने यावत्—मुक्त थवाना छे ते अनुक्रमे विहार करता, गामे गामे फरता कृतंगला नगरीमां छत्रपलाशक नामना चैत्यमां उचित—यथाप्रतिरूप—अवग्रहने धारण करी संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे. तो हे देवानुप्रियो ! तेवा प्रकारना—संगतरूप—अरहंत भगवंतोनुं नाम तथा गोत्र सांभळवाथी पण आपणुं कल्याण छे. तो पछी तेओनी सामे जवाथी, वंदन करवाथी, नमन करवाथी, तेओने कुशल समाचार पूछवाथी अने तेओनी सेवा करवाथी शा माटे कल्याण न होय ? [illegible] एक पण आर्य—आर्य पुरुषे कहेल—अने सुधार्मिक वचन सांभळवाथी कल्याण थाय छे तो पछी तेवो घणो अर्थ सांभळवाथी शा माटे कल्याण न होय ? माटे हे देवानुप्रियो ! आपणे श्रमण भगवंत महावीर पासे जइए अने तेओने वांदीए, नमीए, तेओनो सत्कार—आदर, अथवा वस्त्रथी सत्कार—अने उचित रीतेथी सन्मान करीए तथा कल्याणना हेतु—कल्याणरूप, पापनी शांतिमां निमित्त—मंगलरूप, दैवतरूप ते श्रमण भगवंतनी चैत्यनी—इष्ट देवनी मूर्तिनी—पेठे पर्युपासना करीए. एम करवुं ए अमने बीजा भवमां पथ्य अन्ननी पेठे हितरूप, सुखरूप, क्षेम—संगतत्व—रूप अने मुक्तिरूप तथा परंपराए कल्याणरूप थशे, एम विचारी घणा उग्रो, उग्रपुत्रो, भोगो, राजन्यो, क्षत्रियो, ब्राह्मणो, शूराओ—भटो, प्रख्यात शूरवीरो—योधाओ, मल्लकि, लेच्छकि अने बीजा घणा राजाओ, युवराजो तथा बीजा घणा महर्धिक तलवरो[11], माडंबिको[12], कौटुंबिको[13], इभ्यो, शेठिआओ, सेनापतिओ अने सार्थवाहो वगेरे उत्कृष्टि[14], सिंहनाद, बोल[15] अने कलकलरूप शब्दवडे जाणे समुद्र न गाजतो होय एम नगरने गजावता श्रावस्ती नगरीनी वच्चोवच्च नीकळे छे. ए रीते सभा नीकळे छेः—['परिसा निग्गच्छइ' इति]

---

१. 'इति' शब्द उपप्रदर्शनसूचक छे. २. 'वा' शब्द समुच्चयसूचक छे. ३. कोइ पण प्रकारना अर्थनुं लक्ष्य राख्या विना—जेम इच्छा [illegible] पाडेली संज्ञा ते नाम. ४. जे गुणयुक्त होय ते गोत्र. ५. श्रीआदीश्वरे स्थापेल रक्षकवंशमां थएला लोको. ६. श्रीआदिनाथे स्थापेल [illegible] ७. भगवंतना मित्रना वंशमां थएला नरो. ८. राजकुळमां थएला ते. ९–१०. मल्लकि अने लेच्छकि, ए बन्ने एक जातना ऐतिहासिक [illegible] ११. राजाए जेओ उपर प्रसन्न थइने बंधावेल पट्टाथी शोभता एवा राजस्थानीय पुरुषो ते तलवर. १२. एक प्रकारना [illegible] मालिको. १३. केटलाक कुटुंबना स्वामी अने राजाना नोकरो. १४. आनंदनो मोटो अवाज. १५. [illegible] १६. [illegible] छेः—श्रीअभय०

१. 'तए णं' ति ततोऽनन्तरम्, 'इमेआरूवे' त्ति अयं वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षः, स च कश्चिद् उच्यमानो न्यूनाऽधिकोऽपि भवति इत्यत आह—एतदेव रूपं यस्याऽसौ एतद्रूपः, 'अज्झत्थिए' त्ति आध्यात्मिक आत्मविषयः, 'चिंतिए' त्ति स्मरणरूपः, 'पत्थिए' त्ति प्रार्थितः अभिलाषात्मकः, 'मणोगए' त्ति मनसि एव यो गतः—न बहिः, वचनेनाऽप्रकाशनात् स तथा. संकल्पो विकल्पः, 'समुप्पज्जित्थ' त्ति समुत्पन्नवान्, 'सेयं' ति श्रेयः कल्याणम्, 'पुच्छित्तए' त्ति योगः. 'इमाइं च णं' ति प्राकृतत्वाद् इमान् अनन्तरोक्तत्वेन प्रत्यक्षाऽऽसन्नान्, प्रत्यक्षत्वाद् अन्यांश्च 'एयारूवाइं' ति एतद्रूपान् उक्तस्वरूपान्, अथवा एतेषामेव अनन्तरोक्तानाम् अर्थानां रूपं येषां प्रष्टव्यतासाधर्म्यात् ते तथा तान्—अर्थान् भावान् लोकसान्तत्वादीन्, तदन्यांश्च. 'हेऊइं' ति अन्वय—व्यतिरेकलक्षणहेतुगम्यत्वाद् हेतवो लोकसान्तत्वादय एव, तदन्ये च अतस्तान्. 'पसिणाइं' ति प्रश्नविषयत्वात् प्रश्ना एते एव, तदन्ये वा, अतस्तान्. 'कारणाइं' ति कारणम् उपपत्तिमात्रम्, तद्विषयत्वात् कारणानि एते एव तदन्ये वा, अतस्तानि. 'वागरणाइं' ति व्याक्रियमाणत्वाद् व्याकरणानि एते एव, तदन्ये वा, अतस्तानि. 'पुच्छित्तए' त्ति प्रष्टुम्, 'ति कट्टु' इति कृत्वा, अनेन कारणेन एवम्. 'संपेहेइ' त्ति एवम् उक्तप्रकारं भगवद्वन्दनादिकरणम् इत्यर्थः. संप्रेक्षते पर्यालोचयति. 'परिव्वायावसहे' त्ति परिव्राजकमठः. कुण्डिका कमण्डलुः. काञ्चनिका रुद्राक्षकृता. करोटिका मृद्भाजनविशेषः. भृशिका आसनविशेषः. केशरिका प्रमार्जनार्थं चीवरखण्डम्. षड्नालकं त्रिकाष्ठिका. अङ्कुशकं तरुपल्लवग्रहणार्थम् अङ्कुशाऽऽकृतिः. पवित्रकम् अङ्गुलीयकम्, गणेत्रिका कलाचिकाऽऽभरणविशेषः. 'धाउरत्ताओ' त्ति शाटिका इति शेषः. 'तिदंड' इत्यादि. त्रिदण्डिकादीनि हस्ते गतानि स्थितानि यस्य स तथा. 'पहारेत्थ' त्ति प्रधारितवान् संकल्पितवान्, गमनाय गन्तुम्. 'गोयमाइ' त्ति गौतम! इति एवम् आमन्त्रयेति शेषः, अथवा 'अयि' इति आमन्त्रणार्थ एव. 'से काहे व' त्ति अथ कदा कस्यां वेलायाम् इत्यर्थः. 'कहं व' त्ति केन वा प्रकारेण साक्षाद् दर्शनतः, श्रवणतो वा. 'केवच्चिरेण व' त्ति कियतो वा कालात्. 'सावत्थी नामं नयरी होत्थ' त्ति विभक्तिपरिणामाद् अस्तीत्यर्थः, अथवा कालस्याऽवसर्पिणीत्वात् प्रसिद्धगुणा कालाऽन्तरे एवाऽभवत्, नेदानीम् इति. 'अदूरागते' त्ति अदूरे आगतः, स चाऽवधिस्थानाऽपेक्षयाऽपि स्यात्, अथवा दूरतरमार्गाऽपेक्षया क्रोशादिकम् अपि अदूरं स्याद् अत उच्यते:—'बहुसंपत्ते' ईषद् ऊनः संप्राप्तो बहुसंप्राप्तः, स च विश्रामादिहेतोराऽऽरामादिगतोऽपि स्यात्, अत उच्यते:—'अद्धाणपडिवन्ने' त्ति मार्गप्रतिपन्नः. किम् उक्तं भवति? 'अंतरापहे वट्टइ' त्ति विवक्षितस्थानयोरन्तरालमार्गे वर्तते इति. अनेन च सूत्रेण 'कथं द्रक्ष्यामि'? इत्यस्य उत्तरम् उक्तम्. कथं? यतोऽदूरागतादिविशेषणस्य साक्षाद् एव दर्शनं संभवति. तथा 'अज्जेव णं दच्छसि' इत्यनेन 'कियच्चिरात्'? इत्यस्य उत्तरम् उक्तम्. 'काहे' इत्यस्य च उत्तरं सामर्थ्यगम्यम्—यतो यदि भगवता मध्याह्नसमये इयं वार्ताऽभिहिता तदा मध्याह्नसमयस्योपरि मुहूर्ताद्यतिक्रमेण या वेला भवति तस्यां द्रक्ष्यसि इति सामर्थ्याद् उक्तम्. अदूरागतादिविशेषणस्य हि तद्देशप्राप्तौ मुहूर्तादिरेव कालः संभवति, न बहुतर इति. 'अगाराओ' त्ति निष्क्रम्य इति शेषः. अनगारितां साधुतां प्रव्रजितुं गन्तुम्, अथवा विभक्तिपरिणामाद् अनगारितया प्रव्रजितुं प्रव्रज्यां प्रतिपत्तुम्, 'अब्भुट्ठेति' त्ति आसनं त्यजति. यच्च भगवतो गौतमस्याऽसंयतं प्रति अभ्युत्थानं तद् भाविसंयतत्वेन तस्य पक्षपातविषयत्वात्, गौतमस्य चाक्षीणरागत्वात् तथा भगवदाऽऽविष्कृततदीयविकल्पस्य तत्समीपगमनतस्तत्कथनाद् भगवद्ज्ञानाऽतिशयप्रकाशनेन भगवति अतीव बहुमानोत्पादनस्य चिकीर्षितत्वाद् इति. 'हे खंदय' त्ति संबोधनमात्रम्, 'सागयं खंदय' त्ति स्वागतम्—शोभनम् आगमनं तव स्कन्दक! महाकल्याणनिधेर्भगवतो महावीरस्य संपर्केण तव कल्याणनिबन्धनत्वात् तस्य. 'सुसागयं' ति अतिशयेन स्वागतम्, कथंचिद् एकार्थौ वा शब्दौ एतौ. एकार्थशब्दोच्चारणं च क्रियमाणं न दुष्टम्, संभ्रमनिमित्तत्वाद् अस्य इति. 'अणुरागयं खंदय' त्ति रेफस्याऽऽगमिकत्वाद् अन्वागतम् अनुरूपमागमनं स्कन्दक! तव इति दृश्यम्. 'सागयमणुरागयं' ति शोभनत्वाऽनुरूपत्वलक्षणधर्मद्वयोपेतं तवाऽऽगमनम् इत्यर्थः.

१. ['तए णं' ति] त्यार बाद, ['इमेआरूवे' त्ति] हमणां कहेवाशे माटे आ प्रत्यक्ष, कहेनार कवि तेने ओछो वधतो पण कहे माटे कहे छे के—एवा ज प्रकारनो—एवी ज जातनो, ['अज्झत्थिए' त्ति] आध्यात्मिक, ['चिंतिए' त्ति] स्मरणरूप, ['पत्थिए' त्ति] अभिलाषरूप, ['मणोगए' त्ति] मनमां थएलो, कारण के बहार जणावेलो नथी. एवो संकल्प ['समुप्पज्जित्थ' त्ति] उत्पन्न थयो. ['सेयं' ति] कल्याण ['पुच्छित्तए' त्ति] पूछवुं ए अर्थात् पूछवुं ए कल्याणने माटे छे. ['इमाइं चे णं' ति] हमणां कह्यां माटे प्रत्यक्षासन्न, ['एयारूवाइं' ति] कहेल स्वरूपवाळां अथवा पूछवानी सरखाइने लीधे आगळ कहेल स्वरूपवाळा अर्थोनी जेवा अर्थोने—'शुं लोक अंतवाळो छे?' इत्यादि अने बीजा अर्थोने, ['हेऊइं' ति] जे अन्वये अने व्यतिरेकरूपे हेतुथी जणाय ते हेतु—लोकसांतत्वादि अने बीजा अर्थोने, ['पसिणाइं' ति] ए ज प्रश्नोने अने बीजाने, ['कारणाइं' ति] कारण एटले उपपत्तिमात्र, ते उपपत्तिनो विषय होवाथी कारणोने—ते अने बीजा अर्थोने, ['वागरणाइं' ति] स्पष्ट करवा योग्य ते अने बीजा अर्थोने, ['पुच्छित्तए' त्ति] पूछवाने, ['ति कट्टु'] एम करीने—ए कारणथी एम ['संपेहेइ' त्ति] उक्त प्रकारवाळा भगवद्वंदनादि संबंधे विचार करे छे. ['परिव्वायावसहे' त्ति] परिव्राजकोनो—तापसोनो—मठ. कुण्डिका—कमंडलु—कमंडळ. कांचनिका—रुद्राक्षनी माळा. करोटिका—एक जातनुं माटीनुं वासण. भृशिका—एक जातनुं आसन. केसरिका—साफसूफ करवानुं लुगडुं—लुगडानो कटको. षड्नालक—त्रिकाष्ठिका—त्रिगडी. अंकुशक—वृक्ष उपरथी पांदडां लेवा माटे अंकुशना जेवुं एक प्रकारनुं साधन. पवित्रक—वींटी. गणेत्रिका—एक जातनुं कलाइनुं घरेणुं. ['धाउरत्ताओ' त्ति] पहेरवानां कपडां—शाटिका. ['तिदंड' इत्यादि.] त्रिदंड वगेरे दश वस्तु

श्रीस्कंदकनो संकल्प.

श्रीस्कंदकनो सामान.

---

१. 'च' शब्द अन्वनो सूचक छे:—श्रीअभय० २. अमुक होय त्यारे अमुक होय ज एवो जे नियम ते अन्वय. ३. अमुक न होय त्यारे अमुक न ज होय एवो जे नियम ते व्यतिरेक:—अनु०

जेणे हाथमां राखी छे, एवा ते स्कंदक परिव्राजके ['पहारेत्थ' त्ति] जवाने माटे संकल्प कर्यो. ['गोयमाई' त्ति] 'हे गौतम!' ए प्रमाणे आमंत्रण. ['से काहे व' त्ति] हवे ते कये वखते, ['कहं व' त्ति] कया प्रकारे–जोवाथी के सांमळवाथी, ['केवच्चिरेण व ' त्ति] अने केटला वखत पछी हुं स्कंदकने हुं मळीश? [एम श्रीगौतमे भगवंतने पूछ्युं हवे भगवंत तेनो उत्तर कहे छे) ['सावत्थी नामं नगरी होत्थं' त्ति] श्रावस्ती नामनी नगरी छे, अथवा श्रावस्ती नामनी प्रसिद्ध गुणवाळी नगरी हती. शं० —ते श्रावस्ती नगरी हमणां पण छे तो तेने 'हती' एम शामाटे कही? समा०—जेवी असलना वखतमां ते नगरी हती तेवी अत्यारे नथी, कारण के अवसर्पिणीकाळ–पडतो काळ–छे माटे ते नगरी आगळना जेवी समृद्धिवाळी न होवाथी अत्यारे छे, तो पण तेने 'हती' कही. ['अदूरागते ' त्ति] पासे आव्यो छे, अवधिस्थाननी अपेक्षाए पण नजीक आवेलो होय अथवा घणी छेटी वाटनी अपेक्षाए 'एक गाउ' वगेरे मार्ग पण अदूर–नजीक–गणाय छे, माटे कहे छे; ['बहुसंपत्ते'] अत्यंत पासे आवी गएलो, एवो मनुष्य विसामो वगेरे कारणने लइने बगीचा वगेरेमां पण गयो होय माटे कहे छे; ['अद्धाणपडिवन्ने' त्ति] मार्ग उपर चडेलो–रस्ते पडेलो, तेनुं तात्पर्य शुं छे? तो कहे छे के, ['अंतरापहे वट्टइ ' त्ति] ज्यां जवानुं छे अने ज्यांथी नीकळ्यो छे, ते बे स्थाननी वचेना मार्ग उपर छे. (आगळ श्रीगौतमे भगवंत महावीरने पूछ्युं हतुं के, हुं ते स्कंदकने कया प्रकारे जोइश? ते प्रश्नना उत्तर सारु ['अंतरापहे वट्टइ' त्ति] आ सूत्र कह्युं छे) आ सूत्रथी ते प्रश्ननो उत्तर केवी रीते मळे छे? तो कहे छे के, जे आवनार मनुष्य नजीकना मार्ग उपर होय तथा लगभग नजीक आवी गएलो होय तेनो मेळाप मळनार जणने साक्षात् ज थाय छे, तो आ स्कंदक परिव्राजक पण लगभग नजीक आवी गएलो छे तेथी ते श्रीगौतमने साक्षात् मळशे, ज्यारे एम छे त्यारे 'हुं तेने केवी रीते मळीश? ते प्रश्ननो उत्तर 'ते, श्रीगौतमने साक्षात् मळशे' एवा तात्पर्यवाळुं सूत्र कहेवाथी ज कहेवाइ गयो. तथा 'हुं तेने केटला समये जोईश?' एवा प्रकारना श्रीगौतमना प्रश्ननो उत्तर ['अज्जेव णं दच्छसि'] आ सूत्रथी थाय छे अर्थात् 'तुं तेने आज ज जोईश' तथा 'हुं तेने क्यारे–केटला वाग्ये–जोईश?' ए प्रश्ननो उत्तर अनुमानथी ज जाणी शकाय तेम छे. जो श्रीमहावीर भगवंते आ स्कंदक संबंधी वात बपोरे कही होय तो बपोर पछीना समये–एक मुहूर्त पछी या थोडा वधारे समय पछी ते स्कंदक श्रीगौतमने मळवो जोइए. कारण के जे नजीकमां आवी पहोंचेल होय तेने आवता वधारे समय लागतो नथी, पण मुहूर्त या थोडो वधारे समय लागे छे. पण वधारे वखत लागी शके नहीं. ['अगाराओ' त्ति] घरथी 'नीकळीने' ए अध्याहार छे अर्थात् गृहवास मूकीने साधुपणाने प्राप्त करवा अथवा साधुपणे प्रव्रज्या लेवाने समर्थ छे? ['अब्भुट्ठेइ' त्ति] उभा थाय छे–पोतानुं आसन छोडी दे छे. स्कंदक परिव्राजक असंयत छे तो पण तेने बहु पासे आवेलो जाणीने श्रीगौतम भगवान् उभा थाय छे तेनुं कारण आ छेः–ते स्कंदक परिव्राजक भविष्यत्काळमां साधु थवानो छे माटे तेना उपर श्रीगौतमने (पोते रागवाळा होवाथी) पक्षपात थाय छे तथा श्रीमहावीर भगवंते ते स्कंदक संबंधी जे कांइ वातचित श्रीगौतमने कहेली छे ते वातचित स्कंदकने कहेवाथी श्रीमहावीरनो ज्ञानातिशय प्रकट करवो अने ते द्वारा ते स्कंदकने श्रीमहावीर तरफ बहुमान थाय (माटे ते श्रीगौतम उभा थइने स्कंदक परिव्राजकनी सामा गया.) ['हे खंदय!' त्ति] ए संबोधन छे. ['सागयं खंदय!' त्ति] हे स्कंदक! तारुं आववुं ठीक थयुं छे, कारण के महाकल्याणना सागर श्रीमहावीर भगवंतना संसर्गथी तने कल्याण थवानुं कारण छे. ['सुसागयं' ति] वधारे स्वागत छे. ['अणुरागयं खंदय!' त्ति] हे स्कंदक! तारुं आववुं उचित थयुं छे. ['सागयमणुरागयं' ति] तारुं आगमन स्वागत अने अन्वागतरूप छे.

श्रीस्क. समाधान.

श्रीस्कंदकनुं बहुमान.

७. *'जेणेव इहं'* ति यस्यामेव दिशि इदं भगवत्समवसरणम्, *'तेणेव'*त्ति तस्यामेव दिशि. *'अत्थे समत्थे'*त्ति अस्ति एषोऽर्थः– *'अट्ठे समट्ठे'* त्ति पाठान्तरम्, काक्वा च इदमध्येयम्, ततश्चार्थः किं समर्थः संगतः? इति प्रश्नः स्यात्. उत्तरं तु–*'हंता, अत्थि'* सद्भूतोऽयमर्थ इत्यर्थः. *'णाणी'* इत्यादि. अस्याऽयम् अभिप्रायः–ज्ञानी ज्ञानसामर्थ्याद् जानाति, तपस्वी च तपस्सामर्थ्यात्, देवतासांनिध्याद् जानाति इति प्रश्नः कृतः. *'रहस्सकडे'* त्ति रहस्कृतः प्रच्छन्नकृतः हृदये एवाऽवधारितत्वात्. *'धम्मायरिए'* त्ति कुत एतत्? इत्याह:– *''धम्मोवएसए'* त्ति उत्पन्नज्ञान–दर्शनधरः, नतु सदा संबुद्धः, अर्हद् वन्दनाद्यर्हत्वात्, जिनो रागादिजेतृत्वात्, केवली असहायज्ञानत्वात्, अत एवाऽतीत–प्रत्युत्पन्ना–ऽनागतविज्ञायकः. स च देशज्ञोऽपि स्याद् इत्याह:–सर्वज्ञः, सर्वदर्शी. *'वियट्टभोइ'* त्ति व्यावृत्ते, व्यावृत्ते सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी–प्रतिदिनभोजी इत्यर्थः. *'ओरालं'* ति प्रधानम्, *'सिंगारं'* ति शृङ्गारोऽलंकरणादिकृता शोभा, तद्योगात् शृङ्गारमिव शृङ्गारम् अतिशयशोभावद् इत्यर्थः. कल्याणं श्रेयः. शिवम् अनुपद्रवम्, अनुपद्रवहेतुर्वा. धन्यं धर्मधनलब्धम्, तत्र वा साधु, तद् वाऽर्हति. मङ्गल्यं मङ्गले हितार्थप्रापके साधु मङ्गल्यम्, अलंकृतं मुकुटादिभिः, विभूषितं वस्त्रादिभिः, तन्निषेधाद् अनलंकृतविभूषितम्, *'लक्खण–वंजण–गुणोववेअं'* ति लक्षणं मानो–न्मानादि. तत्र मानं जलद्रोणमानता, जलभृतकुण्डिकायां हि मातव्यः पुरुषः प्रवेश्यते, तत्प्रवेशे च यद् जलं ततो निस्सरति तद् यदि द्रोणमानं भवति तदाऽसौ मानोपेत उच्यते. उन्मानं तु अर्धभारमानता. मातव्यपुरुषो हि तुलाऽऽरोपितो यदि अर्द्धभारमानो भवति तदा उन्मानोपेतोऽसौ उच्यते. प्रमाणं पुनः स्वाऽङ्गुलेनाऽष्टोत्तराङ्गुलशतोच्छ्रयता. यदाह:– *''जलदोणं अद्धभारं समुहाइ समूसिओ उ जो णवओ, माणु–म्माणपमाणं तिविहं खलु लक्खणं एयं''* व्यञ्जनं मष–तिलकादिकम्, अथवा सहजं लक्षणम्, पश्चाद् भवं व्यञ्जनमिति. गुणाः सौभाग्यादयः, लक्षण–व्यञ्जनानां वा ये गुणास्तैरुपेतं यत् तत् तथा. उप-

---

१. आ रूपमांथी 'अयि' अव्यय पण नीकळी शके छे अने ते 'अयि' अव्यय आमंत्रणार्थक छे. २. विभक्तिनो फेरफार थवाथी वर्तमान काळनो अर्थ थयो छे. ३. विभक्तिना विपरिणामने लीधे आ रीते अर्थ थयो छे. ४. आ बन्ने शब्दो सरखा अर्थवाळा छे. सरखा अर्थवाळा शब्दोने बोलवा ए दूषित नथी, कारण के, एक सरखा शब्दोनुं उच्चारण मानसिक वेगने देखाडे छे. ५. अहीं ध्वनिनो प्रयोग होवाथी रकार लागेलो छेः—श्रीअभय०

१. प्र० छाया:—जलद्रोणम्–अर्धभारं समुखात् समुच्छ्रितस्तु यो नवकः, मानोन्मानप्रमाणं त्रिविधं खलु लक्षणमेतत्.—अनु०

उपपन्नः इत्येतस्य स्थाने निरुक्तिवशाद् उपपेत भवति इति. *'सिरीए'* त्ति लक्ष्म्या, शोभया वा. *'हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिए'* त्ति हृष्ट-तुष्टम् अत्यर्थं तुष्टम्, हृष्टं वा विस्मितम्, तुष्टं च तोषवच्चित्तं मनो यत्र तत् तथा; तद् हृष्ट-तुष्टचित्तं यथा भवति एवम् आनन्दित ईषद् मुखसौम्यतादिभावैः समृद्धिमुपगतः, ततश्च *'नंदिए'* त्ति नन्दितस्तैरेव समृद्धतरताम् उपगतः. *'पीईमणे'* त्ति प्रीतिः प्रीणनम् आप्यायनं मनसि यस्य स तथा. *'परमसोमणसिए'* त्ति परमं सौमनस्यं सुमनस्कता संजातं यस्य स परमसौमनस्यितः, तद्वा यस्याऽस्ति इति परमसौमनसिकः. *'हरिसवसविसप्पमाणहियय'* त्ति हर्षवशेन विसर्पद् विस्तारं व्रजद् हृदयं यस्य स तथा; एकार्थानि च एतानि प्रमोदप्रकर्षप्रतिपादनार्थानि इति.

७. ['जेणेव इहं' ति] जे दिशामां भगवंतनुं समवसरण छे ['तेणेव' त्ति] ते ज दिशामां. ['अत्थे समत्थे' त्ति] ए वात छे? ['अट्ठे समट्ठे' त्ति] एवुं पाठांतर छे. तात्पर्य ए ज के, 'शुं ए वात संगत छे?' ए प्रमाणे प्रश्न करवो. तेनो उत्तर आ छेः–['हंता, अत्थि'] ए वात साची छे. ['णाणी' इत्यादि.] आ सूत्रनो अभिप्राय आ छेः–ज्ञानना बळे ज्ञानी परोक्ष वातने जाणे छे तथा तपना बळे अने देवनी सहायताथी तपस्वी पण परोक्ष वातने जाणे छे, तेथी पूर्वप्रमाणे प्रश्न कर्यो छे. ['रहस्सकडे' त्ति] छाना करेला–मात्र मनमां ज अवधारेला छे माटे गुप्त. ['धम्मायरिए' त्ति] धर्माचार्य छे, धर्माचार्य छे तेनुं शुं कारण? तो कहे छे के, ['धम्मोवएसए' त्ति] धर्मोपदेशक छे माटे. ज्यारथी भगवंत महावीरने (क्षायिक) ज्ञान अने दर्शन उत्पन्न थएलुं छे त्यारथी तेओ संशुद्ध छे, पण हमेशा संशुद्ध नथी. श्रीमहावीर अर्हत् छे, कारण के ते वंदनीय अने पूजनीय छे. तेणे राग वगेरे उपर जय मेळव्यो छे माटे जिन छे. ते, कोइनी गरज न पडे तेवा ज्ञानयुक्त होवाथी केवळी छे. अने ते केवळी छे माटे ज भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान; एम त्रिकाळना विशेषे करीने जाणनार छे. जेने थोडुं थोडुं त्रिकाळज्ञान होय, ते पण त्रिकाळवेत्ता कहेवाय अने श्रीमहावीर तेवा नथी माटे कहे छे के, ते सर्वज्ञ छे, सर्वदर्शी छे. ['वियट्टभोइ' त्ति] जे जे दिवसे सूर्य व्यावृत्त थाय ते ते दिवसे आहार लेनार अर्थात् नित्य आहार लेनार ते व्यावृत्तभोजी. (?) (व्यावृत्ते, व्यावृत्ते सूर्ये भुङ्क्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी–प्रतिदिनभोजी इत्यर्थः.) ['ओरालं' ति] उदार–प्रधान, ['सिंगारं' ति] घरेणां वगेरेथी जे शोभा ते शृंगार–शणगार, अने तेनी जेवुं अर्थात् अत्यंत शोभावाळुं, कल्याणरूप उपद्रवरहित, अथवा शांतिनुं कारण, धर्मरूप धनने पामेल, अथवा धर्मरूप धनमां साधु अथवा धर्मरूप धनने योग्य, मंगल्य–वांछित वस्तुने मेळववामां सारा साधनरूप, जे मुकुटादिवडे अलंकृत तथा वस्त्रादिवडे विभूषित ते अलंकृतविभूषित कहेवाय अने जे तेवा नहीं ते अनलंकृतविभूषित, ['लक्खण–वंजण–गुणोववेअं' ति] मान तथा उन्मान वगेरेरूप लक्षण कहेवाय. माननुं स्वरूप आ छेः– एक पाणीनी कुंडी छलोछल भरेली होय, तेमां कोइ पुरुष प्रवेश करे अने जे पुरुषना प्रवेशथी ते कुंडीमांथी एक द्रोण (बत्रीश शेर) जेटलुं पाणी बहार नीकळे ते पुरुष मानोपेत कहेवाय. उन्माननुं स्वरूप आ छेः–एक पुरुषने मोटा कांटा (त्राजवा) मां उभो राखी तोळीए अने तेनुं वजन अडधा भार (चार हजार तोला) जेटलुं थाय तो ते पुरुष उन्मानोपेत कहेवाय. प्रमाणनुं स्वरूप आ छेः–जे पुरुष पोताना आंगळथी एकसो आठ आंगळ उंचो होय ते पुरुष प्रमाणोपेत कहेवाय. कह्युं छे के, "एक द्रोण पाणी नीकळे तो (मान), अडधो भार वजन थाय तो (उन्मान) अने जे पुरुष मुखनी उंचाइ करतां नवगणो–नव गुण–उंचो होय अर्थात् मुखनी उंचाइ बार आंगळ गणाय छे तेना करतां नवगणो–एकसोने आठ आंगळ उंचो–होय ते (प्रमाण). ए प्रमाणे लक्षण त्रण प्रकारनुं छे." शरीरमां जे मस अने तल थाय छे ते व्यंजन कहेवाय छे. अथवा जे सहज–जन्मथी होय ते लक्षण अने जे पाछळथी थएलुं होय ते व्यंजन. सौभाग्य वगेरे गुणो छे अथवा लक्षण अने व्यंजनना जे गुणो, तेथी जे युक्त ते लक्षण व्यंजनना गुणथी उपपेत कहेवाय. ['सिरीए' त्ति] शोभावडे के लक्ष्मीवडे, ['हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए' त्ति] हृष्टतुष्ट एटले अत्यंत तुष्ट अथवा हृष्ट एटले विस्मय पामेलुं अने तुष्ट एटले तोषवाळुं–जे रीते चित्त हृष्ट, तुष्ट थाय ते रीते आनंदित थएलो–थोडी थोडी मुखनी सौम्यता वगेरे भावोथी समृद्धिने पामेलो, एवो छे तेथी ['नंदिए' त्ति] ते ज भावोवडे वधारे समृद्ध थएलो, ['पीईमणे' त्ति] प्रीतियुक्त मनवाळो, ['परमसोमणसिए' त्ति] परम सुमनस्कतावाळो, ['हरिसवसविसप्पमाणहियय' त्ति] हर्षवडे जेनुं हृदय विशाळताने पामेलुं छे ते. ए बधा शब्दो सरखा अर्थवाळा छे अने अत्यंत हर्षने सूचववा सारु अहीं मूक्या छे.

व्यावृत्तभोजी श्री-महावीर.

लक्षण.

व्यंजन अने गुण.

८. *'दव्वओ णं एगे लोए सअंते'* त्ति पञ्चाऽस्तिकायमयैकद्रव्यत्वाद् लोकस्य सान्तोऽसौ. *'आयामविक्खंभेणं'* ति आयामो दैर्घ्यम्, विष्कम्भो विस्तारः. *'परिक्खेवेणं'* ति परिधिना. *'भविंसु य'* त्ति 'अभवत्' इत्यादिभिश्च पदैः पूर्वोक्तपदानामेव तात्पर्यमुक्तम्. *'धुवे'* त्ति ध्रुवः, अचलत्वात्, स चाऽनियतरूपोऽपि स्यात्, अत आहः—*'णिअए'* त्ति नियतः एकस्वरूपत्वात्, नियतरूपः कादाचित्कोऽपि स्यात्, अत आहः—*'सासए'* त्ति शाश्वतः प्रतिक्षणं सद्भावात्, स च नियतकालापेक्षयाऽपि स्यात्, इत्यत आहः—*'अक्खए'* त्ति अक्षयः, अविनाशित्वात्, अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यात्, इत्यत आहः—*'अव्वए'* त्ति अव्ययः, तत्प्रदेशानामव्ययत्वात्, अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यात्, इत्याह—*'अवट्ठिए'* त्ति अवस्थितः, पर्यायाणामनन्ततयाऽवस्थितत्वात्. किमुक्तं भवति—नित्य इति. *'वण्णपज्जव'* त्ति वर्णविशेषाः—एकगुणकालत्वादयः, एवमन्येऽपि गुरुलघुपर्यवास्तद्विशेषा बादरस्कन्धानाम्, अगुरुलघुपर्यवाः अणूनाम्, सूक्ष्मस्कन्धानाम्, अमूर्तानां च. *'णाणपज्जव'* त्ति ज्ञानपर्यायाः ज्ञानविशेषाः, बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदाः. अनन्ता गुरुलघुपर्यायाः, औदारिकादिशरीराणि आश्रित्य. इतरे तु कार्मणादिद्रव्याणि, जीवस्वरूपं चाश्रित्येति. *'जे वि य ते खंदया! पुच्छ'* त्ति अनेन समग्रं सिद्धिप्रश्नसूत्रम्, उपलक्षणत्वाच्च उत्तरसूत्रांशश्च सूचितः. तच्च इदमप्येवम्—*'जे वि य ते खंदया! इमेयारूवे जाव—किं सअन्ता सिद्धी,*

१. [illegible]

अंतेवा सिद्धी ! तस्स वि य णं अयमट्ठे—एवं खलु मए खंदया ! चउव्विहा *सिद्धी पन्नत्ता, तं जहा:—दव्वओ, खेत्तओ,* [illegible] *भावओ'* त्ति. *'दव्वओ णं एगा सिद्धि'* त्ति इह सिद्धिर्यद्यपि परमार्थतः सकलकर्मक्षयरूपा, सिद्धाधारा, आकाशदेशरूपा वा, तथाऽपि सिद्धाधारा आकाशदेशप्रत्यासन्नत्वेन ईषत्प्राग्भारा पृथिवी सिद्धिरुक्ता. *'किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं'* ति किञ्चिन्न्यूना गव्यूतिर्[illegible] द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशदुत्तरे भवत इति.

लोकविचार.

८. ['दव्वओ णं एगे लोए सअंते' त्ति] लोक, पांच अस्तिकायरूप एक द्रव्य होवाथी ए सांत—छेडावाळो—छे. ['आयामविक्खंभेणं' ति] आयाम एटले लंबाइ, विष्कंभ एटले पहोळाइ, ['परिक्खेवेणं' ति] परिधि—घेरावो—तेवडे, ['भविंसु य' त्ति] एटले थयुं. 'थयुं' वगेरे क्रियापदो द्वारा पूर्वोक्त पदोनुं ज तात्पर्य कह्युं छे. ['धुवे' त्ति] अचल होवाथी ध्रुव छे, ध्रुव पदार्थ अनियतरूप पण होय माटे कहे छे के, ['णिअए' त्ति] एक स्वरूपवाळो होवाथी नियत छे, नियत पदार्थ कादाचित्क (चिरस्थायी नहीं पण अमुक काळ सुधी ज रहेनारो) पण होय माटे कहे छे के, ['सासए' त्ति] सर्वक्षणे विद्यमान होवाथी शाश्वत छे, शाश्वत पदार्थना शाश्वतपणानी पण हद होय छे माटे कहे छे के, ['अक्खए' त्ति] अविनाशी होवाथी अक्षत छे, अक्षय वस्तु पण बहुतर प्रदेशनी अपेक्षाए होय, माटे कहे छे के, ['अव्वए' त्ति] तेना प्रदेशो अव्यय होवाथी अव्यय छे, कोइ पदार्थ द्रव्यथी पण अव्यय होय माटे कहे छे के, ['अवट्ठिए' त्ति] ते अवस्थित छे, कारण के तेना पर्यायो अनंत छे माटे ते अवस्थित छे. तात्पर्य ए ज के, ते नित्य छे. ['वण्ण—पज्जव' त्ति] एकगणुं काळुं वगेरे अने बीजा पण स्थूलस्कंधोना गुरुलघु पर्यायो

जीवविचार.

तथा अणुओना, सूक्ष्मस्कंधोना अने अमूर्त वस्तुओना अगुरुलघु पर्यायो—वर्णपर्यायो. ['णाणपज्जव' त्ति] ज्ञानपर्यायो—ज्ञानविशेषो अथवा बुद्धिकृत निर्विभाग (जेनो बीजो भाग न थइ शके तेवा) विभागो, औदारिक वगेरे शरीरोने आश्रीने अनंत गुरुलघुपर्यायो. कार्मण वगेरे शरीरोने (द्रव्योने) तथा जीवने आश्री अगुरुलघुपर्यायो. ['जे वि य ते खंदया ! पुच्छ' त्ति] आ सूत्रथी सिद्धिसंबंधी प्रश्ननुं अने तेना उत्तरसूत्रना

सिद्धिविचार.

अंशनुं सूचन कर्युं छे. ते बन्ने आ रीते छेः—'वळी हे स्कंदक ! तने जे सिद्धिविषे संकल्प थयो हतो के, शुं सिद्धि अंतवाळी छे के अंत विनानी छे ? तेनो पण आ अर्थ छेः—हे स्कंदक ! में सिद्धिना चार प्रकार कह्या छे, ते आ प्रमाणेः—द्रव्यसिद्धि, क्षेत्रसिद्धि, काळसिद्धि अने भावसिद्धि. ['दव्वओ णं एगा सिद्धि' त्ति] खरी रीते विचारीए तो सर्व कर्मना क्षयरूप सिद्धि छे अथवा सिद्धना आधार एवा आकाशना भागरूप जे स्थळ ते सिद्धि छे. तो पण अहीं सिद्धि शब्दथी ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) पृथवी लीधी छे, कारण के ते सिद्धना आधारभूत आकाशनी पासे आवेली छे. ['किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं' ति] ते सिद्धशिलानो घेरावो १,४२,३०,००० (एक क्रोड, बेंताळीश लाख अने त्रिश हजार) योजन करतां कांइक विशेषाधिक छे. जे विशेषाधिक छे ते आ छेः—२४९ योजन उपर कांइक ऊणी बे गव्यूति छे अर्थात् सर्व मळीने १,४२,३०,२४९ योजन उपर कांइक ऊणी बे गव्यूति जेटलो घेरावो छे.

९. *'वलयमरणे'* त्ति वलतो बुभुक्षापरिगतत्वेन वलवलायमानस्य, संयमाद् वा भ्रश्यतो मरणं तद् बलन्मरणम्. तथा, वशेन इन्द्रियवशेन, ऋतस्य पीडितस्य दीपकलिकारूपाऽऽक्षिप्तचक्षुषः शलभस्येव यद् मरणम्, तद् वशार्तमरणम्. तथा, अन्तःशल्यस्य द्रव्यतोऽनुद्धृततोमरादेः, भावतः सातिचारस्य यद् मरणम्, तद् अन्तःशल्यमरणम्. तथा, तस्मै भवाय, मनुष्यादेः सतो मनुष्यादावेव बद्धायुषो यद् मरणम्, तत् तद्भवमरणम्, इदं च नर—तिरश्चामेवेति. *'सत्थोवाडणे'* त्ति शस्त्रेण क्षुरिकादिनाऽवपाटनं विदारणं देहस्य यस्मिन् मरणे तत् शस्त्रावपाटनम्. *'विहाणसे'* त्ति विहायसि आकाशे भवम्—वृक्षशाखाद्युद्बन्धनेन यत् तद् निरुक्तिवशाद् वैहानसम्. *'गिद्धपट्ठे'* त्ति गृध्रैः पक्षिविशेषैः, गृद्धैर्वा मांसलुब्धैः शृगालादिभिः, स्पृष्टस्य विदारितस्य, करि—करभ—रासभादिशरीरान्तर्गततया यद् मरणम्, तद् गृध्रस्पृष्टं वा, गृद्धस्पृष्टं वा, गृध्रैर्वा भक्षितपृष्ठस्य यत् तद् गृध्रपृष्ठम्. *'दुवालसविहेण बालमरणेणं'* ति उपलक्षणत्वादस्य, अन्येनाऽपि बालमरणान्तःपातिना मरणेन म्रियमाण इति. *'वड्ढइ वड्ढइ व'* त्ति संसारवर्धनेन भृशं वर्धते जीवः, इदं हि द्विर्वचनं भृशार्थे इति. *'पाओवगमणे'* त्ति पादपस्येवोपगमनमस्पन्दतयाऽवस्थानं पादपोपगमनम्, इदं च चतुर्विधाहारपरिहारनिष्पन्नमेव भवतीति. *'निहारिमे य'* त्ति निर्हारेण निर्वृत्तं यत् तद् निर्हारिमम्—प्रतिश्रये यो म्रियते तस्य एतत्, तत्कडेवरस्य निर्हारणात्. अनिर्हारिमं तु योऽटव्यां म्रियत इति. यच्चाऽन्यत्र इह स्थाने इङ्गितमरणमभिधीयते, तद् भक्तप्रत्याख्यानस्यैव विशेषः, इति नेह भेदेन दर्शितमिति.

मरणविचार.

बलन्मरण.

वशार्तमरण.

अंतःशल्यमरण.

तद्भवमरण.

९. ['बलयमरणे' त्ति] कडकडती भुख लागेली होवाथी वळवळता—तरफडीयां मारता एवा जीवनुं अथवा संयमथी भ्रष्ट थता जीवनुं जे मरण ते 'बलन्मरण' कहेवाय. तथा दीवानी कळीना रूपथी अंजाइ गएल आंखवाळा पतंगियानी पेठे इंद्रियना परवशपणाथी दुःखी थएला जीवनुं जे मरण ते 'वशार्तमरण' (वोसट्टमरण) कहेवाय. तथा द्रव्यथी—स्थूल दृष्टीए—शरीरमां पेसी गएल तोमर (एक प्रकारनुं अस्त्र) वगेरेना नहीं निकळवाथी नीपजतुं जे मरण अने भावथी—खरी रीतिए—अतिचारवाळा—दूषित—जीवनुं जे मरण ते 'अंतःशल्य मरण' कहेवाय. ते भवने माटे जे मरण ते 'तद्भवमरण' कहेवाय अर्थात् मनुष्यनो देह मूकीने फरीवार पण मनुष्य थवुं, तिर्यंचनो देह मूकीने फरीवार पण तिर्यंच थवुं ते 'तद्भवमरण' कहेवाय. आ मरण मनुष्य अने तिर्यंचोमां ज संभवे छे. पण देव अने नरकमां संभवतुं नथी, कारण के देव मरीने तुरत ज फरीवार देव थतो नथी अने नारकी पण मरीने तुरत ज फरीवार नारकी थतो नथी. ['सत्थोवाडणे' त्ति] छरी वगेरे शस्त्रद्वारा शरीरने फाडवाथी नीपजतुं जे मरण ते 'शस्त्रावपाटन मरण' कहेवाय. ['विहाणसे' त्ति] आकाशमां थएलुं अर्थात् झाड वगेरे साथे गळा फांसो बांधी नीपजावातुं जे मरण ते 'वैहानस मरण' कहेवाय. ['गिद्धपट्ठे' त्ति] हाथीना भवमां, उंटना भवमां अने गधेडा वगेरेना भवमां गिध पक्षिओना ठोलवाथी

शस्त्रावपाटन.

वैहानस.

गृध्रपृष्ठ.

---

१. आ शब्द [illegible] छेः—श्रीअभय.

[illegible] रींछ शियाळ वगेरे जंगली जनावरोथी शरीरना फडवाने लीधे थतुं जे मरण ते 'गृध्रस्पृष्ट' के 'गृद्धस्पृष्ट' मरण कहेवाय. [illegible] पक्षिओ द्वारा पीठनो भाग ठोलाइ जवाथी थतुं जे मरण ते 'गृध्रपृष्ठ' मरण कहेवाय. ['दुवालसविहेण बालमरणेणं' ति] बार प्रकारना [illegible] कोइ जातना बालमरणवडे मरता जीवनो ['वड्ढइ वड्ढइ य' त्ति] संसार वधे छे माटे ते जीव वधे छे—संसारमां रखडे छे. ['पाओवगमणे' त्ति] वृक्षनी पेठे हाल्या चाल्या सिवाय स्थिर रहेवुं ते 'पादपोपगमन' कहेवाय. ए 'पादपोपगमन' मरण चारे जातनो आहार [illegible] ज थइ शके छे. ['निहारिमे य' त्ति] जे निर्हारथी बने ते निर्हारिम अर्थात् जे साधु उपाश्रयमां मरण पामे छे—पोतानो देह छोडे छे—[illegible] साधुना शरीरने उपाश्रयमांथी बहार काढी, संस्कारवामां आवे छे माटे ते साधुनुं मरण 'निर्हारिम' कहेवाय छे. निर्हार शब्दनो अर्थ 'बहार [illegible]' थाय छे अने पूर्वोक्त साधुना शबने बहार काढवामां आवे छे माटे तेनुं मरण 'निर्हारिम' कहेवाय छे. जे साधु अरण्यमां ज पोताना देहने छोडे छे ते साधुना शरीरने (शबने) क्यांइ बहार काढवामां आवतुं नथी माटे तेनुं मरण 'अनिर्हारिम' कहेवाय छे. केटलेक ठेकाणे (केटलाक पुस्तकोमां) आ चालु मरणनी व्याख्याने बदले 'इंगितमरण' नी व्याख्या करी छे. तो ते 'इंगितमरण' पण 'भक्तप्रत्याख्यान' मरणनो एक विशेष प्रकार छे, माटे ज तेनी अहीं जूदी व्याख्या करी नथी.

संसारवर्धन. पादपोपगमन. निर्हारिम. अनिर्हारिम. केटलाक पुस्तको.

१०. *'धम्मकहा भाणियव्व'* त्ति सा चैवम्:—*"जह जीवा बज्झंति, मुच्चन्ति, जह य संकिलिस्संति, जह दुक्खाणं अंतं करेइ, केइ अपडिबद्धा. अट्टनियट्टियचित्ता, जह जीवा दुक्खसागरमुविंति, जह वेरग्गमुवगया कम्मसमुग्गं विहाडेंति."* इत्यादि. इह च *'अट्टनियट्टियचित्त'* त्ति आर्तं निर्वर्तितं चित्तं यैस्ते तथा, आर्ताद् वाऽनिवर्तितं चित्तं यैस्ते आर्ताऽनिवर्तितचित्ताः. *'सद्दहामि'* त्ति नैर्ग्रन्थ्यं प्रवचनमस्तीति प्रतिपद्ये. *'पत्तियामि'* त्ति प्रीतिम्, प्रत्ययं वा सत्यमिदमित्येवं रूपं तत्र करोमि इत्यर्थः. *'रोएमि'* त्ति चिकीर्षामीत्यर्थः. *'अब्भुट्ठेमि'* त्ति एतद् अङ्गीकरोमीत्यर्थः. अथ श्रद्धानाद्युल्लेखं दर्शयति—एवमेतनैर्ग्रन्थ्यं प्रावचनं सामान्यतः, अथ यथा एतद् यूयं वदथ इति योगः. *'तहमेअं'* ति तथैव तद् विशेषतः. *'अवितहमेअं'* ति सत्यमेतद् इत्यर्थः. *'असंदिद्धमेअं'* ति संदेहवर्जितमेतत्. *'इच्छिअमेअं'* ति इष्टमेतत्. *'पडिच्छिअमेअं'* ति प्रतीप्सितम्—प्राप्तमिष्टम्. *'इच्छिअ—पडिच्छिअं'* ति युगपद् इच्छा—प्रतीप्साविषयत्वात्. *'ति कट्टु'* त्ति इति कृत्वेति. अथवा *'एवमेअं भन्ते !'* इत्यादीनि पदानि यथायोगमेकार्थानि अत्यादरप्रदर्शनायोक्तानि. *'आलित्ते णं'* ति अभिविधिना ज्वलितः, *'लोए'* त्ति जीवलोकः, *'पलित्ते णं'* ति प्रकर्षेण ज्वलितः, एवंविधश्चासौ कालभेदेनाऽपि स्यात्, अत उच्यते—आदीप्तप्रदीप्त. इति *'जराए मरणेण य'* त्ति इह वह्निना इति वाक्यशेषो दृश्यः. *'झियायमाणंसि'* त्ति ध्मायमाने, ध्मायति वा दह्यमाने इत्यर्थः. *'अप्पभारे'* त्ति अल्पं च तद् भारं चेत्यल्पभारम्. *'आयाए'* त्ति आत्मना एकान्तं विजनम्, अन्तं भूभागम्, *'पच्छा पुरा य'* त्ति विवक्षितकालस्य पश्चात्, पूर्वं च—सर्वदैवेत्यर्थः. *'थेज्जे'* त्ति स्थैर्यधर्मयोगात् स्थैर्यः. वैश्वासिको विश्वासप्रयोजनत्वात्. संमतस्तत्कृतकार्याणां संमतत्वात्, बहुमतः—बहुशः, बहुभ्यो वाऽन्येभ्यः सकाशात्, बहुरिति वा मतो बहुमतः. अनुमतः—अनु विप्रियकरणस्य, पश्चादपि मतोऽनुमतः. *'भंडकरंडगसमाणे'* त्ति भाण्डकरण्डकमाभरणभाजनम्, तत्समानः, आदेयत्वादिति. *'मा णं सीअं'* इत्यादौ 'मा' शब्दो निषेधार्थः, 'णं' इति वाक्यालंकारार्थः, इह 'स्पृशन्तु' इति यथायोगं योजनीयम्. अथवा मा एनमात्मानमिति व्याख्येयम्. *'वालए'* त्ति व्यालाः श्वापद—भुजगाः, *'मा णं वाइअ—पित्तिअ—सिंभिअ—सन्निवाइअ'* त्ति इह प्रथमाबहुवचनलोपो दृश्यः. *'रोगायंक'* त्ति रोगाः कालसहा व्याधयः, आतङ्कास्त एव सद्य उपघातिनः. *'परिसहोवसग्ग'* त्ति अस्य *'मा णं'* इत्यनेन संबन्धः. स्पृशन्तु छुपन्तु, भवन्तु इत्यर्थः. *'त्ति कट्टु'* इत्यभिसंधाय यः पालितः इति शेषः. स किम्? इत्याह—*'एस मे'* इत्यादि. *'तं इच्छामि'* त्ति तत् तस्माद् इच्छामि. *'सयमेव'* त्ति स्वयमेव—भगवतैवेत्यर्थः. प्रव्राजितम्—रजोहरणादिवेषदानेन, आत्मानमिति गम्यते. भावे वा क्तप्रत्ययः तेन प्रव्राजनमित्यर्थः. मुण्डितं शिरोलुञ्चनेन, *'सेहाविअं'* ति सेहितं प्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापग्राहणतः, शिक्षितं सूत्रार्थग्राहणतः, तथा आचारः—श्रुतज्ञानादिविषयमनुष्ठानं कालाध्ययनादि, गोचरो भिक्षाटनम्, एतयोः समाहारद्वन्द्वः. ततस्तदाख्यातमिच्छामीति योगः. तथा, विनयः प्रतीतः, वैनयिकं तत्फलं कर्मक्षयादि, चरणं व्रतादि, करणं पिण्डविशुद्ध्यादि, यात्रा संयमयात्रा, मात्रा तदर्थमेवाऽऽहारमात्रा, ततो विनयादीनां द्वन्द्वः, ततश्च विनयादीनां वृत्तिर्वर्तनं यत्राऽसौ विनय—वैनयिक—चरण—करण—यात्रा—मात्रावृत्तिकः, अतस्तं धर्ममाख्यातमभिहितमिच्छामीति योगः.

१०. ['धम्मकहा भाणियव्व' त्ति] आ स्थळे धर्मकथा संबंधी हकीकत कहेवी. ते आ रीते छेः—"(भगवंत पोतानी धर्मकथामां नीचेनी बाबतो कहे छे) जीवो केवी रीते बंधाय छे, केवी रीते मूकाय छे अने केवी रीते क्लेश पामे छे. तथा केटलाक अप्रतिबद्ध जीवो केवी रीते दुःखोनो नाश करे छे अने आर्तध्यानवाळा चित्तयुक्त जीवो कया प्रकारे संसार सागरमां भटके छे, तथा वैराग्यने पामेला जीवो केवी रीते कर्मना करंडिआने तोडी नाखे छे." ['सद्दहामि' त्ति] निर्ग्रंथनुं प्रवचन छे ए प्रमाणे स्वीकारुं छुं—श्रद्धा करुं छुं. ['पत्तियामि' त्ति] निर्ग्रंथना प्रवचनमां प्रीति करुं छुं

धर्मकथा. श्रीस्कंदकनी श्रद्धा.

---

१ अहीं बेवडुं उच्चारण बहुपणानुं सूचक छे:—श्रीअभय॰

२ प्र॰ छाया:— यथा जीवा बध्यन्ते, मुच्यन्ते, यथा च संक्लिश्यन्ते, यथा दुःखानामन्तं करोति (कुर्वन्ति) केचिद् अप्रतिबद्धाः. आर्तनि-[illegible] यथा जीवा दुःखसागरमुपयन्ति, यथा वैराग्यमुपगताः कर्मसमुद्गं विघटयन्ति:—अनु॰

अथवा 'ते सत्य छे' ए प्रमाणेनो तेमां विश्वास राखुं छुं. ['रोएमि' त्ति] ते निर्ग्रंथना प्रवचनमां रुचि करुं छुं. ['अब्भुट्ठेमि' त्ति] ते निर्ग्रंथ प्रवचननो स्वीकार करुं छुं. हवे श्रद्धान वगेरे संबंधे उल्लेख दर्शावे छेः— निर्ग्रंथनुं प्रवचन सामान्य प्रकारे ए ए प्रमाणे छे, जेम ए तमे कहो छो. ['तहमेअं' ति] ते विशेष प्रकारे पण तेम छे. ['अवितहमेअं' ति] ए साचुं छे. ['असंदिद्धमेअं' ति] एमां शंका नथी. ['इच्छिअमेअं' ति] ए इष्ट छे. ['पडिच्छिअमेअं' ति] मेळववाने ए इष्ट छे. ['इच्छिअ-पडिच्छिअं' ति] ते एक ज काळे इष्ट अने मेळववाने इष्ट छे. ['ति कट्टु' त्ति] ए प्रमाणे करीने. अथवा ['एवमेअं भन्ते !'] इत्यादि बधां पदो यथायोग समान अर्थवाळां छे अने 'भगवंतना प्रवचन तरफ श्रीस्कंदकनो घणो आदर छे' ए बाबतने जणाववां अहीं मूक्यां छे. ['आलित्ते णं' ति] चारे बाजुथी सळगेलो छे, ['लोए' त्ति] जीवलोक, ['पलित्ते णं' ति] वधारे सळगेलो छे, ए रीते ए लोक एक ज काळे न होय, पण कदाच भिन्न भिन्न काळे होय माटे कहे छे के ए लोक एक ज काळे सळगेलो अने वधारे सळगेलो छे. ['जराए मरणेण य' त्ति] जरा अने मरणरूप आगवडे ते लोक सळगेलो छे. ['झियायमाणंसि' त्ति] धुंधवातुं होय के बळतुं होय त्यारे ['अप्पभारे' त्ति] ओछा वजनवाळुं, ['आयाए' त्ति] आत्मावडे (पोते) एकांत जग्याए जाय छे. ['पच्छा पुरा य' त्ति] अमुक काळ गया पछी के अमुक समय पहेलां—आगळ पाछळ—हमेशा ज. ['थेज्जे' त्ति] स्थिरतावाळो होवाथी स्थैर्यरूप, विश्वासरूप प्रयोजनवाळो होवाथी वैश्वासिक, तेणे करेल सर्व कार्यो संमत, होवाथी संमत, बहु प्रकारे, बहु लोको द्वारा के घणो मानेलो ते बहुमत, कांइ बगाड करे अने बगाड कर्या पछी पण जेने मानवामां आवे ते अनुमत, ['भंडकरंडसमाणे' त्ति] ग्राह्य होवाथी आत्मा घरेणांना डाबला (करंडिया) जेवो छे, माटे ते 'भांडकरंडसमान' कहेवाय ['मा णं सीअं'] इत्यादि पदोमां 'मा' शब्दनो निषेध अर्थ छे. आ स्थळे जेम ठीक लागे तेम 'स्पृशन्तु' क्रियापदनो संबंध करवो. अथवा 'ए आत्माने न स्पर्शे' एम व्याख्या करवी. ['वालए' त्ति] जंगली जनावरो अने सर्पो ['मा णं वाइअ-पित्तिअ-सिंभिअ-सन्निवाइअं' त्ति] ['रोगायंक' त्ति] जे दरदो घणा लांबा काळ सुधी टके छे ते 'रोग' कहेवाय छे अने जे दरदो प्राणीनो जलदी नाश करे छे ते 'आतंक' कहेवाय छे, ['परिसहोवसग्ग' त्ति] आ सूत्रनो ['मा णं'] ए पद साथे संबंध छे. 'स्पृशन्तु' एटले स्पर्श करे—थाय. ['त्ति कट्टु'] एम विचारीने. 'जेनुं पालन कर्युं छे' ए अध्याहार छे. ते शुं ? तो कहे छे के, ['एस मे' इत्यादि.] ['तं इच्छामि' त्ति] तेथी इच्छुं छुं के, ['सयमेव' त्ति] श्रीभगवंत पोते ज मने रजोहरण वगेरेरूप वेष दइने प्रव्राजित—दीक्षित—करे अथवा मने दीक्षा द्यो, माथानो लोच करवापूर्वक मने मुंडित करे, पडिलेहण वगेरे अनेक क्रियाओ शिखवीने मने सेहित करे, सूत्र अने तेना अर्थो भणावी मने शिक्षित करे, तथा श्रुतज्ञानादि संबंधी जे अनुष्ठान—कालाध्ययन वगेरे—ते आचार, भिक्षा सारु फरवुं ते गोचर, ते बन्नेने श्रीमहावीर पोते ज कहे एम इच्छुं छुं, एम संबंध छे. विनय एटले नम्रता, जे विनयनुं फळ (कर्मक्षयादिरूप) ते वैनयिक, व्रत वगेरे ते चरण, पिंडविशुद्धि वगेरे ते करण, संयम संबंधी जे यात्रा ते संयमयात्रा, अने ते संयमना निर्वाह माटे ज जे आहारनुं ग्रहण ते मात्रा—आहारमात्रा; ए विनय वगेरे जेमां रहे छे ते 'विनयादिवृत्तिक' कहेवाय. अने तेवा धर्मने श्रीमहावीर पोते ज कहे एम इच्छुं छुं.

श्रीस्कंदकनी भावना.

श्रीभगवंत पोते ज दीक्षा करे तो ठीक.

११. *'एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं'* ति युगमात्रभून्यस्तदृष्टिनेत्यर्थः. *'एवं चिट्ठिअव्वं'* ति निष्क्रमण—प्रवेशादिवर्जिते स्थाने संयमा—ऽऽत्म—प्रवचन—बाधापरिहारेण ऊर्ध्वस्थानेन स्थातव्यम्. *'एवं निसीइअव्वं'* ति निषत्तव्यमुपवेष्टव्यम्, संदंशक—भूमिप्रमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थः. *'एवं तुयट्टिअव्वं'* ति शयितव्यं सामायिकोच्चारणादिपूर्वकम्. *'एवं भुंजिअव्वं'* ति धूमाङ्गारादिदोषवर्जनतः. *'एवं भासिअव्वं'* ति मधुरादिविशेषणोपपन्नतयेति. 'एवं उत्थाय' एवमुत्थायोत्थाय प्रमाद—निद्राव्यपोहेन विबुध्य विबुध्य, प्राणादिषु विषये यः संयमो रक्षा, तेन संयन्तव्यं यतितव्यम्. *'एतमाणाए'* त्ति एतदनन्तरम्, आज्ञया आदेशेन, *'इरियासमिए'* त्ति ईर्यायां गमने, समितः सम्यक् प्रवृत्तः—ईर्यासमितः, सम्यक् प्रवृत्तत्वरूपं हि समितत्वम्. *'आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए'* त्ति आदानेन ग्रहणेन सह भाण्डमात्राया उपकरण—परिच्छेदस्य, या निक्षेपणा न्यासः, तस्यां समितो यः सः तथा, *'उच्चार'* इत्यादि. इह च 'खेले' त्ति कण्ठ—मुखश्लेष्मा, सिङ्घानकं च नासिकाश्लेष्मा. *'मणसमिए'* त्ति संगतमनःप्रवृत्तिकः, *'मणगुत्ते'* त्ति मनोनिरोधवान्, *'गुत्ते'* त्ति मनोगुप्तत्वादीनां निगमनम्, एतदेव विशेषणायाहः—*'गुत्तिंदिए'* त्ति. *'गुत्तबंभयारी'* ति गुप्तं ब्रह्मगुप्तियुक्तम्, ब्रह्म चरति यः सः—तथा, *'चाइ'* त्ति संगत्यागवान्, 'लज्जु' त्ति संयमवान्, रज्जुरिव वा रज्जुरवक्रव्यवहारः, *'धन्ने'* त्ति धन्यो धर्मधनं लब्धेत्यर्थः. *'खंतिखमे'* त्ति क्षान्त्या क्षमते, न तु असमर्थतया, योऽसौ क्षान्तिक्षमः, जितेन्द्रियः, इन्द्रियविकाराभावात्, यच्च प्राग् 'गुप्तेन्द्रियः' इत्युक्तम्, तदिन्द्रियविकारगोपनमात्रेणाऽपि स्यादिति विशेषः. *'सोहिए'* त्ति शोभितः—शोभावान्, शोधितो वा निराकृतातिचारत्वात्, सौहृदं मैत्री सर्वप्राणिषु, तद्योगात् सौहृदो वा. *'अणियाणे'* त्ति प्रार्थनारहितः, *'अप्पुस्सुए'* त्ति अल्पौत्सुक्यः—त्वरारहितः, *'अबहिल्लेसे'* त्ति अविद्यमाना बहिः संयमाद् बहिस्तात्, लेश्या मनोवृत्तिर्यस्यासावबहिर्लेश्यः, *'सुसामण्णरए'* त्ति शोभने श्रमणत्वे रतः, अतिशयेन वा श्रामण्यरतः *'दंते'* त्ति दान्तः क्रोधादिदमनात्, द्यन्तो वा राग-द्वेषयोरन्तार्थं प्रवृत्तत्वात्. *'इणमेव'* त्ति इदमेव प्रत्यक्षम्, *'पुरओ काउं'* ति अग्रे विधाय, मार्गविदो मार्गज्ञनरमिव पुरस्कृत्य वा प्रधानीकृत्य, विहरति आस्ते इति.

श्रीभगवंतनी शिखामण.

११. ['एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं' ति] हे देवानुप्रिय ! एक धूंसरा जेटली जग्यामां आगळ दृष्टि राखीने चालवुं. ['एवं चिट्ठिअव्वं' त्ति] हे देवानुप्रिय ! जे जग्याए घणा लोको नीकळता न होय अने पेसता न होय ते जग्याए संयमने, आत्माने अने प्रवचनने बाधा न थाय ते प्रकारे उभडक रहेवुं—उभा रहेवुं. ['एवं निसीइअव्वं' त्ति] संडासा अने बेसवानी जग्याने प्रमार्जीने उपयोगपूर्वक बेसवुं. ['एवं तुयट्टिअव्वं' त्ति]

१. 'णं' शब्द वाक्यना अलंकार माटे छे. २. अहीं पेली विभक्तिनुं बहुवचन [illegible] छे. ३. अहीं 'कर' [illegible]

सामायिक वगेरेना उच्चारणपूर्वक शयन करवुं. ['एवं भुंजिअव्वं' त्ति] धूमांगार वगेरे दोषने टाळीने शुद्ध आहार लेवो. ['एवं भासिअव्वं' त्ति] मीठाश वगेरे गुणयुक्त बोलवुं. ए प्रमाणे उठी उठीने–प्रमाद अने निद्राना त्यागपूर्वक जागी जागीने प्राणादिनी रक्षा करवामां यत्न करवो जोइए. ['समणगारे' त्ति] श्रीमहावीर भगवंते पूर्वोक्त शिखामणो दिधा पछी तेओनी आज्ञावडे, ['इरियासमिए' त्ति] चालवामां सावधानतावाळो, सारी प्रवृत्ति राखवी ते ज 'समितपणुं' छे. ['आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए' त्ति] उपकरणोने लेवां अने मूकवां तेमां सावधानतावाळो, ['उच्चार' इत्यादि.] वडी. ['खेले' त्ति] खेल एटले कंठनो अने मुखनो श्लेष्मा, सिंघानक एटले नासिकानो श्लेष्मा. ['मणसमिए' त्ति] जेनी मननी प्रवृत्ति संगत छे ते, ['मणगुत्ते' त्ति] मनने वश राखनार, ['गुत्ते' त्ति] गुप्त छे, आ पद 'मनोगुप्त' वगेरे पदोना उपसंहाररूप छे. ए ज वातनी विशेषता माटे कहे छे के, ['गुत्तिंदिए' त्ति] गुप्त इंद्रियवाळो. ['गुत्तबंभयारी' ति] ब्रह्मचर्यनी गुप्तिपूर्वक जे ब्रह्मचर्य पाळे ते गुप्तब्रह्मचारी कहेवाय. ['चाइ' त्ति) संगनो त्यागी–असंग ['लज्जु' त्ति] संयमवाळो अथवा सीधी दोरडीनी पेठे सरल व्यवहारवाळो, ['धन्ने' त्ति] धर्मरूप धनने पामनार. ['खंतिखमे' त्ति] पोते नबळो छे माटे सहनशील छे एम नथी, पण पोतामां बळ छे छतां क्षमापूर्वक दुःखोने सहनार ते 'क्षांतिक्षम'. इंद्रियोना विकार न होवाने लीधे जितेंद्रिय. पहेलां जे 'गुप्तेंद्रिय' एवुं विशेषण आप्युं हतुं तेनो एवो अर्थ पण थाय के 'इंद्रियोना विकारोने छूपावनार' माटे आ 'जितेंद्रिय' ए विशेषण 'इंद्रियोना विकारना अभावने' सूचववा जणाव्युं छे अने तेथी तेमां विशेष छे. ['सोहिए' त्ति] शोभित, शोधित, के सौहृद. शोभावाळो ते शोभित, निर्दोष–व्रतोमां दोषो रहित–ते शोधित अने सर्व प्राणिमां मित्रतानी बुद्धिवाळो ते सौहृद. ['अणियाणे' त्ति] कोइ जातनी प्रार्थना नहीं करनार–'जो मारुं तप सारुं होय तो हुं चक्रवर्ती राजा थाउं के देव थाउं' एवी बुद्धि विनानो, ['अप्पुस्सुए' त्ति] उतावळो नहीं–धीरो, ['अबहिल्लेसे' त्ति] संयम सिवाय बीजे ठेकाणे मनोवृत्ति नहीं राखनार, ['सुसामण्णरए' त्ति] सुंदर श्रमणपणामां उजमाळ अथवा श्रमणपणामां खूब उजमाळ, ['दंते' त्ति] क्रोधादि शत्रुओनुं दमन करनार अथवा बेना–राग अने द्वेषना–अंत–नाश–माटे प्रवृत्ति करनार. ['इणमेव' त्ति] आ ज–प्रत्यक्ष, ['पुरओ काउं' त्ति] आगळ करीने अर्थात् जेम रस्ताने नहीं जाणनार पुरुष, रस्ताने जाणनार पुरुषने आगळ करीने चाले तेम आ श्रीस्कंदक अनगार, भगवंतना प्रवचनने आगळ करीने विहरे छे–रहे छे.

ईर्यासमिताति विशे-षणवाळा श्रीस्कंदक.

१२. *'एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ'* त्ति इह कश्चिदाह–ननु अनेन स्कन्दकचरितात् प्रागेव एकादशाङ्गनिष्पत्तिरवसीयते, पञ्चमाङ्गान्तर्भूतं च स्कन्दकचरितमिदमुपलभ्यते इति कथं न विरोधः? उच्यते–श्रीमन्महावीरतीर्थे किल नव वाचनाः, तत्र च सर्ववाचनासु स्कन्दकचरितात् पूर्वकाले ये स्कन्दकचरिताभिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यन्ते, स्कन्दकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानं स्वशिष्यमङ्गीकृत्याधिकृतवाचनायामस्यां स्कन्दकचरितमेवाश्रित्य तदर्थप्ररूपणा कृता इति न विरोधः. अथवा सातिशयित्वाद् गणधराणामनागतकालभाविचरितनिबन्धनमदुष्टमिति. भाविशिष्यसंतानापेक्षयाऽतीतकालनिर्देशोऽपि न दुष्ट इति. *'मासिअं'* ति मासपरिमाणम्, *'भिक्खुपडिमं'* ति भिक्षूचितमभिग्रहविशेषम्, एतत्स्वरूपं च–*"गच्छा विणिक्खमित्ता पडिवज्जइ मासिअं महापडिमं, दत्तेगभोयणस्स पाणस्स वि एग जा मास"* इत्यादि. नन्वयमेकादशाङ्गधारी पठितः, प्रतिमाश्च विशिष्टश्रुतवानेव करोति, यदाह–*"गच्छे च्चिय निम्माओ जा पुव्वा दस भवे असंपुण्णा, नवमस्स तईयवत्थू होइ जहन्नो सुयाहिगमो"* इति कथं न विरोधः? उच्यते–पुरुषान्तरविषयोऽयं श्रुतनियमः, तस्य तु सर्वविदुपदेशेन प्रवृत्तत्वाद् न दोष इति.

१२. तथा ['एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ' त्ति] अग्यार अंगोने भणे छे. शं०–श्रीस्कंदक पोते साधु थया पछी अग्यार अंगोने भण्या छे माटे एम प्रतीत थाय छे के श्रीस्कंदक पोते साधु थया ते पहेलां अग्यार अंगो बनेलां होवां जोइए अर्थात् ज्यारे श्रीस्कंदक, परिव्राजक स्थितिमां हशे त्यारे अग्यार अंगो बनी गयां हशे. ज्यारे एम होय त्यारे श्रीभगवतीजी नामना पांचमा अंगमां (जे अंग, श्रीस्कंदक साधु थयां पहेलांनुं बन्युं छे—जे अंग बन्युं त्यारे श्रीस्कंदक, तापसनी स्थितिमां हशे) ते श्रीस्कंदकनुं साधु तरीकेनुं जीवन केम होइ शके? कारण के जे ग्रंथमां जेनुं जीवन होय ते पुरुष ते ग्रंथनी पहेलां हयात होवो जोइए, आ जीवन संबंधे एम नथी माटे कांइ विरोध केम न होय? समा०–श्रीमहावीर भगवंतना तीर्थमां नव वाचना थएली छे अने ते दरेक वाचनाओमां स्कंदकनी पहेलां थएली, स्कंदकचरित्रना जेवी अनेक बिनाओ आवे छे, ते बधी बिनाओ (ज्यां सुधी स्कंदकनी विद्यमानता नथी त्यां सुधी) बीजा कोइना चरित्रद्वारा जणाय छे अने ज्यारे श्रीस्कंदक उत्पन्न थया त्यारे ते स्कंदकना जेवी बिनाने श्रीसुधर्मास्वामीए पोताना जंबू नामना शिष्यने उद्देशीने आ चालु वाचनामां श्रीस्कंदकना चरित्रनो आधार लइने कही छे माटे विरोध जेवुं कांइ नथी. अथवा गणधरो अतिशययुक्त ज्ञानवाळा होय छे माटे भविष्यत्काळनी बीना कहेवामां तेओने हरकत नथी अने जे अहीं 'भूतकाळ' नो निर्देश कर्यो छे ते थनारा शिष्यसमूहने अपेक्षीने कह्यो छे माटे ते पण निर्दोष छे. ['मासिअं' ति] एक महिना जेटली–एक महिना सुधी ['भिक्खुपडिमं'] भिक्षुने (साधुने)

श्रीस्कंदकनुं अध्ययन अने शंका.

समाधान.

भिक्षुप्रतिमा.

---

१. 'धूमांगार' ए आहारसंबंधी दोष छे. तेनुं विवेचन आ छेः—

"राग–दोसेहिं धूमइंगाल" तथा "राग–द्वेषाभ्यां प्रेमाऽप्रेमाभ्याम् आहारविषयाभ्यां ××× चारित्रेन्धनस्य धूमायमानताकरणम्, अङ्गारकरणं च" इति–श्रीपञ्चाशके त्रयोदशपञ्चाशके ४९ गाथायाम्:–अनु०

"प्राप्त थएल आहारने प्रेमपूर्वक के द्वेषपूर्वक खावो ते 'धूमांगार' दोष. कारण के तेवी रीते आहार लेवाथी चारित्ररूप इंधणाने धूम लागे छे अथवा ते बळीने अंगाररूप थइ जाय छे माटे 'धूमांगार दोष' कहेवाय छेः–श्रीपंचाशकनुं तेरमुं पंचाशक, गाथा ४९:–अनु०

१. [illegible]—गच्छाद् विनिष्क्रम्य प्रतिपद्यते मासिकीं महाप्रतिमाम्, दत्त्येकभोजनस्य पानस्याऽपि एका यावद् मासम्. २. गच्छे एव निर्मातो यावद् [illegible] दश भवन्ति असंपूर्णानि, नवमस्य तृतीयवस्तु भवति जघन्यः श्रुताधिगमः.–अनु०

योग्य एक मासनो अभिग्रह–तप–तेने, ए भिक्षुप्रतिमानुं स्वरूप आ रीते छेः–"गच्छथी–साधुना–समुदायथी–नीकळीने–जुदा रहीने–एक [illegible]

१. साधुओनी प्रतिमा विषे संक्षिप्त समजूती आ छेः—

प्रतिमायंत्र.

प्रतिमाः	समयः	विशेष विधिः
१ ली.	एक मास.	अन्न अने पाणीनी एक दत्ति लेवी.
२ जी.	बे मास.	अन्न अने पाणीनी बे दत्ति लेवी.
३ जी.	त्रण मास.	,, त्रण ,,
४ थी.	चार मास.	,, चार ,,
५ मी.	पांच मास.	,, पांच ,,
६ ट्ठी.	छ मास.	,, छ ,,
७ मी.	सात मास.	,, सात ,,
८ मी.	सात रात्री दिवस.	पाणी पीधा विना एकांतर उपवास करवा. पारणे आंबिल.गामनी बहार रहेवुं, चत्ता के पडखे सूवुं अने उभडक बेसीने जे आवे ते सहवुं.
९ मी.	,,	,, तथा उभडक रहेवुं अने वांका लाकडानी पेठे सुवुं वगेरे.
१० मी.	,,	,, तथा गोदोहासन अने वीरासन. संकोचाइने बेसवुं.
११ मी.	एक अहोरात्र.	पाणी विनानो छट्ठ–बे उपवास. गामनी बहार हाथने लंबावीने रहेवुं.
१२ मी.	एक रात्री.	अट्ठम–त्रण उपवास. नदी वगेरेने कांठे भेखड उपर रहेवुं, आंखो न पटपटाववी.

साधुनी बार प्रतिमा विषे सविस्तर विवेचन श्रीहरिभद्रसूरिकृत श्रीपंचाशक नामना ग्रंथमां अढारमा पंचाशकमां पहेलेथी वीश गाथा सुधी आप्युं छे. माटे विस्तररुचि जिज्ञासुओए ते ठेकाणेथी बार प्रतिमा विषेनुं विवेचन जोवुंः—अनु०

२. आ गाथा श्रीहरिभद्रसूरिविरचित श्रीपंचाशक नामना ग्रंथमां अढारमा पंचाशकमां सातमी छे. त्यां ते गाथानी टीकामां जे विवेचन छे तेनो सार आ छेः–

गच्छात् साधुसमूहाद् विनिष्क्रम्य तं विमुच्य इत्यर्थः. तत्र यदि आचार्यादिरसौ तदा अल्पकालिकं साध्वन्तरे स्वपदनिक्षेपं कृत्वा शुभेषु द्रव्यादिषु शरत्काले सकलसाध्वामन्त्रणपूर्वकं [उक्तं चः–"खामेइ तओ संघं सबालवुड्ढं जहोचियं एवं, भणंतं संविग्गो पुव्वविरुद्धे विसेसेणं. जं किंचि पमाएणं न सुट्ठु मे वट्टियं मए पुव्विं, तं मे खामेमि अहं निस्सल्लो निक्कसाओ" त्ति.] प्रतिपद्यतेऽभ्युपगच्छति, मासिकीं मासप्रमाणाम्, महाप्रतिमां गुरुकप्रतिज्ञाम्. तत्र च दत्तिरविच्छिन्नदानरूपा, एका एकैव, भोजनस्य अन्नस्याऽज्ञातोञ्छरूपस्य उत्तरैषणापञ्चकाऽन्यतरोपात्तस्य अलेपकारिणः कृपणादिभिरनिभूक्षितस्य एकस्यामिषत्कस्यैव [illegible] [illegible] (छ) [illegible], तथा पानकस्याऽपि पानकाऽऽहारस्य च एकैव [illegible] [illegible] [illegible] इति.

साधुना टोळाथी बहार नीकळीने प्रतिमावहनादि करवानुं छे. जो प्रतिमाने वहनार कोइ आचार्य होय, तो तेणे पोताने स्थाने कोइ [illegible] लाउ साधुने नीमवो अने पछी सारा द्रव्यादिना योगे शरत्कालमां बधा साधुने आमंत्रीने ते कार्य करवुं. कह्युं छे के, "ते प्रतिमाने वहनार पुरुष, बाळ अने वृद्धो सहित आखा संघने यथोचित रीते खमावे छे अने पोताना विरोधिओने तो विशेषतावडे खमावे छे. ते संविग्न पुरुष कहे छे के, जे कोइ मारा प्रमादथी तमारी साथे पहेलां सारी रीते न वर्त्यो होय ते माटे हुं निखालस रीते अने कषाय रहित थइने तमने खमावुं छुं." [illegible] [illegible] [illegible]

दत्ति. [illegible] महाप्रतिमाने—मोटी प्रतिमाने—एक जातना तपने—स्वीकारे छे अर्थात् एक महिना सुधी अन्न अने पाणीनी एक दत्ती करे छे. दत्तिनुं स्वरूप आ छे—'दत्ति' शब्दनो अर्थ 'दान—देवुं' थाय छे. देनार ज्यारे अन्न के पाणीने देतो होय त्यारे देवाता अन्न के पाणीनी ज्यां सुधी एक धार होय अने ते एक धारमां आवे तेटलुं ज लेवुं तथा धार तुटी गया पछी जरा पण न लेवुं ते 'दत्ति' कहेवाय छे." इत्यादि. शं०—श्रीस्कंदक अनगार

शंका. [illegible] अंगोने भण्या छे एम आगळ जणाव्युं छे. तो ते, प्रतिमाने केवी रीते करी शके? कारण के जे विशेष प्रकारे श्रुतज्ञानना अभ्यासी होय तेओ ज प्रतिमाने करी शके छे. कह्युं छे के—"जेणे गच्छमां (साधुना समुदायमां) ज रहीने प्रतिमा करवा माटे (दुःख वगेरे सहवानो) सारो अभ्यास कर्यो होय, तथा जेने कांइक ओछा दशपूर्व सुधीनुं ज्ञान होय अने ओछामां ओछुं तो नवमा पूर्वनी तृतीय वस्तु सुधीनुं तो ज्ञान होवुं ज जोइए. तेवो ज ते प्रतिमाने करी शके छे" हवे ज्यारे शास्त्रमां कह्या प्रमाणे पूर्वोक्त प्रकारनो पुरुष ज प्रतिमा करी शके छे, तो श्रीस्कंदक ते प्रतिमाने केवी रीते करी शके, कारण के तेओने कोइपण पूर्वनुं ज्ञान हतुं ज नहीं. माटे तेओनी प्रतिमा करवानी वीना विरोधवाळी केम न होय? समा०—'अमुक

समाधान. पूर्व सुधीना अभ्यासवाळो पुरुष ज प्रतिमाने करी शके' एवो नियम बीजा पुरुषोने माटे छे, पण श्रीस्कंदकने ते नियम लागु पडतो नथी. कारण के सर्वज्ञ भगवंत श्रीमहावीरना उपदेशथी श्रीस्कंदके प्रतिमा करवानी प्रवृत्ति करी हती माटे कोइ जातनो दोष नथी.

१३. *'अहासुत्तं'* ति सामान्यसूत्राऽनतिक्रमेण, *'अहाकप्पं'* ति प्रतिमाकल्पाऽनतिक्रमेण, तत्कल्पवस्त्वनतिक्रमेण वा, *'अहामग्गं'* ति ज्ञानादिमोक्षमार्गानतिक्रमेण वा, क्षायोपशमिकभावाऽनतिक्रमेण वा, *'अहातचं'* ति यथातत्त्वम्—तत्त्वाऽनतिक्रमेण—'मासिकी भिक्षुप्रतिमा' इति शब्दार्थानतिलङ्घनेनेत्यर्थः. *'अहासम्मं'* ति यथासाम्यम्—समभावाऽनतिक्रमेण, *'काएणं'* ति न मनोरथमात्रेण, *'फासेइ'* त्ति उचितकाले विधिना ग्रहणात्, *'पालेइ'* त्ति असकृदुपयोगेन प्रतिजागरणात्, *'सोहेइ'* त्ति शोभयति पारणकदिने गुर्वादिदत्तशेषभोजनकरणात्, शोधयति वाऽतिचारपङ्कक्षालनात्, *'तीरेइ'* त्ति पूर्णेऽपि तदवधौ स्तोककालावस्थानात्, *'पूरेइ'* त्ति पूर्णेऽपि तदवधौ तत्कृत्यपरिमाणपूरणात्, *'किट्टेइ'* त्ति कीर्तयति पारणकदिने इदं च इदं चैतस्याः कृत्यम्, तच्च मया कृतमित्येवं कीर्तनात्, *'अणुपालेइ'* त्ति तत्समाप्तौ च तदनुमोदनात्, किमुक्तं भवति इत्याह—आज्ञया आराधयति इति. एवमेताः सप्त सप्तमासान्ताः. ततोऽष्टमी—प्रथमा सप्तरात्रिंदिवा सप्ताहोरात्रमाना, एवं नवमी, दशमी चेति, एतास्तिस्रोऽपि चतुर्थभक्तेनाऽपानकेनेति, उत्तानकादिस्थानकृतस्तु विशेषः. *'राइंदिय'* त्ति रात्रिंदिवा एकादशी अहोरात्रपरिमाणा, इयं च षष्ठभक्तेन. *'एगराइअं'* ति एकरात्रिकी, इयं चाष्टमेन भवतीति.

प्रतिमानिर्वहन. १३. ['अहासुत्तं'ति] सामान्य सूत्रमां कह्या प्रमाणे, ['अहाकप्पं'ति] प्रतिमाना कल्पमां कह्या प्रमाणे अथवा कल्पनी वस्तुओ जेम छे तेम, ['अहामग्गं'ति] ज्ञानादिरूप मोक्षना मार्गनी मर्यादापूर्वक अथवा क्षायोपशमिक भाव प्रमाणे, ['अहातच्चं'ति] तत्त्व प्रमाणे अर्थात् 'मासिकी भिक्षुप्रतिमा' ए शब्दना अर्थ प्रमाणे, ['अहासम्मं'ति] सम भावपूर्वक, ['काएणं'ति] मात्र मनोरथ करवाथी ज नहीं, पण शरीरद्वारा प्रवृत्ति करवाथी, ['फासेइ'त्ति] उचित समये विधिपूर्वक ग्रहण करवाथी, ['पालेइ'त्ति] वारंवार उपयोगपूर्वक सावधानता राखवाथी पाळे छे, ['सोहेइ'त्ति] पारणाने दिवसे गुरु-वगेरेथी अपाएल शेष भोजन करवाथी व्रतने शोभावे छे, अथवा व्रतमां दूषणरूप कचरो न आववाथी व्रतने शोधे छे, ['तीरेइ'त्ति] तेनी मर्यादा पूरी थया पछी पण थोडो काळ रहे छे, ['पूरेइ'त्ति] तेनी मर्यादा पूरी थया पछी पण ते संबंधी कार्योनुं परिमाण पूरुं करे छे, ['किट्टेइ'त्ति] पारणाने दिवसे 'व्रत संबंधी आ आ कार्य छे अने ते में कर्युं छे' ए प्रमाणे कीर्तन करे छे, ['अणुपालेइ'त्ति] व्रत पूरुं थया पछी तेनी अनुमोदना (प्रशंसा)

---

१. आ गाथा श्रीहरिभद्रसूरिविरचित श्रीपंचाशक नामना ग्रंथमां अढारमा पंचाशकमां पांचमी छे. त्यां ते गाथानी टीकामां जे विवेचन छे तेनो सार आ छेः—

गच्छ एव साधुसमुदायमध्य एव तिष्ठन्, निर्मातः प्रतिमाकल्पपरिकर्मणि आहारादिविषये परिनिष्ठितः, आह च:—"पडिमाकप्पिअतुल्लो गच्छे चिअ कुणइ दुविहपरिकम्मं, आहारो—वहिमाइसु तहेव पडिवज्जए कप्पं." आहारादिप्रतिकर्म दर्शयिष्यते. परिकर्मपरिमाणं चैवम्:—आसामाद्यासु सप्तसु या यावत्परिमाणा तस्यास्तत्प्रमाणमेव प्रतिकर्म. तथा वर्षासु नैताः प्रतिपद्यते, न च प्रतिकर्म करोति. तथा आद्यद्वयमेकत्रैव वर्षे. तृतीय—चतुर्थ्यौ चैकैकस्मिन् वर्षे. अन्यासां तु तिसृणामन्यत्र वर्षे प्रतिकर्म, अन्यत्र च प्रतिपत्तिः. तदेवं नवभिर्वर्षैः आद्याः सप्त समाप्यन्ते इति. अथ तस्य कियान् श्रुताधिगमः भवति? इत्याह—यावत् पूर्वाणि, 'दश' इति प्रतीतम्—असंपूर्णानि किंचिद् ऊनानि, संपूर्णदशपूर्वधरो हि अमोघवचनत्वाद् धर्मदेशनया भव्योपकारित्वेन तीर्थवृद्धिकारित्वात् प्रतिमादिकल्पं न प्रतिपद्यते. भवेत् स्यात्, श्रुताधिगम इति योगः, उत्कृष्टश्चायम्, जघन्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्. अथ जघन्यमेव आहः—नवमस्य पूर्वस्य प्रत्याख्याननामधेयस्य तृतीयवस्तु आचाराख्यं तद्भागविशेषम्, 'यावत्' इति वर्तते. भवति स्यात्, जघन्यः अल्पीयान्, श्रुताधिगमः श्रुतज्ञानम्—सूत्रतोऽर्थतश्च. एतच्छ्रुतविकलो हि निरतिशयज्ञानत्वात् कालादि न जानाति इति. (पृ—२७९, [illegible]सूरिर्भगवतीविवरणप्रणेता.):—अनु०

जे साधुनी एवी भावना होय के, पोते 'भिक्षुप्रतिमा'ने वहवा इच्छे छे. तो तेणे साधुना टोळामां ज रहीने 'भिक्षुप्रतिमा' संबंधी आचारो पाळवानी टेव राखवी जोइए—भिक्षुप्रतिमा तप करती वखते जे जातनो नीरस आहार लेवातो होय या जेवी जातनुं ध्यान अने विचरण थतुं होय ते बधुं 'भिक्षुप्रतिमा' ने स्वीकार्या पहेलां पोतानी जात उपर अजमाववुं जोइए, जेथी ते तपनो स्वीकार कर्या पछी बराबर सावधानीथी तेनुं निर्वहन थाय. आ ज प्रकारनी हकीकत बीजा ग्रंथोमां पण कही छे. 'जे भिक्षु प्रतिमा जेटला काळ सुधी निर्वहवानी होय तेटला काळ सुधी तेनो अभ्यास करवो जोइए' ए नियम शरुआतनी सात भिक्षुप्रतिमाओने लागु पडे छे. चोमासानी मोसममां ते भिक्षुप्रतिमाओ लेवाती नथी, तेम तेनो अभ्यास पण थतो नथी. सात प्रतिमा पछीनी पेली अने बीजी प्रतिमा (बन्ने)नो साथे एक वर्षमां अभ्यास थइ शके छे अने ते पछीनी त्रीजी प्रतिमाना अभ्यास माटे एक वर्षनी जरूर छे तथा चोथी प्रतिमा माटे पण एम छे. बीजी त्रण प्रतिमाओनो अभ्यास जूदे वर्षे थाय छे तथा तेनो अंगीकार पण जूदे वर्षे थाय छे—एक ज वर्षमां साथे तेनो अभ्यास अने अंगीकार थइ शकतो नथी. तो ए प्रमाणे शरुआतनी सात प्रतिमाओ नव वर्षोवडे समाप्त थाय छे. हवे जे साधु प्रतिमाने लइ तेनुं निर्वहन करवा इच्छे छे तेनो शास्त्राभ्यास केवा प्रकारनो—केटलो होवो जोइए, ते विषे जणावे छे—वधारेमां वधारे तो तेनो शास्त्राभ्यास लगभग दस पूर्व जेटलो (दसमुं पूर्व पूरुं नहीं) होवो जोइए अने ओछामां ओछो तेनो शास्त्राभ्यास नवमा पूर्वनी त्रीजी वस्तु सुधी होवो जोइए. जे मुनि पूरेपूरां दसे पूर्व जाणतो होय ते 'भिक्षुप्रतिमा' वगेरे आकरां तपने स्वीकारतो नथी. कारण के तेटला अभ्यासी मुनिनी वाणी अमोघ होय छे अने तेथी ते तीर्थ-[illegible] धर्मोपदेश [illegible]—[illegible] छे. अर्थात् ए मुनि पोतानी शक्तिनो उपयोग लोककल्याणमां ज करे छे. ([illegible]).—अनु०

दरेक प्रतिमानो समय.

करे छे—व्रतने वखाणे छे अर्थात् व्रतने आज्ञापूर्वक आराधे छे. ए प्रमाणे ए सात प्रतिमा सात मास सुधी चाले छे—पहेली प्रतिमा एक मास, बीजी प्रतिमा बे मास अने ए प्रमाणे सातमी प्रतिमा सात मास सुधी चाले छे. त्यार पछी आठमी प्रतिमा आवे छे ते ' प्रथमा ' कहेवाय छे. तेनु [illegible] सात रात्री दिवसनुं छे. अने नवमी तथा दशमी प्रतिमा पण ए ज प्रकारनी छे. तथा ए त्रणे (आठमी, नवमी, दशमी) प्रतिमामां चोविहारो ([illegible] पीधा विनानो) उपवास करवो जोइए. वळी ए त्रणे प्रतिमामां ' उत्तानक ' वगेरे स्थानथी विशेषता छे—ए त्रणे प्रतिमामां बेसवानां आसनो [illegible]

आसनभेद.

जूदां छे माटे विशेषता छे. [' राइंदिय ' त्ति] अग्यारमी प्रतिमा अहोरात्र सुधी चाले छे अने तेमां छट्ठ (बे उपवास) करवानो छे. [' एगराइयं ' ति] बारमी प्रतिमा एक रात्री सुधी चाले छे अने तेमां अट्ठम (त्रण उपवास) करवानो छे.

१४. *'गुणरयणसंवच्छरं'* ति गुणानां निर्जराविशेषाणाम्, रचनं संवत्सरेण सत्रिभागवर्षेण यस्मिंस्तपसि तद् गुणरचनं संवत्सरम्, गुणा एव वा रत्नानि यत्र स तथा गुणरत्नः, गुणरत्नः संवत्सरो यत्र तद् गुणरत्नसंवत्सरं तपः. इह च त्रयोदश मासाः, सप्तदशदिनाधिकाः तपः-कालः, त्रिसप्ततिश्च दिनानि पारणककाल इति. एवं चायम्—*"पन्नरस वीस चउव्वीस चेव चउव्वीस पणवीसा य, चउवीस एक्कवीसा चउवीसा सत्तवीसा य. तीसा तेत्तीसा वि य चउवीस छव्वीस अट्ठवीसा य, तीसा बत्तीसा वि य सोलसमासेसु तवदिवसा. पन्नरस दसट्ठ छ पंच चउर पंचसु य तिण्णि तिण्णि त्ति, पंचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा."* इह च यत्र मासे अष्टमादितपसो यावन्ति दिनानि न पूर्यन्ते, तावन्ति अग्रेतनमासाद् आकृष्य पूरणीयानि, अधिकानि च अग्रेतनमासे क्षेप्तव्यानि. *'चउत्थंचउत्थेणं'* ति चतुर्थं भक्तं यावद् भक्तं त्यज्यते यत्र तच्चतुर्थम्, इयं चोपवासस्य संज्ञा. एवम्, षष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति. *'अणिक्खित्तेणं'* ति अविश्रान्तेन, *'दिय'* त्ति दिवा दिवसे इत्यर्थः, *'ठाणुक्कुडुए'* त्ति स्थानमासनम्, उत्कुटुकमाधारे पुताऽलगनरूपं यस्यासौ स्थानोत्कुटुकः, *'वीरासणेणं'* ति सिंहासने उपविष्टस्य भून्यस्तपादस्य अपनीतसिंहासनस्येव यदवस्थानम्, तद्वीरासनं तेन, *'अवाउडेण य'* त्ति प्रावरणाभावेन च.

गुणरत्न संवत्सर तप अने तेनुं स्वरूप.

१४. ['गुणरयणसंवच्छरं' ति] जे तप करवामां आवे त्यारे सोळ महिना सुधी एक जातनी निर्जरारूप गुणोनी रचना (उत्पत्ति) थाय ते तप 'गुणरयणसंवच्छर' कहेवाय, अथवा जे तपमां, गुणरूप रतनोवाळुं आखुं वर्ष वीतावाय छे ते तप 'गुणरयणसंवच्छर' कहेवाय. आ तपमां तेर मास अने सत्तर दिवस सुधी तप करवानुं छे अने तोंतेर दिवस पारणानो वखत छे. ते आ प्रमाणे छे—प्रथम—पहेला मासमां पन्नर दिवस, बीजा मासमां वीश दिवस, त्रीजा मासमां चोवीश दिवस, चोथा मासमां चोवीश दिवस, पांचमा मासमां पचीश दिवस, छठ्ठा मासमां चोवीश दिवस, सातमा मासमां एकवीश दिवस, आठमा मासमां चोवीश दिवस, नवमा मासमां सत्तावीश दिवस, दशमा मासमां त्रीश दिवस, अग्यारमा मासमां तेत्रीश दिवस, बारमा मासमां चोवीश दिवस, तेरमा मासमां छव्वीश दिवस, चौदमा मासमां अट्ठावीश दिवस, पन्नरमा मासमां त्रीश दिवस अने सोळमा मासमां बत्रीश दिवस तप करवाना छे. तथा प्रथम मासमां पन्नर दिवस, बीजा मासमां दश दिवस, त्रीजा मासमां आठ दिवस, चोथा मासमां छ दिवस, पांचमा मासमां पांच दिवस, छठ्ठा मासमां चार दिवस, सातमा मासमां त्रण दिवस, आठमा मासमां त्रण दिवस, नवमा मासमां त्रण दिवस, दशमा मासमां त्रण दिवस, अग्यारमा मासमां त्रण दिवस, तथा बारमा, तेरमा, चौदमा, पन्नरमा अने सोळमा मासमां पण बे बे दिवस पारणाना छे" शं०—आगळ जे तपना दिवसो गणाव्या छे तेमां एम पण कह्युं छे के कोई मासमां बत्रीश दिवस तप करवो, तो ए कथन केवी रीते संगत थाय, कारण के मासना दिवसो तो त्रीश ज होय छे ? समा०—जे मासमां अट्ठम वगेरे तपना जेटला दिवसो पूरा न थता होय—खूटता होय—तेटला दिवसो आगळना मासथी खेंचीने पूरा करवा अर्थात् जे मासमां बत्रीश दिवस तप करवानुं छे, ते पासेना मासना बे दिवसो उपरना मासमां खेंची लेवा अने जे मासमां तप करतां वधारे दिवसो होय ते दिवसो तेनी पछीना मासमां मेळवी अर्थात् कोइ मासमां एकवीश दिवस तप करवानुं कह्युं होय तो ते मासनुं तप पूरुं थया पछी नव दिवसो वधे छे माटे ते नव दिवसो ते मास पछीना मासमां मेळवी देवा. ['चउत्थंचउत्थेणं' ति] चउत्थ एटले चतुर्थ—उपवास. 'चतुर्थ' शब्दनो शब्दार्थ आ छे:—जे व्रतमां चोथा टंक सुधी जमाय नहीं ते व्रत 'चतुर्थभक्त' कहेवाय अर्थात् साधारण रीते एक दिवसना बे टंक गणाय छे अने ए ज प्रकारे त्रण दिवसोना मळीने छ टंक थाय छे. तो आजे एक टंक खाइ, बीजे दिवसे बन्ने टंक न खाइ अने चोथुं टंक आवे त्यां सुधी पण न जमवुं ते 'चतुर्थभक्त' कहेवाय. ए ज प्रमाणे 'छट्ठ' ए बे उपवास तथा 'अट्ठम' ए त्रण उपवासनी संज्ञा छे—जे व्रतमां छठ्ठा टंक सुधी जमाय नहीं ते 'छट्ठ' अने जे व्रतमां आठमा टंक सुधी जमाय नहीं ते 'अट्ठम' ए प्रमाणे सर्वत्र जाणवुं. ['अणिक्खित्तेणं' ति] निरंतर—विसामो लीधा विना—रोज, ['दिय' त्ति] दिवसे, ['ठाणुक्कुडुए' ति] स्थान एटले आसन अने उत्कुटुक एटले उभडक अर्थात् जे उभडक बेसे, किंतु नितंबना भागने जमीन साथे न अडकवा दे ते 'उत्कुटुक आसनवाळो' 'स्थानोत्कुटुक' कहेवाय. ['वीरासणेणं' ति] वीरासनवडे, वीरासननुं स्वरूप आ छे:—जेम, कोइ एक मनुष्य सिंहासन उपर बेठेल होय अने तेने तेना पग, नीचे मूकेला होय, ए वखते ते सिंहासन लइ लीधा पछी पेला बेठेल मनुष्यनुं जे आसन—बेसवानी रीत—ते 'वीरासन' कहेवाय. ['अवाउडेण य' त्ति] कांइ ओढ्या के पहेर्या सिवाय.

चतुर्थ.

उत्कुटुकासन.

वीरासन.

---

१. प्र० छाः—पञ्चदश विंशतिः चतुर्विंशतिरेव चतुर्विंशतिः पञ्चविंशतिश्च, चतुर्विंशतिः एकविंशतिः चतुर्विंशतिः सप्तविंशतिश्च. त्रिंशत् त्रयस्त्रिंशत् अपि च चतुर्विंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिश्च, त्रिंशद् द्वात्रिंशद् अपि च षोडशमासेषु तपोदिवसाः. २. पञ्चदश दश अष्टौ षट् पञ्च चत्वारः पञ्चसु च त्रयस्त्रय इति, पञ्चसु द्वौ द्वौ च तथा षोडशमासेषु पारणकानिः—अनु०

३. श्रीप्रवचनसारोद्धार नामना ग्रंथमां 'गुणरत्नसंवत्सर' नामना तपसंबंधी नीचे प्रमाणे हकीकत छेः—

" गुणरयणवच्छरम्मि सोलस मासा हवंति तवचरणे, एगंतरोववासा पढमे मासम्मि कायव्वा. ठायव्वं उक्कडआसणेण दिवसे, निसाइ पुण निच्चं वीरासणिएण तहा होअव्वं अवाउडेणं च. बीआइमासेसु कमा एगुत्तराइ वुड्ढीए, जा सोलसमे सोलस उववासा हुंति मासम्मि. "

" 'गुणरत्नसंवत्सर' नामनुं तप करतां सोळ महिना लागे छे. ते तपमां पहेले महिने एकांतर उपवास करवा पडे छे. अने दिवसे, [illegible] गोवाळनी पेठे उत्कट आसने रहेवुं पडे छे, तथा रात्रीए कांइ पण ओढ्या के पहेर्या सिवाय वीरासने बेसी ध्यान ध्यावुं पडे छे. ए [illegible] मास वीताववो पडे छे. बीजे मासे बबे उपवास करी पारणुं अने ए रीते यावत्—सोळमे मासे सोळ सोळ उपवास करीने पारणुं [illegible] महिने एक एक उपवास वधारीने पारणुं करवुं." (श्रीप्रवचनसारोद्धार, द्वार—२७१, गाथा—[illegible])—अनु०

१५. 'ओरालेणं' इत्यादि. ओरालेन आशंसारहिततया प्रधानेन. प्रधानं चाल्पमपि स्यात्, इत्यत आह--विपुलेन विस्तीर्णेन बहुदिनत्वात्. विपुलं च [illegible]मपि स्यात्, अप्रयत्नकृतं वा स्यात्, अत आह--'पयत्तेणं' ति प्रदत्तेन अनुज्ञातेन गुरुभिः, प्रयत्नेन वा प्रयत्नवता प्रमादरहि-[illegible]. एवंविधमपि सामान्यतः प्रतिपन्नं स्यात्, इत्याह--प्रगृहीतेन बहुमानप्रकर्षाद् आश्रितेन, तथा, कल्याणेन नीरोगताकारणेन, शिवेन शि-[illegible], धन्येन धर्मधनसाधुना, मङ्गल्येन दुरितोपशमनसाधुना, सश्रीकेण सम्यक्पालनात् सशोभेन, उदग्रेण उन्नतपर्यवसानेन--उत्तरोत्तरं वृद्धि-[illegible] इत्यर्थः, उदात्तेन उन्नतभाववता, 'उत्तमेणं' ति ऊर्ध्वं तमसः--अज्ञानात्, यत् तत् तथा, तेन--ज्ञानयुक्तेनेत्यर्थः, उत्तमपुरुषाऽऽसेवितत्वाद् वा उत्तमेन, उदारेण औदार्यवता निःस्पृहत्वातिरेकात्, महानुभागेन महाप्रभावेण, 'सुक्के'त्ति शुष्को नीरसशरीरत्वात्, 'लुक्खे'त्ति बुभुक्षा-[illegible] रूक्षीभूतत्वकत्वात्, अस्थीनि चर्मावनद्धानि यस्य सोऽस्थिचर्मावनद्धः, किटिकिटिका निर्मांसास्थिसंबन्धी उपवेशनादिक्रियासमुत्थः शब्द-विशेषः, तां भूतः प्राप्तो यः स किटिकिटिकाभूतः, कृशो दुर्बलः, धमनीसंततो नाडीव्याप्तः--मांसक्षयेण दृश्यमाननाडीकत्वात्, 'जीवंजीवेणं' ति [illegible]त्वाद् जीवजीवेन जीवबलेन गच्छति, न शरीरबलेनेत्यर्थः. 'भासं भासित्ता' इत्यादौ कालत्रयनिर्देशः. 'गिलायति' ग्लायति ग्लानो भवति. 'से जहा णाम ए' त्ति 'से'त्ति अथार्थः, 'यथा' इति दृष्टान्तार्थः, 'नाम' इति संभावनायाम्, 'ए' इति वाक्यालंकारे, 'कट्ठसगडिअ' त्ति काष्ठ-भृता शकटिका:--काष्ठशकटिका:, 'पत्तसगडिअ' त्ति पलाशादिपत्रभृता गन्त्री, 'पत्ततिलभंडगसगडिअ' त्ति पत्रयुक्ततिलानाम्, भाण्डकानां च मृन्मयभाजनानां भृता गन्त्रीत्यर्थः, 'तिलसंठगसगडिय' त्ति क्वचित् पाठः, प्रतीतार्थश्च. 'एरंडकट्ठसगडिअ' त्ति एरण्डकाष्ठमयी एरण्डकाष्ठभृता वा शकटिका:, एरण्डकाष्ठग्रहणं च तेषामसारत्वेन तच्छकटिकायाः शुष्कायाः सत्याः अतिशयेन गमनादौ सशब्दत्वं स्यादिति. अङ्गारशक-टिका अङ्गारभृता गन्त्री, 'उण्हे दिन्ना, सुक्का समाणी' इति विशेषणद्वयं काष्ठादीनामार्द्राणामेव संभवतीति यथासंभवमायोज्यमिति. हुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्नः 'तवेणं तेएणं' ति तपोलक्षणेन तेजसा. अयमभिप्रायः--यथा भस्मच्छन्नोऽग्निर्बहिर्वृत्त्या तेजोरहितः, अन्तर्वृत्त्या तु ज्वलति, एवं स्कन्दकोऽपि अपचितमांस--शोणितत्वाद् बहिर्निस्तेजाः, अन्तस्तु शुभध्यानतपसा ज्वलतीति. उक्तमेवार्थमाह:--'तव--तेअ--' इत्यादि.

तपप्रशंसा.

१५. ['ओरालेणं' इत्यादि.] उदार एटले प्रधान--कोइ पण जातनी आशा विनानुं--तेवडे, कोइ प्रधान पदार्थ एवो होय के जे प्रधान होय अने अल्प पण होय, माटे कहे छे के, विपुल--घणा दिवस सुधी पहोंचे तेवुं होवाथी विस्तीर्ण--विशाल--तेवडे, कोइ विपुल एवुं पण होय के जेमां गुरुनी अनुमति न होय अथवा जेने शरु करवामां कांइ प्रयत्ननी जरूर न होय, माटे कहे छे के, ['पयत्तेणं' ति] गुरुए दीघेल--गुरुद्वारा अनुमति मेळवीने आचरेलुं अथवा प्रमादने छोडीने प्रयत्नपूर्वक करेलुं--तेवडे, एवा प्रकारनुं पण साधारणपणे स्वीकारेलुं होय, माटे कहे छे के, प्रगृहीत--घणा मानपूर्वक आचरेलुं--तेवडे, तथा निरोगिपणाना कारणभूत--तेवडे, कल्याणना हेतुभूत--तेवडे, धर्मरूप धनमां साधुभूत--तेवडे, पापने शमाववामां निमित्तभूत--तेवडे. सारी रीते पाळेलुं छे माटे शोभावाळुं--तेवडे, जेनुं छेवट सारुं छे तेवडे, उत्तरोत्तर वधारावाळुं--तेवडे, उन्नतभाववाळुं--तेवडे, ['उत्तमेणं' ति] अज्ञान रहित--तेवडे, अर्थात् ज्ञानवाळा तपवडे, अथवा उत्तम पुरुषोए सेवेलुं छे माटे उत्तम--तेवडे, ते तपमां निःस्वार्थपणानो भाग वधारे होवाथी ते उदार छे--तेवडे, महाप्रभाववाळा ते तपवडे श्रीस्कंदक अनगार ['सुक्के' त्ति] शुष्क थया अर्थात् शरीरमांथी रस कस जतो रहेवाथी सुकाइ गया, ['लुक्खे' त्ति] भूखना प्रभावे लुखा--रुखा--थइ गया, चामडीथी ढंकाएल हाडकावाळा थया, जे मनुष्यना शरीरमां मांस न होय, पण मात्र हाडकां होय, अने ज्यारे ते मात्र हाडकाना खोखावाळो मनुष्य बेसे, उठे के गति वगेरे कोइ पण क्रिया करे त्यारे तेनो अवाज थाय छे अने ते अवाजने 'किटिकिटिका' कहे छे अर्थात् खट् खट् के कट् कट्. ज्यारे श्रीस्कंदक अनगार हाले चाले छे त्यारे पण पूर्वोक्त प्रकारनो शब्द--अवाज--थाय छे माटे तेओने 'किटिकिटिकाभूत' कह्या. वळी तेओ पातळा थया, तेओनी आकृति (शरीर) मांसरहित होवाथी तेमां चारे तरफ नाडीओ ज जणाय छे--माटे नाडीव्याप्त थइ गया, ['जीवंजीवेणं' ति] शरीरना बळे नहीं, पण जीवना बळे चाले छे, ['भासं भासित्ता'] ए बधामां त्रणे काळ सूचव्या छे. ['गिलायति'] ग्लानि पामे छे. ['से जहा णाम ए' त्ति] ['कट्ठसगडिअ' त्ति] लाकडाथी भरेली सगडीओ, ['पत्तसगडिअ' त्ति] खाखरा वगेरे झाडना पांदडाओथी भरेली सगडीओ--नानी गाडीओ, ['पत्ततिल-भंडगसगडिअ' त्ति] पांदडावाळा तलना झाडवाथी--तलसराओथी अने माटीना वासणोथी भरेली सगडीओ, ['तिलसंठगसगडिअ' त्ति] ए प्रमाणेनो पाठ बीजा कोइ पुस्तकमां छे अने तेनो अर्थ स्पष्ट छे--'तलना सांठाओथी --तलसराओथी--भरेली सगडीओ.' ['एरंडकट्ठसगडिअ' त्ति] एरंडाना लाकडाथी बनेली के भरेली सगडीओ, एरंडानां लाकडां पोलां होय छे माटे तेने सुकवीने सगडीमां भरी ज्यारे सगडी चलाववामां आवे त्यारे तेनो अवाज घणो थाय छे माटे अहीं एरंडानां लाकडां ग्रहण कर्यां छे. अंगारशक-टिका एटले अंगाराथी भरेली सगडी, ['उण्हे दिन्ना, सुक्का समाणी'] लीलां लाकडांओने तपाववानी अने सुकववानी जरूर रहे छे माटे आ बे विशेषणो--'तडके मूकेली अने सुकवेली'--ज्यां लीलां लाकडांनो संभव होय त्यां ज लगाडवां. राखमां भारेल अग्निनी पेठ ते स्कंदक अनगार ['तवेणं तेएणं' त्ति] तपरूप तेजवडे देदीप्यमान छे--जेम राखमां भारेलो अग्नि बहारथी तेज विनानो अने अंदरथी तो बळतो ज होय छे, तेम श्रीस्कंदकनुं शरीर मांस अने लोही विनानुं थइ गयुं छे माटे ते बहारथी निस्तेज लागे छे अने अंदरथी तो पवित्र तपवडे जाज्वल्यमान छे. कहेली ज वातने (फरीथी) कहे छे के, ['तव--तेअ'--इत्यादि.]

श्रीस्कंदकनी शारीरिक क्षीणता.

श्रीस्कंदकनुं अंतर.

१६. 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति पूर्वरात्रश्च रात्रेः पूर्वो भागः, अपररात्रश्च अपकृष्टा रात्रिः--पश्चिमस्तद्भाग इत्यर्थः, तल्लक्षणो यः [illegible]--कालात्मकः समयः स तथा तत्र, अथवा 'पूर्वरात्रापररात्रकालसमये' इत्यत्र रेफलोपात् 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' त्ति स्यात्. धर्मजागरिकां जाग्रतः कुर्वत इत्यर्थः. 'तं अत्थि ता मे' त्ति तदेवमपि अस्ति तावत् मम उत्थानादि--न सर्वथा क्षीणमिति भावः 'तं [illegible] मे अत्थि' त्ति तत् तस्मात्, यावत् 'ता' इति भाषामात्रे, मे मम अस्ति; 'जाव' त्ति यावच्च 'सुहत्थि' त्ति शुभार्थी भव्यान् प्रति, [illegible] वा पुरुषवरगन्धहस्ती, एतच्च भगवत्साक्षिकोऽनशनविधिर्महाफलो भवतीत्यभिप्रायेण, भगवन्निर्वाणे शोकदुःखभाजनं मा भूवमहम्, [illegible] वा चिन्तितमनेनेति. 'कल्लं' इत्यादि. 'कल्लं' ति श्वः, प्रादुः प्राकाश्ये, ततः प्रकाशप्रभातायां रजन्याम् फुल्लोत्पलकमलकोमलो-

[illegible] छे. ४. 'नाम' आ शब्द संभावनाद्योतक छे. [illegible]

न्मीलिते, फुल्लं विकसितम्, तच्च तदुत्पलं च फुल्लोत्पलम्, तच्च कमलश्च हरिणविशेषः—फुल्लोत्पल-कमलौ, तयोः कोमलमकठोरम्, [illegible] दलानाम्, नयनयोश्च उन्मीलनं यस्मिंस्तथा तस्मिन्, अथेति रजनीविभातानन्तरम्, पाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोकप्रकाशेन किंशुकस्य, शुकमुखस्य, गुञ्जार्धस्य च रागेण सदृशो यः स तथा तस्मिन्, तथा, कमलाकराः ह्रदादयस्तेषु खण्डानि नलिनीखण्डानि, तेषां बोधको यः स कमलाकरखण्डबोधकः, तस्मिन् उत्थितेऽभ्युद्गते, कस्मिन्? इत्याह—'सूरे' पुनः किंभूते? इत्याहः—'सहस्सरस्सिम्मि' इत्यादि. 'कडाईहिं' ति, इह पदैकदेशात् पदसमुदायो दृश्यस्ततः कृतयोग्यादिभिरिति स्यात्, तत्र कृता योगा प्रत्युपेक्षणादिव्यापाराः येषां सन्ति ते कृतयोगिनः, आदिशब्दात् प्रियधर्माणः, दृढधर्माणः इत्यादि गृह्यते इति. 'विउल' त्ति विपुलम्—विपुलाभिधानम्, 'मेहघणसंनिगासं' ति घनमेघसदृशम्—सान्द्रजलदसमानं कालकमित्यर्थः, 'देवसंनिवायं' ति देवानां सन्निपातः समागमो रमणीयत्वाद् यत्र स तथा तम्, 'पुढवीसिलापट्टयं' ति पृथिवीशिलारूपः पट्टकः आसनविशेषः—पृथिवीशिलापट्टकः, काष्ठशिलाऽपि शिला स्यात्, अतस्तद्व्यवच्छेदाय पृथिवीग्रहणम्. 'संलेहणा—झूसणाझूसिअस्स' त्ति संलिख्यते कृशीक्रियते ऽनयेति संलेखना तपः, तस्या जोषणा सेवा, तया जुष्टः सेवितः, झूषितो वा क्षपितो यः स तथा तस्य, 'भत्त—पाणपडियाइक्खिअस्स' त्ति प्रत्याख्यातभक्त—पानस्य, 'कालं' ति मरणम्, 'तिकट्टु' त्ति इति कृत्वा—इदं विषयीकृत्य, 'एवं संपेहेइ' त्ति एवम्—उक्तलक्षणमेव, संप्रेक्षते पर्यालोचयति संगतासंगतविभागतः. 'उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ' त्ति पादपोपगमनाद् आराद् उच्चारादेस्तस्य कर्तव्यत्वाद् उच्चारादिभूमिप्रत्युपेक्षणं न निरर्थकम्. 'संपलिअंकनिसन्ने' त्ति पद्मासनोपविष्टः, 'सिरसावत्तं' ति शिरसाऽप्राप्तमस्पृष्टम्, अथवा शिरसि आवर्तः—आवृत्तिरावर्तनं परिभ्रमणं यस्यासौ सप्तम्यलोपात् शिरस्यावर्तः—तम्, 'सट्ठिभत्ताइं' ति प्रतिदिनं भोजनद्वयस्य त्यागात् त्रिंशता दिनैः षष्टिर्भक्तानि त्यक्तानि भवन्ति. 'अणसणाए' त्ति प्राकृतत्वाद् अनशनेन 'छेइत्त' त्ति छित्त्वा परित्यज्य, 'आलोइअपडिक्कंते' त्ति आलोचितं गुरूणां निवेदितं यदतिचारजातम्, तत् प्रतिक्रान्तमकरणविषयीकृतं येनासावालोचितप्रतिक्रान्तः, अथवा आलोचितश्चासावालोचनादानात्, प्रतिक्रान्तश्च मिथ्यादुष्कृतदानात् आलोचितप्रतिक्रान्तः. 'परिणिव्वाणवत्तियं' ति परिनिर्वाणं मरणम्, तत्र यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव, तदेव प्रत्ययो हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः—अतस्तम्, 'कहिं गए' त्ति कस्यां गतौ, 'कहिं उववन्ने' त्ति क्व देवलोकादौ? इति. 'एगइआणं' ति एकेषाम्, न तु सर्वेषाम्, 'आउक्खएणं' ति आयुष्ककर्मदलिकनिर्जरणेन, 'भवक्खएणं' ति देवभवनिबन्धनभूतकर्मणां गत्यादीनां निर्जरणेन, 'ठिइक्खएणं' ति आयुष्ककर्मणः स्थितेर्वेदनेन; 'अणंतरं' ति देवभवसंबन्धिनम्, 'चयं' ति शरीरम्, 'चइत्त' त्ति त्यक्त्वा, अथवा 'चयं' ति च्यवं च्यवनम्, 'चइत्त' त्ति च्युत्वा कृत्वा अनन्तरं क्व गमिष्यति? इत्येवमनन्तरशब्दस्य संबन्धः कार्यः.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते प्रथम उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

श्रीस्कंदकनो विचार.

१६. ['पुव्वरतावरत्तकालसमयंसि' त्ति] रात्रीनो पूर्व भाग अने रात्रीनो पश्चिम भाग—ते वखते धर्म जागरण करतां श्रीस्कंदकने विचार थयो के, ['तं अत्थि ता मे' त्ति] में आवुं आकरुं तप कर्युं तो पण मारी उठवा, बेसवा वगेरेनी शक्ति तद्दन नाश पामी नथी, माटे ['तं जाव ता मे अत्थि' त्ति] ज्यां सुधी मारी शक्ति छे अने ['जाव' त्ति] ज्यां सुधी श्रमण भगवंत महावीर ['सुहत्थि' त्ति] शुभार्थी छे अर्थात् भव्योने लाभ दे छे अथवा उत्तम गंधहस्तीनी पेठे पुरुषोमां उत्तम तरीके जगतमां विद्यमान छे त्यां सुधी तेनी पासे जइ अनशन करूं. श्रीस्कंदके जे पूर्व प्रमाणे विचार कर्यो तेनुं

अनशननुं कारण.

कारण ए के, जो अनशननो विधि भगवंतनी साक्षिए करवामां आवे तो तेनुं मोटुं फळ थाय छे अथवा भगवंतनुं निर्वाण थया पछी मने शोकजन्य दुःख न थाय माटे भगवंत निर्वाण पामे ते पहेलां ज हुं तेओनी पासे जइने अनशन करूं.(पूर्वोक्त विचारनां आ बे कारणो जणाय छे.) ['कल्लं' इत्यादि.] काले—आवती काले प्रकाशथी रात्री उजळी थया पछी, विकसेल उत्पलनी पांखडीओ अने एक प्रकारना हरणनी आंखो कोमळतापूर्वक उघड्या पछी, धोळुं प्रभात थया पछी तथा राता आसोपालवनी जेवो, केसुडांनी जेवो, पोपटनी चांच जेवो अने चणोठीना अडधा भाग जेवो लाल चोळ तथा कमळना वराओमां रहेलां कमलिनीनां खंडोने विकसित करनार, हजार किरणवाळो सूर्य उग्या पछी इत्यादि. ['कडाईहिं' ति] जेओ पडिलेहण—प्रतिलेखन—वगेरे क्रियाओमां कुशळ छे, धर्मप्रिय अने धर्ममां दृढ छे, तेओनी साथे ['विउल' त्ति] विपुल नामना पर्वत उपर, ['मेहघणसंनिगासं' ति] अंधारेल मेघनी जेवी अर्थात् काळी, ['देवसंनिवायं' ति] जेनी सुंदरताथी ज्यां देवो आवे छे एवी ['पुढवीसिलापट्टयं' ति] काळी शिला उपर. ['संलेहणा—झूसणाझूसि-

अनशन.

अस्स' त्ति] जेनाथी कृश थवाय ते संलेखना अर्थात् एक जातनुं तप, ते तपनी सेवाथी जुष्ट थएल अथवा ते तपनी सेवाथी क्षपित थएल—तेना, ['भत्त—पाणपडियाइक्खिअस्स' त्ति] जेणे जमवानुं अने पीवानुं छोडी दीधुं छे—तेना. ['कालं' ति] मरणने, ['ति कट्टु' त्ति] एम करीने—एवुं लक्ष्य राखीने, ['एवं संपेहेइ' त्ति] पूर्वे कर्युं ते संगत छे के असंगत छे एम समालोचे छे. ['उच्चार—पासवणभूमिं पडिलेहेइ' त्ति] पादपोपगमन अनशन स्वीकार्या पहेलां तेने लघुशंका वगेरेनी जरूर रहे छे माटे ते सारु जग्यानुं पडिलेहण करवुं उपयुक्त छे—नकामुं नथी. ['संपलिअंकनिसन्ने' त्ति] पद्मासने बेठेल, ['सिरसावत्तं' त्ति] माथा साथे नहीं अडकेल अथवा माथामां आवर्तवाळुं—तेने. ['सट्ठिभत्ताइं' ति] साठ टंक सुधी ['अणसणाए' त्ति] जम्या सिवाय ['छेइत्त' त्ति] वीतावीने ['आलोइअपडिक्कंते' त्ति] गुरुए जणावेल अतिचारोने नहीं करनार अथवा आलोचनाना दानथी आलोचित अने मिथ्यादुष्कृत देवाथी प्रतिक्रांत ते 'आलोचितप्रतिक्रांत' कहेवाय. ['परिणिव्वाणवत्तियं' ति] परिनिर्वाण एटले मरण अथवा शरीरने परठववुं ते,

श्रीस्कंदकनुं परलोक गमन.

जेमां परिनिर्वाण निमित्त छे ते—तेने. ['कहिं गए' त्ति] कइ गतिमां, ['कहिं उववन्ने' त्ति] कया देवलोक वगेरेमां उत्पन्न थया छे? ['एगइआणं' ति] बधानी नहीं, पण केटलाकनी, ['आउक्खएणं' ति] आयुष्य कर्मना दळिआंनी निर्जरा थवाथी, ['भवक्खएणं' ति] देवभवनां कारणभूत गत्यादि कर्मोनुं निर्जरण थवाथी, ['ठिइक्खएणं' ति] आयुष्य कर्मनी स्थितिने भोगवी लेवाथी, ['अणंतरं' ति] देवनुं, ['चयं' ति] शरीर, ['चइत्त' त्ति] छोडीने अथवा ['चयं' ति] ['चइत्त' त्ति] देवभवथी च्यवीने तुरत ज क्यां जशे? ए रीते 'अनंतर' शब्दनो संबंध करवो.

---

१. 'पूर्वरात्रापररात्र' आ शब्दमांथी, 'अपर' शब्दना 'र' नो लोप करवाथी पण उपलो शब्द बने छे. २. आ शब्द, भाषानी शोभारूप छे. ३. [illegible] पदनो एक भाग जणाव्यो होय त्यां ते एक भागथी पदनो समुदाय पण जाणी शकाय छे माटे अहीं 'कृत' पदथी 'कृतयोगी' पद जाणवुं. ४. [illegible] लाकडानी शिला न लेवाय माटे 'पृथिवी' शब्द मूक्यो छे. ५. आ शब्दमां सातमी विभक्ति पण छे:—श्रीअभय.

[illegible]

शतक २.—उद्देशक २.

समुद्घात केटला?—सात.—वेदनासमुद्घात.—कषायसमुद्घात.—मरणसमुद्घात.—वैक्रियसमुद्घात.—तैजससमुद्घात.—आहारकसमुद्घात.—केवलिसमुद्घात.—भावितात्मा अनगार.—समुद्घातपद (प्रज्ञापनासूत्र).—

१९. प्र०—कइ णं भंते! समुग्घाया पन्नत्ता?

१९. उ०—गोयमा! सत्त समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहाः—वेदणासमुग्घाये, एवं समुग्घायपदं छाउमत्थियसमुग्घायवज्जं भाणियव्वं, जाव—वेमाणियाणं. कसायसमुग्घाया, अप्पाबहुयं.

१९. प्र०—हे भगवन्! केटला समुद्घातो कह्या छे?

१९. उ०—हे गौतम! समुद्घातो सात कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—वेदनासमुद्घात वगेरे—(कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात अने केवलिसमुद्घात.) आ ठेकाणे प्रज्ञापना सूत्रमां आवेलुं, छत्रीशमुं—छेल्लुं—समुद्घातपद जाणवुं, परंतु तेमां आवती छाद्मस्थिकसमुद्घातनी हकीकत न कहेवी अने ए प्रमाणे यावत्—वैमानिको सुधी जाणवुं तथा कषायसमुद्घातो अने अल्पबहुत्व कहेवुं.

२०. प्र०—अणगारस्स णं भंते! भावियप्पणो केवलीसमुग्घाये जाव—सासतं, अणागयद्धं चिट्ठंति?

२०. उ०—समुग्घायपदं नेयव्वं.

२०. प्र०—हे भगवन्! भावितात्मा अनगारने केवलिसमुद्घात यावत्—आखा भविष्यकाळ सुधी शाश्वतरीते रहे?

२०. उ०—हे गौतम! अहीं पण उपर कह्युं ते—समुद्घातपद—जाणवुं.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये बीओ उद्देसो सम्मत्तो.

१. अथ द्वितीयः प्रारभ्यते, अस्य चायमभिसंबन्धः—*'केण वा मरणेणं मरमाणे जीवे वड्ढइ?'* त्ति प्रागुक्तम्, मरणं च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहतस्य, अन्यथा च भवतीति समुद्घातस्वरूपमिहोच्यते इति एवंसंबन्धस्यास्येदं सूत्रम्—*'कइ णं भन्ते! समुग्घाया'* इत्यादि. तत्र 'हन् हिंसा-गत्योः' इति वचनाद् हननानि घाताः, 'सम्' एकीभावे, 'उत्' प्राबल्ये; ततश्च एकीभावेन प्राबल्येन च घाताः समुद्घाताः. अथ केन सह एकीभावः? उच्यते, यदा आत्मा वेदनादिसमुद्घातगतो भवति, तदा वेदनाद्यनुभवज्ञाने परिणत एव भवतीति वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावः. अथ प्राबल्येन घाताः कथम्? उच्यते, यस्माद् वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तरानुभवयोग्यान् उदीरणाकरणेन आकृष्य, उदये प्रक्षिप्य, अनुभूय निर्जरयति—आत्मप्रदेशैः सह श्लिष्टान् शातयतीत्यर्थः, अतः प्राबल्येन घाता इति. *'सत्त समुग्घाय'* त्ति वेदनासमुद्घातादयः, एते च प्रज्ञापनायामिव द्रष्टव्याः. अत एवाह—*'छाउमत्थिअ'* इत्यादि.

---

१. मूलच्छायाः—कति भगवन्! समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः? गौतम! सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—वेदनासमुद्घातः, एवं समुद्घातपदं छाद्मस्थिक-[illegible] यावत्—वैमानिकानाम्, कषायसमुद्घाताः, अल्पबहुत्वम्. अनगारस्य भगवन्! भावितात्मनः केवलिसमुद्घातो यावत्—शाश्वत[illegible] [illegible]

'[illegible]उमत्थिअसमुग्घायवज्जं'ति 'कइ णं भन्ते! छाउमत्थिअसमुग्घाया पण्णत्ता'? इत्यादिसूत्रवर्जितम्. 'समुग्घायपयं' ति [illegible] षट्त्रिंशत्तमं पदं समुद्घातार्थमिह नेतव्यम्, तच्चैवम्—"कइ णं भन्ते! समुग्घाया पण्णत्ता? गोयमा! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता. तं [illegible] वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए" इत्यादि. इह संग्रहगाथा—'वेयण–कसाय–मरणे वेउव्विय–तेउए य आहारे, केवलिए चेव भवे जीव–[illegible]स्साण सत्तेव.' जीवपदे मनुष्यपदे च सप्त वाच्याः, नारकादिषु तु यथायोगमित्यर्थः. तत्र वेदनासमुद्घातेन समुद्धत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलानां शातं करोति, कषायसमुद्घातेन कषायपुद्गलानाम्, मारणान्तिकसमुद्घातेन आयुष्यकर्मपुद्गलानाम्, वैकुर्विकसमुद्घातेन समुद्धतो जीवः प्रदेशान् शरीराद् बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भ-बाहल्यमात्रम्, आयामतश्च संख्येययोजनानि दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्रागूबद्धान् शातयति, यथासूक्ष्मांश्चाऽऽदत्ते. यथोक्तम्—"वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, [illegible] जोयणाइं दंडं निसिरइ, अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, अहासुहुमे पोग्गले आइयत्ति." एवं तैजसा–ऽऽहारकसमुद्घातावपि [illegible]. केवलिसमुद्घातेन तु समुद्धतः केवली वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् शातयतीति. एतेषु च सर्वेष्वपि समुद्घातेषु शरीराद् जीवप्रदेशनिर्गमोऽस्ति. सर्वे चैतेऽन्तर्मुहूर्तमानाः, नवरम्—कैवलिकोऽष्टसामयिकः, एते चैकेन्द्रिय–विकलेन्द्रियाणामादितस्त्रयः, वायु–नारकाणां चत्वारः, देवानाम्, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां च पञ्च, मनुष्याणां तु सप्त.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते द्वितीय उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

१. हवे बीजा उद्देशकनी शरुआत थाय छे अने तेनो संबंध आप्रमाणे छेः—'जीव केवी रीते मरे तो तेनो संसार वधे'? ए प्रकारनो प्रश्न आगळना उद्देशकमां कर्यो हतो अर्थात् ए प्रश्नना पेटामां मरण संबंधी बीना आवी जाय छे. ए मरण बे रीते थइ शके छे–एक तो मारणांतिकसमुद्घातपूर्वक अने बीजुं मारणांतिकसमुद्घात सिवाय. माटे वांचनारने सहज संदेह थाय के, 'समुद्घात ए शुं?' तो ते शंकाने टाळवा सारु आ बीजा उद्देशकमां समुद्घातनुं स्वरूप कहेवानुं छे— आ रीते पहेला अने बीजा उद्देशकनो परस्पर संबंध छे अने तेनुं पहेलुं सूत्र आ छेः—['कइ णं भंते! समुग्घाया' इत्यादि.] समुद्घात शब्दनो आ अर्थ छेः—सम्—मळी जवुं, लीन थवुं के एकमेक थवुं. उत्—प्रबलता अने घात—हनन, हणवुं अर्थात् एकमेक थवापूर्वक प्रबलतावडे हनन ते समुद्घात. तेनुं सविस्तर विवेचन आ छे—जेम, कोइ एक जीव वेदनासमुद्घातवाळो होय तो ते वेदनाना अनुभव ज्ञाननी साथे एकमेक थइ जाय छे. तेम थया सिवाय ते, वेदनासमुद्घातवाळो बनी शकतो नथी. एकमेक थया पछी आत्मा साथे संबद्ध थएलां वेदनीयकर्मना पुद्गलो उपर ते जीव प्रबळतापूर्वक प्रहार करे छे मारो–हनन–चलावे छे अर्थात् जे वेदनीयकर्म काळांतरे वेदवा योग्य छे तेने उदीरणाकरण द्वारा खेंची उदयमां नांखी (तेने) आत्माथी सर्वथा जूदुं करी नांखे छे. आ प्रकारनुं स्वरूप वेदनीयसमुद्घातवाळानुं के वेदनीयसमुद्घातनुं होय छे. ए ज रीते बीजा समुद्घातो माटे पण जाणवुं. तात्पर्य ए के, जेवा समुद्घातमां आत्मा वर्ततो होय तेना अनुभवज्ञान साथे एकमेक थइ ते संबंधी कर्मोने आत्माथी सर्वथा जूदां करे छे, ए स्वरूप सामान्य समुद्घातनुं छे. ['सत्त समुग्घाय'त्ति] ते वेदनासमुद्घात वगेरे सात समुद्घातो संबंधी सविस्तर विवेचन 'प्रज्ञापना' सूत्रमां कह्या प्रमाणे जाणवुं. ['छाउमत्थिअसमुग्घायवज्जं'ति] पण 'प्रज्ञापना' सूत्रमां कहेल ['कइ णं भंते! छाउमत्थिअसमुग्घाया पण्णत्ता?—'हे भगवन्!

समुद्घात विचार.

---

१. प्र०छाः—कति भगवन्! छाद्मस्थिकसमुद्घाताः प्रज्ञप्ताः? २. कति भगवन्! समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः? गौतम! सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः. तद्यथाः—वेदनासमुद्घातः, कषायसमुद्घातः. ३. वेदना–कषाय–मरणं वैकुर्विक–तैजसश्च आहारकः, केवलिक एव भवेद् जीव–मनुष्याणां [illegible]. ४. वैकुर्विकसमुद्घातेन समवहन्ति, संख्येयानि योजनानि दण्डं निसृजति, यथाबादरान् पुद्गलान् परिशाटयति, यथासूक्ष्मान् पुद्गलान् आददातिः—अनु०

१. जैनदर्शनमां मुख्य आ बे वस्तुओ छे–एक आत्मा अने बीजुं कर्म. आत्मा शुद्ध, सत्, चिद् अने आनंदमय छे. कर्म ए जड [illegible] होइ आत्माना मूळ स्वरूपने प्रकट थवामां नडतररूप छे. जेम जड पदार्थना अणुओ होय छे तेम आत्माना पण अणुओ जेने जैन परिभाषामां प्रदेशो तरीके ओळखवामां आवे छे. चेतनात्मक असंख्य अणुओना समुदायने आत्मा कहेवामां आवे छे. अहीं आ वात [illegible] लक्ष्यमां राखवानी छे के, जड पदार्थना (आ स्थळे 'जड' शब्द पुद्गलमां संकेत्यो छे.) अणुओमां अने आत्मीय अणुओमां आ एक [illegible] अंतर छे—जेम जड अणुओ विखराइ जइ तद्दन जूदां जूदां थइ शके छे—एक एक थइ अलग रही शके छे, तेम आत्मीय प्रदेशो [illegible] पण कोइ पण प्रकारे जुदा जूदा थइ शकता ज नथी–हमेशा ते प्रदेशो भेगा ज रहे छे. ते अणुओनो एक बीजानो संबंध अकृत्रिम अने अविनश्वर छे. वळी ते आत्मीय प्रदेशोमां संकोचशक्ति अने विकासशक्ति–ए बे शक्तिओ छे. संकोचशक्तिना प्रभावे आत्मा नानामां नाना कुंथुआना शरीरमां पण समाइ शके छे अने विकासशक्तिना प्रभावे आत्मा आखा ब्रह्मांडमां पण व्यापी शके छे. जेम एक दीवो बळतो होय अने तेनो प्रकाश आखा ओरडाने अजवाळतो होय. हवे जो ते दीवा उपर कुंडलो के पाली ढांकी देवामां आवे तो तेनो प्रकाश तेटला ज स्थानमां व्यापे छे. जेम प्रकाशमां संकोचवानी अने व्यापवानी शक्ति छे–जेटलुं स्थान मळे तेटला स्थानमां प्रकाश रही शके छे तेम आत्मामां पण संकोचावानी अने व्यापवानी शक्ति छे–जेटलुं शरीर मळे तेटला शरीरमां आत्मा समाइ शके छे अर्थात् जे शरीर जेटलुं लांबुं, पहोळुं, उंचुं, टुंकुं के नीचुं होय, ते शरीरमां रहेनारो आत्मा पण तेटलो ज लांबो, पहोळो, उंचो, टुंको के नीचो होय. (जुओ तत्त्वार्थसूत्र अ० ५, सू० १६.) आत्मा ए अमूर्त पदार्थ छे तो पण शरीरनी अपेक्षाए तेमां [illegible] वगेरेने जणावी छे. केटलीएक वार केटलांक कारणोने लइने आत्मा पोताना प्रदेशोने शरीरथी बहार पण प्रसरावे छे तथा पाछा संकोची ले छे [illegible] ते क्रियाने जैन परिभाषामां 'समुद्घात' कहे छे. श्रीप्रज्ञापनासूत्रमां (क० आ० पृ० ७९३ थी ८४८ सुधी) आ समुद्घात विषे [illegible] 'समुद्घात' नामनुं छत्रीशमुं पद मूक्युं छे. तेमां समुद्घात संबंधी सविस्तर विवेचन छे. त्यां ते विवेचननी शरुआतमां आणवा जेवी आ वात [illegible]—

"इह सप्त समुद्घाता भवन्ति, तद्यथा–'वेदन–कसाय–मरणे' त्ति. वेदनं च, कषायश्च, मरणं च वेदन–कषाय–मरणम्. ××× तस्मिन् विषये त्रयः समुद्घाता भवन्ति, तद्यथा–वेदनासमुद्घातः, कषायसमुद्घातः, मरणसमुद्घातश्च. 'वेउव्विय'त्ति वैक्रियविषयश्चतुर्थः समुद्घातः. तैजसः पञ्चमः समुद्घातः, षष्ठः 'आहार' इति आहारकशरीरविषयः. सप्तमः केवलिकः—

समुद्घात सात छेः—वेदनासमुद्घात. कषायसमुद्घात. मरणसमुद्घात. वैक्रियसमुद्घात. तैजससमुद्घात. आहारकसमुद्घात अने केवलिसमुद्घात. स्थूल दृष्टिए जेम, कोइ एक पक्षी होय [illegible] धूळ पडी गइ होय त्यारे [illegible] उपरनी धूळ [illegible]

[illegible] भवति. अथ समुद्घातः इति कः शब्दार्थः? उच्यते, सम् इति [illegible], उद् प्राबल्ये, एकीभावेन प्राबल्येन घातः समुद्घातः. केन सह एकी-[illegible]? इति चेद् उच्यते, अर्थाद् वेदनादिभिः. यदा आत्मा वेदनादि-[illegible] भवति, तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवति, नान्यज्ञा-[illegible] प्राबल्येन कथं घातः? इति चेद् उच्यते, इह वेदनीयादि-[illegible]परिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तराऽनुभवयोग्यान् [illegible] आकृष्य, उदयावलिकायां प्रक्षिप्य, अनुभूय निर्जरयति-[illegible]: सह संश्लिष्टान् शातयतीति भावः. × × × तथाहि–वेदनासमु-[illegible] असद्वेद्यकर्माश्रयः, कषायसमुद्घातः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्माश्रयः, [illegible]न्तिकसमुद्घातोऽन्तर्मुहूर्तशेषायुःकर्माश्रयः, वैकुर्विक–तैजसा–ऽऽहारक-[illegible] यथाक्रमं वैक्रियशरीर–तैजसशरीर–आहारकशरीरनामकर्माश्रयाः, [illegible]समुद्घातः सदसद्वेद्यशुभाशुभनामोच्चैर्नीचैर्गोत्रकर्माश्रयः. तत्र वेदना-[illegible] आत्मा असातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति. तथाहि–वेदनापीडितो जीवः स्वप्रदेशान् अनन्तानन्तकर्मस्कन्धवेष्टितान् शरीराद् बहिरपि विक्षिपति, तैश्च प्रदेशैर्वदन–जठरादिरन्ध्राणि कर्मस्कन्धाद्यपान्तरा-[illegible] च आपूर्य आयामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रम्–अभिव्याप्य [illegible] यावद् अवतिष्ठते. तस्मिंश्च अन्तर्मुहूर्ते प्रभूताऽसातावेदनीयकर्म-पुद्गलपरिशातं करोति. कषायसमुद्घातसमुद्धतः कषायाख्यचारित्रमोहनीय-कर्मपुद्गलपरिशातं विधत्ते. तथाहि–कषायोदयसमाकुलो जीवः प्रदेशान् बहिर्विक्षिपति, तैः प्रदेशैः वदनो-दरादिरन्ध्राणि कर्मस्कन्धाद्यपान्तरालानि च आपूर्य आयामतो विस्तरतश्च देहमात्रं क्षेत्रम् अभिव्याप्य वर्तते. तथाभूतश्च प्रभूतान् कषायकर्मपुद्गलान् परिशातयति. एवं मरणसमुद्घातगत आयुः-कर्मपुद्गलान् परिशातयति, नवरम्–मरणसमुद्घातगतो विक्षिप्तस्वप्रदेशो वदनोदरादिरन्ध्राणि स्कन्धाद्यपान्तरालानि चाऽऽपूर्य विष्कम्भ–बाहुल्याभ्यां स्वशरीरप्रमाणम् आयामतः, स्वशरीरातिरेकतो जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागम्, उत्कर्षतोऽसंख्येयानि योजनानि एकदिशि क्षेत्रम् अभिव्याप्य वर्तते इति वक्तव्यम्. वैक्रियसमुद्घातगतः पुनर्जीवः प्रदेशान् शरीराद् बहिर्निष्कास्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमानम् आयामतः संख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्वत् शातयति. ×× × × × एवं तैजसा–ऽऽहारसमुद्घातावपि भावनीयौ. नवरम्–तैजससमुद्घातः तेजोलेश्याविनिर्गमकाले. स च तैजसनामकर्मपुद्गलपरिशातहेतुः. आहारक-समुद्घातगतस्तु आहारकशरीरनामकर्मपुद्गलान् परिशातयतीति. केवलिसमु-द्घातगतः केवली सदसद्वेद्यादिकर्मपुद्गलपरिशातं करोति. ××× नैरयिकाणाम् आद्याश्चत्वारो वेदनादिसमुद्घाताः. ×× असुरकुमारादीनां सर्वेषामपि देवानां (आद्याः) पञ्च समुद्घाताः. ×× वायुकायवर्जएकेन्द्रिय–विकलेन्द्रियाणाम् आद्यास्त्रयः समुद्घाताः. ×× वायुकायिकानां पूर्वे त्रयो वैक्रियसमुद्घात-सहिताश्चत्वारः. × × पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम् (आद्याः) पञ्च. ×× मनुष्याणां तु (आद्याः) षडपि. ×× (श्रीमलयगिरिसूरि, प्रज्ञापना, पृ० ७९३ [illegible]–८२६. क० आ०):–अनु०

अणुओने संकेरवा आ 'समुद्घात' नामनी क्रिया करे छे. ज्यारे कोइ जीव वेदना (पीडा) थी रिबाय छे त्यारे ते अनंतानंत कर्मस्कंधोथी विंटाएला पोताना प्रदेशोने शरीरथी बहारना भागमां पण प्रसरावे छे. ते प्रदेशो मुखना अने जठर (होजरी) वगेरेना पोलाणमां तथा कर्मस्कंधादिना आंतरामां भराइ रहे छे तथा लंबाइ अने पहोळाइमां शरीर जेटली जग्यामां व्यापीने एक अन्तर्मुहूर्त सुधी ते प्रकारे जीव रहे छे अने तेटला काळमां ते, अशाता वेदनीय कर्मना घणां पुद्गलोने (जे कर्म पुद्गलोनो रस बीजे वखते अनुभवमां आवनार छे तेने पण उदीरणाकरणवडे खेंची, उदयावलिकामां नाखी वेदे छे)—पोता उपरथी खंखेरी नाखे छे–खेरवी नाखे छे. ए क्रियानुं नाम 'वेदनासमुद्घात' छे. ज्यारे जीव कषायना उदयथी घेराइ जाय छे–क्रोधादियुक्त दशामां होय छे–त्यारे ते पोताना प्रदेशोने बहारना भागमां प्रसरावे छे अने ते प्रदेशो मुख अने पेट वगेरेना पोलाणमां तथा कर्म स्कंधादिना आंतरामां भराइ रहे छे. तथा शरीर जेटली लांबी अने पहोळी जग्यामां व्यापीने ते प्रकारे जीव, एक अंतर्मुहूर्त सुधी रहे छे अने ए प्रमाणे रहीने एटला वखतमां कषायकर्मनां घणां पुद्गलोने ते पोता उपरथी खेरवी नाखे छे अने ते क्रिया 'कषायसमुद्घात'ना नामे ओळखाय छे. कोइ एक जीव पोतानुं चालु आयुष्य भोगवे छे अने ते आयुष्य भोग-वतां भोगवतां ज्यारे मात्र अंतर्मुहूर्त जेटलुं आयुष्य बाकी रहे छे त्यारे ते, पोताना प्रदेशोने बहार प्रसरावे छे अने ते प्रदेशो मुख अने पेटना पोलाणमां तथा स्कंधादिना आंतरामां भराइ रहे छे तथा शरीर करतां ओछामां ओछी आंगळना असंख्येय भाग जेटली मोटी अने वधारेमां वधारे असंख्य योजन मोटी जग्यामां व्यापीने ते प्रकारे जीव, एक अंत-र्मुहूर्त सुधी रहे छे अने तेटला वखतमां ते, आयुष्य कर्मनां अनेक पुद्गलोने पोता उपरथी खेरवी नाखे छे, आ क्रिया 'मरणसमुद्घात'ने नामे जैन परिभाषामां प्रसिद्ध छे. देवोमां, नारकिओमां, पवनमां अने केटलाक मनुष्य तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचोमां रूप फेरववानी शक्ति होय छे अर्थात् पोताना शरीरने लांबुं करवुं, टुंकुं करवुं, पहोळुं करवुं, उंचुं करवुं, सांकडुं करवुं, सुंदर लावण्यवाळुं करवुं के पोतानुं रूप बदली बीजुं रूप धरवुं; ए प्रकारनी शक्ति होय छे. ते शक्तिने माटे जैनशास्त्रमां 'विक्रिया' शब्दनो वपराश छे. अने ते शक्तिथी फारफेर थइ जे कांइ बने छे तेने 'वैक्रियशरीर' कहेवामां आवे छे. जेम कोइ एक प्रमत्त मुनि होय, तेनुं शरीर जीर्ण-प्राय थयुं होय. अने ते एवुं इच्छे के मारे मारुं शरीर सुंदर, पुष्ट अने एक देव सरखुं बनाववुं छे तो ते, पोताना प्रदेशोने बहार एक दंडना आकारमां प्रसरावे छे. ते दंडनी पहोळाइ अने जाडाइ तो पोताना शरीर जेटली ज थवा दे छे. पण तेनी लंबाइ संख्येय योजन जेटली करे छे. तेम करीने ते, एक अंतर्मुहूर्त सुधी टके छे अने तेटला वखतमां वैक्रियशरीर नाम-कर्मनां स्थूल पुद्गलोने (जेने लइने शरीरनुं सौंदर्य हीणुं थयुं छे) पोता उपरथी खेरवी नाखे छे अने वैक्रियशरीर नाम कर्मनां बीजां नवां तथा सूक्ष्म पुद्गलोने (जेने लइने शरीरने धारे तेवुं करी शकाय छे) ले छे. आ क्रियाने जैन पंडितोए 'वैक्रियसमुद्घात'नुं नाम दीधुं छे. तपस्विओने तपस्या करतां जेम अनेक विभूतिओ मळे छे तेमांनी एक 'तेजोलेश्या' नामनी पण विभूति छे, जे तेजोलेश्याना प्रभावे अनेक गाम के अनेक देशोने तपस्वी सळगावी मूके छे. ज्यारे तेजोलेश्यानो विनिर्गम थाय छे त्यारे तैजससमुद्घात थाय छे अने ते समुद्घातथी तैजस नामकर्मनां पुद्गलो आत्माथी जुदां पडी विखराइ जाय छे. ए प्रमाणे आहारकसमुद्घात विषे पण समजवुं अर्थात् जैनशास्त्रकारोए पांच प्रकारनां शरीरो कह्यां छे. (जूओ तत्त्वार्थ-सूत्र, अ० २, सू० ३७ थी ३९) तेमां एक 'आहारक' नामनुं पण शरीर छे. ते शरीर सर्व जीवोने नथी होतुं पण मनुष्योने अने तेमां पण चौदपूर्वना जाणनारने ज ते आहारकशरीर होय छे. ते चौदपूर्वी आहारकसमुद्घात करे छे अने ते द्वारा पोताना आत्मा उपर रहेलां आहारक शरीर नाम-कर्मनां पुद्गलोने विखेरी नाखे छे. हवे एक छेल्लो केवलिसमुद्घात छे. अने तेनुं स्पष्टीकरण आ छे:—जेने केवळज्ञान होय ते ज केवलिसमुद्घात करी शके छे. मात्र आ एक ज समुद्घातनो वखत आठ समय जेटलो छे अने एटला वखतमां केवळी जीव, केवलिसमुद्घात द्वारा पोता [illegible] आयुष्य सिवायनां त्रण अघाती कर्मनां पुद्गलोने खेरवी नाखे छे. ए प्रमाणे साते समुद्घात संबंधी संक्षिप्त विवेचन अहीं जणाव्युं [illegible] जाणवानी इच्छावाळा महाशयोए उपर कह्युं ते प्रज्ञापनासूत्रनुं समुद्घात पद जोवुं तथा स्थानांगसूत्रमां चोथुं स्थान (क० आ० पृ० [illegible]) अने सातमुं स्थान (क० आ० पृ० ४६८) मूळ अने टीका साथे जोवुं. 'समुद्घात' शब्दनो अर्थ टीकाना अनुवादमां विवेचायो [illegible] एटलुं जणाववानुं छे के, केटला समुद्घात कोने होय? ते आ छे:—सात समुद्घातमांना पहेला चार, [illegible] पांच समुद्घात होय छे [illegible] जीव–सिवाय बीजा एकेंद्रिय अने विकलेंद्रिय [illegible] समुद्घात होय छे. [illegible] समुद्घात होय छे.

[illegible] छाद्मस्थिकसमुद्घातो केटला कह्या छे'] ए हकीकत अहीं जाणवाबी नथी, माटे ज मूळ सूत्रमां तेने निषेधी छे. ['समुग्घायपदं'ति] [illegible] समुद्घात संबंधी विवेचनवाळुं 'समुद्घातपद' नामनुं छत्रीशमुं पद छे. ते आ रीते छेः—'हे भगवन्! समुद्घातो केटला कह्या छे? हे गौतम! [illegible] सात कह्या छे. ते आ रीतेः—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात,' इत्यादि. आ स्थळे संग्रहगाथा छेः—वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, [illegible] अने केवलिसमुद्घात (ए सात समुद्घात छे) अने ए साते, जीव अने मनुष्योमां होय छे." नारक वगेरेमां तो जे घटे ते होय छे. वेदनासमुद्घातवाळो जीव वेदनीयकर्मनां पुद्गलोनो नाश करे छे, कषायसमुद्घातवाळो जीव कषायनां पुद्गलोनो नाश करे छे, मारणांतिक समुद्घातवाळो जीव आयुष्यकर्मनां पुद्गलोनो नाश करे छे, वैक्रियसमुद्घातवाळो जीव पोताना प्रदेशोने शरीरथी बहार काढी तेनो, एक मोटो संख्येय योजन लांबो दंड बनावे छे, ते दंडनी पहोळाइ अने जाडाइ तो पोताना (दंड बनावनारना) शरीर जेटली होय छे. ते दंड कर्या पछी, आगळनां बांधेलां अने जाडां वैक्रियशरीरनामकर्मनां पुद्गलोनो नाश करे छे (नाश कर्या पछी) जेवां जोइए तेवां सूक्ष्म वैक्रियशरीरनामकर्मनां पुद्गलोने ले छे. कह्युं छे के, "जीव वैक्रियसमुद्घात करे छे, पछी संख्येय योजन लांबो दंड बनावे छे, त्यारबाद जाडां पुद्गलोने विखेरी नाखे छे अने जेवां जोइए तेवां सूक्ष्म पुद्गलो ले छे" ए प्रमाणे तैजससमुद्घात अने आहारकसमुद्घात विषे पण जाणवुं. केवळिसमुद्घातवाळो केवळज्ञानी जीव वेदनीयकर्म वगेरे चार अघाती कर्मनां पुद्गलोनो नाश करे छे. ए बधा य समुद्घातोमां शरीरथी बहार आत्माना प्रदेशो नीकळे छे. केवळिसमुद्घात सिवायना ए छ समुद्घातनो काळ अंतर्मुहूर्त जेटलो छे अने केवळिसमुद्घातनो काळ मात्र आठ समयनो छे. एक इंद्रियवाळा, बे इंद्रियवाळा, त्रण इंद्रियवाळा अने चार इंद्रियवाळा जीवोने शरुआतना त्रण समुद्घात, पवन अने नारकिओने चार समुद्घात, देव तथा पंचेंद्रिय तिर्यंचोने पांच समुद्घात अने मनुष्योने साते समुद्घातो संभवे छे.

(Margin notes: [illegible]. समुद्घातनुं फळ. समुद्घातकाळ. कया समुद्घातो कोने?)

अने छद्मस्थ मनुष्योने तो पहेला छ समुद्घात होय छे तथा छेल्लो—सातमो—समुद्घात केवळज्ञानिने होय छे. (श्रीमलयगिरिसूरि, प्रज्ञापना, पृ—७९३—७९४—८२६. क० आ०) वळी 'कयो समुद्घात कोने होय?' 'कयो समुद्घात केटला वखत सुधी टके?' 'कयो समुद्घात कया कर्मने लीधे थाय?' अने कया समुद्घातनुं कयुं फळ छे?' ए हकीकतने जणाववा माटे नीचे 'समुद्घातयंत्र' नामनो एक कोठो आप्यो छे तेनाथी उपरनी जिज्ञासाओ शांत थइ जशे माटे ते वात आ टिप्पणमां लखी नथीः—अनु०

समुद्घातयंत्र.

	समुद्घात.	कोने होय?	केटलो समय?	कया कर्मथी?	परिणाम.
१	वेदनासमुद्घात.	सर्व छद्मस्थ जीवने.	अंतर्मुहूर्त.	अशाता वेदनीय कर्मथी.	अशाता वेदनीय कर्मना अणुओनो नाश.
२	कषायसमुद्घात.	,,	,,	कषाय नामना चारित्र मोहनीय कर्मथी.	कषाय कर्मना अणुओनो नाश.
३	मरणसमुद्घात.	,,	,,	आयुष्य कर्मथी.	आयुष्य कर्मना अणुओनो नाश.
४	वैक्रियसमुद्घात.	नैरयिकोने, व्यंतरोने, ज्योतिष्कोने, वैमानिकोने, पंचेंद्रिय तिर्यंचोने, पवनने अने छद्मस्थ मनुष्योने.	,,	वैक्रियशरीर नामकर्मथी.	वैक्रिय शरीर नामकर्मना जूनां पुद्गलोनो नाश अने तेनां नवां पुद्गलोनुं ग्रहण.
५	तैजससमुद्घात.	व्यंतरोने, ज्योतिष्कोने, वैमानिकोने, पंचेंद्रिय तिर्यंचोने अने छद्मस्थ मनुष्योने.	,,	तैजसशरीर नामकर्मथी.	तैजसशरीर नामकर्मना पुद्गलोनो नाश.
६	आहारकसमुद्घात.	मनुष्यने—चतुर्दशपूर्वधरने.	,,	आहारकशरीर नामकर्मथी.	आहारकशरीर नामकर्मनां पुद्गलोनो नाश.
७	केवलिसमुद्घात.	मनुष्यने—केवळज्ञानवाळाने.	आठ समय.	आयुष्य सिवायनां त्रण अघाती कर्मथी.	आयुष्य सिवायनां त्रण अघाती कर्मपुद्गलोनो नाश.

बेधारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति-शान्त्योर्, दयात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक ३.

पृथिवीओ केटली छे ?—सात.—रत्नप्रभा.—शर्कराप्रभा.—वालुकाप्रभा.—पंकप्रभा.—धूमप्रभा.—तमप्रभा.—तमतमाप्रभा.—सर्व जीवो नरकमां, पूर्वे अनेकवार उत्पन्न थया छे ?—हा.—जीवाभिगमसूत्रनो बीजो उद्देशक.—

२१. प्र०—कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

२१. उ०—जीवाभिगमे नेरइयाणं जो बितिओ उद्देसो सो नेयव्वो. पुढवी ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं, जाव०—.

२१. प्र०—हे भगवन्! पृथिवीओ केटली कही छे?

२१. उ०—हे गौतम! जीवाभिगम सूत्रमां कहेलो, नैरयिकोनो बीजो उद्देशक जाणवो. ते उद्देशकमां पृथिवीओ संबंधी हकीकत छे, तथा नारको संबंधी, तेओनां संस्थान (शरीरना घाट) संबंधी, नरक पृथिवीनी जाडाइ संबंधी अने यावत्—बीजी पण हकीकतो छे.

२२. प्र०—किं सव्वपाणा उववन्नपुव्वा ?

२२. प्र०—हे भगवन्! शुं सर्व जीवो उपपन्नपूर्व छे अर्थात् शुं बधा जीवो रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख नरकोमां आवी गएला छे?

२२. उ०—हंता, गोयमा! असइं, अदुवा अणंतक्खुत्तो. पुढवी-उद्देसो.

२२. उ०—हे गौतम! हा, अनेकवार अथवा अनंतवार बधा जीवो रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख नरकोमां आवी गया छे. यावत्—पृथिवी उद्देशो कहेवो.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये तइओ उद्देसो सम्मत्तो.

१. अथ तृतीय आरभ्यते, अस्य चाऽयम् अभिसंबन्धः—'द्वितीयोद्देशके समुद्घाताः प्ररूपिताः, तेषु च मारणान्तिकसमुद्घातः, तेन च समवहताः केचित् पृथिवीषु उत्पद्यन्ते' इति इह पृथिव्यः प्रतिपाद्यन्ते इत्येवंसंबन्धस्य अस्येदम् आदिसूत्रम्—'*कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ*' इत्यादि. इह च जीवाऽभिगमे नारकद्वितीयोद्देशके अर्थसंग्रहगाथाः—"*पुढवी ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं, विक्खंभ-परिक्खेवो वण्णो गंधो य फासो य.*" सूत्रपुस्तकेषु च पूर्वार्धमेव लिखितम्, शेषाणां विवक्षितार्थानां यावच्छब्देन सूचितत्वाद् इति. तत्र '*पुढवि*' पृथिव्यो वाच्याः, ताश्च एवम्:—"*कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! सत्त, तं जहा:—रयणप्पभा*" इत्यादि. '*ओगाहित्ता निरय*'त्ति पृथिवीम् अवगाह्य कियद्दूरे नारकाः? इति वाच्यम्. तत्र, अस्यां रत्नप्रभायाम्—अशीतिसहस्रोत्तरयोजनलक्षबाहल्यायाम् उपर्येकं योजनसहस्रम् अवगाह्य, अधोऽपि एकं वर्जयित्वा, त्रिंशन्नरकलक्षाणि भवन्ति. एवं शर्कराप्रभादिषु यथायोगं वक्तव्यम्.

---

१. मूलच्छाया:—कति भगवन्! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? जीवाभिगमे नैरयिकाणां यो द्वितीय उद्देशकः स ज्ञातव्यः. पृथिवीरवगाह्य निरयाः संस्थानम् एव [illegible], यावत्— किं सर्वप्राणा उपपन्नपूर्वाः? हन्त, गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः. पृथिव्युद्देशकः—अनु॰

[illegible] —अवगाह्य निरयाः संस्थानमेव बाहल्यम्, विष्कम्भ-परिक्षेपौ वर्णो गन्धश्च स्पर्शश्च. २. कति भगवन्! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? गौतम! [illegible]

'संठाणमेव' त्ति नारकसंस्थानं वाच्यम्, तत्र, ये आवलिकोपविष्टास्ते वृत्ताः, त्र्यस्राः, चतुरस्राश्च, इतरे तु नानासंस्थानाः. 'बाहल्लं' त्ति नरकाणां बाहल्यं वाच्यम्, तच्च त्रीणि योजनसहस्राणि, कथम्? अध एकम्, मध्ये शुषिरम् एकम्, उपरि च संकोच एकम् इति. 'विक्खंभ-परिक्खेवो' त्ति एतौ वाच्यौ, तत्र, संख्यातविस्तृतानां संख्यातयोजन आयामः, विष्कम्भः, परिक्षेपश्च. इतरेषां तु अन्यथा इति. तथा वर्णादयो वाच्याः, ते च अत्यन्तमनिष्टाः, इत्यादि बहु वक्तव्यं यावद् अयमुद्देशकान्तः. यदुत 'किं सव्वपाणा' इत्यादि. अस्य च एवं प्रयोगः—अस्यां रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकलक्षेषु किं सर्वे प्राणादय उत्पन्नपूर्वाः? अत्रोत्तरम्—'असइं' ति असकृद् अनेकशः, इदं च बेकृत्वाद्यादावपि स्यात्, अतोऽत्यन्तबाहुल्यप्रतिपादनायाऽऽह,—'अदुव' त्ति अथवा 'अणंतक्खुत्तो' त्ति अनन्तकृत्वोऽनन्तवारान्.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते तृतीय उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

१. हवे त्रीजा उद्देशकनी शरुआत थाय छे अने बीजा तथा त्रीजा उद्देशकनो संबंध आ प्रमाणे छेः—'बीजा उद्देशकमां समुद्घात संबंधी हकीकत कही छे अने तेमां मारणांतिक समुद्घात विषे पण जणाव्युं छे. तो ते मारणांतिक समुद्घात द्वारा समवहत थएला केटलाक जीवो पृथिवीओमां उत्पन्न थाय छे माटे ते पृथिवीओ संबंधी हकीकत आ उद्देशकमां कहेवी ए प्रसंगोपात्त छे' ए रीते बीजा अने त्रीजा उद्देशकनो संबंध छे. आ त्रीजा उद्देशकनुं प्रथम सूत्र आ छेः—['कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ' इत्यादि.] जीवाभिगमसूत्रमां आवेला नारक संबंधी बीजा उद्देशकनी अर्थसंग्रहगाथा अहीं जणावी छे. ते आ छेः—["पुढवी ओगाहित्ता निरया संठाणमेव बाहल्लं, विक्खंभ-परिक्खेवो वण्णो गंधो य फासो य."] सूत्रपुस्तकोमां आखी गाथा (पूर्वार्ध) ज लखी छे, कारण के बाकीना इष्ट अर्थो 'यावत्' शब्दथी सूचव्या छे. ते गाथानो अर्थ आ छेः—'पृथिवी' एटले पृथिवीओ कहेवी. ते आ रीतेः—'हे भगवन्! पृथिवीओ केटली कही छे? हे गौतम! पृथिवीओ सात कही छे. ते आ प्रमाणेः—रत्नप्रभा' इत्यादि. ['ओगाहित्ता निरय'त्ति] 'पृथिवीथी आगळ केटले दूर जतां नारको रहे छे' ए वात कहेवी. ते आ रीतेः—एक लाख अने एंशी हजार योजन जाडी रत्नप्रभा पृथिवीमां नीचेना हजार योजन छोडी दइए त्यारे त्रीश लाख नरको आवे छे तथा उपर एक हजार योजन आगळ जइए त्यारे त्रीश लाख नरको आवे छे अर्थात् रत्नप्रभा पृथिवीनी उपर अने नीचेना एक हजार योजन जेटला भागमां नरको नथी. ए प्रमाणे शर्कराप्रभा वगेरे पृथिवीओमां जेम घटे तेम जाणवुं. ['संठाणमेव'त्ति] नारकिओना शरीरनो घाट कहेवो. जे नारकिओ आवलिकामां आवेला छे तेओनो घाट गोळ, त्रण खुणिओ अने चार खुणिओ छे तथा ते सिवायना बीजा नारकिओनो घाट अनेक प्रकारनो छे. ['बाहल्लं'ति] नरकोनी जाडाइ कहेवी. ते आ छेः—त्रण हजार योजन नरकपृथिवी जाडी छे. ते केवी रीते? तो कहे छे के, नीचे एक हजार योजन, वचमां एक हजार योजन शुषिर अने उपर एक हजार योजन संकुचित छे. ['विक्खंभ-परिक्खेवो' त्ति] विष्कंभ अने परिक्षेप, ए बन्ने कहेवा. जे पृथिवीओ संख्याता विस्तारवाळी छे तेनी लंबाइ, पहोळाइ अने घेरावो संख्यात योजन छे अने ते सिवायनी—बीजी—पृथिवीओनी लंबाइ वगेरे तेथी जूदी रीते छे. तथा 'वर्ण' वगेरे नारकिमां कहेवा. ते वर्ण वगेरे घणा ज खराब होय छे. इत्यादि आ उद्देशकना छेडा सुधी घणुं कहेवानुं छे. ['किं सव्वपाणा' इत्यादि.] आ सूत्रनो प्रयोग आ रीते छेः— शुं सर्व जीवो, आ रत्नप्रभा पृथिवीना त्रीश लाख नरकोमां पूर्वे आवी गएला छे? अहीं उत्तर आ छेः— ['असइं'ति] अनेकवार, बे, त्रणवारने पण 'अनेकवार' कहेवाय माटे अहीं अत्यंत बाहुल्य जणाववा माटे कहे छे के, ['अदुव'त्ति] अथवा ['अणंतक्खुत्तो'त्ति] अनंतवार अर्थात् जीवो अनंतवार नारकिमां आवी गएला छे.

जीवाभिगम सूत्र.

पृथिवीओ.

नारको क्यां?

नारकोनो घाट.

बाहल्य.

विष्कंभ-परिक्षेप.

सर्व प्राणो पूर्वे नरकमां गया?

---

१. जैनोना जुनामां जुना ग्रंथो 'अंग' या 'उपांग' तरीके ओळखाय छे. आ 'जीवाभिगम' नामनुं सूत्र पण एक 'उपांग' छे. जे ठेकाणे जे पदार्थ प्रधानपणुं राखतो होय ते ठेकाणे ते पदार्थ, लोकरूढिए 'अंग' तरीके ओळखाय छे अने ते पदार्थना संबंधी बीजा पदार्थोने उपांग-अंगना सहायक-गणवामां आवे छे. जैनोना मुख्य बार शास्त्रो छे. ते 'अंग' कहेवाय छे अने तेने लगता बीजा केटलाक ग्रंथो 'उपांग' तरीके ओळखाय छे. 'स्थानांग' सूत्र नामनुं एक शास्त्र छे, जे, बार अंगोमांनुं त्रीजुं अंग छे. (जूओ पृ० ९ अने ११ मांनुं स्थानांग उपरनुं टिप्पण) ते अंगनुं आ 'जीवाभिगम' नामनुं उपांग छे. आ 'जीवाभिगम' नामनुं उपांग कोइ एक अमुक व्यक्तिए ज रच्युं एम नथी, पण अनेक स्थविरोए मळीने तेनी संकलना करी होय तेम तेना मूळपाठ उपरथी स्पष्ट जणाय छेः—

"इह खलु जिणमयं, जिणाणुमयं, जिणाणुलोमं, जिणप्पणीतं, जिणपरूविअं, जिणक्खायं, जिणाणुचिण्णं. जिणपण्णत्तं, जिणदेसिअं, जिणप्पसत्थं अणुचिंतिअ तं सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, तं तं रोएमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमं णामज्झयणं पण्णवइंसु"—(श्रीजीवाभिगमसूत्र, क० आ० पृ० ५.)

"आ संसारमां जे पदार्थ जिने मानेल छे, तेने—जिनने—अनुमत छे, तेने अनुकूळ छे, तेणे जेनुं प्रणयन कर्युं छे, प्ररूपण कर्युं छे, कथन कर्युं छे, जेने तेणे अनुचर्यो छे, जणाव्यो छे, उपदेश्यो छे अने प्रशस्त गण्यो छे तेने बुद्धिपूर्वक विचारीने तेमां श्रद्धा करता, प्रीति करता अने रुचि करता स्थविर (वृद्ध साधु) भगवंतोए "जीवाजीवाभिगम नामनुं अध्ययन प्ररूप्युं छे—जणाव्युं छे"—(श्रीजीवाभिगमसूत्र, क० आ० पृ०५.)

आ पाठ उपरथी एम पण जणाय छे के, आखुं नाम तो 'जीवाजीवाभिगम अध्ययन' छे. पण ते नामने टुंकुं करीने तेने 'जीवाभिगम' ए नामथी ओळखवामां आवे छे. अने 'अध्ययन' ने बदले 'सूत्र' शब्द प्रयोजाय छे. वळी ए टुंकुं नाम पण कांइ अर्वाचीन नथी, कारण के ए टुंका नामनो उल्लेख श्रीभगवतीजी जेवा प्राचीन ग्रंथमां पण छे. ए 'जीवाभिगम' सूत्रमां जीव अने अजीव विषे तथा तेने लगती बीजी अनेक बाबतो उपर विवेचन छे. तेमां अनेक रीतिए जीवना बे प्रकार, त्रण प्रकार, चार प्रकार, पांच प्रकार, छ प्रकार, सात प्रकार, आठ प्रकार, नव प्रकार अने दश प्रकार युक्तिपूर्वक वर्णव्या छे. उपर जे जीवाभिगमसूत्रना नारक संबंधी बीजा उद्देशकनी साक्षी आपी छे ते बीजो उद्देशक, चार प्रकारना जीवोनुं प्ररूपण करतां, नारकिओना प्ररूपण प्रसंगे जणाव्यो छे अने ते बीजो उद्देशक (पृ० २४५ थी ३०९ सुधी क० आ०) मां छे तथा उपर जे संग्रह गाथा आपी छे ते ते उद्देशकमां (पृ० ३०८ मां) छेः—अनु०

वेलाकूपः समुद्देऽखिलजलभरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सज्जनानां परकृतिकरपादैसतीपी सपदी।
अवाकं श्रीवीरोऽस्तुमसमरस्रो यदको शान्ति-शान्तोद्, दृग्दात् श्रीवीरदेवः सकलशिवसुखं [illegible]॥१॥

शतक २.–उद्देशक ४.

इंद्रियो केटली छे ?—पांच.—स्पर्शइंद्रिय.—रसइंद्रिय.—घ्राणइंद्रिय.—नेत्रइंद्रिय.—कर्णइंद्रिय.—प्रज्ञापना सूत्रनो इंद्रियसंबंधी प्रथम उद्देशक.—इंद्रियोना भेदो.—इंद्रियोनो आकार.—इंद्रियोनी जाडाइ.—इंद्रियोनो विषय वगेरे.—

२३. प्र०—*कइ णं भंते ! इंदिया पन्नत्ता ?*

२३. उ०—*गोयमा ! पंच इंदिया पण्णत्ता, तं जहा:–पढमिल्लो इंदियउद्देसओ नेयव्वो, संठाणं, बाहल्लं, पोहत्त, जाव–अलोगो. इंदियउद्देसो.*

२३. प्र०—हे भगवन्! केटली इंद्रियो कही छे?

२३. उ०—हे गौतम! पांच इंद्रियो कही छे. ते आ प्रमाणेः— स्पर्श (चामडी) वगेरे. अहीं प्रज्ञापना सूत्रमां कहेलो इंद्रिय संबंधी उद्देशक कहेवो. तथा तेमां कह्या प्रमाणे इंद्रियोनो घाट, जाडाइ अने पहोळाइ पण कहेवी. तथा यावत्–अलोक सुधीना विवेचनवाळो आखो इंद्रियउद्देशक कहेवो.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो.

१. तृतीयोद्देशके नारका उक्ताः, ते च पञ्चेन्द्रियाः, इति इन्द्रियप्ररूपणाय आह चतुर्थोद्देशकः. तस्य च आदिसूत्रम्–'*कइ णं*' इत्यादि. '*पढमिल्लो इंदियउद्देसओ नेयव्वो*'त्ति प्रज्ञापनायामिन्द्रियपदाभिधानस्य पञ्चदशपदस्य प्रथम उद्देशकोऽत्र नेतव्योऽध्येतव्यः. तत्र च द्वारगाथा– "*संठाणं बाहल्लं पोहत्तं कइपएस ओगाढे, अप्पाबहु पुट्ठ–पविट्ठ विसय अणगार आहारे*". इह च सूत्रपुस्तकेषु द्वारत्रयमेव लिखितम्, शेषास्तु तदर्था 'यावत्' शब्देन सूचिताः. तत्र संस्थानं श्रोत्रादीन्द्रियाणां वाच्यम्, तच्चेदम्–श्रोत्रेन्द्रियं कदम्बपुष्पसंस्थितम्, चक्षुरिन्द्रियं मसूरक-चन्द्रसंस्थितम्–मसूरकमासनविशेषः, चन्द्रः शशी, अथवा मसूरचन्द्रो धान्यविशेषदलम्. घ्राणेन्द्रियम् अतिमुक्तकचन्द्रकसंस्थितम्–अतिमुक्तकचन्द्रकः पुष्पविशेषदलम्. रसनेन्द्रियं क्षुरप्रसंस्थितम्. स्पर्शनेन्द्रियं नानाकारम्. '*बाहल्लं*'ति इन्द्रियाणां बाहल्यं वाच्यम्, तच्चेदम्–सर्वाणि, अङ्गुलासंख्येयभागबाहल्यानि. '*पोहत्तं*'ति पृथुत्वम्, तच्चेदम्–श्रोत्र–चक्षु–र्घ्राणानामङ्गुलासंख्येयभागः, जिह्वेन्द्रियस्य अङ्गुलपृथक्त्वम्, स्पर्शनेन्द्रियस्य च शरीरमानम्. '*कइपएस*' त्ति अनन्तप्रदेशनिष्पन्नानि पञ्चापि. '*ओगाढे*' त्ति असंख्येयप्रदेशावगाढानि. '*अप्पाबहु*' त्ति सर्वस्तोकं चक्षुरवगाहतः, ततः श्रोत्र-घ्राणेन्द्रिये क्रमेण संख्यातगुणे, ततो रसनेन्द्रियम् असंख्येयगुणम्, ततः स्पर्शनं संख्येयगुणम् इत्यादि. '*पुट्ठ-पविट्ठ*' त्ति श्रोत्रादीनि चक्षूरहितानि स्पृष्टमर्थम्, प्रविष्टं च गृह्णन्ति. '*विसय*' त्ति सर्वेषां जघन्यतोऽङ्गुलस्यासंख्येयभागो विषयः, उत्कर्षतस्तु श्रोत्रस्य द्वादश योजनानि, चक्षुषः सातिरेकं लक्षम्, शेषाणां नव योजनानीति. '*अणगारे*' त्ति अनगारस्य समुद्घातगतस्य ये निर्जरापुद्गलाः, तान् न छद्मस्थो मनुष्यः पश्यतीति. '*आहारे*'त्ति निर्जरापुद्गलान् नारकादयो न जानन्ति, न पश्यन्ति, आहारयन्ति चेति. एवमादि बहु वाच्यम्. अथ किमन्तोऽयमुद्देशकः ? इत्याह–यावद् अलोकः––अलोकसूत्रान्तः, तच्चेदम्–"*अलोगे णं भन्ते ! किणा*

---

१. मूलच्छायाः—कति भगवन्! इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! पञ्च इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि. तद्यथाः–प्राथमिक इन्द्रियोद्देशको ज्ञातव्यः. संस्थानं बाहल्यं पृथुत्वं यावत्–अलोकः. इन्द्रियोद्देशकः.

२. [illegible] गाथाः—संस्थानं बाहल्यं पृथुत्वं कतिप्रदेशमवगाढम्, अल्पबहु स्पृष्ट–प्रविष्टं विषयः अनगार आहारः. २. अलोको भगवन्! केन स्पृष्टः, कति- [illegible] स्पृष्टः ? गौतम ! नो धर्मास्तिकायेन स्पृष्टः, यावत्–नो आकाशास्तिकायेन स्पृष्टः, आकाशास्तिकायस्य देशेन स्पृष्टः, आकाशास्तिकायस्य प्रदेशैः [illegible] नो पृथिवीकायेन स्पृष्टः, यावत्–नो [illegible] स्पृष्टः, एकोऽजीवद्रव्यदेशः, अगुरुलघुकैरनन्तैः, अगुरुलघुकगुणैः संयुक्तः सर्वाकाशोऽनन्त- [illegible]

फुडे, कइहिं वा काएहिं फुडे ? गोयमा ! नो धम्मत्थिकाएणं फुडे, जाव-नो आगासत्थिकाएणं फुडे; आकासत्थिकायस्स [illegible] आगासत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे, नो पुढविकायेणं फुडे, जाव-नो अद्धासमएणं फुडे, एगे अजीवदव्वदेसे, अगुरुलहुएहिं [illegible] अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासे अणंतभागूणे" त्ति नाऽलोको धर्मास्तिकायादिना, पृथिव्यादिकायैः, समयेन च स्पृष्टः—व्याप्तः, तेषां तत्राऽसत्त्वात्, आकाशास्तिकायदेशादिभिश्च स्पृष्टः, तेषां तत्र सत्त्वात्, एकश्चासौ अजीवद्रव्यदेशः, आकाशद्रव्यदेशत्वात् तस्य इति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते चतुर्थ उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

इंद्रिय. १. त्रीजा उद्देशकमां नारको संबंधी हकीकत कही छे. ते नारकोने पांचे इंद्रियो होय छे माटे हवे [1]इंद्रियो संबंधी विवेचन करवुं ते क्रमप्राप्त छे. सो ते विवेचन करवा सारु आ चोथा उद्देशकनी शरुआत थाय छे अने तेनुं पेलुं सूत्र आ छेः—['कइ णं' इत्यादि.] ['पढमिलो इंदियउद्देसओ नेयव्वो' त्ति] प्रज्ञापना सूत्रमां आवेल, पन्नरमा इंद्रियपदनो प्रथम उद्देशक अहीं कहेवो. तेमां द्वारगाथा छेः—["संठाणं बाहल्लं पोहत्तं कइपएस ओगाढे, अप्पाबहु पुट्ठ—

१. जैन ऋषिओए इंद्रियोना भेदो आ प्रमाणे जणाव्या छेः—

निर्वृत्ति-उपकरणे द्रव्येन्द्रियम्. लब्धि-उपयोगौ भावेन्द्रियम्. तत्र निर्वृत्तिः आकारः, सा च बाह्या अभ्यन्तरा च. तत्र बाह्या अनेकप्रकारा. अभ्यन्तरा पुनः क्रमेण श्रोत्रादीनां कदम्बपुष्प-धान्यमसूर-अतिमुक्तक-पुष्पचन्द्रिका-क्षुरप्र-नानाप्रकारसंस्थाना. उपकरणेन्द्रियं विषयग्रहणे समर्थम्—छेद्यच्छेदने खड्गस्येव धारा—यस्मिन् उपहते निर्वृत्तिसद्भावेऽपि विषयं न गृह्णाति (इन्द्रियम्) इति. लब्धीन्द्रियं यत्तदावरणक्षयोपशमः. उपयोगेन्द्रियं यः स्वविषये व्यापारः इति—(श्रीस्थानाङ्गे पञ्चमे स्थाने पृ० ३९०, क० आ०):—अनु०

(इन्द्र एटले जीव, तेनुं जे निशान ते इंद्रिय) ते इंद्रियना मुख्य बे भेद छेः-एक द्रव्यइंद्रिय अने बीजुं भावइंद्रिय. तेमां द्रव्यइंद्रियना बे भेद छेः—निर्वृत्ति अने उपकरण. निर्वृत्ति एटले आकार. ते आकार पण बे जातनो छेः—एक अंदरनो अने बीजो बहारनो. तेमां अंदरना आकारनुं विवेचन 'इंद्रियपंत्र' नामना कोठामां आप्युं छे. अने बहारनो आकार अनेक प्रकारनो छे. जेम, कोइ एक कापवानी वस्तुने कापवामां तरवारनी धार समर्थ छे तेम जे इंद्रिय संबंधी अणुओ विषयने ग्रहण करवामां समर्थ छे ते उपकरण इंद्रिय कहेवाय. जो ते उपकरण इंद्रिय न होय तो निर्वृत्तिइंद्रिय नकामी ज छे. इंद्रियहेतुक ज्ञानने रोकनारां कर्मोनो क्षय अने उपशम ते अर्थात् जाणवानी शक्ति ते लब्धिइंद्रिय अने ते शक्तिनो पोत पोताना विषयमां उपयोग, ते उपयोगइंद्रिय.—श्रीस्थानांगसूत्र, पांचमुं स्थान, (पृ० ३९०, क० आ०)

इंद्रिय.
- द्रव्यइंद्रिय.
  - निर्वृत्ति—(बहारनो अने अंदरनो घाट.)
  - उपकरण—(पदार्थने ओळखवामां साधनरूप अणुओ.)
- भावइंद्रिय.
  - लब्धि—(जाणवानी शक्ति.)
  - उपयोग—(जाणनारी शक्ति.):—अनु०

२. श्रीप्रज्ञापना सूत्रमां (क० आ० पृ० ४१९ थी ४५९ सुधी) आ इंद्रियपद पन्नरमुं छे. तेमां इंद्रियो विषे सविस्तर विवेचन छे—जैनदृष्टिए ते इंद्रियविज्ञानशास्त्र ज छे. त्यां इंद्रियो विषे विवेचन करतां पहेलां जे उपोद्घात आप्यो छे ते आ छेः—

×× विशेषत इन्द्रियपरिणामनिरूपणार्थमिदम् आरभ्यते—अत्र च द्वौ उद्देशकौ, तत्र च प्रथमोद्देशके ये अर्थाधिकाराः, तत्संग्राहकम् इदं गाथाद्वयम्—××× प्रथमम् इन्द्रियाणां संस्थानं वक्तव्यम्. संस्थानं नाम आकारविशेषः. ततो बाहल्यं वक्तव्यम्, बाहल्यं नाम बहुलता—पिण्डत्वमिति भावः. तदनन्तरं पृथुत्वं वक्तव्यम्, पृथुत्वं विस्तारः. तदनन्तरम् ××× कतिप्रदेशम्—इन्द्रियम् ? इति वक्तव्यम्. ततः ××× कतिप्रदेशावगाढम्—इन्द्रियम् ? इति वाच्यम्. तदनन्तरम् अवगाहनादिविषयं कर्कशादिगुणविषयं चाल्पबहुत्वम्. ततः ××× स्पृष्टास्पृष्टविषयं सूत्रं वक्तव्यम्. तदनन्तरम् ××× प्रविष्टाप्रविष्टविषयचिन्ताविषयम्. ततो विषयपरिमाणम्. ×× तदनन्तरम् आदर्शविषयम्. + ++ (श्रीमलयगिरि, प्रज्ञापनासूत्र, पृ० ४१९, क० आ०)

विशेष प्रकारे 'इंद्रियोना परिणामने निरूपवा आ प्रकरणनी शरूआत थाय छे. आ इंद्रियपदमां बे उद्देशक छे तेमां जे जे विषयो आवे छे ते नीचे प्रमाणे छेः—पहेलुं इंद्रियोना आकारसंबंधी विवेचन छे. पछी इंद्रियोनी जाडाइ कहेवानी छे. पछी इंद्रियोनी पहोळाइनुं विवेचन छे. पछी प्रत्येक इंद्रिय केटला प्रदेशवाळी छे ? ते विषे विवेचन छे. पछी प्रत्येक इंद्रिय केटला प्रदेशोमां अवगाढ छे ? ते विषे विवेचन छे. त्यार पछी अवगाहनादिविषयक अने 'कर्कश' वगेरे गुणविषय अल्पबहुत्वसंबंधी विवेचन छे. पछी 'विषयने (पदार्थने) अडकीने के अडक्या सिवाय इंद्रिय, पदार्थने ओळखी शके छे' ए विषे विवेचन छे. त्यार बाद 'प्रविष्ट के अप्रविष्ट विषयने इंद्रियो जाणे छे' ए संबंधी विवेक छे. पछी 'केटले छेटेथी इंद्रियो [illegible] चीज ओळखाय छे' ते संबंधे-विषयना परिमाण संबंधे-विवेचन छे. पछी 'काचमां पडतुं प्रतिबिंब शुं छे ?' ए संबंधे विचार छे. (श्रीमलयगिरि, प्रज्ञापनासूत्र, पृ० ४१९, क० आ०) [illegible]

विवेचनो छे पण ते चालु प्रसंग साथे संबद्ध न होवाथी अहीं [illegible]. ते सिवाय आ संबंधे [illegible] पहेली गूजराती पादटीका. तथा स्थानांगसूत्रनुं पांचमुं स्थान (क० आ० पृ० ३९०):—अनु०

ओनेरिय विषय जाणनार कहाके. ''] अहीं सूत्रपुस्तकोमां त्रण द्वार ज लखेलां छे अने बाकीना अर्थो 'यावत्' शब्दथी सूचव्या छे. ते गाथानो अर्थ आ छेः—श्रोत्र(कान) वगेरे इंद्रियोनो घाट केवो छे? ते जणाववुं.ते आ छेः—कदंबना फुलनी जेवो घाट कर्णेंद्रियनो छे. मसूरनी जेवो तथा चंद्रनी जेवो घाट नेत्रें- इंद्रियोनो आकार.

इंद्रियथंत्र.

	इंद्रिय.	कोने होय ?	केवो आकार ?	जाडाई.	पहोळाई.	केटला प्रदेशवाळी ?	केटला प्रदेशमां रहेली ?	विषयनुं ग्रहण कया प्रकारे ?	विषयपरिमाण.	
१.	स्पर्शेंद्रिय-चामडी—जेनाथी स्पर्शनुं ज्ञान थाय ते.	सर्व सकर्मक जीवने.	अनेक जातनो आकार.	आंगळना असंख्य भाग जेटली.	शरीर जेटली.	अनंत प्रदेशवाळी.	असंख्य प्रदेशमां रहेली.	अडकेला विषयनुं ग्रहण करे.	ओछामां ओछुं आंगळना असंख्य भाग जेटले दूरथी आवेला अणुओना स्पर्शने जाणे.	वधारेमां वधारे नव योजन जेटले दूरथी आवेला अणुओना स्पर्शने जाणे.
२.	रसनेंद्रिय—जिभ—जेनाथी रसनुं ज्ञान थाय ते.	बे इंद्रियवाळा—करमिआ—वगेरेने.	सजाया जेवो आकार.	,,	बे आंगळथी नव आंगळ जेटली.	,,	,,	,,	,, अणुओना रसने जाणे.	,, अणुओना रसने जाणे.
३.	घ्राणेंद्रिय—नाक—जेनाथी गंधनुं ज्ञान थाय ते.	त्रण इंद्रियवाळा—कीडी—वगेरेने.	अतिमुक्तक—चंद्र जेवो आकार.	,,	आंगळना असंख्य भाग जेटली.	,,	,,	,,	,, अणुओना गंधने जाणे.	,, अणुओना गंधने जाणे.
४.	नेत्रेंद्रिय—आंख—जेनाथी रूपनुं ज्ञान थाय ते.	चार इंद्रियवाळा—भमरा—वगेरेने.	मसूरनी डाळ जेवो आकार.	,,	,,	,,	,,	विषयने अडक्या सिवाय तेनुं ग्रहण करे.	ओछामां ओछुं आंगळना असंख्य भाग जेटले दूर रहेल रूपने जूए.	* वधारेमां वधारे लाख योजन दूर रहेल पदार्थने जूए.
५.	श्रोत्रेंद्रिय—कान—जेनाथी अवाजनुं ज्ञान थाय ते.	पांच इंद्रियवाळा—मनुष्य—वगेरेने.	कदंबना पुष्प जेवो आकार.	,,	,,	,,	,,	अडकेला विषयनुं ग्रहण करे.	ओछामां ओछुं आंगळना असंख्य भाग जेटले दूरथी आवेल अवाजने सांभळे.	वधारेमां वधारे बार योजन जेटले दूरथी आवेला शब्दने सांभळे.

* आ नियम तेज विनानी वस्तु माटे छे. अने जे वस्तु, पोते तेजवाळी होय ते तो लाख योजनथी पण वधारे दूर होय तो पण आंख द्वारा जोइ शकाय छे.—शास्त्रकारः—अनु०

इंद्रियोनी जाडाइ अने पहोळाइ. अवगाह. अल्पबहुत्व. स्पृष्ट अने प्रविष्ट. विषय.

द्रियनो छे. मसूर शब्दना बे अर्थ छे—मसूर एटले एक जातनुं आसन अथवा मसूर एटले एक जातनुं धान्य, (धान्यपक्षे अहीं सरखामणीमां मसूरनी दाळ लेवानी छे.) सजाया जेवो घाट जिह्वेंद्रियनो छे. अतिमुक्तकचंद्रनी जेवो घाट नासिकेंद्रियनो छे. अतिमुक्तकचंद्र एटले एक जातना फुलनी पांखडी. स्पर्शइंद्रियनो घाट अनेक प्रकारनो छे. ['बाहल्लं'ति] इंद्रियोनी जाडाइ कहेवी. ते आ रीतेः—बधी इंद्रियो, आंगळना असंख्येयभाग जेटली जाडी छे. ['पोहत्तं'ति] इंद्रियोनी पहोळाइ कहेवी. ते आ प्रमाणेः—कर्णेंद्रिय, नेत्रेंद्रिय अने नासिकेंद्रियनी पहोळाइ आंगळना असंख्य भाग जेटली छे. जिह्वाइंद्रियनी पहोळाइ बेथी नव आंगळ जेटली छे. अने स्पर्शइंद्रियनी पहोळाइ शरीर जेटली छे. ['कइपएस' त्ति] पांचे इंद्रियो, अनंत प्रदेशथी बनेली छे. ['ओगाढे'त्ति] ते इंद्रियो, असंख्येय प्रदेशमां अवगाढ छे. ['अप्पाबहु' त्ति] नेत्रइंद्रियनी अवगाहना सौथी थोडी छे. तेथी संख्यातगणी अवगाहनावाळी कर्णइंद्रिय अने नासिकेंद्रिय क्रमपूर्वक छे. तेथी जिह्वाइंद्रिय असंख्येयगणी अवगाहनावाळी छे. अने तेना करतां स्पर्शइंद्रिय संख्येयगणी अवगाहनावाळी छे. इत्यादि. ['पुट्ठ—पविट्ठ' त्ति] नेत्र सिवायनी बीजी बधी इंद्रियो अडकेला अने प्रविष्ट थएला विषयनुं ग्रहण करे छे. ['विसय' त्ति] बधी इंद्रियोनो विषय ओछामां ओछो आंगळना असंख्य भाग जेटलो छे अर्थात् ओछामां ओछुं आंगळना असंख्येय भाग जेटले रहेला विषयने ते इंद्रियो जाणी शके छे. हवे वधारेमां वधारे ते इंद्रियोनो विषय जणावे छेः—कर्णइंद्रियनो वधारेमां वधारे विषय बार योजननो छे अर्थात् वधारेमां वधारे बार योजन—नथी आवेला शब्दने कर्णइंद्रिय सांभळी शके छे. नेत्रइंद्रियनो वधारेमां वधारे विषय लाख योजन करतां वधारे छे—लाख योजन जेटले दूर रहेला पदार्थने ते जाणी (जोइ) शके छे. अने बाकी बधी इंद्रियोनो वधारेमां वधारे नव योजन जेटलो विषय छे—नव योजन जेटले दूर रहेला पदार्थने ते इंद्रियो, ओळखी शके छे. ['अणगारे'त्ति] समुद्घातवाळी दशामां रहेल मुनिना निर्जरापुद्गलोने छद्मस्थ मनुष्य जोइ शकतो नथी. ['आहारे'त्ति] नारको वगेरे ते निर्जरापुद्गलोने जोइ के जाणी शकता नथी, पण तेने खाय छे. ए प्रमाणे घणुं कहेवानुं छे. आ उद्देशकने अंते शुं छे? ते वातने हवे जणावे छे, आ उद्देशकने छेडे अलोक संबंधी सूत्र छे. अने ते आ छेः—"हे भगवन्! अलोकने कोण अडकेलुं छे? अने केटला कायो अलोकने अडकेला छे? हे गौतम! अलोकने धर्मास्तिकाय अने यावत्—आकाशास्तिकाय अडक्या नथी. पण तेने आकाशास्तिकायनो देश अने प्रदेशो अडक्या छे. तेने पृथिवीकाय अडक्यो नथी यावत्—तेने अद्धासमय पण अडक्यो नथी. ते एक अगुरुलघुरूप अजीवद्रव्यदेश छे अने अनंत अगुरुलघु गुणोथी संयुक्त छे. तथा अनंत भाग ऊन सर्वाकाशरूप छे. अलोकने धर्मास्तिकाय तथा पृथिवीकाय वगेरे अडक्या नथी, तेनुं कारण ए के, तेओ त्यां नथी. तथा अलोकने आकाशास्तिकायना देश, प्रदेश वगेरे अडक्या छे तेनुं कारण ए के, तेओ त्यां छे. तात्पर्य ए के, अलोक, एक अजीवद्रव्यदेशरूप छे, कारण के ते, आकाशद्रव्यनो एक देश छे.

अलोकने कोण अडक्युं?

खेडारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक ५.

अन्यतीर्थिकमत.—देवने स्त्रीओ न होय.—एक ज जीव एक काळे बे वेदोने (बे स्थितिने) अनुभवे.—ते खोटुं छे.—देवने स्त्रीओ होय.—एक जीव एक काळे एक वेदने अनुभवे.—केटला वखत सुधी उदकनो गर्भ टके?—एक समय अने छ मास.—केटला वखत सुधी तिर्यंचयोनिकनो गर्भ टके?—अंतर्मुहूर्त अने आठ वरस.—केटला वखत सुधी मनुष्यनो गर्भ टके?—अंतर्मुहूर्त अने बार वरस.—कायभवस्थ केटला काळ सुधी टके?—अंतर्मुहूर्त अने चोवीश वरस.—मनुष्य अने तिर्यंचपंचेंद्रियना बीजमां बीजत्व क्यां सुधी टके?—अंतर्मुहूर्त अने बार मुहूर्त.—एक जीव एक भवे केटलानो पुत्र थाय?—एक, बे, त्रणनो के बसेंथी नवसेंनो.—एक जीवने एक भवे केटला पुत्र थाय?—एक, बे, त्रण के वेथी नव लाख.—तेनुं कारण.—मैथुनथी थतो असंयम.—श्रीमहावीरविहार.—तुंगिका नगरी.—तुंगिका नगरीना श्रावको अने तेओनुं स्वरूप.—पार्श्वनाथना स्थविर शिष्यो.—तेओनी पासे जवा माटे तुंगिकाना श्रावकोनो विचार.—तेओनी तैयारी अने विनीतता.—ते स्थविरोनो धर्मोपदेश.—ते श्रावकोना प्रश्नो.—संयमनु अने तपनुं शुं फळ?—अनाश्रव.—व्यवदान.—देवो देवलोकमां थाय तेनुं शुं कारण?—कालिकपुत्र—पूर्वतप.—मेधिल स्थविर—पूर्वसंयम.—आनंदरक्षित—कर्मिका.—काश्यप स्थविर—संगिका.—श्रावकोनुं प्रतिगमन अने स्थविरोनो विहार.—श्रीइंद्रभूति अनगार.—तेओनु तप अने पारणुं.—भिक्षा माटे जवुं.—तेओने स्थविरोनी वात सांभळी थयेलुं कौतुक.—भिक्षाथी पाछा फर्या पछी, थयेल कौतुकनुं श्रीमहावीरने निवेदन अने खुलासो.—साधुसेवानुं शुं फळ?—शास्त्रश्रवण.—तेनु शुं फळ?—ज्ञान.—तेनु शुं फळ?—विज्ञान.—तेनुं शुं फळ?—पच्चक्खाण.—तेनुं शुं फळ?—संयम.—संयमनुं शुं फळ?—अनाश्रव.—अनाश्रवनुं शुं फळ?—तप.—तेनुं शुं फळ?—व्यवदान.—तेनुं शुं फळ?—अक्रिया.—तेनु शुं फळ?—सिद्धि.—राजगृहना कुंड संबंधे अन्यतीर्थिकनो मत अने श्रीमहावीरनो मत.—उद्देशकसमाप्ति.—

२४. प्र०—*अन्नउत्थिया णं भंते! एवं आइक्खंति, भासंति, पन्नवेंति, परूवेंति, तं एवं खलु नियंठे कालगए समाणे देवब्भूएणं अप्पाणेणं से णं तत्थ णो अन्ने देवे, नो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अहिजुंजिय, अहिजुंजिय परियारेइ; णो अप्पिणिच्चियाओ देवीओ अहिजुंजिय अभिजुंजिय परियारेइ; अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय, विउव्विय परियारेइ; एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो वेदं वेदेइ, तं जहाः–इत्थिवेदं, पुरिसवेदं च; एवं परउत्थियवत्तव्वया नेयव्वा, जाव–इत्थिवेदं च, पुरिसवेदं च; से कहमेयं भंते! एवं!*

२४. प्र०—हे भगवन्! अन्यतीर्थिको आ प्रमाणे कहे छे, भाषे छे, जणावे छे अने प्ररूपे छे के, "कोइ पण निर्ग्रंथ मर्या पछी देव थाय अने ते देव, त्यां बीजा देवो साथे के बीजा देवोनी देवीओ साथे परिचारणा करतो–विषयसेवन करतो–नथी. तेम ज पोतानी देवीओने वश करीने तेओनी साथे पण परिचारणा करतो नथी, पण ते देव, पोते ज पोतानां नवां बे रूप करे छे. तेमां एक रूप देवनुं अने बीजुं रूप देवीनुं होय छे अने ते प्रमाणे बे रूप बनावी ते देव (कृत्रिम) देवी साथे परिचारणा करे छे. ए प्रमाणे एक जीव एक ज काळे बे वेदने अनुभवे छे. ते आ प्रमाणे:–पुरुषवेद अने स्त्रीवेद. ए प्रमाणे परतीर्थिकनी वक्तव्यता कहेवी अने ते यावत्–स्त्रीवेद अने ते पुरुषवेद." हे भगवन्! ए ते ए प्रमाणे केम बने?

---

१. मूलच्छायाः—अन्ययूथिका भगवन्! एवम् आख्यान्ति, भाषन्ते, प्रज्ञापयन्ति, प्ररूपयन्ति–तद् एवं खलु निर्ग्रन्थः कालगतः सन् देवभूतेन आत्मना [illegible] तत्र नो अन्यान् देवान्, नो अन्येषां देवानां देवीः अभियुज्य, अभियुज्य परिचारयति; नो आत्मीया देवीः अभियुज्य, अभियुज्य परिचारयति; आत्मना [illegible] आत्मानं विकुर्व्य, विकुर्व्य परिचारयति; एकोऽपि च जीव एकेन समयेन द्विवेदं वेदयति, तद्यथाः—स्त्रीवेदं च, पुरुषवेदं च; एवं परयूथिकवक्तव्यता [illegible], यावत्–स्त्रीवेदं च पुरुषवेदं च; तद् कथमेतद् भगवन् एवम्?

२. [illegible] एक काळे बे क्रिया करे छे' एवा आशयना सूत्रक (२६५ मो अने १२५ मो प्रश्न) पण बे [illegible] आव्या छे अने आ वात पण तेवा ज [illegible] —अनु०

२४. उ०—गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवं आइक्खंति, जाव–इत्थिवेदं च, पुरिसवेदं च. जे ते एवं आहिंसु, मिच्छं ते एवं आहिंसु. अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, भासामि, पन्नवेमि, परूवेमि–एवं खलु णियंठे कालगए समाणे अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति महड्डिएसु, जाव–महाणुभावेसु, दूरगतीसु, चिरट्ठितीएसु. से णं तत्थ देवे भवइ महड्डिए, जाव–दस दिसाओ उज्जोवेमाणे, पभासेमाणे जाव–पडिरूवे. तत्थ णं से अन्ने देवे, अन्नेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय, अभिजुंजिय परियारेइ; अप्पणिच्चियाओ देवीओ अभिजुंजिय, अभिजुंजिय परियारेइ; नो अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विय, विउव्विय परियारेइ; एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहाः—इत्थिवेदं वा, पुरिसवेदं वा; जं समयं इत्थिवेयं वेएइ णो तं समयं पुरिसवेदं वेदेइ, जं समयं पुरिसवेयं वेएइ नो तं समयं इत्थिवेयं वेदेइ, इत्थिवेयस्स उदएणं नो पुरिसवेयं वेएइ, पुरिसवेयस्स उदयेणं नो इत्थिवेयं वेएइ, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं वेदं वेदेइ, तं जहाः—इत्थीवेयं वा, पुरिसवेयं वा. इत्थी, इत्थिवेएणं उदिण्णेणं पुरिसं पत्थेइ. पुरिसो, पुरिसवेएणं उदिण्णेणं इत्थिं पत्थेइ. दो वि ते अण्णमण्णं पत्थेंति. तं जहा—इत्थी वा पुरिसं, पुरिसे वा इत्थिं.

२४. उ०—हे गौतम ! जे ते अन्यतीर्थिको ए प्रमाणे [illegible] यावत्–स्त्रीवेद अने पुरुषवेद. ते अन्यतीर्थिकोए जे ए प्रमाणे [illegible] छे ते खोटुं कह्युं छे. वळी हे गौतम ! हुं तो आ प्रमाणे [illegible] भाखुं छुं, जणावुं छुं अने प्ररूपुं छुं के कोइ पण निर्ग्रन्थ [illegible] पछी कोइ एक देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे, जे देवलोको मोटी ऋद्धिवाळा, यावत्–मोटा प्रभाववाळा, दूर जवानी शक्तिवाळा देवोवाळा अने लांबी आवरदावाळा होय छे. एवा देवलोकोमां जइने ते निर्ग्रंथ मोटी ऋद्धिवाळो अने यावत्–दशे दिशाने अजवाळतो, शोभावतो, यावत्–अत्यंत देखावडो देव थाय छे अने त्यां ते देव बीजा देवो साथे तथा बीजा देवनी देवीओ साथे तेओने वश करीने परिचारणा करे छे अने पोतानी देवीओने वश करीने तेओनी साथे पण परिचारणा करे छे. पण पोते पोतानां बे रूप बनावीने परिचारणा करतो नथी. (कारण के) एक जीव एक समये एक वेदने अनुभवे छे. ते आ प्रमाणेः—स्त्रीवेद, के पुरुषवेद. जे समये स्त्रीवेदने वेदे छे ते समये पुरुषवेदने नथी वेदतो. जे समये पुरुषवेदने वेदे छे ते समये स्त्रीवेदने नथी वेदतो. स्त्रीवेदना उदयथी पुरुषवेदने नथी वेदतो. पुरुषवेदना उदयथी स्त्रीवेदने नथी वेदतो. माटे एक जीव एक समये एक वेदने वेदे छे. ते आ प्रमाणेः—स्त्रीवेद, के पुरुषवेद. ज्यारे स्त्रीवेदनो उदय थाय त्यारे स्त्री पुरुषने प्रार्थे छे अने ज्यारे पुरुषवेदनो उदय थाय त्यारे पुरुष स्त्रीने प्रार्थे छे अर्थात् ते बन्ने परस्पर एक बीजाने प्रार्थे छे. ते आ प्रमाणेः—स्त्री पुरुषने प्रार्थे छे अने पुरुष स्त्रीने प्रार्थे छे.

१. अनन्तरम् इन्द्रियाणि उक्तानि, तद्वशाच्च परिचारणा स्याद् इति तन्निरूपणाय पञ्चमोद्देशकस्य इदम् आदिसूत्रम्—'अण्णउत्थिए' इत्यादि. 'देवब्भूएणं' ति देवभूतेन आत्मना करणभूतेन नो परिचारयति इति योगः. 'से णं' ति असौ निर्ग्रन्थदेवः, तत्र देवलोके, नो नैव, 'अन्ने' त्ति अन्यान् आत्मव्यतिरिक्तान् देवान् सुरान्, तथा नो अन्येषां देवानां संबन्धिनीर्देवीः 'अभिजुंजिय' त्ति अभियुज्य वशीकृत्य, आश्लिष्य वा, परिचारयति परिभुङ्क्ते. 'णो अप्पिणिच्चिआओ' त्ति आत्मीयाः, 'अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विअ' त्ति स्त्री-पुरुषरूपतया विकृत्य–एवं च स्थिते, 'एगे वि य णं' इत्यादि. 'परउत्थिअवत्तवया णेयव्व' त्ति एवं चेयं ज्ञातव्याः—"जं समयं इत्थिवेयं वेएइ तं समयं पुरिसवेयं वेएइ, जं समयं पुरिसवेयं वेएइ तं समयं इत्थिवेयं वेएइ, इत्थिवेयस्स वेयणाए पुरिसवेयं वेएइ पुरिसवेयस्स वेयणाए इत्थिवेयं वेएइ, एवं खलु एगे वि य णं" इत्यादि. मिथ्यात्वं च एषाम् एवम्—स्त्रीरूपकरणेऽपि तस्य देवस्य पुरुषत्वात् पुरुषवेदस्यैव एकत्र समये उदयः, न स्त्रीवेदस्य; वेदपरिवृत्त्या वा स्त्रीवेदस्यैव, न पुरुषवेदस्योदयः, परस्परविरुद्धत्वाद् इति. 'देवलोएसु' त्ति देवजनेषु मध्ये, 'उववत्तारो भवंति' त्ति प्राकृतशैल्या, उपपत्ता भवतीति दृश्यम्. 'महिड्डिए' इत्यत्र 'यावत्' करणाद् इदं दृश्यम्—"महज्जुइए, महाबले, महायसे, महासोक्खे, महाणुभागे, हारविराइअवच्छे, कडय–तुडियथंभियभुए" त्रुटिका बाहुरक्षिका, "अंगय–कुंडलमट्ठगंड–कण्णपीठधारी" अङ्गदानि बाह्वाभरणविशेषान्, कुण्डलानि कर्णाभरणविशेषान्, मृष्टगण्डानि चोल्लिखितकपोलानि, कर्णपीठानि क-

---

१. मूलच्छायाः—गौतम ! यत् ते अन्ययूथिका एवम् आख्यान्ति, यावत्–स्त्रीवेदं च, पुरुषवेदं चः यत् ते एवम् ऊचुः, मिथ्या ते एवम् ऊचुः. अहं पुनर्गौतम ! एवम् आख्यामि, भाषे, प्रज्ञापयामि, प्ररूपयामि–एवं खलु निर्ग्रन्थः कालगतः सन् अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्ता भवति महर्धिकेषु, यावत्–महाऽनुभावेषु, दूरगतिषु, चिरस्थितिषु. स तत्र देवो भवति महार्धिको यावत्–दश दिश उद्द्योतयन्, प्रभासयन्, यावत्–प्रतिरूपः, तत्र [illegible] अन्यान् देवान्, अन्येषां देवानां देवीः अभियुज्य, अभियुज्य परिचारयति; आत्मीयाः देवीः अभियुज्य; अभियुज्य परिचारयति; नो आत्मना एव आत्मानं विकुर्व्य, विकुर्व्य परिचारयति; एकोऽपि च जीव एकेन समयेन एकं वेदं वेदयति, तद्यथाः—स्त्रीवेदं वा, पुरुषवेदं वा; यं समयं स्त्रीवेदं वेदयति नो तं समयं पुरुषवेदम्, यं सयमं पुरुषवेदं वेदयति नो तं समयं स्त्रीवेदं वेदयति; स्त्रीवेदस्य उदयेन नो पुरुषवेदं वेदयति, पुरुषवेदस्य उदयेन नो स्त्रीवेदं वेदयति; एवं खलु एको जीव एकेन समयेन एकं वेदं वेदयति, तद्यथाः—स्त्रीवेदं वा, पुरुषवेदं वा; स्त्री, स्त्रीवेदेन उदीर्णेन पुरुषं प्रार्थयते, पुरुषः, पुरुषवेदेन उदीर्णेन स्त्रीं प्रार्थयते, द्वौ अपि तौ अन्योन्यं प्रार्थयेते, तद्यथाः–स्त्री वा पुरुषम्, पुरुषो वा स्त्रियम्ः—अनु०

१. प्र० छायाः—यं समयं स्त्रीवेदं वेदयति तं समयं पुरुषवेदं वेदयति, यं समयं पुरुषवेदं वेदयति तं समयं स्त्रीवेदं वेदयति, स्त्रीवेदस्य [illegible] पुरुषवेदं वेदयति, पुरुषवेदस्य वेदनया स्त्रीवेदं वेदयति, एवं खलु एकोऽपि च. २. महाद्युतिकः, महाबलः, [illegible] हारविराजितवक्षाः, कटक–त्रुटिकास्तम्भितभुजः. ३. अङ्गद–कुण्डल[illegible]–कर्णपीठधारीः—अनु०

[illegible] धारयतीत्येवं शीलो यः स तथा, *"विचित्तहत्थाभरणे, विचित्तमालामउलिमउडे,"* विचित्रमाला च कुसुमस्रक्, मौलौ [illegible], मुकुटं च यस्य स तथा, इत्यादि यावत्–*"रिद्धीए, जुईए, पभाए, छायाए, अच्चीए, तेएणं, लेसाए, दस दिसाओ उज्जोएमाणे"* त्ति [illegible]: परिवारादिका, युतिरिष्टार्थसंयोगः, प्रभा यानादिदीप्तिः, छाया शोभा, अर्चिः शरीरस्थरत्नादितेजोज्वाला, तेजः शरीरार्चिः, [illegible] देहवर्णः, एकार्था वैते; उद्योतयन् प्रकाशकरणेन, *'पभासेमाणे'* त्ति प्रभासयन् शोभयन्. इह 'यावत्' करणाद् इदं दृश्यम्– *"[illegible]"* द्रष्टूणां चित्तप्रसादजनकः, *"दरिसणिज्जे"* यं पश्यच्चक्षुर्न श्राम्यति, *"अभिरूवे"* मनोज्ञरूपः, *"पडिरूवे"*त्ति द्रष्टारं द्रष्टारं [illegible] यस्य स तथेति. एकेन एकदा एक एव वेदो वेद्यते, इह कारणम् आहः—*'इत्थी इत्थिवेएणं'* इत्यादि.

१. आगळना प्रकरणमां इंद्रियो विषे हकीकत कही छे. जो ते इंद्रियो होय तो परिचारणा–विषयविलास–थइ शके छे माटे हवे परिचारणा संबंधी हकीकत जणाववा माटे पांचमा उद्देशकनुं आ आदिसूत्र छेः–['अण्णउत्थिए' इत्यादि.] ['देवब्भूएणं' ति] मरीने देव थएल निर्ग्रंथ, देवत्ववाळा आत्मावडे परिचारणा करतो नथी, एम संबंध करवो. ['से णं' ति] ए निर्ग्रंथरूप देव, ते देवलोकमां पोताथी ['अन्ने' त्ति] जूदा देवोने तथा बीजा देवोनी देवीओने ['अभिजुंजिय'त्ति] वश करीने के आलिंगीने परिचारणा–परिभोग–करतो नथी. ['णो अप्पिणिच्चिआओ' त्ति] पोतानी देवीओ साथे विलास करतो नथी. पण ['अप्पणामेव अप्पाणं विउव्विअ' त्ति] पोते पोताने ज स्त्री अने पुरुषरूपे बनावीने विलास करे छे. ज्यारे एम छे त्यारे ['एगे वि य णं' इत्यादि.] अर्थात् ['परउत्थिअवत्तव्वया णेयव्व'त्ति] परतीर्थिकनी वक्तव्यता कहेवी. ते आ प्रमाणे छेः–"जे समये स्त्रीवेदने वेदे छे ते समये पुरुषवेदने वेदे छे अने जे समये पुरुषवेदने वेदे छे ते समये स्त्रीवेदने वेदे छे. स्त्रीवेदने वेदवाथी पुरुषवेद वेदाय छे अने पुरुषवेदने वेदवाथी स्त्रीवेद वेदाय छे अने ए प्रमाणे एक पण जीव एक काळे बे वेदने वेदे छे"इत्यादि. तेओनुं आ कथन जुठुं छे अने तेनी जुठाइ आ प्रमाणे छेः–ते देव पुरुषरूपे होवाथी तेने एक काळे पुरुषवेदनो ज उदय होइ शके छे, पण स्त्रीवेदनो उदय थाय ते असंभवतुं छे. ज्यारे ते देव स्त्रीनुं रूप धारण करे छे त्यारे तेने स्त्रीवेदनो ज उदय होइ शके छे, पण पुरुषवेदनो उदय थाय ते अणघटतुं छे. ते बे वेदो एक ज काळे एक जीवने उदयमां होइ शकता नथी, कारण के ते बन्ने वेदो परस्पर एक बीजा विरुद्ध छे. जे बे वस्तुओ परस्पर विरुद्ध होय छे ते निरपेक्षपणे एक काळे एक ज ठेकाणे रही शकती नथी. जेम अंधारुं अने अजवाळुं. ['देवलोएसु'त्ति] देवलोकोमां ['उववत्तारो भवंति' त्ति] उत्पन्न थाय छे. ['महिड्डिए'त्ति] मोटी ऋद्धिवाळो, अहीं 'यावत्' शब्द मूकेलो होवाथी आ प्रमाणे जाणवुंः–"मोटी द्युतिवाळो, मोटा बळवाळो, मोटी कीर्तिवाळो, मोटा सुखवाळो, मोटा सामर्थ्यवाळो, हारथी शोभता हैयावाळो, कडां अने बहेरखांथी शणगारेल हाथवाळो, हाथनां घरेणांने अने काननां कुंडलोने धारण करनार, चळकता गालवाळो तथा कर्णपीठ–एक जातनां काननां घरेणांने पहेरनार, वळी विचित्र हस्ताभरणवाळो, मस्तक उपर विचित्र माला (फुलनी माला) अने मुकुटने पहेरनार, वळी ऋद्धिवडे, युतिवडे, प्रभावडे, छायावडे, अर्चिवडे, तेजवडे अने लेश्यावडे दशे दिशाने पोताना प्रकाशवडे अजवाळतो. ऋद्धि परिवार वगेरे. इच्छित वस्तुनो संयोग ते युति. वाहन वगेरेनी शोभा ते प्रभा. शोभा ते छाया. शरीर उपर रहेल रत्न वगेरेना तेजनो चळकाट ते अर्चि. शरीरनो चळकाट ते तेज. शरीरनो वर्ण ते लेश्या. अथवा ए बधा शब्दो समान अर्थवाळा छे. ['पभासेमाणे' त्ति] दिशाओने शोभावतो. अहीं 'यावत्' शब्द मूकेलो होवाथी. आ प्रमाणे जाणवुंः–ते देव जोनारना चित्तने प्रसन्नता पमाडे तेवो छे, तेने वारंवार जोतां पण आंख थाकती नथी. तेनुं रूप मनने गमे तेवुं छे अने तेनुं रूप दरेक जोनारनी आंखे तरे छे एवो ए देव छे. मूळ वात ए छे के, एक जीव एक काळे एक ज वेदने अनुभवे छे. तेनुं कारण कहे छे केः–['इत्थी इत्थिवेएणं' इत्यादि.]

देवनी स्त्री विषे अन्यतीर्थिकोनो विचार.

एक काळे बे अनुभव.

तेनी असत्यता.

एक काळे एक अनुभव.

गर्भविचार.

२५. प्र०—*उदगगब्भे णं भंते! 'उदगगब्भे'त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?*

२५. उ०—*गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा.*

२६. प्र०—*तिरिक्खजोणियगब्भे णं भंते! 'तिरिक्खजोणियगब्भे' त्ति कालओ केवच्चिरं होई?*

२६. उ०—*गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अट्ठ संवच्छराइं.*

२५. प्र०—हे भगवन्! उदकगर्भ ए केटला समय सुधी 'उदकगर्भ' रूपे रहे?

२५. उ०—हे गौतम! ते ओछामां ओछुं एक समय सुधी अने वधारेमां वधारे छ महिना सुधी 'उदकगर्भ'रूपे रहे.

२६. प्र०—हे भगवन्! तिर्यग्योनिकगर्भ ए केटला समय सुधी 'तिर्यग्योनिकगर्भ'रूपे रहे?

२६. उ०—हे गौतम! ते ओछामां ओछुं अंतर्मुहूर्त सुधी अने वधारेमां वधारे आठ वरस सुधी 'तिर्यग्योनिकगर्भ'रूपे रहे.

---

१. प्र० छायाः—विचित्रहस्ताभरणः, विचित्रमालामौलिमुकुटः. २. ऋद्ध्या, युत्या, प्रभया, छायया, अर्चिषा, तेजसा, लेश्यया दश दिश उद्योतयन्. ३. [illegible]. ४. दर्शनीयः. ५. अभिरूपः. ६. प्रतिरूपः–अनु०

१. [illegible]थी एक वचनने बदले बहुवचन थयुं छेः–श्रीअभय०

२. आ [illegible] पृ–१६१ थी १६८ सुधी जुओः–अनु०

१. [illegible]—उदकगर्भो भगवन्! 'उदकगर्भ' इति कालतः कियच्चिरं भवति? गौतम! जघन्येन एकः समयम्, उत्कृष्टेन षण्मासान्. तिर्यग्योनिकगर्भो [illegible] कियच्चिरं भवति? गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन अष्ट संवत्सराणि—अनु०

२७. प्र०—मणुस्सीगब्भे णं भंते ! 'मणुस्सीगब्भे' त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

२७. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं.

२८. प्र०—कायभवत्थे णं भंते ! 'कायभवत्थे' त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

२८. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउवीसं संवच्छराइं.

२९. प्र०—मणुस्स-पंचेंदियतिरिक्खजोणियबीए णं भंते ! जोणियब्भूए केवतियं कालं संचिट्ठइ ?

२९. उ०—गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता.

३०. प्र०—एगजीवे णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइयाणं पुत्तत्ताए हव्वं आगच्छइ ?

३०. उ०—गोयमा ! जहन्नेणं इक्कस्स वा, दोण्हं वा, तिण्णि वा; उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्स जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वं आगच्छंति.

३१. प्र०—एगजीवस्स णं भंते ! एगजीवभवग्गहणेणं केवइया जीवा पुत्तत्ताए हव्वं आगच्छंति ?

३१. उ०—गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा; उक्कोसेणं सयसहस्सपुहुत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वं आगच्छइ.

३२. प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ, जाव—हव्वं आगच्छइ?

३२. उ०—गोयमा ! इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ. ते दुहओ सिणेहं संचिणंति, संचिणित्ता तत्थ णं जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा; उक्कोसेणं सयसहस्सपुहुत्तं जीवा णं पुत्तत्ताए हव्वं आगच्छइ, से तेणट्ठेणं जाव—हव्वं आगच्छइ.

३३. प्र०—मेहुणेणं भंते ! सेवमाणस्स केरिसिए असंजमे कज्जइ ?

३३. उ०—गोयमा ! से जहा नामए केई पुरिसे रूयनालियं वा, बूरनालियं वा तत्तेणं कणएणं समविद्धंसेज्जा, एरिसएणं गोयमा ! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमे कज्जइ.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! जाव—विहरइ.

२७. प्र०—हे भगवन् ! मनुषीगर्भ ए केटला [illegible] सुधी 'मनुषीगर्भ' रूपे रहे ?

२७. उ०—हे गौतम ! ते ओछामां ओछुं अंतर्मुहूर्त सुधी अने वधारेमां वधारे बार वरस सुधी 'मनुषीगर्भ' रूपे रहे.

२८. प्र०—हे भगवन् ! कायभवस्थ ए केटला समय सुधी 'कायभवस्थ' रूपे रहे ?

२८. उ०—हे गौतम ! ते ओछामां ओछुं अंतर्मुहूर्त सुधी अने वधारेमां वधारे चोवीश वरस सुधी 'कायभवस्थ' रूपे रहे.

२९. प्र०—हे भगवन् ! मनुषी अने पंचेंद्रिय तिर्यंचणी संबंधी योनिगत बीज (वीर्य) ते केटला काळ सुधी 'योनिभूत' रूपे रहे ?

२९. उ०—हे गौतम ! ते ओछामां ओछुं अंतर्मुहूर्त सुधी अने वधारेमां वधारे बार मुहूर्त सुधी 'योनिभूत' रूपे रहे.

३०. प्र०—हे भगवन् ! एक जीव एक भवमां केटला जणनो पुत्र (शीघ्र) थाय ?

३०. उ०—हे गौतम ! एक जीव ओछामां ओछो एक जणनो, बे जणनो के त्रण जणनो अने वधारेमां वधारे बसेंथी नवसें जणनो (जीवोनो) पुत्र थाय.

३१. प्र०—हे भगवन् ! एक जीवने एक भवमां केटला पुत्रो (शीघ्र) थाय ?

३१. उ०—हे गौतम ! ओछामां ओछा एक, बे के त्रण अने वधारेमां वधारे बेथी नव लाख जेटला पुत्र थाय.

३२. प्र०—हे भगवन् ! तेम थवानुं शुं कारण ?

३२. उ०—हे गौतम ! स्त्री अने पुरुषने कर्मकृत (कामोत्तेजित) योनिमां 'मैथुनवृत्तिक' नामनो संयोग उत्पन्न थाय छे. त्यार पछी ते बन्ने वीर्य अने लोहीनो संबंध करे छे अने पछी तेमां ओछामां ओछा एक, बे के त्रण अने वधारेमां वधारे बेथी नव लाख सुधी जीव पुत्र तरीके (शिघ्र) उत्पन्न थाय छे. हे गौतम ! ते माटे पूर्वप्रमाणे कह्युं छे.

३३. प्र०—हे भगवन् ! मैथुनने सेवता मनुष्यने केवा प्रकारनो असंयम होय ?

३३. उ०—हे गौतम ! जेम कोइ एक पुरुष होय अने ते तपावेल सोनाना सरीयावडे रूनी नळीने के बूरनी नळीने बाळी नाखे. हे गौतम ! तेवा प्रकारनो मैथुनने सेवता मनुष्यने असंयम होय.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही यावत्—विहरे छे.

---

१. मूलच्छायाः—मनुष्यगर्भो भगवन् ! 'मनुष्यगर्भ' इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन द्वादश संवत्सराणि. कायभवस्थो भगवन् ! 'कायभवस्थ' इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन चतुर्विंशतिं संवत्सराणि. मनुष्य-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकबीजं भगवन् ! योनिकभूतं कियन्तं कालं संतिष्ठते ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टेन द्वादश मुहूर्तान्. एकजीवो भगवन् ! एकभवग्रहणेन कियतां पुत्रतया शीघ्रम् आगच्छति ? गौतम ! जघन्येन एकस्य वा, द्वयोर्वा, त्रयाणां वा; उत्कर्षेण [illegible] जीवानां पुत्रतया शीघ्रम् आगच्छति. एकजीवस्य भगवन् ! एकजीवभवग्रहणेन कियन्तो जीवाः पुत्रतया शीघ्रम् आगच्छन्ति ? गौतम ! जघन्येन एको वा, द्वौ वा, त्रयो वा; उत्कर्षेण शतसहस्रपृथक्त्वं जीवाः पुत्रतया शीघ्रम् आगच्छन्ति. तत् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवम् उच्यते, यावत्—शीघ्रम् आगच्छति ? गौतम ! स्त्रियाः पुरुषस्य च कर्मकृतायां योन्यां मैथुनवृत्तिको नाम संयोगः समुत्पद्यते. तौ द्विधा स्नेहं संचिनुतः, संचित्य तत्र जघन्येन एको वा, द्वौ वा, त्रयो वा; उत्कृष्टेन शतसहस्रपृथक्त्वं जीवाः पुत्रतया शीघ्रम् आगच्छन्ति, तत् तेनाऽर्थेन यावत्—शीघ्रम् आगच्छन्ति. मैथुनेन भगवन् ! सेवमानस्य कीदृशः असंयमः क्रियते ? गौतम ! तद् यथा नाम कोऽपि पुरुषो रूतनालिकां वा, बूरनालिकां वा तप्तेन कनकेन समभिध्वंसेत्, ईदृशो गौतम ! मैथुनं सेवमानस्य असंयमः क्रियते. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! यावत्—विहरति—अनु०

२. परिचारणायां किल गर्भः स्यात्, इति गर्भप्रकरणम्. तत्र 'उदगगब्भे णं' क्वचिद् 'दगगब्भे णं' ति दृश्यते, तत्र उदकगर्भः कालान्तरेण जलप्रवर्षणहेतुः पुद्गलपरिणामः. तस्य च अवस्थानं जघन्यतः समयः, समयाऽनन्तरमेव प्रवर्षणात्, उत्कृष्टतस्तु षण्मासान् षण्णां मासानाम् उपरि वर्षणात्. अयं च मार्गशीर्ष—पौषादिषु वैशाखान्तेषु सन्ध्याराग—मेघोत्पादादिलिङ्गो भवति. यदाहः—"पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः नाऽत्यर्थं मार्गशिरे शीतं पौषेऽतिहिमपातः" इत्यादि. *'कायभवत्थे णं भंते !'* इत्यादि. काये जननीजठरमध्यव्यवस्थितनिजदेहे एव यो भवो जन्म स कायभवः, तत्र तिष्ठति यः स कायभवस्थः. स च 'कायभवस्थ' इति एतेन पर्यायेण [illegible]. *'चउवीसं संवच्छराइं'* ति स्त्रीकाये द्वादश वर्षाणि स्थित्वा, पुनर्मृत्वा तस्मिन् एव आत्मशरीरे उत्पद्यते द्वादशवर्षस्थितिकतया, इत्येवं चतुर्विंशतिवर्षाणि भवन्ति. केचिदाहुः—"द्वादश वर्षाणि स्थित्वा पुनस्तत्रैवाऽन्यबीजेन तच्छरीरे उत्पद्यते, द्वादशवर्षस्थितिरिति. *'एगजीवे णं भंते !'* इत्यादि. मनुष्याणाम्, तिरश्चां च बीजं द्वादश मुहूर्तान् यावत्—योनिभूतं भवति, ततश्च गवादीनां शतपृथक्त्वस्याऽपि बीजं गवादियोनिप्रविष्टं बीजम् एव, तत्र च बीजसमुदाये एकी जीव उत्पद्यते, स च तेषां बीजस्वामिनां सर्वेषां पुत्रो भवति इति. अत उक्तम्—*'उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्स'* ति. *'सयसहस्स—पुहुत्तं'* ति मत्स्यादीनामेकसंयोगेऽपि शतसहस्रपृथक्त्वं गर्भे उत्पद्यते, निष्पद्यते च इति एकस्य एकभवग्रहणे लक्षपृथक्त्वं पुत्राणां भवति इति. मनुष्ययोनौ पुनरुत्पन्ना अपि बहवो न निष्पद्यन्ते इति. *'इत्थीए पुरिसस्स य'* इत्येतस्य *'मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ'* इत्यनेन संबन्धः. कस्यामसौ उत्पद्यते ? इत्याह—*'कम्मकडाए जोणीए'* त्ति नामकर्मनिर्वर्तितायां योनौ अथवा कर्म मदनोद्दीपको व्यापारः, तत्कृतं यस्यां सा कर्मकृता, अतस्तस्याम्. मैथुनस्य वृत्तिः प्रवृत्तिर्यस्मिन् असौ मैथुनवृत्तिकः मैथुनं वा प्रत्ययो हेतुर्यस्मिन्नसौ, स्वार्थिके कप्रत्यये मैथुनप्रत्ययिकः. *'नामं'* ति नाम—नामवतोरभेदोपचाराद् एतन्नामेत्यर्थः संयोगः—संपर्कः, ते इति स्त्रीपुरुषौ *'दुहओ'* त्ति उभयतः स्नेहं रेतः—शोणितलक्षणं संचिनुतः संबन्धयतः. *'मेहुणवत्तिए नामं संजोए'* त्ति प्रागुक्तम्, अथ मैथुनस्यैवाऽसंयमहेतुताप्ररूपणसूत्रम्—*'रूयनालिअं व'* त्ति रूतं कार्पासविकारः, तद्भृता नालिका शुषिरवंशादिरूपा—रूतनालिका, ताम्. एवं बूरनालिकामपि, नवरम्—बूरं वनस्पतिविशेषावयवविशेषः. *'समभिधंसेज'* त्ति रूतादिसमभिध्वंसनात्. इह चायं वाक्यशेषो दृश्यः—एवं मैथुनं सेवमानो योनिगतसत्त्वान् मेहनेनाभिध्वंसयेत्, एते च किल ग्रन्थान्तरे "पञ्चेन्द्रियाः श्रूयन्ते" इति. *'एरीसिएणं'* इत्यादि च निगमनमिति.

२. परिचारणा करवाथी ज गर्भ रहे छे माटे हवे गर्भ संबंधी प्रकरण शरु थाय छे. तेमां आ सूत्र छेः—['उदगगब्भे णं'] कोइ पुस्तकमां ['दगगब्भे णं'] एवो पाठ छे. काळांतरे पाणी वरसवामां हेतुरूप जे पुद्गलनो परिणाम ते 'उदकगर्भ' कहेवाय. तेनुं अवस्थान जघन्ये एक समय सुधी होय छे, कारण के ते एक समय रह्या पछी तुरत ज वरसे छे. अने तेनुं वधारेमां वधारे अवस्थान छ मास सुधी होय छे, कारण के ते छ मास पछी वरसे छे. मागशर, पोष अने वैशाख सुधीना महिनाओमां देखातो संध्यानो रंग तथा मेघनो उत्पाद (वरसाद) वगेरे, ए उदकगर्भनां निशानो छे. कह्युं छे केः—

केटला वखत सुधी उदकगर्भ छे ? एक समय अने छ मास.

१. श्रीस्थानांग नामना त्रीजा अंगमां मूळमां तथा टीकामां 'उदकगर्भ' संबंधे आ प्रमाणे हकीकत छेः—

"चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता. तं जहाः—उस्सा, महिआ, सीआ, उसिणा. चत्तारि उदगगब्भा पण्णत्ता. तं जहाः—हेमगा, अब्भसंघडा, सीओसिणा, पंचरूविआ. सिलोगो—माहे उ हेमगा गब्भा, फग्गुणे अब्भसंघडा, सीओसिणाओ य चित्ते, वइसाहे पंचरूविआ."—(स्थानांगसूत्र क० आ० पृ० २१९–२४०) 'दगगब्भे' त्ति दकस्य उदकस्य गर्भा इव गर्भा दकगर्भाः—कालान्तरे जलवर्षणस्य हेतवः—तत्संसूचका इति तत्त्वम्. अवश्यायः क्षपाजलम्, महिका धूमिका, शीतानि आत्यन्तिकानि, एवम् उष्णो घर्मः, एते हि यत्र दिने उत्पन्नाः, तस्माद् उत्कर्षेण अव्याहताः सन्तः षड्भिः मासैः उदकं प्रसुवते. अन्यैः पुनरेवमुक्तम्:—"पवना–ऽभ्र–वृष्टि–विद्युद्–गर्जित–शीतो–ष्ण–रश्मि–परिवेषाः, जलमत्स्येन सहोक्ताः दशधा चाम्बुप्रजनहेतुः." तथा—शीतवाताश्च बिन्दुश्च गर्जितं परिवेषणम्, सर्वगर्भेषु शंसन्ति निर्ग्रन्थाः साधुदर्शनाः. तथा—सप्तमे सप्तमे मासे सप्तमे सप्तमेऽहनि, गर्भाः पाकं नियच्छन्ति यादृशास्तादृशं फलम्. हिमं तुहिनम्, तदेव हिमकम्—तस्यैते हैमकाः—हिमपातरूपा इत्यर्थः. 'अब्भसंघड' त्ति अभ्रसंस्तृतानि मेघैः आकाशच्छादनानि इत्यर्थः. आत्यन्तिके शीतोष्णे, पञ्चानां रूपाणां गर्जित–विद्युद्–जल–वात–ऽभ्रलक्षणानां समाहारः पञ्चरूपम्—तदस्ति येषां ते पञ्चरूपिका उदकगर्भाः. इह मतान्तरमेवम्—"पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः, नात्यर्थं मार्गशिरे शीतं पौषेऽतिहिमपातः. माघे प्रबलो वायुः तुषारकलुषद्युती रवि–शशाङ्कौ, अतिशीतं सघनस्य च भानोरस्तोदयौ [illegible], फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽभ्रसंप्लवाः स्निग्धाः, परिवेषाश्च [illegible] कपिलताम्रो रविश्च शुभः. पवनघनवृष्टियुक्ताः चैत्रे गर्भाः शुभाः [illegible] [illegible] वैशाखे" इति.—(श्री-[illegible] क० आ० पृ० [illegible]).

"काळांतरे पाणीने वरसवामां जे निमित्तरूप होय ते 'दकगर्भ' के 'उदकगर्भ' कहेवाय. ते 'उदकगर्भ' चार प्रकारनो कह्यो छे. ते आ प्रमाणेः—ओस, धूमस, खूब ठंडक अने खूब तडको. आ चारमांनी कोइ वस्तु जे दिवसे थाय ते दिवसथी मांडीने वधारेमां वधारे छ मास पछी तो जरूर पाणीने वरसावे, जो ते अखंडित होय तो. वळी बीजाओए तो आम कह्युं छेः—"पाणीनी पेदाशमां दस जातनां निमित्त छेः—पवन, वादळां, वरसाद, विजळी, गाजवीज, ठंडक, गरमी, किरण, परिवेष—सूर्य अने चंद्रनी फरतुं मेघनुं कुंडाळुं—अने जलमाछलुं." वळी ठंडो पवन, बिंदु, गर्जना अने परिवेष; ए बधां बधी जातना गर्भोमां होय एम पवित्र निर्ग्रंथो कहे छे. तथा जेवा प्रकारना गर्भो सातमे सातमे महिने अने सातमे सातमे दिवसे पाक पामे छे तेवुं फळ मळे छे. वळी उदकगर्भो चार प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—हिमपात, वादळाओथी आकाशनुं घेरावुं, घणी ठंडी अने गरमी तथा गाजवुं, विजळी, पाणी, पवन अने वादळां; ए बधाओनुं साथे होवुं अर्थात् पंचरूपी—पांचरूपे—होवुं. महामासमां हिमपात, फागण मासमां वादळांनो घेरावो, चैत्र मासमां अत्यंत ठंडी अने गरमी तथा वैशाख मासमां पंचरूपी गर्भ होय छे. अहीं मतांतर आ प्रमाणे छेः—"मागशर अने पौष मासमां संध्यानो रंग थवो, परिवेष सहित मेघो, मागशर मासमां बहु ठंडक नहीं अने पौष मासमां घणो हिमपात थाय, महा मासमां प्रबळ पवन अने सूर्य तथा चंद्रनी कांतिनुं तुषारद्वारा कलुषित थवुं, अति ठंडक, मेघसहित सूर्यनुं उगवुं अने आथमवुं, फागण महिनामां लुखो चंड पवन, वादळांओनो स्निग्ध संप्लव, सकल परिवेषो, सूर्यनुं कपिल अने ताम्र (लाल) रंगे होवुं, चैत्र मासमां पवन अने [illegible] परिवेषवाळा गर्भो होय छे तथा वैशाख मासमां [illegible] [illegible] [illegible] छे."—([illegible], [illegible] क० आ० पृ० [illegible])—अनु०

कायभवस्थ.

चोवीश वर्ष.

मनुष्य अने तिर्यचना वीर्यमां बीजत्वशक्ति. बार मुहूर्त.

एक भवमां एक जीवना बसेंथी नवसें पिता अने बेथी नव लाख पुत्र.

मैथुनथी थतो असंयम.

"मागशर अने पोष महिनामां संध्यानो रंग थाय, मेघो कुंडाळावाळा देखाय, मागशर महिनामां बहु ठंड न पडे अने पोष महिनामां [illegible] (इत्यादि.) ए बधां उदकगर्भनां निशानो छे. ['कायभवत्थे णं भंते!' इत्यादि.] माताना पेटनी वच्चे रहेल गर्भनुं शरीर ते [illegible] कहेवाय. ते शरीरमां जे उत्पन्न थवुं ते 'कायभव' कहेवाय अने तेमां ज जे जन्म्यो होय ते 'कायभवस्थ' कहेवाय. ते [illegible] कायभवस्थरूपे ['चउवीसं संवच्छराइं' ति] चोवीश वर्ष सुधी रहे. ते, कया प्रकारे चोवीश वर्ष सुधी रहे छे? ते वातनो [illegible] करतां जणावे छे के, जेम कोइ एक जीव होय अने तेनुं शरीर गर्भमां रचाइ गयुं होय. पछी ते जीव, ते शरीरमां पोताना [illegible] उदरमां बार वर्ष सुधी रही, मरण पामी पाछो पोते रचेल तेना ते शरीरमां उत्पन्न थइ फरीने पाछो बार वर्ष सुधी रहे. अने ए प्रकारे ते चोवीश वर्ष सुधी कायाभवस्थरूपे रही शके छे. केटलाको कहे छे के,–"बार वर्ष सुधी रहीने, फरीने बीजा वीर्यवडे त्यां [illegible] शरीरमां बार वर्षनी स्थितियुक्त थइने जन्मे, ए रीते चोवीश वर्ष गणाय." ['एगजीवे णं भंते!' इत्यादि.] मनुष्यो अने तिर्यचोनुं वीर्य बार मुहूर्त सुधी योनिभूत गणाय छे, अर्थात् बार मुहूर्त सुधी ते वीर्यमां संतानोत्पादिका शक्ति रहे छे. ज्यारे एम छे त्यारे बार मुहूर्त जेटला काळमां गाय वगेरेनी योनिमां पडेलुं बसेंथी नवसें सांढ वगेरेनुं पण वीर्य, ते वीर्य ज गणाय अने ते वीर्यना समुदायमां जे एक जीव उत्पन्न थाय छे ते, ते बधा-ओनो (जेओनुं वीर्य योनिमां गएलुं छे) पुत्र कहेवाय. माटे ज कह्युं छे के, ['उक्कोसेणं सयपुहुत्तस्स' त्ति] ['सयसहस्सपुहुत्तं' ति] माछलां वगेरे ज्यारे एकवार संयोग करे छे त्यारे पण तेना गर्भमां बेथी नव लाख जीवो पुत्ररूपे उत्पन्न थाय छे अने जन्म पण ले छे माटे एक जीवने एक भवमां बेथी नव लाख पुत्रो होइ शके छे. तथा मनुष्यस्त्रीनी योनिमां जो के घणा जीवो उत्पन्न थाय छे, पण तेओ जेटला उत्पन्न थाय छे तेटला बधा जन्मता नथी. ['इत्थीए पुरिसस्स य'] ए वाक्यनो ['मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ'] आ वाक्य साथे संबंध करवो. ए संयोग क्यां उत्पन्न थाय छे? तो कहे छे के, ['कम्मकडाए जोणीए' त्ति] नामकर्मथी बनेल योनिमां अथवा जेमां कामोत्तेजक क्रिया थइ छे ते योनिमां. मैथुनवृत्तिक एटले मैथु-ननी वृत्तिवाळो अथवा मैथुनप्रत्ययिक–मैथुनरूप हेतुवाळो.['नामं'ति] नाम अने नामवाळानो काल्पनिक रीते अभेद पण होइ शके छे माटे ते 'संयोग' नुं नाम 'मैथुनवृत्तिक' के 'मैथुनप्रत्ययिक' कह्युं छे. संयोग एटले संपर्क–संबंध. ते बन्ने–स्त्री अने पुरुष–उभयतः वीर्य अने लोहीनो संबंध करे छे' आगळना सूत्रोमां ['मेहुणवत्तिए नामं संजोए' त्ति] 'मैथुनवृत्तिक' के 'मैथुनप्रत्ययिक' नामनो संयोग थाय छे एम कह्युं छे माटे हवे मैथुनमां ज रहेलुं असंयमनुं हेतुपणुं प्ररूपवा आ सूत्र कहे छेः–['रूयनालिअं व' त्ति] रूतनालिका एटले जेमां रू भरेलुं छे तेवी पोला वांसडा वगेरेनी नळी ते–तेने, ए प्रमाणे बूरनालिका संबंधे पण समजवुं. विशेष ए के, बूर एटले एक जातनी वनस्पतिनो एक जातनो भाग. ['समभिधंसेज्ज' त्ति] रू वगेरेनो नाश करवाथी तेनो ध्वंस करे. अहीं आ प्रमाणेनुं वाक्य अध्याहृत जाणवुंः–ए प्रकारे मैथुनने सेवतो पुरुष पोताना मेहन–पुश्चिह्न–द्वारा योनिमां रहेल जीवोनो नाश करे छे. "ते जीवो पांच इंद्रियवाळा छे" एवी वात बीजा ग्रंथमां संभळाय छे. ['एरिसिएणं' इत्यादि.] ए उपसंहारसूत्र छे.

तुंगिका अने राजगृह नागरमां प्रश्नोत्तर.

३४.—तैए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नगराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमइत्ता बहिया ज-णवयविहारं विहरइ. ते णं काले णं, ते णं समए णं, तुंगिया नामं नयरी होत्था. वण्णओ. तीसे णं तुंगियाए नयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवतीए नामं चेइए होत्था. वण्णओ. तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति, अड्ढा, दित्ता, वित्थिन्न–विपुलभवण–सयणा–ऽऽसण–जाण-वाहणाइण्णा, बहुधण-

३४.—त्यार पछी श्रमण भगवंत महावीर राजगृह नगरथी, गुण-शिलक नामना चैत्यथी नीकळी बहार जनपदविहारे विहरे छे. ते काळे, ते समये तुंगिका नामनी नगरी हती. वर्णक. ते तुंगिका नगरीनी बहार–उत्तर अने पूर्वना दिग्भागमां पुष्पवती नामनुं चैत्य हतुं. वर्णक. त्यां तुंगिका नगरीमां घणा श्रमणोपासको–श्रावको–रहेता हता. ते श्रमणोपासको आढ्य–अढळक धनवाळा अने देदीप्यमान हता. तेओनां रहेवानां भवनो–घरो–विशाळ अने घणां ऊंचां हतां. तथा तेओनी पासे शयनो–पथारीओ, आसनो, गाडां वगेरे

'मेघमाला' नामना संस्कृत ग्रंथमां पण 'उदकगर्भ' विषे नीचे प्रमाणे जणाव्युं छेः—

"सर्ववर्णास्तथा मेघा जायन्ते च पृथक् पृथक्, कार्तिके चैत्रमासे तु ईदृशं गर्भलक्षणम्. कार्तिके पुष्पनिष्पत्तिर्मार्गे स्नानं मतं किल, पौषे त्वत्र शुभो वातो नित्यं माघो घनान्वितः. फाल्गुनःफल्गुवातः स्यात् चैत्रे किंचित् पयोदितम्, वैशाखः पद्मरूपी च ज्येष्ठश्चोष्मान्वितः शुभः"–(मेघमाला, कर्ता विजयप्रभसूरि श्लोक–५–६–७).

"कार्तिक अने चैत्र मासमां बधा रंगवाळा मेघो जूदा जूदा पडी जाय ते 'उदकगर्भ'नुं निशान छे, कार्तिक महिनामां फुलनी उत्पत्ति, मागशरमां स्नान, पोष मासमां सुंदर वायु, महा मासमां वरसाद, फागण मासमां सुंदर पवन, चैत्र मासमां कांइक कांइक वादळां, वैशाख मासमां [illegible] हालत अने जेठ मासमां गरमी पडे" ए बधां 'उदकगर्भ' नां निशानो छे. –(मेघमाला, कर्ता विजयप्रभसूरि, श्लोक–५–६–७):—अनु॰

१. मूलच्छायाः–ततः श्रमणो भगवान् महावीरो राजगृहाद् नगरात्, गुणशिलकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये, तुङ्गिका नाम नगरी अभवत्. वर्णकः. तस्याः तुङ्गिकाया नगर्याः बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे पुष्पवती नाम चैत्यम्–अभवत्. वर्णकः. तत्र तुङ्गिकायां नगर्यां बहवः श्रमणोपासकाः परिवसन्ति, आढ्याः, दीप्ताः, विस्तीर्ण–विपुलभवन–शयना–ऽऽसन–यान–वाहनाऽऽकीर्णाः, बहुधन–:—अनु॰

१. आ तुंगिआ (तुंगिका) नगरी कये ठेकाणे छे ते माटे नीचेनी टुंकी हकीकत पण उपयोगी छेः–"असी कोस वळी तिहां बळी पाडलिपुर [illegible] तउ। ××× दस कोस नयरी तुंगिआ ए संप्रतिनाम विहार तउ।"–(श्रीसमेतशिखररास, पृ॰ ३–४, रा–रा–[illegible] बा॰) तात्पर्य ए के, बनारसथी (काशीथी) एंसी कोश दूर पाटलिपुर (पटणा) नामनुं शहेर छे अने त्यांथी दस कोस (गाउ) दूर तुंगिका नामनी नगरी छे. आ वात [illegible] आज ३११ वर्ष थयां छेः—अनु॰

[illegible]—रयया, आयोग—पयोगसंपउत्ता, विच्छड्डियविपुल-[illegible]—पाणा, बहुदासी—दास—गो—महिस—गवेलयप्पभूया, बहुज-णस्स अपरिभूया, अभिगयजीवा—ऽजीवा, उवलद्धपुण्ण—पावा, आसव—संवर—निज्जर—किरिया—ऽहिकरणबंध—मोक्खकुसला, अस-हेज्जदेवा—ऽसुर—नाग—सुवण्ण—जक्ख—रक्खस—किंनर—किंपुरुस—गरुल—गंधव्व—महोरगाईएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिया, निक्कंखिया, निव्वि-तिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ता, अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे. ऊसियफलिहा, अवंगुयदुवारा, चियत्तंतेउर-घरप्पवेसा, बहूहिं सीलव्वय—गुण—वेरमण—पच्चक्खाण-पोसहो—ववा-सेहिं चाउद्दस—ट्ठमु—दिट्ठ—पुण्णमासिणीसु परिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे निग्गंथे फासु—एसणिज्जेणं असण—पाण—खाइम—साइमेणं, वत्थ—पडिग्गह—कंबल—पायपुंछणेणं, पीढ—फलग-सेज्जा—संथारएणं, ओसह—भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहि-एहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति.

यानो अने बळद वगेरे वाहनो पुष्कळ हतां, तेओनी पासे धन, सोनुं अने रूपुं पण घणुं हतुं, तेओ व्याजनो व्यवसाय करी पैसाने बमणो, तमणो करवामां अने बीजी कळामां पण कुशळ हता, तेओने त्यां एठवाड घणो थतो हतो, कारण के तेओने घरे अनेक जणो भोजन करता हता, अथवा तेओने त्यां विविध प्रकारनां खाणां तथा पीणां हतां, तेओने त्यां अनेक चाकरो चाकरडिओ, गायो, पाडाओ अने घेटाओ रहेता हता, घणा माणसोथी पण तेओ गांज्या जाय तेवा न हता, तेओ जीव (चेतन) अने अजीव (जड) ने सारी रीते ओळखता हता, तेओने पुण्य अने पाप विषे ख्याल हतो, तेओ आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण बंध अने मोक्ष; एटलां बानामां कयुं ग्राह्य छे अने कयुं अग्राह्य छे ए सारी पेठे जाणता हता, तेओ कोइ पण कार्यमां बीजानी आशा उपर निर्भर न हता, अथवा तेओ निर्ग्रंथना प्रवचनमां एवा तो चुस्त हता के समर्थ देवो, असुरो, नागो, ज्योतिष्को यक्षो, राक्षसो, किंनरो, किंपुरुषो, गरुडो—सुवर्णकुमारो, गंधर्वो अने महोरग वगेरे बीजा देवो पण तेओने निर्ग्रंथना प्रवचनथी कोइ रीते चळावी शकता नहीं, तेओ निर्ग्रंथना प्रवचनमां शंका अने विचिकित्सा विनाना हता, तेओए शास्त्रना अर्थोने मेळव्या हता, शास्त्रना अर्थोने चोकसतापूर्वक ग्रह्या हता, शास्त्रना अर्थोमां संदेहवाळां ठेकाणां पूछी निर्णीत कर्यां हतां, शास्त्रना अर्थोने अभिगम्या हता अने शास्त्रोना अर्थोनुं रहस्य तेओए निर्णयपूर्वक जाण्युं हतुं तथा तेओने निर्ग्रंथ प्रवचन उपरनो प्रेम हाडोहाड व्यापी गयो हतो, तेने लइने तेओ एम कहेता के—"हे चिरंजीव ! आ निर्ग्रंथनुं प्रवचन ए ज अर्थ अने परमार्थरूप छे अने बाकी बीजुं बधुं अनर्थरूप छे," वळी तेओनी उदारताने लीधे तेओना दरवाजाओनी पछवाडे रहेतो आगळिओ हमेशा उंचो ज रहेतो हतो अने तेओना दरवाजा हमेशाने माटे बधाने सारु उघाडा ज रहेता हता, वळी ते श्रावको जेने घरे के जेना अंतः—पुरमां जता तेओने प्रीति उपजावता, तथा शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषध अने उपवासोवडे चौदश, आठम, अमास तथा पूनमने दिवसे परिपूर्ण पौषधने सारी रीते आचरता तथा श्रमण निर्ग्रंथोने निर्दोष अने ग्राह्य खान, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कामळ, रजोहरण, पीठ—पाटियुं, शय्या, संथारो अने ओसड वेसड; ए बधुं आपी यथाप्रतिगृहीत तपकर्मवडे आत्माने भावता ते श्रावको विहरे छे.

---

१. मूलच्छाया:—बहुजातरूप—रजता:, आयोग—प्रयोगसंप्रयुक्ता:, विच्छर्दितविपुलभक्त—पाना:, बहुदासी—दास—गो—महिष—गवेलकप्रभूता:, बहुजनस्य अ-[illegible]:, अभिगतजीवा—ऽजीवा:, उपलब्धपुण्य—पापा:, आस्रव—संवर—निर्जर—क्रियाऽधिकरणबन्ध—मोक्षकुशला:, असहाय्यदेवा—ऽसुरनाग—सुवर्ण—यक्ष—रा-[illegible]—किंनर—किंपुरुष—गरुड—गान्धर्व—महोरगादिभि: देवगणै: नैर्ग्रन्थात् प्रावचनाद् अनतिक्रमणीया:, नैर्ग्रन्थे प्रावचने नि:शङ्किता:, निष्काङ्क्षिता:, निर्विचि-[illegible], लब्धार्था:, गृहीतार्था:, पृष्टार्था:, अभिगतार्था:, विनिश्चितार्था:, अस्थि—मज्जाप्रेमाऽनुरागरक्ता:, इदम् आयुष्मन् ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्—अर्थ:, इदम्—[illegible], शेषम् अनर्थ:, उच्छ्रितपरिघा:, अप्रावृतद्वारा:, त्यक्ताऽन्त:पुर—गृहप्रवेशा:, बहुभि: शीलव्रत—गुण—विरमण—प्रत्याख्यान—पौषधो—पवासै: चतुर्दशी—[illegible]—(अमावस्या)—पूर्णमासीषु प्रतिपूर्णं पौषधं सम्यग् अनुपालयन्त:, श्रमणान् निर्ग्रन्थान् प्रासुकै—षणीयेन अशन—पान—खादिम—स्वादिमेन, [illegible] पीठ—फलक—शय्या—संस्तारकेण, औषध—भैषज्येन प्रतिलाभयन्त: यथाप्रतिगृहीतै: तप:कर्मभि: आत्मानं [illegible]

ते णं काले णं, ते णं समये णं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना, कुलसंपन्ना बलसंपन्ना, रूवसंपन्ना, विणयसंपन्ना, णाणसंपन्ना, दंसणसंपन्ना, चरित्तसंपन्ना, लज्जासंपन्ना, लाघवसंपन्ना, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी; जिअकोहा, जिअमाणा, जिअमाया, जिअलोहा, जिअनिद्दा, जिइंदिया, जिअपरीसहा, जीविआसा–मरणभयविप्पमुक्का, जाव–कुत्तियावणभूआ; बहुस्सुया, बहुपरिवारा, पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा, गामाणुगामं दूइज्जमाणा, सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी, जेणेव पुप्फवईए चेइअे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, अहापडिरूवं ओग्गहं ओग्गिण्हित्ता णं संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति. तए णं तुंगियाए नयरीए सिंघाडग–तिअ–चउक्क–चच्चर–महापह–पहेसु, जाव–एगदिसाभिमुहा णिज्जायंति. तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठ–तुट्ठा, जाव–सद्दावेंति, एवं वयासिः–एवं खलु देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना, जाव–अहापडिरूवं ओग्गहं ओग्गिण्हित्ता णं संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति.

ते काळे, ते समये पार्श्वनाथना शिष्यो स्थविर भगवंतो अनुक्रमे विचरता, गामो गाम जता अने पांचसे साधुओ साथे विहार करता जे तरफ तुंगिका नगरी छे अने जे तरफ पुष्पवती नामनुं चैत्य छे ते तरफ आव्या. त्यां आवीने यथाप्रतिरूप अवग्रहने धारण करीने संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे. जे स्थविर भगवंतो जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, बलसंपन्न रूपसंपन्न, विनयसंपन्न, ज्ञानसंपन्न, दर्शनसंपन्न, चारित्रसंपन्न; लज्जाळु, नम्रतावाळा, ओजस्वी, तेजस्वी, प्रतापी अने कीर्तिवाळा हता, वळी जेओए क्रोधने, मानने, मायाने, लोभने, निद्राने, इंद्रियोने अने परीषहोने जिती लीधा छे, तथा जेओने जीववानी दरकार नथी अने मरण संबंधी बीक पण नथी, वळी जेओ यावत्–कुत्रिकापणरूप[1] हता अर्थात् जेम कुत्रिकापणमांथी जे जोइए ते वस्तु मळी शके तेम तेओ पासेथी जेवो जोइए तेवो बोध मळी शकतो, तथा ते श्रमणो बहुश्रुत अने बहुपरिवारवाळा हता. 'ए श्रमण निर्ग्रंथो तुंगिका नगरीमां आवीने यावत्–एक दिशा तरफ रहीने ध्यान करे छे' एवी वात तुंगिका नगरीमां सिंगोडानी जेवा आकारवाळा रस्तामां, त्रण शेरी मळे एवा रस्तामां, चार शेरी मळे एवा रस्तामां, अनेक शेरी मळे तेवा रस्तामां राजमार्गमां तथा सामान्य शेरीमां अर्थात् ठेक ठेकाणे यावत्–विस्तरी गइ. तेथी ते नगरीमां रहेनारा श्रमणोपासको पण ते वातने जाणी हर्षवाळा अने तोषवाळा थया, तथा तेओए एक बीजा श्रमणोपासकोने बोलावी परस्पर आ प्रमाणे वातचित करीः– हे देवानुप्रिय ! पार्श्वनाथना शिष्य–स्थविर भगवंतो (जेओ 'जातिसंपन्न' वगेरे पूर्वोक्त विशेषणवाळा छे) यावत्–यथाप्रतिरूप अवग्रहने धारण करी संयम अने तपवडे आत्माने भावता विहरे छे.

तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नाम-गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण–वंदण–नमसंण–पडिपुच्छण–पज्जुवासणयाए, जाव–गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो, नमंसामो, जाव–पज्जुवासामो, एयं णे इहभवे वा, परभवे वा, जाव–आणुगामियत्ताए भविस्सति, इति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति. जेणेव सयाइं,

तो हे देवानुप्रिय ! तथारूप स्थविर भगवंतोनुं नाम के गोत्र पण आपणे काने पडी जाय तो पण मोटुं फळ छे, तो पछी तेओनी सामे जवाथी, तेओने वांदवाथी, नमवाथी, कुशल समाचार पूछवाथी अने तेओनी सेवा करवाथी यावत्–ग्रहणताथी तो कल्याण थाय तेमां नवाइ ज शी ? माटे हे देवानुप्रिय ! आपणे बधा ते स्थविर भगवंतो पासे जइए अने तेओने वांदीए, नमीए अने यावत्–तेओनी पर्युपासना करीए. ए काम आपणने आ भवमां अने परभवमां

---

१. मूलच्छायाः—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये पार्श्वापत्यीयाः स्थविरा भगवन्तो जातिसंपन्नाः, कुलसंपन्नाः बलसंपन्नाः, रूपसंपन्नाः, विनयसंपन्नाः, ज्ञानसंपन्नाः, दर्शनसंपन्नाः, चारित्रसंपन्नाः, लज्जासंपन्नाः, लाघवसंपन्नाः ओजस्विनः, तेजस्विनः, वर्चस्विनः, यशस्विनः, जितक्रोधाः, जितमानाः, जितमायाः, जितलोभाः जितनिद्राः, जितेन्द्रियाः, जितपरिषहाः, जीविताशा–मरणभयविप्रमुक्ताः, यावत्–कुत्रिकापणभूताः, बहुश्रुताः, बहुपरिवाराः, पञ्चभिः अनगारशतैः सार्धं संपरिवृताः यथाऽनुपूर्वी चरन्तः, ग्रामाऽनुग्रामं द्रवन्तः, सुखंसुखेन विहरन्तो येनैव तुङ्गिका नगरी, यनैव पुष्पवती चैत्यम्, तेनैव उपागच्छन्ति, उपागत्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन, तपसा आत्मानं भावयन्तो विहरन्ति. ततः तुङ्गिकाया नगर्याः शृङ्गाटक–त्रिक–चतुष्क–चत्वर–महापथ–पथिषु, यावत्–एकदिशाऽभिमुखा निध्यायन्ति. ततस्ते श्रमणोपासका अस्याः कथायाः लब्धार्थाः सन्तो हृष्ट–तुष्टाः, यावत्–शब्दायन्ते, एवम्–ऊचुः–एवं खलु देवाऽनुप्रियाः ! पार्श्वापत्यीयाः स्थविरा भगवन्तो जातिसंपन्नाः, यावत्–यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन, तपसा आत्मानं भवयन्तो विहरन्ति. तद् खलु महाफलं देवाऽनुप्रियाः ! तथारूपाणां स्थविराणां भगवतां नाम–गोत्रस्य अपि श्रवणतया, किमङ्ग पुनः अभिगमन–वन्दन–नमस्यन–प्रतिप्रच्छन–पर्युपासनतया, यावत्–ग्रहणतया ? तद् गच्छामो देवानुप्रियाः ! स्थविरान् भगवतो वन्दामहे, नमस्यामः, यावत्–पर्युपास्महे, एतद् नः इहभवे वा, परभवे वा, यावत्–अनुगामितया भविष्यति, इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिके एतम्–अर्थं प्रतिशृण्वन्ति, येनैव स्वकानिः–अनु०

१. कु एटले पृथ्वी, त्रिक एटले त्रण अने आपण—दुकान. जे दुकानमांथी स्वर्गलोक, मनुष्यलोक अने पाताललोकनी वस्तु मळे ते दुकान 'कुत्रिकापण':—अनु०

[illegible] तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ण्हाया, कयब-[illegible], [illegible]कोउय-मंगल-पायच्छित्ता, सुद्धप्पवेसाइं, मंगल्लाइं, [illegible] पवरपरिहिआ, अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिंतो स-[illegible] गेहेहिंतो पडिनिक्खमंति. पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति. [illegible] पायविहारचारेणं तुंगियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्ग-[illegible]. निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फवतीए चेइए तेणेव उवागच्छंति. उवागच्छित्ता थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं [illegible]:-सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताणं दव्वाणं [illegible]विउसरणयाए, एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं, चक्खुप्फासं अंजलिप्पग्गहेणं, मणसो एगत्तीकरणेणं जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति. उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ. करित्ता जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति. तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं; तीसे महइमहालियाए चाउज्जामं धम्मं परिकहंति. जहा केसिसामिस्स, जाव-समणोवा-सियत्ताए आणाए आराहए भवंति जाव-धम्मो कहिओ.

हितरूप छे तथा यावत्-परंपराए कल्याणरूप थशे, ए प्रमाणे वातचित करी ए वातनो एक बीजा कने स्वीकार करावे छे अने पछी तेओ पोत पोताने घरे जाय छे. घरे जइने स्नान करी, बलि-कर्म-गोत्रदेवीनुं पूजन-करी, कौतुक अने मंगलरूप प्रायश्चित्त करी, बहार जवाने योग्य अने मंगलरूप शुद्ध वस्त्रोनें उत्तमतापूर्वक पहेरी तेओ पोत पोताने घरेथी बहार नीकळे छे अने ते बधा एक ठेकाणे मळे छे, पछी पगे चालीने तुंगिका नगरीनी वचोवच नीकळे छे. अने जे तरफ पुष्पवती चैत्य छे त्यां आवी ते स्थविर भगवंतोने पांच प्रकारना अभिगमवडे अभिगमे छे अर्थात् स्थविर भगवंतोनी पासे जतां तेओ पोतानी पासे रहेलां सचित्त द्रव्योने कोरे मूके छे, अचित्त द्रव्योने साथे राखे छे, एक शाटिक उत्तरासंग करे छे (खेसने जनोइनी पेठे धारण करे छे), तेमने जूए के तुरत ज हाथ जोडे छे अने मनने एकाग्र करे छे, ए प्रमाणे पांच अभिगमो साचवी ते श्रमणोपासको ते स्थविर भगवंतोनी पासे जइ, त्रण प्रदक्षिणा दे छे अने यावत्-त्रण जातनी सेवावडे तेओनी पर्युपासना करे छे. पछी ते स्थविर भगवंतोए ते श्रमणो-पासकोने तथा ते मोटामां मोटी सभाने चार महाव्रतवाळा धर्मनो उपदेश कर्यो अने केशिस्वामिनी पेठे यावत्-ते श्रमणोपासकोए पोतानी श्रमणोपासकतावडे ते स्थविर भगवंतोनी आज्ञानुं आराधन कर्युं अने ए प्रमाणे यावत्-धर्मकथा पूरी थइ.

तए णं ते समणोवासया थेराणं भगवंताणं अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म हट्ठ-तुट्ठ० जाव-हयहिअया तिक्खुत्तो आयाहि-णपयाहिणं करेंति. जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति, पज्जुवासित्ता एवं वयासि:-

ते श्रमणोपासको ते स्थविर भगवंतो पासेथी धर्मने सांभळी, अवधारी हर्षवाळा, तोषवाळा अने यावत्-विकसित हृदयवाळा थया अने तेओए ते स्थविरोने त्रणवार प्रदक्षिणा करी यावत्-त्रण जातनी सेवावडे ते स्थविरोनी पर्युपासना करी आ प्रमाणे कह्युं के:-

३५. प्र०-संजमे णं भन्ते ! किंफले ? तवे णं भन्ते ! किंफले ?

३५. प्र०-हे भगवन् ! संयमनुं शुं फळ छे ? हे भगवन् ! तपनुं शुं फळ छे ?

३५. उ०-तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासि:-संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले. तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वयासि:-जइ णं भन्ते ! संजमे अणण्हयफले, तवे वोदाणफले.

३५. उ०-त्यार पछी ते स्थविर भगवंतोए ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे कह्युं के:-हे आर्यो ! संयमनुं फळ आस्रवरहितपणुं छे अने तपनुं फळ व्यवदान छे. (व्यवदान एटले कापवुं के साफ करवुं, अर्थात् कर्मोने कापवां के कर्मरूप किच्चडथी मलिन आत्माने साफ करवो ए तपनुं फळ छे. आ उत्तरथी 'संयमने आराधवाथी

---

१. मूलच्छाया:-स्वकानि गृहाणि तेनैव उपागच्छन्ति, उपागम्य स्नाताः, कृतबलिकर्माणः, कृतकौतुक-मङ्गल-प्रायश्चित्ताः, शुद्धात्मवेषाणि (शुद्धप्र-वेश्यानि) माङ्गलिकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहिताः, अल्प-महार्घाऽऽभरणाऽलंकृतशरीराः स्वकेभ्यः, स्वकेभ्यो गृहेभ्यः प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य एकतो मिलन्ति, मिलित्वा पादविहारचारेण तुङ्गिकाया नगर्या मध्यंमध्येन निर्गच्छन्ति, निर्गम्य येनैव पुष्पवती चैत्यं तेनैव उपागच्छन्ति, उपागम्य स्थविरान् भगवतः पञ्चविधेन अभिगमेन अभिगच्छन्ति, तद्यथा:-सचित्तानां द्रव्याणां व्यवसर्जनतया, अचित्तानां द्रव्याणाम्-अव्यवसर्जनतया, एकशाटिकेन उत्तरासङ्गकरणेन, चक्षुस्स्पर्शम् अञ्जलिप्रग्रहेण, मनस एकत्वीकरणेन येनैव स्थविरा भगवन्तस्तेनैव उपागच्छन्ति, उपागम्य त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणां कुर्वन्ति, कृत्वा यावत्-त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपासते. ततस्तेस्थविरा भगवन्तस्तेभ्यः श्रमणोपासकेभ्यः, तस्यै महातिमहत्यै [illegible] धर्मं परिकथयन्ति, यथा केशिस्वामिनः, यावत्-श्रमणोपासकतया आज्ञाया आराधका भवन्ति. यावत्-धर्मः कथितः. ततस्ते श्रमणो-[illegible] स्थविराणां भगवताम् अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्ट-तुष्टाः० यावत्-हृतहृदयाः त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणां कुर्वन्ति, यावत्-त्रिविधया [illegible] पर्युपासते, पर्युपास्य एवम् अवादिषुः-संयमो भगवन् ! किंफलः ? तपो भगवन् ! किंफलम् ? ततः स्थविरा भगवन्तः तान् श्रमणोपासकान् [illegible] आर्याः ! [illegible], तपो [illegible]. ततस्ते श्रमणोपासकाः स्थविरान् भगवत एवम्-अवादिषुः-यदि भगवन् ! संयम [illegible]:-अनु०

देव थवाय छे' ए वात बंध बेसती आवती नथी माटे ते श्रमणोपासको फरीथी पूछे छे केः—)

३६. प्र०—किंपत्तियं णं भन्ते! देवा देवलोएसु उववज्जंति?

३६. प्र०—हे भगवन्! देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे तेनुं शुं कारण?

३६. उ०—तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः—पुव्वतवेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति. तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः—पुव्वसंजमेणं अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति, तत्थ णं आणंदरक्खिए नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः—कम्मियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति. तत्थ णं कासवे नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासिः—संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जंति. पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो! देवा देवलोएसु उववज्जन्ति. सच्चे णं एस अट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए.

३६. उ०—आ प्रश्ननो उत्तर देवा ते स्थविरोमांना कालिकपुत्र नामना स्थविरे, ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे आर्यो! पूर्वना तपवडे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे. पछी ते स्थविरोमांना मेघिल नामना स्थविरे ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे आर्यो! पूर्वना संयमवडे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे. पछी तेमांना आनंदरक्षित नामना स्थविरे ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे आर्यो! कर्मिपणाने लीधे देवो देवलोकमां उत्पन्न थाय छे अने पछी तेमांना काश्यप स्थविरे ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे कह्युं केः—हे आर्यो! संगिपणाने लीधे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे अर्थात् हे आर्यो! पूर्वना तपवडे, पूर्वना संयमवडे, कर्मिपणाने लीधे अने संगिपणाने लीधे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे. ए वात साची छे माटे कही छे पण अमे अमारा अभिमानथी कहेता नथी.

तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरिया समाणा हट्ठ—तुट्ठा थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छंति, पसिणाइं पुच्छित्ता अट्ठाइं उवादियंति, उवादिएत्ता उट्ठाए उट्ठेन्ति, उट्ठित्ता थेरे भगवंते तिक्खुत्तो वंदंति, नमंसंति, नमंसित्ता थेराणं भगवंताणं अंतियाओ, पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिणिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया. तए णं ते थेरा अन्नया कयाइं तुंगियाओ पुप्फवतियाओ चेइयाओ पडिनिग्गच्छंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति.

पछी ज्यारे ते स्थविर भगवंतोए ते श्रमणोपासकोने ए पूर्व प्रकारना जवाबो आप्या त्यारे तेओए हर्षवाळा अने तोषवाळा थइ ते स्थविर भगवंतोने वांदी, नमी बीजा पण प्रश्नो पूछ्या अने तेओना अर्थोनुं ग्रहण कर्युं, पछी उठीने ते स्थविरोने त्रण प्रदक्षिणा दइने, वांदी, नमी ते स्थविरो पासेथी अने पुष्पवती नामना चैत्यथी नीकळी तेओ ज्यांथी आव्या हता त्यां पाछा गया. अने ते स्थविरोए पण अन्य कोइ दिवसे तुंगिका नगरीथी, पुष्पवती नामना चैत्यथी बहार नीकळी जनपद विहारे विहार कर्यो.

ते णं काले णं, ते णं समये णं, रायगिहे नामं नगरे. जाव—परिसा पडिगया. ते णं काले णं, ते णं समये णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी इंदभूई नामं अणगारे, जाव—संखित्त—विपुलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं, संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव—विहरइ. तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरि-

ते काळे, ते समये राजगृह नामनुं नगर हतुं. यावत्—सभा पाछी फरी. ते काळे, ते समये श्रमण भगवंत महावीरना मोटा शिष्य इंद्रभूति नामना अनगार हता, जेओ यावत्—संक्षिप्त अने विपुल तेजोलेश्यावाळा हता अने जेओ निरंतर छट्ठ छट्ठना तपःकर्म पूर्वक संयम अने तपवडे आत्माने भावता यावत्—विहरे छे. पछी ते भगवान् गौतम छट्ठना पारणाने दिवसे पहेली पौरुषीए स्वाध्याय करे छे, बीजी पौरुषीए ध्यान ध्यावे छे अने त्रीजी पौरु-

---

१. मूलच्छायाः—किंप्रत्ययं भगवन्! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते? तत्र कालिकपुत्रो नाम स्थविरः तान् श्रमणोपासकान् एवम्—अवादीत्:—पूर्वतपसा आर्याः! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. तत्र मेघिलो नाम स्थविरः तान् श्रमणोपासकान् एवम् उवाचः—पूर्वसंयमेन आर्याः! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. तत्र आनन्दरक्षितो नाम स्थविरः तान् श्रमणोपासकान् एवम् अवादीत्:—कर्मितया आर्याः देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. तत्र काश्यपो नाम स्थविरः तान् श्रमणोपासकान् एवम् अवोचत्—:सङ्गितया आर्याः! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, पूर्वतपसा, पूर्वसंयमेन, कर्मितया, सङ्गितया आर्याः! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. सत्य एषोऽर्थः, नो चैव आत्मभाववक्तव्यतया. ततस्ते श्रमणोपासकाः स्थविरैः भगवद्भिः इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकृताः सन्तो हृष्ट—तुष्टाः स्थविरान् भगवतो वन्दन्ते, नमस्यन्ति, नमस्यित्वा प्रश्नान् पृच्छन्ति, प्रश्नान् पृष्ट्वा, अर्थान् उपाददति, उपादाय उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय स्थविरान् भगवतः त्रिकृत्वो वन्दन्ते, नमस्यन्ति; नमस्यित्वा स्थविराणां भगवताम् अन्तिकाद्, पुष्पवत्याः चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य याम् एव दिशं प्रादुर्भूताः ताम् एव दिशं प्रतिगताः. ततस्ते स्थविरा अन्यदा कदाचिद् तुङ्गिकायाः पुष्पवत्याः चैत्यात् प्रतिनिर्गच्छन्ति, बहिः जनपदविहारं विहरन्ति. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये, राजगृहं नाम नगरं यावत्—पर्षद् प्रतिगता. तस्मिन् काले, तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी इन्द्रभूतिर्नाम अनगारः, यावत्—संक्षिप्त—विपुलतेजोलेश्यः षष्ठंषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा, संयमेन, तपसा आत्मानं भावयन् यावत्—विहरति. ततः स भगवान् गौतमः षष्ठक्षमणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं करोति, द्वितीयायां पौरुष्यां ध्यानं ध्यायति, तृतीयायां पौरुष्याम् [illegible]

[illegible]—असंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं, [illegible] पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं [illegible], [illegible]त्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, [illegible]च्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, नमंसित्ता एवं [illegible]—इच्छामि णं भन्ते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमण-[illegible] रायगिहे नगरे उच्च—नीअ—मज्झिमाइं कुलाइं घरसमु-[illegible] भिक्खायरियाए अडित्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा [illegible], तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं [illegible]णुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ, गुण-[illegible]ओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियम—[illegible]—संभंते, जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए, पुरओ रियं सोहमाणे, [illegible]णे जेणेव रायगिहे णगरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता [illegible] णगरे उच्च—नीअ—मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स [illegible]रियं अडइ.

तए णं से भगवं गोयमे रायगिहे नगरे जाव—अडमाणे बहुज-[illegible] निसामेइ. एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नयरीए [illegible] पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवा-[illegible]हिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छियाः—"संजमे णं भन्ते ! [illegible], तवे णं किंफले ? तए णं ते थेरा भगवन्तो ते समणोवासए [illegible] वयासिः—संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले, [illegible] जाव—पुव्वतवेणं, पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए [illegible] ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं [illegible]वत्तव्वयाए" से कहमेअं मन्ने एवं. तए णं समणे भगवं [illegible] इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जायसड्ढे जाव—समुप्पन्न—[illegible]हल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नय-[illegible] पडिनिक्खमइ, अतुरियं जाव—सोहेमाणे जेणेव समणे भगवं म-[illegible] तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स

[illegible]ीए शारीरिक तथा मानसिक चपळता रहित थइ असंभ्रांत ज्ञान-वाळा ते गौतम भगवंत मुहपत्तीने पडिलेहे छे, पछी वासणोने अने वस्त्रोने पडिलेहे छे, वासणोने साफ करे छे अने वासणोने लइने श्रमण भगवंत महावीरनी पासे आवी, नमी, वांदी ते गौतम अनगारे आ प्रमाणे कह्युं के:—हे भगवन् ! आजे छट्ठना पार-णाने दिवसे आपनी अनुमतिथी हुं राजगृह नगरमां उच्च, नीच अने मध्यम कुलोमां भिक्षा लेवानी विधिपूर्वक भिक्षा मेळववा सारु फरवाने इच्छुं छुं. (भगवंते कह्युं के:—)हे देवानुप्रिय ! जेम सुख थाय तेम कर, प्रतिबंध न कर. श्रमण भगवंत महावीरनी अनुमति मळ्या पछी भगवान् गौतम श्रमण भगवंत महावीरनी कनेथी, गुण—शिलक चैत्यथी नीकळे छे, नीकळी शारीरिक अने मानसिक उताव-ळने छोडी दइ असंभ्रांत ज्ञानवाळा ते भगवान् गौतम युगांतर—धुंस-रावा—दृष्टिथी ईर्यासमितिने शोधता शोधता राजगृह नगरमां आवी त्यां रहेल उच्च, नीच अने मध्यम कुलोमां भिक्षा लेवानी विधिपूर्वक भिक्षा लेवाने फरे छे.

त्यां राजगृह नगरमां भिक्षाने माटे फरता भगवान् गौतमे घणा माणसोना मोढे आ प्रमाणे सांभळ्युं के:—"हे देवानुप्रिय ! तुंगिका नगरीथी बहार, पुष्पवती नामना चैत्यमां पार्श्वनाथना शिष्यो स्थविर भगवंतो पधार्या हता अने त्यांना श्रावकोए तेओने आ प्रकारना प्रश्नो पूछ्या हता के:—हे भगवन् ! संयमनुं शुं फळ छे ? तपनुं शुं फळ छे ? त्यारे ते स्थविर भगवंतोए ते श्रमणोपासकोने आ प्रमाणे जवाब आप्यो के:—हे आर्यो ! आस्रवरहितपणुं ए सं-यमनुं फळ छे अने कर्मनो नाश करवो ए तपनुं फळ छे (ए बधुं पूर्व प्रमाणे कहेवुं) अने यावत्—पूर्वना तपवडे, पूर्वना संयमवडे, कर्मिपणाथी अने संगिपणाने लीधे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे. ए वात साची छे माटे कही छे पण अमारा अभिमानथी कही नथी, ए ते ए प्रमाणे केम मनाय ?" ए प्रकारनी वात लोकोना मो-ढेथी सांभळी श्रमण भगवंत गौतम ते वातनी जिज्ञासामां श्रद्धावाळा थया अने यावत्—ते वातने माटे तेओने कुतूहल उपज्युं. हवे

---

१. मूलच्छायाः—अचपलम्, असंभ्रान्तो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेखयति, प्रतिलिख्य भाजनानि, वस्त्राणि प्रतिलेखयति, प्रतिलिख्य भाजनानि प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य भाजनानि उद्गृह्णाति, उद्गृह्य येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति, नमस्यित्वा एवम् अवादीत्:— इच्छामि भगवन् ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः षष्ठक्षमणपारणके राजगृहे नगरे उच्च—नीच—मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यया अटितुम्. यथासुखं देवाऽनुप्रिय ! मा प्रतिबन्धम्, ततो भगवान् गौतमः श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्तिकात्, गुणशिलकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य अत्वरितम्, अचपलम्, असंभ्रान्तः युगान्तरप्रलोकनया दृष्ट्या पुरतो रितं शोधयन्, शोधयन् येनैव राजगृहं नगरं तेनैव उपागच्छति, उपागम्य राजगृहे नगरे उच्च—नीच—मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्याम् अटति. ततः स भगवान् गौतमो राजगृहे नगरे यावत्—अटन् बहुजनशब्दं निशामयति. एवं खलु देवानुप्रियाः ! तुङ्गिकाया नगर्या बहिः पुष्पवत्यां चैत्ये पार्श्वापत्यीयाः स्थविरा भगवन्तः श्रमणोपासकैः इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि पृष्टाः—संयमो भगवन् ! किंफलः, तपः किंफलम् ? ततस्ते स्थविरा भगवन्तस्तान् श्रमणोपासकान् एवम् अवादीत्:—संयम आर्याः ! अनाश्रवफलः, तपो व्यवदानफलम्, तत् चैव यावत्—पूर्वतपसा, पूर्वसंयमेन, कर्मितया, [illegible] आर्याः ! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. सत्यः एषोऽर्थः, नो चैव आत्मभाववक्तव्यतया, तत् कथम् एतद् मन्ये एवम् ततः श्रमणो भगवान् गौतमः [illegible] कथाया लब्धार्थः सन् जातश्रद्धः, यावत्—समुत्पन्नकुतूहलो यथापर्याप्तं समुदानं गृह्णाति, गृहीत्वा राजगृहाद् नगराद् प्रतिनिष्क्रामति, [illegible] यावत्—शोधयन् येनैव गुणशिलकं चैत्यम्, येनैव श्रमणो भगवान् महावीरस्तेनैव उपागच्छति, [illegible] भगवतो महावीरस्य:—अनु०

[illegible]

अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, एसण–मणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्त–पाणं पडिदंसेइ, समणं भगवं महावीरं जाव–एवं वदासिः–एवं खलु भन्ते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे रायगिहे नयरे उच्च–नीअ–मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं णिसामेमि, "एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नयरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिआः– संजमे णं भन्ते ! किंफले, तवे किंफले ? तं चेव जाव–सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए."

भगवन् गौतम जोइए तेटली–पूरती–भिक्षा मेळवीने, [illegible] नगरथी बहार नीकळी, धीरे धीरे यावत् ईर्यासमितिने [illegible] शोधता गुणशिलक चैत्य तरफ श्रमण भगवंत महावीरनी [illegible] आव्या, आवीने तेओनी पासे रही जवा आववा संबंधी [illegible] चिंतन कर्युं, भिक्षा लेतां लागेला दोषोनुं आलोचन कर्युं, [illegible] लावेलो आहार अने पाणी श्रमण भगवंत महावीरने देखाड्यो [illegible] पछी तेओ (भगवान् गौतम) आ प्रमाणे बोल्या केः–हे भगवन् ! ज्यारे हुं आपनी अनुमति मेळवी राजगृह नगरमां उच्च, नीच अने मध्यम कुळमां भिक्षा लेवानी विधिपूर्वक भिक्षा लेवाने फरतो हतो त्यारे में घणा माणसोने मोढेथी आ प्रमाणे सांभळ्युं केः–हे देवानुप्रिय ! तुंगिका नगरीथी बहार पुष्पवती नामना चैत्यमां पार्श्वनाथना शिष्यो स्थविर भगवंतो पधार्या हता अने त्यांना श्रावकोए तेओने आ प्रकारना प्रश्नो पूछ्या हता केः–हे भगवन् ! संयमनुं फळ शुं छे ? अने तपनुं फळ शुं छे ? (ए बधुं पूर्व प्रमाणे कहेवुं अने) यावत्–ए वात साची छे माटे कही छे, पण अमारी बडाइने लीधे नथी कही."

तं पभू णं भन्ते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अप्पभू ? समिआ णं भन्ते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अस्समिआ ? आउज्जिया णं भन्ते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अणाउज्जिया ? पलिउज्जिया णं भन्ते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए ? उदाहु अपलिउज्जिया ? पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति. पुव्वसंजमेणं, कम्मियाए, संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जन्ति, सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए. पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए, णो चेव णं अप्पभू. तह चेव णेयव्वं अवसेसिअं, जाव–पभू–समियं, आउज्जिय–पलिउज्जिया, जाव–सच्चे णं एसमट्ठे, णो चेव णं

तो हे भगवन् ! शुं ते स्थविर भगवंतो ते श्रमणोपासकोने एवा प्रकारनो जवाब देवा समर्थ छे ? के असमर्थ छे ? हे भगवन् ! ते स्थविर भगवंतो ते श्रमणोपासकोने एवा प्रकारनो जवाब देवाने अभ्यासवाळा छे ? के अनभ्यासी छे ? हे भगवन् ! ते स्थविर भगवंतो ते श्रमणोपासकोने एवा प्रकारनो जवाब देवाने उपयोगवाळा छे ? के उपयोग विनाना छे ? हे भगवन् ! ते स्थविर भगवंतो ते श्रमणोपासकोने (हे आर्यो ! पूर्वना तपवडे, पूर्वना संयमवडे, कर्मिपणाथी अने संगिपणाने लीधे देवो देवलोकमां उत्पन्न थाय छे, ए वात साची छे माटे कही छे, पण अमारी बडाईने लीधे कही नथी.) एवा प्रकारनो जवाब देवाने विशेषज्ञानी छे ? के साधारण छे ? (श्रीमहावीरे कह्युं केः–) हे गौतम ! ते स्थविर भगवंतो ते श्रमणोपासकोने तेवा प्रकारनो जवाब देवाने समर्थ छे, पण असमर्थ नथी. (बाकी बधुं ते ज प्रमाणे जाणवुं) यावत्–ते स्थविर भगवंतो तेवा प्रकारनो जवाब देवाने अभ्यासवाळा छे, उपयोगवाळा छे अने विशेषज्ञानी छे अने यावत्–ते वात साची छे माटे कही पण आत्मानी बडाइने माटे कही नथी. वळी हे

---

१. मूलच्छायाः—अदूरसामन्ते गमनागमनानि प्रतिक्रामति, एषणा–ऽनेषणम् आलोचयति, आलोच्य भक्त–पानं प्रतिदर्शयति, श्रमणं भगवन्तं महावीरं यावत्–एवम् अवादीतः—एवं खलु भगवन् ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् राजगृहे नगरे उच्च–नीच–मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यया अटन् बहुजनशब्दं निशमयामि, एवं खलु देवाऽनुप्रियाः ! तुङ्गिकाया नगर्या बहिः पुष्पवत्यां चैत्ये पार्श्वापत्यीयाः स्थविरा भगवन्तः श्रमणोपासकैः इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि पृष्टाः– संयमो भगवन् ! किंफलः, तपः किंफलम् ? तच्चैव यावत्–सत्य एषोऽर्थः, नो चैव आत्मभाव–वक्तव्यतया, तत् प्रभवो भगवन् ! ते स्थविरा भगवन्तः तेषां श्रमणोपासकानाम् इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकर्तुम् ? उताहोऽप्रभवः ? समिता भगवन् ! ते स्थविरा भगवन्तः तेषां श्रमणोपासकानाम् इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकर्तुम् ! उताहो असमिताः ? आयोगिकाः भगवन् ! ते स्थविरा भगवन्तस्तेषां श्रमणोपासकानाम् इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकर्तुम् ? उताहो अनायोगिकाः ? प्रायोगिका भगवन् ! ते स्थविरा [illegible] श्रमणोपासकानाम् इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकर्तुम् ? उताहो अप्रायोगिकाः ? पूर्वतपसा आर्य ! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, पूर्वसंयमेन, कर्मितया, संगितया आर्य ! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते. सत्य एषोऽर्थः, नो चैव आत्मभाववक्तव्यतया, प्रभवो गौतम ! ते स्थविरा [illegible] श्रमणोपासकानाम् इमानि एतद्रूपाणि व्याकरणानि व्याकर्तुम्, [illegible] तथा चैव ज्ञातव्यम्, [illegible] आयोगिकाः यावत्–सत्यः एषोऽर्थः, नो चैव—[illegible]

[illegible] वत्तव्वयाए, अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि, भासामि, [illegible], [illegible]—पुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जन्ति, पुव्वसं- [illegible] देवा देवलोएसु उववज्जंति, कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, संगियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं, पुव्व- [illegible], कम्मियाए, संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, [illegible] णं एसमट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए.

३७. प्र०—तहारूवं णं भंते ! समणं वा, माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणा ?

३७. उ०—गोयमा ! सवणफला.

३८. प्र०—से णं भंते ! सवणे किंफले ?

३८. उ०—णाणफले.

३९. प्र०—से णं भंते ! णाणे किंफले ?

३९. उ०—विण्णाणफले.

४०. प्र०—से णं भंते ! विण्णाणे किंफले ?

४०. उ०—पच्चक्खाणफले.

४१. प्र०—से णं भंते ! पच्चक्खाणे किंफले ?

४१. उ०—संजमफले.

४२. प्र०—से णं भंते ! संजमे किंफले ?

४२. उ०—अणण्हयफले.

४३. प्र०—एवं अणण्हये ?

४३. उ०—तवफले.

४४. प्र०—तवे ?

४४. उ०—वोदाणफले.

४५. प्र०—से णं भन्ते ! वोदाणे किंफले ?

गौतम ! हुं पण एम कहुं छुं, भाखुं छुं, जणावुं छुं अने प्ररूपुं छुं के, पूर्वना तपवडे, पूर्वना संयमवडे, कर्मिपणाथी अने संगिपणाने लीधे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे अर्थात् हे आर्यो ! 'पूर्वना तपवडे, पूर्वना संयमवडे, कर्मिपणाथी अने संगिपणाने लीधे देवो देवलोकोमां उत्पन्न थाय छे अने ए वात साची छे माटे कही छे पण अमारी बडाइ करवा कही नथी' ए प्रकारनुं ते स्थविर भगवंतोनुं कथन साचुं छे.

(हवे श्रीगौतमे पूछ्युं केः—)

३७. प्र०—हे भगवन् ! तेवा प्रकारना श्रमण के ब्राह्मणनी पर्युपासना करनार मनुष्यने तेनी सेवानुं फळ शुं मळे ?

३७. उ०—हे गौतम ! तेओनी पर्युपासनानुं फळ श्रवण छे अर्थात् तेओनी पर्युपासना करनारने सत्शास्त्रने सांभळवानुं फळ मळे छे.

३८. प्र०—हे भगवन् ! ते श्रवणनुं फळ शुं छे ?

३८. उ०—हे गौतम ! तेनुं फळ ज्ञान छे अर्थात् सांभळवाथी जाणवानुं बनी शके छे.

३९. प्र०—हे भगवन् ! ते जाणवानुं फळ शुं छे ?

३९. उ०—हे गौतम ! तेनुं फळ विज्ञान छे अर्थात् साधारण जाण्या पछी विवेचनपूर्वक जाणी शकाय छे.

४०. प्र०—हे भगवन् ! ते विज्ञाननुं फळ शुं छे ?

४०. उ०—हे गौतम तेनुं फळ प्रत्याख्यान छे अर्थात् विशेष जाण्या पछी सर्व प्रकारनी वृत्तिओ आपोआप शांत पडे छे.

४१. प्र०—हे भगवन् ! ते प्रत्याख्याननुं फळ शुं छे ?

४१. उ०—हे गौतम तेनुं फळ संयम छे अर्थात् प्रत्याख्यान प्राप्त थया पछी सर्वस्वत्यागरूप संयम प्राप्त थाय छे.

४२. प्र०—हे भगवन् ! ते संयमनुं फळ शुं छे ?

४२. उ०—हे गौतम ! तेनुं फळ आस्रवरहितपणुं छे अर्थात् विशुद्ध संयम प्राप्त थया पछी पुण्य के पापनो स्पर्श पण थतो नथी, पण आत्मा पोताना मूळ रूपमां ज रमण करे छे.

४३. प्र०—हे भगवन् ! ते आस्रवरहितपणानुं फळ शुं छे ?

४३. उ०—हे गौतम ! तेनुं फळ तप छे.

४४. प्र०—हे भगवन् ! ते तपनुं फळ शुं छे ?

४४. उ०—हे गौतम ! तेनुं फळ कर्मरूप मेलने साफ करवानुं छे.

४५. प्र०—हे भगवन् ! कर्मरूप मेल साफ थयाथी शुं थाय ?

---

१. मूलच्छायाः—आत्मभाववक्तव्यतया. अहमपि गौतम ! एवम् आख्यामि, भाषे, प्रज्ञापयामि, प्ररूपयामि पूर्वतपसा देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, पूर्वसंयमेन देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, कर्मितया देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, संगितया देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते; पूर्वतपसा, पूर्वसंयमेन, कर्मितया, संगितया आर्याः ! देवा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, सत्य एषोऽर्थः, नो चैव आत्मभाववक्तव्यतया. तथारूपं भगवन् ! श्रमणं वा, माहनं वा पर्युपासीनस्य किंफला पर्युपासना ? गौतम ! श्रवणफला. तद् भगवन् ! श्रवणं किंफलम् ? ज्ञानफलम्. तद् भगवन् ! ज्ञानं किंफलम् ? विज्ञानफलम्. तद् भगवन् ! [illegible] किंफलम् ? प्रत्याख्यानफलम्. तद् भगवन् ! प्रत्याख्यानं किंफलम् ? संयमफलम्. तद् भगवन् ! संयमः किंफलः ? अनास्रवफलः. एवम् [illegible] ? [illegible] ? [illegible] तद् भगवन् ! [illegible] किंफलम् ?—अनु०

४५. उ०—(वोदाणे) अकिरियाफले.

४६. प्र०—से णं भन्ते ! अकिरिया किंफला ?

४६. उ०—सिद्धिपज्जवसाणफला पन्नत्ता गोयमा !

गाहाः—

सवणे णाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य संजमे,

अणण्हये तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धी.

४५. उ०—हे गौतम ! ते थयाथी निष्क्रियपणुं प्राप्त थाय.

४६. प्र०—हे भगवन् ! ते निष्क्रियपणाथी शुं फळ थाय ?

४६. प्र०—हे गौतम ! तेनुं फळ सिद्धि छे अर्थात् अक्रिय-पणुं प्राप्त थया पछी छेवटे सिद्धि मेळवाय छे, एम कह्युं छे.

गाथाः—

(उपासनाथी) श्रवण, श्रवणथी ज्ञान, ज्ञानथी विज्ञान, विज्ञान-थी प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानथी संयम, संयमथी अनास्रव, अनास्रव-थी तप, तपथी कर्मनो नाश, कर्मना नाशथी निष्कर्मपणुं अने निष्कर्मपणाथी सिद्धि- अजरामरपणुं-प्राप्त थाय छे.

३. पूर्वं तिर्यग्-मनुष्योत्पत्तिर्विचारिता, अथ देवोत्पत्तिविचारणायाः प्रस्तावनायेदमाह—'तए णं समणे—' इत्यादि. 'अड्ढ' त्ति आढ्या धन-धान्यादिभिः परिपूर्णाः, 'दित्त' त्ति दीप्ताः प्रसिद्धाः, दृप्ता वा दर्पिताः, 'वित्थिण्णविपुलभवण-सयणा-ऽऽसण-जाण-वाहणाइण्णा' विस्तीर्णानि विस्तारवन्ति, विपुलानि प्रचुराणि, भवनानि गृहाणि, शयना-ऽऽसन-यान-वाहनैराकीर्णानि येषां ते तथा, अथवा विस्तीर्णानि विपुलानि भवनानि येषां ते, शयना-ऽऽसन-यान-वाहनानि चाकीर्णानि गुणवन्ति येषां ते तथा, तत्र यानं गन्त्र्यादि, वाहनं त्वश्वादि. 'बहुधण-बहुजायरूव-रयया' बहु प्रभूतम्, धनं गणिमादिकम्, तथा बहु एव जातरूपं सुवर्णम्, रजतं च रूप्यं येषां ते तथा, 'आओग पओगसंपउत्ता' आयोगो द्विगुणादिवृद्ध्याऽर्थप्रदानम्, प्रयोगश्च कलान्तरम्, तौ संप्रयुक्तौ व्यापारितौ यैस्ते तथा, 'विच्छड्डिअविपुलभत्त-पाणा' विच्छर्दितं विविधमुज्झितम्, बहुलोकभोजनतः उच्छिष्टावशेषसंभवात्, विच्छर्दितं वा विविधविच्छित्तिमद् विपुलं भक्तं च पानकं च येषां ते तथा, 'बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूआ' बहवो दासीदासा येषां ते, गो-महिष-गवेलकाश्च प्रभूता येषां ते तथा, गवेलका उरभ्राः. 'बहुजणस्स अपरिभूआ' बहोर्लोकस्य अपरिभवनीयाः. 'आसव' इत्यादौ क्रियाः कायिक्यादिकाः, अधिकरणं गन्त्री-यन्त्रकादि. 'कुसल' त्ति आश्रवादीनां हेयोपादेयतास्वरूपवेदिनः, 'असहेज्ज' इत्यादि. अविद्यमानं साहाय्यं परसाहाय्यकम्, अत्यन्तसमर्थत्वाद् येषां ते, 'असाहाय्यास्ते च देवादयश्च' इति कर्मधारयः, अथवा व्यस्तमेवेदम्, तेन असाहाय्याः आपद्यपि देवादि-साहायकानपेक्षाः 'स्वयं कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यम्' इत्यदीनमनोवृत्तय इत्यर्थः, अथवा पाखण्डिभिः प्रारब्धाः सम्यक्त्वावचलनं प्रति न परसाहायकमपेक्षन्ते, स्वयमेव तत्प्रतिघातसमर्थत्वात्, जिनशासनात्यन्तभावितत्वाच्चेति. तत्र देवाः वैमानिकाः, 'असुरे' त्ति असुरकुमाराः, 'नागे' त्ति नागकुमाराः, उभयेऽप्यमी भवनपतिविशेषाः. 'सुवण्णे' त्ति सद्वर्णा ज्योतिष्काः, यक्ष-राक्षस-किंनर-किंपुरुषा व्यन्तरविशेषाः; 'गरुल' त्ति गरुडध्वजाः सुपर्णकुमारा भवनपतिविशेषाः. गन्धर्वाः, महोरगाश्च व्यन्तरविशेषाः. 'अणतिक्कमणिज्ज' त्ति अनतिक्रमणीया अचालनीयाः. 'लद्धट्ठ' त्ति अर्थश्रवणात्, 'गहिअट्ठ' त्ति अर्थावधारणात्, 'पुच्छिअट्ठ' त्ति सांशयिकार्थप्रश्नकरणात्, 'अभिगहिअट्ठ' त्ति प्रश्नितार्थस्याभिगमनात्, 'विणिच्छिअट्ठ' त्ति ऐदंपर्यार्थस्योपलम्भाद् अत एव 'अट्ठि-मिंजपेम्माणुरागरत्ता' अस्थीनि च कीकसानि, मिञ्जा च तन्मध्यवर्ती धातुः-अस्थि मिञ्जास्ताः प्रेमानुरागेण सार्वज्ञप्रवचनप्रतीतिरूपकुसुम्भादिरागेण रक्ता इव रक्ता येषां ते तथा, अथवा अस्थि-मिञ्जासु जिनशासनगतप्रेमानुरागेण रक्ता ये ते तथा, केनोल्लेखेन ? इत्याह-'अयमाउसो !' इत्यादि. 'अयं' इति प्राकृतत्वाद् इदम्, 'आउसो' त्ति आयुष्मन् ! इति पुत्रादेरामन्त्रणम्. 'सेसे' त्ति शेष निर्ग्रन्थप्रवचनव्यतिरिक्तं धन-धान्य-पुत्र-कलत्र-मित्र-कुप्रवचनादिकमिति.

देवोत्पत्ति. तुंगिकाना श्रावकोनी ऋद्धि अने व्यवसाय.

३. आगळना प्रकरणमां तिर्यंचनी अने मनुष्यनी उत्पत्ति संबंधे विवेचन थइ चूक्युं छे. हवे देवनी उत्पत्ति संबंधे विचार करवा सारु आ सूत्र कहे छे केः-['तए णं समणे !' इत्यादि.] ['अड्ढ' ति] धन अने धान्य वगेरे पदार्थोथी जेओ परिपूर्ण होय तेओ आढ्य कहेवाय. ['दित्त' त्ति] दीप्त अर्थात् प्रख्यात, अथवा दृप्त एटले गर्वित, ['वित्थिण्णविपुलभवण -सयणा-ऽऽसण-जाण-वाहणा-इण्णा'] जेओनां विशाळ अने उंचा घरो पथारी-ओथी, असनोथी, यानो-गाडांओ- थी अने वाहनो-बळद, अश्व वगेरे-थी भरेलां छे, अथवा जेओनां घरो विशाळ अने उंचां छे तथा जेओनां शयनो, आसनो, यानो अने वाहनो सुंदर छे. ['बहुधण-बहुजायरूव-रयया'] जेओनी पासे घणुं धन, अने घणुं सोनुं रूपुं छे, 'धन' एटले गणवा योग्य द्रव्य वगेरे.

आयोग अने प्रयोग.

['आओग-पओगसंपउत्ता'] बमणुं, तमणुं करवानो उद्देश राखी नाणुं धीरवुं ते आयोग अने कोइ जातनो कळाकुशळ ते प्रयोग, ते बे कार्यमां तुंगिका नगरीना श्रावको चतुर हता. ['विच्छड्डिअविपुलभत्त-पाणा'] जेओने त्यां घणा माणसो जमता होवाथी एठवाड पडे छे, अथवा जेओने त्यां खाणुं, पीणुं घणुं अने विविध प्रकारनुं छे, ['बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूआ'] जेओए अनेक चाकर अने चाकरडिओ राखी छे तथा अनेक गायो, पाडाओ अने घेटां पाळ्यां छे, ['बहुजणस्स अपरिभूआ'] जेओने हरावनारे घणा मनुष्यो पण असमर्थ छे. ['आसव'] इत्यादि वाक्यमां कायिकी वगेरे ते क्रिया अने गाडुं तथा संचो वगेरे ते अधिकरण. ['कुसल' त्ति] 'आस्रव वगेरे पदार्थोना जाणे

1. मूलच्छायाः—(व्यवदानम्) अक्रियाफलम्. तद् भगवन् ! अक्रिया किंफला ? सिद्धिपर्यवसानफला प्रज्ञप्ता गौतम ! गाथाः—श्रवणं ज्ञानं च विज्ञानं प्रत्याख्यानं च संयमः, अनास्रवः तपश्चैव व्यवदानम् अक्रिया सिद्धिः—अनु०

[illegible] छोडी देवा योग्य छे अने कयो पदार्थ ग्रहण करवा योग्य छे' इत्यादि हकीकतने सारी पेठे समजनारा, ['असहेज' इत्यादि.] जेओ पोते [illegible] होवाथी बीजानी सहायताने लेता नथी अर्थात् 'करेलुं कर्म करनारे ज भोगववुं जोइए' एवी अडग मनोवृत्ति राखी दुःखना प्रसंगे [illegible] देवादिकनी सहायता लेता नथी, अथवा अत्यंत सामर्थ्यने लीधे घणा बळवान् देववगेरेथी पण जेओ स्वप्रतिज्ञाथी अचाल्य छे, अथवा [illegible] पाखंडिओ तेओने सम्यक्त्वथी चळाववा तेओना उपर आक्रमण करे छे त्यारे जेओ पोतानुं सम्यक्त्व साचववा बीजानी सहायता लेता [illegible] कारण के तेओ ते पाखंडिओने हठाववा समर्थ छे अने जिनशासनमां अत्यंत चुस्त छे. तेमां वैमानिको ते देवो, ['असुरे' त्ति] असुरकुमारो, ['नागे' त्ति] नागकुमारो, ए बन्ने एक जातना भवनपतिओ छे. ['सुवण्णे' त्ति] सारा वर्णवाळा—ज्योतिषिक देवो ते सुवर्णो, यक्ष, राक्षस, किंनर [illegible] किंपुरुष; ए बधा एक जातना व्यंतरो छे. ['गरुल' त्ति] गरुडनी निशानीवाळा सुपर्णकुमारो, तेओ एक जातना भवनपतिओ छे. गंधर्व अने महोरगो ए एक जातना व्यंतरो छे. ['अणतिक्कमणिज्ज' त्ति] जेओ चळाववा जेवा नथी, ['लद्धट्ठ' त्ति] जेओ अर्थने सांभळवाथी लब्धार्थ छे, ['गहियट्ठ' त्ति] अर्थनो निर्णय थवाथी गृहीतार्थ छे, ['पुच्छिअट्ठ' त्ति] संदेहवाळा अर्थोने पूछवाथी पृष्टार्थ छे, ['अभिगहियट्ठ' त्ति] पूछेला अर्थोनुं अभिगमन करवाथी अभिगृहीतार्थ छे, ['विणिच्छिअट्ठ' त्ति] रहस्यने प्राप्त करवाथी विनिश्चितार्थ छे, एवी जातना छे माटे ज ['अट्ठि—मिंज—पेमाणुरागरत्ता'] जाणे जेओनां हाडकां अने मज्जा, सर्वज्ञना वचन उपरना विश्वासरूप कसुंबा वगेरेना रंगथी रंगाएला न होय, अथवा हाडका अने मज्जामां जिनशासन संबंधी प्रेमानुरागथी जेओ रंगाएला छे. केवा प्रकारना उल्लेखथी ? तो कहे छे के, ['अयमाउसो' इत्यादि.] अयम्—आ, 'आउसो' एटले हे चिरंजीव !, ['सेसे' त्ति] निर्ग्रंथना प्रवचनथी जूदुं जे कांइ—पैसो, अनाज, पुत्र, स्त्री, भाइबंध अने कुप्रवचन—बीजां शास्त्रो वगेरे.

महासहाय्य.

असुरादिथी अनतिक्रमणीय.

लब्धार्थ.

गृहीतार्थ, पृष्टार्थ इत्यादि.

१. *'ऊसिअफलिह'* त्ति "उच्छ्रितमुन्नतम्, स्फटिकमिव स्फटिकं चित्तं येषां ते उच्छ्रितस्फटिकाः—मौनीन्द्रप्रवचनावाप्त्या परितुष्टमानसा इत्यर्थः" इति वृद्धव्याख्या. अन्येत्वाहुः—"उच्छ्रितः—अर्गलास्थानादपनीयोर्ध्वीकृतो न तिरश्चीनः—कपाटपश्चाद्भागादपनीत इत्यर्थः, परिघोऽर्गला येषां ते उच्छ्रितपरिघाः, अथवा उत्सृतः गृहद्वारादपगतः, परिघो येषां ते उत्सृतपरिघाः—औदार्यातिशयाद् अतिशयदानदायित्वेन भिक्षुकाणां गृहे प्रवेशार्थमनर्गलितगृहद्वारा इत्यर्थः. *'अवंगुअदुवारे'* त्ति "अप्रावृतद्वाराः कपाटादिभिरस्थगितगृहद्वारा इत्यर्थः, सद्दर्शनलाभेन न कुतोऽपि पाखण्डिकाद् बिभ्यति, शोभनमार्गपरिग्रहेणोद्घाटशिरसस्तिष्ठन्तीति भावः," इति वृद्धव्याख्या. अन्ये त्वाहुः—"भिक्षुकप्रवेशार्थमौदार्यादस्थगितगृहद्वाराः" इत्यर्थः. *'चियत्तंतेउर—घरप्पवेसा' 'चियत्तो'* त्ति लोकानां प्रीतिकर एव अन्तःपुरे वा, गृहे वा प्रवेशो येषां ते तथा, अतिधार्मिकतया सर्वत्राऽनाशङ्कनीयास्ते इत्यर्थः. अन्ये त्वाहुः—*"चियत्तो'* त्ति नाऽप्रीतिकरः, अन्तःपुर—गृहयोः प्रवेशः शिष्टजनप्रवेशनं येषां ते तथा, अनीर्ष्यालुताप्रतिपादनपरं चेदं विशेषणम् इति. अथवा *'चियत्तो'* त्ति त्यक्तः, अन्तःपुर—गृहयोः परकीययोर्यथाकथंचित् प्रवेशो यैस्ते तथा, *'बहूहिं'* इत्यादि. शीलव्रतानि अणुव्रतानि, गुणागुणव्रतानि, विरमणानि औचित्येन रागादिनिवृत्तयः, प्रत्याख्यानानि पौरुष्यादीनि, पौषधं पर्वदिनानुष्ठानम्, तत्रोपवासोऽवस्थानं पौषधोपवासः, एषां द्वन्द्वः, अतस्तैर्युक्ता इति गम्यम् 'पौषधोपवासः' इत्युक्तम्, पौषधं च यदा यथाविधं च ते कुर्वन्तो विहरन्ति तद् दर्शयन्नाह—*'चाउद्दस'* इत्यादि. इह उद्दिष्टा अमावास्या. *'पडिपुण्णं पोसहं'* त्ति आहारादिभेदात् चतुर्विधमपि सर्वतः. *'वत्थ—पडिग्गह—कंबल—पायपुंछणेणं'* त्ति इह पतद्ग्रहं पात्रम्, पादप्रोञ्छनं रजोहरणम्. *'पीढ'* इत्यादि. पीठमासनम्, फलकमवष्टम्भनफलकम्, शय्या वसतिः, बृहत्संस्तारको वा; संस्तारको वा लघुतरः, एषां समाहारद्वन्द्वः, अतस्तेन. *'अहापरिग्गहीएहिं'* ति यथाप्रतिपन्नैः—न पुनर्ह्रासं नीतैः.

१. ['ऊसिअफलिह' त्ति] "उच्छ्रित एटले उन्नत अने स्फटिक एटले स्फटिकनी जेवुं अर्थात् जेओनुं मन स्फटिक रत्ननी पेठे उन्नत छे—मुनींद्रनुं प्रवचन प्राप्त करवाथी जेओनुं मन परितुष्ट छे." ए प्रमाणे वृद्धोनी व्याख्या छे. बीजाओ तो कहे छे केः—"उच्छ्रित एटले उंचो करेलो, अर्थात् आगळीआने ठेकाणेथी दूर करीने उंचो करेलो—वांको पडेलो नहीं—बारणाना पाछला भागथी दूर करेलो, परिघ एटले आगळिओ, अर्थात् जेओनां बारणानी पाछळ आगळिओ लाग्यो नथी अथवा पोतानी उदारताने लीधे पोताने त्यां भिक्षुकोने आववा जवा माटे जेओए घरना दरवाजा उघाडा राख्या छे." ['अवंगुअदुवारे' त्ति] "जेओना घरना दरवाजाओ कमाडथी असंवृत छे—सारो मार्ग (धर्म) प्राप्त थयो छे माटे कोइ पण पाखंडिथी बीता नथी—सारा मार्गनो लाभ थवाथी उघाडे माथे रहे छे" ए प्रमाणे वृद्धोनी व्याख्या छे. बीजाओ तो कहे छे केः—"भिक्षुकोना प्रवेशने सारु पोतानी उदारताने लइने जेओना दरवाजाओ खुला छे." ['चियत्तंतेउर—घरप्पवेसा'] अंतःपुर के घरमां जेओना प्रवेशथी लोको खुश थाय छे अर्थात् जेओ अत्यंत धर्मचुस्त छे माटे तेओना उपर कोइने कोइ पण जातनी शंका ज नथी आवती. बीजाओ तो कहे छे केः—"जेओना अंतःपुर के घरमां कोइ सत्पुरुष प्रवेश करे तो जेओने अप्रीति नथी थती, कारण के तेओने ईर्ष्या नथी. आ विशेषण 'तेओ अदेखा नथी' ए वातने सूचववा आप्युं छे. अथवा बीजाना अंतःपुर के घरे जवानुं जेओए छोडी दीधेलुं छे. ['बहूहिं' इत्यादि.] अणुव्रत ते शीलव्रत, गुणव्रत ते गुण, उचिततापूर्वक राग, द्वेष वगेरेथी निवर्तवुं ते विरमण. पौरुषी (पोरशी) वगेरे पच्चक्खाण, पर्वना दिवस संबंधी अनुष्ठान ते पौषध, तेमां जे रहेवुं ते पौषधोपवास. हमणां 'पौषधोपवास' एम कह्युं, हवे ज्यारे पौषधने करीने जेवी रीते रहे छे ते वातने जणावतां कहे छे केः—['चाउद्दस' इत्यादि.] अ हीं 'उद्दिट्ठा' शब्दनो अमावास्या—अमास—अर्थ करवो. ['पडिपुण्णं पोसहं' ति] आहार वगेरेना भेदथी सर्वथा चारे प्रकारना पौषधने. ['वत्थ—पडिग्गह—कंबल—पायपुंछणेणं' ति] अहीं प्रतिग्रह एटले पात्र—वासण, पादप्रोञ्छन एटले रजोहरण. ['पीढ' इत्यादि.] पीठ एटले आसन, फलक एटले ओठींगण देवा सारु पाटियुं, शय्या एटले वसति अथवा मोटो संथारो; नानो संथारो ते संस्तारक. ['अहापरिग्गहीएहिं' ति] यथाप्रतिपन्न अर्थात् ह्रासने नहीं पामेलां.

उच्छ्रितपरिघ.

अप्रावृतद्वार.

त्यक्त अंतःपुर प्रवेश.

---

१. [illegible] आ शब्दनी [illegible]. २. आ शब्द पुत्र वगेरेना आमंत्रणनो सूचक छे. ३. अहीं बधा शब्दनो द्वन्द्व समास [illegible]—अनुवादक.

५. 'थेरे' त्ति श्रुतवृद्धाः. 'रूवसंपन्न' त्ति इह रूपं सुविहितनेपथ्यम्, शरीरसुन्दरता वा; तेन संपन्ना युक्ता रूपसंपन्नाः, 'लज्जा–लाघवसंपन्न' त्ति लज्जा प्रसिद्धा, संयमो वा; लाघवं द्रव्यतोऽल्पोपधित्वम्, भावतो गौरवत्यागः. 'ओयंसि' त्ति ओजस्विनो मानसावष्टम्भनयुक्ताः, 'तेयंसि' त्ति तेजस्विनः शरीरप्रभायुक्ताः, 'वचंसि' त्ति वर्चस्विनो विशिष्टप्रभावोपेताः, वचस्विनो वा विशिष्टवचनयुक्ताः, 'जसंसि' त्ति ख्यातिमन्तः, अनुस्वारश्चैतेषु प्राकृतत्वात्. 'जीविआसा–मरणभयविप्पमुक्के' त्ति जीविताशया, मरणभयेन च विप्रमुक्ता ये ते तथा, इह 'यावत्' करणाद् इदं दृश्यम्–"तवप्पहाणा, गुणप्पहाणा" गुणाश्च संयमगुणाः, तपः–संयमग्रहणं चेह तपः–संयमयोः प्रधान-मोक्षाङ्गताभिधानार्थम्. तथा "करणप्पहाणा, चरणप्पहाणा" तत्र करणं पिण्डविशुद्ध्यादि, चरणं व्रत–श्रमणधर्मादि. "निग्गहप्पहाणा" निग्रहोऽन्यायकारिणां दण्डः, "निच्छयप्पहाणा" निश्चयोऽवश्यंकरणाभ्युपगमः, तत्त्वनिर्णयो वा. "मद्दवप्पहाणा, अज्जवप्पहाणा" ननु जितक्रोधादित्वाद् मार्दवादिप्रधानत्वमवगम्यत एव, तत् किं 'मार्दव' इत्यादिना ? उच्यते, तत्र उदयविफलता उक्ता, मार्दवादिप्रधानतायां तूदयाभाव एवेति. "लाघवप्पहाणा"–लाघवं क्रियासु दक्षत्वम्. "खंतिप्पहाणा, मुत्तिपहाणा, एवं विज्जा–मंत–वेय–बंभ–नय–नियम–सच्च–सोयप्पहाणा, चारुपण्णा" सत्प्रज्ञाः. "सोहि"–शुद्धिहेतुत्वेन शोधयः, सुहृदो वा मित्राणि जीवानामिति गम्यम्. "अणियाणा, अप्पुस्सुया, अबहिल्लेसा 'सुसामण्णरया, अच्छिद्दपसिणवागरणा" त्ति–अच्छिद्राण्यविरलानि निर्दूषणानि वा प्रश्नव्याकरणानि येषां ते तथा. 'कुत्तिआवणभूय' त्ति कुत्रिकं स्वर्ग–मर्त्य–पाताललक्षणं भूमित्रयम्, तत्संभवं वस्तु अपि कुत्रिकम्, तत्संपादक आपणो हट्टः–कुत्रिकापणः–तद्भूताः. समीहितार्थसंपादनलब्धियुक्तत्वेन, सकलगुणोपेतत्वेन वा तदुपमाः, 'सद्धिं' त्ति सार्धम्, सहेत्यर्थः. संपरिवुडाः–सम्यक् परिवारिताः–परिकरभावेन परिकरिता इत्यर्थः. पञ्चभिः श्रमणशतैरेव. 'सिंघाडग' त्ति शृङ्गाटकफलकारं स्थानकम्, त्रिकम्–रथ्यात्रय-मीलनस्थानम्, चतुष्कम्–रथ्याचतुष्कमीलनस्थानम्, चत्वरं बहुतररथ्यामीलनस्थानम्, महापथो राजमार्गः, पन्था रथ्यामात्रम्, 'यावत्' करणात् 'बहुजणसद्दे इ वा' इत्यादिपूर्वमाख्यातमत्र दृश्यम्.

स्थविर भगवंतोनुं वर्णन.

५. ['थेरे' त्ति] स्थविरो श्रुतवृद्धो–ज्ञानवृद्धो, ['रूवसंपन्न' त्ति] अहीं रूप एटले सुविहित वेष अथवा शरीरनी सुंदरता, तेनाथी जे युक्त ते रूपसंपन्न, ['लज्जा–लाघवसंपन्न' त्ति] लज्जा एटले लाज अथवा संयम, लाघव एटले द्रव्यथी ओछी उपधि राखवी अने भावथी अभिमाननो त्याग करवो. ['ओयंसि' त्ति] मननी स्थिरतावाळा–अडग वृत्तिवाळा, ['[1]तेयंसि त्ति] तेजवाळा–शरीरनी प्रभावाळा, ['वचंसि' त्ति] विशिष्ट सामर्थ्यवाळा अथवा प्रभावयुक्त वक्ता, ['जसंसि' त्ति] प्रख्यातिवाळा, ['जीविआसा–मरणभयविप्पमुक्के' त्ति] जे साधुओ जीववानी दरकार विनाना छे अने मरणना भयथी रहित छे. अहीं 'यावत्' शब्द मूक्यो छे तेथी आ प्रमाणे समजवुं:–"ते साधुओ मुख्यपणे तपस्विओ छे, गुणवंतो–संयम संबंधी गुणथी युक्त–छे, 'तप अने संयम ए बन्ने मुख्यपणे मोक्षनां कारण छे' ए वातने जणाववा सारु अहीं तप अने संयम ए बन्नेनुं ग्रहण कर्युं छे. तथा ते साधुओ करणप्रधान छे, चरणप्रधान छे. करण एटले पिंडविशुद्धि वगेरे अने चरण एटले व्रत अने साधुनो धर्म वगेरे. "ते साधुओ निग्रहप्रधान छे अर्थात् अन्याय करनाराओने दंडवामां मुख्य तरीके छे. निश्चयप्रधान छे–'आ कार्य तो चोक्कस करवुं ज छे' एवी अडग वृत्तिवाळा अथवा तत्त्वनो निर्णय करवामां मुख्य छे. ते साधुओमां कोमळता अने सरळता ए बन्ने गुणो मुख्य छे.

शंका.

समाधान.

शं०–ते साधुओए क्रोध, मान वगेरे आंतर शत्रुओ उपर जय मेळव्यो छे' एम कहेवाथी ज 'तेओमां सरळता अने कोमळता छे' ए वात स्वतः जणाइ जाय छे तो पण तेने फरीथी अहीं शा माटे कही ? समा०–जे स्थळे 'ते साधुओए क्रोध मान वगेरे आंतर शत्रुओ उपर जय मेळव्यो छे' एम कह्युं छे ते स्थळे एम सूचव्युं छे के, ते साधुओने कदाच क्रोधादिक कषायनो उदय थतो, पण ते कषायोदय तेओने कांइ करी शकतो न हतो अर्थात् ते कषायोदय नकामो ज छे. अने अहीं जे कह्युं छे के, 'ते साधुओमां सरळता अने कोमळता छे' एथी तो एम सूचवाय छे के, तेओने क्रोध वगेरेनो उदय ज थतो न हतो. ए रीते ए बन्ने विशेषणो भिन्न भिन्न अर्थना सूचक होवाथी सार्थक छे. तथा ते साधुओ क्रिया करवामां कुशळ हता, तथा तेओ मुख्य रीते क्षमावाळा, मुक्तिवाळा, ए प्रमाणे विद्यावाळा, मंत्रवाळा, वेदवाळा, ब्रह्मचर्यवाळा, नयवाळा, नियमवाळा, सत्यवाळा अने पवित्रतावाळा छे, तेओ सारी बुद्धिवाळा छे, शुद्धिना हेतुरूप छे अथवा सर्व जीवोना सुहृत्–मित्र–रूप छे, 'अमने अमुक तपथी अमुक फळ मळे' एवी इच्छा विनाना–निदानरहित–छे, उतावळरहित–धीरा–छे, तेओनी चित्तवृत्ति संयम सिवाय बीजे स्थळे नथी, तेओ सारी रीते साधुपणामां लीन छे, तेओनां प्रश्नत्तरो अविरल अथवा दोषरहित छे.

कुत्रिकापण जेवा.

तथा तेओ कुत्रिकापणभूत छे–स्वर्गलोक, मर्त्यलोक अने पाताललोक ए जे त्रण लोक ते 'कु (पृथ्वी) त्रिक' कहेवाय. ते त्रण लोकमां पेदा थनारी वस्तु, जे दुकाने मळे ते दुकान 'कुत्रिकापण' कहेवाय, ते साधुओ आ कुत्रिकापणभूत छे अर्थात् इच्छित पदार्थने मेळवी आपवामां समर्थ छे, अथवा सर्व गुण संपन्न छे. एवा छे माटे ज तेओनी सरखामणी कुत्रिकापण साथे करी छे. ['सद्धिं' त्ति] साथे, संपरीवुड एटले सारी रीते परिवरेला–सारा परिवार सहित पधारेला–पांचसे साधुओ साथे समवसरेला.

शृंगाटक.

त्रिक. चतुष्क. चत्वर.

महापथ. पथ.

['सिंघाडग' त्ति] सिंगोडाना जेवो घाटवाळो मार्ग, ज्यां त्रण शेरीओ भेगी थाय ते त्रिक, ज्यां चार शेरीओ भेगी थाय ते चतुष्क–चोक, ज्यां अनेक शेरीओ भेगी थाय ते चत्वर, राजमार्ग ते महापथ–सरीयाम रस्तो, मात्र एक शेरी ते पंथ, अहीं 'यावत्'–शब्द मूकेलो होवाथी आगळनी हकीकत जाणवानी छे. ते आ छे:–'ते रस्ताओमां अनेक माणसोनो शब्द थतो हतो' इत्यादि.

---

१. आ बधा शब्दोमां प्राकृतशैलीने लीधे अनुस्वार [illegible]

६. 'पडिसुणेंति' त्ति अभ्युपगच्छन्ति. 'सयाइं' ति स्वकीयानि. 'कयबलिकम्म' त्ति स्नानानन्तरं कृतं बलिकर्म यैः स्वगृहदेवतानां ते तथा, 'कयकोउय–मंगल–पायच्छित्त' त्ति कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्यं करणीयत्वाद् यैस्ते तथा, अन्ये त्वाहुः–"'पायच्छित्त' त्ति पादेन, पादे वा छुप्ताः चक्षुर्दोषपरिहारार्थं पादच्छुप्ताः–कृतकौतुकमङ्गलाश्च ते पादच्छुप्ताश्चेति विग्रहः–तत्र कौतुकानि मषीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थक–दध्य–क्षत–दूर्वाङ्कुरादीनि." 'सुद्धप्पावेसाइं' ति शुद्धात्मानि वेष्याणि वेषोचितानि अथवा शुद्धानि च तानि प्रवेश्यानि च राजादिसभाप्रवेशोचितानि शुद्धप्रवेश्यानि 'वत्थाइं पवराइं परिहिय' त्ति क्वचिद् दृश्यते, क्वचिच्च 'वत्थाइं पवरपरिहिय' त्ति तत्र प्रथमपाठो व्यक्तः, द्वितीयस्तु प्रवरं यथा भवतीत्येवं परिहिताः प्रवरपरिहिताः. 'पायविहारचारेणं' ति पादविहारेण न यानविहारेण यश्चारः गमनं स तथा तेन, 'अभिगमेणं' ति प्रतिपत्त्याऽभिगच्छन्ति–समीपं गच्छन्ति, 'सचित्ताणं' ति पुष्प–ताम्बूलादीनाम् 'विउसरणयाए' त्ति व्यवसर्जनया–त्यागेन, 'अचित्ताणं' ति वस्त्र–मुद्रिकादीनाम् 'अविउसरणयाए' त्ति अत्यागेन, 'एग–साडिएणं' ति अनेकोत्तरीयशाटकानां निषेधार्थमुक्तम्, 'उत्तरासंगकरणेणं' ति उत्तरासङ्गः–उत्तरीयस्य देहे न्यासविशेषः. चक्षुस्पर्शे दृष्टिपाते, 'एगत्तीकरणेणं' ति अनेकत्वस्य अनेकालम्बनत्वस्य एकत्वकरणमेकालम्बनत्वकरणमेकत्वीकरणं तेन, 'तिविहाए पज्जुवासणाए' त्ति इह पर्युपासनात्रैविध्यं मनो–वाक्–कायभेदादिति. 'महइमहालिआए' त्ति आलप्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वाद् महातिमहत्याः. 'अणण्हयफले' त्ति न आश्रवः अनाश्रवः, अनाश्रवो नवकर्मानुपादानं फलमस्येत्यनाश्रवफलः संयमः, 'वोदाणफले' त्ति 'दाप् लवने' अथवा 'दैप् शोधने' इति वचनाद् व्यवदानं पूर्वकृतकर्मवनगहनस्य लवनम्, प्राक्कृतकर्मकचवरशोधनं वा फलं यस्य तद् व्यवदानफलं तप इति. 'किंपत्तियं' ति कः प्रत्ययः–कारणं यत्र तत् किंप्रत्ययम्–निष्कारणमेव देवा देवलोकेषूत्पद्यन्ते, तपः–संयमयोरुक्तनीत्या तदकारणत्वादित्यभिप्रायः. 'पुव्वतवेणं' ति पूर्वतपः सरागावस्थाभावितपस्या, वीतरागावस्थाऽपेक्षया सरागावस्थायाः पूर्वकालभावित्वात्. एवं संयमोऽपि अयथाख्यात–चारित्रमित्यर्थः. ततश्च सरागकृतेन संयमेन, तपसा च देवत्वावाप्तिः, रागांशस्य कर्मबन्धहेतुत्वात्. 'कम्मियाए' त्ति कर्म विद्यते यस्यासौ कर्मी, तद्भावस्तत्ता तया–कर्मितया. अन्ये त्वाहुः–"कर्मणां विकारः कार्मिका, तया अक्षीणेन कर्मशेषेण देवत्वावाप्तिरित्यर्थः" 'संगि–याए' त्ति संगो यस्याऽस्ति स संगी, तद्भावस्तत्ता तया–संगितया; तत्संगो हि द्रव्यादिषु संयमादि युक्तोऽपि कर्म बध्नाति ततः संगितया देवत्वावाप्तिरिति. आह चः–"पुव्वतव–संजमा होंति रागिणो पच्छिमा अरागस्स, रागो संगो वुत्तो संगा कम्मं भवो तेणं." 'सच्चे णं' इत्यादि. सत्योऽयमर्थः, कस्मात्? इत्याह—'नो चेव णं' इत्यादि. नैव आत्मभाववक्तव्यतयाऽयमर्थः–आत्मभाव एव स्वाभिप्राय एव न वस्तुतत्त्वम्, वक्तव्यो वाच्योऽभिमानाद् येषां ते आत्मभाववक्तव्याः, तेषां भावः आत्मभाववक्तव्यता अहंमानिता, तया–न वयमहंमानितया एवं ब्रूमः, अपि तु परमार्थ एवायमेवंविध इति भावना.

६. ['पडिसुणेंति' त्ति] स्वीकार करे छे. ['सयाइं' ति] पोतानां. ['कयबलिकम्म' त्ति] न्हाया पछी जेओए (जे श्रावकोए) पोताना गृहदेवता–ओनी पूजा करी हती, ['कयकोउअ–मंगल–पायच्छित्त' त्ति] जेओए खास करवां जेवां होवाथी दुःस्वप्न वगेरेना नाशने माटे कौतुक अने मंगळरूप प्रायश्चित्त कर्या छे. बीजाओ तो कहे छे के, "'पायच्छित्त' एटले पादच्छुप्त अर्थात् नेत्रना रोगने दूर करवा माटे जेओ पोताना पगे अमुक जातनां तेलनुं विलेपन करे छे अने जेओए कौतुक अने मंगल कर्युं छे." कौतुक एटले मषनुं तिलक वगेरे. मंगल एटले सरसव, दहीं, चोखा अने धरोना अंकुर वगेरे. ['सुद्धप्पावेसाइं' ति] चोक्खां अने वेषने (पहेरवाने) योग्य अथवा चोक्खां अने राजसभा वगेरे स्थळे पहेरीने जवा योग्य एवां ['वत्थाइं पवराइं परिहिअ' त्ति] उत्तम वस्त्रोने जेओए पहेरेलां छे. कोइ ठेकाणे ['वत्थाइं पवरपरिहिअ' त्ति] एवो पाठ छे. तेनो अर्थ आ छेः–जेओए वस्त्रोने उत्तम प्रकारे पहेर्यां छे. ['पायविहारचारेणं' ति] पगे चालीने, नहीं के गाडामां बेसीने, ['अभिगमेणं' ति] बहुमानपूर्वक पासे जाय छे. ['सचित्ताणं' ति] फूल अने तंबोळ वगेरेने ['विउसरणयाए' त्ति] छोडी दइने, ['अचित्ताणं' ति] कपडां अने वींटी वगेरेने ['अविउसरणयाए' त्ति] पासे राखीने, ['एगसाडिएणं' ति] एक खेस राखीने, नहीं के अनेक खेसो राखीने अर्थात् ['उत्तरासंगकरणेणं' ति] खेसने अनोइनी पेठ राखीने तथा ते साधुओनी नजर पडे के तुरत ज चित्तने ['एगत्तीकरणेणं' ति] एकाग्र करीने अर्थात् अनेक विषयमां ममता तजीने एक विषयमां स्थिर राखीने, ['तिविहाए पज्जुवासणाए' त्ति] मन, वचन अने कायपूर्वक सेवा करीने–ए त्रण प्रकारनी सेवावडे ते श्रावको ते साधुओनी उपासना करे छे. ['महइमहालिआए' त्ति] ते साधुओए ते मोटामांमोटी सभामां धर्मनो उपदेश कर्यो. ['अणण्हयफले' त्ति] नवां कर्मोनुं ग्रहण न करवुं ते अनाश्रव, जेनुं फळ अनाश्रव छे ते 'अनाश्रवफल' अर्थात् संयम, ['वोदाणफले' त्ति] व्यवदान एटले कर्मना गहन वनने कापवुं के जूनां कर्मो रूप कचरानुं शोधन करवुं, जे क्रियानुं फळ व्यवदान छे ते 'व्यवदानफल' अर्थात् तप. ['किंपत्तियं' ति] देवोने देवलोकमां उत्पन्न थवानुं शुं कारण छे? आगळ कहेल रीत प्रमाणे, संयम अने तप ए बन्नेमांनुं एक पण देव थवामां कारण नथी, त्यारे शुं देवो विना कारणे ज देवलोकमां उत्पन्न थाय छे? ['पुव्वतवेणं' ति] जे तपश्चर्या रागवाळी स्थितिमां करी छे ते 'पूर्वतप' कहेवाय, कारण के रागवाळी स्थिति, राग रहित स्थितिथी पूर्व काळे होय छे. ए प्रमाणे संयम संबंधे पण जाणवुं अर्थात् अहीं 'संयम' एटले 'अयथाख्यातचारित्र' समजवुं.

श्रावकोनी स्थविरो–पासे जवानी तैयारी.

पांच प्रकारना अभिगम.

अनाश्रव.

व्यवदान.

देवोनी देवलोकमां उत्पत्तिनुं शुं कारण?

पूर्वतप.

---

१. प्र० छाया:—पूर्वतपः—संयमा भवन्ति रागिणः, पश्चिमा अरागस्य, रागः संग उक्तः, संगात् कर्म, भवस्तेनः—अनु०

[illegible]

तात्पर्य ए के, रागनो भाग कर्म बंधनुं कारण होय ज छे माटे रागवाळी स्थितिमां तपेल तप अने आचरेल संयम, ए बधे देव [illegible] [illegible] [illegible]. [‘कम्मियाए’ त्ति] कर्मवाळो होय ते ‘कर्मी’ अने तेनो जे स्वभाव ते कर्मिता–कर्मिपणुं–तेवडे. बीजाओ तो कहे छे के,–“[illegible] [illegible] ‘कार्मिका’–तेवडे अर्थात् कर्मना बाकी रहेल भागवडे देवपणुं पामी शकाय छे. [‘संगियाए’ त्ति] संगवाळो होय ते ‘संगी’ अने तेनो जे [illegible] ते संगिता–संगिपणुं–तेवडे–द्रव्यादिकमां संयमादिथी युक्त पण संग कर्म बंधनुं कारण छे माटे ते संगिपणाथी देवपणुं पामी शकाय छे. कह्युं छे के– “रागवाळा प्राणिना तप अने संयम ते ‘पूर्वतप’ ‘पूर्वसंयम’ कहेवाय अने वीतरागना तप तथा संयम ते ‘पश्चिमतप’ अने ‘पश्चिमसंयम’ [illegible] राग एटले संग, संगथी कर्म बंधाय छे अने तेनाथी संसार उपजे छे.” [‘सच्चे णं’ इत्यादि.] आ वात साची छे, शाथी ? तो कहे छे के– [‘नो चेव णं’ इत्यादि.] जेओ मात्र पोतानो अभिप्राय ज जणावे पण वस्तुस्वरूपने न कहे ते ‘आत्मभाववक्तव्य’ अर्थात् अभिमानी–तेपणुं [illegible] तेवडे–अमे अमारी वडाइ जणाववा कांइ कहेता नथी, पण ए प्रमाणे साची वात छे माटे कहीए छीए एम भावना करवी.

कर्मिपणुं. संगिपणुं. [illegible] शाथी? [illegible] विनाना– छे तेथी.

७. *‘अतुरिअं’* ति कायिकत्वरारहितम्, *‘अचवलं’* ति मानसचापलरहितम्, *‘असंभंते’* त्ति असंभ्रान्तज्ञानः, *‘घरसमुदाणस्स’* [illegible] समुदानं भैक्षं गृहसमुदानम्, तस्मै गृहसमुदानाय *‘भिक्खायरियाए’* त्ति भिक्षासमाचारेण,–*‘जुगंतरपलोअणाए’* त्ति युगं यूपः तत्प्रमाणमन्तरं स्वदेहदेशस्य, दृष्टिपातदेशस्य च व्यवधानं प्रलोकयति या सा युगान्तरप्रलोकना, तया दृष्ट्या, *‘रियं’* ति ईर्यां गमनम्, *‘से कहमेअं मन्ने एवं’* ति अथ कथम् एतत्–स्थविरवचनम् ‘मन्ये’ इति वितर्कार्थो निपातः एवम्–अमुना प्रकारेण, इति बहुजनवचनम्. *‘पभू णं’* ति प्रभवः–समर्थाः, *‘ते समिआ णं’* ति ‘सम्यग्’ इति प्रशंसार्थो निपातः, तेन सम्यक्त्वे व्याकर्तुं वर्तन्ते–अविपर्यासाद् इत्यर्थः, सम्यञ्चन्तीति वा सम्यञ्चः, समिता वा सम्यक्प्रवृत्तयः, श्रमिता वा अभ्यासवन्तः, *‘आउजिअ’* त्ति आयोगिकाः–उपयोगवन्तो ज्ञानिन इत्यर्थः–जानन्तीति भावः. *‘पलिउजिअ’* त्ति परि समन्तात्, योगिकाः परिज्ञानिन इत्यर्थः–परीजानन्तीति भावः.

अत्वरित वगेरे. युगांतर प्रलोकन. ते एम केम ? प्रभु. समित. आयोगिक. प्रायोगिक.

७. [‘अतुरिअं’ ति] शारीरिक चपलता सिवाय, [‘अचवलं’ ति] मानसिक वेग सिवाय, [‘असंभंते’ त्ति] अभ्रांत ज्ञानवाळो, [‘घरसमुदाणस्स’] समुदान एटले भिख, घरोने विषे जे भिख ते गृहसमुदान–तेने माटे, [‘भिक्खायरियाए’ त्ति] भिक्षा लेवानी विधिपूर्वक, [‘जुगंतरपलोअणाए’ त्ति] चालती वखते पोताना शरीरनो भाग अने नजरे मळातो भाग, ए बे भागनी वच्चे धुंसरा जेटलुं जे अंतर ते ‘युगांतर’ कहेवाय, युगांतर सुधी जोनारी नजर ते युगांतर प्रलोकना–तेवडे, [‘रियं’ ति] ईर्या अथवा गमन–जवुं. [‘से कहमेअं मन्ने एवं’ ति] ‘हवे ए स्थविरनुं वचन ए प्रमाणे केम होय ?’ ए प्रमाणे अनेक माणसोनुं कहेवुं छे. [‘पभू णं’ ति] ते साधुओ समर्थ छे ? [‘ते समिआ णं’ ति] सम्यक्त्व विषयक कथन करवाने समर्थ छे–विपरीत ज्ञान विनाना छे ? अथवा तेओ सारी प्रवृत्तिवाळा के अभ्यासिओ छे ? [‘आउजिअ’ त्ति] उपयोग–ज्ञान–वाळा छे–शुं तेओ ए वातने जाणे छे ? [‘पलिउजिअ’ त्ति] सर्व प्रकारे ज्ञानवाळा छे ?

८. अनन्तरं श्रमणपर्युपासनासंविधानकम् उक्तम्. अथ सा यत्फला तद्दर्शनार्थम् आह–*‘तहारूवं’* इत्यादि. तथारूपम्–उचितस्वभावम्–कंचनपुरुषम्, श्रमणं वा तपोयुक्तम्, उपलक्षणत्वादस्य उत्तरगुणवन्तमित्यर्थः. माहनं वा–स्वयं हननिवृत्तत्वात् परं प्रति ‘मा हन’ इति वादिनम्, उपलक्षणत्वादेव मूलगुणयुक्तमिति भावः ‘वा’ शब्दौ समुच्चये, अथवा श्रमणः साधुः, माहनः श्रावकः. *‘सवणफले’* त्ति सिद्धान्तश्रवणफला, *‘णाणफले’* त्ति श्रुतं ज्ञानफलम्, श्रवणाद् हि श्रुतज्ञानमवाप्यते, *‘विन्नाणफले’* त्ति विशिष्टज्ञानफलम्, श्रुतज्ञानाद् हि हेयोपादेयविवेककारि विज्ञानमुत्पद्यते एव, *‘पच्चक्खाणफले’* त्ति विनिवृत्तिफलम्, विशिष्टज्ञानी हि पापं प्रत्याख्याति, *‘संजमफले’* त्ति कृतप्रत्याख्यानस्य हि संयमो भवत्येव, *‘अणण्हयफले’* त्ति अनाश्रवफलः, संयमवान् किल नवं कर्म नोपादत्ते, *‘तवफले’* त्ति अनाश्रवो हि लघुकर्मत्वात् तपस्यतीति. *‘वोदाणफले’* त्ति व्यवदानं कर्मनिर्जरणम्, तपसा हि पुरातनं कर्म निर्जरयति, *‘अकिरियाफले’* त्ति योगनिरोधफलम्, कर्मनिर्जरातो हि योगनिरोधं कुरुते, *‘सिद्धिपज्जवसाणफले’* त्ति सिद्धिलक्षणं पर्यवसानफलम्–सकलफलपर्यन्तवर्तिफलं यस्याः सा तथा, *‘गाह’* त्ति संग्रहगाथा. एतल्लक्षणं चैतद् “विषमाक्षरपादं वा” इत्यादि छन्दःशास्त्रप्रसिद्धमिति.

साधुसेवानुं उत्तरोत्तर फळ. शास्त्रश्रवण. ज्ञान. विज्ञान. प्रत्याख्यान. संयम. अनाश्रव. तप. व्यवदान. अक्रिया. सिद्धि.

८. आगळना प्रकरणमां साधुसेवा विषेनी हकीकत कही छे अने हवे ते साधुसेवाथी शुं लाभ थाय छे ते वातने देखाडवा कहे छे केः–[‘तहारूवं’ इत्यादि.] तथारूप–उचित स्वभाववाळा–कोइ पुरुषने अथवा तपस्वि श्रमणने, आ वात उपलक्षणरूप होवाथी कोइ पण उत्तरगुणवाळाने, के माहनने, जे पोते हिंसाथी अळगो होय अने बीजाने ‘हणो नहीं’ एम कहेनारो होय, ते ‘माहन’. आ वात उपलक्षणरूप होवाथी कोइ पण ‘मूलगुणवाळाने’ अथवा श्रमण ते साधु अने माहन ते श्रावक–तेने. [‘सवणफले’ त्ति] शास्त्रनुं श्रवण करवुं ए साधुओनी सेवानुं फळ छे. [‘णाणफले’ त्ति] शास्त्रनुं श्रवण करवाथी ज्ञान थाय छे–श्रुतज्ञान, सांभळवाथी ज थाय छे, [‘विन्नाणफले’ त्ति] श्रुतज्ञानथी विज्ञान थाय छे– श्रुतज्ञानथी ‘आ चीज त्यजवा लायक छे’ ‘आ चीज राखवा लायक छे’ ए प्रमाणे विवेक करनारुं विज्ञान थाय ज छे, [‘पच्चक्खाणफले’ त्ति] विज्ञानथी निवृत्ति मळी शके छे अर्थात् जेने विशेष ज्ञान होय ते पापथी अटके छे, [‘संजमफले’ त्ति] निवृत्ति पामनार मनुष्यने संयम होय ज छे, [‘अणण्हयफले’ त्ति] संयमनुं फळ अनाश्रव छे अर्थात् संयमवाळो जीव नवुं कर्म बांधतो नथी, [‘तवफले’ त्ति] आश्रव विनानो जीव हळुकर्मी होवाथी तप करे छे, [‘वोदाणफले’ त्ति] व्यवदान एटले कर्मनुं खरी पडवुं, तप करवाथी जूनुं कर्म नाश पामे छे, [‘अकिरियाफले’ त्ति] अने तेम थवाथी बधा योगो निरोधाय छे अर्थात् कर्मनी निर्जरा थवाथी जीव योगनो निरोध करे छे, [‘सिद्धिपज्जवसाणफले’ त्ति] अने योग निरोध करवाथी सौथी छेवटनुं–छेल्लामां छेल्लुं–सिद्धि–मुक्ति–रूप फळ मळे छे. [‘गाह’ त्ति] गाथा एटले संग्रह गाथा. एनुं लक्षण “[illegible] विषम अक्षरवाळा होय” इत्यादि प्रकारे छंदःशास्त्रमां प्रसिद्ध छे.

---

१. आ शब्द वितर्कसूचक अव्यय छे. २. बन्ने ‘वा’ शब्द समुच्चयसूचक छे.–[illegible]

राजगृहनो उनापाणीनो कुंड.

४७. प्र०—अन्नउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, भासंति, [illegible], परूवेंति–एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारस्स [illegible] अहे एत्थ णं महं एगे हरए अप्पे (अघे) पन्नत्ते, [illegible] जोयणाइं आयाम–विक्खंभेणं, नाणादुमसंडमंडितउद्देसे, [illegible] जाव–पडिरूवे. तत्थ णं बहवे उराला बलाहया संसेयंति, [illegible], वासंति; तव्वइरित्ते य णं सया समिओ उसिणे, उसिणे [illegible] अभिनिस्सवइ. से कहं एअं भंते ! एवं ?

४७. प्र०—हे भगवन् ! अन्यतीर्थिको आ प्रमाणे कहे छे, आ प्रमाणे भाखे छे, जणावे छे अने प्ररूपे छे के:—"राजगृह नगरथी बहार वैभारपर्वतनी नीचे एक मोटो पाणीनो ह्रद आवेलो छे. ते ह्रदनी लंबाइ अने पहोळाइ अनेक योजन जेटली छे. तथा ते ह्रदनो आगळनो भाग अनेक जातना वृक्षखंडोथी सुशोभित छे, शोभावाळो छे अने यावत्–ते, जोनाराओनी आंखोने ठारे तेवो छे. ते ह्रदमां अनेक उदार मेघो संस्वेदे छे, संमूर्छे छे अने वरसे छे वळी तदुपरांत ते ह्रदमांथी हमेशा उनुं उनुं अप्काय–पाणी–झर्या करे छे" हे भगवन् ! ते ए ए प्रमाणे केवी रीते छे ?

४७. उ०—गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवं आइक्खंति. जाव–जे ते एवं आइक्खंति मिच्छं ते एवं आइक्खंति, जाव–सव्वं नेयव्वं. अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, भासामि, पन्नवेमि, परूवेमि–एवं खलु रायगिहस्स नयरस्स बहिया वेभारपव्वयस्स आदूरसामंते एत्थ णं महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे पन्नत्ते, पंच धणुसयाइं आयाम–विक्खंभेणं, णाणादुमसंडमंडितउद्देसे, सस्सिरीए, पासादीए, दरिसणिज्जे, अभिरूवे, पडिरूवे; तत्थ णं बहवे उसिणजोणीया जीवा य, पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति. विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति. तव्वइरित्ते वि य णं सया समिअं उसिणे, उसिणे आउयाए अभिनिस्सवइ, एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवे पासवणे, एस णं गोयमा ! महातवोवतीरप्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नत्ते.

४७. उ०—हे गौतम ! ते अन्यतीर्थिको जे कांइ कहे छे अने यावत्–ते अन्यतीर्थिकोए जे कह्युं छे ते (बधुं उपर प्रमाणे जाणवुं) खोटुं कह्युं छे. वळी हे गौतम ! हुं तो आ प्रमाणे कहुं छुं, भाखुं छुं, जणावुं छुं अने प्ररूपुं छुं के, राजगृह नगरनी बहार वैभारपर्वतनी पासे 'महातपोपतीरप्रभव' नामनुं प्रस्रवण–झरणुं–छे. तेनी लंबाइ अने पहोळाइ पांचसे धनुष्य जेटली छे, तेनो आगळनो भाग अनेक जातना वृक्षखंडोथी सुशोभित छे, सुंदर छे, प्रसन्नता पमाडे तेवो छे, दर्शनीय छे, रमणीय छे अने जोनारने संतोष उपजावे तेवो छे. ते झरणामां अनेक उष्ण-योनिवाळा जीवो अने पुद्गलो पाणिपणे उत्पन्न थाय छे, नाश पामे छे, च्यवे छे अने उपचय पामे छे. तदुपरांत ते झरणामांथी हमेशा-उनुं उनुं पाणी झर्या करे छे. हे गौतम ! ए 'महातपोपतीरप्रभव' नामनुं झरणुं छे अने ए 'महातपोपतीरप्रभव' नामना झरणानो अर्थ छे.

सेवं भंते !, सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ.

हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे, हे भगवन् ! ते ए प्रमाणे छे एम कही भगवंत गौतम श्रमण भगवंत महावीरने वांदे छे अने नमे छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये पंचमो उद्देसो सम्मत्तो.

१. तथारूपस्यैव श्रमणादेः पर्युपासना यथोक्तफला भवति, नाऽतथारूपस्य, असम्यग्भाषित्वात्. इति असम्यग्भाषितामेव केषाञ्चिद् [illegible] आह:—'अन्नउत्थिआ' इत्यादि. 'पव्वयस्स अहे' त्ति अधस्तात् तस्योपरि पर्वते इत्यर्थ. 'हरए' त्ति ह्रदः, 'अघे' त्ति अघाभि-[illegible], क्वचित् तु 'हरए' त्ति न दृश्यते 'अघ' इत्यस्य स्थाने 'अप्पे' त्ति दृश्यते. तत्र च आप्यः अपां प्रभवः ह्रद एव इति. 'ओराल'

---

१. मूलच्छाया:—अन्ययूथिका भगवन् एवम् आख्यान्ति, भाषन्ते, प्रज्ञापयन्ति, प्ररूपयन्ति–एवं खलु राजगृहस्य नगरस्य बहिः वैभारस्य पर्वतस्य [illegible] महान् एको ह्रदः आप्यः (अघः) प्रज्ञप्तः, अनेकानि योजनानि आयाम–विष्कम्भेण नानाद्रुमखण्डमण्डितोद्देशः, सश्रीको यावत्–प्रतिरूपः. तत्र [illegible] उदारा बलाहकाः संस्वेदन्ते, संमूर्छन्ति, वर्षन्ति; तद्व्यतिरिक्तश्च सदा समितः उष्णः, उष्णः अप्कायोऽभिनिस्रवति. तत् कथम् एतद् भगवन् ! [illegible] ! गौतम ! यत् ते अन्ययूथिका एवम् आख्यान्ति, यावत्–ये ते एवम् आख्यान्ति मिथ्या ते एवम् आख्यान्ति, यावत्–सर्वं ज्ञातव्यम्. अहं पुनर्गौतम ! [illegible] आख्यामि, भाषे, प्रज्ञापयामि, प्ररूपयामि–एवं खलु राजगृहस्य नगरस्य बहिः वैभारपर्वतस्य अदूरसामन्ते अत्र महातपोपतीरप्रभवो नाम प्रस्रवणः [illegible], पञ्च धनुःशतानि आयाम–विष्कम्भेण नानाद्रुमखण्डमण्डितोद्देशः, सश्रीकः, प्रासादीयः, दर्शनीयः, अभिरूपः, प्रतिरूपः, तत्र बहव उष्णयोनिका [illegible], पुद्गलाश्च उदकतया अवक्रामन्ति, व्युत्क्रामन्ति, च्यवन्ते, उत्पद्यन्ते. तद्व्यतिरिक्तोऽपि च सदा समितम् उष्णः, उष्णोऽप्कायः अभिनिस्रवति, [illegible] ! महातपोपतीरप्रभवः प्रस्रवणः, एष गौतम ! महातपोपतीरप्रभवस्य प्रस्रवणस्य अर्थः प्रज्ञप्तः. तदेवं भगवन् !, तदेवं भगवन् ! इति भगवान् [illegible] भगवन्तं महावीरं वन्दते, नमस्यति.—अनु.

[illegible]

ति विस्तीर्णा:, *'बलाहय'* त्ति मेघा: *'संसेअंति'* त्ति संस्विद्यन्ते–उत्पादाभिमुखीभवन्ति, *'समुच्छंति'* त्ति संमूर्छन्ति–उत्पद्यन्ते, [illegible] *य'* त्ति ह्रदपूरणाद् अतिरिक्तश्च उत्कलित इत्यर्थ:*'आउयाये'* त्ति अप्काय:, *'अभिनिस्सवइ'* त्ति अभिनि:स्रवति क्षरति. *'मिच्छं ते एवं आइक्खंति'* त्ति मिथ्यात्वं चैतदाख्यानस्य विभङ्गपूर्वकत्वात्, प्राय: सर्वज्ञवचनविरुद्धत्वात्, व्यावहारिकप्रत्यक्षेण प्रायोऽन्यथोपलम्भाच्चा-वगन्तव्यम्. *'अदूरसामंते'* त्ति नातिदूरे, नाप्यतिसमीपे इत्यर्थ:. *'एत्थ णं'* त्ति प्रज्ञापकेनोपदर्श्यमाने *'महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे'* त्ति आतप इवातप उष्णता, महांश्चासावातपश्चेति महातप:, महातपस्योपतीरं तीरसमीपे प्रभव उत्पादो यत्रासौ महातपोपतीरप्रभव:, प्रस्रवति क्षरतीति प्रस्रवण:–प्रस्यन्दन इत्यर्थ:. *'वक्कमन्ति'* उत्पद्यन्ते, *'विउक्कमन्ति'* विनश्यन्ति, एतदेव व्यत्ययेनाह–*च्यवन्ते* *'चेति'* उत्पद्यन्ते चेति. *'उक्तमेवार्थं'* निगमयन्नाह–*'एस णं'* इत्यादि. एष:–अनन्तरोक्तरूप:, एष वा अन्ययूथिकपरिकल्पित: 'आप्य'संज्ञ: महातपोपतीरप्रभव: प्रस्रवण उच्यते. तथा एष योऽयमनन्तरोक्त:–*'उसिणजोणीए'* इत्यादि. स महातपोपतीरप्रभवस्य प्रस्रवणस्याऽर्थोऽभिधानान्वर्थ: प्रज्ञप्त:.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते पञ्चम उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

९. आगळना प्रकरणमां साधुसेवाना फळ संबंधी हकीकत कही छे, आगळ साधुसेवानुं जे फळ दर्शाव्युं छे ते फळ जेवा तेवा साधुओनी सेवाथी मळतुं नथी, पण तथा प्रकारना उत्तम संतपुरुषोनी सेवा करवाथी ज पूर्वोक्त प्रकारनुं फळ मळे छे. कारण के उत्तम साधुओ सत्यभाषक–सत्यवादी–होय छे अने हलका साधुओ झुठा बोला होय छे. हवे आ प्रकरणमां केटलाक झुठा बोला साधुओ विषे हकीकत जणावे छे के, ['अन्नउत्थिया' इत्यादि.] ['पव्वयस्स अहे' त्ति] पर्वतनी नीचे अर्थात् पर्वतनी उपरना भागमां नीचे, ['हरए' त्ति] ह्रद–कुंड, ['अघे' त्ति] ते कुंडनुं नाम 'अघ' छे. कोइ पुस्तकमां तो ['हरए' त्ति] एवो पाठ नथी, अने ['अघ'] शब्दने बदले ['अप्पे' त्ति] एवो पाठ छे 'अप्प' एटले (पाणी अर्थवाळा 'आप्' शब्द उपरथी) आप्य अर्थात् पाणीनी पेदाशनुं स्थान ह्रद ज, ['ओराल' त्ति] उदार–विस्तारवाळा, ['बलाहय' त्ति] मेघो ['संसेअंति' त्ति] पडवानी तैयारीमां होय छे, ['संमुच्छंति' त्ति] पडे छे, ['तव्वइरित्ते य' त्ति] ते कुंड भराइ गया उपरांत, तेमांथी उकळेलुं–उनुं–['आउयाये' त्ति] पाणी ['अभिनिस्सवइ' त्ति] झरे छे. ['मिच्छं ते एवं आइक्खंति' त्ति] तेओनुं आ कथन खोटुं छे, कारण के तेओ विभंगज्ञानी छे, तथा घणुं करीने तेओनुं कथन सर्वज्ञना वचनथी विरुद्ध छे अने व्यावहारिक प्रत्यक्ष (आंखथी थता प्रत्यक्ष) वडे पण प्राय: तेओना कहेवा करतां उलटुं जणाय छे. (आ कारणोथी तेओनुं कथन खोटुं छे.) ['अदूरसामंते' त्ति] बहु दूर नहीं अने बहु नजीक पण नहीं–लगभग पासे, ['एत्थ णं' त्ति] आ ठेकाणे (प्रज्ञापक द्वारा देखाडाता ठेकाणे) ['महातवोवतीरप्पभवे नामं पासवणे' त्ति] आतप–उष्णता, मोटो आतप ते महातप, जेनी पेदाश महातपनी पासे छे ते 'महातपोपतीरप्रभव' कहेवाय. जे झरे ते प्रस्रवण–झरणुं. ['वक्कमंति' त्ति] उत्पन्न थाय छे, ['विउक्कमंति' त्ति] विनाश पामे छे, ए ज वातने भिन्न प्रकारे कहे छे–नाश पामे छे अने उत्पन्न थाय छे. कहेली वातनो ज उपसंहार करता कहे छे के, ['एस णं 'इत्यादि.] ए–हमणां कहेल अथवा अन्ययूथिकोए कल्पेलो जे 'आप्य' ह्रद छे ते 'महातपोपतीरप्रभव' नामनुं झरणुं कहेवाय. तथा हमणां कहेल ['उसिणजोणीए' इत्यादि.] ए सूत्रनो अर्थ ते 'महातपोपतीरप्रभव' नामना झरणानो शब्दार्थ छे.

(हाशिया: आ ह्रदविषे अन्य-तीर्थिकमत. आप्य. तेओनी असत्यता. महातपोपतीरप्रभव. ते अने आप्य ह्रद.)

---

१. आ झरणानुं नाम श्रीविशेषावश्यक सूत्रमां पण आवे छे:–

" × रायगिहे महातवोतीर-भणिनाए" × राजगृहनगरमागत: तत्र च महातपस्तीरप्रभवनाम्नि प्रस्रवणे × × गा० २४२५. (य० ग्रं० पृ०– ९७२):–अनु०

"ते राजगृह नगरमां आव्यो अने त्यां महातपस्तीरप्रभव नामना झरणानी पासे" गा० २४२५. (य० ग्रं० पृ–९७२):–अनु०

बेडारूप: समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी य: सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेव: सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्य: ॥ १ ॥

शतक २.–उद्देशक ६.

भाषा अवधारिणी छे ?—प्रज्ञापना सूत्र.—भाषापद.—

४८. प्र०–से णूणं भंते ! मन्नामि इति ओहारिणी भासा ?

४८. उ०–एवं भासापदं भाणियव्वं.

४८. प्र०–हे भगवन् ! 'भाषा अवधारिणी छे' एम हुं मानुं ?

४८. उ०—हे गौतम ! उपला प्रश्नना उत्तर माटे आखुं भाषापद जाणवुं. (भाषापद प्रज्ञापना सूत्रमां अग्यारमुं छे.)

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये छट्ठो उद्देसो सम्मत्तो.

१. पञ्चमोद्देशकान्तेऽन्ययूथिका मिथ्याभाषिण उक्ताः, अथ षष्ठे भाषास्वरूपमुच्यते, तत्र सूत्रम्–'*से णूणं भन्ते ! मन्नामीति ओहारिणी भास*' त्ति सेशब्दः अथशब्दार्थे, स च वाक्योपन्यासे. नूनमुपमानावधारणतर्कप्रश्नहेतुषु, इहावधारणे. भदन्त ! इति गुर्वामन्त्रणे. मन्ये अवबुध्ये, इति एवम्, अवधार्यतेऽवगम्यतेऽनयेत्यवधारणी अवबोधबीजभूता इत्यर्थः भाष्यते इति भाषा, तद्योग्यतया परिणामित–निसृष्ट–निसृज्यमानद्रव्यसंहतिरिति हृदयम्, एष पदार्थः. अयं पुनर्वाक्यार्थः–अथ भदन्त ! एवमहं मन्ये 'अवश्यमवधारणी भाषा' इति, एवम्— अमुना सूत्रक्रमेण भाषापदं प्रज्ञापनायामेकादशं भणितव्यमिह स्थाने. इह च भाषा द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावैः, सत्यादिभिश्च भेदैः, अन्यैश्च बहुभिः पर्यायैर्विचार्यते इति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते षष्ठ उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

१. पांचमा उद्देशकने छेडे अन्ययूथिकोने मिथ्याभाषी कह्या छे. (मिथ्याभाषिपणुं के सत्यभाषिपणुं भाषा विना संभवी शकतुं नथी माटे) हवे आ छट्ठा उद्देशकमां भाषाना स्वरूप संबंधे जणावे छे. तेमां पहेलुं सूत्र आ छेः–['से णूणं [3]भंते ! मन्नामि इति ओहारिणी भास' त्ति] मन्नामि–मन्ये–मानुं ? इति–ए प्रमाणे. जेना द्वारा अवधारण थाय ते अवधारणी अर्थात् ज्ञानमां कारणरूप. बोलाय ते भाषा–शब्दपणे परिणमेली, भाषा.

---

१. मूलच्छायाः–सद् नूनं भगवन् ! मन्ये इति अवधारणी भाषा ? एवं भाषापदं भणितव्यम्ः–अनु०

२. आ भाषापद (क० आ०) प्रज्ञापना सूत्रमां पृ० २६० थी ३९० सुधी छे. त्यां भाषा विषे अनेक नवी जाणवा जेवी वातो लखी छे. विशेषार्थिए [illegible] ते आखुं जोई लेवुं:–अनु०

३. [illegible] 'नूनम्' आ शब्द उपमान, अवधारण, तर्क, प्रश्न अने हेतु अर्थमां [illegible]

[illegible]पणे बहार काढेली अने शब्दपणे बहार कढाती जे द्रव्यसंहति ते भाषा. ए प्रमाणे शब्दार्थ छे. वाक्यनो अर्थ तो आ प्रमाणे छे–[illegible]

---

१. समस्त संसारमां 'भाषा' ए एक मोटुं तत्त्व छे. जेने लइने मनुष्योनो, सुशिक्षित (सारी रीते पढावेला) पंचेंद्रिय तिर्यंचोनो (मेना, पोपट [illegible]) बे इंद्रियवाळा जीवोनो, त्रण इंद्रियवाळा जीवोनो, चार इंद्रियवाळा जीवोनो तथा अशिक्षित (नहीं पढावेला) पंचेंद्रिय तिर्यंचोनो अने देवो [illegible] व्यवहार चाले छे. एक इंद्रियवाळा वृक्षादिक प्राणी सिवाय जगतमां बीजुं एवुं एक पण प्राणी नथी, के जे पोते कोइ पण प्रकारे बोलतुं न होय. [illegible] आम छे त्यारे. भाषा ए शुं ? भाषा क्यांथी थइ ? भाषानो आकार केवो छे ? भाषा कया प्रकारे बोलाय छे ? इत्यादि प्रश्नोनुं उद्भवन विचारको [illegible] कांइ नवाइ जेवुं नथी. आ चालु उद्देशक अने तेमां साक्षी तरीके जणावेल प्रज्ञापना सूत्रनुं भाषापद, आ संबंधे जूनी शैलीए पण कोइ [illegible] तेवुं छे. अने ते हेतुथी ज अहीं तेनुं सविस्तर विवेचन आपवुं ते उपयोगी छे. जैनोनी पदार्थगणनामां प्रधानपणे एक जीव अने बीजो अजीव छे. [illegible], अनुभववुं, याद करवुं अने यावत्–दुःखरहित सर्वथा सुखमां रमण करवुं; ए बधा जीवना स्वाभाविक गुणो छे. जैन ऋषिओए अजीव तत्त्वने बे विभागमां वेच्युं छे–एक तो अरूपी अजीव अने बीजो रूपी अजीव. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्तिकाय ए त्रणे अरूपी अजीव छे. अने [illegible] पुद्गलास्तिकाय ए रूपी अजीव गणाय छे. आपणे जे शब्दोने बोलीए छीए के सांभळीए छीए ते शब्दोनुं उपादान कारण पण ए पुद्गलास्तिकाय ज छे. जो के ए पुद्गलास्तिकायना (पुद्गलना) घणा भेदो संभवी शके छे, तो पण जो तेना संक्षेपपूर्वक भेदो पाडवा होय तो ते आठ प्रकारनुं होइ शके छे:–भाषानां पुद्गलो (भाषावर्गणा,) मननां पुद्गलो (मनोवर्गणा), श्वासोच्छ्वासनां पुद्गलो (श्वासोच्छ्वासवर्गणा), औदारिक पुद्गलो (औदारिकवर्गणा,) वैक्रिय पुद्गलो (वैक्रियवर्गणा) आहारक पुद्गलो (आहारकवर्गणा), तैजस पुद्गलो (तैजसवर्गणा) अने कार्मण पुद्गलो (कार्मणवर्गणा). जगतमां आकार धरनारी जे कांइ जड चीज छे ते बधीनो समावेश आ आठ जातनां पुद्गलोमां ज थाय छे. आ आठ सिवाय कोइ पण बीजी वस्तु नथी के जे पुद्गलरूप होय. ए पुद्गलना स्वाभाविक गुणो आ छे:–स्पर्श, रस, गंध, वर्ण (रूप), शब्द (अवाज), बंध (परस्पर संबंध), सूक्ष्मपणुं, स्थूलपणुं, कोइ जातना आकारे रहेवापणुं, कोइ रीते फाटवुं–नोखा थवुं–भेदावुं, अंधारुं, छांयो, आतप अने उद्योत. (जुओ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, पंचम अध्याय, सूत्र २३–२४) पुद्गलमां प्रत्येक अणुए अणुए तथा छेक मोटा स्कंधोमां पण ते चौदे गुणो होय छे. मात्र विशेषता एटली ज के कोइ अणुमां के स्कंधमां अमुक गुणनुं आधिक्य होय अने अमुक गुणनी ऊणप होय, या कोइ अणुमां के स्कंधमां अमुक गुणनी ज प्रबळता होय अने अमुक गुणनी अप्रबळता होय–गमे तेम होय पण प्रत्येक अणुमां पूर्वोक्त बधा गुणोनुं रहेठाण तो होय होयने होय ज. नैयायिक अने वैशेषिक विद्वानोनो एवो ख्याल छे के, स्पर्श वायुमां ज छे, रस पाणीमां ज छे, गंध पृथिवीमां ज छे, वर्ण अग्निमां ज छे अने शब्द आकाशमां ज छे अर्थात् स्पर्श वगेरे वायु वगेरेना ज गुणो छे. सांख्य विद्वानोनुं एवुं मत छे के, स्पर्शतन्मात्राथी वायु थयो छे, रसतन्मात्राथी पाणी थयुं छे, गंधतन्मात्राथी पृथिवी बनी छे, रूपतन्मात्राथी अग्नि बन्यो छे अने शब्दतन्मात्राथी आकाश बन्युं छे अर्थात् स्पर्शादिकना अणुओ वायु वगेरेनी उत्पत्तिमां कारणरूप छे. अमारा जाणवा मुजब 'तन्मात्रा', 'परमाणु' अने 'वर्गणा' ए त्रणे शब्दोनो लगभग समान अर्थ छे. अस्तु. गमे तेम हो पण आटलुं तो सुनिर्णीत ज छे के ए बधा गुणोनो आश्रय कोइ एक आकारवंत जड तत्त्व छे. अने आत्मा–जीव–तो मात्र तेनो अनुभविता अने साक्षी छे. आकाशतत्त्व पण जैनदृष्टिए बे जातनुं छे–जीवने उपयोगमां आवतुं आकाश (लोकाकाश) अने बीजुं तेथी परनुं आकाश (अलोकाकाश) उपर बतावेल आठे जातना पुद्गलोना थरेथर ए लोकाकाशमां भराएला छे. आपणे जे शब्दो बोलीए छीए तथा सांभळीए छीए ते शब्दोना अणुओ पण ते ज लोकाकाशमां ठांसोठांस भराएला छे. जैनपरिभाषामां ते शब्दनां अणुओने 'भाषावर्गणानां पुद्गलो' कहेवामां आवे छे. ते अणुओनुं स्वरूप आ छे:–ते अणुओ लोकाकाशमां स्थित छे, अनंत प्रदेशवाळां छे, तेओ रहेवा माटे असंख्य प्रदेश जेटली जग्या रोके छे. ते एक समय सुधी अने असंख्य समय सुधी पण एक स्थळे टकी शके छे पण वधारे टकतां नथी. ते अणुओमां पांचे (काळो, नीलो, लाल, पीळो अने धोळो) वर्ण छे. बे (सुगंध अने दुर्गंध) गंध छे. जो के बधा मळीने आठ (कठण, कोमळ, भारे, हळवो, ठंडो, उनो, चिकणो अने लुखो) स्पर्शो छे पण भाषानां अणुओमां फक्त चार (ठंडो, उनो, चिकणो अने लुखो) स्पर्श छे अने पांच (तिखो, कडवो, कषाएलो, खाटो अने मधुर) रस छे. ते भाषानां अणुओमां पण बे जातनां अणुओ होय छे:–केटलांक भाषापणे ग्रहणने योग्य अने केटलांक साधारण. आगळ जे स्वरूप कहेवामां आव्युं छे ते भाषाना साधारण अणुओनुं छे अने भाषापणे ग्रहणने योग्य अणुओनुं तो आ स्वरूप छे:–भाषापणे ग्रहणने योग्य अणुओमां कोइमां एक गंध अने कोइमां बे गंध होय छे, कोइमां एक रंग, बे रंग, त्रण रंग, चार रंग के कोइमां पांचे रंग होय छे. कोइमां एक रस, बे रस, त्रण रस, चार रस अने कोइमां पांचे रस होय छे तथा कोइमां (एक स्पर्श तो कोइ अणुमां होतो ज नथी.) बे स्पर्श, त्रण स्पर्श अने कोइमां चारे स्पर्श होय छे. बोलनार जण [illegible] रहेलां सर्व अणुओने भाषापणे वापरतो नथी. पण ज्यां तेनो आत्मा रहेलो छे त्यां (भाषाना–शब्दना) जे अणुओ रहेलां होय तेने ज बोलवानी [illegible] के छे. तेमां पण जे अणुओ एकदम आत्मानी लगोलग रहेलां छे ते अणुओने ज ऊंचेथी, नीचेथी, तिरछेथी, आदिथी, वचेथी के छेडेथी [illegible] वपराशमां ले छे. ते अणुओनुं ग्रहण आंतरे आंतरे थाय छे अने निरंतर पण थाय छे तथा ते अणुओने वापरी मूकी देवानो—बोलीने बहार [illegible] समय तो आंतरे आंतरे ज होय छे. जो कोइ बोलनार महाप्रयत्नवाळो होय तो तेणे बोलेल शब्दनां अणुओ [illegible] [illegible] जाय छे अने जो कोइ बोलनार मंद प्रयत्नवाळो होय तो तेणे काढेल शब्दनां अणुओ अमुक [illegible]

[illegible] छे. तात्पर्य ए छे के, शब्दनां [illegible]

[illegible] के भाषा ए अवधारणी छे ? आ प्रमाणे सूत्रना क्रमपूर्वक अहीं आखुं भाषापद कहेवुं अने ए भाषापद प्रज्ञापना सूत्रमां अग्यारमुं छे. प्रज्ञापना.

[illegible] अहींती श्रीप्रज्ञापना सूत्रना अग्यारमा भाषापद (क० आ० पृ० ३६०–३९०) उपरथी उद्धरी छे. वळी भाषाविषे सरलताए माहीती मळे ए माटे एक कोष्टक पण आप्युं छे. ते आ छेः—

भाषाविचार कोष्टक.

भाषाना प्रकार.	भाषानुं आदि कारण ?	भाषानी उत्पत्ति शाथी ?	भाषानो घाट केवो ?	भाषानो अंत क्यां?	भाषाने बोलनारा कोण अने केटला ?	भाषाने नहीं बोलनारा कोण अने केटला ?	भाषाग्रहणनो केवो अने केटलो काळ ?	भाषाने मूकवानो केवो अने केटलो काळ ?	भाषानां अणुओ क्यांथी मळे ?
सत्य भाषा.	जीव.	शरीरथी.	वज्रनी जेवो.	लोकने छेडे.	पर्याप्त मनुष्यो, नैरयिको, असुरकुमारो, स्तनितकुमारो, ज्योतिषिको, वैमानिको अने सुशिक्षित तिर्यंच पंचेंद्रियो. सत्यभाषी सौथी थोडा छे.	अपर्याप्त जीवो, सिद्धो, शैलेशी प्रतिपन्न जीवो अने एक इंद्रियवाळा जीवो. भाषाने नहीं बोलनारा जीवो अनंत छे.	केवो–सांतर अने निरंतर. केटलो सांतर–ओछामां ओछो एक समय अने वधारेमां वधारे असंख्येय समय. केटलो निरंतर-ओछामां ओछा बे समय अने वधारेमां वधारे असंख्येय समय.	केवो–सांतर. केटलो सांतर–ओछामां ओछा बे समय अने वधारेमां वधारे असंख्येय सामयिक अंतर्मुहूर्त.	छए दिशामांथी.
असत्य भाषा.	,,	,,	,,	,,	,, असत्यभाषी पूर्व करतां असंख्यगुण छे.	,,	,,	,,	,,
सत्यमृषा भाषा.	,,	,,	,,	,,	,, सत्यमृषाभाषी पूर्व करतां असंख्यगुण छे.	,,	,,	,,	,,
असत्यामृषा भाषा.	,,	,,	,,	,,	बे इंद्रियवाळा, त्रण इंद्रियवाळा, चार इंद्रियवाळा अने अशिक्षित पांच इंद्रियवाळा तिर्यंच असत्यामृषाभाषी पूर्व करतां असंख्यगुण छे.	,,	,,	,,	,,

भाषाना भेद. ते भाषा पदमां द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भाववडे तथा सत्य वगेरे भेदोवडे वळी बीजा अनेक पर्यायोवडे भाषा संबंधे विचार करेलो छे.

---

१. भाषाना भेदोनुं सूचक आ एक वृक्ष छेः—

आ भेदो संबंधे सविस्तर हकीकत तो ते ज भाषा पदथी जाणवानी छेः—अनु०

वेलारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति-शान्त्योर्, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक ७.

देवो केटला प्रकारना छे?—चार प्रकार.—भवनवासी देवोनां स्थानो क्यां छे?—प्रज्ञापना सूत्रनुं स्थानपद.—स्वर्गोनो आधार.—विमानोनी जाडाई—विमानोनी उंचाई—विमानोनो आकार.—जीवाभिगम सूत्रनो वैमानिक उद्देशक.—

४९. प्र०—कतिविहा णं भंते! देवा पन्नत्ता?

४९. प्र०—हे भगवन्! देवो केटला प्रकारना कह्या छे?

४९. उ०—गोयमा! चउव्विहा देवा पन्नत्ता, तं जहाः—भवणवइ—वाणमंत—जोइस—वेमाणिया.

४९. उ०—हे गौतम! देवो चार प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—भवनपति, वानव्यंतर, ज्योतिषिक अने वैमानिक.

५०. प्र०—कहि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता?

५०. प्र०—हे भगवन्! भवनवासी देवोनां स्थानो कये ठेकाणे आवेलां छे?

५०. उ०—गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जहा—ठाणपदे देवाणं वत्तव्वया सा भाणियव्वा, णवरं—(भवणा पन्नत्ता.) उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे एवं सव्वं भाणियव्वं, जाव—सिद्धगंडिया सम्मत्ता, कप्पाण पइट्ठाणं बाहुल्लुच्चत्तं एव संठाणं, जीवाभिगमे जाव—वेमाणिउद्देसो भाणियव्वो सव्वो.

५०. उ०—हे गौतम! ते भवनवासी देवोनां स्थानो रत्नप्रभा पृथिवीनी नीचे छे इत्यादि बधुं स्थानपदमां कहेल देवोनी वक्तव्यतानी पेठे कहेवुं. विशेष ए के, (भवनो कहेवां) अने तेओनो उपपात लोकना असंख्य भागमां थाय छे, ए बधुं कहेवुं यावत्—सिद्धगंडिका पूरी कहेवी. वळी कल्पोनुं प्रतिष्ठान, जाडाई, उंचाई अने आकार; ए बधुं जीवाभिगम सूत्रमां कहेल यावत्—वैमानिक उद्देशकनी पेठे कहेवुं,

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये सत्तमो उद्देसो सम्मत्तो.

१. भाषाविशुद्धेर्देवत्वं भवतीति देवोद्देशकः सप्तमः समारभ्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्—'*कइ णं*' इत्यादि. '*कइ णं*' ति कति देवाः? जात्यपेक्षयेति गम्यम्—कतिविधा देवा इति हृदयम्. '*जहा ठाणपए*'त्ति यथा यत्प्रकारा यादृशी प्रज्ञापनाया द्वितीयस्थानपदाख्ये पदे देवानां वक्तव्यता '*से*'त्ति तथाप्रकारा भणितव्येति. '*नवरं—भवणा पन्नत्त*' त्ति क्वचिद् दृश्यते, तस्य च फलं न सम्यगवगम्यते. देववक्तव्यता चैवम्—"*इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता, हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता, मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसहस्से एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ, बावत्तरिं च भवणावाससयसहस्सा भवन्तीतिमक्खायं*" इत्यादि. तदृतमेवाभिधेयविशेषं विशेषेण दर्शयति—'*उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे*' त्ति उपपातो भवनपतिस्वस्थानप्राप्त्याभिमुख्यम्, तेन उपपातमाश्रित्येत्यर्थः लोकस्य असंख्येयतमे भागे वर्तन्ते भवनवासिन इति. '*एवं सव्वं भाणिअव्वं*' ति एवमुक्तन्यायेनान्यदपि भणितव्यम्—तथेदम्—"*समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे*"—मारणान्तिकादिसमुद्घातवर्तिनो भवनपतयो लोकस्याऽसंख्येय एव भागे वर्तन्ते, तथा "*सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जे भागे*"—स्वस्थानस्य उक्तभवनावाससातिरेकफोटीसप्तकलक्षणस्य लोकासंख्येयभागवर्तित्वादिति, एवमसुरकुमाराणाम्, एवं तेषामेव दाक्षिणात्यानाम्, औदीच्यानाम्, एवं नागकुमारादिभवनपतीनाम्, यथौचित्येन व्यन्तराणाम्, ज्योतिष्काणाम्, वैमानिकानां च स्थानानि वाच्यानि कियद् दूरं यावत्? इत्याह—'*जाव सिद्ध*' त्ति यावत्—सिद्धगण्डिका सिद्धस्थानप्रतिपादनपरं प्रकरणम्, सा चैवम्—"*कहि णं भन्ते! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता?*" इत्यादि. इह च देवस्थानाधिकारे यत् सिद्धगण्डिकाभिधानम्, तत् स्थानाधिकारबलाद्

---

१. मूलच्छायाः—कतिविधा भगवन्! देवाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतुर्विधा देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—भवनपति–वानव्यन्तर–ज्योतिष्क–वैमानिकाः, कुत्र भगवन्! भवनवासिनां देवानां स्थानानि प्रज्ञप्तानि? गौतम! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्या यथा—स्थानपदे देवानां वक्तव्यता सा भणितव्या, नवरम्—भवनानि प्रज्ञप्तानि. उपपातेन लोकस्य असंख्येयभागे एवं सर्वं भणितव्यम्, यावत्—सिद्धिगण्डिका समाप्ता, कल्पानां प्रतिष्ठानं बाहुल्यो—च्चत्वम् एवं संस्थानम्, जीवाभिगमे यावत्—वैमानिकोद्देशको भणितव्यः सर्वः—अनु०

२. [illegible]—अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्या अशीतिउत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्याया उपरि एकं योजनसहस्रम् अवगाह्य, अधश्चैकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा, मध्ये [illegible] अत्र भवनवासिनां देवानां सप्त भवनकोट्यः, द्वासप्ततिश्च भवनाऽऽवासशतसहस्राणि भवन्ति इति आख्यातम्. ३. [illegible]. ४. [illegible]. ५. कुत्र भगवन्! सिद्धानां स्थानानि प्रज्ञप्तानि?—अनु०

[illegible]सेयम्. तथा इदमपरमपि जीवाभिगमप्रसिद्धं वाच्यम्, तद्यथाः-'कप्पाण पइट्ठाणं' कल्पविमानानामाधारो वाच्य इत्यर्थः, स चैवम्- *"सोहम्मीसाणेसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! घणोदहिपइट्ठिया पण्णत्ता"* इत्यादि. आह च:-*"घणोदहि-पइट्ठाणा सुरभवणा हुंति दोसु कप्पेसु, तिसु वाउपइट्ठाणा तदुभयसुपइट्ठिया तिसु य. तेण परं उवरिमगा आगासंतरपइट्ठिया सव्वे"* त्ति तथा 'बाहल्ले' त्ति विमानपृथिव्याः पिण्डो वाच्यः, स चैवम्:-*"सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! सत्तावीसं जोयणसयाइं"* इत्यादि. आह च:-*"सत्तावीससयाइं आइमकप्पेसु पुढविबाहल्लं, एक्किकहाणि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य"* ग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिर्योजनानां शतानि, अनुत्तरेषु तु एकविंशतिरिति. *'उच्चत्तमेव'*त्ति कल्पविमानोच्चत्वं वाच्यम् तच्चैवम्-*"सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु विमाणा केवइयं उच्चत्तेणं पन्नत्ता ? गोयमा ! पंच जोयणसयाइं"* इत्यादि. आह च:-*"पंचसय उच्चत्तेणं आइमकप्पेसु होंति य विमाणा, एक्केक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य"* ग्रैवेयकेषु दश योजनशतानि, अनुत्तरेषु तु एकादशेति. *'संठाणं'*ति विमानसंस्थानं वाच्यम्, तच्चैवम्-*"सोहम्मीसाणेसु णं भन्ते ! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! जे आवलियापविट्ठा ते वट्टा, तंसा, चउरंसा, जे आवलियाबाहिरा ते णाणासंठिय"* त्ति. उक्तार्थस्य शेषमतिदिशन्नाह-*'जीवाभिगम'* इत्यादि. स च विमानानां प्रमाण-वर्ण-प्रभा-गन्धादिप्रतिपादनार्थः.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते सप्तम उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

१. आगळना उद्देशकमां भाषा विषे हकीकत कही छे. जो भाषानी विशुद्धि प्राप्त करी होय तो देवपणुं पामी शकाय छे माटे हवे देव संबंधी हकीकत कहेवा आ सातमो उद्देशक प्रारंभाय छे अने तेनुं पहेलुं सूत्र आ छेः-['कइ णं' इत्यादि.] ['कइ णं' ति] देवो केटला छे अर्थात् देवो केटली जातना छे ? ['जहा ठाणपए' त्ति] प्रज्ञापना सूत्रना बीजा 'स्थान' नामना पदमां जे प्रकारे देवोनी वक्तव्यता कही छे ['से' त्ति] ते प्रकारे अहीं कहेवी. ['नवरं-भवणा पन्नत्त' त्ति] एवो पाठ कोइ ठेकाणे देखाय छे. पण तेनो अर्थ ठीक प्रकारे जाणी शकातो नथी. देवनी वक्तव्यता आ प्रमाणे छेः-"एंशी लाख योजन जाडी रत्नप्रभा पृथिवी उपर एक हजार योजन अवगाही, नीचे एक हजार योजन वर्जी अने वचे अठ्योतेर हजार योजन जेटली जग्यामां भवनवासी देवोना सात क्रोड अने बहोंतेर लाख भवनो छे एम कह्युं छे." ते प्रकरणमां रहेल विशेष अर्थने विशेषतापूर्वक जणावे छेः-['उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे' त्ति] उपपात एटले भवनपतिनी पोतानी स्थान प्राप्ति संबंधेनी तत्परता, तेने आश्रीने लोकना असंख्येयतम भागमां भवनवासिओ रहे छे-['एवं सव्वं भाणिअव्वं' ति] ए प्रमाणे पूर्वोक्त न्यायथी बीजुं पण कहेवुं. ते आ छेः-"समुद्घातवडे लोकना असंख्येयभागे रहे छे अर्थात् मारणांतिकादि समुद्घातमां वर्तनारा भवनपतिओ लोकना असंख्येय ज भागमां रहे छे तथा पोताना स्थानवडे लोकना असंख्येय भागमां रहे छे, कारण के तेओना सात क्रोड उपरना भवनावासो लोकना असंख्येय भागे रहे छे. ए प्रमाणे असुरकुमारो संबंधे पण जाणवुं. तथा दक्षिणना अने उत्तरना असुरकुमारो, नागकुमारादिक भवनपतिओ, यथोचितपणे व्यंतरो, ज्योतिष्को अने वैमानिको; ए बधानां पण स्थानो कहेवां. ते बधुं केटले सुधी कहेवुं ? तो कहे छे के, ['जाव सिद्धे' त्ति] सिद्धना स्थान विषेनी हकीकत जणावनार सिद्धगंडिका नामना प्रकरण सुधी. ते आ प्रमाणेः-"हे भगवन् ! सिद्धोनां स्थान क्यां कह्यां छे ?" इत्यादि. शं०-देवस्थान संबंधी प्रकरणमां सिद्धस्थान संबंधी हकीकत कहेवानुं शुं कारण ? समा० सामान्य स्थाननुं प्रकरण चालतुं होवाथी कोइ पण स्थान संबंधे कहेवामां हरकत नथी. वळी आ बीजुं पण जीवाभिगम सूत्रमां कहेलुं अहीं जाणवानुं छे. ['कप्पाण पइट्ठाणं'] अर्थात् कल्पविमानोना आधार संबंधे कहेवुं. ते आ प्रमाणेः-"हे भगवन् ! सौधर्म अने ईशान कल्पमां विमाननी पृथिवी कोने आधारे रहेली छे ? हे गौतम ! ते घनोदधिने आधारे रहेली छे." इत्यादि. कह्युं छे केः-"बे कल्पोमां रहेलां देवभवनो घनोदधिने आधारे रहेलां छे. त्रणमां वायुने आधारे रहेलां छे, त्रणमां ते बन्नेने-घनोदधि अने वायुने-आधारे रहेलां छे, अने त्यार पछीना बधां उपरनां विमानो आकाशने आधारे रहेलां छे" तथा 'बाहल्ले' त्ति विमानपृथ्वीनी जाडाई कहेवी. ते आ प्रमाणेः-"हे भगवन् ! सौधर्म अने ईशान कल्पमां विमानपृथिवीनी केटली जाडाई कही छे ? हे गौतम ! तेनी जाडाई सत्तावीशसे (२७००) योजन कही छे" इत्यादि. कह्युं छे के, "आदिना कल्पोमां २७०० योजन पृथिवीनुं बाहल्य (जाडाई) छे. बाकीनामां बेमां, बेमां, बेमां अने चारमां-एक एक सो योजन ओछां करवां." ग्रैवेयकमां २२०० योजन अने अनुत्तरमां २१०० योजन विमानपृथिवीनी जाडाई छे. ['उच्चत्तमेव' त्ति] कल्पविमानोनी उंचाइ कहेवी. ते आ प्रमाणेः-"हे भगवन् ! सौधर्म अने ईशान कल्पमां विमानो केटलां उंचां छे ? हे गौतम ! पांचसे योजन उंचां छे" इत्यादि. कह्युं छे के, "आदिना कल्पोमां विमानोनी उंचाइ पांचसे योजननी छे. बाकीनामां-बेमां, बेमां, बेमां अने चारमां-एक एक सो योजननो उमेरो करवो" ग्रैवेयकमां एक हजार योजन अने अनुत्तरमां ११०० योजन विमाननी उंचाई छे. ['संठाणं' ति] विमानोनो आकार कहेवो. ते आ प्रमाणेः-"हे भगवन् ! सौधर्म अने ईशान कल्पमां विमानोनो आकार केवा प्रकारनो छे ? हे गौतम ! जे विमानो आवलिकाप्रविष्ट (हारबंध ?) छे ते गोळ, त्रिकोण अने चारखुणिआ छे अने जे विमानो आवलिकाप्रविष्ट नथी ते अनेक प्रकारना आकारवाळा छे." कहेल वातना बाकीना भागने अतिदिशता कहे छे केः-['जीवाभिगम' इत्यादि.] विमानोनुं प्रमाण, रंग, कांति अने गंध वगेरेने जणाववा सारु ते अतिदेश कर्यो छे.

प्रज्ञापना.
टीकाकारनो सम्यग् अवगम.
जीवाभिगम.

---

१. प्र०छायाः-सौधर्म-ईशानयोः भगवन् ! कल्पयोः विमानपृथिवी किंप्रतिष्ठिता प्रज्ञप्ता ? गौतम ! घनोदधिप्रतिष्ठिता प्रज्ञप्ता. २. घनोदधिप्रतिष्ठितानि सुरभवनानि भवन्ति द्वयोः कल्पयोः, त्रिषु वातप्रतिष्ठितानि, तदुभयसुप्रतिष्ठितानि त्रिषु च. तेन परम् उपरिमकाणि आकाशान्तरप्रतिष्ठितानि सर्वाणि इति. ३. सौधर्म-ईशानयोः भगवन् ! कल्पयोः विमानपृथिवी कियती बाहल्येन प्रज्ञप्ता ? गौतम ! सप्तविंशतिः योजनशतानि. ४. सप्तविंशतिशतानि आदिमकल्पयोः पृथिवीबाहल्यम्, एकैकहानि शेषे द्वयोः द्वयोश्च द्वयोश्चतुष्के च. ५. सौधर्म-ईशानयोर्भगवन् ! कल्पयोः विमानानि कियद् उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! पञ्च योजनशतानि ६.पञ्च शतानि उच्चत्वेन आदिमकल्पयोः भवन्ति तु विमानानि, एकैकवृद्धि शेषे द्वयोः द्वयोश्च द्वयोश्चतुष्के च. ७. सौधर्म-ईशानयोर्भगवन् ! कल्पयोः विमानानि किंसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! यानि आवलिकाप्रविष्टानि तानि वृत्तानि, त्र्यस्राणि, चतुरस्राणि; यानि आवलिकाबाह्यानि तानि नानासंस्थितानि इति.

१. आ स्थानपद प्रज्ञापना सूत्रमां (क० आ० पृ० ७७-१२७) सुधी छे अने तेमांथी पृ० ९४ थी १२० सुधीनुं अहीं जाणवानुं छे. २. आ बधी जीवाभिगम सूत्रमां कहेली (क० आ० ९००-९५५) पानानी हकीकत जाणवीः-अनु०

वेदारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगततरवरो [illegible]-[illegible], [illegible] श्रीवीरदेवः [illegible] ॥ १ ॥

शतक २.–उद्देशक ८.

चमरनी सुधर्मा सभा क्यां छे ?—जंबूद्वीपमां मंदर पर्वतनी दक्षिणे.—अरुणवर द्वीप.—तेनो वेदिकांत.—उत्पातपर्वत नामे तिगिच्छकूट.—तेनुं प्रमाण.—गोस्तुभ नामे आवासपर्वतनी समानता.—पद्मवरवेदिका.—वनखंड.—ते बन्नेनुं वर्णन.—एक प्रासादावतंसक.—तेनुं प्रमाण अने वर्णन.—मणिपीठिका.—अरुणोदय समुद्र.—चमरचंचा राजधानी.—तेनो किल्लो.—सुधर्मा सभा.—जिनगृह.—उपपात सभा.—ह्रद.—अभिषेक.—अलंकार.—विजयदेव.—चमरनुं कल्पपणुं.—

५१. प्र०—केहिं णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता ?

५१. प्र०—हे भगवन् ! असुरकुमारोना इंद्र अने तेओना राजा चमरनी सुधर्मा नामनी सभा क्यां कहेली छे–ते सभा कये ठेकाणे आवी छे ?

५१. उ०—गोयमा ! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीव–समुद्दे वीइवइत्ता अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसयसहस्साइं. ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिन्दस्स असुरकुमाररण्णो तिगिच्छियकूडे नामं उप्पायपव्वए पन्नत्ते, सत्तरस-एकवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारितीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं, गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पमाणेणं नेयव्वं, नवरं–उवरिल्लं पमाणं मज्झे भाणियव्वं–[मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मज्झे चतारि चउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं उवरिं सत्ततेवीसे जोयणसये विक्खंभेणं, मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं, दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगुयाले जोयणसए

५१. उ०—हे गौतम ! जंबुद्वीप नामना द्वीपमां रहेल मंदर (मेरु) पर्वतनी दक्षिण बाजुए तीरछा असंख्य द्वीप अने समुद्रो ओळंग्या पछी अरुणवर नामनो द्वीप आवे छे, ते द्वीपनी वेदिकाना बायला छेडाथी आगळ वधीए त्यारे अरुणोदय नामनो समुद्र आवे छे, ए अरुणोदय समुद्रमां बेंताळीश लाख योजन उंडा उतर्या बाद–ते ठेकाणे असुरना इंद्र अने असुरना राजा चमरनो तिगिच्छकूट नामनो उत्पातपर्वत आवे (कह्यो) छे, तेनी उंचाई १७२१ योजन छे, तेनो उद्वेध ४३० योजन अने एक कोश छे. आ पर्वतनुं माप गोस्तुभ नामना आवासपर्वतना मापनी पेठे जाणवुं. विशेष ए के, गोस्तुभना उपरना भागनुं जे माप छे ते माप अहीं वचला भाग माटे समजवुं अर्थात् ते (तिगिच्छकूट) पर्वतनो विष्कंभ मूळमां १०२२ योजन छे, वच्चे (वचलो विष्कंभ) ४२४ योजन छे अने उपलो विष्कंभ ७२३ योजन छे. तेनो परिक्षेप

१. मूलच्छायाः–कुत्र भगवन् ! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य सभा सुधर्मा प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन तिर्यगसंख्येयान् द्वीप–समुद्रान्, व्यतिव्रज्य अरुणवरस्य द्वीपस्य बाह्याद् वेदिकान्ताद् अरुणोदयं समुद्रं द्विचत्वारिंशद्योजनशतसहस्राणि अवगाह्य, अत्र चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य तिगिच्छककूटो नाम उत्पातपर्वतः प्रज्ञप्तः, सप्तदश–एकविंशतियोजनशतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, चतुस्त्रिंशद्योजनशतानि [illegible] च उद्वेधेन, गोस्तुभस्य आवासपर्वतस्य प्रमाणेन ज्ञातव्यम्, नवरम्–उपरितनं प्रमाणं मध्ये भणितव्यम्–मूले दशद्वाविंशतियोजनशतानि विष्कम्भेण, मध्ये [illegible] चतुर्विंशतियोजनशतानि विष्कम्भेण, उपरि सप्तत्रयोविंशतियोजनशतानि विष्कम्भेण; मूले त्रीणि योजनसहस्राणि, द्वे च द्वात्रिंशदुत्तरे [illegible] परिक्षेपेण, मध्ये एकं योजनसहस्रं त्रीणि च [illegible]:—अनु०

[illegible]

किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं, दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं] मूले वित्थडे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, मज्झे वरवइरविग्गहिए, महामउंदसंठाणसंठिए, सव्वरयणामए अच्छे जाव—पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसंडेण य सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते. पउमवरवेइयाए, वणसंडस्स य वण्णओ. तस्स णं तिगिच्छकूडस्स उप्पायपव्वयस्स उप्पिं बहुसम—रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णओ. तस्स णं बहुसम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं महं एगे पासायवडिंसये पण्णत्ते. अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोयणसयाइं विक्खंभेणं. पासायवण्णओ. उल्लोयभूमिवण्णओ. अट्ठजोयणाइं मणिपेढिया, चमरस्स सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं. तस्स णं तिगिच्छकूडस्स दाहिणेणं छक्कोडिसए, पणवण्णं च कोडीओ, पणतीसं च सयसहस्साइं, पण्णासं च सहस्साइं अरुणोदए समुद्दे तिरियं वीइवइत्ता अहे रयणप्पभाए पुढवीए चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचा ए नामं रायहाणी पण्णत्ता. एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं जंबूदीवप्पमाणा. पागारो दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरिं अद्धतेरसजोयणाइं विक्खंभेणं. कविसीसगा अद्धजोयणा आयामेणं, कोसं विक्खंभेणं, देसूणं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं. एगमेगाए बाहाए पंच पंच दारसया अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धं विक्खंभेणं, उवारियले णं सोलसजोयणसहस्साइं आयाम—विक्खंभेणं, पन्नासं जोयणसहस्साइं पंच य सत्ताणउ य जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं सव्वप्पमाणेणं वेमाणियप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं. सभा सुहम्मा, उत्तरपुरत्थिमेणं जिणघरं,

मूळमां १२१२ योजन तथा कांइक विशेषोन छे, [illegible] १३४१ योजन तथा कांइक विशेषोन छे अने उपलो [illegible] २२८६ योजन तथा कांइक विशेषोन छे. ते मूळमां विस्तृत छे, [illegible] सांकडो छे अने उपर विशाळ छे. तेनो वचलो भाग उत्तम [illegible] छे, मोटा मुकुन्दना घाट जेवो छे अने ते पहाड आखो रत्नमय छे, [illegible] छे तथा यावत्—प्रतिरूप छे. ते पर्वत उत्तम कमळनी एक वेदिकाथी अने एक वनखंडथी सर्व प्रकारे चारे बाजुथी विंटाएल छे. [illegible] स्थळे ते वेदिका अने वनखंडनुं वर्णन जाणवुं. ते तिगिच्छकूट नामना उत्पातपर्वतनो उपरनो भाग तद्दन सरखो—खाडा [illegible] विनानो—अने मनोहर छे. तेनुं पण वर्णन अहीं जाणवुं. ते तद्दन सरखा अने रमणीय उपला भागनी बहु वचे—वचोवच—एक मोटो प्रासादावतंसक—महेल—महालय—छे. ते महेलनी उंचाई २५० योजन छे, तेनो विष्कंभ १२५ योजन छे. अहीं ते महेलनुं वर्णन करवुं. ते महेलना उपरना भागनुं (अगाशीनुं) वर्णन करवुं. आठ योजननी मणिपीठिका छे. चमरनुं सिंहासन परिवारसहित कहेवुं. हवे ते तिगिच्छकूट पर्वतनी दक्षिणे अरुणोदय समुद्रमां छसें क्रोड, पंचावन क्रोड, पांत्रीश लाख अने पचास हजार योजन तीरछुं गया पछी नीचे रत्नप्रभा पृथिवीनो ४० हजार योजन जेटलो भाग अवगाह्या पछी—ए ठेकाणे—असुरेन्द्र अने असुरना राजा चमरनी चमरचंचा नामनी राजधानी आवे छे. ते राजधानीनो आयाम अने विष्कंभ एक लाख योजन छे—ते राजधानी जंबुद्वीप जेवडी छे. तेनो किल्लो दोढसो योजन उंचो छे, ते किल्लाना मूळनो विष्कंभ पचास योजन छे, तेना उपरना भागनो विष्कंभ साडा तेर योजन छे, तेनां कांगरानी लंबाइ अडधो योजन छे अने पहोळाइ एक कोश छे तथा ते कांगरानी उंचाई अडधा योजनथी कांइक ऊणी छे. वळी एक एक बाहुमां पांचसे पांचसे दरवाजा छे अने तेनी उंचाई २५० योजन छे, उंचाई करतां अडधो विष्कंभ छे. उवारियल ! (घरना पीठबंधनी जेवा भाग) नो आयाम अने विष्कंभ सोळ हजार योजन छे. अने तेनो परिक्षेप ५०५९७ योजन करतां कांइक विशेषोन छे. सर्व प्रमाणवडे वैमानिकना प्रमाण करतां अहीं बधुं अडधुं प्रमाण जाणवुं. सुधर्मा सभा, उत्तर

---

१. मुलच्छाया:—किञ्चिद् विशेषोनं परिक्षेपेण. उपरि द्वे च योजनसहस्रे, द्वे च षडशीतियोजनशते किञ्चिद् विशेषाऽधिके परिक्षेपेण, मूले विस्तृतः, मध्ये संक्षिप्तः, उपरि विशालः, मध्ये वरवज्रविग्रहितः, महामुकुन्दसंस्थानसंस्थितः, सर्वरत्नमयः अच्छो यावत्—प्रतिरूपः, स एकया पद्मवरवेदिकया, एकेन वनखण्डेन च सर्वतः समन्ततः संपरिक्षिप्तः. पद्मवरवेदिकायाः, वनखण्डस्य च वर्णकः. तस्य तिगिच्छकूटस्य उत्पात-पर्वतस्य उपरि बहुसम—रमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, वर्णकः. तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महान् एकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः. अर्धतृतीयानि योजनशतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, पञ्चविंशतियोजनशतानि विष्कम्भेण, प्रासादवर्णकः. [illegible] अष्टयोजनानि मणिपीठिका, चमरस्य सिंहासनं सपरिवारं भणितव्यम्, तस्य तिगिच्छकूटस्य दक्षिणेन षट्कोटिशतानि पञ्चपञ्चाशत् च कोटयः, पञ्चत्रिंशच्च शतसहस्राणि, पञ्चाशत् च सहस्राणि अरुणोदये समुद्रे तिर्यग् व्यतिव्रज्य अधो रत्नप्रभायाः पृथिव्याः चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि [illegible] अत्र चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चमरचञ्चा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता. एकं योजनशतसहस्रम् आयाम—विष्कम्भेण जम्बूद्वीपप्रमाणा. प्राकारो [illegible] योजनशतम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, मूले पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेण, उपरि अर्धत्रयोदशयोजनानि विष्कम्भेण. कपिशीर्षकाणि [illegible] [illegible] विष्कम्भेण, देशोनम् अर्धयोजनम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन. एकैकस्मिन् बाहौ पञ्च पञ्च द्वारशतानि अर्धतृतीयानि योजनशतानि [illegible] [illegible] उपरितके षोडशयोजनसहस्राणि आयाम—विष्कम्भेण, पञ्चाशद्योजनसहस्राणि पञ्च च [illegible] [illegible] सर्वप्रमाणेन वैमानिकप्रमाणस्य अर्धं ज्ञातव्यम्, सभा सुधर्मा, उत्तरपौरस्त्येन जिनगृहम् :—अनु०

[illegible], *हरओ, अभिसेय, अलंकारो जहा विजयस्स.*	अने पूर्वमां जिनगृह, त्यार बाद उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक अने अलंकार; ए बधुं विजयनी पेठे कहेवुं.
[illegible] संकप्पो अभिसेय विभूसणा य ववसाओ,	उपपात, संकल्प, अभिषेक विभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका अने
[illegible] सिद्धायण गमो वि य चमर परिवार इड्ढत्तं.	सिद्धायतन संबंधी गम तथा चमरनो परिवार अने तेनुं ऋद्धिसंपन्नपणुं.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो.

१. अथ देवस्थानाऽधिकारात् चमरचञ्चाऽभिधानदेवस्थानादिप्रतिपादनाय अष्टमोद्देशकः,तस्य च इदं सूत्रम्–*'कहिं णं'* इत्यादि. *'असुरिंदस्स'* त्ति असुरेन्द्रस्य, सचेश्वरतामात्रेणाऽपि स्यात्, इत्याह–असुरराजस्य वशवर्तिसुरनिकायस्येत्यर्थः, *'उप्पायपव्वए'*त्ति तिर्यग्लोकगमनाय [illegible]लोत्पतति स उत्पातपर्वत इति *'गोथुभस्स'* इत्यादि. तत्र गोस्तुभो लवणसमुद्रमध्ये पूर्वस्यां दिशि नागराजावासपर्वतः, तस्य चादि-मध्याऽन्तेषु विष्कम्भप्रमाणमिदम्–*''कमसो विक्खंभो से दसबावीसाइं जोयणसयाइं, सत्त सए तेवीसे, चत्तारि सए य चउवीसे.''* इहैव विशेषमाह–*'नवरम्'* इत्यादि. ततश्चेदमापन्नम्–*''मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खंभेणं, मज्झे चत्तारि चउवीसे, उवरिं सत्ततेवीसे, मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं, दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य इगुयाले जोयणसए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं, उवरिं दोण्णि य जोयणसहस्साइं, दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं.''* पुस्तकान्तरे त्वेतत् सकलमस्त्येवेति. *'वरवइरविग्गहिए'* त्ति वरवज्रस्येव विग्रह आकृतिर्यस्य सः, स्वार्थिके कप्रत्यये सति वरवज्रविग्रहिको मध्ये क्षाम इत्यर्थः. एतदेवाह–*'महामउंद'* इत्यादि. मुकुन्दो वाद्यविशेषः, *'अच्छे'* त्ति स्वच्छः–आकाशस्फटिकवद् 'यावत्' करणाद् इदं दृश्यम्–*'सण्हे'*–श्लक्ष्णः–श्लक्ष्णपुद्गलनिर्वृत्तत्वात्, *'लण्हे'*–मसृणः, *'घट्ठे'*–घृष्ट इव घृष्टः–खरशानया प्रतिमेव, *'मट्ठे'*–मृष्ट इव मृष्टः–सुकुमारशानया प्रतिमेव, प्रमार्जनिकयेव वा शोधितः, अत एव *'निरए'*–नीरजा–रजोरहितः, *'निम्मले'*–कठिनमलरहितः, *'निप्पंके'*–आर्द्रमलरहितः, *'निक्कंकडच्छाए'*–निरावरणदीप्तिः, *'सप्पभे'*–सत्प्रभावः, *'समिरीईए'*–सकिरणः, *'सउज्जोए'*–प्रत्यासन्नवस्तूद्योतकः, 'पासाईए.'

१. आगळना उद्देशकमां देवनां स्थानो संबंधे हकीकत जणावाइ छे तो हवे आ उद्देशकमां 'चमरचंचा' नामना देवस्थान वगेरे संबंधे हकीकत जणावाय तो ते उचित छे अने ते संबंधी सूत्र आ छेः–['कहिं णं' इत्यादि.] ['असुरिंदस्स' त्ति] असुरना इंद्र संबंधी, असुरेंद्रपणुं मात्र ऐश्वर्यथी पण संभवे छे, माटे कहे छे के, असुरना राजा संबंधी अर्थात् असुरनो समूह जेने ताबे रहेलो छे तेवा असुरेंद्र संबंधी. ['उप्पायपव्वए' त्ति] ज्यारे चमरने तिर्यग्लोकमां आववुं होय छे त्यारे ते सौथी पहेलो एक पर्वत उपर आवे छे. ते पर्वतनुं नाम उत्पातपर्वत छे. 'उत्पातपर्वत' शब्दनी व्युत्पत्ति आ प्रमाणे छेः–तिर्यग्लोकमां जवा सारु ज्यां आवीने चमर उत्पतन करे–उडे–ते स्थळनुं नाम 'उत्पातपर्वत' कहेवाय. ['गोथुभस्स' इत्यादि.] लवणसमुद्रनी वच्चे पूर्व दिशामां गोस्तुभ नामनो पर्वत नागराजनो आवासपर्वत छे, तेना आदि भागनुं, वचला भागनुं अने छेवटना भागनुं विष्कंभप्रमाण आ छेः–''तेनो क्रमपूर्वक विष्कंभ आ छेः–१०२२ योजन, ७२३ योजन अने ४२४ योजन.'' अहीं ज विशेष वातने कहे छे के, ['नवरं' इत्यादि.] अहीं तात्पर्य आ प्रमाणे छेः–''तेना मूळनो विष्कंभ १०२२ योजन छे, वचला भागनो विष्कंभ ४२४ योजन छे अने उपरना भागनो विष्कंभ ७२३ योजन छे. तेना मूळनो परिक्षेप ३२३२ योजन करतां कांइक विशेषोन छे, वचला भागनो परिक्षेप १३४१ योजन करतां कांइक विशेषोन छे अने उपला भागनो परिक्षेप २२८६ योजन करतां कांइक विशेषाधिक छे.'' बीजा पुस्तकमां तो आ बधी हकीकत मूळमां ज छे. ['वरवइरविग्गहिए' त्ति] जेनो घाट उत्तम वज्रनी जेवो छे ते 'वरवज्रविग्रहित' अर्थात् वच्चे पातळो. ए ज वातने कहे छे के, ['महामउंद' इत्यादि.] मुकुंद एटले एक जातनुं वाजुं. ['अच्छे' त्ति] आकाशस्फटिकनी पेठे निर्मळ, अहीं 'यावत्' शब्द मूक्यो छे माटे आ प्रमाणे जाणवुंः–'सण्हे' चिकणा पुद्गलोथी बनेलो छे माटे चिकणो, 'लण्हे' सुंवाळो, 'घट्ठे' शराण उपर घसेली–पालेस करेली–प्रतिमानी

उत्पातपर्वत.

गोस्तुभपर्वत.

---

१. मूलच्छाया:—ततः उपपातसभा, ह्रदः, अभिषेकः, अलंकारः, यथा विजयस्य. उपपातः संकल्पोऽभिषेको विभूषणा च व्यवसायः, अर्चनिका सिद्धायतने गमोऽपि च चमरपरिवारऋद्धित्वम्:—अनु०

१. श्रीजीवाभिगमसूत्रे समुपदर्शितो विजयदेवाधिकारः अत्र संयोजनीयः, स च तत्र (क० आ० ५२१–६२२):–अनु०

१. श्रीजीवाभिगमसूत्रनां मूळमां (क० आ० ५२१–६१२ सुधी) विजयदेव विषे अधिकार छे. त्यांथी ते अधिकारने अहीं जोडवानो छेः—अनु०

१. [illegible]—क्रमशो विष्कम्भस्तस्य द्वाविंशतियोजनशतानि, सप्त शतानि त्रयोविंशत्यधिकानि शतानि च चतुर्विंशतिः. २. मूले द्वाविं-[illegible] विष्कम्भेण, मध्ये चत्वारि चतुर्विंशतिः, उपरि सप्तत्रयोविंशतिः, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि, द्वे च द्वात्रिंशदुत्तरे योजनशते किञ्चिद् विशे-[illegible] [illegible] [illegible] किञ्चिद् विशेषोनानि परिक्षेपेण, उपरि द्वे च योजनसहस्रे, द्वे च षडशीति-[illegible]:–अनु०

बेठे बेसेलो, 'मट्ठे' सुकुमाल शराण उपर चडावेली प्रतिमानी पेठे शुद्ध अथवा प्रमार्जनिकाथी (सावरणीथी) [illegible] छे माटे ज 'निरए' निरज–रजविनानो, 'निम्मले' मेल विनानो 'निप्पंके' गाराविनानो, 'निक्कंकडच्छाए' खुली कांतिवाळो, 'सप्पभे' [illegible] वाळो, 'समिरिईए' किरणोवाळो, 'सउज्जोए' पडखेना पदार्थोनो उद्द्योत करनार, 'पासाईए' प्रसन्नता पमाडनार.

२. *'पउमवरवेइआए वणसंडस्स य वण्णओ'* त्ति वेदिकावर्णको यथा—*"सा[1] णं पउमवरवेइया अद्धं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच [illegible] विक्खंभेणं, सव्वरयणामई, तिगिच्छकुडउवरितलपरिक्खेवसमा परिक्खेवेणं तीसे णं पउमवरवेइयाए इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते."* [illegible] व्यासो वर्णकविस्तरः, *"वयरामया नेमा"* इत्यादि. *'नेम'* त्ति स्तम्भानां मूलपादाः. वनखण्डवर्णकस्त्वेवम्—*"से[3] णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं, पउमवरवेइया परिक्खेवसमे परिक्खेवेणं किण्हे किण्होभासे"* इत्यादि. *'बहुसमरमणिज्जे'* त्ति अत्यन्तसमो रमणीयश्चेत्यर्थः *'वण्णओ'* त्ति वर्णकस्तस्य वाच्यः, स चायम्—*"से[4] जहा नाम ए आलिंगपुक्खरे इ वा"*—आलिंगपुक्खरं मुरजमुखम्, तद्वत्समिल्यर्थः. *"मुइंगपुक्खरेइ वा, सरतले इ वा, करतले इ वा, आयंसमंडले इ वा, चंदमंडले इ वा"* इत्यादि. *'पासायवडिंसए'* त्ति प्रासादोऽवतंसक इव शेखरक इव प्रधानत्वात् प्रासादावतंसकः *'पासायवण्णओ'* त्ति प्रासादवर्णको वाच्यः, स चैवम्—*"अब्भुग्गयमूसिय-पहसिए"* अभ्युद्गतमत्योद्गतं वा यथा भवत्येवमुच्छ्रितः, अथवा मकारस्यागमिकत्वात् अभ्युद्गतश्चासावुच्छ्रितश्चेत्यभ्युद्गतोच्छ्रितः—अत्यर्थमुच्च इत्यर्थः, प्रथमैकवचनलोपश्चात्र दृश्यः, तथा प्रहसित इव प्रभापटलपरिगततया प्रहसितः, प्रभया वा सितः, शुक्लः, संबद्धो वा प्रभासित इति, *'मणिकणगरयणभत्तिचित्ते'*—मणिकनकरत्नानां भक्तिभिर्विच्छित्तिभिश्चित्रो विचित्रो यः स तथा, इत्यादि. *'उल्लोयभूमिवण्णओ'* त्ति उल्लोकवर्णकः—प्रासादस्योपरिभागवर्णकः स चैवम्—*"तस्स[7] णं पासायवडिंसगस्स इमेयारूवे उल्लोए पन्नत्ते, ईहामिग–उसभ–तुरग–नर–मगर–विहग–विलाड–किंनर–रुरु–सरभ–चमर–कुंजर–वण–वलय–पउमलयभत्तिचित्ते, जाव–सव्वतवणिज्जमए, अच्छे, जाव–पडिरूवे."* भूमिवर्णकस्तु एवम्—*"तस्स णं पासायवडिंसयस्स बहुसम–रमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तं जहा–आलिंगपुक्खरे इ वा"* इत्यादि. *'सपरिवारं'* त्ति चमरसंबन्धिपरिवारसिंहासनोपेतम्, तच्चैवम्—*"तस्स णं सिंहासणस्स अवरुत्तरेणं, उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं चमरस्स चउसट्ठी सामाणियसाहस्सीणं, चउसट्ठी भद्दासणसाहस्सीओ पन्नत्ताओ, एवं पुरत्थिमे णं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं पंच भद्दासणाइं सपरिवाराइं, दाहिणपुरत्थिमे णं अब्भितरियाए परिसाए चउव्वीसाए देवसाहस्सीणं चउव्वीसं भद्दासणसाहस्सीओ, एवं दाहिणेणं मज्झिमाए अट्ठावीसं भद्दासणसाहस्सीओ, दाहिणपच्चत्थिमे णं बाहिराए बत्तीसं भद्दासणसाहस्सीओ, पच्चत्थिमे णं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणाइं, चउद्दिसं आयरक्खदेवाणं चत्तारि भद्दासणसहस्सचउसट्ठीओ"* त्ति *'तेत्तीसं भोम'* त्ति, वाचनान्तरे दृश्यते तत्र "भौमानि विशिष्टस्थानानि नागराकाराणि" इत्यन्ये. *'उवारियलेणं'* ति गृहस्य पीठबन्धकल्पम्.

२. ['पउमवरवेइआए वणसंडस्स य वण्णओ' त्ति] वेदिकानुं वर्णन आ रीते छेः–ते उत्तम पद्मनी वेदिकानी उंचाई अर्धुं योजन छे, तेनो विष्कंभ पांचसे धनुष्य छे, ते आखी रत्नमय–रत्ननी बनेली–छे, तेनो परिक्षेप तिगिच्छकूटना उपरना भागना परिक्षेप जेटलो छे, ते उत्तम पद्मनी वेदिकानुं संक्षिप्त वर्णन आ प्रकारे छेः–['वयरामया नेमा' इत्यादि] नेम एटले थांभलाना मूळ पाया. वनखंडनुं वर्णन आ प्रमाणे छेः–"ते वनखंडनो घेरावो देशोन बे योजन छे, तेनो परिक्षेप पद्मवेदिकाना परिक्षेप जेटलो छे ते कृष्ण छे अने कृष्ण–कांतिवाळो छे" इत्यादि. ['बहुसमरमणिज्जे' त्ति] तेनो भूमिभाग तद्दन सरखो अने रमणीय छे. ['वण्णओ' त्ति] ते भूमिभागनुं वर्णन करवुं अने ते आ प्रमाणे छेः–ते भूमिभाग मुरजमुख समान छे, तथा ते मृदंगपुष्करनी जेवो, सरोवरना तळियानी जेवो, आदर्शमंडळनी जेवो, हाथना तळीयानी जेवो, अने चंद्रमंडळनी जेवो छे" इत्यादि. ['पासायवडिंसए' त्ति] प्रासादोमां शेखर जेवो अर्थात् सौथी सारो अने उंचो प्रासाद, ['पासायवन्नओ' त्ति] ते प्रासादनो वर्णक कहेवो अने ते आ रीते

वनखंड. प्रासादवर्णक.

---

१. प्र० छायाः—सा पद्मवरवेदिका अर्धयोजनम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, पञ्च धनुःशतानि विष्कम्भेण, सर्वरत्नमयी, तिगिच्छकूटउपरितलपरिक्षेपसमा परिक्षेपेण तस्याः पद्मवरवेदिकायाः अयमेतद्रूपः वर्णकव्यासः प्रज्ञप्तः. २. वज्रमयी नेमा. ३. तद् वनखण्डं देशोने द्वे योजने चक्रवालविष्कम्भेण, पद्मवरवेदिकापरिक्षेपसमः परिक्षेपेण कृष्णं कृष्णावभासम्. ४. तद् यथा नाम आलिङ्गपुष्करम् इति वा.५. मृदङ्गपुष्करम् इति वा, सरस्तलम् इति वा, करतलम् इति वा, आदर्शमण्डलम् इति वा, चन्द्रमण्डलम् इति वा. ६.अभ्युद्गत उच्छ्रितःप्रहसितः. ७. तस्य प्रासादावतंसकस्य अयमेतद्रूपः उल्लोचः प्रज्ञप्तः, ईहामृग–[illegible] मकर–विहग–बिडाल–किन्नर–रुरु–शरभ–चमर–कुञ्जर–वन–वलय–पद्मलताभक्तिचित्रो यावत्–सर्वतपनीयमयः, अच्छः, यावत्–प्रतिरूपः. ८. [illegible] दावतंसकस्य बहुसम–रमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–आलिङ्गपुष्करम् इति वा. ९. तस्य सिंहासनस्य अपरोत्तरेण, उत्तरेण, उत्तरपौरस्त्येन अत्र [illegible] चतुःषष्टिः सामानिकसाहस्रीणाम्, चतुःषष्टिः भद्रासनसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः. एवं पौरस्त्ये पञ्चानाम् अग्रमहिषीणां सपरिवाराणां पञ्च भद्रासनानि सपरिवाराणि, दक्षिणपौरस्त्ये अभ्यन्तरिकायाः पर्षदः चतुर्विंशतेर्देवसाहस्रीणां चतुर्विंशतिर्भद्रासनसाहस्र्यः, एवं दक्षिणेन मध्यमायाः अष्टाविंशतिर्भद्रासनसाहस्र्यः, दक्षिणपश्चिमे बाह्यायाः द्वात्रिंशद् भद्रासनसाहस्र्यः, पश्चिमे सप्तानाम् अनीकाधिपतीनां सप्त भद्रासनानि, चतुर्दिशम् आत्मरक्षकदेवानां चत्वारि [illegible] [illegible]–अनु०

[illegible]—"ते प्रासाद आकाशनी पेठे ऊंचो छे तथा ते प्रासाद अत्यंत चळकाट मारतो होवाथी जाणे हसतो होय एवो लागे छे अथवा ते प्रासाद [illegible] छे अथवा ते प्रभासित छे, ते प्रासाद मणि, सोनुं अने रत्ननी कारीगरीथी विचित्र छे" इत्यादि. ['उल्लोअभूमिवण्णओ' त्ति] प्रासा-[illegible] आगळो वर्णक कहेवो. ते आ प्रमाणे छेः—ते उत्तम प्रासादनो उपरनो भाग आ प्रकारनो कह्यो छे, (ते आ–) ते उपरवा भागमां वरु, [illegible], घोडो, [illegible], मगर, पक्षी, सिंदलो, किन्नर, साबर, शरभ, चमर, हाथी, वन, बलोयुं अने पद्मनी वेल; ए बधानां कारीगरीवाळां चित्र हतां [illegible] ते आखो भाग सर्व सोनानो छे, ते स्वच्छ छे अने यावत्–देखावडो छे. भूमिनो वर्णक तो आ रीते छेः—"ते उत्तम अने उंचा प्रासादनो [illegible] सरखो अने सुंदर छे–जेवुं मुरजनुं मुख होय तेवो छे" इत्यादि. ['सपरिवारं' ति] चमर संबंधी परिवारना सिंहासन सहित सिंहा-[illegible]. ते आ प्रमाणेः—"ते सिंहासननी पश्चिमोत्तरे, उत्तरे अने उत्तरपूर्वे चमरना चोसठ हजार सामानिक देवोनां चोसठ हजार भद्रासनो छे. ए [illegible] पूर्वमां परिवारसहित पांच पट्टराणीओनां पांच भद्रासनो सपरिवार छे. दक्षिण अने पूर्वमां अंदरनी सभाना चोवीश हजार देवोना चोवीस हजार [illegible] छे, ए प्रमाणे दक्षिणे वचली सभाना अट्ठावीश हजार भद्रासनो छे, दक्षिण अने पश्चिमे बायली सभाना बत्रीश हजार भद्रासनो छे. पश्चिमे सात [illegible] सात भद्रासन छे अने चारे दिशामां आत्मरक्षक देवोमां चोसठ हजार चोसठ हजार भद्रासनो छे."['तेत्तीसं भोम' त्ति] एवो पाठ बीजा पुस्तकमां देखाय छे. तेमां 'भौम' एटले "नागराकार विशिष्ट स्थान" ए प्रमाणे बीजाओनो मत छे. ['उवारियलेणं' इति] घरना पीठबंध जेवो भाग.

१. *'सव्वप्पमाणं वेमाणिअप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं'* ति अयमर्थः—यत् तस्यां राजधान्यां प्राकार–प्रासाद–सभादिवस्तु, तस्य सर्वस्योच्छ्रया-[illegible] सौधर्मवैमानिकविमानप्राकार–प्रासाद–सभादिवस्तुगतप्रमाणस्यार्धं नेतव्यम्, तथाहि–सौधर्मवैमानिकानां विमानप्राकारो योजनानां त्रीणि शतानि उच्चत्वेन, एतस्यास्तु सार्धं शतम्, तथा सौधर्मवैमानिकानां मूलप्रासादः पञ्च योजनानां शतानि, तदन्ये चत्वारस्तत्परिवार-भूताः सार्धे द्वे शते, प्रत्येकं च तेषां चतुर्णामपि अन्ये परिवारभूताश्चत्वारः सपादं शतम्, एवमन्ये तत्परिवारभूताः सार्धा द्विषष्टिः, एवमन्ये सपाद एकत्रिंशत्, इह तु मूलप्रासादः सार्धे द्वे योजनशते, एवमर्धार्धहीनास्तदपरे, यावद् अन्तिमाः पञ्चदश योजनानि, पञ्च च योजनस्याष्टांशाः, एतदेव च वाचनान्तरे उक्तम्–*"चत्तारि परिवाडीओ पासायवडिंसगाणं अद्धद्धहीणाओ"* त्ति, एतेषां च प्रासादानां चतसृष्वपि परिपाटीषु त्रीणि शतानि एकचत्वारिंशदधिकानि भवन्ति, एतेभ्यः प्रासादेभ्यः उत्तरपूर्वस्यां दिशि सभा सुधर्मा, सिद्धायतनम्, उपपातसभा, ह्रदः, अभिषेकसभा, अलंकारसभा, व्यवसायसभा चेति, एतानि च सुधर्मासभादीनि सौधर्मवैमानि-कसत्कादिभ्यः प्रमाणतोऽर्धप्रमाणानि, तत्रश्चोच्छ्रय इहैषां षट्त्रिंशद् योजनानि, पञ्चाशद् आयामः, विष्कम्भश्च पञ्चविंशतिरिति एतेषां च विजयदेवसंबन्धिनामिव *"अणेगखंभसयसंनिविट्ठा अब्भुग्गयसुकयवइरवेइया"* इत्यादिवर्णको वाच्यः तथा *"दाराणं उप्पिं बहवे अट्ठ अट्ठ मंगलज्झया छत्ताइछत्ता"* इत्यादि. अलंकारश्च सभादीनां वाच्यः, सर्वं च जीवाभिगमोक्तं विजयदेवसंबन्धि चमरस्य वाच्यम्, यावदुपपातः उपपातसभायाम्, संकल्पश्चाभिनवोत्पन्नस्य 'किं मम पूर्वं पश्चाद् वा कर्तुः श्रेयः,' इत्यादिरूपः, अभिषेकश्च अभिषेकसभायाम्, महर्ध्या सामानिकादिदेवकृतः, विभूषणा च वस्त्रालंकारकृता अलंकारसभायाम्, व्यवसायश्च व्यवसायसभायां पुस्तकवाचनतः, अर्चनिका च सिद्धायतने सिद्धप्रतिमादीनाम्, सुधर्मसभागमनं च सामानिकादिपरिवारोपेतस्य चमरस्य, परिवारश्च सामानिकादिः. ऋद्धिमत्त्वं च एवम्–*'महिड्ढिय'* इत्यादिवचनैर्वाच्यमस्येति, एतच्च वाचनान्तरेऽर्थतः प्रायोऽवलोक्यत एव.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते अष्टम उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

१. ['सव्वप्पमाणं वेमाणिअप्पमाणस्स अद्धं नेयव्वं' ति] तेनो अर्थ आ छेः—ते राजधानीमां जे किल्लो, महेल तथा सभा वगेरे वस्तु छे तेनुं उंचाइ [illegible] प्रमाण सौधर्म विमानना किल्ला, महेल अने सभाना प्रमाण करतां अडधुं जाणवुं. ते आ प्रमाणेः—सौधर्म देवलोकमां रहेनारा देवोना वि-मानोनी आसपास रहेल किल्लानी उंचाई त्रणसें योजन छे अने अहीं रहेल किल्लानी उंचाई दोढसो योजन छे. तथा सौधर्म देवोनो मूळ महेल पांचसें योजन उंचो छे अने ते महेलना परिवाररूप बीजा चार महेलो छे, तेओनी उंचाई अढीसें योजन छे. ते चार महेलमांना प्रत्येक महेलनी आसपास बीजा चार चार महेलो छे अने तेओनी उंचाई सवासो योजन छे, ए प्रमाणे ते चार महेलोमांना प्रत्येक महेलनी आसपास बीजा चार चार महेलो छे अने तेओनी उंचाई ६२॥ योजन छे, तथा ए प्रमाणे बीजा चार महेलो छे अने तेओनी उंचाइ ३१। योजन छे. अहीं तो मूळ महेलनी उंचाई २५० योजन छे, तेनी करता बीजा महेलोनी उंचाई तेना करतां अडधी अडधी छे अने छेक छेवटना महेलनी उंचाई पन्नर योजन तथा एक योजनना पांच अष्टांश–छे. ए ज वातने वाचनांतरमां कही छेः—["चत्तारि परिवाडीओ पासायवडिंसगाणं अद्धद्धहीणाओ" त्ति] चारे [illegible] ए बधा मळीने ३४१ प्रासादो छे. ए प्रासादोथी उत्तरपूर्वमां–ईशानखूणामां–सुधर्मा सभा, सिद्धायतन, उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक

[illegible] १. [illegible] २. [illegible] ३. द्वाराणाम् [illegible]

जीवाभिगम.

सभा, अलंकार सभा अने व्यवसाय सभा छे. ते बधानुं प्रमाण सौधर्मंमां रहेनार वैमानिक देवोनी सभा वगेरेना प्रमाण करतां [illegible] तेओनी उंचाई ३६ योजन छे, लंबाई पचास योजन छे अने विष्कंभ पचीश योजन छे. विजयदेवनी सभा वगेरेनी पेठे "ते सभा [illegible] अनेक थांभला छे, तेमां उंची अने सुंदर वज्रमय वेदिका छे" ए प्रकारे ए बधानुं वर्णन करवुं. तथा "दरवाजा उपर छत्र उपर [illegible] रहेला घणा आठ आठ मंगलध्वजो छे" इत्यादि. वळी सभाविकनो अलंकार कहेवो. विजयदेव संबंधी जे कांइ जीवाभिगममां कह्युं छे ते [illegible] चमरना विषे उपपात सुधी कहेवुं. उपपात सभामां. ते ताजा उत्पन्न थएल देवनो संकल्प आ प्रकारनो छेः–मारुं (करनारनुं) आगळ पाछळ शुं [illegible] छे ? इत्यादि. सामानिकादि देवोए मोटी ऋद्धिथी अभिषेक सभामां करेलो अभिषेक. कपडा अने घरेणांथी अलंकार सभामां करेलो शणगार. [illegible] वाचनथी व्यवसाय सभामां करेलो व्यवसाय. सिद्धायतनमां सिद्धोनी मूर्ति वगेरेनुं पूजन. सामानिकादिरूप परिवारथी युक्त थइ चमरनुं सुधर्मा [illegible] आववुं. सामानिकादिरूप परिवार कहेवो. तेनुं महर्धिकपणुं आ छेः–['महिड्डिए'] इत्यादि शब्दोथी तेनुं महर्धिकपणुं कहेवुं. बीजी वाचनामां ए [illegible] वात अर्थथी जणाय ज छे.

*

वेदारूपःसमुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति–शान्त्योर्, दधात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा वासमुख्यः ॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक ९.

समयक्षेत्र ए शुं ?—अढी द्वीप अने बे समुद्र.—श्रीजीवाभिगमसूत्रनी साक्षी.—

५२. प्र०—[1]*किमिदं भंते ! समयखेत्ते त्ति पवुच्चति ?*

५२. उ०—*गोयमा ! अड्ढाइज्जा दीवा, दो य समुद्दा, एस णं एवइए समयखेत्तेति पवुच्चति, तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव–समुद्दाणं सव्वब्भंतरे, एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्वा, जाव–अब्भितरं पुक्खरद्धं जोइसविहूणं.*

५२. प्र०—हे भगवन् ! आ समयक्षेत्र ए शुं कहेवाय ?

५२. उ०—हे गौतम ! अढी द्वीप अने बे समुद्र, एटलुं ए समयक्षेत्र कहेवाय, तेमां जे आ जंबूद्वीप नामनो द्वीप छे ते बधा द्वीप अने समुद्रोनी वच्चोवच्च छे. ए प्रमाणे अहीं बधुं जीवाभिगममां कह्या प्रमाणे कहेवुं. यावत्—अभ्यंतर पुष्करार्ध. पण तेमां ज्योतिषिकनी हकीकत न कहेवी.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये नवमो उद्देसो सम्मत्तो.

१. चमरचञ्चालक्षणं क्षेत्रम् अष्टमोद्देशके उक्तम्, अथ क्षेत्राऽधिकाराद् एव नवमे समयक्षेत्रमुच्यते, इत्येवं संबन्धस्य अस्येदं सूत्रम्—"किमिदं" इत्यादि. तत्र समयः कालः, तेनोपलक्षितं क्षेत्रं समयक्षेत्रम्, कालो हि दिन–मासादिरूपः सूर्यगतिसमभिव्यङ्ग्यो मनुष्यक्षेत्रे एव, न परतः, परतो हि नादित्याः संचरिष्णव इति *'एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्व'* त्ति एषा चैवम्—*"एगं जोयणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं"* इत्यादि. *'जोइसविहूणं'* ति तत्र जम्बूद्वीपादिमनुष्यक्षेत्रवक्तव्यतायां जीवाभिगमोक्तायां ज्योतिष्कवक्तव्यताऽप्यस्ति, ततस्तद्विहीनं यथा भवत्येवं जीवाभिगमवक्तव्यता नेतव्येति, वाचनान्तरे तु *'जोइसअट्ठविहूणं'* ति इत्यादि बहु दृश्यते, तत्र—*"जंबुद्दीवे णं भंते ! कइ चंदा पभासिंसु वा, कइ सूरीया तविंसु वा, कइ नक्खत्ता जोइं जोइंसु वा ?* इत्यादिकानि प्रत्येकं ज्योतिष्कसूत्राणि, तथा, *"से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जंबुद्दीवे ? गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं लवणस्स दाहिणेणं जाव–तत्थ तत्थ बहवे जंबूरुक्खा, जंबूवणा, जाव–उवसोभेमाणा चिट्ठंति, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जंबुद्दीवे दीवे"* इत्यादीनि प्रत्येकमर्थसूत्राणि च सन्ति, ततश्चैतद्विहीनं यथा भवत्येवं जीवाभिगमवक्तव्यतया नेयमस्योद्देशकस्य सूत्रम्, *'जाव–इमा गाह'* त्ति संग्रहगाथा, सा च, *"अरिहंतसमय–बायर–विज्जू–थणिया बलाहगा अगणी,* आगर–निहि–नई–उवराग–निग्गमे वुड्ढिवयणं च" अस्याश्चार्थस्तत्रानेन सूत्रक्रमेणायातः—जम्बूद्वीपादीनां मानुषोत्तरान्तानामर्थानां वर्णनस्यान्ते इदमुक्तम्—*"जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए तावं च णं अस्सिं लोए त्ति*

---

१. मूलच्छाया—किमिदं भगवन् ! समयक्षेत्रम् इति प्रोच्यते ? गौतम ! अर्धतृतीया द्वीपाः, द्वौ च समुद्रौ, एतद् एतावत् समयक्षेत्रम् इति प्रोच्यते, तत्राऽयं जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीप–समुद्राणां सर्वाऽभ्यन्तरे, एवं जीवाऽभिगमवक्तव्यता ज्ञातव्या, यावत्–अभ्यन्तरं पुष्कराऽर्धं ज्योतिषिकविहीनम्:–अनु०

१. इयं च वक्तव्यता श्रीजीवाभिगमसूत्रे ज्योतिषिकोद्देशके समस्ति. सा चेह नेया. तत्र (क० आ० ४३१-९००):—अनु०

१. आ बधी वक्तव्यता श्रीजीवाभिगमसूत्रमां ज्योतिषिक उद्देशकमां (क० आ० ४३१-९००) सुधी छे, त्यांथी तेने अहीं जोडवी:–अनु०

१. एष च सर्वः उद्देशकान्तपर्यन्तः प्राकृतपाठः श्रीजीवाभिगमसूत्रे मानुषोत्तरपर्वताधिकारे (क० आ० ७९२—८०३):–अनु०

१. प्र० छाया:—एकं योजनसहस्रम् आयामविष्कम्भेण. २. जम्बूद्वीपे भगवन् ! कति चन्द्राः प्राभासिषत वा, कति सूर्याः अताप्सुर्वा, कति नक्षत्राणि [illegible] वा ? ३. तद् केनार्थेन भगवन् ! एवम् उच्यते जम्बूद्वीपः ? गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण लवणस्य दक्षिणेन यावत्–[illegible] जम्बूवृक्षाः, जम्बूवनानि यावत्–उपशोभमानानि तिष्ठन्ति, तद् तेनार्थेन गौतम ! एवम् उच्यते जम्बूद्वीपो द्वीपः. ४. अर्हत्–समय–[illegible] बलाहकाः अग्निः, आकर–निधि–नदी–उपराग–निर्गमो वृद्धिवचनं च. ५. यावत् मानुषोत्तरः पर्वतः तावत् अस्मिन् लोक इति [illegible]

पवुच्चइ''--मनुष्यलोक उच्यते इत्यर्थः. तथा 'अरिहन्ते' त्ति--''जावं च णं अरहंता, चक्कवट्टी जाव--सावियाओ मणुया [illegible] ताव च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ'' 'समय' त्ति--''जावं च णं समयाइ वा, आवलियाइ वा जाव--अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ. [illegible] च णं बायरे विज्जुयारे, बायरे थणियसद्दे, जावं च णं बहवे उराला बलाहया संसेयंति'' 'अगणि' त्ति--''जावं च णं बायरे [illegible] जावं च णं आगराइ वा निहीइ वा, नईइ वा,'' 'उवराग' त्ति--''चंदोवेरागाइ वा सूरोवरागाइ वा तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ.'' उपरागो ग्रहणम्, 'निग्गमे वुड्डिवयणं च' त्ति--यावच्च निर्गमादीनां वचनं प्रज्ञापनं तावत् मनुष्यलोक इति प्रकृतम् तत्र ''जावं च णं चंदमसूरियाणं जाव--ताराख्वाणं अइगमणं, निग्गमणं, वुड्डि, निवुड्डी आघविज्जइ तावं च णं अस्सि लोए त्ति पवुच्चइ'' त्ति, अतिगमनम् [illegible] उत्तरायणम्, निर्गमनं दक्षिणायनम्, वृद्धिर्दिनस्य वर्धनम्, निर्वृद्धिस्तस्यैव हानिरिति.

भगवत्सुधर्मस्वामिप्रणीते श्रीभगवतीसूत्रे द्वितीयशते नवम उद्देशके श्रीअभयदेवसूरिविरचितं विवरणं समाप्तम्.

४. आगळना आठमा उद्देशकमां चमरचंचा नामना क्षेत्र संबंधी हकीकत कही छे, तो हवे क्षेत्रनो अधिकार चालतो होवाथी नवमा उद्देशकमां समयक्षेत्र संबंधी हकीकत कहेवानी छे अने ए प्रमाणेना संबंधवाळा आ नवमा उद्देशकनुं आदि सूत्र आ छेः--'किमिदं' इत्यादि. तेमां समय एटले काळ, ते काळथी उपलक्षित जे क्षेत्र ते 'समयक्षेत्र' कहेवाय. सूर्यनी गतिथी ओळखातो दिवस अने मासादिरूप काळ मनुष्यक्षेत्रमां ज छे, पण आगळ नथी, कारण के आगळ रहेनारा सूर्यो गतिवाळा नथी. ['एवं जीवाभिगमवत्तव्वया नेयव्व' त्ति] ए प्रमाणे जीवाभिगमनी वक्तव्यता कहेवी अने ते आ प्रमाणे छेः--''एक हजार योजननो आयाम अने विष्कंभ छे'' इत्यादि. ['जोइसविहूणं' त्ति] ज्यां जीवाभिगम सूत्रमां जंबूद्वीप वगेरे मनुष्य क्षेत्रो संबंधी वक्तव्यता कही छे, त्यां ज्योतिषिको विषे पण हकीकत कही छे तो ते (त्यां कहेली,) ज्योतिषिको विषेनी हकीकत अहीं न कहेवी. बीजी वाचनामां तो ['जोइसअट्ठविहूणं' ति] ए प्रकारनो घणो पाठ छे तेमां ''हे भगवन् ! जंबूद्वीप नामना द्वीपमां केटला चंद्रो प्रकाशे छे ? केटला सूर्यो तपे छे ? अने केटलां नक्षत्रो झगमगे छे'' ? इत्यादि एक एक ज्योतिषिक संबंधी सूत्रो. तथा ''हे भगवन् ! तेम कहेवानुं शुं कारण के, आ द्वीप जंबूद्वीप नामे छे ? हे गौतम मंदर पर्वतनी उत्तरे अने लवणसमुद्रनी दक्षिणे जंबूद्वीप नामे द्वीप छे अने यावत् त्यां त्यां--ते ते ठेकाणे--घणा जांबुडाना वृक्षो छे, घणां जांबुडानां वनो छे अने यावत्-- ते शोभता शोभता रहे छे माटे हे गौतम ! ते हेतुथी आ द्वीपने जंबूद्वीप कह्यो छे'' इत्यादि प्रत्येक अर्थसूत्रो छे. तो ए वात सिवायनी बीजी जीवाभिगममां कहेली वातवडे आ उद्देशकनां सूत्रो जाणवां यावत्--['जाव दुमा गाह' त्ति] ए पद सुधी बधुं जाणवुं. अहीं एक संग्रह गाथा छे ते आ छेः--['अरिहंत' इत्यादि.] त्यां आ संबंधवडे एनो अर्थ प्रसंगप्राप्त छेः--जंबूद्वीप वगेरेथी मांडी मानुषोत्तर सुधीना वर्णनने छेडे आ प्रमाणे कह्युं छेः--'ज्यां सुधी मानुषोत्तर पर्वत छे त्यां सुधी आ लोक (मनुष्यलोक) कहेवाय छे.'' 'अरिहंते' त्ति ''ज्यां सुधी अर्हत छे, चक्रवर्ती छे, यावत्--श्राविकाओ छे, मनुष्यो भोळा अने विनीत छे. त्यां सुधी आ लोक कहेवाय छे.'' 'समय' त्ति ''ज्यां सुधी समयो छे, आवलिकाओ छे, त्यां सुधी लोक कहेवाय छे'' ''ए प्रमाणे ज्यां सुधी स्थूल विजळी छे, मेघना स्थूल गडगडाट छे अने ज्यां सुधी स्थूल मेघो वरसे छे त्यां सुधी लोक कहेवाय छे'' 'अगणि' त्ति ''ज्यां सुधी स्थूल अग्निकाय छे, ज्यां सुधी आगर, निधि, नदी छे त्यां सुधी लोक कहेवाय छे'' 'उवराग' त्ति ''ज्यां सुधी चंद्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण छे त्यां सुधी लोक कहेवाय छे.'' 'निग्गमे वुड्डिवयणं च' त्ति ''ज्यां सुधी चंद्रोनुं, सूर्योनुं अने ताराओनुं अतिगमन, निर्गमन, वृद्धि अने निर्वृद्धि कहेवाय छे त्यां सुधी लोक छे'' अर्थात् ज्यां सुधी मनुष्यलोक छे. निर्गम एटले दक्षिणायन, अतिगमन एटले उत्तरायण, वृद्धि एटले दिवस वधवो अने निर्वृद्धि एटले दिवस घटवो ते.

---

१. यावच्च अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः यावत् श्राविका मनुजाः प्रकृतिभद्रकाः विनीताः तावच्च अस्मिन् लोक इति प्रोच्यते. २. यावच्च समया वा, आवलिकादयो वा यावत्--अस्मिन् लोक इति प्रोच्यते. एवं च यावच्च बादरो विद्युत्कारः, बादरः स्तनितशब्दः, यावच्च बहव उदाराः बलाहकाः संस्विद्यन्ते. ३. यावच्च बादरः तेजःकायः, यावच्च आकरा वा, निधयो वा, नद्यो वा. ४. चन्द्रोपरागा वा, सूर्योपरागा वा तावच्च अस्मिन् लोक इति प्रोच्यते. ५. यावच्च चन्द्र--सूर्ययोर्यावत्--तारारूपाणाम् अतिगमनम्, निर्गमनम्, वृद्धिः, निर्वृद्धिः आख्यायते तावच्च अस्मिन् लोक इति प्रोच्यतेः--अनु०

१. अहींथी बधी हकीकत श्रीजीवाभिगमसूत्रमां (क० आ० ७९२--८०३) सुधीना मानुषोत्तर पर्वतना अधिकारमां छेः----अनु०

वेलारूपः समुद्रेऽखिलजलचरिते क्षारभारे भवेऽस्मिन्, दायी यः सद्गुणानां परकृतिकरणाद्वैतजीवी तपस्वी ।
अस्माकं वीरवीरोऽनुगतनरवरो वाहको दान्ति--शान्त्योः, दद्यात् श्रीवीरदेवः सकलशिववरं मारहा चाप्तमुख्यः ॥ १ ॥

शतक २.—उद्देशक १०.

अस्तिकाय केटला छे?—पांच.—धर्मास्तिकायमां केटला वर्ण वगेरे छे?—ते वर्णादिथी रहित अने अवस्थित छे.—धर्मास्तिकायना पांच भेद.—द्रव्यथी, क्षेत्रथी, काळथी, भावथी अने गुणथी.—ए प्रमाणे बधा अस्तिकायो.—जीवमां केटला वर्ण वगेरे छे?—तेमां वर्णादि नथी.—गतिगुण धर्मास्तिकाय.—स्थितिगुण अधर्मास्तिकाय.—अवगाहनागुण आकाशास्तिकाय.—उपयोगगुण जीवास्तिकाय.—ग्रहणगुण पुद्गलास्तिकाय.—पुद्गलास्तिकायमां केटला वर्ण वगेरे?—पांच वर्ण, पांच रस, बे गंध अने आठ स्पर्श.—धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश के अनेक प्रदेश धर्मास्तिकाय कहेवाय?—नहीं.—ज्यां सुधी एक पण प्रदेश ओछो होय त्यां सुधी धर्मास्तिकाय न कहेवाय.—लाडवो आखो होय तो ज लाडवो कहेवाय, पण अडधो होय तो लाडवानो कटको कहेवाय.—ए प्रमाणे बधा अस्तिकायो.—आकाश, जीव अने पुद्गलना अनंत प्रदेशो छे.—जीव.—उत्थानादिक सहित जीवनो जीवभाव.—उपयोगलक्षण जीव.—आकाश.—आकाशना केटला प्रकार?—बे—लोकाकाश अने अलोकाकाश.—लोकाकाश जीवरूप, जीवदेशरूप, जीवप्रदेशरूप, अजीवरूप, अजीवदेशरूप अने अजीवप्रदेशरूप छे.—रूपी अजीवना चार प्रकार.—स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश अने परमाणुपुद्गल.—अरूपी अजीवना पांच प्रकार.—अलोकाकाश.—ते अजीवद्रव्यदेश छे.—अगुरुलघु छे.—लोकाकाशमां केटला वर्ण वगेरे छे?—तेमां वर्णादिक नथी.—धर्मास्तिकाय वगेरेनुं प्रमाण तथा स्पर्शना.—धर्मास्तिकाय केवडो मोटो?—लोक जेवडो.—ए प्रमाणे लोकाकाश अने बधा अस्तिकाय.—धर्मास्तिकायना केटला भागने अधोलोक अडके?—अडध उपरेरा भागने.—तिरछो लोक केटला भागने अडके?—असंख्येय भागने.—ऊर्ध्वलोक केटला भागने अडके?—अडध ओछेरा भागने.—धर्मास्तिकाय साथे रत्नप्रभानी, घनोदधिनी अने अवकाशांतरनी स्पर्शना.—ए प्रमाणे साते पृथ्वी.—जंबूद्वीपादिक द्वीप समुद्रो.—सौधर्म कल्प अने यावत्—ईषत्प्राग्भारा पृथिवी.—तेम ज अधर्मास्तिकाय अने लोकाकाश.—गाथा.—

५३. प्र०—*कइ णं भंते! अत्थिकाया पण्णत्ता?*

५३. उ०—*गोयमा! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा:—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए.*

५४. प्र०—*धम्मत्थिकाए णं भंते! कतिवण्णे, कतिगंधे कतिरसे, कतिफासे?*

५४. उ०—*गोयमा! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे; अरूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे.*

५५. मू०—*से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा:—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ. दव्वओ णं धम्मत्थिकाये एगे दव्वे, खेत्तओ णं लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाथि न आसि, न कयावि नत्थि, जाव—निच्चे, भावओ अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे; गुणओ गमणगुणे. अहम्मत्थिकाए वि एवं चेव,*

५३. प्र०—हे भगवन्! अस्तिकायो केटला कह्या छे?

५३. उ०—हे गौतम! अस्तिकायो पांच कह्या छे. ते आ प्रमाणे:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय.

५४. प्र०—हे भगवन्! धर्मास्तिकायमां केटला रंग छे, केटला गंध छे, केटला रस छे अने केटला स्पर्श छे?

५४. उ०—हे गौतम! धर्मास्तिकायमां रंग, गंध, रस के स्पर्श नथी अर्थात् धर्मास्तिकाय अरूपी छे, अजीव छे अने शाश्वत, अवस्थित लोकद्रव्य छे.

५५. मू०—संक्षेपथी कहीए तो धर्मास्तिकायना पांच प्रकार छे. ते आ प्रमाणे:—द्रव्यथी धर्मास्तिकाय, क्षेत्रथी धर्मास्तिकाय, काळथी धर्मास्तिकाय, भावथी धर्मास्तिकाय अने गुणथी धर्मास्तिकाय. धर्मास्तिकाय द्रव्यथी एक द्रव्य छे. क्षेत्रथी ते लोकप्रमाण—जेवडो लोक छे तेवडो—छे. काळथी ते कदापि न हतो

---

१. मूलच्छाया:—कति भगवन्! अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! पञ्च अस्तिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा:—धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः. धर्मास्तिकायो भगवन्! कतिवर्णः, कतिगन्धः, कतिरसः, कतिस्पर्शः? गौतम! अवर्णः, अगन्धः, अरसः, अस्पर्शः, अरूपी अजीवः, शाश्वतः, अवस्थितो लोकद्रव्यम्. स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा:—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, गुणतः; द्रव्यतो धर्मास्तिकायः एकं द्रव्यम्, क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदाचिद् नासीद्, न कदाचिद् नास्ति, यावत्—नित्यः, भावतोऽवर्णः, अगन्धः, अरसः, अस्पर्शः; गुणतो गमनगुणः, अधर्मास्तिकायोऽपि एवं चैव:—अनु०

नवरं—गुणओ ठाणगुणे. आगासत्थिकाए वि एवं चेव, नवरं—खेत्तओ णं आगासत्थिकाए लोयालोयप्पमाणमेत्ते, अणंते चेव जाव—गुणओ अवगाहणागुणे.

पण नथी, कदापि नथी एम नथी अने यावत्—ते [illegible] ते रंग विनानो, गंध विनानो, रस विनानो अने [illegible] छे. गुणथी ते गतिगुणवाळो छे. ए प्रमाणे अधर्मास्तिकाय [illegible] पण समजवुं. विशेष ए के, ते (अधर्मास्तिकाय) गुणथी [illegible] गुणवाळो छे. आकाशास्तिकाय संबंधे पण ए ज प्रकारे [illegible] विशेष ए के, ते आकाशास्तिकाय क्षेत्रथी लोकालोकप्रमाण—[illegible] जेवडो—छे अनंत छे अने यावत्—गुणथी ते अवगाहनागुणवाळो छे.

५६. प्र०—जीवत्थिकाए णं भंते ! कतिवण्णे, कतिगंधे कतिरसे, कतिफासे ?

५६. उ०—गोयमा ! अवण्णे, जाव—अरूवी, जीवे सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे; से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहाः—दव्वओ, जाव—गुणओ; दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं, खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाइ न आसी, जाव—निच्चे; भावओ पुण अवण्णे, अगंधे अरसे, अफासे; गुणओ उवओगगुणे.

५६. प्र०—हे भगवन् ! जीवास्तिकायमां केटला रंग छे, केटला गंध छे, केटला रस छे अने केटला स्पर्श छे ?

५६. उ०—हे गौतम ! ते जीवास्तिकाय रंग विनानो छे अने यावत्—अरूपी छे, ते जीव छे, शाश्वत छे अने अवस्थित लोकद्रव्य छे. संक्षेपथी कहीए तो, ते जीवास्तिकायना पांच प्रकार कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—द्रव्यथी जीवास्तिकाय अने यावत्—गुणथी जीवास्तिकाय. जीवास्तिकाय द्रव्यथी अनंत जीवद्रव्यरूप छे, क्षेत्रथी मात्र लोकप्रमाण—लोक जेवडो छे, काळथी ते कदापि न हतो एम नथी अने ते यावत्—नित्य छे. वळी भावथी ते जीवास्तिकाय रंग विनानो, गंध विनानो, रस विनानो अने स्पर्श विनानो छे तथा गुणथी ते उपयोगगुणवाळो छे.

५७. प्र०—पोग्गलत्थिकाए णं भंते ! कतिवण्णे, कतिगंध—रस—फासे ?

५७. उ०—गोयमा ! पंचवण्णे, पंचरसे, दुगंधे, अट्ठफासे, रूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए, लोगदव्वे; से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहाः—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ; दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं, खेत्तओ लोयप्पमाणमेत्ते, कालओ न कयाइ न आसी, जाव—णिच्चे; भावओ वण्णमंते गंध—रस—फासमंते. गुणओ गहणगुणे.

५७. प्र०—हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकायमां केटला रंग छे, केटला गंध छे, केटला रस छे अने केटला स्पर्श छे ?

५७. उ०—हे गौतम ! पुद्गलास्तिकायमां पांच रंग छे, पांच रस छे, बे गंध छे अने आठ स्पर्श छे. ते रूपवाळो छे, अजीव छे, शाश्वत छे अने अवस्थित लोकद्रव्य छे. टुंकमां कहीए तो तेना पांच प्रकार छे. ते आ प्रमाणेः—द्रव्यथी पुद्गलास्तिकाय, क्षेत्रथी पुद्गलास्तिकाय, काळथी पुद्गलास्तिकाय, भावथी पुद्गलास्तिकाय अने गुणथी पुद्गलास्तिकाय. द्रव्यथी पुद्गलास्तिकाय अनंत द्रव्यरूप छे, क्षेत्रथी ते मात्र लोक जेवडो छे, काळथी ते कदापि न हतो एम नथी अने यावत्—नित्य छे, भावथी ते रंगवाळो, गंधवाळो, रसवाळो अने स्पर्शवाळो छे तथा गुणथी ते ग्रहणगुणवाळो छे.

५८. प्र०—एगे भन्ते ! धम्मत्थिकायपदेसे धम्मत्थिकाये ति वत्तव्वं सिया ?

५८. उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे. एवं दोण्णि वि, तिण्णि वि, चत्तारि वि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, संखेज्जा, असंखेज्जा.

५८. प्र०—हे भगवन् ! धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश ते 'धर्मास्तिकाय' एम कहेवाय ?

५८. हे गौतम ! ते अर्थ समर्थ नथी—अर्थात् धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश ते 'धर्मास्तिकाय' एम न कहेवाय. ए ज रीते बे प्रदेश त्रण प्रदेश, चार प्रदेश, पांच प्रदेश, छ प्रदेश, सात प्रदेश, आठ प्रदेश, नव प्रदेश, दश प्रदेश, संख्येय प्रदेश अने असंख्येय प्रदेशो पण 'धर्मास्तिकाय' एम न कहेवाय.

---

१. मूलच्छायाः—नवरम्—गुणतः स्थितिगुणः. आकाशास्तिकायोऽपि एवं चैव, नवरम्—क्षेत्रत आकाशास्तिकायो लोका—ऽलोकप्रमाणमात्रः, [illegible] यावत्—गुणतोऽवगाहनागुणः. जीवास्तिकायो भगवन् ! कतिवर्णः, कतिगन्धः, कतिरसः, कतिस्पर्शः ? गौतम ! अवर्णः, यावत्—[illegible] शाश्वतः, अवस्थितो लोकद्रव्यम्; स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—द्रव्यतः, यावत्—गुणतः, द्रव्यतो जीवास्तिकायोऽनन्तानि [illegible] क्षेत्रतो लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदाचिद् न आसीत्, यावत्—नित्यः, भावतः पुनः अवर्णः, अगन्धः, अरसः, अस्पर्शः, गुणतः [illegible] पुद्गलास्तिकायो भगवन् ! कतिवर्णः, कतिगन्ध—रस—स्पर्शः ? गौतम ! पञ्चवर्णः, पञ्चरसः, द्विगन्धः, अष्टस्पर्शः, रूपी, अजीवः, [illegible] लोकद्रव्यम्, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथाः—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः, भावतः, गुणतः; द्रव्यतः पुद्गलास्तिकायोऽनन्तानि [illegible] लोकप्रमाणमात्रः, कालतो न कदाचिद् नासीत्, यावत्—नित्यः, भावतो वर्णवान्, गन्ध—रस—स्पर्शवान्, गुणतो ग्रहणगुणः. [illegible] स्तिकायप्रदेशो धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् ? गौतम ! नाऽयम् अर्थः समर्थः. एवं द्वौ अपि, त्रयोऽपि, चत्वारोऽपि, [illegible] दश, संख्येयाः, असंख्येयाः—अनु०

[illegible] प्र०—भंते ! [illegible] 'धम्मत्थिकाए' त्ति [illegible] सिया ?

[illegible] उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे.

[illegible] प्र०—एगपएसूणे वि य णं भंते ! धम्मत्थिकाए [illegible] त्ति वत्तव्वं सिया ?

[illegible] उ०—णो इणट्ठे समट्ठे.

[illegible] प्र०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–एगे धम्मत्थिका-[illegible] पएसे नो धम्मत्थिकाये त्ति वत्तव्वं सिया, जाव–एगपएसूणे वि य णं धम्मत्थिकाये नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

[illegible] उ०—से णूणं गोयमा ! खंडे चक्के ? सगले चक्के ? भगवं ! [illegible] चक्के, नो खंडे चक्के; एवं छत्ते, चम्मे, दंडे, दूसे, आउहे, [illegible], से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ एगे धम्मत्थिकायपदेसे नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया, जाव–एगपएसूणे वि य णं धम्मत्थिकाए नो धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं, सिया.

६२. प्र०—से किं खाइए णं भन्ते ! धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया ?

६२. उ०—गोयमा ! असंखेज्जा धम्मत्थिकाए पएसा, ते सव्वे कसिणा, पडिपुण्णा, निरवसेसा, एगगहणगहिया एस णं गोयमा ! धम्मत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया, एवमहम्मत्थिकाए वि, आगासत्थिकाए वि, जीवत्थिकाय–पोग्गलत्थिकाए वि एवं चेव, नवरं–तिण्हं पि पदेसा अणंता भाणिअव्वा, सेसं तं चेव.

५९. प्र०—हे भगवन् ! धर्मास्तिकायना प्रदेशो ए 'धर्मास्तिकाय' ए प्रमाणे कहेवाय ?

५९. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी–न कहेवाय.

६०. प्र०—हे भगवन् ! ज्यां सुधी 'धर्मास्तिकाय' एक प्रदेश पण ऊणो होय त्यां सुधी 'धर्मास्तिकाय' ए प्रमाणे कहेवाय ?

६०. उ०—हे गौतम ! ए अर्थ समर्थ नथी–न कहेवाय.

६१. प्र०—हे भगवन् ! तेम कहेवानुं शुं करण के, 'धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश अने यावत्–ज्यां सुधी एक प्रदेश ऊणो होय त्यां सुधी धर्मास्तिकाय न कहेवाय' ?

६१. उ०—हे गौतम ! चक्रनो भाग ते चक्र कहेवाय के आखुं चक्र ते चक्र कहेवाय ? हे भगवन् ! चक्रनो एक भाग ते चक्र न कहेवाय, पण आखुं चक्र ते चक्र कहेवाय. ए प्रमाणे छत्र, चर्म, दंड, वस्त्र, शस्त्र अने मोदक संबंधे पण जाणवुं अर्थात् ते बधुं आखुं होय तो ज छत्र वगेरे कहेवाय, पण तेनो एक भाग ते छत्र वगेरे न कहेवाय. हे गौतम ! ते कारणथी एम कह्युं छे के, धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश अने यावत्–ज्यां सुधी एक प्रदेश ऊणो होय त्यां सुधी धर्मास्तिकाय न कहेवाय.

६२. प्र०—हे भगवन् ! त्यारे वळी कहो के, 'धर्मास्तिकाय' ए प्रमाणे शुं कहेवाय ?

६२. उ०—हे गौतम ! धर्मास्तिकायमां असंख्य प्रदेश छे. ज्यारे ते बधा, कृत्स्न–पूरेपूरा, प्रतिपूर्ण, एक पण बाकी न रहे एवा अने एक शब्दथी ज कही शकाय तेवा होय त्यारे ते (असंख्य प्रदेशो) धर्मास्तिकाय एम कहेवाय. ए प्रमाणे अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय विषे पण ए ज प्रमाणे जाणवुं. विशेष ए के, त्रण द्रव्यना–आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने पुद्गलास्तिकायना—अनंत प्रदेशो जाणवा. बाकी बधुं ते ज प्रमाणे समजवुं.

१. अनन्तरं क्षेत्रम् उक्तम्, तच्चाऽस्तिकायदेशरूपम्, इत्यस्तिकायाऽभिधानपरस्य दशमोद्देशकस्य आदिसूत्रम्–'कइ णं' इत्यादि. अस्ति–शब्देन प्रदेशा उच्यन्ते, अतस्तेषां काया राशयः, अस्तिकायाः, अथवा 'अस्ति' इत्ययं निपातः कालत्रयाभिधायी, ततोऽस्तीति सन्ति, आसन्, भविष्यन्ति च ये कायाः प्रदेशराशयः, ते अस्तिकाया इति. धर्मास्तिकायादीनां चोपन्यासेऽयमेव क्रमः, तथाहि–धर्मास्तिकायपदस्य माङ्गलिकत्वाद् धर्मास्तिकाय आदावुक्तः, तदनन्तरं च तद्विपक्षत्वाद् अधर्मास्तिकायः, ततश्च तदाधारत्वाद् आकाशास्तिकायः, ततोऽनन्तत्वाऽमूर्तत्वसाधर्म्याज् जीवास्तिकायः, ततस्तदुपष्टम्भकत्वात् पुद्गलास्तिकाय इति. 'अवण्ण' इत्यादि. यत एवावर्णादिरत एवामूर्तः, न तु निःस्वभावः, नञः पर्युदासवृत्तित्वात्. शाश्वतो द्रव्यतः अवस्थितः प्रदेशतः 'लोगदव्वे' त्ति लोकस्य पञ्चास्तिकायात्मकस्यांशभूतं द्रव्यं लोकद्रव्यम्. भावत इति–पर्यायतः 'गुणओ' त्ति कार्यतः 'गमणगुणे' त्ति जीव–पुद्गलानां गतिपरिणतानां गत्युपष्टम्भहेतुर्मत्स्यानां जलमिव इति. 'ठाणगुणे' त्ति जीव–पुद्गलानां स्थितिपरिणतानां स्थित्युपष्टम्भहेतुर्मत्स्यानां स्थलमिव इति. 'अ गा-

---

१. मूलच्छाया:—भगवन् ! धर्मोऽस्तिकायप्रदेशा धर्मोऽस्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् ? गौतम ! नाऽयम् अर्थः समर्थः. एकप्रदेशोनोऽपि च [illegible] धर्मोऽस्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् ? नाऽयम् अर्थः समर्थः. तत् केनाऽर्थेन भगवन् ! एवम् उच्यते–एको धर्मास्तिकायस्य प्रदेशो नो धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् यावत्–एकप्रदेशोनोऽपि च धर्मास्तिकायो न धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् ? तद् नूनं गौतम ! खण्डं चक्रम् ? सकलं चक्रम् ? [illegible] ! सकलं चक्रम्, नो खण्डं चक्रम्. एवं छत्रम्, चर्म, दण्डः, दूष्यम्, आयुधम्, मोदकः, तत् तेनाऽर्थेन गौतम ! एवम् उच्यते एको [illegible] नो धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात्, यावत्–एकप्रदेशोनोऽपि च धर्मास्तिकायो न धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात्. तत् किं पुनः [illegible] धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात् ? गौतम ! असंख्येया धर्मास्तिकायप्रदेशाः, ते सर्वे कृत्स्नाः, प्रतिपूर्णाः, निरवशेषाः, एक- [illegible] धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यं स्यात्, एवम् [illegible] आकाशास्तिकायोऽपि, जीवास्तिकाय–पुद्गलास्तिकायोऽपि, [illegible]—अनु०

हणगुणे' त्ति जीवादीनामवकाशहेतुर्बदराणां कुण्डमिव. 'उवओगगुणे' त्ति उपयोगश्चैतन्यं साकारा–ऽनाकारभेदम्, 'गहणगुणे' त्ति [illegible] परस्परेण संबन्धनं जीवेन वा औदारिकादिभिः प्रकारैरिति.

१. आगळना प्रकरणमां क्षेत्र विषे हकीकत कही छे अने ते क्षेत्र, अस्तिकायना एक देशरूप छे माटे हवे अस्तिकाय संबंधे विवेचन [illegible] सुसंगत छे तो ते विवेचन करवा सारु आ दशम उद्देशक शरु थाय छे अने तेनुं आदि सूत्र आ छेः–['कइ णं' इत्यादि.] अस्ति [illegible] अने काय एटले समूह अर्थात् अस्तिकाय एटले प्रदेशोनो समूह. अथवा 'अस्ति' ए शब्द त्रणे काळनो सूचक निपात (अव्यय) छे. [illegible] जे थाय छे, थया अने थशे एवा जे प्रदेशोनो समूह ते 'अस्तिकाय' कहेवाय. शरुआतमां जणाव्युं छे के, पांच अस्तिकायो छे [illegible] छेः–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय. शं०—आ पांच अस्तिकायोने लखवामां उपलो [illegible] वपराय छे अने जे उपलो क्रम राख्यो छे तेनुं शुं कारण ? समा०—'धर्मास्तिकाय' ए शब्दमां आदिमां 'धर्म' शब्द छे अने ते 'धर्म' शब्द [illegible] वाचक छे माटे बधां तत्त्वोमां पहेलुं तत्त्व धर्मास्तिकाय लेख्युं छे. त्यार बाद तेनाथी उलटुं छे माटे अधर्मास्तिकायने जणाव्युं छे. आकाश तत्त्व, ए [illegible] तत्त्वना आधाररूप छे माटे तेने त्रिजुं जणाव्युं छे. ते आकाश अनंत अने अमूर्त छे तथा जीव पण अनंत अने अमूर्त छे, ए रीते ए [illegible] सरखाइ होवाने लीधे चोथुं जीवतत्त्व गण्युं छे अने ते जीव तत्त्वना उपयोगमां पुद्गल तत्त्व आवे छे माटे तेने सौथी छेलुं–पांचमुं–जणाव्युं छे. ['अवण्ण' इत्यादि.] धर्मास्तिकाय वगेरे वर्णादिरहित छे माटे ज अरूपी छे–अमूर्त–छे. ते बधा वर्णादिरहित छे एटले तेमां कोइ पण जातनो धर्म (गुण) नथी एम नथी. कारण के 'अवर्ण' ए शब्दमां रहेलो आदिनो अकार जेम वर्णनी विद्यमानताना निषेधनो सूचक छे तेम ते साथे साथे [illegible] पण सूचवे छे के 'जो के तेमां वर्ण नथी पण बीजुं कांइ छे' अर्थात् नञ् पर्युदासमां वर्ते छे. ते धर्मास्तिकाय वगेरे द्रव्यथी शाश्वत छे, प्रदेशथी अवस्थित छे, ['लोगदव्वे' त्ति] ते धर्मास्तिकाय लोकद्रव्य छे अर्थात् पांच अस्तिकायरूप लोकना अंशरूप द्रव्य छे. भावथी एटले पर्यायथी. ['गुणओ' त्ति] गुणथी एटले कार्यथी ['गमणगुणे' त्ति] गमन–गति–गुणवाळो छे. तात्पर्य ए छे के, जेम माछलाने चालवामां पाणी सहायता आपे छे तेम गतिक्रियामां परिणत थएल जीव अने पुद्गलने सहायता आपे छे माटे धर्मास्तिकाय तत्त्व गतिगुणवाळुं छे. ['ठाणगुणे' त्ति] स्थितिगुणयुक्त छे अर्थात् जेम माछलाने उभा रहेवामां जमीन सहायता आपे छे तेम स्थितिक्रियामां परिणत थएल जीव अने पुद्गलने सहायता आपे छे माटे अधर्मास्तिकाय तत्त्व स्थितिगुणवाळुं छे. ['अवगाहणागुणे' त्ति] जेम बोरोने राखवा माटे कुंडुं आधारभूत छे तेवी रीते आकाश तत्त्व जीवादिने अवकाशनुं कारण छे माटे ते अवगाहना गुणवाळुं छे. ['उवओगगुणे' त्ति] उपयोग एटले चैतन्य–चित्शक्ति. तेना बे भेद छेः–साकार–आकारवाळो उपयोग अने निराकार–आकार विनानो उपयोग. जीव तत्त्व चैतन्यगुणवाळुं छे. ['गहणगुणे' त्ति] ग्रहण एटले परस्पर संबंध, पुद्गल तत्त्व ग्रहणगुणवाळुं छे कारण के औदारिकादि अनेक पुद्गलो साथे प्राणी–जीवनो संबंध छे अथवा प्राणधारी जीव औदारिकादि अनेक जातनां पुद्गलोनुं ग्रहण कर्या करे छे.

अवर्ण.

लोकद्रव्य.

गमनगुण.

अवगाहनागुण.

उपयोगगुण.

ग्रहणगुण.

२. 'खंडे चक्के' इत्यादि. यथा खण्डं चक्रं चक्रं न भवति, खण्डचक्रमित्येवं तस्य व्यपदिश्यमानत्वात्, अपि तु सकलमेव चक्रं चक्रं भवति, एवं धर्मास्तिकायः प्रदेशेनाप्यूनो न धर्मास्तिकाय इति वक्तव्यः स्यात्, एतच्च निश्चयनयदर्शनम्, व्यवहारनयमतं तु एकदेशेन ऊनमपि वस्तु वस्त्वेव, यथा खण्डोऽपि घटो घट एवेति, छिन्नकर्णोऽपि श्वा श्वैव, भणति च 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति. 'से किं खाइ' त्ति अथ किं पुनरित्यर्थः 'सव्वे' त्ति समस्ताः ते च देशाऽपेक्षयाऽपि भवन्ति, प्रकारकार्त्स्न्येऽपि सर्वशब्दप्रवृत्तेरिति; अत आह– 'कसिण' त्ति कृत्स्नाः–नतु तदेकदेशापेक्षया सर्वे इत्यर्थः ते च स्वस्वभावरहिता अपि भवन्ति इति, अत आह–प्रतिपूर्णाः–आत्मस्वरूपेणाऽविकलाः ते च प्रदेशान्तरापेक्षया स्वस्वभावन्यूना अपि तथोच्यन्ते, इत्याह–'निरवसेस' त्ति निरवशेषाः–प्रदेशान्तरतोऽपि स्वस्वभावेनाऽन्यूनाः तथा 'एगग्गहणगहिअ' त्ति एकग्रहणेनैकशब्देन 'धर्मास्तिकाय' इत्येवं लक्षणेन गृहीता ये ते तथा–एकशब्दाभिधेया इत्यर्थः, एकार्था वैते शब्दाः. 'पएसा अणंता भाणिअव्व' त्ति धर्माऽधर्मयोरसंख्येयाः प्रदेशा उक्ताः, आकाशादीनां पुनः प्रदेशा अनन्ता वाच्याः, अनन्तप्रदेशिकत्वात् त्रयाणामपीति.

२. ['खंडे चक्के' इत्यादि.] जेम चक्र–पैडा–नो खंड–एक भाग–ते चक्र न कहेवाय, पण चक्रखंड कहेवाय अने जो आखुं चक्र होय तो ज ते चक्र कहेवाय, तेम ज ज्यां सुधी एक पण प्रदेशनी ऊणप होय त्यां सुधी ते धर्मास्तिकाय न कहेवाय, पण ज्यारे पूरेपूरा प्रदेशो होय त्यारे ज ते धर्मास्तिकाय कहेवाय अर्थात् ज्यारे पूरेपूरी–आखेआखी वस्तु होय त्यारे ज ते वस्तु कहेवाय, पण जरा य अधूरी वस्तु वस्तु न कहेवाय, ए प्रमाणे निश्चयनयनुं मत छे. व्यवहार नयनी दृष्टिए तो जराक अधूरी वस्तु पण आखी वस्तु लेखी शकाय छे, ते व्यवहार नय [illegible] टुकडाने पण घडो कहे छे अने जे कूतराना कान कपाया छे–जे कूतरो बूचो छे–ते पण कूतरो ज कहेवाय छे अर्थात् जे वस्तुनो कोइ भाग [illegible] होय तो पण ते वस्तु मूळवस्तु जेवी ज गणाय छे–'तेमां थएलो विकार मूळ वस्तुनी ओळखमां बाधक थतो नथी.' ए प्रमाणे व्यवहार नयनुं [illegible] छे. ['से किं खाइ' त्ति] हवे शुं थयुं. ['सव्वे' त्ति] सर्व एटले बधा, 'थोडा घणा पदार्थो होय तो पण ते बधा पदार्थो छे' एम [illegible] कारण के 'सर्व' शब्द एक देशीय सर्वतानो पण सूचक छे. आ स्थळे 'सर्व' शब्दनो पूर्वोक्त अर्थ न लेवाय माटे कहे छे के ['कसिण' त्ति] कृत्स्न एटले बधा–पूरेपूरा. नहीं के एक भागनी अपेक्षाए बधा, किंतु सर्व प्रकारे बधा. तेओ बधा होय, पण तेओ पोतपोताना [illegible] माटे कहे छे के, तेओ बधा प्रतिपूर्ण होय–पोत पोताना स्वभावथी भरेला होय. बीजा प्रदेशनी अपेक्षाए स्वस्वभावरहित होय, [illegible] प्रदेशो कहेवाय माटे कहे छे के, ['निरवसेस' त्ति] निरवशेष अर्थात् प्रदेशांतरथी पण स्वस्वभावथी न्यून नहीं. तथा [[illegible]] धर्मास्तिकायरूप एक शब्दथी कही शकाय तेवा. अथवा ए बधा शब्दो समान अर्थवाळा छे. ['पएसा अणंता भाणिअव्वा' त्ति] [illegible] अधर्मास्तिकायना असंख्य प्रदेश कह्या छे, वळी आकाश वगेरे त्रण तत्त्वना–आकाश, जीव अने पुद्गलना–तो [illegible] प्रत्येकना अनंत अनंत प्रदेशो छे.

निश्चय अने व्यवहार नय.

लौकिक न्याय.

जीव.

६१. प्र०—जीवे णं भन्ते ! सउट्ठाणे, सकम्मे, सबले, सवीरिए, सपुरिसक्कारपरिक्कमे, आयभावेणं जीवभावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया ?

६२. उ०—हंता, गोयमा ! जीवे णं जाव–उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया.

६४. प्र०—से केणट्ठेणं जाव–वत्तव्वं सिया ?

६४. उ०—गोयमा ! जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं एवं सुयणाणपज्जवाणं ओहिनाणपज्जवाणं, मणपज्जवणाणपज्जवाणं, केवलणाणपज्जवाणं, मइअन्नाणपज्जवाणं, सुयअण्णाणपज्जवाणं, विभंगअण्णाणपज्जवाणं, चक्खुदंसणपज्जवाणं, अचक्खुदंसणपज्जवाणं, ओहिदंसणपज्जवाणं, केवलदंसणपज्जवाणं उवओगं गच्छइ, उवओगलक्खणे णं जीवे से एएणट्ठेणं, एवं वुच्चइ गोयमा ! जीवे णं सउट्ठाणे, जाव–वत्तव्वं सिया.

६१. प्र०—हे भगवन् ! 'उत्थानवाळो, कर्मवाळो, बळवाळो, वीर्यवाळो अने पुरुषकारपराक्रमवाळो जीव आत्मभाववडे जीवभावने देखाडे' एम कहेवाय ?

६२. उ०—हे गौतम ! हा, 'तेवा प्रकारनो जीव यावत्–जीवभावने देखाडे' एम कहेवाय.

६४. प्र०—हे भगवन् ! तेम कहेवानुं शुं कारण के, यावत्–'ते जीवभावने देखाडे' एम कहेवाय ?

६४. उ०—हे गौतम ! जीव, आभिनिबोधिक ज्ञानना अनंत पर्यवोना, ए प्रमाणे श्रुतज्ञानना अनंत पर्यवोना, अवधिज्ञानना अनंत पर्यवोना, मनःपर्यवज्ञानना अनंत पर्यवोना, केवलज्ञानना अनंत पर्यवोना, मतिअज्ञानना अनंत पर्यवोना, श्रुतअज्ञानना अनंत पर्यवोना, विभंगअज्ञानना अनंत पर्यवोना, चक्षुदर्शनना अनंत पर्यवोना, अचक्षुदर्शनना अनंत पर्यवोना, अवधिदर्शनना अनंत पर्यवोना अने केवळ दर्शनना अनंत पर्यवोना उपयोगने प्राप्त करे छे–जीव ए उपयोगरूप छे. हे गौतम ! ते कारणथी एम कह्युं छे के,* 'उत्थानवाळो जीव यावत्–जीवभावने देखाडे' एम कहेवाय.

१. उपयोगगुणो जीवास्तिकायः प्रागुदर्शितः, अथ तद्देशभूतो जीव उत्थानादिगुणः, इति दर्शयन्नाह–*'जीवे णं'* इत्यादि. इह च *'सउट्ठाणे'* इत्यादीनि विशेषणानि मुक्तजीवव्युदासार्थानि *'आयभावेणं'* ति आत्मभावेन उत्थान–शयन–गमन–भोजनादिरूपेण आत्मपरिणामविशेषेण *'जीवभावं'* ति जीवत्वं चैतन्यम् उपदर्शयति प्रकाशयति इति वक्तव्यं स्यात्, विशिष्टस्य उत्थानादेर्विशिष्टचेतनापूर्वकत्वादिति *'अणंताणं आभिणिबोहिअ'* इत्यादि. पर्यवाः प्रज्ञाकृता विभागाः–परिच्छेदाः, ते चानन्ताः. आभिनिबोधिकज्ञानस्य, अतोऽनन्तानामभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणां संबन्धिनमनन्ताभिनिबोधिकज्ञानपर्यवात्मकमित्यर्थः उपयोगं चेतनाविशेषं गच्छतीति योगः, उत्थानादावात्मभावे वर्तमान इति हृदयम्. अथ यदि उत्थानादि आत्मभावे वर्तमानो जीव आभिनिबोधिकज्ञानादि–उपयोगं गच्छति, तत् किमेतावता एव जीवभावमुपदर्शयतीति वक्तव्यं स्यात् ? इत्याशङ्कयाह–*'उवओग'* इत्यादि. अत उपयोगलक्षणं जीवभावम् उत्थानादि आत्मभावेन उपदर्शयति इति वक्तव्यं स्याद् एव इति.

१. जीवास्तिकाय उपयोगरूप गुणवाळो छे एम आगळ देखाड्युं छे. हवे ते जीवास्तिकायना भागरूप एक जीव 'उत्थानादि गुणवाळो छे' ए वातने देखाडता कहे छे के, ['जीवे णं' इत्यादि.] अहीं जे ['सउट्ठाणे']–'उत्थानवाळो' इत्यादि विशेषणो आप्यां छे तेनुं कारण ए के, आ स्थळे मुक्त जीव लेवानो नथी. ['आयभावेणं' ति] उत्थान–उठवुं, शयन–सूवुं, गमन–जवुं अने भोजन–जमवुं, इत्यादिरूप एक प्रकारना आत्मपरिणाम द्वारा ['जीवभावं' ति] जीवपणाने–चैतन्यने देखाडे छे एम कहेवाय. कारण के ज्यारे विशिष्ट चेतना शक्ति होय त्यारे विशिष्ट उत्थानादि होय छे. ['अणंताणं आभिणिबोहिअ' इत्यादि.] पर्यवो एटले बुद्धिथी करेला विभागो, आभिनिबोधिक ज्ञानना तेवा पर्यवो अनंत होय छे एथी उत्थानादि भावमां वर्ततो आत्मा आभिनिबोधिक–मति–ज्ञान संबंधी अनंत पर्यवोना उपयोगने आभिनिबोधिक ज्ञानना पर्यवरूप एक प्रकारना चैतन्यने पामे छे ए तात्पर्य छे. शं०—हवे जो उत्थानादि आत्मभावमां वर्ततो जीव आभिनिबोधिकज्ञानादिकना उपयोगने पामे, तो शुं तेथी तेणे पोतानुं चैतन्य प्रकाश्युं एम कहेवाय ? समा०–(मूळकार ज कहे छे के,) ['उवओग' इत्यादि.] पूर्व प्रमाणे छे माटे उत्थानादिरूप आत्मभाव द्वारा उपयोगरूप जीवभावने दर्शावे छे एम कहेवाय.

जीवमीमांसा. शंका. समाधान.

---

१. मूलच्छाया:—जीवो भगवन् ! सोत्थानः, सकर्मा, सबलः, सवीर्यः, सपुरुषकारपराक्रमः, आत्मभावेन जीवभावम् उपदर्शयति इति वक्तव्यं स्यात् ? हन्त गौतम ! जीवो यावत्–उपदर्शयति इति वक्तव्यं स्यात्. तत् केनाऽर्थेन यावत्–वक्तव्यं स्यात् ? गौतम ! जीवोऽनन्तानाम् आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणाम्, एवं श्रुतज्ञानपर्यवाणाम्, अवधिज्ञानपर्यवाणाम्, मनःपर्यवज्ञानपर्यवाणाम्, केवलज्ञानपर्यवाणाम्, मत्यज्ञानपर्यवाणाम्, श्रुताऽज्ञानपर्यवाणाम्, [illegible], चक्षुर्दर्शनपर्यवाणाम्, अचक्षुर्दर्शनपर्यवाणाम्, अवधिदर्शनपर्यवाणाम्, केवलदर्शनपर्यवाणाम् उपयोगं गच्छति, उपयोगलक्षणो [illegible] एवम् उच्यते गौतम ! जीवः सोत्थानः, यावत्–वक्तव्यं स्यात्.—अनु.

आकाश.

६५. प्र०—कतिविहे णं भन्ते ! आगासे पण्णत्ते ?

६५. उ०—गोयमा ! दुविहे आगासे पण्णत्ते, तं जहा—लोयागासे य अलोयागासे य.

६६. प्र०—लोयागासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवप्पएसा; अजीवा, अजीवदेसा, अजीवप्पएसा ?

६६. उ०—गोयमा ! जीवा वि, जीवदेसा वि, जीवप्पएसा वि; अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवप्पएसा वि. जे जीवा ते नियमा एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया चउरिंदिया, पंचिंदिया, अणिंदिया; जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा, जाव—अणिंदियदेसा, जे जीवपएसा ते नियमा एगिंदियपएसा, जाव—अणिंदियपएसा; जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहाः—रूवी य, अरूवी य; जे रूवी ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहाः—खंधा, खंधदेसा, खंधपएसा, परमाणुपोग्गला; जे अरूवी ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहाः—धम्मत्थिकाए, नो धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पएसा; अधम्मत्थिकाए, नो अधम्मत्थिकायस्स देसे, अधम्मत्थिकायस्स पएसा, अद्धासमये.

६७. प्र०—अलोगगासे णं भंते ! किं जीवा, पुच्छा तह चेव ?

६७. उ०—गोयमा ! नो जीवा, जाव—नो अजीवप्पएसा, एगे अजीवदव्वदेसे, अगुरुयलहुए, अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं संजुत्ते, सव्वागासे अणंतभागूणे.

६८. प्र०—(लोयागासे णं भन्ते ! कतिवण्णे ? पुच्छा.)

६८. उ०—(गोयमा ! अवण्णे, अरसे, अगंधे जाव—अफासे. एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुअलहुए, अणंतेहिं अगुरुअलहुअगुणेहिं संजुत्ते, सव्वागासस्स अणंतभागे.)

६५. प्र०—हे भगवन् ! आकाशना केटला प्रकार [illegible]

६५. उ०—हे गौतम ! आकाशना बे प्रकार [illegible] आ प्रमाणेः—लोकाकाश अने अलोकाकाश.

६६. प्र०—हे भगवन् ! शुं लोकाकाश ए जीवो छे, [illegible] देशो छे, जीवना प्रदेशो छे, अजीवो छे, अजीवना [illegible] अजीवना प्रदेशो छे ?

६६. उ०—हे गौतम ! ते जीवो पण छे, जीवना देशो [illegible], जीवना प्रदेशो पण छे, अजीवो पण छे, अजीवना देशो पण छे, [illegible] अजीवना प्रदेशो पण छे. जे जीवो छे ते चोकस एकेंद्रियो छे, [illegible] छे, त्रींद्रियो छे, चतुरिंद्रियो छे, पंचेंद्रियो छे अने अनिंद्रियो [illegible]. जे जीवना देशो छे ते चोकस एकेंद्रियना देशो छे अने यावत्—अनिंद्रियना देशो छे. जे जीवना प्रदेशो छे ते चोकस एकेंद्रियना प्रदेशो छे. अने यावत्—अनिंद्रियना प्रदेशो छे. जे अजीवो [illegible] ते बे प्रकारना कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—रूपी अने अरूपी. जे रूपी छे तेना चार प्रकार कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश अने परमाणुपुद्गल. जे अरूपी छे तेना पांच प्रकार कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—धर्मास्तिकाय, नो धर्मास्तिकायनो देश, धर्मास्तिकायना प्रदेशो; अधर्मास्तिकाय, नो अधर्मास्तिकायनो देश अने अधर्मास्तिकायना प्रदेशो तथा अद्धासमय.

६७. प्र०—हे भगवान् ! शुं अलोकाकाश ए जीवो छे ? इत्यादि पूर्व प्रमाणे पूछवुं.

६७. उ०—हे गौतम ! ते (अलोकाकाश) जीवो नथी यावत्—अजीवना प्रदेशो पण नथी. ते एक अजीवद्रव्यदेश छे, अगुरुलघु छे. तथा अगुरुलघुरूप अनंत गुणोथी संयुक्त छे अने अनंत भागथी ऊणुं सर्व आकाशरूप छे.

६८. प्र०—हे भगवान् ! लोकाकाशमां केटला वर्ण छे ? इत्यादि पूछवुं.

६८. उ०—हे गौतम ! लोकाकाशमां वर्ण नथी, रस नथी, गंध नथी यावत्—स्पर्श नथी. ते एक अजीवद्रव्यदेश छे, अगुरुलघु छे, अगुरुलघुरूप अनंत गुणोथी संयुक्त छे अने सर्व आकाशना अनंत भागरूप छे.

---

१. मूलच्छाया—कतिविधं भगवन् ! आकाशं प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! द्विविधम् आकाशं प्रज्ञप्तम्, तद्यथाः—लोकाकाशं च, अलोकाऽऽकाशं च. लोकाऽऽकाशं भगवन् ! किं जीवाः, जीवदेशाः, जीवप्रदेशाः, अजीवाः, अजीवदेशाः, अजीवप्रदेशाः ? गौतम ! जीवा अपि, जीवदेशा अपि, जीवप्रदेशा अपि, अजीवा अपि, अजीवदेशा अपि, अजीवप्रदेशा अपि. ये जीवास्ते नियमाद् एकेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अनिन्द्रियाः; ये जीवदेशास्ते नियमाद् एकेन्द्रियदेशाः, यावत्—अनिन्द्रियदेशाः; ये जीवप्रदेशास्ते नियमाद् एकेन्द्रियप्रदेशाः, यावत्—अनिन्द्रियप्रदेशाः; [illegible] द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—रूपिणश्च अरूपिणश्च. ये रूपिणस्ते चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—स्कन्धाः, स्कन्धदेशाः, स्कन्धप्रदेशाः, [illegible] द्गलाः, येऽरूपिणस्ते पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः—धर्मास्तिकायः, नो धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः; अधर्मास्तिकायः, नो [illegible] देशः, अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः, अद्धासमयः. अलोकाऽऽकाशं भगवन् ! किं जीवाः, पृच्छा तथा चैव ? गौतम ! नो जीवाः, यावत्—[illegible] अजीवद्रव्यदेशः, अगुरुकलघुकः अनन्तैः अगुरुकलघुकगुणैः संयुक्तः, सर्वाऽऽकाशोऽनन्तभागोनः. लोकाकाशं भगवन् ! [illegible] अवर्णम्, अरसम्, अगन्धम्, यावत्—अस्पर्शम्, एकम्, अजीवद्रव्यदेशः, [illegible] अनन्तभागः—अनु०

४. अनन्तरं जीवविचारसूत्रमुक्तम्, अथ तदाधारभूताकाशविचारसूत्राणि *'कतिविहे णं भंते !'* इत्यादीनि. तत्र लोका-ऽलोकाऽऽकाशयोर्लक्षणम् इदम्—धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रं तैर्द्रव्यैः सह लोकः. तद्विपरीतं हि अलोकाऽऽख्यम् इति. *'लोयागासे णं'* इत्यादौ षट् प्रश्नाः—तत्र लोकाकाशेऽधिकरणे *'जीव'* त्ति संपूर्णानि जीवद्रव्याणि *'जीवदेस'* त्ति जीवस्यैव बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादयो विभागाः *'जीवप्पएस'* त्ति तस्यैव बुद्धिकृता एव प्रकृष्टा देशाः प्रदेशा निर्विभागा भागाः इत्यर्थः *'अजीव'* त्ति धर्मास्तिकायादयः, ननु लोकाकाशे जीवा अजीवाश्चेत्युक्ते तद्देश-प्रदेशास्तत्रोक्ता एव भवन्तीति, जीवाद्यव्यतिरिक्तत्वाद् देशादीनाम्, ततो जीवाऽजीवग्रहणे किं देशादिग्रहणेनेति, नैवम्, 'निरवयवा जीवादयः' इति मतव्यवच्छेदार्थत्वादस्येति. अत्रोत्तरम्—*'गोयमा ! जीवा वि'* इत्यादि. अनेन चाद्यप्रश्नत्रयस्य निर्वचनमुक्तम्, अथान्यस्य प्रश्नत्रयस्य निर्वचनमाहः—*'जे अजीवे'* इत्यादि. *'रूवी य'* त्ति मूर्ताः पुद्गला इत्यर्थः *'अरूवी य'* त्ति अमूर्ताः धर्मास्तिकायादय इत्यर्थः. *'खंध'* त्ति परमाणुप्रचयात्मकाः स्कन्धाः. स्कन्धदेशा द्व्यादयो विभागाः. स्कन्धप्रदेशास्तस्यैव निरंशा अंशाः परमाणुप्रख्याः स्कन्धभावमनापन्नाः परमाणव इति, ततो लोकाकाशे रूपिद्रव्यापेक्षया *'अजीवा वि,' 'अजीवदेसा वि,' 'अजीवप्पएसा वि,'* इति एतदर्थः स्यात्, अणूनाम्, स्कन्धानां चाऽजीवग्रहणेन ग्रहणात्.

४. आगळना प्रकरणमां जीवना विचार संबंधे सूत्र कह्युं छे. हवे आकाश संबंधी विचारनां सूत्रो कहेवानां छे. कारण के आकाश जीवना आधारभूत छे. ['कतिविहे णं भंते !'] इत्यादि सूत्रो आकाश संबंधे छे. आकाशना बे विभाग छेः—लोकाकाश अने अलोकाकाश. ते बन्नेनुं स्वरूप आ छेः—जे क्षेत्रमां धर्मास्तिकाय वगेरे द्रव्यो रहे ते क्षेत्र ते द्रव्योसहित *लोक*—लोकाकाश—कहेवाय अने जे क्षेत्र तेथी उलटुं छे ते *अलोक*—अलोकाकाश—कहेवाय. ['लोयागासे णं'] इत्यादि सूत्रमां छ प्रश्नो छे. तेमां लोकाकाशरूप अधिकरण—आधार—मां ['जीव' त्ति] संपूर्ण जीवद्रव्यो—जीवो—रहे छे. ['जीवदेस' त्ति] जीवना देशो अर्थात् बुद्धिथी कल्पेला जीवना ज (बे त्रण वगेरे) विभागो. ['जीवप्पएस' त्ति] जीवना प्रदेशो अर्थात् ते जीवदेशना ज बुद्धिथी करेला ज सूक्ष्म भागो—फरीवार जे भागना बीजा भाग न थइ शके तेवा भागो. ['अजीव' त्ति] अजीवो—धर्मास्तिकाय वगेरे. शं०—'लोकाकाशमां जीवो अने अजीवो छे' एम कहेवाथी ज 'जीवोना अने अजीवोना देशो अने प्रदेशो पण लोकाकाशमां छे' ए वात जणाय ते सहज ज छे, कारण के जीवना अने अजीवना देशो तथा प्रदेशो जीव के अजीवथी नोखा नथी—जीवो, जीवदेशो अने जीवप्रदेशो ए बधुं एक ज छे तथा अजीवो, अजीवदेशो अने अजीवप्रदेशो ए बधुं पण एक ज छे. माटे अहीं जीवदेशो वगेरेने जूदा शा माटे कह्या ? समा०—ए प्रमाणे शंका करवी युक्त नथी, कारण के जीवादिकनुं ग्रहण कर्या छतां जे तेना देशादिकनुं जूदुं ग्रहण कर्युं छे ते सकारण छे. ते कारण आ छेः—केटलाकोनुं मत एवुं छे के, जीवो वगेरे अवयवरहित वस्तु छे, तो ते मतना निरासने माटे अने 'जीवो वगेरे सावयव वस्तु छे' ए वातने सूचववा माटे जीवदेशादिकनुं जूदुं ग्रहण कर्युं छे. पूर्वे जे छ प्रश्नो कह्या छे तेनो उत्तर आ छेः—['गोयमा ! जीवा वि' इत्यादि.] आ सूत्रथी शरुआतना त्रण प्रश्नोना उत्तरो जणाव्या छे. हवे छेल्ला त्रण प्रश्नोना उत्तरो कहे छे, ['जे अजीवे' इत्यादि.] ['रूवी य' त्ति] पुद्गलो मूर्त छे—रूपवाळा छे. ['अरूवी य' त्ति] धर्मास्तिकाय वगेरे अमूर्त छे—अरूपी छे. ['खंध' त्ति] परमाणुना समूहरूप ते स्कंधो. बे, त्रण वगेरे स्कंधना भागो ते स्कंधदेशो. स्कंधदेशना ज, जेना भाग न थइ शके तेवा अंशो ते स्कंधप्रदेशो. स्कंधभावने नहीं पामेला जे परमाणुपुद्गलो ते परमाणुओ. तेथी लोकाकाशमां रूपी द्रव्यनी अपेक्षाए ['अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवप्पएसा वि'] 'अजीवो, अजीवदेशो अने अजीवप्रदेशो पण छे' ए वात अर्थात् समजाय तेम छे. कारण के अजीवनुं ग्रहण करवाथी अणु अने स्कंधोनुं ग्रहण पण थइ जाय छे.

आकाशनीमांसा.

शंका.

समाधान.

अन्यमत निरास.

स्कंध. स्कंधदेश.
स्कंधप्रदेश. परमाणु.

५. *'जे अरूवी ते पंचविहा'* इत्यादि. अन्यत्र अरूपिणो दशविधा उक्ताः, तद्यथाः—आकाशास्तिकायः, तद्देशः, तत्प्रदेशश्चेति, एवं धर्माऽधर्मास्तिकायौ, समयश्चेति दश, इह तु सभेदस्याकाशस्याधारत्वेन विवक्षितत्वात् तदाधेयाः सप्त वक्तव्या भवन्ति, न च तेऽत्र विवक्षिताः, वक्ष्यमाणकारणाद्; ये तु विवक्षितास्तानाहः—*'पञ्च'* इति कथमित्याहः—*'धम्मात्थिकाय'* इत्यादि. इह जीवानां पुद्गलानां च बहुत्वादेकस्याऽपि जीवस्य पुद्गलस्य वा स्थाने संकोचादितथाविधपरिणामवशाद् बहवो जीवाः पुद्गलाश्च, तथा तद्देशाः, तत्प्रदेशाश्च संभवन्तीति कृत्वा जीवाश्च, जीवदेशाश्च, जीवप्रदेशाश्च; तथा रूपिद्रव्यापेक्षयाऽजीवाश्च, अजीवदेशाश्च, अजीवप्रदेशाश्चेति संगतम्, एकत्राप्याश्रये भेदवतो वस्तुत्रयस्य सद्भावाद् धर्मास्तिकायादौ तु द्वितयमेव युक्तम्, यतो यदा संपूर्णं वस्तु विवक्ष्यते तदा 'धर्माऽस्तिकायादि' इत्युच्यते, तदंशविवक्षायां तु तत्प्रदेशा इति, तेषामवस्थितरूपत्वात्; तद्देशकल्पनात्वयुक्ता, तेषामनवस्थितरूपत्वादिति. यदपि चानवस्थितरूपत्वं जीवादिदेशानामप्यस्ति, तथाऽपि तेषामेकत्राश्रये भेदेन संभवः प्ररूपणाकारणम्, इह तु तन्नास्ति, धर्मास्तिकायादेरेकत्वाद्, असंकोचादिधर्मत्वाच्चेति, अत एव धर्मास्तिकायादिदेशनिषेधायाऽऽहः—*''नो 'धम्मात्थिकायस्स देसे'* तथा *'नो अधम्मात्थिकायस्स देसे'* त्ति.

५. ['जे अरूवी ते पंचविहा' इत्यादि.] बीजे ठेकाणे अरूपिओना दश प्रकार कह्या छे. ते आ प्रमाणेः—आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकायदेश, आकाशास्तिकायप्रदेश, धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायदेश, धर्मास्तिकायप्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायदेश, अधर्मास्तिकायप्रदेश अने समय. शं०—ज्यारे बीजे स्थळे अरूपिना दश भेद कह्या छे त्यारे अहीं पांच भेद कह्या तेनुं शुं कारण ? समा०—अहीं त्रण भेदवाळा आकाशने आधार तरीके गण्युं छे माटे तेना त्रण भेद अहीं गण्या नथी. आकाशना त्रण भेद बाद करतां बाकी सात भेद रहे छे तेमां पण ते साते भेदनी अहीं विवक्षा नथी करी, तेनुं कारण आगळ उपर जणाशे. अने जे भेदोनी विवक्षा करी छे ते भेदोने कहे छेः—['पंच' इति] पांच. पांच केवी रीते ? ते कहे छे के, ['धम्मात्थिकाय' इत्यादि.] जीवो अने पुद्गलो घणा छे माटे ज एम कहेवुं युक्त छे के, 'जीवो, जीवदेशो, जीवप्रदेशो अने पुद्गलो, पुद्गलदेशो, पुद्गलप्रदेशो.' अथवा जीवमां अने पुद्गलमां संकोचावानी अने विस्तरवानी—फेलावानी—शक्ति छे माटे एक ज जीव वा पुद्गल जेटली जग्यामां समाइ शके छे तेटली ज जग्यामां अनेक जीवो तथा अनेक पुद्गलो समाइ शके छे (तेथी घणा जीवो अने घणा पुद्गलो संभवी शके छे) माटे पण एम कहेवुं [illegible] छे के, 'जीवो, जीवदेशो अने जीवप्रदेशो तथा पुद्गलो, पुद्गलदेशो अने पुद्गलप्रदेशो.' तथा रूपिद्रव्यनी अपेक्षाए 'अजीवो

शंका. समाधान.

[illegible] अने अजीवप्रदेशो' एम कहेवुं पण सुसंगत छे. कारण के एक ज आकाशनी अंदर पण जुदी जुदी [illegible] वस्तुओनो [illegible] छे. [illegible] काळ वगेरे वस्तुओमां तो बे वातो ज संभवे छे:—एक धर्मास्तिकाय अने बीजो धर्मास्तिकायप्रदेश इत्यादि. ज्यारे आखा 'धर्मास्तिकाय' [illegible] —ज्यारे आखी वस्तु कहेवानी होय—त्यारे 'धर्मास्तिकाय' इत्यादि निर्देश थाय छे. ज्यारे धर्मास्तिकाय वगेरेना अंशनी विवक्षा करवामां आवे [illegible] 'धर्मास्तिकायप्रदेश' कहेवाय. कारण के ते प्रदेशो अवस्थितरूपवाळा छे. धर्मास्तिकायमां तेना देशनी कल्पना करवी अयुक्त छे, कारण के [illegible] अवस्थितरूपवाळा नथी. जो के जीव वगेरे देशो पण अवस्थितरूप विनाना छे तो पण तेओ एक ज आश्रयमां जूदा जूदा संभवे छे माटे तेओनी [illegible] जूदी प्ररूपणा करी छे. अने धर्मास्तिकायादिकमां तो तेम नथी, कारण के ते एक छे अने संकोचादि धर्मरहित छे. माटे ज धर्मास्तिकायादिना [illegible] निषेध करवा कहे छे के, ['नो धम्मत्थिकायस्स देसे'] तथा ['नो अधम्मत्थिकायस्स देसे' त्ति].

६. चूर्णिकारोऽप्याह:—*"अरूविणो दव्वा समुदयसद्देण भण्णंति नीसेसा, पएसेहिं वा नीसेसा भणिज्जा नो देसेणं, तस्स अण-वट्ठिअप्पमाणत्ताओ, तेण न देसेण निद्देसो, जो पुण देससद्दो एएसु कओ सो सविसयगयववहारत्थं, परदव्वफुसणादिगयववहारत्थं च"* इति तत्र स्वविषये धर्मास्तिकायादिविषये, यो देशस्य व्यवहारः, यथा—धर्मास्तिकायः स्वदेशेन ऊर्ध्वलोकाकाशं व्याप्नोतीत्यादिः, तदर्थम्, तथा परद्रव्येणोर्ध्वलोकाकाशादिना यः स्वस्य स्पर्शनादिगतो व्यवहारः, यथा—ऊर्ध्वलोकाकाशेन धर्मास्तिकायस्य देशः स्पृश्यते इत्यादि, तदर्थमिति. *'अद्धासमय'* त्ति *अद्धा कालः, तल्लक्षणः समयः क्षणः—अद्धासमयः,* स चैक एव वर्तमानक्षणलक्षणः, अतीताऽनागतयो-रसत्त्वात्, इति कृतं लोकाकाशगतप्रश्नषट्कस्य निर्वचनम्, अथ अलोकाऽऽकाशं प्रश्नयन् आह:—*"पुच्छा तह चेव"* त्ति यथा लोकाकाशे, तथाहि:—*"अलोकाकासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा, जीवप्पएसा ? अजीवा, अजीवदेसा, अजीवप्पएसा ?"* त्ति. निर्वचनं त्वेषां षण्णामपि निषेधः तथा *'एगे अजीवदव्वदेसे'* त्ति अलोकाकाशस्य देशत्वं लोकालोकरूपाकाशद्रव्यस्य भागरूपत्वाद् *'अगुरुयलहुय'*त्ति गुरु—लघुता-व्यपदेशत्वाद् *'अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं'*ति अनन्तैः स्वपर्याय—परपर्यायरूपैर्गुणैरगुरुलघुस्वभावैरित्यर्थः *'सव्वागासे अणंतभागूणे'* त्ति लोकाकाशस्य अलोकाकाशापेक्षया अनन्तभागरूपत्वाद् इति.

चूर्णिकार.

६. आ संबंधे चूर्णिकार पण कहे छे के, "बधां अरूपी द्रव्योनो व्यवहार 'समुदय' शब्दथी थाय छे, अथवा बधां अरूपी द्रव्योनो व्यवहार 'प्रदेश' शब्दथी थाय छे पण 'देश' शब्दथी तेओनो व्यवहार थतो नथी. कारण के तेओना देशोनुं अनवस्थित प्रमाण छे माटे ते संबंधे 'देश' शब्दनो निर्देश करवो अयुक्त छे. वळी जे ए द्रव्यो विषे 'देश' शब्दनो निर्देश कर्यो छे ते, ते संबंधी (धर्मास्तिकायादि संबंधी) व्यवहारने माटे अने परद्रव्य संबंधी (ऊर्ध्व लोकाकाशादि संबंधी) स्पर्शनादिविषयक व्यवहारने माटे कर्यो छे." जेम के, 'धर्मास्तिकाय पोताना देशवडे ऊर्ध्व लोकाकाशने व्याप्त करे छे' ए प्रमाणेनो धर्मास्तिकाय संबंधी व्यवहार छे. तथा 'ऊर्ध्व लोकाकाशवडे धर्मास्तिकायनो अमुक भाग (देश) स्पर्शाय छे' ए प्रमाणे परद्रव्य संबंधी स्पर्शनादिविषयक व्यवहार छे—ए बन्ने व्यवहारो साचववा सारु अरूपी द्रव्योमां पण 'देश' शब्दनो व्यवहार कर्यो छे. ['अद्धासमय' त्ति] अद्धा एटले काळ, तद्रूप जे समय ते अद्धासमय. वर्तमानकाळरूप अद्धासमय एक ज छे, कारण के भूतकाळ अने भविष्यत्काळ असद्रूप छे. ए रीते लोकाकाश संबंधी छ प्रश्नोनुं निराकरण कर्युं. हवे अलोकाकाश संबंधे प्रश्नो करतां कहे छे के, ['पुच्छा तह चेव' त्ति] जेम लोकाकाश संबंधे प्रश्नो कर्या छे तेम अलोकाकाश संबंधे पण जाणवुं. ते आ प्रमाणे:—"हे भगवन् ! अलोकाकाश शुं जीव छे, जीवदेश छे, जीवप्रदेश छे, अजीव छे, अजीवदेश छे के अजीवप्रदेश छे?" आनो उत्तर आ छे:—अलोकाकाश जीव, जीवदेश, जीवप्रदेश, अजीव, अजीवदेश अने अजीवप्रदेश नथी— ए छए नथी. पण ते ['एगे अजीवदव्वदेसे' त्ति] अजीव-द्रव्यना एक भागरूप छे. कारण के आकाशना लोकाकाश अने अलोकाकाश एवा बे विभाग छे अने अलोकाकाश, ते आकाशनो एक भाग छे. ['अगुरुयलहुय' त्ति] ते (अलोकाकाश) अगुरुलघु छे, कारण के ते गुरुलघु नथी. ['अणंतेहिं अगुरुयलहुयगुणेहिं' त्ति] स्व अने पर पर्यायरूप अगुरुलघु स्वभाववाळा अनंत गुणोथी युक्त छे. कारण के ['सव्वागासे अणंतभागूणे' त्ति] अलोकाकाशनी अपेक्षाए लोकाकाश अनंत भागरूप छे.

अलोकाकाश.

धर्मास्तिकाय वगेरेनुं प्रमाण अने स्पर्शना.

६९. प्र०—*धम्मत्थिकाए णं भन्ते ! केमहालए पण्णत्ते.*

६९. उ०—*गोयमा ! लोए, लोयमेत्ते, लोयप्पमाणे, लोय-फुडे, लोयं चेव फुसित्ता णं चिट्ठइ; एवमहम्मत्थिकाए, लोयाकासे, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए पंच वि एक्काभिलावा.*

६९. प्र०—हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय केटलो मोटो कह्यो छे ?

६९. उ०—हे गौतम ! ते लोकरूप छे, लोकमात्र छे, लोक-प्रमाण छे अने लोकने स्पर्शेलो तथा लोकने ज अडकीने रहेलो छे. ए प्रमाणे अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय संबंधे पण समजवुं—ए पांचे संबंधे एक सरखो ज अभिलाप (पाठ) छे.

---

१. प्र० छायाः—अरूपीणि द्रव्याणि समुदयशब्देन भण्यन्ते निःशेषाः, प्रदेशैर्वा निःशेषा भणितव्या नोदेशेन, तत्राऽनवस्थितप्रमाणत्वात्, तेन न देशेन निर्देशः, यः पुनर्देशशब्द एतेषु कृतः स स्वविषयगतव्यवहारार्थम्, परद्रव्यस्पर्शनादिगतव्यवहारार्थं चेति. २. श्रीभगवतीचूर्णिस्त्वेवम् आह:—"अरूविणो दव्वा समुदायसद्देण भण्णंति णीसेसा तत्थ पदेसेहिं वा णिस्सेसं भणेज्ज णो देसेण, तस्स अणवट्ठिअप्पमाणातो. तेण ण देसेण णिद्देसो, [illegible] पोग्गलत्थिकायो वि. जो पुण देससद्दो एतेसु कतो सो सविसयगतववहारत्थं, परदव्वफुसणादिगतववहारत्थं वा"—श्रीभगवतीचूर्णि:. ३ अलोकाकाशो भगवन् ! किं जीवाः, जीवदेशाः, जीवप्रदेशाः, अजीवाः, अजीवदेशाः, अजीवप्रदेशाः—अनु०

१. चूर्णिकारे दर्शावेल मूळ पाठ आगळ दर्शाव्यो छे:—अनु०

१. मूलच्छायाः—धर्मास्तिकायो भगवन् ! कियन्महत्त्वः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! लोकः, लोकमात्रः, लोकप्रमाणः, लोकस्पृष्टः, लोकं चैव स्पृष्ट्वा तिष्ठति, एवम् अधर्मास्तिकायः, लोकाकाशम्, जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, पञ्चाऽपि एकाभिलापाः—अनु०

६९. प्र०—अहेलोए णं भंते! धम्मत्थिकायस्स केवइयं फुसति?

७०. उ०—गोयमा! सातिरेगं अद्धं फुसति.

७१. प्र०—तिरियलोए णं भंते! पुच्छा?

७१. उ०—गोयमा! असंखेज्जइभागं फुसइ.

७२. प्र०—उड्ढलोए णं भंते! पुच्छा?

७२. उ०—गोयमा! देसूणं अद्धं फुसइ.

७३. प्र०—इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ, संखेज्जे भागे फुसइ, असंखेज्जे भागे फुसइ, सव्वं फुसइ?

७३. उ०—गोयमा! णो संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ; णो संखेज्जे, णो असंखेज्जे, नो सव्वं फुसइ.

७४. प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही धम्मत्थिकायस्स पुच्छा—किं संखेज्जइभागं फुसइ?

७४. उ०—जहा रयणप्पभा तहा घणोदही, घणवाय—तणुवाया वि.

७५. प्र०—इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवासंतरे धम्मत्थिकायस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ, असंखेज्जइभागं फुसइ; जाव—सव्वं फुसइ?

७५. उ०—गोयमा! संखेज्जइभागं फुसइ, णो असंखेज्जइभागं फुसइ; णो संखेज्जे, णो असंखेज्जे, णो सव्वं फुसइ. उवासंतराई सव्वाइं, जहा रयणप्पभाए पुढवीए वत्तव्वया भणिआ, एवं जाव—अहेसत्तमाए, जंबूदीवाइया दीवा, लवणसमुद्दाइया समुद्दा, एवं सोहम्मे कप्पे जाव—ईसीपब्भारा पुढवी फुसइ, ते सव्वे वि असंखेज्जइभागं, सेसा पडिसेहियव्वा; एवं अधम्मत्थिकाए, एवं लोयागासे वि.

७०. प्र०—हे भगवन्! धर्मास्तिकायना केटला भागने अधोलोक स्पर्शे छे—अडके छे?

७०. उ०—हे गौतम! अधोलोक धर्मास्तिकायना अडधाथी वधारे भागने अडके छे.

७१. प्र०—हे भगवन्! धर्मास्तिकायना केटला भागने तिर्यग्लोक स्पर्शे छे?

७१. उ०—हे गौतम! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकायना असंख्येय भागने अडके छे.

७२. प्र०—हे भगवन्! धर्मास्तिकायना केटला भागने ऊर्ध्वलोक स्पर्शे छे?

७२. उ०—हे गौतम! धर्मास्तिकायना देशोन—कांइक ओछा—अर्ध भागने ऊर्ध्वलोक अडके छे.

७३. प्र०—हे भगवन्! आ शुं रत्नप्रभा पृथिवी धर्मास्तिकायना संख्येय भागने अडके छे, असंख्येय भागने अडके छे, संख्येय भागोने अडके छे, असंख्येय भागोने अडके छे के तेने आखाने अडके छे?

७३. उ०—हे गौतम! ते संख्येय भागने अडकती नथी, पण असंख्येय भागने अडके छे. तथा ते संख्येय भागोने, असंख्येय भागोने अने आखाने पण अडकती नथी.

७४. प्र०—हे भगवन्! आ रत्नप्रभा पृथिवीनो घनोदधि, धर्मास्तिकायना केटला भागने स्पर्शे छे—शुं संख्येय भागने स्पर्शे छे? इत्यादि पूछवुं.

७४. उ०—हे गौतम! जेम रत्नप्रभा संबंधे कह्युं तेम घनोदधि संबंधे पण जाणवुं अने ते ज प्रमाणे घनवात तथा तनुवात संबंधे पण समजवुं.

७५. प्र०—हे भगवन्! आ रत्नप्रभा पृथिवीनुं अवकाशांतर शुं धर्मास्तिकायना संख्येय भागने अडके, असंख्येय भागने अडके के यावत्—तेने आखाने अडके?

७५. उ०—हे गौतम! ते संख्येय भागने अडके पण असंख्येय भागने न अडके, तथा संख्येय भागोने न अडके, असंख्येय भागोने न अडके अने तेने आखाने पण न अडके. ए ज रीते बधां अवकाशांतरो जाणवां. रत्नप्रभा संबंधे कहेल वक्तव्यतानी पेठे यावत्—सातमी पृथिवी सुधी समजवुं. तथा जंबूद्वीपादिक द्वीपो अने लवणसमुद्रादिक समुद्रो, सौधर्म कल्प, यावत्—ईषत्प्राग्भारा पृथिवी; ते बधां य असंख्येय भागने स्पर्शे छे. बाकीना भागनी स्पर्शनानो निषेध करवो. ए प्रमाणे अधर्मास्तिकाय अने लोकाकाशने अडकवा विषे पण जाणवुं.

---

१. मूलच्छाया:—अधोलोको भगवन्! धर्मास्तिकायस्य कियन्तं स्पृशति? गौतम! सातिरेकमर्धं स्पृशति. तिर्यग्लोको भगवन्! पृच्छा? गौतम! असंख्येयभागं स्पृशति. ऊर्ध्वलोको भगवन्! पृच्छा? गौतम! देशोनमर्धं स्पृशति. इयं भगवन्! रत्नप्रभापृथिवी धर्मास्तिकायस्य किं संख्येयभागं स्पृशति, [illegible] स्पृशति, संख्येयान् भागान् स्पृशति, असंख्येयान् भागान् स्पृशति, सर्वं स्पृशति? गौतम! नो संख्येयभागं स्पृशति, असंख्येयभागं स्पृशति, नो संख्येयान्, नो असंख्येयान्, नो सर्वं स्पृशति. [illegible] भगवन्! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः घनोदधिः धर्मास्तिकायस्य पृच्छा—किं संख्येयभागं स्पृशति? [illegible] घनवात—तनुवाताः. [illegible] भगवन्! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः अवकाशान्तरं धर्मास्तिकायस्य किं संख्येयभागं स्पृशति, असंख्येयभागं स्पृशति, यावत्—सर्वं स्पृशति? गौतम! संख्येयभागं स्पृशति, नो असंख्येयभागं स्पृशति, नो संख्येयान्, नो असंख्येयान्, नो सर्वं स्पृशति. [illegible]—अनु०

७६. गाहाः—

पुढवोदही घण–तणू कप्पा गेवेज्जणुत्तरा सिद्धी,
संखेज्जइभागं अंतरेसु सेसा असंखेज्जा.

७६. गाथाः—

पृथिवी, उदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर अने सिद्धि. ए बधानां अंतरो धर्मास्तिकायना संख्येय भागने अडके छे अने बाकी बधा धर्मास्तिकायना असंख्य भागने अडके छे.

भगवंतसुहम्मसामिपणीए सिरीभगवईसुत्ते बीए सये दसमो उद्देसो सम्मत्तो.

७. अथाऽनन्तरोक्तान् धर्मास्तिकायादीन् प्रमाणतो निरूपयन्नाह–*'धम्मत्थिकाए'* इत्यादि. *'केमहालए'* त्ति लुप्तभावप्रत्ययाद् निर्देशात् किं महत्त्वं यस्याऽसौ किंमहत्त्वः, *'लोए'* त्ति लोकः–लोकप्रमितत्वात्, लोकव्यपदेशाद् वा, उच्यते च–*"पंचत्थिकायमइयं लोयं"* इत्यादि. लोके चासौ वर्तते, इदं चाऽप्रश्नितमप्युक्तम्, शिष्यहितत्वादाचार्यस्येति. लोकमात्रो लोकपरिमाणः, स च किञ्चिन्न्यूनोऽपि व्यवहारतः स्यात्, इत्यत आहः–लोकप्रमाणः–लोकप्रदेशप्रमाणत्वात् तत्प्रदेशानाम्, स चान्योन्यानुबन्धेन स्थित इत्येतदेवाह–*'लोयफुडे'* त्ति लोकेन लोकाकाशेन सकलस्वप्रदेशैः स्पृष्टो लोकस्पृष्टः. तथा लोकमेव च सकलस्वप्रदेशैः स्पृष्ट्वा तिष्ठति इति. 'पुद्गलास्तिकायो लोकं स्पृष्ट्वा तिष्ठति' इत्यनन्तरमुक्तमिति स्पर्शनाधिकारादधोलोकादीनां धर्मास्तिकायादिमतां स्पर्शनां दर्शयन् इदमाह–*'अहोलोए णं'* इत्यादि. *'सातिरेगं अद्धं'* ति लोकव्यापकत्वाद् धर्माऽस्तिकायस्य, सातिरेकसप्तरज्जुप्रमाणत्वाच्च अधोलोकस्य. *'असंखेज्जइभागं'* ति असंख्यातयोजनप्रमाणत्वाद् धर्मास्तिकायस्य, अष्टादशयोजनशतप्रमाणस्तिर्यग्लोकोऽसंख्यातभागवर्तीति तस्याऽसावसंख्येयं भागं स्पृशतीति. *'देसोणं अद्धं'* ति देशोनसप्तरज्जुप्रमाणत्वाद् ऊर्ध्वलोकस्य इति. *'इमा णं भंते!'* इत्यादि. इह प्रतिपृथिवि पञ्च सूत्राणि, देवलोकसूत्राणि द्वादश, ग्रैवेयकसूत्राणि त्रीणि, अनुत्तरे–षत्प्राग्भारासूत्रे द्वे, एवं द्विपञ्चाशत् सूत्राणि धर्मास्तिकायस्य 'किं संख्येयं भागं स्पृशति' इत्याद्यभिलापेनावसेयानि, तत्र अवकाशान्तराणि संख्येयं भागं स्पृशन्ति, शेषास्त्वसंख्येयभागमिति निर्वचनम्. एतान्येव सूत्राणि अधर्मास्तिकाय–लोकाकाशयोरिति. इहोक्तार्थसंग्रहगाथा भावितार्थैव इति.

श्रीपञ्चमाङ्गे गुरुसूत्रपिण्डे शतं स्थितानेकशते द्वितीयम् ।
अनैपुणेनापि मया व्यचारि तत्सूत्रयोगज्ञवचोऽनुवृत्त्या ॥ १ ॥

धर्मास्तिकाय केवडो? लोक जेवडो.

७. हवे हमणां कहेल धर्मास्तिकायादिकने प्रमाणथी निरूपतां कहे छे के, ['धम्मत्थिकाए' इत्यादि.] ['केमहालए' त्ति] धर्मास्तिकायनुं केटलुं महत्त्व छे–धर्मास्तिकाय केटलो मोटो छे ? ['लोए' त्ति] धर्मास्तिकाय लोक जेवडो छे माटे अथवा ते संबंधे 'लोक' शब्दनो व्यपदेश थाय छे माटे, ते लोक छे. कह्युं छे के,–"लोक पंचास्तिकायमय छे" इत्यादि. अथवा ते, लोकमां रहेलो छे माटे 'लोक' कहेवाय छे. आचार्य शिष्यना हितैषी होवाथी (तेओए) आ वातनो उत्तर पूछ्या विना पण आप्यो छे. ते लोकपरिमाण छे, कांइक ओछो होय तो पण व्यवहारथी लोकपरिमाण कहेवाय माटे कहे छे के, ते लोकप्रमाण छे–जेटला प्रदेशो लोकना छे तेटला प्रदेशो धर्मास्तिकायना पण छे. ते परस्पर मळीने रहेलो छे. ए ज वातने कहे छे के, ['लोयफुडे' त्ति] तेना बधा प्रदेशो लोकाकाशनी साथे अडकेला छे माटे ते 'लोकस्पृष्ट' छे. तथा ते (धर्मास्तिकायादि) पोताना बधा प्रदेशो वडे लोकने अडकीने रहेलो छे. 'पुद्गलास्तिकाय लोकने अडकीने रहेलो छे' ए वात हमणां कही छे माटे अर्थात् स्पर्शनानो अधिकार होवाथी हवे धर्मास्तिकायादि संबंधी अधोलोकादिनी स्पर्शनाने देखाडतां आ सूत्र कहे छे के, ['अहोलोए णं' इत्यादि.] ['सातिरेगं अद्धं' ति] कारण के धर्मास्तिकाय लोकव्यापी छे अने अधोलोकनुं प्रमाण सात रज्जु करतां कांइक वधारे छे. ['असंखेज्जइभागं' ति] कारण के धर्मास्तिकायनुं प्रमाण असंख्यात योजन छे अने तिर्यग्लोकनुं प्रमाण अढारसें योजननुं छे माटे तिर्यग्लोक धर्मास्तिकायने असंख्यात भागे छे अने तेम छे माटे ते, तेना असंख्य भागने अडके छे. ['देसोणं अद्धं' ति] कारण के ऊर्ध्वलोकनुं प्रमाण देशोन सात रज्जु–सात रज्जु करतां कांइक ओछुं–छे. ['इमा णं भंते!' इत्यादि.] अहीं प्रत्येक पृथिवी विषे पांच सूत्रो अर्थात् साते पृथिवीनां मळीने पांत्रीश सूत्रो, देवलोक विषे बार सूत्रो, ग्रैवेयक विषे त्रण सूत्रो, अनुत्तर विमान अने ईषत्प्राग्भारा विषे बे सूत्रो; ए प्रमाणे बधां मळीने बावन सूत्रो कहेवां, अने ए सूत्रोमां 'शुं धर्मास्तिकायना संख्येय भागने अडके छे?' ए प्रमाणे अभिलाप कहेवो. तेमां 'अवकाशांतरो संख्येय भागने अडके छे अने बीजा बधा असंख्येय भागने अडके छे' ए उत्तर छे. वळी अधर्मास्तिकाय अने लोकाकाश संबंधे पण ए ज सूत्रो कहेवां. अहीं कहेल अर्थसंग्रहगाथानो अर्थ स्पष्ट ज छे.

स्पर्शना.

विवरणकारनी निरभिमानिता अने शतक समाप्ति.

जेमां रहेलां शतको अनेक ए पंचमांग गुरुसूत्र युक्त,
विचार्युं तेनुं शतक द्वितीय सूत्रज्ञवाक्ये चतुराइहीणे.

---

१. मूलच्छायाः—गाथाः—पृथिव्युदधी घन–तनू कल्पा ग्रैवेयकाऽनुत्तरौ सिद्धिः, संख्येयभागम्–अन्तरेषु शेषा असंख्येयाः—अनु०

१. प्र० छाः—पञ्चास्तिकायमयं लोकम्:–अनु०

१. अहीं भावसूचकप्रत्यय–त्व–नो लोप थएलो छेः—श्रीअभय०. २. श्रीटीकाकारे आ विवरण, सूत्रज्ञ पुरुषोनां वाक्योने अनुसरीने कर्युं छे ए आ विशेषणथी जाणवानुं छे. ३. आ विशेषण श्रीविवरणकार—श्रीअभयदेवसूरि–नुं छे अने तेनुं निरभिमानिपणुं सूचवे छेः—अनु०

द्वितीय शतक समाप्त.

[illegible]
[illegible]

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
आहाकम्म	आधाकर्म	जैन साधुओ माटे करेल आहार.	२१०
आहार	आहार	भोजन.	५३
आहारअ*	आहारक	ते नामनुं एक शरीर.	१५८
आहारगम	आहारगम	आहार विषयक पाठ.	२२४
आहारट्ठ*	आहारार्थ	आहारनो अभिलाष.	५७
आहारट्ठि	आहारार्थिन्	आहारनो अभिलाषी.	५३
आहारिज्जमाण	आहार्यमाण	खावामां खप आवती वस्तु.	५३
आहारिजस्समाण	आहारयिष्यमाण	खावामां आवनार वस्तु.	५३
आहारिअ	आहारित	खावामां आवेल वस्तु.	५३
आहारुद्देसअ	आहारोद्देशक	प्रज्ञापना सूत्रना अट्ठावीशमा पदमां आवेलुं आहारसंबंधी हकीकतने जणावनारुं प्रथम प्रकरण.	५३
आहारेइ	आहारयति	(ते) खाय छे.	१७५
आहारेंति	आहारयन्ति	(तेओ) खाय छे.	५३
आहोहि*	आधोऽवधिक	परिमित क्षेत्र विषयक अवधिज्ञानवाळो, 'ओहि' शब्दनो अर्थ जूओ.	१३८
आहोहिअ	,,	,,	१३७

इ

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
इ*	इ	पूरक अव्यय.	३००
इओ	इतः	अहींथी, हवेथी.	१३८
इक्क	एक	एक.	२७४
इंगालसगडिआ	अङ्गारशकटिका	अंगाराथी भरेली सगडी.	२४२
इगुयाल	एकचत्वारिंशत्	एकताळीश.	२९७
इच्छामि	इच्छामि	(हुं) इच्छुं छुं.	२४०
इच्छिअ	इच्छित } ईप्सित }	इच्छेल, इष्ट.	२३८
इच्छियत्ता	इच्छितता } ईप्सितता }	इष्टपणुं.	६८
इच्छिअपडिच्छिअ	इच्छितप्रतीच्छित } ईप्सितप्रतीप्सित }	वधारे इष्ट.	२३८
इट्ठ*	इष्ट	इष्ट, वहालुं.	१५४
इट्ठत्ता	इष्टता	इष्टपणुं.	६८
इड्ढत्त	ऋद्धत्व	ऋद्धपणुं, समृद्धपणुं.	२९९
इड्ढि	ऋद्धि	ऋद्धि, दोलत.	१०४
इत्थत्त*	इत्थंत्व	आ प्रकारे.	२२९
इत्थत्थ	इत्यर्थ	ए अर्थ.	२२८
इत्थी	स्त्री	स्त्री.	२७२
इत्थिवेद	स्त्रीवेद	स्त्रीधर्मनी सूचक प्रवृत्ति.	२७१
इतिहास	इतिहास	पुराण शास्त्र.	२३१
इंदभूइ	इन्द्रभूति	ते नामना महावीरना मुख्य शिष्य. जुओ पृ० १६ मुं गणधर संबंधी १ लुं टिप्पण.	३३
इंदिय	इन्द्रिय	इंद्रियो—आंख वगेरे.	२२३
इंदियउद्देसअ	इन्द्रियउद्देशक	इंद्रियसंबंधी हकीकतने जणावनारुं प्रकरण.	२२७
इब्भ	इभ्य	धनवंत, हाथीने ढांकी शकाय एटला धनवाळो.	[illegible]
इय*	इति	ए प्रमाणे.	[illegible]
इयर*	इतर	बीजुं.	[illegible]
इयाणिं	इदानीम्	हमणां.	[illegible]
इरियावहिअ	ऐर्यापथिक	मार्गमां चालतो थएलो व्यापार—क्रिया.	[illegible]
इरियासमिअ	ईर्यासमित	सावधानतापूर्वक चालनार.	[illegible]
इहगत	इहगत	अहीं रहेलो.	[illegible]
इहभविअ	ऐहभविक	आ भवनुं.	[illegible]
इहभवियाउग	इहभवायुष्क	आ भवनी आवरदा.	[illegible]

ई

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
ईसर*	ईश्वर	युवराज.	[illegible]
ईसाण*	ईशान	ए नामनो बीजो देवलोक.	[illegible]
ईसीपब्भारा	ईषत्प्राग्भारा	सिद्धशिला.	[illegible]
ईहामिग*	ईहामृग	वरु.	३००

उ

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
उ*	तु	तो.	[illegible]
उक्किट्ठि*	उत्कृष्टि	आनंदनो महाध्वनि.	[illegible]
उक्कोस	उत्कृष्ट	वधारेमां वधारे.	५१
उक्कोसिया	उत्कृष्टि	वधारावाळी स्थिति.	१४१
उग्ग*	उग्र	उग्र.	२४
उग्गतव	उग्रतपस्	उग्र तपस्वी.	[illegible]
उग्गपुत्त*	उग्रपुत्र	उग्र जातना क्षत्रियनो पुत्र.	२८
उग्गह*	अवग्रह	अवग्रह–नियम, आश्रय(?).	२४
उग्गहित्ता	उद्गृह्य	ग्रहण करीने.	२८१
उग्गहेइ	उद्गृह्णाति	(ते) ग्रहण करे छे.	२८१
उच्चत्त	उच्चत्व	उंचाई.	[illegible]
उच्चार	उच्चार	विष्टा.	[illegible]
उच्चारपासवणभूमि	उच्चारप्रस्रवणभूमि	पेशाब अने झाडानी जग्या.	[illegible]
उच्चारेअ(य)व्व	उच्चारयितव्य	कहेवानुं.	[illegible]
उच्छूढसरीर	उत्क्षिप्तशरीर	शरीरनी सारवार नहीं करनार.	[illegible]
उज्जोएइ	उद्द्योतयति	(ते) अजवाळे छे.	[illegible]
उज्जोवेमाण	उद्द्योतयमान	अजवाळतो.	[illegible]
उट्ठा	उत्था	उठवुं.	[illegible]
उट्ठाय	उत्थाय	उठीने.	[illegible]
उट्ठाण	उत्थान	उठवुं.	[illegible]
उट्ठित्ता	उत्थाय	उठीने.	[illegible]
उट्ठिय	उत्थित	उभो थएल.	[illegible]
उट्ठेइ	उत्तिष्ठति	(ते) उभो थाय छे.	[illegible]
उट्ठेंति	उत्तिष्ठन्ति	(तेओ) उभा थाय छे.	[illegible]
उड्ढ*	ऊर्ध्व	उंचुं, ऊंचुं.	[illegible]
उड्ढंजाणु	ऊर्ध्वजानु	[illegible]	[illegible]
उड्ढत्ता*	ऊर्ध्वता	उंचाई.	[illegible]
उड्ढलोअ	ऊर्ध्वलोक	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

प्रा०	सं०	गु०	पृ०
[illegible]*	कर्मन्	कर्म—आत्मानी शक्तिनुं रोधक जडरूप तत्त्व.	४
[illegible]	कर्मक	कर्ममय शरीर.	१५५
कम्मकडा	कर्मकृता	कर्मथी करेल.	१७४
कम्मग*	कर्मक	'कम्मण' शब्द जुओ.	२०२
कम्मण*	कार्मण	,,	२०२
कम्मत्ता	कर्मता	कर्मपणुं.	५५
कम्मदव्ववग्गणा	कर्मद्रव्यवर्गणा	कर्मद्रव्यनी वर्गणा-परमाणु.	५४
कम्मप्पइट्ठिय	कर्मप्रतिष्ठित	कर्मने आधारे रहेल.	१७०
कम्मपगडि	कर्मप्रकृति	कर्मनो मूळ भेद, कर्मनो स्वभाव.	१३१
कम्मसंगहिअ	कर्मसंगृहीत	कर्मथी संग्रहेल.	१७०
कम्हा	कस्मात्	शाथी.	२१३
कम्मिया	कर्मिका	कर्मथी बनेली.	२८०
कमल	कमल	कमळ.	२४२
कय*	कृत	करेल.	१९६
कयर*	कतर	बेमांथी एक.	१८
कयंगला	कृतङ्गला	श्रावस्ती (सावत्थी) नगरीनी पासे आवेल ते नामनी नगरी.	२३१
कयाइ	कदाचित्	कोइ दिवस.	२३५
कर*	कर	हाथ.	६
करण	करण	आहारशुद्धि वगेरे क्रिया.	२३९
करण	करण	करवुं.	२७९
करणओ	करणतः	करवाथी.	२१४
करणप्पहाण*	करणप्रधान	करणनी मुख्यतावाळो.	२८६
करणवीरिय	करणवीर्य	क्रिया करवानी शक्तिरूप वीर्य.	१९६
करित्ता	कृत्वा	करीने.	२४५
करिंति	करन्ति	(तेओ) करे छे.	२१४
करिस्संति	करिष्यन्ति	(तेओ) करशे.	१३७
करिंसु	अकार्षुः	(तेओए) कर्युं.	१३७
करेइ*	करोति	(ते) करे छे.	११०
करेंत*	कुर्वन्	करतो.	६
करेज	कुर्यात्	(ते) करे.	१८३
करेमाहि*	कुरु	(तुं) कर.	१४५
करेंति*	कुर्वन्ति	(तेओ) करे छे.	६
करेंसु	अकार्षुः	(तेओए) कर्युं.	१३७
करेहिति	करिष्यति	(ते) करशे.	२४६
करोडिआ	करोटिका	एक जातनुं माटीनुं वासण.	२३२
कल्ल	कल्य	आवती काल.	२४२
कलयल	कलकल	कलकल अवाज.	२४८
कलह	कलह	कलह.	१६६
कल्लाण	कल्याण	कल्याण.	२३२
कलुस	कलुष	मलीनता.	१८१
कलुससमावन्न	कलुषसमापन्न	मलीनतावाळुं.	२३१
कविसीसग	कपिशीर्षक	कांगरा.	२९८
कसाय*	कषाय	रागादिक कषाय.	२६२
कसायसमुग्घाय	कषायसमुद्घात	कषायसमुद्घात. जुओ पृ० २६२ नुं १ लुं टिप्पण.	२६१
कसिण	कृत्स्न	बधुं, आखुं.	२०७
कह	कथम्	केम, कया प्रकारे.	१६०
कहकहकह*	कहकहकह	हसवानो अवाज.	[illegible]
कहं	कथम्	केम, कया प्रकारे.	[illegible]
कहिं	कुत्र	क्यां.	[illegible]
कहिअ*	कथित	कहेल.	[illegible]
कहिं	कुत्र	क्यां.	[illegible]
काअव्व	कर्तव्य	करवा योग्य.	[illegible]
काइया	कायिकी	शरीरथी थनारी क्रिया.	[illegible]
काउ	कापोत	एक प्रकारनी आत्मवृत्ति—कापोत—लेश्या.	[illegible]
काउं	कर्तुम्	करवाने.	[illegible]
काउलेस्स	कापोतलेश्य	कापोतलेश्यावाळो.	[illegible]
काउलेस्सा	कापोतलेश्या	कापोतलेश्या.	[illegible]
काउस्सग्ग	कायोत्सर्ग	ध्यान करवा सारु एक प्रकारनुं आसन.	[illegible]
काऊण*	कृत्वा	करीने.	[illegible]
कामकंखिअ	कामकाङ्क्षित	कामनी इच्छावाळो.	१८३
कामकामअ	कामकामक	कामनी कामनावाळो.	१८३
कामपिवासअ	कामपिपासक	कामनो तरस्यो.	१८३
काय	काय	शरीर.	२३६
कायगुत्त	कायगुप्त	शरीरने वश राखनार.	२३६
कायजोअ	काययोग	शरीरथी थती क्रिया.	१५१
कायजोग	,,	,,	२०१
कायजोगि	काययोगिन्	शरीरजन्य क्रियावाळो.	१५१
कायभवत्थ	कायभवस्थ	माताना पेटमां रहेल पोताना गर्भशरीरमां रहेनार.	२७४
काययोगि	काययोगिन्	'कायजोगि' जुओ.	१५५
कायसमिअ	कायसमित	शरीर प्रति निर्दोषपणे सावधानता राखनार.	[illegible]
कारण*	कारण	कारण.	[illegible]
काल	काल	समय, वखत.	११
काल*	काल	काळुं.	[illegible]
काल	काल	मरण.	१८३
कालओ*	कालतः	समयनी अपेक्षाए.	[illegible]
कालगअ(य)	कालगत	मरण पामेल.	[illegible]
कालमास	कालमास	मरवानो महिनो.	[illegible]
कालवन्न*	कालवर्ण	काळो वर्ण.	[illegible]
कालसमय	कालसमय	समय.	[illegible]
कालासवेसियपुत्त	कालास्यवैशिकपुत्र	ते नामना श्रीपार्श्वनाथनी परंपराना मुनि.	[illegible]
कालिआणुओग*	कालिकानुयोग	अमुक काळे ज वंचाय एवां शास्त्र—उत्तराध्ययन वगेरे.	[illegible]
कालियपुत्त	कालिकपुत्र	ते नामना श्रीपार्श्वनाथनी परंपराना मुनि.	[illegible]
कावलिअ	कावलिक	कोळियारूप आहार.	[illegible]
कासव	काश्यप	कश्यपथी चालेलुं—काश्यप गोत्र.	[illegible]
काहे	कुत्र	कये ठेकाणे.	[illegible]
कि*	किम्	प्रश्नसूचक शब्द.	[illegible]
किच्चा	कृत्वा	करीने.	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	(ते) [illegible]	[illegible]

प्रा॰	सं॰	गु॰	पृ॰
[illegible]	किंकिणिकाभूत	[illegible] एवो मजुल.	२४२
[illegible]	कृष्ण	कालुं.	३००
[illegible]	कृष्णावभास	काळी चळक (प्रकाश) वाळुं.	३००
[illegible]	किंनर	एक जातना देव.	२७७
[illegible]	किंपुरुष	,,	२७७
[illegible]	किंफल	कया फळवाळुं.	२७९
[illegible](अ)	किल्बिषिक	मात्र वेशधारी साधु.	१०८
[illegible]*	किल्बिषिका	किल्बिषिक मुनिनी वृत्ति.	११०
[illegible]*	क्रिया	क्रिया.	९५
[illegible]	कृपण	लोभिओ.	२१०
[illegible]	किल्विष	अपवित्र.	१८१
[illegible]	कृश	दुबळुं.	२४२
किंसंठिअ	किंसंस्थित	कया आकारे रहेल.	२९६
किंसुय	किंशुक	केसुडुं.	२४३
कीलिआ*	कीलिका	खीली.	३४
कीस	किंस्वता	कयो स्वभाव.	५३
कीसता	कीदृशता	कयो प्रकार.	७०
कुक्कुइअ*	कौकुच्यित	काम संबंधी चाळा करनार.	११०
कुक्कुडी	कुक्कुटी	कुकडी.	१६७
कुंचिअ*	कुञ्चित	गुंचळुं वळेल.	२३
कुंजर	कुंजर	हाथी.	३००
कुंडल*	कुण्डल	कुंडळ.	२५२
कुंडिआ	कुण्डिका	कुंडी.	२३२
कुणइ*	करोति	(ते) करे छे.	११०
कुत्तिआवणभूअ	कुत्रिकापणभूत	त्रणे लोकना पदार्थने वेचनारी दुकान.	२७८
कुलसंपन्न	कुलसंपन्न	कुलीन—कुळवंत.	२७७
कुव्वइ*	करोति	(ते) करे छे.	११०
कुसल	कुशल	कुशळ.	२७७
कुसुमिअ	कुसुमित	फुलवाळुं.	८४
कुसुंभवण	कुसुम्भवन	कसुंबानुं वन.	८४
कूड	कूट	जंगली पशुओने पकडवानो खाडो वगेरे.	१९१
के	किम्—कः	कोण?	२०६
केइय*	कियत्	केटलुं.	२९६
केमहालय	कियन्महालय	केटलुं मोटुं.	३१२
केरिस	कीदृश	केवुं.	८४
केरिस	कीदृश	केवुं.	२७४
केवइअ	कियत्	केटलुं.	३१२
केवइय	कियत्	,,	३१२
केवइकाल	कियत्काल	केटलो समय.	५३
केवइकाल	कियत्काल	,,	५३
केवचिरं	कियच्चिरम्	केटला लांबा वखत सुधी.	२७३
केवच्चिरेण	कियच्चिरेण	,,	३१२
केवतिय	कियत्	केटलुं.	२२१
केवल	केवल	एकलुं.	११७
[illegible]	[illegible]	[illegible]	१५६
[illegible]	[illegible]	[illegible]	३०१
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
केवलिअ	केवलिक	,,	१९२
केवलिपन्नत्त	केवलिप्रज्ञप्त	केवलिए [illegible].	२१७
केवलिसमुग्घाय	केवलिसमुद्घात	केवलिसमुद्घात, जुओ पृ० २९२ नुं १ लुं टिप्पण.	२९१
केस	केश	वाळ.	१८२
केसरिआ	केसरिका	साफ करवानो कपडानो कटको—पुंजणी.	२३१
केसलोअ	केशलोच	वाळनो लोच-हाथे खेंचवुं.	२०७
केसिसामि	केशिस्वामिन्	ते नामना श्रीपार्श्वनाथना शिष्य.	२७५
कोइ*	कोऽपि	कोइ पण.	६
कोउय*	कौतुक	सौभाग्य प्राप्ति माटे स्नानादि करवुं.	११०
कोउहल	कुतूहल	कुतूहल.	१८१
कोट्ठ	कोष्ठ	कोठलो.	३३
कोडि	कोटि	क्रोड (संख्या).	२९८
कोडुंबिय*	कौटुम्बिक	कुटुंबनो उपरि.	२४८
कोमल	कोमल	कोमळ.	२४२
कोमलतल*	कोमलतल	कोमळ तळियुं.	२४
कोस	कोश	गाउ.	२९७
कोह	क्रोध	क्रोध.	१४४
कोहोवउत्त	क्रोधोपयुक्त	क्रोधवाळो.	१४४

ख

प्रा॰	सं॰	गु॰	पृ॰
खओवसम*	क्षयोपशम	क्षय अने उपशम.	१२४
खओवसमिअ*	क्षायोपशमिक	क्षय अने उपशमथी थएल.	१२७
खत्तिअ	क्षत्रिय	क्षत्रिय.	२१०
खंतिखम*	क्षान्तिक्षम	क्षमाथी सहनार.	२०
खंतिप्पहाण*	क्षान्तिप्रधान	प्रधानपणे क्षमा राखनार.	२८६
खंदअ	स्कन्दक	ते नामना एक मुनि (वीरना शिष्य).	२२३
खंध	स्कन्ध	भाग.	३१५
खंधत्ता	स्कन्धता	स्कंधपणुं.	२१५
खंधदेस	स्कन्धदेश	स्कंधनो भाग.	३१०
खंधपएस	स्कन्धप्रदेश	स्कंधनी साथे जोडाएल परमाणु.	३१०
खंभ*	स्तम्भ	थांभलो.	३०१
खय*	क्षय	नाश.	१२४
खरपुढवी*	खरपृथिवी	कठण जमीन.	७०
खलु*	खलु	चोक्कस.	२८
खविज्जंति*	क्षप्यन्ते	खपाय छे.	१०७
खाइअ	ख्यात	प्रसिद्धपणुं.	३०७
खाइम	खादिम	खावानी चीज.	२४४
खामेइ	क्षमयति	खमावे छे.	२४४
खामेत्ता	क्षमयित्वा	खमावीने.	२४३
खिम	क्षेम	क्षेम, [illegible].	६७
खिप्पं	क्षिप्रम्	शीघ्र.	१७३
खीण*	क्षीण	नाश पामेल.	१२७
खुहा	क्षुधा	भूख.	२३८
खेड	खेट	धूळना गढवाळुं गाम.	८८
[illegible]	[illegible]	[illegible]	५८
[illegible]	[illegible]	[illegible]	१९६

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
		ग	
गअ	गत	गएल.	२४५
गच्छ*	गच्छ	साधुनो संघ.	५
गच्छइ*	गच्छति	(ते) जाय छे.	११०
गच्छंति	गच्छन्ति	(तेओ) जाय छे.	११६
गच्छामि	गच्छामि	(हुं) जाउं छुं.	२३२
गच्छामो	गच्छामः	(अमे) जइए छीए.	२३४
गच्छिहिइ	गमिष्यति	(ते) जशे.	२४६
गंठि	ग्रन्थि	गांठ.	१७०
गंध*	गन्ध	गाळ.	२७२
गण*	गण	समूह.	५
गणहर*	गणधर	साधुना संघना उपरि. जुओ पृ० १६ नुं गणधर उपरनुं टिप्पण.	१४
गणेत्तिआ	गणेत्रिका	एक प्रकारनुं कलाइनुं घरेलुं.	२३२
गति	गति	गति.	११०
गंतव्व	गन्तव्य	जवा योग्य.	२३६
गद्दभाल	गर्दभाल	श्रीवीरनो समकालीन ते नामनो एक परिव्राजक.	२३१
गंध	गन्ध	गंध.	७०
गंधओ*	गन्धतः	गंधथी.	५८
गंधगुण*	गन्धगुण	गंधरूप गुण.	६०
गंधव्व	गान्धर्व	गांधर्व (देव).	२७७
गंधपज्जव	गन्धपर्यव	गंधनो परिणाम.	२३५
गंधमंत*	गन्धवत्	गंधवाळुं.	५८
गब्भ	गर्भ	गर्भ.	१८१
गब्भगअ(य)	गर्भगत	गर्भमां गएल–रहेल.	१८२
गम	गम	अमुक विषय संबंधी शास्त्रनो पाठ.	६७
गम्मंती*	गम्यन्ते	जवाय छे.	३३
गमण	गमन	जवुं.	२३२
गमणकाल*	गमनकाल	जवानो काळ.	१०७
गमणगुण	गमनगुण	गमन गुणवाळो.	३०५
गमणिज्ज	गमनीय	जवा योग्य.	११८
गय*	गत	गएल.	३१२
गरहा	गर्हा	निंदा.	२०७
गरहइ	गर्हते	(ते) निंदे छे.	१२०
गरहह	गर्हत	(तमे) निंदो छो.	२०६
गरिहामि*	गर्हामि	(हुं) निंदुं छुं.	२०८
गरुअ	गुरुक	भारे.	२००
गरुअलहुअपज्जव	गुरुकलघुकपर्यव	भारे हळवा पर्याय.	२३५
गरुयत्त	गुरुकत्व	भारेपणुं.	१९९
गरुयलहुय	गुरुकलघुक	भारे हळवुं.	२००
गरुल	गरुड	गरुड.	२७७
गवेलग	गवेलक	घेटुं.	२७७
गहेयव्व*	ग्रहीतव्य	ग्रहण करवा योग्य.	८१
गाथा	गाथा	गाथा.	५३
गाम	ग्राम	गामडुं.	८४
गामकंटअ	ग्रामकण्टक	इंद्रियोवडे कांटारूप.	२०७
गामाणुगाम*	ग्रामानुग्राम	गामेगाम.	२४
गाहा	गाथा	गाथा.	११४

प्रा०	सं०	गू०	पृ०
गाहावइ	गृह(गाथा)पति	घरधणी.	[illegible]
गिण्हे*	गृह्णीयात्	ग्रहण करे.	[illegible]
गिण्हंति	गृह्णन्ति	(तेओ) ले छे.	[illegible]
गिद्धपट्ठ	गृध्रस्पृष्ट	गिधे ठोलेलुं.	[illegible]
गिम्ह*	ग्रीष्म	उनाळो.	[illegible]
गिरिपडण	गिरिपतन	पर्वतथी पडीने मरवुं.	[illegible]
गिलाइ	ग्लायति	(ते) ग्लानि पामे छे.	[illegible]
गिलायति	ग्लायति	,,	[illegible]
गुंजा	गुञ्जा	चणोठी.	[illegible]
गुण	गुण	गुण.	[illegible]
गुणओ	गुणतः	गुणथी.	[illegible]
गुणकर*	गुणकर	गुणने करनार.	[illegible]
गुणप्पहाण*	गुणप्रधान	प्रधानपणे गुणी.	[illegible]
गुणपडिवन्न*	गुणप्रतिपन्न	गुणने पामेल.	[illegible]
गुणरयणसंवच्छर	गुणरत्नसंवत्सर	ते नामनुं एक तप, जुओ पृ० २५८ नुं ३ जुं टिप्पण.	२५८
गुणसिलअ	गुणशिलक	ते नामनुं एक स्थान (अत्यारे बिहार प्रांतमां आवेल नवादा स्टेशन पासेनुं गुणावा.)	१२
गुत्त	गुप्त	शरीरादिकने वश राखनार.	२३६
गुत्तबंभयारि	गुप्तब्रह्मचारिन्	सर्वथा सावधानपणे ब्रह्मचारी.	२३६
गुत्तिंदिय	गुप्तेन्द्रिय	इंद्रियोने वश राखनार.	२३६
गुरुअ	गुरुक	भारे.	८
गुरुयलहुअ	गुरुकलघुक	भारे हळवुं.	२००
गुरुलहुअ	गुरुलघुक	,,	२००
गुलइय	गुल्मित	वेलडिओना जथ्थावाळुं.	८४
गूढहियअ*	गूढहृदय	ऊंडा मनवाळो.	९६
गेण्हइ	गृह्णाति	(ते) ग्रहण करे छे.	२१२
गेण्हंति	गृह्णन्ति	(तेओ) ग्रहण करे छे.	५५
गेण्हित्ता	गृहीत्वा	ग्रहण करीने.	२१२
गेवेज्ज*	ग्रैवेयक	ते नामनुं देवनुं स्थान.	२३१
गो	गो	गाय के बळद.	[illegible]
गोच्छिय	गुच्छित	गुच्छावाळुं.	८४
गोथुभ	गोस्तुभ	एक पर्वत.	२९७
गोय	गोत्र	गोत्र.	[illegible]
गोयम	गौतम	गौतम गोत्रवो.	[illegible]
गोयमसगुत्त	गौतमसगोत्र	,,	[illegible]
गोयर	गोचर	भिक्षा संबंधी क्रिया.	[illegible]
		घ	
घट्ठ*	घृष्ट	घसेल, सुंवाळुं करेल.	[illegible]
घड*	घट	घडो.	[illegible]
घडत्ता	घटता	संघटपणुं.	[illegible]
घण	घन	घनोदधि, घनवात.	[illegible]
घणउदहि	घनोदधि	घनोदधि, एक प्रकारनुं घन पाणी.	[illegible]
घणवाय	घनवात	घनवात, एक प्रकारनो घन पवन.	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]*	[illegible]	आत्मानी शक्तिनो घातक कर्म.	१२४
[illegible]	[illegible]	महण करावुं.	५५
घोर	घोर	इंद्रियादिक प्रत्ये निर्दय.	३३
घोरगुण	घोरगुण	असाधारण गुणवाळो.	३३
घोरतवस्सि	घोरतपस्विन्	घोर तपस्वी.	३३
घोरबंभचेरवासि	घोरब्रह्मचर्यवासिन्	कठण ब्रह्मचर्यने पाळनार.	३३

च

च*	च	समुच्चयसूचक अव्यय.	३
चइत्ता	च्युत्वा	च्यवीने.	२४६
चयंत*	च्युत्वा(च्यवमान(?))	च्यवीने,(च्यवतो–मरतो.)	२२१
चउक्क*	चतुष्क	चोक.	२८
चउक्क*	चतुष्क	चार.	२९६
चउयाल*	चतुश्चत्वारिंशत्	चुमाळीस.	१४२
चउट्ठाणवडिय*	चतुःस्थानपतित	चार प्रकारना.	९८
चउत्थ	चतुर्थ	चोथुं.	२०१
चउत्थग	चतुर्थक	,,	२०१
चउत्थचउत्थ	चतुर्थचतुर्थ	एक एक उपवास.	२४१
चउत्थपय	चतुर्थपद	चोथुं पद.	२०१
चउत्थपद	,,	,,	२०१
चउत्थभत्त	चतुर्थभक्त	उपवास.	६८
चउत्थी	चतुर्थी	चोथी.	१५२
चउतीस*	चतुस्त्रिंशत्	चोत्रीश.	१४२
चउद्दस*	चतुर्दश	चौद.	२४
चउद्दसमचउद्दसम	चतुर्दशतमचतुर्दशतम	छ छ उपवास.	२४१
चउद्दिस*	चतुर्दिश	चारे दिशा तरफ.	३००
चउद्दिसि	चतुर्दिश	,,	७०
चउद्दिसिं	,,	,,	१६५
चउनाणोवगय	चतुर्ज्ञानोपगत	चार ज्ञानवाळो.	३३
चउफास	चतुःस्पर्श	चार स्पर्श.	५८
चउभंगी*	चतुर्भंगी	चार विकल्प.	९५
चउभेय	चतुर्भेद	चार भेद.	११४
चउप्पह*	चतुष्पथ	ज्यां चार शेरी भेगी थाय ते मार्ग	२८
चउरासीइ	चतुरशीति	चोराशी.	१४२
चउरो	चतुर्–चत्वारः	चार.	१४३
चउरंस	चतुरस्र	चोरस–चार खुणीउं.	२९६
चउरिंदिय	चतुरिन्द्रिय	चार इंद्रियवाळो जीव.	७३
चउव्विह	चतुर्विध	चार प्रकारनुं.	५४
चउवीस	चतुर्विंशति	चोवीश.	१६६
चउवीसइ	चतुर्विंशति	,,	२२१
चउवीसइमचउवीसइम	चतुर्विंशतितम-चतुर्विंशतितम	अग्यार अग्यार उपवास.	२४१
चउसट्ठि	चतुःषष्टि	चोसठ.	१४२
चक्क	चक्र	चक्र.	९४
चक्कवट्टि	चक्रवर्तिन्	[illegible] राजा.	१०४
[illegible]*	[illegible]	[illegible]	१००
[illegible]	[illegible]	[illegible] इंद्रिय.	७४
[illegible]	[illegible]	[illegible] (आगळे) [illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

चत्तारि*	चतुर्–चत्वारि	चार.	३
चत्तालीस	चत्वारिंशत्	चालीस.	१४२
चतुकिरिय	चतुष्क्रिय	चार क्रियावाळो.	१९१
चंद*	चन्द्र	चांदो.	३०३
चंदम*	चन्द्रमस्	,,	३०४
चंदमंडल*	चन्द्रमण्डल	चांदानुं मंडळ.	३०४
चंदोवराग*	चन्द्रोपराग	चंद्रनुं ग्रहण.	३०४
चंपयवण	चम्पकवन	चंपानुं वन.	८४
चम्म	चर्मन्	चामडुं.	२४२
चमरचंचा	चमरचञ्चा	ते नामनी एक देवनगरी.	२३३
चय	च्यव	नाश.	२४६
चयंति	च्यवन्ते	नाश पामे छे.	२८५
चयमाण	च्यवमान	च्यवतो.	१७९
चरगपरिव्वायग	चरकपरिव्राजक	धाडनी भिक्षावडे निर्वाह करनार त्रिदंडिओ.	१०८
चरण	चरण	चारित्र, चारित्र संबंधी क्रियाओ.	३३९
चरणप्पहाण*	चरणप्रधान	प्रधानपणे चारित्रवाळो.	२८९
चरणरहिअ*	चरणरहित	चारित्ररहित.	८१
चरणहीण*	चरणहीन	,,	११०
चरम	चरम	छेलुं.	१८३
चरमाण*	चरमाण	चरतो, जतो.	२४
चरित्त	चरित्र	चारित्र.	७२
चरित्तमोह*	चारित्रमोह	चारित्र विषयक मोह (मूढता).	६५
चरित्तसंपन्न	चारित्रसंपन्न	चारित्रवाळो.	२७८
चरित्ताचरित्त*	चारित्राचारित्र	थोडो संयम.	८०
चरित्ति*	चरित्रिन्	चारित्रवाळो.	८०
चरित्तंतर	चरित्रान्तर	चारित्रना भेदो.	१३५
चरिम*	चरम	छेलुं.	१७३
चलण*	चलन	'चलन' संबंधी उद्देशक सूचक शब्द.	८
चलमाण	चलमान	चालतो.	४१
चलिअ	चलित	चालेल.	५५
चाइ	त्यागिन्	त्यागी.	२३९
चाउज्जाम	चातुर्याम	चार महाव्रतवाळो संयम.	२०७
चाउद्दसी	चतुर्दशी	चौदश.	२७७
चाउम्मासिय	चातुर्मासिक	चार महिनानुं.	२४०
चाउरंगिणी	चतुरङ्गिनी	चार विभागवाळी.	१८३
चाउरंत	चातुरन्त	चार छेडावाळुं.	८१
चामर*	चामर	चमर.	२४
चारित्तपज्जव	चारित्रपर्यव	चारित्रनो परिणाम.	२३६
चारुपण्ण*	चारुप्रज्ञ	सारी बुद्धिवाळो.	२८६
चिअ	चित	संग्रहेल.	११४
चिछरा	सिरा	सिरा–नाडी.	१४५
चिज्जंति	चीयन्ते	एकठां कराय छे.	५४
चिट्ठइ	तिष्ठति	(ते) स्थिति करे छे.	८४
चिट्ठंति	तिष्ठन्ति	(तेओ) ,,	१७०
चिट्ठिअव्व	स्थातव्य	स्थिति करवा योग्य.	२३९
चिट्ठेज्जा	तिष्ठेत्	(ते) स्थिति करे.	१९३
चिट्ठमाण	तिष्ठत्	स्थिति करतुं.	११४
[illegible]	[illegible]	(तेओ) [illegible] करशे.	१३४
[illegible]	[illegible]	([illegible]) [illegible] कर्यां.	११४

प्रा॰	सं॰	गू॰	पृ॰
चिय	चित	एकठुं करेल.	५४
चियत्त	त्यक्त	छोडी दीधेल.	२७७
चिरट्ठिति	चिरस्थिति	लांबी स्थितिवाळुं.	१७२
चिरं	चिरम्	लांबा काळ सुधी.	१७३
चिल्लणा	चिल्लणा	ते नामनी श्रेणिक राजानी राणी.	१३
चिंतिअ	चिन्तित	चिंतवेल.	२३२
चुअ	च्युत	च्यवेल	८४
चुलसीअ*	चतुरशीति	चोराशी.	१५४
चूयवण	चूतवन	आंबानुं वन.	८४
चेइअ	चैत्य	चैत्य.	१३
चेव*	चैव	निश्चयसूचक अव्यय.	५४
चोत्तीस*	चतुस्त्रिंशत्	चोत्रीश.	१४२
चोत्तीसइमं-चोत्तीसइम	चतुस्त्रिंशत्तमचतुस्त्रिंशत्तम	सोळ सोळ उपवास.	२४१
चोद्दस*	चतुर्दश	चौद.	७०
चोद्दसपुव्वि	चतुर्दशपूर्विन्	चौद पूर्वने जाणनार.	३३
चोर	चौर	चोर.	२३८

छ

प्रा॰	सं॰	गू॰	पृ॰
छ*	षट्	छ.	७७
छउमत्थ	छद्मस्थ	केवलज्ञान विनानो जीव.	४८
छक्कोडि	षट्कोटि	छ क्रोड.	२९८
छट्ठ*	षष्ठ	छठ्ठुं.	१५
छट्ठंछट्ठ	षष्ठषष्ठ	बबे उपवास.	२४१
छट्ठभत्त	षष्ठभक्त	बे उपवास.	७४
छड्डेंत	छर्दयत्	छोडतुं.	१६८
छण्णालय	षण्णालक	त्रिगडी.	२३२
छत्त*	छत्र	छत्र.	२४
छत्तय	छत्रक	,,	२३२
छत्तपलासअ	छत्रपलाशक	ते नामनुं एक रहेठाण.	२३१
छत्ताइच्छत्त*	छत्रातिच्छत्र	उपर उपर छत्रना थाट जेवुं.	३०१
छत्तीस*	षट्त्रिंशत्	छत्रीश.	२४
छत्तोहवण	छत्रौघवन	छत्रौघ नामना वृक्षनुं वन.	८४
छद्दिसि	षड्दिश	छ दिशा तरफनुं.	१६२
छनउइ	षण्णवति	छन्नुं.	१४२
छम्मास*	षण्मास	छ मास.	२२१
छलसीअ	षडशीति	छाशी.	२९८
छव्वीस*	षड्विंशति	छव्वीश.	२५८
छंद	छन्द	छंदशास्त्र.	२३१
छाउमत्थिय-समुग्घाय	छाद्मस्थिक-समुद्घात	छद्मस्थनो समुद्घात.	२६१
छायंत	छायान्त	छायानो छेडो.	१६४
छाया*	छाया	छाया.	२७३
छायाला*	षट्चत्वारिंशत्	छेंताळीश.	१४२
छावत्तरिम	षट्सप्ततितम	छोंतेर.	१४२
छिज्जमाण	छिद्यमान	छेदातुं.	४१
छिद्दंत	छिद्रान्त	छिद्रनो छेडो.	१६४
छिंदेज्जा	छिन्द्यात्	छेदे.	१९३
छिन्न	छिन्न	छेदेल.	४१
छिंदति	छिनत्ति	(ते) छेदे छे.	१९४
छेदेत्ता	छित्त्वा	छेदीने.	[illegible]
छेवट्ठ*	सेवार्त	जेमां शरीरोमां सौथी ओछा बांधावाळुं शरीर.	[illegible]

ज

प्रा॰	सं॰	गू॰	पृ॰
जइ*	यदि	जो.	[illegible]
जओ*	यतः	कारण के.	[illegible]
जक्ख	यक्ष	यक्ष.	[illegible]
जजुव्वेद	यजुर्वेद	यजुर्वेद.	[illegible]
जड*	जड	जड.	[illegible]
जण*	जन	मनुष्य.	[illegible]
जणकलकल*	जनकलकल	मनुष्यनो घोंघाट.	[illegible]
जणगत्त*	जनकत्व	जनकपणुं.	[illegible]
जणवूह*	जनव्यूह	मनुष्यनुं टोळुं.	[illegible]
जणबोल*	जनबोल	मनुष्यनो गणगणाट.	२४७
जणवय	जनपद	देश.	२११
जणवूह	जनव्यूह	मनुष्यनुं टोळुं.	[illegible]
जणसद्द	जनशब्द	मनुष्यनो शब्द.	[illegible]
जणसंनिवाअ*	जनसंनिपात	मनुष्योनी भीड.	[illegible]
जणसंमद्द	जनसंमर्द	मनुष्योनी भीड.	२१२
जणुक्कलिआ*	जनोत्कलिका	मनुष्योनुं नानुं टोळुं.	२४७
जणुम्मि*	जनोर्मि	तरंगनी पेठे मनुष्योनो संघ.	२४७
जमलिय	यमलित	युगल.	८४
जम्हा*	यस्मात्	जेथी.	५
जयमाण*	यतमान	यत्न करतो.	७७
जरा	जरा	घडपण.	२१८
जल्ल	यल्ल	मेल.	८४
जल*	जल	पाणी.	२५०
जलणप्पवेस	ज्वलनप्रवेश	अग्निमां बळी मरवुं.	[illegible]
जलप्पवेस	जलप्रवेश	पाणीमां डुबी मरवुं.	[illegible]
जलंत	ज्वलत्	बळतुं-बळतुं.	[illegible]
जस्स	यत्—यस्य	जेनुं.	[illegible]
जसंसि	यशस्विन्	जशवाळो.	[illegible]
जह*	यथा	जेम.	[illegible]
जहण्ण	जघन्य	ओछामां ओछुं.	[illegible]
जहण्णअ*	जघन्यक	,,	[illegible]
जहण्णिया	जघन्यिका	ओछामां ओछी.	[illegible]
जहन्निया	,,	,,	[illegible]
जहा*	यथा	जेम.	[illegible]
जहासंख*	यथासंख्य	अनुक्रमे.	[illegible]
जं*	यत्	जे.	[illegible]
जंतु*	जन्तु	जीव.	[illegible]
जंपइ*	जल्पति (कथयति)	(ते) कहे छे.	[illegible]
जंबूदीव	जम्बूद्वीप	जंबूद्वीप.	[illegible]
जंबूरुक्ख*	जम्बूवृक्ष	जांबुनुं झाड.	[illegible]
जंबूवण*	जम्बूवन	जांबुनुं वन.	[illegible]
जागरइ	जागर्ति	(ते) जागे छे.	[illegible]
जागरमाण	जाग्रत्	जागतुं.	[illegible]
जाण	यान	[illegible]	[illegible]
जाणग	ज्ञायक	[illegible]	[illegible]
जाणगा	ज्ञायका	[illegible]	[illegible]

प्रा॰	सं॰	गु॰	पृ॰
[illegible]*	द्रवमाण	जतो, गति करतो.	२४
दूर	दूर.	दूर.	३७
[illegible]	दूरगति	दूर जवानी शक्तिवाळो.	२७२
दूस	दूष्य	कपडुं.	३०७
दूसंत	दूष्यान्त	कपडानो छेडो.	१६४
देव*	देव	देव.	२०
देवअसंखिज्जाउय	देवअसंज्ञिकायुष्क	असंज्ञी द्वारा बंधायुं देवनुं आयुष्य.	१११
देवया	देवता	देवपणुं.	८४
देवलोअ	देवलोक	स्वर्ग.	१८९
देवलोग	,,	,,	१८९
देउल	देवल	देवल.	२१२
देवसंनिवाय	देवसंनिपात	देवोने भेगा थवानी जग्या.	२४३
देवसंसारसंचि- ट्ठणकाल	देवसंसारसंस्थानकाल	देवोने संसारमां रहेवानो काळ.	१०५
देवाउय	देवायुष्क	देवनी आवरदा.	१०९
देवी	देवी	देवनी स्त्री.	१३
देस	देश	भाग.	११३
देसग*	देशक	उपदेश देनार.	९९
देसपच्चक्खाण	देशप्रत्याख्यान	थोडी अटकायत.	१९०
देससद्द*	देशशब्द	'देश' एवो शब्द.	३१२
देसिय*	देशित	उपदेशेल.	१०७
देसूण	देशोन	थोडुं ऊणुं.	३१३
देसोवरम	देशोपरम	थोडी अटकायत.	१९०
दो*	द्वि—द्वौ	बे.	२५८
दोच्च	द्वि(तीय)कृत्वः	बे वार.	२३१
दोण*	द्रोण	बत्रीश शेर वजननुं माप.	२५०
दोमासिय	द्विमासिक	बे मासमां थनार.	२४०
दोस*	दोष—द्वेष	द्वेष.	११२

ध

प्रा॰	सं॰	गु॰	पृ॰
धण	धन	धन, पैसो.	२७६
धणिय	बाढम्	घणुं.	८१
धणु	धनुष्	वाम—४ फुटनुं माप.	२८९
धन्न	धन्य	धन्य.	२३४
धम्म	धर्म	धर्म.	१८
धम्मकहा	धर्मकथा	धर्मसंबंधी वात.	२३८
धम्मकामय	धर्मकामक	धर्मनी इच्छावाळो.	१८३
धम्मकंखिय	धर्मकाङ्क्षित	धर्मनी इच्छावाळो.	१८४
धम्मज्झय*	धर्मध्वज	एक (धर्म संबंधी) मोटी धजा.	२४
धम्मजागरिया	धर्मजागरिका	धर्म संबंधी विचार.	२४२
धम्मत्थिकाय	धर्मास्तिकाय	धर्मास्तिकाय नामनो पदार्थ.	२००
धम्मत्थिकायपएस	धर्मास्तिकायप्रदेश	धर्मास्तिकायनो प्रदेश.	१०६
धम्मदय	धर्मद	धर्मने देनार.	१८
धम्मदेसय	धर्मदेशक	धर्मनो उपदेशक.	१८
धम्मनायग	धर्मनायक	धर्मनो नेता.	१८
धम्मपिवासय	धर्मपिपासक	धर्म माटे तरस्यो.	१८४
धम्मवरचाउरंत- [illegible]	धर्मवरचातुरन्त- [illegible]	धर्म माटे एक मोटा चक्र- वर्ती जेवो.	१८
[illegible]	[illegible]	धर्मरूप रथने हांकनार.	१८
[illegible]	[illegible]	धर्म माटे [illegible]	[illegible]
धम्मायरिय	धर्माचार्य	धर्मनो आचार्य.	२३४
धम्मोवएस	धर्मोपदेश	धर्मनो उपदेश.	२३४
धरइ*	धरति	(ते) धारण करे छे.	१०६
धाउरत्त	धातुरक्त	गेरुथी रंगेल.	२३२
धारय	धारक	धारण करनार.	२३१
धारि*	धारिन्	,,	२७६
धारेमाण	धारयमाण	धारण करतो.	११४
धुव	ध्रुव	निश्चळ.	२३५

न

प्रा॰	सं॰	गु॰	पृ॰
न*	न	न, नहीं.	६
नई*	नदी	नदी.	३०४
नक्खत्त*	नक्षत्र	नक्षत्र.	३०३
नग्गभाव	नग्नभाव	नग्नपणुं.	२०७
नगर	नगर	नगर, शहेर. 'नयर' शब्द जुओ.	२३१
नगरी	नगरी	नगरी.	२३१
नत्थि*	नास्ति	नथी.	६१
नत्थित्त	नास्तित्व	नथीपणुं.	११७
नमोक्कार*	नमस्कार	नमस्कार.	१२
नमंसइ*	नमस्यति	(ते) नमे छे.	३३
नमंसति	,,	,,	८५
नमंसण*	नमस्यन	नमन करवुं.	३
नमंसणया*	नमस्यनता	नमस्कारपणुं.	२८
नमंसमाण	नमस्यमान	नमस्कार करतो.	३७
नमंसामि	नमस्यामि	(हुं) नमुं छुं.	२३२
नमंसामो	नमस्यामः	(अमे) नमीए छीए.	२३४
नमंसित्ता*	नमस्यित्वा	नमन करीने.	३३
नय*	नय	एक जातनो (तटस्थ) अभिप्राय.	२०८
नय	नय	मान्यता, सिद्धांत.	२३१
नयण*	नयन	आंख.	११०
नयप्पहाण*	नयप्रधान	प्रधानपणे नयने माननार.	२८६
नयर	नगर	नगर.	२८९
नयरी	नगरी	नगरी.	२३१
नर*	नर	पुरुष.	५६
नरअ*	नरक	नरक.	१५३
नरग*	नरक	,,	३३
नव	नवन्	नव.	४९
नवम	नवम	नवमुं.	२५५
नह	नख	नख.	१८२
नहत्त	नखता	नखपणुं.	१८२
नाग	नाग	एक जातना देव.	१४२
नागकुमार	नागकुमार	,,	६८
नाण*	ज्ञान	ज्ञान.	७६
नाणत्त	नानात्व	जुदाई.	१००
नाणाविह*	नानाविध	जुदा जुदा प्रकारनुं.	११०
नाणंतर	ज्ञानान्तर	जुदां जुदां ज्ञानो.	१२५
नाम	नाम	नाम.	१३
नायव्व*	ज्ञातव्य	जाणवा योग्य.	२०१
नारयभवंतर*	नारकभवान्तर	[illegible] काळ सुधी नारकीनुं [illegible] रहेवुं.	१०५